

DUE DATE SLIP**GOVT. COLLEGE, LIBRARY**

KOTA (Raj.)

Students can retain library books only for two weeks at the most.

BORROWER'S No.	DUE DTATE	SIGNATURE

भाग १८]

जुलाई-दिसम्बर, १९३६

[अंक १०३-१०८]

विषय-सूची

लेख	लेखक	पृष्ठ	लेख	लेखक	पृष्ठ
अखिल भारतीय महिला-कानफरेंस (सचित्र)		२४२	काश कि पत्थर बोल सकते ! (सचित्र)—		
अधूरी कहानी—कुमारी राजरानी		३१२	ब्रजमोहन वर्मा		६९१
अपनी शक्ति पहचानो—एक मूर्खा		२६४	किताब (कहानी)—मैक्सिम गोर्की ;		
आजकल (कविता)—श्री आरसीप्रसाद सिंह		६७३	अनु० श्री हीरालाल जैन		७२५
आधुनिक युगमें परिवार—प्रो० परसराम, एम० ए०		२६५	फिस ओर—श्रीमती महादेवी वर्मा, एम० ए०		८१
आधुनिक शिक्षा और कन्याएँ—श्रीमती उर्मिला देवी		४१३	क्यों ? (कविता)—श्री वासुदेव शर्मा		७१७
आन्ध्र-देशकी एक झलक (सचित्र)—			खोया बचपन (कहानी)—		
श्री रामानन्द चट्टोपाध्याय		१५६	अनु० श्री सत्येन्द्रनारायण, बी० ए०		१३
आभार (कविता)—श्री मेथिलीशरण गुप्त		१६९	गुजराती हिन्दू स्त्री-मंडल बम्बई (सचित्र)		३०२
आर्य-कन्या-महाविद्यालय बड़ौदा (सचित्र)—			गोर्की दादाके साथ (सचित्र)—		
श्री सुशीलाकुमारी पंडित		३२३	डा० सत्यनागयण सिंह, पी०-एच० डी०		१८१
आवरण—रवीन्द्रनाथ ठाकुर ; अनु० धन्यकुमार जैन		१९०	घरकी लक्ष्मी—श्रीमती शान्ता देवी		३७१
आश्वासन (कविता)—प्रो० मनोरंजन, एम० ए०		२१	चलता-फिरता घर—श्री हरि जी० गोविल		४४५
इंग्लैण्डकी मजदूर-स्त्रियाँ (सचित्र)—कुमारी पद्मावती		३८१	चार अध्याय (उपन्यास)—रवीन्द्रनाथ ठाकुर ;		
इस अंकके लेखक और लेखिकाएँ		४२१	अनु० धन्यकुमार जैन	५१७, ५७४, ७०९	
एक देहाती गीत सुनकर—श्री अख्तर शेरानी		७२१	चिट्ठी-पत्री—		
एक बात—श्रीमती लीलावती मुंशी		३५६	इतिहास, सम्प्रदाय और सरकार—श्री अज्ञेय		९०
एक पत्र—श्री भक्तदर्शन		५०२	भारतीय साहित्य-परिपट्ट—श्री रायपुरी		९३
एक पैसेकी बात (कहानी)—श्रीयुत पहाड़ी		४८२	हम किधर बहे जा रहे हैं ?—श्री त्रिभुवनराम मुट्ठ		९६
एक प्रतिभाशालिनी महिला-चित्रकार (सचित्र)—			एक पत्र श्री अज्ञेय		२२१
वरदाचरण उकील		३८५	चित्र-चयन—		
एक महत्त्वपूर्ण पुस्तककी आयोजना (सचित्र)—			१ मूलमन्थकुटी-विहारके भीत-चित्र ९,		
श्रीराम शर्मा		६१	रस्सीका पुल ; चतुर्थ-सम्बन्धी २ चित्र		७३-८०
एक शिक्षित परिवारकी कहानी (कविता)—			२ मोटरके २ चित्र, गैसकी रोकका चित्र,		
प्रो० मनोरंजन, एम० ए०		२९०	श्री रामकृष्ण रंगर, कैमरा		२२२-२४
एक सच्ची कहानी—श्रीयुत सुन्दरलाल		५६९	चीनकी शिक्षाका पिता—कनफ्यूशियस		
कब ? (कविता)—श्री गंगाप्रसाद पाण्डेय		१७३	श्री अविनाशचन्द्र वेदालंकार		१६
कलकत्तेका कमर्शियल म्यूजियम (सचित्र)		७२९	जय राष्ट्रीय निशान (कविता)—		
कलापी (कविता)—श्री आरसीप्रसाद सिंह		२३३	श्री सोहनलाल द्विवेदी, बी० ए० एल०-एल० बी०		११३
कवि और किसान (कविता)—श्रीयुत नरेन्द्र		६३२	जवाहरलालजी और हिन्दी—श्री चन्द्रगुप्त विद्यालंकार		११४
कविते (कविता)—श्रीमती सूर्यदेवी दीक्षित 'क्या'		५९६	जानवरोंकी बरदास्त—कुँवर सुरेन्द्रसिंह		७१८
कन्या-गुरुकुल देहरादून (स०)—आचार्य रामदेव		३५७	जापानकी शिक्षा-प्रणाली—श्री ईश्वरदत्त विशारद		८००

जालन्धर-कन्या-महाविद्यालय (सचित्र)—

श्रीमती लज्जावती देवी	३७६
जावाका आनन्द-निकेतन—‘तुपारी’ और ‘ब्रोमो’	
ज्वालामुखी (सं०)—श्री अमृतलाल नायक, एम० ए०	७०४
जीवन-संस्था—(कहानी)—श्रीमती सत्यवती मलिक	२३९
टोंगेवाला (कहानी)—श्री चन्द्रगुप्त विद्यालंकार	६३९
तीन तारीखें (कहानी)—श्रीयुत पहाड़ी	७४०
तैराक वीर (कविता)—श्रीयुत नरेन्द्र	१९९
देशी बनाम विलायती—रवीन्द्रनाथ ठाकुर	६१
देशी-राज्योंके बन्दरगाह—	

प्रो० शंकरसहाय सक्सेना, एम० ए०	४७५
धर्मके रास्तेमें विज्ञान—	
श्री भगवतीप्रसाद श्रीवास्तव, एम० एस-सी०	४८३
नन्दा—श्री कन्हैयालाल मिश्र ‘प्रभाकर’	७३९
नन्हा फूल (कविता)—श्री एन० के० चित्रभास	६७६
नाम तेरा (कविता)—श्रीयुत अज्ञेय	१७७
नारी-निर्यातन (कहानी)—स्व० रवीन्द्रनाथ मैत्र ;	
अनु० ब्रजमोहन वर्मा	१२३
नारी-शिक्षा-समिति—लेडी अवला वोस	३२१
निस्पृह (कविता)—श्रीमती सरस्वती देवी	३७५
पंछी (कहानी)—श्री रामकृष्णदेव गर्ग	४८९
पं० जवाहरलाल और समाजवाद—	

प्रो० प्रेमनारायण माथुर, एम० ए०, बी० कॉम०	५८५
पथप्रष्ट (कविता)—श्रयुत वचन	५७२
पतिव्रता जयिनी (सचित्र)—बनारसीदास चतुर्वेदी	२५६
पत्नी (कहानी)—श्री जैनेन्द्रकुमार	१७४
पत्नीका पत्र (कहानी)—	
श्री ए० सीताराम ‘आनन्द’, बी०-एस० सी० ;	
अनु० के० एन० आचार्य मधुगिरी	५२
पत्नी या पति कैसा हो ?—	
मैं कैसी स्त्री चाहता हूँ—डा० ए० लतीफ	४१६
मैं कैसी पत्नी चाहता हूँ—श्री चन्द्रगुप्त विद्यालंकार	४१९
पति-निर्वाचन—कुमारी अनामिका देवी	४१९
पत्र-लेखन-कला—बनारसीदास चतुर्वेदी	१
परवल—श्रीराम शर्मा	४५४
परीक्षा (कहानी)—श्री भगवतीप्रसाद वाजपेयी	४०
पहाड़ी प्रदेश और साहित्यिक जाग्रति—श्रीराम शर्मा	२००
पहाड़ी प्रदेशोंमें साहित्यिक क्यों नहीं होते ?—	
श्री महेशानन्द डनियाल	४९९
पहेली (नाटक)—श्री ललिताचरण गोस्वामी	६८२

पुस्तकें कैसे विकें ?—	८
पुस्तकें कैसे विकें—श्री नाथूराम प्रेमी	२०६
पुस्तकें कैसे विकें ?—श्रीयुत भारतीय, एम० ए०	६३३
पुस्तकालयोंका मुख्य कर्तव्य—श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर	६२८
पेसुखानका विश्व-विदित विज्ञान-मन्दिर (सचित्र)—	
श्री अमृतलाल नायक, एम० ए०	४५६
पोलैण्डका महिला-आन्दोलन (सं०)—कुमारी इवा रुज़का	२३८
प्रकृति-प्रेम (कविता)—श्री भगवतीप्रसाद तिवारी	७३०
प्रयाग-महिला-विद्यापीठ (सचित्र)—	
श्री भवानीप्रसाद गुप्त	४०२
प्रवासी भारतीय स्त्री-समाज (सचित्र)—	
श्रीमती सरयूदेवी मोहनराम	३५२
प्राण मन (कहानी)—रवीन्द्रनाथ ठाकुर ;	
अनु० धन्यकुमार जैन	१४२
प्रायश्चित्त (कहानी)—श्रीमती होमवती	५८८
प्रेम-क्रीडाण (कहानी)—श्री ब्रजमोहन गुप्त	६०२
प्रेमकी भूल (कहानी)—कुमारी सुशीला आगा, बी० ए०	४४९
फलोंका विश्वकर्मा मिचूरिन—ब्रजमोहन वर्मा	७
फिर भी (कविता)—श्री सोहनलाल द्विवेदी, बी० ए०	४५३
वालिकाओंके झूलनेके गीत—श्रीराम शर्मा	३९४
विहार-महिला-विद्यापीठ	४०९
बोरोदुदूरका बौद्ध-स्तूप—श्री अमृतलाल नायक, एम० ए०	१३३
ब्रजभाषाका एक प्राचीन व्याकरण—	
श्री अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी	१७१
ब्रह्मदेशमें हिन्दी (सचित्र)—श्री गोपालदास, विशारद	५९७
भारतके विभिन्न प्रान्तोंकी महिलाएँ—	
श्री डूंगरश्री धरमशी सम्पट	३४१
भारतमाता-मन्दिर (सचित्र)	५५१
भारतवर्षके स्वर्ण-निर्यातन—श्री गोपीलाल चौधरी	१४६
भारतीय कलाके भंडारी नाहरजी (सं०)—	
ब्रजमोहन वर्मा	५९
भारतीय कुष्ठियोंकी सेवामें ४५ वर्ष (सचित्र)—	
बनारसीदास चतुर्वेदी	४००
भारतीय महिला-विद्यापीठ पूना—	
श्री चिम्मनलाल सी० शाह, एम० ए०, एल०-एल० बी०	२८५
महात्मा गांधी : दिव्य-शक्ति—	
स्व० डा० जे० टी० सण्डरलैण्ड	४३३
महिला मशडल—	
१—मैंने यूरोपमें क्या देखा ? (सचित्र)—	
कुमारी अमलानन्दी	५०७

—पेरिसमें क्या देखा (सचित्र)—कुमारी अमलानन्दी	६४९
उत्कलमें नारी-जाग्रति—श्री मती अन्नपूर्णा चौधरी	६५५
३—पेरिसमें आठ मास (स०)—कुमारी अमलानन्दी	७६
माइकेल बाकूनिन (सचित्र)—वनारसीदास चतुर्वेदी	७४२
माता (कविता)—श्री कमलाप्रसाद 'कमल'	७५९
माताको क्या जानना चाहिए ?	४२५
मातृपद (स० कविता)—श्रीयुत केसरी	३००
मानव-जातिका इतिहास—श्री चन्द्रगुप्त विद्यालंकार	१३२
मारिशसमें भारतीयोंके सौ साल—	
श्रीयुत 'रजकण', मारिशस	७३५
मालीकी लड़की (कहानी)—श्रीमती सत्यवती मलिक	६९९
मुसलमान वादशाह और देवनागरी लिपि (सचित्र)—	
डा० हीरानन्द शास्त्री, एम० ए०, डी० लिट्०	६८
मेरी चीन-यात्रा (सचित्र)—मिस म्यूरियल लीस्टर	२४९
'मैं' (कविता)—श्री रामचन्द्र सक्सेना, बी० ए०	७०३
मैं तुम्हारे ध्यानमें हूँ (कविता)—श्रीयुत अज्ञेय	४६२
मैसूरका भगिनी-समाज—	३९२
यह किसकी तसवीर है (कहानी)—	
श्री मिर्जा अजीमवेग चराताई, एल० एल० बी०	३६४
यूरोपका एक अल्पज्ञात देश (सचित्र)—ब्रजमोहन वर्मा	५६०
रघुवीरनारायण (सचित्र)—प्रो० मनोरंजन, एम० ए०	५७९
रमादेवी और उनका कार्य (सचित्र)—	
श्री अनुसूयाप्रसाद पाठक	३९७
रवीन्द्र-साहित्यमें नारी—श्री दुर्गाप्रसाद पाण्डेय	६१५
रामचरित-मानस (समालोचना)—	
श्री अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी	२०९, ५३३
राष्ट्र-भाषाकी पूजा (कविता)—	
श्रीमती राजकुमारी देवी श्रीवास्तव	३६०
रत्नजी—वनारसीदास चतुर्वेदी	६७६
१ और उनकी धूपशाला (सचित्र)—	
श्री एस० एन० सिंह	२८
रत्नका निमन्त्रण (कविता)—श्रीयुत बच्चन	१२९
लेखक कौन और क्यों बनते हैं ?—	
श्री कस्तूरमल बाँकिया, बी० कॉम०	६२२
विदेशोंमें हम—श्री आनन्दमोहन सहाय	४७०
विवाहका भविष्य—श्री चन्द्रगुप्त विद्यालंकार	३४६
वीणा (कहानी)—श्रीमती कमलादेवी चौधरी	३३५
वीरांगना—श्री सुरेन्द्र शर्मा	२७९
शिक्षाका विकोरण—रवीन्द्रनाथ ठाकुर ;	
अनु० धन्यकुमार जैन	४५

संख्या और प्रभात—रवीन्द्रनाथ ठाकुर ;	
अनु० धन्यकुमार जैन	५८
समालोचना और प्राप्ति-स्वीकार—	
१—'काकली', 'काव्यमें अभिव्यंजनावाद', 'हिन्दी-शब्द संग्रह', 'पद्माकर-पंचामृत', 'आधुनिक', इंडी इयर बुक एण्ड डाइरेक्टरी	९९-१०१
२—'गोदान', 'फलोंकी खेती और व्यवसाय', 'हिन्दी-पर्यायवाची कोश', 'ट्राटस्कीकी जीवनी', 'इन्स्टाल-मेंट', 'मानकुमारी', 'रसायनसार', 'ठुमरी तरंगिणी' 'श्री अरविन्द और उनका योग'	२१५-२०
३—'हिमालयन फोकलोर', 'अपराजित अवीसीनिया', 'अर्जुन'का रियासत अंक, 'सैनिक'का चुनाव-अंक, 'योगी का दीपावली-अंक, 'वीमा और वाणिज्य'	६५७-६१
सम्पादकीय—	
१—लार्ड लिनलिथगोकी कार्य-नीति, ब्रिटिश मन्त्री द्वारा राष्ट्रीय गुप्त बातोंका प्रकाश, लिबरल्लोंकी अदूरदर्शिता, श्रीप्रकाशजीकी खरी बातें, रहे या न रहे, गाँवोंकी ओर, टैरिफ बोर्डका फैसला, कविवर गुप्तजीकी जयन्ती, मुसलमानोंकी भयंकर भूल, मुगल सम्राट और देवनागरी लिपि, गढ़वाल और हिन्दी-साहित्य, इटलीपर प्रतिबन्ध उठाये जायँ ? 'हिन्दी मिलाप'का सत्साहस	१०२-१२
२—भारतीय रियासती प्रजा, देशो-राज्य प्रजा-परिषद्, लिनलिथगोके साँझ, भारतीय फौज, अवीसीनिया और राष्ट्र-संघ और 'डाकू', पं० जवाहरलाल नेहरू और लिबरल, नेहरूजीके आक्षेप और सर कवासजी जहाँगीरजी, फीजीका नया विधान, पोलैण्डके भारतीय कौंसुल, लाटोंके दौरे, कविवर मैथिलीशरण गुप्तकी जयन्ती, पत्र-सम्पादक और पत्रोंके मालिक, करसियांगका वाचनालय	२२५-३२
३—स्त्रियाँ और साहित्य-सेवा, हमारी महिला-जाग्रति, 'शक्ति'का जन्म, एक बढ़ती हुई बीमारी, उड़ोसाकी सबसे बड़ी आवश्यकता	४२६-३२
४—नामजदगी बनाम प्रतियोगिता, मैकमहनको सजा, ओलिम्पिक खेलोंमें भारतकी असफलता, स्वर्गीय प्रेमचन्द, स्वर्गीय मुन्शी प्रेमचन्द, पुस्तकालयोंकी विशेष सुयोग, स्व० डा० जे० टी० 'सण्डरलैण्ड', दैनिक हिन्दुस्तान, अमरावती व्यायामशाला, दक्षिण-अफ्रिकाका सद्भावसूचक डेपूटेशन, मुसल-	

मानोंकी धदूरदर्शिता, एकेडेमीका साहित्य-सम्मेलन	५४५-५२
५—अंडमानमें राजनैतिक कैदी, विशेषज्ञोंका रोग, राहुलजीका महत्त्वपूर्ण कार्य, खुदरा फजीहती, लार्ड विलिंगडन और भारतीय प्रेस, मारवाड़ी और देशी रियासतें, कौन-सी हिन्दी-राष्ट्र-भाषा होगी, भारतमाता मन्दिर, प्रभाकरका उदय, हिन्दुस्तान किनका है ? अलीगढ़की उर्दू-कानफरेन्स, देव-पुरस्कार, गरीब हिन्दोस्तानके मरथे, हिन्दी-साहित्य - सम्मेलन मदरासका सभापतित्व, अन्तर्राष्ट्रीय सौहार्द-संघ, स्व० पं० खड्गजीत मिश्र हथियारोंका व्यापार	६६२-७२
६—अष्टम एडवर्डका सिंहासन-त्याग, अष्टम एडवर्ड और ईसाई धर्म, प्रेमचन्दजीका स्मारक, थोवी-मनोवृत्ति, प्रधान पादरीकी अभद्रता, कौंसिलोंका सायाजाल, सर्वधर्म-समन्वय, मुसलमानोंकी दृष्टि किधर है ? 'अरे इन दोउन राह न पाई', ग्रामीण जनता और सरकार	७६६-८२
साधना और द्विधा (कविता)—	८९
श्री रामधारी सिंह 'दिनकर'	७३१
साहित्यिक भिक्षु—वनारसीदास चतुर्वेदी	

सुमेरु-सभ्यताकी जन्मभूमि भारत—	
श्रीयुत अमृतवसन्त	६२६
स्मृति-चिह्न (कहानी)—श्रीमती होमवती	४६३
स्वतन्त्रताके युद्धमें महिलाएँ—श्रीमती विजयलक्ष्मी पंडित	२९५
स्वर्गीय प्रेमचन्दजी—वनारसीदास चतुर्वेदी	५५३
स्त्रियोंमें संगीत—श्री केशव गणेश ठेकने	४११
स्पेन और फिलिस्तीन (सचित्र)—ब्रजमोहन वर्मा	४:४
सौन्दर्य-प्रेम—श्रीमती धर्मशीला लाल, वार-ऐट-ला	२७१
हम हिमालय-प्रांत ही देख लें—श्री वावीराम आर्य	६१३
हमारा साहित्य और स्त्री-समाज—	
सौभाग्यवती कमलाबाई किवे	३६१
हमारी जाग्रति—कुँवरानी गुणवती महाराजसिंह	२६३
हमारे घरोंमें कला—श्रीमती मिरियम वेनेड	२६१
हमारे पिंजरवद्ध साहित्यिक—श्रीमती महादेवी वर्मा	२३५
हिन्दी-कविताकी कुछ नई पुस्तकें—श्री हजारीप्रसाद द्विवेदी	७५०
हिन्दी-साहित्य और स्त्रियाँ—श्रीमती कमला मिश्रा	३१५
हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन—श्री अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी	२३
हिन्दू-समाजमें विधवाओंकी दशा—श्रीमती चन्द्रकला देवी	३१८
हेरियट एलिज़ेबेथ स्टो (स०)—वनारसीदास चतुर्वेदी	३८९
हृदय-देवताके प्रति (कविता)—	
श्रीमती सूर्यदेवी दीक्षित विदुषी 'ऊषा'	

लेखक-सूची

श्रीयुत अज्ञेय—	
नाम तेरा (कविता)—	१७७
चिट्ठी-पत्री—	२२१
मैं तुम्हारे ध्यानमें हूँ (कविता)—	४६२
श्री अक्षर शेरानी—एक देहाती गीत सुनकर (कविता)	७२१
मिर्जा अजीमबेग चगताई, बी० ए०, एल्ल-एल० बी—	
थह किसकी तसवीर है ? (कहानी)	३६४
कुमारी अनामिका देवी—पति-निर्वाचन	४१९
श्री अनुसूयाप्रसाद पाठक—	
श्रीमती रमादेवी और उनका कार्य (सचित्र)	३९७
श्रीमती अन्नपूर्णा चौधरी—उत्कलमें नारी-जाग्रति	६५५
लेडी अवला घोस—नारी-शिक्षा-समिति	३२१
कुमारी अमला नन्दी—	
यूरोपमें मैंने क्या देखा ? (सचित्र)	५०७
पेरिसमें क्या देखा ? (")	६४९
पेरिसमें आठ मास (")	७६०

श्री अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी—	
हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन	२३
ब्रजभाषाका एक प्राचीन व्याकरण	१७१
रामचरित-मानस (समालोचना)	२०९-५३३
श्री अमृतलाल नायक, एम० ए०—	
बोरोबुद्धका बौद्ध-स्तूप	१३३
पेरुआनका विश्व-विदित विज्ञान-मन्दिर (सचित्र)	४५६
जावाका आनन्द-निकेतन—'तुपारी' और 'त्रोमो' ज्वालामुखी (सचित्र)	७०४
श्रीयुत अमृतवसन्त—सुमेरु-सभ्यताकी जन्मभूमि भारत	६२६
श्री अविनाशचन्द्र वेदालंकार—	
चीनकी शिक्षाका पिता—कनफ्यूशियस	१६
श्री आनन्दमोहन सहाय, जापान—विदेशोंमें हम	४७०
श्री आरसीप्रसाद सिंह—	
कलापी (कविता)	२३३
आजकल (")	६७३

कुमारी इवा रज़का—पोलैण्डका महिला-आन्दोलन	२३८	श्रीयुत नरेन्द्र—	
श्री ईश्वरदत्त, विशारद—जापानकी शिक्षा-प्रणाली	६०७	तैराक वीर (कविता)	१९९
श्रीमती उर्मिला देवी—आधुनिक शिक्षा और कन्याएँ	४१३	कवि और किसान („)	६३२
एक मूर्खा—अपनी शक्ति पहचानो	२६४	श्री नाथराम प्रेमी—पुस्तकें कैसे चिकें ?	२०६
डा० ए० लतीफ—मैं कैसी स्त्री चाहता हूँ	४१६	कुमारी पद्मावती—इंग्लैण्डकी मज़दूर स्त्रियाँ (स०)	३८१
श्री ए० सीताराम 'आनन्द', वी० एस० सी० और के०		प्रो० परसराम, एम० ए०—आधुनिक युगमें परिवार	२६५
एन० आचार्य मधुगिरी—पत्नीका पत्र (कहानी)	५२	श्रीयुत पहाड़ी—	
श्री एन० के० चित्रभास, वी० ए०—नन्हा फूल (कविता)	५७६	एक पैसेकी बात (कहानी)	४८२
श्री एस० एन० सिंह—		तीन तारीखें („)	७४०
डा० रोलिया और उनकी धूपशाला (सचित्र)	२८	प्रो० प्रेमनारायण माथुर, एम० ए०, वी० कॉम०	
श्रीमती कमलादेवी चौधरी—वीणा (कहानी)	३३५	पं० जवाहरलाल और समाजवाद	५८५
श्री कमलाप्रसाद 'कमल'—माता (कविता)	७५९	श्रीयुत वच्चन	
सौ० कमलाबाई किवे—हमारा साहित्य और स्त्री-समाज	३६१	लहरोंका निमन्त्रण (कविता)	१२९
श्रीमती कमला मिश्रा—हिन्दी-साहित्य और स्त्रियाँ	३१५	पथ-भ्रष्ट („)	५७२
श्री कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर'—नन्दा	७३९	वनारसीदास चतुर्वेदी—	
श्री कस्तूरमल चौधिया, वी० कॉम०—		पत्र-लेखन-कला	१
लेखक कौन और क्यों बनते हैं ?	६२२	पतिव्रता जयिनी (स०)	२५६
श्री केशव गणेश देकने—स्त्रियोंमें संगीत	४११	श्रीमती हैरियट एलिज़ेबेथ स्टो (स०)	३८९
श्रीयुत केशरी—मातृपद (स० कविता)	३००	भारतीय कुष्ठियोंकी सेवामें ४५ वर्ष (स०)	४००
श्री गंगाप्रसाद पाण्डेय—कव ? (कविता)	१७३	स्वर्गीय प्रेमचन्दजी—	५५३
कुँवरानी गुणवती महाराजसिंह—हमारी जाग्रति	२६३	राहुलजी	६७६
श्री गोपालदास, विशारद—ब्रह्मदेशमें हिन्दी (स०)	५९७	साहित्यिक भिक्षु	७३१
श्री गोपीलाल चौधरी, वी० ए०, एल०-एल० वी०—		माइकेल वाकूनिन	७६२
भारतवर्षसे स्वर्ण-निर्यात	१४६	श्री वरदाचरण उकील—	
श्रीमती चन्द्रकला देवी—हिन्दू-समाजमें विधवाओंकी दशा	३१८	एक प्रतिभालिनी महिला-चित्रकार (स०)	३८५
श्री चन्द्रगुप्त विद्यालंकार—		श्री ब्रजमोहन गुप्त—प्रेम-क्रीडाणु (कहानी)	६०२
जवाहरलालजी और हिन्दी	११४	ब्रजमोहन वर्मा—	
मानव-जातिका इतिहास	१३२	फूलोंका विश्वकर्मा मिचूरिन	७
विवाहका भविष्य	३४६	भारतीय कलाके भंडारी नाहरजी (स०)	५९
मैं कैसी पत्नी चाहता हूँ	४१९	स्पेन और फिलिस्तीन (स०)	४३४
टांगेवाला (कहानी)	६३९	यूरोपका एक अल्पज्ञात देश (स०)	५६०
श्री चिम्पनलाल सी० शाह, एम० ए०, एल०-एल० वी०—		काश कि पत्थर बोल सकते ! (स०)	६९१
भारतीय महिला-विद्यापीठ पूना	२८५	श्री वाचीराम आर्य—हम हिमालय-प्रान्त ही देख लें	६१३
स्व० जे० टी० सण्डरलैण्ड, डा०—		श्रीयुत भक्तदर्शन—एक पत्र	५०२
महात्मा गांधी : विश्व-शक्ति	४३३	श्री भगवतीप्रसाद तिवारी—प्रकृति-प्रेम (कविता)	७३०
श्री जैनेन्द्रकुमार—पत्नी (कहानी)	१७४	श्री भगवतीप्रसाद वाजपेयी—परीक्षा (कहानी)	४०
श्री डॉ० रशी धरमशी सम्पट—		श्री भगवतीप्रसाद श्रीवास्तव, एम० एस०-सी०—	
भारतके विभिन्न प्रान्तोंकी महिलाएँ	३४१	धर्मके रास्तेमें विज्ञान	४८३
श्री दुर्गाप्रसाद पाण्डेय—रवीन्द्र-साहित्यमें नारी	६१५	श्री भवानीप्रसाद गुप्त—प्रयाग-महिला-विद्यापीठ (स०)	४०२
श्रीमती धर्मशीला लाल, वार०-पेट०-ला—सौन्दर्य-प्रेम	२७१	श्री भारतीय, एम० ए०—पुस्तकें कैसे चिकें ?	६३३

प्रो० मनोरंजन, एम० ए०—		श्रीमती विजयलक्ष्मी पंडित—स्वतंत्रताके युद्धमें महिलाएँ २९५	
आश्वासन (कविता)	२१	प्रो० शंकरसहाय सक्सेना, एम० ए०—	
एक शिक्षित परिवारकी कहानी (कविता)	२९०	देशी राज्योंके बन्दरगाह	४७५
श्रीयुत रघुवीरनारायण (सचित्र)	५७९	श्रीमती शान्ता देवी—घरकी लक्ष्मी	३७१
श्रीमती महादेवी वर्मा, एम० ए०—		श्रीराम शर्मा—	
किस ओर	८१	एक महत्त्वपूर्ण पुस्तककी आयोजना (स०)	६१
हमारे पिंजरबद्ध साहित्यिक	२३५	पहाड़ी प्रदेश और साहित्यिक जाग्रति	२००
श्री महेशानन्द उनियाल—		वालिकाओंके झूलनेके गीत	३९४
पहाड़ी प्रदेशोंमें साहित्यिक क्यों नहीं होते ?	४९९	परवल	४५४
श्रीमती मिरियम वेनेड—हमारे घरोंमें कला	२९१	श्री सत्यनारायण सिंह, पी०एच० डी०—	
श्री मैथिलीशरण गुप्त—आभार (कविता)	१६६	गोर्की दादाके साथ (स०)	१८१
मैक्सिम गोर्की ; अनु० श्री हीरालाल जैन		श्रीमती सत्यवती मलिक—	
किताब (कहानी)	७२५	जीवन-संध्या (कहानी)	२८१
मिस म्यूरियल लीस्टर—मेरी चीन-यात्रा (स०)	२४९	मालीकी लड़की („)	६९९
श्रीयुत 'रजकण', मारिशस—		श्री सत्येन्द्रनारायण, बी० ए०, अनु०—	
मारिशसमें भारतीयोंके सौ साल	७३५	खोया बचपन (कहानी)	१३
रवीन्द्रनाथ ठाकुर ; अनु० धन्यकुमार जैन		श्रीमती सरयूदेवी मोहनराम पंडित	
शिक्षाका विकीरण	४५	प्रवासी भारतीय स्त्री-समाज (सचित्र)	३५२
देशी वनाम विलायती	५१	श्रीमती सरस्वती देवी—निस्पृह (कविता)	३७५
संस्था और प्रभात	५८	श्रीयुत सुन्दरलाल—एक सच्ची कहानी	५६९
प्राण-मन (कहानी)	१४२	कुमारी सुशीला आगा, बी० ए०—प्रेमकी भूल (कहानी)	४४९
आवरण („)	१९०	श्रीमती सुशीलाकुमार पंडित	
चार अध्याय (उपन्यास)	५१७, ५७४, ७०९	आर्यकन्या महाविद्यालय बड़ौदा (सचित्र)	३२५
पुस्तकालयोंका मुख्य कर्तव्य	५३८	श्री सुरेन्द्र शर्मा—वीरगंगा	२७९
रवीन्द्रनाथ मैत्र, स्व० ; अनु० ब्रजमोहन वर्मा		कुँवर सुरेन्द्र सिंह—जानवरोंकी वरदाक्ष	७१८
नारी-निर्यातन (कहानी)	१२३	श्रीमती सूर्यदेवी दीक्षित 'ऊया'—	
श्रीमती राजकुमारी देवी श्रीवास्तव—		हृदय-देवताके प्रति (कविता)	२७०
राष्ट्र-भाषाकी पूजा (कविता)	३६०	कविते ! (कविता)	५९६
कुमारी राजरानी—अधूरी कहानी (कहानी)	३१२	श्री सोहनलाल द्विवेदी, बी० ए०, एल०-एल० बी०	
श्री रामकृष्णदेव गर्ग—पंछी (कहानी)	४८९	जय राष्ट्रीय निशान (कविता)	११३
श्री रामचन्द्र सक्सेना, बी० ए०—मैं (कविता)	७०३	फिर भी („)	४५३
श्री रामधारी सिंह 'दितकर'—साधना और द्विधा (कविता)	८९	श्री हज़ारीप्रसाद द्विवेदी, साहित्याचार्य—	
श्री रामदेव, आचार्य—कन्या-गुरुकुल देहरादून	३५७	हिन्दी-कविताकी कुछ नई पुस्तकें	७५०
श्री रामानन्द चट्टोपाध्याय—		श्री हरि जी० गोविल—चलता-फिरता घर	४४५
आन्ध्र-देशकी एक भल्लक (सचित्र)	१५६	डा० हीरानन्द शास्त्री, एम० ए०, डी० लिट०—	
श्रीमती लजावती देवी—		मुसलमान बादशाह और देवनागरी-लिपि (सचित्र)	६८
जालन्धर-कन्या-महाविद्यालय (स०)	३७६	श्रीमती होमवती—	
श्री ललिताचरण गोस्वामी—पहेली (नाटक)	६८२	स्मृति-चिह्न (कहानी)	४६३
श्रीमती लीलावती मुंशी—एक बात	३५६	प्राथम्य („)	५८८
श्री वासुदेव शर्मा—क्यों ? (कविता)	७१७		

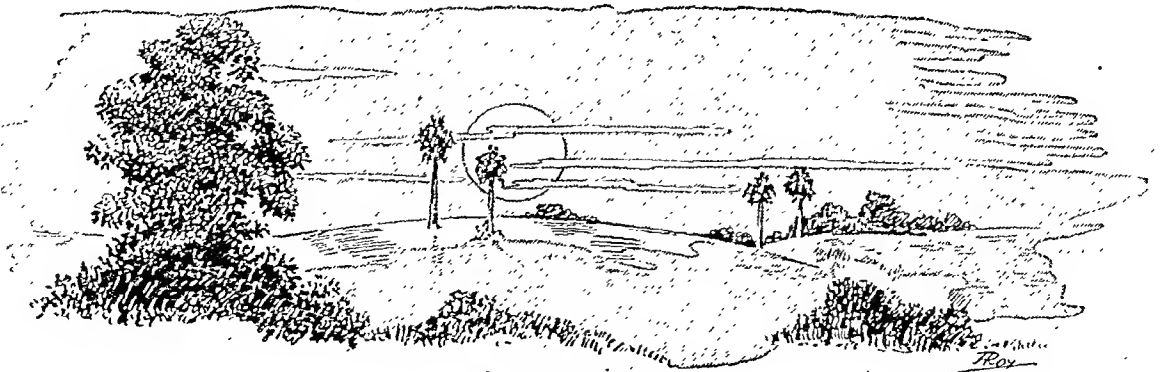
चित्र-सूची

रंगीन चित्र :—

एक प्राचीन राजा—एक प्राचीन चित्र	११३
किसानकी कुटिया—श्री ललितमोहन सेन	४३३
रुख—श्रीमती प्रभासनलिनो देवो	२३३
पहाड़ी जीवन—	
वाजेवाली	}—श्रीव्रजमोहन जिज्जा
पहाड़ी परिवार	
पर्वत-दुहिता—	
माता—श्री देवीप्रसाद राय-चौधुरी	६७३
शकुन्तला और दुष्यन्त—श्री रामगोपाल विजयवर्गीय	१
फोटोग्राफी—	
कलकत्तेकी गंगा	}—श्री परिमल गोस्वामी
दोपहरकी भूपकी	
लाल-युष्मकड़	
पहाड़ी स्त्री—श्री किरणमय धर	१७०
वदरीनाथका मन्दिर और अलकनन्दा—	
श्री रमेन्द्रनाथ चक्रवर्ती	१७९
वदरीनाथके मार्गमें लैणसोका स्कूल और चट्टी—	
श्री रमेन्द्रनाथ चक्रवर्ती	१७९
रस्सीका पुल—श्री किरणमय धर	७९
सादे चित्र :—	
अवला घोस, लेडी	३३४
अमला नन्दी तथा उनकी यात्रा-सम्बन्धी १० चित्र	५०८-१३
अमृत शेरगिल, श्रीमती, तथा उनके बनाये ४ चित्र	३८६-८८
आदर्श माता	४२४
आन्ध्र-देश-सम्बन्धी १२ चित्र	१५७-६८
आर० वेंकट रत्नम नायडू, सर	१५६
आर्यकन्या-महाविद्यालयके १८ चित्र	३२५-३२
इंग्लैण्डकी मज़दूर-स्त्रियोंके ४ चित्र	३८१-८२
एन० सुब्बाराव पन्तुल्ल	१६७
एनी बेसेण्ट	३२३
एमेलिन पंखहस्ट	४२३
एलीजेबेथ स्टो	३८६
एवरेस्ट अभियानके शेरपा कुलो	१८०
ओलिम्पिक खेल-सम्बन्धी ४ चित्र ५१५-१६ ; २ चित्र	५४२
कटियारी राजके पहलवान	६४
कन्या-गुरुकुल देहरादूनका एक चित्र	३५७
कमला नेहरू, स्वर्गीया	२९७

कमशियल म्यूज़ियममें पं० जवाहरलाल	६३८
कलकत्तेके कमशियल म्यूज़ियमका हाल	५३१
कार्लमार्क्सका पत्र	७४६
कुछ लेखिकाएँ—	
कमला चौधरी, श्रीमती	
धर्मशोला लाल, "	
उर्मिला देवी, "	
पद्मावती, कुमारी	३२४
कुप्सकाया, श्रीमती	४२३
गुजराती हिन्दू-स्त्री-मंडलके १२ चित्र	३०४-११
गुणवती महाराजसिंह, लेडी	४२३
गोआका वन्दरगाह	५४४
जयिनी और मार्क्सकी समाधि	२५६
जवाहरलाल नेहरू और रवीन्द्रनाथ ठाकुर	६३७
जवाहरलाल, पंडित, के २ चित्र	६१२
जापानकी शिक्षा-सम्बन्धी २ चित्र	६११
जालन्धर कन्या-महाविद्यालयके ५ चित्र	३७६-८०
जावाके नृत्यके दो चित्र	२१३
जे० टी० सण्डरलैण्ड	५४३
टास्स्टायका एक पत्र रोमां रोलैंके नाम	३
टैकोंका जुलूस जर्मनीमें	६४८
तुषारीका दृश्य	७०७
दक्षिण-अफ्रिकाका डेपूटेशन	५५१
देशी नरेशों मंत्रियोंकी कानफरेन्सका एक चित्र	५४४
नलकोवस्का, श्रीमती	२४१
पिल्सुड्स्की और उनका परिवार	२४१
पीठापुरम-नरेश	१५८
पूरनचन्द नाहर, स्वर्गीय	५९
पेरिस-सम्बन्धी ८ चित्र	६४९-५४
पेरिस-प्रदर्शनीके ८ चित्र	७६८-६४
पेसुहान विज्ञान-मन्दिर	४५७
पैराग्रेटके सहारे कूदनेके २ चित्र	७८४
प्रयाग-महिला-विद्यापीठके ४ चित्र	४०३-०५
प्रवासी भारतीय स्त्री-समाजके ४ चित्र	३५२-५५
फिलिस्तीन-सम्बन्धी ७ चित्र ४३८-४३ ; २ चित्र	५०५
फैजपुर-कांग्रेसमें मसाल ले जानेके २ चित्र	७८३
वाकूनिन	७४३
वी० कामेश्वरम्मा, श्रीमती	१६५

वी० वी० कृष्णैया,	१६२	विजयनगरके मन्दिरोंके २ चित्र	६९७-९८
ब्रह्माकी नर्तकी मा मिया सिन	२१४	विजयलक्ष्मी पंडित	२९५
'ब्रोमो' का दृश्य	७०८	वेनिसमें नृत्यका दृश्यके २ चित्र	८०
भारतमाता-मन्दिरके २ चित्र	६७७	लिथुआनिया-सम्बन्धी १७ चित्र	६६१-६८
भूतपूर्व सम्राट् अष्टम एडवर्ड और राजमाता सम्राज्ञी मेरी	७७३	लीलावती मुंशी, श्रीमती	३६६
महमूद गज़नवीके सिक्का-सम्बन्धी २ चित्र	६९	लेजों नगर-सम्बन्धी (धूपशाला) २१ चित्र	२६-३८
महात्मा गांधी	६७८	शिवप्रसाद गुप्त	६७८
महादेवी वर्मा, श्रीमती	४०४	श्रीनिकेतन और पं० जवाहरलाल-सम्बन्धी २ चित्र	६३७-३८
महिला-कानफरेन्स-सम्बन्धी ९ चित्र	२४२-४७	सरोजनलिनी दत्त, स्वर्गीया	३३३
मातृत्व-सम्बन्धी ३ चित्र	३००-०१	सरोजिनी नायडू	३२३
मूलगन्धकुटी-बिहार-सम्बन्धी १० चित्र	७३-७६	सम्राट् जार्ज षष्ठम और सम्राज्ञी एलिजाबेथ	७७४
मेरी रीड, मिस	४०१	स्काट और उनका साथी	६४८
मैक्सिम गोर्कीके २ चित्र	१८३-८६	स्पेनके गृह-युद्ध-सम्बन्धी ४ चित्र ४३५-३७ ; २ चित्र	६०६
मैथिलीशरण गुप्त	१६६	२ चित्र	६४७
म्यूरियल लोस्टरके ३ चित्र	२६१-६३	स्वतंत्रता-युद्धकी महिलाएँ—	
यूरोपके नर्तक राफ आर्को	२१४	कमला चट्टोपाध्याय, श्रीमती	
रंगतकी बौद्ध हिन्दो-पाठशाला	६०१	सोफिया सोमजो, श्रीमती	
रंजुक-मठसे एवरेस्टका दृश्य	१८०	लाडोरानी जुत्सी, "	
रक्षित, श्रीमती	१६७	हंसा मेहता "	
रघुवीरनारायण	५७९	पेरिन कैप्टेन, "	
रमादेवी, श्रीमती	३९९	अम्वालाल साराभाई "	२९८-९९
स्वमांगद सिंह, राजा, कटियारी-नरेश	६३	हाफमेयर, मिस्टर	६४१
रुसी नर्तकी अन्ना पैवलोवाके ३ तीन चित्र	२१३-१४	चित्र-चयन :—	
रुसी नर्तकी कारसाभिना	२१३	मोटरोँके तीन चित्र	२२३
रोमाँ रोलाँ और मैक्सिम गोर्की	१८५	गैससे बचानेका तोपड़ा	२२४
रोमाँ रोलाँको जननी	४२३	सूर्यग्रहणकी तसवीर उतारनेका कैमरा	२२४
रोलिया, डा० आगस्टा	३४	रामकृष्ण रंगर	२२४



विशाल भारत

“ सत्यम् शिवम् सुन्दरम् ”

“ नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः ”

भाग १८, अंक १]

श्रावण १९६३ :: जुलाई १९६६

[पूर्ण-अंक १०३.

पत्रलेखन-कला

वनारसीदास चतुर्वेदी

सन् १८८७—

२१ वर्षका एक फरासीसी युवक पेरिसकी एक मामूली गलीमें अपने छोटे-से कमरेमें बैठा हुआ है। वह कला और गान-विद्याका प्रेमी है। अभी हाल ही में टाल्सटायकी पुस्तक “What is to be done ?” (हमारा कर्तव्य क्या है ?) छपी है। इस पुस्तकमें टाल्सटायने कला-सम्बन्धी प्रचलित विचारोंपर काफी जोरदार आक्षेप किये हैं। इस पुस्तकको पढ़कर उस युवककी मानसिक स्थिति डावाँडोल हो गई, क्योंकि अब तक वह टाल्सटायको अपना आदर्श मानता रहा है। उसने मनमें सोचा कि चलो, टाल्सटायको एक चिट्ठी ही लिख दूँ, वह महान लेखक मेरे जैसे मामूली युवकके पत्रका उत्तर तो भला क्यों देने लगा। उसने टाल्सटायको एक पत्र भेज दिया, जिसमें उसने अपनी शंकाएँ लिखी थीं, और कुछ दिनों तक उत्तरकी प्रतीक्षा भी की, फिर इस बातको भूल ही गया। कुछ सप्ताह इसी प्रकार बीत गये। एक दिन शामके वक्त वह अपने कमरेपर लौटा, तो क्या देखता है कि फरासीसी भाषामें एक लम्बी चिट्ठी कहींसे आई है। उसको खोलनेपर मालूम हुआ कि यह तो टाल्सटायका पत्र है ! यह पत्र ३८ पृष्ठका था, या यों कहिये कि

एक छोटा-सा ट्रेक्ट ही था। उस अपरिचित साधारण युवकको टाल्सटायने ‘प्रिय बन्धु’ लिखा था। पत्रके प्रारम्भिक शब्द थे—“तुम्हारी पहली चिट्ठी मुझे मिली। उससे मेरा हृदय द्रवित हो गया। पढ़ते-पढ़ते आँखोंमें आँसू आ गये।” इसके बाद टाल्सटायने अपने कला-सम्बन्धी विचार उस पत्रमें प्रकट किये थे—“दुनियाँमें वही चीज़ क्रीमती है, जो मनुष्योंके पारस्परिक सम्बन्धको दृढ़ करे, जो उनमें भ्रातृभाव स्थापित करे, और सच्चा कलाकार वही है, जो अपने सिद्धान्तों तथा विश्वासोंके लिए त्याग और बलिदान करनेके लिए तैयार हो। सच्चे पेशेकी पहली शर्त कलाका प्रेम नहीं, बल्कि मानव-जातिसे प्रेम है। जिनके हृदयमें मनुष्य-जातिके प्रति प्रेम है, वे ही कभी कलाकारकी हैसियतसे उपयोगी कार्य करनेकी आशा कर सकते हैं।” टाल्सटायके विस्तृत पत्रका सारांश यही था।

इस पत्रने उस युवकके हृदयपर बड़ा भारी प्रभाव डाला। सबसे महत्त्वपूर्ण बात उसे यह जँची कि इस विश्व-विख्यात महापुरुषने मेरे जैसे एक अपरिचित युवकको इतनी लम्बी और सहृदयतापूर्ण चिट्ठी भेजी है। और तबसे उस युवकने यह निश्चित

कर लिया कि यदि कोई आदमी अपने संकटके समयमें अन्तरात्मासे कोई पत्र भेजेगा, तो मैं अवश्य ही उसका उत्तर दूँगा, क्योंकि संकटग्रस्त मनुष्यकी सेवा ही कलाकारका सर्वोत्तम गुण है।

इस घटनाको आज ४६ वर्ष होने आये। इन ४६ वर्षोंमें उस युवकने, जो आज रोमाँ रोलाँके नामसे संसारमें प्रसिद्ध हो चुका है, हजारों ही चिट्ठियाँ लिखी हैं और सहस्रों ही व्यक्तियोंके लिए पथप्रदर्शकका काम किया है। टाल्सटायकी उम्र एक चिट्ठीने जो बीज बोया था, वह आज वटवृक्षके रूपमें लहलहा रहा है। रोमाँ रोलाँके लिखे हुए हजारों ही पत्र, जो साहित्यिक दृष्टिसे भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं, संसारके भिन्न-भिन्न व्यक्तियोंके पास सुरक्षित हैं। जिस दिन टाल्सटायने उस पत्रके लिखनेमें अपने समयके कुछ घंटे व्यय किये थे, उन्होंने स्वप्नमें भी यह खयाल न किया होगा कि आगे चलकर मेरा यह पत्र इतना सफल होगा।

इस घटनासे पत्र-लेखन-कलाका महत्त्व प्रकट होता है। क्या ही अच्छा हो, यदि हम लोग—खास तौरसे हिन्दी-लेखक और सम्पादक—इस बातको हृदयंगम कर लें। पत्र-लेखन-कलापर अधिक लिखनेके पहले एक बात स्पष्ट कर देनेकी आवश्यकता है, वह यह कि जो आदमी वजात खुद अच्छा नहीं है, वह अच्छा पत्र-लेखक हाँगी नहीं बन सकता। कृत्रिम ढंगसे लिखे हुए पत्रोंकी पोल बड़ी आसानीसे खुल जाती है। जिस तरह कोई कुशल व्यापारी रुपयेको हाथमें लेते ही खरे और खोटे सिक्केकी पहचान कर लेता है, उसी तरह किसी सुसंस्कृत आदमीके लिए स्वाभाविक और बनावटी पत्रोंमें भेद करना कोई मुश्किल बात नहीं है। इसके सिवा बने हुए पत्र कागज़ी नावकी तरह हैं, जो चल नहीं सकते। काठकी हाँड़ीकी तरह केवल एक बार आप उनसे काम ले सकते हैं। अच्छा पत्र-लेखक बनना अत्यन्त कठिन है। अन्य क्षेत्रोंमें तो आपको थोड़ेसे आदमियोंका मुकाबला करना पड़ता है; पर यह क्षेत्र तो ऐसा है, जिसमें दुनिया

आपकी प्रतिद्वन्द्विताके लिए खड़ी है, क्योंकि चिट्ठियाँ तो लाखों-करोड़ों ही आदमी नित्यप्रति लिखा करते हैं!

खेदकी बात है कि हिन्दी-साहित्य-सेवियोंने इस कलाके महत्त्वको अभी तक नहीं समझा। हिन्दीमें अभी तक एक भी ऐसी पुस्तक नहीं निकली, जिसमें इस कलापर विस्तारपूर्वक लिखा गया हो, और जिन महानुभावोंने पुस्तकें लिखी हैं, वे खुद इस विषयके विशेषज्ञ नहीं। इन पंक्तियोंके लेखकको चिट्ठी लिखनेका एक व्यसन-सा रहा है, और पिछले पचीस वर्षमें उसने हजारों ही चिट्ठियाँ लिखी होंगी और सैकड़ों ही चिट्ठियोंका संग्रह उसके पास है। अतएव वह अपने इस विषयके अनुभवोंको 'विशाल भारत' के पाठकोंके सम्मुख उपस्थित करता है।

हिन्दी-क्षेत्रके जितने लेखकों, कवियों तथा सम्पादकोंसे पत्र-व्यवहार करनेका सौभाग्य हमें प्राप्त हुआ है, उनमें पूज्य पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी, स्वर्गीय पं० पद्मसिंह शर्मा, स्वर्गीय गणेशशंकर विद्यार्थी और स्वर्गीय पं० श्रीधर पाठक मुख्य हैं। नवीन लेखकोंके नाम हम यहाँ जान-बूझकर छोड़ रहे हैं। उनका जिक्र हम द्वितीय लेखमें करेंगे।

यदि पत्र-लेखन-कलाके सब गुणोंको मिलाकर देखा जाय, तो निस्सन्देह स्वर्गीय पं० पद्मसिंह शर्मा इस कलाके आचार्य सिद्ध होंगे। उनका मुकाबला करनेवाला पत्र-लेखक हिन्दी-क्षेत्रमें अब तक कोई नहीं हुआ और न निकट-भविष्यमें इसकी आशा ही जा सकती है। पत्र-लेखनके लिए जिस फुर्सतकी आवश्यकता होती है, वह स्वर्गीय शर्माजीके पास खूब थी, और साथ ही भाषापर भी उनका पूर्ण अधिकार था। इन सबसे बड़ी बात यह थी कि वे अत्यन्त सहृदय और जिन्दादिल आदमी थे। इसलिए वे कलमके रास्ते कागज़पर कलेजेको उड़ेलकर रख सकते थे। उनकी सम्भाषण-शक्ति और स्मरण-शक्ति भी अद्भुत थी। मगर यह कि अच्छे पत्र-लेखकमें जो गुण होने चाहिए, वे उनमें आश्चर्यजनक मात्रामें विद्यमान थे। स्वर्गीय

शर्माजीकी लगभग छै सौ चिट्ठियाँ हमारे पास सुरक्षित हैं, और यदि किसीके पत्रोंका संग्रह पुस्तकाकार छपाने-योग्य है, तो वे शर्माजी ही हैं।

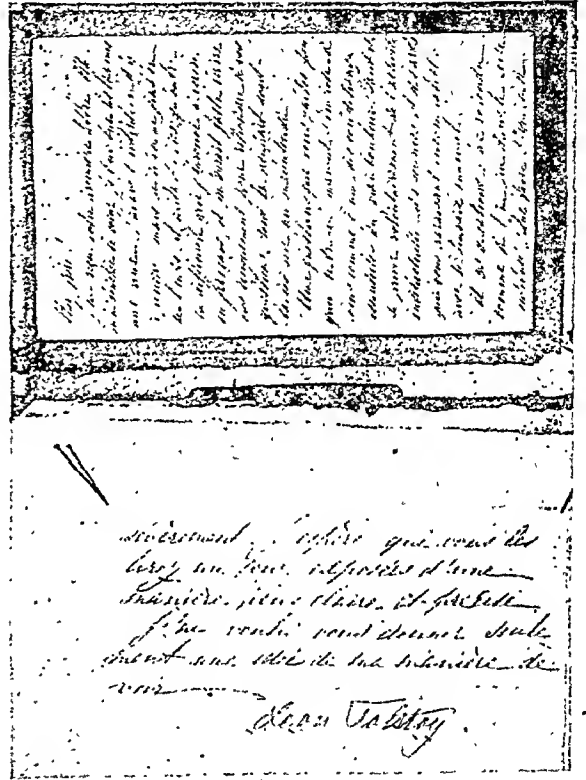
हिन्दी-साहित्य-क्षेत्रके बाहरके आदमियोंमें जिनके पत्रोंका छोटा-मोटा संग्रह हमारे पास है, उनमें दीनबन्धु सी० एफ० ऐंगडूज और माननीय श्रीनिवास शास्त्री मुख्य हैं। महात्मा गांधीकी भी अनेक पत्र हैं, और दो-तीन चिट्ठियाँ कवीन्द्रकी भी हैं। पत्र-लेखकोंमें मि० ऐंगडूजके मुक्ताबलेके आदमी बहुत कम निकलेंगे। स्वयं कवीन्द्र रवीन्द्रने 'मोरिया' नामक जहाजसे अपने १५ जुलाई सन १९२१ के पत्रमें मि० ऐंगडूजको लिखा था—

"About one thing I can never hope to compete with you. As a letter-writer you are incomparable!" अर्थात्—'एक बातमें मैं आपका मुक्ताबला करनेकी आशा भी हर्षिज नहीं कर सकता। पत्र-लेखकके हैसियतसे आप अद्वितीय हैं।' इसके बाद गुरुदेवने लिखा था—'आपके पत्र एकके बाद एक इस प्रकार आते हैं, जैसे प्यासी जमीनपर वर्षाका जल, और आपके लिए पत्र लिखना उतना ही स्वाभाविक है, जितना शान्ति-निकेतनके शाल-वृक्षोंके लिए वसन्तऋतुमें नवीन पत्रोंका धारण करना।'।

मि० ऐंगडूजकी जो प्रशंसा कविवरने की है, उसमें अत्युक्ति नहीं; पर स्वयं कविवर पत्र-लेखकोंमें शिरोमणि हैं। जो महानुभाव उनके अंगरेजी पत्रोंको पढ़ना चाहें, वे George Allen के यहाँ छपी हुई उनकी 'Letters to a Friend' (एक मित्रको पत्र) नामक पुस्तक पढ़ सकते हैं। इस संग्रहमें अनेक पत्र लाजवाब हैं, और उनका सौन्दर्य तो पढ़नेपर ही प्रकट होता है। कवीन्द्रके बँगला पत्र तो उनसे भी अच्छे हैं।

महात्माजीके पत्रोंमें मतलबकी बात रहती है, और ज्यों-ज्यों उनका कार्यक्षेत्र बढ़ता जाता है, उनके पत्र छोटे होते जाते हैं। दरअसल महात्माजी-जैसे कार्य-व्यग्र महापुरुषसे लम्बे पत्रोंकी आशा करना ही व्यर्थ है।

उनके बाज-बाज पत्र तो मन्त्रकी तरह होते हैं। अपनी जिन्दगी-भरके अनुभवोंका निचोड़ महात्माजी जिस खूबीके साथ एक-दो वाक्योंमें रख देते हैं, उसे देखकर आश्चर्य होता है। अभी साल-दो-साल पहले तक महात्माजी प्रायः सभी आवश्यक पत्रोंका उत्तर अपने हाथसे ही लिखते थे। दीनबन्धु ऐंगडूजके नाम उन्होंने



रोमां रोलाँके नाम टॉल्स्टायका एक पत्र

जो पत्र लिखे थे, वे खास तौरसे महत्त्वपूर्ण हैं। कोई-कोई चिट्ठी तो रात दो बजे उठकर लिखी थी; पर जब तक महात्माजी एक पत्रका उत्तर दे पाते, तब तक मि० ऐंगडूज दो चिट्ठियाँ और भेज देते! आखिर कवीन्द्रकी तरह महात्माजी भी उनसे हार मान बैठे। महात्माजीने एक बार मुसकराकर कहा था—“ऐंगडूज ही एक ऐसा आदमी है, जो तारमें भी प्रेम भेजा करता है!”

दिल्लीमें जब महात्माजीने २१ दिनका उपवास

किया था, उस समय मि० ऐगडूज़ उनके चौकीदार होकर रहे थे। जब उपवास सकुशल समाप्त हो गया, तो मि० ऐगडूज़ सावरमती-आश्रममें चले आये। उस वक्त महात्माजीने उन्हें दिल्लीसे लिखा था—“I have been missing you every moment. Oh ! for your love.” अर्थात्—‘मुझे आज तुम्हारी क्षण-क्षणपर याद आती रही। तुम्हारा प्रेम भी क्या अद्भुत चीज़ है !’ - मि० ऐगडूज़को वे My dearest Charlie (मेरे अत्यन्त प्रिय चार्ली) लिखते हैं। यदि महात्माजी अनुमति दे दें, तो ये पत्र अनुवाद-सहित छपाये जा सकते हैं।

माननीय श्रीनिवास शास्त्रीके पत्र उनकी सुसंस्कृतिके प्रबल प्रमाण हैं। उनका एक छोटा-सा पत्र भी पत्र-लेखन-कलाका नमूना होता है। उनके हस्ताक्षरोंको देखते ही हृदयमें उत्कंठा हो जाती है कि पत्र खोलकर जल्दी-से-जल्दी पढ़ा जाय। पढ़ते ही तबीयत खुश हो जाती है। संयत भाषा, चुने हुए शब्द, अद्भुत गुण-प्राप्तता, स्वाभाविक विनम्रता और सहज स्नेहका ऐसा विचित्र सम्मेलन भला और कहाँ मिल सकता है ? माननीय शास्त्रीजी यद्यपि हिन्दी नहीं जानते, पर कविवर रहीमके निम्न-लिखित दोहेको उन्होंने अवश्यमेव हृदयंगम कर लिया है—

“जे गरीब सों हित करें, धनि रहीम वे लोग ;
कहा खुदामा बापुरो, कृष्ण मिताई योग।”

“Don't worry dear friend and brother, Up and down up and down, is the course of any people.”—‘प्रिय मित्र और भाई, फिक्र न करो। प्रत्येक जातिके जीवनमें उन्नति और अवनतिके क्रम आया ही करते हैं।’ * किसी भी निराश व्यक्तिको उत्साहित करनेके लिए माननीय शास्त्रीजीके पत्र टॉनिकका काम कर सकते हैं। इन पंक्तियोंके लेखककी तरहके लाखों ही आदमी शास्त्रीजीको चाहे

* यह अंश शास्त्रीजीके उस पत्रका है, जो उन्होंने केनियाके अन्यायपूर्ण निर्णयके दिनोंमें लिखा था। —लेखक

जब मिल सकते हैं ; पर शास्त्रीजीकी उदारता भी अद्भुत है।

गलतफहमी होनेकी आशंकाके कारण हम उनके पत्रोंके प्रेमपूर्ण अंश उद्धृत नहीं कर रहे हैं। जिन महानुभावोंका जीवन इतना कटु बन गया है कि वे सदुद्देश्यसे कही हुई प्रत्येक बातके पीछे कोई-न-कोई motive (भीतरी उद्देश्य) तलाश करते हैं, वे तो हर हालतमें अर्थका अनर्थ करते ही हैं ; पर हमारे कितने ही सुसंस्कृत पाठक भी इस मर्जमें सुवतला हैं।

शास्त्रीजीके पत्रोंकी मधुर स्मृति बहुत दिनों तक बनी रहती है ; पर इससे विपरीत कोटिके पत्र भी कभी-कभी हमें मिलते रहते हैं, और उनसे किसी भी सहृदय मनुष्यके हृदयाकाशमें दुःखकी घटा छा सकती है। प्रशंसासे जो प्रफुल्लित न हों और निन्दासे जो विचलित न हों, ऐसे मनुष्य सन्त-समाजमें ही पाये जाते हैं।

यदि आपको कोई लिखे—“तुम धूर्त हो, मूर्ख हो, पाखण्डी हो, भाँड़ हो, अहंकारी हो, आडम्बरी हो, पतित हो, वेपेंदीके लोटे हो, तुम्हारा कोई सिद्धान्त नहीं, कोई Sincerity नहीं,” तो इस विषका पान करनेके लिए आपको भगवान शिवशंकरकी योग्यता हासिल करनी होगी। हमारे साहित्य-क्षेत्रका यह दुर्भाग्य है कि ऐसे पत्र-लेखक हमारे यहाँ विद्यमान हैं, और वे अपने तथा दूसरोंके जीवनमें कटुताका प्रवेश प्रायः किया करते हैं। इस प्रकारके अनेक पत्र पाकर हम इस परिणामपर पहुँचे हैं कि जिन्हें कब्ज़ रहता है—शारीरिक या मानसिक—अथवा जिन्हें मन्दाग्नि अथवा ‘अकल अजीर्न रोग’ है, वे ही ऐसी चिट्ठियाँ लिख सकते हैं। जिसका पेट साफ नहीं रहता, उसके लिए पेटका साफ होना मुश्किल है। पत्रोंमें तो नहीं, हाँ, बातचीतमें ऐसी अक्षम्य भूलें हमसे भी कई बार हो चुकी हैं, और उनका प्रायश्चित्त कर लेनेपर भी हमें आज भी उनके लिए लज्जा अनुभव होती है। पत्रोंका पेटसे कितना घनिष्ठ सम्बन्ध है, इस बातको हम अच्छी तरह समझ गये हैं। एमर्सनने एक जगह लिखा है—

“A man should make life and Nature happier to us, or he had better never been born.”—‘मनुष्यका कर्तव्य है कि वह हमारे लिए जीवन तथा प्रकृतिको मधुर बना दे, यदि वह ऐसा नहीं कर सकता, तो बेहतर है कि वह पैदा ही न होता।’

स्वर्गीय पं० पद्मसिंह शर्मा ऐसे व्यक्ति थे, जिनके प्रत्येक पत्रको बड़ी उत्कण्ठासे खोला जाता था, जो अपने दाद देनेके अद्भुत गुणके कारण चिरकाल तक साहित्यमें जीवित रहेंगे। जीवित साहित्य-सेवियोंसे पूज्य द्विवेदीजी भी उसी कोटिके हैं। इस लेखको हम स्वर्गीय शर्माजीके एक पत्रके साथ समाप्त करते हैं। इस लेखमालाके अगले लेखोंमें हम पत्र-लेखन-कलाके अन्य उदाहरण देंगे :—

प्रिय चतुर्वेदीजी, नमस्कार।

आज जब आपको रजिस्टर्ड पैकट रवाना कर चुका, तो ४ बजेके करीब ‘विशाल भारत’ने दर्शन दिये, यानी प्रेसकी डाकमें पधारे। कल इंडियन प्रेसमें ठा० श्रीनाथ सिंहजीके पास थोड़ी देर यों ही उलट-पलटकर देखा था। ऐनक यहाँ भूल गया था, इसलिए कठिनतासे हेडिंग देख सका था। मैं रातको इतमीनानसे देखना चाहता था कि यहाँ अचानक एक उपद्रव खड़ा हो गया, यानी गाने-बजानेकी कन्सर्ट पार्टी आ डटी। एक सज्जन सितारके एक्सपर्ट, दूसरे बेलाके प्रवीण वजगर, तीसरे तबलेके मास्टर, चौथे ताल और दाद देनेमें पटु, और मजा यह कि सब-के-सब ग्रेजुएट और एल-एल०बी०। इनमें पहले हिन्दुस्तानी और बाक्ती बंगाली; सब-के-सब ब्राह्मण—एक द्विवेदी, बाक्ती मुकरजी। मैं ‘विशाल भारत’ पढ़ना चाहता था, उधर संगीत शुरू हो गया। मुझे पढ़नेका व्यसन तो है ही; पर सुननेके लोभको भी मैं संवरण नहीं कर सकता। पार्टीमें सम्मिलित न होना शिष्टाचारके विरुद्ध समझा। मण्डलीके पास बैठकर सुनना ही पड़ा; पर हाथमें ‘विशाल भारत’ लेकर बैठा। एक साहब बोले, इसे रख भी दो, सुनोगे कि पढ़ोगे? मैंने कहा कि दोनों काम

साथ-साथ करूँगा, साहित्य और संगीतके आकर्षणकी तुलनात्मक परीक्षा हो जायगी, देखूँगा किसमें अधिक आकर्षण है? मुझे जब कभी ऐसा मौका मिल जाता है कि कोई अच्छी पुस्तक—वह भी काव्य—पढ़ता हूँ और पास ही संगीत हो रहा हो, तो एक अद्भुत आनन्द आता है, काव्यमें—जिसे उस समय देख रहा हूँ—नई-नई बातें सूझने लगती हैं। हाँ, हारमोनियमसे मुझे कुदरती नफरत है। अच्छे-अच्छे बजानेवालोंको सुना है; पर मुझे कभी अच्छा नहीं लगा—खासकर सितार, सारंगी, असर या बेलाके साथ तो बहुत ही बुरा लगता है। खैर, पहले सितारका गत बजा। उधर मैंने आपका सम्पादकीय पढ़ना शुरू किया। बड़े मजेमें पढ़ता रहा और आपके जोरे-कलमकी दाद देता रहा। ‘सारनाथमें क्या देखा’ खूब लिखा है। मार्केकी टिप्पणी है। श्री शंकराचार्यपर आक्रमणवाली बात मुझे भी बहुत ही बेतुकी और मूर्खतापूर्ण मालूम हुई। मैं आपके साथ मिस्टर धर्मपालसे मिलने गया होता, तो उन्हें इतना फटकारता कि याद रखते। मैंने पत्रोंमें जब उनके भाषणकी रिपोर्ट पढ़ी थी, तो बहुत बुरी मालूम हुई थी। शंकराचार्यका मुकाबला तो संसार-भरके दार्शनिक भी मिलकर नहीं कर सकते। मिस्टर धर्मपाल तो उनकी बातें समझेंगे भी नहीं। खैर, सितारके बाद बेलाकी वारी आई। बेला सितारसे भी अच्छा बजा, बड़ा तैयार हाथ था, उस समय मैं नन्ददासजी वाला लेख देख रहा था। कान उधर लगे थे और आँखें लेखमें, मन द्रुतगतिसे दोनों ओर काम कर रहा था। कई बार दो-चार मिनटके लिए आँखको भी कानका साथ देना पड़ा। गज इस सफाईसे फिर रहा था, हाथ इस तेजीसे चल रहा था कि न देखना अन्याय था। बेलाके साथ मैंने नन्ददासजीको समाप्त कर डाला। नन्ददासकी कविता मुझे भी बहुत पसन्द है। आपने खूब लिखा है। तबीयत खुश हो गई। ‘भारतमित्र’ प्रेसकी छपी ‘रासपंचाध्यायी’की एक प्रति मेरे पास है, जो स्वर्गीय श्री सत्यनारायणजीने मुझे दी थी। उसपर

उनके पेन्सिलसे लिखे नोट भी हैं, इसीलिए मैंने उसे बड़े प्यारसे रख छोड़ा है। सत्यनारायणजीने उसी प्रतिसे सब 'रासपंचाध्यायी' बड़े ही मधुर स्वरमें पढ़कर सुनाई थी। उस पुस्तकको जब देखता हूँ, तो वह दृश्य आँखोंमें फिर जाता है, हा !

बेलाकी जब द्वितीयावृत्ति हुई, तब मैं उजड़ी वाटिका देख रहा था। वह कविता मुझे बहुत एसन्द आई। यह 'चकोरी' देवी कौन हैं ? अच्छा लिखती हैं। मैंने पहली बार ही इनकी रचना पढ़ी है। तीसरे छन्दकी अन्तिम पंक्ति पढ़ते धचका-सा लगता है। उसमें छन्दोभंग या ध्वनिभंग है। मात्राएँ तो गिनी नहीं ; पर धचका ज़रूर लगता है। ज़रा पढ़ देखिये।

हाँ, रत्नाकरजीके उस कवित्तका गोप्य अन्तिम चरण क्या है ? ज़रा हम भी तो सुनें !

श्री चिन्तामणिजीके सुपुत्र श्री बालकृष्णरावजी अपनी पुस्तक मुझे दे गये हैं। जिस वक्त दोपहरको वह यहाँ पुस्तक देने आये, उस दिन मेरी तबीयत अच्छी न थी। लेट रहा था। वह कुछ देर बैठकर और रघुनन्दनजीको पुस्तक देकर चले गये। मुझे किसीने सूचना न दी। फिर पं० केशवदेवजी शर्माकी मार्फत उनकी इच्छा मालूम हुई कि मैं उसपर सम्मति लिख दूँ। मेरा विचार उसपर एक नोट 'विशाल भारत'में भेजनेका है। बहुत अच्छी कविता है। बालक कृष्णराव प्रोत्साहनके पात्र हैं। अस्तु

कन्सर्ट पार्टीकी एक बात लिखना भूल गया। सितार और बेलाके बाद 'हारमोनियम' का नम्बर आया, तो मैंने यह कहा कि यह अंगूर खिलाकर यह निबौलियाँ क्यों खिलाते हो ?—

'जीभ निबौरी क्यों लगै बौरी ! चखि अंगूर ?'

सितार आदि बाजोंके लिए यह 'हारमोनियम' भी वैसी ही बला है, जैसी तुलसीदासकी रामायणके लिए 'राधेश्यामी रामायण' ! भारतीय संगीत-कलाको इस 'हारमोनियम'ने बड़ी हानि पहुँचाई है।

आजके पैकटमें ठा० गुरुभक्त सिंहजीकी जो पुस्तकें मैंने भेजी हैं। उन्हें ज़रा देख जाइये। शायद कोई कविता आपको पसन्द आ जाय। उनकी कविता और चित्र दे दीजिए, सम्मति भी छाप दीजिए।

अब बस करता हूँ, १२ वजनेको हूँ।

मैं परसों प्रातःकालकी गाड़ीसे आगरे जा रहा हूँ। पटेजीसे मिलूँगा। उनकी कविता इस अंकमें तो नहीं आई, अगलेमें ज़रूर जाय।

हिन्दी-प्रेस, प्रयाग १८-१२-३१

—पद्मसिंह शर्मा

पुनश्च :—१७-१२-३१ के 'भारत'में तीसरे पेजपर एक लम्बा लेख 'हिन्दीके विकासमें बाधा' न पढ़ा हो, तो पढ़ लीजिए। आपको 'सम्पादन-कौशल' का सार्टिफिकेट 'भारत'-सरकारसे मिला है, बधाई है ! बधाई !!!

× × ×
'श्याम-सगाई' सचमुच सुन्दर कविता है। मैंने पत्र लिखनेके बाद फिर पढ़ी। २७ पद्यकी दूसरी पंक्ति ठीक नहीं मालूम होती—'जोरी' से पहले 'ये' का 'यह' हो और 'विधाता' की जगह 'विधना' तो शायद ठीक हो जाय।

वर्माजीने मुसोलिनीको समाप्त कर डाला ? बड़ी बहादुरीका काम किया। श्री सम्पूर्णानन्दजीके विषयमें लिखते हुए उपसंहारमें जो-कुछ लिखा है, उससे मैं पूरी तरह सहमत हूँ। साहित्य-सेवीका सैनिक बनना उचित नहीं है।

फलोंका विश्वकर्मा मिचूरिन

ब्रजमोहन वर्मा

“बदमाश ! पाजी ! लुटेरी ! डाकू !”—

बुढ़ा मिचूरिन एक हाथसे अपने डंडेपर भार दिये और दूसरेसे मालियोंवाली कैंचीसे वृक्षोंकी मरी हुई पत्तियाँ काटता हुआ अपने बागमें घूमता फिरता है, और फलोंमें चोंच मारनेवाली चिड़ियोंकी ओर देख-देखकर बड़बड़ाता हुआ बकता जाता है—“कमबख्त, सारे फल काटे डाल रही हैं। घबराओ नहीं, थोड़े ही दिनोंमें ऐसी गर्मी पड़ेगी कि तुम सब झुलसकर रह जाओगी।” थोड़ी देर बाद जब वह भोजन करने जायगा, तब स्वयं इन ‘पाजी, लुटेरी’ चिड़ियोंके चुगनेके लिए दाना देगा। साठ वर्षसे यह बुढ़ा इसी तरह—जाड़ा, गर्मी, बरसात—अपने बागमें काम कर रहा है, और उसने अपने कार्यसे वनस्पति-जगतके अनेकों नियमोंको उलट-पलटकर धर दिया है—प्रकृतिकी पुरानी प्रणालीमें क्रान्ति उपस्थित कर दी है।

मिचूरिन रूसमें कॉज़लोवके छोटे कसबेमें रहता है। शक-सूरतमें रूखा, कपड़े-लत्ते ढीले-ढाले और बाबा आदमके जमानेके, बातचीतमें चिड़चिड़ा और दीन-दुनियाकी खबरसे बेखबर। इसीलिए सारा गाँव उसे साठ वर्षसे सनकी कहता आता है ; लेकिन आज इस सनकीका शुमार संसारके महान विज्ञान-वेत्ताओंमें है।

साइबेरिया और उत्तरी रूसमें बड़ी भयंकर सर्दी पड़ती है। कॉज़लोवमें ही जाड़ेमें थर्मामीटरका पारा शून्यसे ४०° डिग्री नीचे जा पहुँचता है ! ऐसी सर्दीमें पेड़-पौधे ही नहीं उगते, फिर फल कहाँसे पैदा हो सकते हैं ? सिर्फ शाहबलूत, भोजपत्र, ‘ऐश’ आदि कुछ सख्तजान पेड़ ही वहाँ ज़िन्दा रह सकते हैं। इसके विपरीत दक्षिणी रूसके क्रीमिया प्रान्तकी आबहवा शीतोष्ण और भूमध्यसागर-जैसी है, और भूमध्यसागरके तटवर्ती स्थान फलोंकी उत्पत्तिके लिए सारे संसारमें

प्रसिद्ध हैं। अबसे साठ वर्ष पहले मिचूरिनको यह धुन सवार हुई कि साइबेरिया और उत्तरी रूसमें भी भूमध्यसागर-जैसे फल पैदा किये जायँ।

मिचूरिनने इस सिद्धान्तपर प्रयोग शुरू किये कि यदि अपेक्षाकृत गर्म स्थानोंके पेड़ोंको धीरे-धीरे सर्द स्थानोंकी आबहवाका आदी बनाया जाय, तो उत्तरी रूसमें भी फल पैदा हो सकते हैं। उसने देश-विदेशसे बीज और कलमें मँगवाई, और उन्हें तरह-तरहकी हिफाज़तसे कॉज़लोवमें पैदा करनेकी कोशिश की। वर्षोंके अथक परिश्रमपर भी परिणाम सन्तोषजनक न हो सका। तब उसने दूसरा उपाय करनेकी ठानी।

उसने दक्षिणी फलोंके पौधोंकी कलमें उत्तरके शीत-सहिष्णु पेड़ोंपर लगाई। उसने सोचा कि इस मिश्रणसे जो दुनस्ले पौधे पैदा होंगे, उनमें उत्तरी वृक्षोंकी शीतका सामना करनेकी शक्ति और दक्षिणी वृक्षोंका फल देनेका गुण होगा। इस सिद्धान्तपर प्रयोग करते-करते और भी दस वर्ष निकल गये ; पर सफलता न मिली।

अभी तक वह फलोंके पौधोंकी कलमें उन्हींसे मिलते-जुलते पेड़ोंपर बाँधता था। अब उसने इन पौधोंकी कलमें धुर उत्तरके ऐसे पौधोंपर बाँधी, जो जातिमें और भौगोलिक स्थितिमें उनसे एकदम भिन्न और दूरके थे। उदाहरणके लिए, वह नाशपातीकी कलम ठेठ उत्तरके ‘ऐश’ (Ash) वृक्षपर बाँधने लगा। इस प्रकारके हजारों प्रयोग करके अन्तमें उसने सफलता प्राप्त की, और सैकड़ों नये फल देनेवाले वृक्ष पैदा कर दिये।

आइवन मिचूरिनका जन्म मध्य रूसमें १८५४ में हुआ था। बापकी मृत्युपर उसे पढ़ना छोड़कर पेटकी चिन्ता करनी पड़ी। वह सन १८७५ में, इक्कीस वर्षकी उम्रमें, कॉज़लोव आया और वहाँ

रियाज़न-यूराल रेलवेमें साढ़े बारह रुबल (लगभग २५) रु०) महीनेपर क्लार्क हो गया। कॉज़लोव मास्कोसे लगभग ३५० मील दूर एक बहुत छोटा क़सबा है। छोटी जगह होनेसे ही इस छोटी तनख्वाहपर किसी तरह गुज़र होना मुमकिन हो सका था। कॉज़लोवमें एक बिना पढ़ी-लिखी देहाती लड़कीसे विवाह करके वह बस गया। उसने तीन रुपये महीनेपर ज़मीनका एक छोटा टुकड़ा भाड़े लिया और उसमें बाग़बानी करने लगा। दिनका आधा हिस्सा तो वह रेलके दफ़्तरमें हिसाब-किताबके रजिस्टर उलटनेमें व्यय करता और बाक़ी हिस्सा—दिन छिपे तक—अपने पेड़-पौधोंके साथ काटता था। मुश्किल यह थी कि बाग़बानी ऐसी चीज़ है, जो दिन छिपनेके बाद नहीं हो सकती।

कुछ वर्ष बाद इत्तिफ़ाक़से रेलवेका एक इन्स्पेक्टर कॉज़लोव आया। उसे मालूम हुआ कि मिचूरिन शरीफ़ ख़ान्दानका है। उसने कहा कि दफ़्तरका काम मिचूरिनके लिए ठीक नहीं है। इसलिए उसने मिचूरिनको घड़ियोंकी मरम्मतका काम दिया। रेलवे-लाइन-भरकी बिगड़ी हुई घड़ियाँ उसके पास मरम्मतके लिए आने लगीं। इस परिवर्तनसे मिचूरिनको बड़ा फ़ायदा हुआ। एक तो उसकी तनख्वाह बढ़ गई, और दूसरी सबसे बड़ी बात यह हुई कि उसे दफ़्तर जानेसे छुट्टी मिल गई। अब वह सारा दिन अपने बाग़में लगाने लगा, क्योंकि घड़ी-मरम्मतका काम तो वह दिन छिपनेके बाद भी कर लेता था।

वह अपने पेड़-पौधोंमें इतना व्यस्त रहता था कि उसे दुनियाकी किसी बातसे मतलब ही न था, इसीलिए गाँववाले उसे सनकी कहा करते थे; लेकिन उसकी सनकसे किसीका कोई नुक़सान न था, इसलिए किसीने उससे छेड़-छाड़ भी नहीं की। फिर हर गाँवमें एक-न-एक सनकी तो होता ही है।

सन् १८८८ में मिचूरिनने कहीं-न-कहींसे कुछ बन्दोवस्त करके गाँवके छोरपर छै एकड़ ज़मीन ख़रीदी

और अपने पुराने बाग़के पेड़-पौधोंको एक-एक करके ऐसी हिफ़ाज़तसे ले जाकर, जैसे कोई नाज़ुक काँचकी चीज़ ले जाता हो, इस नई ज़मीनमें लगाया। यह नई ज़मीन अच्छी थी, फिर भी उसके विदेशी पेड़ उसमें न फले-फूले। वह बरस, दो बरस, चार बरस तक किसी पौधेको पाल-पोसकर बड़ा करता, उसकी आशाएँ उज्ज्वल हो उठतीं; लेकिन सहसा, बिना किसी प्रत्यक्ष कारणके, पेड़ मर जाता। मिचूरिन भग्न हृदय होकर उसे उखाड़ फेंकता और उसकी जगह कोई दूसरा पौधा रोप देता। इस तरह वह वर्षों तक असफलतासे लड़ता रहा है।

मिचूरिनने बाग़बानी और वनस्पतिशास्त्रपर जितनी पुस्तकें मिल सकीं, पढ़ डालीं। अब उसने पैसा जोड़ना शुरू किया, और इसके लिए सारे शहरकी घड़ियोंकी मरम्मत कर डाली। कुछ पैसा जमा करके मिचूरिनने एक लम्बी यात्रा की। उसने इस यात्रामें मध्य और उत्तरी रूसके प्रत्येक प्रसिद्ध बाग़को देखा; लेकिन इस यात्रासे उसे अपने प्रयोगोंमें कोई मदद न मिली। उसे सिर्फ़ इतना ही मालूम हुआ कि समूचे रूसमें एक भी बाग़ वैज्ञानिक ढंगसे नहीं चलाया जाता है।

यह यात्रा ही मिचूरिनके जीवनकी पहली और अन्तिम यात्रा थी। इसके बाद वह कभी कॉज़लोवसे बाहर नहीं गया। उसने अपनी स्त्रीकी सहायतासे एक नई प्रयोगशाला शुरू की। वह उस रहस्यको ढूँढ़ निकालना चाहता था, जिससे वृक्षोंपर कठोरसे कठोर आवहवाका कोई असर न पड़े। सुबहसे शाम तक यह बाग़बान अपने फ़वरीले कुत्तोंसे घिरा बाग़में काम किया करता था। कुत्ते उसने इसलिए रख छोड़े थे कि वे लूट-मार करनेवाले लड़कोंसे फलोंकी हिफ़ाज़त करें।

मिचूरिनने अपने प्रयोगोंके आधारपर बाग़बानीपर दो-चार लेख भी लिखे; लेकिन वे सब वापस आये। उसने बाग़बानीके एक वैज्ञानिक पत्र 'रूसी बाग़ीचे' में छपनेके लिए एक लेख भेजा, तो

सम्पादक महोदयने उसपर यह लिखकर लौटा दिया—
“हम केवल सच्ची बातें ही छापते हैं।” मतलब यह कि मिचूरिनने जो-कुछ लिखा था, वह सम्पादक महोदयकी समझमें झूठी खुराफात थी !

अब मिचूरिनका धैर्य जाता रहा। वह जानता था कि वह ठीक मार्गपर कार्य रहा है, फिर भी शहरवालोंकी दृष्टिमें वह सनकी था और विज्ञानकी दृष्टिमें झूठा !

अन्तमें उसने ज़ारके कृषि-मन्त्रीको एक लम्बी रिपोर्ट लिखी, जिसमें उसने अपने प्रयोगोंका हवाला देकर यह बताया कि यदि उसे सरकारी सहायता मिले, तो वह इन प्रयोगोंके लिए एक वैज्ञानिक बाग़का संगठन कर सकता है। यह रिपोर्ट उसने सन् १९०५ में भेजी थी ; लेकिन जवाब नदारद।

उसने संयुक्त-राज्य अमेरिकाके कृषि-विभागकी भी एक पत्र लिखा था, जिसका उसे उत्तर मिला। अमेरिकावालोंने लिखा कि वे उसके तमाम पेड़-पौधे और चीज़ें खरीदनेको तैयार हैं। यदि मिचूरिन अमेरिका आवे, तो वे लोग उसका स्वागत करेंगे। वे उसे लम्बी तनख्वाह देकर अपने प्रयोग-उद्यानका अध्यक्ष भी बनानेके लिए तैयार हैं।

इस उत्तरपर मिचूरिनको बड़ा हर्ष हुआ। इसलिए नहीं कि वह अमेरिका जाकर नाम और पैसा पैदा करेगा,—क्योंकि कॉज़लोव छोड़नेका विचार ही कभी उसके दिमाग़में नहीं आया,—बल्कि इसलिए कि दुनियामें कम-से-कम एकने तो उसके कामकी कद्र की। अफ़सोस इस बातका था कि उसके कद्रदान उससे कई हजार मील दूर थे।

फिर भी वह ज़ारके कृषि-विभागसे उत्तर पानेकी आशा लगाये रहा। अन्तमें उसे तीन वर्ष बाद उत्तर मिला—वह इस रूपमें कि ज़ारके कृषि-विभागका एक अफ़सर, बढ़िया वर्दीमें लैस, सेंटकी खुशबूसे मुअत्तर, मिचूरिनके टूटे झोपड़ेपर आ मौजूद हुआ। मिचूरिनके ढीले-ढाले मैले कपड़े देखकर शाही अफ़सरने उसपर

अपना रोव गाँठना शुरू किया—“तुम अमेरिका जाओगे ? मुल्क छोड़ोगे ? हम तुम्हें कहीं भी जानेकी मनाही करते हैं।”

इसपर मिचूरिन भी बिगड़ उठा—“मैं कोई मुजरिम नहीं हूँ। मैं तुम्हारी धौंस नहीं सह सकता।”—यह कहकर वह कमरेके बाहर चला गया।

जब अफ़सर साहबका दिमाग़ कुछ ठंडा हुआ, तो उन्होंने कहा कि कृषि-मन्त्री मिचूरिनका बाग़ लेनेको तैयार हैं ; लेकिन उसे कृषि-विभागके कड़े नियन्त्रणमें रहकर काम करना पड़ेगा।

मिचूरिनने किसीके नियन्त्रणमें काम करनेसे इनकार कर दिया। अफ़सर साहब जैसे आये थे, वैसे ही तशरीफ़ ले गये। मिचूरिन फिर अपने बाग़में थाले गोड़नेमें लग गया।

सन् १९१४ का यूरोपियन युद्ध आरम्भ हुआ ; लेकिन मिचूरिनको उसकी खोज-खबरकी फ़र्सत कहाँ ? वह तो गर्म स्थानोंके पौधों और रूसी शीतके युद्धमें उलझा हुआ था।

रूसकी महान् क्रान्ति हुई ; मगर मिचूरिनको उसका पता नहीं, क्योंकि वह वनस्पति-जगतमें क्रान्ति पैदा करनेमें लगा था। उसे क्रान्तिका पता तब लगा, जब लोगोंने उससे आकर बताया कि नई क्रान्तिकारी सरकार उसके बगीचेकी ज़मीन लेकर उसपर आलू-गोभीके खेत बनाना चाहती है। इसपर मिचूरिनने जल्दी-जल्दी अपना पुराना कोट पहना, हाथमें लकड़ी उठाई और दो कुत्तोंको साथ लेकर क्रान्तिकारी अधिकारियोंसे मिलनेको पहुँचा।

“मैं तुम्हारे साथ काम करनेको तैयार हूँ ; लेकिन मेरे बगीचेको आलूका खेत न बनाओ। मेरी ज़िन्दगी-भरकी मेहनत चौपट न करो।”—वह किसी तरहकी दलील सुनता ही न था। आखिरकार अधिकारियोंने दया करके बूढ़े सनकीकी बात मान ली और उसके पेड़ बच गये।

अक्टूबरकी लाल क्रान्तिके बाद रूसका गृह-युद्ध

हुआ। ज़ार-पक्षके सेनापतियोंने विदेशियोंकी सहायतासे लेनिनकी फ़ौजसे युद्ध छेड़ दिया। ज़ार-पक्षके सेनापति मैमनटोवने अपनी कज़ज़ाक फ़ौजके साथ काँजलोवपर हमला किया। दूरपर बन्दूकों और मशीनगनोंके चलनेकी आवाज़ आ रही थी, और मिचूरिन अपने बाग़में बैलचा लिये हुए क्यारियाँ सवारता फिरता था। भला उसे ज़ारकी सफ़ेद या लेनिनकी लाल फ़ौजोंसे क्या मतलब ? शामके करीब कज़ज़ाक फ़ौजका एक तोपखाना मिचूरिनके बाग़के दरवाज़ेपर आकर रुका। उसे अपनी सारी ज़िन्दगीकी मेहनत तोपों और फ़ौजी बूटोंसे कुचली जाती नज़र आने लगी। उसने दौड़कर फाटक बन्द किया। सिपाही उसे धक्का देकर भीतर घुसना चाहते थे; लेकिन वह फाटकसे जी-जानसे चिपटकर लेट गया और बच्चोंकी तरह चीख - चीखकर रोने लगा—“मेरी ज़िन्दगी-भरकी कमाई नष्ट हो जायगी। मर जाऊँगा, मर अपने पेड़ोंको बरबाद न करने दूँगा।”

इतनेमें घोड़ेपर सवार एक अर्दली आ पहुँचा, और उसने कहा कि सेनापतिने शहरमें एक दूसरा स्थान देखा है, जो सैनिक दृष्टिसे ज्यादा सुरक्षित है, तोपखाना वहीं जाकर डेरा डाले। कज़ज़ाक सिपाही धूल उड़ाते हुए चले गये, और मिचूरिनके क्रीमती भंडारकी रक्षा हुई।

धीरे-धीरे ट्राट्स्कीकी लाल सेनाने ज़ार-पक्षवालोंको मारकर नेस्तनाबूद कर दिया, और मास्कोके क्रेमलिनमें बोल्शेविक सत्ता जमकर बैठ गई। अब लेनिनको देशके पुनर्निर्माणकी फिक्र हुई। सन् १९२१ में मास्कोसे एक रूसी वैज्ञानिक वावीलोव अमेरिकामें लूथर ब्रवैंकके बाग़ देखने कैलिफोर्निया गया। लूथर ब्रवैंकके वैज्ञानिक ढंगसे चलाये जानेवाले बाग़को देखकर वह अत्यन्त प्रभावित हुआ, और उसने जितना समय उन्हें देखनेके लिए निश्चित किया था, उससे कहीं ज्यादा लगाया। जब वह कैलिफोर्नियाके बाग़का निरीक्षण कर रहा था, तब बाग़के अध्यक्षने उससे

पूछा—“हाँ, यह तो बताइये कि मिचूरिन कैसा है ? उसका स्वास्थ्य तो ठीक है ? उसके प्रयोग कैसे चल रहे हैं ?”

वावीलोव इसका क्या उत्तर दे ? उसने कहा—“कौन मिचूरिन ?”

“आइवन मिचूरिन,”—अध्यक्षने कहा—“वनस्पतिशास्त्रका महान रूसी वैज्ञानिक।”

वावीलोवको कहना पड़ा—“मैंने तो कभी मिचूरिनका नाम भी नहीं सुना।”

“ऐं, मिचूरिनका नाम भी नहीं सुना ! फलोंके विश्वकर्मा मिचूरिनका नाम भी नहीं सुना ! यह जो सामने पेड़ दीखता है, यह मिचूरिनका ही है। यह रसभरीकी झाड़ी एकदम नई किस्मकी है, जिसे मिचूरिनने काँजलोवमें पैदा किया है। इस ज़रिस्कको उसने एक जंगली झाड़ीसे विकसित किया है। वह पेड़ खुद मिचूरिनका उगाया हुआ है। आपने मिचूरिनका नाम भी नहीं सुना !”

वावीलोवने मास्कोको रिपोर्ट भेजी। क्रेमलिनमें बैठे हुए लेनिनने काँजलोवके बोल्शेविक अधिकारियोंके नाम तारों और हुकमोंका ताँता बाँध दिया—“मिचूरिन जितनी ज़मीन चाहे, फौरन दो ; मिचूरिन जितना पैसा माँगे, फौरन दो ; मिचूरिनको जिन औजारोंकी ज़रूरत हो, फौरन मँगाओ ; मिचूरिनको जितने मज़दूर चाहने पड़ें, तुरन्त इकट्ठे करो ; मिचूरिनने जो-कुछ भी लिखा हो, उसे प्रकाशित करो।”

इस तरह आखिरकार मिचूरिनको अपने कामकी दाद मिली। लेकिन कब ? सैंतालीस वर्षके निरन्तर परिश्रमके बाद ! अड़सठ वर्षकी उम्रमें !

लेकिन अब उसे दूसरी मुसीबतोंका सामना करना पड़ा। अब ढेरके ढेर लोग उसके यहाँ आने लगे। कोई उसे सलाम करता, कोई उसे देखकर मुस्कराता और कोई-कोई तो उसके बाग़में बैठकर गाना गाता। लोग उससे तरह-तरहके सवाल करते। लेकिन उसका नवयुवक सहकारी यकोवलेव बड़ा चतुर है। वह इन

सबसे मिचूरिनकी रक्षा करता रहता है, और मिचूरिन अपने सहकारी यकोवलेवको देखकर कभी-कभी मुस्कराता है, क्योंकि थोड़े ही दिन पहले—लड़कपनमें—यही यकोवलेव मिचूरिनके बाग़के फल लूटनेवाले लड़कोंमें सबसे बड़ा डाकू था !

जब मिचूरिन सत्तर वर्षका हुआ, तो बोलशेविक सरकारकी आज्ञासे उसकी सत्तरवीं जयन्ती बड़े धूम-धामसे मनाई गई। कॉज़लोवके थियेटरमें जयन्ती-उत्सवका प्रबन्ध किया गया। रूस-भरकी वैज्ञानिक संस्थाओंने उसका अभिनन्दन करनेके लिए अपने-अपने डेपूटेशन भेजे। शहर-भर सजाया गया। सारे शहरमें चहल-पहल थी, गाँव-भरका हर आदमी इस उत्सवमें भाग ले रहा था। कॉज़लोवमें सिर्फ एक व्यक्ति ऐसा था, जिसे इस उत्सवकी खबर न थी, और वह था मिचूरिन ! उत्सवका दिन मिचूरिनके जीवनमें एक मुसीबतका दिन था।

जब उत्सवका समय आया, तो कुछ कार्यकर्ता उसके पास पहुँचे और कहने लगे—“यहाँके थियेटरमें कुछ किसान इकट्ठे हुए हैं, वे आपसे कुछ प्रश्न पूछना चाहते हैं। ज़रा थियेटर तक चले चलिये।”

मिचूरिनने कहा—“अच्छा।”

इसपर वे बोले—“मोटर बाहर तैयार है।”

मिचूरिन बिगड़ उठा—“भाड़में जाओ तुम और तुम्हारी मोटर। क्या मेरे पैर टूट गये हैं, जो मैं मोटरपर जाऊँ?”

मोटर खाली लौट गई। मिचूरिन अपना डंडा उठाकर बड़बड़ाता हुआ चला—“किसान ! सवाल पूछेंगे ! गधे हैं, गधे !”

जब वह थियेटरके नज़दीक पहुँचा, तो देखता है कि वदीं पहले हुए लाल सेनाके सिपाहियोंकी लम्बी कतार लगी है। जब वह उस कतारसे होकर गुज़रने लगा, तो दोनों तरफ़के सिपाही बड़ी इज्जतसे उसे लगे फौजी सलाम बजाने। अब मिचूरिन परेशान था। समझमें न आया कि बात क्या है, और वह इन

सलामोंका जवाब टोप उतारकर दे, या इन्हींकी तरह फौजी सलाम ठोककर, या इनसे खड़ा होकर बातें करे। खैर, साथवालोंने उसे धकियाते-पिछियाते हुए ले जाकर थियेटरके मंचपर एक मेज़के ऊपर जा बैठाया। अब चारों तरफसे तालियाँ बजने लगीं, अभिनन्दन-पत्र पढ़े जाने लगे, उसकी प्रशंसामें क़सीदे और स्पीचें होने लगीं। मिचूरिनके होश-हवास ग़ायब हो गये। बेचारा बौखलाया हुआ मेज़पर घुत बना बैठा रहा। यहाँ तक कि जब साम्यवादियोंका इंटरनेशनेल गीत गाया जाने लगा, तब भी उसे टोप उतारनेकी सुधि न रही। उत्सव ख़त्म होनेपर उसने इतना ही कहा—“मुझे बड़ा बेहूदा चकमा दिया—यह जयन्ती। देखूंगा, अब दुबारा मुझे कैसे चकमा देते हैं।” और अपने घर लौट आया।

मिचूरिन उत्तरी रूसके बर्किस्तानमें रसभरी, नाशपाती, अंगूर, मकोय, आड़ू आदि रसीले फल पैदा करता है। इन वृक्षोंकी उत्पत्ति काफी जटिल है। एक ही पेड़की क़लम एकके बाद एक करके न-जाने कितने वृक्षोंपर लगानेके बाद इस शीतमें फल देनेके योग्य बनी है। मिचूरिन अभी तक कॉज़लोवमें नीबू नहीं पैदा कर पाया है। वह कहता है कि अगर वह पचीस वर्ष और जिन्दा रहे, तो कॉज़लोवमें नीबू भी पैदा कर देगा।

उसके बाग़में जो ख़ूबानी पैदा होती है, उसके उपजानेमें एक अमेरिकन वैज्ञानिकका हाथ है। यह अमेरिकन वैज्ञानिक अमेरिकासे चलकर धूल-भरे कॉज़लोवमें आता था। लोग आश्चर्य करते कि कॉज़लोवमें कौन-सा ऐसा आकर्षण धरा है, जिसके लिए कोई अमेरिकन यात्री वहाँ आये ? वह मिचूरिनके यहाँ जाता और अपनी नोट-बुकोंको तारीखों, संख्याओं और ड्राइंगोंसे भर डालता था। वापस जाते समय उसके सूटकेसमें फल, टहनियाँ और पत्तियाँ भरी होती थीं। अन्तिम बार वह मंगोलियाकी यात्रा करके कॉज़लोव आया था। उसने मंगोलियाके एक मठमें चीनी ख़ूबानीके कुछ पुराने दरख़्त उगे हुए देखे। उसे यह पता था कि मामूली ख़ूबानीके बीजसे कॉज़लोवमें

खुवानी नहीं उगाई जा सकी। मठमें इन पेड़ोंको देखकर उसे खयाल आया कि चूँकि यह पेड़ सैकड़ों वर्षसे मंगोलियामें उग रहे हैं, और मंगोलियाकी आवहवा भी कम सर्द नहीं है, अतः ये शीतमें रहनेके आदी हो चुके हैं। यदि ये पेड़ या इनके बीज कौजलोव और अन्य सर्द जगहोंमें लगाये जायँ, तो उग सकते हैं। लेकिन ये पेड़ प्राप्त कैसे हों? मठ एक धार्मिक पवित्र स्थान है। उसके पेड़ोंपर हाथ लगानेकी सख्त मुमानियत है। जब अमेरिकनको माँगसे या दामोंपर वे पेड़ न मिल सके, तब उसने एक चाल चली। चीनमें—विशेषकर मंगोलियामें—कई वर्षसे सैनिक सरदारोंको दौरदौरा है ही। अतः अमेरिकनने लम्बी रिश्तत देकर एक चीनी कर्नलको मिलाया। कर्नलने एक दिन अपनी सेनाके साथ मठपर हमला करनेका अभिनय किया। जिस समय चीनी फौजके झूठे हमलेसे घबराकर मठवाले इधर-उधर भाग रहे थे, उसी गड़बड़ीमें अमेरिकनके कज्जाक शरीर-रक्षकोंने मठका बाग लूट लिया। अमेरिकनने उन वृक्षोंके बीज मिचूरिनको भेंट किये। अब कौजलोव और साइवेरियामें खुवानी पैदा होने लगी!

मिचूरिनकी बदौलत पश्चिमी साइवेरियामें वादाम पैदा होने लगा। यह उत्तरी अमेरिकन वादाम और मंगोलियन वादामके मिश्रणसे उत्पन्न होता है। उसके 'उत्तरी सौन्दर्य' नामक मोठे और रसीले अंगूर इरकुटस्ककी बर्फमें पैदा होते हैं।

मिचूरिन 'एकटीनीडिया' नामक फल भी पैदा करता है। यह फल चीनके जंगली हिस्सेमें खुदरो होता है; लेकिन ऐसे उजाड़खण्डमें होता है, जहाँ लोगोंकी पहुँच नहीं, इसीलिए यह बहुत दुर्लभ है, और आज तक कभी किसीने इसे उगाया भी नहीं। ववेरियाका एक बादशाह इसका बड़ा शौकीन था। कहते हैं कि जब कोई दूसरा बादशाह उसके यहाँ आता और वह अपने शाही मेहमानके प्रति बड़ा सम्मान प्रदर्शित करना चाहता, तो वह मेहमानके सामने सोनेकी रक्तावीमें

एकटीनीडियाके दो-तीन फल रखकर पेश करता। जहाँ यह फल होता है, वहाँके निवासी अंगुलियोंसे मसलकर इसका रस निचोड़ते हैं और उसे रोटीपर मक्खनकी तरह चुपड़कर खाते हैं। इसकी शक्ल भिंडी-जैसी, खुशबू अनन्नाससे मिलती हुई और स्वाद संसारके सभी फलोंसे निराला—कुछ तीखा और मीठा होता है। यह ऐसा रसीला होता है कि जीभके नीचे रखते ही घुल जाता है। मिचूरिन तीस वर्षके अनवरत परिश्रमके बाद इस फलको पैदा करनेमें सफल हुआ। इसके लिए उसे ४०,००० विभिन्न वृक्षोंपर इसकी कलम बाँधकर प्रयोग करने पड़े थे!

अब मिचूरिन बयासी वर्षका हो चुका है। अब उसे कानसे कुछ ऊँचा सुनाई देता है; लेकिन फिर भी उसकी नज़र तेज़ है। किसी पेड़में किसी नई पत्ती या नये फूलका निकलना फौरन देख लेता है और अपनी नोट-बुकमें लिख लेता है। अब भी वह सुबहसे दोपहर तक बागमें काम करता है। दोपहरको भोजन करके घंटा-भर आराम करता है, और फिर सूर्यास्त तक बागमें रहता है।

उसका कमरा हमेशा अस्तव्यस्त रहता है। मेज़पर और अलमारियोंमें इधर-उधर बीज, पत्तियाँ, टहनियाँ, कलमें आदि बिखरी रहती हैं, और दीवारोंपर तरह-तरहकी घड़ियाँ—जेब्री, हाथकी और दीवारकी—टँगी रहती हैं। उसका रहने-सहनेका सारा खर्च बोल्शेविक सरकार करती है, इसलिए मिचूरिनको पैसेके लिए अब घड़ियोंकी मरम्मत नहीं करनी पड़ती। इसलिए अब वह मनबहलावके लिए लोगोंसे माँग-माँगकर उनकी घड़ियोंकी मुफ्ती मरम्मत किया करता है।

मिचूरिनने रूसके बर्किस्तान और कड़ी ज़मीनमें भूमध्यसागरके रसीले फल पैदा किये हैं। क्या गंगा-जमनाके उपजाऊ मैदानोंमें चमनके अंगूर, काश्मीरके सेब, ईरानके सरदे और काबुलके वादाम नहीं पैदा हो सकते? कोई कहता है—“हो सकते हैं, हो सकते हैं।” कैसे? “मिचूरिन-जैसी लगनसे, मिचूरिन-जैसे परिश्रमसे।”

खोया बचपन

जब मैं दस सालका छोकरा था, तभी डाकके रद्दी टिकट जमा करने लगा। मेरे पिताजीको यह पसन्द न था। उनका खयाल था कि इससे पढ़ाईमें बाधा होती है ; किन्तु मेरा एक लंगोटिया यार था—लोज़िक केपेलका। हम दोनों मिल-जुलकर विदेशी टिकटोंका शौक पूरा करते थे। लोज़िकका पिता सारंगी बजाया करता था। लोज़िकके सारे बदनमें पीले-पीले दाग थे, और वह बड़ा गन्दा लड़का था। फिर भी मैं उसे प्यार करता था—लड़कपनकी बात ही दूसरी होती है। मैं उसे देवताकी तरह पूजता था।

हाँ, तो जब मैंने टिकट जमा करना शुरू किया, तो लोज़िक मेरा बहुत ही विश्वस्त साथी था, और यह भी बात थी कि मेरे पिता यह पसन्द नहीं करते थे। यह नियमकी बात है कि जैसा पिताने किया था, पुत्र अगर उससे तनिक भी दूसरी तरहके काम करे, तो पिता उसे पसन्द नहीं करता। सच तो यह है कि मैं भी अपने लड़कोंसे वैसा ही बर्ताव रखता हूँ। पिता होनेमें एक विचित्र तरहका भाव रहता है, उसमें बहुत प्यार है ; किन्तु उसमें अविश्वास, दुश्मनी या जो आप कहें, वह भी रहता है। आप अपने बच्चोंको जितना ही ज्यादा प्यार करेंगे, वह दूसरा भाव भी उतना ही ज्यादा रहेगा। खैर, मैंने अपना टिकटोंका संग्रह कोठेपर एक कोठरीमें छिपाकर रख दिया था, ताकि मेरे पिता उसे देख न पायें। उस कोठरीमें एक पुराना बड़ा सन्दूक भी रखा था, मैं और लोज़िक उसीमें चूहोंकी तरह घुसकर अपने टिकटोंके संग्रहको देखते थे। “यह देखो, यह स्वीडेनका टिकट है, यह भारतका, यह इंग्लैण्डका और यह हालैण्डका !” चूँकि यह काम हम लोगोंको छिपे तौरपर करना पड़ता था, इसलिए उसमें एक मीठे-मीठे पापका भी आनन्द होता था। उन टिकटोंको पानेका तरीका भी बड़ा

साहसपूर्ण-सा था। मैं लोगोंके—चाहे वे जान-पहचानके हों या अनजान—पास जाता था, और उनसे उनकी पुरानी चिट्ठियोंपर से टिकट छुड़ानेकी अनुमति ले लेता था। अक्सर ऐसे लोग मिल जाते थे, जिनके पास चिट्ठियोंके ढेर उनके किसी पुराने डेस्कमें बन्द रहते थे। वे घंटे अत्यन्त सुखप्रद थे, जब कि मैं फ़र्शपर बैठा हुआ उस कूड़ेसे टिकट निकाला करता था। जब कभी लम्बार्डी या छोटे-छोटे जर्मन राज्योंके टिकट मिल जाते थे, तो मैं खुशीसे पागल हो उठता। इधर लोज़िक मेरे लिए बाहर ठहरा रहता था। जब मैं निकलता, तो चिह्ना उठता—“लोज़िक, मुझे एक हैनोवर मिल गया है।”

“देखें, सचमुच क्या ?”

“यह देखो !”

और हम दोनों अपनी सम्पत्ति लेकर अपने खज़ानेकी ओर दौड़ पड़ते। वे मेरे जीवनके सबसे सुखी दिन थे—लोज़िककी दोस्ती और टिकट जमा करना। फिर मुझे चेचक निकली। उस समय लोग लोज़िकको मेरे पास आने नहीं देते थे ; किन्तु लोज़िक गलीमें खड़ा होकर सीटी बजाता था, जिससे मैं सुन सकूँ। एक दिन मौक़ा पाकर मैं निकल भागा। विछौनेसे उठकर मैं सीधा उस कोठरीमें अपने टिकटोंको देखने गया। मैं इतना कमज़ोर था कि उस सन्दूकका ढक्कन कठिनतासे उठा सका ; किन्तु सन्दूक...खाली था...मेरे टिकट...गायब...थे।

मैं नहीं कह सकता कि मैं कितना दुःखी और लुब्ध हो उठा था। मैं समझता हूँ कि मेरी वही हालत हो गई होगी कि काटो तो बदनमें खून नहीं। मैं चिह्ना भी नहीं सका। मालूम हुआ, जैसे गलेमें कोई चीज़ अटक गई हो। पहली चोट तो मुझे यह पहुँची कि मेरे टिकट—मेरी सबसे बड़ी खुशी—

गायब हो गये थे । और इससे भी अधिक दुःखप्रद था कि मेरे एकमात्र मित्र लोजिकने ही मेरी बीमारीमें उसे चुराया होगा । मैं दुःखसे कातर और निराश हो गया ।

मैं उस कोठरीसे बाहर क्योंकर आया—मैं नहीं जानता ; किन्तु उसके बाद ही मुझे तेज़ बुखार चढ़ आया । जब दिमाग ठिकाने होता, तो मैं उसीके विषयमें सोचा करता । मैंने इसके विषयमें एक शब्द भी अपने पिता या बुआसे नहीं कहा । माँ तो मेरी थी ही नहीं । मैं जानता था कि मेरे भावको वे नहीं समझेंगे । इसी कारण मैं उनसे कुछ खिचा-सा रहने लगा । उस समयसे उनके प्रति मेरे बाल-सुलभ भाव लुप्त हो गये । मैंने पहल-पहल धोखा खाया था । मैंने मन-ही-मन कहा—लोजिक भिखमंगा है, इसीसे वह चुराता है । मुझे भिखमंगेकी संगतिका ही फल मिला है । इससे मेरा हृदय कठोर हो गया । उसी समयसे मैं लोगोंमें विभेद देखने लगा । मैंने अपनी सामाजिक निर्दोषिता खो दी, किन्तु यह कितना बड़ा धक्का है और मुझे इससे कितना बड़ा नुकसान पहुँचेगा, यह मैं उस समय नहीं समझ पाया ।

जब मैं बीमारीसे उठा, तो टिकटोंके खो जानेके शोकसे भी छुटकारा मिल गया । किन्तु जब मैंने देखा कि लोजिकने नये-नये दोस्त बना लिये हैं, तो मेरे कलेजेको बहुत चोट पहुँची । लोजिक मुझे देखकर मेरे पास दौड़ा हुआ आया,—क्योंकि हम दोनों बहुत दिनोंके बाद मिले थे,—तो मैंने बड़ोंकी-सी आवाज़में कहा—“हमारे-तुम्हारे बीच अब हो चुकी ; आजसे हम दोनोंके बीच ‘खुट्टी’ ।”

लोजिकने कहा—“बहुत ठीक ।” और उसी समयसे वह मुझसे कुत्तेकी तरह घृणा करने लगा ।

हाँ, तो उसी घटनाने मेरी जीवन-धारा बदल दी । मेरे संसारको मानो किसीने गन्दा कर दिया । लोगोंपर से मेरा विश्वास उठ गया । मैंने घृणा करना और नीची निगाहसे देखना सीख लिया । उसके बाद मुझे

कोई मित्र नहीं मिला । जब मैं बड़ा हुआ, तो सोचने लगा कि चूँकि मैं अकेला हूँ, इसलिए मुझे किसीकी जरूरत नहीं है और किसीका उपकार करनेकी भी जरूरत नहीं है । तब मुझे मालूम हुआ कि मुझे कोई भी नहीं चाहता । मैं अपनेको यों समझा लेता था कि मैं स्नेह तथा भावुकताके परे हूँ, इसलिए मैं एकान्तप्रिय और कामकाजू आदमी बन गया—बहुत ही व्यस्त, छोटी-से-छोटी बातोंका ध्यान रखनेवाला तथा सिर्फ आवश्यक कामको ही करनेवाला । मैं बहुत ही चिड़चिड़ा तथा अपने मातहतोंके प्रति सख्त हो गया । मैं अपनी स्त्रीसे भी प्रेम नहीं करता था । मैंने अपने बच्चोंको आज्ञा-पालन और डरना सिखाया । अपने अध्यवसाय तथा कर्तव्यके खयालके कारण मैंने खासा नाम पैदा कर लिया । मेरा सारा जीवन ऐसा ही हो गया । मैं सिर्फ अपने कामका खयाल रखता था । समय आनेपर आप अखबारोंमें पढ़ेंगे कि मैंने कितना बड़ा काम किया है तथा मेरा चरित कैसा आदर्श रहा है । कौन जानता होगा कि इसके पीछे कितना अकेलापन, अविश्वास और हठ रहा है ।

तीन साल हुए मेरी स्त्रीका देहान्त हो गया । यद्यपि मैंने किसीसे इसे स्वीकार नहीं किया ; किन्तु मैं विलकुल ही ध्वरा उठा । अपने शोकमें मैं अपने परिवारकी सभी पुरानी याददाशतोंको उलट गया—फोटो, चिट्ठियाँ तथा मेरी पुरानी कापियाँ । मेरे पिताने उन्हें कैसे सिलसिलेसे रखा था, यह देखकर मैं आनन्दसे भर उठा । मैं समझता हूँ कि चाहे जो हो, वे मुझे प्यार करते रहे होंगे । उस ओरकी एक अल्मारी इन चीज़ोंसे भरी थी, और उसकी निचली दराज़में एक मुहरबन्द बक्स था । मैंने उसे खोला । यह तो टिकटोंका संग्रह था !

आपसे छिपानेकी कोई बात नहीं है—मैं रोने लगा, और उस बक्सको मैं अपने कमरेमें लेता आया, मानो मुझे कोई अमूल्य निधि मिल गई हो । मेरे दिमागमें दौड़ गया—“अच्छा, यह हुआ था !” जब

मैं बीमार था, किसीको मेरा संग्रह मिल गया होगा, और पिताने उसे ज्वत् कर लिया होगा, ताकि मेरी पढ़ाई खराब न हो। उन्हें ऐसा करना न था; किन्तु यह सब मेरे प्रति उनकी चिन्ता और प्यारके कारण हुआ। मुझे उनके लिए दुःख हुआ और अपने लिए भी।

फिर मुझे याद आया—“तो लोजिकने मेरे टिकट चुराये ही न थे ?” हे भगवन् ! सचमुच मैंने उसके साथ बड़ा अन्याय किया। उस गन्दे लड़केकी सूरत मेरी आँखोंके आगे फिरने लगी। मैं सोचने लगा कि उसका क्या हुआ होगा, और वह जीता है कि मर गया ? मैं आपसे कहता हूँ कि उन बातोंको सोचकर मैं अत्यन्त ही लज्जित और दुःखित हुआ। सिर्फ एक झूठे सन्देहके कारण मैंने अपना मित्र खो दिया ! उसीके कारण मेरा वचपन नष्ट हो गया ; उसीके कारण मैं गरीबोंको नीची नज़रसे देखता रहा ; उसीके कारण मैं इतना अहंकारी हो गया ; उसीके कारण मैं किसीसे भी हिलमिल न सका ; उसीके कारण मुझे टिकटसे घृणा हो गई ; उसीके कारण मैंने अपनी स्त्रीको कभी कोई पत्र न लिखा, जिसे यद्यपि मैं बहाने बता-बताकर टालता रहा ; किन्तु उसका मेरी स्त्रीको बहुत ही दुःख रहा ; उसीके कारण मैं कठोर और एकान्तप्रिय हो गया ; उसीके कारण—केवल उसीके कारण मेरा व्यापारी जीवन इतना सुन्दर और उदाहरणीय रहा।

मैंने अपने जीवनपर फिरसे दृष्टिपात किया। अचानक मैंने सोचा—“अगर वह न हुआ होता, तो मेरा जीवन एक दूसरे ही साँचेमें ढला होता। अगर वह घटना न हुई होती, तो मैं उत्साह, प्यार, बहादुरी, हाज़िर-जवाबी और चतुरताका पुतला होता— शायद मैं

आविष्कारक, अभिनेता या सेनापति हुआ होता। मैं अपने सहकारियोंसे स्नेह करता, उनके साथ बैठकर दावतें उड़ाता—मैं उन्हें समझ सकता। ओह ! कौन जानता है, मैंने क्या किया होता ! मुझे ऐसा मालूम होने लगा, मानो मैं जमा जा रहा हूँ। मैं उस संग्रहका एक-एक टिकट देख गया। लम्बाडॉ, क्यूबा, श्याम, हैनोव, निकारागुआ, फिलीपाइन द्वीपपुंज— सभी जगहोंके टिकट थे—जहाँ मैं जाना चाहता था ; किन्तु अब कभी न जा सकूँगा। मैंने उन्हें देखते हुए रात बिता दी और अपने जीवनके विषयमें सोचना लगा। मैंने अनुभव किया कि वह कृत्रिम और व्यक्तित्वहीन जीवन था—जो मेरा नहीं था ; किन्तु मैं ढो रहा था—मेरा असली जीवन मुझे कभी मिला ही नहीं।” —मिस्टर कारसने दुःखसे सिर हिलाया। “जब मैं सोचता हूँ कि मैं क्या-क्या हुआ होता, और मैंने लोजिकके प्रति कैसा अपराध किया……”

इस जीवन-कथाको सुनकर पिता बोव्स बहुत ही चिन्तित और उदास हो गये—शायद उन्हें अपने जीवनकी कोई घटना याद हो आई। उन्होंने सहानुभूतिपूर्ण स्वरमें कहा—“मि० कारस, इन बातोंको सोचा न कीजिए। सोचनेसे कोई फ़ायदा नहीं है। मैं ऐसी बातोंको कभी नहीं सोचता। आप इसे सुधार भी तो नहीं सकते—फिरसे शुरू तो नहीं कर सकते !”

“ठीक है,” मिस्टर कारसने लम्बी साँस लेकर कहा—“खैर, मैंने फिरसे टिकट जमा करना शुरू कर दिया है।”

उनके चेहरेपर हल्की-सी सुखी दौड़ गई।*

अनुवादक—सत्येन्द्रनारायण, वी० ए०

* मि० कारेल कैपेककी एक कहानी।



चीनकी शिक्षाका पिता—कनफ्यूशियस

श्री अविनाशचन्द्र वेदालंकार

संसारके धार्मिक इतिहासमें कनफ्यूशियसनिज्मका एक विशेष स्थान है ; पर कनफ्यूशियसनिज्मको कोई धर्म, कोई नीति-नियम-संग्रह और कोई केवल फिलासफी समझता है । वह चाहे कुछ भी हो, इसमें सन्देह नहीं कि कनफ्यूशियसनिज्मने वही कार्य किया है, जो संसारके अन्य धर्मोंने किया है । कनफ्यूशियस स्वयं धार्मिक था, उसके शिष्य धार्मिक थे, और उसने चीनी धार्मिक साहित्यका सबसे प्रथम संकलन किया था । यह सत्य है कि कनफ्यूशियसने धर्मके लिए आवश्यक रूपसे अपेक्षित कई विधि-विधानोंके प्रति उपेक्षा दिखलाई है ; पर वह उपेक्षा विरोधगर्भित नहीं थी । वह उन विधि-विधानोंको धर्मका आवश्यक अंग ही न समझता था । इसलिए उसने न तो 'प्रार्थना'को प्रोत्साहित किया और न पूजा-पाठके लिए मन्दिरों तथा मठोंकी रचनाका प्रचार किया । पुरुषरूप परमात्मा (Anthropomorphic God) की सत्तामें वह विश्वास न करता था, और अमरत्व (Immortality) का उसके लिए कोई विशेष महत्त्व न था । कनफ्यूशियस वस्तुतः जिस प्रकारके धर्मका प्रचार और विस्तार चाहता था, वह 'ह्यूमैनिज्म'की एक पुकार थी । डाक्टर पौटरका कहना है कि कनफ्यूशियस संसारका प्रथम 'ह्यूमैनिस्ट' था । 'ह्यूमैनिस्ट सम्प्रदाय'की तरह उसका विश्वास था कि प्रार्थना, पूजा, पुरुषरूप परमात्माकी सत्ता और अमरत्व धर्मके लिए आवश्यक नहीं । कनफ्यूशियसनिज्मके धर्म-ग्रन्थोंमें कम-से-कम छै बार यह भाव व्यक्त किया गया है—'आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत् ।'—अपने लिए जो तुम नहीं चाहते, तुम भी दूसरोंके लिए उसका आचरण न करो । उसके धर्मका सार था—अदृश्य, अमौलिक और अपौरुषेय सत्ताओंपर आश्रित न रहकर आत्म-संयम और आत्म-शिक्षणका सतत प्रयत्न करते रहो । व्यक्तिगत उत्कर्षके साथ-ही-साथ स्टेट और विश्वके उत्तरोत्तर उत्कर्षमें उसका विश्वास था ।

कनफ्यूशियसका जन्म

५५२ ई० पू० की बात है । चीनके शैन्दुंग प्रान्तमें एक वृद्ध सिपाही, जिसकी अवस्था ७० वर्षके आसपास होगी, चिन्ताकुल बैठा हुआ था । वह सोच रहा था, मैं निःसन्तान हूँ, मेरे बाद सम्पूर्ण 'पिण्डोदक क्रियाएँ' लुप्त हो जायँगी, इसलिए मुझे पुत्र-प्राप्तिका यत्न करना चाहिए । उसके नौ लड़कियाँ थीं, और एक दासीसे दो पुत्र भी थे ; पर उनका होना न होना बराबर था । उसने पुनर्विवाहका निश्चय किया । वह वृद्ध कुंग (Kung) के एक प्राचीन प्रतिष्ठित परिवारका था । इस कारण समान कुलमें ही उसके विवाहकी अभिलाषा थी । वह येन-परिवारके एक व्यक्तिके पास पहुँचा और उसके आगे अपने विवाहका प्रस्ताव रखा । उस व्यक्तिके तीन लड़कियाँ थीं । उसने तीनोंको बुलाकर, वृद्धके गुण-दोषका विवेचनकर पूछा—'कौन इस वृद्धकी पत्नी होना स्वीकार करती है ?' दो लड़कियाँ तो इस प्रश्नपर मौन रहीं ; पर सबसे छोटी चिंगत्सीने आगे बढ़, सिर झुकाकर कहा—'पिता ! तुम हमसे ऐसा प्रश्न क्यों करते हो ? यह तो आपके निश्चयपर अवलम्बित है ।' पिताने उत्तर दिया—'बहुत अच्छा, तुम इस कार्यको कर सकोगी ।'

एक वर्ष बाद उसके एक पुत्र उत्पन्न हुआ । उस पुत्रजने वृद्ध पति और नवयौवना पत्नीका दाम्पत्य-जीवन सुख और आनन्दमय बना दिया । उसके वंशज आज भी ७५वीं और ७६वीं पीढ़ीमें शैन्दुंग-प्रान्तके उसी स्थानमें देखे जा सकते हैं । कनफ्यूशियसके वंशज होनेसे उनकी बड़ी प्रतिष्ठा है ।

बुद्ध और क्राइस्टके जन्मके कथानकोंकी तरह कनफ्यूशियसके सम्बन्धमें कथानक है कि चिंगत्सीकी एक आत्मा प्रकट हुई, और उसने कहा—'तुम एक पुत्र प्रसव करोगी, जो बुद्धिमें सर्वोत्कृष्ट होगा ।' एक विचित्र प्राणी भी प्रकट हुआ था, जिसकी आकृति कुछ तो एक सींगवाले पौराणिक पशु, कुछ मृग और कुछ

अजगरके सदृश थी। उस प्राणीने चिंगत्सीके सम्मुख एक बहुमूल्य पत्थर रखा था; उसपर निम्न शब्द अंकित थे—‘यह पुत्र संसारका निष्कण्टक राज्य करेगा।’

शैशव और शिक्षा

कनफ्यूशियसके शैशवके सम्बन्धमें हमें विशेष ज्ञान नहीं। कहा जाता है कि कनफ्यूशियसको बचपनसे ही विद्यामें उत्कट अनुराग था। १४ वर्षकी अवस्थामें वह सम्पूर्ण विद्याओंका अभ्यास कर चुका था। पर कनफ्यूशियस रुग्ण प्रकृतिका हमेशा चिन्तित रहनेवाला विद्वान न था। उसके जीवनसे ज्ञात होता है कि वह अच्छा शिकारी, दक्ष योद्धा और उत्कृष्ट संगीतज्ञ था। पिताकी मृत्यु हो जानेके कारण कनफ्यूशियसको विद्यालयके अवकाशके बाद घरकी देखभाल भी करनी होती थी।

नौकरी और विवाह

१७ वर्षकी अवस्थामें उसे रियासत ‘लू’ में नौकरी मिल गई। वह पद विशेष महत्त्वपूर्ण तो न था; पर प्रतिष्ठा उस पदकी काफी थी। उस पदके कर्तव्य वही थे, जो आजकल ज़िलेदारके होते हैं। कनफ्यूशियसकी जीवन-सम्बन्धी फिलासफीका यहाँसे आरम्भ होता है। दो दावेदार अगर अपना दावा लेकर उसके पास निर्णयके लिए आते, तो वह उन दोनोंको बुलाकर झगड़े और फिसादकी निरर्थकतापर व्याख्यान देता। इस तरह उस पदपर रहते हुए अपनी कर्तव्यपरायणतासे जहाँ उसने समाजमें अपना विशिष्ट स्थान बना लिया, वहाँ अब उसकी आमदनी भी पर्याप्त बढ़ गई, इसलिए १६ वर्षकी अवस्थामें कनफ्यूशियसने अपना विवाह कर लिया। उसकी स्त्रीके विषयमें हमें कुछ भी पता नहीं। कनफ्यूशियन धर्म-ग्रन्थोंमें इतना ही निर्देश मिलता है कि कनफ्यूशियसने माताकी मृत्युपर शोकातुर पुत्रकी भर्त्सना की थी। कनफ्यूशियसका वह पुत्र विवाहके एक वर्ष बाद ५३१ ई० पू० में उत्पन्न हुआ था। उस वर्षमय अवसरपर रियासत ‘लू’ के शासकने अपनी

शुभकामनाएँ और दो पवित्र ‘कार्प्स’ भेजे थे। उपहारोंके प्रति आदर-भाव प्रदर्शित करते हुए कनफ्यूशियसने अपने पुत्रका नाम ‘लि’ रखा था। ‘लि’ का चीनी भाषामें अभिप्राय है—‘कार्प्स’।

कनफ्यूशियस जब चीनमें इस प्रकार पुत्र-जन्मके हर्षोत्सवको मनानेमें व्यस्त था, ठीक उसी समय बुद्ध भी अपने नवजात पुत्रका नामकरण-संस्कार कर रहे थे।

विवाहके चार वर्ष बाद कनफ्यूशियसके गृहस्थ-जीवनके सुख-स्वप्न टूट गये। इतिहाससे उनके कारणोंपर कुछ प्रकाश नहीं पड़ता। सम्भवतः उन कारणोंमें से एक कारण माताकी मृत्युका दीर्घ शोक है।

माताके देहावसानके समय कनफ्यूशियस २४ वर्षका था। उसपर माताकी मृत्युका बड़ा गहरा प्रभाव पड़ा। चिंगत्सी कनफ्यूशियसकी माता भी थी और पिता भी, इसलिए उसकी मृत्युपर कनफ्यूशियसकी आन्तरिक शान्ति भंग हो गई। चीनकी परिपाटीके अनुसार उसने एकान्त जीवन स्वीकार किया और २७ महीने माताकी कब्रपर ध्यानमें बिताये। उसके बाद जहाँ तक हमें ज्ञात है, उसका अपनी पत्नीसे कभी सम्बन्ध नहीं हुआ।

शोक-क्रिया समाप्त हो जानेपर कनफ्यूशियसने फिर अपना कार्य सँभाला। कुछ काल पश्चात् न-जाने किन कारणोंसे उसने वह कार्य छोड़ परिव्राजक बनना स्वीकार किया। प्राचीन दार्शनिक विचारोंकी उसने बुद्धिगम्य सरलतम शब्दोंमें व्याख्या-पद्धतिका आविष्कार किया। उसकी उस सरल व्याख्या-पद्धतिने शीघ्र ही उसके हजारों अनुयायी बना दिये। धर्म-प्रचारमें प्रेरणा उसे किसी दिव्य दर्शन (Vision) से प्राप्त हुई होगी, इसका हमें कोई प्रमाण नहीं मिलता। स्नेहमयी जननीकी मृत्यु ही उसके जीवन-परिवर्तनका मुख्य कारण प्रतीत होती है।

कनफ्यूशियसकी शिक्षण-शैली यूनानी तत्त्ववेत्ता अरस्तूके सदृश थी। जिज्ञासु शिष्य-वर्गसे विरा हुआ वह एक स्थानसे दूसरे स्थान तक व्याख्यान देता हुआ

धूमता । व्याख्यानका विषय सड़कपर चलते हुए दीख पड़नेवाली घटनाएँ होती थीं । धूमते-धूमते जब कभी वह दूर निकल जाता, तो बैलगाड़ीमें बैठ वापस आता । गाड़ीके पीछे-पीछे उसके शिष्य पैदल चलते । उसके 'चलते-फिरते विश्वविद्यालय' (Travelling University) के पाठ्यक्रममें ये विषय सम्मिलित थे—संगीत, इतिहास, काव्य, साहित्य, नागरिक-शास्त्र और सदाचार-शास्त्र । उनमें भी उसका सबसे अधिक प्रिय विषय था नागरिक-शास्त्र । उसकी शिक्षाका मुख्य उद्देश्य शासनसत्ता-सम्बन्धी विज्ञानका प्रचार था, इसलिए जो शिष्य प्रबन्ध-शक्ति और वक्तृत्व-कलामें विशेष निपुणता प्रदर्शित करता, वह कनफ्यूशियसका प्रीति-भाजन हो जाता था । उनके शिष्य-वर्गमें अनेक सम्पन्न शिष्य थे ; पर उनका व्यवहार सम्पन्न और निर्धन छात्रोंसे समानताका ही रहता था ।

कनफ्यूशियसका व्यक्तिगत जीवन स्वयं शिष्योंके लिए आदर्श था । उसके शिष्य रेशमकी जगह दूसरे किस्मके कपड़े पहननेका कारण पूछते, तो वह कहता कि इससे 'कीड़ोंकी हत्या' होती है । एक बार उसके शिष्योंने उसके दूध न पीनेका कारण पूछा ; कनफ्यूशियसने उत्तर दिया—“अपने सुखके लिए बछड़ेको उसकी मासे अलग करना अन्याय है, अनीति है ।” उसको इस बातका अभिमान था कि अपने जीवनमें मछली मारनेके लिए उसने कभी जाल नहीं उठाया और न किसी उड़ते हुए पक्षीपर तीर ही छोड़ा ।

कनफ्यूशियस और लुट्जे

गुरुके रूपमें कनफ्यूशियस एक सफल व्यक्ति था ; किन्तु उस कार्यको वह अपने जीवनका इति-कर्तव्य नहीं समझता था । शासनसत्ता-सम्बन्धी सिद्धान्तोंके प्रति उसका इतना गहरा स्नेह था कि वह अपने विचारोंकी व्यावहारिकता प्रदर्शित करनेके लिए गवर्नमेण्टके किसी उच्च पदका उत्सुक था । उसी समय कनफ्यूशियसकी ८४ वर्षके एक वृद्धसे मुलाकात हुई । उसका नाम लुट्जे था । लुट्जे अपनी प्रतिभा और मेधाके लिए

प्रख्यात था । कनफ्यूशियसने सुन रखा था कि लुट्जेका अलौकिक धर्ममें विश्वास नहीं । उसका लुट्जेसे मिलनेका मुख्य हेतु यही था । लुट्जेके यत्किंचित् विचार जाननेके लिए इस समय एक ही ग्रन्थ प्राप्य है—‘टा-टेह-किंग’ । ‘टा-टेह-किंग’का ठीक अनुवाद तो सम्भव नहीं ; किन्तु भावार्थ इस प्रकार व्यक्त कर सकते हैं—‘नीति-मार्गकी पुस्तक’ अथवा ‘तर्क व नीतिशास्त्र’ । ‘टा-टेह-किंग’ विशुद्ध रूपमें सदाचारके नियमोंका संग्रह-मात्र है । उसमें न तो दैवीय सत्ताओंका प्रतिपादन है और न अन्ध-विश्वासका समर्थन । कहते हैं कि मिलते समय लुट्जेने कनफ्यूशियसकी भर्त्सना करते हुए कहा—“महान पुरुष तो अपने महत्त्वको छिपानेके लिए प्रकटमें मूर्खता धारण किया करते हैं, और तुम्हारा आचरण इससे सर्वथा विपरीत है । तुम यदि अब पदार्थोंका मूल तत्त्व जानना चाहते हो, तो ‘टा’ को हृदयंगम करो और इस ‘टा’ की उपलब्धिका एकमात्र उपाय ‘हृदयको खाली करना’ ही है ।” लौटते हुए कनफ्यूशियसने रास्तेमें अपने शिष्योंसे कहा—“मैं जानता हूँ कि पक्षी कैसे उड़ते हैं, मछलियाँ कैसे तैरती हैं और प्राणी कैसे भागते हैं । लेकिन एक राक्षस है ; मैं नहीं जानता कि हवापर सवार होकर वह बादल और आकाशमें किस तरह उड़ता है ? लुट्जेका मैंने साक्षात्कार किया है । उसकी तुलना मैं केवल राक्षस (Dragon) से ही कर सकता हूँ ।” सम्भवतः कनफ्यूशियसने लुट्जेके विचारोंकी ऊँची उड़ाने दिखानेके लिए ऐसा कहा हो ।

दोनोंकी शिक्षाओंमें भेद

लोग कहते हैं कि ‘गुराईके बदले भलाई’ यह सिद्धान्त संसारको ईसाई धर्मकी मौलिक देन है । उन्हें अपना भ्रम दूर करनेके लिए लुट्जेके इस आदेशको—‘जो मेरे हितेच्छु हैं, उनका मैं हितेच्छु हूँ । जो मेरे हितेच्छु नहीं भी हैं, उनका भी मैं हितेच्छु हूँ । इस तरह सर्वतो भद्र-ही-भद्र है ।’ ‘हानि पहुँचानेवालेके प्रति भी उदारता प्रदर्शित करो ।’

लेकिन लुट्ज़ेके इस सिद्धान्तसे कनफ्यूशियस सहमत न था। उसका विश्वास सापेक्षतामें था। उसने कहा—“हानिका प्रतिकार उदारता नहीं, न्याय है।” लुट्ज़े और कनफ्यूशियसकी शिक्षाओंमें मतभेद वैसा ही है; जैसा ईसा और मूसाकी शिक्षाओंमें। मतभेदका कारण है। कनफ्यूशियस समझता था कि व्यक्तिका सदाचार गवर्मेन्टकी नीतिसे उत्कृष्ट न होना चाहिए। यदि स्टेट नियम-भंग करनेवालोंको राजदण्ड न देगा, तो शान्ति और व्यवस्थाकी स्थापना असम्भव हो जायगी। कहना न होगा कि कनफ्यूशियसका सापेक्षवाद मानवीय सहज-प्रवृत्तियोंको देखते हुए देशकी विषम परिस्थितियोंके अधिक अनुकूल था। चीनकी अवस्था कनफ्यूशियसके जन्मके समय बहुत अस्तव्यस्त थी। चारु-राजपरिवारका तेज अपकर्षपर था। वास्तविक शासक सरदार लोग थे, और सामन्त-पद्धतिका हर जगह दौरदौरा था। सरदारोंके परस्पर निरन्तर युद्धोंकी ज्यादातियों और टैक्सोंसे जनता बहुत तंग थी। जनताके कष्टोंका चित्र कनफ्यूशियसके जीवनकी इस घटनासे आँखोंके आगे स्पष्टरूपसे आ जाता है। एक दिन कनफ्यूशियस शिष्यमंडली-सहित ताई (Tai) पर्वतकी एक सड़कपर भ्रमण कर रहा था। इतनेमें उसे किसी स्त्रीके रुदनकी ध्वनि सुनाई दी। कनफ्यूशियसने स्त्रीके समीप पहुँचकर पूछा—“तुम इस निर्जन-प्रदेशमें क्यों विलाप कर रही हो?”

“मेरे पतिके पिताको इस स्थानपर व्याघ्रने मारा था, उसी तरह इसी स्थानपर मेरे पतिको भी और अभी-अभी ठीक उसी तरह मेरे पुत्रको भी व्याघ्रने मारा है।”—स्त्रीने उत्तर दिया।

कनफ्यूशियसने फिर प्रश्न किया—“तो तुम क्यों ऐसे भयानक स्थानमें रहती हो?”

स्त्रीने कहा—“बात यह है कि यहाँ कोई अत्याचारी शासक नहीं है।”

कनफ्यूशियसने शिष्यमंडलीकी ओर मुँह करके कहा—“शिष्यो! ध्यान दो, अत्याचारमय शासन

व्याघ्रसे भी अधिक भयानक और निकृष्ट है।”

चीनकी इस अवस्थाको सुधारनेका कर्तव्य लुट्ज़े और कनफ्यूशियसपर था; पर सुधारनेके लिए जिन साधनोंका उन्होंने उपयोग किया, वे एक दूसरेसे सर्वथा भिन्न थे। कनफ्यूशियसके सुधारका कार्यक्रम क्रियात्मक था। वृद्ध लुट्ज़े समाजकी अव्यवस्था—विशेषतः जनताकी निर्धनतासे खिन्न तो था; किन्तु वह समाजकी उन उलझी हुई समस्याओंको क्रियात्मक रूपसे हल न कर सका। उसने कहा—“निर्जनता स्वर्गका द्वार है।”

इतना ही नहीं, लुट्ज़े इस बातके लिए भी विशेष उत्सुक न था कि जनताको टा का अभिप्राय समझाया जाय। ‘टा-टेह-किंग’में एक स्थानपर वह कहता है—‘जो टा अवगत हो सके, वह वास्तविक टा नहीं है।’ पर कालवस लुट्ज़ेके प्रवर्तित धर्म टाइज्मका भी स्वरूप विकृत हो गया। चीनके एक सम्राटने, जो टाइज्मका कट्टर अनुयायी था, संजीवनी वूटी ढूँढ़नेके लिए परी-ट्रीपमें जहाज भेजे थे। पहली ईस्वी शताब्दीमें टाइस्ट पोपकी भी स्थापना हो गई। उसी वर्ष एक टाइस्ट नेताने ‘अमरत्वकी गोलियाँ’ बनानेका प्रयत्न किया था। अभी बक्सर-विद्रोहके समय ही एक मज्जेदार घटना घटी थी। ‘टा-टेह-किंग’में एक स्थानपर लुट्ज़ेने आदर्श टाइस्टके सम्बन्धमें लिखा है—‘उसे सेनामें प्रवेश करते हुए अस्त्र-शस्त्रोंका कोई भय नहीं।’ कुछ धर्मान्व टाइस्ट लोगोंने समझा कि संस्थापकके शब्द निर्भ्रान्त हैं, इसलिए विदेशियोंकी गोलियाँका हमपर कोई असर नहीं हो सकता। धर्मान्वतावश वे ईसाइयोंको चीनसे बाहर खदेड़नेको उत्तेजित हो उठे। इसका परिणाम वही हुआ, जो उचित था। टाइज्मकी इस मनोवृत्तिको देखकर एच० सी० दे-बुसीने लिखा था—‘चीनकी भूमिसे जब तक टाइज्मका अमूलोन्मूलन न होगा, तब तक धार्मिक, नैतिक और राजनैतिक उन्नतिकी चीनको आशा न करनी चाहिए।’

वृद्ध, कनफ्यूशियस और लुट्ज़े तीनोंने ही अदृश्य, अमौलिक और अपौरुषेय सत्ताओंसे इनकार किया था;

आश्चर्य है, आज वे तीनों ही ईश्वर-रूपमें पूजित हैं। टाइम लोग तो यहाँ तक विश्वास करने लगे हैं कि लुट्जे ७२ या ८१ वर्ष माताके गर्भमें रहनेके बाद शुभ्रकेशों-सहित उत्पन्न हुआ, इसलिए वे उसको 'वृद्ध दार्शनिक' अथवा 'वृद्ध बच्चा' भी कहते हैं।

लुट्जेकी मुलाकातके बाद कनफ्यूशियस १७ वर्ष और अपनी शिक्षाओंका प्रचार करता रहा। ५० वर्षकी अवस्थामें ५०० ई० पू० वह रियासत 'लू' में मजिस्ट्रेट नियुक्त हुआ। अपने विचारोंको व्यवहारमें प्रयोग करनेका इससे अच्छा अवसर दूसरा कौन था? शीघ्र ही वह रियासतका न्याय-सचिव बना दिया गया। न्याय-सचिव होते ही अपने विचारोंकी क्रियात्मकताके द्वारा उसने सर्वत्र शान्ति और व्यवस्था कायम कर दी। गवर्मेन्टका मुख्य कार्य उससे पूर्व कर-संग्रह समझा जाता था। कनफ्यूशियसने प्रतिवाद करते हुए कहा कि गवर्मेन्टका मुख्य कार्य कर्तव्यपालन करना और कराना है; लेकिन उसको अपने सिद्धान्तोंके सत्य-प्रदर्शनके लिए चार ही वर्ष मिले। रियासत 'चि'के शासकोंने 'लू'की समृद्धिसे चिढ़कर उसके विरुद्ध षड्यन्त्र रचा। वहाँके राजाकी आचार-शिथिलतासे वे भलीभाँति परिचित थे। ८० सुन्दर तरुण युवतियाँ—जो संगीत और नृत्यमें कुशल थीं—'लू'-राज-दरबारको उपहारके रूपमें भेजी गईं। शत्रुओंकी चाल चल गई। राजा कनफ्यूशियसके नियन्त्रणसे बाहर हो गया। पूरे तीन दिन तक कोशिश करनेके बावजूद भी उसकी राजासे मुलाकात न हो सकी। चार वर्षके अनवरत परिश्रमके बाद कनफ्यूशियस जिस सुन्दर भवनका निर्माण कर सका था, वह थोड़ी-सी देरमें उन नाचनेवाली युवतियोंके कटाक्षसे ढह पड़ा। विषयगणचित्त हो, अपने पदसे त्यागपत्र दे, वह किसी योग्य और धार्मिक शासककी खोजमें निकला। १३ वर्ष तक निरन्तर ढूँढ़ते हुए भी वह कर्तकार्य न हो सका; लेकिन उसका दृढ़ विश्वास था कि उत्तम शासनसत्ता ही सब भलाइयोंकी जड़ है। अन्तमें रियासत 'लू'ने उसे तत्त्वज्ञानके अनुसन्धानके

लिए घर वापस बुला लिया। अपनी उम्रके अन्तिम वर्ष ६८ से ७२ तक उसने उसी कार्यमें बिताये।

कनफ्यूशियसको 'चीनकी शिक्षाका पिता' कहा जाता है। उससे पहले भाषा और शैलीकी गहनताके कारण चीनी जनता अपने साहित्यसे अनभिज्ञ थी। उसने उसको सूत्र-रूपसे सरल शब्दोंमें संग्रह करके सबके लिए सुलभ कर दिया। शिक्षाके अतिरिक्त आम जनताके सुधारके लिए उसने अनेक यत्न किये। आत्म-शिक्षणको वह सबसे अधिक आवश्यक समझता था, क्योंकि शिक्षित व्यक्ति ही देशकी वास्तविक शक्ति हैं। ऐसे शिक्षणके लिए धर्मके स्थानपर उसने काव्य, संगीत और धनुर्विद्याको उत्तम साधन माना है। उसका विश्वास था कि काव्य जहाँ असम्भवको सम्भव कर सकता है, वहाँ संगीत उच्च विचारोंका जनक है। स्वयं भी अध्यापन या लिखनेसे पूर्व वह बाँसुरी बजाया करता था। 'लि-कि' में वह लिखता है—'जब कोई संगीतका पूर्ण अध्ययनकर हृदय और मस्तिष्कको नियन्त्रित कर लेता है, तब उसके महान, सरल और गम्भीर हृदयमें आनन्दकी अनुभूति उत्पन्न होती है। आनन्दकी वह दिव्य अनुभूति शान्ति उत्पन्न करती है। इस शाश्वत शान्तिमें ही सच्चा स्वर्ग है।' आत्म-शिक्षणके लिए काव्य और संगीतके साथ धनुर्विद्याका होना कुछ आश्चर्यजनक प्रतीत होता है; पर इसका कारण है। कनफ्यूशियस समझता था कि धनुर्विद्यासे मनुष्य लक्ष्यका अच्छा अभ्यास कर लेता है। आज कनफ्यूशियसका वही आचार-प्रधान धर्म अन्य प्राचीन धर्मोंकी तरह विकृत हो गया है। संस्थापकने जिन विश्वासोंका प्रतिवाद किया था, जिनके प्रति उपेक्षा दिखाई थी, वे ही विश्वास अन्ध-श्रद्धालु और निर्बल प्रकृति शिष्योंने धर्ममें सम्मिलित कर लिये हैं।

कनफ्यूशियस, जोरास्टर, बुद्ध, महावीर, जरमियाह और इजेकील समकालीन थे। वह समय संसारके इतिहासमें धार्मिक विकासकी दृष्टिसे बहुत महत्वपूर्ण है।

(१)

तूने देखी विमल चाँदनी,
देखी ऊषा की लाली,
देखी जगमग ज्योति दिवाकी,
देखी चमचम उजियाली ।
आज अँधेरी रात देखकर
क्यों इतना घबराता है ?

तेरे जीवन - नभमें हरदम
नहीं रहेगी अँधियाली ।
अरे देख, वह पौ फटती है,
होता दिव्य सवेरा है ।
उठ, कवि, उठ, यह देख तमाशा,
मुख मलीन क्यों तेरा है ?

(२)

प्रातः हुआ चिड़िया सब उठकर
मधुर प्रभाती गाती हैं,
दाना चुनने को उड़-उड़कर
दूर देश को जाती हैं ।
नभमें कभी उड़ान, और
शाखाओंपर विश्राम कभी,
संझा होते शोर मचाती
वापस घरको आती हैं ।
दिन-भर करना काम, चैनसे
फिर तो रैन-बसेरा है ।
उठ, कवि, उठ, यह देख तमाशा,
मुख मलीन क्यों तेरा है ?

(३)

खिलती कोमल कली विपिनमें,
मुरझाते उपवन के फूल,
वायु झोंकती है आकर
उन सूखी पंखुड़ियोंपर घूल,
किन्तु सोचकर देख अरे,
क्या वे विल्कुल मिट जाते हैं ?

इस मिटनेमें ही न छिपा है -
क्या नवीन जीवनका मूल ?
जीवनमें ही ज्योति और
जीवनमें विकट अँधेरा है ।
उठ, कवि, उठ, यह देख तमाशा,
मुख मलीन क्यों तेरा है ?

(४)

सुख भी तो दुनियामें ही है,
दुखका ही हरदम क्यों गान ?
दिवा-निशाके बद्ध नियम-सा
ही है जगमें पतनोत्थान ।
अरे ढोल मत पीट विजयपर
और हारपर शीश न धुन,
समझा-समझा अपने मनको
सुख-दुख सबमें एक समान ।
कौतूहलसे देख अरे, यह
कैसा हेरा - फेरा है ।
उठ, कवि, उठ, यह देख तमाशा,
मुख मलीन क्यों तेरा है ?

(५)

आशा और निराशा क्या है ?
यह सब एक तमाशा है,
कभी निराशाका तम घिरता,
कभी चमकती आशा है ।
मनके हारे हार सदा है,
मनके जीते जीत सदा,
मुक्ति और बन्धन यह सब तो
मनकी ही परिभाषा है ।
अपने मनसे क्यों डरता है ?
तू न किसीका चेरा है ।
उठ, कवि, उठ, यह देख तमाशा,
मुख मलीन क्यों तेरा है ?

(६)

विश्व पहेली है ; लेकिन क्या
 उसमें है आनन्द नहीं ?
 आज बँधा जो पड़ा कभी क्या
 होगा वह स्वच्छन्द नहीं ?
 आज तुझे रोनेकी सूफी,
 जितना जी चाहे रो ले,
 किन्तु हँसीका भी दरवाज़ा
 है तेरे हित बन्द नहीं ।
 सुख-दुख आते ही जाते हैं,
 थिर न किसीका डेरा है ।
 उठ, कवि, उठ, यह देख तमाशा,
 मुख मलीन क्यों तेरा है ?

(७)

सपने झूठे ही होते हैं,
 पानेके अरमान न कर,
 जी यदि बहले, यह न कहूँगा,
 “कभी स्वप्नका ध्यान न कर ।”
 अरमानों में किन्तु बन्धु,
 है एक अजब अभिशाप छिपा,
 द्वन्द्वोंको अब छोड़ ; अरे तू
 फँसनेका सामान न कर ।
 अलग खड़ा हो देख नाट्य यह,
 क्या तेरा, क्या मेरा है ?
 उठ, कवि, उठ, यह देख तमाशा,
 मुख मलीन क्यों तेरा है ?

(८)

मान और अपमान हमेशा
 जगमें मिलते रहते हैं ;
 शाप और वरदान हमेशा
 जगमें मिलते रहते हैं ।
 कोई सुजस गीत गाता है,
 कोई हँसी उड़ाता है,

यश - अपयशके पुष्प हमेशा,
 जगमें खिलते रहते हैं ।
 तू क्यों करता सोच ? व्यर्थ ही
 क्यों चिन्ताने घेरा है ?
 उठ, कवि, उठ, यह देख तमाशा,
 मुख मलीन क्यों तेरा है ?

(९)

तेरी है अक्षय विभूति ; क्या
 हो सकता अवसान कभी ?
 चाहे आवे नहीं भले ही
 जगको तेरा ध्यान कभी ?
 थक जाती जब देह तभी
 थपकी दे नींद सुलाती है,
 अरे अमर हैं हम, न यहाँ हैं
 दो दिनके मेहमान कभी ।
 वह विभूति ले छीन, विश्वमें
 ऐसा कौन लुटेरा है ?
 उठ, कवि, उठ, यह देख तमाशा,
 मुख मलीन क्यों तेरा है ?

(१०)

विमल शब्द जब हँस लेती है
 आता क्रूर हिमन्त तभी,
 पतझर झर जाता जब वनमें
 आता सरस वसन्त तभी ।
 जहाँ जन्म है मृत्यु वहीं है,
 जहाँ मृत्यु है जन्म वहीं,
 अरे जीवके जीवनका क्या
 हो सकता चिर-अन्त कभी ?
 कभी विरह है, कभी मिलन है,
 यह अनन्तका फेरा है ।
 उठ, कवि, उठ, यह देख तमाशा,
 मुख मलीन क्यों तेरा है ?

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन

श्री अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी

इधर कई वर्षोंसे हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनपर कांग्रेसका अप्रत्यक्ष प्रभाव था, पर अब दो वर्षोंसे वह कांग्रेसका एक विभाग बना जा रहा है। जबसे प्रसहयोग-आन्दोलन चला है, तबसे सम्मेलनमें वह शक्ति नहीं रही, जो पहले थी और उसके कार्यमें शैथिल्य-सी आ गयी थी। यह देख इस लेखके लेखकने पत्रान्तरमें लिखा था कि सम्मेलनको शुद्ध साहित्यिक लोगोंके हाथमें रखना चाहिए। इसका यह अभिप्राय न था कि राजनीतिज्ञोंसे उसे जो सहायता मिलती हो, उसे वह न ले; बल्कि यह था कि वह राजनीतिक आन्दोलनके प्रवाहमें न बहे। इस बहावसे उसे यथेष्ट हानि हुई है; परन्तु अब तो वह कांग्रेसकी नीतिपर ही चलता दिखाई देता है। यदि कोई अन्य वर्ग कह देता है कि 'शिवाबावनी' साम्प्रदायिकताको उत्तेजन देती है, तो उसका अंग-भंग करनेमें संकोच नहीं किया जाता! यह वह तिनका है, जिससे हवाके रखका पता लगता है।

१९१८ में महात्मा गांधीकी अध्यक्षतामें इन्दौरमें हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनका जो अधिवेशन हुआ था, उसमें राष्ट्र-भाषाके प्रश्नपर अध्यक्षने हिन्दी-भाषी देशके कई विशिष्ट सज्जनोंसे पत्र-व्यवहार किया था। उनमें महमूदाबादके मरहूम महाराजा साहब भी थे। उन्होंने भाषाके विषयमें कहा था कि जो भाषा सर (उस समयके डाक्टर) तेजबहादुर बोलते हैं, वही भाषा देश-भाषा—राष्ट्र-भाषा है। अन्य कई सज्जनोंने समाचारपत्रोंमें लिखी जानेवाली हिन्दीको राष्ट्र-भाषा बताया था। इस प्रकार मतभेद होनेपर अध्यक्ष महोदयने राष्ट्र-भाषा-विषयक कोई निर्णय न कर मद्रास-प्रेसिडेन्सीमें वर्तमान हिन्दीके प्रचारका आयोजन किया, और वहाँ वही भाषा प्रचलित हुई, जिसे हम लिखते-बोलते हैं। यह उस समयकी बात है, जब गांधीजी कांग्रेसके कर्णधार नहीं हुए थे, और उन्होंने लंगोटी नहीं पहन ली थी।

१६ वर्षमें दुनिया कहाँसे कहाँ पहुँच गई। गांधीजीका जो गौरव इस बीचमें हुआ, वह दूसरेको प्राप्त नहीं हुआ। उन्होंने देशमें उथल-पुथल मचा दी। हिन्दू-मुस्लिम-मेलपर वे समय-असमय बराबर जोर देते थे, यद्यपि 'मरज बढ़ता गया, ज्यों-ज्यों दवा की' की उक्ति इस विषयमें चरितार्थ हुई। चूँकि वह महत्माजीका सिद्धान्त है, इसलिए उन्होंने भाषाओं में भी मेलकी दुन्दुभी बजा दी। १९३५ में इन्दौरमें फिर उन्हींकी अध्यक्षतामें सम्मेलन हुआ, और इस बार उन्होंने इस ओर एक कदम और बढ़ाया, और वह इस रूपमें कि राष्ट्र-भाषा-सम्बन्धी प्रस्तावमें ये शब्द बढ़ाये कि 'जो नागरी या उर्दूमें लिखी जाती हो।' ये शब्द यों तो आपत्तिजनक नहीं जान पड़ते, पर 'बुढ़ियाके मरनेका नहीं, यमके परकनेका डर' बताते हैं।

अगले वर्ष अर्थात् सन् १९३६ में नागपुरमें सम्मेलनका जो अधिवेशन हुआ, उसमें स्थिति स्पष्टतर हो गई, क्योंकि यद्यपि हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनके नाममें हिन्दी शब्द बना रहा, तथापि सर्वत्र हिन्दीके साथ 'हिन्दुस्तानी' शब्दका प्रयोग हुआ। नाम न बदलनेके विषयमें गांधीजीने 'हरिजन'में लिखा है कि २५ वर्षकी संस्थाका इस प्रकार नाम बदल देना सम्भव नहीं है। सम्मेलनके अध्यक्ष बाबू राजेन्द्रप्रसादने अपने भाषणमें केवल यही सिद्ध करनेकी चेष्टा की है कि हिन्दीवाले अरबी-फ़ारसी शब्दोंका बहिष्कारकर अक्षम्य अपराध कर रहे हैं। स्वागताध्यक्षने तो सबसे आगे बढ़कर 'उमरा जो कहें रात तो हम चाँद दिखा दें' कहावत चरितार्थ करनेके लिए ही मानो कह दिया है—“आज हिन्दीके लिए नागरी तथा उर्दू दोनोंमें से किसका भारतीय स्थान होगा, यह बात भविष्यपर छोड़ देना ही अधिक हितावह प्रतीत होता है।” यह शुद्ध कांग्रेस-नीति है कि हम स्वीकार नहीं करते और अस्वीकार भी नहीं करते!

यह देशका दुर्भाग्य है कि दास-मनोवृत्तिकी जो

लोग निन्दा करते हैं, वे ही उसे प्रश्रय देते हैं। और विषयोंमें तो अन्ध-भक्तिकी निन्दा होती है। श्रुतिस्मृतिकी आलोचना कड़ी-से-कड़ी की जा सकती है; परन्तु नेताओंके मतपर कोई कुछ बोल नहीं सकता। इटलीमें मुसोलिनी और जर्मनीमें हिटलरने जो राज्याधिकार प्राप्त कर लिया है, वह यहाँ 'अहिंसा और शान्तिपूर्वक' हो गया है! एक तो ऐसा आतंक छाया हुआ है कि नेताओंके सम्बन्धमें किसीको कुछ कहनेका साहस नहीं होता। दूसरे समाचारपत्र अधिकतर एक पक्षी हैं, और इनकी चिल्लाहटके सामने दूसरेकी बात 'नकारखानेमें तूतीकी आवाज़' की तरह सुनाई नहीं देती। तीसरे यदि कोई कुछ कहना चाहे, तो उक्त समाचारपत्र उसे छापते तक नहीं। यही कारण है कि हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन जैसी संस्थाके विषयमें जैसी लिखा-पढ़ी होनी चाहिए, नहीं देखी जाती। और तो क्या बाबू राजेन्द्रप्रसादजीके भाषणपर हिन्दी-साहित्यके किसी मर्मज्ञका लेख तक नहीं निकला।

राजेन्द्र बाबूका आदर जितना और लोग करते हैं, हमारे हृदयमें उससे कम नहीं है, और यही कारण है कि उनके भाषणके जिन अंशोंसे हमारा मतभेद है, उनपर कुछ लिख देना उचित समझते हैं। यह सच है कि हमारी नागरी-भाषाका हिन्दी नामकरण मुसलमानोंने किया है और अरबी, फ़ारसी, तुर्की आदि विदेशी भाषाओंका अनेक रूपोंसे उसपर प्रभाव पड़ा है। यह भी माननेकी बात है कि विदेशी शब्दोंका बहिष्कार और संस्कृतके अप्रचलित शब्दोंकी भरमार वांछनीय नहीं है। इसमें भी बहुत कम लोगोंका मतभेद होगा कि हमें शब्दोंका भाण्डार बढ़ाना चाहिए, घटाना नहीं। पारिभाषिक शब्द गढ़ना आवश्यक है; पर दीपमन्दिर, मुखमार्जनवस्त्रखंड और पादावरण जैसे शब्द नहीं, जिनका अर्थ जाननेके लिए सृष्टिकर्ताकी शरण लेनी पड़े।

परन्तु इसके आगे जो व्यवस्था आपने हिन्दी-उर्दूकी खाईको चौड़ी न करने और ग्राम-भाषाओंके

शब्दोंका भी नागरी भाषामें समावेश करनेके विषयमें दी है, उससे हमारा मतभेद है। पहली बात तो यह है कि हिन्दी, उर्दू और ग्राम-भाषाओंका सामंजस्य असम्भव-सा है। हिन्दी राष्ट्र-भाषा अपने गुणोंके कारण है, किसीकी कृपाके कारण नहीं। हिन्दुओंकी तो सामान्य भाषा यह है ही, क्योंकि अधिकतर तीर्थ और पुरियाँ हिन्दीके क्षेत्रमें हैं। पुरी जैसे तीर्थ-स्थानोंकी सामान्य भाषा हिन्दी ही है। भिन्न-भिन्न भाषाओंके बोलनेवाले जब दो मनुष्य आपसमें बातें करते हैं और अंगरेज़ी नहीं जानते, तब हिन्दीमें ही बोलते हैं। डा० सुनीतिकुमार चटर्जीने तो कैटन और शंघाईके दो चीनियोंका झगड़ा हिन्दी द्वारा ही निपटाया था, क्योंकि कैटनकी भाषा शंघाईवालेकी समझमें नहीं आती थी। इसके साथ ही उर्दूके साथ भी उसका सम्बन्ध है, जिस लिए पढ़े-लिखे मुसलमानोंको छोड़कर वह हिन्दू-मुसलमान सबकी भाषा है। हिन्दी और उर्दूकी खाई चौड़ी करनेका दोष हिन्दीवालोंपर नहीं लगाया जा सकता, क्योंकि उर्दूवाले हिन्दी शब्दोंका बहिष्कार बहुत ज़मानेसे कर रहे हैं। मौलाना हालीने अपने दीवानके मुकदमेमें लिखा है—

“जब दिल्ली विगड़ चुकी और लखनऊसे ज़माना मुवाफ़िक़ हुआ और दिल्लीके अकसर शरीफ़ ख़ानदान और एक-आधके सिवा तमाम नामवर शोरा (कवि) लखनऊ ही में जा रहे और दौलत व सरवतके (सम्पत्तिके) साथ उलूम क़दीमाने (प्राचीन विद्याओं) ने भी एक ख़ास हद तक तरक्की की, उस वक्त नेचरल तौरपर अहले-लखनऊको यह ख़याल पैदा हुआ होगा कि जिस तरह दौलत और मन्तिक़ व फ़िलसफ़ा (तर्क और दर्शन) वग़ैरामें हमें फ़ौक़ियत (महत्ता) हासिल है, इसी तरह ज़बान और लवो-लहज़ेमें (उच्चारण और टोनमें) भी हम दिल्लीसे फ़ायज़ हैं, लेकिन ज़बानमें फ़ौक़ियत साबित करनेके लिए ज़रूर था कि अपनी और दिल्लीकी ज़बानमें कोई अमर माव-उल-इम्तियाज़ (भेदसूचक बात) पैदा करते, चूँकि मन्तिक़

व फ़िलसफ़ा व तिन (चिकित्सा-शास्त्र) व इल्मे-कलाम (वाक्यमीमांसा) वगैराकी मुमारसत (योग्यता अभ्यास) ज्यादा थी, खुद-बखुद तबीअतें इस बातकी मुक़तज़ी हुई (चाहने लगीं) कि बोल-चालमें हिन्दी अल्फ़ाज़ रफ़्ता-रफ़्ता तर्क और उनकी जगह अरबी अल्फ़ाज़ कसरतसे दाख़िल होने लगे, यहाँ तक कि सीधी-सादी उर्दू उमरा अहले-इल्मकी (विद्वानोंकी) सोसाइटीमें मतरूक (निषिद्ध) ही नहीं हो गई, बल्कि जैसा सक्तातसे (मौतविर लोगोसे) सुना गया है, मायूब (दूषित समाज) और बाज़ारियोंकी गुफ़्तगू समझी जाने लगी और यही रंग रफ़्ता-रफ़्ता नज्म (पद्य) और नसर (गद्य) पर ग़ालिब आ गया । नज्ममें 'जुरअत' और नासिख़के दीवानका और नसरमें 'बाग़ोबहार' और 'फ़िसाने अजायब' का मुकाबिला करनेसे इसका काफ़ी सवूत मिलता है ।”

मौलाना अब्दुल हक़ साहब क्या कहते हैं, वह भी सुन लीजिए :—

“बादमें ऐसे अदीब (साहित्यिक) और शाइर (कवि) आये, जो मये-शीराज़के (फ़ारसी) के मतवाले थे । इन्हें जो चीज़ें अजनबी और ग़ैर-मानूस और अपने ज़ौक़के (रुचिके) खिलाफ़ नज़र आईं, वह उन्होंने चुन-चुनकर फेंक दीं और बजाय हिन्दीके फ़ारसी अन्सर (अंश) ग़ालिब आ गया । इसमें वली और उसके हमअसर भी एक हद तक क़ाबिले-इल्ज़ाम हैं ।....इस ज़मानेमें मौलवी हाली एक ऐसे शाइर हुए हैं, जिन्होंने उर्दूमें हिन्दीकी चाशनी देकर कलाममें शीरीनी पैदा कर दी है, मगर हमअसर (समकालीन) शोअरामें (कवियोंमें) इसकी कुछ क़दर न हुई ।”

ये दो अवतरण यह सिद्ध करनेके लिए यथेष्ट हैं कि उर्दूवालोंने पहले हिन्दी शब्दोंका बायकाट शुरू किया, और आजसे नहीं, दिल्ली उजड़ने और लखनऊ आबाद होनेके पहलेसे ही । वलीको लोग 'बाबाए रेख़्ता' कहते हैं । इससे जान पड़ता है कि उर्दूकी

स्वतन्त्र कविताके समयसे इसका आरम्भ हुआ था, और खाई भरनेवाले मौलाना हालीके प्रयत्नोंकी प्रशंसा तक न हुई । हम हरिऔधजीके 'प्रिय प्रवास' की भाषाके पक्षपाती नहीं हैं ; पर जो खाई दूसरी ओरसे बराबर चौड़ी की जा रही हो, उसे अपनी ओरसे भरनेकी चेष्टा 'अन्धेके रस्सी बटने और बछड़ेके उसे चवाने' के समान ही है । राजेन्द्र बाबू यदि कुछ कर सकें, तो उन्हें उर्दूवालोंको समझाना चाहिए । नहीं तो उनका यह उपदेश अरग़थ-रोदन होगा । इस विषयमें उर्दूवाले दोषी हैं या हिन्दीवाले, इसके लिए 'आवे-हयात' पढ़ लेनेसे राजेन्द्र बाबूको वस्तु-स्थितिका ज्ञान हो जायगा ।

अब ग्राम-भाषाओंके सम्बन्धमें कुछ लिखकर यह विषय समाप्त किया जायगा । नागरी भाषाके शब्दोंके प्रति उर्दूवालोंका जैसा व्यवहार है, उसके देखते यह हर कोई सहजमें ही समझ सकता है कि ग्राम्य शब्दोंपर वे कितनी नाक-भों सिकोड़ेंगे । इससे हिन्दी-उर्दूकी खाई, जिसे भरनेके लिए आपका यह प्रयत्न है, सकरी होनेके बदले और चौड़ी न हो जायगी, यह कौन कह सकता है ?

‘दोउ काज नहीं संग भुआलू ,

हँसब ठठाय फ़ुलाउब ग़ालू ।’

इसके साथ ही आप संस्कृत शब्द भी बढ़ाना चाहते हैं, क्योंकि हिन्दीको उन प्रदेशोंमें ले जाना है, जिनकी वह भाषा नहीं है, और यह काम बिना संस्कृतबहुल शब्दोंके सम्भव नहीं है । आपके काका कालेलकर जवाहरलालजीकी भाषासे घबराते हैं । हम उनसे कहते हैं—

‘इन्तिदाए इश्क़ है रोता है क्या ?

आगे-आगे देख तो होता है क्या ।”

अब भाषणके उस अंशपर विचार करना है, जिसका सम्बन्ध व्याकरणसे है । हमारी समझमें यह बात बिलकुल नहीं आती कि व्याकरणपर लोगोंका इतना कोप क्यों है । व्याकरण भाषाके पीछे चलता है, आगे नहीं । ‘प्रयोगशरणा वैयाकरणाः’ प्रसिद्ध है । यही नहीं, आपको इसके उदाहरण भी मिल सकते हैं । ‘मुझे रोटी खानी होगी’ यह प्रयोग व्याकरण-सम्मत है ।

परन्तु युक्त-प्रदेशके लखनऊ, कानपुर आदि स्थानोंमें 'मुझे रोटी खाना होगी' लिखते और बोलते हैं। व्याकरण उनके आड़े नहीं आता। वह इस प्रयोगको 'अभिने चापों' की तरह शुद्ध सिद्ध कर देता है। दूसरा प्रयोग है—'राधा बोली, हम आते हैं।' व्याकरणके अनुसार स्त्रीलिंग शब्दकी क्रिया पुल्लिंग नहीं हो सकती, पर व्याकरण तो किसीको जबरदस्ती 'हम आती हैं' कहनेके लिए लाचार नहीं कर सकता। इसके लिए भी उसे कोई नियम बनाना पड़ा है। दिल्लीकी तरफ लोग 'सुनहरी मौका' लिखते और बोलते हैं, जो व्याकरणके अनुसार 'सुनहरा' होना चाहिए। आजकल एक पंजाबी प्रयोग हिन्दी-उर्दूमें इतने घड़लेसे चल रहा है कि दोनोंके जानकार उसे अशुद्ध बताते हैं, परन्तु रोक कोई नहीं सकता। वह है 'मुझे क्यों बुलाया गया?' होना चाहिए 'मैं क्यों बुलाया गया?' और भी कितने ही प्रयोग चलते हैं, जिनपर व्याकरण सिवा स्वाद बना देनेके और कुछ नहीं करता। फिर भी उसकी उस पत्ती-सी गति है, जो कहता है—

“वनमाँ रहों पात विनि खाँव । ना काहूके आवों जाँव ।
तामें लोग लगावें खोरी । कहौ आँखि हम केहिकी फोरी ।”

राजेन्द्र बाबूने 'ने' के प्रयोगकी जो कठिनाई बताई है, वह हमारी समझमें नहीं आई। उन्होंने हिन्दीके एक विद्वान—शायद स्वर्गीय पं० गोविन्दनारायण मिश्र—का एक वाक्य उद्धृत किया है, जिसका आवश्यक अंश है—“इस विद्याकी जैसी उन्नति हमारे प्रातःस्मरणीय भारतीय विद्वानोंने अति प्राचीन कालसे की हुई है।” अवश्य ही हमारी दृष्टिसे इसमें 'हुई' फालतू है, और इसके बिना वाक्यके अर्थमें कोई गड़बड़ी नहीं हो सकती थी। परन्तु यह प्रयोग भी पंजाबी ही है। शम्स-उल-उलमा मौलाना मुहम्मद हुसेन साहब 'आज़ाद' मरहूमने अपने 'आवे-हयात' में एक जगह ऐसा ही प्रयोग किया है। वह अवतरण है—“वरखिलाफ़ शोराए फ़ारसके कि (इसके विरुद्ध फ़ारसके कविजन) यह जिस शैका (वस्तुका) जिफ़

करते हैं, साफ़ उसीकी बुराई-भलाई दिखाते, बल्कि मुशावा (सदृश) एक और शै, जिसे 'हमने अपनी जगह अच्छा या बुरा समझा हुआ है', उसके लवाज़मातको (आवश्यक अंगोंको) शै. अव्वलपर लगाकर इनका बयान करते हैं।” मौलाना साहब मौसूफ़ लाहौरके गवर्नमेन्ट ओरियन्टल कालेजके प्रोफ़ेसर थे और शाइर भी अच्छे थे। पंजाबियोंके संसर्गसे उन्होंने ऐसा प्रयोग किया, तो क्या आश्चर्य है! 'ने' का प्रयोग उठानेके पक्षपाती वे सभी लोग हैं, जिनकी भाषामें कर्मणि प्रयोग नहीं है। उड़िया, बंगाली, आन्ध्र और थोड़े बहुत विहारी भी श्री गोपबन्धु चौधरीको ही वोट देंगे, इसमें सन्देह नहीं।

इसके बादकी कठिनाई, जो राजेन्द्र बाबूने बताई है, वह उन लोगोंकी है, जो भाषा सीखना नहीं चाहते और 'नाच न आवे आँगन टेढ़ा' कहावत चरितार्थ करते हैं। जो लोग कर्त्तरि प्रयोग और कर्मणि प्रयोगके साधारण नियम भी ध्यानसे नहीं पढ़ते और भाषाके आचार्य बनना चाहते हैं, उनकी कठिनाइयाँ कौन दूर कर सकता है? जब कर्ता 'ने' युक्त होता है और कर्म 'को' युक्त नहीं होता, तब क्रियाका लिंगवचन कर्मके लिंगवचनके अनुसार होता है, यह तो किसी स्कूलका विद्यार्थी भी जानता है। पं० ज्वालादत्त शर्माके 'उन्होंने पहले तो हाँ-हूँ की' 'वाक्यमें 'हाँ, हूँ' ही स्त्रीलिंग है। 'हाँ, नहीं' जैसे शब्द स्त्रीलिंग होते हैं। हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनके समापतिको आलोचना द्वारा व्याकरणकी बातें बताना एक प्रकारकी घृष्टता है; परन्तु कर्तव्यका अनुरोध है कि उनके भाषणसे अज्ञों वा अल्पज्ञोंमें जो भ्रम फैला हो वा जिस भ्रमके फैलनेकी आशंका हो, वह दूर कर दिया जाय। जान पड़ता है, राजेन्द्र बाबूने किसीके कहनेपर ऐसी बातोंको अपने भाषणमें स्थान दिया है, जिनके विषयमें शंका करना उन्हें शोभा नहीं देता। जैसे, 'आठ ऊँट आये' और 'आठ ऊँटोंको वह साथ लाया।' इस विषयमें राजेन्द्र बाबूने ऐसी बात कही है, जो

बहुत सामान्य है। जो लोग शब्द साधना जानते हैं, वे फट कह देंगे कि पहली विभक्तिमें ऊँट शब्दका बहुवचन ऊँट ही होता है और अन्य विभक्तियोंमें को, ने, से, में जैसे चिह्न जोड़नेके पहले बहुवचनमें 'ऊँटों' कर देते हैं। इसके बिना अन्य विभक्तियोंमें बहुवचनत्व नहीं आता। व्याकरणके नियम बिना ध्यान दिये पढ़नेसे उनका 'समझना और शुद्ध व्यवहार करना कठिन होता है।'

हिन्दीमें लिंग-विचारमें अवश्य ही कुछ कठिनाई है, जो दो ही लिंगोंके कारण होती है। सब देजान चीजें किसी-न-किसी लिंगमें रखनी पड़ेंगी। हमारे एक अंगरेज विद्यार्थीने हमें बताया था कि जर्मन भाषामें भी दो ही लिंग हैं, इसलिए एक ही शब्दको कोई पुल्लिंग और कोई स्त्रीलिंग बोल जाता है। उर्दू कवि सौदा और नासिख लखनवीने तुलबुलको पुल्लिंगमें भी, भूलसे ही क्यों न हो, लिखा है। देजान चीजोंके लिंगमें यदि लोग भूल कर दें, 'दही गिरा' न कह 'दही गिरी' बोल जायँ, तो वह क्षान्तव्य है; पर जब हाथी जैसे बड़े पशुका, जिसका स्त्रीलिंग हथिनी मौजूद हो, वे स्त्रीलिंगमें प्रयोग कर 'हाथी आयी' कहें, तो इसका क्या उपाय है? राजेन्द्र बाबू कहते हैं, "लिखनेवाले, विशेषकर समाचारपत्रोंके सम्पादक, जिसको चाहे स्त्रीलिंग अथवा पुल्लिंग बना देते हैं। कुनैन, लालटेन, मोटर, कांग्रेस कानफरेंस शब्द क्यों स्त्रीलिंग बना दिये गये?" लिखनेवालों और सम्पादकोंका इतना दोष नहीं है, जितनेके दोषी वे बनाये जाते हैं। शब्दोंका लिंग-निर्णय करनेका काम बोलनेवालोंका है, और वे ही जिस शब्दको जिस लिंगमें बोलते हैं, लेखक और सम्पादक भी उसी लिंगमें उसे लिखते हैं; परन्तु नये शब्दका लिंग-निर्णय उन्हें बहुधा आप करना पड़ता है। कुनैन आदिके स्त्रीलिंगीकरणके विषयमें 'लोकम् पृच्छ' ही समीचीन उत्तर है। कई शब्द ऐसे भी हैं, जो एक स्थानमें पुल्लिंग और दूसरेमें स्त्रीलिंग हैं। इसलिए वैयाकरणोंने उभयलिंगी शब्दोंमें उन्हें डाल दिया है।

घबरानेसे अथवा किसीको दोष देनेसे प्रश्न हल नहीं हो सकता, उसका रास्ता निकालना चाहिए और उभयलिंग अनेक शब्दोंको बनानेसे यह काम बन जाता है।

राजेन्द्र बाबूकी यह बात हम मानते हैं कि एक शब्द एक ही प्रकारसे लिखा जाय, यद्यपि हम यह जानते हैं कि उर्दूमें भी कभी-कभी एक शब्द दो प्रकारसे, जैसे सभी और सबी, धोखा और धोका, दूध और दूद, लिखा जाता है। इसके साथ ही यह भी निश्चय हो जाना चाहिए कि विभक्ति-प्रत्यय शब्दोंके साथ मिलाकर लिखे जायँ वा उनसे अलग। इसमें दो मत नहीं, तीन मत हैं। एक मिलाकर लिखता है, तो दूसरा अलग तथा तीसरा संज्ञा शब्दोंसे तो विभक्ति-प्रत्यय अलग रखता है; पर सर्वनामोंमें मिला देता है। भारतकी सभी भाषाओंमें विभक्ति-प्रत्यय मिलाकर लिखे जाते हैं; पर हिन्दी इस विषयमें सबसे निराली है। यही नहीं, उसमें शब्द और प्रत्ययके बीचमें एक कामा भी लगा दिया जाता है!

राजेन्द्र बाबूकी जिन बातोंसे हमारा मतभेद था, उन्हें बताकर हम यह कह देना चाहते हैं कि हम हिन्दुस्तानीके विरोधी नहीं हैं; पर आपका यह प्रयत्न बालूसे तेल निकालनेके समान है। आप जिस भाषाकी सृष्टि करना चाहते हैं, वह न हिन्दी होगी और न उर्दू। हिन्दीवाले संस्कृतकी सहायतासे और उर्दूवाले अरबीकी मददसे पारिभाषिक शब्द बनावेंगे। जिन लोगोंमें प्रचार करना होगा, उनकी समझमें आने-योग्य भाषाका वे प्रयोग करेंगे। राजा शिवप्रसादने अपने हिन्दी व्याकरणमें क्या संस्कृतके पारिभाषिक शब्द नहीं रखे? यदि राजेन्द्र बाबूको हिन्दुस्तानीकी कुछ लगन है, तो उन्हें फ्रैलनकी हिन्दुस्तानी-इंग्लिश डिक्शनरीका नया संस्करण अकारादि क्रमसे कराना चाहिए। यह आजकल अप्राप्य-सी हो रही है। इसीके साथ एक फ्रैलनकी डिक्शनरी कहावतोंकी भी है। इसका भी जीर्णोद्धार होना चाहिए।

डा० रोलिया और उनकी धूपशाला

श्री एस० एन० सिंह

आज स्विट्ज़रलैण्डका लेजो शहर संसारमें यद्धमाकी चिकित्साका एक प्रसिद्ध केन्द्र बन रहा है, और इसे बनानेका अधिकांश श्रेय डा० आगस्टा रोलियाको है।

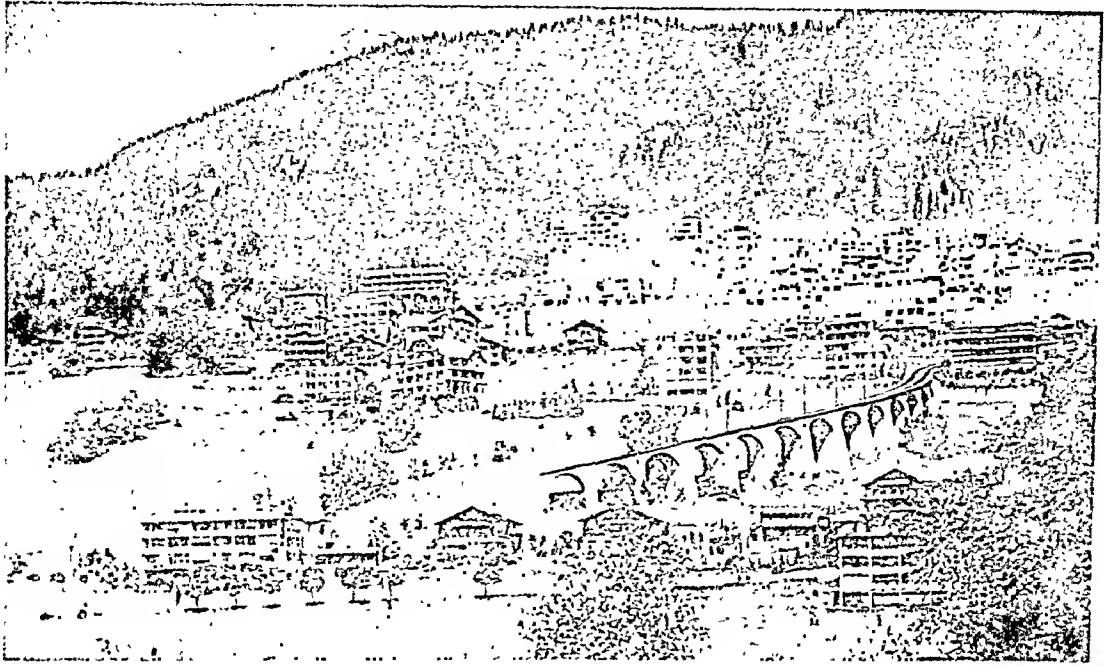
स्विट्ज़रलैण्ड सारे संसारमें अपने प्राकृतिक सौन्दर्यके लिए प्रसिद्ध है। समूचा देश पहाड़ी है। ऊँचे-नीचे पहाड़ोंके बीच-बीचमें समतल भूमिके छोटे-बड़े टुकड़े हैं, जिनमें जगह-जगहपर छोटी-छोटी नदियाँ, पहाड़ी चश्मे और खूबसूरत भीलें नगोंकी तरह जड़ी हैं। पहाड़ नंगे-बुचे नहीं हैं—कम ऊँचे पहाड़ चीड़के शानदार पेड़ोंसे लदे हैं, तो ऊँचे पहाड़ बर्फ़ीली चोटियोंसे भूषित हैं। प्रकृतिके इन सब खेलोंने ही इस छोटे मुल्कको पृथिवीका सौन्दर्य-निकेतन बना दिया है। जहाँ स्विट्ज़रलैण्डकी ज़मीन ऐसी चित्र-विचित्र है, वहाँ उसकी आवहवा भी स्वास्थ्यकर है। इसीलिए दुनियाके कोने-कोनेके यात्री यहाँ प्रकृतिका आनन्द लूटनेके लिए आते हैं। यात्रियोंकी बहुत अधिक आमद-रफ्तसे स्विट्ज़रलैण्डवालोंका एक बहुत बड़ा रोज़गार होटल चलाना और यात्रियोंकी ज़रूरतें पूरी करना बन गया है।

आल्प्स पर्वतमालाके बडोया अंशमें लेजो एक ग्राम है। यह ग्राम बहुत पुराना है। तेरहवीं सदीके इतिहासमें भी इसका उल्लेख मिलता है। टूर द' आई (Tour d' Ai) नामक पहाड़के क्रमशः ढालू भागमें लेजो बसा हुआ है। इसकी ऊँचाई समुद्रतलसे ५००० फीट है। यह स्थान दो भागोंमें विभक्त है। ऊपरी भाग फेडे कहलाता है और निचला भाग लेजो। पहाड़के दक्षिणी भागमें बसा होनेके कारण उत्तरकी अत्यन्त ठंडी हवाएँ यहाँ नहीं आती। इसलिए लेजोकी आवहवा हमेशा बहुत अच्छी बनी रहती है।

लेजोके दक्षिण और पश्चिममें रोन नदीकी विस्तृत उपत्यका है, जिसके वाद ही डेन्ट डू मिडी, माउन्ट

व्लाँ आदि पर्वतमालाएँ वृत्ताकार खड़ी हैं। इस उपत्यकासे रोन नदी बहती है। उपत्यका लेजोसे चार हजार फीट नीचे है। लेजोसे इस उपत्यकाका दृश्य अत्यन्त मनोरम दीख पड़ता है—कुछ वैसा ही, जैसा मसूरीसे देहरादूनका। रातमें जब उपत्यकाके अनेक ग्रामोंमें बिजलीकी रोशनी होती है, तो यही मालूम होता है, मानो उपत्यका-भरमें जगह-जगह प्रज्वलित नक्षत्र उग आये हों। वह दृश्य इतना सुन्दर होता है कि उसकी कल्पना भी दुस्तर है। एक ओर बर्फ़ीले पहाड़ और दूसरी ओर सुन्दर उपत्यका—इन दोनोंने लेजोकी खूबसूरतीमें चार चाँद लगा दिये हैं। लेजोके आसपास अनेक समतल स्थान और चरागाह हैं। वसन्तमें ये सब स्थान फूलोंसे भर जाते हैं।

अपने मनोरम प्राकृतिक दृश्यों और अत्यन्त स्वास्थ्यकर आवहवाके लिए यह ग्राम बहुत दिनोंसे प्रसिद्ध है। इन्हीं दोनों बातोंके कारण अनेक यात्री भी इस ग्रामकी ओर आकर्षित होते थे; लेकिन एक तो यहाँ आना-जाना मुश्किल था, दूसरे यात्रियोंके रहनेके योग्य स्थानोंकी कमी भी थी, इसलिए पुराने ज़मानेमें यहाँ थोड़े ही यात्री आ पाते थे। पचास वर्ष पहले भी कभी-कभी कोई-कोई डाक्टर अपने रोगीको आवहवा बदलनेके लिए लेजो जानेकी सलाह देते थे। यहाँकी आवहवामें रोगीको दूर करने और स्वास्थ्य सुधारनेकी अद्भुत शक्ति है। दो-चार यद्धमाके रोगी भी यहाँ आये, और उन्हें जल्द आराम मालूम पड़ने लगा, इसलिए धीरे-धीरे डाक्टरोंका ध्यान इसकी ओर आकर्षित हुआ। वैज्ञानिक परीक्षाके द्वारा ज्ञात हुआ कि यहाँकी आवहवामें बड़ी विचित्र संजीवनी-शक्ति है। यह तथ्य ज्ञात होनेपर चारों ओरसे रोगी यहाँ आने लगे। रोगियोंके लिए स्वास्थ्यशाला—



लेजों नगरका पश्चिमी भाग

सेनेटेरियम—बनानेके लिए यहाँ 'ला सोसियेटे क्लीमेटेरिक दू लेजों' (La Societe Climaterique de Leysin) नामक संस्था प्रतिष्ठित हुई। इस संस्थाने सन् १८६० में 'ग्रैण्ड होटल सेनेटेरियम' कायम किया। इस स्वास्थ्यशालाके बनते ही इतने रोगी आने लगे कि १८६५ में माँ ब्लॉ (Mont Blane) नामक एक और सेनेटेरियम बनाना पड़ा। इसके बादसे ही लेजोंकी उन्नति बहुत जोरोंसे हुई। सन् १९०० में यहाँ तक बिजलीकी रेल बन गई, जिससे यात्रियोंको आने-जानेका सुमीता हो गया। फिर तो दनादन अनेकों होटल, अतिथिशालाएँ, अस्पताल, क्लीनिक आदि बनने लगे। पचास वर्ष पहले लेजों केवल चार सौ लोगोंकी आबादीका एक छोटा अज्ञात ग्राम था। आजकल वह पाँच हजारकी आबादीका कस्बा है, और उसका नाम संसारके कोने-कोनेमें विख्यात है।

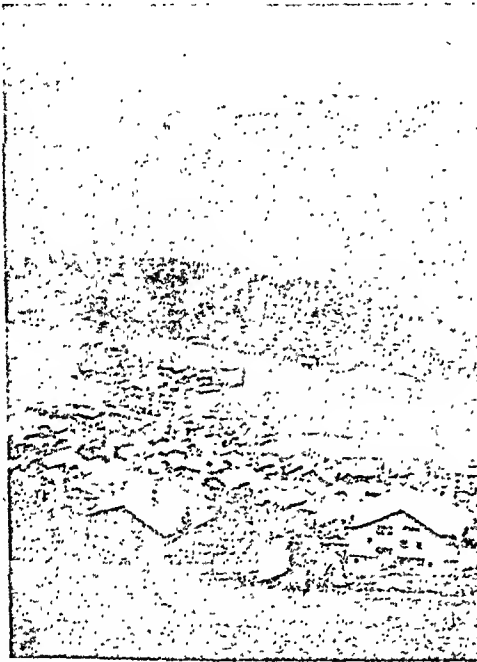
लेजोंकी इस आश्चर्यजनक उन्नतिमें उसकी आव-हवाका हाथ तो है ही, मगर उसकी ख्यातिमें डाक्टर आगस्टा रोलियाका हाथ भी कम नहीं है। डाक्टर

रोलियाका जीवन-वृत्तान्त भी एक कहानी-सा है।

डाक्टर महोदयका जन्म लूजेनके पास नोशातेल नामक स्थानमें हुआ था। बचपनसे ही उनका झुकाव डाक्टरीकी ओर था। स्कूलमें पढ़ते समय उन्होंने देखा कि उनके शरीरके रंगकी अपेक्षा उनके साथ पढ़नेवाले किसान बालकोंके शरीरका रंग कुछ गहरा था। खुली धूपमें रहनेके कारण किसानोंका रंग अपेक्षाकृत काला पड़ जाता है। उन्हें यह भी मालूम था कि इन गरीब किसानोंको बढ़िया भोजन नहीं मिलता, फिर भी उनके शरीर बढ़िया भोजन पानेवाले शहरातियोंकी अपेक्षा अधिक बलिष्ठ होते हैं। वे सोचने लगे कि इसका कारण क्या है। सोचते-सोचते उन्हें ध्यान आया कि यह शायद खुली धूपमें रहनेका प्रभाव है।

इसी बीचमें एक घटना हो गई। रोलियाके कुत्तेकी पीठपर एक फोड़ा हो गया। रोलियाने उसपर नशत्र लगाकर दवा लगाई और वाक्तायदा पट्टी बाँध दी। लेकिन कुत्ता भला उस पट्टीको क्या मानता। थोड़ी ही देर बाद उसने दाँतों और पंजोंसे पट्टी-बट्टी

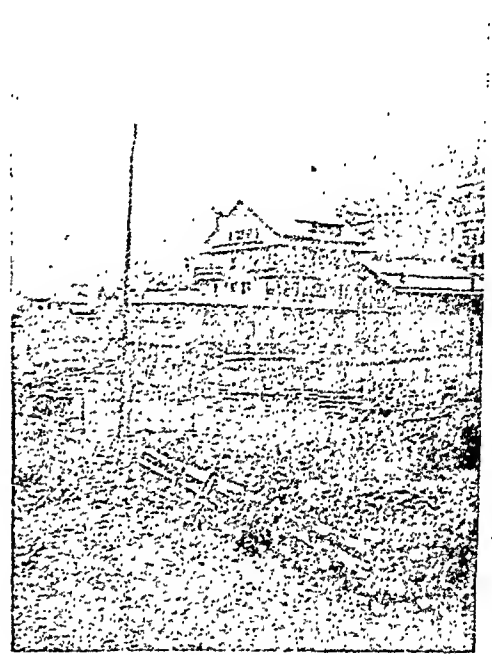
चीर-फाड़कर फेंक दी। रोलियाने फिर बड़ी मेहनतसे पट्टी बाँधी। फिर उसकी वही गत हुई। दूसरे दिन रोलियाने देखा कि कुत्ता धूपमें बैठा हुआ अपने जख्मको धूप दे रहा है। उसके बाद उन्होंने देखा कि बिना मरहम-पट्टीके ही—सिर्फ धूप लगनेसे—धीरे-धीरे जख्म अपने-आप भर रहा है। चार-छै दिनमें घाव अपने-आप अच्छा हो गया।



लेजोंकी वस्तीका एक दृश्य.

स्विट्ज़रलैण्डके प्रसिद्ध सर्जन डाक्टर कोचर डाक्टर रोलियाके गुरु थे। डाक्टर कोचरने आपरेशनके द्वारा अस्त्रोपचार योग्य यक्ष्मा (Surgical Tuberculosis) के इलाजका तरीका निकाला था। उनके इस इलाजसे कुछ रोगी अच्छे भी होते थे और बहुतेरे मर भी जाते थे। बहुतेरे एक ठिकानेका रोग अच्छा होकर दूसरे ठिकाने पैदा हो जाता था और बहुतेरे हमेशाको पंगु हो जाते थे। डाक्टरका एक मित्र सीढ़ीसे गिर पड़ा। चोट लगनेसे उसकी कमरमें यक्ष्मा (Tuberculosis) हो गया। डाक्टर कोचरने आपरेशन करके उसकी कमरका कीटाणुओं द्वारा

खाया हुआ समूचा भाग निकाल फेंका। फलतः रोगीका एक पैर कुछ छोटा पड़ गया। खैर, उसने यही गनीमत समझी कि हमेशाके लिए इस भयंकर रोगसे छुटकारा तो मिला। लेकिन थोड़े ही दिन बाद उसके घुटनेमें रोगके लक्षण दीख पड़ने लगे। डाक्टर कोचरने फिर नशतर चलाया। लेकिन अब दूसरे ठिकाने रोग पैदा हो गया। बेचारे रोगीका



लेजोंकी एक गौशाला

एक-एक अंग करके काटा जाने लगा। अन्तमें बेचारेने आत्म-हत्या करके रोग और जीवन दोनोंसे छुट्टी पाई। बात यह है कि क्षयरोगके कीटाणु सारे शरीरमें फैल जाते हैं। किसी एक स्थानपर जमा होनेसे उस स्थान पर रोगका लक्षण प्रकट होने लगता है। उस स्थानको काट फेंकनेपर कभी-कभी वे दूसरे अंगमें प्रकट होकर वहाँ रोग पैदा कर देते हैं। डाक्टर रोलियाने यह सब देखा।

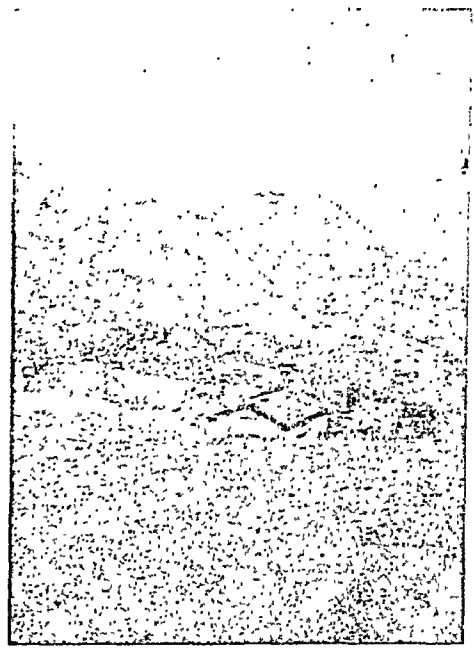
इसके कुछ दिन बाद रोलियाकी वाग्दत्ता प्रेयसीको क्षयरोग हो गया। इसपर युवक रोलिया बड़ी चिन्तामें पड़ गया। जब किसी इलाजसे फायदा न

हुआ, तो उनकी प्रेयसी लेजोंमें आवहवा बदलनेके लिए गई। वहाँकी आवहवामें रहकर धीरे-धीरे उसकी तबीयत अच्छी होने लगी, और आज इस महिलाको देखकर कोई यह नहीं कह सकता कि तीस-पैंतीस वर्ष पहले वह तपेदिककी मरीज थी। रोलियाको ख्याल आया कि हो न हो, यह लेजोंकी सूर्य-किरणोंका प्रताप हैं, जो मरीजको फायदा पहुँचाता है। उन्हें अपने

नहीं करते। गोरे यूरोपियन होनेपर भी धूप खाते-खाते उनके चमड़ेका रंग बहुत-कुछ भारतीयों-जैसा हो गया है। वे इतना काम करते हैं कि देखकर आश्चर्य होता है। लेजोंकी अनेक उपचारशालाएँ—क्लीनिक—उनकी देखरेखमें काम कर रही हैं, जिनमें दुनियाके कोने-कोनेसे रोगी आते हैं। तरह-तरहके स्वभाव, जातियों और भाषाओंके लोगोंसे ऐसे ढंगसे



लेजोंका एक आंशिक दृश्य



पर्वतपर बसा हुआ एक ग्राम

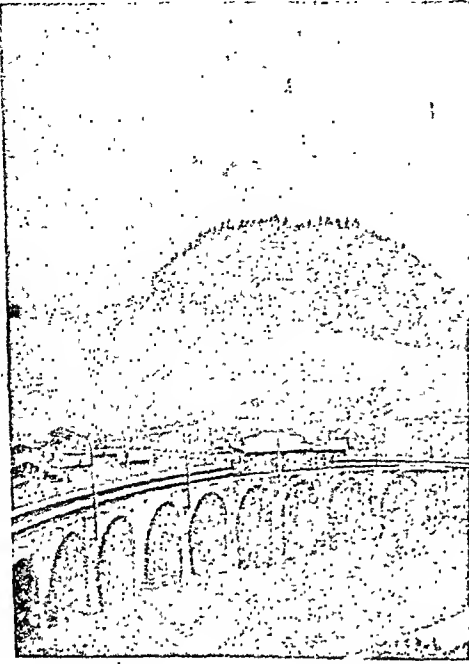
कुत्तेके फोड़ेकी घटना याद आई। फिर यह भी स्मरण आया कि खुली धूपमें रहनेवाले कृषक बालकोंको बहुत कम कोई बीमारी होती है।

इन सब बातोंपर विचार करके रोलियाने धूप-स्नानके द्वारा यक्ष्माका इलाज करनेका तरीका निकाला, जिसमें उन्हें बड़ी सफलता मिली। तीस वर्षसे वे इसका इलाज कर रहे हैं। हजारों मृतप्राय रोगियोंको उन्होंने नया जीवन दिया है।

स्वयं रोलियाको देखकर यह कोई नहीं कह सकता कि उनकी उम्र ६८ की है। वे बिल्कुल जवान दीख पड़ते हैं। वे कभी छाता या टोपी इस्तेमाल

व्यवहार करना कि वे सब रोलियाको अपना ही समझें, डाक्टर साहबकी विशेषता है। उनका चेहरा हमेशा खिला रहता है। कभी किसीने उन्हें गुस्सा होते नहीं देखा। उन्हें देखते ही रोगी प्रसन्न हो जाते हैं। रोगियोंको विश्वास हो जाता है कि रोलिया उन्हें आरोग्य कर ही देंगे। वे सुबहसे काफ़ी रात बीते तक काम किया करते हैं। मुझे रोलियाके साथ रहकर शिक्षा प्राप्त करनेमें गौरव बोध होता है।

रोगियोंको देखनेके अलावा वे नाना प्रकारकी वैज्ञानिक परीक्षाएँ और प्रयोग करते हैं, और लूसेन-विश्वविद्यालयके अवैतनिक अध्यापकके रूपमें छात्रोंको



विजलीकी रेल लेजोंकी ओर जा रही है

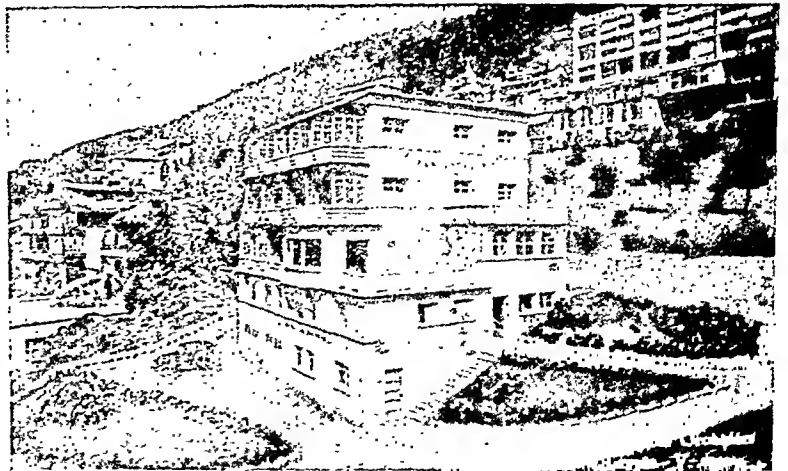
पढ़ाते हैं। इसके सिवा दुनिया-भरके मुल्कोंके डाक्टर उनकी चिकित्सा-प्रणालीका अध्ययन करनेके लिए लेजों आते हैं। रोलिया महाशयको इन सबसे मिलना और उनके प्रश्नोंका उत्तर देना पड़ता है। इन सबको ठीक ढंगसे अपनी बात समझाने-बुझानेके लिए उन्हें अनेक भाषाएँ सीखनी पड़ी हैं। देश-विदेशसे जो चिट्ठियाँ आती हैं, उनका जवाब उन्हें देना पड़ता है। इन सबपर तुरा यह कि वे समय-समयपर लेख और वैज्ञानिक पुस्तकें भी लिखते रहते हैं। सारे संसारमें मशहूर होनेपर भी रोलियामें किसी तरहका बनावटी दिखावा, तड़क-भड़क, शान-शौकत या आडम्बर नहीं है।

डाक्टर रोलिया केवल यक्ष्माके रोगियोंका इलाज करके ही सन्तुष्ट नहीं हुए। उन्होंने सोचा कि इस भयंकर बीमारीको परास्त करनेका

सबसे अच्छा उपाय यह है कि इसे होने ही न दिया जाय। इस उद्देश्यकी पूर्तिके लिए डाक्टर रोलियाने लेजोंमें एक धूप-पाठशाला खोल रखी है।

यक्ष्मा या क्षयरोगके रोकनेका एक ही उपाय है, वह यह कि मानव-शरीरको चट्टानकी तरह मजबूत बना दिया। जिस तरह चट्टानपर कोई पौधा नहीं उग सकता, उसी तरह चट्टान-से सुदृढ़ शरीरमें यक्ष्मा भी नहीं पनप सकता। आधुनिक खोजोंसे यह बात निर्विवाद सिद्ध हो चुकी है कि यक्ष्माकी छूत लड़कपनमें लगा करती है। इसी समयकी लगी हुई छूत फौरन ही अथवा कुछ वर्ष बाद बढ़कर शरीरपर कब्जा जमा लेती है। परीक्षासे जान पड़ा कि लड़कोंमें एक बहुत काफी बड़ा प्रतिशत भाग इस छूतका शिकार होता है। यदि बचपनमें ही लड़के-लड़कियोंका शरीर इतना मजबूत कर दिया जाय, जिसपर यक्ष्माके कीटाणुका वश न चल सके, तो यक्ष्मा अपने-आप ही गायब हो जायगा।

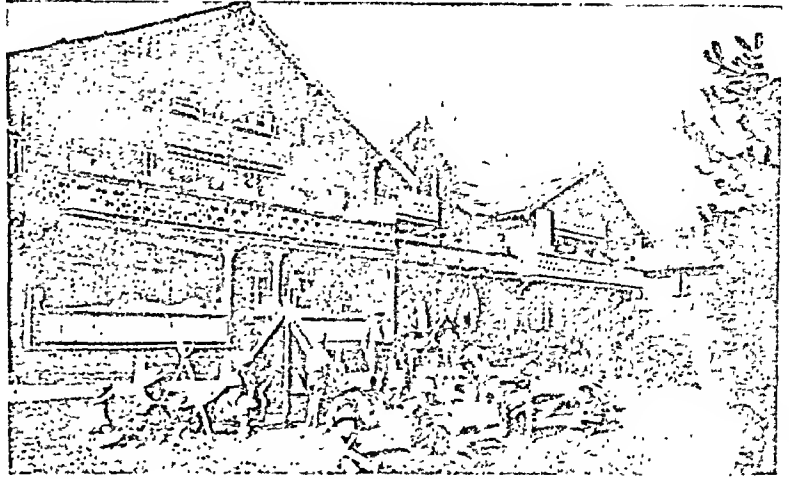
यक्ष्माकी छूत श्वास-मार्गसे शरीरमें प्रवेश करती है। पाचकयन्त्रके द्वारा भी इसकी छूत लगना अनहोनी बात नहीं है। यक्ष्माके कीटाणु सबसे पहले गलेकी गिल्टीमें जाकर रुकते हैं, और वहाँ अड़्डा जमाकर शरीरके विभिन्न भागोंपर हमला करते हैं। उनकी



लेजोंका एक होटल

उन्नति और वृद्धि शरीरकी रोग-
तिरोधक शक्तिपर निर्भर करती है।
यानी शरीर जितना ही दृढ़ होगा,
फोटाणु उतनी ही कम उन्नति कर
सकेंगे। डाक्टर रोलियाका कथन
है—“अनुभवने हमें बताया है कि
बच्चोंमें रोगोंका सामना करनेकी
अधिक-से-अधिक शक्ति उत्पन्न
करनेके सबसे अच्छे साधन हैं
धूप-स्नान और वायु-स्नान, शारीरिक
व्यायाम और उचित पुष्टिकारक
भोजन।” डाक्टर रोलियाको यह
बात कहनेका पूर्ण अधिकार है,

क्योंकि सूर्य-किरणों द्वारा इलाज करनेका उन्हें बीस
वर्ष लम्बा अनुभव है, और उनसे अधिक इस
विषयपर कुछ कहनेका कोई दूसरा व्यक्ति अधिकारी
नहीं है। डाक्टर महोदय कहते हैं—“बच्चोंमें
रोगोंको रोकनेके लिए धूप-स्नानकी शिफारिश हम
शुरूसे ही करते आते हैं। बच्चेकी पैदाइशसे लेकर
उसके स्कूलकी पढ़ाईकी समाप्ति तक उसे बराबर
धूप खिलाते रहना चाहिए।”

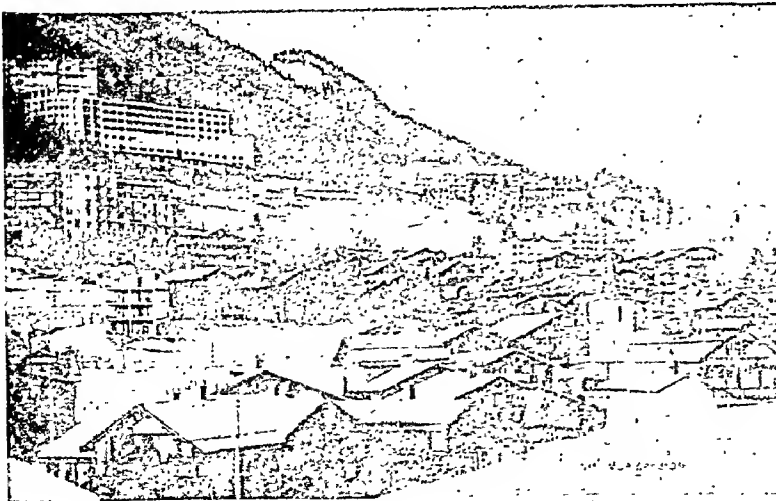


लेजोंकी 'ला शाले' क्लिनिक-उपचारगृह

डाक्टर महोदयके कथनपर हमें अपनी भारतीय
माताओंके पुराने तरीकेकी याद आ जाती है। पुराने
जमानेमें भारतीय माताएँ अपने बच्चोंके शरीरमें तेल
मलकर उन्हें धूपमें नंगा लिटाती थीं। अब भी देहातमें
कहीं-कहीं यह रिवाज चालू है ; लेकिन शहरोंमें नये
फैशनकी भोंकमें यह रिवाज गायब हो गया है। नये
फैशनकी माताएँ यह नहीं जानती कि इस पुराने भारतीय
रिवाजमें कितना बड़ा वैज्ञानिक सत्य और लाभ था।

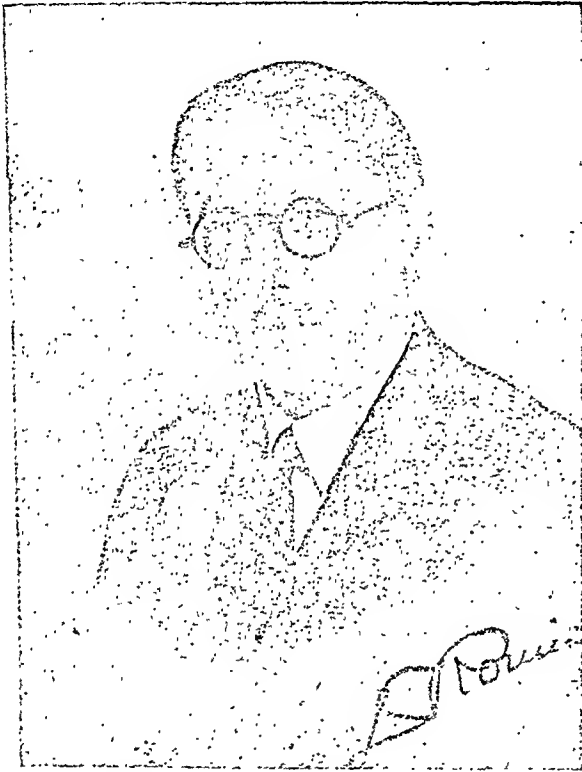
डाक्टर रोलियाका धूप-स्कूल
मुख्य करके कमजोर बच्चोंके लिए
अथवा उन बच्चोंके लिए जिनका
झुकाव यक्ष्माकी ओर हो, है। यह
स्कूल एक पुरानी संस्था है, जिसे
डाक्टरने सन् १९१०में मौजूदा रूप
दिया था। आइये, जरा इस
स्कूलकी सैर कर लीजिए।

लेजोंसे पैदल चलकर पहाड़के
नीचे उतरते हुए, आध घंटेमें इस
स्कूल तक पहुँचा जा सकता है।
जैसे ही स्कूलके पास पहुँचते हैं,
वैसे ही अनेकों हृष्ट-पुष्ट स्वस्थ



लेजोंका साधारण दृश्य

बालक-बालिकाएँ, जिनके बदन धूप खा-खाकर तप चुके हैं, चारों ओर छितराये दीख पड़ते हैं। उनके शरीरपर सिर्फ एक जाँविया और पैरोंमें चट्टी होती है। कोई कुछ करता दीख पड़ता है, कोई कुछ। उनके उल्टास-भरे चेहरे और सुन्दर स्वस्थ शरीर देखकर तबीयत खुश हो जाती है।



डाक्टर आगस्टा रोलिया

जिस जादूके बलपर यहाँ आकर रोगी और कमजोर बच्चे हट-पुट और खूबसूरत बन जाते हैं, उसका भी हाल सुन लीजिए।

यहाँ दाखिल होनेपर पहले तीन दिन तक तो बच्चे कमरोंके भीतर रखे जाते हैं, ताकि वे इतनी ऊँचाईपर और इस आबहवामें रहनेके आदी हो जायँ। इन तीन दिनोंमें भिन्न-भिन्न डाक्टर बच्चोंके भिन्न-भिन्न अंगोंकी परीक्षा करके देखते हैं कि उसके शरीरमें कोई रोग क्रियात्मक रूपसे काम तो नहीं कर रहा है।

हर एक नये बच्चेकेँ पाखाने, पेशाब और खूनकी परीक्षा होती है। यदि बच्चेके शरीरमें कोई सक्रिय रोग हुआ, तो वह यहाँ नहीं रखा जाता। यदि बच्चा बहुत कमजोर हुआ, तो वह तीन दिनोंके बजाय सात दिन तक कमरेके भीतर ही रखा जाता है। इसके बाद एक बँधे नियमके अनुसार एक निश्चित समय तक बच्चेको नंगे बदन रखकर धूप खिलाई जाती है। धूप देनेका समय धीरे-धीरे बढ़ाया जाता है। धूप देनेकी यह प्रणाली बड़ी सतर्कताके साथ—किरण-चिकित्सा-प्रणालीके नियमोंके अनुसार—काममें लाई जाती है।

कपड़ोंमें अधिकतर सिर्फ एक सफेद कपड़ेका छोटा जाँविया पहनाया जाता है। बाकी सारा शरीर खुला रहता है। हाँ, सयानी लड़कियोंके लिए अवश्य ऊपरी हिस्सेके लिए पोशाक होती है। पैरमें सभी चट्टी पहनते हैं। जब कभी धूप बहुत कड़ी होती है, तब बच्चे सिरपर एक हलकी सफेद टोपी पहन लेते हैं। हमारे भारतवर्षके स्कूलोंमें बहुधा लड़कोंकी पोशाकपर बहुत जोर दिया जाता है। गरीब लड़के भी, जिन्हें भरपेट पुष्टिकर भोजन भी नहीं मिलता, सिरसे पैर तक कपड़ा पहनते हैं। वे अज्ञानवश भगवानके दिये हुए दो दिव्य दानों—धूप और हवासे—वंचित रखे जाते हैं, और बहुधा तन्दुरुस्तीसे हाथ धो बैठते हैं।

बच्चे ६॥ बजे सवेरे सोकर उठते हैं, और सात बजे तक जरूरियात और स्नानसे फारिग हो जाते हैं। ७॥ बजे उन्हें कलेवा मिलता है, जिसमें रोटी, मक्खन, मुरब्बा और खीर होती है। जिन बच्चोंको कब्ज रहता है, उन्हें उबले हुए फल दिये जाते हैं। कभी-कभी उन्हें शहद भी मिलाता है। कलेवेके बाद उन्हें एक विशेष प्रकारका श्वासका व्यायाम करना पड़ता है।

८ बजेसे १० बजे तक पाठ चलता है। क्लास खुली धूपमें लगते हैं। सब बच्चे धूपमें लेटकर पाठ पढ़ते हैं। शुरू-शुरूमें वे ५ मिनट धूपमें रहते हैं; यह समय धीरे-धीरे बढ़ता जाता है। अगर मौसम खराब हुआ, तो क्लास बरामदेमें लगते हैं, वन्द

कमरोंमें कभी नहीं लगते ।
१० बजे उन्हें फल दिये
जाते हैं । दुर्बल बालकोंको
दूध मिलता है ।

१० बजेसे ११ बजे
तक बच्चोंको जिमनास्टिक
करना पड़ता है । बाजा
बजता जाता है, जिसके
तालपर बच्चे जिमनास्टिक
करते हैं । यह जिमनास्टिक
कैसा होता है, यह शब्दों
द्वारा नहीं समझाया जा
सकता । साथके चित्र
देखकर आप उसका कुछ
आभास पा सकते हैं ।
जिमनास्टिक खत्म होनेपर
कुछ देरके लिए उन्हें छुट्टी
मिल जाती है, जिसमें वे
जो खेल चाहें खेल
सकते हैं ।

११ बजेसे १२ तक
कुछ आराम और धूप तथा
वायु-स्नान होता है । १२
बजे मुँह-हाथ धोकर बच्चे
भोजन करते हैं । भोजनमें
शोरवा, बहुत तनिक-सा
मांस, तरकारियाँ, आलू,
सलाद और फल होते हैं ।
जाड़ेमें सभी बच्चोंको

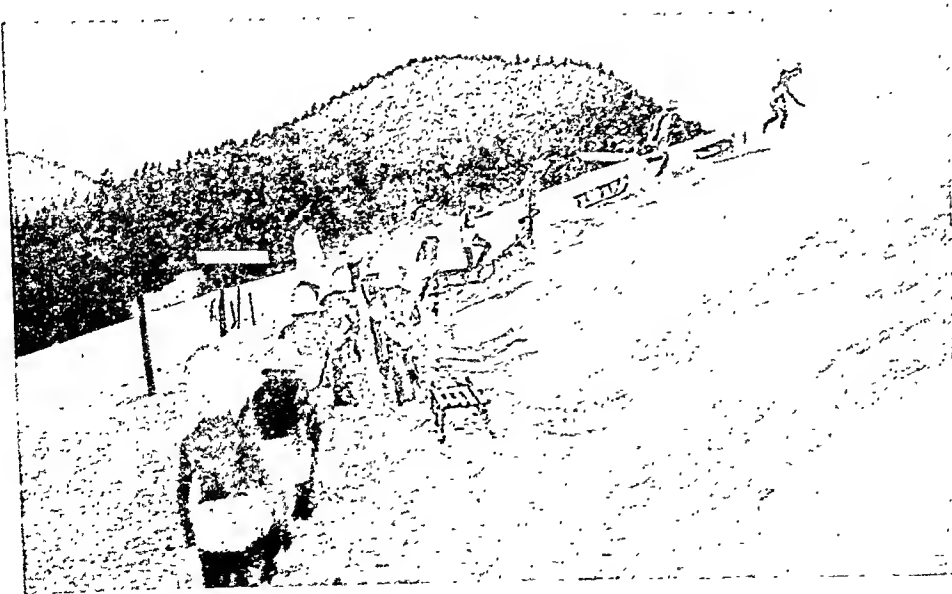
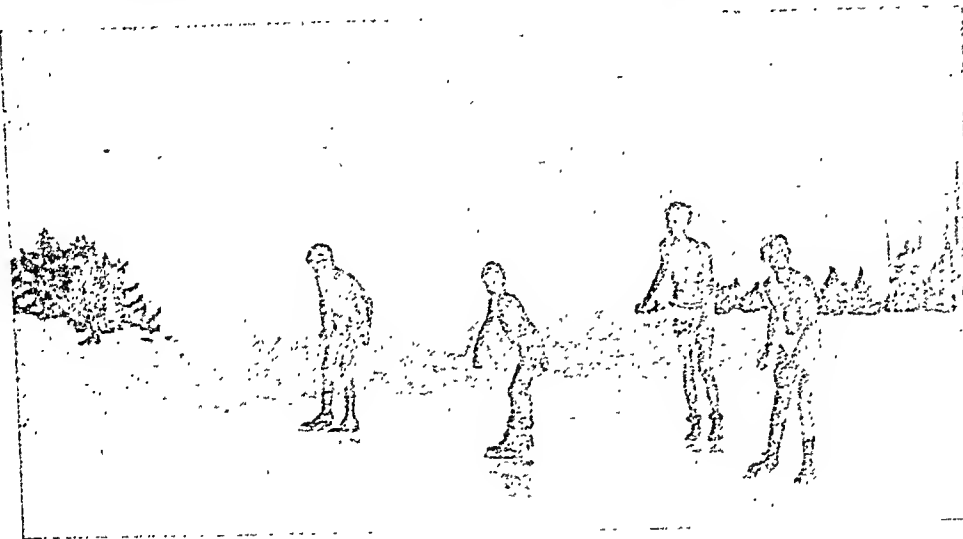
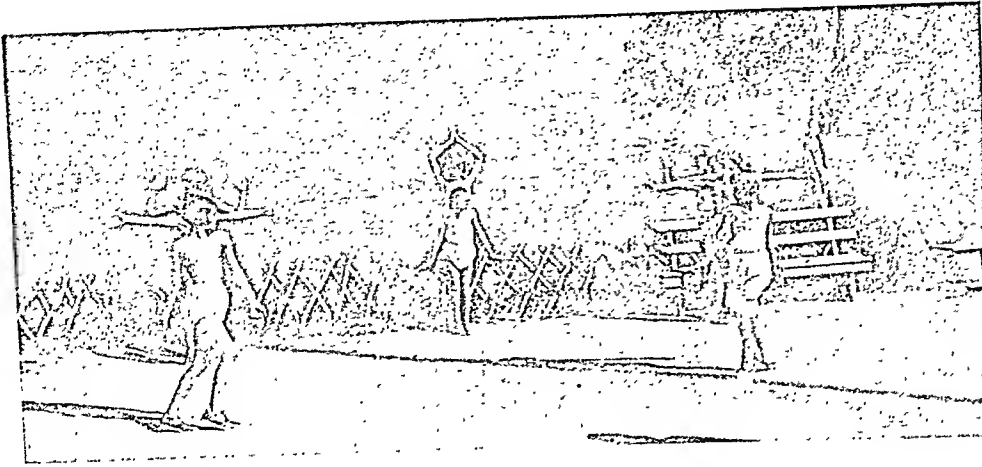


१-बाजेके साथ जिमनास्टिककी
कसरत

२-गश्ती क्लास

३-जिमनास्टिककी एक अन्य
कसरत





काडलिवर आयल दिया जाता है ।

१ बजेसे ३ बजे तक अनिवार्य रूपसे आराम करना पड़ता है । कोई खुली हवामें लेटता है, कोई 'सूर्य-शाला' (Solarium) में, तो कोई इधर-उधर बरामदेमें । इस आरामकी समाप्तिपर रोटीके दो छोटे-छोटे टुकड़े और एक-एक प्याला दूध मिलता है ।

३॥ से ४॥ बजे तक शिद्दकोंकी देख-रेखमें घूमना, टहलना, खेल-कूद आदि होते हैं—लेकिन सब खुली हवामें ।

५ बजे शामको वच्चे अपने-अपने कमरों में विछौनेपर लेटकर आध घंटा अपनी किताबें पढ़ते हैं । पौने छै बजे वे एक तख्तेके साथ व्यायाम करते हैं ।

६ बजे शामका भोजन होता है, जिसमें



१-खुली हवामें व्यायाम

२-वर्कपर खेल

३-वर्कपर खेल

शोरवा, भात, दूध और उबले हुए फल होते हैं। हफ्तेमें एक दिन अंडा मिलता है। शामको उबले हुए फल तो रोज ही दिये जाते हैं। मांस रातमें नहीं दिया जाता।

सोनेके पहले उन्हें कुछ मिनट तक श्वासका व्यायाम करना पड़ता है। ८।। बजे सभी सो जाते हैं।

लड़के और लड़कियाँ अलग-अलग कमरोंमें रहती हैं। हर कमरेमें दो चारपाइयाँ होती हैं। कभी-कभी क्लास स्कूलसे काफी दूर लगते हैं। ये 'गश्ती क्लास' कहलाते हैं। बच्चोंको इनमें शामिल होनेमें बड़ी खुशी होती है। हर एक लड़का अपनी पीठपर एक तह होनेवाली कुर्सी, जिसके साथ डेस्क भी लगा होता है, लादकर ले जाता है (चित्र देखिये), और जहाँपर क्लास लगना निश्चित होता है, वहीं बिछाकर बैठ जाता है। इन क्लासोंसे लड़कोंकी कसरत भी हो जाती है, और उन्हें खूब आनन्द भी मिलता है। स्कूलमें शिक्षक सब-की-सब महिलाएँ हैं।

बच्चोंके खून, पेशाब और पाखानेकी डाक्टररी परीक्षा समय-समयपर हुआ करती है। हर पन्द्रहवें दिन उनका वजन लिया जाता है, और हर महीने ऊँचाई नापी जाती है। एक विशेषज्ञ महिला-डाक्टर इस संस्थाकी इनचार्ज हैं, जो सप्ताहमें दो बार यहाँ आती हैं। इस बीचमें ज़रूरत पड़नेपर भी वे बुलाई जा सकती हैं। बच्चोंके मा-बापको सप्ताहमें दो बार बच्चोंके स्वास्थ्यकी रिपोर्ट भेजी जाती है। मामूली तौरसे ४ वर्षसे १३ वर्ष तकके बालक यहाँ भरती किये जाते हैं। ज़रूरतके मुताबिक बच्चे यहाँ तीन महीनेसे एक साल तक रहते हैं।

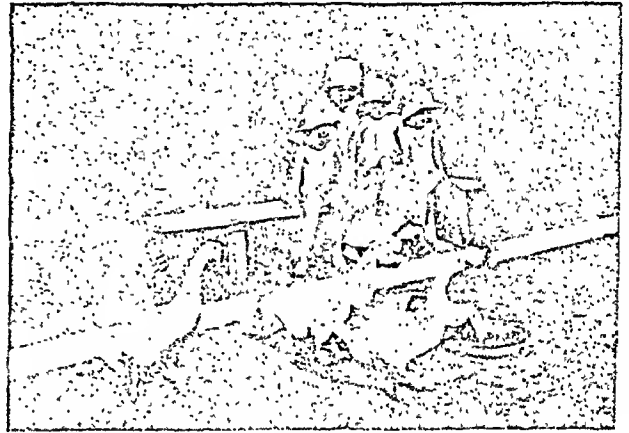
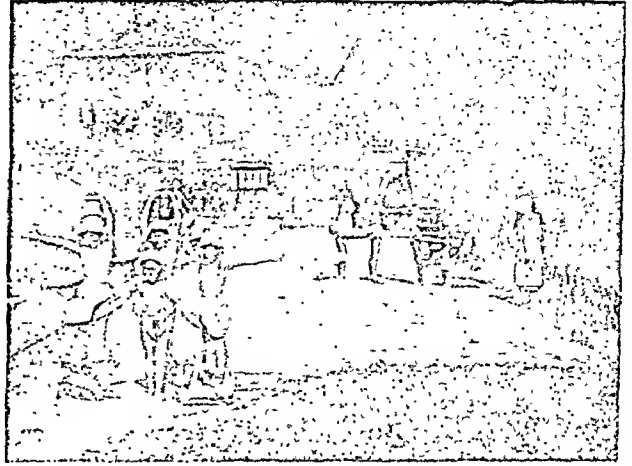
बालक स्कूलमें पढ़ते वक्त या धूप खाते वक्त या आराम करते वक्त सदा पेटके बल लेते रहते हैं। सिर्फ गश्ती क्लासोंमें वे कुर्सियोंपर बैठते हैं, सो भी ज्यादा देरके लिए नहीं। डाक्टर रोलियाका कहना है कि

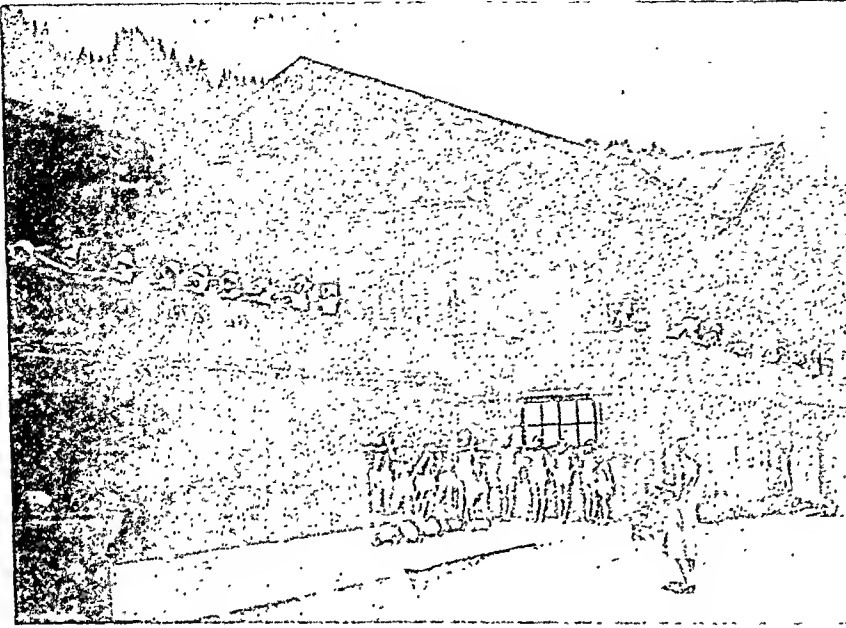


१-जमनास्टिककी कसरत

२-नन्हें बच्चे और उनके साथी

३-गश्ती क्लासकी कुर्सी-मेज पीठपर लादे एक छात्र





बच्चोंके लिए इस तरह लेटना बहुत फायदेमन्द है। इस तरह लेटनेसे उसके कन्धे पीछेकी तरफ होते हैं, और सिर शिच्छककी ओर रहता है। इससे बिना किसी प्रयासके ही पीठ अपने-आप सीधी रहती है, सिर उठा रहनेसे नसें तननेसे गलेकी गिल्टी दृढ़ और गहरी होती है। इस तरह लेटकर लिखने-पढ़नेमें बालकोंको कोई दिक्कत नहीं होता। इस तरह लेटना और धूप तथा हवा खाना ही रोगी बालकोंको चंगा करनेके जादू-भरे उपाय हैं।

मैंने इस स्कूलका वर्णन किसलिए किया ? स्कूलकी कार्य-प्रणालीसे स्पष्ट प्रकट है कि इसके द्वारा हम लोग कम-से-कम खर्चपर प्रकृतिसे अधिक-से-अधिक स्वास्थ्य और आरोग्यता प्राप्त कर सकते हैं। प्रकृतिकी यह देन हर व्यक्तिको—चाहे वह अमीर हो या गरीब, ऊँच हो या नीच—प्राप्त हो सकती है। हमें केवल उसका उद्देश समझना और उसका उपभोग करना है।

डाक्टर रोलियाके धूप-स्कूलमें आकर बच्चोंकी तन्दुरुस्तीमें कैसी



१-स्कूलके नीचे बच्चे कसरत कर रहे हैं

२-बच्चे धूपमें लेटे हैं

३-गरीबी क्लासके लिए बच्चे खाना हो रहे हैं

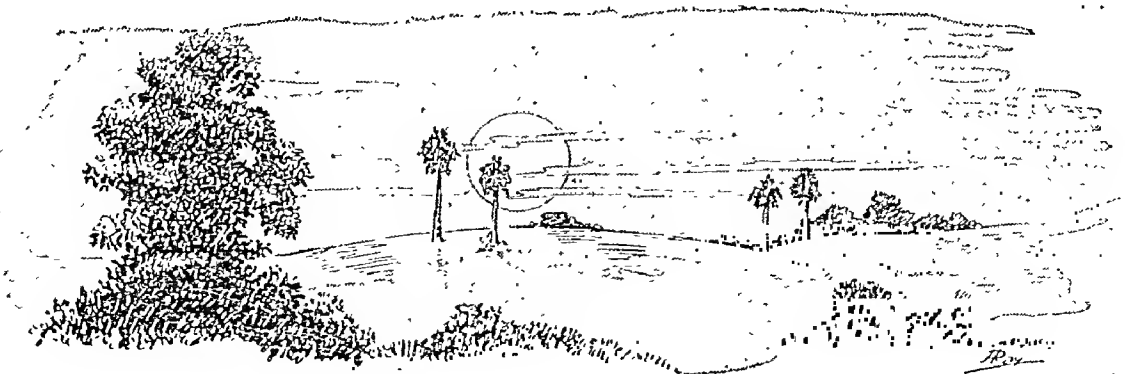
उनति होती है, यह मैंने अपनी आँखों देखा है। पीले और कमजोर बच्चे यहाँ रहकर थोड़े ही दिनोंमें हठ-पुष्ट लालो-लाल हो जाते हैं। उनका स्वास्थ्य सुधर जाता है, भूख और नींद बढ़ जाती है। उनके वजनमें काफ़ी वृद्धि होती है। उनका श्वास-निश्वास दृढ़ होता है, और थोड़े ही दिनोंमें वे खिले हुए फूलकी तरह ताजे दिखाई पड़ने लगते हैं।

यहाँ चूँकि बच्चे बराबर प्रकृतिक सम्पर्कमें रहते हैं, इसलिए शरीरके साथ-साथ उनका दिमाग भी स्वस्थ रहता है—उनमें बुरी आदतें नहीं आती। यहाँका सीधा-सादा सरल जीवन उन्हें कुटिल बातोंसे दूर रखता है। उनमें भ्रातृ-भावके साथ-साथ स्वावलम्बनका भाव भी विकसित होता है। मैंने पचीसों बार इस स्कूलको देखा है; लेकिन कभी किसी बच्चेको रोते या मगड़ा करते नहीं देखा। इससे यह भी जान पड़ता है कि बच्चे प्रसन्न और सन्तुष्ट भी रहते हैं। डाक्टर रोलियाका कथन है कि यह सब सूर्यकी धूपका प्रताप है। स्कूलकी अध्यक्षसे पूछा, तो मालूम हुआ कि लड़कोंने कभी कोई ऐसी शरारत नहीं की, जिसके लिए उन्हें कड़ी सज़ा देनी पड़ी हो। वास्तवमें किसीको कुछ सज़ा देनेकी नौबत बहुत कम

आती है; अगर किसीको सज़ा दी भी जाती है, तो सिर्फ यह कि दोषी घंटे-दो-घंटेके लिए अपने कमरेके भीतर बैठा दिया जाता है।

मैं सोचता हूँ कि इस तरहसे धूप-स्कूलोंसे हमारे देशके करोड़ों बालकोंका कितना उपकार हो सकता है। प्रयोग द्वारा यह बात सिद्ध हो चुकी है कि यदि उचित और पुष्टिकर भोजन प्राप्त होता रहे, तो मनुष्य काफ़ी समय तक सूर्यकी रोशनीके बिना भी रह सकता है। लेकिन जहाँ पुष्टिकर भोजनकी कमी हो, वहाँ यह अत्यन्त आवश्यक है कि भोजनके विटामिनकी कमी सूर्य-रश्मियोंकी विटामिनसे पूरी की जाय। हमारे देशमें लाखोंको नहीं, करोड़ोंको पुष्टिकर भोजन तो दूर रहा, पेट-भराऊ भोजन भी नसीब नहीं होता। ऐसी हालतमें हम लोग भगवानकी दी हुई इन न्यामतोंसे क्यों वंचित रहें? हमारे देशमें यक्ष्मा बहुत करके पर्दानशीन औरतोंको होता है, जिन्हें सूर्यकी रोशनी मयस्सर नहीं होती।

क्या हमारे देशके स्कूलोंके अधिकारी सूर्य-रश्मियोंके इन गुणोंको जानकर अपने छात्रोंको रोज कुछ देर खुली धूप और हवामें नंगे बदन रहना सिखायेंगे?



परीक्षा

श्री भगवतीप्रसाद वाजपेयी

एक होस्टेल है। उसमें, कालेजके विद्यार्थियोंका, एप्रिल मासका अन्तिम सप्ताह चल रहा है। कुछ थोड़े लॉ-फाइनलके विद्यार्थी ही रह गये हैं। अधिकतर तो अपनी-अपनी परीक्षाएँ देकर चले गये हैं, कुछ अभी आज ही कलमें जानेवाले हैं। और लॉ-फाइनलकी परीक्षा भी कलसे ही प्रारम्भ होनेवाली है। इस प्रकार आजके दिन बड़ी कड़ी पढ़ाईके हैं। एकदम अटूट, अविच्छिन्न। यही वे दिन हैं, जब विद्यार्थी अपनेमें एक प्रकारकी दानवी शक्ति, एक असाधारण संलग्नता, का अनुभव करता है। वह सोते हुए पढ़ता है, भोजन करते हुए पढ़ता है और कुछ न पढ़ते हुए भी पढ़ता है।

हाँ, तो कुछ लोग तो साढ़े आठ बजेसे ही पलंगपर मसहरी लगाकर लेट रहे हैं, इस आशासे कि नौ बजते-बजते भी यदि नींद आ गई, तो फिर एक-डेढ़ बजे सुविधासे उठ सकेंगे। उस समय नई ताज़ी स्फूर्ति अपनेमें पायेंगे। वस, तभी पढ़ाया जायगा मननशीलतासे—खूब समझ-बूझकर, ऐसा कि जो भूल न सके, यां भुलाया न जा सके।

पर कुछ ऐसे भी विद्यार्थी हैं, जिन्हें अब आजके लिए कुछ नहीं पढ़ना है; केवल एक बार पढ़े हुएको फिर नया कर लेना है, सोये हुएको जगा लेना है और जिन बातोंको तहाकर रख छोड़ा था, उनको फिरसे उपयोगमें लानेके लिए, उठाकर, अपनी चेतनाके कमरेमें, निकट ही ज्ञानकी खूटीपर, टाँग लेना है। इसके सिवा उनका यह भी कहना है कि नई स्फूर्तिका उपयोग तो हमें परीक्षाके समय ही करना है। अतएव इधर रातमें जितना पढ़ा जा सके, पढ़ लिया जाय, और फिर इस सन्तोषके साथ सोया जाय कि सवेरे उठकर, ताज़गीमें, परीक्षा-भवनकी ओर जाना है।

हमारा अतुलचन्द ऐसा ही विद्यार्थी है।

उजेली रातका सनाटा है। अभी-अभी बारह बजेका कचहरीका घंटा बज चुका है और अतुल सिविल-प्रोसीजरके सेक्शनस देख रहा है। उसका आजका काम समाप्त होनेको है। आगेके पन्ने उलटकर अभी उसने गिन लिये हैं। कुल जमा सात पृष्ठ उसे और पढ़ने हैं और ये पृष्ठ उसके लिए पाँच मिनटसे अधिक समयके नहीं हैं।

उसके कमरेका दरवाज़ा भीतरसे बन्द है। कमरेमें विजलीका प्रकाश फैला हुआ है, और टेबिल-फ्रैम अपनी प्रारम्भिक स्पीडसे चल रहा है। उसका स्वर मन्द है। वस, यही समझिये कि 'मन'-से शब्दका वह ऐसा स्वर है, जो एक बार, अनिश्चित कालके लिए, चिरस्थिर होकर गूँज उठा है।

इसी क्षण अतुलने लक्ष किया—उसके कमरेके द्वारमें एक किवाड़के ऊपरी भागके शीशेपर किसीने दो बार अंगुलि-आघातकर कुट-कुट शब्द किया है। फटसे वह अपनी कुरसीसे उठ खड़ा हुआ।

उसका एक मित्र है सुशील। वह कभी-कभी इतनी ही रातको आकर, इसी प्रकार शीशेपर कुट-कुट शब्द करके किवाड़ खोलनेको विवश कर देता है। वह सुशील इस समय यहाँ बैठने नहीं आता, न गप-शप ही उसका अभीष्ट होता है। वह तो केवल यह पूछने आता है कि आज तुमने कितना पढ़ा है। और फिर यही, इतनी ही बात, पूछकर चला जाता है। यह बात सिर्फ आजकलके लिए हैं। यों वह कैसा प्रचण्ड हँसोड़, बातूनी और खिलाड़ी है, उसका तो अलग एक अध्याय है। इस समय उसकी चर्चा व्यर्थ है।

हाँ, तो अतुलने समझा, वही सुशील है और वही बात पूछने आ गया है। उठकर उसने फटसे किवाड़ खोल दिये। मुस्कराकर वह कहने ही वाला

था कि 'क्यों, तबियत नहीं मानी !....अच्छा, आज तुम्हीं बताओ, कितना पढ़ा है ? परन्तु उसके आगे जब वह सुशील न होकर निकला एक सर्वथा नवीन, एकदम अपरिचित व्यक्ति, तो वह चकित-विस्मित हो उठा । उसने देखा, वह व्यक्ति ऊपरसे नीचे तक पूरी तरह राजकुमारके-से वेशमें है, कपड़े भी उसके ऐसे साधारण नहीं है । गौर वर्ण है और क्लीन शेव्ड आननपर जो मन्द-मन्द हरीतिमा झलक रही है, वह भी ऐसी कम शोभन नहीं है । वह सिरमें जयपुरी साफ़ा बाँधे हुए है ।

एक ही दृष्टिमें यह सब देखकर वह पूछने ही वाला था कि 'कहिये, आपका क्या अभिप्राय है ?' किन्तु नवागन्तुक व्यक्ति तो किवाड़ खुलनेपर, किसी प्रकारकी अनुमतिकी प्रतीक्षा किये बिना ही, अधिकारपूर्वक भीतर आ गया ।

कुरसी खाली पड़ी ही हुई थी । अतुलने समझा, वह मेरे किसी आत्मीय बन्धुके यहाँसे आया है, और अब अपना परिचय देने ही वाला है, अतः उसने कह दिया—बैठिये ।

किन्तु नवागन्तुने अतुलके इस कथनपर कुछ भी ध्यान न देकर कह दिया—मैं तीन-चार दिन आपके साथ रहना चाहता हूँ ।

वह खड़ा था । उसने खड़े-ही-खड़े अतिशय उत्सुकता-भरे मृदुल स्वरमें यह बात कही ।

अतुलके लिए यह नई बात है । वह कभी अपनेको देखता है, कभी उस व्यक्तिको ; पर जल्दीमें वह कोई निश्चय नहीं कर पाता है । वह सोचता है, संसारमें कोई भी व्यक्ति जन्मसे ही किसीका शत्रु होकर नहीं अवतरित होता—आँखें खोलनेपर सभी निकटतम पुरुषोंको वह आत्मीय ही समझता है ; तथापि यह समस्या उसके लिए ऐसी साधारण नहीं है ।....वह सोचता है—व्यक्तित्व ! व्यक्तित्व वास्तवमें बड़ी आकर्षक वस्तु है ; किन्तु उसने जीवनमें कभी उसके अधिकारकी मीमांसा नहीं की । तब वह कैसे उसकी

तत्काल प्रभावशीलता स्वीकार कर सकता है । उसने एक बार फिर जब उस व्यक्तिके गम्भीर मुखकी ओर देखा, तो विमर्शका एक कोलाहल उसके अन्तःकरणमें ध्वनित हो उठा ।

....परन्तु वह एकदमसे इनकार भी कैसे कर सकता है ! किसी भी व्यक्तिकी कोई भी आशा, सामर्थ्य रहते, उसने कभी मंग नहीं की । 'न' कहना उसने कभी जाना नहीं, 'हाँ' कहना ही उसकी प्रकृतिका मुख्य गुण रहा है । प्रयत्न करनेपर भी यदि आगे चलकर वह किसी प्रतिज्ञात बातका सोलह आने पालन नहीं कर सका है, तो उसकी लज्जाजन्य व्याकुलता सहन कर ली है । फिर अपनी शक्ति और तत्कालीन परिस्थितिको उस पात्रके सामने यथातथ्य रूपमें रखकर उसने स्पष्ट शब्दोंमें कह दिया है—“भाई, अब तो और अधिक आशा नहीं है । मैंने सोचा था, तुम्हारी इतनी सेवा मैं कर सकूँगा ! पर जान पड़ता है, उस समय मैं उचितसे कुछ अधिक उछलकर कुछ अधिक कर सकनेकी मिथ्या आशा कर बैठा था । और अब तो यह स्पष्ट ही हो गया है कि अभी मेरा संसार वैसा बन नहीं सका है । अतएव अब और अधिकके लिए मैं आपसे क्षमा चाहता हूँ ।”

उपर्युक्त बात कहते-कहते उसके भीतरकी लज्जा, उसकी अदूरदर्शिताकी ग्लानि उसके आननपर मुखरित हो उठती, और उसे इस दशामें देखकर याचक भी वाकहीन-सा हो उठता । वह भी समझने लगता, कर्तव्यकी अबाध गतिमें यह कितना आगे रहता है । जो काम वह नहीं भी कर सकता है, उसको भी, सेवाके नाते, इतनी दूर तक तो कार्यके रूपमें पहुँचा ही देता है ! कैसा वह देवोपम है !

उस समय नवागन्तुकका एक-एक क्षण कल्पकी काया बन रहा था । उत्तरकी आशासे, जैसे अतुलकी आँखोंमें समाहित होकर, वह उसे देख रहा था !

अतुलने कह दिया—बैठिये—पहले बैठिये तो ।

अतुलके इस उत्तरमें उस व्यक्तिको थोड़ा आश्वासन

मिला। अतएव उसने कहा—अच्छा, थोड़ा पानी दीजिए। हाथ-मुँह धो लूँ, बड़ा थका हुआ हूँ।

लोटेमें, सुराहीसे, अतुल जत्र जल भरने लगा, तो उस व्यक्तिने अपना पसीनेसे तर हो रहा कोट उस कमरेकी एक खूँटीपर टाँग दिया।

अतुलने जब जल भरा लोटा उस व्यक्तिको दे दिया, तो वह व्यक्ति कमरेके द्वारकी दालानके उस किनारे जाकर हाथ-मुँह धोने लगा।

इधर अतुलकी दृष्टि इस नवागन्तुकके उसी कोटपर जा पड़ी। उसको टटोलकर उसने अपना सन्देह निवारण किया। अचिर भविष्यकी प्रत्येक प्रकारकी सम्भावनाएँ, उसके प्रशान्त मानसमें, तूफानकी हिलोर बनकर, तैरने लगीं। उसे बोध होने लगा कि एक भीषण भूकम्प मानो उसे ध्वस्त करना ही चाहता है!

नवागन्तुक अब जैसे भीतर आया, लोटा उसने एक ओर रख दिया और वह कुर्सीपर बैठ गया, वैसे ही अतुलने द्वार बन्द कर लिया, फिर कहा—भाई, मुझे माफ़ कर दो। मेरे हृदयमें आपके प्रति सम्मानके कैसे उदात्त भाव हैं, कह नहीं सकता; किन्तु कलसे ही मेरी लॉन्फ़ाइनलकी परीक्षा होनेवाली है। ऐसे संक्रमण कालमें मैं आपकी सेवा करनेके योग्य नहीं हूँ।

घोर निराशाकी यातनामें ओत-प्रोत होकर, एक बार फिर अपने व्यक्तित्वको मानो कंठपर उतारकर, उसने कहा—अच्छा, तब मैं आपको अधिक कष्ट न दूँगा। कल प्रातःकालसे पूर्व ही चला जाऊँगा। रातके कुछ अवशिष्ट घंटे ही आपके यहाँ व्यतीत करूँगा। उधर बाहर कहीं पड़ा रहूँगा। इस तरह आपको कोई असुविधा भी न होगी।

इस समय यह अतुल स्वतः कितनी ग्लानिका अनुभव कर रहा है, परिस्थितिवश अपने इस सम्बन्धके स्वाभाविक मोहको किस तरह वह दमन कर सका है, इसको कौन समझ सकता है! जो बात उसके लिए एक प्रकारसे प्रकृति-विरुद्ध है, जिसके लिए वह स्वयं ही अनुताप-दग्ध होता आया है, आज इसी प्रसंगमें उसे

ऐसा अवश्य होना पड़ रहा है। कर्तव्यहीनताके इस उत्पीड़नको जब वह उस व्यक्तिके समक्ष प्रकट करनेमें भी अक्षम है, तब भी अवांछनीय प्रस्तावके प्रहार उसका दयनीय आत्मापर उत्तरोत्तर हो ही रहे हैं, यही अनुभव कर क्षण-भरके लिए अतुल किंचित कठोर हो पड़ा उसका सुमन-शोभन मुख रुद्र हो उठा, उसका प्रकृत कोमल कंठ एकदमसे गम्भीर हो गया। उसने कहा—जो कुछ भी मैं कह सकता था, उससे अधिक कहनेकी ज़रूरत मैं नहीं समझता। इसके सिवा मैं पहले ही माफ़ी माँग चुका हूँ।

नवागन्तुक उसी क्षण उठ खड़ा हुआ। खूँटीसे कोट उतारकर जब वह चल दिया, तो अतुलने उठकर द्वार खोलकर, उसके सम्मानार्थ अभिवादन किया। द्वारके बाहर जब उस व्यक्तिकी पद-ध्वनि गतिशील हो उठी, तो उसने लक्ष किया, जैसे अतिशय मन्द स्वरमें चरम वृणासे, वह कह गया हो—कायर कहींका!

× × ×

ऐं, क्या कह गया?—कायर कहींका! तो मैं कायर हूँ? हूँ, मैं कायर हूँ; किन्तु उतना ही, जितना तू बुद्धिहीन, विवेकहीन और उच्छृंखल है। जो व्यक्ति अपने ही आपको देखता है, जो दूसरोंकी परिस्थितिके प्रति प्रज्ञाचक्षु होकर रहता है, जो अपनी ही बात कहना चाहता है, दूसरोंकी बात सुनना भी जिसने नहीं सीखा है, जो एक सीधी-सी बात भी सहन नहीं कर सकता, मानवात्माके प्रति जो इतना न्यायहीन और निर्दय है, वह भी मनुष्य है? कैसे वह मनुष्य हो सकता है? पाखण्डी कहींका? ये ही मुल्कको आज्ञाद करेंगे? छिः!

किन्तु वेचारा बहुत थका हुआ था! फिर कुछ ही घंटे तो वह रहना चाहता था! उसकी आँखें कितनी क्षुब्ध, मुद्रा कैसी विपन्न और उत्कंठा कैसी दयनीय थी!

वह सुशीलके कमरेकी ओर गया। देखा, वह सो गया है। पुकारा—सुशील, सुशील! सो गये

क्या ? हाँ, सो ही गये हो । अच्छा, सोओ । मैं भी अब सोऊँगा ।

वह लौट पड़ा और अपने कमरेमें आकर चारपाईपर लेट गया । अभी उसने लाइट आफ्न नहीं की थी । घड़ीकी ओर देखा—ओह डेढ़ बज गया ! अच्छा, तो अब सो जाना चाहिए ।

उसने कमरा बन्द करके लाइट आफ्न कर दी । अब वह लेट गया । वह कभी इस करवट लेटा, कभी उस करवट ; किन्तु उसे नींद जल्दी नहीं आई । “ऊँह, पकड़ लिये जायँगे, पकड़ लिये जायँ, अपनेको क्या ? मैं कर ही क्या सकता हूँ ? पागल बने घूमते हैं । पूछो, जैसे देशके लिए इन्हींने जन्म लिया हो । हम लोग जैसे मिट्टीके पुतले हैं, पशु-पक्षी हैं, या कीड़े हैं । मानो विवेक हमने खो दिया है । मनुष्यता हममें है ही नहीं !”

लेकिन नींद फिर भी नहीं आ रही है ।

तो क्या आजकी रात इसी प्रकार व्यतीत होगी ? “शायद भूखे भी थे । क्योंकि स्वर बहुत दबा हुआ था ; लेकिन मैं कर ही क्या सकता था ! ऐसे वक्त भला मैं इन्हें क्या खिलाता ? तो ये मेरे ही यहाँ क्यों आ धमके ? समझा होगा, प्रकृतिका गम्भीर आदमी है, विश्वास भी उसका किया जा सकता है ।... सम्भव है, किसीने मेरे सम्बन्धमें कुछ कह भी दिया हो । नहीं तो मेरे पास आ नहीं सकते थे । किन्तु चलो, यह भी ठीक ही रहा कि मंमटमें नहीं पड़ा । नहीं तो....”

लेकिन नींद तो आ ही नहीं रही है !

“तो क्या इसी तरह करवटें बदलता रहूँगा ?” उसने अब फिर लाइटका स्विच दबा दिया । लेटे-लेटे वह पढ़ने लगा । अब दो-चार मिनटमें उसकी आँखें झपक गई ।

“अतुल ! अतुल ! कुट ! कुट ! कुट ! अरे उठोगे नहीं । देखो, साढ़े पाँच बज गये । क्या सोते ही रहोगे ? कुट ! कुट ! कुट !”

अतुल एकदमसे घबराकर उठ बैठा । देखा, पंखा तो खैर चल ही रहा है, लाइट भी जल रही है और दिनका प्रकाश भी फूट निकला है । उधर दरवाजेपर कोई कुट कुट कर रहा है, सो अलग ।

उसका हृदय द्रुत गतिसे स्पन्दित हो उठा—यह कौन है, जो किवाड़ इतने जोरसे खटका रहा है । मामला क्या है ? ध्यानसे देखा, तो सुशील जान पड़ा । तब उसने किवाड़ खोल दिये ।

“ओह ! तुम हो !” उसने सन्तोषके साथ कहा ।

सुशीलने चकित होकर कहा—तुमको आज हो क्या गया ? क्या परीक्षामें बैठनेका इरादा नहीं है ? देखो, साढ़े पाँच कभीका बज गया और तुम्हारी नींद अब भी पूरी नहीं हुई । मैं आकर यदि तुम्हें न जगाता, तो शायद तुम अभी घंटों सोते रहते ! आखिर मामला क्या है ?

अतुल सुशीलकी बातें चुपचाप सुनता रहा । क्या सही है और क्या गलत, इस विषयमें वह मूक ही बना रहा । पिछली रातको उसने इसी सुशीलकी ओर जाते समय रास्तेमें मन-ही-मन उसे बतलानेको जो-जो संकल्प किये थे, इस समय उनकी छाया भी उसके अवाक कण्ठको विचलित करनेके लिए उत्थित न हो सकी ।

तब सुशीलने आश्चर्य-चकित होकर कहा—अच्छा, मुझे तो परीक्षामें बैठना ही है । अतएव मैं तो जाता हूँ । अब इतना अवकाश मुझे कहाँ है कि सर्प-दंशके-से तुम्हारे इस मूडको निर्विष करनेके लिए तुम्हारे कानोंको खींच-खींचकर उनमें मन्त्रोच्चारका निर्घोष भरता रहूँ ।

वह उठकर चला गया ।

अतुल भी अब झटसे उठकर नित्यकर्ममें लग गया ।

× × ×

अतुलका परीक्षा-फल आज प्रकाशित हो गया है । सुशीलचन्द्र, केसरीमल, प्रतापनारायण, जीवनलाल

और इमाम अली उसके निकट बैठे हुए हैं। सभी अत्यधिक गम्भीर हैं, कोई किसीसे कुछ कहता नहीं। मानो किसीको कुछ कहना नहीं है, अथवा कहना भी जो कुछ था, वह मानो बिना कहे हुए भी कहा हुआ मान लिया गया है।

लेकिन परीक्षा-फलके उस समाचारपत्रको अतुल बड़े ध्यानसे देख रहा है। उसे इस बातकी ज़रा भी चिन्ता नहीं है कि ये लोग अपने मनमें क्या कहते होंगे। कहते होंगे—अतुल अब भी उस सम्बन्धमें कुछ सोच ही रहा है। किन्तु अब हो ही क्या सकता है! परन्तु वास्तवमें ऐसी बात नहीं है। न जाने क्यों अतुल आज इस संवाद-पत्रका शब्द-शब्द पढ़ लेना चाहता है।

अकस्मात् एक शीतल निःश्वास छोड़ते हुए अतुलकी दृष्टि एक संवादपर रुक गई है। संवाद ऐसा साधारण नहीं है, किसीके प्राण-दंड हो जानेका है। उसका फोटोग्राफ भी उसके साथ दिया हुआ है।

धीरे-धीरे और तो सभी साथी सहानुभूति प्रकट करके चले गये, केवल सुशील रह गया। तब उसने पिछले दो-ढाई महीनोंकी आत्म-कथा विधिपूर्वक उसे बतलाई। उसे सुनकर सुशील अवाक् रह गया!

अन्तमें उसने सुशीलसे कहा—मेरा फेल हो

जाना ही सच पूछो तो स्वाभाविक है। ईश्वरकी सृष्टिमें यही एक वैचित्र्य मैं पा सका हूँ। हम अपने जीवनके जिस पल-प्रतिपलको इतना श्रृंखलित रखते हैं, समझ बैठते हैं कि हमीं उसके एकमात्र अधिकारी हैं, उस क्षण हम यह भूल जाते हैं कि जिसने हमारे जीवनके उस पल-पलकी रचना की है, उसकी भी कोई इच्छा हो सकती है। हमारे लिए जो जीवन-भरका तत्त्व है, वही उसके लिए बालूका एक घरोँदा और उसका एक ही चक्षुर्मिलन हमारे चरम विध्वंसका कारण। उसके किस काममें कौन-सा तत्त्व निहित है, इसको कौन समझ सकता है!

×

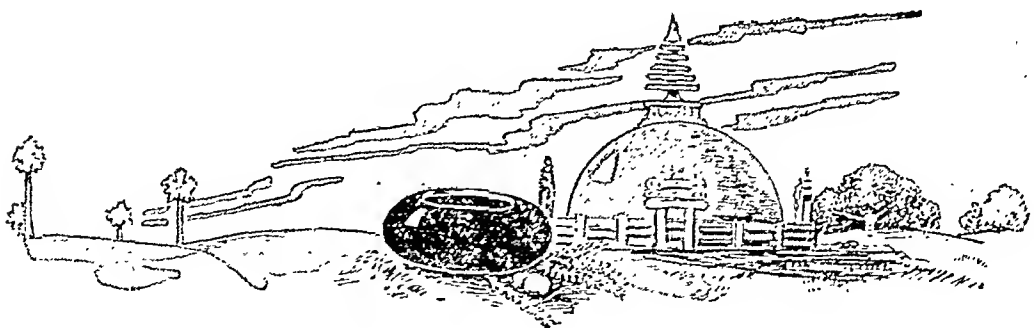
×

×

अतुल आज अपने नगरका प्रसिद्ध वकील है।

कभी-कभी जब रात अधिक व्यतीत हो जाती है, तब अपने कमरेमें लेटा हुआ अतुल अकस्मात् उठ बैठता है। सुपुतावस्थामें उसे स्पष्ट बोध होता है कि कोई उसके कमरेके दरवाजेपर खड़ा शीशेपर कुट-कुट कर रहा है। उसका कण्ठ सूखा हुआ, उसकी चेष्टा लुधार्त और अंग-अंग शिथिल है। वेचारा कह रहा है—मैं तुम्हारे यहाँ ठहरूँगा नहीं; लेकिन ठंडा पानी तो तुम मुझे पिला ही सकते हो!

और अतुलकी आँखें भर आती हैं।



शिक्षाका विकीरणा

रवीन्द्रनाथ ठाकुर

भोज्य वस्तुओंसे भंडार भरा पड़ा हो और रसोई-घरमें हँडिया चढ़ गई हो, तो भी उसे भोज नहीं कहा जा सकता। आँगनमें कितनी पत्तलें लगाई गई हैं और कितने आदमियोंको बुलाया गया है, उसी हिसाबसे भोजकी मर्यादा होती है। हम जिस 'एजुकेशन' (शिक्षा) शब्दकी याद कर-करके मन-ही-मन खुश रहते हैं, उसमें भंडार-घरका चेहरा ही चेहरा है; किन्तु बाहर निगाह उठाकर देखते हैं तो आँगन सुनसान ही नजर आता है। शिक्षाके प्रकाशके लिए ऊँची लालटेन लटकाई गई है स्कूल-कालेजोंमें; परन्तु उससे अगर बन्द दीवारोंके अन्दर बन्दी प्रकाश ही हो, तो फटना चाहिए कि हमारा भाग्य ही खराब है। जिस तरह सम्पूर्ण पटकी भूमिकामें ही चित्रका प्रकाश होता है, उसी तरह परिस्फुटता या पूर्ण विकास पानेके लिए शिक्षा चाहती है देश-भरकी सम्पूर्ण भूमिका। व्यापक भूमिकासे अष्ट शिक्षा कितनी अस्पष्ट और असम्पूर्ण है, सिर्फ अभ्यस्त हो जानेके कारण ही उसकी दीनताकी वेदना हमारे मनसे मर गई है; अर्थात् हमारी आदतमें शुमार हो जानेसे हम उस कमीको महसूस ही नहीं करते। शिक्षाके विषयमें अन्य देशोंके साथ अपने देशकी जब तुलना करते हैं, तो दृश्य (दीखनेवाले) अंशको ही हम देखते हैं, अदृश्य अंशका तो हम कोई हिसाब ही नहीं रखते। सिर्फ इतना मिला देखते हैं कि यूनिवर्सिटी वहाँ भी हैं, और हमारे देशमें भी उनके प्रतिरूप दो-एक दिखाई दे रहे हैं। हम यह भूल जाते हैं कि ऐसा कोई भाग्यवान देश नहीं जहाँ वैधे हुए शिक्षालयके बाहर सम्पूर्ण समाज-भरमें विना-बँधी मुक्त शिक्षाकी एक दिगन्त-व्यापी विशाल परिधि न हो।

किसी जमानेमें हमारे देशमें भी यह था। यूरोपके मध्ययुगके समान हमारे देशमें शास्त्रोंकी शिक्षा ही प्रधान थी। इस शिक्षाकी विशेष चर्चा तो होती थी 'टोल' और चतुष्पाठियोंमें; किन्तु उस विद्याकी भूमिका सारे देशमें विस्तृत थी। विशिष्ट ज्ञानके साथ साधारण ज्ञानका सम्बन्ध और आवागमन नित्य था। नखलिस्तानके साथ रेगिस्तानका जो उलटा सम्बन्ध है, पंडित-मंडलीके साथ अपंडित जनताका

* पुराने ढंगके संस्कृत विद्यालयोंको बंगालमें 'टोल' कहते हैं।—अ०

वैसा सम्बन्ध नहीं था। हमारे देशमें ऐसा कोई अनादृत स्थान था ही नहीं जहाँ रामायण महाभारत पुराण-कथा और धर्म-व्याख्या आदि नाना धाराओंमें होकर प्रतिदिन उसका प्रसार न होता हो। यहाँ तक कि जिन सब तत्त्वज्ञानोंकी आलोचना दर्शनशास्त्रोंमें कठोर अध्यवसायके साथ हुई है, जनसाधारणकी चित्तभूमिपर उनका भी सर्वदा सिंचन होता रहता था। वृक्षकी खुराक जब पानीसे भलीभाँति तरल हो जाती है, तभी वृक्ष उसे अपनी शाखा-प्रशाखाओंमें ग्रहण कर सकता है, ठीक इसी तरह प्राचीनकालमें कठिन विद्याको रसमें गलाकर सर्वसाधारणके मनपर सींचा जाता था। जिस समय हमारे देशमें पूर्वकर्म (निर्माण-कार्य) धर्मका अंग था, उस समय गाँव-गाँवमें कुआँ दावड़ी आदिका आयोजन अपने-आप ही विस्तृत और व्यापक था। हम सब जनोंने मिलकर स्वयं ही अपने लिए पीनेका पानी निकाला है, राज-परिषदकी किसी कंजूस अमलदारीके सामने हमें सिर नहीं धुनना पड़ा। इसी तरह हमारे समाजने अपने देशकी विद्याको स्वयं ही देश-भरमें बाँटा है। अगर वह ऐसा न करता, तो सारा देश आज वर्चस्वतासे काला और कर्कश हो जाता। विद्या तब विद्वानोंकी सम्पत्ति नहीं थी, वह थी सम्पूर्ण समाजकी सम्पदा।

ऐसे एक मामूली-से गाँवमें जहाँ समाचारपत्रोंका पत्र-मर्मर भी नहीं सुनाई देता, किसानोंने मुझे निमन्त्रित किया था। वहाँ लगभग सभी-कोई मुसलमान थे। मेरे स्वागतके लिए वहाँ 'जात्रा'का संगीत हो रहा था। चंदोवेके नीचे मिट्टीके तेलकी लालटेन जल रही थी, धरतीपर लड़के-बूढ़े सभी-कोई चुपचाप स्तब्ध बैठे थे। गीतका मुख्य विषय था गुरु-शिष्यमें तत्त्वालोचना,—देहतत्त्व, सृष्टितत्त्व, मुक्तितत्त्व आदिकी आलोचना। रह-रहकर उसीके साथ नाच-गान और तमाशेकी हुत-मुखरित भंकार हो रही थी। उस खेलका एक खास हिस्सा आज भी मुझे याद है। बात यह है—यात्री वृन्दावनमें प्रवेश करना चाहता है, पहरेदारने उसका रास्ता रोक दिया और कहा, 'तुम चोर हो, तुम भीतर नहीं जा सकते।' यात्रीने कहा, 'चोरीका माल तुम्हें कहाँ दिखाई दिया?' द्वारपालने कहा, 'देखो, तुम्हारे कपड़ोंके

भीतर छिपा हुआ है, जिसे तुम अपना समझ रहे हो, वह सोलहो-आने हमारे राजाका है, थोड़ेसे तुमने उसे अपने जिम्मे रख छोड़ा है।' इतना कहते-कहते महाडाक ढोल आदि वज उठे, और नकली-वालोंके भक्तभोरोँके साथ चलने लगा नाच। मानो वही उस दिनके पाठका प्रधान ग्रंथ हो, और अध्यापकने उसपर पेन्सिलसे मोटे-मोटे डबल निशान लगा दिये हों। रात आगे बढ़ने लगी; वारह वज गये, एक वजाऊ है, दर्शक स्थिर होकर बैठे सुन रहे हैं। सब बातें स्पष्ट समझमें आवें चाहे न आवें, उन्हें उसमें ऐसी किसी चीजका स्वाद मिल रहा था जिसने उनकी प्रतिदिनकी नीरस तुच्छताको भेदकर चिरन्तनकी ओर उनके लिए मार्ग खोल दिया था।

ऐसे ही कितना समय बीत गया हमारे देशमें; बार-बार विचित्र रसोंके योगसे लोगोंने 'ध्रुव प्रह्लादकी कथा', 'सीताका वनवास', 'कर्णका कवच-दान', 'हरिश्चन्द्रका सर्वस्व-त्याग' आदि सुने हैं। तब दुःख था बहुत, अन्याय था काफी, और जीवनयात्राकी अनिश्चयता थी कदम-कदमपर; परन्तु उसके साथ ही ऐसी-एक शिक्षाकी धारा बह रही थी जिसने भाग्यकी विमुखता होते हुए भी मनुष्यको आन्तरिक सम्पदाका खुला हुआ मार्ग दिखाया है और मनुष्यकी उस श्रेष्ठताको जो अवस्थाकी हीनतामें भी उसे हेय नहीं कर सकता, उज्ज्वल बनाया है। और चाहे कैसे भी हो, अमेरिकन डॉकीसे यह काम नहीं हुआ।

अन्य देशोंमें अनिवार्य-शिक्षाको चालू हुए थोड़े ही दिन हुए हैं। हमारे देशमें जो जन-शिक्षा चालू है, उसे अनिवार्य नहीं कहूँगा, उसे कहूँगा स्वैच्छिक—अपनी इच्छासे ली जानेवाली शिक्षा। यह बहुत पुरानी चीज है, बहुत दिनोंसे चली आई है। उसके पीछे कोई कानून नहीं था, तागीद नहीं थी। घर-घरमें उसका स्वतः संचार था, जैसे पूरे शरीरमें खूनका संचालन होता है।

उसके बाद समयका परिवर्तन हुआ। इस बीचमें जब कि शिक्षित समाजने राज-द्वारकी ओर मुँह किये, कभी कदा-कंटसे और कभी कृत्रिम क्रोधसे, मन्त्रि-सभामें प्रवेशाधिकारकी अर्जी पेश की, तब उनके पीठ-पीछे गाँव-गाँवमें प्यासका पानी उतर गया कीचड़ तक और झर झरोंमें दर-दर भरने लगा नलका साफ पानी। हम लोगोंने अचम्भेमें आकर कहा—

उन्नति इसे कहते हैं। देशका जो विशाल रूप है, वह तो छिप गया हमार ओम्भलमें; और जो जीवन, जो प्रकाश देशमें सर्वत्र सूर्यकी किरणोंकी तरह फैला हुआ था, वह अग्र गथा छोटे-छोटे केन्द्रोंमें।

इस युगमें जिसे हम एजुकेशन या शिक्षा कहते हैं, उसका सोत या आरम्भ है शहरोंसे। उसके पीछे व्यापार और नौकरी चली आ रही है प्रासंगिक बनकर। यह विलायती शिक्षा-पद्धति वैसी ही है जैसी रेलके डब्बेकी बत्ती। कमरेमें खूब उजाला है, पर योजन-के-योजन पार करती हुई जहाँसे गाड़ी दौड़ रही है, वह विलकुल अन्धकारमें ही बिलाया जा रहा है। कारखानेकी बनी गाड़ी ही मानो सत्य है और हृदय-वेदनासे पूर्ण समस्त देश जैसे माया मरीचिका!

शहरमें रहनेवाले एक दल-विशेषको इस मौकेपर शिक्षा मिली, इज्जत मिली, रुपया मिला; और वे ही बन गये एनलाइटेड यानी प्रकाशवान। उस प्रकाशके पीछे बाकी बचे हुए देशमें लग गया पूर्ण-ग्रहण। जिन्होंने शिक्षाकी चमकती हुई दृष्टिकी अन्धतामें स्कूलकी बेंचोंपर बैठकर अंग्रेजीका सबक याद किया है, वे देशके मानी समझते हैं शिक्षित समाज, मयूरका मतलब निकालते हैं मोरपखासे, हाथी कहते हैं तो वे समझते हैं गजदन्त। सचमुच उसी दिनसे वर्तमान वाय-मुखरित नाट्य-मंचके नेपथ्यमें निरानन्द प्रकाशहीन गाँव-गाँवमें पानीकी तकलीफ, सड़कोंकी कमी, रोग, अज्ञान, सब-कुछ जम-जमकर इकट्ठा हो रहा है। और हमारी नगरी हो गई सुजला सुफला और विजली-पंखोंसे शीतला, वहीं सिर उठा-उठाकर खड़े हो रहे हैं आरोग्य-निकेतन और शिक्षाके प्रासाद। हमें याद रखना चाहिए कि देशकी छातीपर एक सिरसे लेकर दूसरे सिर तक विच्छेदकी इतनी गहरी छुरी और कभी भी नहीं चलाई गई। इसे आधुनिकताका लक्षण बताकर निन्दा करनेसे काम नहीं चल सकता। क्योंकि किसी भी सभ्य देशकी अवस्था ऐसी नहीं है। आधुनिकता वहाँ सप्तमीके चन्द्रमाकी तरह आवे-प्रकाश और आवे-अन्धकारसे खंडित नहीं हुई है। जापानमें पाश्चात्य विद्याका सम्बन्ध भारतवर्षसे भी कम समयका है, परन्तु वहाँ वह थिंगरा लगी फटी गुदड़ी नहीं रही। वहाँ व्यापक रूपसे फैली हुई विद्याके प्रभावसे सम्पूर्ण देशके मनकी विचार करनेकी शक्ति अविच्छिन्न रूपसे संचारित है। उनकी

। विचार-धारा एक साँचेमें ढली हुई नहीं है। आधुनिक ढालके ही लक्षणके अनुसार उस विचार-धारामें विचित्रता है और साथ ही एकता भी; उनकी वह एकता युक्तिकी एकता है।

किसी-किसीने तथ्यका हिसाब लगाकर दिखाया है कि पहले इस देशमें ग्राम्य पाठशालाओंमें प्राथमिक शिक्षाका जो काम चालू था, ब्रिटिश शासनमें क्रमशः वह घटता ही रहा है। नगर उससे भी ज्यादा सत्यानाशी नुकसान हुआ है जन-शिक्षा-पद्धतिके सहज मार्गोंके लोप होते जानेमें। सुना जाता है कि किसी समय यहाँ चारों तरफ आश्चर्यपूर्ण निपुणताके साथ नाना शाखाओंमें विभक्त नहरें खोदी गई थीं,—वर्तमान शासनके अन्याय और बुद्धिहीनताके कारण वे सब फिर मिट्टीसे पट गईं, और यही वजह है कि उनके किनारे-किनारे इतनी चिताएँ जल रही हैं। इसी तरह इस देशमें शिक्षाकी नहरें भी पट गईं, मिट गईं, और भीतर-बाहरकी पूरी दीनता बल पाकर उठ बैठी है। हमारे देशमें शिक्षाकी एक बड़ी समस्याका समाधान हुआ था। शासनकी शिक्षाने आनन्दकी शिक्षा बनकर देशके हृदयमें प्रवेश किया था, सम्पूर्ण समाजकी प्राणक्रियाके साथ मिलकर वह एक हो गई थी। परन्तु देशव्यापी प्राणोंके उस खाद्यमें आज दुर्भिक्ष आ पड़ा है। अभी पहलेका संचित किया हुआ कुछ बाकी वचा है, इसीलिए अभी तक उसकी खज्जहस्त मूर्ति हमें दिखाई नहीं देती।

मध्य-एशियाकी मरुभूमिमें जिन पर्यटकोंने प्राचीन युगके चिह्नोंकी खोज की है, उन्होंने देखा है कि वहाँ कितने ही सम्पन्न जनपद आज रेतीमें दबकर बिला गये हैं। किसी समय उन स्थानोंमें पानीका संचय था, नदीकी रेखाएँ अब भी मिलती हैं। परन्तु मालूम नहीं कब रस सूखने लगा और मरुभूमि एक-एक कदम आगे बढ़ने लगी, और मालूम नहीं कब उसने अपनी सूखी जीभसे हमारे हृदयको चाटना शुरू कर दिया जो आज लोकालयका अन्तिम हस्ताक्षर तक असीम पांडुरतामें विलीन हो गया। असंख्य ग्रामोंको लेकर जो हमारा देश है, उस देशकी मनोभूमिमें भी रसका उद्गम आज रुक गया है। जो रस बहुत समयसे नीचेके स्तरोंमें व्याप्त हुआ पड़ा है, वह भी दिनों-दिन खुरक हवाकी गरम साँसोंसे उड़ जायगा, अन्तमें प्राणनाशा मरुभूमि आगे बढ़-बढ़कर तृष्णा-रुपी अजगरकी तरह हमारे इस ग्रामोंसे-गुँये-हुए देशको ग्रास करती रहेगी।

मरुभूमिका यह आक्रमण हमारी निगाहमें नहीं आता, क्योंकि एक विशेष शिक्षाकी वजहसे देशको देखनेवाली आँखें हमने खो डाली हैं, भरोखेमें रखी लालटेनके उजालेके समान हमारी सम्पूर्ण दृष्टिका लक्ष्य केन्द्रीभूत हो गया है शिक्षित-समाजकी ओर।

में किसी समय बहुत दिनों तक बंगालके गाँवोंके निकट-सम्बन्धमें रहा हूँ। गरमियोंके दिनमें एक दुःखका दृश्य मेरी आँखोंके सामने आता था। नदीका पानी उतरते-उतरते सूख गया है, किनारेकी जमीन फट गई है, ताल-तलैयाँकी तलेटीकी गन्दी मिट्टी तक दिखाई देने लगी, और चारों तरफ तड़कती हुई गरम बालू धाँय-धाँय कर रही है। स्त्रियाँ बहुत दूर पैरों चलकर घड़ेमें नदीका पानी ला रही हैं, उस पानीको अभ्रजल-मिश्रित न कहें तो और क्या कहें? गाँवोंमें आग लगे तो बुझानेका कोई उपाय ही नहीं, और हैजा दिखाई दे तो उसे रोकना मुश्किल हो जाता है।

यह हुई एक बात, इसके सिवा एक और दुःखकी वेदना मेरे हृदयपर चोट पहुँचाई थी। शाम हो रही है, तमाम दिन खेत-खलिहानका काम पूरा करके किसान घर लौट रहे हैं। एक तरफ विस्तृत मैदान निस्तब्ध अन्धकारसे ढाया हुआ है, और दूसरी तरफ बाँसोंके भाड़ोंके भीतर एक-एक गाँव मानो रातकी वादके ठीक बीचों-बीच घनघोर अन्धकारमय द्वीपोंकी तरह पड़े हैं। उस तरफसे ढोलक बजनेकी आवाज सुनाई दी और उसके साथ ही बहुतसे लोगोंका एक साथ एकस्वरसे भजन-कीर्तनका एक ही पद बार बार सुनाई देने लगा। सुनकर मालूम होता था यहाँ भी चित्त-जलाशयका पानी तले तक आ पहुँचा है। उत्ताप बढ़ गया है, परन्तु उसे ठंडा करनेका साधन कितना थोड़ा है। एकके बाद एक वर्षों वीत गये इसी तरह दीन-अवस्थामें दिन काटते, इससे कैसे प्राण बच सकते हैं, अगर बीच-बीचमें ऐसा अनुभव न किया जाय कि हठ्ठीतोड़ मेहनत-मजूरीके बाद भी मन कहता है—मनुष्यके अन्दर ऐसी भी एक जगह है जहाँ अपमानका उपशम होता है और दुर्भाग्यकी दासतासे बचकर वहाँ वह जरा दम लेकर आराम कर सकता है। किसी समय मनुष्यको इस प्रकारकी तृप्ति देनेके लिए समस्त समाजने बहुत बड़ा आयोजन किया था। उसका कारण यह था कि समाजने विपुल जनसाधारणको अपना

समझकर स्वीकार कर लिया था। वह जानता था कि उनके नीचे उतर जानेपर सारा देश ही उतर जायगा। आज जनताका मानसिक उपवास दूर करनेके लिए कोई भी उसकी कुछ भी सहायता नहीं करता। उनके कोई आत्मीय या अपने आदमी नहीं हैं, वेचारे अपने-आप ही पहले जमानेकी तलछटसे ही किसी तरह थोड़ी-सी सान्त्वना पानेकी कोशिश करते रहते हैं। और कुछ दिन बाद यह भी खतम हो जायगा, सारे दिनके दुःख-धन्योंके रीते तटपर निरानन्द घरोंमें दीया भी न जलेगा, और न गीत ही सुनाई देंगे। वहाँ वाँस-झाड़ोंमें भोंसुर झनकारेंगे, झाड़ियोंमें से सियारोंकी बोली सुनाई देगी पहर-पहरमें, और उस समय राहोंमें शिक्षाभिमानियोंके झुंड विजलीकी रोशनीमें सिनेमा देखनेके लिए भीड़ लगाये रहेंगे।

एक ओर तो हमारे देशमें सनातन शिक्षाकी व्यापकता एक जानेसे जन-साधारणमें ज्ञानका अकाल चिरंजीव होकर खड़ा हो गया, और दूसरी ओर आधुनिक समयकी नई विद्याका जो आविर्भाव हुआ, उसका प्रवाह भी सार्वजनिक देशकी ओर नहीं रहा। पत्थरके बने कुँडोंके पानीकी तरह वह जगह-जगह बहाव होकर रह गया, जहाँ बहुत दूरेसे आकर तीर्थके पंडोंको दक्षिण देकर तब कहीं श्रृंखला भरनेकी नौबत आती है,— नियम ही ऐसे कसकर बाँधे गये हैं। मन्दाकिनीके रहनेका स्थान विशेष-रूपसे शिवके पेचीले जटाजूटमें ही है, मगर फिर भी उन्होंने अपनी धारा देव-ललाटसे उतारकर बहुत ही साधारण रूपमें घाट-घाटके नीचेसे मर्त्यजनोंके द्वारके सामने होकर बहाई है और घट-घटमें भरकर अपना प्रसाद बाँटा है। परन्तु हमारे देशमें चालू प्रवासिनी आधुनिकी विद्या वैसी नहीं है। उसमें विशिष्ट रूप तो है, पर साधारण रूप नहीं है। इसीलिए अंगरेजी सीखकर जिन्होंने विशिष्टता प्राप्त की है, सर्वसाधारणके संग उनके मनका मेल नहीं होता। हमारे देशमें सबसे बढ़कर जातिभेद यही है, श्रेणियोंमें परस्पर अस्पृश्यता इसीका नाम है।

अंगरेजी भाषाके घूँघटमें छिपी हुई विद्या स्वभावतः ही हमारे मनकी सहवर्तिनी होकर नहीं चल सकती। यही वजह है कि हममें से अधिकांश लोगोंको ही जितनी शिक्षा मिलती है, उतनी विद्या नहीं मिलती। अपने चारों ओरकी आवहवासे यह विद्या विच्छिन्न है, बिछुड़ी गई है; हमारे घर और स्कूलके

बीच ट्राम या पाँवगाड़ी चलती है, मन नहीं चलता। स्कूलके बाहर पड़ा हुआ है हमारा देश; उस देशने स्कूलका विरोध ही लादा है काफी, सहयोगिता तो नामको भी नहीं। उस विच्छेदके कारण हमारी भाषा और विचारधारा अधिकांश स्थलोंपर स्कूली लड़कोंके समान ही चला करती है। नोट-बुकोंका शासन हमपर से हटा नहीं, और न हमारे विचार-बुद्धिमें उतना साहस ही है; वस, हम तो सिर्फ नजीरें मिला-मिलाकर बहुत ही सावधानीसे कदम रखकर चलना जानते हैं। शिक्षाके साथ देशके मन या हृदयका सहज-स्वाभाविक मेल करानेकी तैयारियाँ भी आज तक नहीं हुईं। यह वैसा ही है जैसे दुरुहित रह गई इस पार मरकेके, चनातरखने, मी, में और उसका डूल्हा रहता है नदीके उस पार रती छोड़कर और भी आगे। आखिर पार होनेकी नाव गई कहाँ ?

पार होनेके लिए एक डोंगी दिखा दी जाती है, उसका नाम है साहित्य। यह बात माननी ही पड़ेगी कि हमारा आधुनिक साहित्य वर्तमान युगके अन्न-वस्त्रसे प्रतिपालित हुआ है। इस साहित्यने नई रोशनीकी दूत हमारे मनमें लगा दी है; लेकिन हमें पनपानेवाली असली खुराक तो वह उस पारसे पूरी-पूरी ला ही नहीं रहा। जो विद्या वर्तमान युगकी चिन्ताशक्ति या विचारधाराको विचित्र आकारमें प्रकट कर रही है और विश्व-रहस्यके नये-नये द्वार खोल रही है, हमारे साहित्यिक मुहल्लेमें उसका जाना-अना नहींके बराबर ही है। जो मन विचार करता है, जो मन विस्तार करता है और बुद्धिके साथ हमारे व्यवहारका सम्बन्ध स्थापित करता है जो मन, वह तो पूर्व-युगान्तरमें ही पड़ा हुआ है; और जो मन रसका सम्भोग करता है, उसने जाना-अना शुरु कर दिया आधुनिक भोजकी निमन्त्रणशालाके आँगनमें। स्वभावतः ही उसका भुकाव उसी तरफ हो रहा है जिधर मय परोसा जा रहा है—जहाँ उग्र गन्धसे हवा हो गई है मतवाली।

कहानी, कविता और नाटक, इन्हींसे हमारे साहित्यकी पन्द्रह-आने तैयारियाँ हो रही हैं। अर्थात् दावतका आयोजन हो रहा है, शक्तिका आयोजन विलकुल नहीं। यह सब-कुछ हो रहा है पाश्चात्य देशोंकी चित्ताकर्षक विचित्र-चित्तशक्तिके प्रबल सहयोगसे। वहाँ मनुष्यत्व देह-मन-प्राणमें, सभी दिशाओंमें व्याप्त है; इसीलिए वहाँ अगर बुटियाँ भी हैं,

तो साथ-साथ उनकी पूर्ति भी है। मान लो, वटवृक्षकी कोई डाली आँधीसे टूट रही है, कहींपर कीड़े खा-खाकर उसे खोखला कर रहे हैं, किसी साल वर्षाकी ही कमी है ; परन्तु फिर भी कुल मिलाकर वनस्पतिने अपने स्वास्थ्य और शक्तिको बनाये रखा है। उसी तरह पाश्चात्य देशोंके मन और प्राणोंको क्रियाशील कर रखा है वहाँकी अपनी विद्याने, अपनी शिक्षा ने, अपने साहित्य ने ; इन सबने मिलकर अपनी कार्यशक्तिकी अथक उन्नति की है। इन सबके उत्कर्षसे ही वहाँका उत्कर्ष है।

हमारे साहित्यमें रसका ही प्राधान्य है। इसीलिए जब कभी कोई असंयम या कोई चित्तविकार अनुकरणके नालेमें होकर इस साहित्यमें प्रवेश करता है, तो वही प्रधान हो उठता है और हमारी कल्पनाको वह रक्त विलासिताकी ओर बहाकर वीभत्स कर देता है। प्रबल प्राणशक्ति जब जाग्रत नहीं रहती, तो देशके छोटे-छोटे विकार भी बात-की-बातमें विषाक्त फोड़ा बनकर लाल मुख हो उठते हैं। हमारे देशमें इसी बातकी आशंका है। इस घरेमें दोष लगाये जानेपर हम नजीर दिखाने लगते हैं पाश्चात्य-समाजकी ; कहते हैं, यही तो सभ्यताकी आधुनिकतम (अप-टू-डेट) परिणति है ; परन्तु उसके साथ ही आधुनिक सभ्यताकी जो विचारपूर्ण सचल प्रबल और विशाल समग्रता चारों ओर फैली हुई है, उसे हम दबा ही जाते हैं।

किसी समय, जब कि मैं गई-गाँवमें रहता था, तब कोई-कोई साधु-वेशधारी भेरे पास आते थे और वे साधकके नामपर वाममार्ग आदि उच्छृंखल इन्द्रिय-चर्चाका संवाद मुझे सुनाया करते थे। तारीफ तो यह है कि उसे वे धर्मका एक अंग समझते थे। उन्हींसे सुना है कि धर्मका एक अंग समझी जानेवाली वह उच्छृंखलता भीतर-ही-भीतर शहरों तकमें शिष्य-प्रशिष्योंकी शाखाओंसे शाखायित हो गई है। इस पौष्ट-नाशिनी धर्म-नामधारी लालसाकी लोलुपताके व्याप्त होनेका मुख्य कारण यह है कि हमारे साहित्यमें, हमारे समाजमें, उन उपादानोंका भारी अभाव है जो विचार और बुद्धिकी साधनाके द्वारा कठोर गवेषणाकी ओर हमारे मनकी उत्सुकताको जाग्रत रख सकते हों।

इसके लिए कम-से-कम अपने साहित्यिकोंको दोष नहीं

दिया जा सकता। हमारा साहित्य सारगर्भ नहीं है, यह कहकर उसकी निन्दा करना सहज है ; किन्तु क्या करनेसे उसे सारवान बनाया जा सकता है, इसका पथ निर्णय करना उतना आसान नहीं। रुचिके सम्बन्धमें तो लोग बिलकुल लापरवाह हैं, क्योंकि उधर कोई शासन नहीं है। अशिक्षित रुचिको भी रसकी सामग्रीमें से, जो-भी-कुछ-हो, कोई-न-कोई आस्वादन मिल ही जाता है। और अगर वह समझता है कि उसीका ज्ञान रसज्ञानका चरम आदर्श है, तो उसपर तर्क करनेसे मामला फौजदारी तक पहुँच सकता है। कविता-कहानी-नाटकके वाजारकी तरफ जिन्हें समझदारोंका राजपथ नहीं मिला, वे कम-से-कम अनाड़ी-मुहल्लेके मैदानसे भी चल सकते हैं, किसी तरहका महसूल तो कहीं भी नहीं देना ; परन्तु जो विद्या मनन करनेकी है, वहाँ तो कड़ा पहरेवाला सिंहद्वार पार करके जाना पड़ता है, मैदान पार करके नहीं। जिन देशोंपर लक्ष्मी प्रसन्न हैं और सरस्वती भी, वे उस विद्याकी तरफ जानेके नये-नये मार्गोंको आये-दिन पक्के बनाते जा रहे हैं, उनका व्यापारिक आदान-प्रदान भी—पास और दूर, घर और बाहर—हर जगह चलता चल रहा है। हमारे देशमें भी तो अब देरी करनेसे काम नहीं चलेगा।

आज हमारे देशमें चारों तरफसे दुर्दिनके बादल घनघोर होकर मड़रा रहे हैं। शिक्षाके साथ-साथ हमारी आर्थिक दुर्गति भी चरम सीमा तक पहुँच रही है।

हम अपनी आर्थिक दीनताके कारण, अशिक्षाकी आत्म-ग्लानिसे कहीं नीचे तलैटीमें जाकर विला न जायँ, यह डर है। इस शिक्षामें हमें अपने मनको, दुर्भाग्यके ऊपर सिर उठाये रखनेके लिए अपनी सम्पूर्ण चेष्टाओंको तो जाग्रत रखना ही होगा। मनुष्यका मन जब छोटा हो जाता है, तो छोटेसे छोटे नखचंचुका आघात भी समस्त उद्योगको संकुचित और बौना बना देता है। हमारे देशमें अपनेको तोड़ने-फोड़नेवाली ईर्ष्या, परनिन्दा, दलबन्दिश और परस्पर टिली-लिली करनेकी उत्तेजना तो शुरूसे ही है ; उसपर हियेका उजाला या चित्तका प्रकाश भी जैसे-जैसे मन्द होता जायगा, वैसे-वैसे अपने ऊपर अश्रद्धा होनेके कारण ही दूसरोंको छोटा बनानेका अकारण प्रयास विषाक्त होकर उत्तरोत्तर बढ़ता ही जायगा।

प्रान्तीयता और साम्प्रदायिकता उसीका विपक्व है।

आज जो हिन्दू-मुसलमानोंका लज्जाजनक विद्वेष देशको आत्मघातकी ओर प्रवृत्त कर रहा है, उसकी जड़में है सारे देशमें फैली हुई अवृद्धि। हमारी निर्धनता रूपी अलक्ष्मीने उस अशिक्षित अवृद्धिकी सहायतासे ही हमारे भाग्यको नींव उखाड़नेके काममें जासूस लगा दिये हैं; अपने आदमियोंको वह शत्रु बनाये दे रही है, विधाताको हमारे विरुद्ध किये दे रही है। अन्तमें अपना सर्वनाश करनेकी जिद यहाँ तक बढ़ गई कि आज हम अपनी ही भाषाको तोड़-फोड़ डालनेकी कोशिशसे वाज नहीं आ रहे। शिक्षा और साहित्यके जिस उदार क्षेत्रमें, सब तरहके मतभेद होते हुए भी एक-राष्ट्रीय मनुष्योंको मिलानेका स्थान है, वहाँ भी हमारा काँटे बोनेका उत्साह व्यथित नहीं हुआ, जरा भी लज्जित नहीं हुआ। दुःख होता है कि उसमें धिक्कार नहीं; किन्तु देश-भरमें फैली हुई अशिक्षाग्रस्त हेयताने हमारा ही मस्तक नीचा कर दिया है, हमारे समस्त महान उद्यमोंको उसने व्यर्थ कर दिया है। राष्ट्रीय बाजारमें राष्ट्रके अधिकारको लेकर मोल-तोलका शोरगुल कितना ही क्यों न होता रहे, वहाँ गोल-टेबिलके भँवरमें प्रतिकारकी चरम कुंजी नहीं मिल सकती। नावके नीचे जहाँ बन्धन ढीला है, वहीं हमें जल्दी हाथ लगाना पड़ेगा।

सबसे पहले चाहिए शिक्षित मन। स्कूल-कालेजोंके बाहर शिक्षा विद्या देनेका उपाय है साहित्य। मगर उस साहित्यको सर्वांगीण-रूपसे शिक्षाका आधार बनाना होगा, देखना होगा कि उसके ग्रहण करनेका मार्ग सर्वत्र सुगम हुआ या नहीं। इसके लिए किस मित्रको बुलावें, मित्र भी तो आज दुर्लभ हो गये हैं। इसीसे अपने देशके विश्वविद्यालयके द्वारपर अर्जी पेश कर रहा हूँ।

मस्तिष्कके साथ स्नायुओंका अविच्छिन्न सम्बन्ध सम्पूर्ण शरीरके ग्रंथ-प्रत्यंगोंमें व्याप्त है। विश्वविद्यालयको उस मस्तिष्कका स्थान ग्रहण करके सम्पूर्ण शरीरमें स्नायुतन्त्रकी प्रेरणा देनी होगी। प्रश्न यह है कि यह कैसे किया जा सकता है। उसके उत्तरमें मेरा प्रस्ताव यह है कि परीक्षाका एक व्यापक जाल देश-भरमें फैला दिया जाय। उसकी व्यवस्था ऐसे सहज-स्वभाविक और व्यापक रूपसे की जाय कि जिससे देश-भरके लोगोंमें स्कूल-कालेजके बाहर रहकर भी स्वेच्छासे परीक्षा-पाठ्य पुस्तकें पढ़ने और मनन करनेका उत्साह पैदा हो।

यह देखनेके लिए कि अन्तःपुरकी स्त्रियाँ अथवा पुरुष, जो अनेक बाधाओंके कारण विद्यालयमें भरती नहीं हो सकते, वे भी पुरसतके वक्त अपनी कोशिशसे अशिक्षाकी लज्जाको दूर कर रहे हैं, विश्वविद्यालय हर जिलेमें परीक्षाके केन्द्र स्थापित कर सकता है। बहुतसे विषय एकसाथ मिलाकर विश्वविद्यालयमें डिग्रियाँ दी जाती हैं; किन्तु इस क्षेत्रमें उपाधि देनेके लिए उतनी बहुलताकी जरूरत नहीं। अक्सर यह देखनेमें आता है कि व्यक्ति-विशेषके मनकी रुचिका भुकाव विषय-विशेषकी तरफ होता है। उसी विषयमें अपने विशेष अधिकारका परिचय दे सकनेपर समाजमें वह अपने लिए विशेष स्थान पानेका अधिकारी हो सकता है। उम्र अधिकारसे उसे वंचित रखनेका कोई कारण नहीं दिखाई देता।

विश्वविद्यालय यदि अपने पीठस्थानके बाहर भी व्यापक ढंगसे अपनी सत्ता फैला दे, तभी हमारी भाषामें काफी तादात्म्य शिक्षा-पाठ्य पुस्तकोंकी रचना सम्भव हो सकती है। नहीं तो कभी भी हमारे साहित्यमें विषयोंकी दीनता नहीं मिट सकती। जिन सीखने-योग्य विषयोंका ज्ञान होनेपर आत्म-सम्मानकी रक्षा होती है, उसके लिए और कोई उपाय न होनेसे यदि बाध्य होकर हमें अंगरेजी भाषाके द्वारपर जाकर हाथ पसारना पड़े, तो इस दरिद्रतासे तो हम अपनी मातृभाषाको हमेशा अपमानित ही बनाये रखेंगे। ऐसे व्यक्ति जो अपनी मातृभाषा ही जानते हैं, शिक्षित-समाजमें उनकी गिनती क्या हमेशा अछूत-श्रेणीमें ही होती रहेगी? ऐसा भी एक समय था जब अंगरेजी स्कूलके प्रथम श्रेणीके छात्र यह कहनेमें कि वे अपनी भाषा नहीं जानते, अपना अगौरव नहीं समझते थे, और देशवासी भी उनके लिए सम्मानके साथ कुरसी बढ़ा देते थे। वे दिन अब नहीं रहे, यह सही है, मगर अब उन्हें यह कहते हुए सिर झुकाना पड़ता है कि वे सिर्फ अपनी ही भाषा जानते हैं। इधर राष्ट्रीय क्षेत्रमें स्वराज पानेके लिए हम जी-जानसे कष्टोंका सामना करते हैं, परन्तु शिक्षाके क्षेत्रमें स्वराज पानेका उत्साह हमारे अन्दर जाग्रत ही नहीं हुआ। यह तो बहुत थोड़ा कहा गया है। ऐसे आदमी आज भी हमारे देशमें मौजूद हैं जो इसका विरोध करनेको तैयार हैं, और वे समझते हैं कि शिक्षाको मातृभाषाके आसनपर बिठा देनेसे उसकी कीमत घट जायगी। विलायत जाने-आनेके प्रथम युगमें जब कि

ग्लो-इंडियनी नशा उत्कट था, तब उस समाजमें स्त्रियोंको साड़ी पहनानेसे प्रेसिडज घटती थी। उसी तरह शिक्षा-सरस्वतीको साड़ी पहनानेसे आज भी बहुतसे लोग उसमें विद्याकी मानहानिकी कल्पना करते हैं ! साथ ही यह भी मानी हुई बात है कि साड़ी-पहने हुए अपने निजी वेशमें ही देवीको हमारे घर-घर चलने-फिरनेमें आराम मिलेगा, ऊँचे खुरवाले घूट-जूते पहनकर चलनेमें उन्हें कदम-कदमपर अड़चन महसूस होगी।

एक दिन, अपेक्षाकृत कम उमरमें जब कि मुझमें शक्ति थी, तब कभी-कभी अंगरेजी साहित्यको मैंने मुँहजवानी बँगला बनाकर सुनाया है। मेरे वे श्रेता सभी-कोई अंगरेजी जानते थे। फिर भी उन्होंने मंजूर किया है कि अंगरेजी साहित्यकी वाणी बँगला-भाषामें उनके मन तक जल्दी पहुँचती है। वास्तवमें आधुनिक शिक्षा अंगरेजी-भाषा-वाहिनी होनेके कारण ही हमारे मनके प्रवेश-द्वारपर उसका बहुत-कुछ मारा जाता है। अंगरेजी खाना खानेकी टेबिलपर बैठकर भोजन करनेकी जटिल पद्धतिका जिन्हें अभ्यास नहीं है, ऐसे भारतीय लड़के विलायत जाते वक्त रास्तेमें पी-ऐंड-ग्री कम्पनीके डिनर-कमरेमें जब खाने बैठते हैं, तो भोजन और रसनाके बीच छुरी-काँटोंका दौत्य या दलाली उनके लिए बाधक होनेके कारण ही वह भरपूर भोजनके सामने बैठे हुए भी भूखे पेटकी माँगको पूरा नहीं कर सकते। हमारी शिक्षाके भोजकी भी ठीक यही दशा है।

वहाँ है सब-कुछ ; पर बीचमें जो बहुत-कुछ नुकसान हो जाता है। यह जो-कुछ मैं कह रहा हूँ, सब कालेजी यज्ञकी बात है, मेरा आजका आलोच्य विषय यह नहीं है। मेरा विषय है सर्व-साधारणको शिक्षित बनानेवाली शिक्षाका प्रसार। शिक्षाके पानीका नल चलानेकी बात में नहीं कह रहा, मेरे कहनेका मतलब है जहाँ उस पाइपकी पहुँच नहीं है वहाँ पानीका इन्तजाम होना चाहिए। मातृभाषामें वह व्यवस्था यदि गोखुरसे अधिक प्रशस्त न हुई, अगर उसने अपने इस मौजूदा तंग दायरेको काफी लम्बा-चौड़ा न बनाया, तो इस विद्या-हीन देशके रेगिस्तानी मनकी क्या गति होगी, कल्पना कीजिये।

मैं अपनी प्यासी मातृभाषाकी तरफसे, अपने ही देशके विश्वविद्यालके द्वारपर खड़ा चातककी तरह उत्कंठित वेदनाके साथ प्रार्थना करता हूँ—तुम्हारे अग्रभेदी शिखरको घेरे हुए जो पुंज-के-पुंज श्यामल मेघ घूम-फिर रहे हैं, उनका प्रसाद आज फल और अनाजपर वरसने दो ; पुष्प और पत्तोंसे पृथिवी सुन्दर हो उठे, मातृभाषाका अपमान दूर हो, युग-शिक्षाकी उमड़ती हुई धारा हमारे चित्तकी सूखी नदीके रीते मार्गसे बढ़की तरह वह निकले, दोनों तट पूर्ण चेतनासे जाग उठें, घाट-घाटपर मुखरित हो उठे आनन्दध्वनि।

अनुवादक

धन्यकुमार जैन

देशी बनाम विलायती

कवि रवीन्द्रनाथ ठाकुरने अपनी 'जीवन-स्मृति'में एक जगह लिखा है :—“बचपनमें जब मैं अपनी मातृभाषा पढ़ता था, तो सम्पूर्ण मन उसके साथ चलता था। असलमें शिक्षा ऐसी वस्तु है जिसे यथासम्भव भोजनके समान होना चाहिए। खानेकी चीज जीभपर लगते ही उसके स्वादका आनन्द मिलना शुरू हो जाता है—पेट भरनेसे पहले ही पेट खुश होकर जाग उठता है, और उससे उसके पाचक रसका आलस दूर हो जाता है। हमारे लिए अंगरेजी-शिक्षा ठीक इससे उलटा असर करती है। उसके पहले ही गस्सेमें सारे-के-सारे दाँत एक सिरेसे दूसरे सिरे तक हिल उठते हैं—मुँहके भीतर एक छोटा-मोटा भूकम्प-ग्मा आ जाता है। उसके बाद, वह कंकड़-पत्थर है या रसमें पगा लड्डू, यह समझते-समझते ही हमारी आधी उमर बीत जाती है। उच्चारण और व्याकरणकी घाँस लगकर जब नाक-आँखसे खूब पानी गिरता रहता है, तब अन्तरात्मा बिलकुल ही उपासी बनी रहती है। अन्तमें बहुत ही मुश्किल और देरसे भोजनके साथ जब हमारा परिचय होता है, तब तक भूख ही मारी जाती है। पहलेसे ही मनको चलानेका मौका न मिलनेसे उसकी चलत-शक्ति ही मन्द पड़ जाती है। उस समय, जब कि चारों ओर खूब कसकर अंगरेजी पढ़ानेकी धूम मची हुई थी, तब जिन्होंने साहसके साथ मुझ तक मुझे मातृभाषा सिखानेकी व्यवस्था की थी, अपने उन स्वर्गीय भूमले-भइयाके लिए मैं सकृतज्ञ प्रणाम करता हूँ।”

पत्नीका पत्र

श्री ए० सीताराम 'आनन्द', वी० एस-सी०

उस दिन रविवार था। सप्ताहमें एक बार जिस तरह रविवार आता है, उसी प्रकार रामनाथको सप्ताहमें एक बार अपनी पत्नी वाणीसे पत्र मिला करता था। वह पत्र भी रविवारके दिन ही मिल जाता था। यदि एक बार संयोगवश रविवार आना भूल भी जाय; लेकिन पत्नीसे पत्र किसी हालतमें भी न छूटता, क्योंकि रामनाथने अपनी पत्नीसे यह प्रतिज्ञा करा ली थी। वाणी अपने मायके मैसूरमें रहती थी, और रामनाथ बंगलोरमें अपने चाचाके यहाँ रहकर मेडिकल कालेजमें पढ़ता था।

रामनाथ बड़ा रसिक था। उसकी रसिकता भी कृत्रिम नहीं थी, वह उसके स्वाभाविक गुणोंमें से एक थी। आम खाते हुए उसके माधुर्यको प्रकट करनेमें कोई रसिकता नहीं; लेकिन नीम खाते हुए आमके माधुर्यको प्रकट करनेमें रसिकता है। रामनाथकी रसिकता इसी श्रेणीकी थी। एक बार रामनाथपर वाणी किसी कारण नाराज़ हुई। उसने भी उसे खूब चिढ़ाया। वह जैसे-जैसे चिढ़ती गई, वह अधिकाधिक मुसकराता रहा। यह था घावपर नमकका छिड़कना। वाणी आपेसे बाहर हो गई। उसकी आँखोंसे आँसूकी धारा बह चली। जब वाणी रूठती, तब पतिसे दूर रहती; लेकिन अबकी वह रामनाथके पास आकर उसकी देहपर लता-सी लग गई। उसकी छातीपर अपना सिर रखकर फूट-फूटकर रोने लगी। अब शान्ति-समाधान आरम्भ हुआ। रामनाथ उसके आँचलसे आँसुओंको पोंछने लगा।

वाणी दुःख और नाराज़गीसे बीच-बीचमें हिचकियाँ लेती हुई बोली—“अब आये पुचकारने। दूर हट जाओ, मुझे न छूना।”

लेकिन वाणी खुद उससे ज़रा भी दूर न हटी। उसके कन्धेपर हाथ धरकर फिर जोरसे रोने लगी। उसका यह व्यवहार देखकर रामनाथ ठठाकर हँस पड़ा।

एक हाथसे उसकी पीठपर थपकियाँ देते हुए, दूसरे हाथसे उसकी माँग सम्हारते हुए बोला—“वाणी, अगर मैं पहले ही तुम्हें सान्त्वना देता, तो क्या मुझे तेरी यह नाराज़गी देखनेको मिलती? तुम्हें चिढ़ाकर एक बार तेरा सौन्दर्य देखना चाहता था, इसीलिए तो मैंने तुम्हें पहले ही तसल्ली नहीं दी। और क्या बढ़िया चिढ़ना भी था! ये आँखें! इन भौंहोंका सिकुड़ना! इन अधरोंका फड़कना! यह बदन-ठन! वह—”

रामनाथ अपने वाक्यको पूरा भी करने न पाया था कि बीचमें ही वाणीने उसके मुँहको बन्द करके कहा—“बस, अपने इस वर्णनको समाप्त करो। आँख ऐसी है! कान वैसा है! हट जाओ, मुझे न छुओ।”

अब भी वाणी जैसी-की-तैसी खड़ी थी, ज़रा भी न हिली, न डुली। रामनाथ फिर हँस पड़ा, बोला—“तू कहती तो है कि मुझे न छूना; लेकिन तू ही मुझसे अलग क्यों नहीं हो जाती?”

वाणी यह सुनकर मुसकराई। इठलाती हुई बोली—“मैं कहती हूँ, तुम मुझे न छूना?”

वाणीके सारे शरीरमें हँसीका संचार होने लगा। वह रामनाथके बाहुपाशोंमें बँध गई। धीरेसे वाणीकी ठोड़ी पकड़कर हिलाते हुए रामनाथने कहा—“वाणी, ज़रा इस ओर तो देखो! तू भी बड़ी चालाक है।”

मुसकराती हुई वह बोली—“क्या?”

“तूने इतनी बुद्धिमत्तासे बातें की हैं, इसके लिए तुम्हें कुछ-न-कुछ पुरस्कार दिये बिना कैसे रहूँ?”

“क्यों नहीं रह सकते?”

“ऐसा न होगा?”

“इतनी आकांक्षा?”

उसकी अमित आकांक्षाओंका क्या कहना? शब्दोंसे परे उसकी आकांक्षाओंके परिणामको शब्दोंसे

मापना समुद्रकी माप गागरसे करने-जैसा है । रामनाथ बड़ा रसिक था, इसलिए उसने अपनी आकांक्षाओंको प्रकट करनेकी व्यर्थ चेष्टाएँ नहीं कीं । उसने मौन रहकर ही अपनी आकांक्षाओंकी गहराई वाणीपर प्रकट कर दी ।

× × ×

मालूम होता है कि विधाताने उन दोनोंको मिलानेके लिए बड़ा परिश्रम किया था । वाणी रामनाथकी रसिकताके अनुरूप स्त्री और प्रिय पत्नी है । और लोग तो इस जिन्दगीको एक यात्रा समझते हैं और न-जाने क्या-क्या अर्थ लगाते हैं ; लेकिन उनका प्रेम सीमा-रहित समुद्र है । उनका आनन्द अबाध तथा भरपूर है ।

वाणी पढ़ी-लिखी थी । वह अपने प्रियतमको ऐसा पत्र लिखती, जिसे पढ़कर रामनाथ दंग रह जाता । यदि रामनाथ चार पन्नोंका पत्र लिख भेजता, तो वाणी आठ पन्नेकी चिट्ठी लिख भेजती । आप कहेंगे कि वे पागल हैं, और उनका काम भी पागलपन है । दरअसल यह बात ठीक है । युवावस्थाका आरम्भिक दाम्पत्य-प्रेम इसी तरहके पागलपनसे भरा रहता है । यदि रामनाथ भी उन्मत्त हो गया, तो उसका क्या अपराध ?

× × ×

हम पहले ही कह चुके हैं कि उस दिन रविवार था । उस दिन तो वाणीका पत्र आनेवाला था । पत्र मिलनेकी आशासे ही वह बड़ी देर तक डाकिएकी प्रतीक्षा करता रहा । उस आशाका बीजारोपण शनिवारकी रातको ही हो गया था । वह शनिवारकी रातको इसी आशासे सोया कि कल वाणीका पत्र मिल जायगा । रविवारको सुबह जब वह आठ-नौ बजे बिस्तरसे उठा, तो उसे पहले यही चिन्ता हुई कि गत रविवारको वाणीका पत्र बहुत संक्षिप्त था । उसने लिखा था—“अधिक बातें लिखनेके लिए समय नहीं है । अगले सप्ताह दिल खोलकर लिखूंगी । क्षमा करें ।”

रामनाथ उस संक्षिप्त पत्रको पढ़कर बहुत चिढ़ा । फिर भी अन्तिम वाक्य पढ़कर कुछ तसल्ली अवश्य हुई । बड़ी मुश्किलसे उसने उस हफ्तेको काटा । फिर रविवार आया । वाणीने पिछले सप्ताहमें रामनाथको आशा दिलाई थी, वह अब तक रामनाथके मनमें विचरण कर रही थी । रामनाथने चिढ़कर वाणीके उस छोटे-से पत्रके उत्तरमें छै पृष्ठका उत्तर लिख भेजा था । वह सोचने लगा—“चिढ़कर मैंने वाणीको जो पत्र लिख भेजा था, उसके उत्तरमें वह क्या-क्या सान्त्वना देनेकी बातें लिखेगी ? दिक्कत तो इस बातकी है कि रविवारके दिन डाक बड़ी देरीसे आती है ।”

एक बजे रामनाथको डाकिया आता हुआ दिखाई पड़ा । रामनाथ वहींसे चिल्ला उठा—“रामय्या, हमारी कोई चिट्ठी है ?”

डाकियाने वहींसे उत्तर दिया—“जी हाँ, है ।”

पास आकर रामय्याने एक पत्र निकाला । रामनाथने अपने मनमें ही सोचा कि ज़रूर वाणीकी चिट्ठी है । एक लिफाफा देकर रामय्या चला गया । लिफाफा कुछ मोटा था । लिफाफेपर लिखे हुए अक्षरोंको देखकर रामनाथ उस पत्रको खोलना ही चाहता था कि इतनेमें गणेश साइकिलपर आता हुआ दिखाई दिया । रामनाथको देखकर गणेश वहींसे चिल्ला उठा—“रामनाथ !”

रामनाथने लिफाफा खोलना बन्द कर दिया । गणेशने पास आकर कहा—“अरे यार, मैचके लिए देर हो गई । अभी तो तुमने कपड़े भी नहीं पहने हैं !”

रामनाथ अपनी पत्नीके पत्रकी प्रतीक्षामें यह भूल ही गया था कि आज क्रिकेट मैच है । अब पत्र कैसे पढ़ता ? मैचमें जानेके लिए देर हो गई है, गणेश भी साथ है और लिफाफा भी मोटा दीखता है । फिर पढ़नेके लिए वक्त कहाँ ? जल्दी कपड़े पहनकर पतलूनकी जेबमें उस लिफाफेको रख लिया और साइकिल लेकर गणेशके साथ

चला। मैचमें जानेके लिए बड़ी देर हो गई थी। बीच-बीचमें गणेश तरह-तरहके सवाल करके रामनाथको तंग कर रहा था, उधर उसका मन वाणीका पत्र पढ़नेके लिए उतावला हो रहा था। रामनाथके सिरपर यहाँ धुन सवार थी कि लिफाफा बहुत मोटा है। शायद वाणीने दस-पन्द्रह पृष्ठ लिखे होंगे। बड़ी भलीमानस है। वचनानुसार उसने पत्र लिख भेजा है। उसने क्या लिखा होगा? जब वह मन लगाकर लिखती है, तो उसकी रचना-शैली कैसी रोचक हो जाती है!—“अरे रामनाथ! बुढ़िया! बुढ़िया! देखते कहाँ हो?”—गणेश चिल्लाया। रामनाथकी साइकिल एक वृद्धीसे टकरानेवाली ही थी; लेकिन दुर्घटना होनेके पहले गणेशने चेतावनी दी। दैवयोगसे ही वह दुर्घटना होते-होते रुकी। उसकी साइकिल बढ़ती ही जा रही थी; लेकिन तुरन्त रामनाथ साइकिलसे उतर पड़ा। गणेशसे बोला—“अरे, यह क्या हो गया? आज सुबह उठते ही किसका मुँह देखा था?” फिर साइकिलपर चढ़ गणेशके साथ आगे चला। चौराहेपर जब दोनों पहुँचे, तो रामनाथकी साइकिल पुलिस-स्टेशनकी ओर मुड़ी। फिर गणेशने पुकारा—“राम! मालूम होता है कि आज तुम्हारी अक्ल ठिकाने नहीं है। मैचके लिए काफी देर हो गई है, तब भी हज़रत पुलिस-स्टेशनकी ओर मुड़ रहे हैं! ठीक राहपर चलो। आखिर माजरा क्या है?”

“कुछ भी नहीं, गणेश! यही सोच रहा था कि आज घरसे रुपये क्यों नहीं आये?”

“अजीब अवलमन्द हो! आज रविवार है। तुम्हें रुपये कहाँसे मिलेंगे?”

“ओह! आज रविवार है। मैंने समझा था कि शनिवार है।”

—“अरे भई, झूठ बोलनेकी कोई हद भी है!”

× × ×

दोनों सेन्ट्रल कालेजके मैदानमें पहुँचे। मैच होनेवाला था। देरसे पहुँचनेके कारण गणेश और

रामनाथके साथियोंने उन्हें आड़े हाथों लिया। गणेशने सारा दोष रामनाथके मत्थे मढ़ दिया। रामनाथ किसके माथेपर दोष लगा सकता था? वह कह सकता था कि वाणीका पत्र ही इस देरके लिए कारण है; लेकिन पत्रका क्या दोष था? डाकिया ही देरसे आया; परन्तु वह भी अपराधी न था, क्योंकि रविवारके दिन दोपहरके बाद ही डाक बाँटी जाती है। यह अपराध तो डाक-विभागका है, क्योंकि उन लोगोंने इस तरहका प्रबन्ध क्यों किया है? यह तर्क तो ठीक है; लेकिन उससे पृच्छनेवाला कौन?

रामनाथके विरोधी दलवालोंने खेलना आरम्भ कर दिया था, इसलिए रामनाथको फील्डिंग करने जाना पड़ा। गणेश और रामनाथ दोनों जाकर अपने-अपने स्थानपर खड़े हो गये। लिफाफा तो पतलूनकी जेबमें ही था। इसलिए रामनाथकी हालत पानीसे बाहर निकाली हुई मछलीकी-सी थी। वह उस पत्रमें लिखे हुए विषयोंके बारेमें विचार करने लगता; परन्तु तन्मयतासे विचार करने भी न पाता कि बीच-बीचमें गेंद उसकी ओर आकर उसके विचारोंको तितर-बितरकर देती थी। जैसे ही उसकी विचार-धारा टूटती, वह फिरसे सोचने लगता कि अबकी बार वाणीने बहुत लम्बा-सा पत्र लिखा होगा। इसमें वाणीने कैसी प्रेम-माला गूँथनेकी चेष्टा की होगी? उसने मुझे किस तरह सम्बोधित किया होगा? पिछली बार तो उसने लिखा था—“मो-ह-न! अबकी बार……” भीड़ चिल्ला उठी—“रामनाथ, कैच (Catch) कैच (Catch) लपको।”

रामनाथकी विचार-शृंखला टूट गई। रामनाथकी ओर ऊपरसे गेंद आ रही थी। लोग चाहते थे कि रामनाथ कैच ले ले; परन्तु रामनाथ वहाँ उपस्थित न था। वह तो हवामें महल बना रहा था। लोगोंके चिल्लानेसे वह महल धराशायी हो गया। रामनाथ गेंद न लपक सका। चारों ओर लोग फिर चिल्ला उठे—“रामनाथ, स्टेडी! स्टेडी!”

रामनाथने अपने मनमें सोचा कि यह मेरी

बदनसीबी है। कुछ देर बाद कैप्टेनने कहा कि रामनाथ, अब तुम जाकर गेंद दो। कैच छोड़ देनेके कारण ही वह निस्तेज हो गया था। बॉलिंगमें भी रामनाथ असफल रहा। वह एक विकेट भी न ले सका।

चार बजे चाय-पानके लिए खेल बन्द हुआ। सब खिलाड़ी चाय पीनेके लिए बैठ गये। रामनाथने सोचा कि कहीं एकान्तमें जाकर वाणीका पत्र क्यों न पढ़ लूँ? इसके अलावा मुफ्तकी चाय मिल रही है। चारों ओर प्रेक्षकोंकी भीड़ थी। दस पन्नोंमें लिखे गये प्रेयसीका प्रेम-पत्र पढ़नेके लिए कुछ समय भी चाहिए और वाणीका पत्र पढ़नेके लिए एकान्त भी। यदि प्रेम-सुधासे शराबोर पत्र पढ़ते समय कोई न हो और चारों ओर सन्नाटा रहे, तो उस पत्रकी महत्ता और बढ़ जाती है। रामनाथने अपने मनमें निश्चय किया कि वाणीका पत्र पढ़नेके लिए यह जगह बिल्कुल अनुपयुक्त है, और फिर वह सबके साथ चाय पीने बैठ गया।

अब सब साथियोंने रामनाथका मज़ाक उड़ाना शुरू किया। गणेशने कहा—“आज रामनाथको ग्रहण लग गया है।”

नारायण बोला—“सिरपर भूत सवार है।”

विज्जने, जो कैप्टन था, पूछा—“जब कैच आया, तब हज़रत कहाँ देख रहे थे?”

गोपालने उत्तर दिया—“आसमानके तारे गिन रहे थे।”

कृष्ण बोला—“नहीं जनाब, यह सोच रहे थे कि हमें स्वराज्य कब मिलेगा।”

इस तरह लोग मनमाने कटाक्ष करने लगे। रामनाथ कुछ न बोला, सब सुनता रहा। असली मेद किसीको मालूम न था। रामनाथने अपने मनमें ही कहा, वाणीका पत्र मिला। उसे न पढ़ पाया। यही तो इन सबका कारण है। हाँ, वाणीका पत्र—प्रेम-सुधा बरसानेवाला पत्र—दस पृष्ठका पत्र—रामनाथके पायजामेकी जेबमें सुरक्षित पत्र!

चायके बाद रामनाथके दलवालोंने खेल आरम्भ किया। रामनाथका ध्यान खेलकी ओर बिल्कुल न था। उसकी आँखोंके सामने वाणी और उसका पत्र नाच रहा था। अब उसे पढ़नेकी फुरसत भी थी; परन्तु चारों ओर उसके मित्र बैठे थे, इसलिए पत्र पढ़नेका साहस न हुआ। एकान्तमें जाकर पढ़ सकता था; लेकिन यदि वह पढ़नेके लिए कहीं चला जाय और यहाँ खेलनेकी बारी आ जाय तो? बड़ी आफत होगी। उसने निश्चय किया, अब तक रहा, तो कुछ देर तक और सही। यह निश्चय करके उसने एक बार अपने पायजामेकी जेबमें हाथ डाला। वाणीके पत्रके स्पर्शसे उसके सारे शरीरमें आनन्दका संचार हो उठा।

× × ×

रामनाथ अपने दलके खिलाड़ियोंमें ग्यारहवाँ था। रामनाथकी बदनसीबी छूतकी बीमारीकी तरह सबको लग गई थी। एक-एक करके सभी लोग जल्दी-जल्दी ‘आउट’ हो गये। अब रामनाथकी बारी आई। रामनाथके दलवालोंकी विजयके लिए अब तीस ‘रन’ बाकी था। रामनाथ ही अन्तिम खिलाड़ी था। २० ‘रन’ करना रामनाथका कर्तव्य था। सब लोग उतावले हो रहे थे। रामनाथने मनमें विचार किया—‘मेरे कारण मेरे साथवाले क्यों हारें?’ इसलिए अपने दिलको पक्का करके मैदानमें उतरा। उस समय भी वह सोचता था—‘आज वाणीका पत्र न मिलता, तो कितना अच्छा होता। खैर, मिल गया, यह कोई अपराध नहीं; लेकिन कुछ पहले मिल जाना चाहिए था। आह! आज रविवार है!’ इसी तरह विचार करते हुए उसने खेल आरम्भ किया। दस-पन्द्रह मिनिट तक मञ्जेके साथ खेलता रहा। अब दस ‘रन’ बाकी थे। सब लोग चेतावनी दे रहे थे—“स्टेडी राम, स्टेडी रामनाथ!”

विजयलक्ष्मी आँखमिचौनी खेल रही थी। खेल और भी आगे बढ़ा। अब चार ‘रन’ बाकी थे। अब रामनाथका दूसरा साथी ‘बैटिंग’ कर

रहा था। इसी बीच वाणीके पत्रने रामनाथके मनको उकसाया। वह सोचने लगा—‘आगेसे ऐसा प्रबन्ध कर दूँगा कि पत्र सोमवारको मिला करे। यह रविवार……।’ विचार-धारा टूट गई। दूसरा साथी गेंदको एक ओर मारकर दौड़ा। रामनाथ इस आकस्मिक घटनाके लिए तैयार न था। वह भी दौड़ा; लेकिन कुछ देरके बाद। नतीजा यह हुआ कि दोनों ‘रन आउट’ हो गये। विजयलक्ष्मी हाथसे निकल गई। हार जानेके कारण उसके साथियोंने सारा दोष उसीके मत्थे मढ़ा। रामनाथको सबके सामने तो यह दोष स्वीकार करना पड़ा; लेकिन उसने अपने मनमें ही कहा कि यह दोष मेरा नहीं, वाणीके पत्रका है।

रामनाथ रूमालसे हाथ-मुँह पोंछकर घरकी ओर चलनेके लिए तैयार हुआ। वाणीका पत्र पढ़नेके लिए घर ही सुरक्षित स्थान था, इसमें शक नहीं। अपने कमरेका दरवाजा बन्द करके बैठ जायगा, तो फिर मक्खियोंके सिवा और कोई आनेवाला नहीं; मगर ‘मेरे मन कुछ और है विधनाके कुछ और’।

गणेश पास आकर कहा—“राम, आज ओपेरा हाउसमें ‘दि सोल आफ ललित’ है, चलो, देख आवें।”

रामनाथने अन्यमनस्क होकर कहा—“मैं नहीं जा सकता, बहुत थका हुआ हूँ और घर भी जाना है।”

गणेशने कहा—“चलो भी यार! धीरे-धीरे चलेंगे। अभी तो छै ही बजे हैं। यह पिक्चर तुम्हें जरूर देखना चाहिए।”

—“मेरे पास पैसे नहीं हैं।”

रामनाथकी यह बात विलकुल झूठ थी, क्योंकि उसका जेबमें पाँच रुपयेका एक नोट था। रामनाथने इस समय सत्यमें कंजूसी करना मुनासिब समझा।

गणेशने कहा—“अच्छा, मैं दूँगा, तुम चलो।”

अब तो कोई दूसरा चारा न था। “अच्छा, चलो।”—कहकर वह गणेशके साथ हो लिया। खेल आरम्भ होनेके दस मिनट पहले ही सिनेमाके मन्दिरमें पहुँच गये।

रामनाथने सोचा—‘इन दस मिनटोंके अन्दर वाणीका पत्र क्यों न पढ़ लूँ? नहीं, नहीं हो सकता। इस भीड़में कैसे पढ़ूँ? इसके अलावा गणेशको अकेला छोड़ना भी ठीक नहीं, क्योंकि उसने मेरे लिए भी अपने खर्चसे टिकट खरीदा है। पत्र भी दस पृष्ठका है, और एक-एक पृष्ठके लिए एक-एक मिनट काफी होगा? दावतका भोजन जल्दी-जल्दी खानेसे उसका रसास्वादन नहीं हो सकता।’

इतनेमें भीड़ बढ़ गई। यदि पहले ही जाकर न बैठें, तो जगह मिलनेकी भी सम्भावना नहीं। रामनाथने निश्चय किया कि यह पत्र पढ़नेका समय नहीं।

दोनों अन्दर जाकर बैठ गये। अन्दर भी बहुत भीड़ थी। दस मिनटके अन्दर वाणीका पत्र पढ़ना न हो सकता था; परन्तु इन मिनटोंको बिताना रामनाथके लिए कठिन हो गया। ‘शो’ आरम्भ हुआ। इसके पहले ही वाणीके पत्रने रामनाथके मनको चुरा लिया था। वह पायजामेकी जेबमें हाथ डालकर पत्रको स्पर्श करने लगा—तोलने लगा। दस पत्रोंका पत्र उसे बहुत भारी-सा मालूम होता था; लेकिन पत्रके वोम्फके साथ प्रेयसीके प्रेमका भार भी रामनाथ अनुभव करने लगा।

उस दिनका खेल बहुत अच्छा था। हृदय-विदारक दृश्य, दिलको पसीजनेवाली घटनाएँ—गणेश अवाक् होकर देख रहा था; परन्तु रामनाथका मन दूसरी ही तरफ़ था। उसके मानसपटलपर दूसरा ही दृश्य दीख पड़ता था। उस दृश्यमें वाणी नायिका और रामनाथ नायक था। कैसा आनन्दमय दृश्य था! कैसी मन लुभानेवाली घटनाएँ! एक-एक दृश्यको रामनाथ धीरे-धीरे देखने लगा। उसने वाणीके साथ जो क्रीड़ाएँ की थीं, सब एक-एक करके याद आने लगीं। वाणीके हाव-भावकी स्मृतिने उसके मनको बहा दिया। उसके मनमें विचार-तरंगें उठने लगीं।

रामनाथ फिर सोचमें पड़ा—‘न-मालूम वाणीने इस पत्रमें क्या प्रेम भर दिया होगा। आज रविवार है,

इसके अलावा आज मैच भी था। यह सब न होता, तो इस पत्रको पहले ही पढ़ लेता। मैंने पिछली बार नाराज होकर पत्र लिखा था, शायद अब उसने भी ऐसा ही किया होगा। गुस्सेसे भरी वाणी और उसका क्रोधमय पत्र—दोनों ही अच्छे लगते हैं। उसके आनन्दमें जिस प्रकारकी गहन गम्भीरता है, उसी प्रकार उसकी नाराजीमें भी है। वह कुपित होकर बोलती है, तब भी उसकी वाणीमें संगीत-सा स्वर निकलता है।

वाणीकी वाणीकी याद आते ही रामनाथकी हृत्तन्त्री बज उठी। वह फिर सोचने लगा—‘वाणी वीणा बजानेमें बहुत होशियार है। उसने अब और भी अच्छा बजाना सीख लिया होगा। उसे कल्याणी और भैरवी राग बहुत अच्छे लगते हैं। मैं जब मैसूर जाऊँगा, तो उससे सब रागोंको सुनूँगा; परन्तु वे जिस घरमें रहते हैं, वहाँ एक अलग कमरा भी नहीं। खैर, मकान किरायेका है, वे लोग करें क्या? यदि हमारे यहाँ हो, तो दुर्मांजिलेपर बैठकर खूब सुन सकूँ। हमारे यहाँ आ जाय, तो उसकी वीणाको फुसत न मिले! वाणी! वीणा! वाणीसे वीणाकी और वीणासे वाणीकी सुन्दरता है। १५ अप्रैलको छुट्टी मिल जायगी। १६ को मैसूर जाऊँगा और २०-२१ को वाणीको लेकर घर लौट आऊँगा।’

रामनाथके मनमें प्रवेश करके उसके काल्पनिक चित्रोंको देखना सम्भव होता, तो वहाँ भी एक अजीब सिनेमा दीख पड़ता!

x x x

नौ बजे शो समाप्त हुआ। दोनों साइकिलपर सवार होकर घरकी ओर चले। वे रास्ता तै करने न पाये थे कि इतनेमें दुर्भाग्यसे रामनाथकी साइकिलके अगले पहियेने ‘ठिस’ आवाज निकाली, और साइकिल रुक गई।

“यह क्या बला है?” कहते हुए दोनों साइकिलसे उतरे। देखा, तो साइकिलके टायरमें लोहेका एक टुकड़ा चुभ गया है। “हा मेरा दुर्भाग्य!”—कहते

हुए रामनाथने उस लोहेके टुकड़ेको निकाला और गणेशसे कहा—“गणेश आज सुबहसे ऐसा ही हो रहा है! देखी मेरी वदनसीबी?”

गणेशने पूछा—“आज हुआ क्या है?”

रामनाथने कहा—“हमारे घरमें एक काली बिल्ली है। आज सुबह ही वह मेरे कमरेकी खिड़कीपर बैठी थी। आँख खुलते ही उसका मुँह दीख पड़ा। अब मैं उसे जीता न छोड़ूँगा। कहते हैं कि बिल्ली मारना पाप है—पाप हो या पुण्य! प्रत्यक्ष होनेवाली दुर्वटनाओंको सहनेकी बनिस्वत अप्रकट पाप लेना ही अच्छा है।”

“अरे, उस वेचारीका क्या कसूर?”

“मैं भी पहले यही सोचता था; लेकिन आजसे वह विचार जाता रहा।”

x x x

दोनों साइकिल हाथमें लेकर पैदल ही घर पहुँचे। दस बज गये थे। घरके सब लोग खा चुके थे। रसोइया रामनाथकी प्रतीक्षामें बैठा-बैठा ऊँघ रहा था। रामनाथ आते ही कपड़े उतारकर, हाथ-पैर धोकर, खानेके लिए बैठ गया। भूख खूब लगी थी। पेटभर खानेके बाद अपने कमरेमें आ बैठा। खाना खानेसे पेटकी लुधा तो कम हुई; लेकिन हृदयकी लुधा और भी बढ़ी। कमरेके दरवाजे बन्द करके चटकनी लगाई। अब कोई अन्दर नहीं आ सकता था। जेबसे पत्र निकालकर पढ़नेके लिए आरामकुर्सीपर बैठा। मुँह आनन्दसे खिल उठा। प्रेयसीके प्रेमको स्वागत करनेके लिए हृदय-सरोवरमें तरंगें उठने लगीं। लिफाफा खोलने लगा। उस समय एक-एक पन्नेको उठाकर दस-दस बार पढ़ सकता था, क्योंकि यहाँ पूछनेवाला या बाधा डालनेवाला कौन था? वाणीके पत्रके स्वादको चखते हुए रात बिता सकता था, रोकनेवाला कौन था? ‘मेरी प्रिय वाणीका पत्र’—कहते हुए वह लिफाफेसे पत्र निकालने लगा। पत्र खोलकर पढ़ने लगा। पहले पन्नेपर कुछ भी लिखा न था।यह क्या?

दूसरा ? वह भी खाली ! तीसरा ? वह भी खाली ! चौथा-पाँचवाँ—सब कोरे ! रामनाथके उत्साहपर पानी फिर गया । भौवें सिकुड़ गईं और पत्नोंको उलटने लगा । सात-आठ-नौ—सब खाली ! दसवाँ ? वही अन्तिम था । उसपर थोड़ा-सा लिखा गया था । क्या लिखा गया था ?—

“.....आपने नाराज़ होकर जो पत्र लिखा था, मिला ; लेकिन आपने अपने पत्रमें जो क्रोध दिखाया है, वह कफ़ी नहीं । इस पत्रको पढ़नेके बाद आपको जो गुस्सा आवे, उसे प्रकट करते हुए एक पत्र और लिखिये । साथमें कोरे पन्ने भेजती हूँ ।

—आपकी वाणी ।”

“क्या दिल्लगी है ! खाली कागज़ोंसे भरे इस पत्रके मोरे—एक बूढ़ी साइकिलसे टकराते-टकराते बची, कैच छूट गया, विजय भी हाथ लगते समय

‘रन आउट’ हो गया !” —रामनाथके मनकी स्थितिका वर्णन करना असम्भव था । उसने जो सोचा था, उसमें एक बात सच निकली—उस लिफाफेमें दस पन्ने थे । उन दस पत्नोंको एक बार फिर उलटते हुए रामनाथ अपने-आप हँस पड़ा । एक-एक कागज़ उसका उपहास कर रहा था । उसने सोचा, मेरी इस स्थितिकी कल्पना करके वाणी कैसा आनन्द मना रही होगी ? रामनाथको यह प्रतीत होने लगा कि वाणी मेरे सामने ही हँस रही है । उसकी निराशा, उसका क्रोध—सब हवा हो गये । अन्तिम पृष्ठपर जो ‘आपकी वाणी’ लिखा हुआ था, उसपर धीरेसे रामनाथने अपने अधरोंको लगा दिया । कुछ भी हो, रामनाथ था बड़ा रसिक ।*

—के० एन० आचार्य, मधुगिरी

* “द्वितीय काण्ड” नामक एक कन्नड़ कहानीका अनुवाद ।

संध्या और प्रभात

रवीन्द्रनाथ ठाकुर

यहाँ तो संध्या उतर आई । सूर्यदेव, किस देशमें किस समुद्रके उस पार तुम्हारा प्रभात हुआ ?

अन्धकारमें यहाँ रजनीगन्धा काँप-काँप उठती है, सुहाग-रातके लिए आई हुई दरवाजेपर नववधूकी तरह । कहाँपर खिली है वह भोरमें खिलनेवाली कनकचम्पा ?

कौन जागा ? बुम्मा दिया संध्याका जला दीप, फेंक दी रातकी सुँधी सेवती-फूलकी माला ।

यहाँ एकके बाद एक सब दरवाजोंपर हुड़के लग गये, और वहाँ सब खिड़कियाँ खुल गईं । यहाँ नाव घाटपर बँधी है, माँझी सो रहा है ; और वहाँ पालमें जोरकी हवा लग रही है ।

वे पान्थशालासे चल दिये हैं, पूरवकी ओर मुँह करके चले हैं ; उनके ललाटपर लग रहा है सवेरेका उजाला, उनके पार होनेकी कौड़ी निवटरी नहीं है । उनके लिए सड़कके दोनों किनारोंपर हर भरोखेमें से काली आँखोंकी कृष्ण कामना अनिमेष दृष्टिसे देख रही है ; सड़कने उनके सामने निमन्त्रणकी

रंगीन चिट्ठी खोलकर रख दी, बोली—“तुम लोगोंके लिए सब तैयार है ।” उनके हृत्पिण्डमें रक्त-स्पन्दनके तालोंमें जयभेरी वज्र उठी ।

यहाँके सभी-कोई धूसर प्रकाशमें दिनकी अन्तिम नावसे पार हो गये ।

पान्थशालाके आँगनमें इन लोगोंने कँथड़ी बिछा ली है ; कोई अकेला है, किसीका साथी थका हुआ है ; सामनेकी सड़कपर क्या है, दिखाई नहीं दिया ; पीछेकी सड़कपर कौन हैं, कानाफूँसी कर रहे हैं ; बोलते-बोलते उनके गले रुक जाते हैं, फिर चुप रहते हैं ; उसके बाद आँगनसे ऊपरकी ओर देखा, सप्तर्षि तारे चमक रहे हैं ।

सूर्यदेव, तुम्हारे बाईं ओर यह संध्या है, दाहिनी ओर वह प्रभात है, इन्हें तुम मिला दो । इसकी छाया उसके उजालेको एक बार गोदमें लेकर जरा चूम ले,—इसकी पूरवी उसके विभासको आशीर्वाद देकर चली जाय ।

—धन्यकुमार

भारतीय कलाके भंडारी नाहरजी

प्रजमोहन वर्मा

स्वर्गीय पूरनचन्दजी नाहरकी मृत्युसे देशका एक बड़ा विद्वान और भारतीय कलाका एक महान संरक्षक और भंडारी उठ गया। नाहरजीने अपना सारा जीवन लगाकर भारतकी प्राचीन कलाकी कृतियोंको एकत्रित करके जो संग्रह बनाया है, वह हमारी संस्कृतिका एक जीवित खज़ाना है।

पूरनचन्दजीका जन्म मुर्शिदाबाद जिलेके एक अत्यन्त प्रतिष्ठित श्वेताम्बर जैन परिवारमें हुआ था। उनके पिता रायबहादुर शिताबचन्द नाहर एक खान्दानी रईस थे। यद्यपि रायबहादुर साहब प्राचीन धार्मिक विचारोंके थे; किन्तु उन्होंने अपने लड़कोंको उच्च-से-उच्च शिक्षा देनेकी व्यवस्था की। पूरनचन्दजी अजीमगंज (मुर्शिदाबाद) से मैट्रिकुलेशन और बरहमपुर कालेजसे आई० ए० पास करके कलकत्ते आये, जहाँ उन्होंने प्रेसीडेन्सी कालेजसे बी० ए० और एम० ए० की परीक्षाएँ पास करके कानूनका अध्ययन किया और वकालत पास करके बरहमपुरमें वकालत शुरू की। बरहमपुरमें चार वर्ष प्रैक्टिस करके नाहरजी कलकत्ते आये और हाईकोर्टमें नाम लिखाया।

स्वर्गीय भूपेन्द्रनाथ वसु, जो बादमें कांग्रेसके सभापति और भारत-मन्त्रीकी कौंसिलके सदस्य हुए थे, कलकत्तेके नामी एटर्नी थे। नाहरजी वसु महाशयके आर्टिकिल क्लार्क बन गये। थोड़े ही दिनोंमें उनसे वसु महाशयकी इतनी घनिष्टता हो गई कि यद्यपि आर्टिकिल क्लार्क केवल एक साल ही रहना पड़ता है; किन्तु नाहरजी वसु महाशयके साथ चार वर्ष तक काम करते रहे। इसके बाद वे कानूनी पेशा छोड़कर अपना सारा समय विद्या अध्ययनमें लगाने लगे।

नाहरजीके पिता बहुत दूरदर्शी और बुद्धिमान व्यक्ति थे। वे अनुभवसे जानते थे कि सम्पत्तिको लेकर प्रायः सभी सम्मिलित परिवारोंमें झूट और

कलहके विरवे पनपा करते हैं, और बहुधा भाई-भाईमें इतनी अनवन हो जाती है कि वे एक दूसरेके दुश्मन बन जाते हैं। उन्होंने इस कलहकी जड़ ही काट दी, और अपने जीवनमें ही अपनी सारी सम्पत्ति अपने चारों पुत्रोंमें बाँट दी, कलकत्तेकी इंडियन मिरर स्ट्रीटमें हरएक पुत्रके लिए मकान बनानेके लिए अलग-अलग ज़मीनें मोल ले दीं, जिससे वे अपनी गृहस्थीके



स्वर्गीय पूरनचन्दजी नाहर

उत्तरदायित्वका भार स्वयं अपने ऊपर ले सकें और उनका व्यक्तित्व विकसित हो सकें।

कुछ दिन बाद पूरनचन्दजीके सबसे छोटे भाई कुमारसिंहजीके एकमात्र बच्चेका देहान्त हो गया, और कुछ दिनोंके भीतर ही बच्चेकी माता तथा स्वयं कुमारसिंहजीका भी स्वर्गवास हो गया। इन दुर्घटनाओंसे वृद्ध पिताको बड़ा गहरा धक्का पहुँचा, अपनी मृत्युके कुछ

दिन पहले वृद्ध पिताने अपने बाकी तीनों पुत्रोंको बुलाकर कहा कि कुमारसिंहकी ज़मीन और सम्पत्ति वे तीनों आपसमें बाँट लें। इसपर पूरनचन्दजीने कहा कि चूँकि यह सम्पत्ति कुमारसिंहके नामसे अलग की जा चुकी है, इसलिए बेहतर है कि उस सम्पत्तिका एक ट्रस्ट बना दिया जाय, जिसकी आमदनीसे कुमारसिंहजीके नामसे एक हाल और श्री आदिनाथजीका मन्दिर और उनकी माताके नामसे एक पुस्तकालय खोला जाय। इससे कुमारसिंहजी तथा माताजी, दोनों ही की स्मृति चिरस्थायी हो जायगी। पूरनचन्दजीकी राय पिता तथा भाइयोंको पसन्द आई, और परिणाम-स्वरूप 'कुमारसिंह हाल' और 'गुलाबकुमारी लाइब्रेरी'का निर्माण हुआ। इसी हालके सबसे ऊपरवाले तह्तेमें श्री आदिनाथका मन्दिर है।

कुमारसिंह-हाल बनाकर पूरनचन्दजीने उसमें अपनी एकत्रित की हुई कलाकी वस्तुएँ रखीं। अपने इस संग्रहको बनानेमें उन्होंने अपना सारा जीवन लगा दिया था। इसमें सन्देह नहीं कि यह संग्रहालय और लाइब्रेरी अपने ढंगकी अनोखी है। भारतीय कलाका ऐसा सुन्दर प्राइवेट संग्रह भारतमें शायद ही और कहीं देखनेमें मिले। इस संग्रहालयमें मूर्तियाँ, सिक्के, चित्र—कलमी चित्र, मुग़ल चित्र, राजपूत चित्र, जैन-चित्र, आधुनिक चित्र, काँचपर तसवीरें, हाथी-दाँतपर तसवीरें, अबरकपर तसवीरें, चमड़ेपर तसवीरें—सचित्र हस्त-लिखित ग्रन्थ—उर्दू, फ़ारसी, हिन्दी और संस्कृतके, —सिक्के, तमगे, पीतल और काँसेकी मूर्तियाँ, हाथी-दाँतकी चीज़ें, मोनेके कामकी चीज़ें आदि संग्रहीत हैं। पुस्तकालयमें हज़ारों दुर्लभ और बहुमूल्य ग्रन्थ हैं। भारतीय कला और इतिहासपर तो शायद ही कोई महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ ऐसा हो, जो नाहरजीके पुस्तकालयमें न हो। हस्त-लिपियोंका भी बहुत बड़ा संग्रह है। क़रीब-क़रीब दस हज़ार प्राचीन हस्त-लिखित संस्कृत, प्राकृत और हिन्दीके ग्रन्थ नाहरजीके संग्रहमें मौजूद हैं। इन चीज़ोंको एकत्रित करनेमें पूरनचन्दजीने देशका कोना-कोना

छाना था और बहुत धन व्यय किया था। एक समूचे जीवनकी साधनाकी बदौलत ही ऐसा सुन्दर और अनोखा संग्रह सम्भव हो सका है। कलकत्ते आनेवाले देश-विदेशके प्रायः सभी विद्वान और विद्या-व्यसनी सज्जन इस संग्रहको देखने आते हैं, और इसे देखकर भूरि-भूरि प्रशंसा करते हैं। यूरोप, अमेरिका, चीन, जापान, बर्मा और अफ़्रिका—सभी देशों और महादेशोंके अनेक विद्वान भारतीय कलाके इस महान मंडारको देख चुके हैं। साहित्यिक और ऐतिहासिक खोजका काम करनेवाले अनेक विद्वान नाहर-संग्रहालयसे सहायता लिया करते हैं।

पूरनचन्दजी अंगरेज़ीके अतिरिक्त संस्कृत, प्राकृत, हिन्दी और बँगलाके ज्ञाता थे। वे कलकत्ता-विश्वविद्यालयके परीक्षक होते थे। जैन-शास्त्र और जैन-इतिहासका उनका ज्ञान अगाध था। उनके जैन-धर्मपर लिखे हुए अंगरेज़ी ग्रन्थ 'Epitome of Jainism' की बड़े-बड़े विद्वानोंने भूरि-भूरि प्रशंसा की थी। उन्होंने प्राकृतकी सुन्दर सूक्तियोंका संग्रह करके 'प्राकृत सूक्तिरत्नमाला'के नामसे प्रकाशित किया है। इसके अतिरिक्त उन्होंने भारतके जैन-शिलालेखोंका संग्रह भी प्रकाशित किया है, जिसके तीन भाग प्रकाशित हो चुके हैं और कई भागोंका मसाला एकत्रित है। नाहरजीके अनेक लेख हिन्दी, बँगला और अंगरेज़ी पत्रोंमें छपते रहते थे, और देशके अनेक विद्वान जैन-धर्मपर कुछ लिखते समय उनसे परामर्श लिया करते थे।

किन्तु नाहरजीकी महान विद्वत्तासे कहीं बढ़कर थी उनकी सज्जनता। जो कोई भी उनसे मिलता, वही उनकी सज्जनताकी तारीफ़ करता था। नाहरजी धनी थे, सुशिक्षित थे, विद्वान थे; लेकिन सबसे बढ़कर वे थे आदमी, और आजकल आदमी होना आसान नहीं है—

“हमने माना हैं फ़रिश्ता शेखज़ी,

‘आदमी’ होना बहुत दुश्वार है !”

नाहरजीका सरल स्वभाव और उनका सहज-प्रेम ऐसा था, जो सभीको आकर्षित कर लेता था। यद्यपि नाहरजी वयोवृद्ध थे, साठ वर्षसे ऊपरके हो चुके थे,

फिर भी उनमें युवकोंसे बढ़कर उत्साह और शक्ति थी । वे दिनमें कभी सोते नहीं थे । उनको सुबहसे शाम तक काम करते देखकर युवक भी लज्जित हो जाते थे । जो कोई भी उनका संग्रह देखने जाता, उसे वे बड़े प्रेम और उत्साहसे दिखलाते थे । अपने अद्भुत संग्रहकी दुर्लभ वस्तुओंको दिखलानेमें चार-चार पाँच-पाँच घंटे लगाकर भी वे थकते न थे । आगत सज्जनोंका आदर-सत्कार करनेके अतिरिक्त उन्हें खिलाने-पिलानेका भी नाहरजीको बड़ा शौक था । उनकी सबसे बड़ी खूबी यह थी कि वे बुढ़ोंमें बुढ़े, प्रौढ़ोंमें प्रौढ़, युवकोंमें युवक और बच्चोंमें बच्चे बन जाते थे, इसीलिए बच्चोंसे लेकर बुढ़ों तक—जो कोई भी उनसे मिलता था, उसे यही जान पड़ता था कि वह

अपने किसी पूर्व परिचित मित्रसे मिल रहा है । गरीब हो या अमीर—यहाँ तक कि नौकरों तकसे उनका वर्ताव एक-सा होता था । नाहरजी अपने टाइपके एक विशेष उदाहरण थे—ऐसे टाइपके, जो आजकल प्रायः दुर्लभ है ।

नाहरजीके चार पुत्र हैं—श्री केशरीसिंह नाहर, श्री पृथ्वीसिंह नाहर, श्री विजयसिंह नाहर, श्री विक्रमसिंह नाहर । अपने पुत्रोंको भी उन्होंने उच्च-से-उच्च शिक्षा दी है । हम नाहरजीके पुत्रोंसे—विशेषकर श्री विजयसिंहजीसे—प्रार्थना करेंगे कि वे नाहरजीके कला-भंडारको उसी तरह अक्षुण्ण रखकर चलायें, जैसे नाहरजी चलाते थे, क्योंकि नाहर-संग्रहालय नाहर परिवारकी सम्पत्ति होते हुए भी एक राष्ट्रीय सम्पत्ति है और राष्ट्रके गौरवकी वस्तु है ।

एक महत्त्वपूर्ण पुस्तककी आयोजना

श्रीराम शर्मा

भाव और भाषाका वही सम्बन्ध है, जो आत्मा और शरीरका । बलिष्ठ आत्माका निवाह जिस प्रकार स्वस्थ शरीरमें अच्छा होता है, उसी प्रकार उच्च भाव बढ़िया भाषामें ही अधिक प्रभावोत्पादक होते हैं । भावोंके अनुरूप जब तक भाषा नहीं होती, तब तक वह स्फूर्ति नहीं होती । उचित भाषाके बिना बढ़िया भाव खाली कारतूस हैं, जिनसे धड़ाका तो हो सकता है, नासमझोंको डरानेके लिए ; पर कोई चोट नहीं पहुँचाई जा सकती । दोनोंका सामंजस्य ही नुकीला तीर है, जो हृदयपर सीधी मार करता है । और कोरा शब्दाडम्बर—भावरहित भाषा—लबड़घोंघों है—बस, फूटा दमामा है, अथवा वह बुढ़िया, जो ऊपरी टीम-टाम और आभूषणोंसे अपने निस्तेज कपोलोंपर यौवनकी आभा लानेका निष्फल प्रयास करती हो ।

पर भाषाकी जान—बैरोमीटर—हैं उपयुक्त शब्द । जिस साहित्य-सेवीके पास उचित शब्द हाथ जोड़े खड़े

रहते हैं, उसकी भाषा कितनी पैनी, सजीव और वेधक होती है ! हिन्दीमें सैकड़ों शब्द हैं—सरल, सार्थक और चुस्त, जो साहित्य-सेवियोंकी आँखोंसे ओझल, पर अति निकट पड़े हैं, जिनके प्रयोगसे हमारी भाषाकी सजीवताकी पुष्टि हो सकती है और शब्द-भंडारकी वृद्धि ।

यदि हम लिखें कि लार्ड विलिंगडनने आर्डिनेन्सकी वह 'पुट्टी' मारी कि असहयोग-आन्दोलन मुँहके बल गिरा ; पर गांधीजीने ग्रामोद्योग-योजनासे वह 'गधालोट' मारा कि नौकरशाही चारों खाने चित्त हो गई, अथवा हम 'खसोटा', 'बाजूबन्द' और 'कला जंग' आदि शब्दोंका प्रयोग करें, तो कितने साहित्य-सेवी और राजनीतिज्ञ इन मुहाविरों और शब्दोंकी सार्थकता समझ पायेंगे आजकल ?

हिन्दीके बढ़िया-से-बढ़िया कोषको तनिक खोलकर देखिये और उसमें उन शब्दोंको ढूँढ़िये, जिनका हमने ऊपर जिक्र किया है और जिनका वर्णन हम आगे

करेंगे। अधिकांश शब्द कोषमें न मिलेंगे। कई वर्ष पूर्व हमने ऐसे ही प्रचलित शब्दोंको हिन्दीके विश्वकोषमें खोजा; पर उनका कहीं पता न चला। तो फिर क्या ये शब्द किसीकी बपौती हैं, अथवा हमारी कोई खोज-विशेषका फल हैं? नहीं। इन शब्दोंकी जानकारीके लिए किसी अच्छे अखाड़ेपर चले जाइये और पहलवानोंसे पूछिये कि अमुक शब्दके क्या मानी हैं। पहलवान और पहलवानीके प्रेमी दाव-पेचोंको खूब समझते हैं। वे जानते हैं कि 'मच्छी गोता', 'मुल्तानी', 'पेट खींचना' और 'भाली मारना' किसे कहते हैं।

पाश्चात्य सभ्यताके नशेमें हम लोगोंने न केवल विलायतकी वेशभूषाको ही स्वीकार कर लिया है, वरन वहाँके अनेक दूषित और खर्चीले ढंगोंको भी अख्तियार कर लिया है। गरीबोंके पास तो कफ़नके लिए भी कौड़ी नहीं; पर अमीरोंको देखिये कि उनमें कितनी अंगरेज़ियत है। ज़रा जुकाम हुआ कि बस चलने लगी मोटर सिविलसर्जनको। कोसते हैं आयुर्वेदको, और प्रोत्साहन देते हैं अंगरेज़ी इलाजको। आमोद-प्रमोद और स्वास्थ्यके लिए लान-टेनिस और क्रिकेट फ़ील्ड हैं; पर वे गरीब लड़के क्या करें, जो स्कूल और कालेजमें बढ़िया खिलाड़ी थे और जिन्हें दफ़्तर और खेतपर काम करना पड़ता है? क्या गाँवोंमें क्रिकेट और लान टेनिस बनायें? क्या वर्तमान स्थितिमें यह सम्भव है कि अंगरेज़ी खेलोंपर गाँवोंमें कुछ खर्च किया जा सके? हम अंगरेज़ी खेलोंके विरोधी नहीं, वरन प्रशंसक और क्रायल हैं। हमें अब भी इंग्लैण्ड, आस्ट्रेलिया, अफ़्रीका, फ़्रांस, जर्मनी और अमेरिकाके टेनिस, क्रिकेट और बॉक्सिंगके बढ़िया खिलाड़ियोंके नाम मालूम हैं, और समाचारपत्रोंमें उनके खेलोंके वर्णनको बड़े चावसे पढ़ते हैं। कलकत्तेमें हमने किसी भी बढ़िया मैचको बिना देखे नहीं छोड़ा, और जब किसी मैचमें गोल हो जानेपर वहाँके मैदानसे पचास हजार दर्शकोंको आह्लादित होते देखता, तो यही

भान होता कि खेलकी खुशीमें लुढ़के भी बचे हो जाते हैं, और खेलोंकी यह उपयोगिता कौन कम है?

पर भारतवर्षकी खास विद्या पहलवानीके विषयमें हम लोग कितनी जानकारी रखते हैं? स्कूलों और कालेजोंमें चले जाइये और जाकर देखिये कि वहाँ कोई अखाड़ा है या नहीं। हरएक लड़केसे खेलकी प्रीस ली जाती है, और खेल-कमेटियाँ भी होती हैं; पर प्रत्येक लड़केको खेलनेको नहीं मिलता। और देहात तो ऊजड़-से हो गये हैं। हाँ, काशी, मिर्ज़ापुर और पंजाबके गाँवोंमें, पढ़े-लिखे लोगोंकी हवासे दूर, भारतवर्षकी इस उपेक्षित विद्याका ढ़चरा ज्यों-त्यों करके चला जाता है।

पढ़े-लिखे लोगों तथा स्कूल और कालेजके विद्यार्थियोंसे पूछिये कि उनके सूबेके नामी पहलवान कौन हैं, तो वे न बता सकेंगे; पर क्रौफ़र्ड, टिल्डन, फ़ानक्रौम, औस्टिन, कौशे, लुई और कारनेरा आदिके नाम वे खूब जानते हैं। अंगरेज़ीके दैनिक अखबारोंको देखिये। इंग्लैण्डकी काउण्टी क्रिकेटका वर्णन तो ज़रूर छपेगा; पर अपने सूबेके बढ़िया पहलवानोंकी कुशितियोंके वर्णन छापनेकी तकलीफ़ वे नहीं करते। शहरमें कोई बढ़िया दंगल भी हो, तो अंगरेज़ीख़्वां लोग तो कम ही जाते दीख पड़ते हैं।

× × ×

हरदोई ज़िलेमें फ़तहगढ़से ग्यारह मील दूर गंगासे रक्षित और रामगंगासे परिवेष्टित खदीपुर गाँव है कटियारी रियासतका हेड क्वार्टर। आप उसे जानते हैं? क्यों जानें? जाननेकी कोई बात भी हो। खदीपुरके लिए न तो पक्की सड़क है और न रेल और न तार। और तो और वहाँ डाकखाना भी नहीं, और बरसातमें तो वहाँ पहुँचना अजनबीके लिए असम्भव है। रामगंगा खदीपुरकी गोदमें खेलती है। ठेठ देहात है वहाँ—पन्द्रहवीं शताब्दीका-सा। वहाँ न कोई तीर्थ है और न कोई प्राकृतिक मनोहर दृश्य; पर चैत्र शुक्ल पंचमीसे तीन-चार दिन पूर्व खदीपुरकी धज देखिये। आसमानसे बातें करती धूल उड़ती

देखाई पड़ती है एक गतिविधिके साथ बैलगाड़ियोंके कारण। बैलगाड़ी खदीपुरके करीब पहुँचती है, तो गाड़ी भर पहलवान उसमें से निकलते हैं। पैदल, सिरपर बिस्तरे रखे, हाथमें छोटी बाल्टी थामे पहलवानोंके समूहके समूह चले आते हैं। अमृतसर, लाहौर और लुधियानेके नष्ट पहलवान और नामी अखाड़ोंके मुसलमान पहलवान, जमुना मैयाकी जय मनाते चौबे पहलवान—चारों ओरसे पहलवानोंका दल उमड़ मड़ता है, खदीपुरके दंगलमें शामिल होनेको। पंचमीके आसपास खदीपुरमें वृषभ कन्ध जवानोंको देखकर ईर्ष्या होती है उनके स्वास्थ्यपर।

हाँ, तो खदीपुरको आप न जानें; पर पहलवानी दुनियामें खदीपुर उतना ही प्रसिद्ध है, जितना कि राधा स्वामियोंकी दुनियामें इयालबाग और कबीर-पन्थियोंकी दुनियामें मगहर—वह भी केवल इसलिए नहीं कि खदीपुरमें बढ़िया दंगल हुआ करता है। दंगलको तो आर्थिक दृष्टिसे कोई करा ले; पर खदीपुरकी प्रसिद्धि है पहलवानी दृष्टिसे—कटियारी रियासतके राजा साहबके कारण। भारतवर्षमें ऐसा कोई धनी-मानी नहीं, जो राजा साहब कटियारी—राजा बहादुर रक्मांगद सिंह—के बराबर इस विद्याके प्रचारमें खर्च करता हो और अपना समय देता हो। मल्लविद्या-रूपी गजकी लाज मल्लविद्याचार्य राजा रक्मांगद साहब रखे हुए हैं, जब कि देशके अन्य राजे मोटरकारोंपर रियासतोंका रुपया फूँकते हैं।

राजा साहबने मल्लविद्यापर एक बृहद् और सर्वांगपूर्ण पुस्तक लिखनेका विचार प्रकट किया है और

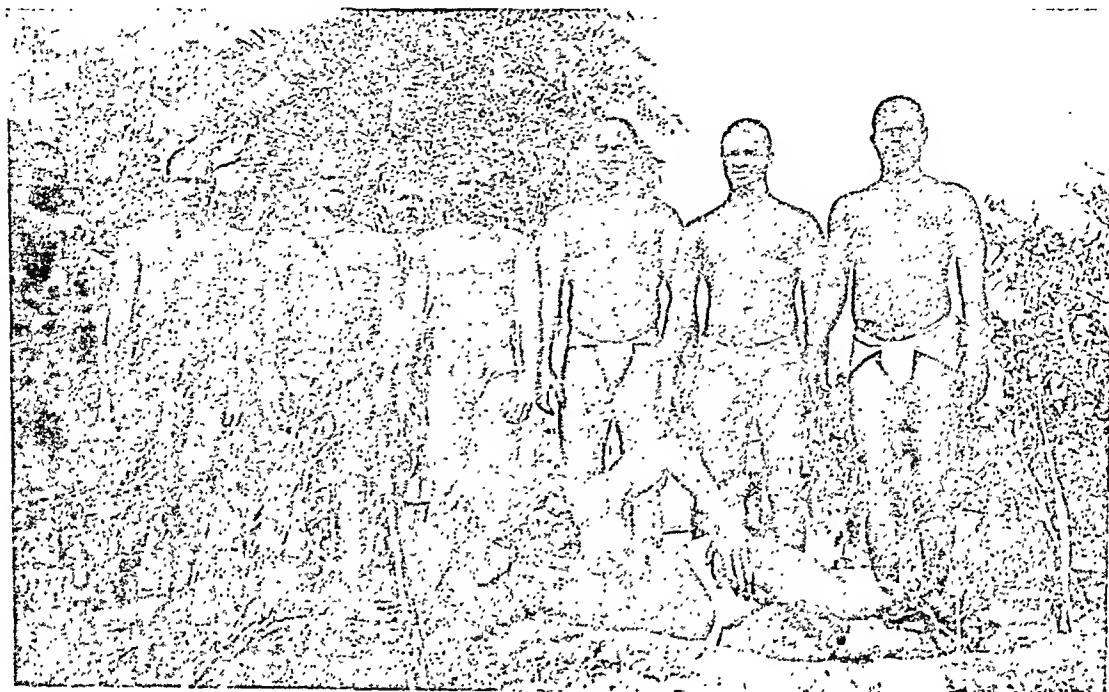


राजा रक्मांगद सिंहजी, कटियारी-नरेश

हमारा विश्वास है कि उस पुस्तकसे हिन्दी-साहित्यकी न केवल श्रीवृद्धि होगी, वरन् उनकी कीर्ति भी अमर होगी।

पुस्तक लिखनेके श्रीगणेशसे पूर्व हमें यह उचित जान पड़ा कि क्यों न राजा साहबसे इन्टरव्यू किया जाय और उसे छपाया जाय। फलतः राजा साहबसे हमारी डेढ़ घंटे तक बातें हुईं। हमने प्रश्नोंकी झड़ी लगा दी और उधरसे नये-तुले शब्दोंमें उत्तर मिले।

प्र०—कितने वर्षसे आप पहलवानोंको ट्रेन कर रहे हैं?



राजा साहब कठियारीके कुछ पहलवान

राजा साहब—शौक करते या ट्रेन करते ?

मैं—हाँ, दोनों ही बताइये ।

उ०—सैंतीस वर्ष हो गये शौक करते और ट्रेन करते ।

प्र०—आपके यहाँ पहलवानोंका वार्षिक खर्च केवल खुराककी मदका क्या होगा ?

उ०—आजकल पचास रुपया रोजका औसत है । यों अब तक करीब ढाई लाख खर्च किया होगा इस मामलेमें ।

प्र०—राजकुमार साहबके जन्म-दिनपर जो वार्षिक दंगल होता है, उसका क्या खर्च होता है ?

उ०—अनुमानसे सात हजारके करीब ।

प्र०—अधिक-से-अधिक पहलवान कब और किस दंगलमें आये ?

उ०—फ़सली और असली पहलवानोंकी संख्या तो कभी-कभी एक-एक हजार तक पहुँच गई है ; पर असली पहलवानों (जो बारहों महीने पहलवानी

करते हैं) की संख्या पाँच सौ तक हो जाती है । कई बार इससे ज्यादा भी आये । साल याद नहीं है ।

प्र०—किस सूबेके पहलवान सबसे अच्छे होते हैं और क्यों ?

उ०—पंजाबके । आजकल पंजाबमें अपेक्षाकृत शौक है, और वहाँके आदमी तगड़े और कड़ावर भी होते हैं ।

प्र०—कीकड़सिंह और गुलाम जैसे जवान अब क्यों नहीं है ?

उ०—कीकड़सिंह और गुलाम जैसे जवान तो परमात्माकी खास देन होते हैं । उनके कालमें उनका कोई सानी न था । वैसे बढ़िया पहलवानोंके न होनेका मुख्य कारण यह है कि अब कोई नियमानुसार कसरत नहीं करता और ब्रह्मचर्यका पालन नहीं करता ।

प्र०—क्या आर्थिक कठिनाई पहलवानीके लिए अड़चन नहीं डालती ?

उ०—हाँ, जरूर। खाने-पीनेका लोगोंको कष्ट है। बिना अच्छी खुराकके पहलवानी नहीं होती। एक और खास बात इस विद्याके हासकी यह है कि हिन्दुस्तानी अमीरोंको यह शौक नहीं रहा। बड़े वृत्तकी सायामें लोग बैठते हैं, और बड़े आदमियोंके प्रोत्साहन और खर्चसे ये बातें पनपती हैं।

प्र०—क्या पहले युक्त-प्रान्तमें भी बढिया पहलवान होते थे? यदि होते थे, तो अब हास क्यों हो गया?

उ०—हाँ, होते थे। मथुराके पहलवानोंकी—विशेषकर चौबे पहलवानोंकी पंजाबमें धाक थी। वे पंजाबी पहलवानोंको खूब हराते थे। गुलामके बाद इल्हाही पहलवानको मथुराके नत्थू पहलवानने पीटा था। हासके कारण पहले ही बता चुका हूँ—शौककी कमी, अमीरोंकी बेरुखी, आर्थिक संकट और नस्लका विगड़ना।

प्र०—अच्छी नस्लके अतिरिक्त क्या बढिया खुराक और अभ्याससे कोई बढिया पहलवान हो सकता है?

उ०—हाँ, हो सकता है। संयम और नियमसे सब कुछ हो सकता है।

प्र०—आपके खयालसे भारतवर्षके कुछ बढिया पहलवान कौन हैं?

उ०—गामा, इमामबख्श, करीमबख्श, रहीम, गूंगा, छोटा गामा, हमीदा, गंडासिंह, मंगलसिंह, बुरड कोल्हापुरी, बिहो ब्राह्मण, गुलाम कादिर, लब्बूसिंह जट्ट, अर्जुनसिंह, अलीसाई, खलीफा गुलाम मुईउद्दीन और खलीफा घोड़ा। इनमें से अनेक अब रिटायर हैं; पर हैं जीवित।

प्र०—पेच कितने होते हैं?

उ०—तीन सौ साठ पेचोंका लेख मिलता है—दावँ और उनके काट मिलाकर।

प्र०—कृपा करके कुछ पेचोंके नाम बताइये।

उ०—सामान्य रूपसे पेचोंको चार भागोंमें विभाजित कर सकते हैं—(१) सामनेके पेच, अर्थात् वे पेच, जो सामनेसे चलाये जाते हैं; (२) पीछेके पेच; (३) नीचेसे निकलनेके पेच; (४) चित करनेके पेच।

सामनेके पेच

१ दस्ती, २ दुदस्ती, ३ धोबीपाट, ४ निकाल, ५ मुलतानी, ६ टाक, ७ तेगा, ८ इकटंगा, ९ बगली, १० पुट्टी, ११ पट, १२ कलागंज, १३ गिरह, १४ सखी, १५ बैठक, १६ बाजा, १७ बाहरली, १८ भीतरली, १९ गललपेट, २० घुड़पड़ाँग, २१ इकहरापट, २२ सीधा तीरकश, २३ आड़ा तीरकश, २४ नारटाँग, २५ नागपेच, २६ लुकान, २७ डूब, २८ चपरास (अंटी), २९ मोजा निकालना, ३० मोरी, ३१ कैची, ३२ सामनेकी रूम (घूमना), ३३ मडम, ३४ उडंगमार, ३५ खपचा, ३६ गडिंहत्या, ३७ जोड़, ३८ गलखोड़ा, ३९ खसोटा, ४० उतार, ४१ पाँवदस्ती, ४२ दस्तमोजा, ४३ रोड़, ४४ दस्तबन्द, ४५ बगलबन्द, ४६ बाजूबन्द।

पीछेके पेच

१ उखाड़घिस्सा, २ गोलालाठी, ३ मच्छीगोता, ४ महावती, ५ उल्टी, ६ खपचाकी उखाड़, ७ पीछेकी गिरह, ८ पटकी मोस, ९ गलउखाड़, १० कुप्पी, ११ जम्बूरा, १२ मुश्कबन्द।

नीचेसे निकलनेके पेच

१ कुर्पा तोड़ना, २ ठिन्नी, ३ गघालोट, ४ घड़ मारना, ५ गिर्दबाँह, ६ डेकली, ७ रूम, ८ बाहरलीकी टाँग, ९ भीतरलीकी टाँग, १० बिजली चमक, ११ बिलैया, १२ पुश्तक, १३ गोता।

चित करनेके पेच

१ घिस्सा, २ तारकश, ३ कुंडा, ४ सवारी, ५ इकटंगा, ६ कमरपेटा, ७ चिरागदान, ८ चरखा, ९ शकल समेट, १० बकरी पछाड़, ११ सहड़, १२ बंगड़, १३ बेलन, १४ हफता, १५ मुँहपट्टी, १६ निमाजबन्द, १७ परीबन्द, १८ बालसाँगड़ा, १९ साँडी, २० लपेट, २१ नाथमुरचा, २२ भोला, २३ सड़ासी, २४ देवबन्द।

पेचोंके नाम सुनकर मैं तो दंग रह गया, और उन

आचार्योंकी बुद्धिपर भी आश्चर्य हुआ, जिन्होंने ये पेच निकाले हैं।

प्र०—क्या प्रत्येक पेचका काट भी है ?

उ०—एक-एक पेचके तीन-तीन काट हैं। पेच और उनके काट मिलाकर ही तीन सौ साठ पेच हुए।

प्र०—क्या कमजोर पहलवान कोरे पेचके बलपर बड़े पहलवानको गिरा सकता है ?

उ०—कोरे पेचके बलपर कुश्तियाँ नहीं मारी जातीं। हाँ, ज़बरदस्त पेचैत और लड़नेवाला अपनेसे सवायेको गिरा लेता है ; पर हरएकके लिए यह बात लागू नहीं।

प्र०—अच्छे पहलवानको कितने पेच रवाँ होते हैं ?

उ०—कोई बँधा हुआ नियम नहीं है।

प्र०—साधारणतया कौनसे पेचोंको पहलवान रवाँ करते हैं ?

उ०—कोई खास बात नहीं है ; पर फिर भी धोवीपाट, ढाक, निकाल, उखाड़, घिस्सा, पुड्डी, कलाजंग, मुलतानी, पट खींचना, टाँग, तारकश, मच्छीगोता, कुंडा, इकटंगी और सवारीको लोग बहुत रवाँ करते हैं।

प्र०—अच्छा पहलवान बननेके लिए किस उमरसे पहलवानी शुरू करनी चाहिए ?

उ०—बारह या पन्द्रह वर्षसे।

प्र०—अखाड़ेमें जोर तो करना पड़ता है। फिर उसके अतिरिक्त पहलवान डंड और बैठक क्यों करते हैं ?

उ०—ताकत बढ़ाने, शरीरको मुडौल बनाने और पुष्टीको मजबूत करनेके लिए।

प्र०—डंडों और बैठकोंमें क्या अनुपात होना चाहिए ?

उ०—डंडोंसे बैठकें दूनी करनी चाहिए। सुबहको बैठक और शामको डण्ड करना चाहिए। बैठक करनेके बाद जोर करनेसे टाँगें भारी रहती हैं और शरीर ठीक रहता है। जोर एक वक्त ही करना चाहिए।

प्र०—पहलवानकी खुराक क्या होनी चाहिए ?

उ०—कोई मुर्कार बात नहीं। आध पावसे एक सेर तक धी। एक सेर धी प्रतिदिन खानेवाले पहलवान अब कम हैं, पहले बहुत थे। एक सेर धी खानेवालेके

लिए एक सेर बादाम, दो सेरसे पाँच सेर तक मांस और दो सेरसे तीन सेर तक दूध प्रतिदिन चाहिए।

प्र०—हिन्दुस्तानी अमीरोंको इस कलाका शौक क्यों न रहा ?

उ०—इसका कारण खुद ढूँढ़िये। हाँ, इतना जरूर कहूँगा कि अंगरेज़ी तालीमके कारण हम अपनी बहुत-सी बातें भूलते जाते हैं।

मोटरबाज़ी, विलायत-यात्रा, सैर-शिकार और चुनावोंकी चाटमें अमीर इतने लित हैं कि उन्हें इन बातोंकी फुरसत कहाँ ? रही पढ़ाईकी बात, सो हमें कविवर अकबरका पद्य याद हो आया—

“अतफ़ालमें वू आये क्यों माँ-बापके अतवारकी ;
दूध डब्बेका पिया, तालीम है सरकारकी।”

प्र०—गामा और इमामबख़्श तो आपके यहाँ आते हैं ?

उ०—हाँ, सब आते हैं।

प्र०—पहलवानोंको सिखानेके लिए आप प्रतिदिन कितना समय देते हैं ?

उ०—ढाई घंटेके करीब।

प्र०—पहलवानीको पेशा न बनाया जाय, तो बेसे भी तो पहलवानी स्वास्थ्यके लिए लाभदायक होगी ?

उ०—पेशा तो कोई चीज़ नहीं। स्वास्थ्य खास चीज़ है, और उसके लिए पहलवानी लाजवाब है।

प्र०—स्कूलों और कालेजोंमें अखाड़े चलाये जायँ, तो कैसा रहे ?

उ०—बहुत अच्छा। लड़कोंका स्वास्थ्य सँभले और फिर बादको जब वे गृहस्थीके चक्रमें फँसें और अकेले रहें, तो डण्ड-बैठक करनेमें कोई कठिनाई नहीं और न कोई खर्च। पर हाकी और टेनिस अकेलेमें और गरीबीमें कोई खेल तो ले ?

प्र०—मथुराके चौबे पहलवानोंकी अब क्या हालत है ?

उ०—मथुराके चौबोंमें पहलवानी पुरतैनी चली आती है। कोई समय था, जब मथुराकी धाक भारतवर्षमें थी। नत्थू गुरके ताल ठोकनेपर किसीकी

हिम्मत न होती थी कि सहसा उनसे कोई लड़े। सुना है, नट्यूके कान साधारण कानोंसे कई गुने बड़े थे। कद बहुत लम्बा और दंड विशाल थे। नट्यूके कुछ पढ़े (शिष्य) अभी जीवित हैं। चूँचू चौबेकी आयु इस समय ८५ वर्षकी होगी, और अपने समयके चूँचू भी नामी पहलवान रहे हैं। चूँचू चौबे, द्वारा चौबे और धूँजी चौबे अभी जीवित हैं।

वैसे चौबे लोगोंका भोजन ठीक नहीं। मिठाई बहुत खाते हैं। फलतः उनका पेट बढ़ जाता है और शरीर वेडौल हो जाता है।

आजकल मथुराकी क्या, यू० पी० की लाज तीन पहलवान रखे हुए थे—यद्यपि वे गूँगा, इमामबख्श और हमीदाके कोठिमें नहीं पहुँच पाये थे, और वे थे बलदेव चौबे, विश्वम्भर चौबे और चन्द्रसेन (सनाढ्य ब्राह्मण)। तीनों ही उन्नतशील पढ़े थे, और तीनों ही मथुराके; पर बीमारीके कारण तीनोंकी ही बढ़ती मारी गई। विश्वम्भर और चन्द्रसेनको मधुमेहने बेकार कर दिया और बलदेवको लकवा मार गया। यों बलदेव अब भी कुश्ती लड़ता है।

प्र०—और दुर्जनसिंह कैसे पहलवान थे ?

उ०—अपने जोड़ोंमें दुर्जनसिंह लासानी थे। बड़ी जीदारीसे लड़नेवाले आदमी। उनके जोड़के नामी पहलवान दुर्जनसिंहसे लड़नेमें घबराते थे।

इन्टरव्यूके पश्चात् मनमें बड़े-बड़े विचार उठे। कुछ वर्ष पूर्व बड़ौदा, पाटन, कोल्हापुर, करौली, रीवाँ, दरभंगा और तमकोई आदि स्थान मल्लविद्याके केन्द्र थे, और अब धीरे-धीरे इस भारतीय विद्याके प्रति लोगोंकी उदासीनता बढ़ती जाती है। महाराजा और राजा हजारों खर्च करके क्रिकेट और टेनिसकी टीमें बुलाते हैं बाहरसे; पर किसीको भारतके बढ़िया पहलवानोंकी कोई टोम बाहर ले जाते न सुना।*

* सुना है, स्व० पं० मोतीलाल नेहरू एक बार गुलाम आदिको यूरोप ले गये थे और भारतीय पहलवानीका वहाँ शोर मच गया था गुलामने सबको पीटा था। —लेखक

दुर्जनसिंह, चूँचू, द्वारा और धूँजी दूसरे मुल्कमें होते, तो विश्वविद्यालयके कोच (शिक्षक) होते इस कलाके; पर बाबू लोग अपने इन रत्नोंको क्यों जाने? 'पहलवानीसे दिमाग बिगड़ जाता है', 'नपुंसकता आ जाती है'—ऐसी बातें हमने बाबू लोगोंसे सुनी हैं! ऐसी बातें सुनकर हमें अंगरेजियतमें पगे बाबुओंपर तरस आता है और बरबस मुँहसे निकलता है कि इस मानसिक गुलामी और मानसिक दिवालियेपनका भी ठिकाना है। अभी एक डाक्टर बाबूसे जब हमने सुना कि घोड़ेकी सवारीसे नपुंसकता आ जाती है, तब हमने अपना करम ठोका और कहा,—“शिवाजी, प्रताप, अकबर, रणजीतसिंह और काँसीकी रानी आदिकी स्मृति चलानेवाले क्या ऐसे ही नपुंसक डाक्टर हो सकते हैं?”

क्या हम मथुराके किसी साहित्य-सेवीसे आशा करें कि वह चूँचू चौबेके नट्यू गुरुके संस्मरण लिखे?

वास्तवमें मल्लविद्या-सम्बन्धी यह पुस्तक अपने ढंगकी बेजोड़ पुस्तक होगी। उसमें लगभग चार सौ पेच-सम्बन्धी चित्र होंगे और कई हजारकी लागतसे वह पुस्तक तैयार होगी। भारतवासियों—विशेषकर हिन्दी-भाषा-भाषियोंको राजा साहबका अनुग्रहीत होना चाहिए, जिन्होंने इस महत्त्वपूर्ण विषयपर पुस्तक निकालनेका विचार किया है।*

* पुस्तककी आयोजनापर हम राजा साहबको हार्दिक बधाई देते हैं, और आशा करते हैं कि देशके भिन्न-भिन्न स्थानोंसे भी सामग्री एकत्र की जायगी। पुस्तकके विषयमें राय देनेके हम अधिकारी नहीं; पर पुस्तकके बढ़िया होनेका प्रमाण इतना पर्याप्त है कि पुस्तक काफ़ी परिश्रम और खर्चसे तैयारी होगी और उसके लिखनेमें पं० श्रीराम शर्माका सहयोग होगा। हिन्दी-जनता पुस्तककी प्रतीक्षा बड़ी आतुरतासे करेगी।

पुस्तकके मामलेमें परामर्श और अन्य राय देनेवाले—

श्रीराम शर्मा, Katiani Raj,

P.O. Karhar (Farrukhabad)को लिखें।

सम्पादक—‘विशाल भारत’

मुसलमान बादशाह और देवनागरी लिपि

डा० हीरानन्द शास्त्री, एम० ए०, डी० लिट०

हिन्दुस्तानमें प्रचलित सिक्कोंको देखकर^१ यह जिज्ञासा उत्पन्न होती है कि मुसलमान बादशाहोंके समय सिक्कोंके लेखोंकी क्या अवस्था थी, अर्थात् वे किस लिपिमें लिखे जाते थे ? क्या उन सिक्कोंपर देवनागरीके लिए कोई स्थान था ?

मुसलमान बादशाहोंके पूर्व जो सिक्के इस देशमें प्रचलित थे, उनपर तो देवनागरी अक्षरोंका होना स्वाभाविक ही है। प्राचीनतम मुद्राओंपर, जिनमें कि ग्रीको-बैक्ट्रियन (Greeco-Bactrian) सिक्के भी शामिल हैं, देवनागरीकी जननी ब्राह्मी लिपि विद्यमान है। उनके लेख ब्राह्मी लिपिमें, खरोष्ठी अक्षरोंमें और ग्रीक लिपिमें पाये जाते हैं। बादके सिक्कोंमें ब्राह्मी वर्णमालासे उत्पन्न हुए अक्षर पाये जाते हैं। जो मिट्टीकी मुद्राएँ (Clay seals) प्राचीन स्थानोंसे प्राप्त हुई हैं, वे भी प्रायः ब्राह्मी अक्षरोंमें या उससे उत्पन्न वर्णमालामें लिखित हैं। ऐसी मुद्राएँ हजारोंकी संख्यामें पाई जा चुकी हैं।

लेकिन मुसलमानी समयके पहले सिक्कोंके लेखोंकी लिपिकी जो अवस्था थी, उसपर दृष्टि डालनेकी यहाँ आवश्यकता नहीं। इस समय तो हमें मुसलमानी सिक्कोंको ही देखना है। अर्वाचीन मुसलमानी मुद्राएँ तो अरबी अक्षरोंमें ही लिखी हुई मिलती हैं, भाषा चाहे अरबी हो, चाहे फ़ारसी, चाहे कोई और। (कहीं-कहीं तो हिन्दू सिक्के भी, जो उस समय प्रचलित हुए, एवं साधारण मुहरें—seals—भी इन्हीं अक्षरोंमें पाई जाती हैं। इसका कारण यही हो सकता है कि उन सिक्कोंको चलानेवाले हिन्दू राजा मुसलमान बादशाहोंके अधीन थे।) देवनागरी लिपिके बारेमें मुसलमान बादशाहोंका क्या विचार था, यह जाननेके

लिए हमें पहले मुसलमान बादशाहोंकी ओर ही ध्यान देना चाहिए, या फिर उन बादशाहोंकी ओर, जो भारतमें लोकप्रिय होकर शासन करना चाहते थे। सबसे पहले महमूद गज़नवीको लीजिए। उसके पहले कोई प्रभावशाली मुसलमान शासक यहाँ नहीं हुआ। महमूद बड़ा ही कष्टर मुसलमान शासक हुआ, इतिहास इस बातको भलीभाँति जानता है। उसने सन् हिजरी ४१८ (सन् ईस्वी १०२७) में एक बहुत ही रोचक चाँदीका सिक्का चलाया, जिसका वर्णन कर्निगहमने अपनी पुस्तकमें किया है।^१

यह सबसे प्राचीन मुसलमानी सिक्का है, जिसपर देवनागरी अक्षरोंमें पूरा लेख दिया गया है। इसके अग्रिम भाग (obverse) पर—

अव्यक्त मेकं
मुहम्मद अव-
तार नृप-
ति महमूद

यह शब्द देवनागरी अक्षरोंमें है। इसका अर्थ स्पष्ट ही है:—[ईश्वर] एक है और अव्यक्त है, मुहम्मद उसका अवतार है, और महमूद बादशाह है। पाठक देखेंगे कि इसका पहला भाग मुसलमानी 'कलमा'का अनुवाद ही है^२, यद्यपि 'अवतार' शब्द 'रसूल'का वाचक नहीं होगा। शायद अनुवादकका उद्देश यह भी हो कि 'महमूद गज़नवी मुहम्मद साहबका अवतार है', और इसीलिए उसने ऐसा प्रयोग किया हो।

इस सिक्केके पिछले भागपर उन्हीं अक्षरोंमें गोल घेरेमें उल्लेख है—

अयं टंकं महमूद पुर घटिते हिजिरियेन सवति ४१८।

'टंक' सिक्केको कहते हैं। इसका अर्थ है, 'यह सिक्का महमूदपुरमें हिजरी साल ४१८ में बना।'

(१) आजकलके (ब्रिटिश भारतके) सिक्कोंमें चाँदी और तँबेके सिक्कोंपर नागरी लेख नहीं होता। मिश्रधातु ('निकल') के सिक्कों (निकलकी शक्ती, दुबली, चबली) पर चार लिपियोंमें लेख रहता है, जिनमें एक देवनागरी भी है।

(१) सर ए० कर्निगहम, 'क्यान्स आफ मिडीवल इंडिया', पृष्ठ ६१।

(२) 'ला श्लाहा दहलाह मुहम्मद रसूल अल्लाह'।



महमूद गजनवीका सिक्का, जिसके एक ओर नागरी अक्षरोंमें लिखा है—“अव्यक्तमेकं मुहम्मद अवतार नृपति महमूद” और दूसरी ओर लिखा है—“अयं टंकं महमूदपुर धटिते हिजिरियेन संवति ४१८”

महमूदपुर लाहौरका नाम है। लेखकी संस्कृत ठीक नहीं है, इससे हमारा इस समय कोई प्रयोजन नहीं है।

क्या यह हर्षास्पद नहीं है कि महमूद गजनवीने भी संस्कृतका—विशेषकर देवनागरीका—प्रयोग अपने सिक्कोंपर उचित समझा ? और इतना ही नहीं, उसने अपने धर्मके पवित्रतम सिद्धान्तको भी संस्कृत अनुवादमें ही लोगोंके सामने रखा। इससे स्पष्ट है कि उस समयके मुसलमान कट्टर होकर भी उतने संकुचित विचारोंके और असहिष्णु नहीं थे, जितने राजनैतिक कारणोंसे आज हुए जा रहे हैं। वरना महमूद ‘बुतशिकन’ होकर भी ‘बुतपरस्तों’ की भाषा और लिपिको क्यों चुन लेता ? हो सकता है कि अपना प्रभाव दिखलाना ही उसका उद्देश्य रहा हो ; लेकिन प्रभाव तो जीतसे ही जम जाता है।

इसके पश्चात् दिल्लीके सुलतान वंशका पूर्वज मुहम्मद बिन साम है, जिसने अपने सिक्कोंपर देवनागरी अक्षरोंको प्रयुक्त किया। इसका समय ईसवी सन ११६३ से १२०५ माना जाता है। यह बादशाह तो तहाँ तक बढ़ गया कि उसने अपने सोनेके सिक्कोंके मुख (Obverse) पर लक्ष्मीकी मूर्ति अंकित कर डाली और पिछली ओर अपना नाम देवनागरी

अक्षरोंमें लिखवाया। लक्ष्मीकी आकृति तो कन्नौजके राजा गोविन्दचन्द्रदेवके सिक्कों-जैसी ही है, और नाम—

श्री मह
मद विनि
साम

इस प्रकार लिखा है। किसी-किसी सोनेके सिक्केपर—

स्वामद [ह]
मीर मह [म]

द साम

ऐसा भी लेख है। इसके मिलावटो धातुओंके एवं ताँबेके सिक्कोंपर

स्त्री महमद साम

और—

स्त्री हमीरः

क्रमशः सामने और पीछे लिखा हुआ है। इसके लड़के महमूदने भी देवनागरीको अपने सिक्कोंकी एक ओर (पीठपर) प्रयुक्त किया और ‘स्त्री हमीरः’ का उल्लेख रहने दिया। ‘हमीर’ और ‘अमीर’ पर्याय ही हैं। ताजुद्दीन यलदूजने भी ऐसा ही किया।

इन सब सिक्कोंका वर्णन एवं प्रतिक्रियाँ नेलसन

राइटके एवं अन्यान्य लेखकोंके सूची-ग्रन्थमें पाई जाती हैं ।^१

शमसुद्दीन अलतमशने भी, जिसका समय हिजरी सन् ६०७ से ६३३ (ईस्वी सन् १२१० से १२३५) है, अपने 'विलन' (Billon)^२ या मिलावटी सिक्कोंपर इन अक्षरोंका प्रयोग किया । इनपर एक ओर—

सुरिताण स्त्री समसदीण

या—

समसदीण

और दूसरी ओर—

स्त्री हमीरः

या—

स्त्री ह

अथवा—

स्त्री मुस्त एवं स्त्री पल

ऐसा लिखा पाया जाता है ।

सकनुद्दीन फ़ीरोज़शाह (प्रथम) ने भी, जिसने हिजरी सन् ६३३ से ६३४ अर्थात् ईस्वी सन् १२३५ से १२३६ तक राज किया, अपनी विलन मुद्राओंपर देवनागर लिपिका प्रयोग किया है । उनके मुखपर—

सुरितां स्त्री रुक्मादीशा

और पीछे—

स्त्री हमीरः

लिखा हुआ है ।

एकमात्र मुस्लिम साम्राज्ञी जलालुद्दीन रजिया (हिजरी सन् ६३४-६३७ यानी ईस्वी १२३६-१२३९) ने भी—

स्त्री हमीरः

और—

स्त्री समन्त [देव]

का उल्लेख नागरी वर्णोंमें ही किया । ये लेख इस

बहादुर औरतके विलन और ताँवेके सिक्कोंपर क्रमशः पाये जाते हैं ।

मुइज्जुद्दीन बहरामशाहने (हिजरी सन् ६३७-६३९ अथवा ईस्वी १२३९-१२४१) भी इसी तरह अपने विलनके सिक्कोंकी पहली ओर इन्हीं अक्षरोंमें—

सुलतां स्त्री मुअज

का उल्लेख किया ।

इसके पीछे अलाउद्दीन मसऊद शाह (हिजरी सन् ६३९-६४४) ने भी पूर्वजोंका अनुकरणकर—

सुरिताण स्त्री अलावदीण

और—

स्त्री हमीरः

का उल्लेख देवनागरी लिपिमें किया । किन्हीं सिक्कोंपर 'अलादिण' और 'स्त्री षलीफ' ऐसा ही लेख दिया है ।

तदनन्तर नसीरुद्दीन महमूदने (हिजरी सन् ६४४-६६४) भी अपने विलन सिक्कोंके पीछे श्री हमीरः का उल्लेख नागरीमें किया और अपना नामादि अरबी अक्षरोंमें लिखा ।

गयासुद्दीन बलबनने (हिजरी सन् ६६४-६८६) भी अपने पूर्वजोंकी भाँति नागराक्षरोंका प्रयोगकर—

श्रीः सुलतां गयासुर्दी

का उल्लेख किया । इस प्रसिद्ध सुलतानने २२ वर्ष राज किया । यह पहला सुलतान था, जिसने हिन्दू-चिह्न 'चौहान घुड़सवार' को त्यागा । फिर भी उसने सिक्कोंपर अपना नाम देवनागरीमें ही लिखवाया ।

मुइज्जुद्दीन कैकुबादने (हिजरी ६८६-६८८) पूर्वजोंका अनुकरणकर इन्हीं वर्णोंमें—

**स्त्री सुलतां
मुइजुर्दी**

का उल्लेख किया ।

जलालुद्दीन फ़ीरोज़ सानीने भी अपने विलनी सिक्कोंकी पीठपर—

स्त्री सुलतां जलालुर्दी

का लेख किया ।

(१) नेलसन राइट, कैथलाग आफ़ दि कॉपेन्स इन दि इंडियन म्यूजियम, कलकत्ता ; भाग २, खण्ड १, पृष्ठ १७-१८, चित्र नं० १ ।

(२) विलन एक वनावटी धातुको कहते हैं, जो थोड़े दामकी होती है और चाँदी, ताँबा, बंग (तिन) आदि मिलाकर बनती है ।

इसी प्रकार अलाउद्दीन मुहम्मद शाह सानीने, जिसने ईस्वी सन १२६५ से १३१५ तक राज किया, अपने बिलनी सिक्कोंकी पिछली ओर—

श्रीः सुलतां अलावर्दी

लिखवाया ।

ऊपर वर्णित सिक्के तुर्क और खिलजी सुलतानोंके हैं, जिन्होंने ईस्वी सन ११६३ और १२६५ के बीच हिन्दुस्तानमें राज किया ।

तुगलक वंशका राज इन वंशोंके बाद हुआ । इस वंशमें भी कई प्रसिद्ध बादशाह हो चुके हैं, जिन्होंने देवनागरी अक्षरोंका प्रयोग किया, यद्यपि बिलन धातुके सिक्कोंपर ही । इन कम मोलके सिक्कोंपर देवनागर अक्षरोंका लिखना यह जतलाता है कि सर्वसाधारणका सुभीता उन्हें उद्दिष्ट था ।

गयासुद्दीन तुगलकने (ईस्वी सन १३२०-१३२५) अपने बिलनी सिक्कोंकी पीठपर—

स्त्री सुलतां गयासुर्दी

का उल्लेख किया । तुगलकके बेटे तीसरे मुहम्मदने (ईस्वी सन १३२५-१३५१) अपने ताँवेके सिक्कोंके मुखपर—

श्रीः मोहमद

इन्हीं अक्षरोंमें लिखवाया ।

शेरशाह सूरीने, जिसने सूरी वंशको प्रज्ज्वलित किया और मुगल वंशको कुछ समयके लिए पददलित कर दिया था और जिसने लोकहितके लिए कईएक शुभ काम किये^१, अपने चाँदीके सिक्कोंपर देवनागरी अक्षरोंका प्रयोग किया । उसने ईस्वी सन १५४० से १५४५ तक राज किया था । इसके चाँदीके सिक्कोंकी पीठपर—

(१) अफगान खुरी वंशके इस प्रसिद्ध शासकने अनेक महत्त्वपूर्ण कार्य किये, जिनका श्रेय अकबरके प्रशंसकोंने उसे न देकर अकबरको दिया । शेरशाह सूरीने कर (Revenue) और सर्वसाधारण कोष सम्बन्धी (fiscal) बहुतसे नियम प्रतिबद्ध किये । उसने अपने सिक्कोंका भी सुधार किया और अपने नामको देवनागर अक्षरोंमें ही लिखाया ।

स्त्री सेरसाह, श्री सेरसाह,
श्रे सेरसाह, श्री सेरसाही, स्त्री सेरसाही
लिखा पाया जाता है । कहीं-कहींपर—

श्री सरसीह अथवा स्त्री सारासाह
भी लिखा है । ऐसी भूलें बहुधा देखनेमें आती हैं ;
किन्तु यहाँ बात तो देवनागरी अक्षरोंके प्रयोगकी है ।

शेरशाहके पीछे इसलामशाहने भी (जिसका समय ईस्वी सन १५४५-१५५२ माना गया है) अपने चाँदीके सिक्कोंपर अपना नाम नागरी लिपिमें ही लिखा । अरबी अक्षरोंके उल्लेखके नीचे—

श्री इसलाम साह

लिखा मिलता है ; कहीं-कहीं—

श्री इस्लाम शाह, श्री इस्लाम साह,

श्री इसलाम साहि या स्त्री इसलाम सह

ही लिखा पाया जाता है ।

सूर वंशके ये सिक्के बालकोंके गलेमें भी पहनाये जाते थे । ऐसे कईएक सिक्के, जिनपर लटकानेके लिए कुण्डे लगे हुए हैं, मेरे संग्रहमें हैं ।

इसके अनन्तर मुहम्मद आदिलशाहके (ई० १५५२-१५५६) चाँदीके सिक्कोंपर इसी भाँति—

स्त्री मुहम्मद साहि, स्त्री सुल्ता महमद

या स्त्री महमद साह

देवनागरी वर्णोंमें मिलता है ।

इन बादशाहोंके समकालीन कईएक अन्य मुसलमान शासकोंने भी देवनागरीका उपयोग किया । बंगाल-प्रान्तके गयासुद्दीन इवज़के (ई० १२११-१२२६) चाँदीके सिक्कोंके पीछे नागरी अक्षरोंमें—

ल ना

पढ़ा जाता है । गयासुद्दीन बहादुरशाह सानीके (ई० १५५४-१५६०) चाँदीके सिक्कोंकी पिछली ओर—

स्त्री बहादुर साहि

लिखा हुआ है, और दाऊदशाह कररानि (ई० १५७२-१५७६) के चाँदीके सिक्कोंकी पीठपर देवनागरी अक्षरोंमें—

श्री दाऊद साहि

लिखा हुआ है ।

ऊपर लिखे दिखीके पहले सुलतान बादशाहोंके समकालीन चार शासक हुए, जिन्होंने स्वतन्त्र राज किया और देवनागरी अक्षरोंका अपने-अपने सिक्कोंपर प्रयोग किया । उनमें पहला नासिरुद्दीन कुवाचा था, जिसे मुहम्मद बिन सामने हिजरी सन् ६०० (सन् १२०३) में उच्छका गवर्नर नियुक्त किया था । मुहम्मद बिन सामके मरनेपर जब राजमें खलबली मची, तब वह स्वतन्त्र बन बैठा और पंजाबके पश्चिमी भाग तथा सिंधपर अपना आधिपत्य जमाकर शासन करने लगा । उसने सन् १२०३ से १२२८ ई० तक राज किया । उसके सिक्कोंपर, जो बिलनके थे, एक ओर—

... श्री कुवाचा सुरिताण

और दूसरी ओर—

... श्री हमीरः

लिखा मिलता है ।

ख्वारिज्मके जलालुद्दीनने, जो गजनीका शासक था और जिसने कुवाचाको हिजरी सन् ६२१ में पराजित किया, अपने सिक्कोंपर नागर अक्षररहने दिये । उनपर—

... श्री जलाल दग

और—

... श्री हमीरः

लिखा पाया जाता है । ... इसके हिन्दुस्तानमें शासनका समय सन् १२२० से १२२४ ईस्वी है । चंगेज खांसे हराया जाकर यह गजनी छोड़कर हिन्दुस्तानमें भाग आया था ।

इसके बाद सेफुद्दीन अलहसन करलग (जिसे जलालुद्दीनने ही गोर और गजनीका वायसराय नियुक्त

किया था) हिन्दुस्तानमें हिजरी सन् ६३६ (ई० १२३६) में आया और सिन्धमें शासन करने लगा । उसने भी अपने ताँबेके सिक्कोंकी एक ओर—

... श्री हसण करलग

और दूसरी ओर—

... श्री हमीरः

लिखाया ।

उसके बेटे मुहम्मद (नासिरुद्दीन मुहम्मद करलग)ने, जो सिन्धमें ई० १२४६ में राज करता था, अपने बड़ोंका अनुकरण किया । उसके बिलनी सिक्कोंपर—

... श्री महमद करलग

और—

... श्री हमीरः

देवनागरीमें लिखा पाया जाता है ।

ये सर्व बादशाह अरबी अक्षरोंके साथ-साथ देवनागर वर्णोंका अपने सिक्कोंपर प्रयोग करते रहे । इन सब सिक्कोंका नेलसन राइटके ग्रन्थमें (जिसका उल्लेख ऊपर किया जा चुका है) पूरा-पूरा वर्णन है ।

ऊपर लिखे वर्णनसे स्पष्ट विदित होता है कि पहले मुसलमान शासकोंने कट्टर होनेपर भी देवनागरी लिपिको अपने सिक्कोंपर स्थान दिया ही था, और वे इतने अनुदार और अदूरदर्शी नहीं थे कि भारतमें रहकर भारतकी मुख्य लिपिके प्रयोगसे अपनेको वचानेकी व्यर्थ कोशिश करते जायँ । वे यह भी समझते थे कि विजयी शासकके लिए भी, चाहे वह कितना ही कठोर क्यों न हो, प्रजाकी अभिलाषाओंकी उपेक्षा हितकर नहीं साबित होती ।

मई, १९३५]

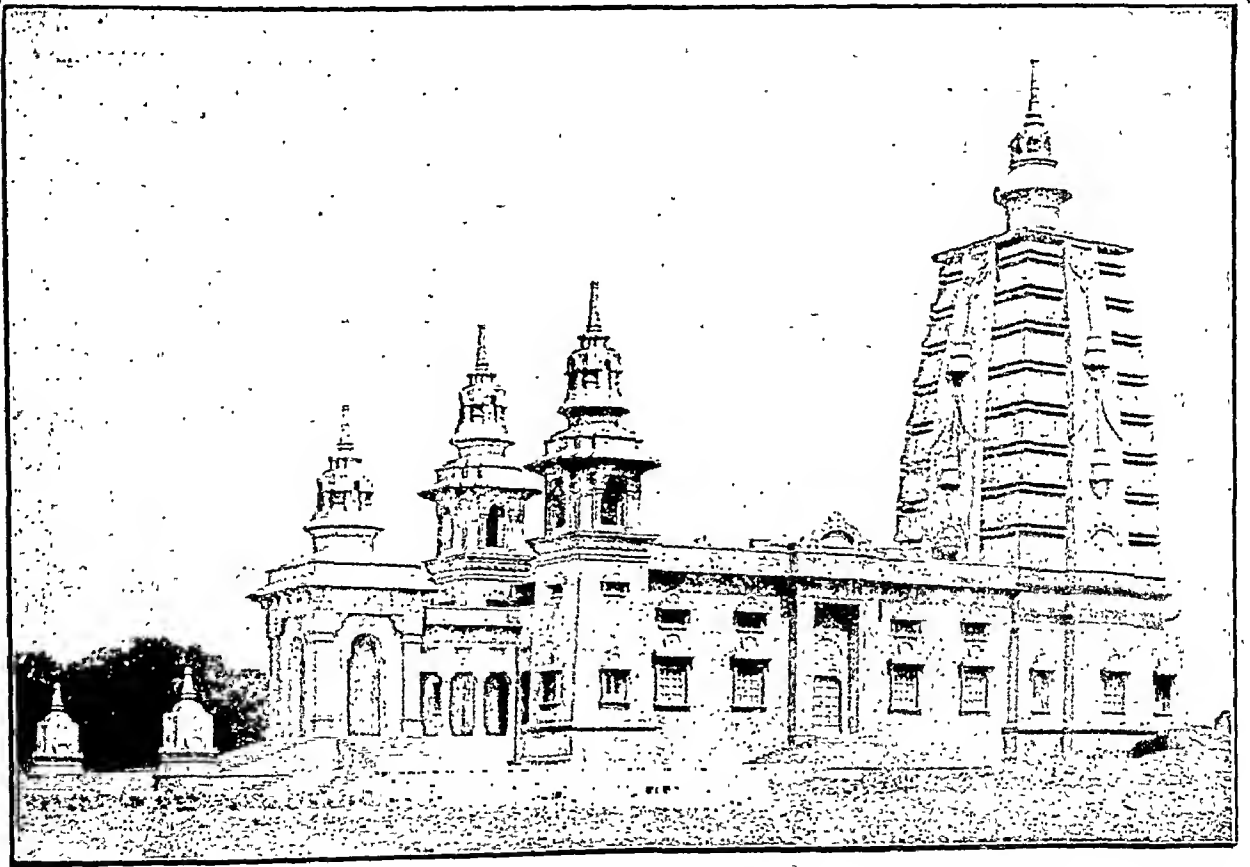


चित्र-चयन

मूलगन्धकुटी विहारके भोत-चित्र

काशोका सारनाथ बौद्धोंका एक पवित्र तीर्थ है। इसी स्थानमें—इसी पत्तनके मृगाराममें—भगवान बुद्धने, गयामें ज्ञान प्राप्त करनेके बाद, सबसे पहले पाँच ब्राह्मण शिष्योंको अपने धर्मका उपदेश देकर धर्मचक्र चलाया था, जो बादमें समूचे एशियाके देशोंमें फैला।

प्राचीन पवित्र प्रतिष्ठा प्रदान की। इस विहारकी नवीन भव्य इमारतकी दीवारोंपर भीत-चित्र बनानेके लिए जापानका एक प्रसिद्ध चित्रकार श्री कोसेतसू नोसू भारत आया था, और उसने पाँच वर्ष परिश्रम करके विहारकी दीवारोंपर भगवान बुद्धकी जीवन-घटनाओंके बड़े उत्कृष्ट चित्र बनाये हैं। इन चित्रोंके बनानेके



सारनाथका मूलगन्धकुटी विहार

सारनाथ अनेक शताब्दियों तक एक तीर्थ-स्थान बना रहा; लेकिन पिछली कई शताब्दियोंसे लोग उसे भूल गये थे। स्वर्गीय अंगारिक धर्मपालने सारनाथमें मूलगन्धकुटी विहारका निर्माण करके उसे फिरसे उसकी

लिए एक अंगरेज बौद्ध सज्जन श्री बी० एल० ब्राउटन एम० ए० (साक्सन) ने १०,०००) दान दिये थे। इसी दानकी बदौलत ही इन चित्रोंका बनना सम्भव हो सका। कहना न होगा कि चित्रकार नोसूने आर्थिक



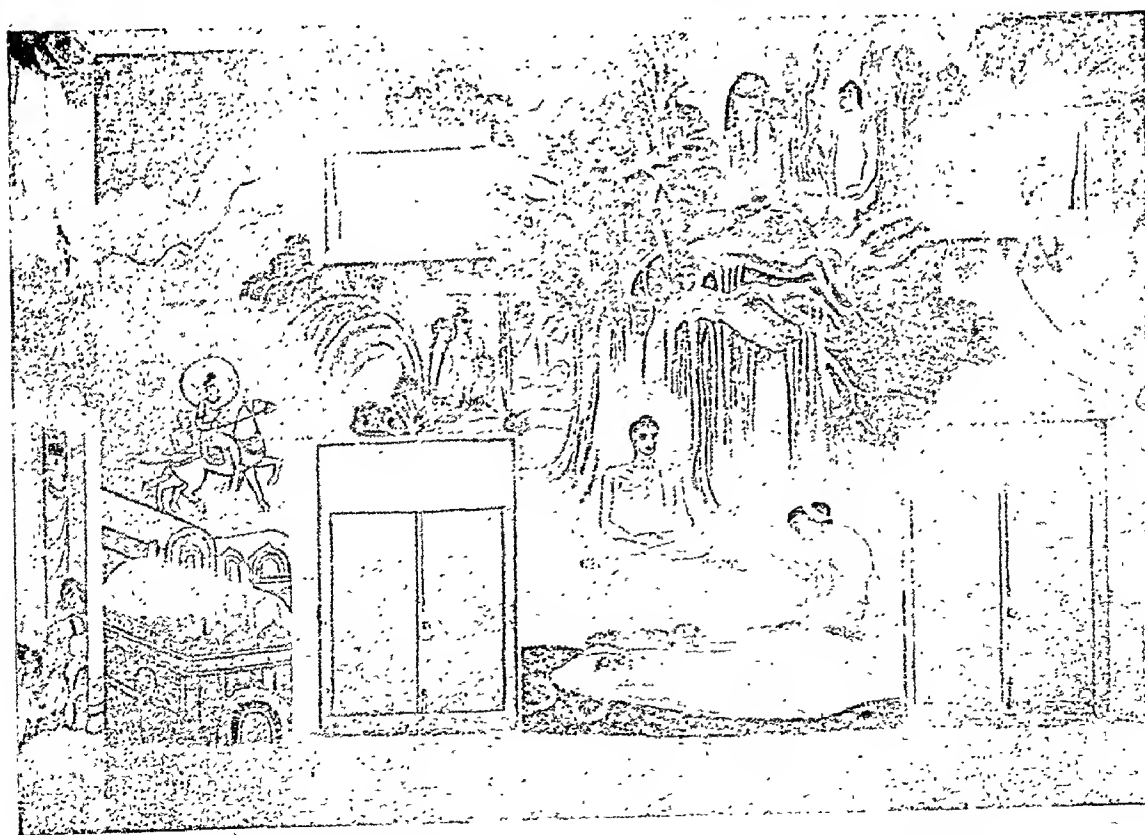
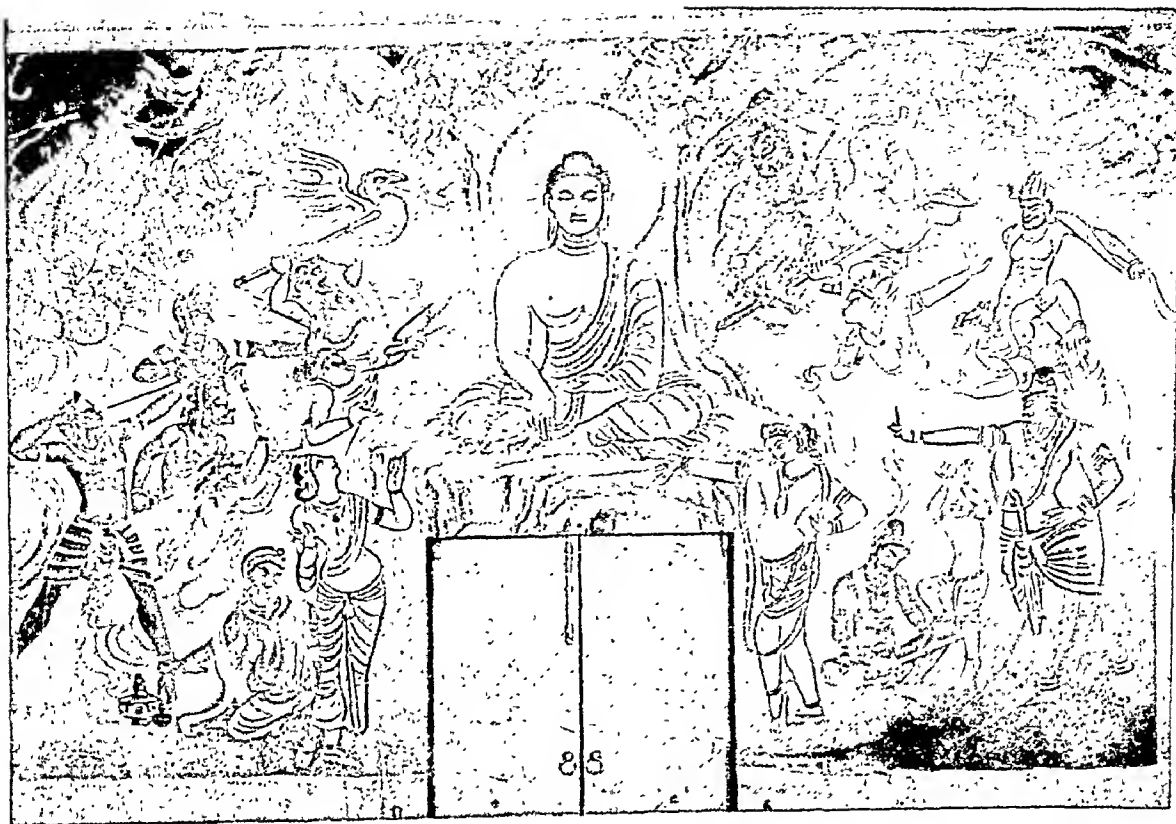
देवतागण बोधिसत्वसे नर्त्यलोकमें जन्म ग्रहण करनेके लिए प्रार्थना कर रहे हैं



एक नारी-मूर्ति

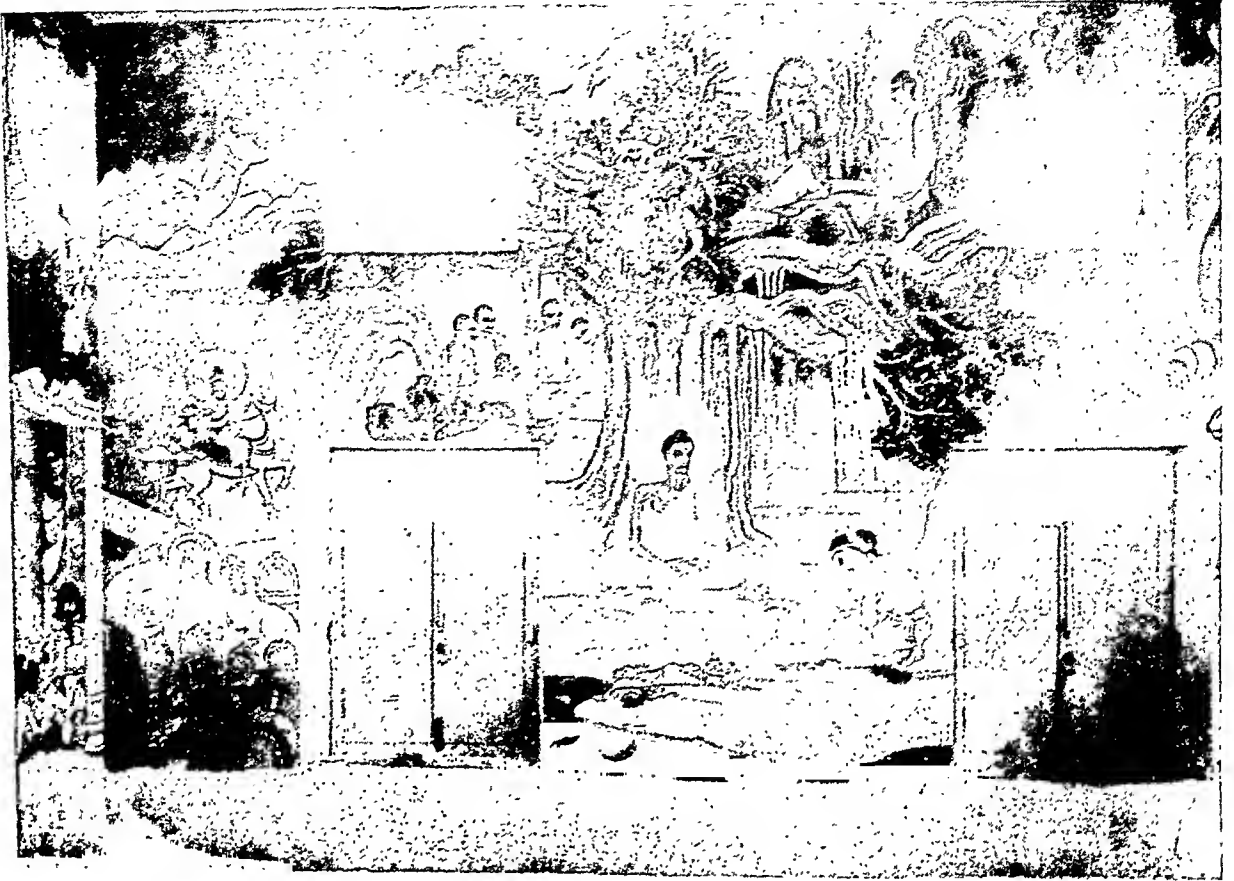
पुरस्कारके लोभसे नहीं, वरन् केवल अपने धर्म-प्रेमसे प्रेरित होकर ही पाँच वर्ष परिश्रम किया है।

नोसू महाशय एक उच्चकोटिके चित्रकार हैं। उन्होंने मूलगन्धकुटी विहारकी दीवारोंपर रंगों और तूलिकासे जो चमत्कार दिखलाया है, उससे स्पष्ट ज्ञात होता है कि उन्होंने बुद्धके जीवन-चरितको ही नहीं, वरन् तत्कालीन भारतीय भावनाओंको भी अच्छी तरह हृदयंगम कर लिया है। उनके चित्रोंको देखकर यह अनुमान करना कठिन हो जाता है कि ये चित्र किसी भारतीय द्वारा नहीं, वरन् एक विदेशी—जापानी—द्वारा अंकित किये गये हैं। उनके चित्रोंमें हमारी अजन्ताकी पुरानी चित्रकलाने नया जीवन प्राप्त किया है।



ऊपर—भगवान बुद्धपर मारका आक्रमण

नीचे—बुद्ध और सुजाता



चित्रोंमें भगवान बुद्धके जीवनकी अनेक घटनाएँ—
जैसे, मारका बुद्धपर आक्रमण करना और भगवानका
उसे परास्त करना, सुजाताकी भेंट, धर्मचक्र प्रवर्तन—
आदि बड़ी सुन्दरता और सजीवतासे दिखाई गई हैं।
एक जापानी द्वारा कई हजार वर्ष पहलेके भारतीय
जीवनके इस सफल चित्रणको देखकर यह प्रत्यक्ष हो
जाता है कि भारतवर्ष और संसारके बौद्ध देशोंकी
आत्मामें कैसी समता और आन्तरिक सहानुभूति है।

यहाँपर श्री नोसू द्वारा सारनाथमें अंकित किये हुए
कुछ चित्र प्रकाशित किये जाते हैं।

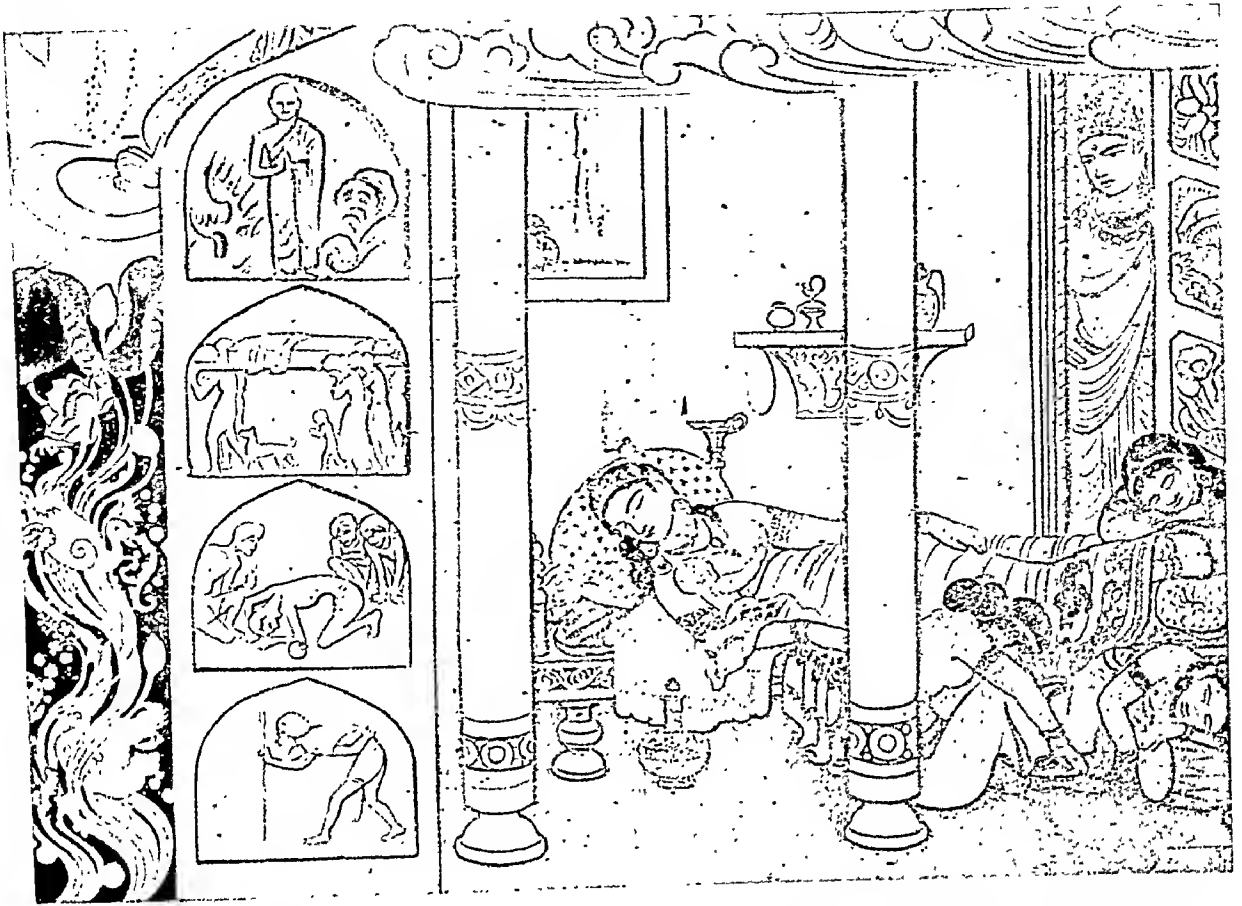
ऊपर—

बुद्धके प्रथम पाँच शिष्य ; बुद्ध और सुजाता ;

बुद्धकी अलर्क लामासे भेंट, सिद्धार्थका घोड़ेपर प्रस्थान

बाईं ओर—

राजकुमार सिद्धार्थ गृह त्यागकर घोड़ेपर प्रस्थान कर रहे हैं



राजकुमार सिद्धार्थ संसार छोड़ते समय निद्रिना पली और पुत्रको अन्तिम बार देख रहे हैं। बाई ओरके पक्खेपर वे चार दृश्य अंकित हैं, जिन्हें देखकर सिद्धार्थके मनमें वैराग्य उत्पन्न हुआ था।

इन प्रकाशित चित्रोंमें मूल चित्रोंके सौन्दर्यका शतांश भी नहीं आ सका है। पहली बात तो यह है कि मूल चित्र दीवारपर बने होनेके कारण खूब लम्बे-चौड़े हैं—मनुष्यके साधारण आकारके बराबर! यहाँपर प्रकाशित चित्रोंका आकार छोटा हो जानेसे उनकी पूरी खूबियाँ नहीं देखी जा सकती। दूसरे, मूल चित्र नाना रंगोंमें हैं और सौन्दर्य पैदा करनेमें रंगोंका कितना महत्त्व है, यह कहनेकी आवश्यकता नहीं। इसलिए इन चित्रोंसे मूल चित्रोंका केवल कुछ आभास ही मिल सकेगा।

७४ पृष्ठपर पहले चित्रमें देवतागण बोधिसत्वसे पृथिवीपर जन्म लेनेकी प्रार्थना कर रहे हैं। बौद्धधर्मकी पौराणिक गाथाओं (जातक कथाओं) के अनुसार बुद्धके

अनेक जन्म हुए हैं। जब अनाचार बढ़ जाता है, तब धर्म-प्रचारके लिए बोधिसत्व पृथिवीपर जन्म लेते हैं। इसी पृष्ठपर जो स्त्रीका चित्र है, वह बुद्धपर मारके आक्रमणके दृश्यकी एक नारी मूर्ति है।

७५ पृष्ठपर पहले चित्रमें भगवान बुद्धपर मारके आक्रमणका दृश्य दिखलाया गया है। बुद्ध बीचमें बैठे हैं। बाई ओर मार अपनी सेनाके साथ उनपर आक्रमण कर रहा है, दाहनी ओर भगवानसे पराजित होकर मार निराशासे भरा दिखाया गया है। दूसरे चित्रमें बुद्ध भगवान वृक्षके नीचे बैठे हैं और सुजाता उन्हें खीरकी भेंट दे रही है।

७६ पृष्ठपर पहले चित्रमें बाएँ दरवाजेके ऊपर



सुजाता भगवानको खीर अर्पण वर रही है

बुद्धके प्रथम पाँच शिष्य हैं। वृत्तके ऊपर सिद्धार्थ अन्ध साधुसे भेंट कर रहे हैं। वाएँ कोनेमें वर त्याग कर राजकुमार सिद्धार्थ घोड़ेपर जा रहे हैं। इसी पृष्ठपर दूसरे चित्रमें घोड़ेपर चढ़े सिद्धार्थ जग बड़े आकारमें दीख पड़ते हैं।

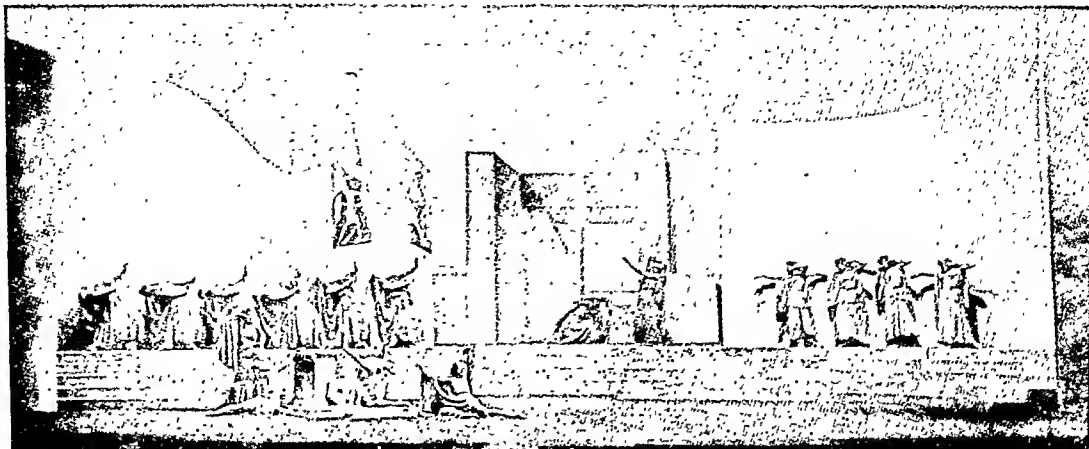
७७ पृष्ठके चित्रमें सिद्धार्थ अपनी निद्रिता पत्नीको छोड़कर जाते दिखाये गये हैं। यशोधरा अपने पुत्र

राहुलके साथ सो रही है। सिद्धार्थ दरवाज़ेके पीछेसे उसे अन्तिम बार देख रहे हैं। इस चित्रके वाएँ भागमें वृद्ध, रोगी और मृतक अंकित है, जिन्हें देखकर बुद्धको वैराग्य उत्पन्न हुआ था।

७८ पृष्ठके चित्रमें सुजाता नामक स्त्री भगवानको खीर भेंट करती दिखाई गई है। यह ७९ पृष्ठके बीचके चित्रका बड़ा आकार है।



रस्सीका पुल — चित्रकार, किरणमय धर



वेनिसकी अन्तर्राष्ट्रीय शिल्प-प्रदर्शनीमें नृत्यका रंगमंच और नृत्योत्सवका एक दृश्य

किस ओर ?

श्रीमती महादेवी वर्मा, एम० ए०

[यहाँ हम 'चाँद'-सम्पादिका श्रीमती महादेवी वर्माका 'किस ओर ?' शीर्षक एक लेख उद्धृत कर रहे हैं। 'विशाल भारत' के पाठकोंसे हमारा साग्रह अनुरोध है कि वे एक बार इस लेखको अवश्य पढ़ें। हर्षकी बात है कि 'नवशक्ति' तथा 'कर्मवीर'ने उस लेखके कुछ वाक्य उद्धृत किये हैं, और उसमें प्रकट विचारोंका समर्थन भी किया है। सुयोग्य लेखिकके निम्न-लिखित वाक्योंको पढ़कर किस हिन्दी-प्रेमीका सिर लज्जासे झुक न जायगा ?—

“प्रायः देखा जाता है कि कायर-से-कायर मनुष्य भी इतना कायर नहीं हो सकता कि अपनी मातृ-जातिके सम्मुख भी कायरताके प्रदर्शनमें लज्जाका अनुभव न कर सके ; न अशिष्ट-से-अशिष्ट व्यक्तिकी अशिष्टताकी परिधि इतनी विस्तृत हो सकती है कि महिलाएँ भी उससे बाहर रह सकें। परन्तु हमारे अनेक भाई इसके भी अपवाद सिद्ध हो चुके हैं।”

“साहित्य-क्षेत्रमें पैर रखना होलीके दिन बाहर निकलना हो गया है, जिस दिन निकलनेवालेपर रंग, मिट्टी, धूल या कीचड़ सब-कुछ अकुण्ठित भावसे फेंका जा सकता है। आज क्यातिका साधन सस्ती उत्तेजनाके अतिरिक्त और कुछ रह ही नहीं गया है। अतः लेखक, प्रकाशक, पाठक सब उसीकी आराधनामें लगे हैं।”

श्रीमती महादेवीजीकी इस बातसे हम पूर्णतया सहमत हैं कि अशिष्ट तथा उत्तरदायित्वशून्य पत्रोंका खिचोपर अनुचित आक्षेप करना उतना चिन्तनीय नहीं है, जितना पाठक समुदायका इस प्रकारकी गन्दगीमें मज्जा लेना, और सबसे अधिक शोचनीय वह मौन है, जो प्रतिष्ठित पत्रकार ऐसे अवसरोंपर धारणकर लेते हैं। लोग इस बातकी शिकायत करते हैं कि हमारे पत्रों तथा पत्रकारोंका कोई प्रबल व्यक्तित्व निर्माण नहीं हो पाता। जो लोग अन्याय और अत्याचारोंको टुकुर-टुकुर देखते रहते हैं, और अपने दुनयवीपन या कायरताकी वजहसे चुप रह जाते हैं, भला वे क्या इस जनममें किसी प्रबल व्यक्तित्वका निर्माण कर सकते हैं ? हम जानते हैं कि अन्यायके विरुद्ध आवाज़ उठानेमें खतरा है और बहुत-सा वक्त वाद-विवादमें ही वर्बाद हो जाता है; पर इस खतरेका सामना करना ही पड़ेगा। प्रिन्स क्रोपाटकिनने एक जगह लिखा है—“Be strong and once you have seen unrighteousness and recognized it as such—inequity in life, a lie in science, or suffering inflicted by another—rise in revolt against the inequity, the lie or the injustice.”

अर्थात्—‘मजबूत बनो और अगर एक बार तुम्हें कहींपर अधर्म देख पड़े और तुम्हें यह निश्चय हो जाय कि यह अधर्म है,—जीवनमें कहीं अन्याय हो रहा हो, विज्ञानमें कहीं भूठका प्रचार हो रहा हो, अथवा कोई किसीपर जुल्म कर रहा हो,—तो इस अन्याय, भूठ और वेइन्साफ़ीके खिलाफ़ विद्रोह कर दो।’

जिस दिन हिन्दी-साहित्य-क्षेत्रमें एक दर्जन भी पत्रकार और लेखक ऐसे निकल आवेंगे, जो अशिष्टता तथा गन्दगीके खिलाफ़ आवाज़ बुलन्द करनेमें संकोच न करेंगे, उसी दिन साहित्य-क्षेत्रसे गन्दगीका खात्मा हो जायगा।—सम्पादक]

वर्षा में चढ़ी हुई नदीका अस्थिर असंयत वेग तथा दोनों किनारोंको गिराता हुआ मलिन जल हमारे विस्मयका कारण नहीं होता। हम जानते हैं और भ्रान्तिरहित निश्चित रूपसे जानते हैं कि उसके आदिमें कोई उजला, स्वच्छ, स्थिर और अपने हृदयको गलाकर मिलानेवाला बर्फ़ीला पर्वत है और अन्तमें अन्तहीन गोदको फैलाये हुए अथाह समुद्र। बीचमें कहीं जलकी अतिशयता तथा असंयत प्रवाहसे जो मलिनता आ गई है, वह शरदमें संयत होनेपर स्वच्छतामें बदल जायगी,

ऐसा हमारा विश्वास होना स्वाभाविक है; परन्तु जब स्वच्छ हो जानेका समय आनेपर भी वह स्रोत अपनी मलिनता नहीं छोड़ता, तब हमें यह समझते देर नहीं लगती कि इस अस्वाभाविक परिस्थितिका कारण मलिन जलको निरन्तर मिलानेवाला कोई दूषित नाला ही हो सकता है।

साहित्यके लिए भी यही सत्य है। एक समय-विशेषके लिए असंयम अव्यवस्था क्षम्य थी। कारण, उस समय न मार्ग निश्चित था और न प्रवाह ही व्यवस्थित

हो सका था । परन्तु अब उस उच्छृंखलताकी ओरसे उदासीन होना, उसे प्रश्रय देना तथा सारे वातावरणको दूषित होनेके लिए छोड़ देना होगा । अवश्य ही साहित्य ऐसा मन्दिर है, जिसमें प्रत्येक व्यक्ति स्वतन्त्रतापूर्वक प्रवेश पा सकता है, और जिसका देवता सबका देवता है । परन्तु क्या मन्दिरमें भी हमें पवित्र होकर जानेकी आवश्यकता नहीं होती ? क्या हम अपनी सारी मलिनता देवताके नामपर वहीं छोड़ आनेके लिए स्वतन्त्र हैं ? फिर साहित्य-मन्दिर तो अनेक अर्थोंमें देव-मन्दिरसे भी श्रेष्ठ है । कारण, मन्दिरमें तो किसी जातिकी धर्म-भावना ही केन्द्रित है ; परन्तु साहित्यमें सारी मानव-जातिका हृदय है, जिसके अभावमें धर्म-भावना भी अस्तित्वहीन हो जायगी । इसीसे बड़ी-से-बड़ी क्रान्ति तथा छोटे-से-छोटे परिवर्तनको साहित्यकी गोदमें पलकर बड़ा होना पड़ा है ।

इस अनेक भाषावाले देशमें, जो किसी भी भाषाके लिए सुन्दर स्वप्न हो सकता था, वह दरिद्र हिन्दीके लिए सत्य हो गया है । वह भावी अखण्ड राष्ट्रमें सबको जोड़नेका सूत्र है तथा एक दूसरेके निकट पहुँचानेका साधन है । इस दशामें इन मुट्ठी-भर हिन्दी-साहित्यके उपासकोंके दुर्बल कन्धोंपर जो भार आ पड़ा है, उसको वहन करनेके लिए विशेष साहस और विशेष शक्तिकी आवश्यकता है । उचित तो यह था कि हम अपनी भाषाको अधिक महिमामयी बनानेमें सारी शक्ति लगा देते, जिससे आज उसे आवश्यकतावश अपनानेवाले कल इसे अपनानेको अपना गौरव समझते ; परन्तु इसके विपरीत हमने अपनी पूरी शक्ति एक-दूसरेको नीचे गिरानेके प्रयासमें लगा दी और लगाते जा रहे हैं । मानो यही हमारी योग्यता और सृजन-शक्तिकी कसौटी है ।

प्रायः समाजमें कुछ ऐसे उच्छृंखल तथा उत्तर-दायित्वशून्य व्यक्ति भी रहते हैं, जिनके लिए अकारण किसी भी सम्भ्रान्त व्यक्तिका अपमान कर देना सहज है ।

आश्चर्यकी बात है कि हमारे साहित्यमें भी ऐसे ही उच्छृंखल व्यक्तियोंकी एक बड़ी संख्या अनधिकार प्रवेश पा गई है, जो सर्वसाधारणका ध्यान अपर्ण और आकर्षित करनेके लिए बड़ी प्रसन्नतासे किसीके भी कुछ कह देनेमें अपना गौरव समझते हैं कहना नहीं होगा, ऐसे व्यक्तियोंकी अशिष्टता इतनी बढ़ गई है कि अब हिन्दीके साहित्यिकका पर्यायवाची अशिष्ट हो गया है । प्रत्येक पत्रको अपना अस्तित्व बनाये रखनेके लिए ऐसे साधन चाहिए, प्रत्येक लेखको अपनी जीविकाके लिए ऐसे विषय चाहिए और प्रत्येक पाठकको मनोरंजनके लिए ऐसी ही सामग्री चाहिए, जो शिष्टताकी सीमासे बाहर हो, जो सुरुचिसे, सद्भावनाओंसे कोई सम्बन्ध न रखती हो तथा मनुष्यको किंचित मात्र भी ऊपर उठाना जिसके ध्येयकी परिभाषामें न आता हो । एक दूसरेके प्रति कहे हुए अशिष्ट शब्द और मानहानिके दावे हमारे आगे बनते हुए साहित्यके मार्गमें मीलके पत्थर बनते जा रहे हैं, और यदि इस रोगके निदान तथा उपचारकी ओर शीघ्र ही हमारा ध्यान न गया, तो इससे सम्पूर्ण साहित्यिक वातावरण विप्रेला हुए बिना न रहेगा ।

प्रायः देखा जाता है कि कायर-से-कायर मनुष्य भी इतना कायर नहीं हो सकता कि अपनी मातृ-जातिके सम्मुख भी कायरताके प्रदर्शनमें लज्जाका अनुभव न कर सके, न अशिष्ट-से-अशिष्ट व्यक्तिकी अशिष्टताकी परिधि इतनी विस्तृत हो सकती है कि महिलाएँ भी उससे बाहर न रह सकें ; परन्तु हमारे अनेक भाई इसके भी अपवाद सिद्ध हो चुके हैं । जान पड़ता है, उनके समदर्शी संसारमें बड़े-छोटे, शत्रु-मित्र, स्त्री-पुरुष सब एक श्रेणीमें बैठकर समानता तथा एक-से व्यवहारके अधिकारी हो गये हैं । साम्यका ऐसा विकृत रूप कदाचित ही कहीं मिल सके, जिसमें लाभके लिए, आदरके लिए, शिष्टताके लिए सब असमान हैं ; परन्तु हानि, निरादर और अशिष्टताके

लिए सबको एक ही समतल भूमिपर मिलना पड़ता है । आज एक वयोवृद्धके सुदीर्घ साहित्य-सेवामें उजले केशोंपर धूल डाली जा रही है, तो कल वरकी सुदृढ़ भित्तियोंमें बन्दिनी बहिन अनुचित आक्षेपोंका लक्ष्य बन रही है ।

साहित्य-क्षेत्रमें पैर रखना होलीके दिन बाहर निकलना हो गया है, जिस दिन निकलनेवालेपर रंग, मिट्टी, धूल और कीचड़ सब कुछ अकुंठित फेंका जा सकता है । आज ख्यातिका साधन सस्ती उत्तेजनके अतिरिक्त और कुछ रह ही नहीं गया है । अतः लेखक, प्रकाशक, पाठक सब उसीकी आराधनामें लगे हैं ।

हमारी प्रत्येक मानसिक स्थिति बाह्य परिस्थितियोंकी अपेक्षा करती है तथा प्रत्येक बाह्य परिस्थिति भी अनेक अंशोंमें मानसिक शक्ति और दुर्बलता द्वारा प्रभावित होती रहती है । इस साहित्यिक उच्छृंखलताके कारण ढूँढ़ने भी दूर न जाना होगा, क्योंकि वह हमारी अनेक बाह्य तथा आन्तरिक परिस्थितियोंका ही परिणाम है ।

हमारे नवीन साहित्यिकोंमें अनेक ऐसे व्यक्ति हैं, जिन्हें दुर्भाग्यने पर्याप्त साहस न देकर भी इस अभिशाप भरे युगमें उत्पन्न कर दिया है, जिसमें पग-पगपर समस्याओं, उलझनों और असुविधाओंका जमघट है । घरमें अर्थ-संकटने जीवन रक्ष कर दिया है और बाहर शिक्षाके महंगेपनने विकासकी रोककर उसे पंगु बना डाला है । सुखी परिवारमें स्वच्छन्द बालकपन बिताकर युवावस्थामें पदार्पण करनेवाले व्यक्तिकी निर्दोष मधुरता, सहज सरलता और दूसरोंके प्रति आदर तथा सहानुभूतिके भावका उनमें एकान्त अभाव मिलेगा । उनका मन बचपनसे असुविधा, असफलता और निराशाकी ठोकरें खाते-खाते कठिन, ईर्ष्यालु तथा विद्रोही हो उठा है । वे परतन्त्रताके उन बन्धनोंको तोड़ फेंकना चाहते हैं, जिन्होंने उनके जीवनमें सुख-शान्तिके प्रवेशके लिए द्वार ही बन्द कर दिया है ;

परन्तु स्वतन्त्रताका कोई स्पष्ट चित्र उनके सम्मुख नहीं है, और न वे उच्छृंखलता तथा स्वतन्त्रतामें भेद ही जानते हैं । जीवनको रूखा और संकीर्ण बनानेवाली इन परिस्थितियोंके साथ सामाजिक समस्याएँ भी उपरसे उपरत होती जा रही हैं, जिनसे उनका पारिवारिक जीवन इतना अधिक कटु बन गया है कि साहित्यकी मधुरता भी उसे मधुर नहीं बना पाती । यह कटुता उनके सारे कार्योंको प्रभावित करती रहती है, अतः हमें उनमें वह सहृदयता और समवेदना नहीं मिलती, जो मानव-हृदयके स्वस्थ विकासका, उसकी उत्तरोत्तर प्रगतिका चिह्न है ।

इसके अतिरिक्त उनमें उस नैतिकताका तथा उन सिद्धान्तोंका अंकुर भी नहीं जम पाता, जो प्रत्येक अच्छी - बुरी परिस्थितिमें मनुष्यको नीचे गिरनेसे सँभालता तथा उसे कायर और मिथ्यावादी होनेसे बचाये रहता है । ऐसी उलझी परिस्थितियोंमें पले व्यक्तियोंके विचार भी यदि उलझे हुए हों, तो आश्चर्यकी क्या बात है ! उनके लिए धनाभावने व्यापारका, असुविधाओंने ज्ञान-उपार्जन और विद्या-लाभका, सामाजिक संकीर्णताने पारिवारिक सुखका तथा धार्मिक क्रान्तिने आदर्श और सिद्धान्तका मार्ग बन्द कर दिया है । उनके सम्मुख एक साहित्यका निरन्तर खुला हुआ द्वार आवाहन करता रहता है, जिसमें प्रवेशके लिए न आज योग्यता चाहिए, न नैतिकता और न कोई कठिनतासे प्राप्त होनेवाला साधन ।

इसके द्वारपर न रक्षक मिलते हैं, न द्वारपाल और प्रवेशके साथ ही व्यक्तिको सारे बन्धन तोड़ फेंकनेका अधिकार प्राप्त हो जाता है । आज हमारे लिए साहित्य साधना नहीं है ; मनुष्य-जीवनमें छिपे हुए चिरन्तन सत्यका अन्वेषण भी नहीं है । वह तो मनुष्यकी सारी अच्छी-बुरी प्रवृत्तियों और दुर्बलताओंकी उच्छृंखल स्वाधीनता है । उसमें आकर मनुष्य अपनी सारी कुत्सित-से-कुत्सित भावना और सस्ती-से-सस्ती भावुकताको अबाध गतिसे बहते रहने देना चाहता है

(जो जीवनके अन्य क्षेत्रोंमें सम्भव नहीं हो सकता) मानो जीवनका गन्दा स्रोत बने रहने ही में साहित्यकी चरम सफलता रह गई है । किसीको किसीसे वैरका प्रतिशोध लेना हो, तो इसके लिए उसे साहित्यकी आवश्यकता पड़ेगी, किसीको किसीकी अनुचित निन्दा या प्रशंसा करना हो, तो इसके लिए भी साहित्यकी सहायता चाहिए, कोई किसीको ईर्ष्यावश लांछित या अपमानित करना चाहता हो, तो यह भी साहित्यिक बिना बने सहज नहीं । सारांश यह कि लौकिक आदान-प्रदान, चाहे वह महत्त्व सहित हो चाहे रहित, साहित्यके बिना हमारे जीवनमें कोई उपयोग नहीं रखता । फलतः यदि हमारे साहित्यिक और साहित्य दोनों मर्यादा या शिष्टताकी रेखाका उल्लंघन कर गये हैं, तो कुछ विचित्र नहीं हुआ ।

यह सत्य है कि साहित्य विचार-विनिमयका साधन भी है ; परन्तु पहले हमें विचारका अर्थ भी तो समझ लेना चाहिए, जिसमें अन्तर्गलता भी उसके अन्तर्गत न मान ली जावे । हमें स्वच्छन्दता चाहिए, परन्तु साथ ही यह भी स्मरण रखना आवश्यक है कि जिस व्यक्तिके संयमका एक तन्तु सौ बन्धनोंसे अधिक ढढ़ होता है, वहीं स्वतन्त्र होनेका, बन्धनोंको तोड़ फेंकनेका अधिकारी है । बन्धनोंका आविष्कार तो उन्हीं दुर्बलोंके लिए है, जो संयमका बन्धन नहीं सह सकते । हिमालयके कठिन हृदयके कारागारको तोड़कर स्वच्छन्द रूपसे वह निकलनेवाला स्रोत अपनी मर्यादा तथा अपने तट स्वयं बना लेता है ।

हमारे प्रतिदिन विस्तृत होनेवाले साहित्य-क्षेत्रमें कुछ बेकारीके कारण, कुछ उच्छृंखलताकी अदम्य प्रेरणासे, जो थोड़ेसे उत्तरदायित्वशून्य व्यक्ति आविर्भूत हो गये हैं, उनका होना अनहोनी घटना नहीं है, क्योंकि ऐसे व्यक्ति अस्थायी रूपसे सभी क्षेत्रोंमें आते-जाते रहते हैं । इससे हमारी विशेष हानि नहीं ; परन्तु खेद तो यह है कि उन्हें हमीसे सहयोग और उत्तेजना फैलानेकी स्वतन्त्रता मिल रही है ।

अशिष्ट परिहास-प्रधान तथा उत्तरदायित्वशून्य कोई पत्र यदि छिन्नोपर कुछ अनुचित आक्षेप कर देता है, तो अधिक चिन्ता नहीं होती ; परन्तु खेद तब होता है, जब इस कार्यका अनुमोदन अनेक सम्भ्रान्त व्यक्तियों द्वारा होने लगता है । किसी उच्छृंखल व्यक्तिने होलीके अवसरपर यदि हिन्दीकी प्रत्येक कवयित्रीके साथ किसी कविका नाम जोड़कर एक अशिष्ट तुकबन्दी बना ली, तो वह हमारे ध्यान देने योग्य नहीं है ; परन्तु जब उसे कोई पत्र प्रकाशितकर गर्वित हो उठता है और पाठक पढ़कर पुलकित होने लगता है, तब उसे समाजकी अस्वस्थ मनोदशा ही समझना चाहिए, जो चिन्तनीय है ।

मनुष्य उत्तेजनासे बहुत ऊपर है, इसीसे वह उसे न उन्नत बनानेकी क्षमता रखती है और न स्थायी आनन्दमय सन्तोष देनेमें ही समर्थ है । नशेकी आरम्भिक ज्ञानशून्यता तथा अन्तकी शिथिलताके समान ही ऐसी उत्तेजना हमें आरम्भमें हतज्ञान और अन्तमें अकर्मण्य बनाकर छोड़ जाती है ; परन्तु दोष जानते हुए भी नशीले पदार्थोंका सेवन करनेवालेके समान हम इसके आकर्षणसे अपने-आपको बचा नहीं पाते, और यदि बहुत समय तक इसी प्रकार नत होते रहे, तो फिर यह हमारा स्वभाव बन जायगा । सम्भव है, साहित्यमें भी हमें ऐसे लोकोत्तर व्यक्तिकी आवश्यकता और प्रतीक्षा हो, जिसके इंगितमात्रसे हम थरथरा उठें और वर्जित दिशाकी ओर उठे हुए हमारे पैर उठे ही रह जायँ, आगे न बढ़ सकें ; परन्तु केवल भयसे रुकना क्या हमारे सम्मानका कारण बन सकेगा ? क्या वह हमारी मनुष्यताके लिए धिक्कार न बन जायगा ? इस बढ़ती हुई साहित्यिक उच्छृंखलताके लिए अग्रत्यक्ष रूपसे हमारे वीतराग साहित्यिक भी कुछ क्रम उत्तरदायी नहीं हैं । जिस समय एकका गला घोंटा जा रहा हो, उस समय निर्विकार भावसे प्राणायाम करनेवाला व्यक्ति क्या क्रम दोषी है ?

हमारा साहित्य एक ऐसे क्रान्तिके युगसे निकल

रहा है, जिसके अनेक अच्छे-बुरे चिह्न उसपर रहकर उसे कुरूप या सुन्दर बना देंगे ; हमारी संस्कृति, हमारी कला सब ऐसे नवीन साँचेमें ढलते जा रहे हैं, जिसके विषयमें इस समय कुछ निश्चित रूपसे कहना कठिन है, अतः ऐसे निर्माण और ध्वंसके संगमपर सच्चे सहृदय व्यक्तियोंका प्रहरी बना रहना अत्यन्त आवश्यक है, इसमें सन्देह नहीं। यदि वे साधिकार अपने और दूसरोंके कर्तव्यकी गुरुता समझें तथा समझावें तो सम्भव है, यह दूषित वातावरण कुछ पवित्र हो सके और यदि न भी हो तो कम-से-कम अधिक दूषित होनेसे बच जावे। अब भी हमारे साहित्यमें ऐसे व्यक्तियोंकी संख्या बहुत कम नहीं है, जो प्रान्त-विशेष, काल-विशेष तथा स्वार्थ-विशेषकी सीमाको नाँवकर निःस्वार्थ भावसे सबके तथा सब कालोंके लिए हो गये हैं। वे अशिष्टताके तूफान, प्रान्तीयताकी आँधी, उच्छृंखलताकी बाढ़ और स्वार्थके प्रवाहमें भी अचल रहनेका वह मूलमन्त्र जानते हैं, जिसे न जाननेके कारण हम दिग्मूढ़ हो रहे हैं। यदि उनका पर्याप्त सहयोग मिल सके तथा हमारे जीवनमें जीवित रहनेका अभिमान जाग उठे, तो कोई कारण नहीं कि हमारा आजका असंयम कल संयममें परिवर्तित न हो जावे, आजकी दूषित मनोवृत्तियोंकी पराधीनता कल स्वतन्त्रतामें न बदल जावे। हाँ, इस दिनको लानेके लिए, सत्यको कलामें जीवित करनेके लिए, अनेकोंको अपने सफेद कपड़ोंकी चिन्ता छोड़नी पड़ेगी ; कारण, इस वातावरणकी मलिनता दूर खड़े रहकर देखनेवालोंसे दूर न हो सकेगी। इस दिशामें हमारे पत्र-पत्रिका तथा सम्पादकोंका सहयोग भी अपेक्षित है, इसमें सन्देह नहीं। वे अच्छी-बुरी दोनों ही प्रकारकी भावनाओंके प्रचारके अमोघ साधन कहे जा सकते हैं, विशेष रूपसे इस समाचारपत्रोंके युगमें।

हमारा आधुनिक जीवन चलता नहीं भागता है, अतः ऐसे व्यस्त जीवनमें सबके लिए प्राचीन कालका मनन-चिन्तन असम्भव हो उठा है। रेलके यात्रियोंके समान हम बाहरकी वस्तुओंपर केवल दृष्टिपात कर सकते हैं, उनके निरीक्षणका अवकाश नहीं पाते, और इस दृष्टिपातके लिए पत्र साहित्य गवाक्षका काम करता है। आधुनिक अर्थमें शिक्षित या अर्ध-शिक्षित व्यक्तियोंके व्यस्त-से-व्यस्त जीवनके भी कुछ क्षण दैनिक या साप्ताहिक पत्र अपनी उपयोगितासे और मासिक पत्रिकाएँ अपने आकर्षण द्वारा चुरा ही लेती हैं। बिना किसी प्रकारके गम्भीर अध्ययनके इन्हीं पत्र-पत्रिकाओंका आश्रय ले अनेक व्यक्ति साहित्यिक, राजनैतिक आदि सभी क्षेत्रोंमें प्रवेशकर अपनी प्रतिष्ठाकी रक्षा करनेमें समर्थ हो जाते हैं।

अतः भविष्यके निर्माणमें इनका बहुत-कुछ हाथ है और रहेगा। जिस मलिनताको फैलानेमें इनसे सहायता मिली है, उसका दूर होना भी इन्हींपर निर्भर है। हमारे सम्पादक ऐसे सामाजिक चिकित्सक हैं, जो व्याधिग्रस्त समाजको उपयुक्त औषधि द्वारा स्वस्थ भी कर सकते हैं और अनुपयुक्त पेय देकर सन्निपातग्रस्त भी। सम्भव है, रोगी कोई अनुपयुक्त वस्तु चाहता हो ; परन्तु इसका यह आशय नहीं कि उसे वह मिलना ही चाहिए, चाहे अन्तमें उससे हानि हो। उत्तरदायित्व और विवेकसे शून्य अधिकार जीवनके लिए अभिशाप तथा विकासके मार्गमें शिला है। गति हमारा साधन है, साध्य नहीं। यदि हमें गन्तव्य स्थान तक पहुँचना है, तो यह भी जान लेना उचित है कि किस ओर जा रहे हैं, अन्यथा सम्भव है, विपरीत दिशामें निकल जावें।



पुस्तकें कैसे विकें

‘विशाल भारत’ के एक सुयोग्य पाठक लिखते हैं :—

मेरी सम्मतिमें सबसे आवश्यक बात यह है कि जनतामें सत्साहित्यकी भूल जाग्रत की जाय। प्रकाशक-संघकी स्थापनाके बाद भी ऐसे व्यक्ति रहेंगे, जो १५ प्रतिशतके खर्चपर पुस्तकें तैयार कराके ७५ प्रतिशत कमीशन देकर लाभ उठानेका लाभ न छोड़ सकेंगे। घटिया चीज़के खरीददार रहेंगे, इसलिए वह चीज़ वहाँ पहुँचनेसे भी न रुकेगी; परन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि श्रेष्ठ वस्तुके प्रसारमें निराशा हो। सबसे अधिक ध्यान देनेकी बात यह है कि लोगोंकी रुचि हम परिष्कृत करें; उन्हें बतावें कि यह चीज़ अच्छी है, वह नहीं; अपने शौकके लिए और साथ ही देशके सामूहिक कल्याणके लिए भी हिन्दीके सद्ग्रन्थ हमें खरीदने चाहिए।

आज हमारी प्रवृत्ति यह है कि हिन्दीका ग्रन्थ हमें मोल न लेना पड़े, कहींसे मुफ्त मिल जाय। हम अपनी आर्थिक स्थितिसे भी विवश हैं; परन्तु पुस्तकोंके ही सम्बन्धमें यह बात क्यों? मामूली दिखावे भरके लिए अब भी हम बहुत ऊल-जलूल खर्च करते हैं। हम पढ़े-लिखे हैं, यह दिखानेके लिए हम जेबमें झरना कलम (दवाती कलम?) रखते हैं, तो क्या इसी उद्देशसे अपने लिए कुछ पुस्तकें भी मोल नहीं ले सकते? हिन्दी पुस्तकें भी एक हिन्दी-भाषा-भाषीके घरमें घरके दूसरे फरनीचरकी तरह अनिवार्य हैं, हमें इस भावनाका प्रचार करना होगा।

प्रकाशक संवटित हो सकेंगे या नहीं, यह मैं नहीं कह सकता; परन्तु एक दूसरा अत्यन्त उपयोगी संघ आप स्वयं स्थापित कर सकते हैं। नाम उसका ‘सत्साहित्य-प्रचार-मंडल’ या ऐसा ही और कुछ हो सकता है। उसका कार्य व्यावसायिक लाभसे अलग रहकर जनतामें अच्छी पुस्तकें पहुँचानेका होना चाहिए। सदस्यताके लिए प्रतिवर्ष कम-से-कम २५) की पुस्तकें खरीदना आवश्यक हो। यदि आप

२००० ऐसे व्यक्ति उसके सदस्य बना सकें, तो उससे हिन्दीकी अभूतपूर्व सेवा हो सकेगी। शुरूमें दो ही चार सौ सदस्य बनें तो भी क्या हानि। ऐसे संघकी सदस्यताके लिए हम अपने किसी भी मित्रसे निस्संकोच अनुरोध कर सकते हैं। यदि आप ऐसा कोई संघ खोलें, तो उसका एक विनम्र सदस्य बननेके लिए एक व्यक्ति मैं पहलेसे तैयार हूँ।

इस मण्डलके दो हजार सदस्य हो जानेका अर्थ यह होगा कि किसी अच्छी पुस्तकका पहला संस्करण आप बात-की-बातमें खपाकर उसके लेखकको उससे भी अच्छी चीज़ फिर तैयार करनेमें मदद देंगे। साहित्यमें नाबेल-पुरस्कार पानेवाले कई साहित्यकारोंने पुरस्कार पानेके बाद और भी महत्वपूर्ण साहित्य-सेवा की है। आपका यह मण्डल सत्साहित्य-सेवियोंके लिए एक तरहसे कल्पवृक्षका काम करेगा। उसकी पुस्तकका पहला संस्करण तत्काल निकल जाना उसके लिए भारतवर्षके बड़े-से-बड़े साहित्य-पुरस्कार पानेसे भी अधिक उत्साहवर्द्धक हो सकता है।

मण्डलके उद्देश साधनमें हमारे पुस्तकालय भी सहायक हो सकते हैं। आजकल हमारे ये पुस्तकालय हमारी धर्मशालाओंके जोड़की ही वस्तु हैं, जिनकी सुविधाका भिक्षा-दान हम निस्संकोच रूपसे ग्रहण करते हैं; परन्तु इनका उद्देश केवल इतना ही न होना चाहिए कि ये अपने सुन्दर छपे हुए वार्षिक विवरणमें आनेवालोंकी बड़ी संख्या दिखाकर सन्तुष्ट हो जायें, चरन वे यह बताना भी आवश्यक समझें कि अपने स्थानमें अपने प्रयत्नसे कितने लोगोंको कितने मूल्यकी पुस्तकें खरीदनेके लिए उन्होंने प्रेरित किया है।

अच्छी पुस्तकोंकी विक्री एक दूसरे उपायसे भी बढ़ सकती है। विवाह-शादीके अवसरपर, मित्रके जन्मोत्सवपर, अन्य त्योहारोंपर सम्बन्धियों और मित्रोंको हम हिन्दीके सद्ग्रन्थ भेंट करनेकी भावना फैलावें।

जहाँ तक मेरा खयाल है, बंगालियोंने इस विधिसे बहुत लाभ उठाया है। अभी जब कभी ऐसा प्रसंग आता है, तो हम लोग जहाँ तक होता है, अंगरेजी ग्रन्थ खरीदकर भेंट करते हैं !

अच्छी पुस्तकें खरीद सकनेवाले अब भी कम नहीं हैं, हमी उनके पास यह कहनेके लिए नहीं गये हैं कि इस पुस्तकको खरीदो ; अच्छी पुस्तक खरीदनेसे ही पुस्तक खरीदनेका आशय पूरा होता है। जो लोग घटिया पुस्तकें तैयार कराके उन्हें काफ़ी संख्यामें बेच लेते हैं, वे जानते हैं कि पुस्तकका निकास इस तरह होता है। सत्साहित्यके प्रचारकोंको उनसे यह कला कृतज्ञतापूर्वक सीखनी चाहिए। अच्छी पुस्तक लिखाकर हम प्रकाशित कर दें और उसके प्रसारके लिए यथोचित उद्योग न करें, तो हमारे कामका महत्त्व बहुत कुछ घट जाता है।

मुझे एक प्रकाशक महोदयने कहा था कि आप अपनी कोई पुस्तक हमें दीजिए और देखिये कि हम उसे सब जगह पहुँचा देते हैं या नहीं। हम क्या करें, हमें अच्छी पुस्तकें मिलती ही नहीं हैं ; परन्तु जो मिलती है, उन्हें निकालना हम जानते हैं। उनकी बातसे मतभेद रखता हुआ भी मैं मानता हूँ कि उनकी बातमें सार है।

इससे कहीं आप यह न समझ लें कि प्रकाशक लोगोंकी सत्तर-पचहत्तर सैकड़ें कमीशनकी दरका मैं समर्थन कर रहा हूँ।

विदेशी व्यापारी अपनी एक-एक पैसेकी चीज़ गाँव-गाँवमें एक ही दरपर पहुँचा देते हैं। घटिया पुस्तक-प्रकाशक भी अपनी चीज़ दूर-दूर पहुँचानेमें यथाशक्ति प्रयत्न करते हैं ; परन्तु अच्छे प्रकाशक अच्छी चीज़ निकालकर ही यह सन्तोष कर लेते हैं कि उनकी चीज़ लेनेके लिए ग्राहकको स्वयं ही उनके दरवाज़ेपर आकर अभिनन्दन कर जाना चाहिए।

कुछ हो, इस विषयकी ओर जनताका ध्यान अत्यधिक रूपमें आकर्षित करना ही चाहिए।

‘विशाल भारत’ यह काम हाथमें अपने ले ले, तो बहुत अच्छा हो। ‘विशाल भारत’ की बात लोग सुनते हैं, और उसकी चर्चा होने लगती है। कई बार मेरे मनमें आया कि समाचारपत्रोंमें मैं चर्चा चलाऊँ ; परन्तु मुझे अपनी इच्छा मन-की-मनमें ही दान देनी पड़ी है, क्योंकि लोग आजकल प्रत्येक बातमें वैयक्तिक स्वार्थकी गन्ध लेने लगते हैं।

इसके सिवा ऐसे किसी आन्दोलनमें आन्दोलकके रूपसे आगे आकर काम कर सकने योग्य मेरी शारीरिक और मानसिक स्थिति नहीं है। जो काम मैंने ले रखा है, वही मेरी शक्तसे कम नहीं है। फिर भी मैं चाहता हूँ, यह काम सुचारु रूपसे चले। आप इस कामको हाथमें लें, तो इस तरह काम न चलेगा कि १६ महीने पहले एक नोट लिख दिया और एक अब। मेरे विचारसे प्रचारकको यह मान लेना चाहिए कि जनता बहरी है, और बहरे आदमीके साथ बात करनेमें अस्वाभाविक रूपसे जोरसे बोलनेकी जो नीति हम ग्रहण करते हैं वही जनतासे बात करनेके लिए भी हमें ग्रहण करनी चाहिए। महात्माजीने जहाँ तक मुझे याद है, एक बार कहीं कहा था कि यदि एक बार कहनेसे ही लोग सुन लें, तो मुझे खादीके लिए बार-बार क्यों कहना पड़े।

वास्तवमें सत्साहित्यके प्रचारके लिए इसी तरहका कुछ करनेकी बहुत आवश्यकता है। यह तो बहुत कहा चुका है कि हिन्दी समझनेवाले बाईस करोड़ आदमी हैं। अब हमें यह बतलानेकी आवश्यकता है कि हमारी श्रेष्ठ पुस्तकें कितने समयमें कितनी निकल जाती हैं। इसी प्रश्नके आधारपर अब हमारी महत्ताकी जाँच होगी। गुजरातीके एक प्रसिद्ध साहित्य-सेवीने मुझसे हिन्दी पुस्तकोंकी विक्रीके सम्बन्धमें प्रश्न किया था। मेरा उत्तर सुनकर उन्हें जो निराशा हुई थी, उसकी लज्जा आज भी मुझे है। इस विषयमें सम्भवतः हिन्दीकी छोटी बहनें—कुछ प्रान्तीय भाषाएँ विशेष सौभाग्यशालिनी हैं।

एक आवश्यक बात कहना मैं भूल ही गया। सरकारने पार्सलोंपर तिगुनीसे भी अधिक पोस्टेजकी दर करके सत्साहित्यके प्रचारमें बहुत बड़ी बाधा खड़ी कर दी है; परन्तु खेद है कि इस विषयमें समाचारपत्रोंने वैसा आन्दोलन नहीं किया, जैसा किया जाना चाहिए था। खेद है कि हमारे व्यवस्थापक नेताओंने अभी तक इस बातको नहीं समझा कि पुस्तकों द्वारा प्रचारित ज्ञान और संस्कृति हमारे जीवन-मरणके प्रश्नोंमें से एक है।

x

x

x

‘सैनिक’ लिखता है :—

“हम समस्त सत्साहित्य-सेवियोंसे सादर अनुरोध करते हैं कि वे इस समस्यापर गम्भीरतापूर्वक विचार करें। हम मानते हैं कि इस समस्याको हल करना बच्चोंका खेल नहीं, टेढ़ी खीर है, क्योंकि वास्तवमें समस्या साहित्यिक नहीं है, आर्थिक है। वह साहित्य-संसारके पंडितों—लेखकों और विद्वानोंसे सम्बन्ध नहीं रखती, उसके वैश्यों—प्रकाशकों और विक्रेताओंसे सम्बन्ध रखती है। प्रकाशक महोदयसे मार्त्तण्डजीकी जो बातचीत हुई, उससे यह स्पष्ट है कि भूखे और बेकार बैठे हुए प्रकाशक तीनचौथाई कमीशनपर भी पुस्तकें प्रकाशित करनेसे नहीं चूकेंगे। इस आर्थिक संकटके समयमें ऐसे भी प्रकाशक हो सकते हैं और हैं, जो यह समझते हैं कि कागज और छपाई तो उधारमें हो सकती है, लेखकके दाम भी बादको दिये जा सकते हैं, या हम स्वयं लिख सकते हैं, फिर मुफ्तमें छपी किताब किसी भी कमीशनपर बिके, तो हम भूखों मरनेसे फिलहाल बच जायेंगे। जब कर्ज देनेका वक्त आयगा, तब देखा जायगा। सारांश यह कि समस्या पूँजीवादी प्रतिस्पर्द्धाकी है। वह उस समय तक कदापि नहीं मिट सकती, जब तक पूँजीवादी प्रथाकी कायापलट न हो। हाँ, जनतामें सुरुचिकी सृष्टि करके समस्याको भयावहताको कम किया जा सकता है। और प्रकाशकोंके पारस्परिक सहयोगसे भी स्थितिमें

कुछ अवश्य सुधार हो सकता है, इसीलिए हम अपने समस्त सहयोगियों-पत्रों, पत्रकारों और प्रचारक-कला-विशारदोंसे यह प्रार्थना करते हैं कि वे इस समस्याको अपने हाथमें लेकर उसकी हालकी बुगइयोंको तो कम करनेकी कोशिश करें।”

x

x

x

‘अर्जुन’ लिखता है :—

“सस्ता साहित्य-मंडलके व्यवस्थापक श्री मार्त्तण्ड उपाध्यायने हिन्दी-प्रकाशकोंमें बढ़ती हुई एक बीमारीकी ओर ध्यान खींचा है। पुस्तकका दाम अनुचितरूपेण अधिक लिखकर ५०-६० और ७० फी-सदी तक कमीशन देकर पुस्तकें बेचनेका तरीका न केवल अप्रशंसनीय है, बल्कि हानिकर भी है। ग्राहक और पुस्तक-विक्रेता कमीशन माँगते हैं, यह सही है; लेकिन तभी, जब वे देखते हैं कि पुस्तकके दाम उचितसे अधिक रखे गये हैं। युक्तियुक्त मूल्य होनेपर ग्राहक आग्रह नहीं करते और न पुस्तक-विक्रेताओंको पुस्तक बेचनेमें असुविधा होती है। शर्त यह है कि पुस्तक अच्छी हो। पुस्तक-विक्रेताओंको इतना अधिक कमीशन देनेके लिए अन्य सब खर्च कम करने पड़ते हैं, लेखकोंको बहुत कम पारिश्रमिक दिया जाता है, चित्रोंपर, छपाईपर और कागज आदिकी ओर भी ठीक ध्यान नहीं दिया जाता। जो अच्छे पुस्तक-प्रकाशक कुछ ईमानदारी व सचाईसे चलते हैं, उन्हें अपनी पुस्तक निकालनेमें कठिनाई होती है, क्योंकि वे इतना अधिक कमीशन दे नहीं सकते और फलतः हिन्दी पाठकके लिए अच्छी पुस्तकें दुर्लभ हो जाती हैं। क्या प्रकाशक इधर ध्यान देंगे-?”

x

x

x

‘हंस’ लिखता है :—

“प्रकाशकोंको आपसमें मिलकर परिस्थितिपर विचार करना चाहिए और कोई प्रकाशक-संघ जैसी संस्था बनाकर पुस्तकोंके बाजारका नियन्त्रण करना और अपराधियोंको दण्ड देनेका विधान सोच निकालना चाहिए।

मगर हमारे खयालमें सारी जिम्मेदारी इन गौर-जिम्मेदार प्रकाशकोंपर डालकर चुप बैठ रहना ठीक न होगा। हमें ऐसा उपाय भी सोच निकालना चाहिए, जिससे अच्छी पुस्तकोंकी सूचना पाठकोंको मिला करे। इस काममें जब तक पत्रकार और बुकसेलर सब सहयोग न देंगे, अकेले प्रकाशकोंकी लीग बन जानेसे कुछ न होगा। यह आम शिक्षायत है कि पत्रों और पत्रिकाओंमें पुस्तकोंकी आलोचना या तो होती ही नहीं, या साल-छै महीने बाद होती है और वह भी निष्पक्ष नहीं होती। यह पत्र-सम्पादकोंका एक कर्त्तव्य होना

चाहिए कि वह जिन पुस्तकोंको अच्छा प्रचारमें प्रकाशककी मदद करे, और वह इसा तरह कर सकता है कि जल्द-से-जल्द उसकी आलोचना करे या करावे, और इसके साथ ही पुस्तकोंके विज्ञापनका रेट कुछ घटा दे। एक तो हिन्दी-प्रान्त यों ही गरीब हैं, उसपर जब पाठकोंको किसी पुस्तकके निकालनेकी सूचना ही नहीं मिलती, तो वे खरीदें क्या? यही सूचना निष्पक्ष रूपसे देना समाचारपत्रोंका काम है। और आलोचना जितनी ही जल्द निकलती है, उतना ही उसका व्यापारिक महत्त्व बढ़ जाता है।”

साधना और द्विधा

श्री रामधारीसिंह 'दिनकर'

कल जब उनीदी-सी खसी भूपर वसन्ती चाँदनी ;
पुरवा चली जब आ रही थी दूर निद्रा-लोकसे ।
वनके किसी सुनसानमें निज हाथमें मुरली लिये
बैठा पुलिनपर तब कहीं कवि साधनामें लीन था ।
धूल चाँदनीसे थी बिछी दूर्वा तटीके स्वप्न-सी ;
जाती सिंहर लघु ढालियाँ रह-रह दिशाके मौनमें ।
थी ऊँचती सुपमा कलीपर, किसलयोंकी गोदमें ;
सारा विपिन था रम्य दिवके ग्रीष्म-शयनागार-सा ।
सहसा महावाणी हुई अवतीर्ण भूपर स्वर्गसे
कविके समक्ष खड़ी हुई अपने अनामृत रूपमें ।
खुलसे गये कवि-नेत्र, वंशी गुनगुनाने - सी लगी ;
कविता उठी जग या कि दिलमें दर्द कुछ पैदा हुआ ।
लहरा उठी तब चेतना गिरिसे लृणोंके मूल तक ;
ललचा उठे सब गीतमें अमरत्व पानेके लिए ।
“इन सम्पुटोंमें कौन छवि, जिसको नहीं हम खोलतीं,
गाओ उसे भर गीतमें,”—यों बाल-कलियोंने कहा ।

“जिसके लिए घरसे चली, कवि ! धूल वन-वन छानती,
वह प्राणवल्लभ है कहाँ ?”—कह निर्भरी रोने लगी ।
गिरिने दरी-मुखसे कहा—“दृष्टा, कहो मेरी व्यथा ;
वह कौन विस्मय है, जिसे मैं देखकर निर्वाक हूँ ?”
घोलें नखत—“जलते विपुल हम किस निठुरकी राहमें ?
हर प्रात वनकर ओस चू पड़ते पिघल किस क्लेशसे ?”
“शिव-कण्ठसे नीचे न जा पाया हलाहल सिन्धुका,
मैंने पिया रस घूँट भर संसारका औ’ जल गया,
मेरे हृदय-पीयूष-घट (शुभांशु) में दूषण लगा ।”
नभने कहा—“घोलो कवे ! कितना गरल है विश्वमें ?”
तब लड़खड़ाती-सी हवा पर दूर लोकारण्यसे
आई प्रतिध्वनि गूँजती-सी क्षीण हाहाकारकी—
“नीचे बिछी पृथ्वी, तना ऊपर विथत भगवानका,
पर इस भरे जगमें गरीबोंका हित् कोई नहीं ;
चढ़ती किसीकी वृटपर पालिश, किसीके खूनकी ;
जीवित-मरालोंकी चिता है सन्ध्याकी गोदमें ।”

जिस रूपकी माँकी लिये कलियाँ अभी तक वन्द हैं ;
हैं खोजती फिरती जिसे नदियाँ विकल संसारमें,
जिसके विराट रहस्यको लख शैल युगसे मौन है,
‘निर्दोष हंसोंकी पुरी जलती लसीके सामने ।
सौ कण्ठसे वंशी प्रतीक्षा कर रही आदेशकी ;
विस्मित, चकित है, किन्तु कवि निर्वास तबसे शैल-सा ।

चिट्ठी-पत्री

इतिहास, सम्प्रदाय और सरकार

प्रियवर,

आज अपने पास कुछ खाली समय पाकर मैं आपके और आपके पाठकों के सामने अपने कुछ-एक विचार पेश करना चाहता हूँ, जो मेरे मनमें कितने ही दिनोंसे फिर रहे हैं, और जिनका उल्लेख कहीं देखनेकी मेरी आशा अब तक पूरी नहीं हुई है।

इन बातोंका विषय क्या है, यह मैं एकदमसे एक स्पष्ट शीर्षकमें नहीं कह सकता। इसलिए आरज़ी तौरपर समझ लीजिए कि मैं 'इतिहास, सम्प्रदाय और सरकार' के बारेमें कुछ कहना चाहता हूँ।

कुछ समय हुआ, शिवाजीके बारेमें एक भूलके विषयमें 'चित्रमय जगत्' को पत्र लिखते समय जवाहरलालजीने कहा था कि उनसे गलती हो जानेके कारणोंमें एक यह भी था (या हो सकता है) कि उन्होंने जो इतिहास पढ़े, वे अधिकांशमें विदेशियोंके लिखे हुए थे। यह बात हमारे देशके इतिहासकी एक बड़ी भारी कमीकी ओर इशारा करती है—वह है उसका पक्षपात। हमें जो इतिहास पढ़ाया जाता है, वह यथार्थताका इतिहास नहीं है, वह इतिहासका वैसा विकृत रूप है, जो कि हमारे आगे विदेशियोंका, या अन्य स्वार्थी (Interested) लोगोंका उत्कर्ष सिद्ध करता है और सब तरह उनके लिए लाभकर साबित होता है। किसी हद तक यह ठीक है कि इसमें हम विवश हैं। सरकारी (Official) इतिहाससे भिन्न कोई बात जब हम कहते हैं, तब वह पक्षपातपूर्ण, दूषित, गैर-ज़िम्मेवार, प्रोपेगेंडा इत्यादि विशेषणोंसे भूषित करके निकम्मी सिद्ध कर दी जाती है। स्कूल-कालेजोंमें उसका प्रचार नहीं होता; उसका उल्लेख करनेवाले फेल होते हैं, या मज़ाकका विषय बनाये जाते हैं। कभी-कभी इससे भी गर्हणीय साधन भी काममें लाये जाते हैं।

इस विषयमें एक घटना मुझे याद आती है। आप जानते होंगे कि भारत-सरकारके पुरातत्त्व-विभागके कर्मचारियोंको बिना सरकारकी अनुमतिके कुछ भी प्रकाशित करनेका अधिकार नहीं है। कुछ वर्ष हुए, इस विभागके एक उच्च कर्मचारीने विन्सेन्ट स्मिथके इतिहासोंकी एक बड़ी कड़ी आलोचना लिखी थी, जिसमें उसने दिखलाया था कि स्मिथने किस प्रकार गलत परिणाम ही नहीं निकाले, बल्कि तथ्य (facts) भी गलत लिखे हैं। ये अफ़सर अंगरेज़ थे, और स्वयं भी कोई विशेष भारत-भक्त नहीं थे। लेकिन बहुत कोशिश करनेपर भी उन्हें वह आलोचना प्रकाशित करनेकी अनुमति नहीं मिली, क्योंकि विन्सेन्ट स्मिथ भारतका सरकारी इतिहासकार है।

लेकिन जहाँ ऐसी विवशता हम लोगोंकी नहीं है, वहाँ भी हम लोग कुछ ध्यान नहीं देते। मुझे तो ऐसा जान पड़ता है कि हमारे शिक्षकवर्ग और इतिहासकारोंने अभी इतिहासकी शिक्षाका महत्व नहीं जाना—इस बातपर विचार नहीं किया कि राष्ट्रके चरित्रपर उसके इतिहासका—इतिहासका नहीं, उसकी पढ़ाईका—कितना गहरा प्रभाव पड़ता है। उन लोगोंने इतिहासकी शक्तिको नहीं पहचाना और उसे वशमें करनेकी चेष्टा नहीं की। और हमारे राजनैतिक नेताओंने (मैं अधिकांशकी बात कहता हूँ) अपनेको कभी इतनी फुरसतमें ही नहीं पाया कि पुराने इतिहास-जैसे निकम्मे विषयको लेकर शिक्षण-जैसे नीरस दृष्टिकोणसे उसे देखें। 'हम स्वयं इतिहास रच रहे हैं', इसी अभिमानमें वे इतिहास पढ़ने और पढ़ने-योग्य इतिहास प्राप्त करने की ज़रूरतको भूल गये हैं।

किसीने कहा है कि इतिहासमें घटनाओंके अतिरिक्त और सब झूठ है। इतिहासकार घटनाओंको लेकर या यों कहना अधिक ठीक होगा कि तथ्योंको लेकर

एक इमारत खड़ी करता है और उससे तर्कके आधारपर कुछ परिणाम निकालता है। एक ही घटनाको लेकर विभिन्न परिणाम निकाले जा सकते हैं—वैसे ही, जैसे एक ही चीज़को देखनेके कई दृष्टिकोण हो सकते हैं। इतिहास कोई आत्यन्तिक चीज़ है, ऐसा सिद्ध करना कठिन है। व्यक्ति उसमें से निकाल दिया जा सकता है, ऐसा मैं नहीं मानता।

अपनी मनस्थिति (approach) गलत होनेपर इतिहासकी पढ़ाई हानिकर भी हो सकती है। और इस मनस्थितिको ठीक रखनेकी जिम्मेदारी इतिहासकारके ऊपर है।

सिद्धान्तकी बातसे उतरकर मैं सबूतपर आता हूँ। मैं समझता हूँ कि हमारे देशकी बढ़ती हुई साम्प्रदायिकताका एक कारण इतिहास है। जैसे इतिहास हम पढ़ते हैं, वे हमें बाध्य करते हैं कि हम अपने देशके जीवनको साम्प्रदायिक दृष्टिसे देखें।

बहुत पुराने ज़मानेको छोड़ दिया जाय, तो कहा जा सकता है कि भारतमें पहले हिन्दू राज्य था। हमारे इतिहास कहते हैं कि उसके बाद मुस्लिम शक्ति बाहरसे आई। उसने अपने बलसे भारतको जीता और उसपर अपनी धाक जमाई। आगे बढ़कर हम देखें, तो पाते हैं कि जब हिन्दुओंकी भाँति मुसलमानोंकी शक्ति भी क्षीण होने लगी, तब ईसाई शक्तिने आकर उसे तोड़ डाला और अपना राज्य स्थापित किया। लेकिन हमारे इतिहास क्या कहते हैं? मुसलमानोंके बाद अंगरेज़ आये, फ्रांसीसी आये, पुर्तगीज़ आये! यह नहीं कि ईसाई आये।

अब आप इसका अर्थ सोचिये। जब एक भारतीय (चाहे हिन्दू, चाहे मुसलमान) पढ़ता है कि उसपर एक विदेशीने विजय पाई, तब इसकी प्रतिक्रिया उसमें उस देशके प्रति होती है। यदि उसपर आतंक होता है, तो एक देशका; यदि प्रतिहिंसा जागती है, तो एक देशके, स्थानके प्रति। वह ईसाई मात्रको शत्रु नहीं मानता, ईसाईपनको सन्देहकी दृष्टिसे नहीं देखता;

जब उसका एक भाई ईसाई हो जाता है, तो उसे अपने विजेताओंका अपना वंशज नहीं समझने लगता। यानी उसकी प्रतिक्रिया साम्प्रदायिक नहीं होती। हमारे मनमें अंगरेज़ और फ्रेंचका, स्पेनिश और पुर्तगीजका भेद बिलकुल साफ़ रहता है। आपको याद होगा, महायुद्धके दिनोंमें कई लोग मनौतियाँ मनाते थे कि जर्मन जीत जायँ, क्योंकि वे ब्रिटिश शासनके विरोधी हैं; लेकिन कल अगर मिस्र और तुर्कीकी लड़ाई हो जाय, तब आप आशा करते हैं कि हिन्दू किसी भी पक्षके बारेमें ऐसा कह सकेंगे? उनके लिए दोनों समान रूपसे मुसलमान रहेंगे, जिसका अभिप्राय आप समझ सकते हैं। आज एक जगह हिन्दू-मुस्लिममें साम्प्रदायिक खून होता है, तो किसी दूसरी जगह उसका 'बदला' लिया जाता है। लेकिन कल्पना कीजिए कि आज लाहौरमें कोई अपने मुहल्लेके एक ईसाई हुए चमारको इसलिए पीटे कि जर्मनीमें नात्सी लोगोंने एक हिन्दूको लहूलुहान कर दिया है—इस कल्पनापर ही आपको हँसी आ जायगी!

वैसे यह कहना भी जायज़ नहीं कि मुसलमानोंने हिन्दुओंपर विशेष रूपसे अत्याचार किये। हिन्दुओंपर उन्होंने कोई ऐसा अत्याचार नहीं किया, जो वे स्वयं अपने भाईपर नहीं कर सकते थे। हाथीसे रौंदवाना, ज़िन्दा भून डालना, तपी सलाखें घुसेड़कर मारना—ये सब उनके आम तरीके (Routine methods) थे, और अपने भाइयोंके लिए भी प्रयुक्त होते थे, विशेषकर हिन्दुओंके लिए नहीं आविष्कृत हुए थे। अभी कुछ ही वर्ष पहलेका अफ़ग़ान इतिहास इन्हीं अत्याचारोंका उदाहरण है।

इतिहासकी ग़लत शिक्षाके कारण ही हम अरबसे आनेवाली एक प्रगतिशील शक्ति, मध्य-एशियासे आनेवाली एक बर्बर जाति, तुर्क गुलामोंके परिवार और अफ़ग़ान जातियोंको एक ही समझते हैं। और कल जब हममें से एक मुसलमान हो जाता है, तब हम उसे वह स्थान नहीं देते, जो हम भारतीय ईसाईको देते हैं;

हम उसे उन्हीं क्रूर और अत्याचारी विजेताओंका वंशज और उनके पापका भागी मान लेते हैं (यह ठीक है कि मुसलमान स्वयं भी अपना सम्बन्ध भारतसे न जोड़कर पुरायभूमि मक्कासे जोड़ते हैं, पर उससे हमारी बातमें कोई फर्क नहीं आता) । मुगल मुगल थे, पठान पठान थे, यह तमीज़ हम नहीं करते, जब कि अंगरेज़ और फ्रेंचका भेद हम पहचानते हैं ।^१

अच्छे-से-अच्छे इतिहासमें भी आप इस प्रकारके वाक्य पायेंगे—“अमुक बादशाह बड़ा न्यायप्रिय था, दूरदर्शी था ; लेकिन बड़ा कट्टर मुसलमान था ।” इस ‘लेकिन’ का घातक प्रभाव आप समझते हैं ?

यह साम्प्रदायिक भावना, जो इतिहास पढ़नेसे जागती है, हिन्दू और मुसलमान दोनोंके लिए घातक है, क्योंकि जहाँ यह हिन्दूमें एक स्वरक्षात्मक विद्वेष और एक आतंकका भाव पैदा करती है, वहाँ यह मुस्लिममें उद्धत दर्पका और न्यायके प्रति उपेक्षाका भाव जमाती है । और जब तक ऐसी स्थिति है, तब तक कभी हम ‘भाई-भाई’ नहीं हो सकते, भले ही राजनैतिक अधिकारोंकी रोटियोंका हिस्सा-बाँट हम कर लें ।

हिन्दुओंकी कठिनाई कुछ अधिक है, क्योंकि वे दो बार पराजित हुए हैं । पहले तो (आजकलके इतिहासके शब्दोंमें) मुसलमानोंने जीता ; फिर अंगरेज़ोंने मुसलमानोंपर भी अपनी सत्ता जमाई—हिन्दुओंको हरानेवालोंको हराया । इस प्रकार हिन्दुओंको दो आतंक काटने हैं—दो शक्तियोंके प्रति अपना हीनत्वभाव (Inferiority Complex) हल करना है ।^२ इस बातका प्रमाण आपने कई बार

पाया होगा । जहाँ कहीं हिन्दू और मुसलमान मिलते हैं, वहाँ मुसलमानोंमें एक आत्म-विश्वासका भाव होता है, जो हिन्दुओंमें नहीं पाया जाता—हिन्दू खाहम-खाह सशंक और ‘on the defensive’ रहते हैं । उनकी प्रत्येक बातमें यह दीखता है । अभी पिछले दिनों मैंने देखा था कि लेखकोंकी एक मीटिंगमें जब यह प्रस्ताव रखा गया कि भारतके लिए एक ऐसी आमफ़हम भाषा होनी चाहिए, जिसे हिन्दू और मुस्लिम ‘हिन्दी’-भाषी और ‘उर्दू’-भाषी समान रूपसे समझ सकें, तब हिन्दीवालोंको यह डर हुआ कि इससे तो हिन्दू धर्म और संस्कृति नष्ट हो जायगी ! कुछ तो कहने लगे कि उर्दूवालोंके सम्पर्कमें ही यह खतरा है ! जिस संस्कृतिको अपनेमें इतना विश्वास नहीं कि वह दूसरी संस्कृतिसे छूकर—भिड़नेकी तो बात बादमें आती है—जीती रह सकेगी, उसका मूल्य क्या है ?

मैं यदि हिन्दुओंके साम्प्रदायिक संगठनका विरोधी हूँ, तो इसीलिए कि वह डरकी भीतपर क़ायम है, शक्तिकी नहीं । जब तक हम डरके कारण अपना संगठन करना चाहते हैं ; इकट्ठे होते हैं कि हम एक होकर दूसरोंपर सन्देह और विद्वेषकी दृष्टि डाल सकें, तब तक हमारे लिए उन्नति नहीं है ; पर मैं थोड़ा-सा भटक गया ।

यह हुई इतिहास और सम्प्रदायकी बात । सरकार इसमें कहाँ आती है, इसका कुछ उल्टेख तो मैं पहले कर चुका हूँ । हमारे इतिहासोंका आज जो रूप है,

चाहिए, और हिन्दुओंने कभी अधीनता स्वीकार नहीं की, यद्यपि वे विषय उसे सहते रहे । अपनी धारणाके पक्षमें वे उन विद्रोहोंका उल्लेख करते हैं, जो हिन्दुओंकी ओरसे बराबर कहीं-न-कहीं उठते रहे । वे इस विषयपर एक लेख भी लिख रहे हैं ।

यह बात विवादास्पद है ; लेकिन क्षणभरके लिए हम मान भी सकते हैं कि यह ठीक ही है । इससे वह हीनत्वभाव दूर नहीं हो जाता, क्योंकि उसे उत्पन्न करनेवाली चीज तो शिक्षामें है, वस्तुस्थितिमें नहीं । जब हम सीखते आये हैं कि हम हराये गये, तब उसका असर होगा ही, भले ही वास्तवमें हम पराजित न हुए हों ।

१ मेजर वलुने अपने इतिहासका नाम ‘Rise of the Christian Power in India’ (‘भारतमें ईसाई शक्तिका उत्थान’) रखकर इसी बातकी ओर ध्यान आकृष्ट किया था । विदेशी इतिहासकार तो वस्तुके नामसे चिढ़ते ही हैं ; विदेशी धर्म-प्रचारक भी इस नामसे जलते हैं और यह बिलकुल स्वाभाविक है कि यह उन्हें अखरे ।

२ मेरे एक इतिहासक मित्रकी धारणा है कि हिन्दू कभी पराजित नहीं हुए, क्योंकि ‘पराजय’ में अधीनताके प्रति स्वीकृत होनी

उसके निर्माणमें सरकारका और सरकारी 'विशेषज्ञों'का कितना हाथ रहा है, इसपर और कुछ कहनेकी जरूरत नहीं है। एक बात मैं और कहना चाहूँगा—वह यह कि प्राचीन इतिहास-सम्बन्धी खोजका जो काम सरकारी पुरातत्त्व-विभाग करता है, उसपर गौर-सरकारी लोगोंकी कड़ी दृष्टि रहनी चाहिए। हमारा प्राचीन इतिहास बहुत अपूर्ण है, और कई स्थलोंपर गलत भी होगा ही। उन अपूर्तियों और गलतियोंको दूर करनेका काम पुरातत्त्वकी खोजसे ही होता है। भारतीय पुरातत्त्व-विभागके इतिहासमें कई उदाहरण ऐसे मिलेंगे, जहाँ खोजके परिणामोंको दबाया गया है—चाहे इसलिए कि वे किसी व्यक्ति-विशेषके प्रिय सिद्धान्तोंके विरुद्ध जाते थे, चाहे इसलिए कि वे किन्हीं विशेष स्वार्थोंके लिए हानिकार हो सकते थे। कई बार तो इतना ही पर्याप्त कारण समझा गया है कि खोज करनेवाला एक भारतीय था, इसलिए इसपर अत्यन्त सजग नियन्त्रण होना चाहिए। और जबसे काट (Retrenchment) के कारण विभाग संकुचित किया जा रहा है और निश्चय हो रहा है कि खुदाई इत्यादिका काम सोसाइटियों या व्यक्तियोंके सिपुर्द कर दिया जाया करे (ऐसी सोसाइटियाँ भी अधिकांश विदेशी होंगी और सरकारी न होनेके कारण चाहनेपर अधिक आसानीसे भारतद्रोही हो सकेंगी), तबसे इस नियन्त्रणकी जरूरत और भी बढ़ गई है।

तीन वर्ष हुए, मैंने और मेरे कुछ साथियोंने जेलसे एक पत्र लिखा था, जिसमें कांग्रेसके भावी कार्यक्रमपर अपने विचार प्रकट किये थे। उसमें हम लोगोंने कहा था कि कांग्रेसको, और विशेषतः उसके असेम्बली दलको, इस बातका भी आन्दोलन करना चाहिए कि भारतकी पुरातत्त्व-सम्पत्ति (Archaeological wealth) भारतको लौटा दी जाय और भारतीय संग्रहालयों या एक विशेष संग्रहालयमें रखी जाय। मैं समझता हूँ कि राष्ट्रीय ऋण (National Debt) के प्रश्नसे किसी तरह भी कम महत्व इस प्रश्नका नहीं है। यह

पत्र कांग्रेसके नेताओंको भेजा गया था। वह उन सबके पास पहुँचा या नहीं, यह हम नहीं जानते (कुछको अवश्य पहुँचा था); लेकिन इस प्रश्नपर अभी तक विचार नहीं किया गया है।

मैं सोच रहा था कि इस पत्रमें जो कुछ मैंने लिखा है, उसे लेखके रूपमें तैयार करके पत्रोंमें प्रकाशित कराऊँ; लेकिन फिर मैंने समझा कि यह अधिक अच्छा हो, यदि पहले पत्र लिखकर उसपर अधिकारी व्यक्तियोंकी सम्मतियाँ पूछूँ, ताकि उनके परामर्शके आधारपर इस प्रश्नके सभी पहलुओंपर विचार हो सके। आशा है कि आप इसे लोगोंके आगे पेश करके इसपर उनकी सम्मतियाँ प्राप्त करनेमें मेरी सहायता करेंगे।

विनीत—

अज्ञेय

भारतीय साहित्य-परिषद्

प्रिय चतुर्वेदीजी,

'विशाल भारत' के पिछले अंकमें अज्ञेयजीका एक लेख हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन और भारतीय साहित्य-परिषद्के अधिवेशनोंके विषयमें छपा है। मुझे इस लेखके उस अंशपर कुछ कहना है, जो परिषद्से सम्बन्ध रखता है।

परिषद्में जो प्रस्ताव पास हुए, उनमें यह दो प्रधान भी हैं और विचारणीय भी :—

१. "जो साहित्य जीवनके उच्च आदर्शका विरोधी हो, सुरुचिको भंग करता हो अथवा साम्प्रदायिक सद्भावनामें बाधा डालता हो, ऐसे साहित्यको यह परिषद् हर्गिज प्रोत्साहित न करेगी।

लोक-जीवनके जीवित और प्रत्यक्ष सवालका हल करनेवाले साहित्यके निर्माणको यह परिषद् प्रोत्साहन देगी।"

२. "इस सभा (परिषद्) का काम हिन्दी यानी हिन्दुस्तानीमें होगा।"

प्रथम प्रस्तावका इतिहास मैं थोड़ेसे शब्दोंमें सुनाना चाहता हूँ। खुली हुई बात है कि साहित्यिकोंकी मंडलीमें इस प्रश्नको अधिक महत्व दिया जायगा कि कलाका सम्बोधन किसीसे हो या नहीं, उसका कोई आदर्श हो या नहीं। भाषा अपनी-अपनी है, शैली भी अपनी-अपनी है; लेकिन साहित्यकारकी अनुभूति, आत्मा और वाणी सबकी है। साहित्य-परिषद कोई राष्ट्र-भाषा-सम्मेलन नहीं था, उसने अपनी कार्यवाहीको किसी विशेष दृष्टिकोणमें सीमित नहीं किया था।

पं० जवाहरलाल नेहरूकी प्रेरणापर साहित्यके आदर्शपर बहस शुरू हुई। उस दिन अज्ञेयजीको बुखार आ गया था। यह मैं किसी लक्ष्णार्थमें नहीं, शब्दार्थमें कह रहा हूँ। बुखार तेज था, इसलिए वे परिषदकी उस बैठकमें शामिल नहीं हो सके, और इसीलिए उन्हें भ्रम हो गया कि क्रान्ति-प्रेरक साहित्यका 'प्रस्ताव अन्तमें गिर गया'। इस किस्मका कोई प्रस्ताव परिषदमें पेश नहीं किया गया। पहले हम लोगोंका इरादा ज़रूर था; मगर रातों-रात नियोजकोंकी ओरसे वह प्रस्ताव तैयार कर लिया गया, जो ऊपर दर्ज किया जा चुका है। क्रान्ति-प्रेरक साहित्यके समर्थकोंने इसका विरोध नहीं किया, बल्कि अपने मतको स्पष्ट करनेके लिए एक अपील निकाली, जो मैंने उसी समय लिखी थी। अपीलपर पं० जवाहरलाल नेहरू, आचार्य नरेन्द्रदेव, मौलाना अब्दुल हक, मुंशी प्रेमचन्द और मेरे दस्तखत थे। मैं उसे नीचे उद्धृत करता हूँ :—

“हमारे देशमें यह पहला ही मौक़ा है कि अलग-अलग भाषाओंके लेखक एक जगह सहयोगका नाता जोड़नेके लिए जमा हुए हैं। सवाल यह है कि इस सहयोगकी बुनियाद क्या हो? परिषदने कई तरीक़े बताये हैं; पर हमारे विचारमें एक बहुत बड़ा मसला बाक़ी रह गया है, जिसपर सबसे पहले ग़ौर होना चाहिए था। हमने यह तो कह दिया कि साहित्यका आकार क्या हो, लेकिन यह नहीं बतलाया कि उसकी आत्माका रूप-रंग क्या हो। ‘कैसे कहना है’ का

सवाल बादमें उठता है। पहले यह ठहराना है कि क्या कहना है और किनसे कहना है।

हमारी समझमें साहित्यकी समस्याओंको जीवनकी दूसरी समस्याओंसे अलग नहीं किया जा सकता। जीवन एक पूरी इकाई है; उसे साहित्य, राजनीति, फ़िलासफी आदिके खानोंमें नहीं बाँटा जा सकता। साहित्य जीवनका आईना है; यही नहीं, वह जीवन-रथका सारथि है। उसे जीवनके साथ चलना ही नहीं है, बल्कि उसे राह भी दिखाना है।

हमारा जीवन किधर जा रहा है और उसे किधर जाना चाहिए, यह हम सब जानते हैं। साहित्यिक इन्सान भी है; और उसे समाजकी उन्नतिके लिए उतना तो करना ही है, जो और हर इन्सानको करना चाहिए।

इंसानियतके नाते हम पूछते हैं कि क्या आज जब तरक्की और पस्ती, उन्नति और अवनतिकी ताक़तोंमें आख़री लड़ाई छिड़ी हुई है, साहित्य उससे अपनेको अलग रख सकता है? क्या ‘कला’, ‘सौन्दर्य’ आदिका पल्ला पकड़कर वह ज़िन्दगीसे भाग सकता है? क्या वह ‘यथार्थवाद’ की फ़सीलपर बैठकर क्रान्ति और प्रतिक्रियाके द्वन्द्वका तमाशा खामोशीसे देख सकता है?

हर तरहकी कलाकी जड़ एहसास—भावनामें है। तो फिर किसानोंकी पुकार, मज़दूरोंकी कराह और भिखारियोंकी आह हमें वेहिस क्यों कर रख सकती है? जब जीवनका सबसे बड़ा मसला यह है कि समाजकी देहसे बेकारी, ग़रीबी और शोषणका कोढ़ किस तरह धोया जाये, तो क्या यह कहनेकी ज़रूरत रह जाती है कि साहित्यका इशारा किस तरफ़ हो; वह क्या कहे, किनसे कहे और किस तरह कहे?

इसलिए देशके साहित्यकारोंसे हमारी यह आशा है कि वे यह साबित कर दिखायें कि साहित्यकी जड़ ज़िन्दगीमें है, और ज़िन्दगीकी जड़ परिवर्तनमें। ज़िन्दा और सच्चा साहित्य वही है, जो समाजको बदलना चाहता है, ऊँची मंजिलोंकी तरफ़ ले जाता है और दुनियाको सबके रहने योग्य बनानेकी कामना रखता है।

हमें विश्वास है कि हमारे देशके साहित्यकार जीवन और साहित्यमें अलग-अलग की खाईको पाठकर, साहित्यको इन्क़िलाबका सन्देशवाहक बनायेंगे।”

इसका निर्णय पाठक ही करें कि इस अपीलमें डिक्टेटरकी वृत्ति आती है या नहीं। हमारा मतलब यह था कि परिषदके प्रस्तावमें ‘जीवनके उच्च आदर्श’ ‘सुरुचि’ ‘लोक-जीवनके जीवित और प्रत्यक्ष सवाल’ जैसे मलगजे मुद्दोंकी व्याख्या अपने ढंगसे करें। कोई भी लेखक अपनी कृतिको आदर्शहीन, कर्तृपूर्ण और मुर्दा सवालोंका जवाब कहनेके लिए तैयार नहीं है। फिर भी आपके दिमागमें ‘सु’ और ‘कु’की दीवारें खड़ी हुई हैं। जब भी आप अपने स्टैंडर्डसे एक चीज़को अच्छी और दूसरीको बुरी कहते हैं, तो आप डिक्टेटरका बीज बो देते हैं। हर तरहकी नैतिकता अमहिष्णुतासे आरम्भ होती है। या तो आप साहित्यमें भी पूर्ण निगजके सिद्धान्तको मान लीजिए। हर आदमीको उसके अनुभव, वातावरण और अनुभूतिके अनुसार उभरने दीजिए। लेकिन आप ऐसा नहीं करते। आप कहते हैं कि जीवनका कोई उच्च आदर्श है, रूचि-रूचिमें भेद है, जीवनके प्रश्नोंकी भी सूरी अलग हैं। फिर आप साहित्यकारको अपनी सुझाई हुई दिशापर चलनेका आदेश देते हैं और कहते हैं कि इधर न चलोगे, तो परिषद तुम्हें हरगिज़ प्रोत्साहित न करेगी। यह तो खुली हुई डिक्टेटर है। उसके आदर्शसे नहीं, उसकी प्रकृतिसे बहस है। डिक्टेटर एक मतकी आकांक्षा है कि केवल वही सर्वप्राप्त और सार्वभौम हो। इस प्रस्तावमें वही आकांक्षा उजागर हो रही है। ‘उच्च आदर्श’, ‘सुरुचि’ और ‘प्रत्यक्ष सवाल’ की व्याख्या अपने-अपने वातावरणके साथ बदलती जायगी। जब यौन-नैतिकता (Sex-morality) का सवाल आता है, तो पं० बनारसीदास चतुर्वेदी डिक्टेटर बन बैठते हैं। उनकी रायमें साहित्यकारको इस दुखती रगको छूनेका अधिकार नहीं है। मगर जब ऐसे साहित्यके नियन्त्रणका प्रश्न

उठता है, जो देश और कालके अनुकूल नहीं है, तो वे अराजकवादी बन बैठते हैं।

यही हाल उन लेखकोंका है, जिनकी जड़ें हवामें हैं, जो ज़मीनपर आते झपटते हैं। अपीलमें यह नहीं कहा गया कि वे मज़दूरों और किसानोंके बारेमें लिखें। उनसे यह कहा गया है कि वे समाजके निर्माणमें मदद दें, जिसमें शोषण, अत्याचार और परतन्त्रताके लिए जगह नहीं है। वे ऐसी भाषामें बोलें, जिसे पशुओं और पक्षियोंके सिवा इन्सान भी समझते हों। अपील इसीलिए निकाली गई है कि हम जनतासे नाता जोड़ें और उससे एकरस हों।

क्रान्ति-प्रेरक साहित्यका विरोध इस सबबसे करना कि वह ऐसा साहित्य पैदा करनेमें सहायक हो रहा है, ‘जो थोथा और निस्सार है’, मेरी समझमें ठीक नहीं है। हमारे देशमें क्रान्तिप्रेरक साहित्य पैदा ही कब हो रहा है। ‘कला कलाके लिए’ के नामपर जो कविताएँ और कहानियाँ छपती हैं, उनमें कुछ आत्म-पूजकोंकी तुच्छ और रौंदी हुई आकांक्षाएँ छिपी रहती हैं, जिनसे न जीवनके उच्च आदर्शोंको कुछ सम्बन्ध है, न लोक-जीवनके प्रत्यक्ष और जीवित सवालोंको कोई वास्ता। छिछला और निस्सार साहित्य इसलिए पैदा हो रहा है कि उसके निर्माता अपनी आत्मासे और जगतकी आत्मासे अपरिचित हैं। वे घोंघोंकी तरह ‘स्व’की मोटी खालमें लिपटे हुए हैं, और उनके आसपास एक विराट संसार सिसक-सिसककर अपने आदर्शकी ओर बढ़ रहा है।

क्रान्तिप्रेरक साहित्य क्रान्तिकारी आन्दोलनके साथ पनपेगा और बढ़ेगा। अभी वह नव-शिशु है, क्योंकि क्रान्तिकी बिजली सुदूर अन्तरिक्षपर झिलमिल रही है।

साहित्यकारसे यह कोई नहीं कहता कि वह केवल मज़दूरों और किसानोंके लिए लिखे, उससे यह भी नहीं कहा जा सकता कि वह जनतासे ही एकरस हो। उससे यह कहा जाता है कि वह क्रान्तिसे एकरस हो, और जब हम यह कहते हैं, तो मर्म यह होता है कि वे

जीवनके विकासमें रसलीन हो। वह प्रत्यक्षवादी है, तो बावोंपर फाहा न रखे, क्योंकि इससे ज़हर निकलेगा नहीं, छिप जायेगा; बल्कि नश्वर लगाये, जो संताप और त्रासकी पीपको हमारे छलप्रिय नेत्रोंके सामने बिखेर दे। वह संकेतवादी है, तो अपने ठुकराये हुए प्रेमको हाय-वायकी चादरमें न छिपाये; बल्कि समझे और समझाये कि नारी, उसका सौन्दर्य और प्रेम, हमारे समाजमें लेखों और पुस्तकोंके समान रायल्टीपर बिकारते हैं। वह छायावादी है, तो यह जान ले कि जीवनकी एक छाया अगर वह है, जो दोपहरको पैरोंके नीचे सिमट आती है, तो एक वह भी है, जो शामको बहुत दूर तक फैल जाती है। पदार्थसे अलग छाया कुछ नहीं है।

अपीलपर एक आपत्ति यह भी है कि वह काफ़ी जोरदार न थी। मुझपर ज्यादा जोरदार होनेका अभियोग हमेशा लगाया गया है, और इन्हीं जोरदार अपीलोंका नतीजा है कि आज अलीगढ़-यूनिवर्सिटी डा० ज़ियाउद्दीनकी राजधानी है। अपील नर्म इसलिए थी कि नर्म लोग भी हमारे साथ आ सकें। लेकिन यह कोई ऐसा सबब न था कि अज्ञेयजी और दूसरे गर्म दोस्त उसपर दस्तखत करनेसे इनकार कर देते। अब भी अगर वे चाहें, तो उनकी गर्म-से-गर्म अपीलका समर्थन करनेके लिए हम तैयार हैं।

रह गया अपीलकी आवश्यकता और अनावश्यकता का प्रश्न। जब तक जीवन और साहित्यके आदर्शपर सबका एक मत न होगा, तब तक प्रत्येक मत अपने पक्ष-समर्थनके लिए इस साधनका उपयोग करता रहेगा। यूरोपमें साहित्यके बीसियों 'स्कूल' हैं, उनमें खंडन-मंडन भी होता है और तर्क-वितर्क भी। द्वन्द्वसे डरना गौर-ज़रूरी है, क्योंकि उससे ही एक समन्वयका उदय होता है। 'हिन्दी यानी हिन्दुस्तानी'के मामलेपर मैं अगले अंकमें विस्तारसे कुछ निवेदन करूँगा।

विनीत—

अख्तरहुसेन रायपुरी

हम किधर बहे जा रहे हैं ?

जून मासके 'विशाल भारत'में श्री 'अज्ञेय'का लेख नागपुरके भारतीय साहित्य-परिषद्के बारेमें पढ़नेके बाद संयोगसे इसी जून महीनेका 'हुमायूँ' हाथ पड़ गया। खोलते ही मौलाना अब्दुलहक़ साहबका मज़मून इसी विषयपर आँखोंके आगे आया। शौकसे पढ़ गया; पढ़नेके उपरान्त दिल धवराने लगा, और मनमें यही प्रश्न उठा कि हम किधर बहे जा रहे हैं? क्या वही पुराना उर्दू-हिन्दीका कगड़ा फिर सजीव होनेवाला है? 'हुमायूँ'के इसी अंकमें 'अंजुमने उर्दू पंजाब'के स्थापित किये जानेके बारेमें इस पत्रिकाके योग्य सम्पादक बशीर अहमद साहबका भी एक लेख पढ़ा, जिससे हवाके रुखका साफ पता लगा। यदि भारतीय साहित्य-परिषद्की स्थापनाका यही प्रथम फल है, तो भविष्यका ईश्वर ही मालिक है।

मौलाना अब्दुलहक़ साहब अपने लेखका अन्त इस तरह करते हैं—“एक दिन वह था कि महात्मा गांधीने हिन्दुस्तानी यानी उर्दू जुवान और फ़ारसी डुरूफ़में अपने दस्ते खाससे हकीम अजमल खांको खत लिखा था और आज यह वक्त आ गया है कि उर्दू तो उर्दू वह तनहा हिन्दुस्तानीका लफ़्ज़ भी सुनना और लिखना पसन्द नहीं करते। उन्होंने अपनी गुफ्तगूमें जो बरसरे इजलास थी, एक बार नहीं, कई बार फ़रमाया कि अगर रेज़ोलूशनमें तनहा हिन्दुस्तानीका लफ़्ज़ रखा गया, तो उसका मतलब उर्दू समझा जायगा; लेकिन उनको नेशनल कांग्रेसके रेज़ोलूशनमें तनहा हिन्दुस्तानीका लफ़्ज़ रखते हुए यह खयाल न आया।

आखिर इस क़लब माहियत (चेंज ऑफ़ हार्ट) की क्या वज़ह है? कौनसे ऐसे असबाब रूनुमा हो रहे हैं, जो इस हैरत अंगेज़ इंकवालका वायस हुए? गौर करनेके बाद मालूम हुआ कि इस तमाम तमाय्युर व तवहुल, तोड़-जोड़ और दाँव-पेचका वायस हमारे मुल्कका पालिटिक्स है। जब तक महात्मा गांधी

और उनके रफ़्तक़ाको यह तबकी थी कि मुसलमानोंसे कोई सियासी समझौता हो जायगा, उस वक्त तक वह हिन्दुस्तानी-हिन्दुस्तानी पुकारते रहे, जो थपककर सुलानेके लिए अच्छी खासी लोरी थी ; लेकिन जब उन्हें इसकी तबकी न रही, या उन्होंने ऐसे समझौतेकी ज़रूरत न समझी, तो रियाकी चादर उतार फेंकी और असली रंगमें नज़र आने लगे । वह शौक़से हिन्दीका प्रचार करें । वह हिन्दी नहीं छोड़ सकते, तो हम भी उर्दू नहीं छोड़ सकते । उनको अगर अपने वसीय ज़राय और वसायलपर धमंड है, तो हम भी कुछ ऐसे हेठे नहीं ।”

पाठक इतना लम्बा उद्धरण देनेके लिए मुझे क्षमा करेंगे ; परन्तु इसका कारण स्पष्ट ही है । मौलानाके शब्दोंसे उस ‘राजनैतिक वातावरण’ का असर टपकता है, जिसकी शिकायत श्री अज्ञेयजीने अपने लेखमें की है । मौलानाने जो टिप्पणी महात्मा गांधीके हृदय-परिवर्तनके विषयमें की है, उसका उपयुक्त उत्तर तो शायद गांधीजी ही दे सकते हैं ; परन्तु अन्तमें जो मौलानाने धमकी दी है, उसपर थोड़ा विचार करना है, क्योंकि यदि इस हिन्दी-उर्दूके प्रश्नने फिर एक गम्भीर स्वरूप धारण कर लिया, तो भारतीय-साहित्य-परिषद द्वारा लाभके बदले हानि ही होते दीखती है । मैं न तो लेखक ही हूँ, न कोई साहित्य-कोविद । केवल हिन्दी व उर्दू दोनोंके प्रेमीके नातेसे और एक सभ्य हिन्दुस्तानीकी हैसियतसे मैं दो-चार विचार भारतीय साहित्य-परिषदके सामने रखना चाहता हूँ । यदि यह विचार इस समस्याको कुछ हल कर सकें, तो मेरा सौभाग्य होगा, वरना—

समझानेसे था हमें सरोकार,
मानो कि न मानो तुम हो मुखतार ।

परिषदके प्रस्तावोंमें से इस समय केवल इतने ही अंशपर विचार करना है—“इस सभाका काम हिन्दी यानी हिन्दुस्तानीमें होगा”, क्योंकि जैसा मौलाना अब्दुलहक़के लेखसे ज़ाहिर है, केवल यही अंश फ़गड़के कारण बन गया । मौलानाने अपने लेखमें यह भी

शिकायत की है कि ‘हंस’ (जो परिषदका मुखपत्र बना दिया गया है) की भाषा ‘विशाल भारत’ की हिन्दीसे भी कठिन है । मौलाना चाहते हैं कि परिषदके प्रस्तावमें से ‘हिन्दी यानी’ शब्द निकाल दिये जायँ और केवल ‘हिन्दुस्तानी’ शब्द रखा जाय, जैसा कि कांग्रेसके प्रस्तावमें रखा गया था । इसके विरुद्ध गांधीजीका यह कहना था (मौलानाके लिखे अनुसार) कि इसका अर्थ लोग उर्दू ही लगावेंगे । परिषदकी कुछ कार्यवाहीसे यह तो ज़ाहिर ही है कि अधिकांश लोग—विशेषकर दक्षिणके लोग—संस्कृत-बाहुल्य भाषाको ही अपनाना चाहते हैं, और मानते हैं कि वैसी भाषा वे आसानीसे काममें ला सकेंगे । शायद मौलाना अब्दुलहक़ साहब भी इससे इनकार न करेंगे कि अगर ‘हिन्दुस्तानी’ को मुल्ककी भाषा बनाना ही है, तो उसको काफी वसीय (विस्तृत) बनाना पड़ेगा, और वसअतमें संस्कृतको भी काफ़ी हिस्सा मिलेगा । अगर मेरा यह खयाल ठीक है, तो एक उपाय फ़गड़ा निवेड़नेका यह है कि ‘हिन्दी यानी हिन्दुस्तानी’ शब्दोंके बदले ‘हिन्दुस्तानी यानी हिन्दी-उर्दू’ शब्द प्रस्तावमें रख दिये जायँ, और यह निश्चय कर लिया जाय कि किसी लेखमें चाहे हिन्दीके शब्द-समूह अधिक हों, अथवा उर्दूके महावरे ज़ियादा हों, वह हिन्दुस्तानी भाषा मानी जायगी और परिषदके मुखपत्रमें उसे (अन्य सम्पादकीय नियमोंको ध्यान रखते हुए) स्थान प्राप्त हो सकेगा । मेरा मतलब यह है कि (दृष्टान्तके तौरपर) श्री अज्ञेयजीका लेख और मौलानाका मज़मून दोनों हिन्दुस्तानी भाषामें लिखे माने जायँ और इनको ‘हंस’में एकके बाद एक छपा जा सके । इससे फ़गड़ा समाप्त हो जायगा और किसीकी शिकायतकी गुंजायश न रहेगी । इसमें क्या आपत्ति किसीकी हो सकती है ? सिर्फ़ यही न कि बहुतसे पाठकोंको एक लेखकी भाषा कठिन लगेगी, तो दूसरोंको दूसरे लेखकी । अच्छा है, पाठकोंको शौक होगा, और यदि लेख वास्तवमें रोचक हुए, तो पाठकोंका शब्द-कोश आप ही

आप बढ़ता जायगा और उनके लिए एक बड़े विस्तृत साहित्यकी कुंजी हाथ आ जायगी, जिसमें एक ओर तुलसी, मीरा और भारतेन्दु होंगे, तो दूसरी ओर गालिव, मीर और मुहम्मद हुसेन आजाद होंगे। क्या इससे भारतकी भावी जनताका यथार्थ लाभ न होगा कि उनके सुपुर्द हिन्दी व उर्दूके सम्मानित साहित्यकी कुंजी कर दी जाय? आखिर इन दोनों साहित्योंके निर्माता हिन्दुस्तानी ही तो थे। उनकी भाषामें चाहे फारसीकी तरकीबें हों या संस्कृतके समास; परन्तु वे इसी देशमें पैदा हुए थे, इसी देशमें मेरे थे और उनके उत्तमोत्तम विचार और काव्य हर एक अर्थमें हमारी मौखसी जायदाद हैं। इस धनकी हिफाजत रखना हिन्दू व मुसलमान दोनोंका उत्तरदायित्व है, और इसका सबसे सहज तरीका यह है कि 'हिन्दुस्तानी'का अर्थ हम 'हिन्दी और उर्दू' समझें, न कि 'हिन्दी या उर्दू'।

अब रहा लिपि या रस्मेखतका सवाल। समय देखते हुए इसका हल करना अभी ज़रा कठिन है। शायद समय इसको आप ही हल करा दे। बात तो यह बड़े महत्वकी है; पर इस समय इसको हिन्दू-मुसलमान प्रश्नसे इतना मिला दिया गया है कि यह आशा करना कि नागरी लिपि मुसलमानों द्वारा स्वीकृत हो जायगी, या सब हिन्दू लोग अरबी लिपि मंजूर कर लेंगे, केवल एक हिमाकत होगी। जाने दीजिए, अभी कुछ समय तक दोनों लिपियोंको साथ-साथ चलने दीजिए, और इनमें से कौन दीर्घजीवी होगी, इसका निश्चय समयके ही सुपुर्द कर दीजिए। भला तो यही होता कि हमारे मुसलमान भाई स्वयं ही नागरी-लिपिको अपना लेते, क्योंकि जिसने भी इन दोनों लिपियोंका अभ्यास किया है, वह गालिवन मान लेगा कि नागरी लिपि कई तरहसे अरबी लिपिसे सरल और अच्छी है। मेरे कहनेका अर्थ यह नहीं कि नागरी लिपिमें त्रुटियाँ नहीं हैं, या इसमें भी काफ़ी ख़दो-बदलकी ज़रूरत नहीं है; पर जहाँ तक इसका अरबी लिपिसे मुकाबला है, वहाँ तक यह मानना पड़ेगा कि इसीका

पहला भारी है। पर देशकी दशा देखते हुए अभी आशा नहीं होती कि अधिकांश मुसलमान लेखक इस बातको स्वीकार करेंगे। अस्तु, दोनों लिपियोंको साथ-साथ चलने दीजिए। हाँ, एक बात और हो सकती है कि तुर्की और एशियाई रूसके कई प्रान्तोंकी तरह हम भी इस हिन्दुस्तानी भाषाके लिए लैटिन लिपि स्वीकार कर लें। इससे हमारे स्कूलों और समाचार-पत्रोंका काम तो बहुत सुगम हो जायगा और हमारे छोटे बालकोंका समय जो दो-तीन लिपियाँ सीखनेमें ख़राब होता है, बच जायगा। अन्तर्राष्ट्रीय एकताके विचारसे भी हम एक क़दम आगे बढ़ जायेंगे, क्योंकि इसमें तो अब सन्देहकी कोई गुंजाइश नहीं है कि भविष्यमें लैटिन लिपि ही सभ्य-संसारकी लिपि मानी जायगी। इस लैटिन लिपिको हमारी हिन्दी-उर्दूके उपयुक्त करनेमें पंजाबके प्रसिद्ध सिविलियन श्री लतीफ़ाने काफ़ी काम किया है, और अपनी कोशिशमें काफ़ी हद तक वे सफल भी हुए हैं। यह भी सभी जानते कि प्रायः विदेशी 'ओरिएण्टलिस्ट' और कुछ हिन्दोस्तानी 'ओरिएण्टलिस्ट' तक अपना काम लैटिन लिपिमें ही करते हैं। हमारे सिविल सर्विसवाले फ़ौजी अफसर, जो हिन्दी या उर्दूके अच्छे पंडित भी समझे जाते हैं, अधिकतर अपना काम लैटिन लिपि द्वारा ही चलाते हैं। यह बात नहीं है कि लैटिन लिपिमें कोई दोष ही न हो, अथवा वह नागरी लिपिसे कुछ बहुत अच्छी ही हो; पर इसको 'हिन्दुस्तानी' भाषाके लिए स्वीकार करनेमें हिन्दू-मुस्लिम प्रश्नसे पीछा छुट जायगा। हमारे बालकोंको एक ही लिपि सीखनी पड़ेगी, जिससे उनकी शिक्षामें कम-से-कम एक वर्षका लाभ या बचत सम्भिये, और यह इस बातका भी द्योतक होगा कि हम अपनी प्राचीन सभ्यताका कोरा घमंड छोड़कर आधुनिक संसारके साथ-साथ चलनेके लिए भी तैयार हैं। लिपिके प्रश्नका यह एक अच्छा 'सोल्यूशन' होगा; पर इसका हमारे हिन्दी और उर्दूके साहित्य-सेवियों तथा लेखकों द्वारा स्वीकृत होना अभी कुछ

समय तक मुश्किल ही मालूम होता है। कालचक्र बड़ा प्रबल होता है। शायद किसी रोज़ दूर-भविष्यमें यही बात किसी डिक्टेटरकी लेखनीके एक मोड़से सम्भव हो जाय; परन्तु आज तो हम लोगोंका आपसके समझौतेसे इसको मान लेना दुश्वार ही नज़र आता है। पर हाँ, यह लिपिकी बात तो अलग रही, क्या हममें अभी इतनी भी दूरदर्शिता नहीं है कि हम

‘हिन्दुस्तानी’ में हिन्दी और उर्दू दोनोंको यह कुशल लेखकों और साहित्यकारोंपर वह जैसे भी शब्द-समूह चाहें, इस्तेमाल करें और जहाँ तक हो सके, एक नये ‘मध्य-मार्ग’ की नींव डालें, जो समय पाकर इतना चौड़ा और विशाल भाषा-पथ बन जाय, जितना कि हिन्दुस्तान देश है।

—त्रिभुवनराम मुद्गू, एम० ए०

समालोचना और प्राप्ति-स्वीकार

‘काकली’—लेखक, श्री जानकीवल्लभ ललितललाम शास्त्री, साहित्याचार्य, वर्तमान छात्र बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी, बनारस; पता—साहित्य-निकुंज, मैग्रा (गया); पृष्ठ-संख्या १०; मूल्य छे आना।

लेखकका कहना है कि यह ‘काकली’ “अनामुक्त मुक्ता मालिकायाः प्रथम मुक्ता”—अर्थात् ‘वेगुंये मोतियोंकी मालाका पहला मोती है।’ इससे स्पष्ट है कि प्रस्तुत पद्यकाव्यके भाव अलग-अलग तथा परस्पर असम्बद्ध हैं। अनेक विद्वानोंने ‘काकली’ की जो इतनी प्रशंसा की है, यदि कोई उस तारीफ़से ही इस पुस्तककी नाप-तोल करने लगे, तो निस्सन्देह उसे निराश होना पड़ेगा। बनारसके प्रसिद्ध विद्वानोंमें शायद ही कोई बचा हो, जिसने इसे सराहा न हो; और सराहें भी क्यों न, आखिर ‘ललितललाम’ उन महासुभावोंके शिष्य ठहरे। पर मैं जितना सम्मतियोंसे इस पुस्तककी ओर आकृष्ट हुआ, उतना इस पुस्तकके पढ़नेपर नहीं। इसमें सन्देह नहीं कि सोलह-सत्रह वर्षकी अवस्थामें काव्य करनेकी ओर इतनी अधिक प्रवृत्ति इस उदीयमान बालक कविके निकटतर भविष्यमें होनेवाले अभ्युदयकी सूचक है। पूज्य पंडितप्रवर श्री बालकृष्ण मिश्रने इस पुस्तकमें यतिभंगादि दोष स्वीकार किये हैं। यद्यपि अपने छात्रका जितना उत्साह बढ़ाया जाय, थोड़ा है—सद्गुरुओंका यही कर्तव्य है—पर प्रारम्भिक दशामें अपनी सम्मतिको अतिशयोक्तिका उदाहरण नहीं बनाना चाहिए। विद्वानोंका कर्तव्य है कि वे बहुत सोच-समझकर सम्मति दिया करें, क्योंकि इससे उनके गौरवको हानि पहुँच सकती है। पं० सीताराम जयराम जोशी, एम० ए०, की सम्मति यथार्थ है। ‘काकली’ में कवि-कोकिल पंचम स्वरमें ही बोला हो, यह भी

बात नहीं है; किन्तु वह स्वच्छन्द छन्दोंसे काव्य-काननको गुंजित कर रहा है। ‘तावत् कोकिल ललिताम्’—यह जगन्नाथ पंडितराजकी अनुकृति प्रशंसनीय है—छायाका अनुहार ऐसा ही होना चाहिए। यदि धृष्टता न हो, तो हम ललितललाम शास्त्रीजीको परामर्श देंगे कि वे किसी विषयपर कविता करें और बेसिर-पैरकी छायावादकी-सी कविताओंसे अपनेको बचाते रहें। छन्दोभंगका भी ध्यान रखें। उदाहरणके लिए, सबसे पहली गीतिमें ‘निनाथ नवीनामये वाणि ? वीणाम् मृदुं गायगीतिं ललित नीति लीनाम्।’ यहाँपर ललितके तकारपर हुआ अवरोह बढ़ा खटकता है। पृष्ठ ६ और १६ एवं कमलदलायत नयनं इत्यादि १७वें पृष्ठका पद्य, १८वें पृष्ठका उत्कलिकाकुलकलितां इत्यादि पद्य, २७वें पृष्ठका कौशल्याला पद्य, ४८वें पृष्ठका वाणी-वन्दन हमें पसन्द आये। इस प्रकारके पद्य पं० जानकीवल्लभजीको कभी आगे चलकर लोकप्रिय बना सकते हैं; पर पृष्ठ ३१ और ८ किया गया “वभ्राम” और “शिश्ये” इन लिट् ललारोंका प्रयोग विचारणीय है। इसी प्रकार ‘सुलोचना’ यह हेडिंग भी नीचे लिखी कविताके साथ सम्बद्ध नहीं होता। यद्यपि इसपर Sulochana, the queen of modern movie stars, यह टिप्पणी भी दी है, तो भी काम नहीं बना। बात नहीं खुली, गूँगेका गुड़ रहा। कुछ भी हो, हम इस बालकवि-कोकिलका स्वागत करते हैं, और आशा करते हैं कि आगे चलकर आप सुर-सरस्वती-सेवकोंका मुख उज्ज्वल करेंगे। कविता-प्रेमियोंको इसकी एक प्रति लेकर संस्कृतानुरागका परिचय देना चाहिए।

—हरिदत्त शर्मा, पंचतीर्थ,

आचार्य, संस्कृत-महाविद्यालय, आगरा

‘काव्यमें अभिव्यञ्जनावाद’—लेखक, श्री लक्ष्मीनारायण सिंह ‘सुधांशु’ ; प्रकाशक, युगान्तर साहित्य-मन्दिर, भागलपुर सिटी ; पृष्ठ-संख्या १५८ से अधिक ; छपाई और बँधाई सुन्दर ।

हिन्दीमें गम्भीर समालोचना-साहित्य देखनेकी इच्छा रखनेवाले विद्वान इस पुस्तकका स्वागत करेंगे । प्रकाशकका यह दावा अधिकांशमें सत्य है—“मौलिक समीक्षा-सिद्धान्तोंके आधारपर किया गया काव्यानुभूतिकी विभिन्न शैलियोंका—काव्यगत भावना-सौन्दर्यको उद्घासित करनेवाली अनेक कलात्मक प्रवृत्तियों तथा प्रणालियोंका—यह मार्मिक और मनोरंजक विश्लेषण सबसे अधिक इस बातके लिए महत्त्वपूर्ण है कि इसके द्वारा वर्तमान युगके काव्यात्माके वास्तविक स्वरूपका सहज ही बोध हो जाता है ।”

पुस्तकके आरम्भमें संस्कृतके साहित्य-शास्त्रका संक्षिप्त परिचय दिया गया है, क्योंकि ‘अभिव्यञ्जनावाद पश्चिमीय साहित्यकी उपज है’, और ‘भारतीय दृष्टिकोणसे अभिव्यञ्जना-वादकी समीक्षाके लिए यहाँके साहित्य-सिद्धान्तोंका परिचय आवश्यक समझ पड़ता है ।’ ऐसा करके लेखकने इस ग्रन्थको बहुत उपयोगी बना दिया है । अच्छा होता, यह परिचय कुछ और विस्तारके साथ कराया जाता, क्योंकि ‘योद्धा-सा और विस्तार करनेसे इस विषयके अनभिज्ञ पाठकोंको रस-सम्प्रदायके आचार्योंके मतोंकी तुलना कर सकनेकी सुविधा प्राप्त होती और ध्वनि-सम्प्रदायका, जो संस्कृत साहित्य-शास्त्रका सर्वाधिक शक्तिशाली ग्रंथ है, विशद विवेचन हो जाता । पर जो कुछ भी दिया गया है, वही इस ग्रंथमें सोनेकी मुगन्ध हो गया है ।

इसके बाद नौ लम्बे-लम्बे अध्यायोंमें अभिव्यञ्जनावादका सिद्धान्त, अन्यान्य सिद्धान्तोंसे उसकी तुलना, काव्यमें उसका विनियोग आदिका विस्तृत विवेचन किया गया है । उदाहरणके लिए, खड़ी बोलीके आधुनिक कवियोंकी कविताएँ चुनी गई हैं । इस चुनावसे लेखकके वर्तमान हिन्दी-कविताके विस्तृत अध्ययन पर परिचय मिलता है । कवियोंमें श्री सुमित्रानन्दन पन्तकी कविताएँ सबसे ज्यादा उद्धृत की गई हैं । इससे जान पड़ता है कि पन्तजी लेखकके प्रिय कवि हैं ।

पुस्तकके अन्तमें लेखकको इस निष्कर्षपर आना पड़ता है—“काव्य-व्यञ्जनाके प्रधान दो ग्रंथ हैं ; भाव-व्यञ्जना तथा रूप-व्यञ्जना । रहस्यवादकी कविताओंमें भाव-व्यञ्जना बहुत

दूर तक हो गई है । भावोंके मनोवैज्ञानिक विश्लेषणसे अनभिज्ञ कवियोंने उसकी मिट्टी पलीद भी की है । मुक्तक रचनाओंमें विशेषतः भाव-व्यञ्जनापर ही ध्यान दिया जाता है ; किन्तु प्रबन्ध-काव्यके लिए भाव-व्यञ्जना तथा रूप-व्यञ्जना दोनों ही समान रूपसे आवश्यक हैं । आजकलके कवियोंकी रुचि यदि रूप-व्यञ्जनाकी ओर भी हो जाय, तो प्रबन्ध-काव्यकी विशेष सम्भावना दिखाई पड़ सकती है । साहित्यका अधिकतर कल्याण तभी सम्भव है ।”

इस पुस्तककी रचनाके लिए सुधांशुजी प्रत्येक साहित्यिकके बधाई और धन्यवादके पात्र हैं । —हज़ारीप्रसाद द्विवेदी

‘हिन्दी-शब्द-संग्रह’—सम्पादक, श्री मुकुन्दलाल श्रीवास्तव और श्री राजबल्लभ सहाय ; प्रकाशक, काशी-विद्यपीठ ; प्राप्ति-स्थान, ज्ञानमंडल पुस्तक भंडार, काशी ; डबल क्राउन अठपेजी साइज ; पृष्ठ-संख्या ६८२ ; मूल्य सजिल्द ४), अजिल्द ३।) ।

यह एक रोज़मर्रा काम आनेवाला हिन्दीका कोष है । इसमें हिन्दीमें प्रचलित ४१६७३ शब्दोंका अर्थ है । कहीं-कहीं शब्दोंके अर्थ स्पष्ट करनेके लिए उदाहरण भी दिये गये हैं । शब्द-संग्रहका यह दूसरा संस्करण है । इस संस्करणमें पहले संस्करणकी अपेक्षा साढ़े पाँच हज़ार शब्द बढ़ा दिये गये हैं । शब्द-संख्या और पृष्ठ-संख्यामें वृद्धि होनेपर भी मूल्य पहले संस्करणकी अपेक्षा कुछ कम कर दिया गया है । यह अत्यन्त प्रशंसनीय बात है, क्योंकि कोषकी आवश्यकता सभीको प्रायः पड़ा करती है ।

‘पद्माकर-पंचामृत’—लेखक, श्री विश्वनाथप्रसाद मिश्र ; प्रकाशक, श्री रामरत्न पुस्तक-भवन, नन्दनसाहू गली, बनारस ; मूल्य ३) सजिल्द ; पृष्ठ-संख्या १२०+३८० ।

पद्माकरको हिन्दी-कवितामें एक प्रतिष्ठित स्थान प्राप्त है । उनके हज़ारों सबैद्ये और कवित्त आज भी लोगोंकी ज़बानपर रहते हैं । छन्दमें भाषाका ऐसा सुन्दर श्रुति-मधुर प्रवाह बहुत कम कवियोंको नसीब होता है । प्रस्तुत पुस्तकमें पद्माकरकी पाँच रचनाएँ ‘हिम्मतवहादुर-विस्दावली’, ‘पद्माभरण’, ‘जगद्गिनोद’, ‘प्रबोध-पचासा’ और ‘गंगालहरी’ एक ही जिल्दमें संग्रह की गई हैं । इनके अतिरिक्त पद्माकरके कुछ फुटकर छन्द भी एकत्रित कर दिये गये हैं । पुस्तकके आरम्भमें ११२ पृष्ठोंके आमुखमें पद्माकरकी जीवनीके साथ-साथ उनकी काव्यकी

आलोचना दी गई है। आलोचनाकी कुछ बातोंसे सहमत न होते हुए भी यह कहना सर्वथा ठीक है कि आलोचना विचारपूर्ण है, और उससे प्रकट होता है कि सम्पादकजीने गहरा अध्ययन करके पद्याकरकी कविताके विभिन्न पहलुओंकी कसौटीपर कसा है। पुस्तकके अन्तमें १०० पृष्ठोंमें कठिन शब्दोंके अर्थ और टिप्पणियाँ दी गई हैं, जिनसे पुस्तककी उपादेयता बहुत बढ़ गई है। पुस्तकमें पद्याकरका एक तिरंगा चित्र भी है। हम इस सुन्दर-पुस्तकको प्रकाशित करनेके लिए मिश्रजीको बधाई देते हैं।

—ब्रजमोहन वर्मा

‘आधुनिक’—सम्पादक, श्री भगवतीचरण पाण्डिग्राही, एम० ए०; प्रकाशक, नवयुग साहित्य-संसद, कटक।

यह उड़िया भाषाका मासिक पत्र है। कटकके ‘नवयुग साहित्य-संसद’ द्वारा प्रकाशित किया गया है। इसका पहला अंक हमारे सामने है। उसमें ४८ पृष्ठ हैं। यह अचित्र है और गेट-अप भी आकर्षक नहीं है; किन्तु लेखकोंका संकलन सुन्दर एवं अपने ढंगका विलकुल नया है।

हिन्दीके पाठकोंका बहुत दिनों तक यह खयाल था कि उड़िया भाषा और साहित्य बहुत पीछे है; किन्तु सन्तोषकी बात है कि लोगोंकी यह धारणा अब दूर होती जा रही है। उड़िया भाषाका क्षेत्र बहुत ही सीमित है। इसके बोलनेवालोंकी संख्या एक करोड़से अधिक नहीं है, फिर भी उड़िया-भाषा-भाषियोंके लिए यह गौरवकी बात है कि वे काफी प्रगतिशील हैं। उड़िया भाषामें तीन दैनिक पत्र, कई साप्ताहिक पत्र, दो उच्चकोटिकी मासिक पत्रिकाएँ और कई पुस्तक-प्रकाशन-समितियाँ हैं।

प्रस्तुत मासिक पत्र ‘आधुनिक’ के सम्पादक कामरेड भगवतीचरण पाण्डिग्राही, एम० ए०, का आधुनिक नवयुवक उड़िया लेखकोंमें एक खास स्थान है। उन्होंने उड़िया भाषामें साम्यवादी विचार-धारा वहानेमें विशेष उद्योग किया है, और इसमें उन्हें सफलता भी प्राप्त हुई है। ‘आधुनिक’ के प्रकाशनका उद्देश्य सम्पादकके ही शब्दोंमें सुनिये—“इस समय विचार और कार्यक्षेत्रमें जो कान्तिरथाँ हो रही हैं, उनका बोध कराने और जनताको उनके लिए तैयार करानेके लिए हमारा आभिर्भाव हुआ है। कला, विज्ञान, साहित्य और दर्शनमें दो दृष्टिकोण हैं। एकका उद्देश्य मनुष्यको कार्यतत्पर बनाना है और दूसरेका कोई बाह्य उद्देश्य नहीं है, केवल चर्चामें ही अभीष्ट

सिद्धि है। ‘आधुनिक’ पहले दृष्टिकोणका पोषक है। इसमें निबन्ध, गल्प, कविता आदि प्रकाशित करनेका उद्देश्य मनुष्यको कार्यके लिए तत्पर और अधीर बनाना है। अधिकांश साहित्यिक पत्र जीवनके प्रश्नोंके सम्बन्धमें स्पष्ट राय नहीं रखते। उनकी नीति प्रायः यह होती है कि साँप भी मरे और लाठी भी न टूटे; परन्तु ‘आधुनिक’ की नीति होगी कि साँप ज़हर मरे, चाहे लाठी भले ही टूट जाय।”

‘आधुनिक’ के इस अंकमें एक कविता है, जिसमें ईश्वरसे प्रार्थना की गई है। उसका भावार्थ यों है—“जब करोड़-करोड़ मनुष्योंकी अपार प्रार्थनाओं द्वारा मंगलके स्थानपर केवल अमंगलकी ही सृष्टि हो रही है और जब उष्ण निःश्वास दावानलके समान निकल रहा है, तो इस स्थितिमें हे भगवन्, दिमाग रखनेवाला कौन मनुष्य तुम्हारे ऊपर विश्वास करेगा? तुम ज्ञानके परे हो, इसलिए तुम स्वयं अपनी विदाई लो, क्योंकि तुम्हारे ही कारण आज विश्वमें हाय-हाय मची हुई है।”

—शरतचन्द्र पट्टनायक

—
अंगरेजी

INDUSTRY YEAR BOOK & DIRECTORY 1936.
Published by INDUSTRY PUBLISHERS LIMITED.,
Keshub Bhawan, 22, R. G. Kar Road, Calcutta.
Price Rs. 5/- Demy Octavo, Pp, 1048.

पिछले कई वर्षोंसे कलकत्ताका इंडस्ट्री आफिस ‘इंडस्ट्री इयर बुक ऐण्ड डाइरेक्टरी’ नामसे इस पुस्तकको प्रतिवर्ष प्रकाशित कर रहा है। इस डाइरेक्टरीमें डाकखानेके नियम, रेलवेके नियम, महाज्ररानीकी खबरें, नाप-तोल, व्यापारिक और मजदूरोंके कानून-कायदे, व्यापारिक संस्थाएँ, जुंगी, इनकम-टैक्स और स्टैम्प ऐक्टकी बातें, सन् १९३४-३५ की व्यापारिक प्रगति, भारतके समस्त प्रधान उद्योग-धन्धोंका वार्षिक विवरण, आयात-निर्यात, भारतके प्रमुख विभाग, मंडियाँ, समाचारपत्र, मेले आदि हज़ारों ज्ञातव्य बातें दी हुई हैं। इसके अतिरिक्त देशके व्यापारियोंके नाम-पत्तोंकी भी एक लम्बी सूची दी गई है। पुस्तक व्यापारियों, कल-कारखानेवालों, सौदागरों आदिके लिए अत्यन्त उपयोगी और रोज़मर्राके काममें आनेवाली चीज़ है। व्यापारियोंके अतिरिक्त अन्य लोग भी इससे काफी लाभ उठा सकते हैं। पुस्तकमें दी हुई विस्तृत बातों तथा उसकी पृष्ठ-संख्या और उपयोगिताको देखते हुए मूल्य भी वाजिबी है।

सम्पादकीय विचार

लार्ड लिनलिथगोकी कार्य-नीति

भारतके नये गवर्नर-जनरल लार्ड लिनलिथगोने भारत आकर जो कई वक्तृताएँ दी हैं, उनकी काफी चर्चा हुई है। इन सब वक्तृताओंमें उन्होंने जो-जो कुछ करनेको कहा है, वह आवश्यक और प्रशंसनीय है; किन्तु नवीन भारत-शासन-कानूनके अनुसार चलनेको बाध्य होनेके कारण कई बातों और कामोंको, जिन्हें करनेकी वे बात कहते हैं, वे कर नहीं सकेंगे। नई दिल्लीमें पहुँचनेके बाद उन्होंने रेडियोपर जो वक्तृता दी थी, वह उनकी वक्तृताओंमें प्रधान है। इस वक्तृतामें उन्होंने जिन-जिन बातोंपर ध्यान देनेको कहा है, उनमें कोई भी अनावश्यक या तुच्छ नहीं है। लेकिन एक अत्यन्त आवश्यक विषयका उन्होंने उल्लेख नहीं किया। वह है शिक्षा।

गोवंशकी उन्नतिके लिए उन्होंने कईएक साँड़ खरीदे हैं, और जमींदारोंसे अनुरोध किया है कि वे उनके दृष्टान्तका अनुकरण करें। लाट साहब और भी उपायोंसे कृषिकी उन्नति करनेकी चेष्टा करेंगे, इसका आभास भी मिल रहा है।

वे बुद्धिमान और सुशिक्षित हैं। संसारके अन्य सब सभ्य देशोंमें गोवंशकी और कृषि-कार्यकी उन्नति किस तरह हुई है, इसे वे जानते हैं। साधारण सार्वजनिक शिक्षा, कृषि-शिक्षाका विराट आयोजन, गाय-भैंस आदि पालतू जानवरोंका पालन, चिकित्सा-विज्ञान सिखानेकी यथेष्ट व्यवस्था, सिंचाईकी पर्याप्त व्यवस्था तथा दृष्टान्तोंके द्वारा इन सब बातोंकी अन्य देशोंमें जो उन्नति हुई है, वह उन्हें अज्ञात नहीं। वे स्वयं जो दृष्टान्त दिखला रहे हैं तथा अन्य लोगोंको दिखलानेको कह रहे हैं, यह अच्छी बात है, और इससे कुछ लाभ भी होगा। किन्तु भारतवर्षके समान विशाल देशमें हमने जिस-जिस प्रकारकी शिक्षाकी बात कही है, उसके बिना यथेष्ट लाभ नहीं होगा, यह निश्चित है।

शिमला म्यूनिसिपैलिटी अपने स्कूलोंके कुछ दरिद्र

और कमज़ोर बालकोंको दूध देती है। यह अच्छी बात है। इस प्रकारकी चेष्टा सभी जगह होनी आवश्यक है। लार्ड लिनलिथगोने इस प्रकारके कामकी प्रशंसा करके अच्छा ही किया है। लेकिन याद रखना चाहिए कि भारतवर्षके अधिकांश व्यक्ति—सभी उम्रोंके—शरीरसे कमज़ोर हैं। इसका कारण है देशकी दरिद्रता। दरिद्रता दूर किये बिना क्या बच्चोंकी, क्या बालक-बालिकाओंकी, क्या प्रौढ़ोंकी—किसीकी भी अपुष्टता दूर नहीं हो सकती। भिक्षा देकर किसी जातिका पेट नहीं भरा जा सकता। मनुष्यका मनुष्यत्व इसीमें है कि वह स्वयं अपनी चिन्ता और अपनी चेष्टासे अपने अभावको दूर कर सके, अपने ही पैरों खड़ा हो सके। किसी समूची जातिको अथवा उसके किसी अंशको भिखारियोंकी जाति या भिखारियोंकी समष्टिमें परिणत करना उसकी उन्नतिका उपाय नहीं है।

जो जाति आत्म-पुष्ट है, केवल वही जाति सुपुष्ट हो सकती है। और वही जाति आत्म-पुष्ट हो सकती है, जो जाति आत्म-शासित होती है। किसी पर-शासित जातिको आत्म-शासित बननेके लिए सुशिक्षाकी आवश्यकता है और पथ-प्रदर्शन करनेवाली सुशिक्षाके ज्ञानालोककी आवश्यकता है। अज्ञान, अशिक्षित और निरक्षर जातिको पराधीन रखना जितना सहज है, ज्ञानवान, शिक्षित और पढ़ी-लिखी जातिको पराधीन रखना उतना सहज नहीं।

इन सब कारणोंसे लार्ड लिनलिथगो जिस-जिस दिशामें जितने भी भले काम करेंगे, उनकी परिमित प्रशंसा करके भी सब प्रकारकी शिक्षाका यथेष्ट आयोजन किये बिना उनकी समुचित प्रशंसा नहीं की जा सकेगी।

शिमला-स्कूलके कुछ बालक-बालिकाओंको दूध देते हुए उन्होंने जो वक्तृता दी थी, उसके अन्तिम भागमें उन्होंने कहा था—“सचमुच ही सार्वजनिक धनको शिक्षा, शिशुमंगल तथा ऐसी ही अन्य बातोंमें खर्च करनेसे क्या फायदा, यदि लोगोंमें शारीरिक और

मानसिक स्वास्थ्य और स्फूर्ति ही न हो, जिससे वे इन बातोंका पूरा उपयोग कर सकें और इनका आनन्द उठा सकें ?”

इस बातमें सत्य है ; लेकिन लाट साहबकी इस बातसे लोगोंमें गलत धारणा उत्पन्न हो सकती है और नुकसान पहुँच सकता है ।

इन्हें पढ़कर भारतकी वास्तविक अवस्थासे अनजान लोगोंमें यह धारणा उत्पन्न हो सकती है कि भारतमें शिक्षा और शिशुमंगलके लिए सरकार बहादुर खूब खर्च करती है ; लेकिन सभी प्रायः अव्यय होता है, क्योंकि शरीर और मनके स्वास्थ्यकी कमीके कारण लोग परम दयालु और न्यायवान सरकारकी शिक्षा और कल्याण आदिका पूरा लाभ नहीं उठा सकते । लेकिन सच बात यह है कि समूचे भारतकी शिक्षाके लिए सरकार जितना खर्च करती है, उतना ही अथवा उससे भी ज्यादा इंग्लैण्डमें लन्दनकी जिला कौंसिल अपने जिलेकी शिक्षाके लिए व्यय करती है । हमारी जाति स्वस्थ और पुष्ट नहीं है, इसका एक कारण यह है कि हमारी जाति पराधीन, अशिक्षित और निरक्षर है । लार्ड महोदयने कुछ दूधकी भिक्षा देनेकी प्रशंसा करके उसी सम्बन्धमें परोक्षरूपसे शिक्षाकी जो अवज्ञा की है, वह निन्दनीय है ।

मानसिक तेज और मानसिक स्फूर्ति—सम्पूर्ण रूपसे नहीं तो आंशिक रूपसे—मनोवृत्तियोंके ठीक-ठीक परिचालनपर निर्भर करती है । अशिक्षित व्यक्ति अपनी मनोवृत्तियोंका सुचारु रूपसे परिचालन नहीं कर सकता । इसलिए यदि एक ओर यह सत्य है कि मनकी स्फूर्तिके बिना शिक्षाका पूरा लाभ नहीं उठाया जा सकता, तो दूसरी ओर यह भी सत्य है कि शिक्षाके बिना मनमें यथेष्ट स्फूर्ति नहीं उत्पन्न हो सकती ।

लार्ड लिनलिथगो जानते हैं कि नवीन भारत-शासन-विधानने गवर्नर-जनरलको भारतीय महाजातिको मनुष्य बननेकी चेष्टामें सहायता पहुँचानेमें असमर्थ और भारतीयोंको मनुष्यत्वहीन बनाये रखनेमें समर्थ बना

दिया है । और यह शासन-विधान जिस रूपमें पास हुआ है, उसे वह रूप प्रदान करनेमें परोक्ष रूपसे लार्ड महोदयका काफी हाथ था ।

इसलिए लार्ड महोदय जो तरह-तरहके छोटे-छोटे कामोंमें—जैसे, सेक्रेट्रियटके क्लर्कोंसे मिलना और उनका काम-काज देखना आदि—ध्यान दे रहे हैं, उसकी हम यथायोग्य प्रशंसा कर सकते हैं, उसके लिए उनके विरुद्ध हमारी कोई शिकायत नहीं । लेकिन इन छोटी-छोटी बातोंके परिणाम-स्वरूप हम लोग इस बातको एक क्षणके लिए भी भूल नहीं सकते कि हम लोगोंको हमारे प्रधान अधिकार—स्वशासनके अधिकार—से वंचित रखा गया है । हमें आशा है, लार्ड महोदय जैसे बुद्धिमान व्यक्तिका अभिप्राय हम लोगोंको भुलावा देनेका नहीं है—क्योंकि उसका सफल होना असम्भव है ।

—

ब्रिटिश मन्त्री द्वारा राष्ट्रकी गुप्त बातोंका प्रकाश

इस वर्ष विलायतके बजटमें इनकम-टैक्स और चायपर चुंगी बढ़ाई गई है । इस बातकी खबर कुछ लोगोंको बजट प्रकाशित होनेके पहले ही ज्ञात हो गई थी । यह गुप्त खबर कैसे प्रकट हो गई, इसकी जाँचके लिए एक कमेटी बैठाई गई थी । इस जाँचके परिणाम-स्वरूप प्रसिद्ध ब्रिटिश मंत्री मिस्टर टामस दोषी साबित हुए । जाँच-कमेटीकी रिपोर्ट प्रकाशित होनेके पहले ही मि० टामसने मन्त्री पदसे इस्तीफा दे दिया ।

राज्यकी गुप्त बातोंका प्रकट हो जाना बड़ी लज्जा और दुःखका विषय है । फिर भी ब्रिटिश जातिने इतने उच्चपदस्थ राजनीतज्ञके विरुद्ध सन्देहपर जाँच कराई और उसकी रिपोर्ट प्रकाशित की, यह ब्रिटिश जातिके लिए गौरवकी बात है ; लेकिन ब्रिटिश लोग भारतवर्षमें अपने स्वजातियोंके दोषोंको दबाने-छिपानेमें ही अधिकतर व्यस्त और अभ्यस्त हैं । इसके अनेक दृष्टान्त हैं, उन्हें गिनाना व्यर्थ है ।

—श्री रामानन्द चट्टोपाध्याय

—

लिबरलोंकी अदूरदर्शिता

भारतके राजनैतिक क्षेत्रमें आजकल विचारोंका घात-प्रतिघात बड़े जोरोंके साथ प्रारम्भ हो गया है। अब वह वक्त कभीका जा चुका है, जब दुविधामें पड़ा हुआ व्यक्ति राजनैतिक क्षेत्रमें किसी भी प्रकारका प्रभाव कायम रख सके। दुलमुल यकीन नेताओंका जमाना कभीका लद चुका। भारतकी जनता अब जाग्रत हो चुकी है, और वह धोखेमें नहीं रखी जा सकती। असली और नकलीमें भेद करना वह सीखती जा रही है, और वह इस बातको धीरे-धीरे समझने लगी है कि कौन लोग उसके लिए त्याग और तप करते हैं और कौन घरपर या आफिसमें बैठे-बैठे सिर्फ लेख लिखने अथवा कौंसिलोंमें स्पीच फाड़नेमें ही अपने कर्तव्यकी इतिश्री समझ लेते हैं। इन पंक्तियोंका लेखक किसी दल-विशेषसे सम्बन्ध नहीं रखता, और किसी खास पार्टीके प्रति उसके हृदयमें न तो अन्ध-श्रद्धा है और न विद्वेष, इसलिए वह अपने विचार बिना किसी संकोचके प्रकट कर सकता है।

सर तेजबहादुर सप्रू, सर चिम्मनलाल सीतलवाड और सर शिवस्वामी अय्यरने श्री जवाहरलालजी नेहरूके पत्रके उत्तरमें जो तर्क उपस्थित किये हैं, उनसे प्रकट होता है कि लिबरलों और साधारण जनताके बीचकी खाई इतनी गहरी हो गई है कि अब वह पाटी नहीं जा सकती। दोनोंकी मनोवृत्तिमें जमीन आस्मानका फर्क है। यह करीब-करीब निश्चित जान पड़ता है कि सरकारसे मोर्चा लेते समय लिबरल लोग कांग्रेसका साथ नहीं देंगे, बल्कि लिबरलोंमें जो और भी नरम हैं, वे सरकारका साथ देंगे। ऐसी हालतमें कांग्रेस यदि लिबरलोंको अपना राजनैतिक दुश्मन समझ ले, तो इसमें उसे कौन दोष दे सकता है? हम उन लोगोंमें से नहीं हैं, जो यह समझते हैं कि देशभक्तिका ठेका किसी दल-विशेषने लिखा रखा है। हम यह भी जानते हैं कि सभी दलोंमें भले अथवा बुरे, ईमानदार अथवा स्वार्थी कार्यकर्ता पाये जाते हैं। हम यह भी

मानते हैं कि जेल जाना ही देशभक्तिकी एकमात्र कसौटी नहीं है। हमारे पत्रके पाठक इस बातको भलीभाँति जानते हैं कि हम सहृदयता तथा मनुष्यताके प्रशंसक हैं, चाहे वह किसीमें भी पाई जाय। इसलिए केवल कटाक्ष करनेके लिए हम ये पंक्तियाँ नहीं लिख रहे, बल्कि इन्हें लिखते हुए हमें हार्दिक खेद हो रहा है।

‘लीडर’में आजकल साम्यवादके विरोधमें जिस ढंगके लेख तथा चिट्ठियाँ छप रही हैं, उन्हें पढ़कर बड़ी चिढ़ पैदा होती है। ‘लीडर’ लिबरलोंका एक सजीव पत्र है। उसके प्रधान-सम्पादक श्रीयुत सी०वाई० चिन्तामणिके जोरदार व्यक्तित्वके प्रति हमारे हृदयमें श्रद्धा है; पर हमें यह बात साफ-साफ कहनी पड़ेगी कि यदि ‘लीडर’ लिबरलोंकी मनोवृत्तिको ठीक तौरपर प्रकट करता है, तो लिबरल पार्टीके अन्तका प्रारम्भ हो चुका है। वैसे भी लिबरल पार्टीका साधारण जनतामें कोई प्रभाव नहीं था; पर पढ़े-लिखे शहरी आदमियोंपर उसका थोड़ा-बहुत असर जरूर रहा है, अब उसका भी खातमा होने जा रहा है। ‘लीडर’के सम्बन्धके कोई संवाददाता हैं। श्री जवाहरलालजीकी बातोंके विषयमें लिखते हुए उन्होंने—‘Stupid lies down-right lies’—‘मूर्खतापूर्ण झूठ’, ‘सोलहो आने झूठ’—इत्यादि शब्दोंका प्रयोग किया है। क्या ‘लीडर’ और उसके संवाददाता इस बातको नहीं जानते कि ये शब्द भारतवर्षकी सबसे अधिक प्रभावशाली राजनैतिक संस्था—कांग्रेस—के सभापतिके विषयमें लिखे जा रहे हैं? क्या उन्हें यह बतलाना पड़ेगा कि भारतीय नवयुवकोंके हृदय-सम्राटके विषयमें लिखते हुए कुछ संयमकी जरूरत है? क्या मतभेद कुछ अधिक नरमीके साथ प्रकट नहीं किया जा सकता था?

अभी २४ जूनके ‘लीडर’ में किन्हीं महाशय ओकारनाथ टंडन (रायबहादुर और ताल्लुकेदार) की एक चिट्ठी छपी है, और उसमें लिखा है—

"It is Mr. Chintamani alone who has so vigorously carried on agitation against socialism and who has awakened us from our slumber at present...He has in my humble opinion, excelled one and all at this stage and probably he will be the fittest and choicest chief minister to give successful battle to the authors and champions of this black snake."

साम्यवादको 'काला साँप' कहना किस मनोवृत्तिका सूचक है ? और 'लीडर' ने बिना किसी टिप्पणीके इस चिट्ठीको छाप दिया है ! इस तरहकी छोटी-छोटी बातें मिलकर अन्तमें एक विघातक रूप धारण कर लेती हैं। चुनावके दिनोंमें इनका बड़ा ज़बरदस्त उपयोग किया जा सकता है। अदूरदर्शिताकी भी कोई हद होती है। आखिर देशकी शासन-शक्ति—आज न सही, दस-पन्द्रह वर्ष बाद सही—उन लोगोंके हाथमें ही आनेवाली है, जो इस 'काले साँप' के प्रबल समर्थक हैं। ज़मींदारों तथा ताल्लुकेदारोंकी भयपूर्ण मनोवृत्तिको हम समझ सकते हैं ; पर क्या लिबरल लोग भी 'साम्यवाद' को वैसा ही समझते हैं ?

मालूम होता है कि लिबरल पार्टीके नेताओंको अपनी पार्टीका विनाश सामने दीख पड़ने लगा है, और उसके कारण उनकी अक्रल ठिकाने नहीं रही। 'कम ताक़त गुस्ता ज्यादा, पिटनेके लक्षण' वाली कहावत उन्होंने शायद सुनी होगी। लिबरल पार्टीमें कितने ही योग्य व्यक्ति हैं, और देश उनकी योग्यतासे काफ़ी लाभ भी उठा सकता है। भारत-सेवक-समितिके स्वार्थ-त्यागी कार्यकर्ताओंकी कौन प्रशंसा नहीं करता ? खेद है कि अपने नेताओंकी भूलके कारण इन लोगोंकी भी योग्यतासे देश लाभ न उठा सकेगा। लिबरलोंकी इस नासमझी तथा अदूरदर्शितापर हमें खेद है।

श्रीप्रकाशजीकी खरी बातें

गत ७-८ जूनके 'लीडर' में श्रीयुत श्रीप्रकाशजीने दो लेख बड़े मार्केके लिखे हैं, और समाजवादको जो लोग हौआ समझकर उसका विरोध कर रहे हैं, उन्हें सोचने और विचारनेके लिए काफ़ी मसाला दे दिया है।

किस प्रकारका समाजवाद भारतवर्षके लिए अधिक उपयुक्त होगा, इस बातमें अवश्यमेव मतभेद हो सकता है ; पर एक बात तो सर्वथा निश्चित ही समझनी चाहिए, वह यह कि समाजकी वर्तमान व्यवस्था अब बहुत दिन नहीं चल सकती। यह व्यवस्था भीतरसे बिलकुल खोखली हो चुकी है, और जिस प्रकार जड़से खोखला वृक्ष आँधी और तूफ़ानमें खड़ा नहीं रह सकता, उसी प्रकार यह व्यवस्था, जिसमें ५ आदमी समस्त धन-सम्पत्तिके मालिक बनकर गुलछेरें उड़ाते हैं और शेष ६५ फी-सदी आदमी उनका सारा भार लादते और भूखों मरते हैं, साम्यवादकी प्रबल वायुके सामने टिक नहीं सकती। यदि साम्यवाद कोई बुराई है, तो वह एक अनिवार्य बुराई है। वह किसीके रोके नहीं स्केगी। यद्यपि जोरदार व्यक्तित्व द्वारा उसके आनेमें कुछ सहूलियत हो सकती है ; पर उसे रोकनेकी कोशिश वैसी ही हास्यास्पद है, जैसा टिटहरीका ऊपरको टाँग करके आसमानको अपने पैरोंके ऊपर उठानेका प्रयत्न। ऐसी परिस्थितिमें साम्यवादके विरोधियोंका कर्तव्य है कि वे संयमसे काम लें। उनका इस वक्तका संयम खुद उनके लिए भविष्यमें लाभदायक सिद्ध होगा, और उनके इस समयके असंयमकी प्रतिक्रिया उन्हींके लिए विघातक होगी। साम्यवादके प्रश्नपर विचार करते हुए जवाहरलालजीके व्यक्तित्वको अलग रख देना चाहिए। सम्भव है कि श्री जवाहरलालजीने अपने लेखों तथा अपने आत्म-चरितमें भी भूलें की हों, यह भी सुमकिन है कि उन्होंने किसी दल-विशेषके प्रति न्याय न किया हो ; पर यह बिलकुल अलग सवाल है, और साम्यवादका इससे कुछ सम्बन्ध नहीं।

जो लोग समाजकी वर्तमान व्यवस्थाको प्राणोंसे भी प्रिय समझकर उससे चिपटे रहना चाहते हैं, उनसे श्रीप्रकाशजी पूछते हैं—“क्या यह न्यायसंगत है कि तमाम सम्मान, शक्ति, आनन्द तथा मनोरंजनके साधन अनन्तकालके लिए केवल उन थोड़ेसे आदमियोंके ही हाथमें रहें, जिन्होंने इस वक्त उनपर किसी-न-किसी

प्रकार उचित-अनुचित ढंगसे एकाधिकार कर रहा है ?”

जिन लोगों ने श्री जवाहरलालजी के नागरिक स्वाधीनता-संघका विरोध किया है, उनको लक्ष्य करके श्रीप्रकाशजी कहते हैं—“जो महानुभाव आज जवाहरलालजी के प्रस्तावका विरोध कर रहे हैं, उनसे मैं निवेदन करूँगा कि वे ज़रा सहजबुद्धिसे इस मामलेपर विचार करें। उनका विरोध भविष्यमें खुद उनके लिए हानिकारक सिद्ध हो सकता है। परिस्थिति ऐसी बदल सकती है कि वे उन कानूनोंका, जिनकी संगठकतामें वे अपनेको स्वाधीन समझते हैं, कल उन्हींके ऊपर प्रयोग किया जाने लगे, और जिस प्रकार उनके विरोधी आज जेलखानेमें ठेल दिये जाते हैं, उसी प्रकार वे भी कभी कारागारमें डाल दिये जायें। दूसरे मुल्कोंकी तरह इस मुल्कमें भी वक्त बदल सकता है। कानूनोंमें यह थोड़े ही लिखा है कि इनका प्रयोग सिर्फ समाजवादियोंके ही विरुद्ध किया जायगा। शासक लोग उन कानूनोंका प्रयोग अपने विरोधियोंकी स्वाधीनताका अपहरण करनेके लिए करते हैं, और यदि कल शासन समाजवादियोंके हाथमें आ जाय और वे उन कानूनोंका प्रयोग समाजवादके विरोधियोंपर करने लगे, तो फिर उनकी क्या हालत होगी ?”

दरअसल बात यह है कि जो लोग साम्यवादका विरोध करते हैं, उन्हें कभी भारतीय युवकोंके संसर्गमें आनेका मौका ही नहीं मिलता। उनके आलीशान मकानों तक साधारण स्थितिके नवयुवकोंकी पहुँच भी नहीं हो सकती, और स्वयं वे भी समयकी गतिसे इतने पिछड़े हुए हैं कि उनके हृदयमें नवयुवकोंसे मिलनेकी भावना ही उत्पन्न नहीं होती।

ज़रूरत है आँखें खोलकर देखनेकी। भारतवर्ष कोई तीन लोकसे न्यारी जगह नहीं है, और उन विचारोंको, जो अन्य देशोंमें आज काम कर रहे हैं, कल भारतवर्ष आनेसे कौन रोक सकता है ? विचारोंके प्रवेशके लिए कोई पासपोर्टकी ज़रूरत थोड़े ही पड़ती है। वे हवाकी तरह स्वाधीनतापूर्वक आ-जा सकते हैं। हमें

खेद है कि समाजवादके विरोधी क्षणिक जोशमें अपनी सहजबुद्धिसे भी हाथ धो बैठे हैं। क्या ही अच्छा हो, यदि कोई इतिहासका स्कूल खोलकर उन्हें पिछले बीस-पचीस वर्षका संसारका इतिहास पढ़ावे। यदि वे फीस देनेको तैयार न हों, तो साधारण जनतासे चन्दा किया जा सकता है।

रहे या न रहे

भारतकी राजनैतिक समस्यामें किसानोंकी समस्या एक जटिल तथा महत्वपूर्ण प्रश्न है। महत्वपूर्ण इसलिए कि इस समस्याके हल किये बिना अथवा मार्ग-निर्दिष्ट किये बिना देशके राजनैतिक आन्दोलनकी दशा नदीके उस पानीकी भाँति हो जायगी, जो नदीकी मुख्य धारसे कटकर एक स्थानमें रह जाता है, और फलस्वरूप जिसमें सड़ान्ध आने लगती है। और जटिल इसलिए कि किसान-आन्दोलनको आर्थिक प्रोग्रामके पथपर चलानेमें कई बाधाएँ हैं, और मुख्य बाधा है ज़मींदारी-प्रथा। अब प्रश्न यह है कि ज़मींदारी-प्रथाको रखा जाय या नहीं, अथवा वह रहे या नहीं। यों तो परिस्थितिका चक्र लोगोंसे सन्न-कुछ करा लेता है; पर विचारशीलोंका कर्तव्य है कि देशकी समस्याको गम्भीरतापूर्वक सोचें और किसी निर्णयपर आयें।

यह हम मानते हैं कि ब्रिटिश राज्यकी स्थापनासे पूर्व देशमें वर्तमान ज़मींदारी-प्रथा न थी, और अंगरेज़ी शासकोंने काश्तकारोंके हकोंको तिलांजलि देकर, अर्थलिप्तामें, वर्तमान ज़मींदारी-प्रथाको क्रायम किया। पर इस रोनेसे—गड़े मुरदोंको उखाड़नेसे—कोई विशेष लाभ नहीं। प्रश्न तो यह है कि ज़मींदारी रहे या न रहे। समाचारपत्रोंके पढ़ने, किसान-आन्दोलनकी प्रगति और किसान-समस्याके जानकारी मित्रों और राजनैतिक नेताओं तथा ज़मींदारोंकी बातोंसे हम इस निष्कर्षपर पहुँचते हैं कि देशमें तीन धाराएँ बह रही हैं इस विषयमें। एक तो वे लोग हैं, जो ज़मींदारी-प्रथाके उठानेके घोर विरोधी हैं। ये लोग हैं खुद ज़मींदार,

दूषित पूँजीवादके समर्थक और नौकरशाही । दूसरे वे लोग हैं, जो जमींदारीको उठानेके तो पक्षमें हैं ; पर वे चाहते हैं कि जमींदारोंको हर्जाना दिलाकर उसका अन्त करना चाहिए । तीसरे प्रकारके वे लोग हैं, जो कहते हैं कि 'अब वेटी बापकी नहीं है' । हर्जाना देना उनके मतसे अन्याय करना है । इन सब लोगोंसे अलग एक और शक्ति है, जो संसारकी विभूति है, भारतकी नाजकी चीज है और जो साम्यवादके गगन अलापनेवालोंसे कहीं अधिक किसानोंकी हितैषी है, और वह शक्ति है महात्मा गांधी । महात्माजी जमींदारोंको किसानोंका ट्रस्टी बनाना चाहते हैं और जमींदारीका अन्त नहीं चाहते ।

हमें दुःख इस बातका है कि कांग्रेस जैसी राजनैतिक संस्था जमींदारी-प्रथापर अपनी निश्चित सम्मति कायम नहीं कर रही । यह हम मानते हैं कि किसानोंका जो कुछ भला हुआ है, वह अब तक अधिकांशमें कांग्रेससे ; पर जमींदारी-प्रथापर कोई निश्चयात्मक राय न देना कांग्रेसके लिए शोभा नहीं देता । यह प्रश्न कभी न कभी कांग्रेसके सामने आयेगा जरूर, और सम्भवतः निकट भविष्यमें कांग्रेसकी शक्ति इस प्रश्नकी कसौटीपर कसी जायगी । हम इस बातको महसूस करते हैं कि इस प्रकारके प्रश्नका स्थगित करना ठीक वैसे ही है, जैसे तपेदिकके मर्जके लिए इलाज स्थगित करना ।

राजनैतिक दृष्टिसे हम इस बातको भी खूब समझते हैं कि देशका मुख्य प्रश्न देशकी परतन्त्रता है, न कि जमींदारी-प्रथा, अथवा साम्यवादका प्रचार । श्री नेहरूजीका यह खयाल भी हो सकता है कि इस प्रश्नको आगे रखनेसे देशकी मुख्य समस्या पीछे पड़ जायगी, पारस्परिक कलहका संभावित बहने लगेगा, और व्यावहारिक राजनीति इसीमें है कि इस प्रश्नकी टाल-मटोल की जाय ; पर हम इस बातके कायल नहीं । कांग्रेसको चाहिए कि जमींदारी-प्रथाके प्रश्नको टाला न जाय—पद-स्वकारके प्रश्नकी भाँति । यह बात न तो कांग्रेसके गौरवको ही बढ़ाती है और न समस्याकी गुरुताको ही कम करती है ।

गाँवोंकी ओर

जबसे महात्मा गांधीने भारतीय गाँवोंकी ओर अपना ध्यान पूर्णरूपसे दिया है, तबसे नौकरशाहीने भी अपनी शक्तियोंको उधर लगानेका कुछ अधिक प्रयत्न किया है, और सरकारकी सतर्क आँखें कांग्रेसके प्रामोद्योगमें राजनीतिकी गन्ध पाती हैं । असलमें राष्ट्रके एक मुख्य आन्दोलनका प्रभाव अन्य आन्दोलनोंपर पड़ता है, और भारतवर्ष-जैसे पिछड़े देशमें जनतामें किसी प्रकारकी जान पड़नेके मानी हैं राजनैतिक जाप्रति और अपने हकोंको समझनेकी प्रवृत्ति, इसलिए नौकरशाहीने फौरन ही एक करोड़ रुपयेसे ग्राम-संगठनकी योजना खड़ी कर दी । गाँवोंमें प्रभाव रखनेके लिए कांग्रेस और नौकरशाहीमें डरबीकी-सी दौड़ हो रही है । नौकरशाहीके घोड़ेका जोँकी (सवार) तेज व तरार है, उसके चाबुकमें भी तीखापन है ; पर उसका घोड़ा ठीक नहीं, और हमें आशंका है कि वह विनिंग पोस्ट (जीतके लड़े) पर पहले न पहुँच पायेगा । यह बात हम इसलिए नहीं लिख रहे कि एक करोड़की रकम भारतकी देहातकी समस्याकी दृष्टिसे कुछ नहींके बराबर है, वरन् इसलिए कि नौकरशाहीका यह सब प्रयास बाहरी उपचार है । मूल रोगकी दवाई वह नहीं है । वह तो एक खिलौना है लड़कोंको बहलानेके लिए ; पर भूका बालक खिलौनेसे नहीं बहलता । यह ठीक है कि कांग्रेसके पास भी कोई अमोघौषधि नहीं है इस समय ; पर उसके पास एक बात है, और वह है उसका प्रतिनिधित्व-पंडित किसानोंकी ओरसे । कांग्रेसके पास साधन नहीं और न राष्ट्रकी शासन-मेशीनकी कुंजी, इसलिए कांग्रेस जो कुछ करना चाहती है, वह नहीं कर सकती ; पर वह देहातकी पूर्ण सहानुभूति अपना ओर कर रही है । हम चाहते हैं कि गाँवोंका भला हो । हमें इसमें आपत्ति नहीं कि वह सरकार द्वारा हो । हो और खूब हो ; पर सरकार केवल बाह्य उपचार कर रही है । उदाहरणके लिए, देहातका लगान-कानून लीजिए । काश्तकारको

यह हक नहीं कि वह अपने खेतपर अपना मकान बना सके अथवा फलोंके पेड़ लगा सके। ज़मींदारोंको आजकल पूरा लगान वसूल नहीं होता और सरकारकी ओरसे फलोंकी उपजके लिए प्रचार हो रहा है ; पर इस आन्दोलन और प्रचारके विशेष कुछ मानी नहीं, जब तक काश्तकारोंको आम, कटहल और अन्य फलोंके पेड़ लगानेकी क़ानूनन आज्ञा न मिलेगी, तब तक उनका विशेष लाभ न होगा, और खेतोंपर यदि उनको मकान बनानेकी आज्ञा हो, तो देहातकी सफ़ाई, कलह और खेतीकी देखभालकी रक्षा बहुत-कुछ हो जाय। दूसरी बात खेतोंकी चकवन्दीकी है। चकवन्दीके मामलेमें ज़मींदारोंको कोई आपत्ति नहीं हो सकती। किसी भी देशमें आज तक बिना व्यवस्थापिका-सभाकी सहायताके चकवन्दी नहीं हुई।

यदि सरकार इन बातोंको कर सके, तो हम जानें कि उसने कुछ ग्राम-सेवा की। विस्तारकी कठिनाइयोंको हम समझते हैं ; पर वे सब दूर हो सकती हैं, यदि सरकार ईमानदारीसे काम ले।

टैरिफ बोर्डका फैसला

विलायतसे आनेवाले कपड़ेपर आयात कर कितना लगाना चाहिए, इस बातकी जाँच करनेके लिए एक स्पेशल टैरिफ बोर्ड बनाया गया था। इस बोर्डके सामने लंकाशायरने यह दावा उपस्थित किया था कि कपड़ेका आयात कर एकदम उठा दिया जाय, और भारतीय व्यापारियोंने यह कहा था कि २५ प्रतिशतकी चुंगी कपड़ेके संरक्षणके लिए काफी नहीं है, इसलिए यह चुंगी बढ़ा दी जाय। बोर्डने कुछ विशेष प्रकारके कपड़ोंपर लगानेवाले २५ प्रतिशत आयात-करको घटाकर २० प्रतिशत कर देनेकी सिफ़ारिश की है। भारत-सरकारने इस सिफ़ारिशको मानकर अपने विशेष अधिकारका उपयोग करके २५ जूनसे ही इस करको घटा दिया।

इस करके घटा देनेसे लंकाशायरमें धीके चिराय

जलेंगे और भारतीय कपड़ेके व्यापारियोंके यहाँ मातम मनाया जायगा। सरकारकी यह कार्रवाई मोदी-क्लेयर लीज़ समझौतेके बिल्कुल अनुकूल ही है। मोदी-क्लेयर लीज़ समझौतेपर एसेम्बलीमें सरकारपर जोरकी लताड़ पड़ी थी, भारतकी तमाम व्यापारिक संस्थाओंने उसका विरोध किया था। लेकिन उससे सरकारपर कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ा। सरकारने एसेम्बलीसे करकी इस कमीकी स्वीकृति लेनेकी भी प्रतीक्षा नहीं की और अपने विशेष अधिकारका उपयोग करके कर घटा दिया। सरकारने अपनी इस कार्रवाईके लिए यह दलील दी है कि इस विषयकी अनिश्चयताके कारण लोग लंकाशायरसे माल नहीं मँगा रहे हैं, जिससे सरकारको चुंगीमें काफ़ी नुकसान हो रहा है। देशका व्यापारी मंडल सरकारकी इस दलीलको स्वीकार करेगा, इसमें सन्देह है। ओटावाके समझौतेपर एसेम्बलीमें सरकारके रुखसे यह स्पष्ट हो गया था कि सरकार भारतके मध्ये अंगरेज़ी मालकों तरज़ीह देनेकी नीति लादना चाहती थी। ओटावाके मसलेमें एसेम्बलीमें सरकार हार गई थी। उसकी मौजूदा कार्रवाईसे लंकाशायरके मालको ५ प्रतिशतकी तरज़ीह अपने-आप मिल गई। क्या इस तरहके तरीकोंसे सरकार ओटावाकी पालिसी जारी रखना चाहती है ?

जब सर जोसेफ भोर वायसरायकी कार्यकारिणीके सदस्य थे तब उन्होंने एसेम्बलीको विश्वास दिलाया था कि भारतीय कपड़ेके व्यापारको जो एसेम्बलीने संरक्षण दिया है, यदि वह घटाया जायगा, तो उसे एसेम्बली ही घटायेगी। लेकिन सरकारने एसेम्बलीकी राय लेनेकी परवा नहीं की और अपनी शक्तिका उपयोग करके अपने मनकी बात कर डाली।

सरकारकी इस जल्दवाज़ीकी तहमें क्या उद्देश है, इसे तो सरकार ही जाने ; लेकिन इस बातका निश्चय है कि सारा देश सरकारकी इस जल्दवाज़ीकी और उसके इस कार्यकी निन्दा करेगा।

कविवर गुप्तजीकी जयन्ती

बन्धुवर नवीनजीने एक अत्यन्त उपयोगी प्रस्ताव हिन्दी जनताके सम्मुख रखा है, और वह है कविवर गुप्तजीकी जयन्तीके मनानेका। गुप्तजी उस कोटिके व्यक्ति हैं, जिनका सम्मान करना स्वयं अपने गौरवको बढ़ाना है। हिन्दीके वे सबसे अधिक लोकप्रिय कवि हैं, और अपनी स्वाभाविक विनम्रताके कारण वे ऐसे अवसरोंसे अपनेको सदा बचाते ही रहे हैं, जिससे उन्हें कोई पद या प्रतिष्ठा मिलती हो। कवि-सम्मेलनों तथा साहित्य-सम्मेलनोंसे वे प्रायः दूर ही रहे हैं, और अखिल भारतीय साहित्य-सम्मेलनके सभापतित्वको भी उन्होंने अस्वीकार कर दिया था। गुप्तजीकी जयन्ती मनानेवालोंको कई बातें ध्यानमें रखनी चाहिए।

(१) गुप्तजी अत्यन्त संकोचशील व्यक्ति हैं। कोई भी बात ऐसी न होनी चाहिए, जिससे उनकी कोमल प्रवृत्तिको आघात पहुँचे। उदाहरणार्थ, यदि कोई व्यक्ति-विशेष यह खयाल करते हों कि वे जयन्ती मनाकर गुप्तजीपर कोई अहसान कर रहे हैं, तो उन्हें इस उत्सवसे अपनेको सर्वथा अलग ही रखना चाहिए। यह कार्य तो हार्दिक उल्लासके साथ ही होना चाहिए।

(२) हम लोगोंको यह बात अच्छी तरह समझ लेनी चाहिए कि गुप्तजीको न धनकी लालसा है, न यशकी और न विज्ञापन की। पहली चीज़ खाने-पीने लायक उनके पास काफ़ी है, दूसरी उन्हें अपनी कृतियोंके कारण खूब मिल चुकी है और तीसरीसे उनकी कोमल प्रकृति बहुत डरती है।

(३) इस प्रकारके उत्सवोंका उपयोग साहित्यिक जाग्रतिके लिए होना चाहिए, और उनके साथ कोई न कोई ठोस काम करनेको ज़रूरत है। उदाहरणार्थ, यदि हम कोई ऐसा ग्रन्थ प्रकाशित कर सकें, जिसमें गुप्तजीकी रचनाओंकी अधिकारपूर्ण आलोचना हो, तो उससे साहित्यका भी हित हो सकता है और गुप्तजीको भी कुछ सन्तोष हो सकता है। यह ज़रूरत नहीं है कि पुस्तक कोरमकोर प्रशंसात्मक ही हो। उसमें

गुप्तजीकी कृतियोंपर भिन्न-भिन्न दृष्टियोंसे विचार होना चाहिए। खरी आलोचनाका वे हार्दिक स्वागत करेंगे।

(४) तिथियोंके बन्धनमें हमें न फँसना चाहिए। हमारा देश अत्यन्त विस्तृत है, और राष्ट्र-भाषाका क्षेत्र भी उतना ही फैला हुआ है; पर कार्यकर्ताओंकी संख्या अभी थोड़ी ही है। बजाय इसके कि हम किसी एक तिथिको यह उत्सव मनावें, हमें २१ जुलाईसे विजया-दशमी तक—जब जहाँ जिसे सुविधा हो—इस उत्सवके मनानेका आयोजन करना चाहिए। उदाहरणके लिए, हम चिरगाँव-यात्राको दशहरे तक स्थगित करना उचित समझते हैं। उन दिनों छुट्टियाँ भी होंगी, और अधिक संख्यामें विद्यार्थी तथा अध्यापक वहाँ पहुँच सकेंगे। यदि बुन्देलखण्ड - साहित्य-परिषद्का अधिवेशन भी उन्हीं दिनोंके आसपास मॉसीमें कर लिया जाय, तो अत्युत्तम हो।

हिन्दीके अधिकांश साहित्य-सेवियोंका जीवन इतना अधिक संकटमय है और उसमें इतनी अधिक नीरसता और कहीं-कहीं कटुता भी है कि इस प्रकारके उत्सवोंका स्वागत ही करना चाहिए। हाँ, अधिकारी-अनधिकारीका खयाल हमें ज़रूर करना चाहिए। गुप्तजी निस्सन्देह इस सम्मानके अधिकारी हैं। पर हम लोगोंका मुख्य ध्येय स्वयं आनन्द मनाना और इस बहाने साहित्यिक जाग्रति उत्पन्न करना होना चाहिए।

जो कुछ भी कार्य किया जाय वह सुचारु रूपसे होना चाहिए। लवङ्गधोंधों तरीकेपर, जल्दीमें अथवा रस्म अदा करनेके लिए कुछ भी न करना चाहिए। इस प्रकारके यज्ञोंका जब तक कोई-न-कोई प्रबन्धक नहीं बनता, तब तक काम ठीक ढंगपर नहीं चलता। आशा है कि नवीनजी तथा उनके सहयोगी इस बातपर ध्यान देंगे।

२०-२२ वर्षसे कविवर गुप्तजीके कृपापात्र होनेका सौभाग्य हमें प्राप्त है, इसलिए जो कुछ भी सेवा हमसे बन पड़ेगी, अवश्य करेंगे। यदि उनसे हमारा

प्रतिगत परिचय न भी होता, तब भी साहित्य-सेवियोंके सम्मानका प्रश्न हमारे लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण है। उसी हमारे साहित्य-सेवी-समाजके प्रतिनिधि हैं, और उनके सम्मानमें हमारा सम्मान है।

मुसलमानोंकी भयंकर भूल

वेद, पुरान, कुरान या बाइबिल धर्म-परिवर्तनके विषयमें क्या कहते हैं, यह हमें मालूम नहीं, और न हम यह जाननेके लिए विशेष उत्सुक ही हैं, क्योंकि हम बीसवीं शताब्दीमें उन प्राचीन ग्रन्थोंको अपना पथ-प्रदर्शक माननेके लिए तैयार नहीं। कोई आदमी हिन्दू है या मुसलमान अथवा ईसाई, इससे हमें कुछ वास्ता नहीं। संघ्या करना या नमाज़ पढ़ना उसका प्राइवेट कार्य है, और उसमें दखल देनेकी हमें तब तक ज़रूरत नहीं, जब तक कि उसके कारण अन्य नागरिकोंके अधिकारोंमें कोई बाधा न पहुँचे। श्री हीरालाल गांधी अब्दुल्ला हो जायें अथवा जोसेफ, इससे कुछ आता-जाता नहीं। उनकी इस कार्रवाईसे हमारे हृदयमें न उनका सम्मान घटता है और न बढ़ता ही है; पर किस ढंगसे तथा किस स्थितिमें वे मुसलमान बनाये गये हैं और उनके इस धर्म-परिवर्तनपर मुसलमानोंने क्या भाव प्रकट किये हैं, यह बात विचारणीय अवश्य है। अधिकांश मुसलमानोंके हृदयमें अपनी संख्या बढ़ानेकी जो प्रबल इच्छा रहती है, उसका सबसे भयंकर और भंडा प्रदर्शन हीरालालको अब्दुल्ला बनानेमें हुआ है। अनेक अदूरदर्शी मुसलमान बहुत खुश हैं कि उन्होंने महात्मा गांधीके लड़केको मुसलमान बनाकर मानो कोई बड़ा किला फ़तह कर लिया हो। दरअसल गम्भीरतापूर्वक विचार किया जाय, तो उन्होंने अपनी इस कार्रवाईसे इस्लामको ज़बरदस्त धक्का पहुँचाया है। जो आदमी इस नाममात्रकी धार्मिकताके, चाहे वह किसी भी धर्ममें क्यों न पाई जाय, घोर विरोधी हैं, वे इस घटनाका स्वागत ही करेंगे, और इस दृष्टिसे हम मुस्लिम धर्मान्धताके इस प्रदर्शनका स्वागत ही करते हैं। इस

दुर्घटनाके स्पष्टतया बतला दिया है कि धर्मान्धता तथा धर्म-परिवर्तनका कोढ़ कितनी दूर तक भारतीय जनताके शरीरमें घर कर गया है। 'विशाल भारत' के पाठक इस बातको भलीभाँति जानते हैं कि हम इस प्रकारके धर्म-परिवर्तनका विरोध करते आये हैं, और जब उच्च गायनामें एक आर्यसमाजी प्रचारकने एक मुसलमानकी शुद्धिके विषयमें अपनी डोंग हाँकी थी, तो हमने उनकी इस हरकतपर कठोर टिप्पणी की थी। इसलिए हमपर किसी प्रकारके पक्षपातका दोष नहीं लगाया जा सकता।

महात्माजीके हृदयका खून

इस सिलसिलेमें महात्माजीके विचार जाननेकी ज़रूरत है। पिछले 'हरिजन' में श्री महादेव देसाईने महात्माजी तथा एक ईसाई विद्यार्थीकी बातचीत लिखी है। महात्माजीने उक्त ईसाई सज्जनसे कहा—

“मेरे लड़केको जिस ढंगसे इस्लाम ग्रहण कराया गया है, उसपर अखबारोंमें मैंने जो लिखा है, क्या तुमने उसे पढ़ा है? अगर वह शुद्ध और पश्चात्ताप-भरे हृदयसे मुसलमान हुआ होता, तो मुझे उसके साथ कोई झगड़ा नहीं था; पर जिन लोगोंने उसे इस्लाम कबूल करनेमें मदद दी है और उसके स्वधर्म-त्यागपर जो फ़ले नहीं समा रहे हैं, वे उसकी कमज़ोरियोंसे अनुचित लाभ ही उठा रहे हैं। इस्लामके वे सच्चे प्रतिनिधि नहीं हैं। मैंने अपने असंख्य मुस्लिम मित्रोंके नाम जो पत्र लिखा है, मैं तुम्हें बताऊँ, उसे मैंने अपने हृदयके खूनमें क़लम डुबोकर लिखा है। इसी तरह तिरुचिन्नगोडूरके जिस धर्म-परिवर्तनकी घटनाके बारेमें मैंने तुमसे कहा है, उसने ऐसा घाव कर दिया है, जिसके भरनेकी कोई सूत-नज़र नहीं आती।”

मुस्लिम नेताओंसे हमारा अनुरोध है कि ज़रा उपर्युक्त शब्दोंको ध्यानपूर्वक पढ़ें। 'लीडर' में एक अप्रसिद्ध मुस्लिम सज्जनकी चिट्ठीको छोड़कर और कहीं भी हमने किसी मुसलमानका विरोध नहीं पढ़ा। हम जानना चाहते हैं कि मौलाना अबुलकलाम आज़ाद साहब इस विषयमें क्या विचार रखते हैं। ऐसे

मौकोंपर उन-जैसे राष्ट्रीय विचारोंके मुसलमानोंकी चुप्पी अत्यन्त हानिकारक सिद्ध होगी ।

क्या मुसलमानोंने कभी यह भी सोचा है कि उनकी इस भयंकर कार्रवाईकी क्या प्रतिक्रिया होगी ? श्री सुन्दरलालजीने हमें एक घटना सुनाई थी । घूमते-फिरते वे किसी आर्यसमाजी संस्थामें (वह शुद्धि-सभा थी या अनाथालय, यह हमें याद नहीं रहा) जा निकलें । वहाँ एक लड़कीको देखकर उन्होंने संचालक महोदयसे कहा—“यह लड़की तो शक-सूत्रसे मुसलमान मालूम होती है ।” बड़ी निर्लज्जतापूर्वक वे महाशय बोले—“मुसलमान हिन्दू लड़कियोंको भगाते हैं, तो हम मुस्लिम लड़कियोंको क्यों न उड़ावें ?” यह तर्क सुनकर सुन्दरलालजीको बड़ा खेद हुआ, और वास्तवमें यह बात खेदजनक और अत्यन्त निन्दनीय थी भी ; पर क्या कोई इस बातसे इन्कार कर सकता है कि यह घटना मुसलमानोंकी अनीतिकी प्रतिक्रिया थी ? आज किसी हिन्दू नेताका लड़का मुसलमान बनाया जा रहा है, तो कल किसी मुस्लिम नेताकी लड़की हिन्दू बनाई जायगी । धर्मान्धता और धूर्तताका ठेका किसी खास मजहबने तो ले नहीं रखा है । इस तरहकी खब्तुलहवासीसे हिन्दू-मुसलमानोंके दंगे होंगे, निर्दोष लोगोंके सिर फूटेंगे और जानें जायँगीं ।

हमारा यह दृढ़ विश्वास है कि हीरालालको अब्दुल्ला बनाकर मुसलमानोंने अपने पैरों कुल्हाड़ी मारी है ।

मुगल सम्राट् और देवनागरी लिपि

इस अंकमें हम अन्यत्र डाक्टर हीरानन्द शास्त्रीका ‘मुसलमान बादशाह और देवनागरी लिपि’ नामक एक महत्वपूर्ण लेख प्रकाशित कर रहे हैं ।

इस लेखमें सिक्कोंके सम्बन्धमें ही विचार किया गया है ; लेकिन सिक्कोंके और अन्य प्रमाणोंके अध्ययनसे हम एक और भी पाठ ग्रहण कर सकते हैं । मुसलमान सम्राटोंके सिक्कोंके लेखोंसे, महाराज मौर्य

अशोकके लेखोंसे (जो भारत-भरमें अनेक स्थलोंपर पाये गये हैं) तथा सीलोन (लंका) और तेयावल्लीके आसपासकी कन्दराओंमें पाये गये प्राचीन लेखोंसे (जिन्हें भारतीय पुरातत्त्व विभागने प्रकाशित कर दिया है), यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि पहले हिन्दुस्तान-भरमें एक सर्वसाधारण लिपि और भाषा प्रचलित थी, जिसका उपयोग हिन्दू ही नहीं, बरन् अन्य धर्मावलम्बी भी करते रहे और यह लिपि देवनागरी कही जा सकती है । मौर्यकालमें इसका रूप कुछ विलक्षण था अवश्य, परन्तु मूल एक ही था । जो लोग आज भारतमें एक भाषाका होना असम्भव समझते हैं, और इस बारेमें विवाद करनेको सदा तत्पर रहते हैं, उन्हें इतिहासके इस सबकको सामने रखकर सद्वुद्धिकी प्रेरणा स्वीकार कर लेनी चाहिए ।

गढ़वाल और हिन्दी-साहित्य

पार्वत्य-प्रदेशोंमें साहित्यिक जाग्रतिपर ‘विशाल भारत’में कई मास तक चर्चा चली थी । उन लेखों और पत्रोंके आधारपर हमने भी अपनी सम्मति प्रकट की थी । उस साहित्यिक चर्चापर गूढ़ विचार करनेपर हमें एक शंका हुई, और वह यह कि गढ़वालमें प्रकृति सुन्दरीके साम्राज्य होनेपर भी वहाँपर ऐसा कोई साहित्य-सेवी क्यों नहीं, जिसको गणना अखिल भारतवर्षीय साहित्य-सेवियोंमें हो । सर्वश्री ‘पहाड़ी’, ललिताप्रसाद नैथाणी और ललिताप्रसाद पाण्डेयने जिन साहित्य-सेवियोंके नाम गिनाये हैं, उनमें से कितने हैं, जिनकी गणना सूबेके साहित्य-सेवियोंमें हो सकती है ?

इस विषयमें हमने पं० श्रीराम शर्मासे आग्रह किया कि वे अपनी सम्मति भी लिखें । हर्षकी बात है कि वे गढ़वालकी साहित्यिक जाग्रतिपर लिखनेको राजी हो गये हैं । आगामी अंकमें उनका लेख निकलेगा ; पर हमारा आग्रह गढ़वालके नवयुवकोंसे है कि वे हमारे प्रश्नपर कुछ प्रकाश डालें ।

इटलीपर प्रतिबन्ध उठाये जायँ ?

ब्रिटिश पार्लामेन्टने यह निश्चय किया है कि इटलीके विरुद्ध जो आर्थिक प्रतिबन्ध लगाये गये हैं, वे उठा लिये जायँ। इंग्लैण्डके बहुतेरे पत्रोंने भी इसी बातका समर्थन किया है। अब जेनेवामें लीग आफ नेशन्समें इस प्रश्नका निपटारा होगा।

लेकिन इस बातमें सन्देह है कि लीग आफ नेशन्स अंगरेजोंके निर्णयके विरुद्ध कुछ कर सके। बात यह है कि जेनेवाकी लीग कहनेको तो सारे संसारके राष्ट्रोंकी संस्था है; लेकिन जाननेवाले जानते हैं कि वह महज अंगरेज और फ्रेंच राजनीतिज्ञोंके हाथकी कठपुतली है। अभी थोड़े ही दिन पहले ब्रिटिश परराष्ट्र-सचिव मि० एन्थोनी एडेनने कहा था कि हम प्रतिबन्ध लगाकर यह दिखला देना चाहते हैं कि युद्धका अस्त्र लाभदायक नहीं हो सकता। आज वही एडेन साहब प्रतिबन्ध उठाकर युद्ध-नीतिका परोक्ष समर्थन कर रहे हैं! यूरोपियन राजनीतिज्ञोंके कौलका कोई ठिकाना नहीं।

‘हिन्दी मिलाप’ का सत्साहस

लाहौरका दैनिक ‘हिन्दी मिलाप’ अब आठ पृष्ठका निकलने लगा है। उसके १६ जूनके अंकमें उसके सम्पादक तथा स्वामी श्री खुशहालचन्दजी लिखते हैं—

“ ‘हिन्दी मिलाप’ के प्रकाशित करनेमें मेरा जो प्रयोजन था, वह पूरा होता चला जा रहा है। मैंने इसे रुपया कमानेके लिए नहीं निकाला, न किसी विशेष आन्दोलन (Propaganda) के विचारसे

निकाला। ‘हिन्दी मिलाप’को सदा साम्प्रदायिक झगड़ोंसे अलग रखा गया है, किसी इलेक्शन-प्रचारके लिए भी इसका प्रयोग नहीं किया गया। यही कारण है कि आर्य—सनातनी—कांग्रेसी तथा हिन्दू सब-के-सब इससे सन्तुष्ट हैं। मेरा ध्येय हिन्दी-प्रचार है, तथा हिन्दू और देशके हितोंको सामने रखना है। बाईस हजार रुपया छै वर्षोंमें घाटा दे चुकनेपर मुझे यह सन्तोष है कि इसका उद्देश्य पूर्ण हो रहा है। पंजाबके माथेसे ‘हिन्दी घातक’ होनेका कलंक धुल चुका है, और हिन्दीका प्रसार नित्यप्रति बढ़ता ही चला जा रहा है। ‘हिन्दी मिलाप’ पहले ४ पृष्ठ था, फिर जनताकी भूल बढ़ी और इसे ६ पृष्ठका किया गया। अब इन ६ पृष्ठोंसे भी हिन्दी-प्रेमियोंकी सन्तुष्टि नहीं होती। अतएव आजसे अधिक सुन्दर आकारमें इसे ८ पृष्ठोंपर निकाला जा रहा है, और मेरी यह प्रवृत्ति इच्छा है कि यह पृष्ठ-संख्या शीघ्र ही १२ हो जाय।”

निस्सन्देह श्री खुशहालचन्दजीका उद्योग अत्यन्त प्रशंसनीय है। पंजाबमें हिन्दी-प्रचारका कार्य आसान नहीं है। हमें इस बातसे विलंकुल आश्चर्य नहीं हुआ कि संचालक महोदयको पिछले ६ वर्षमें इस पुण्य-कार्यमें २२ हजारका घाटा देना पड़ा है। दैनिक पत्रका निकालना दरवाजेपर हाथी बाँधनेकी तरह है, और उसे सफलतापूर्वक पाल-पोसकर बड़ा करना बड़ी हिम्मतका काम है। आशा है कि पंजाब-प्रान्तके राष्ट्र-भाषा-प्रेमी ‘हिन्दी मिलाप’ के अधिकाधिक संख्यामें ग्राहक बनकर उसके सम्पादक तथा संचालक और उनके सहयोगियोंका उत्साह बढ़ायेंगे। ‘हिन्दी मिलाप’ का वार्षिक मूल्य बारह रुपये हैं, और पता लाहौर।



विशाल भारत

“सत्यम् शिवम् सुन्दरम्”

“नाथमात्मा बलहीनेन लभ्यः”

भाग १८, अंक २]

भाद्र १९६३ :: अगस्त १९३६

[पूर्ण-अंक १०४.

जय राष्ट्रीय निशान !

जय राष्ट्रीय निशान !

जय राष्ट्रीय निशान !

जय राष्ट्रीय निशान !

फहर-फहर तू मलय पवनमें
लहर-लहर तू नील गगनमें
छहर-छहर जगके आँगनमें
सबसे उच्च महान !
जय राष्ट्रीय निशान !

कायरता, भीरुता भगा तू
वीरोंका अभिमान जगा तू
देश-प्रेममें हमें पगा तू
गायें जय-जय गान !
जय राष्ट्रीय निशान !

जय तक एक रक्त-कण तनमें
डिगें न तिल-भर अपने प्रणमें
हाहाकार मचावें रणमें
जननीकी सन्तान !
जय राष्ट्रीय निशान !

मस्तकपर दो शोभित रोली
बड़े शूर-वीरोंकी टोली
खेलें आज मरणकी होली
बूढ़े और जवान !
जय राष्ट्रीय निशान !

मनमें दीन दुखीकी समता
हममें हो मिटनेकी क्षमता
मानव-मानवमें हो समता
छिड़े एक ही तान !
जय राष्ट्रीय निशान !

तेरा मेरुदंड हो कर्मों
वज्र शक्ति वन व्यापे उरमें
स्वतन्त्रताके महासमरमें
दे दे जीवन-प्राण !
जय राष्ट्रीय निशान !

—सोहनलाल द्विवेदी

जवाहरलालजी और हिन्दी

श्री चन्द्रगुप्त विद्यालंकार

शायद पिछले फरवरी मासके अन्तिम सप्ताहकी बात है, कलकत्तेमें श्री हरि जी० गोविलके निवास-स्थानपर अनेक हिन्दी-प्रेमी एकत्र थे। उसी दिन सुबहके अखबारोंमें 'रूटर'का एक छोटा-सा तार छपा था, जिसमें लिखा था कि पं० जवाहरलाल नेहरूने लन्दनकी एक सभामें कहा है कि यदि संसारके अन्य देश भी सहमत हों, तो वे सहर्ष इस बातको स्वीकार कर लेंगे कि हिन्दुस्तान रोमनको अपनी राष्ट्रीय लिपि बना ले। हम लोग स्वभावतः इसी खबरको लेकर टीका-टिप्पणी कर रहे थे, और किसीको यकीन नहीं होता था कि पं० जवाहरलाल नेहरूके ये विचार हो सकते हैं; परन्तु एक सज्जनने बताया कि पंडितजी राष्ट्रीय दृष्टिसे हिन्दीके प्रश्नको उतना महत्त्व नहीं देते; मुमकिन है कि उन्होंने ऐसी बात कह दी हो। किन्तु अधिकांश सज्जन इसी रायके थे कि पंडितजीके लम्बे व्याख्यानको चार लाइनोंमें संक्षेप करके रूटरके संवाददाताने उनके भावकी रक्षा नहीं की होगी। उसी समय यह भी एक विचार पेश किया गया कि पंडितजीके भारत लौटते ही उनसे मिला जाय और लिपिके इस महत्त्वपूर्ण प्रश्नके सम्बन्धमें उन्हें अपने साथ सहमत करनेका प्रयत्न किया जाय।

परन्तु थोड़े ही दिनोंके बाद यह ज्ञात हो गया कि रूटरने सचमुच पंडितजीके साथ न्याय नहीं किया था। इससे वह बात आई-गई हो गई। मुझे नहीं मालूम कि इस सम्बन्धमें हिन्दी-प्रेमियोंका कोई डेपूटेशन पंडितजीसे कभी मिला या नहीं। इतना अवश्य जानते हैं कि जवाहरलालजी नागपुरके हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनमें शामिल हुए थे, और लिपि-सम्बन्धी चर्चामें शायद उन्होंने कोई विशेष दिलचस्पी नहीं दिखाई थी। पंडितजीके राजनीतिक तथा सामाजिक विचारोंसे प्रायः सहमत होनेके कारण मेरी यह आन्तरिक

इच्छा थी कि उनके लिपि-सम्बन्धी विचारोंको पूरी तरह जान सकूँ।

करीब एक माससे मैं गुलमर्ग (काश्मीर) आया हूँ, और जवाहरलालजीका आत्म-चरित मुझे यहाँ ही पढ़नेको मिला है। पंडितजीकी यह जीवनी, जहाँ तक मेरा खयाल है, किसी भी पाठकको प्रभावित किये बिना नहीं रह सकती। इसकी लेखनशैलीकी दाद पंडितजीके दुश्मन भी देनेको लाचार होंगे। अपनी इस जीवनीमें पंडितजीने भारतवर्षकी राष्ट्र-भाषा और राष्ट्र-लिपिके सम्बन्धमें भी अपने विचार विस्तारसे लिखे हैं। उनके विचारोंके विषयमें कुछ भी कहनेसे पूर्व उनका यहाँ निर्देश कर देना आवश्यक होगा। पंडितजीकी जीवनीके पचपनवें अध्यायके सम्बद्ध भागका अनुवाद मैं यहाँ दे रहा हूँ।

अपनी छोटी बहन कुमारी कृष्णाके विवाहका निमंत्रण करते हुए जवाहरलालजीने लिखा है—

“विवाहके लिए जो छोटा-सा निमन्त्रणपत्र हम लोगोंने छपवाया था, वह लैटिन अक्षरोंमें हिन्दोस्तानी भाषामें लिखा गया था। यह एक बिलकुल नई बात थी। अब तक इस तरहके निमन्त्रणपत्र प्रायः नागरी या फारसी लिपिमें ही लिखे जाते थे। फ्रॉज या ईसाई मिशनवालोंके अतिरिक्त अन्य कहीं भी हिन्दोस्तानी भाषा लैटिन अक्षरोंमें नहीं लिखी जाती थी। मैंने रोमन लिपि केवल परीक्षणके तौरपर प्रयोग की थी, और मैं देखना चाहता था कि लोगोंपर उसका क्या प्रभाव पड़ता है। इस बातको दोनों तरहसे लिया गया; परन्तु अधिकांश लोग इसके खिलाफ ही थे। बहुत थोड़े-से लोगोंके पास यह निमन्त्रणपत्र भेजा गया था। यदि निमन्त्रित लोगोंकी संख्या अधिक होती, तो निश्चय ही इस बातको और भी अधिक नापसन्द किया गया होता। गांधीजीने भी इसे पसन्द नहीं किया।

मैंने रोमन लिपि इसलिए इस्तेमाल नहीं की थी कि मैं उसके पक्षमें हो गया था, हालाँकि मैं बहुत समयसे उसकी ओर आकृष्ट हो चुका था। टर्की और मध्य-एशियामें रोमन लिपिकी सफलताने मुझे प्रभावित किया था। रोमनके पक्षमें जो दलीलें हैं, उनमें काफ़ी वज़न है। फिर भी मैं भारतवर्षके लिए रोमनके पक्षमें नहीं हो गया था। यदि मैं उसके पक्षमें हो भी गया होता, तब भी, मुझे ज्ञात था कि भारतवर्षमें रोमन लिपिके अपनाये जानेके अवसर ज़रा भी नहीं हैं। राष्ट्रीय, धार्मिक, हिन्दू, मुसलमान, नये, पुराने—सभी लोगोंकी ओरसे इसका घोर विरोध होगा। मैं अनुभव करता हूँ कि यह विरोध केवल भावुकतावश ही नहीं होगा। जिस भाषाका भूतकाल समृद्ध हो, उसकी लिपिमें परिवर्तन करना बहुत ही बड़ा परिवर्तन होता है, क्योंकि लिपि साहित्यका आन्तरिक भाग बन जाती है। लिपि बदल दो, शब्द-चित्रोंमें भिन्नता उत्पन्न हो जायगी, ध्वनि बदल जायगी, भाव बदल जायँगे। पुराने और नये साहित्यमें एक अनुलङ्घनीय दीवार-सी उठ खड़ी होगी। पुराना साहित्य एकदम किसी विदेशी भाषामें लिखा हुआ-सा जान पड़ने लगेगा—ऐसी भाषामें, जो मर चुकी हो। लिपि बदलनेका खतरा उसी भाषामें लेना चाहिए, जिसमें कोई विशेष महत्वपूर्ण साहित्य न हो। भारतवर्षमें इस तरहके लिपि-परिवर्तनकी कल्पना मैं नहीं कर सकता, क्योंकि हमारा प्राचीन साहित्य न केवल समृद्ध और मूल्यवान ही है, बल्कि वह हमारे इतिहास और हमारे विचारोंके साथ बँधा हुआ है और हमारे देशकी सर्वसाधारण जनताके जीवनके साथ बड़ी गहराईसे संयुक्त हो गया है। हमारे देशपर इस तरहके परिवर्तनको लादना एक क्रूर विच्छेदके समान होगा, और वह सार्वजनिक शिक्षाके मार्गमें बाधक बनेगा।

परन्तु रोमन लिपिकी बात तो अभी तक हिन्दुस्तानमें किसी भी रूपमें चली ही नहीं। मेरी

रायमें लिपि-सुधारकी दृष्टिसे हम लोगोंका अगला कदम संस्कृतकी चारों सन्तान-भाषाओंकी—हिन्दी, बंगाली, मराठी और गुजरातीकी—एक ही लिपि बनानेकी ओर होना चाहिए। इन चारों भाषाओंका उद्गम एक ही है, और इनमें अधिक अन्तर भी नहीं है। अतः इन सबकी एक ही लिपि बन जानेमें विशेष दिक्कत नहीं होनी चाहिए। इससे ये चारों बहन-भाषाएँ एक दूसरेके बहुत निकट आ जायँगी।

हमारे अंगरेज़ शासकोंने हमारे देशके सम्बन्धमें जो भ्रमपूर्ण बातें संसार-भरमें फैला रखी हैं, उनमें से एक यह भी है कि हिन्दुस्तानमें कई सौ भाषाएँ प्रचलित हैं—मुझे ठीक संख्या याद नहीं रही। गवाहीके लिए जनगणनाको लिया जा सकता है। यह एक विचित्र सत्य है कि इस देशमें आजीवन रहनेपर भी थोड़े-से ही अंगरेज़ इन सैकड़ों भाषाओंमें से किसी एक भाषाको अधिकचरे रूपमें जानते हैं। इन सब भाषाओंको वे 'वर्नाकुलर' नामसे पुकारते हैं, जिसका अर्थ है—गुलामोंकी भाषा (लैटिन Verna का अर्थ घरमें पैदा हुआ गुलाम है)। हममें से बहुतसे भारतीयोंने बिना समझे-बूझे इस नामकरणको स्वीकार कर लिया है। यह आश्चर्यकी बात है कि आजीवन इस देशमें रहकर भी यहाँकी भाषा अच्छी तरह सीखे बिना अंगरेज़ लोग अपना काम किस तरह चला लेते हैं? अपनी आया और खानसामोंकी मददसे उन्होंने एक नई तरहकी हिन्दोस्तानी ईजाद कर ली है, और उसीको वे इस देशकी वास्तविक भाषा समझे रहते हैं। जैसे वे भारतीय जीवनके सम्बन्धमें अपने अधीनस्थोंसे सच्चा-सूठा ज्ञान प्राप्त करते हैं, उसी तरह वे अपने घरेलू नौकरोंको इस देशकी भाषाके सम्बन्धमें प्रामाणिक उस्ताद मानते हैं, और उसी भाषासे अपना काम चलाते रहते हैं। मालूम होता है कि वे इस तथ्यसे पूर्णतः अपरिचित हैं कि हिन्दोस्तानी तथा अन्य भारतीय भाषाओंका साहित्य बहुत ऊँचा और बहुत विस्तृत है।

यदि भारतकी गणना-रिपोर्ट हमें यह बताती है कि इस देशमें कई सौ भाषाएँ प्रचलित हैं, तो जर्मनीकी गणनाएँ भी हमें बताती हैं कि वहाँ पचास या साठ भाषाएँ बोली जाती हैं। मुझे खयाल नहीं कि कभी किसीने इस तथ्यसे जर्मनीमें पारस्परिक फूट सिद्ध करनेका प्रयत्न किया हो। वास्तवमें गणनाओंमें तो छोटी-से-छोटी भाषाओंका भी जिक्र किया जाता है, चाहे इन भाषाओंको बोलनेवाले कुछ हजार ही व्यक्ति क्यों न हों। वैज्ञानिक विभेद दिखानेके लिए थोड़े-थोड़े अन्तरसे ही भाषाओंको भिन्न-भिन्न मान लिया जाता है। हिन्दुस्तानके क्षेत्रफलको देखकर मुझे तो ऐसा प्रतीत होता है, मानो यहाँ भाषाओंकी संख्या आश्चर्यजनक रूपसे कम हो। यूरोपमें आप इतने ही क्षेत्रफलको ले लीजिए। वहाँ आपको भाषाओंमें असाधारण भेद मिलेगा; परन्तु भारतवर्षकी व्यापक निरक्षरताके कारण यहाँ भाषाओंका ठोस विकास नहीं हो पाया और बोल-चालके ढंगोंमें भेद होता चला गया। बर्माको छोड़कर शेष भारतवर्षकी मुख्य भाषाएँ ये हैं—हिन्दोस्तानी (हिन्दी और उर्दू दो रूपोंमें), बंगाली, गुजराती, मराठी, तामिल, तेलुगु, मलयालम और कन्नड़ी। यदि इनमें आसामी, उड़िया, सिन्धी, पश्तो और पंजाबीको भी शामिल कर लिया जाय, तो कुछ पार्वतीय और जंगली हिस्सोंको छोड़कर शेष सम्पूर्ण भारतकी भाषाएँ इनमें आ जाती हैं। इनमें से भारती आर्य-भाषाएँ, जो उत्तर, मध्य और पश्चिम भारतमें प्रचलित हैं, आपसमें बहुत मिलती-जुलती हैं। दक्षिणकी द्रविड़ भाषाएँ यद्यपि भिन्न हैं, तथापि उनपर संस्कृतका बहुत प्रभाव पड़ा है और उनमें संस्कृत शब्दोंकी बहुतायत है।

इन आठों प्रमुख भाषाओंका अपना-अपना बहुमूल्य साहित्य है, और ये भाषाएँ देशके बहुत बड़े भागमें बोली जाती हैं। इनका क्षेत्र निश्चित और स्पष्ट है। इस तरह, बोलनेवालोंकी संख्याकी दृष्टिसे ये भाषाएँ संसारकी प्रमुख भाषाओंमें हैं। बंगाली बोलनेवालोंकी

संख्या पाँच करोड़ है। हिन्दोस्तानी, सभी रूपोंके समेत, बोलनेवालोंकी संख्या, मेरा खयाल है (मेरे पास यहाँ गणनाएँ मौजूद नहीं), चौदह करोड़ हैं।* इसके अतिरिक्त अन्य भाषा-भाषी प्रान्तोंमें भी प्रायः लोग हिन्दोस्तानी भाषाको समझ लेते हैं। ऐसी भाषाकी उन्नतिकी सम्भावनाएँ स्पष्टतः बहुत बड़ी हैं। हिन्दोस्तानीकी नींव संस्कृतपर है और पर्शियन प्रभाव भी उसपर है। इस तरह यह भाषा दो सम्पन्न स्रोतोंसे अपना शब्द-कोष ले सकती है, और अब अंगरेजीसे भी यह शब्द ले रही है। सिर्फ दक्षिणके द्रविड़ प्रान्तोंमें ही हिन्दोस्तानी एक विदेशी भाषाके समान प्रतीत होती है; परन्तु वहाँके लोग भी हिन्दोस्तानी सीखनेका गम्भीर प्रयत्न कर रहे हैं। दो वर्ष हुए (१९३२ में) मैंने दक्षिण-भारतकी एक हिन्दी-प्रचारिणी संस्थाकी संख्याएँ देखी थीं। इस संस्थाने पिछले चौदह बरसोंमें मदरास-प्रान्तके ५५०००० व्यक्तियोंको हिन्दी सिखाई है। एक ऐसी संस्थाकी ओरसे, जिसे सरकारी सहायता ज़रा भी नहीं मिल रही, यह कार्य बहुत ही विशिष्ट है। दक्षिण-भारतमें जो लोग हिन्दी सीख लेते हैं, वे स्वयं इस कार्यके प्रचारक-से बन जाते हैं।

मुझे इस बातमें ज़रा भी सन्देह नहीं कि

* हिन्दीके पक्षपोषक निम्न-लिखित संख्याएँ पेश करते हैं। मुझे नहीं मालूम कि ये संख्याएँ सन् १९३१ की गणनापर आश्रित हैं, या उससे पहले सन् १९२१ की गणनाओंपर। मेरा खयाल है कि ये सन् १९२१ की गणनापर आश्रित हैं। नई संख्याएँ और भी अधिक होंगी।

हिन्दोस्तानी (पश्चिमी हिन्दी, पंजाबी, राजस्थानी-सहित)

बंगाली	१३,६३,००,०००
तेलुगु	४,६३,००,०००
मराठी	२,३६,००,०००
तामिल	१,८८,००,०००
कन्नड़ी	१,८८,००,०००
उड़िया	१,०३,००,०००
गुजराती	१,०१,००,०००
	६६,००,०००

हिन्दोस्तानी ही भारतवर्षकी प्रचलित भाषा बनेगी। वस्तुतः बड़ी हद तक आज भी हिन्दोस्तानी ही हिन्दुस्तानकी भाषा बनी हुई है। इसकी उन्नतिमें ये दो मूर्खतापूर्ण भगड़े बाधक बने हुए हैं—नागरी या उर्दू लिपिका सवाल, और दोनों दलोंके इस सम्बन्धके गुमराह प्रयत्न कि हिन्दोस्तानीको संस्कृत-प्रधान बनाया जाय, अथवा फारसी-प्रधान। लिपिके सवालपर इतने भगड़े उत्पन्न हो जाते हैं कि इस समस्याको हल करनेका इसके अतिरिक्त और कोई उपाय ही प्रतीत नहीं होता कि नागरी और उर्दू दोनों लिपियोंको सरकारी तौरपर अपना लिया जाय, और लोगोंको इस बातकी आज्ञादी रहे कि वे चाहे जिस लिपिका प्रयोग करें। परन्तु भेद बढ़ानेवाली प्रवृत्तियोंको अनुत्साहित करनेका प्रयत्न अवश्य होना चाहिए और सामान्य व्यवहारमें बोली जानेवाली सरल भाषाके ढंगपर बीचकी साहित्यिक भाषाको उन्नत करनेकी कोशिश की जानी चाहिए। सार्वजनिक शिक्षाके साथ-साथ यह बात खुद-ब-खुद होती चली जायगी। वर्तमान समयमें मध्य-श्रेणीकी छोटी-छोटी टुकड़ियाँ साहित्यिक रुचि और शैलीकी निर्णायक बनी हुई हैं, और ये लोग अपने-अपने ढंगसे बहुत ही संकुचित हृदयके अनुदार और अपरिवर्तनवादी हैं। ये अपनी भाषाओंके निर्जीव प्राचीन रूपसे ही चिपटे रहना चाहते हैं, और अपने देशकी साधारण जनता तथा संसारके साहित्यसे इनका बहुत ही कम संसर्ग है।

हिन्दोस्तानीके फैलाव और विकासको भारतवर्षकी अन्य बड़ी भाषाओंकी समृद्धता और प्रयोगके मार्गमें न तो बाधक बनना चाहिए और न वह बाधक बनेगा ही। बंगाली, गुजराती, मराठी, उड़िया और द्रविड़ भाषाओंमें कुछ भाषाएँ अब भी हिन्दुस्तानीकी अपेक्षा अधिक जगमग और बौद्धिक दृष्टिसे सावधान हैं। ये भाषाएँ अपने-अपने क्षेत्रमें सरकारी भाषा और शिक्षाके माध्यम-रूपमें अवश्य रहनी चाहिए। केवल उन्हींके द्वारा साधारण जनतामें शिक्षा और संस्कृतिका प्रसार हो सकेगा।

कुछ लोगोंका खयाल है कि कभी अंगरेजी भारतवर्षकी प्रचलित भाषा बन सकेगी। यह बात मुझे एक असम्भव कल्पनाके समान प्रतीत होती है। ऊँचे दरजेकी पढ़ी-लिखी जमातके अतिरिक्त अंगरेजीको कोई नहीं अपनायेगा। भारतीय जनताको शिक्षित और संस्कृत करनेके साथ अंगरेजी भाषाका कोई सम्बन्ध नहीं। यह हो सकता है कि औद्योगिक, वैज्ञानिक और व्यापारिक कार्योंमें—विशेषकर अन्तर्राष्ट्रीय व्यवहारोंमें अंगरेजीका प्रयोग बढ़ता चला जाय, जैसा कि कुछ अंश तक आजकल भी है। संसारके विचारों और प्रगतियोंसे परिचित रहनेके लिए यह आवश्यक है कि हममें से बहुतसे लोग विदेशी भाषाओंको सीखें, और इस दृष्टिसे मैं यह पसन्द करूँगा कि हमारे विश्वविद्यालयोंमें अंगरेजीके अतिरिक्त फ्रेंच, जर्मन, रशियन, स्पेनिश, इटैलियन आदि भाषाओंकी शिक्षाको भी प्रोत्साहित किया जाय। अंगरेजीकी उपेक्षा करनेको तो मैं नहीं कहता; परन्तु यदि हम संसारके सम्बन्धमें अपना ज्ञान समतुलित रखना चाहते हैं, तो हमें अपनेको अंगरेजी तक ही सीमित नहीं रखना चाहिए। केवल अंगरेजीकी शिक्षाने हमारी मानसिक दृष्टिको अभीसे बहुत संकुचित बना दिया है, और हमारे बड़े-बड़े राष्ट्रीय पुरुष भी इस बातका अन्दाज़ा बड़ी कठिनतासे लगा सकते हैं कि अपने देशके सम्बन्धमें उनके दृष्टिबिन्दुपर अंगरेजी दृष्टिबिन्दुका कितना गहरा प्रभाव है।

परन्तु विदेशी भाषाओंके अध्ययनको हम चाहे कितना ही उत्साहित क्यों न करें, बाहरकी दुनियाके साथ हमारा सम्बन्ध अंगरेजीके द्वारा ही रहेगा। इसमें कुछ हर्ज भी नहीं है। अनेक पीढ़ियोंसे हम लोग अंगरेजी सीखनेका प्रयत्न कर रहे हैं, और इसमें हमें कुछ सफलता भी प्राप्त हो गई है। इस सब किये-करायेको मिटा देना मूर्खता होगी। इस लम्बी मेहनतसे हमें पूरा लाभ उठाना चाहिए। आज निस्सन्देह अंगरेजी संसारकी सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण और व्यापक भाषा है। वह अन्य भाषाओंपर अपना सिक्का

जमाती चली जा रही है। यह पूरी तरह सम्भव है कि अन्तर्राष्ट्रीय व्यवहारोंमें तथा रेडियो आदिके लिए अंगरेज़ीका प्रयोग बढ़ता ही चला जाय, यदि 'अमेरिकन' भाषा उसका स्थान न ले ले। इसलिए अंगरेज़ीके विस्तारको अवश्य जारी रखना चाहिए। हम अंगरेज़ीको जितनी अच्छी तरह सीख सकें, अच्छा है; परन्तु मुझे इस बातकी कोई उपयोगिता प्रतीत नहीं होती कि अंगरेज़ीकी वारीकियोंको सीखनेमें हम लोग अपना बहुत-सा समय और शक्ति लगा दें। हममें से बहुतसे लोग आजकल ऐसा ही कर रहे हैं। कुछ व्यक्ति तो ऐसा कर सकते हैं; परन्तु बहुसंख्याके सामने इसी बातको आदर्शके रूपमें रखना उनपर एक अनावश्यक बोझ डालना है; इससे उनकी दूसरी दिशाओंमें उन्नति नहीं हो सकती।

मुझे आधारभूत अंगरेज़ी (Basic English) ने बहुत समयसे खूब आकृष्ट किया है। और मुझे प्रतीत होता है कि अत्यधिक सरल बनाई हुई इस अंगरेज़ीका भविष्य बहुत उज्ज्वल है। स्टैण्डर्ड अंगरेज़ीकी शिक्षा हमें विशेषज्ञोंके लिए छोड़ देनी चाहिए और भारतवर्षकी सर्वसाधारण जनतामें इस 'बेसिक अंगरेज़ी'का ही व्यापक प्रचार करना चाहिए।

मैं स्वयं यह पसन्द करूँगा कि हिन्दोस्तानीमें अंगरेज़ी तथा अन्य विदेशी भाषाओंके बहुतसे शब्द ज़ब्त कर लिये जायें। इस बातकी ज़रूरत है, क्योंकि हमारी भाषामें अर्वाचीन पर्यायवाचियोंकी कमी है, और यही कहीं अच्छा है कि संस्कृत, फारसी या अरबीसे नये शब्द गढ़नेके बजाय हम उन्हीं शब्दोंका प्रयोग करें, जो अच्छी तरह प्रचलित हैं। भाषाकी पवित्रताके पक्षपाती इस तरह विदेशी शब्दोंके प्रयोगके विरोधमें हैं; परन्तु मेरा खयाल है कि वे ग़लती करते हैं। वास्तवमें किसी भाषाको समृद्ध बनानेका तरीका ही यही होता है कि उसे इतना लचकीला रखा जाय कि अन्य भाषाओंके भाव और शब्द उसमें खपकर उसीके बन जायें।

अपनी बहनके विवाहके बाद अपने मित्र और साथी शिवप्रसाद गुप्तसे मिलनेके लिए मुझे बनारस जानेका इत्फ़ाक हुआ। गुप्तजी एक वर्षसे अधिक अरसेसे बीमार थे। लखनऊ-जेलमें वे अर्द्धांगसे बीमार हुए थे, और उनकी बीमारी बहुत धीरे-धीरे दूर हो रही थी। बनारसमें मुझे एक छोटी-सी हिन्दी-साहित्य-समितिकी ओरसे अभिनन्दनपत्र दिया गया, और वहाँ मुझे उस समितिके सदस्योंसे मनोरंजक बातचीत करनेका अवसर मिला। मैंने उनसे कहा कि जिस विषयके सम्बन्धमें मेरा ज्ञान बहुत अधूरा है, उसपर कुछ भी कहते हुए मुझे भिन्नक मालूम होती है; परन्तु फिर भी थोड़े-से निर्देश मैंने उन लोगोंको दिये। आजकलकी हिन्दीमें जो गुथीली और अत्यधिक अलंकारमयी भाषा इस्तेमाल की जाती है, उसकी मैंने कठोर आलोचना की। उसमें कठिन, बनावटी और पुरानी शैलीके संस्कृत शब्दोंकी भरमार रहती है। मैंने उनसे कहा कि यह थोड़ेसे लोगोंके काम आनेवाली दरबारी शैली अब छोड़ देनी चाहिए और हिन्दी लेखकोंको अब यह प्रयत्न करना चाहिए कि वे भारतवर्षकी सर्वसाधारण जनताके लिए लिखें और ऐसी भाषामें लिखें, जिसे जनता समझ सके। जनताका संसर्ग उनकी भाषामें वह नया जीवन और वास्तविक ओजस्विता लायेगा, जिससे उनकी अनुभूति बढ़ जायगी, और वे अधिक अच्छा लिख सकेंगे। साथ ही मैंने कहा कि यदि हिन्दी-लेखक पाश्चात्य विचारों और पाश्चात्य साहित्यका अध्ययन करें, तो उससे उन्हें बड़ा लाभ होगा। इस दृष्टिसे यह अभीष्ट होगा कि यूरोपकी भाषाओंके अमर साहित्य तथा नवीन विचारोंके ग्रन्थोंका हिन्दीमें अनुवाद कर डाला जाय। मैंने यह भी कहा कि सम्भवतः वर्तमान बंगाली, गुजराती और मराठी, इन दृष्टियोंसे, वर्तमान हिन्दीसे अधिक उन्नत हैं, और यह तो निश्चित ही है कि पिछले बरसोंमें हिन्दीकी अपेक्षा बंगालीमें कहीं अधिक उत्पादक साहित्य लिखा गया है।

इन विषयोंपर हम लोग मित्रतापूर्ण बातचीत करते रहे और उसके बाद मैं चला आया। मुझे इस बातका खयाल भी नहीं था कि मेरी टिप्पणियाँ छापेमें दे दी जायँगी ; परन्तु किसी व्यक्तिने उसका वृत्तान्त हिन्दी अखबारोंमें छपवा दिया।

फिर तो मेरे खिलाफ़ और हिन्दीके सम्बन्धमें मेरी आलोचनाके खिलाफ़ हिन्दी अखबारोंमें भयंकर चिल्लाहट हुई। लोगोंको यह बात विशेष तौरसे अखरी कि मैंने हिन्दीको वर्तमान बंगाली, गुजराती और मराठीसे हीन क्यों कहा। मुझे अनजान—इस विषयमें मैं सचमुच था भी अनजान—कहा गया और मुझे कुचलने तथा दवानेके लिए बहुतसे कठोर शब्दोंका प्रयोग किया गया। मुझे इस वाद-विवादमें शामिल होनेकी फुरसत ही न थी ; परन्तु मुझे बताया गया है कि यह फ़ाड़ा महीनों तक चलता रहा—तब तक, जब तक मैं पुनः जेलमें नहीं चला गया।

यह घटना मेरे लिए एक नया ज्ञान देनेवाली थी। इससे मुझे हिन्दीके साहित्यिकों और सम्पादकोंका अत्यधिक छुईमुईपन ज्ञात हुआ। मुझे पता लगा कि वे लोग पूरे सद्भावसे की गई आलोचनाको भी नहीं सुन सकते। अपनेको छोटा समझनेकी बीमारी (Inferiority complex) यहाँ स्पष्ट रूपसे विद्यमान है। आत्म-पर्यवेक्षणका हिन्दीमें पूरा अभाव है, और आलोचनाका स्टैण्डर्ड बहुत ही नीचा है। लेखक और उसके आलोचकोंका एक दूसरेके व्यक्तित्वपर गाली-गलौज शुरू कर देना हिन्दीमें कोई असाधारण बात नहीं है। यहाँका सम्पूर्ण दृष्टिकोण बहुत ही संकुचित और दरबारी-सा है, और ऐसा प्रतीत होता है, जैसे हिन्दीके लेखक और सम्पादक सिर्फ़ एक दूसरेके लिए तथा एक बहुत ही छोटे-से दायरेके लिए लिखते हों। उन्हें भारतवर्षकी विशाल जनता और उसके हितोंसे सरोकार नहीं है। हिन्दीका क्षेत्र इतना विशाल और इतना आकर्षित करनेवाला है कि उसमें यह संकुचितता देखकर

मेरे हृदयमें अत्यधिक खेदकी भावना उत्पन्न हुई और हिन्दीके लेखकोंका प्रयत्न मुझे शक्तिके अपव्ययके समान जान पड़ा।

हिन्दी-साहित्यका भूत निस्सन्देह बहुत उज्ज्वल है ; परन्तु केवल उसीके बलपर वह जिन्दा नहीं रह सकता। मुझे यह निश्चित प्रतीत होता है कि हिन्दीका भविष्य भी अवश्य ही उज्ज्वल है, और मैं यह भी जानता हूँ कि हिन्दीके अखबार कभी इस देशमें महान शक्तिका रूप धारण लेंगे। परन्तु जब तक हिन्दीके साहित्यिक और हिन्दीके अखबार प्राचीन संकुचित दायरेसे बाहर नहीं निकलेंगे और वे अदम्य रूपसे जनताको सम्बोधन करना नहीं सीखेंगे, तब तक उनकी अधिक उन्नति नहीं हो सकेगी।”

हिन्दीके प्राचीन और वर्तमान साहित्यसे भले ही जवाहरलालजीका बहुत परिचय न हो ; परन्तु वे यह अच्छी तरह जानते हैं कि हिन्दी-साहित्य किस दिशामें अग्रसर होकर देशका कल्याण कर सकता है। हिन्दी किन उपायोंसे उन्नत तथा समृद्ध हो सकती है, इस सम्बन्धमें भी उनके निजी विचारोंका होना विलकुल स्वाभाविक है, और उन्हें यह पूरा अधिकार है कि वे अपने विचारोंको प्लेटफ़ॉर्म या प्रेस द्वारा प्रकट करें। परन्तु पंडितजी जब इस विषयपर खुले तौरसे अपने विचार प्रकट करते हैं, तो उन्हें अपने विचारोंकी आलोचना सुननेको भी तैयार रहना चाहिए—ऐसी आलोचना, जो पूरे सद्भावके साथ की गई हो।

बनारसवाली घटनाकी बहुत धुँधली स्मृति मेरे मानस-पटलपर है। मैंने उस चर्चामें किसी तरहकी दिलचस्पी नहीं ली थी और न उस सम्बन्धके अधिकांश लेख ही पढ़े थे ; परन्तु मैं इस बातको माननेके लिए तैयार नहीं हूँ कि तब सभी लोगोंने पंडितजीको ‘कुचलने और दवानेके लिए अत्यधिक कठोर शब्दोंका’ ही प्रयोग किया होगा। आखिर कुछ लोग तो ऐसे भी होंगे, जिन्होंने पूरे सद्भावके साथ पंडितजीके विचारोंसे अपनी असहमति प्रकट की होगी।

फिर साहित्यिकोंमें सहनशक्ति प्रायः स्वभावसे ही कम होती है। केवल हिन्दीमें ही नहीं, केवल इस देशमें ही नहीं, बल्कि संसार-भरमें। वे लोग छोटी-छोटी बातोंका अधिक तीव्रताके साथ अनुभव करते हैं। मेरी रायमें केवल उसी घटनासे पंडितजीको यह परिणाम निकाल लेना चाहिए था कि हिन्दीके सभी साहित्यिक और सभी अखबार बहुत ही संकीर्ण दृष्टिवाले हैं।

परन्तु मेरा खयाल है कि मुझे भी इस बातको अधिक तूल नहीं देना चाहिए। हिन्दीके लिए यह सचमुच महान सौभाग्यकी बात है कि पं० जवाहरलाल नेहरू-सा शक्तिशाली महापुरुष उसके पक्षपोषकोंमें है और उसकी अभिवृद्धि देखना चाहता है। पंडितजीने हिन्दीके साहित्यिकों और सम्पादकोंको जो निर्देश दिये हैं, वे काफी अंश तक मननीय और ग्राह्य हैं। और मेरा खयाल है कि पं० जवाहरलालजीको चाहे ज्ञात हो या न हो, हिन्दीके बहुतसे साहित्यिक स्वयं उन बातोंको अनुभव करते हैं, जो पंडितजीने लिखी हैं और उनपर आचरण करनेका प्रयत्न भी कर रहे हैं।

तथापि पं० जवाहरलालजीके उपर्युक्त विचारोंमें अनेक बातें अवश्य ही विवादास्पद हैं। पूरी सद्भावनाके साथ मैं यहाँ उनमें से कुछ बातोंकी आलोचना करनेका प्रयत्न करूँगा।

पहली बात उर्दू और हिन्दीको मिलाकर एक सरल हिन्दोस्तानी भाषा बनानेके सम्बन्धमें है। पंडितजीके शब्दोंमें “सामान्य व्यवहारमें बोली जानेवाली सरल भाषाके ढंगपर बीचकी साहित्यिक भाषाको उन्नत करनेकी कोशिश की जानी चाहिए। वर्तमान समयमें मध्य-ग्रेणीकी छोटी-छोटी टुकड़ियाँ साहित्यिक रुचि और शैलीकी निर्णायक बनी हुई हैं, और ये लोग अपने-अपने ढंगसे बहुत ही संकुचित हृदयके, अनुदार और अपरिवर्तनवादी हैं।”

मैं इस बातसे इनकार नहीं करता कि हिन्दी और उर्दूके बहुतसे (सभी नहीं) प्राचीन साहित्यिकोंका दृष्टिकोण काफी संकुचित है। हिन्दी या उर्दूके ये

प्राचीन ढंगके साहित्यिक अपनी-अपनी भाषाको प्रत्येक दृष्टिसे पूर्ण समझते हैं। उन्हें इस बातकी आवश्यकता ही प्रतीत नहीं होती कि उनकी भाषाको समृद्ध बनानेके लिए नये शब्दों, नये मुहाविरों और नई शैलीकी आवश्यकता है। इससे वे लोग अपरिवर्तनवादी बने हुए हैं। प्राचीन शैलीके इन साहित्यिकोंकी अपरिवर्तनशीलताका एक कारण खास ढंगका स्वाभिमान भी है, जिसे एकदम गहर्णीय बताना मेरी रायमें, कमसे कम, मुनासिब नहीं है। इस भावमें वह आंशिक अच्छाई भी है, जो विभिन्न पीढ़ियोंके साहित्यको एक दूसरेके साथ जोड़नेमें सहायक हुआ करती है।

मतभेदका असली बिन्दु तो ‘सामान्य व्यवहारमें बोली जानेवाली सरल भाषाके ढंगपर बीचकी साहित्यिक भाषाको उन्नत’ करनेवाली बात है। यह एक तथ्य है कि सामान्य दैनिक व्यवहारमें पाँच या छे सौसे अधिक शब्दोंका प्रयोग नहीं हुआ करता। अपठित ग्रामीणोंके दैनिक व्यवहारके शब्दोंकी संख्या तो इससे भी कहीं कम हुआ करती है। जवाहरलालजीने स्वयं अपनी जीवनीमें अंगरेजीके करीब आठ-दस हजार शब्दोंका प्रयोग किया होगा। मेरा जहाँ तक खयाल है, हिन्दीकी इतने ही सफ़्तोंकी किसी एक पुस्तकमें इतने शब्दोंका प्रयोग शायद ही कहीं मिले। इसका एक कारण है, और वह यह कि हिन्दीका शब्द-कोष वर्तमान युगके भाव-प्रकाशन (expressions) के लिए अभी तक बहुत अपूर्ण है। इस दशामें भी हिन्दीवालोंसे आशा यह की जाती है कि वे अपनी भाषाके सैकड़ों-हजारों शब्दोंका प्रयोग केवल इसी आधारपर छोड़ दें, क्योंकि भारतवर्षकी सर्वसाधारण जनता उन्हें नहीं समझ सकती। भारतवर्षकी अपठित जनता तो सिर्फ़ कुछ सौ शब्द ही समझती है, और वे लोग, जिन्होंने पाँच-सात जमातों तक हिन्दी या उर्दू पढ़ी है, एक हजारसे अधिक शब्दोंको नहीं समझते। इस दशामें हिन्दीके साहित्यिकोंसे यह उम्मीद क्यों की जानी चाहिए कि वे अपना सम्पूर्ण

भाव-प्रकाशन एक हजार शब्दोंसे ही किया करें।

अंगरेजीसे हिन्दी अनुवाद करनेका मुझे थोड़ा-बहुत अनुभव है, और मैं जानता हूँ कि हिन्दीमें शब्दोंकी कमीके कारण अनुवादकोंको कितनी दिक्कतें उठानी पड़ती हैं—विशेषकर मनोवैज्ञानिक भाव-प्रकाशनके लिए हिन्दीका शब्द-कोष बहुत ही अपूर्ण है। इस दशामें संस्कृतकी सहायतासे नये शब्द न गढ़े जायँ, तो किया क्या जाय ? जवाहरलालजीने सलाह दी है कि वर्तमान युगके भाव-प्रकाशनके लिए संस्कृत या उर्दूके शब्द-कोषसे सहायता न लेकर अंगरेजीके प्रचलित शब्दोंको व्यवहारमें लाना चाहिए। जहाँ तक सर्वसाधारणके काममें आनेवाले अंगरेजी शब्दोंका सम्बन्ध है, मैं पंडितजीसे पूर्णतया सहमत हूँ। आखिर मोटर, स्टेशन, रेल, प्लेटफार्म, टिकट आदि शब्द हिन्दीमें प्रयुक्त हो ही रहे हैं ; परन्तु यह स्मरण रखने योग्य बात है कि भारतवर्षमें अंगरेजी राज्यकी स्थापना हुए एक सदीसे ऊपर बीत जानेपर भी हिन्दी, उर्दू अथवा इस देशकी किसी अन्य प्रान्तीय भाषामें अंगरेजीके १०० से अधिक शब्द प्रवेश नहीं पा सके। यानी हिन्दी एक वर्षमें औसतन अंगरेजीका एक शब्द भी पचा नहीं सकी। इस दशामें क्या कभी यह मुमकिन है कि अंगरेजीके सैकड़ों-हजारों नवीन युगके पर्यायवाची, जिनके लिए प्रचलित हिन्दीमें शब्द मिलने सचमुच कठिन है, कभी हिन्दी या हिन्दोस्तानीके भाग बन सकेंगे ?

एक उदाहरण लीजिए। अंगरेजीके idiocracy, sensitiveness, moody, touchy, temper आदि शब्दोंके लिए साधारण बोलचालकी हिन्दीमें उपयुक्त शब्द पर्याप्त संख्यामें नहीं मिलेंगे। क्या जवाहरलालजीकी रायमें अंगरेजी शब्द कभी हिन्दीमें, इसी रूपमें, खप सकेंगे ? यदि आप मनोवैज्ञानिक भाव-प्रकाशनके लिए अंगरेजी शब्द ले सकते हैं, तो मैं समझता हूँ कि भाषा और लिपिके क्षेत्रमें आप चाहे जो परिवर्तन निस्संकोच होकर कर सकते हैं। यह स्पष्ट

है कि यह असम्भव है। इस दशामें यह स्वाभाविक ही है कि ये नये शब्द संस्कृत या फारसीसे गढ़े जायँ।

अब सवाल रहा संस्कृत और फारसीका। जो शब्द बोलचालकी भाषामें व्यवहार किये जाते हैं, उनकी जगह खामखाह ऐसे कठिन संस्कृत और फारसी शब्दोंका प्रयोग करना, जिन्हें सर्वसाधारण जनता न समझ सके, सचमुच मूर्खता है ; परन्तु मेरा तो खयाल है कि यदि हमें अपनी भाषाको सचमुच संसारकी समृद्ध भाषाओंके मुकाबलेमें खड़ा करना है, तो हमें न केवल संस्कृत और उर्दू ही से, बल्कि प्रान्तीय भाषाओं तथा कुछ अंश तक विदेशी भाषाओंसे भी शब्दोंकी एक बहुत बड़ी संख्या अपनानी पड़ेगी ; परन्तु अधिक शब्द संस्कृतसे ही लिये जायँगे।

मेरे पास यहाँ संख्याएँ मौजूद नहीं हैं ; परन्तु मेरा खयाल है कि हिन्दीमें कुल मिलाकर ६०,००० से अधिक शब्द नहीं हैं।* उर्दूके सम्पूर्ण शब्दोंकी संख्या इससे भी कम है। भारतवर्षकी अन्य प्रान्तीय भाषाओंका भी लगभग यही हाल है। उधर अंगरेजीके कुल शब्दोंकी संख्या ४,००,००० से ऊपर है। हाँ, संस्कृतमें कुल मिलाकर ३,००,००० धातुएँ (Root meanings) हैं, जिनसे चाहे जितने शब्द गढ़े जा सकते हैं। इतने शब्द, जिनकी संख्याका अन्दाज़ा भी नहीं लगाया जा सकता।

भारतवर्षकी चार प्रमुख भाषाओंका स्रोत संस्कृत है। इन चारों भाषाओंको बोलनेवालोंकी संख्या २३ करोड़ है। उधर दक्षिणकी भाषाओंपर भी, जिनके बोलनेवालोंकी संख्या ४ करोड़से ऊपर है, संस्कृतका बहुत गहरा प्रभाव है। भारतवर्षकी संस्कृति और साहित्यसे संस्कृतका अटूट और अमर सम्बन्ध है। इस दशामें क्या यह मुनासिब नहीं कि मुख्यतया संस्कृतसे ही सहायता लेकर हम लोग हिन्दीके शब्द-कोषको समृद्ध करें।

उर्दू और फारसीके शब्दोंको हिन्दी या हिन्दोस्तानीमें अपनानेके मैं खिलाफ नहीं हूँ। उर्दूके ६० प्रतिशत

* 'हिन्दी शब्दसागर' में ६३,११५ शब्द हैं। —सं०

शब्द इस समय भी हिन्दीमें प्रयुक्त होते हैं। यदि उर्दूमें जान-बूझकर फारसी और अरबीसे नये शब्द गढ़नेका प्रयत्न न किया जाय, तो उर्दू और हिन्दीके पृथक्-पृथक् रहनेकी समस्या ही बाकी न रहे।

हाल ही में हम लोगोंने लाहौरमें एक हिन्दोस्तानी सभाकी स्थापना की है। प्रान्तके हिन्दी, उर्दू और पंजाबीके अनेक प्रसिद्ध-प्रसिद्ध लेखक इस सभामें दिलचस्पी ले रहे हैं। इस सभाके तीन प्रधान मन्त्रियोंमें हिन्दीके प्रतिनिधि-रूपसे मुझे चुना गया है। पिछले तीन महीनोंमें, इस सभाके सम्पर्कमें आकर, मुझे जो नये अनुभव हुए हैं, वे यहाँ विस्तारके साथ नहीं लिखे जा सकते। उनका संक्षेप इतना ही है कि हमारे देशकी व्यापक साम्प्रदायिकताकी विषैली मनोवृत्ति ही उर्दू और हिन्दीके एकीकरणमें सबसे बड़ी बाधा बनी हुई है। राजनीतिक चालोंका प्रभाव साहित्यपर भी पड़ रहा है—कम-से-कम भाषाओंके विकासपर तो उसका प्रभाव बहुत ही गहरा होता है, और यह खेदकी बात है कि मुसलमान भाइयोंमें यह साम्प्रदायिक प्रवृत्ति और भी अधिक है।

भारतवर्षकी लाखों-करोड़ों निरक्षर जनता तो हिन्दी-साहित्यकी रक्षा और अधिवृद्धि, चाहे वह बहुत सीमित और छोटे रूपमें ही हो, कर ही नहीं सकती थी। अंगरेजी हुकूमतके प्रभावसे इस देशकी धनी और दिमागी समझी जानेवाली जमातें अंगरेजीकी ओर आवृष्ट हो गईं, और उन्होंने हिन्दीको समृद्ध करनेका प्रयत्न प्रायः बिलकुल नहीं किया। इस दशामें मध्यवर्गकी जो थोड़ी-सी जमातें, अपनी शक्ति और सामर्थ्यके अनुसार, हिन्दी-साहित्यको जीवित रखनेका प्रयत्न कर रही हैं, उनको एकदम हीन और तिरस्करणीय समझना और संसार-भरके पाठकोंके सामने उन्हें इसी रूपमें पेश करना, मेरी रायमें कम-से-कम ऐसी चीज नहीं है, जिसपर नाज किया जा सके।

लेख लम्बा हो रहा है, इससे सिर्फ एक ही बात और। पंडितजीने हिन्दीके लेखकोंको सलाह दी है

कि 'वे सर्वसाधारण जनताके लिए लिखें और ऐसी भाषामें लिखें, जिसे जनता समझ सके। जनताका संसर्ग उनकी भाषा और शैलीमें नई ओजस्विता लायेगा और वे अधिक अच्छा लिख सकेंगे।' अगर मैं गलती नहीं करता, तो नागपुरकी भारतीय साहित्य-परिषदमें भी जवाहरलालजीने इसी आशयका एक प्रस्ताव उपस्थित किया था।

इसमें सन्देह नहीं कि भारतवर्षको ऐसे लेखकोंकी आवश्यकता है, जो इस देशके रूसो और वाल्टेयर सिद्ध हों। जो हमारे देशमें जागृत्तिकी रूढ़ फ्रँक दें। जिनके कलममें इतना जोर हो कि उसके सम्मुख इस देशके सामाजिक, राजनीतिक और धार्मिक बन्धन टूट-फूटकर गिर जायें। परन्तु क्या राजनीतिक नेताओंकी इस तरहकी अपीलसे कभी रूसो और वाल्टेयरका जन्म हो सकता है? इसे भी जाने दीजिए। साहित्य-जैसी व्यापक चीजको सिर्फ एक उद्देश्यके लिए बाँधकर क्या आप उसे निर्वल और सीमित नहीं बना देंगे? जो लिखे, वह सर्वसाधारण जनताके लिए लिखे और ऐसी भाषामें लिखे, जिसे साधारण जनता समझ सके, यह स्थापना क्या उपहासास्पद नहीं है? यह तो ठीक है कि साहित्यकी अपील सार्वभौम होनी चाहिए, और वह होती भी सार्वभौम ही है। भवभूतिने सीताकी छायामूर्तिका जो वर्णन 'उत्तररामचरित'में किया है, वह किसी भी काल या देशके मनुष्यके हृदयमें करुणाके भाव पैदा कर सकता है, वशतें कि वह मनुष्य अपना मानसिक विकास इस हद तक कर चुका हो कि वह उसे समझ सके, अनुभव कर सके। कालिदासका 'मेघदूत' इस बातका और भी श्रेष्ठ उदाहरण है। संसारकी अधिकांश अमर-साहित्यिक कृतियाँ किसी खास उद्देश्यको लेकर नहीं लिखी गईं। मुझे विश्वास है कि तुर्गेनेव जैसे महान कलाकारके प्रशंसक जवाहरलालजी इस बातको मेरी अपेक्षा बहुत अच्छी तरह समझते होंगे।

पंडित जवाहरलालजीकी इस बातसे मुझे 'विशाल भारत'के सम्पादक बनारसीदासजी चतुर्वेदीका

वह लेख याद आ गया, जो करीब दो वर्ष पूर्व उन्होंने 'कस्मै देवाय ?' शीर्षकसे 'विशाल भारत'में लिखा था। चतुर्वेदीजीने भी उस लेखमें इसी तरहके भाव खूब विस्तारके साथ प्रकट किये थे। हिन्दीमें तब इस विषयको लेकर खासा विवाद उठ खड़ा हुआ था, इसलिए इस सम्बन्धमें अधिक विस्तारके साथ लिखनेकी आवश्यकता नहीं प्रतीत होती।

यह एक तथ्य है कि राजनीतिक दृष्टिसे रूसो और वाल्टेयरकी चाहे जितनी भी महत्ता क्यों न हो, साहित्यमें, संसारका साहित्य तो एक ओर रहा, फ्रांसके साहित्यमें भी, उनका स्थान सबसे पहला नहीं है। एक खास तरहके साहित्यको पैदा करनेका उपाय यह नहीं है कि हम सभी साहित्यिकोंको एक ही लाठीसे हाँककर एक ही दिशाकी ओर बढ़नेका हुक्म दें।

साहित्यको विधाताका यह वरदान प्राप्त है कि उसमें 'डिक्टेटरशिप' नहीं चल सकती। वह सदा

स्वाधीन, स्वच्छन्द और निर्लिप्त बनकर रहेगा। मुझे विश्वास है कि पं० जवाहरलालजी भी साहित्यमें डिक्टेटरशिप नहीं लाना चाहते। साहित्यको केवल प्रचारका साधन भी वे नहीं बनाना चाहते होंगे; परन्तु हिन्दी या हिन्दोस्तानीके सम्बन्धमें लिखे गये उनके विचारोंसे यह प्रतीत होता है कि हिन्दी-जैसी व्यापक भाषामें लिखे गये साहित्यसे जनसाधारणमें कोई विशेष जागृति होती हुई न देखकर वे खीज उठे हैं। उनकी यह खीज निस्सन्देह अभिनन्दनीय है, बशर्ते कि वे साहित्यके अन्य पहलुओंके प्रति उपेक्षा या अप्रतिष्ठा प्रकट न करें।

हिन्दीके साहित्यिकों और अखबारनवीसोंके सम्मुख जो बड़ी-बड़ी दिक्कतें हैं, राष्ट्रपति जवाहरलालजी यदि उनका सहानुभूतिपूर्वक अध्ययन करेंगे, तो उनके हृदयमें हिन्दीके साहित्यिकोंके प्रति रोष या अवज्ञाके भाव उत्पन्न न होंगे।

नारी-निर्यातन

स्वर्गीय रवीन्द्रनाथ मैत्र

सोमेन्द्र चौधरी कलकत्ता-यूनिवर्सिटीमें पाँचवें वर्ष (एम० ए० प्रीवियस) का अंगरेज़ीका छात्र और 'जीवनांक संघ' का सभापति है। संघका मक़ूल था कि मनुष्यका समूचा जीवन एक विशाल नाटक है; प्रत्येक दिन उसका नया दृश्यपट है और प्रत्येक मानव मानवी उसके नट या नटी। आहारमें, विहारमें, हरएक विषयमें, हरएक बातमें इसी नाटकीय अनुभूतिको प्राप्त करना ही मानव-जीवनका चरम लक्ष्य है। चटक इसी संघका 'पैट्रन' (संरक्षक) था। चटकने कुछ पेसा भी दिया था; लेकिन अचानक सोमेन्द्रने एक ऐसा कार्य कर डाला, जो संघकी नीतिके विरुद्ध था। नतीजा यह हुआ कि 'जीवनांक संघ' का जीवनान्त हो गया, चटक और सोमेन्द्रमें बन्धु-विच्छेद हुआ और

भविष्यमें सोमेन्द्रके इस दुष्कर्मका फल फलनेपर क्या-क्या होगा, कौन जानता है? खैर, जो होना होगा, इस समय उसके लिए चिन्ता करनेसे कुछ फ़ायदा नहीं। जो कुछ हुआ, वह संक्षेपमें लिखे देता हूँ। यह कहानी भी हो सकती है, उपन्यास भी हो सकता है और यदि इतिहास भी हो जाय, तो ताज्जुब नहीं।

सोमेन्द्र विचारोंमें चटकका शिष्य और लड़कपनका मित्र था। थर्ड क्लासमें पढ़ते समयसे ही वह चटकके साथ बाक़ायदा थियेटर और सिनेमा देखता फिरता था। उसने प्रतिज्ञा की थी कि वह कभी विवाह न करेगा। यदि हॉलीवुडकी भी कोई सुन्दरी आकर पाणि प्रार्थना करे, तो भी नहीं। सोमेन्द्रकी भाभी और नानी दोनोंने ही कई बार बाबा ताड़कनाथकी मनौती मानी;

किन्तु सोमेन्द्रके निश्चयमें परिवर्तन न हुआ। फिर भी एक बार नानीने ज़बरदस्ती करके सोमेन्द्रको एक लड़की देखनेके लिए भेजा था; किन्तु उसका नतीजा अच्छा न निकला।

वात यह हुई कि एक दिन रातको सोमेन्द्र मुगल थियेटरमें 'जहाँगीर' का अभिनय देखकर जो घर लौटा, तो देखा कि बरामदेमें लेटी हुई अनारो महरी झपकी ले रही है। सोई हुई अनारोको देखकर सोमेन्द्र सलीमके भावोंमें डूब गया। रेलिंगपर भार देकर और दाहना हाथ उठाकर वह कह उठा—“यह क्या वही अनारकली है? बचपनमें जिसके साथ—अनारकली! अना—”

अनारो महरीकी अचानक नींद टूट गई, और वह चीख उठी। नानी राम-राम जपना भूलकर दौड़ पड़ी। भाभीने रो-रोकर सोमेन्द्रके सिरपर पानी डाला। दूसरे दिन भाभी और नानी दोनोंने सलाह करके उपवास करना शुरू किया। इस सत्याग्रहसे मजबूर होकर सोमेन्द्रको बागवाज़ारके रामगोपाल बाबूके घर लड़की देखने जाना पड़ा। भीतर-भीतर विवाहकी बातचीत भी चल रही थी। लड़की सज्जधकर जैसे ही आकर खड़ी हुई, वैसे ही सोमेन्द्रने उसका बायाँ हाथ जोरसे पकड़कर 'कच-देवयानी' नाटकके कचकी भाँति कहा— “मैं हूँ ब्रह्मचर्य व्रतधारी,

पतिके योग्य नहीं सुकुमारी।”

लड़की बेचारी थरथर काँपने लगी, पीड़ासे अथवा लज्जासे यह नहीं जानता। लड़कीका भाई अविनाश हाँ-हाँ करके दौड़ पड़ा; लेकिन बी० ए० में फर्स्ट क्लास फर्स्ट होनेवाले सोमेन्द्र चौधरीके शरीरमें हाथ लगानेका साहस सेकेण्ड-इयर फेल लड़केको न हुआ। सोमेन्द्र सहसा तेज़ीसे बाहर निकला और कूदकर ट्रामपर सवार हो गया। घर पहुँचकर वह नानी और भाभीको धमकाने लगा कि इसके बाद घरमें अगर कोई उसके विवाहकी बात उठायेगा, तो वह गंगा-किनारे निष्क्रियानन्द मठमें जाकर संन्यास ले लेगा।

नानीने बत्तीस ढाँतोंमें बचे हुए आगेके दो ढाँतोंसे जीभ काटकर कहा—“राम! राम! वेटा! ऐसी बात न कहो।” सोमेन्द्रने पढ़नेके कमरेका दरवाज़ा जोरसे बन्द करते हुए कहा—“कहूँगा, कहूँगा, हजार बार कहूँगा! आकाशमें चाँद-तारे साक्षी हैं! स्वर्गमें मेनका-उर्वशी साक्षी—” और सुनाई न दिया। खिड़की भी बन्द हो गई। रसोईघरमें बैठी हुई भाभी 'चन्द्रकान्ता' के खुले हुए पृष्ठपर मुँह रखकर फूट-फूटकर रोने लगी। इसके बाद घरमें सोमेन्द्रके विवाहका प्रसंग एकदम वर्जित हो गया।

यहाँ तक हुई भूमिका।

- २ -

अब कहानीकी पारी है।

उस दिन आषाढ़का पहला दिन था। नये बादलोंसे छाया हुआ नीला आकाश ऐसा दीखता था, मानो किसी तरुणीके अंगोंमें लिपटी हुई गहरी नीली साड़ीका आँचल। विजली ऐसे चमकती थी, जैसे उस आँचलमें टँकी हुई गोटा-किनारी। आकाशमें मेवोंका गर्जन, नीचे ट्रामकी घरघर और गलीकी मोड़-मोड़पर चना जोर गरमवालेकी लगातार आवाज़। सोमेन्द्र एक ठोंगे (कागज़के लिफाफे) में चना जोर गरम लेकर बसपर सवार हुआ। दस बजेवाली बस। मुसाफिरोंसे खचाखच भरी हुई। पीछेकी बेंचपर एक कोनेमें थोड़ी-सी जगह निकालकर सोमेन्द्र बैठ गया। बस चलते-चलते रुक गई। हाथमें किताबें और कापियाँ दावे सवार हुई एक अष्टादश वर्षीया युवती। गाड़ी-भरके तमाम यात्रियोंने एक बार गर्दन घुमाकर देखा, केवल सोमेन्द्रने निर्विकार भावसे देखा। लड़की एक बार इधर-उधर देखकर सोमेन्द्रके पास आ खड़ी हुई और लोलुप दृष्टिसे सोमेन्द्रके पास रखे हुए पुस्तकोंके ढेरको देखने लगी। किताबें उठा लेनेसे युवतीके बैठनेको जगह हो सकती है; किन्तु इतने पास! घृणासे सोमेन्द्रके शरीर-भरके रोंगटे खड़े हो गये। वह

किताबें लेकर उठ खड़ा हुआ और गाड़ीकी दीवारसे पीठ टिकाकर खड़ा हो गया। तरुणी बैठ गई और बोली—“थैंक्स ! कहाँ जा रहे हैं ?”

सोमेन्द्रने हाथकी किताबोंको निर्दयतासे दबाकर कहा—“भाड़में !”

तरुणीने मुस्कराकर कहा—“वह (भाड़) शायद आशुतोष विल्डिंगमें* है।”

सोमेन्द्रने निर्विकार भावसे कहा—“हाँ !”

तरुणी बोली—“चलिये, मैं भी वहीं चलती हूँ।”

सोमेन्द्रने कहा—“थैंक्स !”

दोनों एक ही क्लासमें पढ़ते हैं, एक दूसरेकी शक्ल भी देखी है ; लेकिन बातचीत आज ही पहले-पहल हुई।

कमलाने भी फर्स्ट क्लासमें बी० ए० पास किया था ; लेकिन वह सोमेन्द्रसे दो सीढ़ी नीचे थी। सोमेन्द्रके साथ बातचीत करनेकी इच्छा उसकी बहुत दिनोंसे थी, इसलिए कि पढ़ने-लिखनेमें सुभीता होगा। लेकिन सोमेन्द्रके स्वभाव और रंग-ढंगकी बातें सुनकर वह अब तक उसके पास नहीं फटकी थी। आज घटनावश परिचय हो जानेसे वह खुश हुई, साथ ही सोमेन्द्रको पहचान भी गई।

बससे उतरकर सोमेन्द्र दनदनाता हुआ सीढ़ियाँ चढ़ने लगा। ऊपर पहुँचते ही देखा कि दरवाजेके पास कमला खड़ी है ! वह लिफ्टसे चढ़ी थी। सोमेन्द्रको देखते ही उसने चना जोर गरमका ठोंगा बढ़ाते हुए कहा—“लीजिए ! इसे तो आप बसपर ही छोड़ आये थे।”

घनिष्टता बढ़ानेकी इस असंगत चेष्टाको देखकर सोमेन्द्र विगड़ उठा, बोला—“नहीं चाहिए। ले जाइये, टिफिन कीजिएगा।”

कमलाने कहा—“थैंक्स !”

और पाँच-सात मिनट बादकी बात है। सोमेन्द्र

ध्यान लगाये कुछ लिख रहा था, कमलाने पीछेसे आकर कहा—“जरा अपनी पेंसिल दीजिएगा ?”

सोमेन्द्रने एक बार सिर उठाकर देखा, फिर मन ही मन दाँत किचकिचाकर जेबसे एक पैसा निकालकर डेस्कपर फेंक दिया और कहा—“जाकर खरीद लीजिए।”

कमलाने पैसा उठाकर कहा—“थैंक्स।”

उसके बाद चार बजेके वक्त। सोमेन्द्र लाइब्रेरीमें बैठा Apologia के एक नये संस्करणसे नोट लिख रहा था ; कमला आई और सोमेन्द्रके सामने खुली हुई किताबपर एक पैसा फेंककर बोली—“चना जोर गरमका पैसा।”

किताबपर जोरसे घूँसा मारकर सोमेन्द्रने आगेके दाँतोंसे ओठ चबाते हुए कहा—“डै—”

शब्द पूरा होनेके पहले ही अचानक सामने प्रोफेसर जयगोपाल आ पड़े, उन्हें देखते ही उसने जल्दीसे कहा—“एँक्स।”

पीछेसे कमलाने धीमी आवाज़में कहा—“डैँक्स !” और हँसकर बाहर निकल गई।

सोमेन्द्रको सामनेकी किताबके अंगरेज़ी अक्षर चीनी लिपि-जैसे जान पड़ने लगे। फिर उस दिन और नोट लिखना न हो सका।

शामको नानी और भाभीने छतपर आकर देखा कि सोमेन्द्र, ‘दुर्गेशनन्दिनी’ के क़ैदखानेमें बन्द जगत सिंहकी भाँति, इधर-से-उधर टहल रहा है और कह रहा है—“कमला, गमला, हमला, तबला—हूँ ! हूँ !”

लेखकने समझा कि इस वेचैनीका कारण है छन्दमें तुक मिलानेकी कठिनाई ; नानीने समझा कि उनके नातीका मन कमला नीवू (नारंगी) खानेके लिए चला है ; और भाभीने समझा कि कमला किसीका नाम है। नानी और भाभी बिना कुछ कहे-सुने धीरेसे नीचे उतर गई ; लेकिन मैं ठहरा लेखक, इसलिए बाध्य होकर,—कहानी समाप्त करनेके लिए मैं अशरीरी अवस्थामें सोमेन्द्रके साथ रह गया। कोई घंटा-भर

* कलकत्ता-यूनिवर्सिटीमें एम० ए० की पढ़ाई आशुतोष विल्डिंगमें होती है।

बाद मैंने देखा कि संसारके सारे अशिष्ट और खराब शब्दोंके अन्तमें 'ला' जोड़कर और कमलाका नाम संयुक्त करके एक लम्बी कविता रची गई है।

इस प्रकार बदला चुकाकर सोमेन्द्रने आराम-चौकीपर लेटकर आरामकी एक लम्बी साँस ली।

- ३ -

दूसरे दिन।

प्रोफेसरके आनेमें देरी थी। जिस बेंचपर कमला अपनी सहपाठिनोंके साथ बैठती थी, सोमेन्द्र अनजानमें रह-रहकर क्रुद्ध दृष्टिसे उसीकी ओर देख रहा था। इतनेमें दाहनी ओरसे किसीने पूछा—“आज कैसा मिजाज है सोमेन्द्र बाबू?” सोमेन्द्रने नज़र उठाकर देखा, कमला! कमरेमें लड़के भरे हुए थे, इसलिए वह विगड़ न सका। पिछली शामको बनाई हुई कविताका कागज़ कमलाके हाथमें देकर बोला—“यह आपका है, ले जाइये।” कमला चली गई और चलते वक्त कह गई—“डैंक्स!” सोमेन्द्र मन-ही-मन आगबवूला होने लगा।

कमलाको अपने परिहासका उपयुक्त उत्तर मिल गया, इसी खुशीमें उस दिन सोमेन्द्र सिनेमा देखने गया। वहाँसे लौटते ही भाभीने एक चिट्ठी दी—खूब लम्बा-चौड़ा लिफाफा। सोमेन्द्रने तितल्लेपर अपने कमरेमें जाकर चिट्ठी खोली; लिखा था—

“डैंक्स फार योर कम्प्लिमेंट्स (आपकी प्रशंसाके लिए धन्यवाद) ! मुझे दुःख है कि मैं तसवीर बनाना तो जानती हूँ; किन्तु कविता रचना नहीं जानती इसीलिए—इति। कमला।”

मोटे चौकोर आर्ट पेपरपर लिखे हुए इन दो तीन वाक्योंको पढ़कर सोमेन्द्रने चिट्ठी जो पलटी, तो देखा कि उसकी पुश्तपर एक तसवीर बनी है, चेहरा हूबहू सोमेन्द्रका है, हाथमें किताबें हैं और सिरपर चना ज़ोर गरमका ठोंगा; नीचे लिखा है, ‘श्रीयुत चना ज़ोर चौधरी।’ निर्लज्जा नारी! पास होती, तो भौंटा पकड़कर

ऐसे दो घूँसे लगाता। सोमेन्द्र हवामें घूँसा चलाने लगा। किसकी चिट्ठी आई है, यह जाननेके लिए भाभी आकर खिड़कीसे देख रही थीं। उन्होंने पूछा—“देवरजी! किसे घूँसा मार रहे हैं?” उठे हुए घूँसेको जल्दीसे पाकेटमें छिपाकर सोमेन्द्रने कहा—“परेशान मत कीजिए, मैं कसरत कर रहा हूँ।”

भाभीने कहा—“डम्बल कहाँ हैं?”

पाकेटसे हाथ निकालकर मुट्ठी बाँधते हुए सोमेन्द्रने कहा—“डम्बलकी ज़रूरत नहीं, अब तो मुगरी होगी।”

सोमेन्द्रकी आँखें देखकर भाभी सहम गई और झपटकर नीचे उतर गई। सोमेन्द्रने फिर तसवीर देखी, देखा कि इस तसवीरके सामने उसकी कविता कुछ भी नहीं थी—मानो आलपीन चुभानेके बदलेमें छुरी भोंकना।

इसी समय नानीने आकर कहा—“भैया, आ, त्रिफलाका पानी पी ले।”

सोमेन्द्रने तीव्र स्वरमें कहा—“तीनफला नहीं, चौदहफला चाहिए।” त्रिफलाके बदले चौदहफला मिल सकता है या नहीं, यह जाननेके लिए नानीने फौरन अनारो महराको सम्पतराम वैद्यके घर भेज दिया।

- ४ -

त्रिफलाका पानी पीकर भी उस दिन रातमें सोमेन्द्रको नींद नहीं आई। सारी रात वह कमलाकी धृष्टताका चोखा बदला लेनेके उपाय सोचता रहा। कवितासे काम नहीं चलेगा। कमलाकी एक फोटो मिल जाय, तो किसी आर्टिस्टको देकर एक कार्टून बनवाया जा सकता है। यह खूब रहेगा; लेकिन उससे फोटो तो माँगी नहीं जा सकती। माँगनेसे तो सब मामला ही गड़बड़ हो जायगा! तब फिर—?

उपाय खोज निकालनेके पहले ही भोर हो गया। कभी एटलान्टा, कभी कमला, कभी मिल्टन—इन सब विचित्र विचारोंके धक्के खा-खाकर उसका मन क्लान्त हो रहा था, इतनेमें दस बजा। ट्रामपर कालेजको चला,

रास्तेका काफी हिस्सा खत्म हो चुका था, इतनेमें एक तरुणीके साथ कमला ट्रामपर चढ़ी। सोमेन्द्र अपनी किताबें समेटकर उतरनेकी कोशिश कर रहा था कि कमलाने पूछा—“कहाँ जाते हैं ?”

सोमेन्द्रने कहा—“चना जोर गरम खरीदने।”

कमलाने शरारत-भरी हँसी हँसते हुए कहा—

“थोड़ा-सा मेरे लिए भी लाइयेगा—डैंक्स !”

साथकी सहपाठिन खिलखिलाकर हँस पड़ी।

सोमेन्द्र आँखें लाल करता हुआ उतर गया।

कोई घंटा-भर बाद कमलाके डेस्कपर चना जोर गरमका एक ढोंगा पहुँचा, कमलाने खोलकर देखा, उसके भीतर चना जोर गरमकी जगह केलेके छिलके भरे हैं। वह हँस पड़ी। दूरसे सोमेन्द्रने देखा कि कमला चिढ़ी नहीं। इस प्रकार बार खाली जाते देखकर वह सिक्कुड़कर रह गया। छुट्टी होनेपर सोमेन्द्र कालेज स्कायरके सामने खड़ा हुआ बसकी प्रतीक्षा कर रहा था। उसके पीछे अपनी सखीके साथ आकर कमला कबसे खड़ी हँस रही है, उसने देखा ही नहीं। जब वह बसपर चढ़कर बैठ गया, तब कमलासे चार आँखें हुईं। कमलाने चटपटे स्वरमें कहा—“सोमेन्द्र बाबू, आपने अपने खानेकी चीज़ मुझे भेजी थी—उसके लिए डैंक्स !”

सोमेन्द्रने मुँह फिरा लिया, इच्छा हुई कि दाँतों और नाखूनोंसे इस लड़कीको काटकर टुकड़ा-टुकड़ा करके फेंक दे !

अगले दिन सोमेन्द्र कालेजके समयसे एक घंटा पहले ही घरसे निकल पड़ा और छुट्टी होनेके पहले ही लौट आया। कालेजमें अवश्य ही अनजानमें उसने दो-एक बार कमलाकी ओर ताका था, गम्भीर मुखसे। कमलाने भी उसकी ओर देखा था ; किन्तु उसकी दृष्टिमें था कौतुक और विद्रूप ! इसी प्रकार लगभग पन्द्रह दिन कट गये। बातचीत न होनेपर भी सोमेन्द्रके दिमागमें बदला लेनेकी कल्पना अट्टा जमाकर बैठी हुई थी। एक तुच्छ नारी उसे पराजित करके

उसीकी आँखोंके सामने स्वच्छन्दतासे विचरण करती रहे, यह असह्य था ! भाभीको सारी घटना बतलानेसे वे अवश्य ही बदला लेनेका कोई अच्छा उपाय निकाल सकती हैं, यह विश्वास सोमेन्द्रको था ; किन्तु एक नारीकी अकल ठिकाने लगानेके लिए दूसरी नारीकी सहायता माँगनेको किसी तरह उसका मन राजी न होता था। अन्तमें अचानक बदला लेनेका एक बड़ा अच्छा मौका हाथ लगा।

बदला लिये बिना काम न चलता था। एक तो प्रतिदिन कमलाका कौतुक-भरा असह्य हास्य, उसके ऊपर बसपर कहीं कमलासे भेंट न हो जाय, इस डरसे कालेज जानेमें भी कोताही होने लगी थी। जैसे बने वैसे, एक बार कमलाको हमेशाके लिए ठीक करना ही होगा। उस दिन इसका सुयोग भी मिल गया।

उस दिन सड़ककी मोड़पर पहुँचते ही सोमेन्द्रने देखा कि कमला अपने क्लासकी अन्य दो छात्राओंके साथ टैक्सीपर चढ़ी और ड्राइवरसे पुकारकर कहा—“चलो वोटैनिकल गार्डन।”

सोमेन्द्र एक मिनट तक तो कुछ सोचता रहा, फिर जाती हुई एक टैक्सीको रोककर उसपर सवार हुआ और कहा—“वोटैनिकल गार्डन।”

वोटैनिकल गार्डन। संध्याका समय। सहेलियाँ पेड़-पत्ते देखती फिरती थीं, और कमला एक बेंचपर पीठ टेके बैठी थी। आस-पास एकदम सुनसान था। सोमेन्द्र एक झाड़ीसे दूसरी झाड़ीमें अपनेको छिपाता हुआ इसी सुयोगकी प्रतीक्षा कर रहा था। जब सहेलियाँ काफी दूर निकल गईं, तो एकाएक कमलाके सामने आकर बोला—“चना जोर गरम खाइयेगा ?”

कमला चौंक पड़ी ; उस तरह हँस तो न सकी, फिर भी आदतके मुताबिक कह उठी—“थैंक्स ! दीजिए—”

सोमेन्द्रने लाल आँखें करके कमलाका दाहना हाथ जोरसे मुट्ठीमें कसकर कहा—“मन चाहता है कि तुम्हारे बाल पकड़कर—”

यह कहते हुए वह स्वयं चौंक पड़ा। देखा कि कमलाकी केश-राशि अपने-ही-आप झूलकर उसकी छातीके पास आ पड़ी है। कमला निश्चल है। हक्काबक्का-सा होकर सोमेन्द्र धपसे बेंचपर बैठ गया। उसी समय कमलाने आँचलसे अपनी आँखें ढक लीं। सोमेन्द्रने देखा, कमला रो रही है। हाथकी मुड़ी खोलकर उसने धवराकर कहा—“क्या हाथमें लग गई?”

कमला बिना हाथ हटाये हुए बोली—“नहीं।”

सोमेन्द्रकी समझमें कुछ न आया। उसने कहा—“तो—”

कमलाने आँखोंसे आँचल हटाये बिना ही कहा—“तसवीर फाड़कर फेंक दीजिएगा—और दामा—”

सोमेन्द्रको कोई बात ही न सूझी। गुम-सुम होकर बैठा रहा। सहसा दूरपर हँसीकी आवाज़ सुनकर उसका ध्यान भंग हुआ। देखा, कमलाकी दोनों सहेलियाँ हँस रही हैं। जल्दीसे उठकर उसने कहा—“हाथ मुरक गया है—टिंचर आयोडीनकी एक पट्टी—” कहकर बाँधनेका इशारा करके वह लम्बा हुआ। दूरसे एक बार मुड़कर देखा कि कमला मुँह नीचा किये खड़ी है।

× × ×

तितलेपर अपने कमरेमें घुसते ही सोमेन्द्रने देखा कि भाभी कमलाकी बनाई उस तसवीरको देख-देखकर हँस रही हैं। सोमेन्द्रने कहा—“भाभी! मैंने गंजव कर डाला।”

भाभी चौंक पड़ी, बोली—“क्या हुआ?”

सोमेन्द्र विछौनेपर चित लेटकर बोला—“नारी-निर्यातन!”

भाभीने भयसे कहा—“नाटक रहने दो! साफ़-साफ़ कहो, मुझे बड़ा डर मालूम होता है।”

सोमेन्द्रने आँखें मींचकर कहा—“तो सुनोगी। अच्छा सुनो, सोमेन्द्र नामका एक लड़का था—” उसके बाद इसी कहानीकी ही पुनरावृत्ति।

भाभीने सब सुनकर कहा—“देवरजी, यदि तुम पहलेसे ही मुझे बता देते, तो तसवीर पानेके दूसरे ही दिन मैं उसे जवाब दे देती। अच्छा, अब तुम रहने दो, मैं उसकी अकल ठिकाने लगा दूँगी।”

दूसरे दिन सोमेन्द्र ठीक दस बजे कालेज गया; पर कमला न दीख पड़ी। हाँ, उसकी दोनों साथिनें सोमेन्द्रकी ओर देखकर हँस दीं। उन्होंने हाथ उठाकर नमस्कार भी किया।

अगले दिन भी कमला न आई।

इस बीचमें स्त्रीका तार पाकर सोमेन्द्रके बड़े भाई छपरासे आ गये। चिट्ठीपर ठिकाना लिखा देखकर भाभी और नानी कमलाके घर भी हो आईं। नतीजा यह हुआ कि एक दिन कमलाके मामा और सोमेन्द्रके भाईमें खड़े-खड़े लगभग घंटा-भर तक बातें हुई—दोनों एक-दूसरेके घर जा रहे थे—

बादमें एक दिन कालेजमें कमलासे सोमेन्द्रकी भेंट हुई। कमला फौरन ही सिरका आँचल खींचने लगी; लेकिन आँचल ब्रूचमें अटका होनेसे खिंच न सका। फलतः वेचारी मुँह नीचा करके, अत्यन्त निरीह प्राणीकी भाँति, बैठी रह गई और सोमेन्द्र भी पेंसिल बनाने लगा।

अन्तमें एक सामान्य नारीकी अकल ठीक करनेके लिए एक दिन शामको वरके वेशमें टैक्सीपर चढ़कर सोमेन्द्रने कमलाके घरकी ओर यात्रा की।*

अनुवादक

ब्रजमोहन वर्मा

* विशाल भारत बुकडिपो, कलकत्ता, से इसी मास प्रकाशित होनेवाले ‘त्रिलोचन कविराज’ नामक गल्प-संग्रहसे।



लहरोंका निमन्त्रण

श्रीयुत वचन

तीरपर कैसे रुकूँ मैं,
आज लहरोंमें निमन्त्रण !

(१)

रातका अन्तिम प्रहर है,
फिलमिलाते हैं सितारे,
वक्षपर युग बाहु बाँधे
मैं खड़ा सागर किनारे,
वेगसे बहता प्रभंजन
केश - पट मेरे उड़ाता,
शून्यमें भरता उदधि-
उरकी रहस्यमयी पुकारें ।
इन पुकारोंकी प्रतिध्वनि
हो रही मेरे हृदयमें,
है प्रतिच्छायित जहाँपर
सिंधुका हिलोल-कंपन ।
तीरपर कैसे रुकूँ मैं,
आज लहरोंमें निमन्त्रण !

(२)

विश्वकी सम्पूर्ण पीड़ा
सम्मिलित हो रो रही है,
शुष्क पृथ्वी आँसुओंसे
पाँव अपने धो रही है,
इस धरापर जो बसी दुनिया
यही अनुरूप उसके —
इस व्यथासे हो न विचलित
नींद सुखकी सो रही है ;
क्यों धरणि अब तक न गलकर
लीन जलनिधिमें गई हो ?
देखते क्यों नेत्र कविके
भूमिपर जड़-तुल्य जीवन ?
तीरपर कैसे रुकूँ मैं,
आज लहरोंमें निमन्त्रण !

(३)

जड़ जगतमें वासकर भी
जड़ नहीं व्यवहार कविका,
भावनाओं से विनिर्मित
और ही संसार कविका,
बूँदके उच्छ्वासको भी
अनसुनी करता नहीं वह,
किस तरह होता उपेक्षा-
पात्र पारावार कविका !
विश्व-पीड़ासे सुपरिचित
हो तरल बनने, पिघलने
त्यागकर आया यहाँ कवि
स्वप्न लोकोंके प्रलोभन ।
तीरपर कैसे रुकूँ मैं,
आज लहरोंमें निमन्त्रण !

(४)

जिस तरह मरुके हृदयमें
है कहीं लहरा रहा सर,
जिस तरह पावस-पवनमें
है पपीहेका छिपा स्वर,
जिस तरहसे अश्रु-आहोंसे
भरी कविकी निशामें
नींदकी परियाँ बनातीं
कल्पनाका लोक सुखकर,
सिंधुके इस तीव्र हाहा-
कारने, विश्वास मेरा,
है छिपा रखा कहींपर
एक रस-परिपूर्ण गायन !
तीरपर कैसे रुकूँ मैं,
आज लहरोंमें निमन्त्रण !

(५)

नेत्र सहसा आज मेरे
तम-पटलके पार जाकर
देखते हैं रत्न - सीपीसे
बना प्रासाद सुन्दर,
है खड़ी जिसमें उषा ले
दीप कुंचित रश्मियोंका,
ज्योतिमें जिसकी सुनहली
सिंधु - कन्याएँ मनोहर
गूढ़ अर्थोंसे भरी
मुद्रा बनाकर गान करतीं,
और करतीं अति अलौकिक
तालपर उन्मत्त नर्तन !
तीरपर कैसे रुकूँ मैं,
आज लहरोंमें निमन्त्रण !

(६)

मौन हो गन्धर्व बैठे
कर श्रवण इस गानका स्वर
बाद्य - यन्त्रोंपर चलाते
हैं नहीं अब हाथ किन्नर,
अप्सरार्यों के उठे जो
पग उठे ही रह गये हैं,
कर्ण उत्सुक, नेत्र अपलक
साथ देवोंके पुरन्दर
एक अद्भुत और अविचल
चित्र-सा है जान पड़ता,
देव - बालाएँ विमानों से
रहीं कर पुष्प-वर्षण !
तीरपर कैसे रुकूँ मैं,
आज लहरोंमें निमन्त्रण !

(७)

दीर्घ उरमें भी जलधिके
हैं नहीं खुशियाँ समार्ती,
बोल सकता कुछ न, उठती
फूल वारम्बार छाती ।
हर्ष रत्नागार अपना
कुछ दिखा सकता जगतको,
भावनाओंसे भरी यदि
यह फफककर फूट जाती ।
सिंधु जिसपर गर्व करता
और जिसकी अर्चनाको
स्वर्ग झुकता, क्यों न उसके
प्रति करे कवि अर्घ्य-अर्पण ।
तीरपर कैसे रुकूँ मैं,
आज लहरोंमें निमन्त्रण !

(८)

आज अपने स्वप्नको मैं
सच बनाना चाहता हूँ,
दूरकी इस कल्पना के
पास जाना चाहता हूँ,
चाहता हूँ तैर जाना
सामने अंबुधि पड़ा जो,
कुछ विभा उस पारकी
इस पार लाना चाहता हूँ,
स्वर्गके भी स्वप्न भूपर
देख उनसे दूर ही था,
किन्तु पाऊँगा नहीं कर
आज अपनेपर नियन्त्रण ।
तीरपर कैसे रुकूँ मैं,
आज लहरोंमें निमन्त्रण !

(६)

लौट आया यदि वहाँसे
तो यहाँ नवयुग लगेगा,
नव प्रभाती गान सुनकर
भाग्य जगतीका जगेगा,

शुष्क जड़ता शीघ्र बदलेगी
सरस चेतन्यता में ;

यदि न पाया लौट, मुझको
लाभ जीवनका मिलेगा,

पर पहुँच ही यदि न पाया
व्यर्थ क्या प्रस्थान होगा ?

कर सकूँगा विश्वमें फिर-
भी नये पथका प्रदर्शन ।
तीरपर कैसे रुकूँ मैं,
आज लहरोंमें निमन्त्रण !

(१०)

स्थल गया है भर पथोंसे
नाम कितनोंके गिनाऊँ ;
स्थान बाकी है कहाँ, पथ
एक अपना भी बनाऊँ ?

विश्व तो चलता रहा है
थाम राह बनी-बनाई,

किन्तु इनपर किस तरह मैं
कवि-चरण अपने बढाऊँ !

राह जलपर भी बनी है,
रूढ़िपर न हूँ कभी वह,

एक तिनका भी बना सकता
यहाँपर मार्ग नूतन !
तीरपर कैसे रुकूँ मैं,
आज लहरोंमें निमन्त्रण !

(११)

देखता हूँ आँखके आगे
नया यह क्या तमाशा—
कर निकलकर दीर्घ जलसे
हिल रहा करता मना-सा,

है हथेली - मध्य चित्रित
नीर - मग्नप्राय वेड़ा !

मैं इसे पहचानता हूँ,
है नहीं क्या यह निराशा ?

हो पड़ी उद्दाम इतनी
उर-उमंगें, अब न उनको

रोक सकता भय-निराशाका,
न आशाका प्रवंचन ।
तीरपर कैसे रुकूँ मैं,
आज लहरोंमें निमन्त्रण !

(१२)

पोत अगणित इन तरंगोंने
डुबाये, मानता मैं,
पार भी पहुँचे बहुत-से—
बात यह भी जानता मैं,

किन्तु होता सत्य यदि यह
भी, सभी जलयान डूबे,

पार जानेकी प्रतिज्ञा
आज बरवस ठानता मैं ।

डूबता मैं, किन्तु उतराता
सदा व्यक्तित्व मेरा,

हो युवक डूबे भले ही,
है कभी डूबा न यौवन !
तीरपर कैसे रुकूँ मैं,
आज लहरोंमें निमन्त्रण !

(१३)

आ रहीं प्राची क्षितिजसे
 खींचनेवाली सदाएँ,
 मानवोंके भाग्य-निर्णायक
 सितारो ! दो दुआएँ,
 नाव, नाविक, फेर ले जा
 है नहीं कुछ काम इसका,
 आज लहरोंसे उलफनेको
 फड़कती हैं भुजाएँ,
 प्राप्त हो उस पार भी इस-
 पार-सा चाहे अँधेरा,
 प्राप्त हो युगकी उषा
 चाहे लुटाती नव-किरण-धन !
 तीरपर कैसे रुकूँ मैं,
 आज लहरोंमें निमन्त्रण !

मानव-जातिका इतिहास

[हास्य-रसकी सबसे छोटी कहानीका भाव]

गौरीशंकर और नागा पर्वत दोनों यमज भाई हाथ-पर-हाथ दिये अनन्त कालसे इस पृथिवीपर निश्चिन्त होकर खड़े थे ।

एक सुहावने दिनके प्रातःकाल गौरीशंकरने नागा पर्वतसे कहा—“भाई, मुझे अपने पैरोंके निकट कुछ मरमराहट-सी सुनाई दे रही है । ज़रा देखो तो, क्या बात है ?”

नागाने ज़रा झुककर गौरीशंकरके पैरोंकी ओर देखा और कहा—“भाई साहब, पृथिवीपर मानव-जातिने जन्म लिया है ।”

हज़ारों वरस बीत गये । एक दिनकी दोपहरको नागा पर्वतने गौरीशंकरसे कहा—“भाई गौरीशंकर, मुझे अपने पैरोंके निकट कुछ कोलाहल-सा सुनाई दे रहा है । ज़रा देखो तो, कौन है ?”

गौरीशंकरने अपने भाईके पैरोंकी ओर देखा और कहा—“कोई खास बात नहीं । मानव-जाति अपने जीवनके लिए संघर्ष कर रही है । यह उसीका कोलाहल है ।”

हज़ारों वरस और बीत गये ।

बदलीके एक सूर्यास्तके समय महान गौरीशंकरने नागासे कहा—“नागा, मुझे अपने पैरोंके निकटसे रौनेकी-सी आवाज़ आ रही है । यह कौन है ?”

नागाने गौरीशंकरके पैरोंके निकट देखा और एक ठंडी साँस लेकर कहा—“यह मानव-जातिके मिटनेकी आवाज़ है ।”

हज़ारों, लाखों वरस और भी बीत गये । गौरीशंकर और नागा अब भी उसी तरह एक-दूसरेका हाथ पकड़े हुए खड़े थे ।

— चन्द्रगुप्त विद्यालंकार

बोरोबुदूरका बौद्ध-स्तूप

श्री अमृतलाल नायक, एम०ए०

विश्वविदित बोरोबुदूर नामक बौद्ध-स्तूप पूर्वीय द्वीपसमूहके जावा द्वीपके मध्यभागमें स्थित है। जावाको प्राचीन समयमें यवद्वीप कहते थे, और यहाँ किसी समय हिन्दू-धर्म प्रचलित था, जिसे भारतीय व्यापारी यहाँ लाये थे। परन्तु कालकी कुटिलताके कारण इस समय इनेगिने पहाड़ी प्रामोंके सिवा हिन्दू-धर्म जावासे लोप-सा हो गया है। आजकल इस्लामी धर्मने यहाँ अपना सिक्रा जमा रखा है। केवल बोरोबुदूर-स्तूप और अन्य दो-चार स्तूप तथा मन्दिरोंके सिवा और कोई सूचना देनेवाला नहीं कि यहाँ विश्व-शान्तिके प्रथम उपदेशक भगवान तथागतके धर्मका प्रचार था। जावाके पुराने मुसलमान सुलतानोंकी राजधानियाँ 'जोकजाकर्ता' और 'सुराकर्ता' बोरोबुदूरके सन्निकट बसी हुई हैं। जावाके प्रतापी मुसलमान सुलतानोंके वंशज आजकल डच लोगोंकी दयापर जीते हैं, और कोई उन्हें पूछता तक नहीं।

जावा आनेपर हमारी इच्छा हुई कि बोरोबुदूर देखें। सौभाग्यवश थोड़े ही दिन पश्चात् तीन दिनकी छुट्टी हुई, और हम लोग वहाँ जानेके लिए तैयार हुए। हम लोग पाँच आदमी थे, जो भारतके भिन्न-भिन्न प्रान्तोंके थे। दलमें मेरे अतिरिक्त थे बम्बईके प्रसिद्ध व्यापारी श्री जगजीवन मूलजीके सुपुत्र जयन्तीलाल मूलजी; एक महाराष्ट्रीय सज्जन श्री एकनाथ नायक; एक पंजाबी सज्जन, जो सुराबायामें चीनीके दलाल हैं; श्री सैयदमहमूद हसन और एक चटगाँवके व्यापारी श्री मणीन्द्र दे, जो जावामें दूकान खोले हुए हैं, थे। सुराबायासे बोरोबुदूर दो सौ मील दूर है। सुराबाया जावाका प्रसिद्ध बन्दरगाह और व्यापारका केन्द्र है। यहाँसे बोरोबुदूर रेल द्वारा भी जा सकते हैं और मोटर द्वारा भी। रेल-यात्रा उत्तनी सुविधाजनक नहीं है। जावामें दिन रातमें नहीं चलती। हम लोगोंने मोटर ही से जाना पसन्द

किया। शनिवारके सुबह हम लोगोंने यात्रा करनी निश्चित की। जावामें मोटरोंका भाड़ा बहुत सस्ता है, और थोड़े ही खर्चमें लम्बी यात्रा की जा सकती है। सुबह तड़के हम लोग चल पड़े। मन्द-मन्द समीर बह रहा था। आकाश स्वच्छ था, और सूर्योदय होने जा रहा था। सुराबाया अभी सुखकी नींद सो रहा था। मोटरों और गाड़ियोंकी घनघनाहट, जो इस नगरको निनादित किये रहती है, अभी शुरू नहीं हुई थी। इस सनाटेमें नगरकी छवि दर्शनीय थी।

सुराबाया अभी छूटने भी नहीं पाया था कि सूर्योदय हुआ, उषाने घूँघट खोला। पथके दोनों ओरके पेड़ सूर्य-किरणोंसे जगमगाने लगे। मोटर तेजीसे जा रही थी, और थोड़ी ही देरमें सुराबायाकी विशाल कायासे छुटकारा पाकर हम गाँवोंकी ओर अग्रसर हुए। जावाकी मनोरम प्राकृतिक शोभा अब दिखाई पड़ने लगी। जहाँ नजर जाती थी, हरियाली ही दिखाई पड़ती थी। सुराबायाके थोड़े ही दूरपर 'काली ब्रातास' नामक नदीने साथ देना प्रारम्भ किया। जावामें 'काली' नदीको कहते हैं। मोटर नदीके किनारे-किनारे जा रही थी। सुराबायाकी सारी समृद्धि इसी नदीपर निर्भर है। सुराबाया शहरकी आबादी पृथ्वीके सभी देशोंके लोगोंसे बनी है। जावावासी बेचारे इस नगरमें प्रधान पदको कौन कहे, साधारण पदपर भी आसीन नहीं हैं। यदि कोई जावाकी वास्तविकताकी कल्पना सुराबायासे करना चाहे, तो वह सरासर मूर्खता होगी। वास्तवमें जावा सुराबायाकी समाप्तिके बाद प्रारम्भ होता है। नगर छूट जानेपर इस द्वीपकी प्राकृतिक शोभाकी भाँकी दिखाई दी। ऐसा ज्ञात होने लगा, मानो प्रकृतिदेवी इसी द्वीपमें ही निवास करती है। शस्य-स्यामला भूमि और भिन्न-भिन्न प्रकारकी वृक्ष-राजियाँ मनको सुगंध कर देती हैं। तभी तो

जावा-निवासी अपनेको 'भूमिपुत्र' कहते हैं। जावा-निवासियोंके मकान विशाल नहीं होते; मगर बड़े आकर्षक होते हैं। स्वच्छतामें तो इसकी सानी शायद ही कोई रखता हो। जावाके अधिपति डच लोग तो अपनी स्वच्छताके लिए विश्वविदित हैं ही और उनकी कृषिविज्ञता सर्वत्र मशहूर है। इन लोगोंके मकान देखते ही बनते हैं। कलकत्ता और बम्बईके विशालकाय प्रासाद यहाँ नहीं दिखाई पड़ते; परन्तु डच लोगोंका प्रत्येक घर उद्यानसे विरा होता है और उसकी रचना बड़ी आकर्षक होती है। जावा-निवासियोंके मकान भी ऐसे ही होते हैं। जावा आनेके पहले मैंने यह सोचा था कि यहाँके निवासी भी बार्नियो, न्यूगिनी और सिलीबीसके निवासियोंकी भाँति अर्ध-नग्न होंगे और स्वच्छतासे कोसों भागते होंगे; पर यहाँ आनेपर आँखें खुल गईं। यों तो सुराबायामें मैंने जावा-निवासियोंका रहन-सहन देखा था; परन्तु ग्राम-निवासियोंसे एकदम अभिन्न था। इस बोरोबुदूर-यात्रामें गाँवोंको देखनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ। जावा प्रकृतिदेवीकी लाड़ली पुत्री है। केले और आम उसकी शोभा बढ़ाते हैं। जहाँ देखिये, यही नजर आते हैं। सुराबायासे बोरोबुदूर तक ऐसा ही प्रतीत होता था कि एक विशाल उपवन छाया हुआ है। 'सिलवर ओक' नामक वृक्षका यहाँ बाहुल्य है। इन साल वृक्षोंकी बीथियाँ यहाँ सत्र जगह मिलेंगी। केले और बाँससे घिरे हुए जावाके गाँव छोटे-छोटे, पर सुन्दर और स्वच्छ, होते हैं। नदियों और पुष्करणियोंका तो क्या कहना है। सुराबायाके थोड़े ही दूरके बाद ईखके कारखाने शुरू हुए। सभी विशालकाय हैं। सभीके अपने ईखके खेत हैं। यह बतानेकी आवश्यकता नहीं कि जावामें ईखकी खेती बड़े वैज्ञानिक ढंगसे होती है। ईखकी पैदाइश भी बहुत बढ़ गई है। यहाँका मन्ना उच्चकोटिका होता है। इसी ईखकी बंदौलत जावा इतना समृद्धिशाली हो गया है। ईखके खेत कारखानेके पास होते हैं, जिससे अनेक सुविधाएँ होती हैं।

सुराबायासे चलकर एक घंटेके बाद 'मोजोक्ती' नगरमें पहुँचे। इन दोनों नगरोंके बीच कितने ही ईखके कारखाने हैं। फरवरीका महीना होनेके कारण कारखाने बन्द थे। अभी ईख कटी नहीं थी। जावा विपुवत रेखाके दक्षिणमें है, इसलिए जत्र भारतमें जाड़ा पड़ता है, तब यहाँ वर्षाऋतु होती है। यहाँ मईमें कारखाने काम शुरू करते हैं। गन्ने इस समय लहलहा रहे थे, जिसमें समीर अठखेलियाँ खेल रहा था। इन खेतोंको देखकर जावाकी वैज्ञानिक कृषि-पद्धतिकी तारीफ़ मुक्तकंठसे करनी पड़ती है। कारखानोंकी रचना बड़े आकर्षक ढंगसे की जाती है। प्रकृति-प्रिय डच लोगोंने राजसी यन्त्रोपासना करते समय भी प्रकृतिदेवीकी उपेक्षा नहीं की है। मोजोक्ती जावाके प्राचीन हिन्दू-साम्राज्य 'मध्योपहित'की राजधानी था। उस समय इसकी श्री अद्वितीय थी। नगर सात मीलके विस्तारमें फैला हुआ था। मध्योपहित-साम्राज्य उस समयके जावाके सब राज्योंमें सर्वोपरि था, और इसकी समृद्धि बहुत बढ़ी-चढ़ी थी। मुसलमानोंके आगमनके समय यह अवनतिकी ओर अग्रसर हो रहा था। राज्यके प्रधान कर्मचारी मांडलिक और सामन्तगण आपसमें लड़ रहे थे। ऐसा मौक़ा मुसलमान कब चूकते। नगरपर आक्रमण कर जीत लिया। नगरकी इतिश्री हो गई। इस समय यह मामूली कस्बा-सा है। कुछ बची-खुची पुष्करणियाँ, आरामगृह और मूर्तियोंके सिवा कोई भी वस्तु ऐसी नहीं है, जो इस बातका पता दे कि अतीतमें इसकी रचना कैसी थी। 'अभी खुदाई हो रही है। इस नगरका नाश पन्द्रहवीं शताब्दीमें हुआ था।

जावाके आन्तरिक व्यापारपर चीनियोंने कब्ज़ा कर रखा है। कोई भी ऐसी जगह नहीं, जहाँ वे न हों। ये अत्यन्त समृद्धिशाली हैं। सभी नगरों और गाँवोंमें सबसे अच्छे मकान चीनियोंके ही मिलेंगे। इस सम्पत्तिका कारण इन लोगोंकी संवशक्ति है। अब ये यूरोपियनोंका पूरा अनुकरण कर रहे हैं।

मोजोकर्तोंमें चीनियोंका बाहुल्य है। मोजोकर्तोंके बाद प्राकृतिक दृश्य और भी सुन्दर दीख पड़ा। हरेभरे धान और गन्नेके खेतोंकी मनोहर छवि तो थी ही, अब पहाड़ियाँ भी दिखाई पड़ने लगीं। 'मेरापी' नामक भीमकाय ज्वालामुखी शापोत्सुक मुनिवर-सा दीखता था। कौन कह सकता है कि कब यह रौद्र रूप धारण करके शस्य-श्यामला भूमिको भस्मकर दहकते लावेसे पाट दे। कुछ दिन पूर्व ही इसने अपनी प्रचंड शक्तिका परिचय दिया था। कितने अबोध मनुष्योंने इसकी शक्तिको विगत समझकर इसकी तराईमें गाँव बसा दिये थे। एकाएक एक दिन जब रातमें मूसलधार वृष्टि हो रही थी, इसने अपना तीसरा नेत्र खोल दिया। गाँव-के-गाँव नष्ट हो गये। सैकड़ों आदमी मर गये।

अब जंगलोंसे लथे पहाड़ोंकी शोभा दृष्टिगोचर हुई। जावामें गगनमंडल मेघावृत होते देर नहीं लगती, न मेघमुक्त होते ही। सुबह प्रस्थानके समय सूर्यदेव अखंड राज्य जमाये हुए थे। मोजोकर्तोंके बाद मेघमालाने आकाश घेर लिया और नील नीरद बारम्बार गर्जनाकर चेतावनी देने लगा। थोड़ी देरमें मेघ महाराज आ धमके। सागौनके वृक्ष यहाँ पहाड़ोंको ढके रहते हैं। जिन पहाड़ियोंके बीच होकर हम लोग जा रहे थे, वे भी सागौनके वृक्षोंसे भूषित थे। इसी प्रकारकी नैसर्गिक शोभा देखते हुए तीसरे पहर सुराकर्ता, जिसको यहाँ सोलो कहते हैं, पहुँचे। यहाँ किसी समय प्रबल सुलतान राज्य करते थे, और जोकजाकर्ताके सुलतानोंकी स्पर्धा करते थे। अब इनके वंशज नाममात्रके राजा है। बड़े लम्बे-चौड़े प्रासादोंको छोड़कर इनके हाथमें कुछ भी नहीं। ये महल 'क्राटोन' कहे जाते हैं। इनमें विस्तारके अतिरिक्त कोई खूबी नहीं। भारतके देशी राज्योंके प्रासाद इनसे कहीं अच्छे हैं। पर कौतूहलवश हम लोगोंने इनको देखना चाहा। शनिवारका दिन था, इसलिए हम लोग देख नहीं सके। शुक्रवार ही को

यह खुला रहता है। सालो पुराने ढेरका नगर है। यहाँके लोग भी पुरानी लकीरके फकीर हैं। यहाँका 'पासार' (मुख्य बाज़ार) देखने लायक है। विविध आभूषण पहने हुए नर्तकियाँ और बड़ी-बड़ी टोपियाँ पहने हुए सुलतानके सम्बन्धीगण ध्यान आकर्षित करते हैं। सोलोके बाद आकाशने आर भी उग्र रूप धारण किया और पानीका वेग बढ़ गया। चारों ओर पानी-पानी हो गया। इतना अन्धकार हो गया कि रास्ता नहीं सूझ रहा था। हम लोग एकदम भीग गये। मेरापी अब सन्निकट था। शापोत्सुक दुर्वाशा मुनि-सा वह शस्य-श्यामला भूमि-रूपि शकुन्तलाको घूरता जान पड़ता था। धुआँ स्पष्ट दीख पड़ता था। आसपासकी भूमि सूखी और श्रीहीन दिखाई दी। सोलोसे जोकजाकर्ता एक घंटेका रास्ता है।

वृष्टिने सहचरीकी भाँति जोकजाकर्तामें प्रवेश करते समय हमारा साथ दिया। इस भयंकर वृष्टिमें आगे बढ़ना मुश्किल था। शाम भी हो गई थी, इसलिए इसी नगरमें ठहरनेका निश्चय किया। 'ट्रगूड' यहाँका सर्वप्रधान होटल है। हम लोग वहीं गये, सामान रखकर चाय पी। अब वृष्टिका वेग कम हो चला था। शहर घूमनेका इरादा किया। यह जावाके बड़े शहरोंमें से है। डच लोगोंके जावा आनेके पहले यह एक सुलतानकी राजधानी थी। यहाँका 'क्राटोन' भी मशहूर है, और बहुत दूरमें फैला हुआ है। परन्तु सोलो-सी हालत यहाँ भी थी। केवल शुक्रवारको ही यात्रीगण इसमें प्रवेश कर सकते हैं, वह भी रेसीडेन्टकी अनुमतिसे। हम लोगोंने दूरसे ही दर्शनकर नेत्रोंको सन्तुष्ट किया। इसके पास ही 'तमनसारी' नामक विहारवारिगुक्त एक कैलि-प्रासाद है, या कहिये खँडहर है। इसमें पुराने समयमें सुलतान वेगमोंके साथ जल-क्रीड़ा करते थे। सुलतान मंगूक-भूमिके आज्ञानुसार एक फिरंगीने इसे बनाया था। यह जमीनके भीतर बना हुआ है। इसके चारों ओर पानी

रखनेका प्रवन्व था, जिससे दारुण ग्रीष्मकी दुपहरीमें भी यह शीतल रहे। इस समय यह भग्नावस्थामें है। भूकम्पने इसे वेतरह विगाड़ डाला है। फाड़ियाँ और लताएँ इतनी सघन हैं कि भीतर दूर तक जाना मुश्किल था। जोकजा (जोकजाकर्ताका प्रचलित नाम) के सुलतानोंके विलासका अनुमान इसे देखकर होता है। यहाँकी नर्तकियाँ जावा-भरमें मशहूर हैं। यहाँके नट भी अच्छे समझे जाते हैं। यहाँका पासार (बाज़ार) भी दर्शनीय है। रात काफ़ी बौत चुकी थी। होटल लौट आये और खाना खाकर सो गये।

सुबह हुआ। मेघमालाएँ विदा ले चुकी थीं। सूर्यकी प्रखर किरणोंने अपना राज्य फैलाना प्रारम्भ किया। हम लोगोंने भी अपनी यात्रा शुरू की। लुद्र नदियाँ कल-कल निनाद करती हुई सागरकी ओर दौड़ी जा रही थीं—वेग इतना प्रबल था कि शायद ही नाव चल सके। मेरापी अब बिलकुल निकट था। इसके प्रचण्ड अग्निक्षेपक (फ़ेटर)का अवलोकन दूरबीनसे कर लिया। पास जानेकी मनाही थी, क्योंकि पर्वत अभी शान्त नहीं हुआ था। जले हुए गाँवोंके भग्नावशेष नज़र आ रहे थे और सूखे वृक्षोंके समूह भयानक लग रहे थे। अब भूमि पुनः पहाड़ी हो गई। विशालकाय पर्वत उद्ग्रीव खड़े थे, मानो किसीकी प्रतीक्षा कर रहे हों। सघन वनाच्छादित शैलश्रृंग सूर्य-रश्मियोंमें चमक रहे थे। जोकजासे एक घंटेके बाद हम लोग बोरोबुदूरके निकट पहुँच गये। बोरोबुदूरकी ओर इंगित करता हुआ साइनबोर्ड दिखाई दिया। पन्द्रह मिनट पश्चात् एक छोटा-सा सुन्दर मन्दिर देखनेमें आया, जिसका नाम 'मैन्दूत मन्दिर' है। यहाँसे बोरोबुदूरका उच्चतर शिखर दिखाई पड़ा और पाँच मिनटमें हम लोग बोरोबुदूरके स्तूपके समीप पहुँचे। यह स्तूप एक छोटे-से शैलपर बना हुआ है। मोटर ऊपर तक जा सकती है। स्तूपके समीप एक होटल है, जहाँ खाने-पीनेकी पूरी सुविधा है। मोटर वहीं छोड़ स्तूप-निरीक्षणका आज्ञा-पत्र लानेके लिए गये। यदि

जावामें हिन्दुओंको कोई हक्क प्राप्त है, तो यही कि वे बोरोबुदूरके स्तूपको आधी फीस देकर देख सकते हैं। फीस पचास सेन्ट (आठ आनेके लगभग) है। हिन्दुओंसे पचीस सेन्ट ली जाती है।

आज्ञा लेकर हम लोगोंने स्तूपके प्राचीरके अन्दर प्रवेश किया। प्रथम प्रवेश-द्वार और उसके तोरणने दृष्टि आकर्षित की। जिनके हस्त-कौशलका यह नमूना था, वे वास्तवमें धन्य हैं। जावामें पत्थरके मकान शायद ही कहीं मिलते हैं; परन्तु यह स्तूप ज्वालामुखीसे निकले हुए 'लावा' प्रस्तरका बना हुआ है। प्रवेश-द्वार इतना ऊँचा है कि एक ऊँचे-से-ऊँचा हाथी भी अम्बारी-सहित उसमें जा सकता है। खूबी यह है कि कोई यह नहीं बता सकता है कि ये लावा पत्थर एक दूसरेसे किस प्रकार जोड़े गये। ये दोनों (प्रवेश-द्वार और तोरण) भारतीय कारीगरीके अच्छे नमूने हैं। भीतर प्रवेश करनेपर मालूम हुआ कि समूचा स्तूप अट्टालिका-स्वरूप बना है, जिसके चार भाग हैं। इस अट्टालिकाकी पूरी ऊँचाई (पहाड़ी समेत) चार सौ फीट है। ऊपर तक जानेके लिए पगडंडियाँ बनी हैं, जो अब भी अच्छी अवस्थामें हैं। यह अट्टालिका गोलाकार है। यद्यपि आजकल यात्रीगण एक ही ओरसे प्रवेश करते हैं, क्योंकि चारों ओर लोहेके तार बंधे हैं, तथापि प्रवेश-द्वार चारों ओर बने हुए हैं। इन प्रवेश-द्वारोंमें मुख्य कौन है, यह कहना कठिन है; परन्तु कथाएँ जो दीवारोंपर अंकित की गई हैं, पूर्वके दरवाज़ेसे प्रारम्भ होती हैं, इसीलिए अनुमानतः यही मुख्य प्रवेश-द्वार है। हम लोगोंने भी यहाँसे देखना प्रारम्भ किया।

बहुतसे लोग बोरोबुदूरको मन्दिर कहते हैं; पर यह मन्दिर नहीं है। मन्दिर पूजाके लिए बनाये जाते हैं, और उनमें मूर्तियाँ रहती हैं। यह वैसा मन्दिर नहीं है, क्योंकि इसमें अन्तर भाग है ही नहीं। यह एक चट्टानकी चारों ओर बनाया गया है। वास्तवमें यह स्तूप ही है। लोगोंका अनुमान है कि यह भगवान

बुद्धके अस्थिखंड-संचय करनेके लिए बना है। इस अस्थिपात्रका अब तक पता नहीं चला है; परन्तु लोगोंका विश्वास है कि इसके शिखरमें अवश्य ही वह बहुमूल्य वस्तु सुरक्षित है। बौद्ध-युगके आदिकालमें स्तूपोंका निर्माण चतुष्कोण आकारके आधारपर होता था, और वह शैलवत् उठकर एक शिखराकारमें समाप्त होता था, जिसका स्वरूप एक छत्राकार होता था, जिसमें भगवान् बुद्धकी मूर्ति रखी जाती थी। बादमें यह ढंग बदल दिया गया। आधार गोलाकार बन गया और अटारियाँ बनाई जाने लगीं। शिरोभाग सूच्याग्री अथवा समतल बनाया जाने लगा। एक छत्रके बदले उच्चतम भागमें अनेक छत्र बनाये जाने लगे, यद्यपि मध्यमें मुख्य छत्र सर्वापेक्षा उच्च बनाया जाता था। सबके नीचे बुद्ध-मूर्तियाँ बनाई जाती थीं।

बोरोबुद्धर द्वितीय श्रेणीका है। विशाल आधारपर चार अटारियाँ हैं, और उसके ऊपर तीन छोटी-छोटी अटारियाँ हैं। ये अटारियाँ गोलाकार नहीं हैं। चतुष्कोणकी कौन कहे, इसमें अनेक कोण हैं; परन्तु दूरसे देखनेसे गोलाकार ही जँचती हैं। उच्चतम अटारीके बीच एक छोटा स्तूप है। अटारियोंके बीच-बीचमें स्तम्भ बनाये गये हैं, जिनके ऊपर छोटे-छोटे मन्दिर-सरीखे पूजा-गृह बने हैं। इन सबोंमें भगवान् बुद्धकी मूर्तियाँ हैं। आधार स्तूपका अंग नहीं है; परन्तु निर्माताने यह समझकर कि कहीं सारा स्तूप ही धँसकर गिरान पड़े, पहले मजबूत आधार, जो क्राफ़ी ऊँचा है, बनाया और उसपर स्तूप निर्माण किया। अनुमान किया जाता है कि पहले निर्माताकी इच्छा थी कि आधार भी चित्रांकित हो; परन्तु बादमें उसने अपना विचार बदल डाला। आधार इतना ऊँचा है कि प्रथम अटारीमें पहुँचनेके लिए कई पगडंडियाँ पार करनी पड़ती हैं।

पहली चार अटारियाँ वास्तवमें अटारियोंके आकारकी नहीं हैं। वास्तवमें कोई ऐसा शब्द नहीं मिलता है, जो इसके लिए उचित हो। शब्दाभावके

कारण अटारी शब्द व्यवहृत किया गया है। अटारीके अग्र भागकी दीवार ऊँची नहीं होती है। अटारी ऐसी बनती है कि उसमें खड़ा मनुष्य निम्न-भागमें देख सकता है; परन्तु इन चार अटारियोंके अग्र भागकी दीवारें ऊँची हैं। बाहरी और भीतरी दीवारें चित्रांकित हैं। बाहरी दीवारें बीच-बीचमें द्वार बनानेके लिए विभक्त कर दी गई हैं। इन द्वारोंके ऊपर सिंहमुख अंकित हैं। हर एक अटारीमें पानी बहनेके लिए मकरमुख बने हुए हैं। इन चारों अटारियोंकी दीवारोंमें जो चित्र और पुष्पादि अंकित हैं, वे भारतकी भास्करकलाके उच्च नमूने हैं। चित्रकारीके चारों ओर फूलोंकी लम्बी लकीर बनी हुई है। गवाक्षोंकी रचना भी अतीव सुन्दर है। कुसुम-स्तवकोंकी अंकनकला उच्चकोटिकी है, और सिंह तथा मकरके मुख भी बड़ी खूबीसे उत्कीर्ण किये गये हैं। सिंहद्वारोंके तोरण देखकर चकित हो जाना पड़ता है। ऊपरकी तीन अटारियाँ ही वास्तवमें अटारियाँ कहनेके लायक हैं। ये चित्रकारी-विहीन हैं। इनमें गोलाकार छोटे-छोटे जालीदार स्तूप बने हुए हैं, जिनमें बुद्ध भगवान्की मूर्तियाँ बनी हुई हैं। दुःखका विषय है कि कितनी ही मूर्तियोंके उत्तमांग गिर गये हैं। इन तीनों अटारियोंके मध्यभागमें (ये तीनों एक दूसरेसे एकदम मिली-जुली हैं) एक मुख्य स्तूप है, जिसमें बुद्धदेवकी मूर्ति है; परन्तु जाली न होनेके कारण वह देखी नहीं जा सकती। शिरोभागके आठ कोण हैं, जिनमें तीन छत्र हैं। ऐसा ज्ञात होता है कि बोरोबुद्धरके समीप कोई विहार रहा होगा, जहाँ भिक्षुगण रहते होंगे। आसपास कितने ही छोटे स्तूप बने हुए हैं, जो शायद अन्य बौद्ध पुण्यात्माओंकी स्मृतिमें बनाये गये होंगे; परन्तु इस समय अधिकांश भग्नावस्थामें हैं।

मूर्तियाँ और चित्रकारी

बौद्धोंका यह विश्वास है कि बुद्धत्व प्राप्त करनेके लिए पहले कितने ही अवतार ग्रहण करने पड़ते हैं, जिसमें आत्म-त्यागके कार्य करने पड़ते हैं। इस

प्रकारके शुभकार्य करते हुए बोधिसत्व बुद्धत्व प्राप्त करते हैं। भगवान गौतमने ऐसे ही बुद्धत्व प्राप्त किया था। उनके अतिरिक्त अन्य कई बोधिसत्वोंने बुद्धत्व प्राप्त किया था। बौद्धधर्ममें आदि बुद्धकी प्रथम कल्पनाकी गई है। इसके सिवा पाँच ध्यानी बुद्ध भी हैं। वे शाक्यमुनिसे भिन्न हैं। जावामें जो बौद्धधर्म प्रचलित था, वह महायानपंथका था, जो अब भी चीन, जापान तथा नेपालमें प्रचलित है। बोरोबुद्धकी अटारियोंके गवाक्षोंमें जो बुद्ध विराजमान हैं, वे सभी ध्यानी बुद्ध हैं। उनकी संख्या बयान्त्रवे हैं। पूर्व दिशाके सभी अक्षौभ्य हैं, और वे भूमिपार्षमुद्रासन अवस्थामें हैं। दक्षिण दिशामें सभी रत्नसम्भव हैं, और वे वरमुद्रासन अवस्थामें हैं। पश्चिममें सभी अमिताभ हैं, जो ध्यानमुद्रासन अवस्थामें हैं। उत्तरके सभी अमोघसिद्ध हैं, जो अभयमुद्रासन अवस्थामें बैठे हैं। ऊपरकी तीन अटारियोंमें ध्यानी बुद्ध वज्रसत्त्व बैठे हैं। उनकी संख्या वहत्तर है, और वे छोटे-छोटे जालीदार स्तूपोंमें बैठे हैं। शिरोभागके मुख्य स्तूपमें अक्षौभ्यबुद्धकी मूर्ति थी; परन्तु स्थानच्युत होनेके कारण पथिकाश्रममें रखी है।

चित्रकारी

इसका वर्णन कठिन है। भास्करोंने युद्ध-विग्रह और कलहके चित्र अंकित नहीं किये हैं। इसका तात्पर्य यह हो सकता है कि भक्ति-स्थानमें ऐसे चित्र उचित नहीं। यद्यपि भास्कर्य दक्षतापूर्वक किया गया; पर भिन्न-भिन्न श्रेणीके आदमी उत्कीर्ण करनेमें उनको यथोचित सफलता नहीं मिली। उदाहरणार्थ, राजा, ब्राह्मण और भिक्षुके लिए उन्होंने अलग-अलग पद्धतियाँ ग्रहण कीं; पर दो राजाओंको अंकित करनेके लिए विभिन्नता निम्नाहना कठिन हो गया। इसलिए यह पता लगाना मुश्किल हो गया है कि कौन राजा कहाँ अंकित किया गया है। जहाँ-जहाँ पुस्तकानुसार अंकन-कार्य किया गया है, वहाँ पहचाननेमें कठिनाई नहीं होती है; परन्तु अन्यत्र पहचानना कठिन कार्य है,

और तर्कका आश्रय लेना पड़ता है। चित्रकारी पूर्व दिशाके द्वारसे देखना प्रारम्भ करना चाहिए और दक्षिण हाथकी ओर चलकर इन अटारियोंकी प्रदक्षिणा करते समय देखना चाहिए। आधारके शिरोभागमें अटारियोंके नीचे जो मेखला सदृश भाग बनाया गया है, उसपर मनुष्य-जीवनके दैनिक चित्र अंकित किये गये हैं। इस बातका ध्यान रखा गया है कि मनुष्योंके दुःखोंको दर्शकगण स्पष्ट अवलोकन कर सकें। किस प्रकार भवसागर पार किया जा सकता है और जन्मान्तरके चक्रसे छुटकारा प्राप्त हो सकता है, आदि बड़ी खूबीके साथ दिखाया गया है।

इसके बाद अटारियाँ प्रारम्भ होती हैं। प्रथम चार दीवारोंके विषयमें यह ध्यान रखना चाहिए कि उनके बाहर और भीतर दोनों ओर चित्र अंकित हैं। प्रथम अटारीकी बाहरी दीवारपर भगवान बुद्धकी पूर्वजन्म-कथाएँ उत्कीर्ण की गई हैं। वे जातकमालाके अनुसार बनाई गई हैं। प्रत्येक दीवारपर दो भिन्न-भिन्न प्रकारकी चित्रकारियाँ हैं। पश्चिम-द्वारपर एक राक्षसका वर्णन है, जो एक स्त्री और उसके पुत्रको खा गया है। उसके पास ही के चित्रमें एक कच्छप एक भग्नपोतके मनुष्योंको बचाता है। उसकी पूजा विधर्मी जावा-निवासी पुत्र-प्राप्तिकी आशासे करते हैं। पीछेकी दीवारपर जो दो प्रकारके वर्णन अंकित हैं, उनमें से शिरोभागमें भगवान् बुद्धके जन्मसे लेकर प्रथम धर्म-प्रचार तकका वर्णन उत्कीर्ण किया गया है। निम्न-भागमें भगवान् बुद्धके पूर्वजन्मोंका वर्णन किया गया है। यहाँ भास्करोंने ललित विस्तारका अनुसरण किया है। दूसरी अटारीकी दीवारके बाहरी भागपर शाक्यमुनिके पूर्वजन्मोंका वर्णन है, जो भलीभाँति समझमें नहीं आता। केवल मयूरावतार बोधिसत्वका पकड़ा जाना और उसका धर्म-प्रचार समझ पड़ता है। पिछले हिस्सेपर गंडव्यूह पुस्तकका अंश उद्धृत है, जिसमें बोधिसत्व सुधनक सत्यशोधनके लिए जाना बताया गया है। इसलिए सब प्रकारके लोगोंसे उनका मिलना दिखाया गया है—

जैसे बोधिसत्व, भिक्षुगण, भिक्षुणी-समुदाय तथा अन्य लोग । दक्षिण-पश्चिमके द्वारोंके निकट भगवान शिवकी मूर्ति अंकित है । पासमें नन्दी भी है । सुधनका भैत्रेयबोधिसत्वकी प्राप्ति-पर्यन्त वर्णन है । तृतीय मटारीमें भैत्रेयबुद्धका ही वर्णन अंकित किया गया है, जो बौद्ध-मतानुसार इस समय वर्तमान है । भैत्रेयबुद्धका शेरत्राण स्तूपकाकार है, इसलिए उनका पता शीघ्र ही लग जाता है । अनेक मन्दिरोंके चित्र भी उत्कीर्ण हैं । अनेक पद्मासीन मूर्तियाँ भी हैं । सर्वत्र भैत्रेयबुद्ध अंकित हैं । अनुमान किया जाता है कि अनेक पुस्तकोंके आधारपर यह अंकन-कार्य किया गया है ; परन्तु उन विशेष पुस्तकोंका पता नहीं चलता । चतुर्थ मटारीकी बाहरी दीवारपर भी कुछ अंश भैत्रेयबुद्ध-सम्बन्धी हैं । इसके बाद दूसरे बोधिसत्वोंका वर्णन है । पीछेकी दीवारमें अनेक बुद्ध और बोधिसत्व अंकित हैं । स्तूपमें बैठे हुए बुद्धका चित्र कलाका अच्छा नमूना है । तीन कलिकामय पल्लव गुच्छधारी भगवान समन्तबुद्ध, जो भविष्यके अन्तिम बुद्ध हैं, शीघ्र ही पहचाने जा सकते हैं ।

बोरोबुद्धरकी चित्रकारी देखकर यह धारणा दृढ़ होती है कि इसके निर्माणका उद्देश यह व्यक्त करना था कि मनुष्य-समाज इहलोकके दुःख-केशोंसे छुटकारा पाकर अपनी उन्नति करता हुआ किस प्रकार बोधिसत्वपद प्राप्त कर सकता है और अन्तमें बुद्ध बन सकता है । इसलिए पूर्वावतारोंका वर्णन, जिसमें बुद्धदेवके बोधिसत्व बननेका वर्णन किया गया है, और उन कार्यकलापोंका वर्णन किया गया है, जिसके द्वारा यह पद प्राप्त हुआ है, विस्तारपूर्वक अंकित किया गया है । शाक्यमुनि बुद्धका वर्णन और आगामी बुद्धका वर्णन यह दिखलाता है कि हरएक मनुष्य बोधिसत्वपद प्राप्त कर सकता है, यदि उसके कार्य उत्तम हों । बोधिसत्वपद प्राप्ति किसी जाति वा वर्ण-विशेषका ही जन्मसिद्ध अधिकार नहीं है, यह भी व्यक्त करनेको चेष्टा की गई है । भगवान बुद्ध पूर्वावतारमें हरिण, कच्छप, पारधी, मल्लाह इत्यादि

थे, यह इस बातकी पुष्टि करता है । ललित-विस्तारकी मुख्य-मुख्य कथाओंसे सभी भारतीय परिचित होंगे । उनका विस्तारपूर्वक वर्णन करना उचित नहीं । बुद्धका जन्मग्रहण, गोपापाणिग्रहण, महाभिनिष्क्रमण, ज्ञान-प्राप्ति और ज्ञानोपदेश-सम्बन्धी घटनाएँ सर्वविदित हैं ।

बोरोबुद्धरका किसने निर्माण किया, यह कल्पनातीत है । इस बातका भी पता नहीं चलता है कि किस राजाके राज्यकालमें इस भव्य स्तूपका निर्माण हुआ । इतिहास इस विषयमें मौन है । जनश्रुति भी चुपचाप हैं । हाँ, इसकी आकृति, चित्रोंकी उत्कीर्ण-कला और स्तूपके आकारसे अनुमान होता है कि इसका निर्माण ईसाकी नवीं शताब्दीमें हुआ था । आधारकी मेखलाके निम्न-भागकी चित्रावलीके ऊपर छोटे-छोटे लेख उत्कीर्ण हैं, जिनकी लिपिसे यह ज्ञात होता है कि इसकी रचना ईसाकी नवीं शताब्दीके पचासवें वर्षमें हुई थी । यह मि० क्रोम नामक डच पुरातत्त्ववेत्ताका मत है । इसके नामके विषयमें भी अभी तक ठीक पता नहीं चला है । कोई कहते हैं कि बोरोबुद्धरका अर्थ है बहुतसे बुद्ध । कोई दूसरा ही मत देते हैं । शायद इसका नाम 'वरबुद्धाराम' हो । जावा-निवासी बंगालियोंकी भाँति शब्दका उच्चारण करते हैं—यथा, वनक्रमको वोनोक्रमो, सिंहराजको सिंहोराजो, सुखभूमिको सुखोभूमि, अर्जुनको अर्जुनो इत्यादि । शायद वे वरबुद्धारामको बोरोबुद्धाराम कहते-कहते बोरोबुद्धर कहने लग गये हों । वरबुद्धाको बोरोबुद्धराम शब्दसे यह ज्ञात होता है कि इसका निर्माण गौतमबुद्धकी अस्थि या धातुके रक्षणार्थ किया गया हो । इसका इतिहास इस प्रकार कहा जाता है :—

जिस समय जावाके मध्य-प्रदेशमें स्थापित 'मातरम्'का राज्य उन्नतिके शिखरपर था, तब इसका निर्माण हुआ था । ईसाकी दसवीं शताब्दीमें मातरम्का विनाश हुआ और मध्योपहितका विकास हुआ । उस समय मध्यदेशस्थित मन्दिर उजाड़ पड़ गये और धीरे-धीरे स्मृतिसे दूर हो गये । अन्तमें वे भूगर्भशायी हुए । इस विषयमें कुछ लोग दूसरी ही

वात बतलाते हैं। वे कहते हैं, जब अरबोंने मध्योपहितका हिन्दू-साम्राज्य जीत लिया और राजधानीको नष्ट-भ्रष्ट कर डाला, तब यहाँके हिन्दू लोग बलपूर्वक इस्लाममें दीक्षित किये गये। कितने ही धर्मप्राण हिन्दू अपना धर्म बचानेके लिए वाली द्वीप भाग गये। भागते समय यह सोचकर कि कहीं इस्लाम मतावलम्बी इसका विनाश न करें, उन्होंने इसे भी मिट्टीसे छिपा डाला। अन्य लोग कहते हैं कि ज्वालामुखी पर्वतोंसे बहिर्गत भस्मने मन्दिरको भूगर्भशायी बनाया। कुछ भी हो, ईसाकी बारहवीं-तेरहवीं शताब्दीमें लोगोंको इस बातका पता भी नहीं था कि इस स्थानपर ऐसा मन्दिर है। केवल किम्बदन्तियोंने इसका स्मरण बनाये रखा। जब जावा थोड़े समयके लिए अंगरेजोंके हाथमें आया, तब गवर्नर राफेन्सने इस स्थान-विशेषका पता लगाना प्रारम्भ किया; परन्तु स्तूपको खोदकर बाहर निकालनेमें बहुत दिन लग गये। उच्च शासकोंकी आज्ञासे प्राच्य-विशारदोंने इसकी चित्रकारीका निरीक्षण किया, और इसका ठीक-ठीक इतिहास लिखनेका प्रयत्न किया गया। सरकारसे इस बातका अनुरोध किया गया कि इसका संरक्षण किया जाय। इस समय प्राच्य-विशारदोंकी सलाहसे ही इसकी मरम्मत की गई है, और इस बातका पूरा खयाल रखा गया है कि इसका कोई भी अंश टूटने न पाये।

बोरोबुदूरकी मूर्तिकला

यहाँकी मूर्तिकला भारतीय भास्करोंके हस्त-कौशलका सुन्दर नमूना है। यदि भारतीय भास्कर ग्रीक भास्करोंके समान मूर्तिके अंग मनुष्याकार बनानेमें असफल रहे हों, तो भी यह कहना पड़ता है कि मुख-मुद्रा और भाव-भंगी प्रदर्शनमें उन्होंने ग्रीकोंको बहुत पीछे छोड़ दिया था। राजाकी मुख-मुद्रामें क्या विशेषता होनी चाहिए, देवोंकी मुख-मुद्रा कैसी होनी चाहिए तथा रमणियोंकी क्या विशेषता होनी चाहिए—इन सब बारीकियोंसे वे खूब परिचित थे। इसी हस्त-कौशलके प्रतापके कारण एक हजार वर्षके

ऊपर होनेपर भी चित्रोंमें कोई भी त्रुटि नहीं आने पाई है। नृत्यकला भारतीय भास्करोंकी प्रिय वस्तु है, और इसके अंकनमें उन्हें आशातीत सफलता मिली है। रमणियोंका सौष्ठव, मार्दव, अंगमरोड़ तथा शरीरका—खासकर कटि-प्रदेश तथा वक्षःस्थलका आलेखन जिस रीतिसे किया गया है, वह दर्शनीय है। पशु-पक्षी भी अच्छी तरह उत्कीर्ण किये गये हैं। सर्वापेक्षा यदि कोई वस्तु दर्शनीय है, तो वह है बुद्धदेवकी मूर्ति। ऐसी सुन्दर, ध्यानरत प्रतिमा किसी भी देशकी भास्कर-कलाको ख्याति प्रदान कर सकती है। बुद्धदेवका कुञ्चित केशमय जटा-जूटमंडित मुख अपोलोके मुखसे किसी भाँति कम नहीं। उनके शरीरका उपवीत अब भी हजार वर्षके बाद दृष्टिगोचर होता है। जावाका विचार करते समय इस बातका खयाल रखना चाहिए कि यह वर्षा-प्रधान देश है। मकानोंका और खासकर मूर्तियोंका वर्षा द्वारा जितना नुकसान होता है, उतना किसी अन्य वस्तु द्वारा नहीं। ग्रीस, रोम और मिस्रकी कलाके नमूने यदि अच्छी अवस्थामें हों, तो कोई ताज्जुब नहीं। ये देश उष्ण कटिबन्धमें नहीं हैं। जावाकी प्राचीन कलाके नमूने हजारों वर्षोंकी वर्षा और तूफान सहकर भी इस दशामें हैं कि ज्ञात होता है, मानो पचीस वर्ष पूर्व इनका निर्माण हुआ था। बोरोबुदूरकी मूर्तियाँ कलाकी अमरता घोषित करती हैं। बोरोबुदूरके समीपस्थ मेन्दूत-मन्दिरमें प्रतिष्ठित बुद्धदेव और दो बोधिसत्वकी प्रतिमाएँ मनुष्याकारसे भी बड़ी हैं। लावा पत्थरको इतना चिकना बनाकर मूर्तियाँ बनाई गई हैं कि संगमरमर ज्ञात होता है। ऐसी मूर्तियाँ भारतमें भी कम होंगी। यदि भारतीय भास्कर-कलाके नमूने नष्ट हो जायँ और बोरोबुदूर तथा मेन्दूतके मन्दिर मात्र बच जायँ, तब भी भारतीय कलाकी उन्नता घोषित होगी। चञ्चु-कटाक्ष अंकन तथा मुख-गाम्भीर्य व्यक्त करनेसे ऐसा ज्ञात होता है कि ये मानो भारतीय कलाकारोंकी निजी सम्पत्ति हों। इतने सुन्दर भावपूर्ण दीर्घाक्ष अन्यत्र कहाँ? यदि बोरोबुदूरकी मूर्तिकलाका

सम्पूर्ण, सांगोपांग वर्णन किया जाय, तो पूरा पोथा हो जाय ।

इस समय तुषारी पर्वत-स्थित तीन ग्राम-समूह और पूर्व जावाके तीन ग्राम-विशेषको छोड़कर जावामें हिन्दुओंका और कोई नाम-निशान बाक़ी नहीं है । ज्ञात होता है, दसवीं शताब्दीके पश्चात् भारत और जावाका सम्बन्ध टूट गया होगा । भारतमें इस्लाम उग्रतासे प्रवेश कर रहा था और हिन्दू लोग अपना अस्तित्व बनाये रखनेके लिए उससे लड़-भिड़ रहे थे, इसी कारण शायद वे अपने उपनिवेशोंको एकदम भूल गये । इधर जावाका भारतसे सम्बन्ध टूटा, उधर जावामें मध्योपहितका हिन्दू-साम्राज्य दुर्बल हो चला । सामन्त और मांडलिक राजागण आपसमें लड़नेमें व्यस्त थे । मौक़ा पाकर अरबोंने हमला किया । जावा-साम्राज्यका पतन हुआ, और शासनके साथ-साथ हिन्दू और बौद्धधर्म भी द्वीपसे तिरोहित हो गये ।

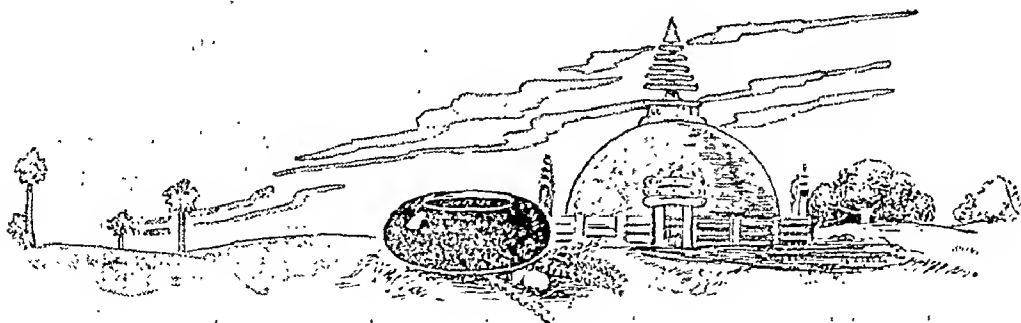
इचपुरातत्त्ववेत्ता जावाकी हिन्दू-जातिके उन्मूलनका मुख्य कारण वर्ण-व्यवस्था बतलाते हैं । वे कहते हैं कि यद्यपि हिन्दूकालमें जावा साहित्य, कला और राज्य-व्यवस्थाके उच्चतम शिखरपर था ; परन्तु सामाजिक हालत बहुत बुरी थी । भारतीय वंशका दावा करनेवाले थोड़ेसे मनुष्य खुद ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य बन बैठे थे ; पर जनसाधारण शूद्र थे । धर्मका

प्राण जनसाधारण हैं । यदि वे ही उदासीन हों, तो धर्म कब तक टिक सकता है ? साम्यवादका प्रचारक इस्लाम साधारण जनताके लिए उद्धारकी आशा लेकर आया । बस, जनता शीघ्र ही मुसलमान बन गई । थोड़ेसे ब्राह्मण-क्षत्रिय कहाँ तक लड़ते ? साम्राज्यका पतन इस हालतमें अवश्यम्भावी था ।

बोरोबुदूरके निरीक्षणके समय मैंने देखा, दो-तीन जावा-निवासी मुसलमान बुद्धदेवके सम्मुख धूप जला रहे हैं । मैंने पूछा—“जानते हो, ये मूर्तियाँ किनकी हैं ?” विनीत भावसे वे बोले—“हाँ, बुद्धदेवकी ।” मैंने पूछा—“तुम लोग मुसलमान क्यों हुए ?” वे बोले—“हम क्या करें ? हमारे पूर्वज हो गये थे । हम लाचार हैं ।” और वे क्या जवाब देते ?

× × ×

दोपहर ढल चुका था । देखते-देखते मन नहीं थकता था । किसी प्रकार वापस चलनेको तैयार हुए । इस जन्ममें इसके दर्शन कब होंगे ? यही सोचते-सोचते मैं जावा-निवासीके शब्दोंकी मन-ही-मन आलोचना करता हुआ श्रद्धावनत और साश्रुवदन बोरोबुदूरसे विदा माँगने लगा । मानो स्तूपने जवाब दिया—“संघं शरणं गच्छामि” । गौतम बुद्ध खिन्नवदन थे-; पर मैत्रेयबुद्धका स्मितमुख आशाका संचार कर रहा था ।



प्राण मन

रवीन्द्रनाथ ठाकुर

मेरी खिड़कीके सामने लाल-मिट्टीकी सड़क है ।

उसपर लदी-हुई बैलगाड़ियाँ चलती हैं, पयालके गड्ढर लादे सन्थाल स्त्रियाँ हाट जाती हैं और शामको हँसती-बतरती घर लौटती हैं ।

परन्तु मनुष्यके चलने-फिरनेकी ओर आज मेरा ध्यान नहीं ।

जीवनका जो भाग अस्थिर है, नाना चिन्ताओंसे उद्विग्न है, नाना चेष्टाओंसे चंचल है, वह आज ढक गया है । शरीर आज रुद्र है, मन आज अनासक्त है ।

लहरोंवाला समुद्र बाहरी समुद्र है ; भीतर जहाँ पृथिवीकी गभीर गर्भशय्या है, लहरें वहाँकी बातोंको गड़बड़ीमें डालकर भुला देती हैं । लहरें जब ठहर जाती हैं, तो समुद्र अपने गोचरके साथ अगोचरकी, गभीर तलेटीके साथ ऊपरी भागकी अखंड एकतासे स्तब्ध होकर विराजा करता है ।

उसी तरह मेरे सचेष्ट प्राणको छुट्टी मिलते ही उस गभीर प्राणमें मुझे स्थान मिला, जहाँ विश्वके आदिकालका लीलाक्षेत्र है ।

जब तक मैं राह-चलता पथिक था, तब तक मुझे उस सड़कके किनारेवाले वटवृक्षकी ओर देखनेका समय नहीं मिला ; आज राह छोड़कर खिड़कीपर खड़ा हुआ हूँ, आजसे उसके साथ मेरा मुकाबिला शुरू हो गया ।

मेरे चेहरेकी ओर देख-देखकर क्षण-क्षणमें वह व्याकुल हो उठता है । मानो कहना चाहता है, “समझमें नहीं आता ?”

मैंने सान्त्वना देते हुए कहा—“समझ गया, सब समझ गया ; तुम इस तरह व्याकुल मत होओ ।”

कुछ देरके लिए फिर शान्त हो जाता है । फिर देखता हूँ कि एकाएक चंचल हो उठा ; फिर वही थरथर, मरमर, मलमल ।

फिर उसे शान्त करके कहा—“हाँ हाँ, तुम्हारी बात ठीक है ; मैं तुम्हारा ही खेलका साथी हूँ,

लाखों-करोड़ों वर्षोंसे इस मिट्टीके खेल-घरसे मैंने भी तुम्हारी ही तरह अंजुलि भर-भरकर सूर्यालोक पान किया है, धरणीके स्तन्य-रसमें मैं भी तुम्हारा हिस्सेदार था ।”

तब उसके भीतरसे सहसा हवाका एक शब्द सुनाई दिया, वह कहता रहता—“हाँ हाँ हाँ ।”

जो भाषा रक्तके मर्मरसे मेरे हृत्पिण्डमें बजा करती है, जो प्रकाश-अन्धकारकी निःशब्द आवर्तन-ध्वनि है, वह भाषा उसके पत्र-मर्मरके द्वारा मेरे पास तक आ पहुँचती है । वह भाषा विश्व-संसारकी सरकारी भाषा है ।

उसकी मूल वाणी है—“हूँ, हूँ ; मैं हूँ, हम सब हैं ।”

वह बड़ी खुशीकी बात है । उस खुशीसे विश्वके अणु-परमाणु थरथर काँप रहे हैं ।

उस वटवृक्षके साथ मेरी आज उसी एक-भाषामें उसी एक-खुशीकी बातचीत हो रही है ।

वह मुझे कहता है—“तुम हो न ?”

मैं जवाब देता—“हूँ, हूँ, मीत !”

इसी तरह ‘हूँ’ और ‘हो’ मिलकर एक तालसे ताली बजा रहे हैं ।

[२]

उस वटवृक्षसे जब मेरी बातचीत शुरू हुई, तब वसन्तसे उसके पत्ते कच्चे-कोमल थे ; उनकी अनेक सँधोंमें से आकाशका भागता-हुआ प्रकाश घासपर आकर पृथिवीकी छायाके साथ गलबहियाँ डालकर छिपे-छिपे खेला करता था ।

उसके बाद आषाढ़की वर्षा उतरी ; उसके पत्तोंका रंग बादलों-जैसा गहरा होने लगा । आज उन पत्तोंकी राशि प्रवीणोंकी पक्की बुद्धिकी तरह निविड़ हो गई, बाहरके प्रकाशको अब उनकी किसी भी सँधमें से प्रवेश करनेका रास्ता नहीं मिलता । तब पेड़ था

गरीबकी लड़कीकी तरह ; आज वह धनी-घरकी गृहणी है ; मानो पर्याप्त परितृप्तिका चेहरा हो ।

आज सवेरे उसने अपने मरकत-मणिका बीस लड़ियोंवाला हार फिलमिलाते हुए मुझसे कहा—
“सिरपर इस तरह ईंट-पत्थर ओढ़कर क्यों बैठे हुए हो ? मेरी तरह एकदम भरपूर बाहर चले आओ न !”

मैंने कहा—“मनुष्यको जो भीतर-बाहर दोनों सम्हालते हुए चलना पड़ता है ।”

पेड़ जरा हिल-हिलाकर बोलें उठा—“समझ नहीं सका ?”

मैंने कहा—“हमारी दो दुनिया हैं, एक भीतरकी और दूसरी बाहरी ।”

पेड़ने कहा—“गजब करते हो ! भीतरकी चीज है कहाँ ?”

—“मेरे अपने ही घेरेमें ।”

—“वहाँ करते क्या हो ?”

—“सृष्टि करता हूँ ।”

—“सृष्टि, और घेरेके भीतर ! तुम्हारी बातें समझना मुश्किल है ।”

मैंने कहा—“जैसे तटोंके बन्धनमें पड़कर नदी होती है, वैसे घेरेमें घिरकर ही तो सृष्टि होती है । एक ही चीज घेरेमें घिरकर कहीं हीरेका टुकड़ा होता है और कहीं बड़का पेड़ ।”

पेड़ने कहा—“तुम्हारा घेरा कैसा है, जरा सुनूँ तो सही !”

मैंने कहा—“वह मेरा मन है । उसमें जो-कुछ आकर अटक जाता है, वही सृष्टि हो जाती है ।”

पेड़ने कहा—“तुम्हारी वह घेरेमें घिरी सृष्टि हमारे चन्द्र-सूर्यके सामने कितनी-सी दिखाई देती है ?”

मैंने कहा—“चन्द्र-सूर्यसे उसे तो नापा नहीं जा सकता, चन्द्र-सूर्य तो बाहरकी चीज हैं ।”

—“तो फिर नापोगे किससे ?”

—“सुखसे—खासकर दुःखसे ।”

पेड़ने कहा—“यह देखो, पुरवैया हवा मेरे कानोंमें

बातें करती है, मेरे प्राणोंमें उसकी प्रेरणा जाग उठती है ; पर तुम न-जाने काहेकी बातें कह गये, मैं कुछ समझा ही नहीं ।”

मैंने कहा—“समझाऊँ कैसे ? तुम्हारी उस पुरवैया हवाको ज्यों ही हमने अपने घेरेके भीतर वीणाके तारोंमें बाँध दी, त्यों ही वह हवा एक सृष्टिसे दूसरी सृष्टिमें आ पहुँची ! यह सृष्टि किस आकाशमें स्थान पाती है, किस विराट चित्तके स्मरणाकाशमें, सो मैं भी ठीक नहीं जानता । मालूम होता है, मानो वेदनाका कोई आकाश है । वह आकाश नापनेका आकाश नहीं ।”

—“और उसका काल ?”

—“उसका काल भी घटनाका काल नहीं, वेदनाका काल है । इसीसे वह काल संख्याके परे है ।”

—“दो आकाश और दो कालोंके जीव हो तुम, तुम अद्भुत हो ! तुम्हारी भीतरकी बातें मैं कुछ भी नहीं समझा ।”

—“न समझे तो न सही ।”

—“मेरे बाहरकी बातें तुम ही कौन ठीक-ठीक समझते हो ?”

—“तुम्हारी बाहरकी बात मेरे भीतर आकर जैसी बन जाती है, उसे अगर समझना कहो तो वह समझना है, अगर गीत कहो तो गीत है, कल्पना कहो तो कल्पना है ।”

[३]

पेड़ने अपनी सारी-की-सारी डालोंको उठाकर मुझसे कहा—“जरा ठहरो । तुम बहुत ज्यादा सोचा करते हो, और बकते भी बहुत हो ।”

सुनकर मैंने सोचा—‘बात तो सच है ।’ मैंने कहा—“चुप रहनेके लिए ही तुम्हारे पास आता हूँ, पर अभ्यास-दोषसे चुप रहते हुए भी बड़बड़ाता रहता हूँ ; जैसे कोई-कोई सोते-सोते चला करता है ।”

कागज और पेन्सिल उठाकर फेंक दी, उसीकी

तरफ अनिमेष दृष्टिसे देखता रहा। उसकी चिकनी पत्तियाँ उस्तादकी उँगलियोंकी तरह आलोक-बीणाके तारोंपर द्रुत-तालसे पड़ने लगीं।

सहसा मेरा मन बोल उठा—“यह तुम जो देख रहे हो और यह मैं जो सोच रहा हूँ, इनके बीच योग कहाँ पर है ?”

मैंने उसे डपटकर कहा—“फिर तुम्हारा प्रश्न ? चुप रहो।”

चुप रहा, एकटक देखता रहा। समय बीतता गया।

पेड़ने कहा—“कहो, सब समझ गये ?”

मैंने कहा—“समझ गया।”

[४]

वह दिन तो चुपचाप ही बीत गया।

दूसरे दिन मेरे मनने मुझसे पूछा—“कल पेड़की तरफ देखते-देखते अचानक कह उठे थे ‘समझ गया’, क्या समझे, बताओ तो ?”

मैंने कहा—“मनुष्यके प्राण अपने ही अन्दर नाना चिन्ताओंसे घुल-घुलाकर मैले हो गये हैं। इसलिए प्राणोंका विशुद्ध रूप देखना हो, तो देखना चाहिए उस घासकी ओर, उस पेड़की ओर।”

—“कैसा देखा तुमने ?”

—“देखा, उन प्राणोंमें अपने ही आपमें क्या आनन्द है ! अपनेको लेकर उसने अपने पत्ते-पत्तेपर, फूल-फूलपर, फल-फलपर कितने जतनसे कैसे-कैसे नक्शे उतारे हैं, कैसे-कैसे रंग भरे हैं, कितनी गन्ध, कितना रस, कोई ठीक है ! इसीसे उस बड़की ओर ताकता हुआ मन-ही-मन कह रहा था—ओ वनस्पति, जनमते ही पृथिवीपर प्रथम प्राण जो आनन्द-ध्वनि कर उठा था, वही ध्वनि तुम्हारी शाखा-शाखामें हो रही है। वही आदियुगकी सरल हँसी तुम्हारे पत्ते-पत्तेपर मलमला रही है। मेरे भीतर वह प्रथम प्राण आज चंचल हो उठा है। चिन्ताओंकी चहारदीवारीके भीतर वह वन्दी होकर बैठा था, तुमने उसे जुलाकर कहा

है—अरे, आ न रे उजालेमें, हवामें आ ; और मेरी ही तरह ले आ अपने रूपकी तूलिका, रंगकी कटोरी, और रसका प्याला !”

मन मेरा कुछ देर चुप बना रहा। उसके बाद कुछ उदास होकर बोला—“तुम प्राणकी ही बातको लेकर कुछ ज्यादाती किया करते हो, मैं जो इतना सामान इकट्ठा करता हूँ, उसकी बातें इस तरह सजा-सजाकर क्यों नहीं कहते ?”

—“उसकी बात और क्या कहूँ ! उसने खुद ही अपने टंकार मंकार हुंकार क्रेंकारसे आकाशको कैपा रखा है। उसके भारसे, उसकी जटिलतासे, उसके जंजालसे पृथिवीका हृदय व्यथित हो उठा है। बहुत सोचता हूँ, समझमें ही नहीं आता, इसका अन्त कहाँ है। थाकपर थाक और कितनी थाकें लगेंगी, गाँठोंपर गाँठ और कितनी गाँठें पड़ेंगी ? इस प्रश्नका उत्तर था उस पेड़के पत्तोंपर।”

—“अच्छा ! क्या जवाब था, सुनूँ ?”

—“वह कहता है, प्राण जब तक नहीं हैं, तब तक सब-कुछ केवल स्तूप है, सब-कुछ भार है। प्राणोंका स्पर्श लगते ही उपकरणोंके साथ उपकरण, सामानके साथ सामान, आप ही मिल-जुलकर अखंड सुन्दर हो जाता है। उस सुन्दरको ही देखते हो वनविहारी। उसीकी वंशी तो बज रही है वटकी छायामें।”

[५]

तब, मालूम नहीं कबकी कौन-सी पिछली रैन थी, पौ फट चुकी थी।

प्राणने अपनी सुप्ति-शय्या छोड़ दी ; उसी दिन वह पहले-पहले राहपर निकला अज्ञातकी ओर जानेके लिए, अचेतन जगतके उस पार, अनन्त खुले मैदानकी ओर।

तब उसकी देहमें न तो क्लान्ति थी, और न मनमें चिन्ता ; उसकी राजपुत्रकी-सी पोशाकमें न तो कहीं धूल लगी थी और न छिद्र ही हुए थे।

आज आषाढ़के प्रातःकालमें उस अक्लान्त निश्चिन्त प्रसन्न प्राणको देखा, उस वटवृक्षमें । उसने अपनी शाखाएँ हिलाकर मुझसे कहा—“नमस्कार !”

मैंने कहा—“राजपुत्र, मरु-दैत्यके साथ लड़ाई कैसी चल रही है, बताओ तो ?”

उसने कहा—“अच्छी चल रही है, एक बार चारों ओर आँख उठाकर देखो न ।”

आँख उठाकर देखा, उत्तरका मैदान वाससे ढका पड़ा है, पूरवका मैदान धानके अंकुरोंसे पट गया है, दक्षिणमें बाँधके किनारे ताड़वृक्षोंकी पंक्ति खड़ी है; पश्चिममें शाल-ताड़-महुआ और आम-जामुन-खजूर सबने मिलकर ऐसी भीड़ लगा दी है कि दिगन्त दिखाई ही नहीं देता ।

मैंने कहा—“राजपुत्र, धन्य हो तुम ! तुम कोमल हो, किशोर हो ; और दैत्य जैसा प्रवीण है, वैसा ही कठोर ; तुम छोटे हो, तुम्हारा तूण छोटा है, तुम्हारे तीर छोटे हैं ; और वह है विपुल, उसका वर्म मोटा है, उसकी गदा भारी है । फिर भी तो देखता हूँ, तुम्हारी ही ध्वजा उड़ रही है दिशा-विदिशाओंमें ; दैत्यकी पीठपर तुमने पाँव रख दिया है, पत्थर हार मान रहा है, धूल सब-कुछ मंजूर करके दस्तखत किये दे रही है ।”

वटवृक्षने कहा—“तुमने इतना समारोह कहाँ देखा ?”

मैंने कहा—“तुम्हारी लड़ाईको मैं देखता हूँ शान्तिके रूपमें, तुम्हारे कर्मको मैं देखता हूँ विश्रामके वेशमें, तुम्हारी विजयको मैंने देखा है नम्रताकी मूर्तिमें । इसीलिए तो तुम्हारी छायामें साधक आकर बैठे हैं, उस सहज युद्ध-जयके मन्त्र और उस सहज अधिकारकी सन्धिको सीखनेके लिए । प्राण किस तरह अपना काम करते हैं, वन-वनमें तुमने उसकी पाठशालाएँ खोल दी हैं । इसीसे जो क्लान्त हैं, थके हुए हैं, वे तुम्हारी छायामें आते हैं ; और जो आर्त हैं, दुःखी हैं, वे तुम्हारी वाणी ढूँढ़ते फिरते हैं ।”

मेरी स्तव स्तुति सुनकर वटके भीतरका प्राण-पुरुष शायद खुश हो गया, वह कहने लगा—“मैं निकल पड़ा हूँ मरु-दैत्यके साथ लड़ाई लड़ने, मगर मेरा एक छोटा भाई है, वह न-जाने किस लड़ाईमें कहाँ चला गया, मुझे अब उसकी कुछ टोह ही नहीं मिलती । कुछ देर पहले तुम क्या उसीकी बात कह रहे थे ?”

—“हाँ, उसीका हम लोगोंने नाम रख दिया है मन ।”

—“वह मुझसे चंचल है । किसी भी बातमें उसे सन्तोष नहीं । उम अशान्तकी खबर मुझे दे सकते हो, कहाँ है ?”

मैंने कहा—“कुछ-कुछ जरूर दे सकता हूँ । तुम लड़ रहे हो जीनेके लिए, वह लड़ रहा है पानेके लिए ; और भी दूर और एक लड़ाई चल रही है छोड़नेके लिए । तुम्हारी लड़ाई है अचेतनके साथ, उसकी लड़ाई है अभावके साथ ; और भी एक लड़ाई है, वह है संचयके साथ । लड़ाई जटिल होती जा रही है ; व्यूहमें जो प्रवेश कर रहा है, उसे व्यूहसे निकलनेका रास्ता ढूँढ़े नहीं मिल रहा । हार-जीत अनिश्चित होनेसे चक्करमें पड़ जाता है । इस दुविधामें तुम्हारी यह हरी पताका योद्धाओंको आश्वासन दे रही है । कह रही है—‘जय, प्राणोंकी जय !’ गानकी तान बढ़ती ही चलती है, किस सप्तकसे किस सप्तकमें चढ़ गई, उसका कोई ठिकाना नहीं ! इस स्वर-संकटमें उसका तम्बूरा अपने सरल तारसे कह रहा है—‘भय नहीं, भय नहीं, डरनेकी कोई बात नहीं ।’ कह रहा है—“यह देखो, मूल सुर मैंने बाँध रखा है, यह आदि प्राणका स्वर है । सभी उन्मत्त तानें इस सुरसे सुन्दरके स्थायीमें आकर मिलेंगी, आनन्दके गानमें आकर एक हो जायँगी । सम्पूर्ण पाना, सम्पूर्ण देना फलकी भाँति खिल उठेगा, फलकी तरह फल उठेगा ।”

अनुवादक
धन्यकुमार जैन

भारतवर्षसे स्वर्ण-निर्यात

श्री गोपीलाल चौधरी, बी० ए०, एल-एल० बी०

बहुत पुराने जमानेसे—सभ्यताके प्रारम्भिक कालसे ही—व्यापार-व्यवसायके द्वारा भारतवर्षमें अपरिमित सोना-चाँदी आता रहा है ; परन्तु यह भी भाग्यका एक अटल नियम जान पड़ता है कि भारतवर्ष कठिन परिश्रमसे जो स्वर्ण और अन्य बहुमूल्य सम्पत्ति संचित करता है, वह किसी-न-किसी बहाने विदेशोंको चली जाती है—कम-से-कम ईस्वी सन्की आठवीं-नवीं शताब्दीसे यही क्रम जारी है। इतिहासके पन्नोंको उलटिये। मुसलमानोंके हमले इसी समयसे प्रारम्भ हुए थे। प्रारम्भिक हमलोंके पश्चात् सन ६६६ के करीब महमूद गज़नवीके धावे हुए। उसने सत्रह बार भारतवर्षपर चढ़ाई की, और प्रत्येक बार यहाँसे बहुत-सा सोना-चाँदी और अन्य बहुमूल्य सम्पत्ति लूटकर ले गया। उसके बाद मुहम्मद गोरीके धावे शुरू हुए। फिर चंगेज खां, तैमूरलंग, नादिरशाह, अहमदशाह दुर्रानी आये। ये लोग भी जितना धन ले जाते बना, ले गये। इनके पश्चात् पुर्तगीज़, डच और फ्रांसीसियोंका नम्बर आया। अब स्वर्ण ले जानेके तरीके बदल गये। मुसलमान लुटेरे भारतवासियोंको युद्धमें परास्त करके बलपूर्वक सम्पत्ति छीन ले जाते थे। अब युद्धका नहीं, बरन व्यापारका सहारा लिया जाने लगा। इन लोगोंका अनुकरण अंगरेज़ोंने बड़ी योग्यतासे किया। भारतीय नरेशों और नवाबोंसे बड़ी-बड़ी रकममें वसूल की गई। यहाँ तक कि वारेन हेस्टिंग्स अवधकी असहाय बेगमोंपर अत्याचार करके उनकी सम्पत्ति अपहरण करनेसे बाज़ न आया। इसके अतिरिक्त ईस्ट इंडिया कम्पनीके नौकर चुंगी-करकी रियायतका अनुचित और अवैध लाभ उठाकर यहाँसे कितना धन ले गये, इसका अनुमान नहीं लगाया जा सकता। अंगरेज़ इतिहासवेत्ता केवल इतना ही कहते हैं कि “कम्पनीके नौकरोंको धन कमानेका सुवर्ण-सुयोग

प्राप्त हुआ, और उससे उन्होंने जितना सम्भव था, लाभ उठाया।” कम्पनीका पाँच पौंड सालाना वेतन पानेवाला कर्मचारी इंग्लैण्ड जाकर इतनी शान-शौकतसे रहता था कि वहाँके बड़े-बड़े लार्ड भी उससे शरमाते थे। कम्पनीको भी भारतीय व्यापारसे इतना लाभ होता था कि प्रतिवर्ष १००-२०० प्रतिशत मुनाफा वाँटा जाता था। ब्रुक आडम्सने यह हिसाब लगाया है कि प्लासी और वाटरलूके मध्यवर्ती कालमें (१७५७-१८१५) भारतवर्षसे एक अरब पौंड (१५ अरब रुपये) की सम्पत्ति इंग्लैण्ड गई। तबसे ब्याज, मुनाफा, वेतन, पेन्शन, होम-चार्जेज़ आदिके रूपमें भारतवर्षसे धनका प्रवाह जारी है।

विगत पाँच वर्षोंसे भारतवर्षसे स्वर्ण बड़े परिमाणमें विदेशोंको चला जा रहा है। अन्य वस्तुओंकी तरह स्वर्णका क्रय-विक्रय और लेन-देन संसारमें होता ही रहता है, इसलिए साधारण तौरपर स्वर्ण-निर्यातका प्रश्न विशेष महत्त्वपूर्ण नहीं जान पड़ता। परन्तु जबसे स्वर्ण-निर्यात प्रारम्भ हुआ, तबसे इस प्रश्नको लेकर देशमें बहुत वाद-विवाद हो रहा है। इस प्रश्नको इतना महत्त्व देनेका मुख्य कारण यह है कि साधारणतः सैकड़ों वर्षोंसे व्यापार-वाणिज्यके द्वारा विदेशोंसे बड़े परिमाणमें सोना भारतवर्षमें आता था। यद्यपि यह स्वर्ण अनेक प्रकारसे पुनः विदेशोंको चला जाता था ; परन्तु भारतवासियोंने आज तक अपनी इच्छासे मूल्य लेकर स्वर्ण कभी विदेशोंको नहीं भेजा। इसी कारण पश्चिमीय देशोंके अर्थशास्त्री भारतवर्षको सोना और चाँदीका ‘विना तलीका गढ़ा’ (Bottomless Sink) कहते हैं ; परन्तु एकाएक स्वर्ण-प्रवाहकी दिशा पलट जानेसे भारतवासी इस तरह घबरा गये हैं। इस परिवर्तनका कारण क्या है ? वह अल्पकालिक है या चिरस्थायी ? इन प्रश्नोंका न तो समुचित उत्तर मिला है

और न मतैक्य स्थापित हुआ है। कोई सरकारकी मुद्रा-नीतिको दोष देता है, कोई विनिमयकी दरको, कोई विदेशी व्यापारको और कोई देशकी निर्धनताको।

स्वर्ण-निर्यात सन् १९३१ के सितम्बर-अक्टूबर मासमें प्रारम्भ हुआ था। तभी कई राष्ट्रीय नेताओंने देश-प्रेमके नामपर जनता और व्यापारियोंसे प्रार्थना की थी कि वे व्यक्तिगत लाभकी अवहेलना करके राष्ट्र-हितके लिए विदेशोंको सोना भेजना बन्द कर दें। इस प्रार्थनाका कोई नतीजा न निकला। तब भारत-सरकारसे कहा गया कि कानून बनाकर वह स्वर्ण-निर्यातको रोक दे, या उसपर इतना निर्यात-कर लगा दे, जिससे विदेशोंको सोना भेजकर कोई लाभ न उठा सके; परन्तु सरकारने इन दोनों बातोंको अस्वीकृत कर दिया। इसपर मि० चेटीने बड़ी व्यवस्थापिका सभामें इस आशयका प्रस्ताव पेश करना चाहा कि भारतवर्षसे स्वर्ण-निर्यात रोक दिया जाय। वायसरायने अपने विशेष अधिकारके बलपर उसे पेश न होने दिया। इन प्रयत्नोंके विफल होनेके कारण सन् १९३१ के सितम्बर माससे आज तक भारतवर्षसे स्वर्ण-निर्यात अबाध रूपसे जारी है। अब तक पौने तीन अरब रुपयेसे अधिकका सोना विदेशोंको जा चुका है। कब तक जाता रहेगा, यह नहीं कहा जा सकता।

भारत-सरकार भारतवर्षके विदेशी व्यापारके अंक प्रतिवर्ष प्रकाशित करती है, जिनसे यह प्रकट होता है कि सन् १९३१ तक प्रतिवर्ष बहुत-सा सोना विदेशोंसे व्यापारके परिशोधमें यहाँ आता था। सन् १९२३ से १९३१ तकके अंक ये हैं :—

सन्	स्वर्णका आयात (लाख रुपयोंमें)	सन्	स्वर्णका आयात (लाख रुपयोंमें)
१९२३-२४	२६२१	१९२७-२८	१८१०
१९२४-२५	७३८८	१९२८-२९	२१२०
१९२५-२६	३४८६	१९२९-३०	१४२२
१९२६-२७	१९४०	१९३०-३१	१२७६

जनताके पास इतना समय कहाँ है कि वह इन अंकोंपर गवेषणापूर्वक विचार करे। स्वर्णका आयात

देखकर वह यही समझती थी कि भारतवर्षकी स्थिति दिनों-दिन सुधरती जा रही है, जब कि दशा इसके सर्वथा विपरीत थी। सरकार केवल विदेशोंको भेजे गये और विदेशोंसे आये हुए माल और उसके सन्तुलन (Visible Balance of Trade) के अंक ही प्रकाशित करती है। कुछ वर्षोंके अतिरिक्त वह सदैव भारतवर्षके पक्षमें रहा है, अर्थात् भारतवर्षको सदैव विदेशोंसे एक बड़ी रकम लेना रहती है; परन्तु इन अंकोंसे वस्तु-स्थितिका सच्चा ज्ञान नहीं होता। यह ज्ञान प्राप्त करनेके लिए हमें देशके लेन-देनकी विषमता (Balance of Payment) के अंकोंपर विचार करना चाहिए, जिसमें दृश्य और अदृश्य सब प्रकारके आयात और निर्यातके अंक सम्मिलित रहते हैं। इस लेखमें इसी विषयपर प्रकाश डालकर भारतवर्षसे स्वर्ण-निर्यात क्यों अवश्यम्भावी है, इस प्रश्नका उत्तर देनेका प्रयत्न किया जायगा।

आधुनिक कालमें प्रत्येक देशका विदेशोंसे व्यावसायिक सम्बन्ध है। यद्यपि महायुद्धके पश्चात् प्रत्येक देशमें आत्म-निर्भरताकी भावना बहुत प्रबल हो गई है, और अधिकांश राष्ट्र आर्थिक क्षेत्रमें स्वावलम्बी बननेका प्रयत्न कर रहे हैं; परन्तु पूर्ण सफलता किसीको भी नहीं मिली है। कोई भी देश अपनी सीमाके भीतर परिवेष्टित नहीं है। एक देशसे दूसरेको मालका आयात-निर्यात होता है; पूँजीका आदान-प्रदान होता है; व्यक्तियों और यात्रियोंका आवागमन होता है। इन सबके कारण प्रतिवर्ष एक देशको दूसरेसे कुछ रकम लेनी होती है और कुछ देना पड़ती है। प्रत्येक देश यह प्रयत्न करता है कि विदेशोंको जो रकम वह देता है, उससे अधिक पाये। यदि यह सम्भव न हो, तो कम-से-कम लेन-देन अवश्य बराबर हो जाय। अन्तर्राष्ट्रीय व्यापारका यह प्रथम सिद्धान्त है। यदि किसी देशके देन-लेनके सन्तुलनसे लेन-देनकी विषमता (Balance of Payment) के प्रतिकूलमें हो जाती है, तो उस देशके विनिमयकी दर गिरने लगती है।

विदेशी उस देशसे अपनी पूँजी खींचने लगते हैं, और उसका विदेशी व्यापार अव्यवस्थित हो जाता है। इसका उस देशके व्यापार-व्यवसाय, उद्योग-धन्धे और साखपर बहुत हानिकारक प्रभाव पड़ता है। विदेशी सराफा-बाज़ार (Foreign Money Market) में साख बनाये रखनेके लिए यह आवश्यक है कि (१) देशमें ऐसी कोई हलचल न हो, जो शान्तिको भंग कर दे, (२) राष्ट्रीय सरकारके बजटमें आमदनी खर्चसे कम न हो और (३) लेन-देनकी विषमता देशके विपक्षमें न हो।

भारतवर्षका विदेशोंसे व्यापारिक, आर्थिक और राजनैतिक सम्बन्ध है। उसे प्रतिवर्ष विदेशोंसे धन लेना और देना होता है। भारत विदेशोंसे जो माल मँगाता है, उससे अधिक विदेशोंको भेजता है; परन्तु विदेशी पूँजीका व्याज, विदेशी जहाज़ोंका भाड़ा, विदेशी कम्पनियोंका मुनाफ़ा, विदेशी नौकरों और पल्टनके सिपाहियोंका वेतन और पेन्शन, भारतीय राजाओं, यात्रियों और विद्यार्थियोंका विदेशोंमें खर्च तथा भारत-सरकारका इंग्लैण्डमें व्यय—इन अनेक मदोंमें भारतवर्ष विदेशोंका ऋणी हो जाता है। यह रकम प्रतिवर्ष कितनी होती है, यह भलीभाँति निश्चय नहीं किया जा सकता। इसी कारण इस सम्बन्धमें बहुत मतभेद है; परन्तु स्वर्ण-निर्यातकी समस्याको समझाने और सुलझानेके लिए इसका निर्णय करना अनिवार्य है; इसलिए हम नीचे मैसूर स्टेटके भूतपूर्व दीवान सर विश्वेश्वरैयाके संगृहीत अंक उद्धृत करते हैं। वे जनता और सरकार दोनोंके विश्वासपात्र हैं, और उनका इस विषयका ज्ञान भी अगाध है, इसलिए उनके अंक वास्तविक वस्तुस्थितिको प्रकट करते हैं, यह माननेमें किसीको इनकार न होगा। अपनी पुस्तक 'प्लैण्ड इकनॉमी फ़ार इंडिया' (Planned Economy for India) में उन्होंने लिखा है—

"One estimate of the total annual charges payable to Great-Britain and foreign countries amounts to about Rs. 161 crores.

This is exclusive of official remittances to England for pensions and other Home-Charges and the liabilities to non-Britishers who have trade relations with India."

अर्थात्—“एक अनुमानके अनुसार भारतवर्षको इंग्लैण्ड और अन्य देशोंको प्रतिवर्ष १६१ करोड़ रुपया देना होता है। इसमें पेन्शन आदि, अन्य ‘होम-चार्जेज’ की रकम तथा जिन विदेशियोंका भारतवर्षसे व्यापार-सम्बन्ध है, उन्हें अदा की जानेवाली रकम शामिल नहीं है।”

इस रकमका व्यौरा निम्न-लिखित है :—

- | | |
|---|----------|
| १—अंगरेजी और विदेशी जहाज़ी कम्पनियोंका भाड़ा | ३५ करोड़ |
| २—विदेशी बैंकोंको विनिमय और अन्य कमीशन | २१ करोड़ |
| ३—व्यावसायिक मुनाफ़ा, वेतन आदि—उन अंगरेजोंको, जो हिन्दुस्तानमें खदान, कारखाना आदिमें काम करते हैं | ४० करोड़ |
| ४—इंग्लैण्डकी भारतवर्षमें लगी पूँजीपर ५% के हिसाबसे व्याज | ६१ करोड़ |

जोड़ १६१ करोड़ रुपये

उपर्युक्त अंकोंमें भारतीय विद्यार्थियों, यात्रियों और राजा-महाराजाओंका खर्च, जो प्रायः ४ करोड़ रुपये आँका जाता है, इंग्लैण्डमें अदा की गई पेन्शन और वेतन, जो ८ करोड़ रुपयेके लगभग होता है, और भारत-सरकारके खर्चके लिए मँगाये गये माल (General Stores) और भारतीय रेल आदिका व्यय सम्मिलित नहीं है। अतएव यह कहनेमें अत्युक्ति न होगी कि भारतवर्षको प्रतिवर्ष विदेशोंको दो अरब रुपया चुकाना पड़ता है।

अब प्रश्न यह है कि भारत प्रतिवर्ष दो अरब रुपये किस प्रकार अदा कर सकता है? एक व्यक्तिके दूसरे व्यक्तिसे और एक राष्ट्रके दूसरे राष्ट्रसे देन-लेनमें विशेष अन्तर नहीं है, इसलिए भारतवर्ष विदेशोंका ऋण निम्न-लिखित तरीकोंमें से किसी एक या अनेकसे अदा कर सकता है—(१) माल भेजकर, (२) सेवा करके, (३) इंग्लैण्ड या अन्य देशोंसे कर्ज़ लेकर, (४) देशमें

विदेशी पूँजीकी बढ़ती करके और (५) सोना भेजकर ।

अब हम यह विचार करेंगे कि भारतवर्ष अन्तिम तरीकेको छोड़कर अन्य तरीकोंसे अपना वार्षिक कर्ज अदा कर सकता है या नहीं ।

सर्वप्रथम माल भेजनेके उपायको लीजिए । भारतवर्ष बड़े परिमाणमें विदेशोंको कपास, चावल, सन, तेलहन, चमड़ा, चाय आदि वस्तुएँ भेजता है । विदेशोंसे आये हुए मालकी कीमत घटाकर, सन् १९२३ से विगत वर्ष तक, प्रतिवर्ष भारतवर्षको विदेशोंसे जो रकम लेना रहती थी, उसकी तादाद निम्न-लिखित तालिकामें बतलाई गई है :—

सन्	भारतवर्षका विदेशोंसे लेना (लाख रुपये)	सन्	भारतवर्षका विदेशोंसे लेना (लाख रुपये)
१९२३-२४	११०५३	१९२६-२७	५३८१
१९२४-२५	११७६६	१९२७-२८	३७१३
१९२५-२६	११६०५	१९२८-२९	२२२६
१९२६-२७	३५२०	१९२९-३०	—५४७
१९२७-२८	५१३४	१९३०-३१	२७०६
१९२८-२९	६६५०	१९३१-३२	१२२६

इन अंकोंसे यह विदित होता है कि सन् १९२५-२६ में भारतवर्षको विदेशोंसे सबसे अधिक रकम लेनी थी । सन् १९२३-२४ से पहलेके अंक नहीं दिये गये हैं; परन्तु उससे पहले भारतवर्षका सन् १९२५-२६ की अपेक्षा अधिक रुपया कभी विदेशोंसे लेना बाकी न था । उस समय भारतवर्षका विदेशी व्यापार सबसे अधिक उन्नत था । वस्तुओंका मूल्य आजकलसे दुगना था, और उनकी माँग भी खूब थी । ऐसे समयमें भारत विदेशोंसे अधिक-से-अधिक एक अरब उन्नीस करोड़ रुपयोंका लेनदार हो सका ; परन्तु यह स्थिति केवल तीन वर्ष रही । सन् १९२६-२७ में यह रकम घटकर ३५ करोड़ रह गई । सन् १९२८-२९ में ६६ करोड़ तक बढ़ी ; परन्तु उसके बाद फिर घटने लगी, और सन् १९३२-३३ में भारतवर्षसे अधिक माल जानेके स्थानमें विदेशोंसे ५४० लाखका माल यहाँ अधिक आया । अतएव विदेशी व्यापारका

संतुलन भारतवर्षके पक्षमें रहेगा या विपक्षमें और उसकी तादाद कितनी होगी, यह निश्चयात्मक रूपसे नहीं बतलाया जा सकता । परन्तु इतना स्पष्ट है कि अभी तक भारतवर्ष केवल मालके निर्यातसे कभी अपना ऋण अदा नहीं कर सका ।

भविष्यके सम्बन्धमें भी हमारा यही विश्वास है कि भारतवर्ष केवल माल भेजकर अपना ऋण, जब तक उसके परिमाणमें अत्याधिक कभी न होगी, अदा न कर सकेगा । इसके अनेक कारण हैं :—

(१) यद्यपि विगत दो वर्षोंसे वस्तुओंके मूल्यमें कुछ बढ़ती हो रही है ; परन्तु जो देश स्वर्णमानपर है, वहाँ कोई विशेष परिवर्तन दृष्टिगत नहीं होता, इसलिए यह आशा नहीं की जा सकती कि निकट-भविष्यमें वस्तुओंका मूल्य उतना ही हो जायगा, जितना व्यापारिक मन्दीके पहले था ।

(२) यह आशा भी नहीं की सकती कि निकट-भविष्यमें अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार-चुंगी (टेरिफ), विनिमय-प्रतिबन्ध आदि शृंखलाओंसे भी छुटकारा पाकर पहलेके समान बढ़ जायगा । प्रत्येक राष्ट्रने आत्म-निर्भरताकी नीतिका अवलम्बन करके टेरिफ, आर्थिक सहायता आदिसे अपने यहाँके कृषि और तैयारी मालके उत्पादनके साधनोंको बहुत बढ़ा लिया है । वह भविष्यमें ऐसी कोई नीति नहीं ग्रहण करेगा, जिससे इन साधनोंको हानि पहुँचे ।

(३) महायुद्धके पश्चात् रूस, ब्रेजिल, अर्जेन्टाइन, कनाडा आदि देशोंमें कृषिजन्य पदार्थोंका उत्पादन बहुत अधिक बढ़ गया है, जिससे भावमें अभूतपूर्व कमी हो जानेपर भी खरीददार नहीं मिलते । इन देशोंकी धरती नई होनेके कारण अधिक उपजाऊ है, लगान कम है और कृषिके साधन अधिक उन्नत हैं, इसलिए वे यूरोपीय देशोंको भारतकी अपेक्षा कम कीमतपर माल भेज सकते हैं । यही कारण है कि भारतवर्षसे कृषिजन्य पदार्थोंका निर्यात दिनोंदिन कम होता जा रहा है । यहाँ तक कि इंग्लैण्डमें यहाँके

मालको रियायत मिलनेपर भी भारतवर्षकी तुलनामें अन्य देशोंके मालकी खपत बढ़ रही है। सन १९३१-३२ की रिपोर्टमें भारतके लन्दन-स्थित ट्रेड-कमिश्नरने लिखा था :—

“The imports of wheat declined, chief reason being that the prices of Indian wheat were generally above world parity, throughout the year, with the result that there was little demand for it in the U. K.

“Coffee declined to half of 1930 inspite of 2s. 4d. preference, while that of central America increased.

“Very little business was done in Indian cotton because of its relative high price as compared with America and Egypt.

“As Argentine linseed is increasingly cheaper than Indian, the latter suffers when the former is available in sufficient quantity.”

अर्थात्—‘भारतसे गेहूँका आयात कम हो गया, क्योंकि वर्ष-भर भारतके गेहूँकी कीमतें संसारकी कीमतोंसे ऊँची रहीं, इसलिए इंग्लैण्डमें उसकी बहुत कम माँग हुई।

‘काँफीका आयात २ शिलिंग ४ पेंसकी रियायत मिलनेपर भी सन् १९३० का आभ्रा रह गया, जब कि मध्य-अमेरिकासे आयात बढ़ गया।

‘भारतीय कपासमें बहुत कम व्यापार हुआ, क्योंकि उसकी कीमत अमेरिका और मिस्रकी कीमतोंसे ऊँची थी।

‘चूँकि अर्जेन्टाइनकी अलसी सस्ती है, इसलिए जब वह कार्का परिमाणमें प्राप्त होती है, तो भारतीय अलसीकी खपत घट जाती है।’

तबसे प्रतिवर्ष भारतके कृषि-पदार्थोंके निर्यातके घटनेका एक यही कारण बतलाया जाता है; परन्तु विदेशोंमें ही नहीं, वरन स्वयं भारतवर्षमें विदेशी चावल और गेहूँ सस्ता पड़ता है, जिससे उसका आयात रोकनेके लिए उसपर आयात-कर लगाना पड़ता है।

(४) भारतवर्षकी जनसंख्या प्रतिवर्ष बढ़ती जा रही है। खेतीका विस्तार समान गतिसे नहीं हो रहा है और न उसका उत्पादन बढ़ रहा है। इसलिए

यहाँसे अनाजका निर्यात दिनोंदिन कम होता जायगा। बर्माके पृथक् हो जानेसे चावलका निर्यात प्रायः बन्द-सा हो जायगा। जनताके जीवनके स्टैंडर्डके ऊँचा उठनेसे गेहूँ, दाल आदि अन्य पदार्थोंकी माँग देशमें अधिक होने लगेगी। ज्यों-ज्यों देशका औद्योगीकरण होता जायगा, त्यों-त्यों कपास, तमाकू, हड्डी, चमड़ा, सन आदिका निर्यात भी घटता जायगा।

यह आशा भी नहीं की जा सकती कि औद्योगीकरण होनेके पश्चात् भारतवर्ष विदेशोंको तैयारी मालका निर्यात कर सकेगा। यूरोप, उत्तर-अमेरिका और जापान आदि देशोंको तैयारी माल भोजना असम्भव है। अफ्रिका, दक्षिण-अमेरिका और एशियाके पिछड़े हुए देशोंमें माल भेजनेसे यूरोपीय देशोंसे प्रतिस्पर्द्धा होगी, जिसमें सफल होना भारतवर्षके लिए असम्भव नहीं, तो बहुत कठिन अवश्य होगा। इसके सिवा ये देश स्वयं उद्योग-धन्धोंको उन्नत कर रहे हैं, और करते जायँगे। इसलिए तैयारी मालके निर्यातसे सहायता पाना असम्भव है। इस दिशामें सफलता न पानेके कारण ही लन्दन, हैमबर्ग और मिलान स्थित भारतीय ट्रेड-कमिश्नर यूरोपको आजकल जो कच्चा माल जाता है, उसके अतिरिक्त दो प्रकारके मालकी खपत बढ़ानेका प्रयत्न कर रहे हैं—(१) चटनी, गरम मसाला, दाल, सिरका, मिर्च, फल आदि, और (२) गलीचा, दरी, हाथी-दाँत और लकड़ीका सामान, खेलनेके बल्ले और डंडे आदि। इन पदार्थोंकी खपत और मूल्यमें कितनी वृद्धि हो सकती है? कुछ लाख या अधिक-से-अधिक दो-चार करोड़ रुपये। अतएव इन वस्तुओंके निर्यातसे हमें विशेष सहायता नहीं मिल सकती।

यह कहा जा सकता है कि भविष्यमें संसारकी जनसंख्याके बढ़ने और उसके जीवनके स्टैंडर्डके ऊँचा होनेसे अनेक वस्तुओंकी माँग बढ़ जायगी; परन्तु एक सम्भावनामात्रपर निर्भर रहना बुद्धिमानी नहीं है। अभी तो इसके कोई लक्षण नहीं दिखलाई देते। यदि

यह हुआ भी, तो यूरोपके औद्योगिक देश उत्पादनके वर्तमान साधनोंके द्वारा ही उसे पूरा कर सकेंगे, और उन्हें उत्पादनके नये साधन बनानेमें विलम्ब न लगेगा।

यह तर्क और किया जा सकता है कि भारतके औद्योगीकरणसे विदेशोंसे आनेवाले तैयारी मालका परिमाण और मूल्य कम हो जायगा, और इस कारण, भारतके निर्यातमें वृद्धि न होनेपर भी, व्यापारका संतुलन अधिकाधिक भारतके पक्षमें होता जायगा। यह ठीक है कि भारतीय उद्योग-धन्धोंके उन्नत होनेसे विदेशी मालका आयात कम होगा। शक्कर और वस्त्र इसके उदाहरण हैं; परन्तु इससे लाभ उठानेके लिए यह आवश्यक है कि औद्योगीकरणकी गति बहुत तीव्र की जाय। दूसरे यह कि औद्योगीकरणके लिए आवश्यक मशीन, इंजन आदि मँगाने होंगे, जो आयातके अंकोंको बढ़ा देंगे। तीसरे, यदि हम मेशीनों भी यहीं बनाने लगें, तो भी जनताके जीवनका दर्जा उच्च हो जानेसे उसकी आवश्यकताएँ बढ़ेंगी, और वह भोग-विलासकी सामग्री—जैसे मोटर, सोना, चाँदी, बहुमूल्य जवाहरात आदि—की माँग बढ़ा देगी। भारतमें उपर्युक्त पदार्थ पर्याप्तमात्रामें न तो होते ही हैं और न हो ही सकेंगे, इसलिए उन्हें विदेशोंसे ही मँगाना होगा, और इस कारण आयात-व्यापारमें विशेष कमी न होगी।

अन्तमें हमें यह स्मरण रखना चाहिए कि यदि हम विदेशोंसे कम-से-कम माल खरीदना चाहें और उन्हें अधिक-से-अधिक माल बेचना चाहें, तो यह सम्भव नहीं। विदेशी व्यापारके क्षेत्रमें प्रत्येक देश अन्य देशोंसे उतना ही माल खरीदनेका प्रयत्न करता है, जितना वह विदेशोंको बेच सकता है। इंग्लैण्ड, जापान आदि इनेगिने देश केवल अपवाद-स्वरूप हैं (वे विदेशी माल अधिक इस कारण खरीद सकते हैं कि उनके 'अदृश्य निर्यात' (Invisible Export) का परिमाण बहुत अधिक है)। इसलिए कोई देश इस प्रयत्नमें सफल नहीं हो सकता कि निर्यात बहुत बढ़ा दे और आयात उतना ही कम कर दे।

उपर्युक्त विवेचनसे यही स्पष्ट निष्कर्ष निकलता है कि भविष्यमें भारतवर्ष केवल कृषि, खनिज आदि तथा तैयारी मालके निर्यातसे प्रतिवर्ष दो अरब रुपयेकी रकम अदा नहीं कर सकता।

दूसरा तरीका यह है कि भारतवासी विदेशोंकी नौकरी या सेवा करके जो रकम कमायें, उससे कर्ज अदा करें। सेवा करके आमदनी करनेका इंग्लैण्ड सबसे उत्कृष्ट उदाहरण है। इंग्लैण्ड विदेशोंका माल और यात्री अपने जहाजोंसे ढोता है। विदेशोंको पूँजी उधार देता है। विदेशोंसे व्यापार-व्यवसायके लेन-देनका भुगतान अपने बैंकों और एक्सचेंज-हाउसों (Exchange Houses) के द्वारा करता है। विदेशोंमें उनके उपयोगके लिए रेल बनाता है और नहर खोदता है। बहुतसे अंगरेज विदेशोंमें व्यापार-व्यवसाय करते हैं; बहुतसे नौकरी करते हैं। इंग्लैण्ड विदेशी विद्यार्थियोंको पढ़ाता है, और विदेशी यात्रियोंका अपने यहाँके कृत्रिम और स्वाभाविक दृश्योंसे मनोरंजन करता है। इन सब सेवाओंके बदलेमें किराया, व्याज, कमीशन, मुनाफा, वेतन आदिके रूपमें एक बहुत बड़ी रकम इंग्लैण्डको प्रतिवर्ष प्राप्त होती है, जिससे इंग्लैण्डमें विदेशोंसे मालका आयात निर्यातकी अपेक्षा अधिक होनेपर भी लेन-देनकी विषमता सदैव इंग्लैण्डके पक्षमें रहती है। नीचे हम सन् १९२८-२९ के अंक उद्धृत करते हैं, जिससे सब बातें पाठकोंकी समझमें बड़ी सरलतासे आ जायँगी :—

देना (लाख पौंड)	लेना (लाख पौंड)
इंग्लैण्डमें विदेशोंसे	गवर्नमेन्टके हिसाबमें १५०
माल अधिक आया ३५३०	
	जहाजोंका भाड़ा १३००
	विदेशोंको उधार दी गई पूँजीपर व्याज २५००
	कमीशन और कम समयके लिए दी गई पूँजीपर व्याज ६५०
	अन्य प्रकारसे १५०
जोड़ ३५३०	४७५०

विदेशोंसे आय (४७५०। ३५३०)=१२२० लाख पौंड।

इस सारिणीसे यह भलीभाँति स्पष्ट हो जाता है कि केवल दृश्य (Visible) आयात-निर्यातपर निर्भर रहना कितनी बड़ी भूल है। कोई भी देश केवल अदृश्य निर्यातकी सहायतासे विदेशी व्यापारके संतुलनको अपने पक्षमें कर सकता है ; परन्तु वर्तमान परिस्थितियोंमें भारतवर्ष इन उपायोंमें से एकका भी अवलम्बन नहीं कर सकता। उसके पास न तो जहाज ही हैं और न उसकी आर्थिक स्थिति ऐसी है कि वह विदेशोंको पूँजी उधार दे सके। भारतवासियोंको अभी तक विदेशोंमें कुलीगिरी मिलती थी, जिससे वे दक्षिण-आफ्रिका, मलाया, मारीशस आदि प्रदेशोंसे प्रतिवर्ष कुछ लाख रुपये यहाँ भेजते थे। अब विदेशोंमें भारतीय कुलियोंका प्रवेश रोका जा रहा है। जो वहाँ बसे हैं, उन्हें लौटानेका प्रयत्न हो रहा है। भारतीय व्यापारी दक्षिण-आफ्रिका, ईराक आदिसे निकाले जा रहे हैं। भारतवासी विदेशोंमें बैंकिंग, कमीशन-एजेन्ट आदिका काम नहीं कर सकते। यहाँ शिक्षा इतनी उन्नत नहीं, जिससे विदेशी विद्यार्थी आकर्षित हों। निकट-भविष्यमें भारतवर्ष इनमें से किसी भी साधनमें महत्वपूर्ण उन्नति नहीं कर सकता। हाँ, विज्ञापन और प्रोपैगण्डाकी सहायतासे विदेशी यात्रियोंको आकर्षित कर सकता है ; परन्तु इससे विशेष आमदनीकी आशा नहीं। अतएव भारतवर्ष विदेशोंकी सेवा करके कर्ज अदा करनेमें सहायता पानेकी आशा नहीं कर सकता।

अब हम तीसरे तरीकेपर विचार करेंगे। भारतवर्ष इंग्लैण्डसे बहुत-सा कर्ज ले चुका है। भारत और प्रान्तीय सरकारोंको इंग्लैण्डको पाँच-छह अरब रुपया अदा करना है ; परन्तु भारतवर्षने यह ऋण अधिकांशमें उत्पादक कामोंके लिए लिया था, पुगना कर्ज अदा करनेके लिए नहीं। इसलिए इस सम्बन्धमें हमें पहलेका अनुभव प्राप्त नहीं है ; परन्तु अन्य देशोंके अनुभवसे लाभ अवश्य उठा सकते हैं। युद्धके पश्चात् जर्मनी, आस्ट्रिया और मध्य-यूरोपके अन्य

देशोंने इस साधनसे काम लिया था। वे अमेरिकाक कर्ज न चुका पाते थे, इसलिए वे संयुक्त-राज्यसे प्रतिवर्ष एक बड़ी रकम उधार लेते थे ; परन्तु जब आर्थिक संकटके कारण अमेरिकासे कर्ज मिलना बन्द हो गया, तब इन देशोंकी आर्थिक स्थिति विलकुल अव्यवस्थित हो गई। बैंकोंका दिवाला निकल गया। व्याजकी दर बहुत बढ़ गई। विदेशी व्यापारिक ऋण न चुकाया जा सका। ये देश अभी तक अपनी स्थितिको सुधार नहीं पाये। इससे प्रकट है कि ऋण लेकर ऋणका परिशोध करना कभी वांछनीय नहीं हो सकता। यह कागजी नाव है, जो बहुत दिन नहीं चल सकती। भारतवर्षके सम्बन्धमें भी यही सत्य है। विदेशी ऋण मिलना ऐसे समय बन्द हो जाता है, जब कि उसकी सबसे अधिक आवश्यकता होती है।

हम पहले कह चुके हैं कि विदेशोंमें साख बनाने रखनेके लिए जिन बातोंकी आवश्यकता है, उनमें से एक यह भी है कि लेन-देनकी विषमता सदैव हमारे पक्षमें रहे ; परन्तु आजकल परिस्थिति इसके विपरीत है। देशमें राजनैतिक हलचल भी होती रहती है, इसलिए विदेशी भारतवर्षको ऋण देनेके लिए शीघ्रतासे तैयार न होंगे। इंग्लैण्ड सदैव ऋण देनेके लिए तैयार रहता है। इसका कारण यह है कि भारतवर्ष उसके अधीन है, जब और जिस प्रकार चाहेगा, अपने देशवासियोंका ऋण वसूल कर लेगा। परन्तु यदि कर्ज मिलता जाय, तो भी राष्ट्र-हितकी दृष्टिसे यह आवश्यक है कि हम उसे स्वीकार न करें। इस मार्गके अवलम्बनसे कर्जका भार दिनोंदिन बढ़ता जायगा, और वर्ष प्रतिवर्ष अधिकाधिक व्याज चुकाना पड़ेगा। अन्तमें एक दिन कर्ज अदा ही करना पड़ेगा, इसलिए उसके भारको बढ़ाना बुद्धिमानी नहीं। हाँ, यदि भविष्यमें इस देशकी बोलशेविक सरकारकी तरह विदेशोंसे ली हुई रकमको अदा करनेसे इनकार कर देनेका निश्चय हो, तो फिर जितना अधिक कर्ज लिया जाय, उतना ही अच्छा है। हमारा तो यह विश्वास है कि

भारतके लिए यह सम्भव न होगा। अतएव कर्ज लेकर कर्जकी अदाईके दिनको टालनेसे कोई लाभ नहीं, इसलिए यह तरीका भी अव्यावहारिक सिद्ध होता है।

चौथा तरीका यह है कि भारतमें विदेशियोंको वेतन, मुनाफा, कमीशन आदिसे जो आमदनी हो, वह यहीं जमा होती जाय। वास्तवमें जबसे भारतवर्षमें अंगरेज आये हैं, यही हो रहा है। सन् १८३२ में पार्लियामेन्ट-जाँच-कमेटीके सामने निम्न-लिखित प्रश्नोत्तर हुए थे :—

प्रश्न—भारतवर्षमें नीलके प्लान्टर जो पूँजी काममें लाते हैं, वह कहाँसे आती है ?

डेविड हिल—वह पूर्णतया भारतमें इकट्ठी की जाती है।

कैप्टेन मेडेन—सच तो यह है कि पूँजी इंग्लैण्डसे हिन्दुस्तान नहीं जाती, प्रत्युत वहाँ कमाकर इंग्लैण्ड भेजी जाती है।

इसी कारण यद्यपि इंग्लैण्डसे भारतवर्षकी ओर कभी पूँजीका बहाव दृष्टिगत नहीं हुआ, फिर भी यहाँ अंगरेजोंकी पूँजी बढ़ती जाती है। सन् १९०६ में इंग्लैण्डके 'दि इकोनामिक' पत्रने अन्दाज़ लगाया था कि हिन्दुस्तानमें इंग्लैण्डकी ४७०० लाख पौंडकी पूँजी लगी है। सन् १९२३ में ६००० लाख पौंडका अनुमान किया गया था। सन् १९३० में 'दि फाइनेन्सियल टाइम्स' पत्रमें एम० सी० सी० सेयरने यह रकम ७००० लाख पौंड कूती थी। अंगरेजी व्यापारी संस्थाओंने साइमन कमीशनके सामने बतलाया था कि भारतमें अंगरेजोंकी कुल पूँजी १०००० लाख पौंड (प्रायः १३,३३,३३ लाख रुपये) से कम नहीं है। ये अंक चाहे वास्तविक रकमको ठीक-ठीक न बतलाते हों; परन्तु उनसे यह प्रकट है कि इंग्लैण्डकी पूँजी यहाँ बढ़ती जा रही है। प्रतिवर्ष भारतको जो दो अरब रुपये अदा करना पड़ता है, उनका एक बड़ा भाग देशमें ही रह जाता है, इसी कारण भारतका निर्यात कम होनेपर भी विनिमयकी दरपर विशेष विपरीत प्रभाव नहीं पड़ता; परन्तु ज्यों ही अंगरेज लोग यहाँ रुपया लगाना बन्द कर देते हैं, या यहाँसे

पूँजी इंग्लैण्ड भेजने लगते हैं, तभी विनिमयकी दर गिरने लगती है। सन् १९३० में इसी कारण विनिमयकी दर १ शि० ६ पे० से कम बनी रही, और जब तक सितम्बर १९३१ में इंग्लैण्ड और भारतवर्षने स्वर्णमानका परित्याग नहीं किया, ऊपर नहीं उठी। अन्तमें यह उपाय भी रोगका सच्चा निदान नहीं सिद्ध होता। अन्य तरीकोंकी तरह यह अदाईका दिन और कर्जका भार बढ़ा देता है, जिससे समस्या वर्ष-प्रतिवर्ष अधिकाधिक कठिन होती जाती है।

अभी तक हम दो अरब रुपयोंकी अदाईकी समस्याको समुचित रूपसे सुलझा न पाये थे; परन्तु प्रथम और चौथे साधनकी सहायतासे उसे इस अवस्थामें रखनेमें समर्थ हुए थे कि न तो वह हमारी आर्थिक व्यवस्थाको गड़बड़ा सके और न हमें स्वर्ण-निर्यात करना पड़े। आर्थिक संकटके कारण वस्तुओंका निर्यात बहुत कम हो गया। राजनैतिक हलचलके कारण चौथे तरीकेमें भी शिथिलता आ गई। असहयोग-आन्दोलनके समय अंगरेजोंने पूँजी इंग्लैण्ड भेजना प्रारम्भ कर दिया था। 'रिज्यू आफ ट्रेड आफ इंडिया' १९३१-३२ में भारत-सरकारने कहा था कि—

"It is stated that the gold shipments may have been made to facilitate the export of Capital...If this suggestion is correct, it means that some of the gold exports were used for the purpose of transfer of Capital from India to foreign countries."

अर्थात्—यह कहा जाता है कि सोना भेजकर विदेशी पूँजीके निर्यातमें सहायता पहुँचाई गई है। यदि यह ठीक है, तो विदेशोंको भेजे गये स्वर्णका कुछ भाग हिन्दुस्तानमें विदेशोंको पूँजी स्थानान्तरित करनेके काममें लाया गया है।

उपर्युक्त सब साधनोंके अभावमें स्वर्ण-निर्यात ही एक साधन रह जाता है, जिससे भारत विदेशी ऋण चुका सकता है। भविष्यमें यदि वार्षिक कर्जकी रकम कम न की गई, तो भारतको स्वर्ण-निर्यातसे ही उसे अदा करनेका प्रबन्ध करना होगा। जो व्यक्ति

स्वर्ण-निर्यातके विरुद्ध हैं, उन्हें यह भलीभाँति समझ लेना चाहिए कि वर्तमान परिस्थितियोंमें स्वर्ण-निर्यात किसी भी प्रकार रोक नहीं जा सकता। वास्तवमें भारतवर्षका सोना विदेशोंको उनके पन्द्रह अरब रुपयोंके पेटे बन्धक रखा है। जब कभी विदेशी कर्जकी रकम वापस लेनेकी इच्छा प्रकट करेंगे, तभी भारत-सरकारके कोषसे और देशवासियोंके संचित कोषसे सोना विदेशोंको जाने लगेगा। आजकल जो सोना विदेशोंको जा रहा है, उसका मूल्य तो भारतवासियोंको मिल जाता है; परन्तु उपर्युक्त परिस्थितमें भेजे गये सोनेके बदलेमें कुछ न प्राप्त होगा। स्थायी और वार्षिक कर्जको अदा करनेके लिए पर्याप्त सोना भारतवर्षमें नहीं निकलता, इसलिए हमें संचित स्वर्णका ही उपयोग करना पड़ेगा।

अधिकांश जनताका यह खयाल है कि यदि विनिमयकी दर १ शि० ६ पे० से घटाकर १ शि० ४ पे० कर दी जाती, तो भारतवर्षसे स्वर्ण-निर्यात न होता। यह केवल भ्रममात्र है। यह सच है कि विनिमयकी दर कम हो जानेसे यहाँकी निर्यात-वस्तुएँ विदेशोंमें १२३% सस्ती पड़तीं, इसलिए उनके निर्यातमें आजकलके बराबर कमी न होती; परन्तु गत छैं-सात वर्षोंमें संसारकी आर्थिक स्थिति इतनी अव्यवस्थित थी कि इस सम्बन्धमें निश्चयात्मक रूपसे कुछ कहना असम्भव है। हमें तो भारतवर्षके निर्यातके बढ़नेके कोई लक्षण दृष्टिगत नहीं होते। संसारमें कृषिजन्य पदार्थोंका उत्पादन इतना अधिक होने लगा है कि अनेक देश मालकी किसी भी मूल्यपर बेचनेको तैयार हो जाते। इस कारण न तो निर्यातमें ही विशेष वृद्धि होती और न वस्तुओंके मूल्यमें ही। यद्यपि कृषकोंको विनिमयकी दरके घट जानेसे कुछ लाभ अवश्य होता; परन्तु इतना ही कि उन्हें सोना बेचनेकी आवश्यकता न रहती। विदेशी वस्तुओंका मूल्य बढ़ जानेसे उन्हें आवश्यक वस्तुओंके खरीदनेमें अधिक व्यय करना पड़ता। भारत-सरकारके होम-चांजेंजका भार बढ़ जाता, जिससे वह कर और अधिक बढ़ा देती। यदि

स्वर्ण-निर्यात न होता, तो भारत-सरकार प्रतिवर्ष होम-चांजेंजकी रकम भारत-मन्त्रीको न भेज सकती, यह निश्चित था, इसलिए भारत-मन्त्री स्वर्ण-कोषका सोना और सिक्यूरिटीज बेचते, या इंग्लैण्डमें ऋण लेते। दोनों प्रकारसे भारतवर्षको हानि पहुँचती।

इस प्रश्नपर विचार करना अप्रासंगिक न होगा कि यदि सितम्बर सन् १९३१ में कानून बनाकर स्वर्ण-निर्यात रोक दिया जाता, तो क्या परिमाण होता? उस समय लेन-देनकी विषमता (Balance of Payment) भारतवर्षके प्रतिकूल जा रही थी, इसलिए विनिमयकी दर १ शि० ६ पे० से नीचे गिर रही थी। भारत-सरकार इसे उचित नहीं समझती थी, इसलिए वह Reverse Councils बेचकर विनिमयकी दरको १ शि० ६ पे० पर कायम रखनेका प्रयत्न कर रही थी। उस वर्ष सितम्बरके पहले १४० लाख पौंडके Reverse Councils बेचने पड़े थे। भारत-मन्त्री इन हुण्डियोंका भुगतान इंग्लैण्डमें सिक्यूरिटीज बेचकर कर रहे थे। भारतीय विदेशी व्यापारकी जो स्थिति थी, उसे देखते हुए यह विश्वास नहीं होता कि भारत-सरकार इन प्रयत्नमें सफल होती; परन्तु वह इस भावसे प्रेरित होकर कि आर्थिक संकट अन्य संकटोंकी तरह दो-एक वर्षमें टल जायगा, विनिमयकी दरको ऊपर उठानेका प्रयत्न किये जाती, जिससे सिक्यूरिटीज और सोना दोनोंसे स्वर्ण-कोष रिक हो जाता। विनिमयकी दर कितनी गिरती, यह कहा नहीं जा सकता; परन्तु वह जितनी ही घटती, देशसे स्वर्ण-निर्यात उतना ही अधिक लाभदायक होता। यदि १ शि० ४ पे० पर कायम रहती, तब भी स्वर्णका मूल्य आजकलसे १२३% अधिक होता। इसलिए यदि स्वर्ण-निर्यात बिलकुल बन्द न कर दिया जाता, तो आजकलकी अपेक्षा कहीं अधिक स्वर्ण विदेशोंको जाता। यदि स्वर्ण-निर्यात बन्द कर दिया जाता, तो उसका मूल्य न बढ़ता; परन्तु किसानोंको तो सोना बेचना ही पड़ता। उन्हें आजकलके बराबर मूल्य न मिलता, इसलिए उन्हें आजकलकी अपेक्षा अधिक सोना बेचना

पड़ता। इस प्रकार विनिमयकी दरको घटाने और स्वर्ण-निर्यातपर प्रतिबन्ध लगानेसे स्वर्ण-कोष और जनता दोनोंको सोनेसे हाथ धोना पड़ता।

उपर्युक्त विवेचनसे यह स्पष्ट हो जाता है कि स्वर्ण-निर्यातकी समस्या इतनी सरल नहीं है कि वह केवल कानून बनाकर स्वर्ण-निर्यात रोक देने या विनिमयकी दर घटा देनेसे हल हो जाय। इस समस्याको हल करनेके लिए भारतवर्षकी वर्तमान आर्थिक परिस्थिति, संगठन और ढाँचेमें क्रान्तिकारी परिवर्तन करना आवश्यक है। सबसे प्रबल प्रयत्न हमें इस बातके लिए करना चाहिए कि देशको जो प्रतिवर्ष दो अरब रुपया विदेशोंको भुगतान करना पड़ता है, यह रकम घटकर इतनी रह जाय कि जिसे हम माल भेजकर और सेवाएँ करके सरलतासे अदा कर सकें। भारतवर्षके विदेशी लेन-देनकी जो वर्तमान परिस्थिति है, उसके रहते हमें, कितना ही कष्ट क्यों न हो, विदेशोंको सोना भेजनेके लिए बाध्य होना ही पड़ेगा। इंग्लैण्डका कर्ज हमें चुकाना ही पड़ेगा, इसलिए उसे जितनी शीघ्रतासे हो सके, अदा करनेका प्रबन्ध करना चाहिए। इस उद्देश्यकी सिद्धि निम्न-लिखित बातोंको व्यवहारमें लानेसे हो सकती है :—

१ भारतका औद्योगीकरण।

२ वस्तु-निर्यातमें वृद्धि और आयातमें कमी।

३ राष्ट्रीय व्यापारी जहाज़ी बेड़ेका निर्माण।

४ सरकारी नौकरी और सेनामें विदेशियोंकी कमी।

५ विदेशोंसे ऋण लेनेका निषेध।

६ राष्ट्रीय बैंक, एक्सचेंज बैंक और बीमा कम्पनियोंसे काम लेना।

७ विदेशी ऋणको अदा करना।

८ देशमें विदेशी पूँजीसे विदेशी कम्पनियोंको व्यापार करनेपर प्रतिबन्ध।

९ भारतीय व्यापारियों और कम्पनियोंका विदेशोंमें व्यापार-व्यवसाय बढ़ाना।

१० विदेशियोंको दृश्य-निरक्षणके लिए आकर्षित करना।

११ देशके विद्यार्थियोंको यहीं शिक्षा देनेका प्रबन्ध करना।

१२ कृषि और ग्राम-उद्योगोंकी उन्नति।

इस कार्यक्रमपर इस लेखमें अधिक नहीं कहा जा सकता। इतना कहना पर्याप्त होगा कि संसारकी आर्थिक परिस्थितिमें सुधार होकर सब देशोंके स्वर्णमान पर लौट आनेसे, या अन्य किसी कारणसे, जिससे विदेशोंमें सोनेका मूल्य घट जाय, भारतसे वर्तमान स्वर्ण-निर्यात रुक जायगा। परन्तु जब तक भारतवर्ष विदेशी लेन-देनके संतुलनको अपने पक्षमें या कमसे कम बराबर नहीं कर लेता, तब तक हमें स्वर्ण-निर्यातके लिए सदैव तत्पर रहना चाहिए। स्वर्ण-निर्यात कोई आकस्मिक घटना नहीं, वह हमारी वर्तमान आर्थिक परिस्थितिमें निहित है। हम केवल कानून बनाकर इस प्रश्नको हल नहीं कर सकते। वास्तवमें इस प्रश्नको राजनैतिक नेता नहीं, वरन व्यापार-व्यवसाय और उद्योग-धन्धोंको चलानेवाले ही हल कर सकते हैं। इसके हल करनेका एकमात्र उपाय यह है कि उपर्युक्त कार्यक्रमको कार्यान्वित किया जाय। आजकल प्रत्येक देश विदेशी देन-लेनके संतुलनको अपने पक्षमें रखनेका शक्ति-भर प्रयत्न कर रहा है। इसी कारण इंग्लैण्ड और अन्य देशोंने स्वर्णमानका परित्याग कर दिया और मुक्तद्वार-व्यापार-नीतिको तलाक़ दे दिया। सच पूछिये तो राष्ट्रीय आयके एक भागको विदेश चले जाने देना उसी प्रकार मूर्खतापूर्ण है, जिस प्रकार किसी व्यक्तिका अपनी आमदनीका कुछ भाग उठाकर कुएँमें डाल देना। कोई भी देश स्वर्ण-निर्यातको चिरकाल तक जारी रखकर उसके भरोसे संसारके आर्थिक क्षेत्रमें जीवित नहीं रह सकता। इसलिए यह आवश्यक है कि हम समस्याको भलीभाँति समझकर स्वर्ण-निर्यातको रोकनेके लिए शीघ्र-से-शीघ्र संगठित रूपसे प्रयत्न करें और भारत-सरकारको इस कार्यमें सहायता देनेके लिए बाध्य करें।

आन्ध्र-देशकी एक भलक

श्री रामानन्द चट्टोपाध्याय

सिर्फ हफ्ते-दो-हफ्ते या एक महीने भारतवर्ष घूमकर अनेक भू-पर्यटकोंने भारतपर पोथियाँ लिख मारी हैं। उनमें से कुछ तो भारतके विषयमें विशेषज्ञ होनेका होंग भी करते हैं, कुछ नहीं भी करते हैं, और आम तौरपर अनजान विदेशी उन्हें विशेषज्ञ मान भी लेते हैं। ऐसी स्थितिमें यदि लोग उनका मजाक उड़ायें, तो आश्चर्य ही क्या? क्योंकि सारा जीवन बिताकर भी किसी देशको ठीक-ठीक और सम्पूर्ण रूपसे कौन जान सकता है? तब फिर ये भू-पर्यटक और यात्री उन देशों या वस्तुओंके बारेमें क्यों लम्बी-चौड़ी बातें हाँकते हैं, जिन्हें वे इस तरहसे देखते हैं, जैसे चलती रेलकी खिड़कीसे!



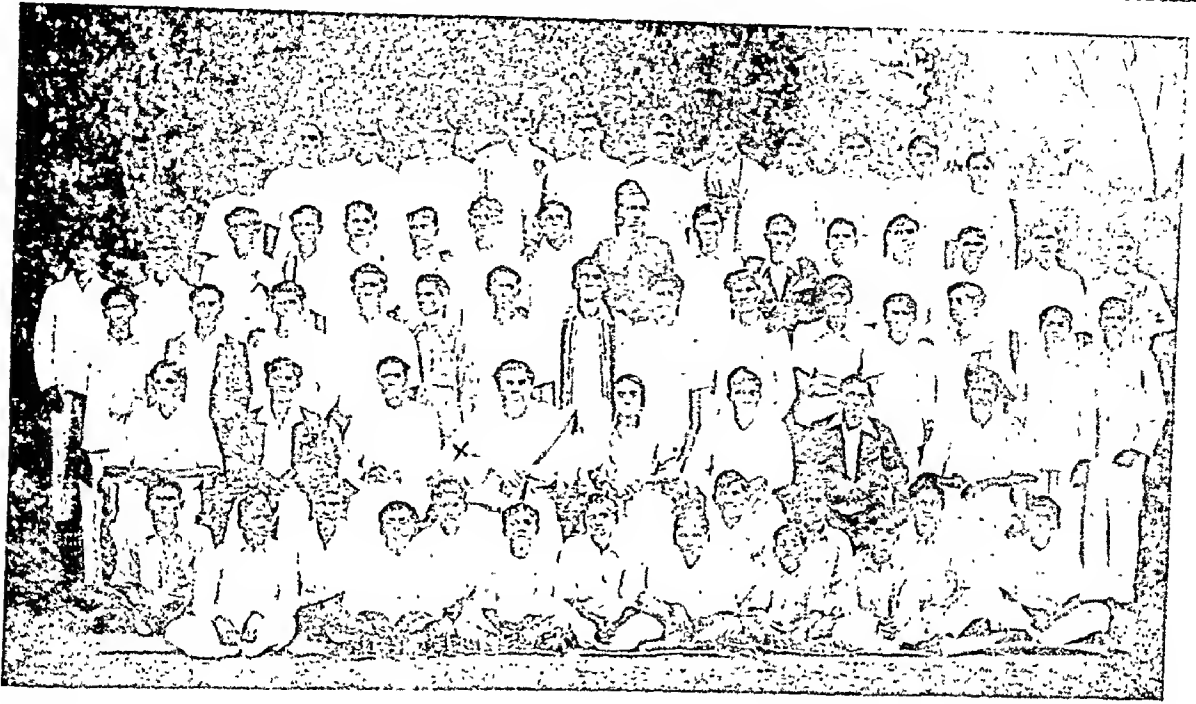
सर आर० चैट्टोपाध्याय

मैं दो बार आन्ध्र-देश गया हूँ; लेकिन मेरी दोनों यात्राएँ मिलकर एक सप्ताहसे अधिककी नहीं थीं। इसके अलावा दोनों ही बार मैं किसी-न-किसी सार्वजनिक सम्मेलन या उत्सवके सम्बन्धमें ही आन्ध्र गया था। अतः वहाँ मैं केवल उन्हीं लोगोंके सम्पर्कमें आ सका, जो उन आन्दोलनों या उत्सवोंसे सम्बन्ध रखते थे—

न कि साधारण जनताके सम्पर्कमें। इसलिए आन्ध्र-देशमें मैंने जो कुछ देखा या सुना, उसके लिए यह दावा नहीं किया जा सकता कि वह ठीक है, सर्वांगपूर्ण है अथवा प्रतिनिधित्वपूर्ण है।

पहली बार मैं आन्ध्र-विद्यार्थी-सम्मेलनके सातवें अधिवेशनके सम्बन्धमें—जो विज्ञगापट्टममें हुआ था—गया था। वहाँ तरह-तरहके आकारकी बैलगाड़ियाँ देखकर मुझे कुछ आश्चर्य हुआ था—खासकर इसलिए कि गरीब ही नहीं, वरन् भले आदमी भी उन्हें इस्तेमाल करते हैं। उस यात्राके विषयमें मैं कुछ अधिक नहीं लिखूँगा, क्योंकि उस यात्राकी स्मृति बहुत-कुछ धुँधली पड़ चुकी है। हाँ, इतना मुझे याद है कि विद्यार्थियोंने मुझे यात्राका जो खर्च भेजा था, वह मेरी आवश्यकताओंसे कहीं अधिक था, इसलिए मैंने उसका एक भाग उन्हें वापस कर दिया था। उन्होंने मुझे एक पक्के मकानमें ठहराया था, जो एक 'चालट्टी' (धर्मशाला) से लगा हुआ था। उन लोगोंने आदर-सत्कार और खातिरदारी बड़ी दरियादिलीसे की थी। उस समय उन विद्यार्थियोंमें बड़ा उत्साह था। सम्मेलनकी कार्यवाहीमें उनमें से कुछने अपनी वाद-विवाद और वक्तृत्व-क्षमताका भी अच्छा परिचय दिया था। हाँ, यह ज़रूर था कि उनमें दलबन्दीकी कुछ भावना भी काम कर रही थी।

अपने सभापतिके भाषणके अतिरिक्त उस मौकेपर मुझे कई छोटी-मोटी वक्तृताएँ देनी पड़ी थीं। विद्यार्थी-सम्मेलनके अतिरिक्त एक साधारण सभामें मुझे राजनैतिक विषयपर और स्थानीय प्रार्थना-समाजके तत्वावधानमें सामाजिक और धार्मिक विषयपर भी भाषण देनेपड़े थे। ये सब भाषण टाउन हालमें हुए थे, जो समुद्रके सामने स्थित है। निस्सन्देह उसकी स्थिति बड़ी सुन्दर है। मैं वहाँ स्थानीय बंगालियोंसे भी मिला था। उस अवसरपर मैंने क्या-क्या कहा था, इस समय याद नहीं। हाँ, एक बात याद है, जो मैंने विज्ञगापट्टम मेडिकल कालेजमें



पीठापुरमेके वाजक-आश्रमके बालक । बीचमें व्यवस्थापक श्री चालमैय्या बैठे हैं

विद्यार्थियोंकी प्रार्थनापर उनके यहाँ कही थी । मैंने कहा था कि डाक्टरोंको चाहिए कि वे मिलकर या व्यक्तिगत रूपसे भारतके स्वास्थ्यप्रद स्थानोंके सम्बन्धमें पुस्तकें प्रकाशित करें, जिनमें उन स्थानोंकी आवहवा, मौसम आदिके विवरणके साथ-साथ यह भी बताया जाय कि कौन-सा स्थान किस बीमारीके लिए लाभप्रद है और किस मर्जेके मरीजको किस जगह जाना चाहिए । इससे जनताको—विशेषकर मरीजोंको—बहुत फ़ायदा होगा । यह बात मुझे वाल्टेयरको देखकर सूझी थी । वाल्टेयर विजगापट्टमसे मिला हुआ एक स्वास्थ्यप्रद स्थान है, जहाँ बहुतसे लोग आवहवा बदलने जाते हैं । उस अवसरपर डाक्टर त्रिमूर्तिने मुझे बतलाया था कि कुछ लोगोंको—जिन्हें क्षयरोग नहीं था—वाल्टेयर आकर क्षयकी छूत लग गई थी । इस बातचीतमें मैंने यह भी कहा था कि भारतमें गर्म पानीके जो झरने हैं, उनके रोग निवारक गुणोंकी जाँच करनेकी भी आवश्यकता है । स्थानीय मेडिकल कालेजके डाक्टर राममूर्तिने

कृपा करके मुझे वाल्टेयरमें जो कुछ देखने-योग्य था, दिखलाया था । वहाँके अप-टू-डेट अस्पताल और प्रयोगशालाको मैं पहले ही देख चुका था । डाक्टर साहबने मुझे वह स्थान भी दिखलाया था, जहाँ नई यूनिवर्सिटीकी इमारतें बन रही थीं । अब शायद वे सब पूरी हो चुकी होंगी । वाल्टेयर पहाड़ी जगह है, और समुद्र-तटपर है । शैल-समुद्रके मेलने उसे बहुत मनोरम बना दिया है । उसे देखकर मुझे एक पुरानी कविता याद आ गई, जिसमें कहा गया है कि स्वतन्त्रता सदा पहाड़ और समुद्रके मुक्त स्वरमें ही प्रसन्न रहती है । मैं आशा करता हूँ कि वाल्टेयर-विजगापट्टमके इन दृश्योंको देखकर आन्ध्रदेशके विद्यार्थी मानवताके जन्मसिद्ध अधिकार यानी स्वतन्त्रतासे—आध्यात्मिक, बौद्धिक, सामाजिक, राजनैतिक और आर्थिक स्वतन्त्रतासे—प्रेरित होते रहेंगे । डा० राममूर्तिकी बातचीत मनोरंजक और शिक्षाप्रद थी । उनकी एक बात आज भी मेरी स्मृतिमें अंकित है । उन्होंने कहा था कि यूरोपके

पूर्वीय, पश्चिमीय, उत्तरी, दक्षिणी सभी देशोंमें लोगोंके भोजनकी कुछ वस्तुएँ प्रायः एक ही ढंगसे बनाई जाती हैं। वहाँ एक प्रकारसे एक स्टैण्डर्ड भोजन-सा बन गया है। इससे यात्रियोंको बड़ी सुविधा होती है और उनके स्वास्थ्यको नुकसान नहीं पहुँचता। भारतमें एक



आर० वी० एम० सूर्यराव बहादुर, सी० वी० ई०, पीठापुरम-नरेश

प्रान्तवालोंका भोजन दूसरे प्रान्तवालोंको रुचिकर नहीं होता। कहीं-कहीं तो जिले-जिलेके भोजनोंमें अन्तर दीख पड़ता है। डाक्टर साहबका कहना था कि समूचे भारतके लिए एक स्टैण्डर्ड भोजन निश्चित करके सारे देशमें उसका प्रचार करना चाहिए। मैं भी उनकी इस बातसे सहमत हुआ।

एक दिन मेरे डेरेपर लगभग एक दर्जन विद्यार्थी

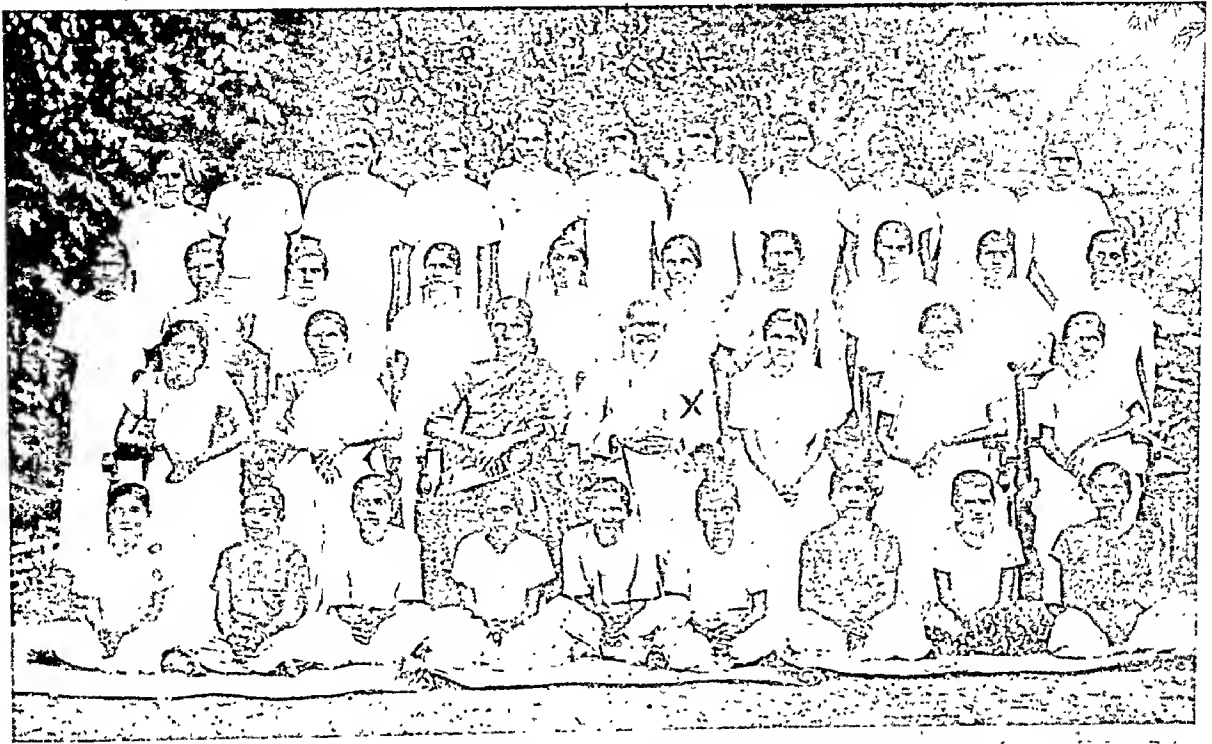
एकत्रित हुए थे, जिन्हें मुझे राजनीतिपर कुछ उपदेश देना पड़ा था। ये विद्यार्थी बड़े देशभक्तिपूर्ण विचारोंके थे। उनकी वह छोटी सभा ठेठ कांग्रेसी ढंगपर शुरू हुई थी। आरम्भमें एक विद्यार्थीने हिन्दीमें एक राष्ट्रीय गीत भी गाया था।

विद्यार्थी-सम्मेलनका भोज निरामिष, भारतीय ढंगका और आनन्दपूर्ण था। सैंकड़ों व्यक्तियोंने जात-पाँत, स्त्री-पुरुष और धर्मके भेद-भावके बिना एक साथ बैठकर भोजन किया था।

मेरी दूसरी यात्रा राजमहेन्द्रीमें आन्ध्रदेशके सुप्रसिद्ध धार्मिक नेता, समाज-सुधारक और साहित्यकार स्वर्गीय पंडित के० वीरेशलिङ्गम पंतुलूकी मूर्ति-स्थापन और उद्घाटनके सम्बन्धमें हुई थी।

रास्तेमें मैं पीठापुरममें उतरा था और पीठापुरमके महाराजा साहबकी अतिथिशालामें ठहरा था। इस छोटे कसबेमें मैंने कई संस्थाएँ देखीं, जिन्हें यहाँके महाराज आर० वी० एम० सूर्यराव बहादुर चला रहे हैं। मैं महाराजसे अनेक वर्षसे परिचित हूँ। वे विस्तृत संस्कृतिके, सच्चे, धार्मिक तथा निरभिमानी व्यक्ति हैं। धनवानोंमें वे 'सादा जीवन उच्च विचार'के प्रत्यक्ष उदाहरण हैं। मैं उनसे उनके महलमें मिला। यह महल बहुत बड़ा है। प्रत्यक्षतः इसे उनके पूर्वजोंने बनवाया था, और सम्भव है कि समय-समयपर इसमें परिवर्तन और परिवर्द्धन भी हुए होंगे। यहाँ यह गढ़ कहलाता है। हम लोगोंकी बातचीत विभिन्न धार्मिक, सामाजिक और सांस्कृतिक विषयोंपर हुई।

यहाँ मुझे सर रघुपति वेंकट रत्नम नायडू, एम०ए०, एल०टी०, डी०लिट, एल-एल०डी०, से भी भेंट करनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ। नायडू महाशय ऋषितुल्य व्यक्ति हैं; वर्षों तक मदरास-यूनिवर्सिटीके वायस-चान्सलर रह चुके हैं। उन्हें भी मैं बहुत दिनोंसे जानता हूँ। यहाँ उनसे तीन बार भेंट हुई—स्टेशनपर, अतिथिशालामें और उनके निवास-स्थानपर। मैं समझता हूँ; अब वे ७४ वर्षके होंगे। यद्यपि उनकी बौद्धिक

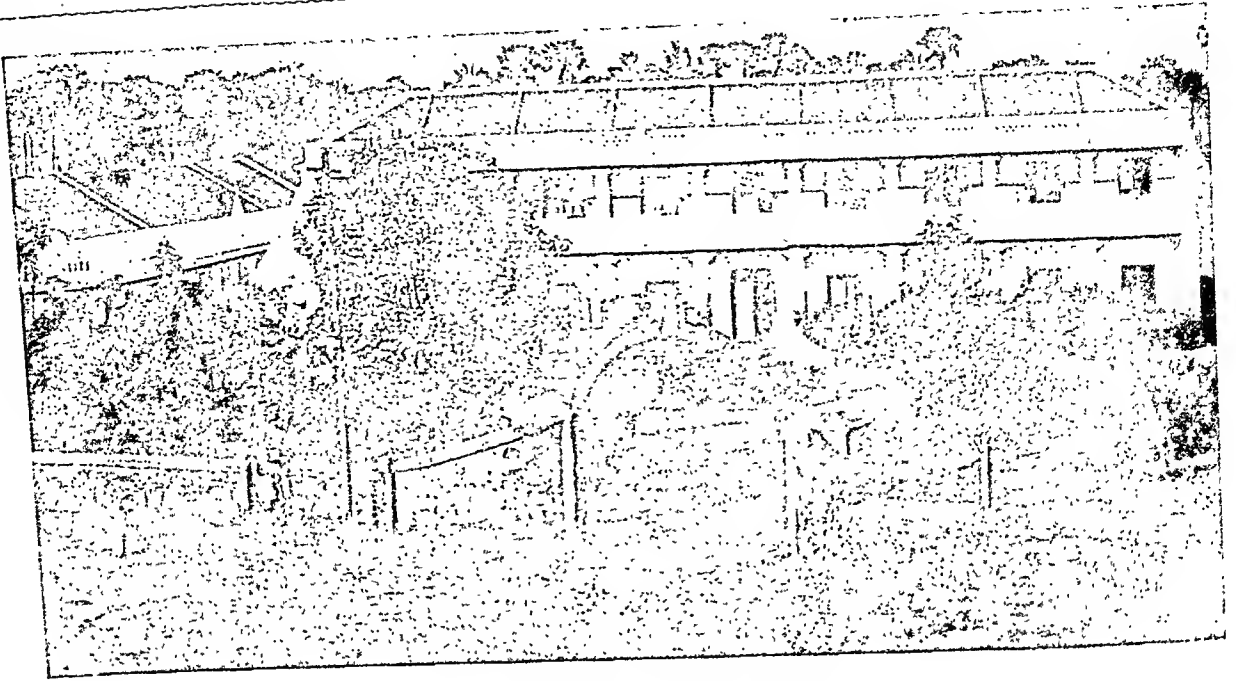


पीठापुरमके बालिकाश्रमकी बालिकाएँ । बीचमें व्यवस्थापक श्री बालकृष्ण राव बैठे हैं

क्तियाँ अभी तक बलवान बनी हैं ; किन्तु वे शारीरिक िड़ावोंसे ग्रस्त हैं—उन्हें चलनेमें दिक्कत होती है । स विषयपर उन्होंने हँसते हुए बतलाया कि लड़कपनमें मामूली तौरपर चलते ही न थे, जब चलते थे तब लौड़कर । इसके लिए कभी-कभी उन्हें अपने बड़ोंसे झड़की खानी पड़ती थी और साथियोंका मज़ाक उहना पड़ता था । इन वयोवृद्ध सज्जनके इस कथनसे यह अभिप्राय जान पड़ा कि संसार लेखा-जोखा बराबर करनेके सिद्धान्तपर चलता है ! चूँकि लड़कपनमें वे बहुत भागते थे, इसीलिए अब उन्हें बहुत धीरे चलना पड़ता है । उनके निवास-स्थानपर हम लोगोंमें विभिन्न विषयोंपर बातचीत हुई—उनमें साम्प्रदायिकताकी समस्या भी थी । बंगाल तथा भारतके अन्य प्रान्तोंमें साम्प्रदायिक समस्या मुख्यतः हिन्दू-मुसलमानोंके ईर्ष्या-द्वेष और वैमनस्यको लेकर होती है ; पर मदरास-प्रान्तमें, सर वेंकट रत्नने बतलाया, ये झगड़े ब्राह्मण-अब्राह्मण,

ब्राह्मणोंकी विभिन्न जातियों, उच्च जातिके हिन्दुओं; अछूत कही जानेवाली जातियों और विभिन्न भाषा-भाषियों (तैलुगु-भाषी, तामिल-भाषी, मलयालम-भाषी और कन्नड़-भाषी) के और प्रान्तके विभिन्न भागोंके बीच होते हैं । उन्हें इन झगड़ोंका बड़ा दुःख था ।

पीठापुरममें महाराज लड़कें-लड़कियोंके लिए एक हाई स्कूल चलाते हैं, जिसमें सह-शिक्षा प्रचलित है । हेडमास्टरने मुझे बतलाया कि सह-शिक्षासे वहाँ कोई समस्या उत्पन्न नहीं होती । इसका मुख्य कारण शायद यह है कि साधारणतः आन्ध्रदेशमें पर्दा-प्रथा है ही नहीं । स्कूलमें ६४१ लड़के और ६७ लड़कियाँ हैं । उन दिनों उनकी सामयिक परीक्षाएँ हो रही थीं । स्कूलके कमरे खुले हुए और हवादार हैं । मुझे एक ही कमी दिखाई दी, वह यह कि स्कूलके साथ खेलनेके लिए लम्बी-चौड़ी जगह नहीं थी । इसके लिए मैंने हेडमास्टरसे कहा भी था ।



काकिनाड़में पीठापुर राजा कालेजका प्रवेश द्वार

शायद महाराजने उससे पहले ही लड़के-लड़कियोंके खेलनेके लिए अलग-अलग स्थानोंका प्रवन्ध करनेका हुक्म दे दिया था।

इस हाई स्कूलके अलावा महाराज 'अछूत' अनाथ बालक-बालिकाओंके लिए दो आश्रम भी चलाते हैं। आदि-आन्ध्र लड़कोंका आश्रम 'शान्तिकुटीर' कहलाता है। आदि-आन्ध्र लड़कियोंके आश्रमका शायद कोई पृथक् नाम नहीं है। इन आश्रमोंमें बालक-बालिकाओंकी शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिक और नैतिक शिक्षा-दीक्षाकी अच्छी तरह देखभाल की जाती है। इसके लिए एक सुपरिन्टेन्डेन्ट वहाँ रहते हैं। लड़के-लड़कियाँ प्रसन्न और सन्तुष्ट दीख पड़ते थे।

स्थानीय ब्राह्मणसमाजमें भी अनेक महिलाओं और सज्जनोंसे भेंट हुई और कुछ आध्यात्मिक तथा सामाजिक विषयोंपर बातचीत भी हुई।

मैं महाराज पीठापुरमेंके दीवान साहबसे मिलनेके लिए भी गया था। उन दिनों वे अपनी एक बड़ी लड़कीके साथ वायु-परिवर्तनको गये थे। उनकी

सहधर्मिणीने अपने पुत्र-पुत्रियोंके साथ बड़ी सज्जनतासे मेरा स्वागत किया। जब मैं विदा लेने लगा, तो उन्होंने मुझसे दोनो हाथ फैलानेके लिए कहा। मैंने हाथ फैलाये, तो उन्होंने उन्हें तरह-तरहके फलोंसे भर दिया। पूछनेपर मालूम हुआ कि अतिथिको इस प्रकार फल भेंट करना आन्ध्रदेशका रिवाज है। मुझे उनका यह तरीका बड़ा भला जान पड़ा।

पीठापुरमें बालकोंके अनाथाश्रमके प्रवन्धक श्री ए० चालमैय्या, उनकी स्त्री श्रीमती इन्दिरा देवी तथा बालिका-आश्रमके श्री आर० बालकृष्ण राव और श्रीमती सुन्दरम्माने मुझसे बँगलामें बातचीत की थी। श्री चालमैय्याने शान्ति-निकेतनमें शिक्षा पाई थी, श्रीमती इन्दिरा बंगाली महिला हैं, श्री बालकृष्ण राव और श्रीमती सुन्दरम्मा बहुत दिनों तक कलकत्तेमें थीं, इसलिए बँगला बोल लेती थीं।

पीठापुरमेंसे समुद्र देखनेके लिए मैं उप्पडा नामक गाँवको गया था। श्री ए० चालमैय्याने मुझसे पीठापुरमें उतरनेका अनुरोध किया था, उन्हींने मेरे



काकिनाड़में पीठापुर राजा-कालेजके शिक्षक और अधिकारी

हरनेका प्रबन्ध किया था और वे ही मुझे महाराजकी रि: हुई मोटरमें समुद्र दिखलाने ले गये थे। उप्पडा एक छोटा गाँव है। उसमें कुछ मकान पक्के भी हैं। श्विमी बंगालके दीन-हीन गाँवोंकी अपेक्षा मुझे यह गाँव खुशहाल दीख पड़ा। समुद्र-तटपर कुछ मछुए दीख पड़े। उनके बदनपर कपड़े बरायनाम ही थे; जेकिनं उनके शरीर गठे हुए और सुडौल थे। इसके पह अर्थ नहीं कि वे मोटे-ताजे और स्थूल थे।

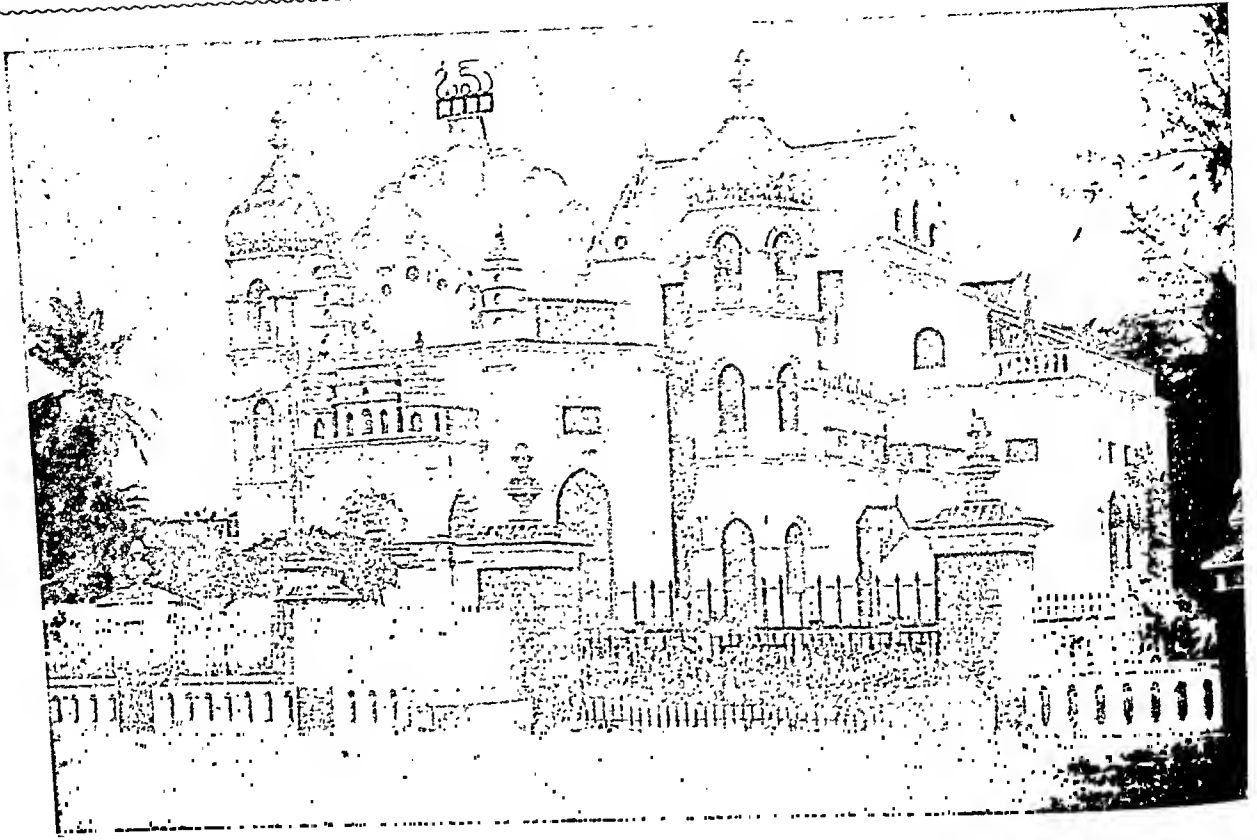
दीख पड़ती है। उनके चलने-फिरनेमें भी एक सौन्दर्य और मर्यादा है, जो उनकी शताब्दियों पुरानी जातीय संस्कृतिकी सूचक है, भले ही उस संस्कृतिका सम्बन्ध साक्षरतासे न हो।

पीठापुरमसे मैं, महाराजकी मोटरपर, काकिनाड़ा गया। सड़कके दोनों ओरकी भूमि खूब उपजाऊ जान पड़ी। बगीचों और खेतोंसे दोनों ओरके दृश्य सुहावने दीख पड़ते थे। बादमें मुझे बतलाया गया

पीठापुरम, उप्पडा, काकिनाड़ा और राजमहेन्द्रीमें—सभी जगह जो स्त्रियाँ मुझे दीख पड़ीं, उनमें उत्तर-भारतकी उसी श्रेणीकी स्त्रियोंकी अपेक्षा कहीं अधिक निर्भयता और आत्म-निर्भरताके भाव दीख पड़े। उनके स्वास्थ्य भी उत्तर-भारतकी स्त्रियोंकी अपेक्षा अच्छे जान पड़े। शायद इसका सबब पर्दा-प्रथा और मैलेरियाका न होना है। किसान और मजदूर श्रेणियोंकी स्त्रियोंकी सुरत-शक्त भी सुवर्द्ध और परिमार्जित



पीठापुरमके दीवान साहब और उनका परिवार



काकिनाड़ा का माहासमाज-मन्दिर

कि पूर्वीय गोदावरी जिले का यह भाग प्रान्त-भरमें सबसे अच्छी आवपाशी का और सबसे अधिक ऊपजाऊ है।



डा० बी० बी० कुण्डैया, काकिनाड़ा

काकिनाड़ामें मैं प्रोफेसर रक्षित और श्रीमती रक्षित का मेहमान हुआ। श्रीमती रक्षित बी० ए०, बी० टी० हैं और पीठापुर राजा कालेजमें—जहाँ उनके पति अंगरेजी के प्रधान अध्यापक हैं—अध्यापिका हैं। पहले वे बंगालमें असिस्टेंट इन्स्पेक्ट्रेस आफ स्कूल और ढाका के महिला टीचर्स ट्रेनिंग कालेज की प्रधान अध्यापिका थीं। आन्ध्र-विश्वविद्यालय से सम्बद्ध समस्त कालेजोंमें वे ही अकेली महिला टीचर हैं।

पीठापुर राजा कालेज और उससे सम्बद्ध स्कूल—दोनों ही में—सह-शिक्षा की व्यवस्था है। स्कूलमें १७०० से अधिक और कालेजमें ५०० से अधिक छात्र-छात्राएँ हैं। स्कूल और कालेज दोनों ही में लड़कियों से फीस नहीं ली जाती है। अछूत और दलित जातियों की न केवल फीस ही माफ है, वरन उन्हें महाराज की ओर से छात्रवृत्ति भी मिलती है।



वीरेशलिंगम-विधवा-आश्रम राजमहेन्द्रकी विधवाएँ, मध्यमें हितकारिणी समाज और प्रार्थना-सभाजके मन्त्रियोंके बीचमें लेखक

काकिनाड़ामें पीठापुरमके महाराज इस उच्चकोटिके कालेज और स्कूलको ही नहीं चलाते, वरन लड़के-लड़कियोंका—जात-पाँतके भेद-भावके बिना—एक बड़ा अनाथालय भी चलाते हैं। कालेजके प्रिन्सिपल श्री रामास्वामीने कृपा करके मुझे कालेज, क्लास-रूम, प्रयोगशाला, पुस्तकालय आदि चीजें दिखलाई। शायद उद्भिज-प्रयोगशालामें उन्होंने मुझसे एक छात्रको परिचित कराया, जो 'अस्पृश्य' कही जानेवाली जातिका था। मैंने उसके शरीरका स्पर्श किया और कहा कि इस स्पर्शसे हम दोनोंमें से किसीके भी शरीरका तापमान चढ़ा-उतरा नहीं। मेरा अभिप्राय यह था कि अस्पृश्यका स्पर्श न तो ब्राह्मणके 'पवित्र' शरीरको घुला देता है, और न ब्राह्मणकी 'ब्रह्माग्नि'से अस्पृश्यकी देह ही भस्म हो जाती है।

कालेज और स्कूलकी कई इमारतें हैं, जो एक ही महातेमें बनी हैं। मुझे बताया गया कि केवल

कालेजके लिए एक बड़ी जमीन ली गई है, जिसमें विद्यार्थियोंके लिए छात्रालय और प्रिन्सिपल तथा कुछ प्रोफेसरोंके लिए निवास-स्थान बनाये जायेंगे। इस सबका खर्च—जो कई लाख रुपये होगा—महाराज देंगे।

प्रिन्सिपल रामास्वामी तथा अन्यान्य मित्रोंके अनुरोधसे मैंने काकिनाड़ाके ब्राह्म-मन्दिरमें भाषण दिया। मन्दिरका भवन ख़ासा बड़ा और स्थापत्य-कलाकी दृष्टिसे भव्य है। इसके निर्माणका सारा खर्च, जो मेरी समझमें लगभग एक लाख रुपये होगा, महाराज पीठापुरमने ही दिया था। मेरे व्याख्यानका विषय था सभ्यताकी उन्नति।

एक दिन सवेरे मैं अनाथालय देखने गया। यह अनाथालय पीठापुरमके वर्तमान महाराजके पिता राजा आर० बी० एम० जी० रामाराव बहादुरके नामपर है। लम्बी-चौड़ी खुली जमीनके बीचमें बनी हुई यह एक



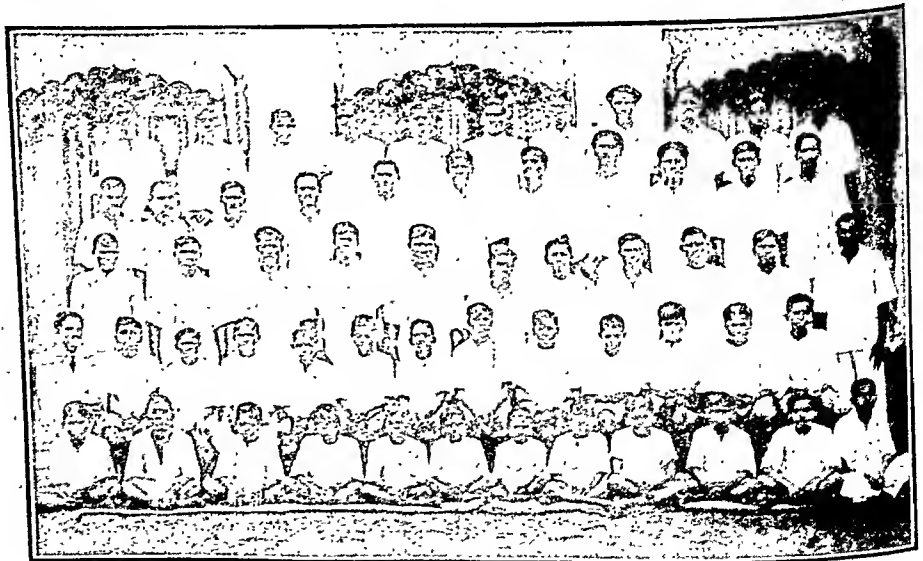
काकिनाड़ा अनाथालयके कार्यकर्ता । बीचमें प्रबन्धक श्री जयन्नाथ राव बैठे हैं

बड़ी और खूबसूरत इमारत है । इस समय इसमें ईई अनाथ बालक और २७ अनाथ बालिकाएँ हैं । बालिकाओंकी संख्या अधिक होती ; किन्तु मुझे बताया गया कि इधर यह पतित प्रथा है कि अनाथ बालिकाओंको उनके रिश्तेदार अकसर बेच डालते हैं, और उन्हें खरीदनेवाले पाल-पोसकर उनसे नर्तकीका पेशा — नृणित पेशा — कराते हैं । इस संस्थाका उद्देश है छोटे अनाथ बालक-बालिका-ओंका पालन-पोषण करके, उन्हें पढ़ा-लिखा कर, किसी उपयोगी धन्धेमें लगाना ।

यह साम्प्रदायिकता-रहित ढंगपर चलाया जाता है । किसी तरहके जाति या धर्म-भेदका विचार नहीं रखा जाता । सबके साथ समानताका व्यवहार होता है ।

और बच्चोंसे बातचीत—सभी बातें इसी सिद्धान्तको ध्यानमें रखकर की जाती हैं । साधारण और व्यावसायिक शिक्षा इस ढंगकी दी जाती है कि उन्हें जीवन आरम्भ करनेमें सुविधा हो ।

अनाथालयसे संलग्न स्कूल आठवें दर्जे तक शिक्षा देता है । उसके आगेकी शिक्षाके लिए लड़के-लड़कियाँ



काकिनाड़ा अनाथालयके बालक

खाना, कपड़ा, रहन-सहन सबका समान है । वास्तवमें यह एक विशाल परिवारकी भाँति है, जिसमें लड़के-लड़कियाँ भाई-बहनकी भाँति रहती हैं ।

शिक्षामें इस बातका ध्यान रखा जाता है कि उनमें ईश्वरके प्रति प्रेम तथा मानव-समाजकी सेवाके भाव उत्पन्न हों । सुबह-शाम एक ईश्वरकी प्रार्थना, नैतिक उपदेश

महाराजा-कालेजमें जाती हैं, जहाँ उनसे फीस नहीं ली जाती है।

यहाँसे लड़के तभी अलग किये जाते हैं, जब वे अपनी जीविका उपार्जन करनेमें सर्वथा समर्थ हो जाते हैं। अलग होते समय उन्हें कुछ पूँजी भी मिलती है, जिससे वे अपना काम प्रारम्भ कर सकें। लड़कियाँ विवाह होनेपर आश्रम छोड़ती हैं। प्रत्येक लड़कीको विवाहके समय कपड़े-लत्ते और गहने आदिके लिए ३५०) दिये जाते हैं। विवाहके बाद भी कोई-कोई लड़की प्रसव-कालमें आश्रममें आ जाती है, और किसी-किसीको कुछ आर्थिक सहायता मिलती है। विवाहके बाद दुर्भाग्यसे यदि कोई लड़की विधवा हो जाती है, तो फिर लौटकर आश्रममें आ जाती है। तब उसे इस प्रकारकी शिक्षा दी जाती है, जिससे वह स्वतन्त्रतापूर्वक जीविका कमा सके। जो पुनर्विवाहके लिए राजी होती हैं, उन विधवाओंका विवाह कर दिया जाता है। सब खर्च महाराज गारु वहन करते हैं। अब तक ३४ लड़कियाँ विवाह करके आश्रमसे निकल चुकी हैं, उनमें से ७ शिक्षिकाका काम करती हैं। ७० लड़के



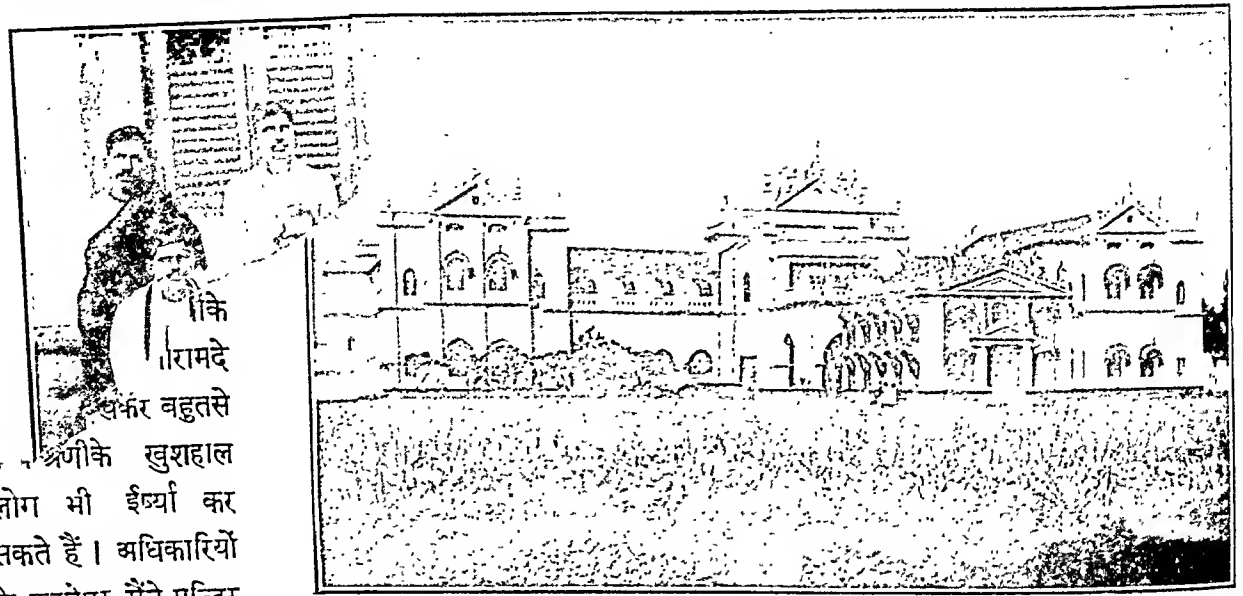
श्री बी० कामेश्वरम्मा



काकिनाड़ा-अनाथालयकी बालिकाएँ

आश्रमसे निकल चुके हैं, वे स्वतन्त्रतापूर्वक कार्य करके सुखसे जीवन निर्वाह कर रहे हैं।

संस्थाका वार्षिक व्यय १५,०००) रु० है, जिसे महाराज पीठापुरम देते हैं। इमारतें भी उन्हींके व्ययसे बनी हैं। किसी बाहरी आदमीसे कोई दान नहीं लिया जाता—केवल वच्चों को मिठाई आदिको छोड़ कर। सर आर० वेंकट रत्नम नायडूकी प्रेरणा और



भार० वी० एम० जी० रामाराव बहादुर अनाथालय, काकिनाड़ा

कि
रामदे
धर बहुतसे
श्रीके खुशहाल
लोग भी ईर्ष्या कर
सकते हैं। अधिकारियों
के कहनेपर मैंने मन्दिर
में प्रार्थना की और
लड़के-लड़कियोंको कुछ
उपदेश भी दिये।

खेद है कि काकिनाड़ामें मैं उन सब सज्जनोंके घर नहीं जा सका, जिनके यहाँ जाना मुझे उचित था। फिर भी मैं प्रिन्सिपल रामास्वामीके घर गया। उनकी पत्नी कुछ दिन कलकत्तेमें रह चुकी हैं, अतः उन्होंने बँगलामें अभिवादन किया। मैं डाक्टर वेदान्तम वैकट कृष्णय्याके घर गया। डाक्टर साहब शिक्षाके लिए पाँच वर्ष कलकत्तेमें रह चुके हैं। यहाँ उनकी प्रैक्टिस खूब बढ़ी-चढ़ी है। वे कांग्रेसके एक प्रसिद्ध कार्यकर्ता हैं। उनकी पत्नी आल इंडिया कांग्रेस कमेटीकी सदस्या और गोदावरी जिला कांग्रेस कमेटीकी प्रधान रह चुकी हैं। इनके अतिरिक्त मैं प्रो० सच्चिदानन्दम, प्रो० एस० एन० पाल और श्री ज्योतिर्मय वनर्जीके घर भी गया। वनर्जी महाशयने मुझे अपनी कारपर काकिनाड़ा घुमाया और सामलकोट स्टेशन तक पहुँचा दिया। स्टेशनका रास्ता नहरके किनारे-किनारे था। सामलकोट और वस्तुओंके लिए प्रसिद्ध हो सकता है; लेकिन मुझे वह इसलिए याद है कि वहाँ फ़ूटफार्मपर मैंने अपनी पौत्रियोंके लिए लकड़ीके बड़े सुन्दर-सुन्दर खिलौने खरीदे थे।

जब मैं राजमहेन्द्री पहुँचा, तो बारह वज्र चुका था। मैं स्वर्गीय वीरशालिगम पन्तुलूगारुके बगीचेमें ले जाया गया। इस बागमें पन्तुलू महाशयका एक दुत्तला मकान और एक बँगला बना है। इसके सिवा एक खुली हुई पक्की बारहदरी-सी भी है, जिसमें कुछ लोग एकत्रित होकर प्रार्थना कर सकते हैं। इसी बागमें पन्तुलूजीकी समाधि है। उसपर एक संगमरमरकी शिला लगी है, जिसमें लिखा है, 'वे एक सच्चे एकेश्वरवादी थे'। निस्सन्देह यह उनका विलकुल सच्चा वर्णन है। उनकी मूर्तिके उद्घाटनमें भाग लेनेके लिए आन्ध्रके विभिन्न स्थानोंसे अनेक सज्जन आये हुए थे। बागमें हम सबके भोजनका प्रबन्ध किया गया था। यहाँ पीठापुर राजा कालेजके भूतपूर्व प्रिन्सिपल डा० वी० रामकृष्णराव, 'साधना'के सम्पादक श्री कल्याणस्वामी, काकिनाड़ा-अनाथालयके भूतपूर्व व्यवस्थापक श्री वी० पी० राजू, स्वर्गीय पन्तुलू द्वारा स्थापित हितकारिणी समाजके मंत्री श्री पी० सुन्दरशिवराव तथा अन्य मित्रोंसे भेंट हुई। हम सब भोजनके लिए भूमिपर पत्ते बिछाकर बैठ गये।

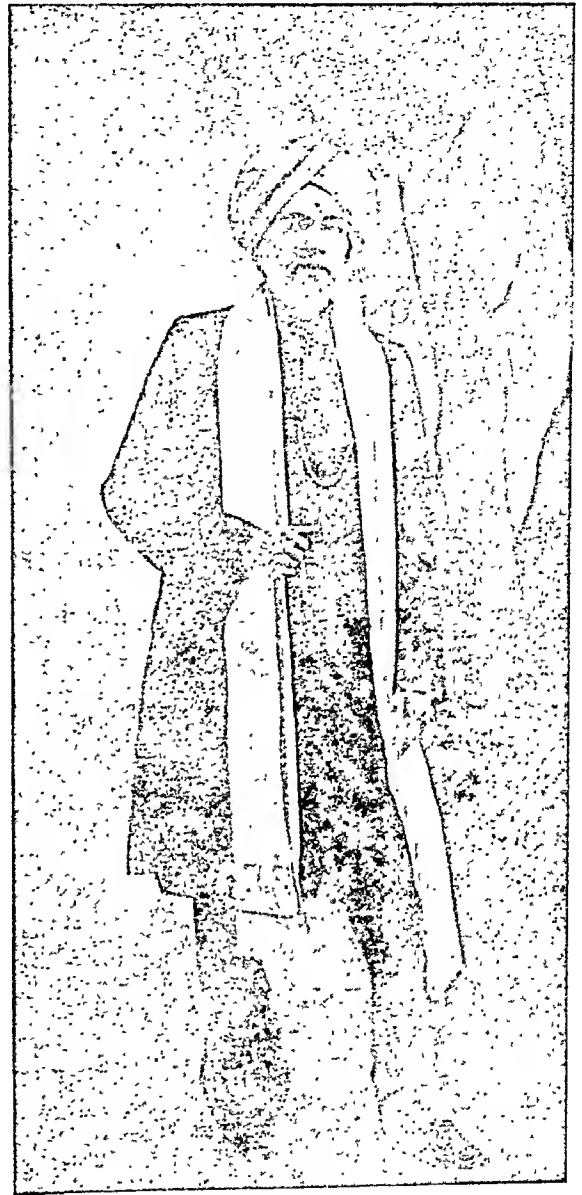
मैंने कुछ थोड़ा-बहुत खाया और एक प्याला रसम् पिया। कहते हैं कि रसम् शीतलता पैदा करता है।

भोजके बाद मैं एक बड़े बँगलेमें ले जाया गया, जहाँ मेरे ठहरानेका प्रबन्ध किया गया था। वहाँ सबसे पहले जो सज्जन मुझसे भेंट करनेके लिए आये, वे थे श्री एन० सुब्बाराव पन्तुलू। बादमें मुझे बतलाया गया कि सुब्बाराव महाशयको लोग 'आन्ध्रदेशका भीष्म' कहा करते हैं। यह उनकी उदारता थी कि वे स्वयं कष्ट करके मुझसे मिलनेके लिए पधारे। उन्होंने



श्रीमती रत्नित

बतलाया कि जब वे पुरानी इम्पीरियल लेजिस्लेटिव कौंसिलके सदस्य थे, तब उनकी एक वक्तृतापर मैंने 'माडर्न रिव्यू'में टिप्पणी लिखी थी। शायद मेरी सफेद दाढ़ी देखकर उन्होंने पूछा—'आपकी उम्र क्या है?'—मैंने बताया, सत्तर वर्ष। 'सिर्फ सत्तर!' उनके मुखसे सहसा निकला। मैं इसका अर्थ समझ गया। मैंने उनकी आयु पूछी, तो उन्होंने बताया

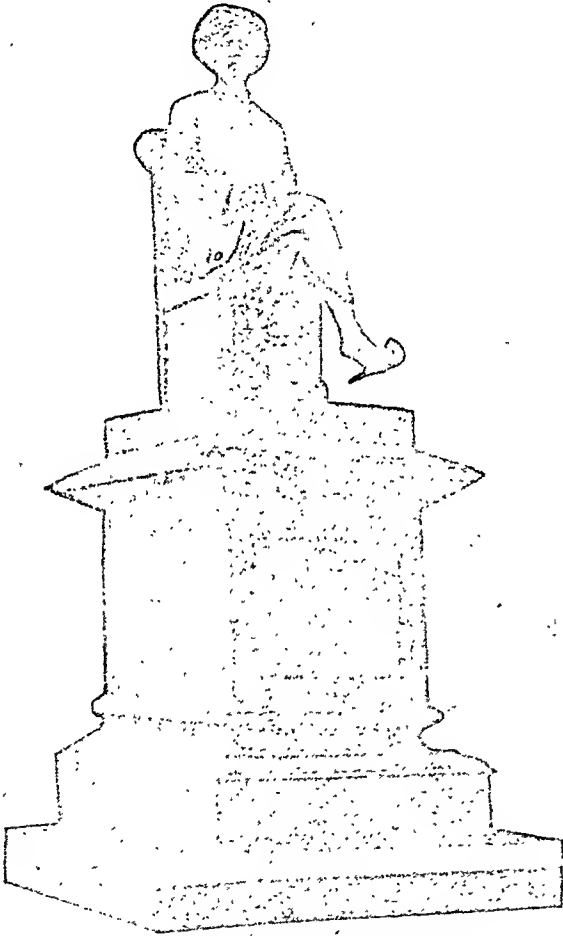


श्री एन० सुब्बाराव पन्तुलू

कि वे अस्सीके हो चुके हैं; किन्तु वे मुझसे कम उम्रके दीखते थे। केवल कमर कुछ झुक गई है, अन्यथा यह मालूम नहीं होता कि वे अस्सी बरसातें झेल चुके हैं।

राजमहेन्द्रीमें पहला सार्वजनिक कार्य जो मुझे करना पड़ा, वह था भारतके नये शासन-विधानपर वक्तृता देना। यह वक्तृता टाउन हालसे लगी हुई एक खुली जगहमें हुई थी। सभापति थे श्री एन०

सुन्दराव । उस जगह तीन-चार हजार आदमी आ सकते थे । भीड़ काफी थी । यह टाउन हाल स्वर्गीय वीरेशलिंगम पन्तुलूने बनवाया था । इसके अतिरिक्त यहाँके हाई स्कूलकी विशाल इमारत, विधवाश्रम और प्रार्थना-समाजका मन्दिर भी उन्हींका बनवाया हुआ है । प्रार्थना-समाजमें दूसरे दिन मैंने



स्वर्गीय के० वीरेशलिंगम पन्तुलूकी मूर्ति

प्रार्थना कराई थी । प्रार्थनाके बाद विधवाश्रम-निवासियोंके साथ मेरा फोटो भी खींचा गया ।

उसी दिन शामको वीरेशलिंगम पन्तुलूकी मूर्तिका उद्घाटन हुआ । खुले मैदानमें जहाँ उद्घाटन-संस्कार हुआ था, बहुत बड़ी भीड़ जमा हुई थी । ऊँचे मंचसे, जहाँ मैं बिठलाया गया था, चारों ओर

सिर-ही-सिर नजर आते थे । मूर्ति-समितिके मंत्री श्री पी० सुन्दरशिवरावने अंगरेजीमें अपनी रिपोर्ट पढ़ी । उसके बाद तैलुगुमें कई व्याख्यान हुए, जिन्हें मैं दुर्भाग्यवश समझ न सका । अंगरेजी व्याख्यानोंमें डा० वी० कृष्णरावका व्याख्यान साफ, विद्वत्पूर्ण और विचारपूर्ण था । श्री पी० सुन्दरशिवरावकी पुत्री श्रीमती कामेश्वरम्माका व्याख्यान, जो आजकल मैसूरमें रहती हैं, अधिक नहीं तो उतना ही साफ था । उन्होंने बड़े हिला देनेवाले शब्दोंमें लोगोंसे अपील की कि वे स्त्रियोंकी उन्नतिके कार्यको—विशेषकर विधवाओंकी रक्षाके कार्यको—अपनायें । वे स्वयं बाल-विधवा हैं । यदि आन्ध्र-देशमें स्वर्गीय वीरेशलिंगम पन्तुलूके चलाये हुए विधवा-विवाह-आन्दोलनके अनुसार उनका पुनर्विवाह न होता, तो उनकी दशा भी वैसी ही दुःखपूर्ण होती, जैसी अन्य बाल-विधवाओंकी । गत फरवरी मासमें वे काकिनाडाके आन्ध्र-प्रान्तीय महिला-सम्मेलनकी अध्यक्षता हुई थीं । उस अवसरपर उन्होंने बड़ा सुन्दर भाषण दिया था । वे कांग्रेसकी एक क्रियाशील कार्यकर्त्री हैं । जब उद्घाटन-संस्कार और सभा समाप्त हुई, तब मैंने उनके शक्तिशाली और हृदय-स्पर्शी भाषणपर उन्हें बधाई दी । उन्होंने मुझे याद दिलाई कि वे मुझसे कराची-कांग्रेसके अवसरपर मिली थीं ।

उसी दिन शामको मैं प्रोफेसर रक्षित और उनकी स्त्रीके साथ काकिनाडा लौट आया । मैं स्थानीय रेलगाड़ीसे लौटा था । यह रेल प्रायः ट्रामगाड़ीकी तरह है । हाँ, पटरियाँ रेलवाली ही हैं । इसका इंजन कच्चे मिट्टीके तेलसे चलता है । दूसरे दिन मैं सामलकोट स्टेशनसे रेलपर सवार होकर कलकत्ता लौट आया । बरहमपुर स्टेशनके भोजनालयमें मैं कुछ खानेके लिए गया ; लेकिन भोजनमें भातको छोड़कर हर चीज़में मिर्च, मिर्च, मिर्च । मिर्चोंकी इतनी भरमार कि एक ग्रास खाना मुश्किल ; किन्तु यह कोई नया अनुभव नहीं था । फिर किसी भारतीय राष्ट्रादीकी विभिन्न प्रान्तों और जिलोंके भोज्य-पदार्थोंकी शिकायत नहीं करनी चाहिए ।



कविवर श्री मैथिलीशरण गुप्त

जिनकी पचासवीं वर्षगांठ गत २१ जुलाईको सारे देशमें धूमधामसे मनाई गई थी

आभार

अनुग्रहीत मैं, यद्यपि अब भी करना है थोड़ा पथ पार ;
दिन ढल गया, न दौड़ गिरुँ मैं, रहे आप सबका आभार ।
यह सुयोग दुर्लभ, पर सुनिये, निज भविष्य है अधिक उदार ;
जो पीछे आ रहे, उन्हींका मैं आगेका जय-जयकार ।

—मैथिलीशरण



पहाड़ी स्त्री

चित्रकार—श्री किरणमय धर

ब्रजभाषाका एक प्राचीन व्याकरण

श्री अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी

हालमें हमें 'A Grammar of the Braj Bhakha by Mirza Khan' नामक एक पुस्तक देखनेको मिली। यह मिर्ज़ाखान नामक एक प्राचीन फारसी-लेखकका लिखा हुआ ग्रन्थ है। इस पुस्तकमें मिर्ज़ाखान इब्न खखरुद्दीन मुहम्मदकृत 'क्रवायद कुलियात भाखा' ही नहीं है, बल्कि क्रवायदके सिवा ग्रन्थकर्ताके तुहफ़त-उल-हिन्दके अन्यान्य विषयोंके सामान्य परिचयके साथ इसमें ब्रजभाषाका व्याकरण बताया गया है। मूल फ़ारसीके साथ सटिप्पण अंगरेज़ी भाषान्तरके लिए हम लोग 'विश्व-भारती'के फ़ारसीके लेख्चर मौ० मुहम्मद ज़ियाउद्दीनके कृतज्ञ हैं, जिन्होंने इसे फ़ारसी जाननेवालोंके साथ ही उससे अनभिज्ञ और अंगरेज़ी द्वारा उसका रसास्वादन करनेवालोंके लिए बोधगम्य कर दिया है।

मिर्ज़ाखानने यह ग्रन्थ लिखनेमें कितना परिश्रम किया होगा, इसका अनुमान इतनेसे ही लगाया जा सकता है कि ब्रजभाषा या हिन्दीमें स्वरों और व्यंजनोके लिए जो अक्षर और उच्चारण हैं, उनमें बहुतोंका अरबी और उसके रूपान्तर फ़ारसी अक्षरोंमें सर्वथा अभाव है। उदाहरणार्थ 'द' अक्षरको तो उन्होंने 'दाले खफ़ीफ़ह' कहा और 'ड'को 'दाले मुसक़ीलह' बताया। इसी तरह 'ध'को 'दाले संक़ीलह' और 'ढ'को 'दाले असक़ल' कहा। जान पड़ता है, इसी समयसे फ़ारसी अक्षरोंमें हिन्दी शब्दोंके उच्चारणके लिए डाल, टे, डे जैसे अक्षरोंकी सृष्टि की गई, क्योंकि 'ट'को 'ताए फ़ौक़ानी मुसक़ीलह', 'थ'को 'ताए फ़ौक़ानी सक़ीलह' और 'ड'को 'ताए फ़ौक़ानी असक़ल' कहा है।

यह ग्रन्थ औरंगज़ेबके ज़मानेमें लिखा गया था, इससे जाना जाता है कि धर्मके विषयमें उस समयकी कट्टरता भी ज्ञानका स्रोत नहीं सुखाती थी। तुहफ़त-उल-हिन्दके उपोद्धातमें तो ब्रजभाषाका व्याकरण है। इसके बाद पिंगल, तुक, नवरस, शृंगार-रस, नायक-नायिका-भेद, संगीत, राग-रागिनी, कामशास्त्र या कोकशास्त्र और सामुद्रिकके सिवा परिशिष्टमें लुघात हिन्दी नामसे ३००० शब्दोंका कोष है, जिनके अर्थ फ़ारसीमें दिये हैं। हमें यह पढ़कर प्रसन्नता हुई कि यह लुघात हिन्दी भी तैयार हो रही है। हमारे मतसे तुहफ़त-उल-हिन्दके अन्यान्य विषयोंका महत्त्व ऐतिहासिक दृष्टिसे है;

पर लुघात तो नित्यके व्यवहारकी वस्तु है, और उसके प्रकाशनसे लुप्तप्राय अनेकानेक शब्दों और अर्थोंका उद्धार हो जायगा।

अब इस पुस्तकके मूल विषयकी चर्चा करते हैं। यह तुहफ़तका दूसरा अध्याय है, जो दस अंशोंमें विभक्त है। पहलेमें भाषाकी स्थितिका वर्णन है—यथा संहसकिर्त, पराकिर्त और भाषा। पहली देववानी या आकासवानी और दूसरी पातालवानी या नागवानी है। तीसरीमें शृंगारी कविता और नायक-नायिकाका वर्णन है, और यही उस लोककी भाषा है, जिसमें हम रहते हैं। संस्कृत और प्राकृतको छोड़कर सभी भाषाएँ भाषा कहाती हैं। यह विशेषकर विर्जके लोगोंकी भाषा है। गंगा-यमुनाके बीच चन्दावर तककी भाषा उत्कृष्ट है। विर्ज मथुरासे चारों ओर चार कोस तकको कहते हैं। पर हिन्दीमें मथुराजनकी सीमा चौरासी कोस है।

भाषाका इस प्रकार निराकरण करके दूसरे अंशमें शब्दकी चर्चा की गई है। शब्द तीन प्रकारका है—(१) सम्पादन, (२) कर्तव और (३) कर्ता। इस प्रकारका वर्गीकरण इसके पहले देखनेमें नहीं आया। किसी संस्कृत, प्राकृत या पुराने हिन्दी व्यकरणमें भी संज्ञाका नाम सम्पादन और क्रियाका नाम कर्तव नहीं देखा। सम्पादन दो प्रकारका बताया गया है—(१) जिसके अर्थके लिए दूसरेका सहारा नहीं लेना पड़ता और (२) जिसके अर्थके लिए दूसरेका सहारा लिया जाता है। पहलेको अरबीमें इस्म कहते हैं। यही हिन्दीमें संज्ञा कहाता है। दूसरा 'वर्त' कहाता है, जो अरबीमें हर्फ़ है। यह वास्तवमें अव्यय है, और संज्ञाके अन्तर्गत नहीं आता।

कर्तव पाँच प्रकारका बताया गया है—(१) भूत, (२) वर्तमान, (३) भविष्य, (४) किरया (क्रिया) और (५) किर्त (कृत)। भूतके उदाहरण—आयो, आए, आई, आई हैं। वर्तमानके—करत है, करत हैं, करत हो और करत हूँ हैं। यहाँ लेखकने ठीक ही बताया है कि पुलिङ्गमें करतको करतु और स्त्रीलिङ्गमें करति कहते हैं। भविष्यके आठ रूप दिये हैं, जिनमें स्त्रीलिङ्ग और बहुवचनके कारण भेद बढ़े हैं। जैसे (वह वा तू) करैगो, (हम या वे) करैगे, (मैं) करैगी, (मैं) करैगी, (तू वा वह) करैगी और (तुम) करैगी। यहाँ तक तो सब ठीक है।

पर आगे क्रिया (क्रिया) के चार भेद बताये हैं—(१) सम्भाव, (२) असम्भाव, (३) भाव और (४) अनभाव वा अभिभाव । आयो, नायो, करत है, करेगो, न करत है, न करेगो—ये चारोंके उदाहरण हैं । न वा ना निषेधात्मक अव्यय माननेसे दो ही भेद रह जाते हैं, और वे भी ऊपर बताये हुए भूत, वर्तमान और भविष्यके ही रूप हैं । इसलिए नये नामोंसे उन्हें दुहराना कुछ अर्थ नहीं रखता ।

कर्ता (कृत) से कर्मका अभिप्राय है । कर्ता ज्योंका त्यों है, उसके नाम या अर्थमें कोई परिवर्तन नहीं है ; पर कर्ताके दो भेद स्वाधीन और पराधीन किये गये हैं । पहला कर्ता (करनेवाला) और दूसरा कारयिता (करानेवाला) है । कर्ताकी परिभाषा करनेके समय आधुनिक वैयाकरणोंको कारयिताका ध्यान भी रखना चाहिए ।

कर्तव्यकी चर्चा समाप्त करनेके पहले यहाँ यह कह देना आवश्यक है कि जो लोग हिन्दीसे 'ने' का प्रयोग उठा देना चाहते हैं, वे तब तक उसे न उठा सकेंगे, जब तक वाक्यकी रचनामें परिवर्तन न कर सकेंगे । चन्दके रासोके समयसे उस समय तक, जब तक हिन्दीमें 'ने' युक्त पद प्रचलित नहीं हुआ था, कर्मणि प्रयोगवाले वाक्य पाये जाते हैं, यद्यपि 'तरवरसे एक तिरिया उतरी उसने खूब रिम्माया' खुसरोकी इस पहलीमें भी 'ने' मौजूद है । इस सम्बन्धमें मिर्ज़ाखानके क़वायदके भाषान्तरमें कहा गया है—

"The transitive verb is that in which the verb does not conclude its action with the subject, but proceeds towards an object. However, the inflections of this verb undergo a change in accordance with the change in their object, that is, if the object is masculine, the verb is rendered masculine and if (the object be) feminine (the verb) is made feminine (too). For example, if the object is singular masculine they would say : mariyo and if it be singular feminine they would say : mari, and so on in other cases."

अर्थात्—सकर्मक क्रिया वह है, जिसमें कर्ताका व्यापार उसी तक समाप्त नहीं हो जाता; पर कर्मकी ओर जाता है । जो हो, इस क्रियाके प्रत्ययोंमें कर्मानुसार परिवर्तन होता है, अर्थात् कर्म पुल्लिंग होनेपर क्रिया पुल्लिंग और स्त्रीलिंग होनेपर यह भी स्त्रीलिंग कर दी जाती है । उदाहरणार्थ, यदि कर्म पुल्लिंग एकवचन होगा, तो कहेंगे 'मान्यो' और स्त्रीलिंग एकवचन होगा तो कहेंगे 'मारी' ।

पुल्लिंग (पुल्लिंग) और अस्त्रीलिंग (स्त्रीलिंग) का वर्णन करके मिर्ज़ाखानने बताया है कि आ, ई, आनी और नी प्रत्यय पुल्लिंग शब्दोंमें जोड़नेसे उनके स्त्रीलिंग शब्द बनते हैं ; जैसे, विर्ध (वृद्ध)—विर्धा (वृद्धा) । देव—देवी, रूढ़—रूढ़नी, तुरंग—तुरंगनी । निपुंसक (नपुंसक) लिंगकी भी चर्चा है ; पर साथ ही यह भी कह दिया गया है कि यह भाषामें नहीं आता । एकवचनसे बहुवचन (बहुवचन) बनानेका यह नियम बताया है कि 'न' जोड़ दो ; पर यदि शब्दान्तका अक्षर व्यंजनवत् उच्चारित होता हो, तो उसमें एक अक्षर जोड़कर 'न' जोड़ो ; जैसे, कर—करन, पग—पगन । आकारान्त शब्दमें केवल 'न' जोड़ते हैं ; जैसे, कुलिटा (कुलटा)—कुलिटान । इ, उ, उ, वकारान्त शब्दोंमें कभी इ, उ हटा देते हैं और कभी रखते हैं, जैसे, सखी—सखियन, भिट्ट—भिट्टयन । कभी-कभी 'आन' जोड़कर भी बहुवचन बनाते हैं, जैसे, सखियान ।

सर्वनामोंमें केवल सम्बन्धवाचक सर्वनामका उल्लेख है, और ये सात बताये गये हैं—वा, ता, या, जा, उन, इन और जिन । इनमें पुल्लिंग-स्त्रीलिंगका भेद नहीं होता, यह तो ठीक है ; परन्तु उन, इन और जिन तो वा, या और जाके बहुवचनके रूप हैं, इसलिए सर्वनाम चार ही रह गये । हाँ, 'ता' का बहुवचन 'तिन' क्यों छूट गया, मालूम नहीं ।

जिसे आजकल हम सरल वाक्य कहते हैं, जिसमें कर्ता और क्रिया हों, उसका पुराना नाम पदवृत्ति है, और मिर्ज़ाखानने इसके लिए 'पदवर्ति' का प्रयोग किया है ।

सम्बन्धके विषयमें मिर्ज़ाखानने यह तो स्पष्ट नहीं लिखा कि सम्बन्ध कारक विशेषण होता है ; पर इतना कह दिया है कि पहला 'मुज़ाफ़' और दूसरा 'मुज़ाफ़ इलैह' होता है । पहलेसे अभिप्राय विशेष्यका है और दूसरेसे सम्बन्धका, क्योंकि उदाहरणमें 'पूत रामको' लिखा है । हमारे यहाँ हिन्दीमें विभक्तिप्रत्यय प्रातिपदिकसे पृथक् क्यों लिखे जाने लगे, इसका कुछ आभास इस विषयके मिर्ज़ा खानके वर्णनसे मिलता है । अरबी और फ़ारसी दोनों विश्लेषणात्मिका भाषाएँ हैं, और जब अरबी और फ़ारसीवालोंने हिन्दीका अध्ययन किया, तो शब्दार्थ सीखनेके समय 'को' माने अरबीमें 'लि' और फ़ारसीमें 'इ' होते हैं, इस प्रकार स्वभावतः ही पढ़ा और याद किया और चूँकि अरबी-फ़ारसीमें हिन्दीकी भाँति मिलाने वा

वेलगानेका कोई ढंग नहीं था, इसलिए जब हिन्दीमें अलग-अलग शब्द लिखनेकी चाल चली, तब लिखनेवाले विभक्तियों और प्रत्ययोंको अरबी-फ़ारसीकी देखादेखी स्वतन्त्र शब्द मान अलग-अलग लिखने लगे। अनन्तर जब यहाँ अंगरेज़ीका प्रचार हुआ, तो उसके भी विश्लेषणात्मिका भाषा होनेके कारण 'को' माने 'को', 'फ़्राम' माने 'से', 'आफ़' माने 'का', 'आन' माने 'पर', 'ऐट' माने 'पर' या 'तरफ़' पढ़ते-पढ़ते अलग लिखनेका संस्कार वद्धमूल हो गया।

अन्तमें मिर्ज़ाखानने उपसर्गों और प्रत्ययोंका विशद वर्णन किया है, यहाँ तक कि उन्होंने सम्बोधनके पूर्व लगनेवाले उपसर्गोंका भी इन्हींमें समावेश कर दिया है, और यह अंश प्रायः उतना ही बड़ा है, जितना बड़ा व्याकरणका पूर्व कथित भाग।

एक भाषाका किसी दूसरी भाषा द्वारा समझाना बड़े

उस्तादका काम है, और मिर्ज़ाखानने इस कुलियात द्वारा अपनेको उस्ताद साबित कर दिया है। उन्होंने जिस पित्तमारीके साथ अक्षरोंका वर्णन किया है, उसके लिए तो उनकी जितनी प्रशंसा की जाय, थोड़ी है। कहीं भूल न हो जाय, इसलिए जब कभी आवश्यकता संस्कृत हिन्दी शब्द लिखनेकी हुई, तब उसका वर्ण-विन्यास—हिज्जे या स्पेलिंग बतानेमें कभी आलस नहीं किया। सहस्रकृती हिज्जे इस तरह बताई है:—वसीनीन मुहमलतीन' सीन अव्वल मफ़तूह व फ़तहहाय मयनूनह व सकून सीन सानी, व कसरकाफ़ ताज़ी खफ़ीफह व सकून रा व ताए फ़ौक़ानी खफ़ीफ़ह।

इस पुस्तककी चर्चा समाप्त करनेके पहले हम मौलाना जियाउद्दीन साहबको अनेक धन्यवाद देते हैं, जिनकी कृपासे यह दुष्प्राप्य ग्रन्थ उपलब्ध हुआ है। आशा है, 'लुगात हिन्दी' हम लोगोंको देखनेका सौभाग्य शीघ्र प्राप्त होगा।

कव ?

श्री गंगाप्रसाद पाण्डेय

जब शीतल शशिका सहज प्यार,
छूता कण - कणको कर पसार,
रस-मय होता अग - जग अपार,
तब विह्वल होकर अकस्मात्
करने लगता मैं करुण गान।

जब मंदिर किरणकी कृपाकोर,
निज मादकतामें बोर - बोर,
करती कलिकाको सुख - विमोर,
तब मैं उपवनसे व्याकुल हो
पूछा करता सुखका निदान।

जब नीरव निशिका पा दुलार,
उठ - उठकर लहरें बार - बार,
'मिल लो' कहती शशिसे पुकार,
तब मैं सागर - तटसे कहता
निज प्राणोंकी पीड़ा महान।

जब सुख-मय होता जग - जीवन,
पा अपने प्रिय-पथका साधन,
पुलकित हो गाता मृदु - गायन,
तब मैं दुखका आलिंगन कर
कोसा करता विधिका विधान।

पत्नी

श्री जैनेन्द्रकुमार

शहरके एक थोर एक तिरस्कृत मकान। दूसरा तला।
वहाँ चौकमें एक स्त्री अंगीठी सामने लिये बैठी है।
अंगीठीकी आग राख हुई जा रही है। वह जाने क्या सोच
रही है। उसकी अवस्था बीस-बाईसके लगभग होगी।
देहसे कुछ दुबली है और सम्भ्रान्त-कुलकी मालूम होती है।

एकाएक अंगीठीमें राख होती हुई आगकी थोर स्त्रीका
ध्यान गया। घुटनोंपर हाथ देकर वह उठी। उठकर कुछ
कोयले लाई। कोयले अंगीठीमें डालकर फिर किनारे ऐसे
बैठ गई, मानो याद करना चाहती है कि 'अब क्या?' घरमें
और कोई नहीं है और समय बारहसे ऊपर हो गया है।

दो प्राणी इस घरमें रहते हैं, पति और पत्नी। पति
सवेरेसे गये हैं कि लौटे नहीं हैं और पत्नी चौकमें बैठी है।

वह (सुनन्दा) सोचती है—नहीं, सोचती कहाँ है,
अलस-भावसे वह तो वहाँ बैठी ही है। सोचनेको है तो
यही कि कोयले न चुम्न जायं। वह जाने क्या आयेंगे। एक
बज गया है। कुछ हो, आदमीको अपनी देहकी फिक्र तो
करनी चाहिए। और सुनन्दा बैठी है। वह कुछ कर नहीं
रही है। जब वह आयेंगे, तब रोटी बना देगी। वह जाने
कहाँ-कहाँ देर लगा देते हैं। और कब तक बैठें। सुम्नसे
नहीं बैठा जाता। कोयले भी लहक आये हैं। और उसने
मन्त्राकर तवा अंगीठीपर रख दिया। नहीं, अब वह रोटी
बना ही देगी। उसने जोरसे खीम्नकर आटेकी थाली सामने
खींच ली और रोटी बेलने लगी।

थोड़ी देर बाद उसने जीनेपर पैरोंकी आहट सुनी। उसके
मुखपर कुछ तल्लीनता आई। क्षण-भर वह आभा उसके
चेहरेपर रहकर चली गई और वह फिर उसी भाँति काममें
लग गई।

कालिन्दीचरण (पति) आये। उनके पीछे-पीछे तीन
और उनके मित्र भी आये। वे आपसमें बातें करते चले आ
रहे थे और खूब गर्म थे। कालिन्दीचरण मित्रोंके साथ सीधे
अपने कमरेमें चले गये। उनमें बहस छिड़ी थी। कमरेमें
पहुँचकर रुकी हुई बहस फिर छिड़ गई। ये चारों व्यक्ति
देशोद्धारके सम्बन्धमें बहुत कटिबद्ध हैं। चर्चा उसी सिलसिलेमें

चल रही है। भारतमाताको स्वतन्त्र करना होगा और
नीति-अनीति, हिंसा-अहिंसाको देखनेका यह समय नहीं है।
मीठी बातोंका परिणाम बहुत देखा। मीठी बातोंसे बापों
मुँहसे अपना सिर नहीं निकाला जा सकता। उस वक्त बापों
मारना ही एक इलाज है। आतंक! हाँ, आतंक। हमें क
आतंकवादसे डरना होगा? लोग हैं, जो कहते हैं, आतंकवाद
मूर्ख हैं, वे बचे हैं। हाँ, वे हैं बचे और मूर्ख। उन्हें
बुजुर्गी और बुद्धिमानी नहीं चाहिए। हमें नहीं अभिलाष
अपने जीनेकी। हमें नहीं मोह वाल-बच्चोंका। हमें नहीं
गर्ज धन-दौलतकी। तब हम मरनेके लिए आजाद क्यों नहीं
हैं? जुल्मको मिटानेके लिए कुछ जुल्म होगा ही। उसके
वे डरें, जो डरते हैं। डर हम जवानोंके लिए नहीं है।

फिर वे चारों आदमी निश्चय करनेमें लगे कि उन्हें क्या
क्या करना चाहिए।

इतनेमें कालिन्दीचरणको ध्यान आया कि न उसने खा
खाया है, न मित्रोंको खानेके लिए पूछा है। उसने अपने
मित्रोंसे माफ़ी माँगकर छुट्टी ली और सुनन्दाकी थोर चला।

सुनन्दा जहाँ थी, वहीं है। वह रोटी बना चुकी है।
अंगीठीके कोयले उल्टे तवेसे दबे हैं। माथेको उँगलियोंपर
टिकाकर वह बैठी है। बैठी-बैठी सूनी-सी देख रही है। सु
रही है कि उसके पति कालिन्दीचरण अपने मित्रोंके साथ क्यों
और क्या बातें कर रहे हैं। उसे जोशका कारण नहीं समझमें
आता। उत्साह उसके लिए अपरिचित है। वह उसके
लिए कुछ दूरकी वस्तु है, स्पृहणीय और मनोरम और
हरियाली। वह भारतमाताकी स्वतन्त्रताको समझना चाहती
है; पर उसको न भारतमाता समझमें आती है, न स्वतन्त्रता
समझमें आती है। उसे इन लोगोंकी इस जोरकी बातचीतका
मतलब ही समझमें नहीं आता। फिर भी उत्साहकी उसमें
बड़ी भूख है। जीवनकी होंस उसमें बुझती-सी जा रही है;
पर वह जीना चाहती है। बहुत चाहा है कि पति उससे भी
कुछ देशकी बात करें। उसमें बुद्धि तो ज़रा कम है, फिर भी
धीरे-धीरे क्या वह भी समझने नहीं लगेगी। सोचती है, कम
पढ़ी हूँ, तो इसमें मेरा ऐसा कसूर क्या है। अब तो पढ़नेको

मैं तैयार हूँ। लेकिन पत्नीके साथ पतिका धीरज खो जाता है। खैर, उसने सोचा है, उसका काम तो सेवा है। वस, यह मानकर उसने जैसे कुछ समझनेकी चाह ही छोड़ दी हो। वह अनायास भावसे पतिके साथ रहती है और कभी उनकी राहके बीचमें आनेकी नहीं सोचती। वह एक बात जान चुकी है। वह बात यह है कि उसके पतिने अगर आराम छोड़ दिया है, घरका मकान छोड़ दिया है, जान-बूझकर उखड़े-उखड़े और मारे-मारे जो फिरते हैं; इसमें वे कुछ भला ही सोचते होंगे। इसी बातको पकड़कर वह आपत्तिशून्य-भावसे पतिके साथ विपदापर विपदा उठाती रही है। पतिने कहा भी है कि तुम मेरे साथ क्यों दुख उठाती हो। पर सुनकर वह चुप रह गई है, सोचती रह गई है कि देखो, यह कैसी बात करते हैं। वह जानती है कि जिसे सरकार कहते हैं, वह सरकार उनके इस तरहके कामोंसे बहुत नाराज़ है। सरकार सरकार है। उसके मनमें कोई स्पष्ट भावना नहीं है कि सरकार क्या होती है; पर यह जितने हाकिम लोग हैं, वे बड़े ज़बरदस्त होते हैं। और उनके पास बड़ी-बड़ी ताकतें हैं। इतनी फ़ौज, पुलिसके सिपाही और मजिस्ट्रेट और कलक्टर और मुन्शी और चपरासी और थानेदार और वाइसराय—ये सब सरकारी हैं। इन सबसे कैसे लड़ना जा सकता है। हाकिमसे लड़ना ठीक बात नहीं है; पर यह उसी लड़नेमें तन-मन विसार बैठे हैं। खैर, लेकिन ये सब-के-सब इतने ज़ोरसे क्यों बोलते हैं? उसको यही बहुत बुरा लगता है। सीधे-सादे कपड़ोंमें एक खुफिया-पुलिसका आदमी हरदम उनके घरके बाहर रहता है। ये लोग इस बातको क्यों भूल जाते हैं? इतने ज़ोरसे क्यों बोलते हैं?

बैठे-बैठे वह इसी तरहकी बातें सोच रही है। देखो, अब दो वजेंगे। उन्हें न खानेकी फ़िक्र, न मेरी फ़िक्र। मेरा तो खैर कुछ नहीं; पर अपने तनका ध्यान तो रखना चाहिए। ऐसी ही वेपरवाहीसे तो वह बच्चा चला गया—उसका मन कितना भी इधर-उधर डोले; पर अकेली ज़ब होती है, तब भटक-भटकाकर वह मन अन्तमें उसी वच्चे और बच्चेके अभावपर आ पहुँचता है। तब उसे बच्चेकी बड़ी-बड़ी बातें याद आती हैं। वे बड़ी प्यारी आँखें, छोटी-छोटी अँगुलियाँ और नन्हें-नन्हें भ्रूथ याद आते हैं। अठखेलियाँ याद आती हैं।

और सबसे ज़्यादा उसका मरना याद आता है। अबसे यह मरना क्या है। इस मरनेकी तरफ़ उससे तो नहीं जाता। यद्यपि वह जानती है कि मरना सबको है मरना है, उसके पतिको मरना है; पर उस तरफ़ भूलसे पुन पड़ा देखती है, तो भयसे मर जाती है। यह उससे सह्य है, जाता। बच्चेकी याद उसे मथ उठती है। तब वह विह्वल होकर आँख पोंछती है और हठात् इधर-उधरकी किसी कामकी बातमें अपनेको उलझा लेना चाहती है; पर इकेलेमें, कुछ करे, रह-रहकर वही—वह याद, वही—वह मरनेकी बात उसके सामने हो रहती है और उसका चित्त वेवस हो जाता है।

वह उठी। अब उठकर वरतनोंको माँज डालेगी, चौका भी साँफ़ करना है। ओह! खाली वैठी मैं क्या सोचती रहा करती हूँ।

इतनेमें कालिन्दीचरण चौकेमें घुसे।

सुनन्दा कठोरतापूर्वक शून्यको ही देखती रही। उसने पतिकी ओर नहीं देखा।

कालिन्दीने कहा—सुनन्दा, खानेवाले हम चार हैं। खाना हो गया?

सुनन्दा चून्की थाली और चकला-वेलन और बटलोई वगैरह खाली वरतन उठाकर चला दी, कुछ भी बोली नहीं।

कालिन्दीने कहा—सुनती हो, तीन आदमी मेरे साथ और हैं। खाना बन सके, तो कहो; नहीं तो इतनेमें ही काम चला लेंगे।

सुनन्दा कुछ भी नहीं बोली। उसके मनमें बेहद गुस्सा उठने लगा। यह उससे क्षमाप्रार्थी-से क्यों बात कर रहे हैं, हँसकर क्यों नहीं कह देते कि कुछ और खाना बना दो। जैसे मैं घैर हूँ। अच्छी बात है, तो मैं भी गुलाम नहीं हूँ कि इनके ही काममें लगी रहूँ। मैं कुछ नहीं जानती खाना-बाना। और वह चुप रही।

कालिन्दीचरणने ज़रा ज़ोरसे कहा—“सुनन्दा!”

सुनन्दाके जीमें ऐसा हुआ कि हाथकी बटलोईको खूब ज़ोरसे फेंक दे। किसीका गुस्सा सहनेके लिए वह नहीं है। उसे तनिक भी सुध न रही कि अभी बैठे-बैठे इन्हीं अपने पतिके बारेमें कैसी प्रीतिकी और भलाईकी बातें सोच रही थी। इस वक्त भीतर-ही-भीतर गुस्सेसे घुटकर रह गई।

। ? बोल भी नहीं सकती ।”

“नहीं ही बोली ।

अच्छी बात है । खाना कोई भी नहीं खाया ।”

कहकर कालिन्दी तैशमें पैर पटकते हुए लौटकर गयी ।

कालिन्दीचरण अपने दिलमें उग्र नहीं समझे जाते, किसी क्रूर उदार समझे जाते हैं । अन्य सदस्य अधिकतर अविवाहित हैं, कालिन्दीचरण विवाहित ही नहीं हैं, वह एक बच्चा खो चुके हैं । उनकी बातका दिलमें आदर है । कुछ लोग उनके धीमेपनपर रुष्ट भी हैं । वह दिलमें विवेकके प्रतिनिधि हैं और उत्तापपर अंकुशका काम करते हैं ।

वहस इसी बातपर थी कि कालिन्दीका मत था कि हमें आतंकको छोड़नेकी ओर बढ़ना चाहिए । आतंकसे विवेक कुंठित होता है । और या तो मनुष्य उससे उत्तेजित हो रहता है, या उसके भयसे दब रहता है । दोनों ही स्थितियाँ श्रेष्ठ नहीं हैं । हमारा लक्ष्य बुद्धिको चारों ओरसे जगाना है, उसे आतंकित करना नहीं । सरकार व्यक्तिके और राष्ट्रेके विकासके ऊपर बैठकर उसे दवाना चाहती है । हम इसी विकासके अवरोधको हटाना चाहते हैं, इसीको मुक्त करना चाहते हैं । आतंकसे वह काम नहीं होगा । जो शक्तिके मदमें उन्मत्त है, असली काम तो उसका मद उतारने और उसमें कर्तव्य-भावनाका प्रकाश जगाना है । हम स्वीकार करें कि मद उसका टफ़र पाकर, चोट पाकर ही उतरेगा । यह चोट देनेके लिए हमें अवश्य तैयार रहना चाहिए ; पर यह नोच-नाँची उपयुक्त नहीं । इससे सत्ताका कुछ विगड़ता तो नहीं, उल्टे उसे अपने औचित्यका सन्तोष हो आता है ।

पर जब (सुनन्दाके पाससे) लौटकर आया, तब देखा गया कि कालिन्दी अपने पक्षपर हड़ नहीं है । वह सहमत हो सकता है कि हाँ, आतंक ज़रूरी भी है । ‘हाँ’ उसने कहा—“यह ठीक है कि हम लोग कुछ काम-शुरू कर दें ।” इसके साथ ही कहा—“आप लोगोंको शूख नहीं लगी है क्या ? उनकी तबियत खराब है, इससे यहाँ तो खाना बना नहीं । बताओ, क्या किया जाय ? कहीं होटल चलें ?”

एकने कहा कि कुछ बाज़ारसे यहीं मँगा लेना चाहिए । दूसरेकी राय हुई कि होटल ही चलना चाहिए । इसी तरहकी

वार्तामें लगे थे कि सुनन्दाने एक बड़ी थालीमें खाना परोसकर उनके बीच ला रखा । रखकर वह चुपचाप चली गई । फिर आकर पास ही चार गिलास पानीके रख दिये, और फिर उसी भाँति चुपचाप चली गई ।

कालिन्दीको जैसे किसने काट लिया ।

तीनों मित्र चुप हो रहे । उन्हें अनुभव हो रहा था कि पति-पत्नीके बीच स्थितिमें कहीं कुछ तनाव पड़ा हुआ है । अन्तमें एकने कहा—“कालिन्दी, तुम तो कहते थे खाना नहीं है ।”

कालिन्दीने भेंपकर कहा—“मेरा मतलब था, काफ़ी नहीं है ।”

दूसरेने कहा - बहुत काफ़ी है । सब चल जायगा ।”

“देखूँ, कुछ और हो तो”—कहकर कालिन्दी उठ गया ।

आकर सुनन्दासे बोला—“यह तुमसे किसने कहा था कि खाना वहाँ ले आओ ? मैंने क्या कहा था ?”

सुनन्दा कुछ न बोली ।

“चलो, उठाकर लाओ थाली । हमें किसीकी यहाँ नहीं खाना है । हम होटल जायेंगे ।”

सुनन्दा नहीं बोली । कालिन्दी भी कुछ देर गुम खड़ा रहा । तरह-तरहकी बातें उसके मनमें और कंठमें आती थीं । उसे अपना अपमान मालूम हो रहा था, और अपमान उसे असह्य था ।

उसने कहा—“सुनती नहीं हो कि कोई क्या कह रहा है ? क्यों ?”

सुनन्दाने और मुँह फेर लिया ।

“क्या मैं बकते रहनेके लिए हूँ ?”

सुनन्दा भीतर-ही-भीतर घुट गई ।

“मैं पूछता हूँ कि जब मैं कह गया था, तब खाना ले जानेकी क्या ज़रूरत थी ?

सुनन्दाने मुड़कर और अपनेको दाबकर धीमेसे कहा—“खाओगे नहीं ? एक तो बज गया ।”

कालिन्दी निरख होने लगा । यह उसे बुरा मालूम हुआ । उसने मानो धमकीके साथ पूछा—“खाना और है ?”

सुनन्दाने धीमेसे कहा—“अचार लेते जाओ ।”

“खाना और नहीं है ? अच्छा, लाओ अचार ।”

सुनन्दाने अचार ला दिया और लेकर कालिन्दी भी चला गया ।

सुनन्दाने अपने लिए कुछ भी बचाकर नहीं रखा था । उसे यह सूझा ही न था कि उसे भी खाना है । अब कालिन्दीके लौटनेपर उसे जैसे मालूम हुआ कि उसने अपने लिए कुछ भी नहीं बचाकर रखा है । वह अपनेसे स्रष्ट हुई । उसका मन कठोर हुआ । इसलिए नहीं कि क्यों उसने खाना नहीं बचाया । इसपर तो उसमें स्वाभिमानका भाव जागता था । मन कठोर यों हुआ कि वह इस तरहकी बात सोचती ही क्यों है ? छिः, यह भी सोचनेकी बात है ! और उसमें कड़वाहट भी फैली । हठात् यह उसके मनको लगता ही है कि देखो, उन्होंने एक बार भी नहीं पूछा कि तुम क्या खाओगी ? क्या मैं यह सह सकती थी कि मैं तो खाऊँ और उनके मित्र भूखे रहें ; पर पूछ लेते, तो क्या था । इस बातपर उसका मन टूटता-सा है । मानो उसका जो तनिक-सा मान था, वह भी कुचल गया हो ; पर वह रह-रहकर अपनेको स्वयं अपमानित कर लेती हुई कहती है कि छिः-छिः, सुनन्दा, तुझे ऐसी ज़रा-सी बातका अब तक खयाल होता है । तुझे तो खुश होना चाहिए कि उनके लिए एक रोज़ भूखे रहनेका

तुझे पुण्य मिला । मैं क्यों उन्हें नाराज़ करती हूँ । अबसे नाराज़ न करूँगी ; पर वह अपने तनकी भी सुध तो नहीं रखते । यह ठीक नहीं है । मैं क्या करूँ ?

और वह अपने वरतन माँजनेमें लग गई । उसे सुन पड़ा कि वे लोग फिर ज़ोर-शोरसे बहस करनेमें लग गये हैं । बीच-बीचमें हँसीके क्रहकहे भी उसे सुनाई दिये । 'ओह' सहसा उसे खयाल हुआ, 'वरतन तो पीछे भी मल सकती हूँ ; लेकिन उन्हें कुछ ज़ख्तर हुई तो ?' यह सोच, झटपट हाथ धो, वह कमरेके दरवाज़ेके बाहर दीवारसे लगकर खड़ी हो गई ।

एक मित्रने कहा—“अचार और है ? अचार और मैंगाओ थार !”

कालिन्दीने अन्यासवश ज़ोरसे पुकारा—‘अचार लाना भई, अचार ।’ मानो सुनन्दा कहीं बहुत दूर हो । पर वह तो बाहर लगी खड़ी थी ही । उसने चुपचाप अचार लाकर रख दिया ।

जाने लगी, तो कालिन्दीने तनिक स्निग्ध वाणीसे कहा—थोड़ा पानी भी लाना ।

और सुनन्दाने पानी ला दिया । देकर लौटी और फिर बाहर द्वारसे लगकर ओटमें खड़ी हो गई । जिससे कालिन्दी कुछ माँगें, तो जल्दीसे ला दे ।

नाम तेरा

श्रीयुत अज्ञेय

पूछ लूँ मैं नाम तेरा !

मिलन-रजनी हो चुकी विच्छेदका अब है सवेरा ।

जा रहा हूँ—और कितनी
देर अब विश्राम होगा—
तू सदय है किन्तु तुम्हको
और भी तो काम होगा ।

प्यारका साथी बना था
विघ्न बनने तक रुकूँ क्यों ?

समझ ले, स्वीकार कर ले
यह कृतज्ञ प्रणाम मेरा !

पूछ लूँ मैं नाम तेरा !

और होगा मूर्ख जिसने
चिर-मिलनकी आस पाली—
‘पा चुका—अपना चुका’
है कौन ऐसा भाग्यशाली ?

इस तड़ितको बाँध लेना
देवसे मैंने न माँगा—

मूर्ख उतना हूँ नहीं,
इतना नहीं है भाग्य मेरा !

पूछ लूँ मैं नाम तेरा !

श्वासकी हैं दो क्रियाएँ—
खींचना, फिर छोड़ देना,
कब भला सम्भव हमें इस
अनुक्रमको तोड़ देना ?

श्वासकी उस सन्धि-सा है
इस जगतमें प्यारका पल—
रुक सकेगा कौन कब तक
बीच पथमें डाल डेरा !
पूछ लूँ मैं नाम तेरा !

घूमते हैं गगनमें जो
दीखते स्वच्छन्द तारे—
एक आँचलमें पड़े भी
अलग रहते हैं विचारे—
भूलमें पल-भर भले
छू जायँ उनकी मेखलाएँ—
दाम मैं भी हूँ नियतिका
क्या भला विश्वास मेरा !
पूछ लूँ मैं नाम तेरा !

प्रेमको चिर-ऐक्य कोई
मूढ़ होगा तो कहेंगा—
विरहकी पीड़ा न हो तो
प्रेम क्या जीता रहेगा ?
जो सदा बाँधे रहे वह
एक कारावास होगा—
घर वही है जो थकेको
रैन-भरका हो वसेरा !
पूछ लूँ मैं नाम तेरा !

प्रकृत है अनुभूति, वह
रसदायिनी निष्पाप भी है,
मार्ग उसका रोकना ही
पाप भी है, शाप भी है ;
मिलन हो, मुख चूम लें ;
आई विदा, लें राह अपनी
मैं न पूछूँ, तुम न जानो
क्या रहा अंजाम मेरा !
पूछ लूँ मैं नाम तेरा !

रात बीती, यद्यपि उसमें
संग भी था, रंग भी था,
अलस अंगोंमें हमारे
व्याप्त एक अनंग भी था,
तीनकी उस एकतामें
प्रलयने ताण्डव किया था—
सृष्टि-भरको एक क्षण-भर
बाहुओंने बाँध घेरा !
पूछ लूँ मैं नाम तेरा !

सोच मत, “यह प्रश्न क्यों जब
अलग ही हैं मार्ग अपने ?”
सच नहीं होते, इसीसे
भूलता है कौन सपने ?
मोह हमको है नहीं, पर
द्वार आशाका खुला है—
क्या पता फिर सामना हो
जाय तेरा और मेरा !
पूछ लूँ मैं नाम तेरा !

कौन हम-तुम ? दुःख-सुख
होते रहे, होते रहेंगे,
जानकर परिचय परस्पर
हम किसे जाकर कहेंगे ?
पूछता हूँ क्योंकि आगे
जानता हूँ क्या वदा है—
प्रेम जगका, और केवल
नाम तेरा, नाम मेरा !

पूछ लूँ मैं नाम तेरा !
मिलन रजनी हो चुकी, विच्छेदका अब है सवेरा ।

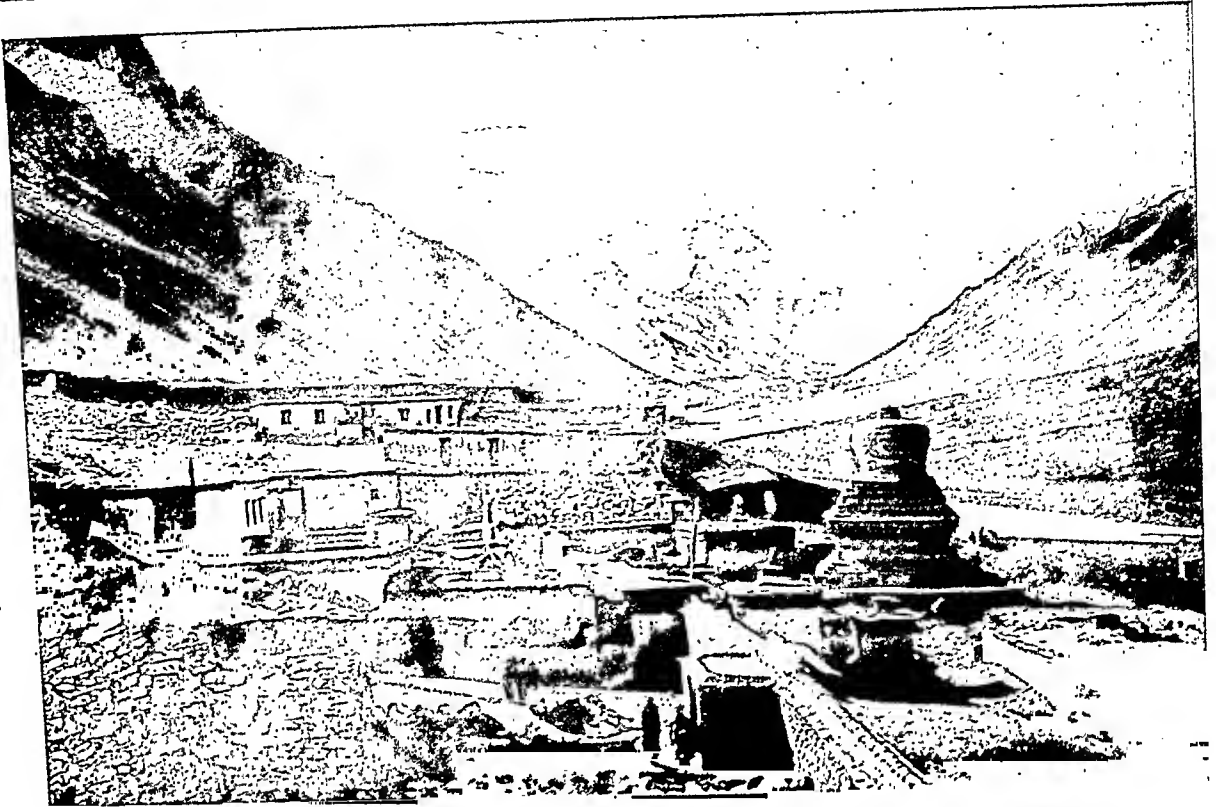
हिमालयके दृश्य



वरीनाथके मार्गमें लैगासोका स्कूल और चट्टी
चित्रकार—श्री रामेन्द्रनाथ चक्रवर्ती



वरीनाथका मन्दिर और अलकनन्दा
चित्रकार—श्री रामेन्द्रनाथ चक्रवर्ती



रबुक मठसे एवरेस्टका दृश्य



१९३३ के एवरेस्ट-युमियानमें भाग लेनेवाले शेरपा कुली

गौकी दादाके साथ

डा० सत्यनारायण सिंह, पी-एच० डी०

उत्तरी यूरोपके स्कैंडिनेविया, जर्मनी, पोलैण्ड आदि देशोंमें जाड़ोंमें भयंकर सर्दी पड़ती है। कई जातियोंकी चिड़ियाँ इस सर्दीको बरदाश्त नहीं कर सकती, इसलिए जाड़ेकी आमदके साथ ही वे उड़कर कुछ महीनोंके लिए दक्षिणी यूरोपके इटली, बालकन आदि देशोंको चली आती हैं।

उत्तरी यूरोपमें अध्ययन करनेवाले कुछ घुमक्कड़ विद्यार्थी भी इन्हीं चिड़ियोंका अनुकरण करते हैं। जाड़ोंमें जब स्कूल-कालेज कुछ हफ्तोंके लिए बन्द हो जाते हैं, तो अनेक विद्यार्थी पर्यटनके लिए दक्षिणी देशोंकी यात्रा किया करते हैं। इस तरहके घुमक्कड़ विद्यार्थियोंके सैर-सपाटेका प्रबन्ध करनेके लिए जर्मनीमें एक बड़ी संस्था थी, जिसका नाम था 'वाण्डर फ़ोगल' (पर्यटनशील पक्षी)। इस संस्थाका मुख्य कार्य विद्यार्थियोंमें भ्रमण करनेकी प्रवृत्ति उत्पन्न करना तथा भ्रमणके समय उन्हें यथासम्भव सहायता पहुँचाना था।

जिन दिनों मैं जर्मनीमें पढ़ता था, मैं भी उपर्युक्त 'पर्यटनशील पक्षी' नामक संस्थाका सदस्य था। उस संस्थाके साथ, अपने मित्रोंके साथ अथवा अकेले ही मैं अनेक बार यूरोपकी लम्बी-लम्बी यात्राएँ कर चुका था। साधारण लोगोंकी यात्रासे हम लोगोंकी यात्रा कई बातोंमें विभिन्न रहा करती थी। सिर्फ यह दिखलानेके लिए कि 'हमने इतने हजार मीलकी यात्रा समाप्त की', अथवा 'हम अमुक-अमुक विख्यात स्थान देख चुके हैं', हम जोगोंकी यात्रा नहीं हुआ करती थी। हम लोगोंका काम न तो दूरी मापते रहना था और न केवल ईट-पत्थर देखते रहना। हमारी यात्राका ढंग यह था कि यदि किसी जगहका सौन्दर्य, चाहे वह जगह नामी-गरामी यात्रियोंका 'तीर्थ-स्थान' भले ही न बनी हो, आकर्षित करता था, तो हमारा पड़ाव वहाँसे जल्दी नहीं उठ पाता था। हम लोगोंकी दूसरी विशेषता यह

होती थी कि जिस स्थानपर हम टिकते थे, उसे अपनी इच्छाके अनुकूल परिणत करनेकी चेष्टा न करके अपनी इच्छाको ही उसके समान चलता हुआ देखकर आनन्द उठाया करते थे।

इसी प्रकार भ्रमण करता हुआ एक बार मैं इटलीमें नेपल्सके पास काप्री नामक एक सुन्दर द्वीपमें जा निकला। काप्री अपने प्राकृतिक सौन्दर्यके लिए दुनिया-भरमें विख्यात है, और इसीलिए विभिन्न देशोंके धनी लोग वहाँपर 'स्वास्थ्य खरीदने' जाया करते हैं। सौभाग्यसे अधिकांश लोगोंके लिए काप्री आनेका जो मौसिम हुआ करता है, वह तब तक आरम्भ नहीं हुआ था, जब मैं वहाँ पहुँचा था, और इसी कारण उस समय वहाँ यात्रियोंकी भीड़ नहीं-सी ही थी।

काप्री मेरे लिए नया नहीं था। इससे पहले भी मैं एक बार वहाँ आ चुका था। पहली बार जब काप्री आया था, तब वहाँ एक रूसी-परिवारके साथ ठहरा था। इस बार भी उसी परिवारने एक कोठरी मुझे किरायेपर दे दी। कोठरीमें अपना सामान रख समुद्र-तटकी ओर जानेका विचार करके मैं कमरेमें टहल-टहलकर कपड़े बदल रहा था। इतनेमें दृष्टि सामनेके बगीचेकी ओर जो पड़ी, तो देखा कि एक बुढ़ऊ आरामकुर्सीपर लेटे अखबार पढ़ रहे हैं। उनकी पोशाक ऐसी थी कि पहली ही दृष्टिमें स्पष्ट हो जाता था कि वे किसी यूरोपीय देशके नहीं हैं। उनके बदनपर कुर्ता और पांजामा था। कुर्तेके गलेकी पट्टी और सामनेके भागपर बद्धिया कसीदा किया हुआ था। यह कसीदा बहुत-कुछ रसी ढंगका था, जैसा लखनऊकी दुपल्ली टोपियोंपर होता है। पांजामा पतले कपड़ेका और धारीदार था, जैसा कभी-कभी हमारे यहाँ मुसलमान बाबर्ची पहना करते हैं। पैरोंका बूट खूब ऊँचा था। यूरोपमें ऐसा दिवास प्रायः रूसी

लोगोंका ही हुआ करता है ; पर काप्री-जैसे स्थानमें पहुँचकर रूसियोंको यूरोपियन लिवास बदलते देर नहीं लगती । काप्रीमें ऐसे रूसी विरले ही दीखते हैं, जो अपनी देशी वज्र-कृतमपर कायम रहें । अतः बुढ़्जको देखकर मैंने यही समझा कि शायद उस घरके मालिक कहीं बाहर गये हैं, इसीलिए उनके वावर्ची साहब आरामकुर्सीपर बैठकर अपना शौक मिटा रहे हैं ।

अभी मैं ठीक निश्चित नहीं कर पाया था कि ये बुढ़्ज दरस्तल वावर्ची थे अथवा रूससे ताजे आये हुए कोई नये आगन्तुक, इतनेमें मेरे घरकी मालिकिने मुझे काफ़े पीनेके लिए बुलाया । काफ़े पीते समय मैंने उन वृद्ध महाशयके विषयमें पूछा । घरकी मालिकिने उत्तर दिया—“उन्हें नहीं जानते ! वे ही तो हम लोगोंके देदुश्का* गोर्की हैं ।”

और अधिक परिचयकी आवश्यकता नहीं थी । उसी दिन तीसरे पहर मैं घरकी मालिकिनेके साथ गोर्कीके यहाँ गया । वे इस समय भी उसी वरामदेमें मिले, जहाँपर सवैरेके समय मैंने उन्हें अपनी खिड़कीसे देखा था । घरवालीने उनसे हँसते हुए मेरे विषयमें कहा—“ये भारतवासी हैं, इनपर आपकी छाप काफ़ी पड़ी है । आपकी तरह इन्होंने भी खूब आवारागर्दी की है । पैदल, साइकिल तथा नौका द्वारा सारा यूरोप छान डाला है । अब ये दक्षिण विजयके लिए निकले हैं ।”

गोर्की मेरी ओर गौरसे देखने लगे । उनके चेहरेपर मुसकराहट थी । मैंने झुककर कहा—“ज्द्रास्त्युते (नमस्ते) ।”

“ज्द्रास्त्युते ! ज्द्रास्त्युते !” कहते हुए उन्होंने अपना हाथ आगे बढ़ाया और ऐसे प्रेमसे मिलाया, मानो बचपनमें उन्होंने मुझे गोद खेलाया

* रशियन भाषामें दादा (पितामह) को देदुश्का कहा जाता है । जिस प्रकार अपने देशमें बृद्ध व्यक्तियोंको बापू, काका, मामा आदि प्रेम-सूचक नामसे पुकारा जाता है, उसी प्रकारका रिवाज रूसमें भी प्रचलित है । रूसी सभ्यत्वके भीष्म मेक्सिम गोर्कीको वहाँके नवयुवक प्यारसे ‘देदुश्का’ कहकर सम्बोधन किया करते थे । —लेखक

हो और अब बहुत दिनोंके बाद पुनः मिल रहे हों । फिर स्वयं ही कहने लगे—“रूसी भाषा तो तुम अच्छी बोल लेते हो ! कहाँ सीखी ?”

“थोड़ी तो फ्रांकफुर्तके विश्वविद्यालयमें सीखी थी, फिर जब स्वेडेन गया, तो वहाँ एक निर्वासित रूसी परिवारके साथ रहनेका अवसर मिला, वे लोग रूसीके सिवा और कोई भाषा जानते ही न थे, इसलिए उनके साथ रहनेसे मजबूर होकर रूसी सीखनी पड़ी ।”

“तब तो तुम उत्तर विजय भी कर चुके हो !”

उन्होंने मेरी आवारागर्दीका वृत्तान्त बड़े गौरसे सुना । जब उन्हें मालूम हुआ कि जर्मनीसे डाक्टरेटकी परीक्षा पास कर लेनेपर कुछ दिनों तक मैं हालैंडमें एक किसानके घर काम किया करता था, जहाँपर मेरा कार्य था मुर्गियोंको दाना देना, तो वे खिलखिलाकर हँसने लगे । विशेषकर वैसे मौकोंका वृत्तान्त उन्होंने मुझे खूब विस्तारपूर्वक सुनानेके लिए कहा । जब उन्हें मालूम हुआ कि एक जहाज़में भी मैं काम किया करता था, जहाँपर मैं प्रधान वावर्चीका सहकर्मी था और मेरा कार्य आलू छीलना था, तब तो वे हँसते-हँसते लोट गये । आँखोंसे आँसू निकलने लगे, फिर भी उनका हँसना बन्द नहीं हुआ । शायद यह कारण हो कि लड़कपनमें अपने आवारा जीवनमें गोर्की भी एक जहाज़के वावर्चीके शागिर्द रह चुके थे ।

इसके पहले यूरोपके अनेक बड़े-बड़े लेखकोंसे मिलनेका अवसर मुझे मिला था ; पर उनमें से किसीको भी मैंने गोर्की-जितना सहृदय नहीं पाया । वैसी वच्चों-जैसी हँसी, वैसा निष्कपट चेहरा, बोलचालमें वैसी सरलता किसी बड़े लेखकमें मुझे उस दिन ही सर्वप्रथम देखनेमें आई । वे पहले दिनसे ही इस प्रकार बातें करने लगे, मानो उनके सामने उनका कोई छोटा सहपाठी बैठा हो ।

दूसरे दिन मुझे सैगकी सूझी । एक नाव भाड़पर ली और उसपर अकेले ही बैठकर अपने हाथों खेता हुआ कुछ दूर तक ले गया । लौटकर नाव किनारेपर बाँध

ही रहा था कि वहाँपर गोर्की दादा खड़े दिखलाई दिये।

“नाव तो तुम अच्छी चला लेते हो ! अच्छी सैर कर आये !”—उन्होंने पूछा।

“यहाँकी नावें बड़ी भारी होती हैं। इनमें सैरका लुत्फ तो कम आता है, हाँ, परिश्रम ही अधिक होता है।”—मैंने उत्तर दिया।

“हम लोगोंके यहाँ, वोल्गा नदीमें, जो नावें चला करती हैं, वे इनसे कहीं अच्छी होती हैं।”

इतनेमें सामनेसे एक माँझी आता दिखलाई दिया। उसकी ओर दिखलाते हुए उन्होंने कहा—
“हमारे रूसके माँझी इनसे कहीं अधिक सीधे-सादे और अपने काममें निपुण होते हैं। वे पतवारको जलमें उतना नीचे नहीं ले जाते, जितना यहाँवाले, और इसीलिए मेहनत भी कम लगती है और नाव भी तेज जाती है।” फिर कुछ याद करके बोले—
“अबसे बहुत वर्ष पहले, इसी काप्रीमें, इसी समुद्र-तटपर माँझियोंको देखकर लेनिनने भी यही कहा था कि इटेलियन माँझी बड़े बुद्धि हैं, उन्हें नाव चलानेका शऊर नहीं।”

अनायास ही मैं गोर्कीकी तुलना आसपासके माँझियोंसे करने लगा। गोर्कीके निजके लिखे जीवन-चरितमें वोल्गा नदीका जो वर्णन पढ़ा था, वह याद आने लगा। वोल्गाके माँझियोंके प्रसिद्ध गानका जो ग्रामोफोन रेकर्ड सुना था, उसका स्वर कानोंमें गूँजने लगा—“आ :...पऊख नियम...एशियो राजिक... एशिया रास...”

“ज़ोर लगादे हेइया...मारो ठेला हेइया... हाँ हाँ भैय्या हेइया...”

जब नावको नदीकी धारके प्रतिकूल ले जाना होता है, तब कुछ माँझी किनारेपर उतरकर उसमें ‘गुन’ (रस्सी) बाँधकर खींचा करते हैं, और एक साथ ज़ोर लगानेके लिए ‘हेइया’ सरीखी जो हुंकारी भरते हैं; उसीको लेकर वोल्गा नदीके माँझियोंका उपर्युक्त गान बन गया है।

यह प्रसिद्ध गान मैंने पहले बहुत बार सुना था, उसका शाब्दिक अर्थ भी जानता था, फिर भी गोर्कीके मुखसे वोल्गाका वर्णन सुननेके बाद ही उसका वास्तविक माधुर्य और मतलब समझमें आया। गोर्कीकी विशेषता भी मुझे उसी क्षण समझमें आई। उनकी विद्वत्ता, ज्ञान अथवा बुद्धि-प्रखरताके प्रति मेरा यह आकर्षण न था। यदि ये खूबियाँ पहली दृष्टिमें उनके चेहरेपर मुझे झलकती भी, तो मैं उस ओर



मैक्सिम गोर्की (शुभावस्थामें)

शायद ही उतना अधिक आकर्षित हो पाता। वास्तवमें उनके चेहरेने मुझे सबसे अधिक इसी कारण आकर्षित किया था कि उसपर ‘अपने-आपके प्रति लापरवाह’ रहनेका भाव था। वोल्गाका गान जो मुझे इतना अच्छा लगता है, इसका एक कारण भी शायद यही है कि उस गानमें इसी लापरवाहीका मर्म छिपा है।

उस समय मुझे अचानक ऐसा जान पड़ा, मानो

बहुत दिनोंसे मेरे मनमें जो विचार एक धुँधले आदर्शके रूपमें चले आते थे, वे अब विलकुल स्पष्ट बन गये हैं तथा उन्हें प्रत्यक्ष अपनी आँखोंके सामने देखने लगा हूँ। मेरा काप्री आना सफल हुआ, इसमें मुझे कोई सन्देह नहीं रहा। उत्तरके पक्षी जिस प्रकार सूर्यकी रोशनीके लिए इधर आया करते थे, उसी विचारसे शायद मैं भी वहाँ गया था, और वह रोशनी मुझे गोर्की द्वारा प्राप्त हुई। मैंने और कुछ महीने काप्रीमें ही रहना निश्चित कर लिया।



मेक्सिम गोर्की (वृद्धावस्थामें)

इन कुछ महीनोंको मैं अपने जीवनके सबसे सुन्दर दिनोंमें गिनता हूँ। मैं प्रायः रोज़ ही गोर्की दादासे मिलता था। खूब बातें होती थीं। गोर्की मेरे खानाबदोश जीवनकी बातें पूछते और कभी-कभी अपने खानाबदोश जीवनकी बातें बतलाते। एक दिन पूछा—“आवारागर्दीमें कभी तुमने माँगा भी है?”

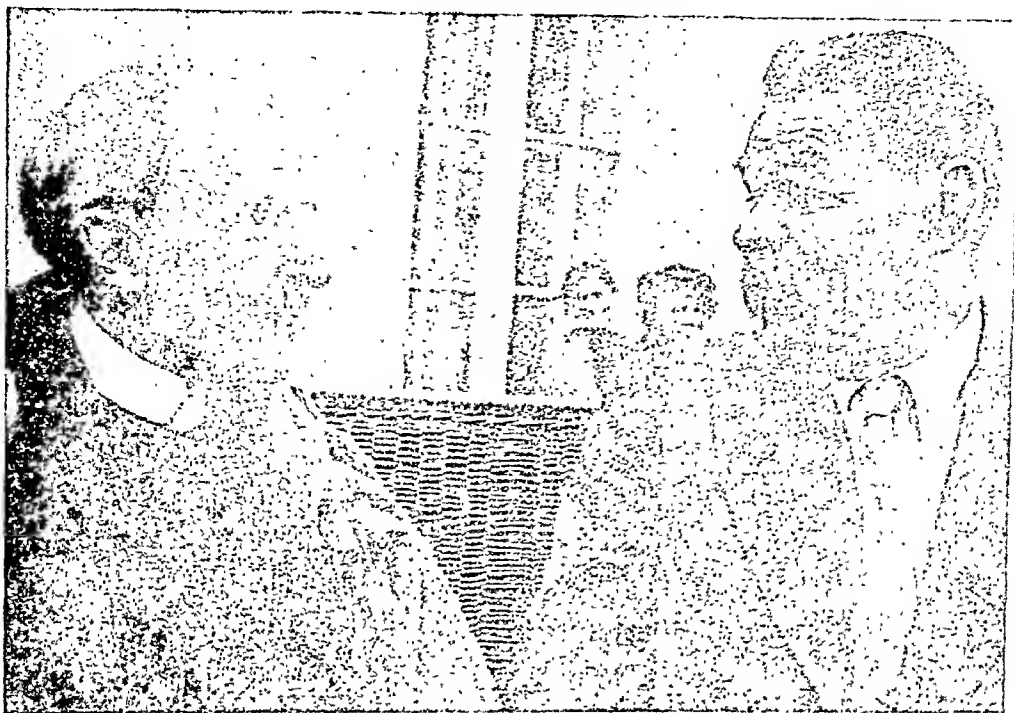
“नहीं, मुँह फोड़कर भीख माँगनेकी नौबत तो नहीं आई। कुछ-न-कुछ मेहनत-मजदूरी करके इतने पैसे पा जाता था, जिससे आधा-परधा पेट भर जाय।”

“तब तुम भाग्यशाली हो। मुझे तो अक्सर भीख माँगनी पड़ी थी ; लेकिन जानते हो, भीख भी सिधार्थसे—विनती—चिरौरीसे—नहीं मिलती। एक बार मैं अपने एक खानाबदोश साथीके साथ रुसमें मारा-माग फिर रहा था। भूखके मारे आतें कुलबुला रही थीं। एक घरके दरवाजेपर बैठी हुई औरतसे मैंने रिरियाकर कुछ खानेको माँगा। वह बिगड़ उठी—‘जाव-जाव, तुम्हारे बाप यहाँ धर गये हैं न, जो तुम्हें खानेको दे दूँ। तुम्हारे-जैसे बदमाश बहुत घूमते हैं।’ इसपर मेरे साथीने आँखें तोरेकर डाँटा—‘हई! क्या कहा?’ औरत उठी और बड़बड़ाती हुई भीतर चली गई—‘अभी मैं फलानेको बुलाऊँगी, वह आकर तुम्हें ठीक कर देगा ; ठिकानेको बुलाऊँगी, तो तुम्हारी ऐसी खबर लेगा कि तुम भी याद करोगे।’ और मिनट-भरके बाद ही भीतरसे निकली, तो रोटी-मक्खन लेकर! सो भैया, भीख भी सीधी अँगुली नहीं निकलती।”

एक दिन बातचीत करते हुए गोर्की दादासे पूछा—“अच्छा, जब तुम घूमते थे, तब कभी ऐसा भी हुआ कि रातमें लेटनेको कहीं ठिकाना न मिला हो, या रात किसी बहुत बुरी जगह बितानी पड़ी हो?”

मैंने कहा—“हाँ, एक-आध बार ऐसा हुआ है। एक बार लेटनेके लिए कहीं जगह न मिली। बाहर बड़ी सर्दी थी। मजबूर होकर एक घरके गुस्लखानेमें रात काटनी पड़ी।”

“मुझे सैकड़ों ऐसे अवसर पड़े हैं ;”—गोर्कीने कहा—“लेकिन एक बार बड़ा मज़ा हुआ। मैं एक गाँवमें रातमें पहुँचा। वहाँ रात काटनेके लिए दर-दर खटखटाता फिरा। किसीने दरवाज़ा ही न खोला। किसीने दरवाज़ा खोला, तो दुरदुरा दिया। एक साहबने दरवाज़ा खोलकर कहा—‘भागो यहाँसे।’ मैंने विनती की, तो बोले—‘भागो तो भागो, नहीं तो अभी तुम्हारे ऊपर कुत्ते छोड़ता हूँ।’ खैर, आगे जाकर फिर एक दरवाज़ा खटखटाया। दरवाज़ा तो नहीं खुला,



रोमां रोलां और मैक्सिम-गोर्की

बगलकी एक खिड़की खुली और उसमें से एक औरतने अँधेरेमें सिर निकालकर धीरेसे कहा—‘आज नहीं, आज नहीं, आज वह घर ही पर है !’—यह कहकर गोर्की दादा खिलखिलाकर हँस पड़े ।

लेनिनकी चर्चा चलनेपर एक दिन गोर्की दादाने कहा—‘रूसी क्रान्तिके बाद जब वहाँ गृह-युद्ध चल रहा था, तब बड़ा भयंकर दुर्भिक्ष पड़ा था । लोग भूखों मर रहे थे । खानेका सामान बहुत थोड़ा था । सबको ‘राशन’का टिकट मिलता था । कोई भी निश्चित परिमाणसे अधिक खाना नहीं पा सकता था ; और जो कुछ मिलता था, वह भी अत्यन्त निकृष्ट श्रेणीका । उसी समय मैं रूस गया । जब मैं लेनिनसे मिलनेके लिए पहुँचा, तो उन्होंने छूटते ही मुझसे पूछा—‘आज आपने कुछ खाया है ?’ मैं लोगोंको भूखसे तड़पते अपनी आँखों देख चुका था, इसलिए मैंने झूठ ही कह दिया—‘हाँ, मैं खाकर आया हूँ ।’ लेनिनने कहा—‘आप झूठ बोलते हैं । बतलाइये आपने कहाँ

खाया, क्या खाया ?’ मैंने बातें बनाकर कहा—‘एक रसोईघरमें थोड़ी उबली हुई कोदोंमें नमक-मिर्च चुरककर खा आया हूँ ।’ लेकिन लेनिनकी अनुभवी आँखोंके सामने मेरे-जैसे अनभ्यस्तका झूठ न छिप सका । वह फौरन उठकर रोटीका एक पैकेट ले आया और मुझे खानेको दिया । लेनिनको अपने भागकी जो रोटी मिलती थी, उसमें से वह बहुत थोड़ी खाता था, बाकी दूसरे ज़रूरतमन्दोंको दे देता था । रोटी खा चुकनेपर वह मुझसे बोला—‘आप प्रोलेटेरियन साहित्यके जन्मदाता हैं, सोविएटके सबसे महान लेखक हैं । आपको यह अधिकार नहीं कि आप अपने-आपको भूखों मारें । सोविएट सरकारके पास पैसा नहीं है, फिर भी सरकार आपको खर्च देती है, आप काप्री जाकर अपना स्वास्थ्य सुधारें । याद रखिये, आपका शरीर और प्राण सोविएटकी एक महान निधि हैं, उन्हें किसी तरहकी हानि पहुँचानेका अधिकार आपको नहीं ।’ फिर लेनिनने खर्च देकर मुझे यहाँ भिजवाया ।’

एक दिन गोर्की दादाने कहा—“आजकलके आवारा (Tramp) जीवनमें और मेरे समयके आवारा जीवनमें बहुत-कुछ फर्क आ गया है। उन दिनों रूसमें आवारा साथी अक्सर मिल जाते थे। जानते हो, एक बार मुझे एक राजकुमार आवारा मिला था।”

मैंने आश्चर्यसे कहा—“राजकुमार !”

गोर्की बोले—“हाँ, वह क्रीमियामें मिला था। उसने बतलाया कि वह राजकुमार है, घरसे भागकर चला आया है। तिफलिसमें उसके बापका आलीशान महल है। उसने अपने बापका खूब लम्बा-चौड़ा नाम बतलाया। मैंने भी उसकी खातिर की। हम दोनों तिफलिसकी ओर चले। पैदल तो चलते ही थे। माँग-जाँचकर मैं जो लाता, उसे खिलाता था। कभी-कभी खुद आधे पेट रह जाता था ; पर उसे खिला देता था। सोचा था कि तिफलिस चलकर इसके घर कुछ दिन शान्तिसे रहेंगे। महीनोंकी यात्राके बाद जब तिफलिसमें दाखिल हुए, तो राजकुमार साहब अचानक ऐसे गायब हो गये, जैसे खरहेके सींग ! उनके बापको पूछा, तो मालूम हुआ कि इस नामका वहाँ कोई आदमी ही नहीं !”

गोर्की संसारके महानतम साहित्यकारोंमें थे, फिर भी उनमें अभिमान या बड़प्पनकी रस्तीभर भी वृत्ति नहीं थी। एक दिन मज़ाकमें क्रिस्सा सुनाने लगे कि रूसकी एक सभामें उनकी बड़ी अभ्यर्थना की गई थी। वक्ताओंने उनकी तारीफ करते हुए कहा कि गोर्की संसारके एक अत्यन्त उच्च और बहुत बड़े व्यक्ति हैं। गोर्की दादाने फौरन उठकर इसका प्रतिवाद किया और कहा, मैं न तो अत्यन्त उच्च ही हूँ और न बहुत बड़ा। मैं सिर्फ इतने फीट ऊँचा हूँ और तौलमें भी सिर्फ इतने पौंड हूँ।

गोर्कीके संसर्गने मेरे ऊपर बहुत बड़ा प्रभाव डाला। सबसे महत्वपूर्ण बात यह हुई कि इसी समयसे मैं अपने निजी जीवन, सामाजिक जीवन, अपने देशकी समस्या तथा सारे संसारकी समस्याओंको

एक नवीन दृष्टिसे देखने लगा। जन्मसे ही मैंने जैसा जीवन बिताया था—विशेषकर यूरोपमें जिस प्रकारकी ‘अवारागर्दी’का जीवन मुझे मजबूरन बिताना पड़ता था, उससे समाजके वर्तमान संगठनके प्रति मेरे अन्तःकरणमें घृणा पैदा हो जाना लाजिमी था। उस भीतरी घृणाका भाव नाना रूपमें फूटकर बाहर निकल सकता था। वह इस प्रकार भी फूट सकता था कि मैं उससे अपना सर्वनाश कर लेता। गोर्कीने मेरा सबसे बड़ा उपकार यह किया कि उन्होंने मेरे उस घृणाके भावको एक शक्तिका रूप दे दिया, जिसे मैं जीवनमें उपयोग कर सकता हूँ और जो मनुष्य सामाजिकी सेवामें काम आ सकती है। गोर्कीने मुझे जो प्रारम्भिक शिक्षा दी, उसका सारांश है :—

“सारा मनुष्य-समाज आज जिस रोगसे पीड़ित है और जिसके कारण हमारा देश (भारतवर्ष) ऐसा दलित और शोषित हो रहा है, उसे दूर करनेके लिए पहली बात यह होनी चाहिए कि यह शोषण, दलन तथा रोग हमारे हृदयमें तीरकी तरह चुभना चाहिए। यदि ये बातें चुभती हैं, तो हमें जिस परिस्थितिमें रहना पड़ रहा है, उसके प्रति हमें जी-जानसे घृणा करनेके लिए मजबूर होना पड़ेगा ; पर इस चुभनेसे न तो आँसू बहाना होगा और न उद्वेग ही बनना होगा। हमारा मुख्य कार्य होगा, जिस प्रणालीसे—धार्मिक, सामाजिक और आर्थिक कोई भी हो—हम कुचले जा रहे हैं, उसे नेस्तनावूद कर देना और उसके स्थानपर एक नवीन प्रणालीका संगठन करना, जिसमें दलन-शोषण न हो सके और जिससे आजका मनुष्य-समाज वैसे भीषण रोगसे पीड़ित न रहे, जो उसकी शक्तिको क्षीण करके उसे मनुष्यताकी ओरसे बर्बरताकी ओर ढकेलता है।

“यह महान कार्य रोनेसे नहीं हो सकता। समाज तथा देशकी गिरी हुई अवस्थापर आँसू बहाकर सन्तोष कर लेना कायरता है। उसे मलीभाँति समझकर उसपर केवल टीका-टिप्पणी करके रह जाना गुंडापन है। इन समस्याओंको हल करनेका कोई सच्चा रास्ता

रेखकर उसपर न चलना धोखेबाजी है। हमारा काम बुपचाप टीका-टिप्पणी करना, आँसू बहाना या बड़े-बड़े सिद्धान्तोंकी खोजमें निकलना नहीं है। मुख्य कार्य है वर्तमान शोषण-प्रणालीको मिटाना।

“यह परिवर्तन लानेके लिए साहित्य भी एक मुख्य अस्त्र है। उत्तरदायित्वपूर्ण साहित्यिकोंका कर्तव्य है कि वे शोषितोंको दिखला दें कि जिस प्रणालीके अधीन रहकर वे पीसे जाते हैं, उसे उन्हें कैसी घृणाकी दृष्टिसे देखना चाहिए। लोगोंमें यदि यह घृणाका भाव दृढ़ रूपसे जम गया, तो वे उससे छुटकारा पानेकी भरपूर चेष्टा करनेसे बाज न आयेंगे।

“फिर प्रश्न उठता है—शोषण-प्रणाली तथा उसके आधारपर स्थित वर्तमान सामाजिक संगठनके प्रति घृणा करनेवालोंके नेता कौन होंगे? धनी कहे जानेवाले व्यक्ति? परोपकारका चोगा पहननेवाले डोंगी धार्मिक? आजकलकी उच्च शिक्षापर अपना एकाधिकार रखनेवाले लोग? नहीं, बात ठीक इसके विपरीत होगी।

“नवीन युगका नेता होगा वह समाज, जिसे हम आज ‘अपने-आपके प्रति लापरवाह’-सा देखते हैं—वह होगा मजदूरवर्ग।”

इसीलिए गोर्कीने अपनी अर्ध-शताब्दीके लम्बे साहित्यिक कार्यमें अपनी लेखनी द्वारा सर्वदा युगान्तर लाने, शोषण-प्रणालीका अन्त करने और एक नवीन समाजका संगठन करनेकी चर्चा की है। अनेक स्थानोंपर उन्होंने स्पष्ट ही कहा है—“मजदूर-समाजकी शक्ति ऐसी अगाध है कि उसके कोषमें ‘असम्भव’ जैसी कोई चीज नहीं। आवश्यकता है सिर्फ उन्हें जाग्रत करनेकी.....”

गोर्कीका स्थान संसारके अप्रगण्य क्रान्तिकारियोंमें रहेगा। उन्होंने संसार-भरमें चलती हुई क्रान्तिकी नई लहरको पहचाना था; नहीं, वे स्वयं उस लहरके उत्पन्न करनेवालों और उसके साथ चलनेवालोंमें प्रमुख थे।

साधारण मजदूर-समाजके भीतर छिपे हुए सौन्दर्य,

उसकी प्रगतिशील भावनाएँ, सारे मनुष्य-समाजकी कायापलट करनेवाली उसकी शक्तिका चित्र लेखनी द्वारा अंकित करनेवालोंमें सबसे पहला और ऊँचा स्थान गोर्कीका रहेगा। वे ही ‘प्रोलेटेरियन’ (सर्वहारा) साहित्यके जन्मदाता गिने जायेंगे। जिसे कुछ मिनटोंके लिए भी उनके दर्शन करनेका कभी सौभाग्य मिला होगा, उसके लिए यह अवश्य ही स्पष्ट हो गया होगा कि गोर्की क्रान्तिकारी साहित्यिक थे। साधारण साहित्यके बड़े-से-बड़े और नामी-से-नामी साहित्यिकसे गोर्कीकी तुलना करना गोर्कीकी मर्यादामें बड़ा लगाना होगा। इस व्यक्तिकी महानताका अन्दाज़ लगाना कोई आसान बात नहीं।

ख्याति पानेके बादसे—विशेषकर जीवनके अन्तिम वर्षोंमें—गोर्कीने मानव-समाजकी सेवाके लिए अपने ही ढाँचेके हजारों लेखक तैयार कर दिये हैं। इस महापुरुषकी एक बड़ी खूबी यह थी कि वह सभी नवीन क्रान्तिकारी लेखकोंके समुचित विकासका व्यक्तिगत ध्यान रखता था और उन्हें आगे बढ़नेका रास्ता दिखलानेमें कभी भी विमुख न होता था। क्रान्तिकारी साहित्य-जगतकी भूमिको गोर्कीने अपने अविश्रान्त परिश्रमसे ऐसा सींचा है कि आज केवल रूसमें ही नहीं, वरन सारे संसारमें क्रान्तिकारी साहित्य दिनोंदिन वृद्धि करता जा रहा है, और न केवल संसारके साहित्य-क्षेत्रमें, बल्कि मानव-जीवनके सभी क्षेत्रोंमें, उग्र कायापलट करके एक नवीन शोषणहीन सामाजिक संगठनके कार्यको दिनोंदिन आगे बढ़ाता चला जा रहा है।

जिन दिनों रूसकी भीषण सर्दी न बर्दाश्त कर सकनेके कारण गोर्की काप्री चले आते थे, उन दिनों भी उन्हें विश्रामका अवसर कम ही मिलता था। मैंने जिन दिनों उन्हें काप्रीमें देखा था, वे एक विशेष प्रकारके महान कार्यमें संलग्न थे। उन दिनों वे ऐसे लोगोंके जीवन सुधारनेकी व्यवस्था कर रहे थे, जो पहले आबारा और खानाबदोश थे। रूसमें गृह-युद्धके बाद देशकी अवस्था अत्यन्त ही खराब हो गई थी,

और मातृ-पितृहीन बच्चे बड़ी संख्यामें इधर-उधर भटकने लगे थे। भयानक सर्दियोंमें कपड़ेके अभावके कारण चीथड़े पहने ऐसे लड़के सड़कोंपर सोते थे तथा भिक्षा माँगकर, चोरी करके या लूट-पाट मचाकर अपने दिन काटते थे। रूसकी नई प्रगतिशील समाज-प्रणालीमें ऐसे आवारोंका होना बड़ी लज्जाकी बात समझी जाती थी। गोर्कीने स्वेच्छापूर्वक इन्हीं आवारोंका जीवन सुधारने तथा उन्हें समाजके लिए भयानक नहीं, बल्कि उपयोगी बनानेका भार अपने ऊपर लिया था।

इस क्षेत्रमें गोर्कीको बहुत सफलता मिली। आवारोंकी जो शक्ति यों ही मार-काट, चोरी-डकैती आदिमें नष्ट होती थी, गोर्कीने उसका रुख समाजके लिए उपयोगी कार्योंकी ओर फेर दिया। रूसी सरकारकी मददसे देशके विभिन्न स्थानोंमें ऐसी संस्थाएँ खोली गईं, जिनमें आवारा पकड़-पकड़कर लाये जाते थे और उन्हें शिक्षा दी जाती थी। राज्यने कुछ कल-कारखानोंका भी बन्दोबस्त कर दिया था, जिनमें काम करके ये आवारे अपनी आजीविका कमा लें। गोर्कीके निरीक्षणमें इन आवारोंकी शिक्षाका काम बड़ी तत्परतासे चलाया जाता था। कुछ ही वर्षोंके परिश्रमका यह परिणाम निकला कि उन आवारोंके बीचसे भी प्रतिभाशाली लेखकोंका आविर्भाव होने लगा। गोर्की ऐसे नवीन लेखकोंकी कहानियाँ तथा पुस्तकें स्वयं ही सम्पादित किया करते थे। ऐसे लेखकोंमें आवदेन्को जैसे लेखकके विषयमें एक-आध शब्द कह देना आवश्यक है। आवदेन्कोकी उम्र अभी पच्चीससे अधिक नहीं। उसने अपना वचपन आवारा फिरनेमें बिताया और किशोरावस्थासे ही डकैती करने लगा। गोर्कीके संसर्गमें आनेपर उसने 'मैं प्यार करता हूँ' नामकी एक पुस्तक लिखी। गोर्कीकी रायसे उसने इस पुस्तकमें केवल अपना निजका ही जीवन अंकित किया है और दिखलाया है कि जिन दिनों वह डकैत था, उन दिनोंके जीवनको अब वह कितनी घृणासे देखता है और वर्तमान जीवनको कितना

प्यार करता है। पहले वह जीवनसे कैसा हतोत्साहित रहता था और अब जीवित रहनेकी कितनी इच्छा होती है। भाषाकी दृष्टिसे भी ग्रन्थ इतनी उच्चकोटिका निकला कि अमेरिकाके प्रमुख लेखकोंने इस नवीन लेखककी भूरि-भूरि प्रशंसा की, और कितनोंने तो शेक्सपियर और गेटे तकसे उसकी तुलना कर डाली।

उपर्युक्त प्रकारके नवीन प्रतिभाशाली लेखकोंमें से अनेकोंसे गोर्कीने अपने निरीक्षणमें उनकी जीवनियाँ लिखवाई और उन्हें पुस्तकाकार प्रकाशित किया। आवारोंका जीवन किस प्रकार सुधारा जा सकता है और उनकी शक्ति समाजके लिए कैसे उपयोगी हो सकती है, इस विषयको लेकर 'जीवन-पथ' नामक एक सुन्दर फिल्म भी सोविएट सरकारने तैयार कराई है। उन आवारोंके जीवनमें, जो पहले वेनकेलके ऊँटकी तरह चोरी-डकैती करते घूमते थे, इतना परिवर्तन आया कि उन्होंने वाल्टिक सागर और उत्तर सागरको मिलानेके लिए लगभग छैं सौ मील लम्बी एक नहर खोद डाली और अपनी मातृभूमिके लिए एक अत्यन्त उपयोगी कार्य कर दिखाया। जारके राजत्वकालमें कितनी ही बार इस नहरके खुदवानेकी चेष्टा की गई थी; पर सफलता नहीं मिली। असफल होनेका कारण यह था कि उस स्थानपर सर्दी इतनी अधिक पड़ती है कि उसमें रहकर किसी मनुष्यके लिए खोदनेका काम कर सकना आसान बात नहीं। सर्दी कभी-कभी बर्फ जमनेसे भी चालीस डिग्री नीचे तक चली जाती है। पर प्रकृतिके साथ संप्राम करना आवारोंके जीवनका एक अंग बन जाता है। वे अपने जीवनमें जितना कष्ट झेल चुके होते हैं, उसके सामने उतनी सर्दियों में भी खुदाईका काम करना उन्हें कठिन नहीं जँचता। सुधरे हुए आवारोंने स्वयं ही सोविएट सरकारके सामने प्रस्ताव किया था और नहर खोदनेका बीड़ा उठाया था। लगभग दो वर्ष हुए, वह नहर तैयार हो गई है। उस नहरके इतिहासके साथ केवल आवारोंका ही इतिहास नहीं, बल्कि प्रगतिशील समाज-

प्रणालीका एक चमचमाता हुआ चित्र भी चिरस्थायी रहेगा। नहर खोदनेवालोंने भी गोर्कीके निरीक्षणमें अपनी-अपनी जीवनियाँ लिखी हैं, जो पुस्तकाकार प्रकाशित भी की गई हैं।

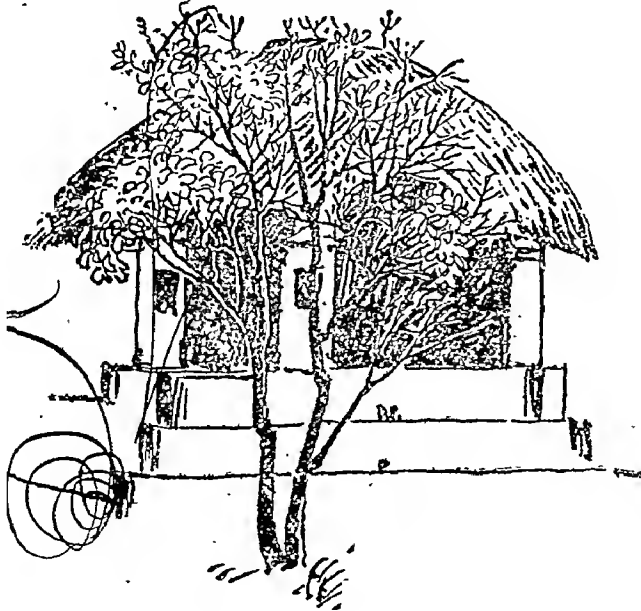
कहनेका सारांश यह है कि गोर्कीने अपने निजी जीवन तथा कार्योंसे यह सिद्ध कर दिखलाया कि जिन लोगोंको वर्तमान समाज 'आवारा' कहकर पुकारता है, उनके भीतर भी अगाध शक्ति छिपी है, जिसका यदि समुचित उपयोग किया जाय, तो समाजका अत्यधिक उपकार हो सकता है। यदि आज आवारोंकी संख्या घटनेके बदले बढ़ती चली जाती है, तो इसमें उन आवारोंका उतना दोष नहीं, जितना कि आजकलकी सामाजिक पद्धतिका। प्रधान कार्य इस पद्धतिको बदलना है, जिससे आजकल जो लोग दवे हुए हैं, उन्हें उठने तथा उन्नति करनेका मौका मिले।

साहित्यिक तथा लेखक इस कार्यमें काफ़ी अधिक हाथ बटा सकते हैं, और उनके कार्योंका बहुत महान तथा सुन्दर परिणाम निकल सकता है; पर यह तभी होगा, जब हम साहित्यके नामपर अपने-आपको धोखा न दिया करें। हमें वर्तमान शोषण-प्रणालीके

कारण जैसे कष्ट भेलने पड़ रहे हैं, उनपर पर्दा डालकर काल्पनिक सुखी जीवनके हवाई किले बाँधते रहना या शब्दाडम्बर रचते रहना केवल समय नष्ट करना ही नहीं, बल्कि अधःपतनकी ओर लुढ़कना होगा। हमारी, हमारे साहित्यकी, देशकी और मानव-समाजकी सेवा तभी होगी, जब लेखक वर्तमान सामाजिक प्रणालीसे पैदा होनेवाले भयंकर कष्टों और अन्यायोंका जीवित जाग्रत चित्र अपनी लेखनी द्वारा अंकित करें। चित्रोंका यह परिणाम होगा कि वर्तमान दूषित प्रणालीके प्रति लोगोंके भीतर खूब ही असन्तोषका भाव जाग्रत होगा और वे उसे बदलकर एक नई दुनिया बसायेंगे, जिसमें अन्याय, अत्याचार और असमानताका नाम न होगा।

मैं अपने देशके समस्त नवयुवक साहित्यिकोंसे प्रार्थना करूँगा कि वे गोर्कीके जीवन और रचनाओंको पढ़ें और उसे अपना आदर्श बनायें। यदि थोड़ेसे साहित्यिक भी गोर्कीके मार्गका अनुसरण करें, तो वे देशका इतना कल्याण कर सकते हैं, जिसकी कल्पना भी मुश्किल है।

गोर्की दादाके साथ काटे हुए वे चन्द महीने सदा याद रहेंगे।



आवरण

रवीन्द्रनाथ ठाकुर

पाँव के तलवे इस ढंगसे बने थे कि उसके मुकाबले जमीनपर खड़े-खड़े चलनेकी ऐसी सुन्दर व्यवस्था और-कुछ हो ही नहीं सकती थी। मगर जिस दिनसे हमने जूते पहनना शुरू कर दिया, उसी दिनसे तलवोंको मिट्टीके संसर्गसे बचाकर उनकी जरूरतको ही मिट्टीमें मिला दिया। तलवे अब तक बड़ी आसानीसे हमारा बोझ ढो रहे थे, मगर अब तलवोंका भार हमें ही सम्हालना पड़ रहा है। अब नंगे-पाँव सड़कपर चलते हैं तो तलवे हमारी सहायता न करके उलटे पद-पदपर कष्टका कारण बन जाते हैं। सिर्फ इतना ही नहीं, उनके बारेमें हमेशा हमें चौकन्ना रहना पड़ता है; मनको तलवोंकी सेवामें नियुक्त न रखें तो मुसीबत आ सकती है। तलवोंमें ठंड लग गई तो छींक, पानी मर गया तो बुखार,—अन्तमें मोजे, चट्टी, एड़ीदार जूते, बूट आदि विविध उपचारोंसे उनकी पूजा करते-करते सभी कामोंसे उन्हें छुट्टी ही दिये देते हैं। ईश्वरने हमें खुर नहीं दिये, शायद इस तरह हम उन्हें उस बातकी याद दिलानेकी कोशिश कर रहे हैं।

इसी तरह विश्व-जगत और अपनी स्वाधीन-शक्तिके बीच हमने अपने सुभीतेके लोभसे बहुत-सी दीवारें खड़ी कर दी हैं। इसी तरह संस्कार और अभ्यासवश उन कृत्रिम आश्रयोंको ही हम सुविधा समझ बैठे हैं, और अपनी स्वाभाविक शक्तियोंको असुविधा! कपड़े पहनते-पहनते हमने ऐसा कर डाला है कि कपड़ोंको अपने चमड़ेसे भी बड़ा मानने लगे हैं। अब हम विधाताके बनाये हुए अपने इस आश्चर्यजनक सुन्दर उबड़े शरीरकी अवज्ञा करने लगे हैं।

परन्तु हमारे इस गरम देशमें कपड़े और जूते अन्व-संस्कारमें शामिल नहीं थे। एक तो वैसे ही स्वभावतः हमारे यहाँ कपड़ोंका चलन नहींके बराबर था; उसपर वचपनमें लड़के-लड़कियाँ बहुत दिनों तक

कपड़े-जूते न पहनकर अपने नग्न शरीरके साथ नग्न जगतका सम्बन्ध, बिना किसी संकोचके, सुन्दर ढंगसे बनाये रखते थे। अब हमने अंगरेजोंकी नकल करके बच्चोंके शरीरके लिए भी शर्म करना शुरू कर दिया है। सिर्फ विलायतसे लौटे हुए ही नहीं, बल्कि शहरोंमें रहनेवाले साधारण भारतीय गृहस्थ भी आजकल घरके बच्चेको किसी अतिथिके सामने उबड़े-बदन या नग्न आते देखते हैं, तो संकोच करने लगते हैं; और इस तरह लड़केको भी अपनी देहके बारेमें संकोचशील बनाये डालते हैं।

इस तरह हमारे देशके शिक्षित लोगोंमें एक कृत्रिम लज्जाकी सृष्टि हो रही है। जिस उमर तक हमारे अन्दर अपने शरीरके विषयमें किसी भी तरहका संकोच नहीं होना चाहिए, उस उमरको अब हम उसी तरह पार नहीं करने देते,—अब तो जन्मसे ही मनुष्य हमारे लिए लज्जाका विषय हुआ जा रहा है। होते-होते अन्तमें ऐसा भी एक दिन देखनेमें आयेगा, जब कुर्सी-टेबिलके पाये भी कहीं अनेकैके दिखाई दे जायेंगे, तो मारे शर्मके हमारे कान सुर्ख हो उठेंगे।

यह बला सिर्फ लज्जा तक ही सीमित रह जाती, तो कोई बात नहीं थी। परन्तु यह जो दुनियामें दुःख बढ़ा रही है, इसका क्या किया जाय? हमारी इस लज्जाके कारण बच्चे जो मूठमूठको कष्ट पा रहे हैं। वेचारे बच्चे तो अभी तक प्रकृतिके ही ऋणी हैं, सभ्यताका कर्ज लेकर वे उसके असामी नहीं बनना चाहते। मगर वेचारोंका कुछ जोर नहीं, सिवा रोनेके उनके पास कोई हथियार नहीं,—करें तो क्या करें! अपने अभिभावकोंकी लज्जा दूर करने और गौरव बढ़ानेके लिए लेस और सिल्कके आवरणसे जकड़े हुए हैं, हवाके लाड़-प्यार और प्रकाशके चुम्बनसे वंचित वेचारे चिल्ला-चिल्लाकर विधिके न्यायाधीशके कानों तक

अपने शिशु-जीवनका अभियोग पहुँचाते रहते हैं। यह नहीं जानते कि मा-बाप दोनों एक्जिक्यूटिव और जुडीशियलके रूपमें एक साथ मिल जानेसे उनका सारा आन्दोलन और प्रार्थनाएँ व्यर्थ हो जाती हैं।

अभिभावकोंके लिए यह दुःखदायक है। असमयमें लज्जाकी सृष्टि करके उनके लिए भी जीका जंजाल बढ़ जाता है। जो शरीफ आदमी नहीं, बल्कि सिर्फ भोले बच्चे हैं, उन्हें भी एकदम शुरूसे ही अर्थहीन शराफत सिखाकर फिजूलखर्च करनेका रास्ता दिखाया जा रहा है। नग्नता एक सुविधा ही है, उसमें होड़ नहीं है। परन्तु कपड़े पहनना शुरू करते ही शौककी मात्रा और आडम्बरकी तैयारियाँ होड़ाहोड़ीसे आगे बढ़ने लगती हैं। बच्चोंका नवनीत-सा कोमल शरीर धनाभिमान प्रकट करनेका उपलक्ष्य बन जाता है, और बड़प्पनका बोझ बिना कारण ही हृदयसे ज्यादा बढ़ता रहता है।

इस विषयमें आर्थिक या डाक्टरों के सहस्र मुँह नहीं छेड़ना। मैं शिक्षाकी तरफसे कह रहा हूँ। मिट्टी, पानी, हवा और प्रकाशके साथ पूरा-पूरा सम्बन्ध रहे बिना शरीरकी शिक्षा सम्पूर्ण नहीं होती। जाड़ोंमें या गरमियोंमें किसी भी समय हमारे मुँह ढके नहीं रहते, इसीसे हमारे मुँहका चमड़ा देहके चमड़ेसे अधिक शिक्षित है—अर्थात् बाहरके साथ किस तरह अपने सामंजस्यकी रक्षा करते हुए चलना चाहिए, इसे वह ठीक तौरसे जानता है। वह अपने ही में आप सम्पूर्ण है;—उसे कृत्रिम आश्रय प्रायः लेना नहीं पड़ता।

यह बात तो कहना ही व्यर्थ है कि मैं मैजिस्टरको कंगाल बना देनेके लिए अंगरेजी राज्यमें नग्नताका प्रचार करने नहीं बैठा। मेरे कहनेका मतलब यह है कि शिक्षा पानेकी एक उमर होती है—वह है बचपन। उस समय हमारे शरीर-मनकी परिणतिके लिए प्रकृतिके साथ हमारा वाधा-हीन योग होना चाहिए। वह समय ढकने-फाँपनेका समय नहीं—उस समय सभ्यता बिलकुल

ही अनावश्यक है। परन्तु जब देखते हैं कि उसी समयसे बच्चोंकी सभ्यताके साथ लड़ाई शुरू हो जाती है, तो दुःख होता है। बच्चा ओढ़ना फेंक देना चाहता है, और हम उसे ढकना ही चाहते हैं! असलमें यह झगड़ा तो बच्चेके साथ नहीं, झगड़ा है प्रकृतिके साथ। प्रकृतिमें जो एक पुराना ज्ञान है, वह कपड़े पहनाने समय बच्चेके रोनेके भीतरसे विरोध करता रहता है—असलमें हम ही तो उसके सामने बच्चे हैं।

जैसे भी हो, सभ्यताके साथ एक समझौता हो जाना चाहिए। कम-से-कम एक खास उमर तक सभ्यताके इलाकेको सीमाबद्ध कर देना चाहिए। मैं बहुत घटाकर कहता हूँ—सात साल तक। यहाँ तक बच्चेको सजानेकी जरूरत नहीं, लज्जाकी जरूरत नहीं। तब तक बर्बरताकी जो अत्यावश्यक शिक्षा है, उसे प्रकृतिके हाथसे ही सम्पन्न होने देना चाहिए। बालक उस समय भी अगर धरती-माताकी गोदमें लोटकर धूल-मिट्टी न लपेट सके, तो फिर कब उसे वह सौभाग्य मिलेगा? वह उस उमरमें भी अगर पेड़ोंपर चढ़कर फल न तोड़ सका, तो समझ लो कि वह अभाग्य सभ्यताकी लोकलाजसे जिन्दगी-भरके लिए पेड़-पौधोंसे अन्तरंग मित्रता करनेसे वंचित रहा। उस समय हवा, प्रकाश, मैदान और पेड़-पौधोंकी ओर उसके शरीर और मनका जो एक स्वाभाविक खिंचाव होता है—सब जगहसे उसके लिए जो एक निमन्त्रण आया करता है, उसपर अगर कपड़े-लत्ते और दीवार-दरवाजेकी रोक लगा दी जाय, तो बच्चेका सारा उद्यम अवरुद्ध हो जाता है, और उसकी बुरी हालत हो जाती है। चारों तरफ खुला मिलने या सब तरहकी छूटपट्टी मिलनेसे जो उत्साह स्वास्थ्यकर साबित होता, रुकावट पड़नेसे वही दूषित हो जाता है।

बच्चेको कपड़े पहनानेसे उसके लिए उसे सावधानीसे रखना पड़ता है। बच्चेकी कुछ कीमत है या नहीं, इस बातकी भी हर वक्त याद नहीं रहती—मगर दरजीका हिसाब भूलना मुश्किल है। कपड़े

फटते हैं, मैले होते हैं, परेशानी है ; इतने रुपये लगाकर ऐसा बढ़िया कोट बनवा दिया था, नालायक जाने कहाँसे कालिख लगा लाया, यह कहकर यथोचित तमाचे लगा और कान ऐंठकर बच्चेके सबसे बड़े सौभाग्य खेलने-कूदनेके आनन्दको धूलमें मिलाकर, उसे कपड़े कैसे सम्हाल-सहेजकर रखे जाते हैं, यह सिखाया जाता है । जिन कपड़ोंकी उसे कोई भी जरूरत नहीं, उन कपड़ोंके लिए वेचारेको इसी उमरमें ऐसा जिम्मेवार क्यों बनाया जाता है ? ईश्वरने बाहरकी खुली हवामें उनके लिए जो-कुछ सुखका आयोजन कर रखा है और उनके मनमें धारावाहिक आनन्द लूटनेकी जो ताकत दे रखी है, निकम्मी और नाचीज पोशाककी ममतासे उसके जीवनारम्भके उस सरल आनन्दके लीला-क्षेत्रको अकारण ही इस तरह विध्वन-बाधाओंके काँटोंसे भर देनेकी क्या जरूरत थी ! मनुष्य क्या सर्वत्र ही अपनी लुब्ध बुद्धि और तुच्छ प्रवृत्तिका शासन फैलाकर कहाँ भी सुख-शान्तिका स्थान न रहने देगा ? हमें अच्छा लगता है, इसलिए जैसे भी हो, उसे भी अच्छा लगना चाहिए, इस धींगाधींगीकी युक्तिसे क्या हम संसारमें चारों तरफ दुःख-ही-दुःख फैलाते रहेंगे ?

कुछ भी हो, जो कार्य प्रकृतिके करनेका है, उसे हम हरगिज नहीं कर सकते ; इसलिए हमें ऐसी प्रतिज्ञा न करके कि मनुष्यकी सारी भलाई हम सब बुद्धिमान ही मिलकर करेंगे, प्रकृतिके लिए भी थोड़ासा रास्ता छोड़ देना चाहिए । यह बात शुरूमें ही हो जाय, तो भद्रता या सभ्यताके साथ किसी तरहका विरोध भी न खड़ा हो और नींव भी पक्की हो जाय । इस प्राकृतिक शिक्षासे सिर्फ बच्चोंकी ही भलाई हो, सो बात नहीं—इसमें हमारा भी उपकार होगा । हम अपने हाथके कामोंसे सब-कुछ ठक देते हैं और उसीमें अपने अभ्यास या आदतोंको ऐसा विकृत कर डालते हैं कि फिर स्वाभाविकको हम किसी भी तरह सहजदृष्टिसे देख नहीं सकते । हम यदि मनुष्यके सुन्दर शरीरको निर्मल बाल्य-अवस्थामें भी नग्न देखनेके आदी न बने

रहे, तो विलायतके आदमियोंकी तरह हमारे मनमें भी शरीरके बारेमें एक विकृत संस्कार बैठ जायगा, जो कि वास्तवमें बर्बर और लज्जाके ही योग्य है ।

इसमें शक नहीं कि भद्र-समाजमें कपड़े-लत्ते और मोजे-जूतोंकी जरूरत होनेसे ही उनकी सृष्टि हुई है—परन्तु इन सब कृत्रिम सहायोंको प्रभु मानकर उनके सामने अपनेको संकुचित बनाये रखना कतई उचित नहीं । इस विपरीत व्यापारसे हरगिज अच्छा फल नहीं हो सकता । कम-से-कम भारतवर्षका जलवायु ऐसा ही है कि हमारे लिए इन सब बाहरी चीजोंका हमेशा दास बने रहना विलकुल व्यर्थ है । इसकी कोई जरूरत ही नहीं । और न हम कभी इनके दास थे ही ; हमने आवश्यकतानुसार कभी पोशाक पहनी है और कभी उसे खोलकर भी रख दिया है । पोशाक एक नैमित्तिक चीज है,—इससे हमारी जरूरत पूरी होती है, बस ; उसपर हमारा इतना प्रभुत्व तो हमेशा ही रहा है । यही कारण है कि बदनपर कपड़ा न होनेपर हम लज्जित नहीं होते थे, और दूसरोंको भी उस रूपमें देखकर हमें गुस्सा न आता था । इस विषयमें विधाताके प्रसादसे यूरोपवालोंकी अपेक्षा हमारे लिए विशेष सुविधाएँ थीं । हमने आवश्यकतानुसार अपनी लज्जाकी रक्षा भी की है, और साथ ही अनावश्यक अतिलज्जाके द्वारा अपनेको भारग्रस्त भी नहीं बनाया ।

यह बात याद रखनी चाहिए कि अतिलज्जा लज्जाको नष्ट करती है । कारण, अतिलज्जा ही वास्तवमें लज्जाजनक है । इसके अलावा, अतिका बन्धन मनुष्य जब एक बार तोड़ फेंकता है, तो फिर उसे किसी प्रकारका विचार नहीं रहता । माना कि हमारे यहाँकी स्त्रियाँ शरीरपर ज्यादा कपड़े नहीं लादती ; परन्तु फिर भी वे जान बूझकर सचेष्ट भावसे हरगिज छाती और पीठके आवरणका बारह-आना हिस्सा खोलकर पुरुष-समाजमें नहीं निकल सकती । हम अगर लज्जा नहीं करते, तो लज्जाको इस तरह चोट भी नहीं पहुँचाते ।

परन्तु लज्जातत्त्वकी आलोचना मुझे नहीं करना, इसलिए इस बातको यहीं छोड़े देता हूँ। मेरा कहना यह है कि मनुष्यकी सभ्यता कृत्रिमताकी सहायता लेनेको बाध्य है, इसलिए हमें इस बातकी निगरानी रखनी चाहिए कि वह कृत्रिमता हमारे अभ्यास-दोषसे कहीं हमारी ही मालिकिन न बन बैठे। हमें चाहिए कि हम अपनी ही बनाई चीजोंके दास न बनकर हमेशा उसपर अपना प्रभुत्व कायम रख सकें। हमारा रुपया जब हम ही को खरीद लेता है, हमारी भाषा जब हमारे ही भावोंको नाकमें नकेल डालकर घुमा-घुमा मारती है, हमारी पोशाक जब हमारे ही अंगोंको अनावश्यक बना डालनेकी कोशिश करती है, हमारा नित्यकर्म जब नैमित्तिकके सामने अपराधीकी तरह सिकुड़कर खड़ा हो जाता है, तब सभ्यताकी तमाम रटंत-बोलोंकी उपेक्षा करते हुए हमें यह कहना ही पड़ेगा कि यह ठीक नहीं हो रहा है। भारतवासियोंके लिए उघड़े-बदन रहना जरा भी शरमकी बात नहीं; जिस-किसी सभ्य व्यक्तिकी निगाहमें यह असहनीय है, समझना चाहिए कि वह अपनी आँखें ही खो बैठा है।

शरीरके लिए जैसे कपड़े-जूते-मोजे हैं, हमारे मनके लिए पुस्तकें भी ठीक वैसी ही हो उठी हैं। अब तो हम यह भूल-से गये हैं कि पुस्तक पढ़ना शिक्षाका एक सुविधाजनक सहायमात्र है—अब तो हम पुस्तक पढ़नेको ही शिक्षाका एकमात्र उपाय समझ बैठे हैं। इस विषयमें हमारे संस्कारको डिगाना बहुत ही कठिन हो गया है।

मास्टर किताब हाथमें लेकर बचपनसे ही हमें किताब रटाना शुरू कर देते हैं। परन्तु पुस्तकके भीतरसे ज्ञान संचय करना हमारे मनका स्वाभाविक धर्म नहीं। हमारी मनन-शक्तिका स्वाभाविक विधान यही था कि प्रत्यक्ष वस्तुको देख-सुन और हिला-डुलाकर बहुत ही आसानीसे वह उसका ज्ञान संचय कर लिया करती थी। दूसरेके अनुभूत और परीक्षित ज्ञानको लोगोंके मुँहजबानी सुननेपर तब-कहीं हमारा पूरा मन

उसे समझता है। कारण, मुँहकी बात तो कोरी बात ही नहीं होती, वह असल बात होती है। उसमें प्राण होते हैं, आँख और मुँहका भाव होता है, कंठकी स्वर-लीला होती है, हाथोंका इशारा होता है,—इसके द्वारा कानसे सुननेकी भाषाको संगीत और आकार मिल जाता है, वह आँख और कान दोनोंकी चीज बन जाती है। सिर्फ इतना ही नहीं, हम अगर जान जायँ कि मनुष्य अपने मनकी चीज तुरत ही मनसे निकालकर हमें दे रहा है—वह सिर्फ किताब पढ़कर ही नहीं सुना रहा, तो एक मनके साथ दूसरे मनके प्रत्यक्ष सम्मेलनसे उस ज्ञानमें रसका संचार होने लगता है।

परन्तु दुर्भाग्यवश हमारे मास्टर किताब पढ़ानेके एक उपलब्ध मात्र हैं, और हम भी किताब पढ़नेके एक उपसर्ग हैं। इससे नतीजा यह होता है कि हमारा शरीर जैसे कृत्रिम चीजोंकी आड़में पढ़कर पृथिवीके साथ अपना सम्बन्ध खो बैठा है, और उसे खोकर ऐसा आदी बन गया है कि उस सम्बन्धको अब कष्टदायक और लज्जाजनक समझने लगा है—उसी तरह हमारे मन और बाहरकी चीजोंके बीच किताब आ जानेसे हमारा मन भी दुनियाके साथ प्रत्यक्ष सम्बन्धकी स्वाद-शक्ति बहुत-कुछ खो बैठा है। सभी चीजोंको किताबमें से समझनेका एक अस्वाभाविक अभ्यास हममें जमकर बैठ गया है। पास ही में जो चीज पड़ी है, उसे जाननेके लिए भी हमें किताबका मुँह ताकना पड़ता है। किसी नवाबका किस्सा है—जूते घुमा देनेके लिए नौकरकी बाट देखते-देखते वेचारे शत्रुसे घिर गये और कैद कर लिये गये। किताबी विद्याके मारे हमारी मानसिक नवाबी भी उसी तरह बहुत बढ़ गई है। छोटे से-छोटे विषयके लिए भी हमारा मन बिना किताबके ठहरता नहीं। विकृत संस्कारोंके दोषसे उत्पन्न इस तरहकी नवाबी हमारे लिए लज्जाजनक न होकर गौरवजनक हो जाती है—और किताबके जरिये जाननेको ही हम पाण्डित्य समझकर उसका गर्व करते हैं। जगतको हम मनसे नहीं छूते, किताबसे छूते हैं।

मनुष्यके ज्ञान और भावोंको पुस्तकोंमें संचित करना, यह एक बड़ी-भारी सुविधा है, इसे कोई अस्वीकार नहीं कर सकता। परन्तु उस सुविधाके द्वारा मनकी स्वाभाविक शक्तिको विलकुल ढक देना बुद्धिको 'बावू' बना देना है। 'बावू' नामक जीव नौकर-चाकर और चीज-वस्तुकी सुविधाके अधीन होता है। अपनी चेष्टाके प्रयोगमें जो-कुछ कष्ट है, जो-कुछ कठिनता है, उतने ही से हमारा सुख होता है और हमारा लाभ मूल्यवान हो जाता है, 'बावू' इस बातको नहीं समझता। किताबी बावूपनमें भी, ज्ञानको स्वयं प्राप्त करनेका जो एक तरहका आनन्द है और सत्यको उसके अपने स्थानमें कठिन प्रेमाभिसारके द्वारा प्राप्त करनेकी जो एक तरहकी सार्थकता है, वह नहीं होती। क्रमशः मनकी वह स्वाभाविक स्वाधीन-शक्ति ही मर जाती है; लिहाजा शक्ति-चालनका वह सुख भी नहीं रहता, बल्कि चलानेके लिए बाध्य किये जानेपर वह दुःखका ही कारण बन जाता है।

इस तरह, हमारा मन वचपन ही से पुस्तक पढ़नेके आवरणमें ढका रहनेके कारण, हम मनुष्यके सहज-स्वाभाविक भावसे मिलने-जुलनेकी अपनी शक्तिको खो रहे हैं। हमारे कपड़ोंसे लदे शरीरमें जैसा एक संकोच उत्पन्न हो गया है, हमारे मनमें भी वही बात आ गई है—वह बाहर आना ही नहीं चाहता। लोगोंके साथ सहज-स्वाभाविक वरताव करना और उनसे अपनेपनके साथ मिलकर बातचीत करना हमारे शिक्षित समुदायके लिए क्रमशः कठिन होता जा रहा है, इस बातको हमने लक्ष्य करके देखा है। हम किताबके आदमीको पहचानते हैं, पृथिवीके आदमीको नहीं पहचानते,—किताबी आदमी हमारे लिए मनोहर है, और संसारका आदमी श्रान्तिकर। हम विराट सभामें व्याख्यान दे सकते हैं, पर साधारण लोगोंसे बातचीत नहीं कर सकते। जब कि हम बड़ी बातों यानी किताबकी बातोंपर आलोचना कर सकते हैं और स्वाभाविक बातचीत या मामूली बातें हमारे मुँहसे ठीक

तौरसे नहीं निकलतीं, तब समझना होगा कि देव-दुर्विपाकसे हम पंडित हो गये हैं, परन्तु हमारा भीतरका मनुष्य मारा गया है। मनुष्यके साथ मानव-भावसे हमारी अव्यक्त गति-विधि हो, तो घरकी बात, सुख-दुःखकी बात, बाल-बच्चोंकी खबर, रोजमर्राकी चर्चा हमारे लिए सहज और सुखकर होती है। किताबका आदमी बनाई-हुई बात कहता है; वे जिन बातोंपर हँसते हैं, वह वास्तवमें हास्य-रसात्मक हैं और वे जिससे रोते हैं, वह करुण-रसका सार है; किन्तु सचमुचका आदमी जो रक्त-मांसका प्रत्यक्षगोचर आदमी है, वहीं तो उसकी भारी जीत है—इसलिए उसकी बातें और उसका हँसना-रोना एकदम अव्वल नम्रका न होनेपर भी काम चल सकता है। वास्तवमें वह स्वाभाविककी अपेक्षा ज्यादा होनेकी कोशिश न करे, तो सुखका विषय हो। मनुष्य जब किताब हो जानेकी कोशिश करता है, तो उसमें से मनुष्यका अपना स्वाद जाता रहता है।

चाणक्य शायद कह गये हैं, जिनमें विद्या नहीं, वे 'सभा मध्ये न शोभन्ते'। परन्तु सभा तो चिरकाल नहीं रहती। कभी-न-कभी तो सभापतिको धन्यवाद देकर बत्ती बुझा ही दी जाती है। मुश्किल तो यह है कि हमारे देशके आजकलके विद्वान सभाके बाहर 'न शोभन्ते'। वे किताब-पढ़नेमें मनुष्य हैं, इसीसे मनुष्योंमें उन्हें कोई शान्ति नहीं मिलती।

ऐसी अवस्थाका स्वाभाविक परिणाम है निरानन्द। एक अजीब तरहकी मानसिक व्याधि यूरोपके साहित्य और समाजमें सर्वत्र फैलती जा रही है, उस देशके लोग उसे 'World-weariness' या विश्व-अवसाद कहते हैं। लोगोंकी स्नायु विकृत हो गई है, जीवनका स्वाद चला गया है; नई-नई उत्तेजनाओंकी सृष्टि करके अपनेको मुलाये रखनेकी चेष्टा चल रही है। यह बीमारी, यह विकृति कैसी है, किस लिए है, कुछ भी समझमें नहीं आता। यह अवसाद स्त्री-पुरुष दोनोंको ही पा बैठा है, पीछा नहीं छोड़ता।

इसका कारण है क्रमशः हमारा स्वभावसे बहुत दूर

चला जाना । कृत्रिम सुविधाओंने उत्तरोत्तर आकाश-प्रमाण बढ़कर जगतके जीवोंको जगतसे जुदा कर दिया है । हमारा मन पोथियोंमें और शरीर असबाबमें छिप गया है, जिससे आत्माके सारे दरवाजे-जंगले बन्द हो गये हैं । जो सहज है, स्वाभाविक है, नित्य है, जो मूल्यहीन होनेसे सबसे बढ़कर मूल्यवान है, उसके साथ आवागमन या आना-जाना बन्द हो जानेसे उसके ग्रहण करनेकी शक्ति भी जाती रही है । जो चीजें उत्तेजनाकी नई-नई ताड़नाओंसे उद्भावित होकर दो-चार दिन फैशनके भँवरमें पड़कर गदली हो जाती हैं और उसके बाद ही अनादरसे कूड़ेमें जमा होकर समाजकी हवाको दूषित कर देती हैं, सिर्फ वे ही चीजें बार-बार सम्पूर्ण-समाजके लाखों गुणवान और मजदूरोंकी चेष्टाओंको, कोल्हूके बैलकी तरह घुमा-घुमाकर मार रही हैं ।

एक पुस्तकसे दूसरी पुस्तक उत्पन्न हो रही है, एक काव्य-ग्रन्थसे और-एक काव्य-ग्रन्थका जन्म हो रहा है,—एक आदमीका मत मुँहजबानी हजारों आदमियोंका मत हुआ जा रहा है, अनुकरणसे अनुकरणका प्रवाह चला जा रहा है; इस तरहसे पोथी और बातोंका अरण्य मनुष्यके चारों ओर निविड़ होता जा रहा है, प्राकृतिक जगतके साथ इसका सम्बन्ध क्रमशः दूर चला जा रहा है । मनुष्यके मनमें बहुतसे भाव उत्पन्न हो रहे हैं, जो केवल पुस्तकोंकी सृष्टि है । ये सब वास्तवता-शून्य भाव भूतकी तरह आदमीके सिर हो जाते हैं, उसके मनका स्वास्थ्य नष्ट कर डालते हैं, उसे अत्युक्ति और अतिकी ओर ले जाते हैं; सब मिलकर लगातार एक ही टेकको पकड़कर कृत्रिम उपायोंसे सत्यके परिमाणको नष्ट करके उसे मिथ्या बना देते हैं । दृष्टान्तके रूपमें पैट्रियॉटिज्म (देशभक्ति) नामक पदार्थ पेश किया जा सकता है । इसमें जो-कुछ सत्य था, दिन-पर-दिन सब मिलकर उसे रईसी तरह धुन-धुनके एक जबरदस्त झूठ बनाये दे रहे हैं; अब इस बनावटी रटत-बोलको

जी-जानकी कोशिशसे सत्य बनानेके लिए कितने कृत्रिम उपाय, कितनी वेवुनियाद उद्दीपना, कितनी अनुचित शिक्षा, कितने मनगढ़ंत विद्वेष, कितनी कूट युक्तियों और कितने छल्लोंकी सृष्टि हो रही है, जिसकी न हद है, न गिनती । इन सब स्वभाव-भ्रष्ट कुहरा या भ्रान्तियोंसे मनुष्य विभ्रान्त हो जाता है; सरल और उदार, प्रशान्त और सुन्दरसे वह बग़बर दूर होता जाता है । परन्तु रटत-बोलका मोह छोड़ना आसान नहीं । कोई चीज हो, तो आक्रमण करके उसे धूलमें मिलाया जा सकता है; पर रटत-बोलकी देहपर छुरा नहीं भोंका जा सकता । यही कारण है कि इन बोलोंके पीछे आदमी आदमीमें जितना झगड़ा और जितनी खूनखराबियाँ हुई हैं, उतनी सम्पत्तिके लिए नहीं हुई ।

समाजकी सरल अवस्थामें देखते हैं, लोग जितना जानते हैं, उतना मानते भी हैं । उतनेपर उनकी श्रद्धा या विश्वास अटल है—उसके लिए त्याग स्वीकार करना और कष्टोंका सामना करना उनके लिए सहज-स्वाभाविक है । इसके कितने ही कारण हैं; किन्तु एक मुख्य कारण यह है कि उनका हृदय-मन मर्तोंके द्वारा ढक नहीं गये हैं—जितना सत्य समझकर ग्रहण करनेका अधिकार और शक्ति उनमें है, उतना ही उन लोगोंने ग्रहण किया है । मन जिसे सत्य-रूपमें ग्रहण करता है, हृदय जिसके लिए अनेक दुःख आसानीसे सह सकता है, उसे वह बहादुरीका काम समझता ही नहीं ।

सभ्यताकी जटिल अवस्थामें देखा जाता है कि मर्तोंका काफी ऊँचा ढेर जम गया है । कोई चर्चका मत है, पर चर्चका मत नहीं; कोई सभाका मत है, पर घरका मत नहीं; कोई दलका मत है, पर हृदयका मत नहीं; किसी मतमें आँखोंसे आँसू तो निकल आते हैं, पर गाँठसे रुपये नहीं निकलते; किसी मतमें रुपये भी निकल आते हैं और काम भी चलता है—परन्तु हृदयमें उसके लिए स्थान नहीं, फैशनमें उसकी प्रतिष्ठा है । इन सब लगातार उत्पन्न होनेवाले

भूरि-भूरि सत्य-विकारोंके बीच पड़कर मनुष्यका मन सत्य-मतको भी अविचलित सत्य-रूपमें नहीं ग्रहण कर सकता। इसीलिए उसका आचरण सर्वत्र सर्वतोभावसे सत्य नहीं होने पाता। वह सरल भावसे अपनी शक्ति और प्रकृतिके अनुसार कोई पन्थ चुन लेनेका अवकाश न पाकर विभ्रान्त-भावसे पाँच-जनोंकी कही बातको दुहराता रहता है, और अन्तमें काम पड़नेपर उसकी प्रकृतिमें विरोध उठ खड़ा होता है। वह अगर अपने स्वभावको आप पाता, तो उस स्वभावके भीतरसे जो-कुछ उसे मिलता, वह चाहे छोटी हो या बड़ी, पर होती सच्ची और असली चीज। वह उसे पूरा बल देती, सम्पूर्ण आश्रय देती; फिर उसे वह सर्वतोभावसे काममें वगैर लगाये न मानता। अब उसे गड़बड़में पड़कर पुस्तकोंका मत, बातोंका मत, समाका मत, दलका मत ढोते हुए ध्रुव-लक्ष्यभ्रष्ट होकर सिर्फ बहुतसे रटत-बोल दुहराते फिरना पड़ता है। इस बोल दुहराते-फिरनेको वह हित-कर्म समझता है; इसके लिए उसे वेतन मिलता है; उन बोलोंको बेचकर वह मुनाफा करता है; इन सब बोलोंके जरासे इधर-उधर या हेर-फेरको लेकर वह अन्य सम्प्रदाय और अन्य जातियोंको हेय तथा अपनी जाति और अपने दलको श्रेष्ठ बतलाकर उसका प्रचार करता है।

मनुष्यके मनके चारों तरफ यह जो पुस्तकोंके निविड़ वनमें बोलोंके बौर लगे हैं, इनकी मोदोगन्ध हम लोगोंको मतवाला बनाये दे रही है; शाखासे शाखान्तरमें दौड़ा-दौड़ाकर बार-बार चंचल किये मारती है; किन्तु यथार्थ आनन्द और गर्भीर तृप्ति नहीं देती—नाना प्रकारके विद्रोह और मनोविकार उत्पन्न करती रहती है।

सहज-स्वाभाविक चीजका गुण यह है कि उसका स्वाद कभी भी पुराना नहीं होता, उसकी सरलता उसे हमेशा नवीन बनाये रखती है। जो यथार्थ स्वभावकी बात है, उसे मनुष्यने जितनी बार भी कहा है, उतनी ही बार वह नई मालूम हुई है। संसारमें दो-ही-तीन

महाकाव्य हैं, जो हजारों वर्षोंमें भी म्लान नहीं हुए—निर्मल जलकी तरह वे हमारी प्यास बुझाकर तृप्ति देते रहते हैं, मद्यकी तरह वे हमें उत्तेजनाकी चोटी तक चढ़ाकर वहाँसे एकदम सूखे अवसादकी चट्टानपर पटकके मार नहीं डालते। सहज-स्वाभाविकसे दूर पहुँचते ही हमें एक बार उत्तेजना और एक बार अवसादमें बराबर ओखली-कुटान कुटाना पड़ता है। उपकरण-बहुल अति-सम्पत्तामें यही रोग है।

इस जंगलके भीतरसे राह निकालकर, ढेर-क्री-ढेर पुस्तकों और वचनोंका व्यूह भेदकर, समाजमें—मनुष्यके मनमें—स्वाभाविक हवा और उजाला लानेके लिए महापुरुष और सम्भवतः महाक्रान्तिकी जरूरत होगी, अत्यन्त सहज बात, अत्यन्त सरल सत्यको, सम्भव है कि रक्त-समुद्र पार होकर आना पड़े। जो आकाशकी भाँति व्यापक है, जो हवाकी तरह मूल्यहीन है, उसे खरीदकर पैदा करनेके लिए सम्भव है प्राण देने पड़ें। यूरोपके मनोराज्यमें भूकम्प और ज्वालामुखीकी अशान्ति बीच-बीचमें अकसर दिखाई दिया करती है; स्वभावके साथ जीवनका और वाह्य-प्रकृतिके साथ अन्तःप्रकृतिका जबरदस्त असामंजस्य ही इसका कारण है।

परन्तु यूरोपकी यह विकृति हममें केवल अनुकरणके द्वारा, सिर्फ छूत लग जानेसे, आ रही है। यह हमारे देशकी पैदाइश नहीं है। हम वचन ही से विलायती किताबें रटनेमें लग गये हैं—जो कूड़ा-करकट है, उसे भी हम लाभ समझकर ले रहे हैं। हम जिन सब विलायती बोलियोंको हमेशा अस्वभाविक-मनसे श्रद्धाके साथ काममें लाते चले आ रहे हैं, हम नहीं जानते कि उनमें से हरएकको अविरतसत सत्य आदि-सत्यकी फसौटीपर कसकर जाँच लेना चाहिए,—उनमें बारह-आना हिस्सा सिर्फ किताबी पैदाइश है; सिर्फ वे मुँहजवानी ही बढ़ती ही चली जा रही हैं, पाँच-जने परस्पर एक दूसरेका अनुकरण करके कह रहे हैं, और इसीलिए और पाँच जने उसे ध्रुव-सत्य समझते जा

रहे हैं। हम भी उन बैधी गतोंको इस तरह काममें ला रहे हैं, गोया उनका सत्य हमने ढूँढ़ निकाला हो—मानो वह विदेशी स्कूल-मास्टरके रटंत-कथनकी जड़-प्रतिध्वनि नहीं है।

और फिर जो नया पाठ रटता है, उसका उत्साह भी कुछ ज्यादा हुआ करता है। सुशिक्षित तोता जितने ऊँचे स्वरसे बोलकर कानोंके परदे फाड़ा करता है, उसके शिक्षकका गला ऊतना ऊँचा नहीं होता। सुनते हैं, जिन जातियों या समाजमें विलायती सभ्यता नई-नई प्रवेश करती है, वे विलायतकी शराब अख्तियार करके विलकुल मरनेकी तैयारियाँ कर लेती हैं—और तमाशा यह कि जिनका अनुकरण करके वे शराब शुरू करते हैं, वे खुद इतने चूर नहीं होते। इसी तरह देखते हैं कि जिन बोलियोंके मोहसे स्वयं उनके सृष्टिकर्ता बहुत-कुछ अविचलित रहते हैं, हम तो उससे जमीनपर लोटने लगते हैं। उस दिन अखबारमें देखा, विलायतकी किसी एक सभामें हमारे देशी आदमी एकके बाद एक उठ-उठकर 'भारतवर्षमें स्त्री-शिक्षाका अभाव और उसकी पूर्ति' के विषयमें बहुत ही पुरानी विलायती बोली अड्डेपर बैठे तोतेकी तरह बोलते चले गये; अन्तमें एक अंग्रेजने उठकर इस सम्बन्धमें कि भारतवर्षकी लड़कियोंको अंगरेजी कायदेसे सिखाना ही एकमात्र शिक्षा कहलाने योग्य है और वही शिक्षा हमारी स्त्रियोंके लिए एकमात्र श्रेय है, सन्देह प्रकट किया। मैं दोनों पक्षोंके तर्कके सत्य-असत्यके विषयमें कोई बात नहीं कहता। परन्तु, विलायतमें प्रचलित पद्धति और मत ठीक हनुमानके गन्धमादन पर्वतकी तरह आद्योपान्त उत्पाटन कर लानेके समान है; इस विषयमें हमारे मनमें जरा विचार तक उपस्थित नहीं होता, उसका कारण यह है कि वचनसे वे सब बातें हमने पुस्तकोंसे ही सीखी हैं और हमारी जो कुछ शिक्षा है, सब किताबी शिक्षा है।

बोली और पोथीके विवरमें प्रवेश करके हमारे देशमें भी शिक्षित लोगोंमें निरानन्द देखनेमें आ रहा है।

न-जाने कहाँ चली गई वह हृद्यता और मेल-जोल ! कहाँ चला गया वह स्वाभाविक हास्य कौतुक ! जीवन-यात्राका भार बढ़ जानेके कारण ही इतनी अवसन्नता या थकावट आ गई हो, सो बात नहीं। यह भी एक कारण है, इसमें सन्देह नहीं; और दूसरा कारण हमारे साथ सब तरहके सामाजिक सम्बन्ध-हीन आत्मीयता-शून्य राज-शक्तिका दिन-रात अदृश्य दबाव भी है; परन्तु उसके साथ ही हमारे अत्यन्त कृत्रिम विद्याभ्यासकी ताड़ना भी कम कारण नहीं है। विलकुल वचन ही से उसका पेपण शुरू होता है—इस ज्ञान-लाभके साथ मनका योग या सम्बन्ध बहुत कम होता है, यह ज्ञान आनन्दके लिए नहीं है—सिर्फ जान बचानेके लिए है, और कुछ-कुछ सम्मान-रक्षाके लिए भी।

हम मनसे काम लेकर सजीव भावसे जो ज्ञान उपार्जन करते हैं, वह हमारी हड्डियोंमें भिद जाता है, किन्तु पुस्तकें रटकर जो पाते हैं, वह बाहर इकट्ठा हो-होकर सबके साथ हमारा विच्छेद कराता है, उसे हम किसी भी तरह भूल नहीं सकते, इसीसे अहंकार बढ़ जाता है,—उस अहंकारका सुख ही हमारा एकमात्र तोशा या पूँजी है। नहीं तो, ज्ञानका स्वाभाविक आनन्द यदि हमें मिलता, तो इतने शिक्षित लोगोंमें कम-से-कम कुछ तो ऐसे दिखाई देते, जो ज्ञान-चर्चके लिए अपना सम्पूर्ण स्वार्थ त्याग देते। मगर देखते यह हैं कि विज्ञानकी परीक्षामें प्रतिष्ठा प्राप्त करके डिप्टी-मजिस्ट्रेट होकर अपनी सारी विद्याको कानून और अदालतकी अथाह निरर्थकतामें हमेशाके लिए विसर्जन कर देनेके लिए सभी व्यग्र हैं, और कईएक डिग्रियाँ प्राप्त करके सिर्फ किसी कन्याके भाग्यहीन पिताको कर्जेके दलदलमें फँसा मारना ही उनकी एकमात्र स्थायी कीर्ति बनकर रह जाती है। देशमें बड़े-बड़े शिक्षित वकील-बैरिस्टर, जज-मजिस्ट्रेट और कलाकोंका अभाव नहीं है—परन्तु ज्ञान-तपस्वी कहाँ हैं ?

बातों-बातोंमें बात बहुत बढ़ गई। फिलहाल

हमारा जो कुछ वक्तव्य है, वह यह है—बच्चोंके मनमें ऐसा अन्ध-संस्कार तो कभी पैदा ही न होने देना चाहिए कि पुस्तकोंका पढ़ना ही शिक्षा है। उन्हें यह बात हमें कदम-कदमपर जताते रहना चाहिए कि प्रकृतिके अक्षय भंडारसे ही पुस्तकोंका संचय चुना जा रहा है—कम-से-कम होना यही चाहिए—और वहाँ हमारा भी अधिकार है। किताबोंका ऊधम बहुत ज्यादा बढ़ गया है, इसीलिए तो ज्यादा जरूरत है बतानेकी। इस देशमें प्राचीन कालमें जब कि लिपि प्रचलित थी, तब भी तपोवनोंमें पोथियोंका व्यवहार नहीं हुआ। उस समय भी गुरु अपने शिष्योंको मुँहजवानी ही शिक्षा देते थे,—और छात्र उसे कापीमें नहीं, बल्कि मन ही में लिख लिया करते थे। इस तरह एक दीप-शिखासे दूसरा दीप जलता था। अब ठीक वैसा तो नहीं हो सकता। परन्तु फिर भी यथासम्भव छात्रोंको किताबोंके आक्रमणसे बचना ही चाहिए। जहाँ तक बने, छात्रोंको केवल दूसरोंकी रचना पढ़ने देना ही नहीं—बल्कि वे जो कुछ गुरुसे सीखें, स्वयं उन्हींके द्वारा उसकी रचना करा लेना चाहिए—यह स्वरचित ग्रन्थ ही उनका ग्रन्थ होगा। ऐसा होनेसे उनकी यह धारणा हरगिज नहीं बन सकती कि ग्रन्थ आकाशसे गिरे हुए वेदवाक्य हैं। ‘आर्यगण मध्य-एशियासे भारतमें आये हैं’ और ‘ईसाके दो हजार वर्ष पहले वेदोंकी रचना हुई है’—इन सब बातोंको हमने पुस्तकोंमें पढ़ा है। पुस्तकोंके अक्षर बिना काट-छाँटके निर्विकार हैं—वे वचनमें हमपर सम्मोहनका प्रयोग करते हैं—इसीसे हमारे लिए आज ये सब बातें बिल्कुल देववाणीके समान हैं। लड़कोंको शुरूसे ही जानना चाहिए कि ये सब आनुमानिक बातें सिर्फ कुछ युक्तियोंपर निर्भर करती हैं। हमें उन सब युक्तियोंके मूल उपकरणोंको यथासम्भव उनके सामने रखकर उनकी अपनी अनुमान-शक्तिका उद्रेक कराना ही होगा। किताबें किस तरह बनती हैं, इस बातका धीरे-धीरे क्रमशः उन्हें अपने मनमें अनुभव करते रहने देना चाहिए, तभी पुस्तकोंका

यथार्थ फल उन्हें मिल सकेगा, और साथ ही अन्ध-शासनसे भी उन्हें मुक्ति मिलेगी,—और अपने स्वाधीन उद्यमके द्वारा ज्ञान प्राप्त करनेकी जो स्वाभाविक मानसिक शक्ति है, वह सिरपर बाहरसे लादी हुई विद्यासे आच्छन्न और प्रभावित नहीं होगी, बल्कि पुस्तकोंपर उनके मनका कर्तृत्व बना रहेगा। बालक थोड़ा-भी जो कुछ सीखेगा, उसी समय उसका प्रयोग करना भी सीखेगा; तब फिर शिक्षा उसके सरपर न सवार होगी, बल्कि शिक्षापर वही सवार होगा।

इस बातमें अपनी राय देनेमें तो बहुतसे लोग दुविधा नहीं करते, मगर इसका अमल होते ही वे आपत्ति करते हैं। वे समझते हैं, बालकोंको इस तरह शिक्षा देना असम्भव है। वे जिसे शिक्षा कहते हैं, उसका इस तरह दिया जाना है भी असम्भव। वे कुछ किताबें और कुछ विषय बाँध देते हैं—निर्दिष्ट समयके भीतर निर्दिष्ट पद्धतिसे उनकी परीक्षा ली जाती है—इसीको वे शिक्षा-देना कहते हैं; और जहाँ ऐसी शिक्षा दी जाती है, उसीको विद्यालय कहा जाता है। विद्या चीज मानो एक स्वतन्त्र वस्तु है; शिशुके मनसे गोया उसे अलग करके देखना चाहिए—मानो वह किताबोंके पन्ने और अक्षरोंकी संख्या हो! उससे छात्रोंका मन अगर पिस जाय, वह अगर किताबोंका गुलाम हो जाय, उसकी स्वाभाविक बुद्धि अगर अभिभूत हो जाय, वह अगर अपनी प्राकृतिक शक्तियोंको चलाकर ज्ञान अर्जन करनेकी शक्तिको अनभ्यास और उत्पीड़नके कारण हमेशाके लिए खो दे, तो भी वह विद्या है;—कारण उसमें इतना इतिहासका अंश है, इतने भूगोलके पन्ने हैं, इतना गणित है, और इतना बी-एल-ए कले और सी-एल-ए कले है!

वास्तवमें, बालकोंका मन जितनी शिक्षापर सम्पूर्ण कर्तृत्व प्राप्त कर सकता है—थोड़ी होनेपर भी—उतनी शिक्षा ही शिक्षा है; और जो शिक्षाका नाम धरकर उनके मनको ढक देती है, उसे पढ़ाना कह सकते हैं, पर वह सिखाना हरगिज नहीं। मनुष्यपर मनुष्य

अनेक अत्याचार करेगा, यह जानकर ही विधाताने उसे इतना मजबूतीसे बनाया है; यही वजह है कि आदमी मुश्किलसे पचनेवाला अभक्ष्य खाकर अजीर्ण-रोग भोगता हुआ भी जिन्दा बना रहता है—बचपनसे ही शिक्षाका दुःसह उत्पीड़न सहकर भी वह थोड़ी-सी विद्या प्राप्त भी कर लेता है और उसपर गर्व भी कर सकता है। इस ताड़न और पीड़नके

कारण उसे कितना नुकसान देना पड़ता जबरदस्त कीमत देकर वह कितना थोड़ा पाता है, इस बातको कोई तो समझते ही नहीं, काह समझते भी हैं तो मंजूर नहीं करते, कोई समझते और स्वीकार भी करते हैं; किन्तु काम पड़नेपर, जैसा चलता आ रहा है वैसा ही चलाते रहते हैं।

—धन्यकुमार जैन

तैराक वीर

श्रीयुत नरेन्द्र

चढ़ती जमनाकी धारामें

लो, कूद गया तैराक वीर,

कायर ही शंका करते हैं

उसने कब सोचा, कहाँ तीर !

नागिन-सी प्रलयंकर लहरें
उठती हैं उसने आसमान,
सब स्वयम् निगलनेको बढ़तीं
करतीं भीषण रण घमासान,
संग्राम-सिन्धु भर अणु-अणुमें
बढ़ती आतीं लहरें अवीर !

दिगमंडल थर-थर भयकातर
लहरोंपर फेनोंके पहाड़,
वे उसे निगलनेको धाई
अगणित भीषण मुख फाड़-फाड़,
पर भय कैसा, चिन्ता कैसी,
डरसे डरता है कौन धीर !

आतीं लहरें मुख फाड़-फाड़
करने वक्षस्थलपर प्रहार,
वह बढ़ता अंक-मिलन करने
हंसमुख, निर्भय, बाहें पसार,
टकराकर लौट-लौट जाता
भयभीत, विजित-सा सरित-नीर !

गुँथ गई भँवर, लो, पहनाने
उसको जयकी अहिदल-माला,
मालाके अहिदल भरलाये
नव-जीवन औ' जयका प्याला,
तैराक वीर अब पार गया
मन्मथार-बीच मिल गया तीर !

मन्मथार-बीच औ' भँवर-बीच
वह पार गया, मिल गया कूल,
लहरोंकी सूनी लतिकाएँ
हैं खोज रहीं निज स्वर्ण-फूल,
पर फूल कहाँ, गाते मर्मर
नित सरित-नीर, आकुल समीर !

संग्राम समाप्त हुआ उसके
जयगान करें उठ-उठ हिलोर,
क्षीराम्बुधि नीराम्बुधि तज
उड़ गया हंस निज पंख खोल,
क्या विश्व-सिन्धु-विजयी विवेक
पहचान न लेता नीर-क्षीर ?

चढ़ती जमनाकी धारामें

लो, कूद गया तैराक वीर !

पहाड़ी प्रदेश और साहित्यिक जाग्रति

श्रीराम शर्मा

गत कई माससे 'विशाल भारत'में 'पार्वत्य प्रदेशोंमें साहित्यिक जाग्रति' पर कुछ-न-कुछ निकल रहा है। इन पंक्तियोंके लेखकने उसे बड़े ध्यानसे पढ़ा है। श्री भगवतीप्रसाद चन्दोलाने इस चर्चाका सूत्रपात किया और अनेक गोलन्दाज मैदानमें आ गये। मुझे भी बड़ी प्रसन्नता हुई कि चलो किसी प्रकार पार्वत्य प्रदेश-सम्बन्धी साहित्यिक चर्चा छिड़ी तो। उससे पहाड़के नवयुवक साहित्य-सेवियोंका—गढ़वाल-साहित्य-नभके उगते सितारोंका—हित ही होगा। 'विशाल भारत'में प्रकाशित श्री ललिताप्रसाद पाण्डेयका 'हमारी जाग्रति' शीर्षक लेख और मेरे एक गढ़वाली युवक मित्रकी चिट्ठीने मुझे भी इस विषयपर कुछ लिखनेको बाध्य किया। श्री ललिताप्रसाद पाण्डेयने वही भूलें की हैं, जो श्री 'पहाड़ी' और श्री ललिताप्रसाद नैथाणीने कीं। चतुर्वेदीजीने भी भूलें की हैं; पर वे एक ऐसे पत्रकारकी भूलें हैं, जो दूसरोंके लेखों और पत्रोंपर ही सम्मति देता हो और जिसे स्वयं स्थान, परिस्थिति और तत्सम्बन्धी मनोविज्ञानका कुछ पता न हो। और इस दृष्टिसे चतुर्वेदीजीकी टिप्पणी, जहाँ तक भूल और भ्रमका सम्बन्ध है, क्षम्य है।

हाँ, तो हमारे युवक गढ़वाली मित्र लिखते हैं—
“आप अपनी स्वतन्त्र राय अवश्य लिखें। हम लोगोंकी संकीर्णता और अज्ञानका गढ़ तभी टूटेगा, जब उसपर बाहरकी फैली हुई और जाग्रत दुनियाके सबल प्रहार होंगे। हिन्दी-साहित्यको अपने किसी भी उप-साहित्यसे यह छूटनेका अधिकार है कि तुम अब तक क्या करते रहे? अब क्या करते हो? और आगे क्या करने जा रहे हो? और अगर हिन्दी-संसार आपके द्वारा हम लोगोंसे ये प्रश्न करवाये, तो यह और भी अधिक उपयुक्त होगा। आप हमारी अच्छाई और बुराई सभी कुछ जानते हैं। साथ ही जिन

नालों, खालों, डाँडों, काठोंने आपकी प्राणमयी कृतियोंको प्रेरणा दी है, वे भी अगर आपसे प्रेरणाकी अपेक्षा रखें, तो इसमें आश्चर्य ही क्या है? हमारे लोगोंका आपपर अच्छा खासा हक्क है। आप ज़रूर लिखें—इससे लाभ ही होगा।”

युवक मित्र महाशयने सीधे दिलपर चोट की है गढ़वालके नालों-खालोंका सम्बन्ध बताकर। मानव-जीवनकी एक कमजोरी है मोह, और मुझे इस बातके लिखनेमें तनिक भी संकोच नहीं कि गढ़वालके प्राकृतिक सौन्दर्यपर मैं आसक्त हूँ। वहाँके पर्वतोंके अंचलोंमें घूमनेके लिए मेरी आत्मा तड़प उठती है। संसारमें यदि कोई प्रवल आकर्षण है तो हिमालय। हिमालयकी यादमें—गढ़वालकी उन उपत्यकाओंकी यादमें, जिनमें मैंने प्रकृतिका वैभवपूर्ण सौन्दर्य देखा था, आज भी हृदय विरहीकी भाँति उद्वेलित हो उठता है। इसलिए आसक्तिमें कुछ बातें कड़ी निकल जायँ, तो क्षान्तव्य होनी चाहिए, क्योंकि जिससे हम प्रेम करते हैं, उसपर रोष भी कर सकते हैं। पर मुख्य विषयपर लिखनेसे पूर्व कुछ व्यक्तिगत बातें लिखनी भी ज़रूरी हैं, क्योंकि 'कहता हूँ सच कि झूठकी आदत नहीं मुझे'। मैं टिहरीमें वर्षों रहा हूँ; पर कभी मैं टिहरी-गढ़वालेके अधिकांश राज-कर्मचारियोंमें लोकप्रिय नहीं रहा, और न मैंने उनके अनुग्रहकी पर्वाह ही की। राज्यके कर्मचारियोंके लिए मैं एक सन्दिग्ध रहस्य-सा ही रहा। उन दिनों टिहरीमें साहित्य और लोक-सेवा-भावका इतना अभाव था कि यदि किसीसे मैं मिल लिया, ज़रा हँसके बातें कर लीं, तनिक चाय पी ली, तो बस अंगुशतनुमाई होने लगती थी। रानीचोरी शनिश्चरको घूमने चले गये, तो रियासतके जासूसोंने समझा कि पंडित उमादत्त डंगवालसे मिलने गये, और यदि कहीं पं० भवानीदत्तजीसे गढ़वालके भड़, ग्रामगीत

और पाण्डव-चरित्रपर देर तक बातें कर लीं, तो यार लोगोंने समझा कि हम दीवान-पार्टीके हैं। पं० हरिकृष्णजी रतूड़ीसे गढ़वालके इतिहासपर विचार-विमर्श किया, तो फिकैत गुरुओंने उस वार्तालापमें राजविद्रोहकी गन्ध पाई। कुँवर विचित्रशाहसे ललित-कलापर कुछ बातें करनेके मानी थे राज्यकी ब्लैकबुकमें नाम लिखना। मतलब यह कि टिहरी-गढ़वालका वातावरण बड़ा ही दूषित और रचनात्मक कार्योंके प्रतिकूल था।

पार्वत्य प्रदेशोंमें साहित्यिक जाग्रतिके सम्बन्धमें मेरा निजी अनुभव—अख्तारी दुनियाको छोड़कर—गढ़वालका है, कुमाऊँका नहीं, इसलिए मैं कुमाऊँके विषयमें कुछ न लिखूँगा। हाँ, यह कहना आवश्यक है कि साहित्यिक और राजनैतिक दृष्टिसे कुमाऊँ गढ़वालकी अपेक्षा बहुत आगे है। कुमाऊँमें अखिल भारतवर्षीय ख्यातिके अनेक व्यक्ति साहित्य और राजनीतिमें हैं; पर गंगा और यमुनासे पैर धुलानेवाला गढ़वाल बहुत पीछे पड़ा है।

श्री भगवतीप्रसाद चन्दोलाने 'पार्वत्य प्रदेशोंमें साहित्यिक जाग्रति' जो लेख लिखा है, उसे सर्वश्री 'पहाड़ी', ललिताप्रसाद नैथाणी और ललिताप्रसाद पाण्डेयने अच्छी तरह समझा नहीं। वह तो एक नोट है, जिसमें विस्तृत बातोंका आना असम्भव है, और उसका उद्देश साहित्यिक चर्चा चलाना है, न कि किसी व्यक्ति-विशेषका नाम छोड़ देना। वह तो पार्वत्य प्रदेशकी सांस्कृतिक मूल्यका एक चलता-सा छोटा चित्र है—एक दृष्टि डालनेके लिए और साहित्य-सेवियोंको आकर्षित करनेके लिए। 'अपूर्ण, विस्तारहीन और भ्रमात्मक' होनेकी ध्वनि तो है ही नहीं उसमें। पार्वत्य प्रदेशकी साहित्यिक जाग्रतिपर एक स्वतन्त्र लेख लिखा जा सकता था, और उसे कोई भी लिख सकता था; पर उस नोटको भ्रमात्मक, अपूर्ण और विस्तारहीन कहकर एक विवाद-सा खड़ा करके कौआगुहार-सी मचाना साहित्यिक पथसे हटकर वैयक्तिक मार्गकी कठिनाइयोंमें पड़ जाना है। भगवतीप्रसादजी चन्दोलाका नोट

सहानुभूतिकी दृष्टिसे लिखा गया है। उसमें जो दोष है, वह है नोटके बढ़ जानेका और कुछ नाम आ जानेका। 'पहाड़ी' महाशयने अपने लेखमें एक एडवोकेटकी दृष्टिसे गढ़वालकी जन्मपत्री-सी खोलनेकी कोशिश की है, और ललिताप्रसाद नैथाणी और ललिताप्रसाद पाण्डेयने 'पहाड़ी' महाशयकी भावुकताको कठोर सत्य साबित करनेकी चेष्टा की है। लखनऊमें जब 'पहाड़ी'जीसे कुछ देर बातें हुईं, तब इस बातसे बड़ी प्रसन्नता हुई कि 'पहाड़ी'जीमें साहित्यिक प्रवृत्ति है और वे इस बातको महसूस करते हैं कि गढ़वालके वर्तमान युवक साहित्य-सेवी यदि अपने पथपर आरुढ़ न रहे, तो बहुतोंका साहित्यिक जीवन दो-तीन वर्षसे अधिक नहीं।

भगवतीप्रसाद चन्दोलाने लिखा था कि पहाड़ी जनताके सामने सबसे पहला सवाल रोटीका है। 'पहाड़ी'जीने लिखा है—“लेखकका यह कथन भ्रमात्मक है। पहाड़ोंमें किसान अपने खेतोंका स्वयं मालिक है, और अछूतों तकके पास एक-एक दो-दो खेत हैं। एक जून खाना सबको अपने खेतोंमें मिल ही जाता है।” हमने स्वयं गरीबी भुगती है, गरीबोंको आँखें खोलकर देखा है और गढ़वालकी गरीबीका अध्ययन किया है। दो-एक पट्टीके प्रत्येक गाँवको देखा है। पहाड़ ही नहीं, उत्तर-भारतके कई सूबोंकी गरीबीकी व्यक्तिगत रूपसे और एकआध मित्रके साथ जाँच भी की है, और उसीके आधारपर हमें लिखना पड़ता है कि युक्तप्रान्तमें गढ़वाल अपेक्षाकृत गरीब है। वहाँके काश्तकारोंकी दशा उड़ीसाके काश्तकारोंकी-सी है—खाई (Rawain) परगनेको छोड़कर। और फिर साहित्य, संगीत और कलाकी वृद्धिके लिए दो जून रोटीसे ही काम नहीं चलता। अवकाश, लगन, साधन और सुविधाएँ चाहिए। या फिर विरक्त होकर, साधु बनकर, साहित्यकी धूनी रमाई जा सकती है। गढ़वालकी गरीबी देखकर हमारी तो आत्मा काँप जाती है। दिन-रात लोग प्रकृतिसे युद्ध करते हैं, फिर भी

तन-ढकनेको कपड़ा नहीं, पढ़ाईके लिए पैसे नहीं और सुस्तानेको अवकाश नहीं। कई गढ़वाली युवकोंको हम जानते हैं, जो साहित्यिक क्षेत्रमें कुछ अच्छा काम कर सकते थे, यदि गरीबीकी वेड़ियोंमें वे जकड़े न होते। गढ़वालकी गरीबी वहाँकी उन्नतिके लिए काफ़ी बाधक है।

‘पहाड़ी’जी एक स्थलपर लिखते हैं— “पहाड़ोंके भीतरी भागमें साहित्य भरा पड़ा है, और हमारे नवयुवक साहित्यिकोंके सामने वहाँ तक पहुँचनेका सवाल कभी नहीं उठा।” पर प्रश्न यह है कि वह सवाल अब तक क्यों नहीं उठा? जब हम गढ़वाली युवकोंको थर्ड क्लास ही नहीं, रद्दी कहानियाँ लिखते देखते हैं, तब उनपर कभी-कभी क्रोध आता है कि गढ़वालकी अपार सामग्रीका वे उपयोग क्यों नहीं करते। अपने कथानक गढ़वालके जीवनसे क्यों नहीं लेते। पहाड़ोंके भीतरी भागमें ही क्यों—यद्यपि हमने पहाड़ोंका भीतरी भाग भी खूब देखा है—पहाड़ोंमें हर कहीं फर्स्ट क्लास साहित्यिक सामग्री है—इतनी बढ़िया कि वह हिन्दी-साहित्यकी एक खास चीज़ हो सकती है। इस समय भी पन्द्रह-बीस बढ़िया लेखोंकी सामग्री हमारी आँखोंके सामने नाच रही है—भावभंगी करके लिखनेको अकर्षित कर रही है; पर हिन्दीवालोंका सवाल तो यही है, और उस सवालको हिन्दीके नाते गढ़वालियोंके सामने रखा जा सकता है, कि आपने अब तक कौन-सी कृति हिन्दी-साहित्यको दी, जो उसके लिए गौरवकी बात हो? यह बात हम मानते हैं कि साहित्य किसी वर्ग-विशेषकी वपौती नहीं, और यदि स्वयं गढ़वालियोंने वहाँकी सामग्रीका उचित उपयोग नहीं किया, तो दूसरे करें; पर हमारी आपत्ति तो यह है कि गढ़वाली युवक अपने पैरों-तलेकी बढ़िया चीज़को क्यों नहीं पहचानते?

दो-एक स्पष्ट बातें हम और लिखना चाहते हैं। यदि हम युक्तप्रान्तके प्रथम पचास हिन्दी-साहित्य-सेवियोंकी कोई सूची तैयार करें, तो क्या उन पचास

साहित्य-सेवियोंमें किसी गढ़वालीका नाम आ सकेगा? ‘पहाड़ी’जी, ललिताप्रसाद नैथाणी और ललिताप्रसाद पाण्डेयने जिन लोगोंके नाम लिखे हैं, उन्हें पढ़कर हमें हँसी भी आई और क्लेश भी हुआ। ‘तात घनानन्द’के लेखक तोताकृष्ण गैरोला क्या कवि हैं? उनकी पुस्तक पढ़कर इस बातका हमें विषाद हुआ कि गढ़वालकी एक विभूति स्व० पं० घनानन्दजीको अपने परिचयके लिए तुकड़ ही मिला। हमें दुःख है कि हमें यह अप्रिय सत्य लिखना पड़ रहा है; पर जब लिखना है, तब अपनी तबीयतकी बात ही तो लिखनी चाहिए। सवाल यह नहीं है कि तोताकृष्ण गैरोला कवि हैं या नहीं? हाँ, अपने घरके कालिदास और ठाकुर हैं; पर सवाल यह है कि हिन्दी-साहित्यमें उनका क्या स्थान है और उसके लिए उनकी क्या देन (Contribution) है? कोई व्यक्ति अपने घरका गामा हो सकता है; पर घरसे बाहर उसकी क्या दस्ती है—इन बातोंका खयाल करके हम लिख रहे हैं।

ख्याति और प्रकाशन वर्तमान युगकी ऐसी चीज़ें हैं, जो छिप नहीं सकती। रेल, तार और समाचारपत्रोंने अगम्य स्थानोंको भी वेध डाला है, और जिन दो-चार दिवंगत व्यक्तियोंका नाम लिया गया है, उनके निधनपर साहित्य-सम्मेलनमें शोकसूचक प्रस्ताव भी पास नहीं हुए। क्या उनके प्रति कुछ उपेक्षाकी भावना थी? अज्ञानका कुछ अंश हो सकता है; पर योग्यता, सेवा और साधनाकी प्रखर ज्योति अज्ञान और उपेक्षाके तिमिरका विनाश कर देती है। यौवनके चिह्नोंको कोई दबा नहीं सकता और साहित्यिक ख्यातिको कोई छिपा नहीं सकता।

भट्टैती और ढोंग कुछ दिनों भले ही चल जाय; पर वे टिकाऊ चीज़ नहीं। उनकी नाँव गहरी नहीं होती। और साहित्यिक ख्याति तो वह जादू है, जो सिरपर चढ़के बोलता है। अमुक व्यक्तिके अमुक लेख लिखा है। अमुकने ग्रियर्सन साहबकी

सहायता की। फलान्के लेख 'विशाल भारत' और 'माडर्न रिव्यू' में निकले हैं—इन बातोंसे गढ़वालकी साहित्यिक जाग्रतिकी कोई विशेष प्रतिष्ठा नहीं। हाँ, एक लेखके भी मानी हैं। एक गोली भी कोई चीज़ है; पर हो वह कारगर। स्व० गुलेरीजीकी 'उसने कहा था' शीर्षक कहानी उनकी ख्यातिके लिए पर्याप्त है।*

गढ़वालके अनेक युवकोंमें साहित्यिक अभिरुचि है। साधना और लगनसे वे हिन्दी-साहित्यको गौरवान्वित कर सकते हैं; पर हमें आशंका है कि सरकारी नौकरीके आवर्तमें पड़कर वह अभिरुचि-रूपी कली कहीं कुचल न जाय। श्री हर्षवर्धन नैथाणी कहीं ट्रेजरी आफिसरीमें अपनी साहित्यिक अभिरुचिका मदफ़न न बना बैठें और स्वयं 'पहाड़ी'जी सरकारी नौकरीके गारमें अपनी सम्भावनाओंकी पोटलीको न फेंक दें—इस बातकी हमें बड़ी चिन्ता है। देशकी परिस्थिति कुछ ऐसी होती जा रही है—हमारे जीवनकी धाग कुछ ऐसी हो गई है कि अब हम दो घोड़ोंपर सवार नहीं हो सकते। हो सकते हैं; पर उसके लिए हमें सर्वश्री एन० सी० मेहता और प्रियर्सनकी कोटिका होना पड़ेगा। डिप्रियाँ कोई बुरी चीज़ नहीं; पर वे किसी संस्कृति और साहित्यिक साधनाकी कसौटी नहीं और न साहित्यिक योग्यताकी परिचायक।

गढ़वालमें यह था और वह था; वहाँपर ऋषियों और मुनियोंने अमर साहित्यकी रचना की थी—इन बातोंसे क्या लाभ? अतीतके गौरवका महत्व हम समझते हैं; पर पुराना राग अलापनेसे ही काम न चलेगा। कुछ करके दिखाना चाहिए। 'पिदर मन सुलतां वूद' (मेरा बाप सुल्तान था) कहनेपर एकने पूछा—“ठीक है। तेरा बाप तो सुल्तान था; पर

'तुरा चीश्त'—तू क्या है?" गढ़वालके अतीतकी स्मृतियाँ किसे नहीं मालूम? मोलाराम और सुलेमान शिकोह और शंकराचार्यकी तपोनिष्ठाकी कहानी मालूम है लोगोंको; पर आधुनिक युगमें गढ़वालकी साहित्यिक प्रगति क्या है?

कवितामें गढ़वाली गीत और कविताएँ बहुत ऊँचे दर्जेकी हैं। श्री देवेन्द्र सत्यार्थीने गढ़वाली गीतोंकी माँकी कभी 'विशाल भारत' द्वारा हमें दी थी; परन्तु उनका वह संग्रह Second hand था।* नैथाणी महाशय First class गीत क्यों नहीं देते? करें तनिक परिश्रम। कौन-सी और कितनी कविताएँ ऊँचे दर्जेकी हैं? तनिक मालूम तो हो। यह हम मानते हैं कि चन्दोला, रतूड़ी और सकलानी अच्छी कविता कर लेते हैं। उनमें कवित्व शक्ति है; पर अभी वे प्रथम श्रेणीमें नहीं आये। श्री ग्लाम्बरदत्तजी चन्दोलासे हमें बड़ी आशाएँ थीं; पर उनके 'कोष'में अब 'मधु' नहीं दिखाई पड़ता। हाँ, 'सदेईका गीत' फ़र्स्ट क्लास चीज़ है।

ललिताप्रसादजी पागडेयसे हम आग्रह करेंगे कि वे और अन्य लोग तनिक साहित्यिक दृष्टिकोणसे पुस्तकों और ग्रन्थ कृतियोंकी जाँच करें। किसी पुस्तकके स्कूल और कालेजमें पाठ्य-पुस्तक होनेसे ही उसका साहित्यिक महत्व नहीं बढ़ता। पाठ्य-पुस्तकोंकी मंजूरीमें बड़ी-बड़ी तिकड़में चलती हैं।

अब यह सवाल रह जाता है कि गढ़वालसे हम क्यों कोई विशेष आशा करें? गढ़वालकी आबादी कुलजमा आठ-दस लाखके करीब ही तो हैं। क्या हिन्दी-भाषा-भाषी सूत्रोंके प्रत्येक ज़िलेमें कोई-न-कोई फ़र्स्ट क्लास साहित्य-सेवी ऐसा है, जिसकी ख्याति हिन्दी-संसारमें हो, जो चोटीका आदमी हो और जिसने अपनी

* एक महाशयने हिन्दीमें एक सौ पाँच पुस्तकें लिखी हैं; पर एक सौ पाँच पुस्तकोंके लेखकोंकी साहित्यिक दृष्टी कुछ नहीं। और वे सारी पुस्तकें रहीकी टोकरीको शोभित करनेकी चीज़ है। —लेखक

* श्री देवेन्द्र सत्यार्थी—जैसी लगनके कितने आदमी हैं? अपने जीवनके बारह-तेरह वर्ष सत्यार्थीजीने ग्राम-गीतोंके एकत्र करनेमें लगाये हैं। कोई गढ़वाली दो वर्ष ही गढ़वालके गीतोंके संग्रहमें लगाये। यदि कोई ऐसा कर सके, तो वह गढ़वालका बड़ा हित कर सकेगा और हिन्दी-साहित्यकी कुछ सेवा भी। —लेखक

लेखनीसे हिन्दी-साहित्योपवनमें मनोहर विरचे रोपे हों ? इस दृष्टिसे हम गढ़वालसे कोई विशेष माँग क्यों करें और गढ़वालकी सफ़ाईमें पहाड़ीजी और ललिताप्रसाद द्वय तिलका ताड़ बनानेकी असफल चेष्टा क्यों करें ?

पर बात यह है—और यह बात हमें अबसे पन्द्रह वर्ष पूर्व भी महसूस हुई थी—कि गढ़वालमें साहित्यिक प्रेरणाके लिए प्रकृतिदेवी नालों और खानों, शिखरों और झुरमुटों, झरनों और किल्लोलिनी सरिताओंसे साहित्य-साधनाका थाल परोसे, स्फूर्तिका दीपक संजोकर आरती उतार रही है और रंगों और पट्टोंमें साहित्यिक प्रवृत्तिका संचार करके आह्वान कर रही है कि आओ, साहित्यिक अनुष्ठानमें जुट जाओ। तब फिर गढ़वालने अब तक हिन्दीको कोई लाल क्यों नहीं दिया ? प्रकृतिदेवीकी वह आरती, वनपुष्पोंकी सौरभमयी मादकता और शिखरोंकी विशालता यों ही क्यों है ? साहित्यिक और राजनैतिक उत्थानका ज्वालामुखी वहाँसे क्यों नहीं फटता, जो गढ़वालकी तन्द्राको भस्मीभूत कर दे और कर दे पैदा देश-भरमें एक हुंकार, जिससे हमारा कल्याण हो ?

प्रिन्स क्रोपाटकिनके मतानुसार अच्छा लेखक होनेके लिए तीन बातोंका होना जरूरी है—(१) प्रकृतिका निकटत्व, (२) जनताका सम्पर्क और (३) समविचार-शीला पत्नी—सहायकके रूपमें, जो साहित्यिक कार्यमें भाग ले सके। अन्तिम बात तो विरलों ही को प्राप्त है आजकल इस देशमें। रहीं शेष दो बातें, उनके लिए तो गढ़वालमें कोई कठिनाई नहीं। फिर भी गढ़वालने कोई विभूति क्यों नहीं दी ? अपने निजी मतसे—जो शायद गलत भी हो सकता है—गढ़वालकी गरीबी और वहाँपर किये जुलम—गोरखगढ़ीने गढ़वालकी प्रतिभाको काफ़ी क्षति पहुँचाई है। आवागमनकी कठिनाइयोंसे गढ़वालकी शक्ति उन्नतशील नहीं रही। जीवन प्रगतिशील है, और जब तक आदमी विचार-विमर्श नहीं करता, जब तक वह यात्रा नहीं करता और दूसरोंके पैमानेसे अपनेको नापता नहीं,

तब तक उसकी संकीर्णता नहीं जाती और उसमें छुटपन (Inferiority Complex) आ जाता है। श्री ललिताप्रसाद द्वयके लेखोंमें अप्रत्यक्षरूपसे वही छुटपन प्रस्फुटित हो रहा है।

साहित्य-साधनाके लिए रुकावट-स्वरूप एक बात और हो सकती है। प्रत्येक समय प्राकृतिक दृश्योंमें रहनेसे शायद वह बात उनके लिए साधारण-सी हो गई है—तुष्टता (Satiation) आ गई है। और साथ ही प्रकृतिसे युद्ध करते रहनेसे और बाहरसे उचित सहायता न मिलनेसे शककी प्रवृत्ति भी आ गई है।

असलमें गढ़वालमें दो धाराएँ बह रही हैं। एक तो सुरसरि-धारा, जो गढ़वालके पद पखारती देशको सरसब्ज कर रही है, और दूसरी धारा बह रही है वहाँ उल्टी गंगाकी। कन्दराओं और उत्तुंग शिखरोंको धीरे-धीरे पार करके देशसे उठनेवाली जाग्रति-सुरसरि गढ़वालकी ओर बह रही है। बीजवपन हो चुका है और काफ़ी देरसे हुआ है वहाँ बीजका बोना। अंकुर भी फूटे हैं, और हमें आशा है कि निकट-भविष्यमें गढ़वाल हिन्दी-साहित्यको कुछ अमर भेंट दे सकेगा।

इस बातसे हम पूर्णतया सहमत हैं कि गढ़वालका अपना निजी कोई बढ़िया पत्र नहीं रहा और नवयुवकोंको स्फूर्ति नहीं मिली। तेलीके बैलकी भाँति वे कागज़के टुकड़े—कुछ चिथड़े भी—वहाँ-के-वहाँ, जी-हुजूरी, रियासत और सरकारी चाटुकारी और ब्राह्मण-क्षत्रियके दूषित तथा अस्वाभाविक प्रश्नकी साँकरी और गलाघोट गलियोंमें ही विशेषकर घूमते रहे। गढ़वालके नवयुवकोंकी आत्मा चाहती थी तपोनिष्ठाजन्य नेतृत्व, राष्ट्रीय दृष्टिकोण और उसके मनोभावोंको व्यक्त करनेके लिए कोई आदर्शवादी पत्र या पत्रिका, जिसके स्तम्भोंसे नवयुवकोंकी आत्मा बोलती, जो आवश्यकता-नुसार उनकी पीठ भी ठोकती प्रोत्साहनके लिए और खरी बातें सुनाती पथभ्रष्ट होनेसे बचानेके लिए।

गढ़वालके नवयुवकोंसे हमारा आग्रह है कि वे गढ़वाल-साहित्य-समिति अथवा ऐसे ही मिलते-जुलते

नामकी एक संस्था कायम करें और किसी उत्साही साहित्य-सेवी युवकको उसका सेक्रेटरी बनायें, जिससे वह अपना सब समय समितिके लिए दे सके। सेक्रेटरी वैतनिक हो, ताकि नोन तेल लकड़ीके प्रश्नकी बेचैनी उसे न सताये। समिति बनानेसे पूर्व गढ़वाल-प्रान्तीय साहित्य-सम्मेलन मनाया जाय, जिसमें देशके प्रमुख साहित्य-सेवियोंको बुलाया जाय और गढ़वालकी साहित्यिक उन्नतिके लिए कार्य प्रारम्भ कर दिया जाय। इक्के-दुक्के लेखोंसे काम न चलेगा। कुछ क्रियात्मक आयोजना बनानी होगी। उस आयोजनाको भी हम, अपने लुट्टमतसे, लिख सकते हैं; पर अभीसे उसको लिखना कुछ उचित नहीं जँचता। हमारा खयाल है, सर्वश्री पं० राधावल्लभ खंडूड़ी, पं० खेमराज बहुगुणा, सरदार नारायण सिंह, पं० तारादत्त गैरोला, पं० खेमराज बहुगुणा, सरदार नारायण सिंह, पं० तारादत्त गैरोला, पं० अनुसूयाप्रसाद बहुगुणा और अनेक गढ़वाली सरकारी नौकर आर्थिक सहायता कर सकते हैं। अन्य सज्जन, जिनके नाम हम नहीं जानते, भी चन्दा देकर इस कार्यको चलायें।

इन पंक्तियोंका लेखक एक गरीब साहित्य-सेवी है; पर गढ़वालके नाते तीन महीनेके नोटिसपर एक सौ रुपयेका प्रबन्ध वह कर सकेगा; पर गढ़वालके धनीमानी लोगोंको तो हज़ारों देना चाहिए। विलायत जाकर शिक्षा प्राप्त करने और कालेजकी शिक्षाके लिए वज़ीफ़ोंका प्रबन्ध होता है। गढ़वालमें प्राप्त साहित्य-सामग्रीके लिए भी कुछ द्वात्रवृत्तियाँ देकर काम करना चाहिए, नहीं तो कोरी चिड़पोंसे काम न चलेगा।

हम जानते हैं, हमारी खरी बातोंसे गढ़वालसे निकलनेवाले—केवल अपना अस्तित्व रखनेवाले—और वर्तमान जाग्रतिसे दूर रहनेवाले पत्र और व्यक्ति बौखला जायेंगे; पर हम उन्हें विश्वास दिलाना चाहते हैं कि

हमने अपनी आत्माकी पुकारको ही व्यक्त किया है, और यदि किसीको उससे वेदना हुई हो, तो हम पहलेसे ही क्षमा-याचना किये लेते हैं। पर इसपर हम विवाद नहीं चलाना चाहते। इसीलिए नहीं कि हम विवाद कर नहीं सकते। खूब कर सकते हैं। पर हम व्यर्थकी विभीषिका नहीं खड़ी करना चाहते। हमारा विनम्र निवेदन यही है कि लेखकी बातोंपर निष्पक्षरूपसे वे विचार करें। यदि कोई महाशय जरूरी समझें, तो पत्र-व्यवहार कर लें; पर गढ़वालकी साहित्यिक उन्नतिके लिए वे आगे बढ़ें। हमें सर्वश्री भगवतीप्रसादजी चन्दोला, भगवतीप्रसाद सकलनी, भगवतीप्रसाद चौधरी, सत्यप्रसाद रतूड़ी, मेधाकर नौटियाल, 'पहाड़ी', भक्तदर्शन और अन्य ऐसे साहित्यिक युवकोंसे काफ़ी आशा है—नाम छूटनेका वे बुरा न मानें। पर इन युवकोंको प्रोत्साहनके लिए अपने यहाँके ठंडे तार (Fused wires) की ओर न देखना चाहिए, वरन् गरम तार (Live wires) की ओर। देशकी सांस्कृतिक और साहित्यिक उन्नति हिमालयकी गगनचुम्बी चोटियोंसे भी ऊँची है और गंगाकी धारसे भी अधिक सरस, और वह एक ऐसा क्षेत्र है, जहाँपर भौगोलिक सीमाएँ विलीन हो जाती हैं।

क्या हम आशा करें कि गढ़वालके युवक ऐसे ही पुनीत क्षेत्रमें रहनेकी कामना करेंगे और देश-सेवा तथा साहित्य-सेवासे गढ़वालको और नहीं तो युक्तप्रान्तका मुकुट बना सकेंगे?*

* हम चाहते हैं कि निम्नांकित विषयों और शीर्षकोंपर गढ़वाली साहित्य-सेवी लिखें और तनिक परिश्रमसे लिखें।

स्केचः—खुर्चन, फाल्ट, गरीब किसान (जमींदार), हिमालयकी संध्या और अन्य स्केच। पर स्केच लिखना बड़ी सावधानी और योग्यताका काम है। लेख—गढ़वालमें गंगाजी, गढ़वालके तीर्थ, गढ़वालके किसान, गढ़वाल और तिब्बत, गढ़वालके ग्रामगीत, हिमालय और तन्त्रशास्त्र, बनोंका हिन्दू-संस्कृतिपर प्रभाव, गढ़वाल और वर्तमान युग, गोरख्याणी, गढ़वालके नयनाभिराम दृश्य, अमिट सौन्दर्य और अन्य बहुतसे लेख। इन विषयोंपर बढ़िया शीर्षक रखे जा सकते हैं। कहानियोंकी सामग्री तो बहुत है। —लेखक

पुस्तकें कैसे विकें

साहित्यकी विक्रीकी दुर्दशा

श्री नाथूराम प्रेमी

जूनके 'विशाल भारत' में श्री मार्तण्ड उपाध्यायका 'हमारे साहित्यकी दुर्दशा' शीर्षक लेख प्रकाशित हुआ है, और उसीके सम्बन्धमें एक सम्पादकीय नोट। देवयोगकी बात देखिये कि जिस समय मैं इन्हें पढ़कर बैठा ही था कि मेरी दूकानमें भी एक पुस्तक-विक्रेता सज्जन आये और उन्होंने मुझसे भी वही प्रस्ताव किया। वे सुन चुके थे कि मैं इस पुस्तक-व्यवसायसे ऊब गया हूँ और चाहता हूँ कि कोई अच्छा ग्राहक मिल जाय, तो सब स्टाक वेच-वाचकर छुड़ी पा लूँ। उन्होंने इधर-उधरकी बहुत-सी बातें करनेके बाद कहा कि यदि आप ७०-७५ रुपया प्रतिशत कमीशन दें, तो मैं चार-पाँच महीनेके भीतर ही आपका सारा स्टाक वेचकर २५-३० हजार रुपया आपको दे सकता हूँ। यों तो आपको इतनी बड़ी रकम एकमुश्त गिन देनेवाला कोई व्यवसायी नहीं मिल सकता। उनका कहना यथार्थ था। मैं सचमुच ही इसके लिए प्रयत्न कर चुका हूँ और उसमें असफल रहा हूँ—कोई नकद रुपया देनेवाला मुझे नहीं मिला। फिर भी उनका प्रस्ताव स्वीकार करनेका मुझे साहस नहीं हुआ। मैं इस बातकी कल्पनासे भी सिहर उठा कि मेरी प्रकाशित की हुई पुस्तकें, जिनकी एक-एक पंक्ति मेरे श्रम-विन्दुओंसे भीगी है, बाज़ारमें मिट्टीमोल विकेंगी और उनकी चिरोपार्जित प्रतिष्ठा नष्ट हो जायगी! नहीं भाई साहब, मैं यह सौदा नहीं करना चाहता; इसे जाने दीजिए। इसके बाद मैंने उनसे कुछ विकने-योग्य पुस्तकें ६० प्रतिशत कमीशनपर खरीदकर उनसे छुड़ी ले ली।

उनसे जो बातचीत हुई, उससे यह भी मालूम हुआ कि उपाध्यायजीको जिन प्रकाशक महाशयने सलाह-मशविरेके लिए बुलाया था, उक्त सज्जन प्रधानतः उन्हींकी पुस्तकें वेचते हैं और बहुत काफ़ी वेचते हैं।

उनका और उनको परिवर्तनमें मिला हुआ दूसरे प्रकाशकोंका हजारों रुपयोंका माल वे हर महीने खपा डालते हैं। पीछे यह भी मालूम हुआ कि बड़े आर्डरोंपर वे इससे भी अधिक कमीशन दे सकते हैं।

जहाँ तक मैं जानता हूँ, साहित्यिक पुस्तकोंपर कमीशनकी यह दर सबसे अधिक है। और प्रकाशक तो अभी तक धीरे-धीरे ५० पर ही पहुँचे हैं; परन्तु ऐसा मालूम होता है कि यदि यही रफ्तार जारी रही, तो उन्हें भी विवश होकर इसी रेटपर आ जाना पड़ेगा, क्योंकि वे परिवर्तन करते हैं। परिवर्तनको छोड़ नहीं सकते और तब उसका अर्थ ही यह हुआ कि उन्होंने उक्त कमीशनको मान्य कर लिया।

यह पुस्तक-परिवर्तन छूतकी बीमारीकी तरह फैल रहा है। अच्छे-अच्छे प्रसिद्ध प्रकाशक इच्छासे या अनिच्छासे इसमें फँसते जाते हैं। अनिच्छासे इसलिए कि अधिक कमीशनकी पुस्तकोंके मारे उनकी विक्री कम हो गई है, और विक्री कम होनी ही चाहिए। अवश्य ही वे छोटे आर्डरोंपर इतना कमीशन नहीं देते; परन्तु सौ दो सौके आर्डरोंको लौटा भी नहीं सकते—आधे दामोंमें भेज देते हैं।

जो थोड़ेसे प्रकाशक ऐसा नहीं करते, २५-३०% हद ३३% से आगे नहीं बढ़ते और परिवर्तन भी नहीं करते, उनकी अवस्था दयनीय हो रही है। उनकी विक्रीके अंक मँगाकर देखे जायँ, तो मालूम होगा कि अच्छीसे अच्छी पुस्तकोंकी भी वे साल-भरमें सौ दो सौ प्रतियाँ नहीं वेच पाते। फल यह हुआ है कि श्रेष्ठ साहित्य प्रकाशित करनेकी ओरसे वे हतोत्साह हो बैठे हैं।

इसमें सन्देह नहीं कि अच्छे साहित्यके प्रकाशनके मार्गमें यह बड़ी भारी रुकावट खड़ी हो गई है; परन्तु ऐसा मालूम होता है कि फिलहाल तो इस अवस्थामें कोई सुधार नहीं हो सकता, क्योंकि इस समय देशके सभी व्यवसाय आर्थिक मन्दीके शिकार हो रहे हैं। बढ़ती हुई बेकारी और क्रयशक्तिके हासने जब सभी

व्यवसायोंको चोट पहुँचाई है, तब पुस्तक-व्यवसाय ही कैसे बच सकता था, जब कि पुस्तकोंके बिना भी मनुष्य अपना निर्वाह कर सकता है ? जब आशानुरूप विक्री नहीं होती, तब प्रकाशक सोचता है कि यदि कमीशन देनेसे विक्री बढ़ सकती है, तो क्या हर्ज है, कमीशन ही बढ़ा दिया जाय। बहुत मुनाफेपर थोड़ा माल बेचनेकी अपेक्षा कम मुनाफेपर अधिक बेचना क्या बुरा है ? इसके सिवा ज्यादा कमीशनकी कसर निकालनेके लिए पुस्तकोंका मूल्य भी तो अधिक रखा जा सकता है तथा कम-से-कम लागतपर पुस्तकें भी तैयार कराई जा सकती हैं। एक बात और है। जिन प्रकाशकोंके हाथ तंग हैं, जिनकी पूँजी पुस्तकोंमें फँसकर निकलना नहीं चाहती है, वे लाचार होकर मुनाफा न रहनेपर भी, घाटा सहकर भी, अपना माल निकाल देना चाहते हैं। उपाध्यायजीका यह अनुमान ठीक नहीं मालूम होता कि जो प्रकाशक ७५) सैकड़े कमीशन देता है, वह भी १०) सैकड़ा मुनाफा उठा लेता है। मेरी समझमें तो वह मुनाफेकी परवा न करके रुपयोंकी तंगी ही मिटाता है, या फिर अपने प्रेसके लिए यथेष्ट काम न पा सकनेके कारण अपनी ही पुस्तकोंसे अपने प्रेसकी भूख मिटाता है।

आर्थिक मन्दी तो है ही, उसके साथ जिस अनुपातसे प्रकाशक और प्रकाशित पुस्तकें बढ़ रही हैं, उस अनुपातसे पुस्तकोंके पाठक नहीं बढ़ रहे हैं। पुस्तकें जब थोड़ी थीं, तब वे काफी विक्रि जाती थीं; परन्तु अब पुस्तकें ज्यादा हो गई हैं और पाठक उतने ही हैं, तब उनका कम विक्रिना स्वाभाविक है। और उत्कृष्ट साहित्यके पढ़नेवाले तो शायद बढ़ते ही नहीं हैं। इस समय पुस्तकोंके खरीददारोंमें लगभग ६० प्रतिशत लोग ऐसे हैं, जो केवल हिन्दी या साधारण अंगरेजी जानते हैं, उच्च शिक्षा प्राप्त लोग या तो अंगरेजी पुस्तकें पढ़ते हैं, या फिर कुछ भी नहीं पढ़ते। यदि कभी हिन्दी पुस्तकें खरीदते भी हैं, तो अपनी पत्नियों या बच्चोंके लिए। ऐसी दशामें उच्च श्रेणीका साहित्य कैसे विके ?

साधारण श्रेणीके पाठक जो पुस्तकोंके प्रधान खरीददार हैं, अच्छी पुस्तकोंका चुनाव नहीं कर सकते, और सामयिक पत्र-इस विषयमें उनकी बहुत कम सहायता करते हैं। निष्पक्ष और सावधानीसे की हुई समालोचनाएँ बहुत कम निकलती हैं। समालोचनाओंपर विश्वास भी बहुत कम रह गया है। अच्छी पुस्तकें सुगमतासे मिलती नहीं। बुकसेलरों और उनके घूमने-फिरनेवाले एजेंटोंके पास वे ही पुस्तकें रहती हैं, जिनपर उन्हें अधिक-से-अधिक कमीशन मिलता है। कम कमीशनकी पुस्तकें या तो वे रखते ही नहीं हैं, और यदि थोड़ी बहुत रखते भी हैं, तो जहाँ तक होता है, वे ग्राहकोंको समझा-बुझाकर उन्हीं पुस्तकोंको उनके सिर मढ़नेकी कोशिश करते हैं, जिनपर उन्हें अधिक लाभ होता है। साधारण ग्राहक इस बातको नहीं समझ सकते कि अच्छी पुस्तकें लेखकोंके पुरस्कार और संशोधन आदिके खर्चके कारण महँगी पड़ती हैं, इसलिए उनमें अधिक कमीशनकी गुंजाइश नहीं रहती है।

पुस्तक-व्यवसायकी दुर्दशाका सबसे मुख्य कारण पोस्टके चार्ज बढ़ जाना है। एक रुपयेकी पुस्तक पोस्टसे मँगानेपर ग्राहकको लगभग डेढ़ रुपयेमें मिलती है, इसलिए अब उसे घूमने-फिरनेवाले एजेंटों और शहरोंके बुकसेलरोंका मुँह ताकना पड़ता है, और जब उनके पास इच्छित पुस्तकें नहीं मिलती हैं, तो या तो खरीदता ही नहीं है, या जो भली-बुरी मिल जाती हैं, उनसे सन्तोष कर लेता है। पाठक यह जानकर आश्चर्य करेंगे कि जब पोस्टके चार्ज नहीं बढ़े थे, तब हम लोग वर्ष-भरमें चार-पाँच हजार तक वी०पी० करते थे, और अब मुश्किलसे चार-पाँच सौ भेज पाते हैं !

अब प्रश्न यह है कि इस दुर्दशाको कैसे मिटाया जाय ? उपाय तो ढेर-के-ढेर बतलाये जा सकते हैं; परन्तु उनका प्रयोग बिछुरीके गलेमें धँटी बाँधनेके ही समान असाध्य-सा है। जब तक कोई ऐसी संगठित संस्था न हो, जो सब प्रकाशकोंको एक सूत्रमें बाँध दे और सब नहीं तो अधिकांश प्रकाशक ईमानदारीसे उसके

अनुशासनको मानने लगे, तब तक कमीशनकी इस अव्यवस्थाका कोई नियन्त्रण नहीं हो सकता। प्रकाशकोंकी वर्तमान परिस्थितियों और मनोवृत्तियोंको देखते हुए निकट-भविष्यमें तो ऐसी संस्थाका बनना कठिन जान पड़ता है; परन्तु एक तरहसे यह निश्चित है कि कमी-न-कमी वह बनानी ही पड़ेगी। उसके बिना न तो प्रकाशकोंका ही कल्याण है और न साहित्यका।

मेरी समझमें नीचे लिखे उपायोंसे साहित्यके बाज़ारकी हालतमें बहुत-कुछ सुधार हो सकता है :—

१. अनरजिस्टर्ड वी०पी० पैकेट फिरसे लिये जानेका आन्दोलन करके ऐसेम्बलीके सदस्योंका ध्यान इस ओर आकर्षित किया जाय। पुस्तकें ज्ञान-दानका साधन हैं, उनपर अन्य विक्रेय वस्तुओंके समान चुंगी नहीं लगती है, तब पोस्ट-चार्ज भी कम करना प्रत्येक गवर्नमेंटका कर्तव्य होना चाहिए। एक रुपयेकी पुस्तकमें जहाँ प्रकाशक मुश्किलसे चार-पाँच आने कमाता है, वहाँ गवर्नमेंट सात-आठ आने कमा लेती है ! यह कैसा अन्धेर है ?

२. साहित्यकी विक्रीकी इस दुर्दशासे अभी तक बहुत कम लोग परिचित हैं। आमतौरसे लोगोंका यही खयाल है कि हिन्दी-साहित्य खूब समृद्ध हो रहा है, धड़ाधड़ पुस्तकें निकल रही हैं और प्रकाशक बढ़ रहे हैं। आवश्यकता है कि पत्रोंमें इसकी असलियतकी लगातार चर्चा की जाय और प्रकाशकगण भी आगे बढ़कर अपने व्यवसायके वास्तविक तथ्य प्रकाशित करें।

३. मराठीमें सन् १९३३ से प्रतिवर्ष एक ऐसी पुस्तक प्रकाशित होती है, जिसमें साल-भरमें प्रकाशित हुए मराठी-साहित्यकी समालोचना और चर्चा रहती है, और यह भी प्रकट किया जाता है कि किस-किस विषयपर कौन-कौन भली-बुरी पुस्तकें प्रकाशित हुईं और पुस्तकोंकी विक्रीकी क्या हालत है ? हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन या और किसी साहित्यिक संस्थाकी ओरसे भी एक ऐसी पुस्तक हर साल या हर दूसरे वर्ष प्रकाशित होनेकी व्यवस्था होनी चाहिए, जिसमें एक ऐसी सूची भी रहे, जिसमें प्रत्येक विषयकी अच्छी-अच्छी

पुस्तकोंके नाम और मिलनेके पते रहें। इसे लाइब्रेरियोंके अधिकारियों और दूसरे लोगोंको पुस्तकें चुननेमें बड़ा सुभीता हो जायगा। इस पुस्तकके खर्चका एक अंश प्रकाशकोंसे वसूल किया जा सकता है और एक अंश पुस्तककी विक्रीसे।

४. सामयिक पत्रोंमें पुस्तक समालोचनाका स्तम्भ अधिक उत्तरदायित्वके साथ सम्पादित होना चाहिए। इसके लिए पत्रोंके स्टाफमें विशेष प्रबन्ध होना चाहिए।

५. कम-से-कम प्रत्येक बड़े शहरमें एक-एक साहित्यिक पुस्तकें बेचनेवाला बुकसेलर होना चाहिए, जिसके पास सब तरहकी पुस्तकें मिल सकें। यह कैसा दुर्भाग्य है कि जिस हिन्दीके प्रचारके लिए इतनी चीख-पुकार मचाई जाती है, उसकी पुस्तकें मिलनेकी व्यवस्था इन्दौर, जबलपुर, जयपुर, गोरखपुर, मेरठ आदि जैसे बड़े-बड़े शहरोंमें भी नहीं है ? स्कूल-बुकसेलरोंके सिवा साहित्यिक पुस्तकें बेचनेवाले बुकसेलरोंका बीसियों शहरोंमें अभाव है। एक तो यों ही वाचनाभिरुचि कम है, और फिर सुभीतेसे पुस्तकें नहीं मिल सकती हैं।

६. सर्वसाधारणमें और शिक्षितोंमें हिन्दी पुस्तकें पढ़नेकी अभिरुचि उत्पन्न हो, इसके लिए विशेष प्रयत्न होना चाहिए। मेरा अनुभव है कि मराठी, गुजराती, बंगाली आदि भाषा-भाषियोंकी अपेक्षा हिन्दी-भाषा-भाषियोंमें साहित्याभिरुचि बहुत ही कम है, और यही कारण है कि हिन्दीकी अपेक्षा बहुत थोड़े लोगोंकी इन भाषाओंमें अच्छा साहित्य काफ़ी विकता है। इन्दौरके साहित्य-सम्मेलनके अवसरपर एक महाशयने कहा था कि हिन्दीमें जितने लेखक और कवि हैं, यदि उतनेही पाठक हो जायँ, तो हिन्दीका कल्याण हो जाय। व्यंग्य होनेपर भी इसमें सत्यका अंश कम नहीं है।

जब तक हिन्दीके पाठक नहीं बढ़ते, जब तक लेखकोंके परिश्रमसे लिखी हुई अच्छी पुस्तकें नहीं विकती, तब तक न तो अच्छे साहित्यका निर्माण हो सकता है और न लेखकों और प्रकाशकोंकी ही अवस्था सुधर सकती है।

रामचरित-मानस

(समालोचना)

श्री अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी

कई महीने हुए मैंने अपने मित्र पं० जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदीसे कहा था कि काशी-नागरी-प्रचारिणी सभाने रामायणका जो संस्करण प्रकाशित किया है, वह भी सन्तोषजनक नहीं है। इसपर उन्होंने बताया कि पं० रामनरेश त्रिपाठीने इस विषयमें विशेष श्रम किया है। उस समयसे मेरी इच्छा इसको देखनेकी बहुत बलवती हुई। दैवयोगसे स्थानीय बड़ावाज़ार लाइब्रेरीसे वह पुस्तक मैंने मँगा ली। भूमिकाके कई पन्ने पढ़े, तो चित्त प्रसन्न हुआ। मैंने समझा कि सचमुच त्रिपाठीजीने बहुत बड़े अभावकी पूर्ति की है; परन्तु रामायण पढ़ने और सन्निध तथा चादग्रस्त स्थानोंके अर्थ देखनेकी जब नौबत आई, तब ऐसा मालूम हुआ कि उन्होंने गुड़ दिखाकर ईट मार दी, अथवा ठग दूकानदारकी तरह बढ़िया नमूना दिखाकर घटिया माल दे दिया। इससे बड़ा दुःख हुआ, और बादको तो 'विशाल भारत' के सम्पादक महाशयने समालोचनार्थ आई हुई पुस्तक ही दे दी, जिससे विचार करनेमें अधिक सुभीता हुआ। जब मैंने पढ़ा कि महात्मा गांधीने त्रिपाठीजीको सर्टिफिकेट दे दिया है—“आपके अनुवादपर मेरी श्रद्धा है”, तब बेतहाशा मुँहसे निकल गया कि ग़ज़ब हो गया। इससे जो अन्धेर न हो, थोड़ा है। ज़माना विज्ञापन और प्रोपेगैंडाका है। जो बाजी मार ले जाय, वही बलवान समझा जाता है।

त्रिपाठीजीने जो प्रायः ३०० पृष्ठकी भूमिका लिखी है और अपने शोधक होनेके प्रमाण दिये हैं, उनपर मैं इस समय कुछ न लिखूंगा। उन्हें किसी और समयके लिए छोड़े देता हूँ। इस समय मुझे तो शुद्ध पाठ और अर्थोंके विषयमें ही लिखना है। त्रिपाठीजीने पहले भूमिकाके चौथे पृष्ठपर लिखा है—“कई वर्ष हुए काशीकी नागरी-प्रचारिणी सभाने बहुत परिश्रमसे रामचरित-मानसका एक शुद्ध कहा जानेवाला संस्करण प्रकाशित कराया था। पर उसमें अभी भी कुछ अशुद्धियाँ शेष हैं। उनका संशोधन होना चाहिए।” सातवें पृष्ठके अन्तमें लिखा है—“मेरी बहुत दिनोंसे लालसा थी कि

रामचरित-मानसका एक ऐसा संस्करण निकलना चाहिए जिसमें वही पाठ हो, जिसे तुलसीदासने लिखा था और उसके साथ उसकी सरलसे सरल टीका भी हो।” इतने हेतु और प्रतिज्ञाके बाद आठवें पृष्ठपर लिखा है—“मानसके शुद्ध पाठके लिए अब तक सबसे अधिक परिश्रम नागरी-प्रचारिणी सभाने किया है। कुछ आवश्यक हेर-फेरके साथ मैंने उसीका पाठ ले लिया है।” इससे साधारण पाठकी समझमें यह आवेगा कि सभाके संस्करणमें जो अशुद्धियाँ शेष रह गई थीं, त्रिपाठीजीने उनका संशोधन कर दिया होगा। पाठक चलेँ और देखें कि कुछ संशोधन हुआ है या नहीं।

सबसे पहले तो मैं पाठकोंका ध्यान अयोध्याकांडके प्रारम्भके ‘प्रसन्नतां या न गताभिपेकतः’ इत्यादि श्लोककी ओर आकर्षित करता हूँ। भाषामें संस्करण करनेवालों और प्रकाशकोंने चाहे जैसा संशोधन और परिवर्तन किया हो; पर संस्कृतके श्लोकमें तो पाठान्तरकी गुंजाइश ही नहीं है। फिर भी मुझे यह देख आश्चर्य हुआ कि इस श्लोकमें भी सभाके संस्करणमें जो भूल हो गई थी, वह त्रिपाठीजीने शुद्ध पाठ समझकर उद्धृत कर ली है, अर्थात् ‘प्रसन्नतां या न गताभिपेक-तस्तथा न मम्लौ वनवास दुःखतः’ में ‘मम्लौ’ की जगह सभाके संस्करणमें ‘मम्ले’ हो गया था। त्रिपाठीजीने भी वही रहने दिया है।

अब भाषाकी ओर आइये। २२६वें पृष्ठपर “निज कुल इष्टदेव भगवाना। पूजा हेतु कीन्ह असनाना॥” सभाकी प्रतिमें यही पाठ है; पर अन्य प्रतियोंमें ‘असनाना’ की जगह ‘पकवाना’ है, और यही उपयुक्त पाठ जान पड़ता है। पूजाके लिए स्नान करनेमें कोई विशेषता नहीं है, पर पकवान बनानेमें है। इसी प्रकार इसके पहले १३४वें पृष्ठपर ‘हरि हिअ रामचरित सब आये। प्रेम पुलक लोचन जल छाये॥’ में ‘हर’ को ‘हरि’ कर दिया है, जो अनुचित है और अर्थको अट कर देनेवाला है, क्योंकि ‘हरि’ का अर्थ विष्णु और ‘हर’ का शिव है, और यहाँ शिव ही अभीष्ट है।

पृष्ठ ४२० पर “अरि वस दैव जियावै जाही । मरन नीक अस जीवन चाही ॥” इस चौपाईके पिछले भागके वदले सभाके संस्करणमें ‘मरन नीक अस जीव न चाही’ हो गया है, और त्रिपाठीजीने यही अशुद्ध पाठ ले लिया है ।

‘भरत आय आगे भइ लीन्हें’ में ‘भइ’ नहीं ‘होइ’ होना चाहिए । इसी प्रकार ‘कह लंकेस कहसि निज वाता’ में ‘निज’ का ‘किन’ होना चाहिए । और भी ‘जाहु वेगि संकट अति आता’ में ‘अति’ की जगह ‘तव’ होना चाहिए । फिर “मरम वचन सीता जब बोला । हरि प्रेरित लखिमन मन डोला ॥” इसका शुद्ध रूप है “मरम वचन सीता जब बोली । हरि प्रेरित लखिमन मति डोली ॥” इसीलिए नहीं कि सीता स्त्रीलिंगकी क्रिया ‘बोला’ पुंलिंग नहीं हो सकती, बल्कि इसलिए भी कि ‘मन डोलना’ और ‘मति डोलना’ में अर्थोंका भी अन्तर है ।

‘नव अयोध पदप तर राखेसि जतन कराइ’ में ‘नव’ के वदले ‘तव’ चाहिए । ‘तेहि न भजसि मन मन्द’ में ‘मन’की जगह ‘मति’ चाहिए । ‘अंगदादि हनुमन्त’ ठीक पाठ था, पर यहाँ ‘अंगदनल हनुमन्त’ कर दिया गया । ‘वीत जात निसि जामा’ में ‘जात’ गलत है, ‘गई’ होना चाहिए । ‘सवन्हौ बोलि सुनायसि सपना’ अशुद्ध है । शुद्ध है ‘सवन्ह बोलाय ।’ ‘केहि के बल घालेहि वन खीसा’ में ‘घालेसि’ शुद्ध रूप है, ‘घालेहि’ नहीं । ‘बिनु प्रयास लागर तरहि सकल भालु कपि धारि’ में ‘धारि’ ठीक पाठ नहीं है, ‘भारि’ चाहिए, जिसका अर्थ लगता है । ‘हुइ सुत मारेउ पुर देहेउ अजहुँ पूर पिअ देहु’ इसमें ‘पूर’ की जगह ‘सीय’ चाहिए ; पर आँख मूँदकर पाठ उठा लिया गया है, इसलिए ‘पूर’ रखा गया, और उसका मतमाना अर्थ भी कर दिया गया । “लंका भयेउ कोलाहल भारी । सुने दसानन अति अहँकारी ॥” में ‘सुने’ बहुवचन है, जहाँ ‘सुनेउ’ एकवचन उचित था । इसी प्रकार “पुनि कर गहि कंचनके खम्भा । कहेन्हि करिअ उतपात अरम्भा ॥” में ‘कहेन्हि’ तो उन बोलियोंका क्रियापद ही नहीं है, जिनके क्रियापदोंका प्रयोग रामायणमें हुआ है । अन्य प्रतियोंमें ‘करन लगे’ ठीक पाठ दिया हुआ है । अब दो उदाहरण देकर पाठ-संशोधन प्रकरण समाप्त किया जायगा । एक है ‘करिहौ बहुत कहौ का थोरा’ में ‘कहौ का थोरा’ बेतुका पाठ है, ‘कहत हौ थोरा’ ही ठीक है ।

‘प्रेम समेत अंक बैठावा’ में ‘अंक’ की जगह ‘निकट’ और प्रतियोंमें है और यही ठीक भी है ।

इनके सिवा मध्यम पुरुषकी क्रियाके लिए अन्य पुरुषकी क्रिया और कभी अन्य पुरुषकी क्रियाके लिए मध्यम पुरुषकी क्रियाका प्रयोग किया गया है, जो अनुचित है । इसी प्रकार सम्बन्धकारके लिए रामायणकी बोलीमें पुंलिंग प्रत्यय ‘कर, केर, केरा, के’ और स्त्रीलिंग प्रत्यय ‘कै, केरि, केरी, की’ हैं ; परन्तु अनेक स्थलोंमें पुंलिंग प्रत्ययके वदले स्त्रीलिंग प्रत्यय ‘कै’ देखनेमें आता है । कमसे कम गोसाईंजी तो स्वप्नमें भी ऐसी भूल नहीं कर सकते, जो शुद्ध पाठ देनेका वादा करनेवालोंने की है । इन सब बातोंके लिखनेका यही उद्देश्य है कि त्रिपाठीजीने नागरी-प्रचारिणी सभाके पाठकी भूलोंका कोई संशोधन नहीं किया है । जहाँ त्रिपाठीजीने संशोधन किया है, वहाँ और भी चौका लगाया है, जैसे ‘सुनहु राम स्वामी सन चल न चातुरी मोरि’ में सभाके संस्करणमें ‘सन’की जगह ‘सकल’ है और अन्य प्रतियोंमें ‘सुभग’ है । ‘सन’का अर्थ ‘से’ तो है ; परन्तु ‘सकल’ और ‘सुभग’ से जो स्वामीकी विशेषता होती है, वह ‘सन’ नहीं दे सकता । इसके सिवा ‘सन’से एकमात्राकी कमी भी हो जाती है ।

शुद्ध पाठके विषयमें इतना लिख चुकने बाद विशेष अवतरणोंकी आवश्यकता नहीं प्रतीत होती । पाठक विचारें कि क्या तुलसीदासजीने यही पाठ लिखा था, जो त्रिपाठीजीने लोगोंको दिया है और स्थाली पुलाक न्यायसे जिसका परिचय इस आलोचनामें दिया गया है । यदि उनके मतमें आवे कि तुलसीदासजीका पाठ यही है, तो वे गोसाईंजीके साथ डबल अन्याय करेंगे । अस्तु, मैं अब त्रिपाठीजीके पोथेकी दूसरी विशेषता अर्थात् उनकी ‘सरलसे सरल टीका’ के विषयमें लिखता हूँ ।

पहले यह बताना आवश्यक है कि त्रिपाठीजीकी टीकासे कवितोके गुणोंका कोई परिचय नहीं मिलता, क्योंकि स्कूली लड़कोंके लिए लिखे हुए ‘लफ़्ज़ीमाने’ की तरह अर्थ देनेके सिवा उन्होंने कुछ बहुत नहीं किया, और कहीं-कहीं तो महत्वपूर्ण शब्दोंके अर्थ ही नहीं दिये और यदि दिये भी तो अशुद्ध । उदाहरण-स्वरूप ‘सिंहाना’ क्रियाके रूप रामचरित-मानसमें सैकड़ों जगह आये हैं ; परन्तु सर्वत्र त्रिपाठीजीने उसका अर्थ ‘प्रशंसा करना’

लिखा है। यह अर्थ उन्हें कहाँसे मिला, मालूम नहीं। शायद त्रिपाठीजीने इसे इतना मामूली समझ लिया कि कोषमें भी नहीं देखा। प्राकृतके समयसे 'स्पृह' अर्थमें इसका प्रयोग होता आया है। प्राकृताष्टाध्यायीके चतुर्थ पादका ३४ वाँ सूत्र है—“स्पृहः सिहः ॥ स्पृहोऽप्यन्यस्य सिह इत्यादेशो भवति ॥ सिहइ ॥” हिन्दीमें ईर्ष्या करना, हसद करना, to be jealous of अर्थ होता है। 'सुरंगा'का अर्थ किया है सुन्दर रंगीन; पर उसका अर्थ सदा 'लाल' ही होता है। 'रोचन'का अर्थ रोचना, रोली तो दुनिया जानती है; पर त्रिपाठीजी उसका अर्थ गुरोरोचन करते हैं! 'लेखइ'का 'लेखइ' समझकर अर्थ किया है 'देखता है'; पर 'लेखइ' और 'लेखइ' एक नहीं हैं। 'आन'का अर्थ 'शपथ' है; पर आपने 'दुहाई' किया है। 'हथवांसहु' शब्दका अर्थ कई टीकाकारोंने 'पतवार' किया है; पर त्रिपाठीजी उन सबसे बढ़ गये हैं, इसलिए 'मल्लाहो' कर दिया है! ठीक अर्थ है 'हाथका बाँस भी' अर्थात् 'लगी भी'। 'समन'का अर्थ 'भय' किया है; पर 'शमन' यमको कहते हैं। 'घन-बोध'का अर्थ 'ज्ञानके बादल' किया है, जो 'घना वा गाढ़ा ज्ञान' होना चाहिए। स्कूली लड़के भी तो ऐसा ही अर्थ करते हैं। उनमें और त्रिपाठीजीमें इस विषयमें किस बातमें अन्तर है?

शुद्ध अर्थके विषयमें यह कह देना आवश्यक प्रतीत होता है कि रामायणकी चौपाइयों या दोहों और उनके अर्थोंका ज्ञान मुझे परम्परया नहीं प्राप्त हुआ है, क्योंकि हमारा घराना संस्कृतज्ञोंका है, भाषा-काव्यकी ओर उसमें कभी विशेष ध्यान नहीं दिया गया। इसलिए जो लिखा जायगा, उसका उत्तरदायित्व समालोचकपर ही है। रामायण पढ़ते समय मुझे जिस अंशके अर्थके विषयमें कुछ अधिक जाननेका कुतूहल हुआ, उसीके विषयमें त्रिपाठीजीका अर्थ पढ़ा और इसीलिए उसीके उदाहरण दिये हैं।

बालकांडमें कवियोंकी स्तुति करते हुए गोसांईजी कहते हैं—“जो प्राकृत कवि परम सयाने। भाषा जिन्ह हरिचरित बखाने ॥” सुयोग्य टीकाकार पं० रामनरेशजी त्रिपाठी इसका अर्थ करते हैं—“जो अन्य बड़े चतुर संसारी कवि हैं, जिन्होंने भाषामें हरिचरित वर्णन किये हैं।” यह अर्थ 'प्राकृत' शब्दका यहाँ लगनेवाला वास्तविक अर्थ न जाननेके कारण किया

गया है। यहाँ संसारी अर्थ नहीं है, बल्कि प्राकृत भाषा है। कवि उन प्राकृत और भाषा-कवियोंकी बन्दना करता है, जिन्होंने हरिचरितका वर्णन किया है। पहले तो उसने संस्कृतके कवियोंको यह कह प्रणाम किया है—“व्यास आदि कवि पुंगव नाना। जिन्ह सादर हरिचरित बखाना ॥ चरन कमल बन्दों तिन्ह केरे। पूरहु सकल मनोरथ मेरे ॥” और फिर कहा है—“कलिके कविन्ह करों परनामा। जिन्ह वरने रघुपति गुनग्रामा।” संस्कृतके व्यास आदि कवि कलियुगके पहले हुए हैं। इसलिए कलियुगके कवियोंकी भाषाओंकी चर्चा इस प्रकार की गई है—“जो प्राकृत कवि” इत्यादि। कविका अभिप्राय यह है कि जो प्राकृतके परम चतुर कवि हो गये हैं, उन्हें और जिन्होंने भाषामें हरिचरित वर्णित किये हैं—“प्रनवों सबहिं कष्ट सब त्यागे।” देखिये, कविका भाव किस अर्थसे स्पष्ट होता है।

अब दूसरी चौपाई लीजिए। ‘जों करि कष्ट जाइ पुनि कोई। जातहि नींद जुड़ाई होई ॥’ इसका अर्थ मेरे मित्र त्रिपाठीजीने किया है—“यदि कोई मनुष्य कष्ट उठाकर वहाँ तक पहुँच भी जाय, तो वहाँ जाते ही उसे नींद खी जूड़ी घेर लेती है।” ‘जुड़ाई’ शब्दका अर्थ जूड़ी कहाँसे हुआ? जूड़ी तो शीतज्वर—मैलेरियाको कहते हैं। नींद जुड़ाई दोनोंको प्रयोग विशेष अर्थके लिए किया गया है। कविका अभिप्राय यह है कि ऐसे मनुष्य जो श्रद्धासम्बल रहित हैं और जिनका सन्तोसे साथ नहीं है, उनमें कोई यदि कष्ट सहकर उस मानस तक पहुँच भी जाय, तो वह स्नान न कर सकेगा, क्योंकि वहाँ पहुँचते ही या तो उसे नींद घेर लेगी या जुड़ाई हो जायगी। जुड़ाईका अर्थ श्लेष्मा, सखरमा, जुकाम है, जूड़ी नहीं। यह शब्द आज भी लोग घरोंमें बोलते हैं। ‘होई’ क्रियापद भी भविष्यकालिक है, वर्तमानकालिक नहीं।

तीसरी चौपाई है—“चिकन कच कुंचित गभुआरे। बहु प्रकार रचि मातु सँवारे ॥” त्रिपाठीजी महाराजने अर्थ किया है—“बाल, चिकने, छुँघराले और घने ये। माताने बहुत प्रकार सँवारकर उन्हें बनाया था।” यहाँ प्रश्न है कि ‘घने’ किसका अर्थ है? गभुआरेका? यदि हाँ, तो गलत है। यदि नहीं, तो फिर किसका है? आखिर ‘गभुआरे’ का कोई अर्थ होना चाहिए। शायद आपको इसका पता नहीं है। सुनिये,

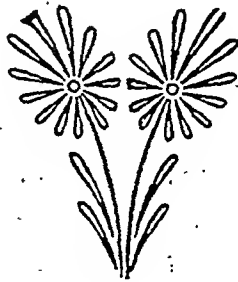
‘गंभुआरे’का अर्थ है ‘गर्भवाले’। गर्भके बाल ये चिकने और छुंघराले, जिन्हें माताने वड़े ढंगसे सँवार दिया था। ‘बहु प्रकार’ का भी ‘बहुत प्रकार’ अर्थ न करके ‘वड़े ढंग’ से ही करना उचित था।

चौथी चौपाई है—“जानि कठिन सिवचाप विसूरति। चली राखि उर स्यामल मूरति ॥” त्रिपाठीजीने अर्थ किया है, “शिवजीके धनुषको कठोर जानकर वह पड़ताती थी। वह हृदयमें रामकी साँवली मूर्ति रखकर चली।” बाह कैसा सुन्दर अर्थ है। यदि तुलदासजीकी आत्मा कहीं होगी—और अवश्य होगी, क्योंकि सगुणोपासक थे और उन्होंने आप कहा है ‘सगुणोपासक मोच्छन लेहीं’, तो वह कैक्सटनको कोसती होगी, जिसने प्रिंटिंग प्रेसका आविष्कार कर त्रिपाठीजी जैसे लोगोंको रामायणकी टीका करनेका अवसर दे दिया है। अनधिकारी लोगोंके हाथमें ग्रन्थ पढ़नेसे वैसी दुर्दशा होती है, इसका प्रमाण त्रिपाठीजीका अर्थ दे रहा है। यदि त्रिपाठीजीको शब्दोंके अर्थ नहीं मालूम थे, तो किसी और टीकासे देख लेते या किसी जानकारसे पूछ लेते; इस तरहकी धाँवल तो न मचाते। पर नहीं, आप तो ऐसे टीकाकार होना चाहते हैं, जैसा न भूतो न भविष्यति, और सचमुच आप हुए भी ऐसे ही हैं, क्योंकि जितने गलत अर्थ आपने किये हैं, उतने शायद

उन सबने मिलकर भी न किये होंगे, जिनके अर्थोंकी आपने अपनी भूमिकामें आलोचना की है। खैर, ‘विसूरति’का अर्थ ‘पड़ताती’ नहीं, बल्कि ‘सोचती’ है। विसूरना क्रियाका अर्थ सोचना, याद कर लेना, होता है। चौपाईका अर्थ हुआ—“साँवली सूरत मनमें रखकर चली तो सही, पर शंकरचापको कठोर जान सोचती है।” अर्थमें कितना अन्तर पड़ गया।

पाँचवीं चौपाई है—“जनक जाति अवलोकहि कैसे। सजन सगे प्रिय लागहि जैसे।” त्रिपाठीजीका अर्थ है—“जनकके सजातीय लोग प्रभुको किस प्रकार देखते थे, जैसे सगे दामाद प्रिय लगते हैं।” ‘सजन’का अर्थ दामाद कबसे हुआ, यह त्रिपाठी जी ही जानें। मैं और मुझसे और अपढ़ भी सजनका अर्थ सज्जन, मित्र ही समझते हैं। सज्जन और सगे लोग जैसे प्यारे लगते हैं, वा जिस दृष्टिसे लोग सगों और सज्जनोंको देखते हैं, उसीसे जनकके स्वजातीय रामको देखते थे। सजनका अर्थ स्वजन किया जाता, तो आपत्ति नहीं थी; पर दामाद तो किसी तरह होता ही नहीं। पिछली अवस्थामें अर्थ होता, ‘स्वजातीय और रक्तसम्बन्धी पुरुष जैसे प्यारे लगते हैं।’ दामादके विषयमें त्रिपाठीजीकी सूझकी जितनी प्रशंसा की जाय, थोड़ी है।

(अपूर्ण)



समालोचना और प्राप्ति-स्वीकार

गोदान लेखक, श्री प्रेमचन्द ; प्रकाशक, सरस्वती प्रेस, काशी ;
और हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर, कार्यालय, बम्बई ; प्रष्ठ ६१२ ;
मूल्य ४/-

कुछ दृष्टियोंसे प्रेमचन्दजीकी पिछली अधिकांश रचनाओंसे इस कृतिमें अन्तर है। इसकी कथा चारों ओरसे सम्पूर्ण और बन्द नहीं है। वह किसी उद्धि आदर्श-संस्था अथवा तत्त्व-निर्माणमें समाप्त होती है। ग्राम्य जीवन तो प्रेमचन्दजीके उपन्यासोंकी मूलवस्तु है। हीराफिर भी वह इस पुस्तकमें अधिक उभारमें आया है। उससे जीवनके अधिक अंगोंको इसमें प्रकाशित किया गया है। और उपन्यासोंमें शहर और गाँवके जीवनमें परस्पर अन्तर्भेद है और अन्तर्सम्मिलन भी हुआ है। गोदानमें लगभग वे दोनों समानान्तर चलते हैं। सम्बन्ध है तो इतना कि रायसाहब जमींदार हैं और होरी रैयत, मिर्जा मौजी आदमी है, तो गोबर कुछ देरके लिए उनका लौकिक मालती करुणाके नाते एक भोजनार्थमें जाकर बच्चोंको खिलाती है या भुनियाँ के बच्चेकी परिचर्या करती है ; प्रोफेसर मेहताकी दार्शनिकताकी राहमें कुछ गाँवका हिस्सा भी आजाता है। प्रेमचन्द इस दृष्टिसे इस रचनामें वस्तुस्थितिके अधिकानिकट रहे हैं और उसपर आदर्शोपण उताना नहीं है।

एक बात प्रेमचन्दजीकी अपनी खास है। वह उन्हें औरोंसे अलग करती है। वह उनकी निश्चिन्तता है। साहित्यमें अपने ऊपर इतनी कम चिन्ताका बोझ रखकर चलनेवाले और इतने खुशदिल लेखक मेरी पहुँचानमें अभी तक कोई नहीं आया। बंगाली रवीन्द्र-शरद वेहद गम्भीर हैं और विलायती लोगोंमें भी इतना दोस्ताना दिल नहीं जितना आलोचनाप्रवण मस्तिष्क होता है। यह निर्द्वन्द्वता उनकी विशिष्टता है। यही फिर मर्यादा भी इससे रचनामें गहराई अगर कम भी होती है, तो भी खुशदिली खूब रहती है। इसीसे वे चारों ओरकी बात कहते हैं, फिर भी ऐसा

लगता है कि अपनेसे और हमसे दूरकी बात नहीं कहते। वे पाठककी पहुँचसे कभी बाहर नहीं जाना चाहते। वे कथोपकथनमें चर्चकी और व्याख्याकी खूब गहराईमें जाते हैं ; पर कथामें पाठकके मनके तल तक रहते हैं। यह उनकी ऐसी खूबी है, जो उनकी रचनाओंको सर्वसुलभ रखती है। बुद्धिवादियोंको भी कुछ-न-कुछ मिलता है और कथार्थी भी खूब कथा पाते हैं। लेकिन मुझे ऐसा मालूम होता है कि बुद्धिबर्ग उनके मनके मानका नहीं है और रह-रहकर मानो चिन्तापूर्वक अपने उपन्यासके बीचमें वे उस वर्गके लिए खुदका जुटाते हैं। असलमें तो साधारण जन ही उनकी प्रीति और लक्ष्यका हेतु हैं और विज्ञान (Sophisticated) के मानकी सन्तोष-रक्षाका कुछ सासान वे यदि देते भी हैं तो इसीलिए कि उन लोगोंके बीच उन्हें शायद अपनी रक्षाका भी थोड़ा बहुत खयाल है। उनकी सहायभूति स्पष्ट है। वे सोदगीकी तरफ हैं और त्यागकी तरफ हैं। जीवनका वेग और उसकी सम्भोगाकांक्षाके प्रति उनमें विरोध है। इसी स्पष्ट मानसिक स्थितिमें से उनकी भाषाकी सुलफाइट और चरित्रोका परिभाषाबद्ध निर्माण बनता है। जिसको अंगरेजीमें Characterization कहा करते हैं। प्रेमचन्दजी इसमें बहुत अच्छे उतरते हैं। उनका पात्र जीता-जागता होता है और उसमें एक अपना निजत्व और एक Rationale होता है—जैसे सुनिश्चित आकृतिकी तसवीरें। धुंधलापन उनके चित्रोंमें नहीं है। अतः वे जितने हैं उतने ही हैं। आपके मनमें उसके लिए अज्ञातका भाव प्रेमचन्दजी नहीं छोड़ते और पाठक इससे प्रसन्न और आनन्दित होता है, क्योंकि वह ऋणी नहीं होता। हमारा राष्ट्रीय राजनीति गाँवकी समस्याओं और जीवनकी समस्याओं जैसे शास्त्रीय पद्धतिसे देखती है, प्रेमचन्दजी उसे वैसे ही मानवीय पद्धतिसे देखते हैं।

मुझे मालूम होता है कि दूसरी पद्धति अधिक यथार्थ और अधिक पूर्ण हैं। प्रचारवादी सोशलिस्ट किसानको उतना पहचानना गवारा नहीं करता, जितना उसकी समस्याकी समीक्षा करना चाहता है। वह किसानको बिना जाने समस्याको जानता है। किसानके साथ मनका अपनापा वह नहीं बनाता। लेकिन प्रेमहीन ज्ञान अज्ञान है; और अगर किसानकी समस्याको समझना होगा, तो किसानको मनसे अपनाना होगा। प्रेमचन्दजी इस मामलेमें उसके पथ-प्रदर्शक हो सकते हैं। हमारी राजनीतिको इसीलिए साहित्यकी ओर सजग होकर चलना चाहिए कि जिन बातोंको अति राजनीतिक, वैज्ञानिक और शास्त्रीय बनाकर देखा जाता है, मालूम हो कि उनका ही मानवीय और आर्टिस्टिक अतएव अधिक यथार्थ रूप क्या है। वैज्ञानिक सोशलिज्म कुछ हो; पर मानवीय सोशलिज्म भी कुछ है, और प्रेमचन्दके 'गोदान'का होरी सरकारी रिपोर्टोंके किसानसे ज्यादा किसान है। प्रेमचन्दकी कलात्मक सहानुभूति जब कि किसानको उपेक्षाके धरातल अथवा कि विज्ञानके आंकिक (Statistical) धरातलसे उठाकर हमारी भावनाके सम्मुख सजीव संवेदनशील मानवके रूपमें उपस्थित करती है, तब उनकी कलात्मक निर्ममता उसे देवता भी नहीं बनने देती। किसानका स्तवन (idealization) किसानकी सेवा नहीं है। इस 'गोदान' में प्रेमचन्दका होरी सच्चे किसानका सच्चा प्रतिनिधि है।

प्रेमचन्दजीका चित्रण हमारे आजके सामाजिक जीवनकी दृष्टिसे तात्कालिक उपयोगिता रखता है। इसीसे उसकी उपयोगिता चाहे कभी कम भी हो जावे, लेकिन आज तो बहुत ज्यादा है। उपयोगिताका अभाव कलाका लक्षण नहीं है; चाहे तो उपयोगिताकी उपस्थिति कलामें आवश्यक शर्त हो सकती है। तद्यपि उपयोगिता कलाकी उपास्य नहीं है। ऐसा तो लगता है कि प्रेमचन्दजी हमारे प्रति इतने सचिन्त हैं कि अपनी उपासनाका काफी अंश वे उपयोगितापर

समर्पित होने देते हैं। इसके लिए हमें उनका कृतज्ञ होना चाहिए। यह कि वे अपनी रचनाओंमें महत्ताके पीछे नहीं हैं, जितने कि हमारी भलाईके निमित्त हैं, यह बात उनको सम्माननीय ही बनाती है। वे हमारे निकट बनते हैं। चाहे मुझ जैसे उनके घनिष्ठ व्यक्तिके लिए यह कुछ दुखकी बात भी हो कि मैं उन्हें निकट क्यों पाता हूँ।

पुस्तककी कथा, जैसा हमने ऊपर कहा, घेरकर गढ़ी हुई नहीं है। वह गठी कम है। यह मेरी दृष्टिसे उचित ही है। अर्थात् कहानी उनके लिए अधिक साधन और कम साध्य है। यों तो हर एक साधनको थोड़ा-बहुत साध्य समझकर चलना उचित है, फिर भी उसे रहना साधन ही चाहिए। सब-कुछ साधन है। और यह बात प्रेमचन्दजीने कहानीके कई आरम्भ किये तारोंको अधूरा छोड़कर मानो हमें चेता दी है। हम कहानी न चाहें, कहानीको चारों ओरसे ढँका-धूरा और 'फिनिश' देखनेकी माँग न करें, वरन् कहानीके द्वारा दी जाती हुई वस्तु पायें, यही शुभ है।

कहा जा सकेगा कि उपन्यासकारकी हैसियतसे, 'गोदान'में प्रेमचन्दजी आगे नहीं बढ़े हैं; पर मुझे इस रचनामें उनकी सहृदयता और प्रासादिकता अधिक निखरी हुई दीखती है।

पुस्तक पढ़कर और उससे पहले भी ऐसा लगा कि पुस्तकका नाम कुछ और होता।

—जैनेन्द्रकुमार

फलोंकी खेती और व्यवसाय—लेखक और प्रकाशक, श्री नारायण दुलीचन्द व्यास, एल० ए०, इन्पीरियल इन्स्टीट्यूट आफ एग्रीकल्चरल रिसर्च, पूसा (विहार); मूल्य १॥=; छपाई और सफाई साधारणतया अच्छी; पृष्ठ-संख्या ३००।

हमारे साहित्यकी एक बड़ी कमी है उसका जीवन-समस्याओंसे पूर्णरूपसे सम्पर्क न रखना। यह हम मानते हैं कि हिन्दी-साहित्यकी उन्नति तूफानी नदीकी

धारकी भाँति बढ़ रही है ; पर फिर भी बहुतसे विषय अब तक अछूते और उपेक्षित-से हैं । फल, फूल और तरकारीके विषय हिन्दीमें अभी तक उपेक्षित-से हैं । उर्दूमें तो पंजाबसे दो मासिक पत्रिकाएँ भी बागवानीपर निकलती हैं ; मगर हिन्दीमें कोई नहीं है, इसलिए जब हमें व्यास महाशयकी पुस्तक आलोचनाको मिली, तब बड़ी प्रसन्नता हुई । व्यास महाशयकी 'सागभाजी' की पुस्तक हमने पढ़ रखी थी, और प्रस्तुत पुस्तकको भी हमने बड़े ध्यानसे पढ़ा । हिन्दीमें अपने विषयकी यह पहली पुस्तक है, और जो बागवानीके विषयमें कुछ भी जानकारी न रखता हो, उसके लिए तो यह पुस्तक बड़ी उपयोगी है । जमीनके चुनाव, आवश्यक औजार, खादका विश्लेषण, भिन्न-भिन्न खादोंकी तुलनात्मक विवेचना, पौधे तैयार करनेकी युक्तियोंसे लेकर फलोंके मुख्य शत्रु कीड़े-मकोड़ोंपर भी काफ़ी प्रकाश डाला गया है ।

बगीचोंमें जाकर देखिये । लोगोंको यह भी पता नहीं कि पेड़ोंकी सिंचाई कैसे करनी चाहिए । ज्यादातर लोग पेड़की जड़के पास खोंडुआ बना देते हैं और जड़के पास ही पानी देते हैं । फल-स्वरूप बड़े होनेपर, विशेषकर गरमियोंके दिनोंमें, पूरा पानी नहीं मिलता । पौधा छोटे-छोटे सुनहों—पतले-पतले रेशोंसे—पानी पीता है, और ऐसे सुनहे पेड़के पालके चारों ओर होते हैं । इसलिए पेड़की शाखाओंके फैलावके अनुसार गोल नाली बनानी चाहिए । इसे गोलाकार तरीक्का (Ring System) कहते हैं । पुस्तकके ७६ और ८० पृष्ठोंपर व्यास महाशयने 'सिंचाईकी रीति' के अन्तर्गत लिखा तो ठीक है ; पर उसको तनिक और जोरदार भाषामें लिखते और साधारण सिंचाईके ढंगके दोष बताते, तो और भी अच्छा होता । जो लोग सिंचाईकी उचित रीति नहीं जानते, उनके पौधोंका फैलाव कम होता है । वे कुछ लम्बोत्तरे-से हो जाते हैं और अपेक्षाकृत उनकी उमर भी कम होती है ।

व्यास महाशय कृषि-विभागके विशेषज्ञ हैं, और हमारा अनुभव सिर्फ़ ऐसे अनभूत प्रयोगोंपर है, जिनसे

साधारण आदमी ज्यादा लागत न लगाकर थोड़ा-बहुत इस विषयमें कुछ कर सकता है । इसलिए हमें लिखना पड़ता है कि पृष्ठ ५१ और ५२ पर वर्णित कलमी मिट्टी और मोमपर व्यास महाशयको कुछ और विस्तारसे लिखना चाहिए था ।

हमारे यहाँके माली जो कलमी मिट्टी तैयार करते हैं, वह बहुत साधारण-सी, पर बहुत ज़रूरी चीज़ है । चिकनी मिट्टीमें पुरानी रुईके रेशे मिलाकर मिट्टीको गीला करके कुछ दिन रखनेके बाद उसे खूब गूँधा जाता है, जिससे वह लसदार हो जाती है । हमारे खयालसे यूरोपमें कलमी मिट्टी व्यवहृत होती है ।

हमारी समझमें कलमी मिट्टी और कलमी मोमपर व्यास महाशयको तनिक विस्तारसे, कुछ अधिक स्पष्ट करके, लिखना चाहिए था । साथ ही पुस्तकमें बड़े पैमानेपर बागवानी करनेवालोंके लिए ही सब कुछ लिखा गया है । पुस्तकमें एक अध्याय छुटभैयोंके लिए भी होता—उनके लिए, जिनको बीस-पचीसकी नौकरी भी नहीं मिलती और जिनके यहाँ दो-चार खेत हैं और फिर भी जो खाफ़ छानते फिरते हैं, तो बहुत अच्छा होता । १५-२० बीघे जमीनसे परिश्रमी युवक अपनी रोटी चला सकता है—पपीते, केले और तरकारी करनेसे ।

क़लमें तैयार करनेकी साधारण युक्तियाँ खूब स्पष्टरूपसे लिखी गई हैं, और चित्र भी सुन्दर हैं ।

हम चाहते हैं कि फलों और तरकारियोंके विषयमें सुन्दर ट्रेक्ट निकलें, जिनका मूल्य प्रति ट्रेक्ट एक आना या दो आनेसे अधिक न हो । फिर भी हम कहेंगे कि व्यासजीकी पुस्तक बहुत उपयोगी है, और उसके लिए व्यास महाशयको हार्दिक बधाई ।

—श्रीराम शर्मा

हिन्दी-पर्यायवाची कोश—लेखक, पंडित श्रीकृष्ण शुक्ल
विशारद ; प्रकाशक, आर्य-पुस्तकालय, बनारस सिटी ; पृष्ठ-
संख्या ६४+२८८+४८ सजिल्द ; मूल्य २।।)

हिन्दीमें अभिधान ग्रन्थोंकी प्रचुरता नहीं है । उनकी संख्या उँगुलियोंपर गिनी जा सकती है । प्रायः

सभी अभिधान ग्रन्थोंमें केवल शब्द और उनके अर्थ संग्रह किये जाते हैं। किसी-किसी शब्दके अर्थमें यदाकदा दो-एक पर्यायवाची शब्द दे दिये जाते हैं। प्रस्तुत कोशकी विशेषता यह है कि इसमें शब्दोंके पर्यायवाची शब्द एकत्रित किये गये हैं। उदाहरणके लिए, कौवा शब्द लेखीजिए साधारण अभिधान ग्रन्थमें कौवा शब्दके आगे केवल इतना ही लिखा मिलेगा—'एक प्रकारका बड़ा काला पेंही, काका' परन्तु प्रस्तुत पुस्तकमें आपकी कौवे की दर्जनसे अधिक पर्यायवाची शब्द मिल जायेंगे। हमारे यहाँ पर्याय शब्दोंकी कमी नहीं है, लोग उन्हें जानते कम कम हैं, इसलिए उनका व्यवहार कम करते हैं।

पर्यायवाची कोश विद्यार्थियों, शिक्षकों, कवियों और लेखकोंके बड़े कामकी चीज है। पर्याय शब्दोंके ज्ञान और व्यवहारसे भाषा समृद्धशाली होती है। यह कहनेकी जरूरत नहीं। लेखक और प्रकाशकने इस पुस्तकके द्वारा हिन्दीकी एक कमीकी पूर्ति की है, जिसके लिए वे धन्यवादके अधिकारी हैं। यों भी लिखी है १९६३ ई. १२७७ पृष्ठ हैं। इस पुस्तकका मूल्य ०५-४९।

ट्राट्स्कीकी जीवनी—लेखक, श्री रामदास गौड़जी श्री राजवडम सहाय; प्रकाशक, शानुमल पुस्तक-भंडार, काशी; डबल कालन सोलह पेजी; पृष्ठ-संख्या ३६०; मूल्य सजिल्द ३, बजिल्द १।

ट्राट्स्की वर्तमान संसारका एक अद्भुत व्यक्ति है। वह क्रान्तिकारी है, पद्धत्यन्तरी है, लेखक है, प्रकार है, नेता है, वक्ता है, सिपाही है, सेनापति है, बोलशेविक सरकारका भूतपूर्व सचिव है, जारशाहीका भूतपूर्व कदी है। दुनियामें सर्वप्रथम साम्यवादी सरकार स्थापित करनेका जितना श्रेय लेनिनको है, उतना ही ट्राट्स्कीको है। रूसकी सुप्रसिद्ध अवधर क्रान्तिको सफल बनानेका श्रेय ट्राट्स्कीको है। ट्राट्स्कीके बिना लेनिन सफल होता। इसमें सन्देह है।

लेनिनके दिमाग और ट्राट्स्कीकी तलवारने ही सोविएत शासन स्थापित किया। दुनियाके पूँजीवादी और साम्राज्यवादी देशोंके बड़े-बड़े राजनीतिज्ञ और सेनापति ट्राट्स्कीके लाभसे

थरते हैं। जिस किसी देशमें वह पहुँच जाता है, वहाँके शासनकी जड़ें हिलने लगती हैं। यूरोपके किसी भी देशकी हिम्मत नहीं पड़ती कि वह ट्राट्स्कीको अपनी सीमामें शरण लेने दे। वास्तवमें ट्राट्स्की संसारके महानतम व्यक्तियोंमें है, इसलिए ट्राट्स्कीकी जीवनी एक अत्यन्त महत्वपूर्ण पुस्तक है। प्रस्तुत पुस्तक ट्राट्स्कीके आत्म-चरित 'माई लाइफ' का संक्षिप्त अनुवाद है। प्रकाशकोंने ट्राट्स्कीके जीवन-चरित्रको प्रकाशित करनेका विचार किया, उनकी इस सूझके लिए हम उन्हें धन्यवाद दे सकते हैं; किन्तु उन्होंने जो चीज हिन्दी पाठकोंके सामने रखी हैं, उसके लिए धन्यवाद देना सम्भव नहीं। दोस्त्रियोंके प्रतिकी जो दुर्गति कहानियोंमें सुनी जाती है, प्रायः वही दुर्गति अनुवादक-द्वयके हाथों ट्राट्स्कीकी जीवनीकी छुई है। प्रस्तुतका आधा-भाग गौड़जी द्वारा अनूदित है। और आधा श्री राजवडम सहायजी द्वारा। गौड़जी ने अपना हिस्सा अन्य पुरुषोंमें लिख मारा है; और राजवडमजीने मूलके अनुसार सारी कथा प्रथम पुरुषमें लिखी है। इस प्रकार यह अनुवाद एक वेतुका आधा-तीतर आधा-बूटेर बन गया है। फिर अनुवादमें मूल पुस्तकको संक्षिप्त कर डाला गया है। आवश्यकता अनुवादको संक्षिप्त करनेकी नहीं थी, वरन् उसे टिप्पणियों द्वारा बढ़ानेकी थी, क्योंकि पुस्तकमें सेकड़ों ऐसे नाम और प्रसंग आये हैं, जो यूरोपियन पाठकोंमें सर्वविदित हैं, परन्तु जिनसे हिन्दीके पाठक सर्वथा अनभिज्ञ हैं। संक्षेप करने और टिप्पणियाँ न देनेका नतीजा यह है कि अनेकों स्थल समझमें ही नहीं आते। उसपर गौड़जीके अनुवादकी भाषा भी ऐसी संस्कृतपूर्ण है कि साधारण पढ़े-लिखे पाठकोंके लिए उस समझना कठिन है। अगर जो तारीखों गौड़जीने बड़ी मेहनतसे विष्कम्भी सवत और तिथियोंमें परिणत किया है, जिससे सहूलियत होनेके बजाय, गड़बड़ ही ज्यादा होती है। 'इज्जत'की जगह 'अनुज्ञा', 'टेलीफोन'के लिए 'तारवाणी' आदि शब्दोंका प्रयोग कुछ उसी तरहका है, जैसे स्थानके लिए लोहपथचालित वाष्पयान स्थापन स्थल लिखना। खेद है कि इस अनुवादके लिए हम अनुवादक-द्वयको धन्यवाद नहीं दे सकते। लेनिनकी जय।

इन्स्टालमेंट—लेखक, श्री भगवतीचरण वर्मा; प्रकाशक, 'लीडर'

प्रेस, प्रयाग; मूल्य १), पृष्ठ-संख्या १६२; छपाई-सफाई
बढ़िया।
प्रोफ. 'इन्स्टालमेंट' मि० वर्मा की पन्द्रह कहानियों का संग्रह है।
प्रारम्भिक दो शब्दों में लेखक, महाशयने बतलाया है कि
क्या लिखा जाता है और क्यों लिखा जाता है? किसी
कलाकार की कृति पढ़ने के समय, ऐसे प्रश्नों को उठाना
कलाकार के साथ ही नहीं, वरन् कला के साथ अन्याय करना है।
आप लोगों को देखना चाहिए कि किस तरह लिखा जाता है? और
यही कलाकार की सफलता है? लेखक, महाशय की यह
किसी टीका है या गलत, यह तो कलाकार ही जते हैं और
कलाकारों में भी इसपर काफी मतभेद हो सकता है। हम तो
एक साधारण पाठक की हैसियत से ही इन कहानियों पर कुछ
कहने के अधिकारी हैं। और एक साधारण पाठक की दृष्टि से कह
सकते हैं कि इस संग्रह की अनेक कहानियाँ सफल कहानियाँ
हैं। ये कहानियाँ वास्तव में जीवन के स्फुट चित्र हैं, और
उनकी सफलता का प्रमाण है उनकी सजीवता और अभिव्यंजना
(Suggestiveness)। मनोवैज्ञानिक विचारों की कितनी
प्रतिक्रिया का विदाव-उत्तर 'बाहर भीतर', 'एक अनुभव', 'चाय
एक पेग और', 'इन्स्टालमेंट' आदि कहानियों में अच्छी तरह
दिखाया गया है। 'विकटोरिया क्रॉस', 'प्रायश्चित्त' और
'मुगलों के सत्तनत बख्श दी' में होश का अच्चा पुट है।
वर्माजी का ज्ञान केवल अंगरेजी पढ़े-लिखे प्रेजेंट या पंडर-प्रेजेंट
तिवके के लोगों तक ही परिमित है। प्रायः अधिकांश
कहानियों का वातावरण यूनिवर्सिटी और होस्टल का वातावरण
है और उसे वर्माजी सफलतापूर्वक सजीव बना सके हैं। कुछ
कहानियों में अशिक्षित आयुवक समाज की ऐसी मनोवैज्ञानिक
भूलक दीख जाती है कि पाठक कुछ सोचने के लिए बाध्य हो
जाता है। पुस्तक की भाषा साफ सुथरी सरल और
स्वाभाविक है।

मानकुमारी—मूल लेखक, स्व० लखड़ीचरण सेन; अनुवादक,
स्व० बलचन्द्र; प्रकाशक, लीडर प्रेस, प्रयाग; द्वितीय
संस्करण; सजिल्द, पृष्ठ-संख्या ४२+३७४; मूल्य २।।
'मानकुमारी' स्वर्गीय लखड़ीचरण सेन के रामेर कि ई
अनुवाद है।
अयोध्या? नामक बंगला उपन्यास का हिन्दी अनुवाद है।

उपन्यास ऐतिहासिक है, उसकी अनेक घटनाएँ और पात्र
वास्तविक हैं। अथवा सौ वर्ष पहले अवध के नवाबों की
वास्तविक दशा, उनकी ऐय्याशियाँ, अनाचार, दुराग्रह,
अत्याचार, कुप्रवृत्त आदि—जिनके द्वारा अवध की सत्तनत
जहन्नुम को चली गई—तत्कालीन अंगरेजों की चालाकियाँ,
बदज्यादतियाँ और लूट-खसोट आदिका ऐतिहासिक चित्र इस
उपन्यास में खींचा गया है। उपन्यास के मनोरंजन के साथ ही साथ
इसमें तत्कालीन इतिहास की भी खासी भाँकी मिल जाती है।
अनुवाद के विषय में यह कहना उचित होगा कि किसी
अनुवाद को इतना सर्वगुण वर्णन का प्रयत्न बहुत कम अनुवादक
करते हैंगे। अनुवादक महाशयने अनुवाद के साथ-साथ, मूल
लेखक की सचित्र जीवनी, उपन्यास के ऐतिहासिक पात्रों का
प्रामाणिक ऐतिहासिक अन्वेषण से संकलित किया हुआ संक्षिप्त
विवरण और पात्रों तथा उपन्यास में वर्णित स्थानों के २३
प्रामाणिक चित्र भी दिये हैं। केवल दो-एक जगह
व्याकरण-सम्बन्धी भूलों को छोड़कर भाषा सरल, बोलचाल की
और वासुधाविरा है।

रसायनसार—लेखक, स्वर्गीय श्यामसुन्दर चार्य; वैश्य;

प्रकाशक, उमदीलाल वैश्य, दी श्यामसुन्दर रसायनशाला,
गायपाट, काशी; डिमाई अठपेजी, पृष्ठ १२०; मूल्य १) सजिल्द।

रसायन विज्ञान हमारी आयुर्वेदिक चिकित्सा-प्रणाली का
एक प्रमुख अंग है। पुस्तक के लेखक महोदय संस्कृत और
आयुर्वेद के बड़े विद्वान थे। उन्होंने आयुर्वेद-सम्बन्धी रसायनपर
यह ग्रन्थ संस्कृत में लिखा है, साथ ही हिन्दी में उसकी सुस्पष्ट
टीका भी दे दी है, जिससे हर बात आसानी से समझ में आ
सके। पुस्तक की विशेषता यह है कि इसमें उन्होंने केवल
प्राचीन संस्कृत ग्रन्थों की बातें ज्यों-की-त्यों उठाकर नहीं रख दी
हैं, वरन् अनेक महत्वपूर्ण बातों के प्रयोग करके अपने अनुभूत
तथ्य भी दिये हैं। आजकल हमारे आयुर्वेद के लेखक व्यावहारिक
प्रयोग के ग्रन्थ नहीं लिखते। पुस्तक वैद्य और आयुर्वेद के
प्रेमियों के बड़े काम की चीज है; इसका प्रमाण यह है कि यह
इस पुस्तक का तीसरा संस्करण है। इस संस्करण की प्रकाशकाने
चित्र आदि देकर अधिक उपयोगी बनाने की चेष्टा की है। आशा
है कि वैद्य और चिकित्सक इससे लाभ उठायेंगे।

हुमरी तरंगिणी (प्रथम पुस्तक)—लेखक, श्री केशव गणेश डेकरे ; मूल्य ॥=) ; मिलनेका पता, श्री केशव गणेश डेकरे, ११२, आशुतोष सुकर्जी रोड, मवानिपुर, कलकत्ता ।

भारतीय संगीतके ज्ञाता जानते हैं कि हुमरी हमारे संगीतका एक विशेष अंग है । प्राचीन ढंगकी हुमरियोंमें अनेक उच्चतम भाव पाये जाते हैं । हुमरियाँ हिन्दी गानोंकी एक विशेषता हैं, क्योंकि अन्य भाषाओंमें जो हुमरियाँ मिलती हैं, वे हिन्दी हुमरियोंका ही तोड़ा-मरोड़ा रूपान्तर है । डेकरे महाशयने अपनी गुरु-परम्परासे प्राप्त हुमरियोंको एकत्रित करके इस पुस्तकमें प्रकाशित किया है । साथ ही साथ इसमें प्रत्येक हुमरीका राग, रागका विवरण, स्वर-लिपि आदि भी दी गई है । जो सज्जन संगीतसे प्रेम रखते हैं, पुस्तक उनके लिए उपयोगी सिद्ध होगी, क्योंकि डेकरे साहब अपने विषयके विशेषज्ञ हैं ।

—ब्रजमोहन वर्मा

‘श्री अरविन्द और उनका योग’—लेखक, श्री मदनगोपाल गाडोदिया ; प्रकाशक, श्री अरविन्द-ग्रन्थमाला, ४ हेयर स्ट्रीट, कलकत्ता ; पृष्ठ-संख्या ८५ ; मूल्य ॥) ; ढपाई-सफाई और कागज अच्छा ।

श्री अरविन्द-ग्रन्थमालाकी यह प्रथम पुस्तक है । इस पुस्तकके अन्दर विचार इतने क्रोमती और कल्याणकारक हैं कि यह पुस्तक हम सबके स्वागतके योग्य है—विशेषतः उन भाइयोंके, जो हिन्दीमें शुद्ध साहित्यको देखनेकी इच्छा रखते हैं, या जो ऊँचे आध्यात्मिक ज्ञानके पिपासु हैं ।

श्री अरविन्द घोष—इस नामको भारतमें कौन शिक्षित पुरुष नहीं जानता ? परन्तु उन्हीं अरविन्दके कार्यके विषयमें—महान और अप्लुत कार्यके विषयमें—भारतवासी बहुत कम जानते हैं । अक्टूबर १९२४ में मि० रोमाँ रोलाँने भी श्री दिलीपकुमार रायको लिखा था—“I know as yet too little of Shri Arvind, but from what little I have gathered about him I am persuaded that there is in him one of the highest spiritual forces in the world.” —‘अब तक मैं श्री अरविन्दके बारेमें बहुत कम जानता हूँ, किन्तु जो कुछ थोड़ा-सा जान पाया हूँ, उससे मैं इस

नतीजेपर पहुँचा हूँ कि उनमें संसारकी सबसे बड़ी आध्यात्मिक शक्ति है ।’

यह कितने दुर्भाग्यकी बात है कि जिसके जन्मसे भारतभूमि पवित्र हुई है और जिसकी महान महत्ता सारे संसारमें व्याप्त है, भारतवासी उस महापुरुषके बारेमें नहींके बराबर जानते हैं, और विशेषतः हिन्दी-भाषा-भाषी सर्वथा अनभिज्ञ-से हैं । अंगरेज़ीमें तो श्री अरविन्दके विषयमें उनकी अपनी ही रचनाएँ संसारको उपलब्ध हैं । गुजराती और बँगला भाषामें भी अरविन्द-साहित्य कुछ-कुछ मिल जाता है ; पर राष्ट्र-भाषाका पद प्राप्त करनेवाली हिन्दी-भाषामें आज तक पचीस-तीस वर्ष बीत जानेपर भी श्री अरविन्दके बारेमें कुछ भी जानकारी नहीं मिल सकती । श्री अरविन्दकी दिव्य रचनाओंसे हिन्दीका वंचित रहना कितने दुःखकी बात थी । इस दुःखसे व्यथित होकर इन पंक्तियोंके लेखकने स्वयं कई बार सोचा और प्रयत्न भी किया कि श्री अरविन्दकी पुस्तकोंको हिन्दीमें किया जा सके ; पर परिस्थिति अनुकूल न हुई । आज यह देखकर कि कलकत्तेमें एक प्रकाशन संस्था खुली है, जो श्री अरविन्द-ग्रन्थमालाको हिन्दीमें प्रकाशित करेगी, हमें अत्यन्त हर्ष हुआ । इसके आयोजकोंको हम जितनी बधाई दें, थोड़ी है ।

अभी इस ग्रन्थमालाकी यह पहली ही पुस्तक निकली है । इसमें ८ लेख हैं, जो एक-से-एक बढ़कर हैं । सब लेख उन महानुभावोंके लिखे हुए हैं, जिन्हें श्री अरविन्दके अति निकट सम्पर्कमें रहनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ है । प्रारम्भमें श्री अरविन्दकी प्रामाणिक जीवनी है । फिर श्री नलिनीकान्तका सुन्दर लेख है, जिसमें बताया गया है कि श्री अरविन्दकी योग-विधि जीवन-कलाकी चरम सीमापर पहुँचनेवाली है । फिर अनिलचरण रायने अपने लेखमें योगकी अब तककी सब पद्धतियोंका इतिहास बताते हुए, श्री अरविन्दके ‘पूर्ण योग’का स्वरूप बताया है । इसी तरह एकके बाद एक श्री अरविन्द-मार्गपर प्रकाश डालनेवाले लेख हैं । अन्तिम लेख ‘ईश्वरका राज्य’ है, जो श्री अरविन्दके परिश्रमका ध्येय है ।

यह ग्रन्थमाला सुन्दर होनेके साथ सस्ती भी है । आशा है, हिन्दी-भाषा-भाषी जनता इसका समुचित आदर करेगी ।

—अभय विद्यालंकार

चिट्ठी-पत्री

प्रियवर,

जुलाई के अंकमें श्री अख्तर हुसेन रायपुरीने मेरे सम्मेलन और साहित्य-परिषद्-सम्बन्धी लेखपर जो विचार प्रकट किये हैं, उनके बारेमें मुझे संचोपमें कुछ कहना है :—

(१) क्रान्ति-प्रेरक साहित्यके बारेमें मैंने जो लिखा था कि 'प्रस्ताव गिर गया', वह मेरी भूल थी। उसका कारण भी रायपुरीजीने ठीक बताया है। मुझे इस भूलका पता लेख लिखनेके कुछ ही दिन बाद लग गया था ; लेकिन तब संशोधन सम्भव नहीं था।

लेकिन यह भी मैं कहूँगा कि यद्यपि प्रस्ताव पेश नहीं हुआ, केवल विचार-विनिमय ही हुआ, तथापि यह स्पष्ट हो गया था कि प्रस्तुत मण्डलीका बहुमत (Sense of the house) पंडित जवाहरलालके पक्षमें नहीं था। इसलिए मेरी भूल बहुत बड़ी नहीं है।

(२) मैंने अपने लेखमें कहा था—“आजकल क्रान्ति-साहित्यकी कुछ ऐसी हवा है कि जो लोग जनतासे कोई सम्बन्ध नहीं रखते....और जिनमें क्रान्तिकी अशान्तिमय प्रेरणा नामको भी नहीं, वे भी चेष्टा करते हैं....फल यह हो रहा है कि हमारे देशमें बहुत-सा ऐसा साहित्य पैदा हो रहा है, जो थोथा और निस्सार है।” मेरे कहनेका अभिप्राय यह है कि जब तक लेखकके भीतर क्रान्तिकी प्रेरणा नहीं है, तब तक वह क्रान्ति-प्रेरक साहित्य नहीं पैदा कर सकता। यदि फ्रैशनके कारण, या बाहरी दबावके कारण, वह वैसा करेगा, तो बिलकुल झूठी और निकम्मी चीज पैदा करेगा, इसलिए यह दबाव व्यर्थ है। और इस दबावका विरोध करना क्रान्तिप्रेरक साहित्यका विरोध करना नहीं है, जैसा कि रायपुरीजी मेरे मुँहसे कहला रहे हैं।

एक बार फिर अपनी बात दुहरा दूँ। जब तक क्रान्तिकी सजीव भावना हमारे साहित्यकारोंमें नहीं है, तब तक कृत्रिम साधनोंसे, hot house method's से,

उसे उभारनेकी चेष्टा फ़िजूल है। वैसी चेष्टाका फल यही होगा कि नीरस और बेजान साहित्य पैदा होगा। बड़ और पीपल गमलोंमें नहीं लगा करते, न ड्राइंग-रूम सजाया करते हैं। और यदि हम किसीसे कहते हैं कि उन्हें ऐसे खड़ा करनेकी कोशिश मत करो, तो यह बड़ और पीपलका विरोध नहीं है, यह उन्हें लगानेके उस ढंगका ही विरोध है। मैं यह नहीं कहता कि हमें क्रान्ति-साहित्य नहीं चाहिए ; मैं कहता हूँ कि हम उसके बिना जी नहीं सकते ; लेकिन उसकी आशा हम जिनसे करते हैं, वह उनके पाससे नहीं मिलेगी ; क्योंकि उनकी आत्मामें उसके उपयुक्त शक्ति नहीं है।

रायपुरीजी जब कहते हैं—“क्रान्तिप्रेरक साहित्य क्रान्तिकारी आन्दोलनके साथ पनपेगा और बढ़ेगा”, तब वे स्वयं इस बातको प्रकारान्तरसे स्वीकार कर लेते हैं। अपने कथनकी पुष्टिमें मैं कई एक नये लेखकोंकी रचनाओंमें से उदाहरण दे सकता हूँ; जो अपनी जानमें क्रान्तिप्रेरक साहित्य पैदा कर रहे हैं; लेकिन वास्तवमें हमें उतना भी नहीं देते, जितना कोई सजीव क्रान्ति-विरोधी दे सकता है—असलियतका एक टुकड़ा; लेकिन वैसे उदाहरण देना एक ऐसी बहस खड़ा करना है, जिसमें मूल विषय ही खो जायगा।

(३) बाकी जो कुछ रायपुरीजीने कहा है, वह प्रसंगसे अलग है। मेरे लेखकी आलोचना करनेमें उनकी पूरी अपील 'विशाल भारत' के पाठकोंके सामने आ सकी, यह तो अच्छा हुआ ; लेकिन इसके अलावा रायपुरीजी कुछ बातें कह गये हैं, जो मेरे लेखसे कोई सम्बन्ध नहीं रखती और जिनका उत्तर देनेकी जरूरत नहीं है। ऐसा मालूम होता है कि रायपुरीजी किन्हीं काल्पनिक शत्रुओंसे लोहा ले रहे हैं—ऐसे तर्कोंका खण्डन कर रहे हैं, जो मैंने पेश ही नहीं किये।

—अश्वेय

चित्र-चयन

मोटरकारकी स्वर्ण-जयन्ती ।

आज मोटरकार देहात-देहातमें पहुँच रही है । अबसे बीस वर्ष पहले वह सिर्फ कुछ गिने-चुने धनिकोंके ऐशकी चीज थी, और अबसे ५१ वर्ष पहले दुनियामें कोई उसका नाम भी न जानता था । उस समय किसीने यह कल्पना भी न की थी कि कभी कोई ऐसी सवारी भी ईजाद होगी, जो बिना वोड़ेके और बिना रेलकी पटरिके मामूली सड़कोंपर पचास मीलकी तेजीसे दौड़ेगी ।

सन् १८८६ में कार्ल बेनवसने दुनियाकी सबसे पहली मोटर बनाई थी । यह मोटर तीन पहियोंसे चलती थी । इसी वर्ष गटलियर डैमलरने चार पहियोंसे चलनेवाली मोटर बनाई । ये दोनों मोटर-आविष्कारक जर्मन थे । इस वर्ष जर्मनीमें मोटर-आविष्कारकी अर्ध-शताब्दी मनाई गई थी । इस उत्सवमें बेनवस और डैमलरकी बनाई हुई सबसे पहली मोटरें तथा आधुनिक युगकी नई-से-नई मोटरें प्रदर्शित की गई थी । प्रदर्शित गाड़ियोंमें सबसे नई गाड़ी डिज़ल मोटरसे चलनेवाली एक बस थी, जिसमें २२ आदमी बैठ सकते थे और जो ७२ मील फीन्टकी तेजीसे दौड़ सकती है ।

जहरीली गैसकी रोक

जहरीली गैसके आक्रमणसे आज यूरोपके सारे देश संशंकित हो रहे हैं । हालमें अवीसीनियामें इटैलियनोंने हवाई-जहाजसे जहरीली गैसके बम बरसाकर जैसा भयंकर त्रासक मचाया था, उसे देखकर लोग बहुत डर रहे हैं । भविष्यमें युद्ध होनेपर जहरीली गैससे निरपराध नागरिकोंकी रक्षा कैसे की जाय, इसका उपाय निकालनेके लिए यूरोपके अनेक देशोंके वैज्ञानिक खोज कर रहे हैं । बम फटनेपर जहरीली गैस आहिस्ता-आहिस्ता चारों ओर फैलती है । बम फटनेके साथ ही अगर गैस

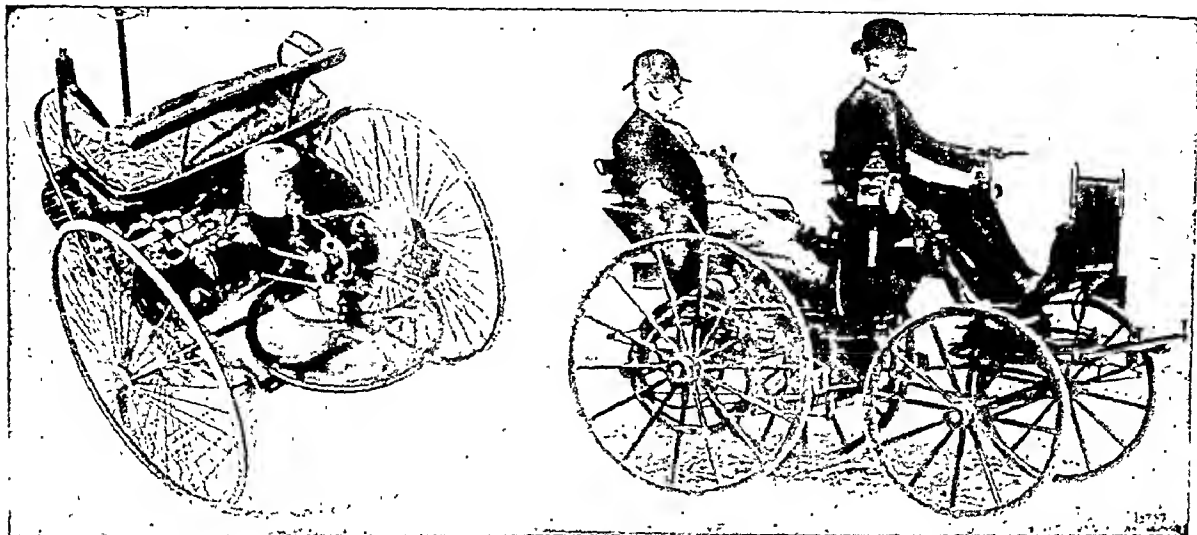
फैलनेकी खबर लोगोंको मिल जाय, तो वे भागकर किसी निरापद स्थानमें छिपकर रक्षा कर सकते हैं । लोगोंको गैसकी खबर देनेके लिए लन्दनकी सड़कोंपर एक नये प्रबन्धकी व्यावहारिकताकी परीक्षा की जा रही है । गैस रोकनेवाले तोबड़ेको मुँहपर चढ़ाकर एक व्यक्ति एक तेज़ साइकिलपर सवार होकर रास्तेके दोनों ओर लोगोंको खबर देगा । खबर देनेके लिए साइकिलमें लाउड स्पीकर लगा है । मुँहपर चढ़े हुए तोबड़ेमें एक माइक्रोफोन लगा है । विजलीकी बैटरीकी सहायतासे माइक्रोफोनमें धीरेसे कही हुई बात लाउड स्पीकरमें जाकर बड़े जोरसे प्रतिध्वनित होती है ।

श्री रामकृष्ण रंगर

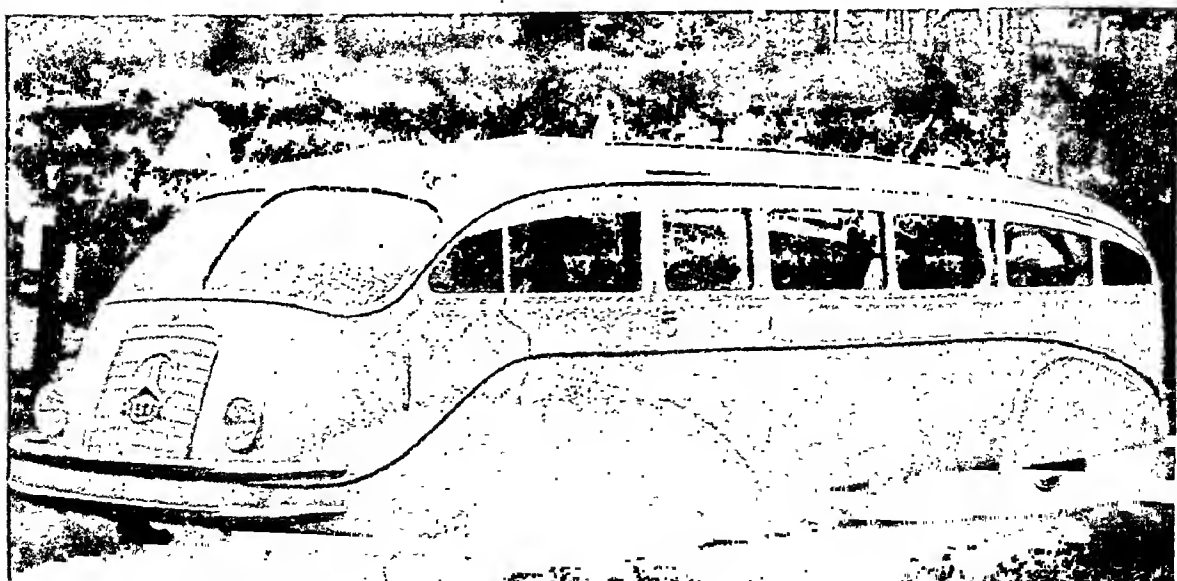
कलकत्तेकी बड़ाबाज़ार युवक-सभा द्वारा परिचालित स्वास्थ्य-प्रतियोगितामें श्री रामकृष्ण रंगरने ५०० का विजला-पुरस्कार प्राप्त किया है । रंगर महाशयने व्यायाम-साधनासे यह दिखला दिया कि यदि स्वयं युवक चाहें, तो वे अपने शरीरको कैसे बलवान, निरोग, सुदौल, सुदृश्य और शक्तिशाली बना सकते हैं । मोटर रोकना, जंजीर तोड़ना, छातीपर से भारी रोलर निकालना, एक हाथसे आदमीको पुरसा-भर ऊपर उठा लेना आदि काम रंगरजी आसानीसे कर सकते हैं । स्वास्थ्य-सुधारकी शिक्षाके लिए कलकत्तेमें पाल्सी स्कूल आफ फिजिकल एज्युकेशन नामका एक संस्था खुली है, रंगरजी उसीमें शिक्षक हैं ।

सूर्यग्रहणकी तसवीर उतारनेका कैमरा

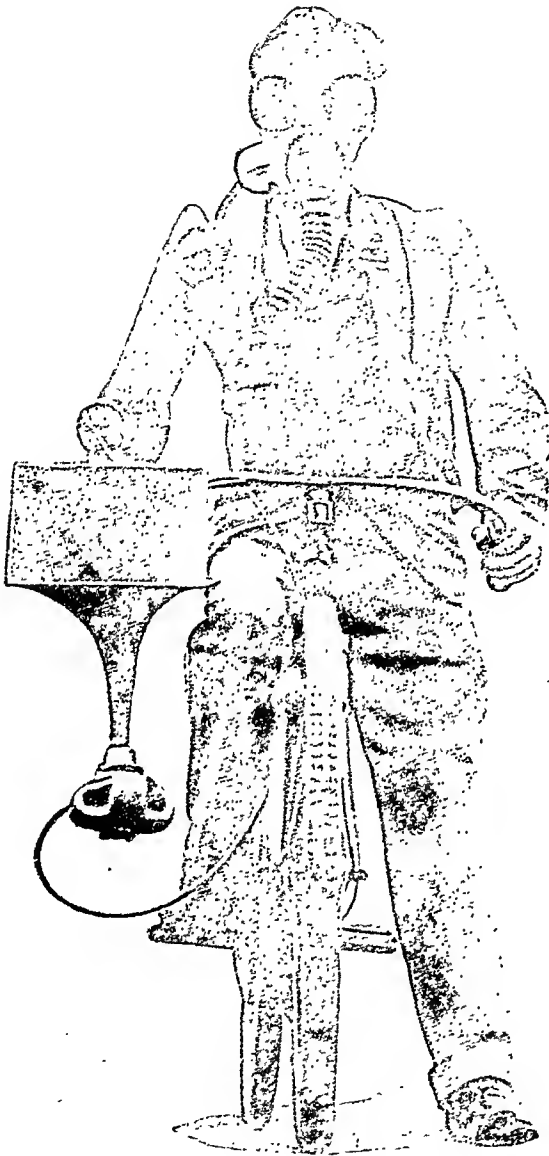
पिछली १९वीं जूनके सूर्यग्रहणकी फोटो खींचनेके लिए एक नये ढंगका विशाल कैमरा बनाया गया था । यहाँ कैमरेकी जो तसवीर प्रकाशित की जाती है, उससे उसकी विशालताका कुछ अनुमान लगाया जा सकता है । कैमरा जमीनसे पन्द्रह फीट ऊँचा है, और प्रत्येक सेकेंडपर अपने आप एक तसवीर खींचता है ।



सन् १८८६ में सबसे पहले बननेवाली तीन पहिये और चार पहियेकी मोटर



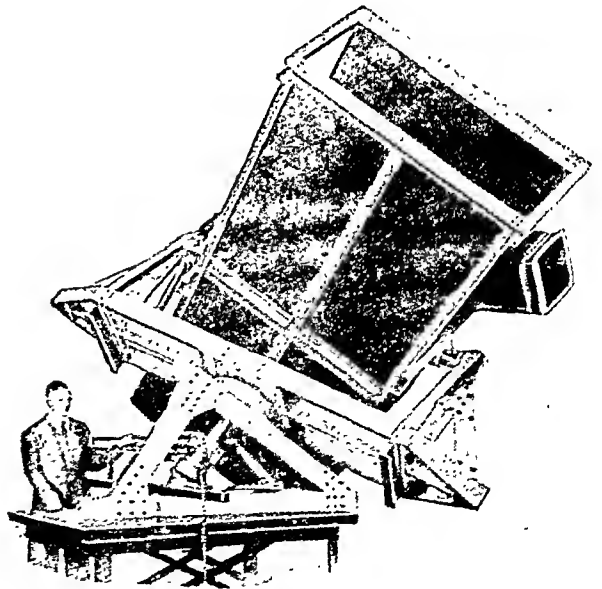
एक नवीनतम मोटर-बस



गैससे बचनेका तोवड़ा लगाये लाउड स्पीकरसे गैससे आक्रमणकी
खबर देनेवाला साइकिल-स्वार



श्री रामकृष्ण रंगर



सूर्यग्रहणकी तस्वीर उतारनेका विशाल कैमरा

सम्पादकीय विचार

भारतीय रियासती प्रजा

मोटे हिसाबसे भारतकी देशी रियासतोंमें बसनेवालोंकी संख्या ८ करोड़ हैं। जर्मनीकी आबादी ६६ करोड़, ग्रेट-ब्रिटेन और उत्तरी आयरलैंडकी ४४५ करोड़, इटलीकी ४३ करोड़ और फ्रांसकी ४१ करोड़ है। इस प्रकार हमारी देशी रियासतोंकी आबादी जर्मनी, ग्रेट-ब्रिटेन, इटली और फ्रांस—प्रत्येककी आबादीसे कहीं अधिक है। सन् १९३५ के भारत-शासन-विधानमें और इस विधानकी तैयारीमें होनेवाले विभिन्न वाद-विवाद, विचार और परामर्श आदिमें ब्रिटिश सरकार और ब्रिटिश पार्लामेंटने रियासतोंमें बसनेवाले इस विशाल जनसमुदायकी पूरी उपेक्षा की है। क्या संसारकी कोई शक्ति कोई महत्त्वपूर्ण काम करते समय जर्मनी, ग्रेट-ब्रिटेन, इटली या फ्रांसके अस्तित्वकी एकदम उपेक्षा कर सकती है ?

बात यह है कि ब्रिटिश पार्लामेंट भारतीय राष्ट्रीयताका सामना करनेके लिए देशी रियासतोंके शासकोंको अपना औजार बनाना चाहती थी और चाहती है। ब्रिटिश पार्लामेंट जानती है कि देशी राजा-महाराजा स्वेच्छाचारी, लोकतन्त्रके विरोधी और भारतीय राष्ट्रीयताके मुखालिफ हैं। पार्लामेंट यह भी जानती है कि ब्रिटिश भारत और देशी रियासतोंमें बसनेवाले लोगोंकी नस्ल, जाति, भाषा और धर्म एक ही हैं। उनमें बहुत घना सामाजिक और व्यापारिक सम्बन्ध है। वह यह भी जानती है कि देशी रियासतोंमें बसनेवाले लोग भी वैसे ही राष्ट्रवादी हैं, जैसे ब्रिटिश भारतके। लिहाजा पार्लामेंटने भारतपर जो नया शासन-विधान लादा है, उसमें उसने देशी नरेशोंको तो अत्यधिक प्रतिनिधित्व दे डाला; पर देशी रियासतोंकी प्रजाको नाममात्रका भी नहीं। इसलिए इस ब्रिटिश-निर्मित शासन-विधानके खिलाफ़ रियासती प्रजाकी शिकायत जितनी वाजिव है, उतनी समूचे भारतके अन्य किसी भी दलके लोगोंकी नहीं।

देशीराज्य प्रजा-परिषद्

देशीराज्य प्रजा-परिषदका पाँचवाँ अधिवेशन गत १८ जुलाईको कराचीके पर्ल ओपेरा हाउसमें हुआ था। परिषदके सभापति थे डाक्टर पट्टाभी सीतारामय्या। परिषदमें मध्य-भारत, पंजाब, गुजरात, और दक्षिण-भारतकी रियासतोंके प्रतिनिधि आये थे। कांग्रेसवाले और साम्यवादी दलके लोग भी काफी संख्यामें उपस्थित थे।

पंडित जवाहरलाल नेहरूसे भी कुछ बोलनेके लिए कहा गया। नेहरूजीने व्यक्तिगत हैसियतसे बोलते हुए कहा कि समूचा भारत एक है—उसके टुकड़े नहीं किये जा सकते। कांग्रेसके भीतर देशी रियासतोंकी समस्यापर जो मतभेद दीख पड़ता है, वह केवल यही प्रकट करता है कि कांग्रेस एक जीवित संस्था है, अतः उसमें देशमें फैले हुए विभिन्न मत प्रतिबिम्बित होते हैं। कांग्रेसका दृष्टिकोण समझाते हुए पंडितजीने रियासती प्रजाको कांग्रेसकी सहायताका विश्वास दिलाते हुए कहा कि यह स्वयं रियासती प्रजाका कर्तव्य है कि वह अपनी स्थिति सुधारनेकी कोशिश करे।

नेहरूजीका कथन ठीक है; परन्तु रियासती प्रजा यह जानना चाहती है कि उसे अपनी स्थिति सुधारनेके प्रयत्नमें कांग्रेस कहाँ तक और किस-किस रूपमें सहायता देगी ?

लिनलिथगोके साँड़ और धर्मके साँड़

आधुनिक सभ्यता कानूनके द्वारा अथवा अन्य किसी राष्ट्रीय उपाय और प्रभावसे जो कुछ करती है, हिन्दू-भारत किसी-किसी क्षेत्रमें उसे धर्मका अंग समझकर करता आया है। जैसे आधुनिक पाश्चात्य जगतमें राष्ट्रने निःशुल्क शिक्षाकी व्यवस्था की है, वैसे ही हिन्दू-भारतने अध्यापकोंको दक्षिणा और 'विदा' आदि देकर विना फीसके छात्रोंके भरण-पोषण और अध्यापनका प्रबन्ध किया था; अनेक पाश्चात्य देशोंमें वेकारोंको

राष्ट्रकी तरफसे निर्दिष्ट भत्ता दिया जाता है, हिन्दू-भारतने कुछ-कुछ सम्मिलित परिवार-प्रथाके द्वारा और कुछ-कुछ अवसत्रादि उपायोंसे उस उद्देश्यको पूरा करनेकी कोशिश की है। पाश्चात्य मतके अनुसार गोवंश और कृषिकी उन्नतिके लिए जगह-जगह अच्छी नस्लके साँड़ रखना आवश्यक है, हिन्दू-भारतमें भी वृषोत्सर्गके द्वारा धर्मके साँड़ रखनेकी प्रथा उसी उद्देश्यको लेकर है, इत्यादि। हिन्दू प्रथाएँ सभी निर्दोष हैं या नहीं, उसकी आलोचना करना हमारा उद्देश्य नहीं। हमारा जो-कुछ था और अब भी है, उन सब बातोंको हमें पुराने जमानेकी चीज समझकर बिना विचारे छोड़ देना उचित नहीं, यह कहना शायद अनुचित न होगा।

भारतवर्षके वर्तमान गवर्नर-जेनरल लार्ड लिनलिथगो गोवंश और कृषिकी उन्नतिके लिए जमींदारों तथा अन्य सम्पन्न व्यक्तियोंको अच्छी नस्लके साँड़ रखने और पालन करनेके लिए कह रहे हैं, और खुद भी ऐसा कर रहे हैं। उनके दृष्टान्तका अनुकरण हो तो वह हितकर होगा, इसमें शक नहीं। यहाँ यह कहना अप्रासंगिक न होगा कि श्रीयुत रवीन्द्रनाथ ठाकुर ग्रामोंकी उन्नतिके एक उपाय-स्वरूप श्रीनिकेतनकी तरफसे कई केन्द्रोंमें उत्कृष्ट साँड़ कई सालोंसे वितरण करते आ रहे हैं, और उनके बड़े भाई ऋषिकल्प भक्तिभाजन द्विजेन्द्रनाथ ठाकुर महाशयके श्राद्ध-अनुष्ठानमें एक उत्कृष्ट वृष उत्सर्ग किया गया था।

एक तरफ लार्ड लिनलिथगो उत्कृष्ट साँड़ोंकी संख्या बढ़ानेकी कोशिश कर रहे हैं, तो दूसरी तरफ मैमनसिंहमें एक (अ-हिन्दू) हाकिम हुक्म दे रहे हैं कि धर्म-साँड़ोंके मालिक उनका भार न लेंगे, तो उन्हें गोलीसे मार दिया जायगा। धर्म-साँड़ोंके मालिक कोई नहीं; जो श्राद्धमें वृष उत्सर्ग कर देते हैं, उनका अधिकार वहीं खतम हो जाता है। धर्मार्थ उत्सर्ग किये हुए जीवोंका वध करना हिन्दू-धर्मपर आघात करना होगा, और साथ ही गोवंशकी और भी अधिक

अवनति होगी। इसपर विचार करके सरकारको चाहिए कि इस हुक्मको रद्द कर दे।

भारतीय फौज

भारतके कमांडर-इन-चीफ सर राबर्ट कैसेल्सने कुछ दिन पहले कहा था कि भारतकी समूची फौज भारतके लाभके ही लिए रखी जाती है। लेकिन भारत-सरकारने २५ मार्च, १८६० को अपने एक खरीतेमें कहा था—“भारतमें रखी जानेवाली फौजकी वृद्धिमें, शस्त्रास्त्रों और भारतकी रक्षाके नामपर क्लेवन्डी करनेमें करोड़ों रुपये खर्च किये गये हैं। यह (खर्च व फौजी प्रबन्ध) न तो देशको घरेलू शत्रुओंसे बचानेके लिए है और न पड़ोसके देशोंकी लड़ाकू जातियोंके हमलोंसे रक्षाके लिए है, बल्कि यह पूर्वमें ब्रिटिश शक्तिकी प्रधानता बनाये रखनेके लिए है।”

फिर भारत-सरकारने कहा था—“यह कहना सत्यके अधिक नजदीक होगा कि साम्राज्य सरकार भारतमें और भारतके खर्चपर अपनी सेनाका इतना बड़ा भाग रखती है, जितना वह वहाँ अपनी सत्ता कायम रखनेके लिए जरूरी समझती है। और वह भारतमें रहनेवाली इस फौजको हमेशा एक ऐसी रिजर्व फौज समझती है, जो साम्राज्यके कामोंके लिए सदा उपलब्ध रहती है। वह भारतमें रहनेवाली फौजकी यूरोपियन रेजीमेन्टोंको अपने साम्राज्यवादी युद्धोंके लिए जब कभी जरूरत पड़ती है, या सङ्कलित होती है, बराबर काममें लाती रहती है। इतना ही नहीं, बल्कि साम्राज्य सरकार अपनी सहायताके लिए भारतकी देशी फौजको भी, जिसके रखनेमें वह कौड़ी भी खर्च नहीं करती, भारतके बाहर ऐसी लड़ाइयोंमें, जिनका भारत-सरकारसे कोई भी सरोकार नहीं था, या था तो बहुत थोड़ा, काफी स्वच्छन्दतासे काममें लाती रही है।”

यह सरकारी स्वीकारोक्ति स्व० दादाभाई नौरोजीने सन् १९०६ में कलकत्तेकी कांग्रेसमें अपने सभापतिके

भाषणमें उद्धृत की थी। इसके साथ ही सन् १९०२ की इनसाक्लोपीडिया ब्रिटैनिकाके लेखमें लेडी लुगार्डेने लिखा था—“भारतकी अपनी निजी देशी फौज है, साथ ही वह अपनी सीमामें रहनेवाली साम्राज्य-सेनाको रखनेका व्यय भी देता है।”

अवीसीनिया और राष्ट्र-संघ

अवीसीनियाके सम्राटने जेनेवाके राष्ट्र-संघकी सभामें स्पष्ट शब्दोंमें संघको उसकी मक्कारी, विश्वासघातकता और शक्तिहीनताकी बातें सुना दीं। राष्ट्र-संघने उन्हें सुनकर चुपचाप हज़म भी कर लिया।

अधमताका लक्षण है बलवानका भक्त बनना और कमज़ोरका यमराज होना। राष्ट्र-संघने इटलीके विरुद्ध जो आर्थिक प्रतिबन्ध लगाये थे, उन्हें हटा लिया। अवीसीनियाके सम्राटने अपने देशकी स्वाधीनताकी रक्षाके लिए और वहाँ सुव्यवस्था स्थापन करनेके लिए राष्ट्र-संघसे ऋण माँगा था; लेकिन संघने सम्राटकी प्रार्थना स्वीकार नहीं की।

अवीसीनियामें ‘डाकू’

जब कोई ज़बर्दस्त जाति किसी दूसरे देशपर आक्रमण करती है, या उसे विजय कर लेती है, तो उस देशके जो देशभक्त ‘मरता क्या न करता’के अनुसार आखिरी दम तक लड़ते हैं, ‘सभ्य’ जगतमें उन्हें ‘डाकू’का लक्ष्य दिया जाता है। कोरिया, मंचूरिया, चीन तथा अन्यान्य स्थानोंमें भी यही होता आया है। इस समय अवीसीनियाके जो स्वदेश-प्रेमी वीर नाना प्रकारसे इटैलियनोंको नुक़सान पहुँचा रहे हैं, मारकाट कर रहे हैं, या परेशान कर रहे हैं, उनके सम्बन्धमें रायटरने जो ख़बर दी है, उसमें भी उन्हें ‘डाकू’ (Bandit) नामसे पुकारा गया है!

—श्री रामानन्द चट्टोपाध्याय

पं० जवाहरलाल नेहरू और लिबरल

पंडित जवाहरलाल नेहरूके आत्म-चरितने हमारे लिबरल राजनीतिज्ञोंको बुरी तरह बौखला दिया है। नेहरूजीका आत्म-चरित एक प्रकारका आत्म-परीक्षण है। उसमें उन्होंने अपने व्यक्तिगत भावोंको प्रकट किया है; पिछले पन्द्रह-बीस वर्षमें देशमें होनेवाली विभिन्न सार्वजनिक बातों और घटनाओंने लेखकके मनपर जो क्रियाएँ-प्रतिक्रियाएँ उत्पन्न की हैं, लेखकने उन्हींका सीधा-सच्चा वर्णन किया है। नेहरूजीका मुख्य अपराध यही है कि उन्होंने अपने विचार प्रकट करनेमें सत्यकी कंजूसी नहीं की। उन्होंने किसीके साथ रू-रिआयत नहीं की। लिबरलोंके बारेमें उन्होंने जो कुछ लिखा है, उसका सार यह है कि लिबरल छोटी-छोटी बातोंपर ज़रूरतसे ज्यादा हो-हल्ला मचाते हैं, और बड़ी-बड़ी महत्त्वपूर्ण घटनाओंपर पूरा ध्यान नहीं देते। वे खिताबों और पदोंके इच्छुक रहते हैं, और इसीलिए वे नौकरशाहीके हाथके औज़ार बन जाते हैं। वे सरकारी अधिकारियोंकी प्राइवेट बातचीतको बहुत महत्त्व देते हैं, आदि। इसीपर लिबरल नेता और लिबरल समाचारपत्र नेहरूजीको खरी-खोटी सुनानेमें व्यस्त हैं।

नेहरूजीके आक्षेप और सर कवासजी जहाँगीरजी

गत १८ जुलाईको शोलापुरमें बम्बई-प्रान्तीय लिबरल कानफ़रेंसका अधिवेशन हुआ था। इसके सभापति थे बम्बईके सर कवासजी जहाँगीरजी। सर कवासजी पहले बम्बई-सरकारके सदस्य रह चुके हैं।

देशकी इच्छाके विरुद्ध हमारे शासकोंने हमपर एक अत्यन्त अवांछनीय शासन-विधान लाद दिया है। हमारे शासकोंकी सबसे बड़ी इच्छा यही है कि भारतीय इस शासन-विधानको कार्यान्वित करें। इस समय देशके सामने सबसे बड़ी समस्या यह है कि इस अवांछनीय शासन-विधानका सामना कैसे किया जाय, इसे कैसे ठुकराया जाय।

लिबरल दल देशका एक प्रमुख राजनैतिक दल है।

वह अपनी बौद्धिक शक्तियों पर बराबर गर्व किया करता है। इसलिए यह आशा की जानी चाहिए थी कि शोलापुर-कानफरेंसके सभापति महाशय इस महत्त्वपूर्ण प्रश्नपर विस्तारपूर्वक विचार करके देशको उचित मार्ग दिखलायेंगे। लेकिन हम देखते हैं कि सर कवासजी जहाँगीरजीके भाषणका बहुत बड़ा भाग सिर्फ जवाहरलालजीके आक्षेपोंके उत्तर देनेकी चेष्टामें लगाया गया है। मानो देशके सामने सबसे बड़ी समस्या यही है कि जवाहरलालजीने लिबरलोंके लिए क्या लिखा! लिबरल समाचारपत्रोंने जहाँगीरजीके भाषणकी बड़ी तारीफें की हैं। जहाँगीरजीने अपने भाषणसे स्वयं ही यह सिद्ध कर दिखाया कि लिबरल लोग महत्त्वपूर्ण समस्याओंपर ध्यान न देकर छोटी-छोटी बातोंपर ही हो-हल्ला मचाया करते हैं।

कांग्रेसने नई कौंसिलोंपर कब्ज़ा करके उन्हें तोड़नेका निश्चय किया है। इसके विरुद्ध सर जहाँगीरजी और शोलापुर-कानफरेंसने निश्चय किया है कि लिबरल नये विधानको कार्यान्वित करके उससे लाभ उठावेंगे। हमारे शासक भी यही चाहते हैं। अतः नेहरूजीका यह आक्षेप कि लिबरल लोग नौकरशाहीके हाथके औज़ार बन जाते हैं, ठीक ही दिखाई देता है।

नागरिक स्वतन्त्रताके सम्बन्धमें जहाँगीर महाशयने इस बातकी सफाई दी कि लिबरल नेताओंने जवाहरलालजीके प्रस्तावित नागरिक स्वतन्त्रता-संघमें शामिल होनेसे क्यों इनकार किया। उन्होंने कहा—“हम लिबरलोंकी आदत शोरगुल मचानेकी नहीं, यह हमारा दोष है, और इसीलिए हम लोकप्रिय नहीं हैं। परन्तु मैं आज आप लोगोंको कुछ बातें बताऊँगा.....जब आर्डिनेंस जारी किये गये थे, तब यह बम्बईके लिबरल ही थे, जिन्होंने दिन-दिनभर बैठकर उनका अध्ययन किया, और जिन्होंने उनकी कुछ धाराओंको हटाने और अन्य धाराओंको नरम करनेके लिए सरकारसे सार्वजनिक रूपसे और प्राइवेट रूपसे प्रयत्न किया था।.....हम

लोगोंने प्राइवेट तौरपर इन आर्डिनेंसोंके लिए बहुत परेशानी उठाई थी। आज मैं सबके सामने घोषणा करता हूँ कि हम लिबरलोंके ही बदौलत आर्डिनेंसकी शुरूमें बनाई हुई कुछ धाराएँ हटा ली गई थीं और कुछ नरम कर दी गई थीं।”

सर कवासजी और उनके मित्रोंकी इस कारगुजारीके लिए देशको कृतज्ञ होना चाहिए; लेकिन इससे भी नेहरूजीके इस कथनकी ही पुष्टि होती है कि लिबरल सरकारी अधिकारियोंसे प्राइवेटमें मिलने-जुलनेको—कुलिहयामें गुड़ फोड़नेको—बहुत महत्त्व देते हैं।

इंग्लैण्डमें स्टैनली वाल्डविन, लायड जार्ज, रैमसे मैकडानल्ड आदि अपने देशकी सेवा करते हैं, और उनकी सेवाएँ और उत्तरदायित्व सर कवासजीकी अपेक्षा लाख गुना ज्यादा होगी। फिर भी उन्हें किसी खिताबकी ज़रूरत नहीं होती। स्वर्गीय गोखले लिबरल दलके और देशके पूज्य नेता थे। उन्होंने देशकी बहुत बड़ी सेवा की थी; लेकिन उन्होंने कोई खिताब लेनेसे इनकार कर दिया था। कवासजी जहाँगीरजीको नौकरशाहीकी इनायतसे मिला हुआ ‘सर’का खिताब प्राप्त है, वे बम्बई-सरकारके सदस्य भी रह चुके हैं, इसलिए नेहरूजीके इस आक्षेपपर कि लिबरल उपाधियों और पदोंके इच्छुक रहते हैं, कुछ कहना व्यर्थ है।

फीजीका नया विधान

ब्रिटिश मन्त्रिमण्डलके औपनिवेशिक सचिव मेजर आर्म्स वी गोरने फिजी द्वीपके लिए नया शासन-विधान तैयार किया है। फीजीके मौजूदा विधानके अनुसार कौंसिलमें गवर्नरके अतिरिक्त २५ मेम्बर होते हैं, जिनमें १२ मेम्बर सरकारी हैं और १२ गैर-सरकारी। गैर-सरकारी मेम्बरोंमें ६ अंगरेज़, ३ भारतीय और ३ फीजियन (फीजीके मूल निवासी) होते हैं। अंगरेज़ और भारतीय मेम्बर पृथक्-पृथक् निर्वाचन-प्रणालीसे

चुने जाते हैं, और फीजियन सदस्य सब-के-सब सरकार द्वारा नामजद किये जाते हैं ।

नये शासन-विधानमें कौंसिलके सदस्योंकी संख्या २५ से बढ़ाकर ३१ कर दी गई है । लेकिन पहलेकी भाँति कौंसिलमें बहुमत सरकारी मेम्बरोंका ही होगा, यानि १६ सरकारी सदस्य रहेंगे और १५ गैर-सरकारी । १५ गैर-सरकारी सदस्योंमें ५ अंगरेज, ५ भारतीय और ५ फीजियन होंगे । ५ अंगरेज सदस्योंमें से ३ निर्वाचित होंगे और २ नामजद । फीजियन पाँचोंके पाँचों नामजद होंगे ।

ऊपरसे देखनेमें तो यही जान पड़ेगा कि नये विधानमें फीजीमें बसनेवाली तीनों प्रधान जातियोंके साथ एकदम समानताका व्यवहार किया गया है ; लेकिन बात ऐसी नहीं है, क्योंकि फीजीकी आबादीमें ६८,४७६ फीजियन, ८३,२८६ भारतीय और ४,७६३ अंगरेज हैं । इस प्रकार अंगरेजोंको भारतीयोंकी अपेक्षा १७ गुनासे ज्यादा और फीजियनोंकी अपेक्षा २० गुनासे ज्यादा प्रतिनिधित्व दिया गया है । इसके सिवा एक बात और है । कौंसिलमें १६ सरकारी सदस्य होंगे, जो अधिकांश या सब-के-सब अंगरेज ही होंगे । लिहाजा व्यावहारिक रूपमें कौंसिलमें १० फीजियन और भारतीय सदस्योंके विरुद्ध २१ अंगरेज होंगे, जब कि द्वीपमें फीजियनों और भारतीयोंकी सम्मिलित संख्याके मुकाबलेमें अंगरेजोंकी संख्या बराबर ही है ! यद्यपि नया विधान पुराने विधानसे कुछ अच्छा ज़रूर है—यानी पुराने विधानमें गैर-सरकारी अंगरेजोंकी संख्या भारतीयों और फीजियनों—प्रत्येकसे दूनी थी और नयेमें तीनों बराबर हैं—फिर भी न तो वह सन्तोषजनक है और न न्यायोचित । लेकिन यह आशा करना व्यर्थ भी है कि ब्रिटिश सरकार अपने मातहत गैर-अंगरेज जातियोंके साथ न्याय करके उन्हें अंगरेजोंके समान ही अधिकार दे ।

पोलैण्डके भारतीय कौंसुल

हमें यह जानकर प्रसन्नता हुई कि कलकत्तेके श्री राजेन्द्रसिंह सिंघी पोलैण्ड देशके स्थानीय कौंसुल नियुक्त हुए हैं । राजेन्द्रसिंहजी कलकत्तेके प्रसिद्ध व्यापारी श्री बहादुरसिंह सिंघीके पुत्र हैं, और स्वयं भी एक सफल व्यापारी हैं । श्री राजेन्द्रसिंहजी शायद सबसे पहले हिन्दी-भाषा-भाषी सज्जन हैं, जिन्हें भारतमें किसी विदेशी सरकारके राजदूत होनेका सम्मान प्राप्त हुआ है । उनकी इस नियुक्तिपर हम श्री राजेन्द्रसिंहजीको हार्दिक बधाई देते हैं ।

लाटोंके दौरे

हालमें भारतके वायसराय लार्ड लिनलिथगो दौरेपर निकले थे । वे बनारस भी गये थे । उनके आगमनके सम्बन्धमें सहयोगी 'आज' लिखता है—

“जिस नगरमें वायसराय या गवर्नर आते हैं, वहाँकी साधारण जनताका साधारण जीवन तक अस्त-व्यस्त हो जाता है । ऐसा ज्ञात होता है, मानो कोई नई विपत्ति आ पहुँची अथवा नये विजेताका सहसा आक्रमण हो गया । जिधर देखिये, उधर ही परेशानी दिखाई देती है । पुलिसवाले चौकने हैं, तो कहीं खुफिया पुलिसवालोंका दल घूम रहा है, तो किसीके घरपर सी० आई० डी० के सदस्यकी ड्यूटी बोल दी गई है । किसीका आना-जाना और बाहर निकलना कठिन हो गया है । किसीसे पूछा जाता है कि 'तुम किस समय कहाँ जाते हो', तो किसीसे कोई भलामानस खुफियावाला सहानुभूति प्रदर्शित करता हुआ प्रार्थना करता है कि 'आप अपने आने-जानेका समय बताकर हमारी कठिनाइयाँ कम कर दीजिए ।' रास्ते बन्द कर दिये जाते हैं, सड़कोंका गमनागमन रुक जाता है, पचास-पचास कदमकी दूरीपर ब्रिटिश राजके रक्तक पुलिसवालोंकी तैनाती देखकर साधारण जनताका हृदय काँप जाता है । आने-जानेवालोंको हर क्षण भय

लगा रहता है कि कोई कर्मचारी उनका अपमान न कर दे। कभी-कभी सन्देशमें बिना किसी अपराधमें दो-चार नागरिक जेलकी हवालातमें भी ठूस दिये जाते हैं और उस समय छोड़े जाते हैं, जब वायसराय या गवर्नर अपने पद-रजसे स्थान-विशेषकी भूमि पुनीत करके वापस लौट जाते हैं। अपने नगरकी इस असाधारण अवस्थाको देखकर त्रस्त जनता हर क्षण हृदयसे यही प्रार्थना करती रहती है कि 'वायसराय यदि आते हैं तो आवें, पर सकुशल वापस चले जायँ।' ”

वास्तवमें हमारे देशमें छोटे या बड़े लाटोंकी अवाई साधारण जनताके लिए बवाल-जानसे कम नहीं।

हमारे एक मित्रने जो कई वर्ष इंग्लैण्डमें रह चुके हैं, बतलाया कि उन्होंने एकसे अधिक बार भारतके भूतपूर्व गवर्नरोंको लन्दनमें ट्राम और टुअत्रीकी बसपर इधर-से-उधर आते-जाते और पाँव-पियादे सड़कोंपर भटकते हुए देखा था। न पुलिस थी, न फौज, न स्पेशल ट्रेन थी, न लाल बानात। जब वही व्यक्ति लन्दनमें इतनी सरलतासे, इतनी सादगीसे, आ-जा सकता है, तो भारतमें आते हो उसके लिए इतनी टीम-टाम, इतना धूम-धड़का, इतनी हलकानी-पेशानी क्यों की जाती है ?

शायद पुराने टाइपके ब्रिटिश अधिकारियों—ईस्ट इंडिया कम्पनीके जमानेके ऐंग्लो-इण्डियनों—के दिमागमें यह धारणा बैठ गई थी कि भारतवासियोंपर इस तरहकी टीम-टाम और धूम-धड़केसे रोत्र गालिव होता है, और उनमें अंगरेजोंके प्रति श्रद्धा उत्पन्न होती हैं। जान पड़ता है कि यह धारणा अभी तक मिटी नहीं। लेकिन मनोविज्ञानका थोड़ा भी ज्ञान रखनेवाले जानते हैं कि जिन लोगोंको इस तरहकी व्यर्थकी पेशानी और मुसीबत उठानी पड़ती है, उनके मनमें प्रीति और श्रद्धाके भाव कभी उत्पन्न नहीं हो सकते, उसके विपरीत हों तो हों।

कविवर मैथिलीशरण गुप्तकी जयन्ती

गत २१ जुलाईको हिन्दीके और देशके राष्ट्रीय कवि श्री मैथिलीशरण गुप्त पूरे पचास वर्षके हुए। इस अवसरपर देशके अनेक स्थानोंमें गुप्तजीकी स्वर्ण-जयन्ती मनाई गई थी। इस शुभ अवसरपर हम गुप्तजीका अभिनन्दन करते हुए उनके दीर्घ जीवन और स्वास्थ्यकी मंगल-कामना करते हैं।

इस अवसरपर गुप्तजीने जो वक्तव्य निकाला है, उसमें उन्होंने कहा है—

“मैं आत्मावसाद क्यों करूँ ? मैंने उस जन्ममें कुछ पुण्य किया ही होगा, जिससे सर्वथा अयोग्य होते हुए भी, आज मैं उस यशका भागी हो रहा हूँ, जो आप मुझे दे रहे हैं।

इस सम्मानको मैं सौभाग्य मानता हूँ ; परन्तु वह सौभाग्य ऐसा है, जो आपकी उदार सहायताकी गोदमें पलकर बढ़ा हुआ है। मेरी कवित्वशक्ति तो इसीसे प्रकट है कि मैं अपनी कृतज्ञता प्रकट करनेके लिए एक शब्द भी ढूँढ़े नहीं पाता।

सुग्गा इधर-उधर सुन-सुनाकर जो दो सार्थक शब्द बोल जाता है, वह उसकी नहीं, उसको प्रभुकी या प्रकृतिकी एक देन है। इसके लिए वह अन्य पक्षियोंके निकट अपना कोई विशेषाधिकार नहीं जना सकता। तथापि मनुष्यका कीतूहल आज भी शान्त नहीं हुआ और आज भी हम लोग सुग्गे पालते जाते हैं।

हमारे ये शुकदेव चाहे अपनी कथाका अभिप्राय स्वयं न समझें ; परन्तु हम लोग तो सदा अर्थकी ही खोजमें रहते हैं। इसीलिए हम पपीहेकी बोलीमें अपनी ही, प्रियकी पुकार सुन लेते हैं।

मैं समझता हूँ, हम लोग अपनी अभिव्यक्तिके लिए ही निरन्तर प्रयत्नशील रहते हैं और जहाँ कहीं हम अपनेको अभिव्यक्त हुआ पाते हैं, वहीं हमें आनन्दकी अनुभूति होती है।

नहीं जानता, मैं अपनी रचनाओंमें इस रसानुभूतिके योग्य कितनी सामग्री एकत्र कर सका हूँ। यह अवश्य है कि मेरे लिए विषय भी नये थे, भाषा भी नई थी और अपने युगके आचार्यका अनुग्रह मुझपर था। सम्भवतः इसीलिए मुझे आप तक पहुँचनेमें थोड़ी बहुत सफलता मिल गई। कवित्व तो तब भी दूर था, इसलिए भाषापर मैंने कुछ विशेष ध्यान दिया। यह स्वाभाविक ही था।

परन्तु अन्ततः वाह्य परिस्थितियोंने नहीं, अन्तः परिस्थितियोंने ही मेरी सच्ची सहायता की। सच पूछिये तो विद्या-बुद्धिके अभावमें, मेरी अनुभूतियोंने ही मुझे ठोंक-पीटकर 'कविराज' बना दिया। और यद्यपि वेसी अनुभूतियोंकी कामना मैं किसीके लिए भी नहीं कर सकता; तथापि मेरे लिए तो अन्तमें, वे प्रभुका दान ही सिद्ध हुई हैं। जब आप मेरी किसी रचनाको कुछ महत्त्व देते हैं, तब मैं यही समझता हूँ कि आप मुझपर अपनी सहानुभूति ही प्रकट करते हैं। अतएव यथार्थतः मैंने आपको कुछ नहीं दिया, उल्टा आपसे बहुत-कुछ पाया है। और, यदि मैं यह मानूँ कि हिन्दीकी कविताके लिए मैंने कुछ किया है, तो यह मेरी धृष्टता ही नहीं, कृतघ्नता भी होगी। स्वयं कविताने ही मेरे लिए इतना किया है कि उसने मेरे शोकको भी रसमें—आनन्दमें—परिणत कर दिया।

परन्तु अब मैं यातयाम हूँ। आपकी महत्ताके यही अनुरूप है कि जाते हुएको आप आदर-सत्कार पूर्वक ही जाने दें। ऐसे समाजमें कौन फिर लौटनेकी इच्छा न करेगा।

यह संयोगकी ही बात थी जो मैं उस समय आ गया, जब हिन्दीके नवीन कविता-मन्दिरकी नींव डाली जा रही थी। मैंने भी दुर्मट उठाकर थोड़ी-सी कंकरीट कूट दी। और मैं क्या कर सकता था। मन्दिर तो अब-बन रहा है, और सबे सम्मानके अधिकारी हैं, हमारे वे शिल्पी, जो कौशल पूर्वक उसमें अपनी कलाका नित्य नया परिचय दे रहे हैं। मुझे विश्वास है,

वह मन्दिर विश्व मानवके लिए वन्द्य
अनुग्रहीत मैं, यद्यपि अब भी
करना है थोड़ा पथ पार,
दिन ढल गया, न दौड़ गिरूँ मैं,
रहे आप सबका आभार।
यह सुयोग दुर्लभ, पर सुनिये,
निज भविष्य है अधिक उदार,
जो पीछे आ रहे, उन्हींका
मैं आगेका जय-जयकार।”

गुप्तजीका वक्तव्य उनके शील और विनम्रताका प्रतिबिम्ब है।

पत्र सम्पादक और पत्रोंके मालिक

कराचीसे 'सिन्ध ऑब्ज़र्वर' नामक एक अंगरेजी दैनिक पत्र निकलता है। गत मास इस पत्रके मालिकोंने इसके सम्पादक श्री के० पुन्नियाको इस विनापर अपने पदसे बर्खास्त कर दिया कि उन्होंने देशीराज्य-प्रजा-परिषदके अधिवेशनमें पं० जवाहरलाल नेहरूके कराची आगमनके समाचार 'ऑब्ज़र्वर'में प्रकाशित किये थे। कराचीकी २१ जुलाईकी खबर है :—

“राष्ट्रपति पंडित जवाहरलाल नेहरूके सिन्धमें आने, देशीराज्य-प्रजा-परिषद और कांग्रेस समाजवादी सम्मेलनकी आयोजना करनेके सम्बन्धमें 'सिन्ध ऑब्ज़र्वर' नामक स्थानीय समाचारपत्रोंके संचालकोंने उक्त पत्रके सम्पादक और 'सिन्ध-पत्रकार-संस्था'के अध्यक्ष श्री के० पुन्नियाके पास अपने स्वीकृत प्रस्ताव भेजकर उन्हें आदेश दिया कि श्री नेहरूके विषयके सारे समाचारोंको—उनके दिये हुए इंटरव्यू, उनके भाषणों या उनके चित्रोंको—'सिन्ध ऑब्ज़र्वर' में न प्रकाशित किया जाय। केवल नागरिकोंकी ओरसे दिये गये मानपत्र और उसके उत्तरके कुछ अंश प्रकाशित किये जायें। श्री पुन्नियाने, जो पिछले सोलह वर्षसे 'सिन्ध ऑब्ज़र्वर'का सम्पादन कर रहे हैं और जिन्हें समाचारपत्र-सम्बन्धी २६ वर्षका अनुभव है, ऐसे आदेशोंको पालन करनेसे इनकार कर दिया और कहा कि मैं अपने सम्पादन-कार्यमें इस

प्रकारका हस्तक्षेप सहन नहीं कर सकता। उन्होंने संचालक बोर्डको एक पत्र लिखा, जिसमें बोर्डके सभापति श्री फकीरजी कावसजीका—जिन्होंने टेलीफोन और पत्र द्वारा तथा मौखिक आदेश दिया था कि पत्रमें क्या प्रकाशित होना चाहिए और क्या नहीं—विरोध किया। उन्होंने यह भी लिखा था कि फकीरजीसे मुझसे कोई सम्बन्ध नहीं है और बोर्डसे प्रार्थना है कि उन्हें मेरे कार्यमें अनावश्यक हस्तक्षेप करनेसे रोका जाय। बोर्डकी आज्ञाकी अवहेलना करके सम्पादकने गविवारके अंकमें श्री जवाहरलाल सम्बन्धी २५ कालम प्रकाशित किये और दूसरे ही दिन, सोमवारको, बोर्डने उन्हें सम्पादकीसे अलग कर दिया और कहा कि उक्त पचीस कालमके लिए सम्पादकको अपनी तनख्वाहमें से विज्ञापनकी दरपर रुपये चुकाने होंगे।”

‘सिन्धु ऑब्ज़र्वर’ के संचालकोंके—विशेषकर संचालक-बोर्डके चेयरमैन मिस्टर फकीरजी कावसजीके—इस कार्यकी निन्दा कराचीमें ही नहीं, समूचे देशमें हो रही है। उनकी इस कार्यवाहीने सम्पादकोंकी स्वतन्त्रताका महत्वपूर्ण प्रश्न हमारे सामने खड़ा कर दिया। पंडित जवाहरलालजीके शब्दोंमें यह प्रश्न केवल स्थानीय प्रश्न ही नहीं है, यह समूचे देशका प्रश्न है और सम्पादकोंकी नैतिकता और उत्तरदायित्वका प्रश्न है। श्रीयुत पुन्नियाने जिस साहसका परिचय दिया है, उसकी हम प्रशंसा करते हैं; लेकिन देशके तमाम समाचारपत्रों, पत्र-सम्पादकों और पत्रकार-संस्थाओंका कर्तव्य है कि वे इस विषयको यों ही न छोड़ दें। वे इसे उस सीमा तक पहुँचायें, जहाँ दूसरे पत्र-संचालकोंको इस तरहकी अनुचित कार्यवाही करनेका साहस न हो।

करसियांगके सार्वजनिक वाचनालयका वार्षिकोत्सव

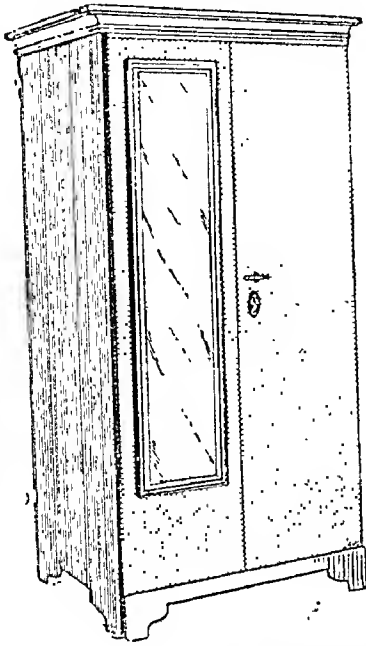
गत वर्ष हम करसियांगके मारवाड़ी सार्वजनिक पुस्तकालयके सम्बन्धमें कुछ लिख चुके हैं। हमें यह जानकारी प्रसन्नता हुई कि हिन्दी-भाषा-भाषी क्षेत्रसे

बहुत दूर, हिमालयके अज्ञात पूर्वीय कोनेमें, पहाड़ी और बंगाली जनताके बीच, यह सार्वजनिक पुस्तकालय हिन्दीके प्रचारका काम तत्परता और लगनके साथ कर रहा है। इसके लिए इसके संस्थापक, मन्त्री और कार्यकर्तागण बधाईके पात्र हैं।

पुस्तकालयके वार्षिक विवरणसे ज्ञात होता है कि पुस्तकालयमें २३५० पुस्तकें हैं, और तीन दर्जनसे अधिक दैनिक, साप्ताहिक, मासिक और सामयिक पत्र आते हैं। पुस्तकोंकी संख्या इससे कहीं ज्यादा बढ़ गई थी; लेकिन पुस्तकालयके मन्त्री महोदयने समझदारीसे काम लेकर गद्दी और कुरुचि उत्पन्न करनेवाली सारी पुस्तकोंको छाँटकर बाहर कर दिया और केवल अच्छी पुस्तकोंको ही रहने दिया। हम उनके इस कार्यकी प्रशंसा करते हैं, क्योंकि हमारी समझमें पाठकोंको—खासकर ऐसे स्थानोंके पाठकोंको, जो हिन्दी-भाषी क्षेत्रसे दूर अन्य भाषा-भाषी लोगोंके बीचमें रहते हैं—जो मानसिक भोजन मिलना चाहिए, वह पुष्टिकर और उपादेय होना चाहिए। पुस्तकालयका वार्षिक अधिवेशन बंगालके सर्जन-जनरल द्वारकाप्रसाद गोयलके सभापतित्वमें हुआ था। पुस्तकालयका उद्देश हिन्दी-प्रचारके अतिरिक्त अपने क्षेत्रमें बसनेवाली विभिन्न जातियों और लोगोंमें प्रेम और सहानुभूति उत्पन्न करना भी है।

इसके लिए अन्य उपायोंके साथ-साथ पुस्तकालयके संचालक अपने वार्षिकोत्सवपर हिन्दीके दो-एक अच्छे साहित्यिकोंको बुलाकर उनके व्याख्यान कराते हैं। इस वर्ष पुस्तकालयके वार्षिकोत्सवपर डाक्टर हेमचन्द्र जोशी और श्री सुदर्शनजीके व्याख्यान हुए थे। इससे अहिन्दी-भाषा-भाषियोंको हिन्दीके आधुनिक साहित्य-संस्थाओंके सम्पर्कमें आने और उनके दृष्टिकोणको समझनेका अवसर मिलता है। क्या ही अच्छा हो, यदि बंगालके अन्य नगरोंमें बसनेवाले हिन्दी-भाषा-भाषी युवक करसियांगके मारवाड़ी सार्वजनिक पुस्तकालयका अनुकरण करें।

आपको इसकी आवश्यकता है



गोदरेज

की

तेहरी पेटण्टकी "चैनल ग्रिप" वाली

फौलादी अलमारी

इसके दरवाजोंकी नालीदार पकड़ (Channel Grip) इतनी मजबूत और सुरक्षित है कि चोर उसे नहीं खोल सकते और न कीड़े-मकोड़े, धूल अथवा आगकी लपटें अन्दर घुस सकती हैं।

गोदरेजकी पेटण्ट फौलादी अलमारी

घर और आफिसके लिए ये आदर्शनीय अलमारी हैं। आपके बहुमूल्य वस्त्रों, अन्य कीमती वस्तुओं तथा आवश्यक कागजों और पुस्तकोंकी.....

(अ) चारोंसे

(ब) दीमक तथा कीड़े-मकोड़ोंसे

(स) धूल और आगकी लपटोंसे

देखनेमें सुन्दर रक्षा करेंगी !

दामोंमें लकड़ीकी अलमारियोंसे अधिक नहीं है।

गोदरेज एण्ड बॉयस मैनु० कं०, लिमिटेड

१०२, क्लाइव स्ट्रीट, कलकत्ता ।

फोन :—कलकत्ता १४०७

हेडआफिस और कारखाना :—लालबाग, परेल घाटवई] [शाखायें :—कलकत्ता, दिल्ली, मद्रास, हैदराबाद दक्षिण

एजेन्सी :—अहमदाबाद, करांची, लखनऊ, हैदराबाद (डेक्कन) और बंगलोर ।

‘विशाल-भारत’ के नियम

विज्ञापनके रेट

एक बारकी

छपाई

१। ‘विशाल-भारत’ प्रत्येक अंगरेजी महीनेके प्रारम्भमें प्रकाशित होता है।

२। ‘विशाल-भारत’का वार्षिक मूल्य या सालाना चन्दा ६) है रुपया और छ-साही चन्दा ३) सवा तीन रुपया है। वी० पी० से ॥) अधिक और विलसे ॥) अधिक, एक अंकका ॥-) या १३ शिलिंग।

विदेशोंके लिए वार्षिक मूल्य ६) या १४ चौदह शिलिंग है।

३। ग्राहकोंको चाहिए कि वे जनवरी या जुलाईसे ग्राहक बनें; वेसे वे चाहे जिस महीनेसे ग्राहक बन सकते हैं।

४। यदि किसी महीनेका अंक किसी ग्राहकको उस महीनेके अन्त तक न मिले, तो उन्हें अपने यहाँके डाकखानेसे पूछना करके हमें लिखना चाहिए। अगले महीनेकी १ ली तारीख तक शिकायत करनेवालोंको वह अंक दुबारा भेज दिया जायगा, परन्तु उसके बाद फिर हर अंकके लिए ॥-) आना मूल्य लिया जायगा।

५। प्रत्येक ग्राहकसे अनुरोध है कि चिट्ठी लिखते समय या मनीआर्डर भेजते समय अपना ‘ग्राहक-नम्बर’ अवश्य लिखा करें।

७। उत्तर पानेके लिए जवाबी कार्ड या स्टाम्प अवश्य भेजना चाहिए; अन्यथा उनके लिखे अनुसार सिर्फ कार्रवाई कर दी जायगी, उत्तर नहीं दिया जा सकेगा।

मैनेजर—‘विशाल-भारत’ कार्यालय,

१२०१२, अपर सरकूलर रोड, कलकत्ता।

साधारण पृष्ठ—	१ पेज	२०)
	२ पेज या १ कालम	११)
	३ पेज या ३ कालम	६)
	४ पेज या ४ कालम	४)

कवरके द्वितीय पृष्ठके सामनेका पृष्ठ	२७)
कवरके तृतीय पृष्ठके सामनेका पृष्ठ	२५)
अन्तिम पाठ्य पृष्ठके सामनेका पृष्ठ	४५)
विषय-सूचीके पासका अथवा सामनेका पृष्ठ	२५)
मुख्य चित्रके सामनेका पृष्ठ	४०)
कवरका द्वितीय पृष्ठ	३२)
कवरका तृतीय पृष्ठ	३०)
कवरका चतुर्थ पृष्ठ (दुरंगा या तिरंगा)	१ पृष्ठ	...	६०)

विशेष सूचना—(१) एक साल तक विज्ञापन छपानेका कन्ट्रैक्ट करनेवाले व्यापारियोंके लिए विशेष दर होगी, जो पत्र-व्यवहार करके ते होगी। (२) हर हालतमें एक मासकी विज्ञापन-छपाई पेशगी ली जायगी। (३) अश्लील और हानिकर विज्ञापन न लिये जायेंगे।

पता :—‘विशाल भारत’ कार्यालय,

१२०१२, अपर सरकूलर रोड, कलकत्ता।

एम० बी० सरकार एगड सन्स

स्वर्गीय बी० सरकार के पुत्र और पौत्र

गिन्नी सोनेके गहने और चांदीके वर्तनों के एकमात्र निर्माता और बिकेता

असली गिन्नी सोनेके बढ़ियासे बढ़िया गहने और जवाहरात तथा चाँदीके उम्दा-से-उम्दा वर्तन—देखनेमें खूबसूरत, चलनेमें टिकाऊ, मालमें खरे—हमेशा विक्रीके लिए तैयार रहते हैं। आर्डर देनेपर हम हरएक किस्मका मनचाहा गहना तैयार कर देते हैं। कारीगरीको देखते हुए हमारी मजदूरी बहुत सस्ती है। हम अपने यहाँके तैयार गहनोंको वापस लेकर गिन्नी सोनेको चालू दरसे पूरा मूल्य वापस कर देते हैं। बाहरके आर्डर वी० पी० द्वारा सावधानीसे भेजे जाते हैं। एक बार ज़रूर परीक्षा कीजिये। सूचीपत्र मुफ्त भेजा जाता है।

पता—१२४, १२४।१, बहूबाजार स्ट्रीट कलकत्ता

[फोन—३०५० १७६१] (बहूबाजार और एमहर्स्ट स्ट्रीटकी मोड़) [टलीग्राफ—विलियम्स]

विशाल भारत

“ सत्यम् शिवम् सुन्दरम् ”

“ नाथमात्मा बलहीनेन लभ्यः ”

भाग १८, अंक ३]

आश्विन १९६३ : : सितम्बर १९६६

[पूर्ण-अंक १०५.

कलापी

श्री आरसीप्रसाद सिंह

आज पावस-घन घिरे फिर नृत्य कर मेरे कलापी !
सरस वर्षासे विगत रस खिल उठे वन-वाग-वापी ।
उमड़ आई अम्र-पथमें पुनः श्यामल जलद-माला ;
धो चली जल-धार युग-युगकी धराकी विरह-ज्वाला ।
व्योमने सुर-चापसे किसके हृदयकी परिधि मापी ;
आज पावस-घन घिरे फिर नृत्य कर मेरे कलापी !

कूकती सहकार-वनमें कोकिला मधुमासवाली ;
उड़ गई र्यों ही क्षितिजके पाससे कोई मराली ।
आज कलरव कर रहा नभमें मिलन-व्याकुल बलाका ;
यह जगतके मंचपर ज्यों पंचशरकी जय-पताका ।
डालियाँ भर गन्धसे उन्मद बना पवमान-माली ;
कूकती सहकार-वनमें कोकिला ; मधुमासवाली ।

ध्यान किस अलका-परीका कर रहा है चित्त चंचल ?
किस सुहासिनिने दिया फैला गगनमें नील अंचल ?
स्वर्गसे पय-पात्र ढलका कौन-सी सुर-किशरीका ?
गिरि-शिखरपर हर्म्य-तलपर स्नेह यह उमड़ा किसीका !
खुल पड़ा किस सुन्दरीका आज सहसा कृष्ण-कुन्तल ?
ध्यान किस अलका-परीका कर रहा है चित्त चंचल ?

किस वियोगीके दृगोंकी यह अनाविल अश्रु-धारा ;
तोड़ती मेरे हृदयकी चिर-कठिन पापाण-कारा ?
पड़ गये झूले कदम्बोंमें जगे नव गीत-वन्दन ;
कहण-स्वरसे हाथ फिर भी कर रहा यह कौन क्रन्दन ?
आज है निर्वासमें किस यक्षिणीका प्राण-प्यारा ;
किस वियोगीके दृगोंकी यह अनाविल अश्रु-धारा ?

छा रहे मेरे गगनमें भी सजीले श्याम जलधर !
आज रिमझिम बरसती हैं बूँदियाँ सुकुमार-सुन्दर ।
नाच रे मेरे शिखी तू प्रेमका सन्देश आया ;
स्पर्श यह शीतल किसीका, वादलोंकी क्षिप्र छाया ।
नाच ले उर-कुंजमें भावुक, चपल-गति-मत्त पल-भर ;
छा रहे मेरे गगनमें भी सजीले श्याम जलधर !

हाँ, मनोवन मध्य मेरे विरहिणी यह कौन रोती ;
खोजती आश्रय दृगोंमें कौन यह कातर कपोती ?
फूट निकली विधुर पीड़ा आज श्यामाके हृदयकी ;
वासना उमड़ी युगोंकी मंजु थाती-नी प्रणयकी ।
मधुर-स्मृतिके तारमें यह आज क्या संकार होती ?
हाँ, मनोवन मध्य मेरे विरहिणी यह कौन रोती ?

प्रिय, कहाँ तेरे लिए मैं मधुर पिकका कंठ पाऊँ ;
विश्वका उपहास सहकर कौन-सा कल-गान गाऊँ ?
आज तेरे ही स्वरोंमें व्यक्त होगी विश्व-वाणी ;
कर्ण-कटु ध्वनि आज तेरी ही बनेगी राज-रानी ।
हाय, किस युगकी कहानी मैं तुझे रो-रो सुनाऊँ ;
प्रिय, कहाँ तेरे लिए मैं मधुर पिकका कंठ पाऊँ ?

प्रेम आया था किसी दिन नाशका सन्देश लेकर ;
विश्वकी अनुभूति ली मैंने सकल भव-भूति देकर ।
चीरता विरही हृदय यह कह गया पावस-प्रभंजन—
'अश्रु ही इतिहास जगका, वेदना ही विश्व-जीवन ।'
उदधि भंमत्कुल, तरी लघु, पार जाना कठिन खेकर ;
प्रेम आया था किसी दिन नाशका सन्देश लेकर !

हाय, नूतन हो उठी फिर माधवीकी चिर-दुराशा !
चातकीके दग्ध प्राणोंमें जगी स्वाती - पिपासा !
द्वारसे किसके फिरा फिर आज असफल प्यार मेरा ?
गूँजता भूसे गगन तक विकल हाहाकार मेरा ।
हो गया पल्लव-रहित दुर्भाग्यसे अन्तर - जवासा ;
हाय, नूतन हो उठी फिर माधवीकी चिर-दुराशा !

सो रहा संसार, मेरे जागते पर प्राण पापी !
कम्बु-ध्वनि करता गगनमें कौन यह दुर्जय सुरापी ?
चकित कर जाती निमिषमें चमक चपला तड़ित-वाला ;
तिर रहा लोचन-सलिलमें रूप यह किसका निराला ?
शान्तिके आवासमें यह कौन-सी उत्क्रान्ति व्यापी ?
सो रहा संसार, मेरे जागते पर प्राण पापी !

चिर-दिनोंपर आज आया है यहाँ पावस-प्रवासी ;
क्या कहूँ स्वागत भला इस शून्य मन्दिरमें उदासी ?
सांध्य-दीपक आज कोई द्वारपर रख दे जलाकर ;
कौन अपनेको न माने धन्य ऐसा अतिथि पाकर ?
धूलिमय पंकिल धरापर उतर तो अम्बर-निवासी ;
चिर-दिनोंपर आज आया है यहाँ पावस-प्रवासी !

देख ले वनराजि तेरी आज चंचल नृत्य-लीला ;
भंग हो सुख-स्वप्न, जीवन-देवताकी निशि-ग्रमीला ।
आ गया मैं भी प्रणयके राजमें प्रिय आज रोने ;
वेदना मेरी अमाके तिमिरसे लिख दे सलोने !
आँसुओंसे आज शाद्वलका हृदय हो जाय गोला ;
देख ले वनराजि तेरी लास-चंचल नृत्य-लीला !

नाच तू मेरे शिखी, गिरि-मल्लिका मुरली बजाती ;
काकली सुन कामिनीकी किंकिणीकी ध्वनि लजाती ।
भूमि नाचे, व्योम नाचे, नाच लें नक्षत्र-तारे ;
आज तेरे संग नाचें चर-अचर जग-जीव सारे ।
एक क्षण लूँ नाच मैं भी दिग्वधू मल्लार गाती ;
नाच तू मेरे शिखी, गिरि-मल्लिका मुरली बजाती ।



हमारे पिंजरबद्ध साहित्यिक

श्रीमती महादेवी वर्मा, पम० ए०

जिसने अपने व्यक्तित्वको तिल-तिल मिटाकर पुरुषके गौरव-मन्दिरकी नींव डाली, अपनी स्वच्छन्दता दानकर उसे स्वतन्त्रताका मूल्य आँकना सिखाया, अपने पूत स्नेह-जलसे उसके दुर्गम जीवन-पथको स्निग्ध बनाया और अपने जीवनके सारे माधुर्यसे उसकी परवश लौकिकताको दिव्य कर दिया, उसके प्रति पुरुषके अनुराग और उपेक्षाका इतिहास यदि जानना हो, तो सवेरे आदरसे देवताके मस्तकपर रखी हुई और संध्या समय धूलमें फेंकी हुई फूलोंकी मालाके समान प्रतिक्षण चरम आदर और चरम उपेक्षाके दोनों कूलोंको छूकर बहनेवाले स्त्री-जीवनकी कहानी सुन लेना पर्याप्त होगा। उसका जीवन सदासे सापेक्ष है, निरपेक्ष नहीं, क्योंकि संसार अपनी आवश्यकताका मूल्य आँककर ही उसका मूल्य निर्धारित करनेमें विश्वास करता आ रहा है।

स्त्रीको आदर देनेके लिए ही पुरुषने अपने सौन्दर्य, शक्ति और बुद्धिके आदर्शोंको नारी-रूप दिया, यह तो सुनी हुई कथा है; परन्तु उसकी आजकी आपत्तीका सार तो यह है कि उसकी योग्यताकी चर्चा भी पुरुषके असीम कौतुकका कारण बने बिना नहीं रहती।

मनुष्यका बालक जब पहले-पहल बोलता है, तब उसे सुनकर अपनी प्रतीक्षा सफल होती देख हमें प्रसन्नता होती है; परन्तु जब हमारी सारिका मनुष्यकी वाणीमें हमें पुकार बैठती है, तब हम जिस कुतूहलका अनुभव करने लगते हैं, वह पहली प्रसन्नतासे भिन्न है। बालकके बोलनेका तो हमें उसकी अवाक अवस्थामें भी विश्वास रहता है, अतः अपने विश्वासके अनुरूप परिणाम देखकर विस्मय होना सम्भव नहीं; परन्तु सारिकामें मनुष्यका साधारण गुण भी आश्चर्यका कारण हो उठता है, असाधारण विशेषता जान पड़ता है। जीवनके साधारण क्षेत्रोंको छोड़कर स्त्री जब साहित्य या अन्य महत्त्वपूर्ण क्षेत्रोंमें प्रवेश करती है, तो पुरुष-समाजका ऐसा ही कुतूहल उसका

स्वागत करने आता है। यदि कुतूहल नहीं होता, तो एक अनिर्वचनीय अविश्वास उसके रिक्त स्थानको इस भाँति भर देता है कि किसी अन्य भावके प्रवेशके लिए मार्ग ही नहीं रहता। नारीकी विद्या-बुद्धि-विषयक क्षमताके सम्बन्धमें पुरुषका ऐसा भाव, सम्भव है, सदासे रहा हो, अन्यथा उसके संस्कार इतने गहरे न होते। अवश्य ही प्राचीनतम कालमें भी विदुषियोंके कुछ ऐसे नाम मिल जाते हैं, जिन्होंने सभाओंमें अपनी योग्यताका परिचय दिया था; परन्तु वे भी सभामें उपस्थित विद्वानोंको चमकृत ही कर सकी होंगी। सबके आश्चर्य-विस्फारित नेत्रोंका भाव कह रहा होगा—‘इतनी विद्वत्ता स्त्रीमें!’ उस समयके साहित्यमें जिन इनी-गिनी महिलाओंके नाम आते हैं, सम्भव है, पुरुषने उन्हें अन्य साधारण स्त्रियोंकी जड़ताका अपवाद समझा हो, जिस प्रकार आजकलकी दो-एक विदुषियाँ स्त्री-जातिकी व्यापक मूर्खताका अपवाद मानी जाती हैं। ठीक भी है—जब तारे अधिक चमकते हैं, तब उसके चारों ओरका अन्धकार क्या हमें अधिक गहन नहीं जान पड़ता!

संस्कृतका विकसित नाटक-साहित्य भी मानो यही प्रमाणित करना चाहता है कि कुछ ऋषि-पत्नियों और देवियोंके अतिरिक्त स्त्री-जाति प्राकृतमें तुतलाना ही जानती थी। जान पड़ता है, ऋषिके तप-प्रभाव और देवताकी अलौकिकताने ही कुछ नारियोंको देववाणीके उच्चारणकी क्षमता प्रदान की; किन्तु अन्य सामान्य पुरुष स्वयं उस विशुद्ध भाषाको जानकर भी अपनी अर्धगिनीका समझने-मात्रकी शक्ति दे सका। चाहे गृह-देवियोंकी वाग्मधुरताकी रक्षाके लिए, चाहे भाषाकी पवित्रताकी रक्षाके लिए और चाहे किसी अन्य प्राकृतिक कारणवश ऐसा सम्भव हो सका; परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि इस व्यवहार या विधानसे स्त्री या उसके समकक्ष रखे गये शूद्रकी कोई क्षमता नहीं प्रकट होती।

प्राचीन हिन्दी-काव्यका जन्म तो उस समय हुआ, जब

लुट-मार करने-योग्य वस्तुओंकी श्रेणीमें स्त्रीको बैठाकर कभी उन्नत कही जानेवाली जाति एक नये महाभारतकी पुनरावृत्ति करके अपना आदिम इतिहास दुहरा रही थी। तब स्त्री बेचारीके लिए अपना ही जीवन भार हो रहा होगा और किसी ओर दृष्टिपात करनेका अवसर कैसे मिलता ! परन्तु भक्ति-युगकी उज्ज्वल तारिका मीराका गीतमय और कृष्ण-निवेदित जीवन भी कितना उपेक्षणीय रहा, इसके अनुमानके लिए विप-भरे प्यालेकी स्मृति ही यथेष्ट होगी।

आज उस गीत-साहित्यकी साम्राज्ञीके मधुर पद हमें जिस परिमाणमें सुधा दे रहे हैं, उसी परिमाणमें या उससे कुछ अधिक उस समयके समाजने उसके जीवनको हलाहलके घूँट दिये थे, यह न भूलना चाहिए। उसने यदि अपने अमर स्नेहसे विपको अमृत बना डाला, तो इससे मनुष्यके प्रति मनुष्यकी अकृतज्ञ निष्ठुरताकी मात्रा घट नहीं जाती। उस राजप्रासादकी कोकिलाको किस प्रकार भटक-भटककर अन्तमें कहाँ सदाके लिए अपनी आँखें मूँद लेनी पड़ीं, यह कहण कहानी न लिखी गई है, न लिखी जायगी। हमारी जाति स्त्रीके तुच्छ जीवनको चूर-चूरकर उसीकी धूलसे देवीकी प्रतिमा गढ़ लेनेमें सदासे सिद्धहस्त रही है और अब भी रहना चाहती है। जीनेमें असमर्थ और मृत्युकी यन्त्रणासे छटपटाते हुए रोगीको जैसे निद्रा लानेवाली औषधि ही दी जाती है, उसी प्रकार सुप्त जातिकी वेदना कम करनेके लिए रीति-युग विलासकी मदिरा लाया, फलतः वह युग इतना स्त्रीमय हो उठा कि स्त्रीको भी पुरुषके भाव दुहराने पड़े। प्रायः महिलाएँ संसारको दृष्टिसे दूर अन्तःपुरके कृत्रिम वातावरणमें इस प्रकार वन्दिनी रहीं कि उनके लिए मधुमास और पतम्बर, आँधी और शान्ति, प्रकाश और अन्धकार तथा जीवन और मृत्यु सब एकरूप हो गये। यदि कभी उनके स्वरमें पुरुष-समाजके भावोंकी प्रतिध्वनि सुनाई पड़ गई, तो बाह्य संसारने उसका बैसा ही कौतुकपूर्ण अभिनन्दन किया, जैसा वह अपनी पालित और पिजरवद्ध सारिकाकी वाणीका करता था।

हमारा वर्तमान युग भी स्त्रीके लिए पुराने अभिशापके साथ

ही नया वरदान ला सका है। स्त्रीके हृदयमें एकाएक जग उठनेवाला विद्रोह नवीन है ; परन्तु उसे चारों ओरसे घेर रखनेवाली परिस्थितियाँ उसकी शक्तियोंके प्रति औरोंका अविश्वास और कुतूहल प्राचीन ही कहे जायँगे।

युगोंसे स्त्री अपने गृहकी संकीर्ण परिधिसे बाहर न आ सकी। यदि उसने अपनी मृत्युसे स्पर्धा करनेवाले जीवनके युगके समान लगनेवाले क्षण काव्य या किसी अन्य कलासे सरस बनाये, तो उनको यदाकदा प्रकाशके दर्शन भी हो गये ; परन्तु उस कलाकारको बाह्य-संसारसे छिपा ही रहना पड़ा। अतः सबने आधी कल्पना और आधी भावुकता मिलाकर उसकी एक विचित्र प्रतिमा गढ़ डाली, जिसमें जीवनकी वास्तविकताका एक प्रकारसे अभाव था। वहाँ इसी प्रकार करते-करते वह कल्पना-मूर्ति उनके निकट इतनी परिचित हो उठी कि अब उन संस्कारोंपर दूसरा रंग चढ़ना असम्भव नहीं, तो कठिन अवश्य जान पड़ता है। घने पत्तोंमें छिपी हुई कोकिलाकी कल्पना इतनी सुनहली होती है कि उसे साक्षात् एक अकिंचन चिड़ियाके रूपमें देखना हमें एक प्रकारका मानसिक कष्ट-सा देने लगता है।

ऐसी ही मनोदशामें जब नवीन साहित्य-युगकी स्त्री उस पुरानी धूपछाँही यवनिकाको समेटकर अपने पीड़ित और कहण मानवी रूपमें बाहर आ खड़ी हुई, तो पुरुष-समाज किंकर्तव्य-विमूढ़-सा हो उठा। क्या यही उसकी निर्दोष कल्पना-मूर्तिके भीतर छिपा सदोष सत्य है, यह प्रश्न आज तक उससे हल नहीं हो पाया, इसीसे कभी वह उस देवत्व और मानवताके संघातको कौतुकसे देखता है और कभी अविश्वाससे। कभी उसे देवताकी तथा निर्जीव मनुष्यकी त्रुटियों और भूख-प्याससे रहित प्रतिमाके सिंहासनपर प्रतिष्ठितकर उसकी अलौकिकताकी परीक्षा लेता है और कभी उसके गन्तव्य मार्गमें शिलाएँ रख-रखकर उसकी दुर्बलता प्रमाणित करना चाहता है। आजका पुरुष भूलकर भी बाहर स्त्रीको उसी सहानुभूति, आदर और सहज-भावसे नहीं देख पाता, जिससे वह गृहकी सीमामें उसके सुखके प्रयत्नमें लगी हुई माता या बहनको देखता है।

हिन्दी-संसारमें साहित्यिक बन्धुओंने अपनी सहयोगिनी

वहनोंके लिए जिस भ्रान्ति और कुत्साकी वैतरिणीकी सृष्टि कर दी है, उसका वर्तमान तथा आनेवाले युगमें कौन-सा उपयोग होगा, यह तो वे ही जानें ; परन्तु इतना तो सभी समझ सकते हैं कि उसका उस स्वर्गसे कोई सम्बन्ध नहीं हो सकता, जो हमारे साधनोंका साथ है । अवश्य ही उन्हें ऐसा बना देनेमें परिस्थितियोंका हाथ है ; परन्तु यदि वे कलाके सच्चे आराधक हैं, नवीन और उज्ज्वल भविष्यके विधायक हैं, तो उन्हें अपनी परिस्थितियोंसे ऊपर उठना ही होगा, अपने लक्ष्य और उस तक पहुँचनेकी कठिनाइयोंकी विवेचना कर ही लेनी होगी । स्त्री उनके बालकपनकी रंगीन परोंवाली तितली नहीं, जिसके पंख नोचनेकी कामनासे उनका आहार-निद्रा भूलकर घूमते फिरना बाल-सुलभ चपलता समझकर क्षम्य माना जाता था ।

प्रत्येक क्षेत्रके समान साहित्यके क्षेत्रमें स्त्री इतनी जाग्रत हो चुकी है कि उसे सहयोगिनीके रूपमें सहज-भावसे स्वीकार कर लेना ही सामंजस्यपूर्ण सुन्दरतर भविष्यका अग्रदूत होगा । युगोंसे अन्धकारकी बन्दिनी रहनेके कारण यदि उसकी दृष्टिमें आलोक-रेखासे चकार्वांश हो जाती है, एक पग चलनेसे पैर थरथराने लगते हैं, तो इससे उसका अन्ध या पंगु होना नहीं प्रकट होता—उसका यह दैन्य और यह असमर्थता मानवताकी कलंक हो सकती है, उसका नहीं । यदि उसने परिस्थितियोंके अनुसार बदलनेवाली समाजकी भावनाओंके आदरके लिए अपनी नैसर्गिक तथा मानवोचित स्वच्छन्दताकी बलि न दे दी होती, तो आज यह विपमताकी कहानी ही न लिखी गई होती, जो उसके त्यागका स्मारक न होकर अग्रोग्यताका निदर्शन बनती जा रही है ।

अविश्वास और कुतूहलके साथ-साथ कुछ सहयोगी साहित्यिकों द्वारा महिला-साहित्यको एक ऐसा विचित्र उपहार मिला है, जिसे अभूतपूर्व ही कहना चाहिए । प्रायः सर्वसाधारणको सुगमतापूर्वक चमत्कृत कर देनेकी इच्छासे या अन्य सुविधाओंके लिए कतिपय लेखकों (?) ने महिलाओंके नामसे अपने साहित्यको महिला-साहित्यमें मिलाकर जिस तिराली द्विवेणीकी सृष्टि कर डाली है, उसने केवल उन्हींके साहित्यका रंग फीका नहीं किया,

वरन् दूसरेकी स्वाभाविक आभा भी मटमैली कर दी । यह सत्य है कि साहित्य स्त्री-पुरुष दोनोंके लिए एकरूप है और रहेगा ; परन्तु यह भी कम सत्य नहीं कि अनेक रंगके पात्रोंमें भरे हुए अनेकवर्णी जलके एकरूपके समान साहित्य भी भिन्न-भिन्न हृदयोंमें भिन्न-भिन्न अभिव्यक्ति पाता है । स्त्री और पुरुषकी नैसर्गिक भिन्नताके कारण उनके दृष्टिकोण भी एक-दूसरेकी पूर्णताके लिए आवश्यक होकर भी एक नहीं हो सकते । जो वस्तु स्वभावसे अधिक कोमल और अधिक भावुक स्त्रीको जिस रूपमें प्रभावित करती है, वह उसी रूपमें पुरुषको प्रभावित नहीं करती । फलतः उन दोनोंकी भाव-अभिव्यंजना भी बिल्कुल एक नहीं हो पाती ।

इसमें सन्देह नहीं कि हमारे अनेक रहस्यवादी और भक्त कवियोंने अपने-आपको प्रेयसी मानकर ही प्रियतम परमात्माके प्रति आत्म-निवेदन किया है ; परन्तु यह उनके लिए साधनाका विषय ही रहा, और यदि निष्पक्ष रूपसे देखा जाय, तो इतनी साधनाके उपरान्त भी हम उन्हें स्त्रियोंके पीछे ही पा सकेंगे ।

फिर आजकल तो वैसी परिस्थितिका भी अभाव है । पुरुषकी सस्ती भावुकतापर आधृत और पुरुषके असंयत दृष्टि-कोणसे देखा हुआ उच्छृंखल वासनामय साहित्य भी जब स्त्रीके नामका आश्रय ले अपना परिचय देना चाहता है, तब नारी ही नहीं, सहृदय पुरुष भी क्षुब्ध हुए बिना नहीं रहते । यह सम्भावना कि स्त्री भी अनेक परिस्थितियोंमें वैसा साहित्यकी सृष्टि कर सकती है, किसीको ऐसा दुस्ताहस करनेका अधिकार नहीं दे सकती ।

साहित्य-जगतकी ऐसी दुरवस्थाका कुछ उत्तरदायित्व उन वहनोंपर भी है, जिन्होंने अपने पिंजरकी तोलियां तो तोड़ डालीं, परन्तु युगान्तरसे निष्क्रिय अपने पंखोंकी शक्ति नहीं तोली । वे थरथराने चरण, कम्पित हृदय और संकोचसे अपने-आपमें समाई हुई उस वातावरणमें अकस्मात् आ गई, जो गृहके वातावरणसे भिन्न होनेके कारण इस संकोच-प्रदर्शनके उपयुक्त ही था । उनके इस भावको किसीने अभिनयमात्र समझा और किसीने उनकी असमर्थताका सूचक ; परन्तु ऐसे

व्यक्ति कम मिल सके, जो इसे परिस्थितिका अनिवार्य परिणाम समझकर उनका पथप्रदर्शन करते। स्त्रियाँ भी व्यावहारिक जगतमें अपना मार्ग निश्चित न कर सकीं, अतः कभी वे इतनी स्पष्ट हो उठीं कि अन्य उसके विषयमें भ्रान्तिमय धारणा बनाने लगे और कभी इतनी अस्पष्ट कि स्वयं भी अपने-आपको न समझ पाईं। इसमें सन्देह नहीं कि आजकी लेखिकाओं जिन भ्रान्तियों और असुविधाओंके बीचमें साहित्यकी आराधना करनी पड़ती है, वे किसी भी कर्मठ साहित्यिकको विचलित कर देनेके लिए पर्याप्त हैं। आज यदि वह स्त्रियोंके चिरन्तन दुःखकी कहानी कहती है, तो लोग उसीकी कहानी समझ उसका दुरुपयोग करनेको उद्यत हो जाते हैं। यदि एक

प्रणय-गीतमें वह अपनी भावुकताको अभिव्यक्ति करना चाहती है, तो एक सौ एक प्रेम-गीत उत्तरमें उसपर बरस पड़ते हैं, यदि वह अपनी असुविधाओंके स्पष्टीकरणके लिए लेखनी उठाती है, तो चारों ओरसे निष्ठुर व्यंग और अशिष्ट आक्षेप उसे बाँधनेके लिए दौड़ पड़ते हैं और यदि मौन रहना चाहती है, तो दूसरे उसके नामको बिना माँगे ही उधर लेनेपर तत्पर हो जाते हैं।

उसे मनोविनोदका साधन समझनेका अभ्यस्त संसार अब भी अपनी पुरानी प्रवृत्तिको पूर्णतः नहीं बदल सका है; परन्तु यदि स्त्री भी अपनी शक्ति और साहसपर विश्वास न रख सके, तो समझना चाहिए कि उसके पिंजरबद्ध रहनेका अभिशाप चिरन्तन हो गया है।

पोलैण्डका महिला-आन्दोलन

कुमारी इवा रुज़का, पोलैण्ड

पोलैण्ड देशके षष्ठवारके पहलेवाले युगमें (९वीं शताब्दीसे १८वीं शताब्दी तक) पोलिश स्त्रियोंका व्यक्तित्व समूचे इतिहासमें स्पष्टरूपसे प्रकट होता है। यद्यपि उस युगमें स्त्रियोंको नागरिकताके साधारण अधिकार प्राप्त नहीं थे, फिर भी व्यावहारिक रूपमें वे राजनैतिक और सार्वजनिक बातोंमें बराबर अपना प्रभाव डालती रहती थीं। इतना ही नहीं, बल्कि वे सैनिक मामलोंमें भी भाग लिया करती थीं। उन्होंने एकसे अधिक बार शहरोंका मुहासिरा करनेवाले शत्रुओंको मार भगाया था और खुल्लमखुल्ला युद्धमें भी भाग लिया था।

पोलैण्डकी स्वाधीनता छिन जानेके बाद (सन् १७७२ से १८१८ तक पोलैण्ड रूसके जारोंके अधीन रहा) पोलिश स्त्रियाँ अपने देशकी स्वतन्त्रता पुनः प्राप्त करनेके समस्त प्रयत्नोंमें भी क्रियात्मक रूपसे भाग लेती रहीं। उदाहरणार्थ, सन् १८३० में रूसके विरुद्ध विद्रोहमें काउन्टेस इमीलिया

प्लैटर अपनी रेजीमेन्टका नेतृत्व करती हुई, मोस्कल्ससे लड़ती हुई, रणभूमिमें काम आई थी। सन् १८०५के विप्लवमें पोलैण्डको स्वतन्त्र बनाकर जनसत्तात्मक शासन स्थापित करनेके लिए सैकड़ों स्त्रियाँ पोलिश साम्यवादी दलमें शामिल होकर लड़ी थीं। सन् १८१४ में, महायुद्धके ठीक पहले, जब जोसेफ पिल्सुडस्कीने सैनिक शिक्षा देनेका आयोजन किया था, तब छै सौसे अधिक पोलिश स्त्रियाँ फौजी काम सीखनेके लिए उसमें सम्मिलित हुई थीं। महायुद्धके समय सेनापति पिल्सुडस्कीने पोलिश सैनिक संगठनके अन्तर्गत एक स्त्री - विभाग भी संगठित किया था। बादमें पिल्सुडस्कीने इस विभागके मंडेको पोलिश सेनाके सर्वोच्च सम्मान 'वर्च्यूटी मिलिटरी' (Virtuti Militari) से सम्मानित किया था। इसके सिवा सैनिक विभागमें लड़नेवाली ११ महिलाओंको 'वर्च्यूटी मिलिटरी'का पदक, ११७को 'सैनिक पदक' (मिलिटरी क्रॉस) और ५०० स्त्रियोंको स्वतन्त्रताका पदक (क्रॉस आफ इंडिपेंडेंस) भी

मिला था। सन् १९१८-१९ में उक्रेनियन लोगोंने लेम्बर्गके बहादुर शहरका मुहसिरा किया था, तब उसकी रक्षामें भी सेनाके स्त्री-विभागने भाग लिया था। सन् १९२० में पोलैण्ड और बोल्शेविकोंके युद्धमें २००० स्वयंसेविकाओंका एक सैनिक दल संगठित हुआ था। इस युद्धमें विलनो-ग्रोडोनो-वियालिस्टाक युद्धक्षेत्रमें ढाई सौ स्त्रियोंकी एक बटालियन लड़ी थी। अगस्त १९२० में पिल्सुडस्कीने वारसाके समीप जिस अन्तिम युद्धमें बोल्शेविकोंको परास्त करके पोलैण्डकी सीमासे बाहर किया था, उसमें भी चार सौ स्त्रियोंकी एक बटालियनने भाग लिया था।

महायुद्धके समय पोलिश स्त्रियाँ हथियार उठाकर युद्धक्षेत्रमें जाती थीं, तरह-तरहके पेशोंके काम करती थीं, सामाजिक और स्वच्छता-सफाई-सम्बन्धी कार्य करती थीं और प्रत्येक क्षेत्रमें पुरुषोंके रिक्त स्थानोंकी पूर्ति करती थीं। इन कार्योंको उन्होंने बड़ी दक्षतासे निवाहा। उनके इन कार्योंको देखकर देशके स्वतन्त्र होनेके बाद यदि उन्हें पुरुषोंके समान ही अधिकार दिये गये, तो इसमें आश्चर्य ही क्या? इसीलिए जिस समय पोलिश स्त्रियोंको एकदम समानताके अधिकार दिये गये, उस समय समाजके किसी भी अंशने इसका विरोध नहीं किया।

नवम्बर सन् १९१८में, पोलिश राज्यके पुनर्जन्मके कुछ ही हफ्तोंके भीतर, राष्ट्रके महान नेता जोसेफ पिल्सुडस्कीने एक फरमान निकालकर पोलिश स्त्रियोंको पूर्ण राजनैतिक अधिकार प्रदान किये। पोलैण्ड प्रजातन्त्रके १७ मार्च १९२१ के शासन-विधानमें भी स्त्रियोंके पूर्ण नागरिकताके अधिकार, व्यवस्थापिका-सभा और स्थानीय संस्थाओंके निर्वाचनमें सक्रिय और निष्क्रिय रूपसे भाग लेनेका अधिकार, सरकारी शासन-विभागोंमें स्त्रियोंको बिना प्रतिबन्धके नौकरियाँ मिलनेका हक आदि बातें स्वीकार की गईं। २३ अप्रैल १९३५ के नवीन विधानमें भी स्त्रियोंके उपर्युक्त अधिकारोंको स्वीकार किया गया।

इन बातोंके होते हुए यह स्वभाविक ही है कि पोलैण्डका महिला-आन्दोलन अन्य देशोंके आन्दोलनोंसे विभिन्न रूपका हो। पोलैण्डका आन्दोलन दो दिशाओंमें चल रहा है—एक तो विशुद्ध स्त्रीत्व-सम्बन्धी, दूसरी सामाजिक। स्त्रीत्व-सम्बन्धी आन्दोलनका उद्देश्य है पोलिश महिला-नागरिकोंके जो-जो अधिकार स्वीकार किये गये हैं, वास्तविक उनका जीवनमें व्यावहारिक प्रयोग करना—उदाहरणके लिए, सभी क्षेत्रोंमें स्त्रियोंके लिए उन पदोंको प्राप्त करना, जिससे स्त्रियाँ राज्यके विकास और निर्माणमें निश्चित रूपसे प्रभाव डाल सकें। इस विषयमें पोलिश स्त्रियोंने अपनी योग्यता और परिश्रमसे बहुत-कुछ सफलता भी प्राप्त की है; किन्तु यह उनके प्रोग्रामका एक अंशमात्र ही है। उनका प्रोग्राम है शिक्षा में, जीविकोपार्जनके साधनोंमें और नागरिकताके अधिकारोंमें पुरुषोंके एकदम बराबर हक प्राप्त करना।

उनका पहला कार्य है स्त्रियोंके लिए सेकेंडरी स्कूलोंका बढ़ाना और उनके लिए उद्योग-धन्धेकी शिक्षा देनेवाले विद्यालयोंकी स्थापना करना। दूसरा कार्य है उत्तरदायित्वपूर्ण पदों—जैसे मंत्री, सरकारी-विभागोंके प्रधान अफसर, विदेशोंमें राजदूत या दूतावासके कर्मचारी, न्यायाधीश आदि पदों—तक पहुँचना, विवाहित अथवा अविवाहित स्त्रियोंके लिए काम प्राप्त करना और समान वेतन दिलवाना। प्रोग्रामकी तीसरी बात है दीवानी कानूनमें पत्नियों और माताओंके हकोंमें जो प्रतिबन्ध लगे हैं, उन्हें दूर करना। किसी विदेशीसे विवाह कर लेनेपर स्त्रियोंकी नागरिकता छिन जाती है, इस नियमको रद्द करना।

इन तीनों ही क्षेत्रोंमें पोलिश स्त्रियोंको अब तक जो सफलता मिल चुकी है, वह महत्वपूर्ण है। शिक्षाके विषयमें सभी प्राइमरी स्कूलोंमें सहशिक्षा प्रचलित है। सेकेंडरी स्कूलोंमें लड़के-लड़कियोंको पढ़ाई जानेवाली पुस्तकें एक हैं। विश्वविद्यालयों और उच्च विद्यालयोंमें स्त्रियोंको पुरुषोंके समान ही भर्ती होनेका अधिकार है।

यह बात ध्यान रखनेकी है कि इन विद्यालयोंके छात्रोंमें तीस प्रतिशत स्त्रियाँ हैं। लड़कियोंको उद्योग-धंधोंकी शिक्षा देनेके लिए पाँच सौसे अधिक स्कूल हैं। पोलैण्डके विश्वविद्यालयोंमें लगभग दो सौ महिला-सहकारिणी हैं। चार महिला-प्रोफेसर भी हैं—क्राकाउ (Cracow) में प्रोफेसर ग्राबस्का (Grabowska) जो प्रसिद्ध भारतवेत्त्री (Indologist) हैं, विल्नोमें प्रोफेसर Ehrenkreuz-Jedrzejewiczowa, पोजनानमें प्रोफेसर डब्रज़िंस्का (Dobrzynska), ल्वोव (Lwow) में प्रसिद्ध रसायनशास्त्रिणी प्रोफेसर डोराबिअल्स्का (Dorabialska)। इनके सिवा वारसाकी फ्री-यूनिवर्सिटीमें प्रोफेसर रैडलिन्स्का हैं। यह बात भी दिलचस्प है कि पेरिसके सॉरबॉनकी प्रोफेसर, नोबुल-पुरस्कार-विजेता और रेडियमकी आविष्कारक मैडम क्यूरी भी पोलैण्डकी ही थीं।

जहाँ तक पेशेकी नौकरियों—जैसे, डाक्टर, कलाक आदि—का सम्बन्ध है, लगभग ४० प्रतिशत पदोंपर स्त्रियाँ हैं; लेकिन उच्च पदोंको वे अभी तक विजय नहीं कर पाई हैं। वर्तमान व्यवस्थापिका सभाओंमें—पार्लामेन्टमें—दो और सेनेटमें पाँच महिला-सदस्याएँ हैं। पिछले निर्वाचनमें पार्लामेन्टमें चौदह महिलाएँ थीं। देहाती लोकल बोर्डोंमें लगभग एक सौ बीस और शहरोंके बोर्डोंमें लगभग अस्सी महिला-सदस्याएँ हैं। सरकारी दफ्तरोंमें भी स्त्रियोंने सर्वोच्च पद प्राप्त किये हैं, वे विभागोंकी प्रधान तक हैं। न्याय-विभागमें नावालिगोंकी अदालतमें एक ही महिला जज श्रीमती ग्रेविन्स्का हैं। कॉन्सुलर-सर्विसकी प्रतियोगिता परीक्षा पास करके वैदेशिक विभागमें प्रवेश करनेवाली केवल एक स्त्री है, और वह है इन पंक्तियोंकी लेखिका। फैक्टरी - विभागमें कार्योंकी देखभाल करनेवाले इंस्पेक्टरोंमें आठ महिलाएँ हैं। हालमें स्त्रियाँ पुलिस कान्स्टेबिलोंमें भी भर्ती की गई हैं, और उनकी संख्या नगण्य नहीं है।

स्वतन्त्र पेशोंमें महिलाएँ आसानीसे अग्रसर हुई हैं। दन्त-चिकित्सकोंमें महिलाओंकी बहुत बड़ी संख्या है।

महिला वकीलोंकी संख्या भी दिन-प्रति-दिन बढ़ रही है। पोलैण्डके आधुनिक साहित्यमें भी स्त्रियाँ प्रथम पंक्तिमें हैं। पोलैण्डके वर्तमान सर्वश्रेष्ठ कवियोंमें एक स्त्री इल्झाकोविचोवना हैं। चोटीके अन्य साहित्यकारोंमें 'पोलिस साहित्यक एकेडेमी'की सदस्या नलकावस्का, सरकारी साहित्यक पुरस्कार - विजयनी डबरोवस्का, कुनसेविचोवा, कोस्साक-ज़ुज़ुका, शेलबुर्ग शारेम्बिना, डोवाचवस्का तथा अन्य प्रसिद्ध लेखिकाएँ हैं। पत्रकार-कलामें पत्रकारीके स्कूलसे डिप्लोमा पाई हुई महिलाओंकी संख्या तेज़ीसे बढ़ रही है और उनकी माँग भी बहुत है। केवल वारसा ही में पचाससे अधिक स्त्रियाँ पत्रकारों, संवाददाताओं और रिपोर्टरोंका काम करती हैं। इनके सिवा वारसामें 'दि आइवी' और 'आधुनिक महिला' नामक दो पत्रोंके कार्यालय हैं। इन पत्रोंका सम्पादन स्त्रियाँ करती हैं, और इनके दफ्तरोंमें महिलाओंके अनेक पत्र-पत्रिकाएँ निकलती हैं।

स्त्रियोंके पत्र विशेषकर महिला-आन्दोलनकी दोनों दिशाओं और उनके संगठन आदिसे सम्बन्ध रखते हैं। पोलिश स्त्रियोंके अधिकांश संगठन इसी प्रकारके विदेशी संगठनोंसे सम्बन्ध रखते हैं। पोलैण्डमें अखिल विश्व-महिला-संघकी एक शाखा भी है, सेनापति पिल्सुडस्कीकी विधवा जिसकी प्रधान हैं। इसके अतिरिक्त स्त्रियोंकी और भी अनेकों सभा-समितियाँ हैं।

सबसे महत्वपूर्ण चीज़ है 'पोलिश नागरिकता संघ'। इस संघकी सदस्याओंकी संख्या ६०,००० है। यह सामाजिक और राजनैतिक दोनों क्षेत्रोंमें पोलिश स्त्रियोंकी प्रमुख संस्था है। यह संघ प्रगतिशील विचारोंका है। यह सरकारसे सहयोग करता है, और सेनापति पिल्सुडस्कीके आदर्शोंकी पूर्ति करता है। पोलिश स्त्रियोंके जितने भी संगठन हैं, उन सबके उद्देश्योंमें एक उद्देश्य यह होता है कि पोलिश स्त्रियोंको उनके अधिकारों और नागरिकताके उत्तरदायित्वसे परिचित कराया जाय। साथ ही ये संगठन अनेक प्रकारके दातव्य कार्य भी करते रहते हैं।

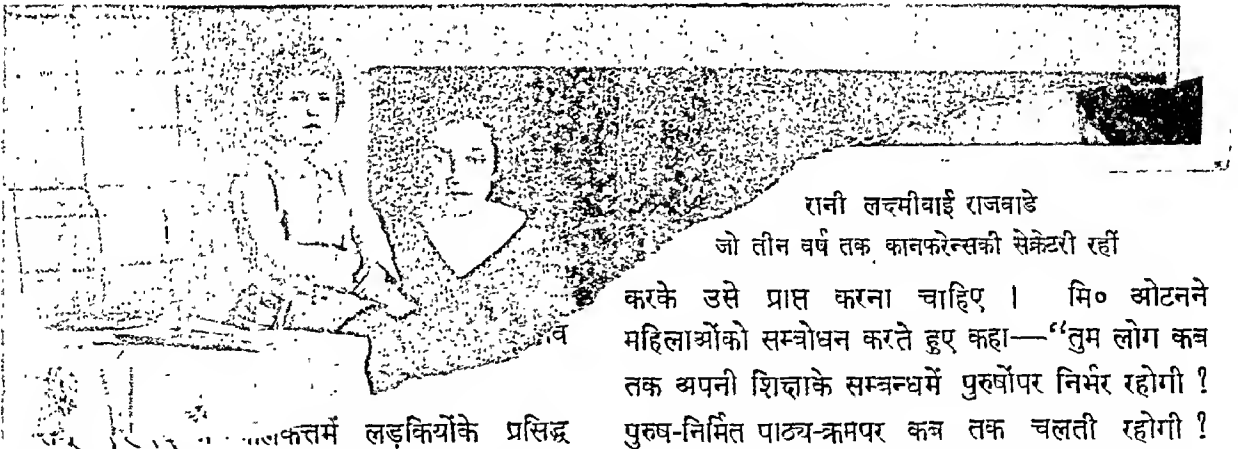
ऊपर :— 

पोलैण्डकी सबसे महान महिला-साहित्यकार श्रीमती नलक्रोवस्का। आप ही अकेली महिला हैं, जिन्हें पोलिश एकेडेमी आफ लिटरेचरकी सदस्या होनेका विशेष सम्मान प्राप्त है।



नीचे :—

वर्तमान पोलैण्डके पिता सेनापति पिल्सुडस्की, उनकी पत्नी और सन्तान। पिल्सुडस्कीने स्त्रियोंको पूर्ण अधिकार प्रदान किये थे, और श्रीमती पिल्सुडस्की पोलैण्ड के महिला-आन्दोलनकी प्रधान हैं



रानी लक्ष्मीबाई राजवाड़े

जो तीन वर्ष तक कानकरेन्सकी सेक्रेटरी रहीं

कालेज वेथून कालेजमें पारितोषिक-वितरणके समय बंगालके शिक्षा-विभागके डाइरेक्टर मि० ओटनने कहा था कि स्त्रियोंकी शिक्षाके विषयमें स्त्रियोंको पुरुषोंकी सहायता करनी चाहिए। उन्हें आपसमें यह तै करना चाहिए कि स्त्रियोंकी शिक्षा कैसी है, उन्हें क्या-क्या चाहिए और उस सम्मिलित माँगको पुरुषोंके सामने पेश

करके उसे प्राप्त करना चाहिए। मि० ओटनने महिलाओंको सम्बोधन करते हुए कहा—“तुम लोग कब तक अपनी शिक्षाके सम्बन्धमें पुरुषोंपर निर्भर रहोगी? पुरुष-निर्मित पाठ्य-क्रमपर कब तक चलती रहोगी? पुरुषों द्वारा संचालित परीक्षाओंमें कब तक बैठोगी? जिस शिक्षा-समितिमें तुम्हारा कोई हाथ नहीं, उसके अधीन कब तक रहोगी?”

उसी साल मदरासकी थियासोफिकल सोसाइटीके अधिवेशनमें वेथून कालेजकी प्रिन्सिपल श्रीमती हुड-कोपरने मि० ओटनकी ये बातें श्रीमती मार्गरेट कर्जिससे

रस
इन्
रेड
सॉ
रेडि

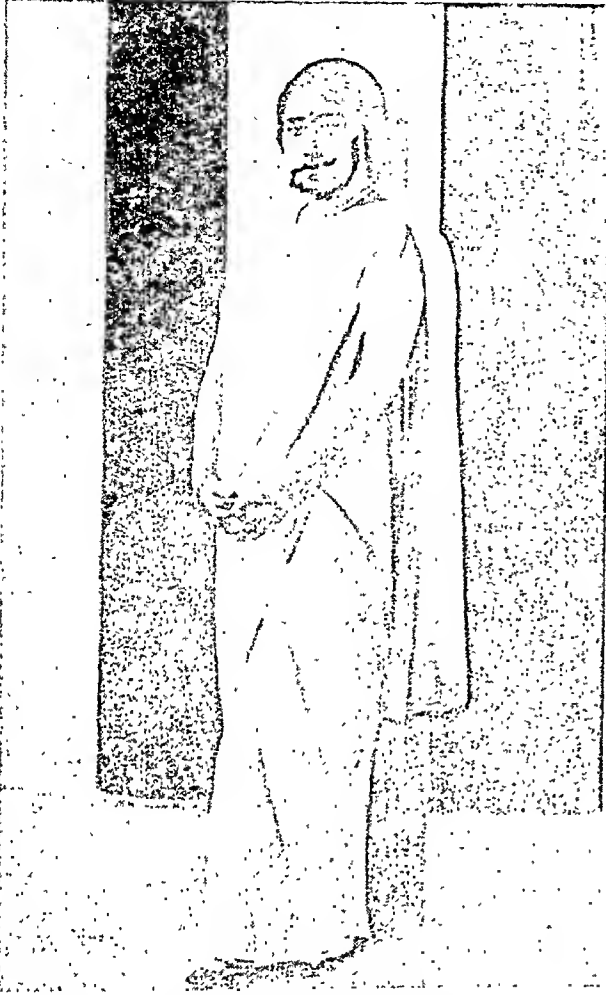
1
B
200

स्वतन्त्र पेशोंमें महिलाएँ आसानीसे अप्रसर हुई हैं।
दन्त-चिकित्सकोंमें महिलाओंकी बहुत बड़ी संख्या है।

A black and white portrait of a woman, likely a Hindu deity or saint, seated and wearing a sari. The image is framed by a decorative border. The woman is seated, wearing a sari with a patterned border. She has a serene expression and is looking slightly to the right. The background is dark and textured, possibly representing foliage or a cave interior. The entire image is enclosed within a double-line border.

संघ' ।

है। यह ^{मुम्बई, कोलकाता, दिल्ली, मुम्बई, नीलकण्ठ । लखनऊ-अधिवेशनकी प्रधान} पोलिश स्त्रियोंकी प्रमुख संस्था है। यह सरकारसे सहयोग करता है, और सेनापति, पिल्सुडस्कीके आदर्शोंकी पूर्ति करता है। पोलिश स्त्रियोंके जितने भी संगठन हैं, उन सबके उद्देशोंमें एक उद्देश यह होता है कि पोलिश स्त्रियोंको उनके अधिकारों और नागरिकताके उत्तरदायित्वसे परिचित कराया जाय । साथ ही ये संगठन अनेक प्रकारके दातव्य कार्य भी करते रहते हैं ।



महारानी चावणकोर । त्रिवेन्द्रम्-अधिवेशनकी प्रधान

चलकर कुछ वर्ष उपरान्त अखिल भारतीय महिला-कानफरेन्स भी कांग्रेसके समान ही शक्तिशाली और सजीव संस्था बन जायगी ।

सन् १९२६ में कलकत्तेमें लड़कियोंके प्रसिद्ध कालेज वेथून कालेजमें पारितोषिक-वितरणके समय बंगालके शिक्षा-विभागके डाइरेक्टर मि० ओटनने कहा था कि स्त्रियोंकी शिक्षाके विषयमें स्त्रियोंको पुरुषोंकी सहायता करनी चाहिए । उन्हें आपसमें यह तै करना चाहिए कि स्त्रियोंकी शिक्षा कैसी है, उन्हें क्या-क्या चाहिए और उस सम्मिलित माँगको पुरुषोंके सामने पेश

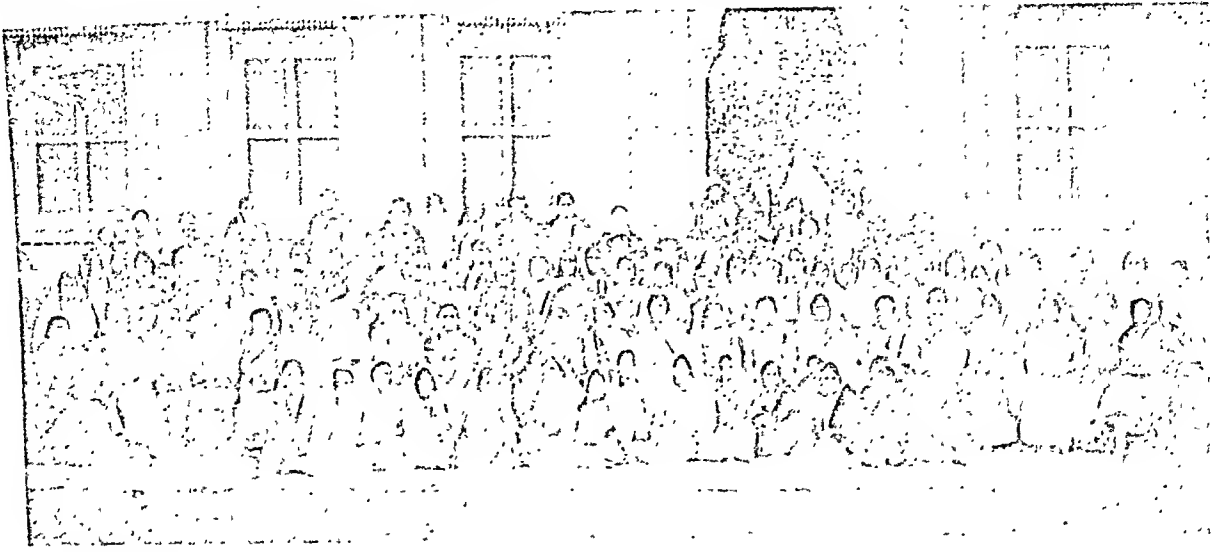


रानी लक्ष्मीबाई राजवाड़े

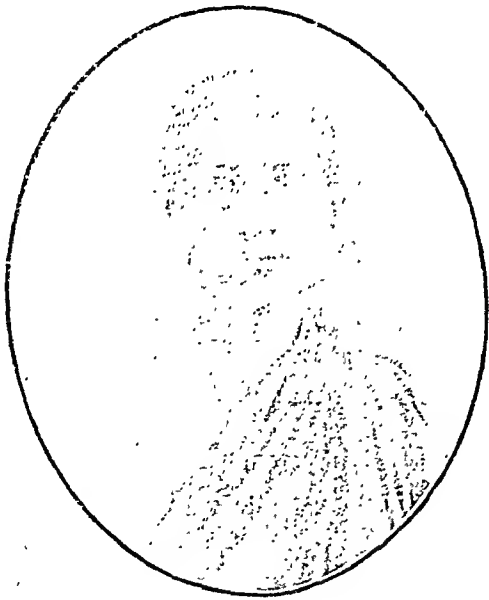
जो तीन वर्ष तक कानफरेन्सकी सेक्रेटरी रहीं

करके उसे प्राप्त करना चाहिए । मि० ओटनने महिलाओंको सम्बोधन करते हुए कहा—“तुम लोग कब तक अपनी शिक्षाके सम्बन्धमें पुरुषोंपर निर्भर रहोगी ? पुरुष-निर्मित पाठ्य-क्रमपर कब तक चलती रहोगी ? पुरुषों द्वारा संचालित परीक्षाओंमें कब तक बैठोगी ? जिस शिक्षा-समितिमें तुम्हारा कोई हाथ नहीं, उसके अधीन कब तक रहोगी ?”

उसी साल मदरासकी थियासोफिकल सोसाइटीके अधिवेशनमें वेथून कालेजकी प्रिन्सिपल श्रीमती हुड-कोपरने मि० ओटनकी ये बातें श्रीमती मार्गरेट कज़िससे



अखिल एशियाई महिला-कानफरेन्सका अधिवेशन, जो अखिल भारतीय महिला-कानफरेन्सके प्रबन्धसे लाहौरमें हुआ था



डाक्टर मुखलक्ष्मी रेड्डी । लाहौर-अधिवेशनकी प्रधान कर्त्री और कहा कि अब समय आ गया है, जब महिलाओंको यह चुनौती स्वीकार करके अपनी शिक्षाके सम्बन्धमें स्वयं विचार करना चाहिए । महिलाओंके आन्दोलन किये बिना लड़कियोंकी शिक्षा-प्रणाली सुधर नहीं सकती । श्रीमती कर्जिसकी सलाहसे श्रीमती हुइडकोपरने इस विषयपर कई लेख लिखकर सुशिक्षित महिलाओंका जनमत जाग्रत करनेकी कोशिश की । इस

प्रकार भारी महिला-कानफरेन्सके लिए क्षेत्र तैयार हुआ ।

यहाँ यह बतला देना अनुचित न होगा कि श्रीमती कर्जिस डाक्टर जेम्स एच० कर्जिसकी पत्नी हैं । वे जातिकी आइरिश हैं । डाक्टर महोदय थियासोफिस्ट हैं । वे भारतीय कला और संस्कृतिके प्रेमी तथा भारतके शुभचिन्तक और सेवक हैं । श्रीमती कर्जिस भी अपने पतिके साथ बराबर भारतकी सेवा करती रहती हैं । उस समय भी वे वीमेन्स इंडियन एसोसियेशनकी सेक्रेटरी थीं ।

श्रीमती कर्जिसने एक कार्यक्रम तैयार किया, जिसमें यह निश्चय किया गया था कि भारतके प्रत्येक प्रान्तमें महिलाओंकी कानफरेन्सों की जायँ और उनके आधारपर शिक्षा-सुधारका एक अखिल भारतीय मन्तव्य तैयार किया जाय । यह कार्यक्रम सब पत्रोंमें प्रकाशित किया गया, और यह प्रार्थना की गई कि प्रान्तीय महिला-कानफरेन्सों अपने-अपने प्रतिनिधि चुनकर भेजें और जनवरी १९२७ में पूनामें अखिल भारतीय महिला-शिक्षा-कानफरेन्स की जाय । पूनामें प्रोफेसर कर्वेके महिला - विश्वविद्यालयकी अनेक महिलाएँ स्त्रियोंकी शिक्षाके विषयमें दिलचस्पी रखना स्त्रियोंमें



अखिल भारतीय महिला-कानफरेन्सका पटना-अधिवेशन । प्रथम पंक्तिमें बाईं ओरसे बैठी हुई श्रीमती नेहरू, श्रीमती पी० के० सेन, श्रीमती सरलादेवी चौधरानी, श्रीमती मजदूरल हक, मंडीकी रानी साहिबा (पटना अधिवेशनकी प्रधान), श्रीमती फरीदूँजी (कराची-अधिवेशनकी प्रधान), श्रीमती हुडकोपर और श्रीमती वैरमजी ।

परदा नहीं है । वह महाराष्ट्रका शिक्षा-केन्द्र है, और इस कार्यमें पुरुषोंका सहयोग भी आवश्यक था, अतः सभी दृष्टियोंसे अखिल भारतीय महिला-कानफरेन्सके जन्मके लिए पूना ही बहुत उपयुक्त स्थान था ।

यह बात आश्चर्यसे सुनी जायगी कि श्रीमती कर्जिस केवल पाँच रुपये लेकर ही महिला-कानफरेन्सका प्रथम अधिवेशन करनेके लिए पूना गई थीं, और वे पाँच रुपये भी अपने नहीं थे—चन्देके थे ! लेकिन पूनाकी महिलाओंने भरपूर उद्योग किया था । श्रीमती कर्जिसने सोचा था कि पाँच-पाँच रुपये प्रतिनिधि-फीस देनेवाली पचास महिलाएँ यदि आ जायँगी, तो उसीसे किसी प्रकार काम चला लिया जायगा । महारानी बड़ौदा समापति निर्वाचित हुई थीं । श्रीमती कर्जिस लिखती हैं कि पूना पहुँचकर भी वे कानफरेन्सकी सफलताके विषयमें द्विविधामें थीं, जब 'मैंने सुना कि महारानी बड़ौदा आ गई हैं, तब मेरी जानमें जान आई ।'

पहले अधिवेशनमें कुल ४७ महिलाएँ ही प्रतिनिधि

बनकर आई थीं ; किन्तु वे थीं भारतकी प्रधान महिलाएँ—उनमें लेडी सदाशिव अयंगर, श्रीमती रुस्तमजी फरीदूँजी, श्रीमती सरोजिनी नायडू, श्रीमती हामिद अली, मिस सूसी सोगात्रजी सरीखी प्रसिद्ध महिलाएँ थीं ।

इस कानफरेन्समें स्त्रियोंकी शिक्षामें सुधारका मसविदा तैयार किया गया ; किन्तु वाद-विवादमें यह प्रत्यक्ष हो गया कि जब तक तक बाल-विवाह तथा कुछ अन्य सामाजिक कुरीतियाँ दूर न की जायँगी, तब तक स्त्रियोंकी शिक्षा-प्रणालीमें कोई सुधार कारगर न होगा । अतः कानफरेन्सको समाज-सुधारके कार्योंमें भी प्रयत्न करना अनिवार्य है । नतीजा यह हुआ कि जो कानफरेन्स केवल शिक्षापर विचार करनेके लिए ही हुई थी, उसने पहले ही अधिवेशनमें समाज-सुधारका भार लेकर महिला-आन्दोलनका बीज बो दिया ।

कानफरेन्सका दूसरा अधिवेशन दिल्लीमें हुआ । इसका उद्घाटन लेडी इरविनने किया था । श्रीमती एस० आर० दास स्वागताध्यक्षके पदपर थीं और वेगम



अखिल भारतीय महिला कानफरेन्सका बम्बई-अधिवेशन । बाई ओरसे बठी हुई—श्रीमती हामिद अली, श्रीमती ब्रजलाल नेहरू, श्रीमती पी० के० राय (मद्रास-अधिवेशनकी प्रधान), श्रीमती कमला चट्टोपाध्याय, श्रीमती सरोजिनी नायडू (एक महिलाको छोड़कर), श्रीमती हस्तमजी फरीदुंजी, श्रीमती कर्जिस (कानफरेन्सकी जन्मदात्री), श्रीमती हंसा मेहता ।

साहिबा भूपाल सभापति हुई थीं । श्रीमती एनी बेसेंट भी उपस्थित थीं । इस बार कानफरेन्सकी सेक्रेटरी श्रीमती कमला चट्टोपाध्याय चुनी गई थीं । उन्होंने कानफरेन्सको अग्रसर करनेकी बड़ी चेष्टा की । दिल्लीमें शिक्षाके लिए कानफरेन्सने एक फण्ड खोला । बाल-विवाह-निरोधक कानूनके समर्थनमें वायसरायके पास डेपूटेशन भेजा गया ।

पहले दो वर्षके अधिवेशनोंमें कानफरेन्सके संगठनपर विशेष रूपसे विचार हुआ । नियम-उपनियम आदि बनाये गये ।

कानफरेन्सका तीसरा अधिवेशन पटनामें हुआ । श्रीमती मजरुल हक स्वागत-व्यक्त थीं, और सभापतिका आसन मंडीकी महारानी ललितकुमारी देवीने ग्रहण

किया था । इस अधिवेशनमें अन्य बातोंके साथ कानफरेन्सके विधानपर विचार हुआ ।

अब धीरे-धीरे अखिल भारतीय महिला-शिक्षा-कानफरेन्स अखिल भारतीय महिला-कानफरेन्स बनकर भारतमें नारी-आन्दोलनकी प्रधान संस्था बननेकी ओर अग्रसर होने लगी । जनवरी सन् १९२० में बम्बईमें महिला-कानफरेन्सका अधिवेशन बड़ी धूमधामसे हुआ । भारत-कोकिला श्रीमती सरोजिनी नायडू इसकी सभापति थीं । अब इस संस्थाकी रजिस्ट्री करा ली गई । चूँकि इसका कार्य बहुत व्यापक हो चुका था और इसने थोड़ी बहुत शक्ति प्राप्त कर ली थी, इसलिए बम्बईमें कानफरेन्सका कार्य दो भागोंमें विभक्त कर दिया गया । एक भागके हाथमें शिक्षा-सम्बन्धी सुधारोंका काम दिया गया और



महिलाओंकी शिक्षाके लिए फंड एकत्रित करनेके लिए अखिल भारतीय महिला-कानफरेंसने जो कमेटी बनाई थी, उसकी सदस्याएँ। इस फंड-कमेटी द्वारा एकत्रित धनसे दिल्लीमें लेडी इर्विन कालेज आफ वीमेनकी स्थापना हुई है।

दूसरेको सामाजिक सुधारोंका। इन सामाजिक सुधारोंमें स्त्रियों और बच्चोंकी भलाई-सम्बन्धी सभी बातें शामिल हैं। अब कानफरेन्सका नाम अखिल भारतीय महिला-शिक्षा-कानफरेन्ससे बदलकर सिर्फ अखिल भारतीय महिला-कानफरेन्स रखा गया।

सन् १९३१ में लाहौरमें महिला-कानफरेन्सका अधिवेशन हुआ। मद्रास लेजिस्लेटिव कौन्सिलकी डेपुटी-प्रेसीडेन्ट श्रीमती डाक्टर मुथुलक्ष्मी रेड्डी इस अधिवेशनकी सभानेत्री थीं। इसी अवसरपर लाहौरमें अखिल एशियाई महिला-कानफरेन्स भी आमन्त्रित की गई थी, जिसमें एशियाके अनेक देशोंकी महिला-प्रतिनिधि पधारी थीं। ये दोनों अधिवेशन बड़ी सफलताके साथ हुए। अखिल एशियायी महिला-कानफरेन्सका अधिवेशन अखिल भारतीय महिला-कानफरेन्सकी

देखरेखमें ही हुआ था। यह प्रत्यक्ष है कि हमारी भारतीय महिलाओंको इन विभिन्न देशोंकी महिलाओंका स्वागत-सत्कार करनेमें और इन दोनों अधिवेशनोंका सफलतापूर्वक प्रबन्ध करने कितनी दिक्कतोंका सामना करना पड़ा होगा।

कानफरेन्समें महिलाओंको गृह-विज्ञानकी शिक्षा देनेका एक कालेज खोलनेकी योजना बनाई गई। अब कानफरेन्समें प्रतिनिधि भेजनेवाले निर्वाचन-क्षेत्रोंकी संख्या बढ़कर चौतीस तक पहुँच गई। भिन्न-भिन्न स्थानोंकी महिलाएँ शिशु-मंगल और मातृ-मंगल केन्द्रोंकी स्थापना, बालिकाओंके लिए पृथक् पाठ्य-पुस्तकोंका निर्वाचन तथा परदानशील पार्क आदिकी माँग पेश करने लगीं। इस प्रकार कानफरेन्सका कार्यक्षेत्र व्यापक हो गया।

राउण्ड टेबिल कानफरेन्सके समय महिला कानफरेन्सने वीमेन्स इंडियन एसोसिएशन और नेशनल कौन्सिल आफ इंडियन वीमेनके सहयोगसे एक मन्तव्य तैयार किया, जिसमें भारतीय स्त्रियोंकी कम-से-कम माँगें बताई गई थीं। सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि भारतीय महिलाओंने राउण्ड टेबिल कानफरेन्सके समय और उसके बाद भी बराबर संयुक्त-निर्वाचनकी माँगें दृढ़तापूर्वक पेश की, जब कि पुरुष समाज हिन्दू, मुसलमान, सिख, ईसाई आदिके साम्प्रदायिक कीचड़में फँसा था।

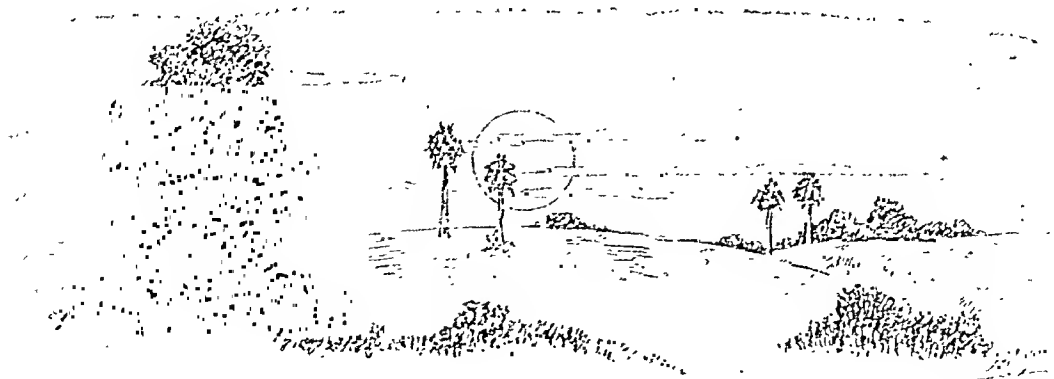
ग्वालियरकी रानी लक्ष्मीबाई राजवाड़े तीन वर्ष तक महिला-कानफरेन्सकी सेक्रेटरी रहीं। उन्होंने कानफरेन्सके कार्यकां काफ़ी आगे बढ़ाया। उन्होंने कानफरेन्सकी आवाज़को भारतीय रियासतों तक पहुँचानेमें मदद की।

मैसूर राज्यने कानफरेन्सकी योजनाके अनुसार एक कार्यक्रम बनाया, जिसके अनुसार पाँच वर्षमें स्त्रियोंमें आधी निज़ारता दूर कर देनेका निश्चय किया गया। वच्चोंसे सम्बन्ध रखनेवाले कानून, लड़कोंकी सज़ा देनेकी अदालतें, गृह-विज्ञानके कालेज आदि बातोंमें कानफरेन्सने काफ़ी प्रभाव डाला है। सरकारकी ओरसे जेनेवाके अन्तर्राष्ट्रीय श्रम-विभागके प्रतिनिधियोंके लिए

कानफरेन्ससे नाम भी माँगे गये थे ; किन्तु उनपर कुछ ध्यान नहीं दिया गया।

कानफरेन्स बराबर अधिकाधिक शक्तिशाली होती जा रही है ; किन्तु अभी तक वह उच्चकोटिकी सुशिक्षित महिलाओंके हाथमें ही है। उसमें वास्तविक शक्ति तभी आयेगी, जब जनसाधारणकी स्त्रियाँ बड़ी तादादमें उसमें शामिल होंगी, उस समय अखिल भारतीय महिला-कानफरेन्स भारतकी सबसे शक्तिशाली संस्थाओंमें होगी। अब तक कानफरेन्सके निम्न अधिवेशन हो चुके हैं :—

अधिवेशन	वर्ष	स्थान	प्रधान
१ ला	१९२७	पूना	महारानी बड़ौदा
२ रा	१९२८	दिल्ली	बेगम साहिबा भूगल
३ रा	१९२९	पटना	रानी साहिबा मंडी
४ था	१९३०	बम्बई	श्रीमती सरोजिनी नाथू
५ वाँ	१९३१	लाहौर	डा० सुथुलक्ष्मी रेड्डी
६ टा	१९३२	मद्रास	श्रीमती पी० के० राय
७ वाँ	१९३३	लखनऊ	लेडी वियागोरी नीलकंठ
८ वाँ	१९३४	कलकत्ता	लेडी अब्दुल क़ादिर
९ वाँ	१९३५	कराची	श्रीमती रुस्तमजी फरीदुंजी
१० वाँ	१९३६	विवेन्द्रम्	महारानी वावनकोर।



मेरी चीन-यात्रा

मिस म्यूरियल लीस्टर

[मिस म्यूरियल लीस्टरके नामसे हमारे पाठक अपरिचित न होंगे । 'विशाल भारत' के दो अंकोंमें उनका और उनकी प्रिय संस्था किंग्सले हालका विवरण निकल चुका है । मिस विलायतकी आदर्शवादी महिलाओंमें अग्रगण्य हैं । आपने अपनी सारी जायदाद, जिससे आपको चार सौ रुपये महीनेसे अधिककी स्थायी आमदनी थी, दीन-हीन आदमियोंके अर्पित कर दी और स्वयं गरीब बन गई ।

आपने भारतवर्षकी भी तीन बार यात्रा की है, और पहली यात्रामें उनका दुभाषिया बनकर आगरे जिलेके ग्रामोंमें घूमनेका सौभाग्य हमें प्राप्त हुआ था । दो बार आपने चीनकी यात्रा की है—एक तो सन् १९३४ में और दूसरी बार १९३५ में । अपने २५।७।३५ के पत्रमें आप लिखती हैं :—

“मैं चीनमें करीब आठ महीने रही । जापान भी गई थी । इस बार जब मैं टोक्यो गई, उस समय वहाँ जापानके सुप्रसिद्ध लेखक कागावा नहीं थे, लेकिन उनकी धर्मपत्नी मिसेज़ कागावा तथा उसके बच्चोंसे मिलनेका सुअवसर मुझे प्राप्त हुआ था । १९३४ में मैंने कागावाके भी दर्शन किये थे और उनका आतिथ्य भी ग्रहण किया था । इस बार मैं सुप्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक डाक्टर कोरासे मिली और उन्होंने तथा श्रीमती हानीने, जो जापानमें स्त्री-शिक्षाकी प्रबल समर्थक हैं, मुझपर बहुत कृपा की थी । चीनमें मैं सरकारी अफसरोंसे मिली और क्रिश्चियन जनरल मार्शल फेंगके भी दर्शन करनेका मुझे सौभाग्य प्राप्त हुआ था । मार्शल फेंग वापूजीके बड़े प्रशंसक हैं । चीनमें अफीम तथा अन्य मादक द्रव्योंके प्रचारकी स्थितिका मैंने अध्ययन किया था । इस बार चीनके ग्रामोंमें रहनेका मुझे मौका मिला था । इस प्रकार मैं चीनी लोगोंके प्रश्नोंके विषयमें काफ़ी जानकारी भी हासिल कर सकी । चीनी लोग अपने ग्रामोंके पुनर्निर्माणके लिए जो आश्चर्यजनक उद्योग कर रहे हैं, उसे मैंने अपनी आँखोंसे देखा है । मैंने उत्तर चीन तथा दक्षिण चीनकी यात्रा की और भीतरी प्रदेशोंमें भी सफर किया । एक अस्थायी आश्रमकी स्थापनाके कार्यमें चीनके दो विद्वानोंकी जो-कुछ सेवा मुझसे और मेरी सहेली ग्लेडीज़ ओविनसे बन सकी, हम दोनोंने की । यह प्रयोग इतना मनोरंजक और आनन्दप्रद सिद्ध हुआ कि इस बार वे लोग फिर आश्रमकी स्थापना कर रहे हैं ।”

जब महात्माजी विलायत गये थे, तो वे आपके ही अतिथि हुए थे, और इसलिए कितने ही आदमी आपको 'गांधीजीकी लन्दनकी मेजवान' (Gandhi's London Hostess) के नामसे पुकारने लगे । आपने कई पुस्तकें लिखी हैं, जिनमें एक 'My host the Hindu' और दूसरी 'Entertaining Gandhi' है । अपने देशके गरीबोंके लिए आप किस लगनके साथ काम कर रही हैं, इसका वृत्तान्त पाठक दिसम्बर १९२६ के 'विशाल भारत' में पढ़ सकते हैं । पर आपका देश-प्रेम कुछ सीमाओंसे परिमित नहीं है । दरअसल आप 'वसुधैव कुटुम्बकम्'के सिद्धान्तकी अनुयायिनी हैं । मिस लीस्टरने विवाह नहीं किया और उनकी सम्पूर्ण शक्ति और समय देश-विदेशके गरीबोंकी सेवामें बीतता है । जब हमने उनका परिचय अपनी सजातीय महिलाओंसे कराया, तो एक महिलाने कहा—“इनसे पूछो कि इनका व्याह हुआ है ?”

मैंने कहा—“नहीं ।”

यह सुनकर उन महिलाओंने कहा—“ऐं इत्ती बड़ी हौं गई और व्याह नाँइ करो !”

मिस लीस्टर यह सुनकर मुसकराई और कहा—“Tell them, I am a worker—इनसे कह दीजिए कि मैं तो एक काम करनेवाली मजदूरनी हूँ ।”

चीन और भारतमें थर्ड क्लासमें सफर करके आपने अनेक अनुभव प्राप्त किये हैं । यात्रा-सम्बन्धी अपने अनुभवोंको आप गश्ती चिट्ठियों द्वारा मित्रों तथा सहयोगियोंके पास भेजा करती हैं । निम्न-लिखित लेख इन्हीं चिट्ठियोंके आधारपर लिखा गया है । —सम्पादक]

जनरल फेंगसे मेरी मुलाकात

चीनी-विश्वविद्यालयके Tsenan नामक स्थानमें मुझे ७२ वर्षकी एक अमेरिकन वृद्धासे मिलनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ । इनका नाम है डाक्टर एम. माइनर । इनके बाल सफेद हो गये हैं ; पर उत्साह ज्यों-का-त्यों बना हुआ है । चीनके स्त्री-समाजमें शिक्षा-प्रचारकी ये पथ-प्रदर्शक हैं, और ४७ वर्षसे ये इसी महत्त्वपूर्ण कार्यमें लगी हुई हैं । कितने ही

स्कूलों तथा कालेजोंकी स्थापना तथा संचालनमें उन्होंने बड़ी मदद दी है। डाक्टर माइनर जैसी महिलाएँ संसारमें विरली ही होंगी। मुझे यह जानकर बड़ी प्रसन्नता हुई कि डाक्टर माइनरका जनरल फेंगसे व्यक्तिगत परिचय है, क्योंकि जनरलकी धर्मपत्नीको डाक्टर माइनरने पढ़ाया था। अतएव उन्हींके साथ मैंने जनरल फेंगसे, जो संसारमें ईसाई जनरल (Christian General) के नामसे प्रसिद्ध हैं, मिलनेका निश्चय किया। इस अमेरिकन वृद्धासे मुझे जनरलके विषयमें अनेक बातें ज्ञात हुईं।

जनरल फेंग चीनी जनताके आदमी हैं। वे एक किसान हैं, इसलिए गरीब आदमियोंके कष्टोंसे भलीभाँति परिचित हैं। जब जनरल फेंग मामूली सिपाहीके तौरपर सेनामें भर्ती हुए थे, उस समय वे शिक्षित नहीं थे। अपने एक साथीके साथ मिलकर उन्होंने एक पलंग खरीदा; पर फेंगको लिखने-पढ़नेसे इतना प्रेम था कि आधी-आधी रात तक खाटपर बैठे-बैठे लिखा करते थे। इससे उनके साथीको बड़ी मुँकलाहट होती थी। वह चिढ़कर उनकी किताबको हिला दिया करता था। फेंगने उस साथीसे कहा—“देखो भई, हमने-तुमने साथ खाट खरीदी है, अगर तुम उसपर आधे हिस्सेमें लेटना पसन्द करते हो, तो मैं अपने हिस्सेमें बैठकर क्यों न पढ़ूँ?”

साथीने जवाब दिया—“हाँ, हमने-तुमने साझेमें खाट ली है, तुम अपने आधे हिस्सेमें बैठकर अध्ययन करते हो, तो मैं अपने आधेमें लेटकर क्यों न मचलूँ?”

साथी खाटको हिलाते-हिलाते तंग आ गया; पर फेंगने पढ़ना न छोड़ा!

जनरल फेंग हमेशा किसानोंकी-सी पोशाक पहनते हैं, और वे और उनके घरवाले सादेसे सादा भोजन करते हैं। उन्होंने अपनी सेनाके अफसरोंको आज्ञा दे रखी है कि वे सिपाहियोंके साथ अपने लड़कों जैसा व्यवहार करें, उन्हें शिक्षित बनावें, उन्हें खिलाकर

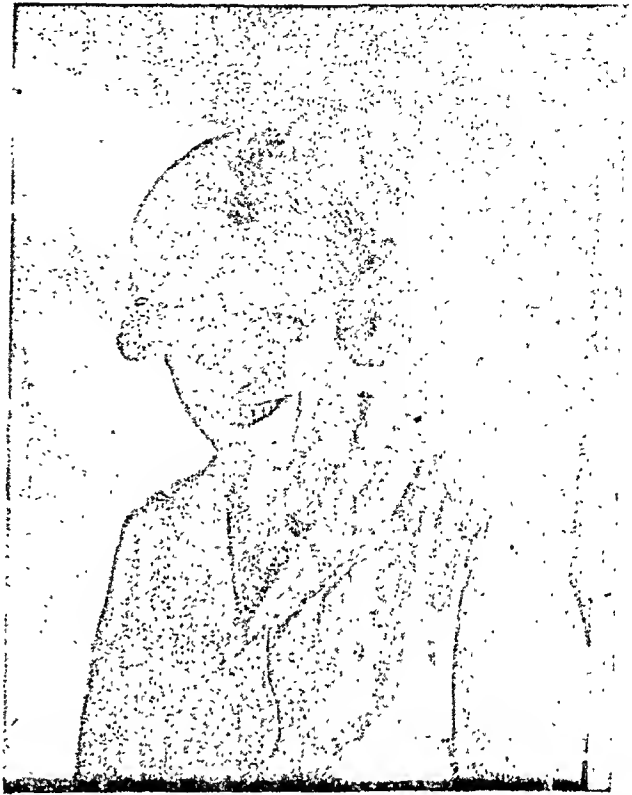
खुद खावें, सुलाकर सोवें। जनरल फेंगका यह हुक्म है कि गाँववालोंसे बिना पैसेके कोई चीज़ न ली जाय।

डाक्टर माइनरने जनरल फेंगको मेरे विषयमें लिखा कि मैं उनके दर्शन करना चाहती हूँ। जनरल साहबने स्वीकृति दे दी और अपने एक निकट सम्बन्धीको हम लोगोंको लेनेके लिए भेज दिया। ट्रेनसे हम तेंशन नामक स्थानके लिए रवाना हुए। वहाँ पहुँचकर रिकशा द्वारा मेथोडिस्ट मिशन तक पहुँचे और रात वहीं गुजारी। सबेरे तेंशन पर्वतकी ओर चल पड़े। यह बड़ा प्राचीन पर्वत है। तीर्थ-यात्री लोग यहाँ ४७०० वर्षसे निरन्तर जाते रहे हैं, और चीनके प्रसिद्ध दार्शनिक कनफ्यूसियसने भी यहाँकी यात्रा की थी। यहाँपर एक हजार सिपाहियों तथा अफसरोंके साथ जनरल फेंग एक प्राचीन मन्दिरमें रहते हैं। ये लोग पेड़-पौधे लगाते हैं, अनाज बोते हैं, तरकारियाँ उगाते हैं, फलोंकी खेती करते हैं, सड़कें बनाते हैं, लिखते-पढ़ते हैं और स्वास्थ्य-सम्बन्धी ज्ञान प्राप्त करते हैं।

जनरल फेंग आये और उन्होंने हमसे हाथ मिलाये। काफी मजबूत लम्बे-चौड़े गम्भीर आदमी हैं। चेहरा उनका अत्यन्त उदास रहता है, मानो अपनी अभागी मातृभूमिके दुःखोंकी घटा उसपर निरन्तर छाई रहती है। डाक्टर माइनरने दुभापियेका काम किया। जनरल फेंग मुझे इतने उदास दीख पड़े कि मैंने उनका ध्यान चीनसे अलग करके उस महत्त्वपूर्ण तथा आशाजनक कार्यकी ओर आकर्षित करना उचित समझा, जो संसारके भिन्न-भिन्न भागोंमें युद्ध, जातियोंके पारस्परिक विद्वेष, साम्राज्यवाद तथा फौजी प्रवृत्तिके विरुद्ध हो रहा है। शान्ति-सेना, युवक शान्ति-संघ, महात्मा गांधी आदिके अनेक क्रिस्से मैंने उन्हें सुनाये। मैंने उन्हें बतलाया कि हमारे मजदूरोंने किस प्रकार जापानके लिए फौजी सामान—गोला-बारूद वगैरह—जहाज़पर लादनेसे इन्कार कर दिया था। साथ ही मैंने निवेदन किया

कि इंग्लैण्डके अखबार हमारी जनताके प्रतिनिधि नहीं हैं, बल्कि वे अल्पसंख्यक शासकोंके विचारोंको प्रकट करते हैं। जब मैंने कहा—“अंगरेज जातिकी होनेके कारण उस पापकी भागिन मैं भी हूँ, जो मेरे देशवासियोंने किये हैं।” तो जनरल फेंगने इस बातको बड़े ध्यानपूर्वक सुना। जब कोई उल्टे-ढोख बात होती, तो जनरल फेंग उसे अपनी नोट-बुकमें लिख लेते थे। उदाहरणार्थ—

‘Importance of building from the bottom upwards.’—‘नीचेकी श्रेणी या धरातलसे लेकर निर्माण-कार्य करनेका महत्त्व।’ ये शब्द उन्हें बहुत पसन्द आये थे। एक घंटे तक बातचीत होती रही। बातचीत समाप्त होनेपर जनरल फेंगने भोजनके समय तक ठहरनेके लिए कहा; लेकिन हमें जल्द ही लौटना था। जनरल फेंगसे मिलनेके बाद मेरे मनमें एक विचार आया, वह यह कि यदि हममें से कोई आदमी मानव-समाजकी सेवा करना चाहे, तो सबसे बड़ा काम वह यह कर सकता है कि संसारके भिन्न-भिन्न देशोंकी साधारण जनताके भाव एक दूसरेके पास पहुँचावे। इसके लिए उन लोगोंके बीचमें जाकर रहना और तमाम कृत्रिम बाधाओंको दूर करके साधारण जनताकी सेवा करना जरूरी है।



मिस म्यूरियल लीस्टर

प्रोफेसर पी० सी० शूका आश्रम

अगस्त सन् १९३५ का महीना था। हम लोग आठ आदमी थे, जिनमें से अधिकांश चीनी थे। पहले सज्जन थे प्रोफेसर पी० सी० शू, जो पहले येनहिंगके सुप्रसिद्ध विश्वविद्यालयमें दर्शनशास्त्रके अध्यापक थे। उन्होंने अपने कार्यसे त्यागपत्र देकर किसानोंके बीचमें रहने तथा ग्राम-संगठन करनेका कार्य अपने हाथमें ले लिया था। दूसरे व्यक्ति थे एक अमेरिकन युवक, जो ग्राम-संगठनका काम करते थे। तीसरे थे वाई० टी० वू। चौथा था क्रिस्टोफर टेंग नामक

चीनी युवक, जिसने अपने कालेजमें फौजी काम सीखनेसे इनकार कर दिया था और कह दिया था कि चूँकि फौजी शिक्षा प्रभु ईसाकी शिक्षाके विरुद्ध है, इसलिए मैं यह नहीं सीखूँगा। नतीजा यह हुआ कि इस लड़केको डिप्लोमा नहीं दिया गया। दस वर्षसे यह युवक अन्तर्राष्ट्रीय मित्रताके कार्यमें लगा हुआ है। पाँचवाँ था कुमार शो, जो एक प्राचीन चीनी कुटुम्बकी सदस्या हैं। इसके सिवा और लोग भी हमारे आश्रममें आते-जाते थे। आश्रम छोटा-सा ही था; लेकिन अपने वन्धुओंके साथ रहने और मिल-जुलकर सभी काम करनेमें बड़ा आनन्द आता था। खाना बनानेमें बड़ी दिहृङ्गी रहती थी। चीनी लोग हमें चावल बनानेकी कला सिखलाते थे और मेरी सहेली ग्लेडीज़ ओविन टमाटर और नींबूका मार्मलेड



मिस लीस्टर चीनी वेशमें

बनाना, सिखाती थीं। झाड़ू देना, सफाई करना, वर्तन साफ करना, कपड़े धोना और पाखाना साफ करना इत्यादि कार्य दिनके प्रोग्राममें सम्मिलित थे। हमारा आश्रम कलिंग पर्वतपर है, जो समुद्रकी सतहसे साढ़े तीन हजार फीटकी ऊँचाईपर है। उसके ऊपरसे कितने ही भील और द्वीप दीख पड़ते हैं। रेलवे स्टेशनसे यह स्थान चौदह मील दूर है। यहाँसे न कोई सड़क दीख पड़ती है, न कोई मकान और न कोई जानवर। सवेरे पाँच बजे चिड़ियोंके मधुर चहचहानेसे हमारी नींद खुल जाती थी। साढ़े पाँच बजे हम अपने बराण्डेमें बैठकर सूर्योदय देखते थे। सूर्योदयके समय भीलका रंग लाल हो जाता है; पर

बादलोंके कारण प्रायः यह सुन्दर दृश्य हमारी आँखोंसे ओझल हो जाया करता था। ६ बजे हम सब मिलकर प्रार्थना करते थे और फिर आध घंटेके लिए हम लोग अपनी प्रार्थना अलग करनेके लिए अपने कमरोंमें चले जाते थे, अथवा पहाड़पर घूमने निकल जाते थे। फिर घरेलू काम शुरू होता था। नित्यप्रति स्वाध्याय और वाद-विवाद होता था। कभी आश्रममें बैठकर, तो कभी पहाड़पर घूमते हुए हमारा वाद-विवाद चलता था। यह आश्रम प्रयोगके तौरपर था। स्थानीय गिरजाघरके पादरी साहब हमारे आश्रमके बड़े उत्साही सदस्य थे। बहुत वर्षोंसे उनका यह विश्वास है कि चीनमें ईसाई संस्थाओंका पुनर्संगठन होना चाहिए, जिससे उनमें राष्ट्रीय भावनाओंका प्रवेश किया जा सके। इन पादरी साहबका विश्वास है कि यहाँ स्थायी रूपसे एक आश्रमकी स्थापना करना कुछ कठिन न होगा। विदेशी होते हुए भी इस चीनी आश्रमका सदस्य होना वास्तवमें मेरे लिए बड़े गौरवकी बात थी।

चीनमें जापानियोंकी करतूत

चीनमें जिन स्थानोंमें जापानियोंका आधिपत्य-सा हो गया है, वे निग्रक्ष क्षेत्र (Demilitarised Zone) कहलाते हैं। ऐसे ही एक स्थानपर एक चीनी शिक्षक अपने स्कूलके छोटे-छोटे बच्चोंको जापानके नन्हें बच्चोंका चित्र दिखला रहा था।

शिक्षकने पूछा—“कहो बच्चो, ये नन्हें-नन्हें बच्चे बड़े प्यारे लगते हैं या नहीं?”

बच्चोंने जवाब दिया—“ज़रूर-ज़रूर, ये तो बड़े प्यारे लगते हैं।”

शिक्षकने पूछा—“जानते हो कि ये कहाँके बच्चे हैं?”

बच्चोंने अपनी अकल खूब लड़ाई; पर किसीका अन्दाज़ ठीक नहीं बैठा।

तब शिक्षकने कहा—“अच्छे, ये लड़के जापानके हैं।”

चीनी बच्चे इस बातको सुनकर आश्चर्यमें आ गये।

उन्होंने कहा—“ऐसा हो नहीं सकता। जापानी लोग तो बड़े दुष्ट होते हैं। १९३६ दिन ग्विवारके समय जब कि हम गिरजेमें थे, हमारे चांगों और जापानियोंने हम गिराये थे। हमारे स्कूलके खेलनेकी जगहको उन लोगोंने अपने बड़े बर्बरकर अस्तबल बना दिया था और हमारे घर खगात्र कर दिये थे। ये लड़के जापानी हो ही नहीं सकते, क्योंकि जापानी तो बड़े दुष्ट होते हैं।”

तब शिक्षकने कहा—“अच्छा, इस बारेमें तुम लोग आपसमें विचार करके तय करो। दो बात खयाल रखो, एक तो यह कि तुम इन बच्चोंको ‘बड़े प्यारे’ कह चुके हो और दूसरी यह कि ये बच्चे दर असल जापानी ही हैं।”

चीनी बच्चे आपसमें बड़ी देर तक वाद-विवाद करते रहे और फिर इस परिणामपर पहुँचे—“शायद बात यह होगी कि जापानके लड़के-लड़कियाँ बड़े प्यारे हैं; जो उम्रके बड़े हैं, वे ही दुष्ट हैं।”

मुझे यह जानकर अत्यन्त हर्ष हुआ कि चीनके ऐसे अनेक प्रतिष्ठित नागरिकोंने, जिनमें आध्यात्मिक भावना पाई जाती है, अपने नवयुवकोंको यह समझानेकी कोशिश की है कि जापानमें साधारण जनता सद्भावयुक्त है और उसे उन अन्यायोंका पता भी नहीं है, जो उसके नामपर जापानी सैनिक किया करते हैं।

मेरे दिलको बड़ा धक्का लगा, जब मैंने देखा कि चीनकी येनचिंग-यूनिवर्सिटीकी दीवारोंके बिलकुल समीप ही एक जापानी दुकानदारने अफीम तथा उससे बनी हुई भयंकर नशीली चीजोंको बेचनेकी दुकान खोल रखी है! जब उस दुकानदारसे कहा गया कि अपने इस विषैले व्यापारको यहाँसे उठा लो, यह कानूनके भी विरुद्ध है, तो उसने कहा—‘मैं जापानी हूँ और



आश्रममें मिस लीस्टर पाखानेका वर्तन साफ कर रही है

जापानी नागरिक होनेके कारण मेरा यह अधिकार है।’ विश्वविद्यालयके मेम्बरों तथा अन्तर्राष्ट्रीय ख्यातिके विद्वानोंने बहुत प्रयत्न किया कि वह अफीमका व्यापारी वहाँसे हट जाय; लेकिन एक व्यापारीके सामने उन विद्वानोंकी एक न चली। जब जापानी राजदूतके कानों तक यह बात पहुँचाई गई, तो उसने अपने देशवासी व्यापारीको आज्ञा दी कि तुम यहाँसे हट जाओ। वह वहाँसे चला गया; पर सात दिन बाद वह फिर लौट आया और जहाँ-का-तहाँ मौजूद था! मैंने उसे अपनी आँखोंसे इस विषैले व्यापारको करते हुए देखा था।

जब मैं जापान गई थी, तो वहाँके आदमियोंकी विनम्रता देखकर मुझे अत्यन्त हर्ष हुआ था। जापानकी एक घटना मुझे खास तौरसे याद आ रही है। मैं मोटरकारमें बैठी हुई जा रही थी कि एक मोड़पर मेरी मोटर दूसरी ओरसे आनेवाली मोटरसे टकराती-टकराती बची। अगर यह घटना इंग्लैण्डमें होती, तो मोटर-ड्राइवर लोग एक दूसरेपर कुछ व्यंगात्मक वाक्य कसते, नागाज होते और पारस्परिक गाली-गलौजकी भी नौबत आ जाती; पर जापानका इन मामलोंमें आदर्श ही दूसरा है। ज्यों ही दोनों मोटरकारोंके ड्राइवरोंने ब्रेक दवाके मोटरें रोकीं, दोनों ही अपने-अपने स्थानपर उठ खड़े हुए, अपनी टोपियाँ उन्होंने उतारीं और बड़ी आजिजीसे जमीन तक झुक गये, एक दूसरेके प्रति कुछ विनम्र निवेदन किया और अपने-अपने रास्तेपर मोटर आगे बढ़ाई! लेकिन ये ही जापानी लोग चीनमें जाकर अपने जातीय आदर्श और अपनी सारी विनम्रता भूल जाते हैं। चीनमें एक बन्दरगाहपर कोई प्रतिष्ठित विदेशी अतिथि आनेवाला था और उसके स्वागतके लिए अनेक विदेशी जातियोंके प्रतिनिधि तथा चीनी आदमी इकट्ठे हुए थे। चीनी पुलिसने रस्ती बाँधकर थोड़ी-सी जगह घेर ली थी, जिससे भीड़-भम्मड़ न हो। एक जापानी अफसर महाशय देरसे आये और खड़े होनेके लिए कोई खास जगह उन्हें नहीं मिल सकी, इसलिए हज़रत सीधे उस जगह पहुँचे, जहाँ पुलिसने बेरा डाल रखा था। पुलिसने कहा कि इधरसे रास्ता नहीं है; पर तमाम प्रतिष्ठित आदमियोंके सामने वह आदमी बड़ी घृष्टतापूर्वक यह ज़िद करता रहा कि नहीं मुझे बीचमें से ही निकल जाने दो!

जापान-यात्रा करनेमें मुझे बड़ा आनन्द आया। सारा कार्य सुव्यवस्थित था। ट्रेन वक्तपर पहुँचती और वक्तपर ही छूटती थी। पर चीनके 'निरस्त्र क्षेत्र' में, जहाँ जापानियोंका आधिपत्य-सा है, मैंने

दूसरा हाँ मामला देखा। मैं तीसरे दर्जेकी जिस गाड़ीमें सफर कर रही थी, उसमें एक जापानी सिपाही आ चुका। चीनी गार्डने टिकट माँगा; पर टिकट उसके पास था नहीं। उसने कहा—“मैं फौजी आदमी हूँ।”

तब गार्डने कहा—“तब टिकट आपका कहाँ है?”

उस जापानी सिपाहीने जवाब दिया—“मेरे पास फौजी पास है।”

पर पास उस जापानीने दिखलाया नहीं। तब गार्डने नम्रतापूर्वक उससे कहा—“आप गलत ट्रेनपर आ गये हैं। फौजी पाससे आप इस ट्रेनसे यात्रा नहीं कर सकते, किसी दूसरी ट्रेनसे सफ़र कर सकते हैं।”

उस जापानी सिपाहीने जवाब दिया—“कुछ भी क्यों न हो, यहाँ जगह तो काफी है।”

और फिर वह सिपाही बड़ी बेतल्लुकीसे उसी डिब्बेमें बैठकर यात्रा करने लगा!

चीनमें जापानी आक्रमणके भयके साथ-ही-साथ एक भय और है, वह है अफीमके आक्रमणका। 'निरस्त्र क्षेत्र' में जाँच करते वक्त मैंने १५७ जापानी और कोरियन दुकानोंके नाम तथा पते लिखे थे, जो केवल एक प्रान्तमें अफीमका व्यवसाय करते हैं। इन अफीमकी दुकानोंके साथ-ही-साथ कितने ही वेश्यालय, जुआवर और गहने गिरवी रखनेकी दूकानें भी हैं। जापानमें वेश्यालयोंको लैसन्स दिया जाता है, और फिर वे अपना कुत्सित व्यापार कर सकते हैं। इस अनैतिक प्रथाके विरुद्ध वहाँके सामाजिक कार्यकर्ता घोर आन्दोलन कर रहे हैं; लेकिन चीनके 'निरस्त्र क्षेत्र' में जापानियों तथा कोरियनों द्वारा संचालित वीसियों वेश्यालय हैं। मैंने खुद अपनी आँखोंसे कितने ही वेश्यालय देखे हैं, जो बड़ी वेशर्मीके साथ अपना विज्ञापन करते हैं! चीनी भाषामें तो इन घरोंपर वेश्यालय लिखा ही रहता है; पर अनेक स्थानोंमें अंगरेज़ी शब्दोंका प्रयोग भी

किया गया है। एक जगह लिखा था—“Korean Whore House”—कोरियन वेश्यालय !

—

चीनकी सात-आठ महीनेकी यात्रा में मुझे अनेक बार भारतवर्षकी याद आई। चीनके कितने ही भागोंमें मुझे वहाँके किसानोंके साथ रहनेका अवसर मिला था। उनके मिट्टीके बने घरोंमें उनका आतिथ्य ग्रहण करनेका सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ था, और इस प्रकार मैं उनके निकट संसर्गमें आ सकी। मैंने चीनी लोगों द्वारा किये हुए ग्राम-संगठन-सम्बन्धी कार्यको, जो अब जगह-जगह होने लगा है, देखा था, और उससे मुझे हार्दिक हर्ष हुआ। महात्मा गांधीने मेरी चीनकी यात्राके पहले कहा था कि अपने चीन-सम्बन्धी अनुभव मुझे बराबर लिखते रहना। इस वजहसे और भारतवर्षके प्रति मेरे हृदयमें जो प्रेम है, उसके कारण भी मैं दोनों देशोंके—यानी चीन और जापानके—रीति-रिवाजोंकी तुलना करती रही। चीनी लोगोंके धैर्यको देखकर आश्चर्य होता है। वे लोग कभी अपने दुःखोंका रोना नहीं रोते और न आनेवाली आपत्तियोंकी शिकायत ही करते हैं। ‘हाय मेरे ! हाय मेरे !’ कहकर वे अपनी शक्ति तथा समयका दुरुपयोग नहीं करते। पिछली बारकी बाढ़ने चीनके ५ करोड़ आदमियोंको तबाह कर दिया। यांगट्सी नदीपर कितने ही दिन तक नावमें यात्रा करनेका मौका मुझे मिला था। मैंने पानीमें डूबे हुए खेत और ग्राम मीलों तक देखे। यह देखकर मुझे आश्चर्य हुआ कि ज्यों ही पानी थोड़ा हटता था, त्यों ही चीनी लोग ग्राम बसाना और अपनी भोपड़ी बनाना प्रारम्भ कर देते थे। स्काटलैण्डके मेरे एक मित्रने, जो बहुत

दिनोंसे चीनमें रह रहे हैं, मुझसे कहा —“जितने आदमी शराब पीते हुए मैंने अपने देश (स्काटलैण्ड) में दो दिनमें देखे, उतने मैंने चीनमें ४५ वर्षमें भी नहीं देखे !

चीनमें ‘नवजीवन-आन्दोलन’ (New Life Movement) चल पड़ा है। मार्शल चियांग-काई शेकने इस आन्दोलनका प्रारम्भ किया है। इस आन्दोलनका मुख्य उद्देश है चीनी समाजके दैनिक जीवनमें विनम्रता, सफाई और स्वास्थ्यका संचार करना। पूर्व और पश्चिम दोनोंकी अच्छी-अच्छी बातोंका सामंजस्य करते हुए देशका हित करना इस आन्दोलनका लक्ष्य है। चीनकी जो ख़बरें प्रायः पत्रोंमें छपा करती हैं, उनमें उस रचनात्मक कार्यका, जो पिछले छै-सात वर्षसे वहाँ हो रहा है, जिक्र ही नहीं होता ! मैं इस बातको मानती हूँ कि चीनके कितने ही भागोंमें बड़ी कुव्यवस्था पाई जाती है और उसके समाचार तो समाचारपत्रोंके पाठकोंको भरपूर मिला करते हैं ; लेकिन जीवनके भिन्न-भिन्न भागोंमें चीनी लोग जो आश्चर्यजनक रचनात्मक कार्य कर रहे हैं, उसकी ख़बर लोगोंके कानों तक पहुँचती ही नहीं। चीनी लोग स्वावलम्बनके लिए संसारमें प्रसिद्ध हैं ; पर उनमें एक दोष रहा है कि वे व्यक्तिवादी हैं, अपनी खिचड़ी अलग पकानेके पक्षपाती हैं। पर अब वे इस दोषसे अपनेको मुक्त करते जाते हैं और सहयोगकी महिमाको समझते जाते हैं। यद्यपि चीन अत्यन्त संकटमय स्थितिमें से गुज़र रहा है, तथापि शिक्षा-सम्बन्धी, सामाजिक और ग्राम-संगठन-सम्बन्धी क्षेत्रोंमें जो कार्य चीनी लोग कर रहे हैं, उसकी जितनी प्रशंसा की जाय, थोड़ी होगी।



पतिव्रता जयिनी

वनारसीदास चतुर्वेदी

“वन, यह खयाल मत करना कि इन छोटे-छोटे कष्टों के कारण मैं हिम्मत हार बैठी हूँ। मुझे यह अच्छी तरह मालूम है कि मैं अंकली ही तकलीफ़ में नहीं हूँ। दुनिया में लाखों आदमी मुझसे कहीं अधिक कष्ट पा रहे हैं, बल्कि मैं तो यह कहूँगी कि इन तमाम दुःखों के होते हुए भी मैं बड़ी सौभाग्यशालिनी हूँ। दर असल मैं अपनेको बड़ी सुखी मानती हूँ, क्योंकि मेरे प्रिय पति, जो मेरे जीवन के आधार हैं, बराबर हर वक्त मेरे साथ हैं। पर एक बात है,

साम्यवाद के प्रवर्तक कार्ल मार्क्स की धर्मपत्नी जयिनी ने उपर्युक्त पत्र अपनी एक सहेली को लिखा था। अब उन ‘छोटे-छोटे कष्टों’ का भी हाल सुन लीजिए, जो इस दम्पतिको उठाने पड़ रहे थे।

उन दिनों कार्ल मार्क्स लन्दन में रह रहे थे। डीन स्ट्रीट के नं० २८ में दो छोटे-छोटे कमरों में अत्यन्त निर्धन आदमियों की वस्ती में अपने तमाम बाल-बच्चों के साथ छे वर्ष तक उन्हें रहना पड़ा था। एक शयन-गृह और दूसरा बैठक-खाना,



जयिनी और मार्क्स की समाधि

जिसके बोझ से मेरी अन्तरात्मा दबी जा रही है और जिससे मेरा हृदय विदीर्ण हो रहा है, वह यह कि मेरे पतिको इतनी अधिक चिन्ता करनी पड़ती है और इतनी तकलीफ़ उठानी पड़ती है। अत्यन्त भयंकर दुःखमय स्थिति में भी वे आत्म-विश्वास नहीं खोते, भविष्य के लिए आशा करते हैं, हमेशा हँसमुख बने रहते हैं और हँसी-मज़ाक करते रहते हैं। मुझे प्रसन्नचित्त देखकर उन्हें बड़ी खुशी होती है, और जब वे प्यारे बच्चों को मेरे चारों ओर किलकारियाँ मारते हुए देखते हैं, तो उनका हृदय प्रफुल्लित हो उठता है।”

रसोईघर और पढ़ने-लिखने के कमरे का काम देता था। आर्थिक संकट का क्या कहना है। कार्ल मार्क्स के जीवन-चरित में ई० वी० कार नामक लेखक ने लिखा है— “कितने ही अवसर ऐसे आते थे, जब कि घर में एक पेंनी भी नहीं रहती थी और बाल-बच्चों के साथ भूखों मरने की नौबत आ जाती थी। मकान-मालिक और दुकानदारों के तकाजों के मारे नाकॉदम थी। हर घड़ी बोई-न कोई खड़ा रहता था। दरवाज़े पर आवाज़ आती रहती थी—‘मार्क्स, थो मार्क्स, हमारे दाम अभी तब नहीं पहुँचे, हिसाब कब तक साफ़

करोगे ?' वच्चे भी इस स्थितिको समझ गये थे और वे यह जवाब देना भी सीख गये थे—'मिस्टर मार्क्स घरपर नहीं हैं, कहीं बाहर गये हुए हैं।' कभी इस दुकानदारसे रुपया उधार लाते, तो कभी उससे। कभी किसी दोस्तका दरवाजा खटखटाते, तो कभी किसी बौद्धके यहाँ अपनी स्त्रीका गहना गिरवी रखने जाते। एक चिट्ठीमें कार्ल मार्क्सने लिखा था—'For the last fortnight I have had to run about for six hours a day in order to raise six pence for some food.' अर्थात्—'पिछले पन्द्रह दिनोंमें मुझे नित्यप्रति छे-छे पेंटे इधर-उधर दौड़ना पड़ा है, जिससे कहींसे छे आने पैसे जुटाकर अपने बाल-बच्चोंके तथा अपने पेटमें कुछ डाल सकूँ।' कभी-कभी तो उन्हें लिखनेके लिए कागज लानेके वास्ते अपना ओवरकोट भी गिरवी रखना पड़ता था।''

फरवरी सन् १८५२ में कार्ल मार्क्सने अपने परम मित्र ऐंजिल्सको लिखा था—“पिछले हफ्ते-भरसे मेरी हालत बड़े मज़ेकी रही है। सर्दीके मारे घरसे निकला नहीं जाता, क्योंकि ओवरकोट तो गिरवी रखे हुए हैं और गोश्त भी खानेको नहीं मिलता, क्योंकि कसाईने उधार देनेसे इनकार कर दिया है।... इस बीचमें एक ही खुशखबरी सुनाई दी है, वह यह कि आखिर मेरे चचिया ससुर साहब वीमार हैं। सालीकी चिट्ठीमें यह शुभ समाचार आया है। अगर ये मनहूस चल बसे, तो मेरी स्त्रीको कुछ पैसा मिल जायगा और मेरा इस संकटसे उद्धार हो जायगा।” पर चचिया ससुर साहबको अपने भाईके दामादकी इस प्रकार सहायता करनेकी जल्दी नहीं थी।

सारे कुटुम्बके भूखों मरनेकी नौबत आ गई थी। कभी-कभी उन्हें भोजनके लिए केवल रोटी ही मिलती थी, और उसमें भी मार्क्सको अपना भाग छोड़ देना पड़ता था, जिससे बच्चोंको भर-पेट भोजन मिल सके। भूख और जाड़ेसे चेतनाहीन-से होनेपर भी कार्ल मार्क्स ब्रिटिश म्यूज़ियममें जाकर अध्ययन करते थे और सामयिक पत्रोंके लिए लेख लिखकर, जिनका पारिश्रमिक बहुत थोड़ा मिलता था, वे कुछ पैसा कमा लेते थे और अपनी गुज़ार करते थे। निर्धनतासे अत्यन्त तंग आकर उन्होंने रेलके दफ्तरमें क्लर्कके लिए अर्ज़ी दी; पर हस्ताक्षर खराब होनेके कारण वह भी नामंजूर हो गई।

बादमें वे 'न्यूयार्क ट्रिब्यून' का लन्दनके संवाददाता नियुक्त हुए। इससे उन्हें एक पौण्ड प्रति सप्ताह मिल जाता था। वर्षों तक इसी अल्प आयपर सारे परिवारको गुज़ार करनी पड़ी थी। लन्दन-जैसे महानगरमें एक पौण्डकी नाममात्रकी ग्रामदनीसे क्या हो सकता था, इसका अनुमान पाठक खुद ही कर सकते हैं।

श्रीमती जयिनी मार्क्सने अपने एक पत्रमें लिखा था—“हम लोगोंके विषयमें कोई यह नहीं कह सकता कि हमने वर्षों तक जो त्याग किये थे, अथवा जो-जो बातें सही हैं, उनका कभी दिंदोरा पीटा हो। हमारे व्यक्तिगत मामलों और दिक्कतोंकी खबर बाहर बिलकुल नहीं गई, अथवा यदि गई भी तो बहुत थोड़ी। अपने पत्रका राजनैतिक सम्मान बचानेके लिए और अपने मित्रोंकी नागरिक सम्मानकी रक्षाके लिए मेरे पतिने सारा बोझ अपने कंधोंपर उठा लिया। उन्होंने अपनी सारी आय खर्च कर दी और विदा होते समय सम्पादकोंका वेतन तथा अन्य बिल चुकाये, और वे ज़बरदस्ती अपने देशसे निकाल बाहर किये गये। तुम जानते हो कि हमने अपने लिए कुछ नहीं रखा। मैंने फ्रांकफुर्ट जाकर अपने चाँदीके अन्तिम वर्तन गिरवी रखे थे और कोलोनमें अपना फर्नीचर बेचा था।.....तुम लन्दनकी और वहाँकी अवस्थाको काफ़ी अच्छी तरह जानते हो। तीन बच्चे थे और चौथा उत्पन्न होनेवाला था। केवल किरायेमें प्रतिमास ४२ शेलर चले जाते थे। हमारी जो-कुछ थोड़ी जमा-पूँजी थी, वह शीघ्र ही विला गई। दूध पिलानेवाली धायके रखनेका सबाल कल्पनासे परे था, इसलिए मैंने अपना ही दूध पिलाकर बच्चेका पालना निश्चय किया, यद्यपि मेरी छाती और पीठमें बराबर भयानक दर्द रहता था। परन्तु उस नन्हें-से बच्चेने चुपचाप मेरी चिन्ताओंको इतना अधिक पी लिया था कि पैदाइशके दिनसे ही वह वीमार-सा था। वह दिन-रात पीड़ासे व्यथित पड़ा रहता था।.....इस प्रकार एक दिन मैं वैठी हुई थी कि इतनेमें अचानक मकानवाली आई। उसे हम जाड़ेमें २५० शेलर दे चुके थे और अब यह करार हुआ था कि भविष्यमें हम लोग किराया मकान-मालिकको दिया करेंगे। उसने इस इकरारेसे इनकार कर दिया और पाँच पौण्ड जो किरायेके थे, माँगने लगी। चूँकि हम लोग

उसी समय किराया न दे सके, इसलिए दो कान्स्टेबिल घुस आये। उन्होंने हमारी बची-बची चीजोंको—चारपाई, कपड़े, विद्युत, यहाँ तक कि मेरे छोटे बच्चेका पालना और मेरी दोनों लड़कियोंके, जो पास खड़ी हुई फूट-फूटकर रो रही थीं, खिलौने तक—कुर्क कर लिया। उन्होंने यह भी धमकी दी कि दो घंटेके भीतर वे प्रत्येक वस्तु उठा ले जायेंगे। मैं कठोर भूमिपर अपने सदीसे गलते हुए बच्चोंको लिये पड़ी थी। दूसरे दिन हमें घरसे निकलना पड़ा। पानी बरस रहा था, ठंड पड़ रही थी और चारों ओर मनहूसी छाई थी। मेरे पति सवेरेसे ही कमरोंकी तलाशमें गये थे; परन्तु चार बच्चोंकी बात सुनकर कोई भी हमें रखनेको राजी न होता था। अन्तमें एक सिवने मदद की। दवाखानेवाले, रोटीवाले, मांसवाले और दूधवालेका दाम चुकानेके लिए मैंने अपने विस्तर बेच डाले। मकानवालीके फागडसे ये सब ढर गये थे और सवने फौरन ही अपने-अपने विल पेश कर दिये थे। विद्युतने फुट-पाथपर लाकर एक गाड़ीपर लाद दिये गये। हम लोगोंके पास जो-कुछ था, उसे बेचकर हम लोगोंने पाई-पाई चुका दी।”

इस भयंकर गरीबीकी हालतमें इस दम्पतिके कई बच्चे पैदा हुए। मार्क्स बड़े प्रेमी पिता थे। वे कहा करते थे—
“Children have to bring up their parents.”
अर्थात्—‘माता-पिता बच्चोंका पालन-पोषण थोड़े ही करते हैं, बल्कि बच्चे माता-पिताका पालन-पोषण करते हैं।’ अपने प्यारे बच्चोंको वे बड़े प्रेमसे पालते थे। हर एक बच्चेका उन्होंने प्रेमका नाम रख छोड़ा था। अत्यन्त संकटमय स्थितिमें भी उन्होंने हिम्मत नहीं हारी थी; पर गरीबीके कारण जिस मुहल्लेमें उन्हें रहना पड़ता था, वह अत्यन्त गन्दा था और उसकी आवहवा इतनी खराब थी कि बच्चे हमेशा बीमार ही रहा करते थे। इन बच्चोंको भूखी मा कहीं तक अपना दूध पिलाती। विचारे एक-एक करके इस दुःखमय संसारसे चलने लगे। इस प्रकार आधे बच्चे अपने माता-पिताको रुलाकर चल बसे। मार्क्सके जीवन-चरित-लेखक मि० जे० स्वारगोने लिखा है—“मार्क्सका चौथा बच्चा हेनरी, जो लन्दनमें उत्पन्न हुआ था, जन्मसे ही दरिद्रताके क्रूर दैत्यके श्रापका भाजन था और उसे छोटी-बचपनामें ही मृत्यु बदी थी, जो सहस्रों ही

बच्चोंके भाग्यमें लिखी रहती है।” यह पहला ही अवसर था, जब मृत्युने मार्क्सके चुद्र-घरमें प्रवेश किया था। माता-पिताको यह चोट और भी गहरी लगी, क्योंकि वे जानते थे कि उनके नन्हें बच्चेकी, जिसने चुना-पीड़ित माताके स्तनोंका रक्त पिया था, वास्तवमें दरिद्रताने हत्या की थी।”

इसके बाद सन् १८५२ की वसन्तऋतुमें इस दुःखी दम्पतिकी छोटी कन्या फ्रान्सिस्काकी मृत्यु हो गई। जयिनीकी डायरीमें उस समयकी भयंकर दरिद्रताका इस प्रकार उल्लेख है :—

“इसी वर्ष ईस्टरमें—१८५२—हमारी बेचारी छोटी फ्रान्सिस्का कंठनालीके भयंकर प्रदाहसे चल बसी। तीन दिन तक बेचारी मृत्युसे संघर्ष करती रही। उसका छोटा मृत शरीर पीछेके छोटे कमरेमें पड़ा था। हम सब आगेके कमरेमें चले आये। रातमें हम लोग उसी कमरेके फर्शपर सोये। मेरी तीनों जीवित सन्तानें मेरे पास लेटीं। हमारी बच्चीकी मृत्यु उस समय हुई, जब हमारी दरिद्रताका सबसे बुरा समय था। हमारे जर्मन मित्र हमारी सहायता नहीं कर सके। अन्तमें आत्म-वेदनासे वसित होकर मैं एक फ्रेंच निर्वासितके पास गई, जो समीप ही रहता था और कभी-कभी हमारे यहाँ आता था। मैंने उससे अपनी दारुण आवश्यकता बतलाई। उसने तुरन्त ही बड़ी मित्रतापूर्ण सद्दानुभूतिसे मुझे दो पौण्ड दिये। इसीसे हमने अपनी प्यारी बच्चीके कफ़न (तावूत) के दाम चुकाये, जिसमें वह शान्तिपूर्वक सुला दी गई।”

इसके बाद जयिनीका आठ वर्षका इक्कीता बेटा एडगर, जिसे मार्क्स प्रेमके नामसे यानी ‘मश’ कहकर पुकारा करते थे, मन्द ज्वरसे चल बसा। इस भयंकर वज्रपातको मार्क्स भी, जो स्वभावतः बड़े धैर्यशाली थे, सहन नहीं कर सके। मार्क्स कभी किसीके सामने अपना दुखड़ा नहीं रोते थे; पर पुत्र-शोकने उनको भी विचलित कर दिया। उन्होंने उसकी मृत्युके तीन महीने बाद अपने एक मित्रको लिखा था—

“Bacon says that men of real worth have so many relations with nature and the world, so many objects of interest, that they easily get over any loss. I am not one of these men of worth. The death of my child has profoundly shattered my heart and brain, and I feel the loss just as fresh as on the first day. My wife is also quite broken down.”

अर्थात्—“वेकनने लिखा है कि जो आदमी वास्तवमें सुयोग्य होते हैं, उनके प्रकृति तथा संसारसे इतने अधिक सम्बन्ध होते हैं और उनकी रुचि इतनी अधिक वस्तुओंमें होती है कि किसी भी क्षति या हानिको वे आत्तानीसे सहन कर लेते हैं ; पर मैं तो उन सुयोग्य व्यक्तियोंमें से नहीं हूँ। लड़केकी मृत्युने मेरे हृदय तथा मस्तिष्कको बिलकुल ही चकनाचूर कर दिया है और आज भी वह क्षति मेरे लिए उतनी ही ताज़ी है; जितनी कि पहले दिन थी। मेरी स्त्रीका भी स्वास्थ्य बिलकुल नष्ट-हो गया है।”

इस दुर्घटनाने जयिनीको तो बिलकुल पागल-सा ही बना दिया था। बहुत वर्षों बाद तक उसकी हृक उनके कलेजेमें व्याप्त रही। इस वज्रपातके बीस वर्ष बादके एक पत्रमें जयिनीने बड़े ही कठणाजनक ढंगसे लिखा था—“मैं इस बातको खूब अच्छी तरह जानती हूँ कि इस प्रकारके भयंकर वज्रपातोंको सहन करना कितना कठिन है और फिर इनके बाद अपने मस्तिष्कको ठीक-ठिकाने लानेमें कितनी देर लग जाती है। उस समय जीवनकी छोटी-छोटी प्रसन्नताओं, बड़ी-बड़ी फ़िक्रों, नित्यप्रतिके घरेलू काम-धन्धों और दैनिक भ्रमोंसे पीड़ित व्यक्तिको बड़ी मदद मिलती है। तत्कालीन छोटे-छोटे कष्टोंकी वजहसे वह महान दुःख थोड़ी देरके लिए सो जाता है, और बिना हमारे पहचाने उसकी पीड़ा दिनोंदिन मन्दतर होती जाती है। यह तो मैं नहीं कहूँगी कि घाव भर जाता है। घाव तो कभी नहीं भरता—खास तौरसे माके हृदयका घाव तो कभी नहीं पूरता। लेकिन क्रमशः हृदयमें एक प्रकारकी नवीन ग्रहणशक्ति उत्पन्न होने लगती है, नवीन कष्टों और नवीन प्रसन्नताओंके स्वागतके लिए एक भावना-सी पैदा होने लगती है। इस प्रकार उस पीड़ित व्यक्तिके दिन-पर-दिन बीतते जाते हैं। उसका हृदय धायल तो रहता ही है ; पर उसमें नवीन आशाओंका संचार निरन्तर होता रहता है। अन्तमें सारा मामला शान्त हो जाता है और अनन्त शान्ति मिल जाती है।”

* I know only too well how hard it is and how long it lasts before one finds one's balance after such losses. Life comes to our help with its little joys and its big cares, with all its little daily drudgeries and daily vexations; the greater pain is dulled by the little suffering of the hour, and without our noticing it the ache grows fainter. Not that the wound is ever healed, especially not in a mother's heart. But little

संसारके निर्धन पीड़ित व्यक्तियोंको जयिनीके उपर्युक्त वाक्योंसे अवश्य ही बड़ी सान्त्वना मिल सकती है।

बाल्यावस्था और प्रेम

जयिनीका जीवन-चरित किसी उपन्याससे कम मनोरंजक और हृदयवेधक नहीं है। उसका जन्म एक बड़े साधन-सम्पन्न परिवारमें हुआ था। उसका पिता प्रशियामें एक अत्यन्त उच्च पदपर था। वह मार्क्सकी बड़ी बहन सोफीके साथ एक स्कूलमें पढ़ती थी, इसलिए कभी-कभी सोफीके पास घर आया करती थी। वस, यहींसे प्रेमका अंकुर उगना शुरू हुआ। जयिनीकी उम्र बाईस वर्षकी थी, जब कि कार्ल मार्क्स कुल अठारह वर्षके ही थे। कुछ दिनों तक तो यह प्रेम छिपा रहा, और लोग यही समझते रहे कि जयिनी अपनी सहेली सोफीके पास यों ही आती-जाती है; पर प्रेमकी आँखें कब तक छिपाये छिप सकती हैं? मार्क्सके माता-पिताको इस बातका पता लग गया; लेकिन जयिनीको इतनी हिम्मत न हुई कि वह अपने माता-पितासे इस बातका जिक्र करती। इसके बाद कार्ल मार्क्सको वर्लिन जाना पड़ा। वहन सोफीने इस अवसरपर दूतीका काम बिठा। कार्ल मार्क्सकी चिट्ठी जयिनीके पास पहुँचाना उसीका काम था। और तो और कार्ल मार्क्सके पिता भी, जो अपने पुत्रको अत्यन्त प्रेम करते थे, इस मामलेमें काफ़ी दिलचस्पी लेने लगे थे। उन्होंने अपनी एक चिट्ठीमें मार्क्सको लिखा था :—

“मेरे प्रिय कार्ल, तुम यह बात जानते हो कि कभी-कभी मैं ऐसे मामलोंमें फँस जाता हूँ, जो मुझे इस उम्रमें शोभा नहीं देते और जिनके कारण मुझे बड़ी परेशानी उठानी पड़ती है। तुम्हारी ज.....ने मुझपर असीम विश्वास करना प्रारम्भ कर दिया है और अपने दिलकी प्रत्येक बात वह मुझसे कह देती है। प्यारी भोलीभाली लड़की सदा इस चिन्तामें त्रस्त रहती है कि कहीं उसकी वजहसे तुम्हारे भावी कार्यमें बाधा न पड़े और कहीं तुम सामर्थ्यसे अधिक परिश्रम न करने लगे। उसे सबसे बड़ी फ़िक्र इस बातकी लगी रहती है कि उसके माता-पिता इस बारेमें कुछ भी नहीं जानते, बल्कि मैं तो यह

by little there awakes again in the spirit a new receptiveness and a new feeling for fresh suffering and fresh joy, and so one lives on and on with a wounded yet always hoping heart, until at last all is quiet and there is peace for ever.”

कहूँगा कि वे इस बारेमें कुछ भी जानना नहीं चाहते। यह बात खुद जयिनीकी समझमें नहीं आती कि वह, जो अपनेको बड़ी सुलझी हुई और समझदार लड़की समझती है, इस प्रेम-पाशमें बंध कैसे गई ?”

अब यह मुखिल सवाल सामने था कि जयिनीके माता-पिताको इस घटनाकी सूचना कौन दे ? इस बातको जयिनी जानती थी कि जब मेरे माता-पिता सुनेंगे कि मैंने गरीब घरके एक लड़केसे, जो मुझसे उम्रमें भी चार वर्ष छोटा है, प्रेम कर लिया है, तो उनके दिलको बड़ा धक्का लगेगा। कहां प्रियायके एक उच्च पदाधिकारीकी लड़की और कहां एक साधारण यहूदी वकीलका लड़का !

आखिर कार्लने यह सोचा कि मैं ही इस कार्यको करूँगा। यह निश्चित हुआ कि वह बर्लिनसे पत्र द्वारा अपने भावी ससुरको इस बातकी सूचना दे। जयिनी टरके मारे थरथर काँपती थी कि न-जाने उसके माता-पिता इस घटनासे कितने पीड़ित होंगे, इसलिए उसने यह अनुरोध किया कि चिट्ठी डाकमें डालनेसे आठ दिन पहले मुझे खबर मिल जानी चाहिए, ताकि मैं उस अग्नि-परीक्षाके लिए तैयार हो जाऊँ। दुर्भाग्यसे कार्ल मार्क्सका वह पत्र सुरक्षित नहीं रहा, और न हमें इस बातका पता लगता है कि आखिर सास-ससुरने उस पत्रका किस प्रकार स्वागत किया ; पर प्रतीत ऐसा होता है कि सास-ससुरने होनहार प्रवल समझकर इस प्रस्तावको सहन कर लिया।

हृदय-क्षेत्रमें प्रेमके इस प्रवेशने कार्ल मार्क्सके नीरस हृदयमें कवित्वका संचार कर दिया। पाठकोंको यह सुनकर आश्चर्य होगा कि साम्यवादके आचार्य कार्ल मार्क्सकी प्रथम रचना शिचित्त जनताके सम्मुख कविताके रूपमें आई ! आगे चलकर श्रीमती जयिनी बड़े अभिमानसे अपने यहाँ आनेवालोंसे कहा करती थी—“कभी वह भी ज़माना था, जब मेरे ये दार्शनिक और अर्थशास्त्री पति मेरे प्रेमके कारण कवि बन गये थे !”

१२ जून सन् १८४३ को—जब कि उनकी सगाई हुए छै-सात वर्ष हो गये थे—मार्क्सने जयिनीका पाणिग्रहण किया। २ दिसम्बर सन् १८८१ तक, जब कि सती-साध्वी जयिनीने इस लोकसे प्रयाण किया, यानी ३८ वर्ष तक, यह जुगल जोड़ी संसारके हितके लिए अनन्त दुःख सहती रही।

विवाहके बाद मार्क्स भोग-विलासमें नहीं पड़ गये। विवाहके बादके तीन महीनोंमें कार्ल मार्क्सने राजनैतिक, आर्थिक तथा विधान-सम्बन्धी इतिहासके एक सौ ग्रन्थ पढ़े और तीन लम्बी-लम्बी कापियोंमें उनके नोट लिये।

विवाहके १८ वर्ष बाद जयिनीने अपनी एक सहेली श्रीमती वेडमेयरको ११ मार्च सन् १८६१के पत्रमें लिखा था—

“यहाँ हमारे जीवनके आरम्भिक वर्ष बड़े कटु थे ; परन्तु आज मैं उन दुःखदायिनी स्मृतियोंपर, अपने कष्टों और दुःखोंपर अथवा अपने प्यारे स्वर्गीय बच्चोंपर—जिनके चित्र हमारे हृदयमें गहरे शोकसे अंकित हैं—कुछ नहीं लिखना चाहती।... फिर पहला अमेरिकन संकट आया और हमारी आय (‘न्यूयार्क ट्रिब्यून’ से) काटकर आधी कर दी गई। एक बार फिर हमें अपने पारिवारिक व्ययको संकुचित करना पड़ा और हमपर कर्ज़ भी हो गया।... अब मैं अपने जीवनके सबसे उज्ज्वल अंशपर आती हूँ। जो हमारे अस्तित्वमें प्रकाश और प्रसन्नताकी एकमात्र चिरण थी—वह थी हमारी लड़कियाँ। हमारी लड़कियाँ अपने स्वार्थहीन और मधुर स्वभावसे हमें सदा आनन्दित किया करती हैं ; परन्तु उनकी छोटी बहन तो घर भरके लिए प्रेमकी मूरत हो रही है।... मुझे बड़ा भयंकर बुखार आया और डाक्टर बुलाना पड़ा। २० नवम्बरको डाक्टर आया, उसने मुझे अच्छी तरह देखा और बड़ी देर तक चुप रहनेके बाद बोला—‘श्रीमती मार्क्स ! मुझे अफ़सोससे कहना पड़ता है कि आपको चेचक निकली है—बच्चोंको फौरन घरसे हटा दीजिए।’ उसके इस फैसलेपर घर-भरको कैसा दुःख हुआ और हम कैसी मुसीबतमें पड़े, इसकी तुम कल्पना कर सकती हो।... मैं मुखिलसे चारपाई छोड़नेके योग्य हुई थी कि इतनेमें हमारे प्यारे कार्ल बीमार पड़ गये। सब तरहकी चिन्ताओं, फिकों और अत्यधिक आशंकाओंने उन्हें चारपाईसे लगा दिया। परन्तु ईश्वरको धन्यवाद है कि चार सप्ताहकी बीमारीके बाद वे अच्छे हो गये। इस बीचमें फिर ‘ट्रिब्यून’ने हमारा वेतन आधा कर दिया था।... मेरी प्यारी सखी, तुम्हें मेरा प्रेमपूर्ण अभिवादन है। ईश्वर करे, परीक्षाके इन दिनोंमें तुम वीर बनी रहो। संसार साहसी व्यक्तियोंका है। वरान्वर अपने पतिको दृढ़ता और हृदयसे सहायता देती रहो तथा

शरीर और मनको सदा लचीला बनाये रखो ।•• तुम्हारी हार्दिक मित्र—जेनी मार्क्स !”

आर्थिक दुर्दशाकी हद हो गई थी । शनिवारका दिन था । घरमें एक पैसा भी न था, न किसी मित्रसे कुछ उधार मिला और न किसी दुकानदारने सामान उधार दिया । कल इतवारको सवेरे खाना कैसे बनेगा, इसकी फिक्र थी । आखिर जयिनीने कहा—“और तो कुछ है नहीं, मेरे मायकेके ये ठोस चाँदीके चम्मच हैं, इन्हें कहीं गिरवी रखके कुछ दाम लाओ ।” कार्ल मार्क्स उन्हें ही लेकर दुकानदारके पास पहुँचे । दुकानदारने देखा कि उन चाँदीके चम्मचोंके ऊपर अर्जिलके ड्यूकका राजचिह्न है । उसे शक हुआ और उसने सोचा कि हो न हो, इस विदेशी भिखमंगेने इस चीज़को कहींसे चुराया है । चोरीका माल समझकर उसने पुलिसके सिपाहीको बुलाया । मार्क्सने बहुत समझाया-बुझाया कि इन्हें मेरी पत्नी अपने मायकेसे लाई है; पर उनकी कौन सुनता है ? पुलिसवाला कार्ल मार्क्सको पकड़के थानेपर ले गया । वहाँ उन्हें जाकर हवालातमें बन्द कर दिया और कह दिया कि जब तक जाँच न हो जाय, तब तक यहीं बैठो । सोमवारको सवेरे जाकर पता लगा कि ये महाशय कौन हैं, और तब वे छोड़ दिये गये ।

संकटके दिन आये और एकके बाद दूसरी आपत्तियाँ आई । जयिनी कभी-कभी बड़ी निराश हो जाती थी । मार्क्सने अपने एक पत्रमें लिखा था :—

“My wife tells me every day that she wishes that she and the children were in the grave, and I cannot really blame her, for the humiliations, torments and abominations which we go through in our situation are simply indescribable.”

अर्थात्—‘मेरी स्त्री मुझसे प्रतिदिन यही कहा करती है कि ‘इस दुर्दशासे यही अच्छा होता कि मैं अपने बच्चोंके साथ क़ब्रमें चली गई होती ।’ पर मैं अपनी पत्नीको दोष नहीं देता, क्योंकि जैसी अपमानजनक स्थितिमें हमें रहना पड़ता है, जो अत्याचार और कष्ट हमें सहने पड़ते हैं, जिस प्रकार पग-पगपर हमें ज़लील होना पड़ता है, उसका वयान नहीं किया जा सकता ।’

कार्ल मार्क्सने अपने किसी-किसी पत्रमें जयिनीके चिड़चिड़े स्वभावकी आलोचना की है ; पर अनुमान तो कीजिए उस

बेचारी पत्नीका, जिसका पति नित्यप्रति बारह-बारह घंटे पुस्तकालयमें बिताता हो, जो अपने बच्चोंको सूखी रोटी खिलानेमें असमर्थ हो और जो घरके लिए नोन-तेल-लकड़ीकी फिक्र छोड़कर भावी संसारके प्रश्नोंपर दार्शनिक विचार करनेमें मग्न हो ! भला, इस विकट परिस्थितिमें किस पाठक-पाठिकाकी सहानुभूति जयिनीके साथ न होगी ?

यह बात ध्यान देने-योग्य है कि जयिनी अपने पति मार्क्ससे उम्रमें चार वर्ष बड़ी थी, इसलिए बुढ़ापा उसपर और भी जल्दी आ गया था । छै बच्चे उसके हो चुके थे और गरीबी तथा बच्चोंकी मृत्युने उसके शरीरको अत्यन्त निर्बल और मस्तिष्ककी स्नायुश्रोंको और भी कमजोर कर दिया था । सबसे बड़ी चिन्ता जयिनीको अपनी लड़कियोंकी रहती थी । ये लड़कियाँ पढ़ने-लिखनेमें बड़ी तेज़ थीं और क्लासमें सदा अव्वल रहा करती थीं । जयिनी एक काम करती थी, वह यह कि पतिकी थोड़ी-सी आमदनीमें से लड़कियोंकी फीस पहले निकाल लेती थी । उसे सबसे बड़ी फिक्र इस बातकी थी कि कहीं घरकी निर्धनताके कारण मेरी लड़कियोंको स्कूलमें ज़लील न होना पड़े ; पर निर्धन माता-पिताकी इन पुत्रियोंको अपनी सखी-सहेलियोंके सामने आत्म-सम्मानकी रक्षा करना अत्यन्त कठिन हो रहा था । माता और पुत्रियोंमें कभी-कभी झगडा हो जाता था । ऐसे मौकोंपर मार्क्स पुत्रियोंका पक्ष लेते थे । मार्क्सको उस समय बड़ा दुःख हुआ था, जब उनकी लड़कीको मजबूर होकर एक अंगरेज़ कुटुम्बमें दिन-भर बच्चोंकी देख-भाल करने और पढ़ानेकी नौकरी करनी पड़ी थी । कार्ल मार्क्सने उन दिनों अपने एक मित्रको लिखा था—“मेरी स्त्री इतने चिड़चिड़े स्वभावकी हो गई है कि हमेशा बच्चोंको लिये-दिये रहती है । मुझे लड़कीकी नौकरी करना निहायत नापसन्द आया ; पर वह बेचारी माँके व्यंगोंसे तो बची रहेगी ।”

यद्यपि मार्क्स अपनी पत्नीके इस चिड़चिड़े स्वभावसे, जिसके लिए वे कम जिम्मेवार न थे, कभी-कभी तंग आ जाते थे ; पर हृदयसे उसके प्रति श्रद्धा रखते थे । एक पत्रमें उन्होंने जयिनीको लिखा था :—

“प्रियतमे,

तुम्हरी चिड़्डीसे मुझे बड़ी खुशी हुई । मुझसे हृदयकी सब बात खोलकर कहनेमें तुम्हें कभी संकोच नहीं करना

चाहिए। प्रियतमे, जब तुम्हें कठोर वास्तविकताका इतना अधिक सामना करना पड़ता है, तो कम-से-कम इतना फर्ज मेरा भी है कि तुम्हारे कठोंको मैं अपने हृदयसे अनुभव तो करूँ। मैं इस बातको खूब अच्छी तरह जानता हूँ कि तुम्हारी सहन-शक्ति अनन्त है और छोटी-से-छोटी अच्छी खबरसे तुममें फिर जान आ जाती है। मुझे आशा है कि तुम्हें इस सप्ताह फिर पाँच पौण्ड भेज सकूँगा। इस सप्ताह नहीं, तो सोमवार तक ज़रूर भेज सकूँगा।”

निस्सन्देह जयिनीमें अनन्त सहनशीलता थी।

अपने संकटके दिन कितने धैर्यके साथ इस दम्पतिने काटे, उसका विस्तृत वृत्तान्त लिखनेके लिए यहाँ स्थान नहीं। जब कभी वे थोड़ा भी निश्चिन्त होते, तो एक-दूसरेका हाथ पकड़कर कमरेमें इधर-उधर टहलते और जर्मन भाषाके प्रेमके गीत गाया करते थे, ठीक उसी प्रकार, जैसे वे अपने देशमें, यौवनके आरम्भमें, ग्रीष्मऋतुमें, पुष्पोसे लदे वृक्षोंके नीचे गाया करते थे।

भोजन-वस्त्रके अभावमें इस प्रकार प्रसन्न रहना अत्यन्त कठिन काम था। एक बार कार्ल मार्क्सके किसी मित्रने जयिनी तथा उसकी दो लड़कियोंके लिए सुन्दर कपड़े भेज दिये थे। उनको धन्यवाद देते हुए जयिनीने लिखा था—“आपको यह सुनकर हर्ष होगा कि लड़कियाँ आपकी भेजी हुई पोशाकको पहनकर बड़ी मनोहर लगती हैं। इन कपड़ोंमें उनके चेहरे कैसे मधुर, कैसे हास्यमय लगते हैं और कैसी ताज़गी उनसे टपकती है। आपने मेरे लिए जो कपड़े भेजे हैं, उन्हें पहनकर मैं भी बड़ी शानदार जैचती हूँ। जब मैं उन्हें पहनकर अभिमानके साथ अपने कमरेमें टहलने लगी, तो छोटी बच्चीने पीछेसे चिल्लाकर कहा—‘अम्मा-अम्मा, मोर-जैसी अम्मा!’ अगर आज भयंकर सर्दी न होती, तो मैं तुम्हारे

भेजे हुए इन्हीं वस्त्रोंको पहनकर बाहर निकलती, जिससे पास-पड़ोसके अभिमानी आदमियोंपर कुछ रोव तो गँटता।”

मृत्यु

जयिनीका शरीर अत्यन्त जीर्ण हो चुका था। सन् १८८१ में जयिनी अपने पतिके साथ पेरिस गई और अपनी दोनों लड़कियोंसे, जो विवाहके बाद पेरिसमें बस गई थीं, जाकर मिली। पेरिससँ लौटकर मार्क्स अत्यन्त बीमार हो गये। जयिनी तो पहलेसे ही अत्यन्त निर्वल थी। ऐसा प्रतीत हुआ कि वे दोनों साथ-ही-साथ इस संसारसे कूच करेंगे; पर कार्ल मार्क्सकी तबीयत कुछ सुधर गई और जयिनीकी मृत्युके समय वे उपस्थित थे। जब जयिनी विलकुल मरणासन थी, कुछ घंटे ही मरनेमें बाकी थे, तब ‘Modern Thought’ (आधुनिक विचार) नामक पत्रसे किसी व्यक्तिका लेख, जो मार्क्सकी प्रशंसामें लिखा गया था, उसे सुनाया गया था। विलायतमें यह पहला ही लेख था, जो मार्क्सकी तारीफमें लिखा गया था। पतिव्रता जयिनीने इस लेखको सुनकर सन्तोषकी एक साँस ली।

२ दिसम्बरको जयिनी स्वर्ग सिधारीं। मार्क्स इसके बाद पन्द्रह महीने और जीवित रहे और अपनी पत्नीकी बराबर याद करते रहे। वे कहते थे—“जयिनी मेरे जीवनकी सर्वोत्तम भागकी सहधर्मिणी थी।” १४ मार्च १८८३ को कार्ल मार्क्सका देहान्त हुआ और दोनोंकी समाधि एक ही स्थलपर है।

लाला हरदयालका यह कथन वास्तवमें सत्य है कि युग-युगान्तर तक इस दम्पति—जयिनी-मार्क्स—की कष्ट-गाथा साधारण जनताको प्रोत्साहित करती रहेगी और भविष्यके वन्धनमुक्त मजदूरोंके लिए वह चाइविलका काम देगी।



हमारी जाग्रति

कुँवरानी गुणावन्ती महाराजसिंह

भारतका महिला-आन्दोलन अबसे सत्तर वर्ष पहले पंडिता रमाबाईके समयसे आरम्भ हुआ था। उन बातोंको कहने और करनेके लिए आजकल भी आपको आश्चर्यजनक दृढ़तावाला हृदय चाहिए, जो उस ज़मानेमें रमाबाईने कहीं और की थीं। उन्हें बदनामीका भय न था। वे जानती थीं कि उनकी बहनें कितना दुःख पाती हैं। जनमत बदलनेके लिए उन्होंने दृढ़तापूर्वक आगे बढ़कर ज़मीन-आसमान एक करके मुख्तालीमें अपना आश्चर्यजनक काम आरम्भ किया था। उन्होंने ज्योति जगाकर मार्ग-प्रदर्शन किया था। उस ज़मानेमें पंडिता रमाबाईने जो दृढ़ता दिखलाई थी, उसीकी बदौलत आज हम भारतवासियोंके लिए यह आसान हो गया है कि हम न्यायके लिए खड़े हो सकें।

पिछले दस वर्षमें भारतका महिला-आन्दोलन बड़े विशाल रूपमें विकसित हुआ और बढ़ा है। परदा-क्लबोंमें बहुत नन्हें रूपमें उगकर भारतका महिला-आन्दोलन अब हमारे प्रियदेशके कल्याणके लिए एक ऐसा शक्तिशाली उपादान बन गया है कि विदेशोंके आनेवाले दर्शकों और आलोचकोंको भी यह कहनेके लिए मजबूर होना पड़ता है कि भारतकी महिलाएँ सर्वोच्च और सर्वश्रेष्ठ आदर्शोंके लिए प्रयत्न कर रही हैं और बाकी संसारके सामने एक आश्चर्यपूर्ण उदाहरण उपस्थित कर रही हैं। महात्मा गांधीका राजनैतिक आन्दोलन कभी इतना सफल न होता, यदि भारतीय महिलाओंने उसमें भाग न लिया होता। स्वदेशी-आन्दोलनकी सफलता बहुत करके इसीलिए सम्भव हो सकी कि भारतीय महिलाएँ देशकी सहायताके लिए कोमल विदेशी कपड़ोंका व्यवहार छोड़नेके लिए तैयार हो गईं।

बिना किसी साम्प्रदायिक भेद-भावके समूचे भारतकी एकताकी सम्भावनाको केवल अखिल भारतीय महिला-कानफरेन्सने ही प्रदर्शित किया है। अखिल भारतीय महिला-कानफरेन्स बराबर दृढ़ताके साथ यही माँग पेश करती आई है कि समूचे देशके लिए एक ही सम्मिलित निर्वाचन-प्रणाली होनी चाहिए। भारतीय महिला-कानफरेन्सकी नेत्रियों द्वारा अत्यन्त योग्यता और दृढ़ताके साथ उपस्थित की हुई इस माँगको, जिसका समर्थन ब्रिटिश महिलाओंने पूर्णरूपसे किया था, पार्लामेंटने ठुकरा दिया! यह देखकर ही हमारे मनमें यह धारणा पहलेसे कहीं अधिक बलवती हो उठती है कि हमारी महिलाओंको ही इस धरतीपर स्वर्ग-राज्य स्थापित करनेके लिए और भी अधिक उत्साहसे कार्य करना चाहिए, क्योंकि ऐसा जान पड़ता है कि पुरुष-समाज पृथिवीकी सुख-शान्तिसे विमुख होकर आपसमें लड़ने-भिड़नेमें ही व्यस्त है।

आज आपको प्रत्येक बड़े नगरमें अखिल भारतीय महिला-कानफरेन्सकी शाखाएँ मिलेंगी। कानफरेन्सका अधिवेशन प्रतिवर्ष होता है और उसकी नेत्रियोंने—भगवान उनका भला करे—अत्यधिक लगन और योग्यतासे कार्य करके महिलाओंको अपनी बातें निर्णय करनेका मार्ग दिखलाया है।

महिला-कानफरेन्सोंमें वे सब सामाजिक, नैतिक और राजनैतिक समस्याएँ, जो अत्यन्त गहरी और दुरूह दीख पड़ती हैं और जो हमारे जीवनके उत्कर्षके विकासमें बाधा पहुँचाती हैं, बड़ी दक्षता और व्यावहारिकताके साथ निर्णय की जाती हैं। डाक्टर देशमुखके 'हिन्दू स्त्रीके साम्प्रदायिक अधिकारों-सम्बन्धी कानून' को स्त्रियाँ प्रभावशाली समर्थन प्रदान कर रही हैं। यह शारदा-पेकटा और भारतीय स्त्रियोंमें अपने

राष्ट्रीय जीवनमें उचित भाग लेनेकी जाप्रतिका अवश्यम्भावी परिणाम है ।

भिन्न-भिन्न धर्मों और सम्प्रदायोंकी भारतीय महिलाएँ देश-भरमें सभाएँ करके अपनी माँगोंकी जो लम्बी-चौड़ी सूचियाँ पेश कर रही हैं, यदि हमारा पुरुष-समाज शीघ्र ही अपनेको उनके अनुकूल नहीं बनता, तो भविष्यमें झगड़ा होगा ।

भगवान करे कि भविष्यके नवीन राजनैतिक युगमें हम अपने आदर्शको न भूल जायें और हमें ऐसी विनम्रता और शक्ति प्राप्त हो, जिससे हम इस सार्वभौमिक प्रार्थनाको चरितार्थ करनेका प्रयत्न कर सकें—

“यहाँ राज्य हो तेरा, भगवन !

तेरी इच्छाका हो पालन,

जग बन जाये नन्दन-कानन ।”

अपनी शक्ति पहचानो

लेखिका :—एक मूखा

मेरे पतिने मुझे चिट्ठीमें लिखा था—‘स्त्रियोंकी क्या-क्या कठिनाइयाँ हैं ?’ इस विषयपर कुछ ‘विशाल भारत’ के लिए लिखना । भला, मेरी जैसी अशिक्षित स्त्री क्या लिख सकती है ? हाँ, इससे एक भलाई मेरी जरूर हुई, वह यह कि इस वहानेसे पतिका पत्र तो मिला । सुना है कि अखबारोंको सन्देश भेजनेकी भी प्रथा है ; पर सन्देश तो पूजनीया कस्त्रू वा जैसी महिलाएँ ही भेज सकती हैं । हाँ, मेरी तरहकी कम पढ़ी और बन्धनग्रस्त स्त्रियाँ एक काम अवश्य कर सकती हैं, वह यह कि वे आप-बीती कहानी लिख भेजें, शायद इससे हमारी भावी सन्तान कुछ शिक्षा ग्रहण करे ।

मुझे तो ऐसा अनुभव हुआ है कि स्त्रियाँ ही स्त्रियोंको अधिक सताती हैं । इस दशामें हम पुरुषोंको क्या दोष दें ? स्त्रियाँ अपनी शक्तिको नहीं पहचानती और पारस्परिक प्रेम तथा संगठन द्वारा काम करना नहीं जानती । मुझे आज तक जीवन-भरमें एक भी ऐसी स्त्री नहीं मिली, जिसके गले लगकर छाती ठंडी करती । इस समय मेरी आँखोंमें पानी है । पुरुषोंको दोष देना या उनके सामने रोना बेकार है । वे अभी इस बातको नहीं समझते कि स्त्रियोंको पराधीन रखकर वे खुद स्वतन्त्र नहीं हो सकते । अंगरेजोंसे तू-तू मैं-मैं वे भले ही कर लें ; पर कहीं माँगनेसे भी कभी

कुछ मिला है ? जो योग्य या सवाल है, उसके पैरोंपर आप ही सब निधियाँ लोटती हैं । पुरुषोंका कर्तव्य है कि पहले स्वतन्त्रता दें, फिर लेनेका प्रयत्न करें ।

पर हमें पुरुषोंके भरोसे बैठे न रहना चाहिए । खुद अपना संगठन करना चाहिए । सम्भवतः हमें अपने अधिकारोंके लिए पुरुषोंसे मोर्चा लेना पड़ेगा । यह पढ़कर कोई वहन मुझसे ही सवाल कर सकती है—“बढ़-बढ़कर बातें तो करती हो, तुम्हीं कुछ क्यों नहीं कर दिखाती ?” इसके उत्तरमें मैं इतना ही निवेदन करूँगी—मैं तो खूब कसकर जंजीरोंसे बंध चुकी हूँ । रोगोंका ठिकाना नहीं, १२ सालसे पेचिशसे बीमार हूँ, नेत्र खराब, कान खराब, शरीरमें हड़फटन पड़ी रहती है, सिर दर्द अलग है, पेट रोटो नहीं पचती । ८ बच्चे पैदा हो चुके, नवेंकी तैयारी है । हर साल एक बच्चा आता जाता है । वहनो, बताइये, ऐसी दशामें मैं क्या कर सकती हूँ ? सुशिक्षिता स्त्रियाँ ही संगठनका काम कर सकती हैं अथवा वे, जिन्होंने विवाहके बन्धनमें न फँसनेका निश्चय कर लिया हो । मुझे आशा भावी सन्तानसे है । हमारे दिलमें जो आग है, उसे वे ही भभका सकेंगी । आगे आनेवाली पुत्रियाँ ही इस कार्यको कर सकेंगी । पुरुषोंकी खुशामद करनेसे कुछ नहीं होनेका ।

आधुनिक युगमें परिवार

प्र० परसराम, एम० ए०

मनुष्यके सामाजिक जीवनमें परिवर्तनके कारण

किसी मानव-समूहके सामाजिक जीवनमें परिवर्तन कब और किन कारणोंसे होते हैं ? वह कौन-सी शक्ति है, जो मनुष्योंके जीविका कमानेके तरीकोंमें, उनके रहन-सहनके ढंगमें, स्त्री-पुरुषके पारस्परिक सम्बन्धमें और उनके सभ्य जीवनके दूसरे अंगोंमें क्रान्तिकारी परिवर्तन लाती है ? इतिहास हमें बतलाते हैं कि जब जब मनुष्य बुद्धि द्वारा प्रकृतिकी विभिन्न शक्तियोंको समझकर, अपने वशमें करके, प्रयोगमें लाता है, तब-तब उसके सामाजिक जीवनका ढाँचा भी बदल जाता है। उदाहरणार्थ, हजारों वर्ष पहले जब मनुष्य जंगलमें रहता था और जंगलके पशुओंको मारकर अपना पेट पालता था, उस समय उसमें एक जगहपर स्थायी रूपसे घर बनाकर रहनेकी इच्छा नहीं थी। स्त्री-पुरुषका सम्बन्ध भी आजकलकी तरह पति-पत्नीके रूपमें न था। उनके पारिवारिक जीवनमें वे बातें अभी नहीं आई थीं, जो आज हम कृषि-कर्म जाननेवाली जातियोंमें देखते हैं। खेती करनेवाली जातियोंमें एक जगह स्थायी रूपसे रहनेकी बड़ी आकांक्षा होती है; साथ-ही-साथ उनमें 'सम्पत्ति' और 'कुल'का भाव भी पैदा हो जाता है। कुलकी मर्यादाको स्थिर रखनेका भाव उनमें इतना प्रबल होता है कि पुरुष और स्त्रीकी व्यक्तिगत इच्छाओं और कामनाओंकी कुछ भी परवा नहीं की जाती। सम्पत्तिको पुत्र-पौत्रोंको सौंनेके उद्देश्यसे सन्तानका होना भी आवश्यक समझा जाता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि जब मनुष्यकी बुद्धिने भूमिसे अन्न उपजानेका तरिका आविष्कार किया, तब उसके साथ ही सामाजिक परिवर्तनका बीज भी बोया गया। कृषि-व्यवसायके फैलनेसे मानव-समाजके जीविका कमानेके तरीके बदल गये, कौटुम्बिक जीवनका लक्ष्य भी बदल गया और

एक जगहपर स्थायी रूपमें रहनेसे परम्परा तथा संस्कृतिको एक नया रूप मिल गया।

अतः सभ्य जीवनमें परिवर्तनका क्रम इसी प्रकारसे होता है कि पहले मनुष्य अपनी बुद्धिसे प्रकृतिपर क्रावू पानेका कोई नया ढंग निकालता है, जिसके आविष्कारसे मनुष्योंके धन कमानेके तरीकोंमें परिवर्तन आता है। आर्थिक स्थिति और जीविका कमानेकी विधिमें परिवर्तन आनेसे मनुष्योंके रहन-सहनके तरीके भी बदलते हैं। इन परिवर्तनोंके फलस्वरूप मनुष्यके घरेलू जीवन, न्याय-विवधान, राजनैतिक संगठन और धार्मिक जीवनमें तथा धीरे-धीरे आचार, दर्शन और जीवन-व्यवस्था में परिवर्तन आते हैं।

हमारे देशके आम लोग ही नहीं, बल्कि बहुतसे सुशिक्षित लोग भी पुराने शास्त्रोंमें बताई हुई आचार-पद्धतिको अटल और व्यापक मान लेते हैं, और यह भूल जाते हैं कि पुराने स्मृति-शास्त्र और आचार-पद्धतियाँ एक विशेष काल और देशके लिए थीं। उनमें बताये हुए नियमोंको सब काल, सब देशों और सब जातियोंके लिए लागू मानना एक भारी भूल है। प्रत्येक देश और कालके लिए नई स्मृतियों और नये स्मृतिकारोंकी आवश्यकता होती है।

आधुनिक युगके विशाल परिवर्तन और उनके कारण

पिछले पचास वर्षोंसे सभ्य संसारमें और विशेषतया यूरोपमें बड़े क्रान्तिकारी और मौलिक परिवर्तन हो रहे हैं। ये परिवर्तन बड़े विशाल रूपमें और बड़े वेगसे हो रहे हैं। इतने प्रबल परिवर्तन मनुष्य-जातिके इतिहासमें पहले किसी युगमें नहीं हुए।

यद्यपि यह परिवर्तन पहले विशेषतया यूरोपीय देशोंमें ही हुए हैं, तथापि यूरोपीय सभ्यतासे प्रभावित हिन्दुस्तानी समाज भी इनके कारण बदल रहा है। बड़े-बड़े शहरोंमें, जहाँपर यूरोपीय सभ्यताका प्रभाव

ज्यादा है और जहाँ पाश्चात्य प्रणालीपर शिक्षित मध्य-श्रेणीके लोग ही अधिकतर रहते हैं, ये नये परिवर्तन प्रकट और प्रत्यक्ष रूपसे हमारे सामाजिक जीवनका रूप बदल रहे हैं।

जैसा कि ऊपर कहा गया है, सामाजिक परिवर्तन उसी समय आते हैं, जब कि मनुष्य प्रकृतिकी विविध शक्तियोंको वशमें करके उन्हें अपने दैनिक जीवनमें इस्तेमाल करता है। आधुनिक परिवर्तनका भी यही कारण है। इस युगमें मनुष्यकी बुद्धिने कई नये आविष्कार किये हैं। ये आविष्कार बिजली, भाप, वायु, जल तथा अन्यान्य प्राकृतिक शक्तियोंके मनुष्य द्वारा वशीकृत किये जानेका परिणाम हैं। ये आविष्कार तीन प्रकारके हैं :—

(१) नई मशीनोंकी ईजाद—मनुष्यने जितनी विविध प्रकारकी मशीनें और कलें इस युगमें बनाई हैं, उतनी आज तक किसी युगमें नहीं बनी थीं। इन नई-नई मशीनोंकी ईजादके कारण इस युगको 'मशीन-युग' भी कहा जाता है। भापकी शक्तिको प्रयोगमें लानेसे विविध प्रकारकी कलें बनीं, जिनकी सहायतासे जहाज, रेल, कपड़ा बुननेके कारखाने और दूसरे कई प्रकारके इंजन बनाये गये। इन कलों द्वारा जो यात्रा पहले महनोंमें की जाती थी, अब दिनों और घंटोंमें की जा सकती है; जिस कपड़ेके बुननेमें पहले कई दिन लगते थे, वही भापकी शक्तिके प्रयोगसे घंटोंमें बुना जा सकता है। इसी प्रकार बिजलीके प्रयोगसे आलोक देनेवाले, गर्मी पहुँचानेवाले और मशीनोंको चलानेवाले यन्त्र और तेलके प्रयोग द्वारा मोटर, हवाई-जहाज आदि यन्त्र मनुष्यने बनाये। इन यन्त्रोंका प्रयोग न केवल बड़े-बड़े कारखानोंमें ही होता है, बल्कि कई प्रकारके यन्त्र तो हमारे शहरी घरोंमें भी पाये जाते हैं। बिजलीके लैम्प, फोटोका कैमरा, बन्दूक, बाइसिकल आदि यन्त्रोंका शहरोंके अलावा ग्रामोंमें भी इस्तेमाल हो रहा है। इनके आविष्कारके पहले सब काम मनुष्यको अपने बाहुबलसे ही करने पड़ते थे, और

सब काम देरमें और बड़े श्रमसे किये जाते थे, अब मशीनोंकी सहायतासे वही काम थोड़े कालमें और थोड़े श्रमसे कर लिये जाते हैं।

(२) चिकित्सा-सम्बन्धी आविष्कार—मनुष्यने इस युगमें न केवल भौतिक जगतपर ही विजय पाई है, अपितु मनुष्य-जीवनको नष्ट करनेवाले और आयुको कम करनेवाले शत्रुओंको परास्त करके आधुनिक कालके स्त्री-पुरुषोंको बीमारीके भयसे भी बचा दिया है। ये मेडिकल आविष्कार क्या हैं और इनकी सहायतासे मनुष्यको रोगोंके भयसे कैसे आश्वासन मिला है, इसकी ओर संकेत ही पर्याप्त होगा—(१) कीटाणुओंकी जाँच-पड़ताल और उनका खुर्दबीन द्वारा निरीक्षण तथा वर्णन; (२) जख्मोंमें विष-उत्पत्तिको रोक और इलाज (इससे पहले हजारों लोग जख्मोंमें विषकी उत्पत्तिसे मर जाते थे); (३) प्रत्येक बीमारीके विशेष लक्षणोंका निदान; (४) चीर-फाड़ द्वारा बहुत-सी बीमारियोंकी रोक; (५) इंजेक्शन द्वारा बहुतसे असाध्य रोगोंका इलाज; (६) 'ऐक्सरे' द्वारा शरीरके भीतरी अंगोंका परीक्षण; (७) बिजली, भाप और अन्य इलाजके तरीके। इन नये आविष्कारोंका परिणाम यह हुआ है कि एक सभ्य समाजमें अस्पतालोंका, स्वास्थ-रक्षाके विशेष प्रबन्धोंका और रोगोंकी जाँच-पड़तालके लिए प्रयोगशालाओंका होना आवश्यक समझा जाता है।

(३) मनोवैज्ञानिक आविष्कार—पिछली शताब्दीमें डार्विनकृत पुस्तकों द्वारा और इस शताब्दीमें फ्रायड और पैब्लोवके अनुसन्धानों द्वारा मानव-स्वभाव-सम्बन्धी अनेक नई बातें मालूम हुई हैं। इन विद्वानोंने मानव-स्वभावके सम्बन्धमें जो-कुछ लिखा है, उससे यह पता चलता है कि सभ्य समाजमें मानव-स्वभावके सम्बन्धमें जो धारणाएँ फैली हुई हैं, वे भ्रमपूर्ण हैं। सभ्य समाजमें मनुष्यको पशुओंसे ऊपर दैवी ज्योतिका अंश समझा जाता है। इन विद्वानोंके विचारोंसे यह पता चलता है कि मनुष्य पशुओंसे ही उत्पन्न होकर मनुष्य हुआ है, और मानव-स्वभावमें

पाशविक वृत्तियाँ अभी तक बड़ी बलवान होती हैं। फायडका अनुभव है कि बहुतसे मानसिक रोग जो सभ्य मनुष्योंमें पाये जाते हैं, केवल इन 'पाशविक वृत्तियों'के अनुचित निरोधसे और उनकी वास्तविकताके प्रति आँख बन्द कर लेनेसे होते हैं। मानसिक स्वास्थ्यके लिए यह आवश्यक है कि मनुष्य इन 'पशु-वृत्तियों'को अपनेमें अनुभव करता हुआ इन्हें ज्यादा रोकने या दबा डालनेकी चेष्टा न करे। इन विचारोंका प्रभाव आजकलके सभ्य साधारण जनोपर बहुत हुआ है।

पारिवारिक जीवनपर आविष्कारोंका प्रभाव

इन भौतिक, मेडिकल और मनोवैज्ञानिक आविष्कारों और इन नये विचारोंका हमारे समाजपर क्या प्रभाव पड़ा है और इन प्रभावोंसे हमारा पारिवारिक जीवन कैसे बदल गया है, अब इन प्रश्नोंपर विचार करना है।

(१) संयुक्त परिवार-प्रणालीका शिथिल हो जाना—कलोंके प्रादुर्भावसे पहले यहाँपर प्रायः खेती-बारी ही एकमात्र प्रचलित व्यवसाय था। एक घर और कुनके स्त्री-पुरुष एक ही जगह रहते और एक ही खेतमें श्रम करते थे। श्रमका एकमात्र साधन मनुष्यका बाहुबल ही था, और इससे पूरा लाभ उठानेके लिए इकट्ठे होकर रहना और श्रम करना जरूरी था। अतः एक कुलमें उत्पन्न भाई, उनकी स्त्रियाँ और बच्चे और उन बच्चोंकी बहुएँ और बच्चे—सब एक ही संयुक्त परिवारमें रहते थे। कुल धन-सम्पत्ति और आमदनी घरके मुखिया पुरुषके सिपुर्दे होती थी। यह मुखिया पुरुष कुल आमदनीको सारे कुटुम्बका पालन करनेमें व्यय करता था।

मशीनोंके आविष्कारसे कारखानोंका रिवाज हुआ। कारखानोंमें एक कुटुम्बके नहीं, वरन् दूर-दूर देशोंसे आये हुए कई हजार श्रमजीवी एक ही जगह काम करते हैं। ये लोग आयु-भर वहीं रहते हैं, जहाँपर वे काम करते हैं। इस प्रकार वे अपने घरोंसे अलग हो जाते हैं, और धीरे-धीरे उनका अपने कुलसे स्नेह और सम्बन्ध

कम हो जाता है। वे अपनी स्त्रियों-समेत जहाँ काम करते हैं, वहीं घर बनाकर रहना भी शुरू कर देते हैं। मशीन-युगका पहला प्रभाव हमारे पारिवारिक जीवनपर यह पड़ा कि पुराने जमानेके अनेक पतियों, पत्नियों, बच्चों और परिजनोसे बने हुए बड़े-बड़े कुनबों और कुलोंके बजाय एक दम्पति और उनके बच्चोंके छोटे-छोटे परिवार होने लगे।

(२) व्यक्तिगत स्वतन्त्रता—एक दम्पतिको अपने माता-पिता, सास-ससुर, चाचा-चाची आदि बुजुर्गोंके साथ रहनेसे आज्ञादी कभी नहीं मिलती थी। बड़ोंका आतंक होता ही है, और बड़ोंका श्रद्धापूर्वक मान करना एक धार्मिक कर्तव्य होनेके कारण छोटी-छोटी यह चेष्टा भी होती है कि उनके बड़े अप्रसन्न न हो जायँ। उन्हें प्रसन्न रखनेके लिए छोटी-छोटी उनकी आज्ञामें रहना पड़ता है। इस प्रकार उनकी स्वतन्त्रता मारी जाती है। यही लोग जब कारखानोंमें आकर काम करते हैं और शहरोंमें रहते हैं, तब इन बन्धनोंसे आजाद होकर स्वतन्त्र हो जाते हैं। ग्राम-पंचायतके दण्ड और जनसाधारणके कटाक्षके भयसे और बड़ोंके संकोचसे मुक्त होकर इन्हें आज्ञादी मिल जाती है, और वे इच्छानुसार रह सकते हैं। मशीन-युगसे पहले संयुक्त परिवारमें रहनेवाला एक मनुष्य अपने-आपसे यह प्रश्न पूछता था—“मेरे अमुक व्यवहारसे मेरे कुलपर क्या प्रभाव पड़ेगा?” वर्तमान युगका शहरमें रहनेवाला व्यक्ति अपने-आपसे यह प्रश्न पूछता है—“मेरे इस व्यवहारसे मेरे अपने जीवनपर क्या प्रभाव पड़ेगा?” इस व्यक्तिगत स्वतन्त्रताके आनेसे लोगोंमें नया उत्साह पैदा हुआ है, और जीवनके नये रहस्योंका ज्ञान होना आरम्भ हो गया है। इस नई स्वतन्त्रतासे मनुष्योंमें आत्म-विश्वास, अपनी बुद्धिसे अपना रास्ता ढूँढ़नेकी आदत और अपनी तथा दूसरोंकी स्वतन्त्रताके लिए आदर पैदा होता जा रहा है। नये युगके कवि इकठालने इस व्यक्तिगत स्वतन्त्रताके भावकी प्रशंसा करते हुए लिखा है—“अपने व्यक्तित्वको इस प्रकारसे

संगठितकर कि परमात्मा तेरा भविष्य निश्चितकर तुम ही से पूछे कि 'तेरे लिए कैसा भविष्य निर्माण करूँ ?' ”

(३) स्त्रियोंकी स्वतन्त्रता और उनका पुरुषोंपर प्रभाव—शहरोंमें और मध्य-श्रेणीके घरोंमें पुरुष दिनके छैसे आठ घंटे तक अपने दफ्तरमें या जहाँपर वह काम करता है, गुज़ारता है। दफ्तरसे थका हुआ वापस आनेपर वह अपने आरामकी ज्यादा पचावा काता है। घरका सब प्रबन्ध स्त्रीके हाथमें आता जा रहा है। पुराने घरमें उसे सास और दूधारी वृद्धाओंके अधीन रहना पड़ता था, अब वह आज्ञादा है। अब तक उसे घर में दासी बनकर रहना पड़ता था। जो व्यक्ति सदा दास बना रहे, जिसे कभी आज्ञादी न मिले, उसका चरित्र विद्वसित नहीं होना, क्योंकि उसे दूधरोकी मर्जीपर चलना पड़ता है। इस नई स्वतन्त्रतासे स्त्रियोंमें नई जिम्मेदारीका भाव पैदा हो गया। पुरानी ग्रामकी सभ्यतामें बच्चोंकी पुरुषोंके साथ खेलोंमें काम करना पड़ता था, शहरमें वे बापके सम्पर्कमें कम आते हैं; परन्तु माँके संग अधिक रहते हैं। इससे स्त्रीका प्रभाव पुरुषोंपर पहलेसे कहीं ज्यादा बढ़ गया है। जिन बच्चोंकी छोटी उम्रमें माँके साथ ज्यादा रहनेका अवसर मिलेगा, वे बड़े होकर अपनी स्त्रीके स्वभावको समझकर ज्यादा अच्छा बर्ताव कर सकेंगे। वे न तो स्त्रीको परमात्माकी अद्भुत रचना समझकर उसके प्रति भय और विस्मयका भाव रखेंगे और न उसे पुरुषसे तुच्छ समझकर उसकी उपेक्षा करेंगे। वे स्त्रीके वास्तविक स्वभावको समझाते हुए उससे व्यवहारमें कम झूल करेंगे।

(४) पारस्परिक प्रणालीका स्त्रियोंपर प्रभाव—ग्रामीण जीवनमें स्त्रियोंको कपड़ा बुनने, पशुओंकी रक्षा और देखभाल करने और खेतीमें हाथ बैटानेमें पुरुषकी सहायता करनी पड़ती थी। अब पुरुष दफ्तर, कारखानेमें काम करता है; स्त्री धन-कमानेमें घरमें कोई सहायता नहीं कर सकती। कपड़ा मिलसे आता है, स्त्रीको चरखा कातनेकी ज़रूरत नहीं। पशु

शहरी घरमें रखा नहीं जा सकता; दूधवालों और डेरासे दूध-मखन आता है। गाँवमें जिन घरेलू धन्यों द्वारा स्त्री धनोपार्जनमें सहायक होती थी, मध्य-श्रेणीकी स्त्रियोंसे वे सब छूट गये हैं। इससे मध्य-श्रेणीकी स्त्रियोंको श्रमके कामसे छुट्टी मिल गई है।

स्त्रियाँ इस अवकाशको कैसे बिताती हैं? बहुत थोड़ी स्त्रियाँ हैं, जो स्कूल, अस्पताल या दफ्तरोंमें काम करके अपने घरकी आयका बढ़ाती हैं। हिन्दू-समाजमें स्त्रियोंके दफ्तरोंमें जाकर काम करनेका रिवाज नहीं, इसलिए मध्य-श्रेणीका स्त्रियाँ प्रायः उपन्यास, कहानी आदि पुस्तकें पढ़कर अपना समय बिताती हैं। कुछ चित्रकारी, संगीत और अन्य ललित-कलाओंके सीखनेमें अपना समय बिताती हैं। स्त्रियोंको साहित्यावलोकन और कला-शिक्षणके लिए समय मिलनेसे उनका मानसिक और आध्यात्मिक दृष्टिकोण उदार और उन्नतिशील हो गया है। बहुत सी अशिक्षित स्त्रियाँ अपना समय बच्चोंपर ही ज्यादा लगाती हैं। उन्हें अपने अवकाशका समय बितानेका और ढंग ही नहीं आता। इसका परिणाम यह होता है कि बच्चे अधिक लालनसे विगड़ जाते हैं। बहुत-सी स्त्रियाँ इस बेकारीसे तंग आकर अकेलेपनका अनुभव करती हैं और मानसिक व्यसनोंमें फँस जाती हैं। शहरोंमें रहनेवाली स्त्रियोंके लिए अवकाश व्यतीत करना एक बड़ी समस्या हो गई है। इसको सुलझानेके लिए ज़रूरी है कि हमारे स्कूलोंमें स्त्रियोंको ऐसी शिक्षा दी जाय, जिससे वे अवकाशका सदुपयोग कर सकें। स्त्रियोंमें क्लव-जीवनका शौक, उनके लिए शिक्षाका प्रबन्ध और ऐसे-ऐसे अन्यान्य उपाय शहरोंमें होने चाहिए।

यह भी पर्याप्त न होगा। यदि आर्थिक तौरपर स्त्रियाँ पुरुषोंपर निर्भर रहेंगी, तो उसका परिणाम यह होगा कि वे अपनी स्वतन्त्रताको बहुत देर तक कायम न रख सकेंगी। इस युगमें जो धन कमाता है, वही राज्य करता है। स्त्रियोंको भविष्यमें घरकी आय

बढ़ानेमें मदद देनी आवश्यक होगी। मध्य-श्रेणीकी आय घटती जा रही है और भविष्यमें और भी घटेगी, जिसका प्रभाव यह होगा कि स्त्री और पुरुष दोनोंको ही धन कमाकर घर चलना पड़ेगा।

(५) मशीन - युगका प्रभाव विवाहपर—हमारे युगसे पहले काम-तृप्तपर बहुत अधिक रुकावटें थीं। संसारके सभी धर्मोंने काम-वासनाका निरोध करनेको पुण्य और काम-वासनामें लिप्त होनेको पाप कहा है। जो लोग काम-वासनापर क़ाबू नहीं पा सकते थे, उन्हें विषयी, भोगी आदि नामोंसे पुकारकर लज्जित किया जाता था। काम-वासनाकी अनियमित तरीकेसे सन्तुष्टि करनेवालोंको दंड दिया जाता था। काम-वासनाकी सन्तुष्टिको जीवनकी सुव्यवस्था और आनन्दके लिए ज़रूरी नहीं समझा जाता था। डार्विन और फ्रायडके प्रभावसे यह स्थिति बदल गई। इनके मतानुसार काम-वासना मनुष्यके मनोविकासपर गहरा प्रभाव डालती है। काम-वासनाके साथ ही मनुष्यकी सामाजिक इच्छाएँ जागती हैं—दया आदि शुभ गुण पैदा होते हैं। इस वासनाको रोकनेसे मानसिक उन्नति रुक जाती है, इसलिए इसे रोकनेके बजाय इसको योग्य-विधिसे ज़ाहिर होने देना चाहिए। मनुष्य-जीवनको सफल बनानेके लिए काम-वासनाओंकी ठीक तरीकेसे सन्तुष्टि होनी चाहिए। इन विचारोंके साथ-ही-साथ व्यक्ति-स्वातन्त्र्यकी भावनाके प्रसारसे विवाहका उद्देश्य बदल गया है। पहले विवाह होते थे कुलकी वृद्धि और सन्तानोत्पत्तिके लिए, अब विवाह होते हैं व्यक्तिगत तृप्तिके लिए और व्यक्तिगत जीवनमें आनन्द तथा उत्साह लानेके लिए। पहले विवाहके साथी माता-पिता चुनते थे, और चुनते वक्त उन्हें व्यक्तिका इतना खयाल नहीं होता था, जितना कुलकी इज्जतका। आजकलके युवक और युवतियाँ अपनी मर्ज़ीसे अपना साथी चुनना चाहते हैं। इन सब बातोंसे विवाहित स्त्री-पुरुषका एक दूसरेके साथ जीवन-भर निर्वाह करना एक जटिल समस्या हो गई है। विवाहमें अस्थिरता आती

जाती है। हिन्दुओंमें तलाक़की रस्म नहीं है, इसके न होनेसे आधुनिक हिन्दू गृहस्थ-जीवनमें नई प्रवृत्तियों और पुगनी रिवाजोंके संघर्षके कारण गृह सुख जाता रहा है। ऐसा होना अनिवार्य है, क्योंकि हम ऐसे युगमें रह रहे हैं, जब कि पुगने ढंग अभी गये नहीं और नये ढंग जम नहीं पाये।

(६) आधुनिक गृह-जीवनकी आर्थिक समस्याएँ—मशीन-युगके प्रभावसे लोगोंका जीवन निर्वाहका स्टैण्डर्ड ऊँचा हो गया है। पहले एक आदमीकी इच्छाएँ परिमित थीं। अब आवश्यकताएँ बढ़नेसे और कारख़ानोंमें तैयार हुई वस्तुओंके प्रसारसे लोगोंमें ज़ादा वस्तुएँ प्रयोग करनेकी रुचि आ गई है। साथ ही पड़ोसियोंके रहनेका अच्छा ढंग देखकर ईर्ष्या भी पैदा होती है। इस ईर्ष्यासे प्रत्येक प्राणी यह कोशिश करता है कि वह भी अपने रहनेका ढंग उन्नत करे, इससे मानसिक क्लेश बढ़ गया है, यद्यपि लोगोंका रहने-सहनेका ढंग पहलेकी अपेक्षा कितना ही अच्छा क्यों न हो। जो मज़दूर है, वह बावूके ढंगपर रहनेकी कोशिश करता है। आजकल बहुत-सी मोटर, मोटर-साइकल, सिलाईकी मशीन—किशतोंपर मिल जाती हैं। जिन्दगीके बीमेके पैसे भी किशतोंमें दिये जाते हैं। इससे लोगोंमें वह चीज़ें लेनेकी लालसा पैदा हो जाती है, जो वे साधारण आर्थिक अवस्थामें नहीं ख़रीद सकते; लेकिन जब महीनेके महीने पैसे देने पड़ते हैं, तो उस समय चित्तको क्लेश होता है। इससे गृहस्थका वास्तविक सुख जा रहा है।

ऊपर वर्णन किये गये पारिवारिक जीवनके विश्लेषणसे यह प्रतीत होता है कि व्यक्तिवादके आनेसे, प्राचीन संयुक्त-परिवार-प्रथाके शिथिल हो जानेसे, पारस्परिक प्रतियोगिता और ईर्ष्याके बढ़ जानेसे, जीवन-निर्वाहका आदर्श ऊँचा होनेसे, स्त्रियोंकी स्वतन्त्रता और काम-वासनाके सम्बन्धमें नये विचारोंके प्रसारसे प्राचीन वैवाहिक आदर्श लुप्त होता जा रहा है। बहुत लोग इससे घबरा जाते हैं और समझते हैं कि इस नई सभ्यताको

हिन्दुस्तानसे निकालकर प्राचीन जीवन-पद्धतिको लाना चाहिए। 'कारणाभावत कार्याभाव'; परन्तु यह नियम समाज-विकासके विरुद्ध है, जो भी तबदीलियाँ मनुष्यकी बुद्धिमें आ चुकी हैं, उनको भुजाया नहीं जा सकता। मशोन-युग आ चुका है, अब किसी प्रकार भी इसके आनेको रोका नहीं जा सकेगा। मनुष्यको अपने-आपको तबदील करके इस नई स्थितिके योग्य बनना पड़ेगा। इस युगमें व्यक्तिपर ऐसी जिम्मेदारियाँ आ पड़ी हैं, जो पहले किसी युगमें न थीं। इसलिए हमारी शिक्षा और समाजका उद्देश्य होना चाहिए कि व्यक्तिकी उन्नति और उसका चरित्र-संगठन इस रीतिसे हो

कि वह आचारको समाजके भयसे नहीं; किन्तु भीतरी उत्साहसे पालन करे। स्त्रियोंमें चरित्र-संगठन आवश्यक हैं। चरित्र-बल स्वतन्त्रता और संसारके अनुभवसे आ सकता है। इसलिए स्त्रियोंको उन तमाम व्यवसायोंमें काम करनेके लिए प्रोत्साहित करना चाहिए, जो आज केवल पुरुषोंके लिए ही हैं। विक्टोरियन युगका आदर्श, जिसमें स्त्रियाँ केवल घरकी सजावट समझी जाती थीं, आजके युगके लिए विलकुल अनुपयुक्त है और कालकी गतिके प्रतिकूल है। नये युगमें नये प्रकारके उन्नत और विकसित बुद्धिवाले स्त्री-पुरुष ही प्रसन्नता से रह सकेंगे !

हृदय-देवताके प्रति

श्रीमती सूर्यदेवी दीक्षित चिट्ठी 'उपा'

जिसके अधरोंका मधुर हास,
मेरे जीवनका सुख-सुहाग;
जिसकी चितवनकी एक कोर,
बिखरा देती अनुराग-राग।

जिसके शोभित लोचन-धनसे,
बरसा करती मदिरा निशा दिन;
जीवनके सुख-दुःख भूली हूँ,
पी-पीकर जिसको मैं छिन-छिन।

चरणोंमें प्राण चढ़ा करके,
बदलेमें जिसको पाया है;
उसपर न्योछावर कर दूँगी,
अब यह जो नश्वर काया है।

हूँ प्रकट ईश लखती जिसको,
जिसके ऊपर दीवानी हूँ;
अपनी इस कूटिया ही मैं में,
मानो महलोंकी रानी हूँ।

जिसके स्नेहसे उफन रही,
मेरे जीवनकी लघु प्याली;
यह छलक-छलक फिर-फिर भरती,
होती ही नहीं कभी खाली।

मैं उनके चरणोंकी रज हूँ,
वे मेरे भाग्य-विधता हैं;
मैं हूँ उनके मनकी रानी,
वे मेरे मनके झाला हैं।

जो वे सरिताके शीतल जल,
तो मैं मछली बन जाती हूँ;
वे प्रातः समीरण जो हैं तो,
मैं सुरभि सदृश मिल जाती हूँ।

वे भव्य-भातु बनकर चमकें,
मैं कंज-कली खिल जाती हूँ;
वे जब वसन्त बनकर आते,
मैं कोयल बनकर गाती हूँ।

वे हैं निशिकके विमल विम्ब,
मैं उनकी चतुर चक्री हूँ;
मैं अपने उन नटनागरकी,
मानिनि वृषभासु किशोरी हूँ।

सौन्दर्य-प्रेम

श्रीमती धर्मशीला लाल, एम० ए०, चार-पेट-लॉ

सौन्दर्यके अनेक रूप हैं—जैसे प्रकृतिका सौन्दर्य पुरुष या स्त्रीका सौन्दर्य, विचार या कल्पनाका सौन्दर्य, अथवा कला-रचनाका सौन्दर्य इत्यादि। जिस तरह सौन्दर्यके अनेक रूप हैं, उसी तरह लोगोंका सौन्दर्य-प्रेम भी भिन्न-भिन्न प्रकारकी सुन्दरताके लिए होता है। किसीको संगीतकी, किसीको चित्र-कलाकी और किसीको फूलोंकी सुन्दरता भाती है। इस लेखमें मैं दो प्रकारके सौन्दर्य-प्रेमके बारेमें लिखूंगी। स्त्रियोंमें दो प्रकारका प्रेम होना अत्यावश्यक है। पहला है वैयक्तिक सौन्दर्यका प्रेम (Love of personal beauty) और दूसरा है गृह-सौन्दर्यका प्रेम।

पहले प्रकारके सौन्दर्य-प्रेमको दो भागोंमें बाँटा जा सकता है—(१) शारीरिक सौन्दर्यका प्रेम और (२) अलंकारिक अथवा सजावटी सौन्दर्यका प्रेम (Love of decorative beauty)

शारीरिक सौन्दर्यके प्रेमका अर्थ है समस्त शरीरकी सुन्दरता तथा सुडौलताके लिए प्रेम। ऐसे सौन्दर्यके लिए केवल मुखकी सुन्दरता ही पूरी नहीं है, शरीरके प्रत्येक अंगमें सौन्दर्य होना चाहिए। मुख और शरीरके सौन्दर्यमें इतना गाढ़ा नाता है कि एक दूसरेके बिना नहीं रह सकता। भड़े शरीरपर सुन्दर मुखड़ा भड़ा बन जाता है, और सुन्दर देहपर साधारण मुख भी मनोहर प्रतीत होता है। दोनों प्रकारके सौन्दर्य आपसमें प्रेम रखते हैं और एक दूसरेकी वृद्धि करते हैं। शारीरिक सौन्दर्यके सबसे बड़े शत्रु हैं बीमारी तथा भ्रष्टाचार यानी शरीरके विभिन्न अंगोंमें अनुपातकी कमी। दोनोंको दूर रखना आसान है। यदि स्वास्थ्यके नियमोंका ठीक-ठीक पालन किया जाय और उचित रीतिसे प्रतिदिन व्यायाम किया जाय, तो ये शत्रु पास नहीं आयेंगे।

स्वास्थ्यके लिए भोजनपर बहुत ध्यान देना चाहिए। ताजे फलों और सब्जियोंकी मात्रा भोजनमें सबसे अधिक होनी चाहिए। चावल, रोटी, गोश्तकी मात्रा कम होनी चाहिए। लड़कियों और स्त्रियोंको यह जानना परमावश्यक है कि किस खाद्य-पदार्थमें क्या गुण है, भोजनमें किस चीज़की मात्रा कितनी होनी चाहिए और उसे किस तरहसे पकाने तथा खिलानेसे सबसे अधिक लाभ होता है। भोजनमें इन चार पदार्थोंका होना आवश्यक है—(१) प्रोटीन (Protein), यह दूध, घी, अंडे तथा मांसमें होता है; (२) कार्बोहाइड्रेट (Carbohydrate foods), यह चावल, आटा, चीनी तथा आलूमें होता है; (३) चिकना, घी तेल इत्यादि; (४) विटामिन, यह हरी सब्जियों तथा ताजे फलोंमें होता है। विटामिन इन चीज़ोंके छिलकोंमें अधिक मात्रामें होता है, इसलिए यथासम्भव इनके छिलकोंका भोजनमें उपयोग करना चाहिए। विटामिनवाले खाद्य-पदार्थोंको जहाँ तक हो सके, बिना पकाये खाना चाहिए, क्योंकि पकानेसे विटामिन कम हो जाता है।

भोजन-सम्बन्धी एक नियम सबको पालन करना चाहिए। वह यह है कि ज़रूरतसे ज्यादा कभी न खाना। डकार आनेका अर्थ है कि आवश्यकतासे अधिक भोजन किया गया है तथा पेट और खाना मंजूर नहीं कर सकता। यूरोपमें डकार लेना शिष्टाचारके नियमोंके विपरीत है, क्योंकि वह पेट होनेका लक्षण है। हमारे देशमें लोग डकार भी लेते जाते हैं और पेटके ऊपरके कपड़ेको ढीला करते हुए खाते भी जाते हैं। इससे अनेक प्रकारकी बीमारियाँ पैदा होती हैं और आजन्म कोइ-न-कोई रोग लगा ही रहता है। इसीलिए भोजनके सम्बन्धमें प्रत्येक पढ़ी-लिखी स्त्रीको पुस्तकोंका अध्ययन करना चाहिए, क्योंकि

ऐसा करनेसे परिवारको बहुत लाभ पहुँचेगा। भारतवर्षमें एक बहुत चालू प्रथा यह है कि रातको भोजन करनेके बाद बहुत जल्दी सब कोई सो जाते हैं। इससे पेटकी बीमारियाँ उत्पन्न होती हैं, नींद ठीकसे नहीं आती है, भयानक स्वप्न दीखते हैं और कमजोरी आ जाती है। रातके भोजन तथा सोनेके बीचमें कम-से-कम दो घंटेका अन्तर होना चाहिए। ऐसा करनेसे अच्छी नींद आवेगी, जिससे स्वास्थ्य अच्छा रहेगा। गहरी नींद सौन्दर्यकी बड़ी अच्छी दवा है।

शारीरिक सौन्दर्यके लिए व्यायामकी आवश्यकता है। प्रतिदिन हो सके तो खुली हवामें, नहीं तो कमरेमें ही व्यायाम करना चाहिए। प्रत्येक अंगकी कसरत होना चाहिए—विशेषतः कमर और पेटकी कसरत बहुत जरूरी है, क्योंकि इनमें स्थूलता बहुत जल्दी आती है, जो बदनको बहुत भद्दा बना देती है। दौड़ना या तेज़ चलना भी शरीरके लिए अच्छा है। धीरे-धीरे चलनेसे कसरत नहीं होती। भारतीय महिलाओंको अपने शरीर सुदौल और खूबसूरत बनानेका शौक होना चाहिए। यूरोपमें स्त्रियोंके लिए स्वास्थ्य और सौन्दर्यके अनेक संघ (लीग) संगठित हैं, जिनमें स्त्रियोंको अपना शारीरिक सौन्दर्य बढ़ानेके लिए व्यायाम सिखलाया जाता है। भारतवर्षमें लड़कियों और स्त्रियोंके लिए कुछ ऐसी संस्थाएँ चाहिए, जहाँ उन्हें विशेषज्ञ महिलाओंकी देखरेखमें व्यायामके साधन उपलब्ध हो सकें।

शारीरिक सौन्दर्यको बढ़ानेवाले सहायकोंमें, प्रत्येक देशमें, आभूषण और सुन्दर वस्त्रोंका स्थान बहुत ऊँचा है। महिलाओंको इस बातका अध्ययन करना चाहिए कि कौन-से रंग उनकी सुन्दरताको सबसे अधिक बढ़ाते हैं और कौन रंग किस रंगके साथ पहनना चाहिए। हमारे देशके धनी परिवारोंकी स्त्रियाँ कपड़ों और गहनोंपर बहुत काफी पैसा खर्च करती हैं; पर बहुधा वे ऐसे रंगके वस्त्र पहनती हैं, जो उन्हें नहीं सजते।

बहुधा रंगोंका मिश्रण ऐसा किया जाता है, जो भौंडा बन जाता है। इसी प्रकार वे जो आभूषण पहनती हैं, उनमें अनुपात और सुरुचिका ध्यान नहीं रखा जाता, फलतः कभी-कभी वे शोभा बढ़ानेके स्थानमें घटा देते हैं। लड़कियोंको चित्रकला सिखलानेसे उन्हें अलंकार-आभूषण तथा रंगोंके सामंजस्यके विषयमें अच्छी समझ तथा रुचि हो जाती है।

यह तो हुआ शारीरिक सौन्दर्य-प्रेम, अब गृह-सौन्दर्यपर ध्यान दीजिए। घरको सुन्दर रखना एक कला है, जिसे बालिकाओंको अवश्य सिखाना चाहिए। अक्सर देखा जाता है कि जगहकी इफ़रात और बहुमूल्य सुन्दर पदार्थोंके रहते हुए भी अनेक घर देखनेमें बुरे मालूम होते हैं। जब कमरोंमें सारी चीज़ें उचित स्थानपर रखी रहती हैं, तभी कमरोंको सजाना भी सम्भव हो सकता है। अतः प्रत्येक प्रकारके आवश्यक तथा दैनिक कार्य—जैसे स्नान करना, कपड़ा पहनना, भोजन करना, सोना इत्यादि—के लिए अलग-अलग कमरा होना चाहिए। ऐसा प्रवन्ध न करनेसे कमरोंमें चीज़ें इधर-उधर पड़ी रहती हैं और उन्हें सब जगह खोजना पड़ता है। इतने कमरे न हों, जगह कम हो, तो भी चीज़ोंको बाकायदा, यथास्थान, तरतीबसे रखकर भी सुन्दरता पैदा की जा सकती है। घरको सजानेके लिए सर्वदा इस बातका ध्यान रखना चाहिए कि किस चीज़का उचित स्थान कौन है और उस चीज़को किस प्रकार रखनेसे उसकी सुन्दरता सबसे ज्यादा प्रतीत होगी।

लन्दनमें प्रतिवर्ष एक आदर्श गृह-प्रदर्शनी (Ideal Home Exhibition) होती है। उसे देखकर घर बनानेवाले और घर सजानेवाले बहुत-सी नई-नई बातें सीखते हैं तथा अपने मकानोंकी सुन्दरता और सुखको बढ़ाते हैं। हमारे देशमें इस तरहका कोई प्रयत्न नहीं होता। कुछ स्थानीय संस्थाओंको इस दिशामें प्रयत्न करना चाहिए।

गृह-सौन्दर्य-प्रेमियोंको फूलोंका विशेष मान करना

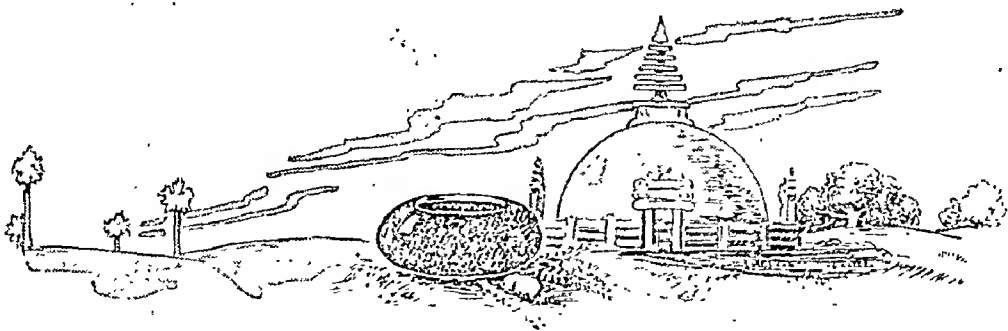
चाहिए। संसारमें फूलों-जैसी सुन्दर वस्तु कोई नहीं है। फूलोंसे गृह-सौन्दर्य बढ़ता है। जैसे सुन्दरीका सौन्दर्य सुन्दर वस्त्र तथा आभूषणसे बढ़ता है, उसी तरह मकानकी सुन्दरता फूलोंसे और हरे तख्तोंसे बढ़ती है। मकानके सामने सब्जी नहीं लगनी चाहिए। यदि जमीन ज्यादा है, तो हरी दूबके तख्ते तैयार करवाने चाहिए। हरे मैदानोंकी शोभा बड़ी मनोरंजक होती है। हरा रंग आँखोंके लिए भी बहुत लाभदायक और सुखदायक है।

मुग़ल बादशाहोंमें गृह-सौन्दर्यका प्रेम बहुत था। वे हरे मैदानों और खूबसूरत बगीचोंके बहुत शौकीन थे। उनके बगीचोंकी सुन्दरता आज तक ताजमहल जैसी इमारतोंकी खूबसूरतीको बढ़ा रही है। बगीचेका प्रेम भारतवर्षमें बहुत कम है। यूरोपवालोंको बगीचोंका बड़ा शौक है। उनके छोटे-छोटे मकानोंके साथ भी बगीचे होते हैं। मजदूरी भारतवर्षसे वहाँ बहुत महंगी है, इसलिए वहाँवाले अपने हाथसे ही बगीचेका काम करते हैं। बगीचेको सजाना एक कला है और फूलदानियोंमें फूलोंको सजाना भी एक कला है, जिसका कोई भी स्थान हमारे देशमें नहीं है। उसे मालियोंका काम समझा जाता है, इसलिए हमारी गृहिणियोंको उसे सिखलानेका कोई यत्न नहीं किया जाता।

घरकी सुन्दरतासे परिवार प्रसन्न रहता है। यदि चीजें बिखरी हों, तो मिज़ाज भिन्नाया रहता है। सुन्दरताका मनपर बड़ा शान्तिप्रद प्रभाव पड़ता है। सुन्दर घरमें काम करनेमें मन लगता है।

इस तरहके सौन्दर्य-प्रेमसे महिलाओंको और एक बहुत बड़ा लाभ यह होगा कि उनका फालतू समय घरको सजानेमें लगेगा, जिससे उनका मनोरंजन भी होगा। भले घरकी भारतीय रमणियोंका बहुत-सा समय बैठे-बैठे गप लड़ानेमें, दूसरोंकी निन्दा करनेमें या लेटनेमें जाता है। इस समयको यदि वे इस भाँतिके उपयोगी मनोरंजनमें लगावें, तो उन्हें कुछ हर्ष भी मिले। इससे उनका मन प्रसन्न रहेगा। प्रसन्नताके लिए सबसे जरूरी चीज़ है काम करना।

सौन्दर्य-प्रेम एक ऐसा पौधा है, जिसका बीज प्रत्येक नर-नारीमें होता है। इस बीजसे पौधा निकालनेके लिए लड़कियोंको घरमें और पाठशालाओंमें उचित शिक्षा मिलनी चाहिए। स्त्रियोंकी सहायताके लिए ऐसी सचित्र पत्रिकाओंकी जरूरत है, जिनमें सौन्दर्य बढ़ानेके लिए लेख, नक्शे और चित्र हों। यूरोपमें इस प्रकारकी अनेक पत्रिकाएँ छपती हैं। जब हमारी महिलाओंमें सौन्दर्य-प्रेम बढ़ेगा, तभी वे वास्तवमें गृहलक्ष्मियाँ होंगी।



जीवन-संध्या

श्रीमती सत्यवती मल्लिक

सरलाके एक साथ किये गये अनेक प्रश्नोंके उत्तरमें गंगाने जब लापरवाहीसे सिर्फ इतना ही कहा कि 'मनोहर वावू कालेजमें प्रोफेसर बनकर आये हैं और मनोहरके पिता नहीं हैं', तो सरला आँखें गड़ाकर गंगाके चेहरेकी ओर इस तरह देखने लगी, मानो उसका पेंसिल-स्केच खींच रही हो।

हाथोंमें सोनेकी चमचमाती चूड़ियाँ, कानोंमें सफेद मोती, वदनपर रेशमकी रंगीन साड़ी और तिसपर 'मनोहरके पिता नहीं हैं', ऐसा वज्र-सा कठोर वाक्य कहते हुए न तो गंगाकी आँखोंमें दो बूँद पानी ही आया और न उसके मुँहसे ठंडी साँस ही निकली। क्षण-भर चुप रहनेके बाद सरला भीतरी भावको दबाकर बड़ी-बूढ़ियोंकी भाँति बोली—“वहन, बेटेकी मा भी तो आधी सुहागिन होती है।”

वरामदेसे लौटकर जब गंगाने कमरेके भीतर प्रवेश किया, तो उसका जी पहलेके-से उत्साहके साथ दरवाजों तथा खिड़कियोंपर पर्दे लगानेमें लग रहा हो, इसमें सन्देह है। सरलाकी वह कौतूहल-भरी दृष्टि जैसे उसके कलेजेको चीरकर कई पुरानी स्मृतियोंको खोज निकालनेका प्रयत्न करने लगी। वह चाहती है कि आँखकी झपकमें बीते जीवनके उन बहुत प्राचीन परन्तु मधुरतम क्षणोंकी यादको ताज़ा करे। किसी प्रकार बच्चे (मनोहर) के पिताकी मूर्ति अपने हृदय-पटलपर अंकितकर दो आँसू बहाये, सास-ननदकी झिड़कियों और बोली-ठोलियोंको स्मरणकर जी भरकर रो ले और ज़रा इस बोझको, जो इस समय अकस्मात ही उसके दिलपर आ पड़ा है, हल्का कर ले, उतार दे।

किन्तु अतीतके जितने भी सुख-दुख-भरे चित्र वह अपने मानसिक नेत्रोंके सम्मुख खींचना चाहती है, उतने ही वे छायाकी भाँति दूर भागते नज़र

आते हैं। उनके बदले उसके हृदयके कमरेमें प्रतिबिम्बित हो जाती हैं कुछ और ही तसवीरें। पहले दिखाई देता है मिट्टीसे बना माँ-माँ करता हुआ एक छोटा-सा शिशु! उसके बाद आता है बरसातके किसी दिन पुस्तकें हाथमें ढावे भीगे वस्त्रोंसे घर लौटनेवाला एक बालक! और तब मानो उसे प्रत्यक्ष दिखाई देने लगता है आशाओंका प्रदीप वही तरुण मनोहर! आजका प्रोफेसर मनोहरलाल एम०ए०।

गंगा स्वयं ही अपनेको धिक्कारने लगी—अरे! क्या आज रोनेका दिन है? छी! और 'बच्चा' के कालेजसे लौटनेकी प्रतीक्षामें एक बार पुनः उसी उत्साहसे वह घरको सजाने लगी।

× × ×

इन थोड़े ही दिनोंमें प्रौढ़ा गंगा और नवयुवती सरलाकी परस्पर काफ़ी वनने लगी है। इस अनमेल जोड़ीकी मैत्रीका कारण केवल उदारचित्ता सरलाका दुखिया गंगाके वैधव्य जीवनकी करुण कहानियों द्वारा द्रवित होना ही न था, यदि केवल ऐसा, इतना ही होता, तो हँसमुखी और चंचला सरला दो ही दिनोंमें अपनी नई पड़ोसिनकी बातोंसे उकता जाती।

किन्तु असल बात तो यह है कि गंगाके जीवन-उद्यानमें आहाद और उल्लासका जो नन्हा-सा पौधा विकसित होनेके साथ-ही-साथ अकस्मात एक भारी चट्टानके नीचे दबकर मूर्च्छित और अर्धमृत-सा हो गया था, वह बरसोंके बाद आज पुनः इस बेमौसममें, इस वृद्धप्राय दशामें, अचानक लहलहाने लगा है। उसमें फिरसे जीवन और सुगन्धका समावेश हो गया है।

गंगाके मनकी चिर-संचित अभिलाषाएँ पुत्रके राज्यमें अपनी नवयुवती सहेली पड़ोसिनका सहयोग पाकर और भी अधिक उमंगोंके साथ जाग्रत हो उठी हैं। उसकी बड़ी-बड़ी काली आँखें, जो भरी जवानीके

मदभरे दिनोंमें आठों पहर सजल रहा करती थीं, आज न केवल नये-नये वस्त्राभूषणोंकी परखमें, अपितु शिक्षिता सरलाकी देखा-देखी कहानियोंकी नई-नई पुस्तकोंके अवलोकनमें भी लगी रहती हैं। वह अब रामायण-महाभारतकी कथा-वार्ता छोड़कर 'कुमुदिनी', 'परिणीता', 'नवनिधि' आदिके पढ़नेका भी प्रयास करती है।

सरलाको गाने-बजानेका भी काफ़ी शौक है। सितार, हारमोनियम, ग्रामोफोन आदि उसके डाइंग-रूमकी शोभाके आवश्यक अंग हैं। सो गंगाने भी अपने 'बच्चा' से कहकर ग्रामोफोन मँगवा लिया है। जिस किसी दिन प्रभातके समय रसिक हृदया सरला अपनी साससे सीखा हुआ ठेठ पंजाबी गीत—'इहा वेरीके वतवी, वे घुमाईयाँ जोवना !' (ओ अलबेले यौवन ! क्या यही वार है कि फिर भी कभी आओगे ?)—करुण भैरवी स्वरमें अपना दिलरुबा लेकर गाने बैठ जाती है, तो उसी समय गंगा भी अपने नये ग्रामोफोनमें रेकार्ड चढ़ा देती है—“क्या कारण है अब रोनेका ?”

और सरलाको इस बातमें बड़ा सुख अनुभव होता है कि गंगापर उसका काफ़ी रौब है।

[२]

मनोहर बचपन ही से कठोर नियन्त्रणमें पला है। उसके दादा उसे अपने समवयस्क लड़कोंके साथ खेल-तमाशोंमें जाने देना तो अलग रहा, उसकी बालोचित उछल-कूदको भी पसन्द नहीं करते थे। बड़े होनेके साथ-ही-साथ वह पिताके प्रभाव तथा माके परावलम्बी जीवनको दिल-ही-दिलमें अधिकाधिक अनुभव करता रहा है। आज भी मन-ही-मन उसे अपनी उस चतुरतापर आश्चर्य-मिश्रित हँसी हो आती है कि किस खूबीके साथ वह दादीसे छीन-छानकर दूधका भरा हुआ गिलास ले लेता था और आधा पीकर बाकी 'जी नहीं है' कहकर माको जवरन पिला देता था। और भोजनके समय भी वह कैसी जिद

पकड़ लिया करता था कि माके हाथसे ही खाऊँगा। दादी और माके बेतरह बौखलानेपर भी वह तभी भोजन करता था, जब एक ग्रास उसकी मा खाये और एक ग्रास उसे मिले।

किशोरावस्थाके उन सुनहले दिनोंमें ही जब उसके अन्य सहपाठी पढ़ाई समाप्त कर लेनेके बाद देश-विदेश घूमनेकी स्कीमें बनाया करते थे, मनोहरने अपने जीवनका एक ही ध्येय बना लिया था, और वह था किसी तरह माको पराधीनताके इस जीवनसे छुड़ाकर उसे सुखी बनाना। उसकी इसी दृढ़ लगनका यह परिणाम था कि आज एम० ए० पास करते ही मनोहरको प्रेसीडेन्सी कालेजमें प्रोफेसरी मिल गई है। और शायद यही कारण है कि उसका मन कालेजके अन्य प्रोफेसरो तथा विद्यार्थियोंके साथ हँसी-मजाक या मनोविनोदमें अधिक नहीं लगता। उसका चित्त अधिकतर घरमें ही आलमारीमें रखी पुस्तकोंमें अथवा माकी नई-नई फ़रमाइशोंको पूरा करनेमें उलझा रहता है।

मनोहर यद्यपि माकी सभी आकांक्षाओंको पूरा करनेका भरसक प्रयत्न करता है, और इसमें उसे बड़ा सुख अनुभव होता है; परन्तु जब कभी भूलसे अथवा कार्याधिक्यसे कोई वस्तु लानेमें दो-एक दिनकी देर भी कर देता है, तो गंगा एक मानिनी नवोढ़ा बहूके समान मुँह फुलाकर अपने कोप-भवनमें जा बैठती है। भोली गंगा ! नहीं जानती कि वह महाकालके अमिट विधानसे अब तक जीवनके उस तीरपर आ पहुँची है, जहाँ दुनियाकी निगाहमें उसका मान, गर्व या रौब उच्छ्रंखलता कही जा सकती है। मगर मनोहर माके जीवनके साथ इतना घुल-मिल गया है कि वह माको थोड़ा और भी खिजाना चाहता है। उसके जीमें आता है कि वह माकी कोई किताब अथवा सीनेका सामान किसी ऐसी जगह छिपा दे, जिससे वह सारे दिन परेशान रहे; किन्तु पल-भरमें ही जब माकी वही सजलनयना मलिनवसना मूर्ति उसके

मानस-नेत्रोंके सम्मुख आ जाती है, तो एक अवोध शिशुकी भाँति पीछेसे दौड़ा-दौड़ा आकर मा ! मा ! कहता हुआ वह उससे लिपट जाता है ।

उस समय गंगाके नारी-हृदयका स्वाभाविक अभिमान—रोष वात्सल्यकी नदीकी बाढ़से सारे-का-सारा बह जाता है, घुल जाता है ।

बन्धु-बान्धवोंसे बहुत दूर, इस बड़ी नगरीके एक कोनेमें, मा-पुत्र एक छोटी-सी नई गृहस्थी जुटाकर कभी आल्हाद, कभी उल्लास और कभी अभिमानके साथ दिन व्यतीत कर रहे हैं ।

गंगाको न भूतकालका दुःख सताता था और न भविष्यकी चिन्ता ही । वह अपनेको एक उच्च शिखरपर खड़ा पाती थी । वह अपने घरकी मालिकिन है ; वह अपनी खुशीका खा सकती है, अपनी पसन्दका पहन सकती है । उसके इस अखंड राज्यमें अब कौन हस्तक्षेप कर सकता है ?

और बच्चा ? बच्चा भी माकी इस स्नेहमयी छायामें अपूर्व शान्ति प्राप्तकर अपने जीवनको कृतकृत्य समझ रहा था । वे दोनों ही पुनीत प्रेमकी इस अटूट बन्धनसे विलग नहीं होना चाहते थे । किन्तु इस मानवके कोमल हृत्पिण्डके भीतर कौन-कौन-सी प्रवृत्तियाँ कैसे-कैसे उपद्रवजनक विस्फोटक पदार्थ छिपे पड़े हैं, इसे कौन जानता है ? कौन कह सकता है कि वे किस समय अचानक उठ खड़े होंगे ? हम स्वयं ही नहीं जान पाते । यह कैसी विवशता है ? कैसी विडम्बना है ?

x

x

x

क्रमशः शीतऋतु आ गई । ठंड अधिक पड़ने लगी । मनोहरने बड़े दिनोंकी सारी छुट्टियाँ कम्बल ओढ़कर विस्तरपर औंधे पड़े-पड़े ढेरों पुस्तकें पढ़नेमें ही गुज़ार दीं । परन्तु छुट्टियोंके अन्तिम दिन, नये वर्षके प्रथम दिवसकी दोपहरको, जब वह टालस्टायकी 'अन्ना कैरेनिना' समाप्तकर एक अंगड़ाई लेकर उठा, तो उसे अपने चारों ओर कुछ सूनापन-सा अनुभव होने लगा ।

बाहर हल्की-पीली घामने अनुपम लावण्य फैला रखा था, और आँगनमें गंगा चौकीपर बैठी अपने घने काले केश मुखा रही थी ।

मनोहर एक बार बाहर आया और उसके बाद उदासी-भरे मनसे भीतर लौट गया । माके साथ वह भला टालस्टायकी इस ऊँची साहित्यिक कल्पनाके सम्बन्धमें क्या बातचीत करे ? दोपहरीकी निस्तब्ध प्रकृति जैसे उसे अपने साथ एक करने लगी । अन्यमनस्क-सा हो, वह अखबारके पन्ने उलटने लगा । अचानक उसे एक नई बात सूझी । अखबार हाथमें लिये वह माके पास आ खड़ा हुआ हुआ और बोला—
“मा, चलो, आज तुम्हें सिनेमा ले चलें ।”

गंगा कुछ विस्मित-सी हो उठी । आज बच्चाको सिनेमाकी फुर्सत कहाँसे मिली है ? वह सरलासे ‘पूरण भगत’, ‘चण्डीदास’, ‘राजरानी मीरा’ आदि फिल्मोंका कथानक सुन चुकी थी, इसीलिए उसका मन भी इस अद्भुत करिश्मेको देखनेके लिए ललचा उठा ; परन्तु फिर भी प्रकटमें उसने यही उत्तर दिया—
“तुम जाओ, भई ! मुझे क्या समझमें आयेगा ?”

“मा, दिन-रात तो तुम रामायण वाँचा करती हो, भला ‘सीता’ की कथा तुम्हारी समझमें न आयेगी ?” मनोहरने आग्रहपूर्ण स्वरमें कहा ।

उस रात जब मा और ‘बच्चा’ सिनेमासे लौटे, तो आकाश निर्मल था । केवल श्वेत बादलोंके कुछ छोटे-छोटे टुकड़े पूर्णचन्द्रके आसपास छितराये हुए थे । तारागणका एक समूह सम्पूर्ण आकाशमें अप्रतिम होकर फैला हुआ था ।

कुछ देर तक अधखुली खिड़कीसे इस अलौकिक सौन्दर्यको निहारकर मनोहर कम्बल ओढ़कर सोनेका प्रयत्न करने लगा । अब प्राकृतिक और मानव दोनों चित्रपट उसकी दृष्टिसे ओझल थे ; किन्तु अब भी बाक़ी थी उनकी छाया-सी । सिनेमा-हाल, दृश्य, धरती-माताके मुँह फाड़कर गानेपर गुप्त-परिवारका हँसी-विनोद । प्रो० गुप्त वास्तवमें सज्जन पुरुष हैं । कई

बार वे कालेजमें उससे घर आनेका आग्रह कर चुके हैं। उनकी पत्नी भी बहुत मिलनसार और समझदार प्रतीत होती हैं। और मा भी क्या गजब करती हैं! राम-सीताकी तसवीरोंके आगे बार-बार सर झुका देना क्या अन्ध-श्रद्धा नहीं है? वे लोग क्या कहते होंगे? मिस गुप्ता कैसी शिक्षित और सभ्य लड़की मालूम होती थी! कमल-विसर्जनका दृश्य देखकर कैसी भावुकता उसके चेहरेपर टपकती थी। युवक मनोहरके हृदयमें सहसा एक स्वाभाविक तरुण भावनाका सूत्रपात हुआ और न-जाने वह इन संकल्पोंमें ही कहाँ तक उड़ता चला गया।

किन्तु जिस समय युवक मनोहर अपना एक नया संसार बसानेके सुख-स्वप्न देख रहा था, उसी समय सुनसान रात्रिमें गंगा—राम-लीलाकी पुनीत कथाको थोड़ी ही देर पहले आँखोंके सामने प्रत्यक्ष देख-चुकनेके कारण—प्रेम और भक्तिके सागरमें हिलोरें ले रही थी।

अगले ही रविवारको मनोहर प्रोफेसर गुप्तके यहाँ चायके लिए निमन्त्रित था। संध्या होनेको आई; गंगाको कुछ भी पता न था। वह रूमालोंके किनारे मोड़नेमें ऐसी तल्लीन रही कि मनोहरके इतनी देरसे आनेका कारण बिना पूछे ही कोनेमें रंगीन फूल काढ़े हुए दो रूमाल और ताज़ी मिठाईकी तश्तरी लिये 'बच्चा'के सम्मुख आ खड़ी हुई।

मनोहर स्वयं ही कुछ भिन्नककर बोला—“मा! यह क्या हो रहा था?”

“कुछ नहीं, बेटा! तुम कल रूमाल खोज रहे थे न? और यह गोलेकी बर्फी थोड़ी देर पहले ही बनाई है।”

और दिन होता तो मनोहर माके हाथोंकी कारीगरीके कितनी प्रशंसा करता और जान-बूझकर कितनी ही चुटियाँ खोज निकालता; किन्तु वास्तवमें आज मनोहरको भूख न थी। कपड़े उतारते हुए रूमालोंकी ओर देखकर वह बोला—“मा! क्यों तुम

यों ही दिन-भर काम-काजमें लगी रहती हो! अब हम बच्चे थोड़े ही हैं?”

मनोहरने यद्यपि उपर्युक्त बात सरलतापूर्वक कही थी, किन्तु वह उस क्षण यह भूल गया था कि उसकी माका हृदय एक ऐसे तरल पदार्थसे भरा हुआ है, जो ज़रा-सी भी ठेस पाकर छलक उठता है।

गंगा एक गहरी व्यथाको लेकर दूसरे कमरेमें भोजन परोसने चली गई।

[३]

वैशाख संक्रान्तिके शुभ मुहूर्तमें प्रोफेसर मनोहरलालकी सगाई कुमारी अमृतलता गुप्त बी० ए० से निश्चित हुई है। कन्या-पक्षवालोंकी ओरसे आज सगुन आया है। गंगाके घर सरलाके सहयोगसे दिन-भर गाना-बजाना होता रहा है। फल-मिठाई इत्यादिसे आने-जानेवाली स्त्रियोंका यथेष्ट सत्कार होता रहा है। कन्याके विषयमें सरला सबको परिचय दे रही है। और गंगा? गंगाके जीवनमें इस शुभ घड़ीसे बढ़कर आह्लादका और कौन समय होगा? वह इस दिनपर क्यों न बलिहार जाय। जब एक छमछमाती नूपुर-ध्वनि उसके कानोंमें मंकृत होने लगती है, तो वह उछल पड़ती है।

काम-काजसे निपटकर गंगा ज़रा विश्राम करनेके लिए ऊपर खुली छतपर जा बैठी। सामने ही पीपलके हरे-हरे पत्तोंके ओटमें सूर्य अस्त हो रहा था। अन्तिम किरणोंसे आकाशके बादल रंग-विरंगे हो उठे थे। नगरमें शोरगुल मचा था, मगर आसमान जैसे सन्नाटा खींचे चुपचाप खड़ा था।

गोधूलिका समय है। दिन-भरके थके-माँदे लोग अपने-अपने बसेरोंकी ओर लौट रहे हैं। सामनेके पीपलके पेड़पर सैकड़ों चिड़ियाँ एक साथ कोलाहल कर रही हैं। पशुओंके झुंड बाँ-पँ-आँकी आवाज़ देते हुए किस आशासे भागते आ रहे हैं। गंगाकी

आँखें इन सब दृश्योंकी ओर हैं ; परन्तु उसका चित्त अभी तक अपनी भावी बहूके वस्त्राभूषणोंके चुनावमें ही लगा हुआ है। वह कौन-कौन-से सुन्दर आभूषण और कैसी-कैसी नई साड़ियाँ मँगवायेगी ?

परन्तु ज्यों ही सायंकालकी पीली छाया पश्चिम दिशामें विलीन हो गई, बादलोंके समूहकी सम्पूर्ण स्वर्णमयी आभा घने अन्धकारमें खो गई और क्रमशः पक्षियोंकीका कलरव भी सुनाई देना बन्द हो गया, त्यों ही गंगाका हृदय भी सहसा इस नीरव प्रकृतिके साथ-साथ जैसे दूबने-सा लगा। उसमें भी जैसे अन्धकार-सा भरने लगा। बार-बार उसके मनमें एक प्रश्न-सा उठने लगा—‘यह सृष्टि इतनी सुन्दर होकर भी इतनी सूनी क्यों है ?’

‘बच्चा’ कहता है—“मा, अब तुम्हें कुछ भी काम नहीं करना पड़ेगा। घरकी कोई चिन्ता न करनी होगी। खूब मजेसे तीर्थ-यात्रा करना।” दिनमें कई स्त्रियोंने भी उससे सहायभूतिके शब्दोंमें कहा है—“बहन, तुम्हें अब गृहस्थीके धन्वोंसे क्या लेना है ? अपना आरामसे रामका भजन करना !”

हाँ, ठीक तो है ! मुझे अब इन धन्वोंसे क्या लेना है ! यह गाना-बजाना, यह सीना-पिरोना, यह सिनेमा-तमाशा, क्या मुझे शोभा देते हैं ? वह फिर एकदम चौंक-सी पड़ी। अरे ! तो क्या मुझे ‘बच्चा’की सम्पूर्ण चिन्ता, सम्पूर्ण देखभाल एक नये व्यक्तिके हाथोंमें सौंप देनी होगी ? यहाँ तक कि उसके आने-जानेके समय गहरी उत्सुकता और अनन्य प्रतीक्षाका मेरा सम्पूर्ण अधिकार भी मुझसे छिन जायगा। जिस नन्हें पौधेको वह लगातार बाईस वर्षोंसे विना किसीकी सहायताके सींचती आई है, क्या आज एकाएक किसी कोनेमें बैठकर सिर्फ उसकी छायाका ही आनन्द उठाया करे ? गंगा सहसा सपना-सा देखने लगी।

करीब पचीस बरस पूर्व जब वह भोला-भाला मुँह लिये अपनी माकी गोदसे बिड़ुड़कर—सखी-सहेलियोंको

विलखता हुआ छोड़कर—ससुराल आई थी, तब क्यों न वह विधिका विधान जान सकी थी ? उस प्रभात वेलामें बाल-रविकी भाँति हँसते-हँसते किन-किन उमंगों और कौन-कौन-सी आशाओंको साथ लेकर उसने अपनी जीवन-नौका संसार-सागरमें छोड़ दी थी। परन्तु उसके बाद अकस्मात आकाश मेघाच्छन्न हो गया। सभी ओर घना अन्धकार छा गया। पथहीन राहीकी तरह वह भयभीत हो गई। काँप उठी। उसका कोमल हृदय सहसा चूर-चूर हो गया। उसकी वह चपलता, उसके हृदयका वह सारा उल्लास जैसे अचानक ही उससे छीन लिया गया।

परन्तु निराशाके उस गहरे तमोसागरमें भी आशाकी एक हलकी-सी सुनहली किरण सहसा उसे मार्ग दिखाने लगी। प्रकाशकी उसी उज्ज्वल रेखाके सहारे उसने पुनः एक बार अपनी नैय्याको उस पार ले चलनेका निश्चय किया। विधिकी कृपा हुई और उसकी वह ज्योति क्रमशः अधिक-अधिक उज्ज्वल होती गई। अँधेरा कम होता गया, और आखिर एक समय आया, जब उसका सूना हृदय एक बार फिर तरंगित हो उठा। उसमें नवजीवन आ गया। हँसी-खुशी, आमोद-प्रमोद उसे फिरसे सुहाने लगे। सभी क्लेश-ताप उससे कोसों दूर भाग गये।

परन्तु हाय ! बरसोंके बाद आज पुनः उसे अपने ऊपरका आकाश अन्धकारपूर्ण दिखाई देने लगा है। गंगाकी निगाह सहसा ऊपरकी ओर उठ गई, ऊपर गहरी अँधेरी रात थी। बादल छाये रहनेसे तारोंका भी निशान नहीं था। आसमानकी उस गहरी छायाके नीचे कलकत्ता नगरी अपने दीये बालकर पड़ी थी।

किन्तु इसी समय सचमुच ही क्षितिजमें एक ओर असंख्य तारागण फिलमिला उठे और उसी क्षण किसी सुदूर बैंगडकी मधुर ध्वनि सुनाई पड़ने लगी। इसके साथ-ही-साथ सरलाके घरसे सितारकी ध्वनि भी मंक्रुत हो उठी।

सहसा गंगाकी आँखोंमें आँसू भर आये और

उसके चेहरेपर मुसकराहट-सी छा गई। वह इस समय रोये या हँसे। इन चमकते तारोंको, संगीतकी इस मधुर ध्वनिको और अपनी सहेलीकी आल्हाद भरे चहकको वह विधाताका प्रसाद मानकर स्वीकार करे या इन्हें अपने लिए एक व्यंग-भरी विडम्बना माने। गंगाको कुछ भी सूझ न पड़ा। वह निराश हो जाय, या आशासे भर उठे। सहसा उसके जी में आया कि वह अपने 'बच्चा' के सामने अपने जीका दर्ष और विषादसे भरा संगीत उन्मुक्त रूपसे प्रवाहित कर दे; परन्तु सगाईकी इस खुशीके अवसरपर उसका 'बच्चा' माके हृदयके इस गहरे द्वन्द्वको कहाँ समझ पायेगा !

अचानक गंगाको सूझ पड़ा। ओह ! यह तो उसके जीवनका संध्याकाल है। तभी तो इसमें साँझका-सा मनोरम सौन्दर्य है और उसी जैसा करुण विदाई-सा गहरा भाव।

गंगाकी आँखोंसे दो वूँद नीचेकी ओर टुलक गये, और उसने अन्तःकरणको चीरती हुई एक गहरी साँस व्यक्त हो पड़ी।

इसी समय सीढ़ियोंपर किसीके चढ़नेकी-सी आवाज़ हुई। अगले ही क्षण दूरसे मनोहरने पुकारा—
“मा !”

गंगाने साड़ीके आँचलसे अपना मुँह पोंछकर बहुत ही कोमल स्वरमें जवाब दिया—“बच्चा !”

वीरांगना

श्री सुरेन्द्र शर्मा

जागरणका प्रभात

१६ जनवरी सन् १९०६।

दिनके दो बजे थे। रूसके बोरिसोग्लेव्स्क (Borissoglebsk) स्टेशनपर रिवाल्वरसे फायर हुए—धायँ ! धायँ ! धायँ ! और साथ ही जनरल लूफेनोव्स्की सांघातिक चोटसे आहत होकर गिर पड़ा। एक क्षणके लिए वहाँ खड़ी हुई भीड़ भयके मारे भौचकी रह गई। चारों ओर सन्नाटा छा गया। फिर एकाएक भीड़में चीं-पुकार मच उठी। वातावरणकी शान्ति भंग हो गई। भीड़की चीं-पुकारसे भी अधिक जोरदार था वह गगनभेदी सिंह-गर्जन, जो ठीक बीचो-बीच खड़ी हुई भीड़ एक युवतीके कंठसे हो रहा था और जिसने अपने रिवाल्वरसे फायर किये थे। देखते-देखते कज्जाक सिपाहियोंके कोड़े उसकी पीठपर बरसने

लगे। इस इक्कीसवर्षीया युवतीका नाम था मेरिया स्पिरिडोनोवा।

उस ज़मानेकी रूसी सरकारके गुप्त कागज़-पत्र अब सार्वजनिक हो गये हैं। ताम्बोव (Tambov) प्रान्तके उन सब सरकारी कागज़-पत्रोंमें ऐसी एक भी हिंसात्मक घटनाका उल्लेख नहीं मिलता, जो वहाँके विद्रोही किसानों द्वारा ज़मींदारोंपर घटी हो। फिर भी ६ नवम्बर सन् १९०५ को ताम्बोव-प्रान्तमें वहाँकी सरकारने मार्शल-ला जारी कर दिया। सरकारका सारा काम—न्याय-विभागका शासन तक—प्रत्येक प्रान्तके फौजी गवर्नरके आदेशानुसार होने लगा। उस फौजी शासनका धर्माध्यक्ष था ताम्बोवका गवर्नर वॉन डर लौनिदज़, जो अपनी ही प्रजासे लड़नेके लिए कमाण्डर-इन-चीफ नियुक्त कर दिया गया।

यह गवर्नर बड़ा कायर था और किसानोंसे घृणा

करता था। वह बड़े उत्साहके साथ अपना काम करने लगा। उसने प्रत्येक प्रान्तमें एक विशेष फौजी अफसर नियुक्त कर दिया और उसके हाथमें कज्जाक सिपाही सौंप दिये। वोरिसोग्लेव्सक जिलेमें जनरल लूफेनोव्सकीको पूर्ण अधिकार दे दिये गये।

जैसे ही इस जनरलका दल किसी बदनाम गाँवपर चढ़ाई करता, वैसे ही ढोल पीट-पीटकर वहाँके किसानोंको इकट्ठा हो जानेकी सूचना दे दी जाती। तुरन्त ही किसानोंके सामने यह माँग पेश कर दी जाती कि अपने लीडरोंको हाज़िर करो। इसके साथ ही आम तौरपर किसानोंपर कोड़ेवाज़ी शुरू हो जाती। अगर किसान अपने मुखिया लोगोंको फौरन हाज़िर न करते, या उन्हें हाज़िर करनेमें तनिक भी आनाकानी करते, तो भीड़पर गोलियोंकी बौछार शुरू हो जाती। डाट-दपट और धमकियोंका काम पूरा करनेके लिए गाँवके अनेक स्थानोंमें आग लगा दी जाती। इस प्रकारके फौजी दलोंके आनेकी चेतावनी गाँवमें पहले ही पहुँच जाती थी। अमानुषिक अत्याचारोंसे त्राण पानेके लिए किसान लोग ऐसे अवसरोंपर निहान्त दीनताका प्रदर्शन करते। गाँवमें हथियारबन्द फौजी सिपाहियोंका जत्था पहुँचनेपर किसान घुटने टेककर उन्हें सलाम करते। प्रत्येक मोपड़के आगे किसान घुटनेके बल बैठे हुए रोटी और नमक लिये उनकी प्रतीक्षा करते। परन्तु किसानोंकी यह दीनता, वेवसी और आजिज़ी ज़ारशाहीके उन खूँख़ार कज्जाक भेड़ियोंके सुख और सन्तोषके लिए काफी न थी।

लूफेनोव्सकी ताम्बोवका एक ज़मींदार था। अतिरिक्त पुलिसके साथ स्वयं उसने १८ से अधिक गाँवोंपर चढ़ाई की। उसकी चढ़ाईयोंका वर्णन स्फिरिडोनोवाने अदालतमें इस प्रकार किया था—
“उसके चले जानेपर गाँव बिल्कुल उजड़े हुए इस प्रकार दिखाई पड़ते थे, जैसे कि तुर्कों द्वारा उजाड़ दिये जानेपर बल्गेरियन गाँव दिखाई पड़ते थे। पैवलोडर गाँवमें १० आदमी मार डाले गये। एक

आदमी किसानोंको यह समझाने गया था कि वे महज़ जोशमें भरकर, भावनाओंमें बहकर, कोई काम न करें, बल्कि प्रत्येक कामको तर्ककी कसौटीपर कसकर विवेक-बुद्धिसे, समझदारीसे, करें। परन्तु सिपाहियोंने बिना इस बातको जाने हुए कि वह कौन था, पकड़ लिया और उसे एक-एक बूँद पानीके लिए तड़पा-तड़पाकर चार दिनमें मार डाला !”

इसी प्रकार स्फिरिडोनोवाने अदालतमें उन अनेक हत्याकाण्डों और अमानुषिक दमनपर प्रकाश डाला था, जो ज़ारकी छत्रछायामें रूसकी दीन-हीन प्रजापर किये जा रहे थे।

लूफेनोव्सकीने अधिकारियोंको तार द्वारा प्रतिदिनकी घटनाओं और अपनी ‘विजय’की सूचना भेजी। गवर्नरको उसने लिखा—“वेरसोव्काके किसानोंने घुटने टेककर मेरा स्वागत किया। उन्होंने वादा किया है कि अपने मुखिया लोगोंको और चुगये हुए धनको मेरे हवाले कर देंगे। उन्होंने स्पष्ट बतलाया है कि उन्हें विचारियोंने भड़का दिया था। दो मारे गये, घायलोंकी संख्याका पता नहीं। कल एक दूसरे गाँवको सर करूँगा।”

गवर्नरने धन्यवादका तार देते हुए उत्तर दिया—
“आपके प्रभावशाली कामके लिए धन्यवाद देनेको मेरे पास शब्द नहीं हैं ! ईश्वर आपकी सहायता करे ! क़ानूनका ख़याल न करो। पहले गोली मार दो, पीछे जाँच करो। जिसपर तनिक भी सन्देह हो, उसे गिरफ़्तार कर लो। बहादुर सिपाहियोंको मेरा धन्यवाद है और प्रत्येकको एक रूबल भेंट। ईश्वर आप लोगोंकी रक्षा करे।”

सन् १९०४ में ज़ारकी उस बलवती और अखंड सत्ताने, जो कुछ समय पहले तक हेगमें विश्व-शान्तिकी स्थापनाका तराना अलाप रही थी, जापानके साथ युद्ध-स्थलमें प्रवेश किया ; परन्तु थोड़े ही दिन बाद हार-पर-हार होने लगी, और अन्तमें जापानके बल-विक्रमके सामने उसे बुरी तरह मुँहकी खानी पड़ी।

इस लड़ाईके दो परिमाण प्रत्यक्ष निकले । विश्व-शक्तियोंमें जापान एक अत्यन्त पराक्रमी और शक्तिशाली राष्ट्र सम्मान जाने लगा और रूसकी एकतन्त्र सत्ताको ऐसा जबरदस्त धक्का लगा, जिससे उसके क्रममें दफनाये जानेके दिन और भी निकट आ गये ।

रूसके एक सिरेसे दूसरे सिरे तक दमनका बोलबाला था । जनतामें दिन-पर-दिन अशान्ति बढ़ती जा रही थी । उस अशान्तिको देखकर ऐसा मालूम पड़ता था कि जारशाही अब अधिक समय तक जीवित न रह सकेगी ; परन्तु उसके विरुद्ध देशमें जो संघर्ष चल रहा था उसमें समन्वय और तारतम्य न था । यह ठीक है कि उस समय तक रूसमें अच्छी तरहसे संगठित अनेक क्रान्तिकारी दल बन चुके थे ; पर जारशाहीके जुएके नीचे किसानों और मजदूरोंकी आवादी अब भी शान्त थी । नये और प्रगतिशील विचारोंके मार्गमें पुराने राजनीतिक, सामाजिक और दक्षियानूसी आर्थिक विचारोंकी परम्परा एक जबरदस्त रोड़ा साबित हो रही थी ।

६ जनवरी सन् १९०५ को पेट्रोग्रेडके बाजारमें होकर मजदूरोंका एक बड़ा भारी जुलूस निकला । उसमें हजारों ही मजदूर स्त्रियाँ और बच्चे भी शामिल थे । जुलूसवालोंके हाथमें गिरजेके झंडे और बादशाहोंके सजे हुए चित्र थे । वह जुलूस जारको अर्ज़ी देनेके लिए निकाला गया था । जुलूसमें शामिल हुए लोग कह रहे थे—“हम जारके पास जाकर कहेंगे, पिता, हमारी सहायता करो । हम आपके बच्चे हैं । आप नहीं जानते कि हमपर कैसी मार पड़ती है और जुल्म होता है । हम कैसे भूखे रहते हैं, कैसे परिश्रम करते हैं और कैसे जंगली जानवरोंकी तरह घोर अज्ञानके अन्धकारमें पड़े हुए अपना जीवन बिताते हैं ।”

इधर मजदूरोंका जुलूस निकल रहा था, उधर बाजारोंके प्रत्येक चौराहे और मोड़पर हथियारोंसे सजी हुई फ़ौजी टुकड़ियाँ गश्त लगा रही थीं । अचानक गोलियाँ चलने लगीं ! निहत्थी भीड़में से बहुतसे

आदमी घराशायी हो गये । धुड़सवारोंके रिसालोंने रास्ते रोक लिये और बहुतसे आदमी घोड़ोंके टापोंसे घायल होकर धरतीपर गिरे और तड़पने लगे । जिन लोगोंने भागनेका प्रयास किया, वे सिपाहियोंकी गोलियोंके शिकार हुए !

सेंट-पीटर्सबर्गके बाजार और गली-कूचे लाशोंसे पट गये । इस दृश्यको देखकर रूसी जनता तिलमिला उठी । जिन गोलियोंने रूसमें निकाले गये जारके चित्रोंको मटियामेट किया, उन्हींने लोगोंके हृदय-पटलपर परम्परागत अंकित जारकी मूर्तिमती सत्ताका भी अन्त कर दिया । चारों ओरसे आवाज़ आने लगी—“अब अधिक समय तक हम जारशाही नहीं रखेंगे ।” हड़तालें, सभाओं और जुलूसोंका ताँता बँध गया । स्थान-स्थानपर लाल झंडे दिखलाई देने लगे और साथ ही व्यक्तिगत रूपसे किये गये इक्के-दुक्के आतंकवादी कार्योंका प्रदर्शन भी होने लगा । देश-भरमें शेरक्रान्ती साहित्य और भाषणोंका प्रचार हो गया । साम्यवादी पार्टियाँ बन गईं । इस प्रकार सार्वजनिक असन्तोषकी आग वाकु, जार्जिया, मध्य-रूस, वारसा, फिनलैण्ड, मास्को आदि सभी मुख्य-मुख्य स्थानोंमें फैल गई । २० जनवरीको सरकारने सेंट-पीटर्सबर्ग, कीव, खारकोव, वारसा और कैज़ाँके हाई स्कूल बन्द करा दिये । सेंट-पीटर्सबर्ग यूनिवर्सिटीके विद्यार्थियोंने पढ़ना छोड़कर अपनी सारी शक्ति क्रान्तिको सफल बनानेमें लगानेका निश्चय किया । इसी समय जारने एक कमीशन इस उद्देश्यसे नियुक्त किया कि वह सेंट-पीटर्सबर्गके मजदूरोंके असन्तोषके कारणों और उसे दूर करनेके उपायोंपर विचार करे ; परन्तु मजदूरोंने कमीशनके आगे अपने प्रतिनिधि भेजनेसे इन्कार कर दिया । फलस्वरूप कमीशन तोड़ दिया गया ।

६ दिसम्बर, १९०५ को मास्कोमें विद्रोहका श्रीगणेश हो गया । उसमें अकेले मास्कोमें ही एक हजारसे ऊपर आदमी मारे गये, जिनमें ६७ बच्चे थे । जारकी पल्टनने अन्तमें विद्रोह दबा दिया । विजयी

करता था। वह बड़े उत्साहके साथ अपना काम करने लगा। उसने प्रत्येक प्रान्तमें एक विशेष फौजी अफसर नियुक्त कर दिया और उसके हाथमें कज्जाक सिपाही सौंप दिये। वोरिसोग्लेव्सक जिलेमें जनरल लूफेनोव्स्कीको पूर्ण अधिकार दे दिये गये।

जैसे ही इस जनरलका दल किसी बदनाम गाँवपर चढ़ाई करता, वैसे ही ढोल पीट-पीटकर वहाँके किसानोंको इकट्ठा हो जानेकी सूचना दे दी जाती। तुरन्त ही किसानोंके सामने यह माँग पेश कर दी जाती कि अपने लीडरोंको हाज़िर करो। इसके साथ ही आम तौरपर किसानोंपर कोड़ेबाज़ी शुरू हो जाती। अगर किसान अपने मुखिया लोगोंको फौरन हाज़िर न करते, या उन्हें हाज़िर करनेमें तनिक भी आनाकानी करते, तो भीड़पर गोलियोंकी बौछार शुरू हो जाती। डाट-दपट और धमकियोंका काम पूरा करनेके लिए गाँवके अनेक स्थानोंमें आग लगा दी जाती। इस प्रकारके फौजी दलोंके आनेकी चेतावनी गाँवमें पहले ही पहुँच जाती थी। अमानुषिक अत्याचारोंसे त्राण पानेके लिए किसान लोग ऐसे अवसरोंपर निहायत दीनताका प्रदर्शन करते। गाँवमें हथियारबन्द फौजी सिपाहियोंका जत्था पहुँचनेपर किसान घुटने टेककर उन्हें सलाम करते। प्रत्येक मोपड़के आगे किसान घुटनोंके बल बैठे हुए रोटी और नमक लिये उनकी प्रतीक्षा करते। परन्तु किसानोंकी यह दीनता, वेवसी और आजिज़ी ज़ारशाहीके उन खूँख़्वार कज्जाक भेड़ियोंके सुख और सन्तोषके लिए काफी न थी।

लूफेनोव्स्की ताम्बोवका एक ज़मींदार था। अतिरिक्त पुलिसके साथ स्वयं उसने १८ से अधिक गाँवोंपर चढ़ाई की। उसकी चढ़ाइयोंका वर्णन स्परिडोनोवाने अदालतमें इस प्रकार किया था—
“उसके चले जानेपर गाँव विलकुल उजड़े हुए इस प्रकार दिखाई पड़ते थे, जैसे कि तुर्कों द्वारा उजाड़ दिये जानेपर बल्गेरियन गाँव दिखाई पड़ते थे। पैवलोडर गाँवमें १० आदमी मार डाले गये। एक

आदमी किसानोंको यह समझाने गया था कि वे महज़ जोशमें भरकर, भावनाओंमें बहकर, कोई काम न करें, बल्कि प्रत्येक कामको तर्ककी कसौटीपर कसकर विवेक-बुद्धिसे, समझदारीसे, करें। परन्तु सिपाहियोंने बिना इस बातको जाने हुए कि वह कौन था, पकड़ लिया और उसे एक-एक बूँद पानीके लिए तड़पा-तड़पाकर चार दिनमें मार डाला !”

इसी प्रकार स्परिडोनोवाने अदालतमें उन अनेक हत्याकाण्डों और अमानुषिक दमनपर प्रकाश डाला था, जो ज़ारकी छत्रछायामें रूसकी दीन-हीन प्रजापर किये जा रहे थे।

लूफेनोव्स्कीने अधिकारियोंको तार द्वारा प्रतिदिनकी घटनाओं और अपनी ‘विजय’की सूचना भेजी। गवर्नरको उसने लिखा—“वेरेसोव्काके किसानोंने घुटने टेककर मेरा स्वागत किया। उन्होंने वादा किया है कि अपने मुखिया लोगोंको और चुगये हुए धनको मेरे हवाले कर देंगे। उन्होंने स्पष्ट बतलाया है कि उन्हें विद्यार्थियोंने भड़का दिया था। दो मारे गये, घायलोंकी संख्याका पता नहीं। कल एक दूसरे गाँवको सर कलंगा।”

गवर्नरने धन्यवादका तार देते हुए उत्तर दिया—
“आपके प्रभावशाली कामके लिए धन्यवाद देनेको मेरे पास शब्द नहीं हैं ! ईश्वर आपकी सहायता करे ! कानूनका खयाल न करो। पहले गोली मार दो, पीछे जाँच करो। जिसपर तनिक भी सन्देह हो, उसे गिरफ़्तार कर लो। बहादुर सिपाहियोंको मेरा धन्यवाद है और प्रत्येकको एक रूबल भेंट। ईश्वर आप लोगोंकी रक्षा करे।”

सन् १९०४ में ज़ारकी उस बलवती और अखंड सत्ताने, जो कुछ समय पहले तक हेगमें विश्व-शान्तिकी स्थापनाका तराना अलाप रही थी, जापानके साथ युद्ध-स्थलमें प्रवेश किया ; परन्तु थोड़े ही दिन बाद हार-पर-हार होने लगी, और अन्तमें जापानके बल-विक्रमके सामने उसे बुरी तरह मुँहकी खानी पड़ी।

इस लड़ाईके दो परिमाण प्रत्यक्ष निकले। विश्व-शक्तियोंमें जापान एक अत्यन्त पराक्रमी और शक्तिशाली राष्ट्र समझा जाने लगा और रूसकी एकतन्त्र सत्ताको ऐसा जबरदस्त धक्का लगा, जिससे उसके क़ाबमें दफ़नाये जानेके दिन और भी निकट आ गये।

रूसके एक सिरेसे दूसरे सिरे तक दमनका बोलबाला था। जनतामें दिन-पर-दिन अशान्ति बढ़ती जा रही थी। उस अशान्तिको देखकर ऐसा मालूम पड़ता था कि ज़ारशाही अब अधिक समय तक जीवित न रह सकेगी; परन्तु उसके विरुद्ध देशमें जो संघर्ष चल रहा था उसमें समन्वय और तारतम्य न था। यह ठीक है कि उस समय तक रूसमें अच्छी तरहसे संगठित अनेक क्रान्तिकारी दल बन चुके थे; पर ज़ारशाहीके जुएके नीचे किसानों और मज़दूरोंकी आवादी अब भी शान्त थी। नये और प्रगतिशील विचारोंके मार्गमें पुराने राजनीतिक, सामाजिक और दक्षियानूसी आर्थिक विचारोंकी परम्परा एक ज़बरदस्त रोड़ा साबित हो रही थी।

६ जनवरी सन् १९०५ को पेट्रोग्रेडके बाज़ारमें होकर मज़दूरोंका एक बड़ा भारी जुलूस निकला। उसमें हज़ारों ही मज़दूर स्त्रियाँ और बच्चे भी शामिल थे। जुलूसवालोंके हाथमें गिरजेके झंडे और बादशाहोंके सजे हुए चित्र थे। वह जुलूस ज़ारको अज़ी देनेके लिए निकाला गया था। जुलूसमें शामिल हुए लोग कह रहे थे—“हम ज़ारके पास जाकर कहेंगे, पिता, हमारी सहायता करो। हम आपके बच्चे हैं। आप नहीं जानते कि हमपर कैसी मार पड़ती है और जुल्म होता है। हम कैसे भूखे रहते हैं, कैसे परिश्रम करते हैं और कैसे जंगली जानवरोंकी तरह घोर अज्ञानके अन्धकारमें पड़े हुए अपना जीवन बिताते हैं।”

इधर मज़दूरोंका जुलूस निकल रहा था, उधर बाज़ारोंके प्रत्येक चौराहे और मोड़पर हथियारोंसे सजी हुई फ़ौजी टुकड़ियाँ गश्त लगा रही थीं। अचानक गोलियाँ चलने लगीं! निहत्थी भीड़में से बहुतसे

आदमी घराशायी हो गये। घुड़सवारोंके रिसालोंने रास्ते रोक लिये और बहुतसे आदमी घोड़ोंके टापोसे घायल होकर धरतीपर गिरे और तड़पने लगे। जिन लोगोंने भागनेका प्रयास किया, वे सिपाहियोंकी गोलियोंके शिकार हुए!

सेंट-पीटर्सबर्गके बाज़ार और गली-कूचे लाशोंसे पट गये। इस दृश्यको देखकर रूसी जनता तिलमिला उठी। जिन गोलियोंने रूसमें निकाले गये ज़ारके चित्रोंको मटियामेट किया, उन्हेंने लोगोंके हृदय-पटलपर परम्परागत अंकित ज़ारकी मूर्तिमती सत्ताका भी अन्त कर दिया। चारों ओरसे आवाज़ आने लगी—“अब अधिक समय तक हम ज़ारशाही नहीं रखेंगे।” हड़तालें, सभाओं और जुलूसोंका ताँता बँध गया। स्थान-स्थानपर लाल झंडे दिखलाई देने लगे और साथ ही व्यक्तिगत रूपसे किये गये इक्के-दुक्के आतंकवादी कार्योंका प्रदर्शन भी होने लगा। देश-भरमें गैरक्रान्ती साहित्य और भाषणोंका प्रचार हो गया। साम्यवादी पार्टियाँ बन गईं। इस प्रकार सार्वजनिक असन्तोषकी आग बाकू, जार्जिया, मध्य-रूस, वारसा, फिनलैण्ड, मास्को आदि सभी मुख्य-मुख्य स्थानोंमें फैल गई। २० जनवरीको सरकारने सेंट-पीटर्सबर्ग, कीव, खारकोव, वारसा और कैज़ाँके हाई स्कूल बन्द करा दिये। सेंट-पीटर्सबर्ग यूनिवर्सिटीके विद्यार्थियोंने पढ़ना छोड़कर अपनी सारी शक्ति क्रान्तिको सफल बनानेमें लगानेका निश्चय किया। इसी समय ज़ारने एक कमीशन इस उद्देश्यसे नियुक्त किया कि वह सेंट-पीटर्सबर्गके मज़दूरोंके असन्तोषके कारणों और उसे दूर करनेके उपायोंपर विचार करे; परन्तु मज़दूरोंने कमीशनके आगे अपने प्रतिनिधि भेजनेसे इन्कार कर दिया। फलस्वरूप कमीशन तोड़ दिया गया।

६ दिसम्बर, १९०५ को मास्कोमें विद्रोहका श्रीगणेश हो गया। उसमें अकेले मास्कोमें ही एक हज़ारसे ऊपर आदमी मारे गये, जिनमें ६७ बच्चे थे। ज़ारकी पल्टनने अन्तमें विद्रोह दबा दिया। विजयी

करता था। वह बड़े उत्साहके साथ अपना काम करने लगा। उसने प्रत्येक प्रान्तमें एक विशेष फौजी अफसर नियुक्त कर दिया और उसके हाथमें कज्जाक सिपाही सौंप दिये। बोरिसोव्स्की जिलेमें जनरल लूफेनोव्स्कीको पूर्ण अधिकार दे दिये गये।

जैसे ही इस जनरलका दल किसी बदनाम गाँवपर चढ़ाई करता, वैसे ही ढोल पीट-पीटकर वहाँके किसानोंको इकट्ठा हो जानेकी सूचना दे दी जाती। तुरन्त ही किसानोंके सामने यह माँग पेश कर दी जाती कि अपने लीडरोंको हाज़िर करो। इसके साथ ही आम तौरपर किसानोंपर कोड़ेवाज़ी शुरू हो जाती। अगर किसान अपने मुखिया लोगोंको फौरन हाज़िर न करते, या उन्हें हाज़िर करनेमें तनिक भी आनाकानी करते, तो भीड़पर गोलियोंकी बौछार शुरू हो जाती। डाट-दपट और धमकियोंका काम पूरा करनेके लिए गाँवके अनेक स्थानोंमें आग लगा दी जाती। इस प्रकारके फौजी दलोंके आनेकी चेतावनी गाँवमें पहले ही पहुँच जाती थी। अमानुषिक अत्याचारोंसे त्राण पानेके लिए किसान लोग ऐसे अवसरोंपर निहान्त दीनताका प्रदर्शन करते। गाँवमें हथियारबन्द फौजी सिपाहियोंका जत्था पहुँचनेपर किसान घुटने टेककर उन्हें सलाम करते। प्रत्येक मोपड़ेके आगे किसान घुटनोंके बल बैठे हुए रोटी और नमक लिये उनकी प्रतीक्षा करते। परन्तु किसानोंकी यह दीनता, वेवसी और आजिज़ी ज़ारशाहीके उन खूँख़ार कज्जाक भेड़ियोंके सुख और सन्तोषके लिए काफी न थी।

लूफेनोव्स्की ताम्बोवका एक ज़मींदार था। अतिरिक्त पुलिसके साथ स्वयं उसने १८ से अधिक गाँवोंपर चढ़ाई की। उसकी चढ़ाईयोंका वर्णन स्परिडोनोवाने अदालतमें इस प्रकार किया था—
“उसके चले जानेपर गाँव बिलकुल उजड़े हुए इस प्रकार दिखाई पड़ते थे, जैसे कि तुर्कों द्वारा उजाड़ दिये जानेपर बल्गेरियन गाँव दिखाई पड़ते थे। पैवलोडर गाँवमें १० आदमी मार डाले गये। एक

आदमी किसानोंको यह समझाने गया था कि वे महज़ जोशमें भरकर, भावनाओंमें बहकर, कोई काम न करें, बल्कि प्रत्येक कामको तर्ककी कसौटीपर कसकर विवेक-बुद्धिसे, समझदारीसे, करें। परन्तु सिपाहियोंने बिना इस बातको जाने हुए कि वह कौन था, पकड़ लिया और उसे एक-एक बूँद पानीके लिए तड़पा-तड़पाकर चार दिनमें मार डाला!”

इसी प्रकार स्परिडोनोवाने अदालतमें उन अनेक हत्याकाण्डों और अमानुषिक दमनपर प्रकाश डाला था, जो ज़ारकी छत्रछायामें रूसकी दीन-हीन प्रजापर किये जा रहे थे।

लूफेनोव्स्कीने अधिकारियोंको तार द्वारा प्रतिदिनकी घटनाओं और अपनी ‘विजय’की सूचना भेजी। गवर्नरको उसने लिखा—“वेरसोव्काके किसानोंने घुटने टेककर मेरा स्वागत किया। उन्होंने वादा किया है कि अपने मुखिया लोगोंको और चुगये हुए धनको मेरे हवाले कर देंगे। उन्होंने स्पष्ट बतलाया है कि उन्हें विद्यार्थियोंने भड़का दिया था। दो मारे गये, घायलोंकी संख्याका पता नहीं। कल एक दूसरे गाँवको सर करूँगा।”

गवर्नरने धन्यवादका तार देते हुए उत्तर दिया—
“आपके प्रभावशाली कामके लिए धन्यवाद देनेको मेरे पास शब्द नहीं हैं! ईश्वर आपकी सहायता करे! क़ानूनका खयाल न करो। पहले गोली मार दो, पीछे जाँच करो। जिसपर तनिक भी सन्देह हो, उसे गिरफ़्तार कर लो। बहादुर सिपाहियोंको मेरा धन्यवाद है और प्रत्येकको एक रूबल भेंट। ईश्वर आप लोगोंकी रक्षा करे।”

सन् १९०४ में ज़ारकी उस बलवती और अखंड सत्ताने, जो कुछ समय पहले तक हेगमें विश्व-शान्तिकी स्थापनाका तराना अलाप रही थी, जापानके साथ युद्ध-स्थलमें प्रवेश किया; परन्तु थोड़े ही दिन बाद हार-पर-हार होने लगी, और अन्तमें जापानके बल-विक्रमके सामने उसे बुरी तरह मुँहकी खानी पड़ी।

इस लड़ाईके दो परिमाण प्रत्यक्ष निकले। विश्व-शक्तियोंमें जापान एक अत्यन्त पराक्रमी और शक्तिशाली राष्ट्र समझा जाने लगा और रूसकी एकतन्त्र सत्ताको ऐसा जबरदस्त धक्का लगा, जिससे उसके क्रममें दफनाये जानेके दिन और भी निकट आ गये।

रूसके एक सिरेसे दूसरे सिरे तक दमनका बोलबाला था। जनतामें दिन-पर-दिन अशान्ति बढ़ती जा रही थी। उस अशान्तिको देखकर ऐसा मालूम पड़ता था कि ज़ारशाही अब अधिक समय तक जीवित न रह सकेगी; परन्तु उसके विरुद्ध देशमें जो संघर्ष चल रहा था उसमें समन्वय और तारतम्य न था। यह ठीक है कि उस समय तक रूसमें अच्छी तरहसे संगठित अनेक क्रान्तिकारी दल बन चुके थे; पर ज़ारशाहीके जुएके नीचे किसानों और मज़दूरोंकी आबादी अब भी शान्त थी। नये और प्रगतिशील विचारोंके मार्गमें पुराने राजनीतिक, सामाजिक और दक्षिणानूसी आर्थिक विचारोंकी परम्परा एक ज़बरदस्त रोड़ा साबित हो रही थी।

६ जनवरी सन् १९०५ को पेट्रोप्रेडके बाज़ारमें होकर मज़दूरोंका एक बड़ा भारी जुलूस निकला। उसमें हज़ारों ही मज़दूर स्त्रियाँ और बच्चे भी शामिल थे। जुलूसवालोंके हाथमें गिरजेके झंडे और बादशाहोंके सजे हुए चित्र थे। वह जुलूस ज़ारको अर्ज़ी देनेके लिए निकाला गया था। जुलूसमें शामिल हुए लोग कह रहे थे—“हम ज़ारके पास जाकर कहेंगे, पिता, हमारी सहायता करो। हम आपके बच्चे हैं। आप नहीं जानते कि हमपर कैसी मार पड़ती है और जुल्म होता है। हम कैसे भूखे रहते हैं, कैसे परिश्रम करते हैं और कैसे जंगली जानवरोंकी तरह घोर अज्ञानके अन्धकारमें पड़े हुए अपना जीवन बिताते हैं।”

इधर मज़दूरोंका जुलूस निकल रहा था, उधर बाज़ारोंके प्रत्येक चौराहे और मोड़पर हथियारोंसे सजी हुई फ़ौजी टुकड़ियाँ गश्त लगा रही थीं। अचानक गोलियाँ चलने लगीं! निहत्थी भीड़में से बहुतसे

आदमी घराशायी हो गये। धुड़सवारोंके रिसालोंने रास्ते रोक लिये और बहुतसे आदमी घोड़ोंके टापोंसे घायल होकर धरतीपर गिरे और तड़पने लगे। जिन लोगोंने भागनेका प्रयास किया, वे सिपाहियोंकी गोलियोंके शिकार हुए!

सेंट-पीटर्सबर्गके बाज़ार और गली-कूचे लाशोंसे पट गये। इस दृश्यको देखकर रूसी जनता तिलमिला उठी। जिन गोलियोंने रूसमें निकाले गये ज़ारके चित्रोंको मटियामेट किया, उन्होंने लोगोंके हृदय-पटलपर परम्परागत अंकित ज़ारकी मूर्तिमती सत्ताका भी अन्त कर दिया। चारों ओरसे आवाज़ आने लगी—“अब अधिक समय तक हम ज़ारशाही नहीं रखेंगे।” हड़तालें, सभाओं और जुलूसोंका ताँता बँध गया। स्थान-स्थानपर लाल झंडे दिखलाई देने लगे और साथ ही व्यक्तिगत रूपसे किये गये इक्के-दुक्के आतंकवादी कार्योंका प्रदर्शन भी होने लगा। देश-भरमें शैरक्रान्तली साहित्य और भाषणोंका प्रचार हो गया। साम्यवादी पार्टियाँ बन गईं। इस प्रकार सार्वजनिक असन्तोषकी आग बाकु, जार्जिया, मध्य-रूस, वारसा, फिनलैण्ड, मास्को आदि सभी मुख्य-मुख्य स्थानोंमें फैल गई। २० जनवरीको सरकारने सेंट-पीटर्सबर्ग, कीव, खारकोव, वारसा और कैज़ाँके हाई स्कूल बन्द करा दिये। सेंट-पीटर्सबर्ग यूनिवर्सिटीके विद्यार्थियोंने पढ़ना छोड़कर अपनी सारी शक्ति क्रान्तिको सफल बनानेमें लगानेका निश्चय किया। इसी समय ज़ारने एक कमीशन इस उद्देश्यसे नियुक्त किया कि वह सेंट-पीटर्सबर्गके मज़दूरोंके असन्तोषके कारणों और उसे दूर करनेके उपायोंपर विचार करे; परन्तु मज़दूरोंने कमीशनके आगे अपने प्रतिनिधि भेजनेसे इन्कार कर दिया। फलस्वरूप कमीशन तोड़ दिया गया।

६ दिसम्बर, १९०५ को मास्कोमें विद्रोहका श्रीगणेश हो गया। उसमें अकेले मास्कोमें ही एक हज़ारसे ऊपर आदमी मारे गये, जिनमें ६७ बच्चे थे। ज़ारकी पलटनने अन्तमें विद्रोह दबा दिया। विजयी

सैनिकोंने बागियोंको ठंडा करनेमें कोई बात उठा नहीं रखी। ये सैनिक बलवा दबाकर मूँछोंपर ताव देने लगे। ज़ारशाही शहर और देहातमें सभी जगह लोगोंपर खुलम-खुला आक्रमण करने लगी।

ताम्बोवके सूबेमें विद्रोहकी आग ११ जिलोंमें फैल चुकी थी। इसका कुप्रभाव १५८ ज़मींदारोंकी धन-सम्पत्तिपर पड़ा। उन्हें लगभग २५ लाख रूबलकी आर्थिक हानि उठानी पड़ी। विद्रोही किसान रुपये-पैसेकी लूट-खसोटमें लग गये। स्वयं ज़मींदारों या उनके परिवारोंके प्रति रोष प्रकट करके उन्होंने किसीकी हत्या नहीं की। खेतोंपर विद्रोही किसानोंके लाल भंडे फहराने लगे। असल बात यह है कि उन्हें रोटी और ज़मीनकी जरूरत थी। ज़मींदारोंकी बड़ीसे बड़ी रियासतोंपर चढ़ाई करके भी उन्होंने किसीके रक्तमें हाथ नहीं रंगे; हाँ, उनके धनपर अपना अधिकार ज़रूर जमाया।

रूसी क्रान्तिके उषाकालकी ऐसी विकट और विषम परिस्थितिमें मेरिया एलैक्जेंड्रोव्ना स्पिरिडोनोवाने अपने रिवाल्वरसे जेनरल लूफेनोवस्कीके प्राण लिये। यह व्यक्ति सैकड़ों निर्दोष किसानोंकी हत्याके लिए ज़िम्मेदार था। यह युवती अपनी बूढ़ी माँ और तीन बहनोंके साथ ताम्बोवके छोटेसे शहरमें रहती थी। घरकी स्थिति साधारणतया अच्छी थी। मेरिया अपनी बहनोंमें सबसे बड़ी थी। वह ज़िन्दादिल, क्रियाशील, चतुर और योग्य थी। १६ वर्षकी उम्रमें वह शिशु-पालनकी शिक्षा प्राप्त करनेमें लग गई। परिश्रमी और होनहार थी, इसलिए उसका भविष्य उज्ज्वल दिखाई पड़ता था। वह एक रूसी युवती थी, और उसके यौवनका आरम्भ हो रहा था सन् १९०५ की अशान्ति और उथल-पुथलके उस वर्षमें, जिसमें क्रान्तिकी चिनगारियाँ देश-भरमें फैल रही थीं। उन चिनगारियोंसे मेरियाका शहर भी अछूता न बचा।

ऐसे समय प्रत्येक प्रगतिशील या उदार विचारोंका

युवक किसी-न-किसी क्रान्तिकारी दलमें भर्ती हो गया। क्रान्तिके महान उद्देशके आगे सभी तरहके व्यक्तिगत या पारिवारिक हित और महत्वाकांक्षाएँ भुला दी गईं। उस समयके रूसी युवकोंको देखकर ऐसा मालूम पड़ता था, मानो वे एक नये और अद्भुत जीवनके प्रवेश-द्वारपर खड़े हों। युवक और युवतियाँ दोनों ही के हृदय क्रान्तिकारी भावनाओंसे ओतप्रोत हो उठे। उनका रोम-रोम नवजीवनके उमड़ते हुए उत्साहसे हर्षोत्फुल्ल हो गया।

गैर-क्रान्ती साम्यवादी अखबारोंमें स्पिरिडोनोवाको नये-नये समाचार पढ़नेको मिले। अक्टूबरकी हड़तालकी विचार-धारा ताम्बोव शहरसे भी टकराई। उस दिन सभाएँ हुईं, जुलूस निकाले गये और बाज़ारोंमें आज़ादीके नारे बुलन्द किये गये। मेरिया भी जुलूसमें शामिल हुई। वह लाल भंडेके पीछे चल रही थी।

उन दिनों रूसमें दो मुख्य साम्यवादी दल थे— एक प्रजासत्तावादी, दूसरा क्रान्तिकारी। साम्यवादी शब्द दोनों ही के आगे जुड़ा हुआ था। मेरियाने काम करनेके लिए दूसरा दल चुन लिया। उसने मार्क्सके सिद्धान्तोंको ज्यों-का-त्यों अपनासे इनकार कर दिया, इसलिए कि उनमें केवल मज़दूरोंके ही हितोंको प्रधानता दी गई थी। उसका विचार था कि अगर शहरोंमें रहनेवाले मज़दूर क्रान्तिकारी हो भी जायँ, तो समूचे देशपर इसका कोई अधिक महत्त्वपूर्ण प्रभाव न पड़ेगा। यदि मज़दूर संवर्षमें आगे आ भी जायँ, तो क्या होगा? आखिर रूसमें शहर हैं ही कितने? रूस तो किसानोंका देश है। कोई भी राजनीतिक प्रोग्राम जो केवल एक छोटे सम्प्रदायके हितोंकी रक्षाको लेकर आगे बढ़ाया जाय और उससे देशकी बहुसंख्यक आबादीके हितोंकी उपेक्षा होती हो, तो उसे समूचे देशके लिए श्रेयस्कर नहीं कहा जा सकता। स्पिरिडोनोवाका हृदय इन्हीं विचारोंसे ओतप्रोत था। वह एक ऐसे छोटे-से कस्बेमें पली थी, जिसका वातावरण विलकुल देहाती था।

किसानोंके जीवनसे वह अच्छी तरह परिचित थी। उनके जीवनकी समस्याओंसे वह पूर्णतया अवगत हो चुकी थी। इसी कारण वह एक ऐसा प्रोग्राम बनाना चाहती थी, जो शहरके मजदूरों और देहातके किसानों दोनोंकी ही जरूरतोंको पूरा करे। ऐसा प्रोग्राम बनाकर वह किसान और मजदूर दोनों ही के सहयोगसे अपने देशके उत्थानकी समस्याको हल करना चाहती थी। जो-कुछ मेरिया चाहती थी वह समाजवादी क्रान्तिकारी पार्टीके प्रोग्राममें मौजूद था। उस प्रोग्रामके अनुसार किसानों और मजदूरोंके हितोंके टकरानेकी कोई बात न थी। दोनोंको ही पारस्परिक सहयोगसे आगे बढ़नेका पूर्ण अवसर था। 'भूमि और स्वतन्त्रता' प्राप्त करना ही उनका आदर्श था। इस पार्टीके प्रोग्रामकी ज़मीनपर समष्टिरूपसे समाजका अधिकार करनेकी बात प्रायः सभी मजदूरों और किसानोंको पसन्द आई।

क्रान्तिकारी वीरों और वीरांगनाओंके बलिदानसे ज़ारशाहीकी जड़ें हिल चुकी थीं। हालाँकि केवल पशु-बलपर खड़ी हुई वह सत्ता फाँसी और कालेपानीकी सज़ाएँ दे-देकर वीरोंका दमन करनेमें संलग्न थी। किन्तु फिर भी अपने सुनहले आदर्शोंको प्राप्त करनेकी साधमें फाँसीके तख्तेपर चढ़ाई गई वीरांगना सोफिया पैरोव्स्कायाकी मृदुल मुसकानको उसके देशवासी भूले नहीं। कालेपानीमें कठोर यन्त्रणाएँ सहती हुई देवी वीरा फिगनरका आदर्श चरित रूसके बच्चे-बच्चोंके हृदयमें घर कर गया।

ज़ारशाहीके दमन-दावानलमें सन् १९०६ के अप्रैलमें समाप्त होनेवाले एक वर्षमें चौदह हज़ारसे अधिक आदमियोंको अपने प्राणोंकी आहुतियाँ चढ़ानी पड़ीं! एक हज़ार आदमी फाँसीपर चढ़ा दिये गये और सात हज़ार आदमियोंको जेलों या कालेपानीकी हवा खानी पड़ी! दमन-दावानलकी लपटें स्पिरिडोनोवाके पड़ोसमें भी जा पहुँचीं। दिन-पर-दिन किसानोंपर होनेवाले जुल्मोंके समाचार आने लगे। मेरिया इन

खबरोंको सुनकर वेक्रार हो उठी। उसके दिलमें किसानोंके लिए सचमुच दर्द था; परन्तु वह अपने आपको और लाखों किसानोंको तम्बोवके गवर्नर और उसके दाएँ हाथ लूफेनोव्स्कीकी शक्ति और सत्ताके सामने बिलकुल असमर्थ पाकर हतबुद्धि हो गई। हर जगह किसानोंके कोपड़े और अन्न-भंडार जलाये गये। मेरियाने स्वयं उन गाँवोंका दौरा किया, जहाँ लूफेनोव्स्कीने जनताको अपने कोपका शिकार बनाया था। जनताके दुर्भाग्यके लिए और उसपर रात-दिन होनेवाले अत्याचारोंके लिए उसने अपने - आपको ज़िम्मेदार ठहराया। उसने मार्मिक व्यथासे व्यथित होकर अपने-आपको जनताके कल्याणकी विचार-धारामें डुबो दिया। उसके हृदयसे एक ही आवाज़ आई, और वह यह कि लूफेनोव्स्की ऐसे अत्याचारी शासकको अपने अपराधोंकी सज़ा मिलनी चाहिए। मेरियाने अच्छी तरह विचारकर निर्णय किया कि क्रान्तिकारी दीप-शिखापर बलि चढ़ जानेके लिए मेरा समय आ गया। उसने अपना विचार पार्टीके सामने पेश किया। वाद - विवादके बाद क्रान्तिकारी पार्टीकी ताम्बोवकी शाखाने लूफेनोव्स्कीके लिए मृत्युदंडका निर्णय कर दिया।

मेरिया स्पिरिडोनोवा अपने कपड़ोंमें रिवाल्वर छिपाये लूफेनोव्स्कीकी निगरानी करने लगी। पहले तो उसका पाना ही असम्भव हो गया। वह एक स्थानसे दूसरे स्थानपर बराबर चक्कर लगाया करता था और सदा सशस्त्र सिपाहियोंसे घिरा रहता था; परन्तु स्पिरिडोनोवा अपनी कोशिशमें बराबर लगी रही। उसने छायाकी तरह अपने शिकारका पीछा किया। इसके लिए रेलोंमें और स्टेशनोंके प्लैटफार्मोंपर कितनी ही रातें उसे जागकर बितानी पड़ीं। अन्तमें एक दिन मेरियाने लूफेनोव्स्कीको वोरिसोव्स्की नामक स्टेशनपर पा लिया। वह अपनी गाड़ीसे कुछ लापरवाहीके साथ उतरा। उस समय सदाकी भौंति अंग-रक्षक उसके साथ न थे। स्टेशनपर जहाँ-तहाँ

विखरे हुए कज्जाक सिपाही चक्र लगा रहे थे। मुसाफिरोकी भीड़की निगरानी करनेमें वे व्यस्त थे। ट्रेनके तख्तेपर खड़ी हुई स्पिरिडोनोवाने अपने दस्तानेमें से बाहर करती हुई रिवाल्वरसे लूफेनोव्स्कीपर एक फायर कर दिया। पहला फायर करनेके बाद ही वह तख्तेसे नीचे कूद पड़ी। फिर एकके बाद दूसरे फायर इतनी फुर्तीसे किये गये कि यह जानना कठिन था कि फायर कहाँसे किये गये और वे किसी एक व्यक्तिके द्वारा किये गये हैं या अनेकके द्वारा।

क्षण-भरके लिए स्टेशनपर सन्नाटा छा गया, फिर चारों ओर कुहराम मच गया। लूफेनोव्स्की प्लेटफार्मपर गिर पड़ा। वह बुरी तरह घायल हुआ। उसकी साँस चल रही थी। दो-एक दिनके बाद ही उसके प्राण-पखेरू उड़ गये। पुलिसवाले किर्कतव्यविमूढ़ थे। वे जान ही न सके कि गोलियोंकी बौछार कहाँसे हुई! इतनेमें ही एक आवाज़ आई—“मुझे गोली मार दो!” भीड़की आँखें रिवाल्वर ताने खड़ी स्कूलकी एक लड़कीपर जा लगी। देखते-देखते कज्जाक सिपाहियोंके कोड़े स्पिरिडोनोवापर पड़ने लगे। वह युवती ज़मीनपर गिर पड़ी, और उसने अपने हाथसे रिवाल्वर फेंक दिया। ज़मीनपर गिरते ही एक कज्जाक अफ़सरने उसके बाल पकड़ लिये और अपने मुक्कोंकी चोटसे मारते-मारते दम-भरमें उसे बेज़ार कर दिया। उसने उसे दोनों हाथोंसे उठाया और धड़ामसे धरतीपर पटक दिया। सिपाहियोंकी ओर इशारा करते हुए अफ़सरके मुँहसे निकला—“कोड़ेबाज़ी करते जाओ, तरस खानेका नाम न लो!”

वह अफ़सर लूफेनोव्स्कीका अंग-रक्षक रहा था। उसने तथा अन्य सिपाहियोंने मिलकर मेरियाको इतना पीटा कि वह बेहोश हो गई। फिर अफ़सरके हुक्मसे मुसाफिरोकी भीड़पर कोड़े बरसने लगे। पिटते-पिटते एक बूढ़े मुसाफिरके मुँहसे खून बहने लगा। उसकी चीख-पुकारसे स्टेशनका सारा वायुमंडल गूँज उठा। कज्जाक सिपाही क्रोधसे उन्मत्त होकर आम भीड़पर

कोड़ेबाज़ी करने लगे। भीड़में रेलका गार्ड भी कोड़ेबाज़ीसे न बच सका। दम-भरमें मैदान साफ़ हो गया। भीड़के आदमी भाग गये और कुछ घायल होकर गिर पड़े।

स्पिरिडोनोवा पकड़कर जेलमें बन्द कर दी गई। जेलमें उसे अगणित यातनाएँ सहनी पड़ीं। फ़ौजी अदालतके सामने उसका मामला पेश हुआ। अदालतके सामने उसने अपना सारगर्भित वयान दिया। वयानमें उसने उन सब जुल्मोंका भंडाफोड़ कर दिया, जो ज़ारकी छत्रछायामें रूसकी जनतापर किये जा रहे थे। अपने वयानको समाप्त करते हुए उसने कहा—“भीषण अत्याचारोंको सहन करते हुए भी मुझे हर्ष है कि मैं अपने देशकी जनताकी रक्षाके लिए आगे बढ़ी। जनताके लिए मर-मिटनेमें मुझे अपूर्व आनन्द मिलेगा।”

मुकदमेकी बहुत ही संक्षिप्त कार्रवाईके बाद अदालतने स्पिरिडोनोवाको फाँसीका हुक्म सुनाया; परन्तु बादमें उसकी फाँसीकी सज़ा आजन्म कालेपानीके रूपमें बदल दी गई। फ़ैसला सुनकर उसके चेहरेपर मन्द हास्य-रेखा फ़लक उठी। बन्दिनीके वेषमें वह ताम्बोवके बाज़ारोंमें होकर ले जाई गई। मार्गमें मिले हुए परिचित मित्रों और हितैषियोंके अभिवादनका उत्तर उसने अपने चेहरेपर खिलती हुई मुस्कानसे दिया।

जेलमें बन्द होनेपर स्पिरिडोनोवाके जीवन-नाटकका एक अत्यन्त वीरतापूर्ण और चमकता दृश्य समाप्त होता है। इसके साथ ही उसके बन्दी जीवनका एक दूसरा मर्मभेदी और करुण दृश्य आरम्भ हो जाता है। जीवन-भर इस वीरांगनाने अपने देशके लिए वर्णनातीत कष्ट सहें हैं। ताज्जुबकी बात तो यह है कि रूसी क्रान्तिके बाद लेनिनकी छत्रछायामें स्थापित बोल्शेविकोंके प्रजातन्त्र शासनमें भी उसके कष्टोंका अन्त नहीं हुआ। जिस जिन्दादिलीके साथ स्पिरिडोनोवाने ज़ारशाहीके अत्याचारोंके खिलाफ़ अपनी आवाज़ उठाई, उसी वीरता और निर्भयताके साथ

उसने बोलशेविकोंके जुलूमोंका तीव्र प्रतिवाद किया। इसका फल यह निकला कि केवल सिद्धान्तोंका थोड़ा-सा मतभेद हो जाने और बोलशेविकोंकी निरंकुश तानाशाहीके नीचे होनेवाले अन्याय और जोर-जुलूमोंका विरोध करनेके कारण वह आज भी जेलमें बन्द है। देशकी बहुसंख्यक जनता आज भी इस बन्दिनीकी पूजा करती है। सचार्ईके लिए, विश्वासोंके लिए, अपने आदर्शकी उपासनाके लिए और दीनता, दासता और अज्ञाताके गहरे गर्तमें गिरे हुए करोड़ों मानव-तनुधारियोंके जीवनको अपने आत्म-बलिदानसे अनुप्राणित करनेके लिए

स्पिरिटोनोवाने आजीवन अत्याचार, अन्याय और पशुतासे युद्ध करनेका निश्चय किया है। अपने इसी उद्देशके लिए यह वीरांगना किसी समय जारके कैदखानेमें बन्द थी, तो आज बोलशेविकोंकी कैदमें बन्दिनी है।

यद्यपि हिंसाके जिस पथका उसने अनुसरण किया था, वह भारतीयोंके लिए अनुकरणीय नहीं, क्योंकि हिंसाके परिणाम और प्रतिक्रियाएँ भारतीय संस्कृति तथा सभ्यताके लिए विघातक सिद्ध होंगी, तथापि उसकी लगन और देश-प्रेमकी कौन प्रशंसा न करेंगे ?

भारतीय महिला-विद्यापीठ पूना

श्री चिमनलाल सी० शाह, एम० ए०, एल०-एल० बी०

भारतवर्षमें स्त्री-शिक्षाके अग्रगण्यक प्रोफेसर घोंडोकेशव कर्वे सन् १८९६ से पूनामें एक विधवा-आश्रम चला रहे हैं। स्त्री-शिक्षणके विषयमें उन्होंने विशेष अध्ययन और अनुशीलन किया है। वे सुधारक हैं, और स्त्रियोंकी स्थिति सुधारनेके लिए ही उन्होंने अपना समस्त जीवन अर्पित किया है। सन् १९१५ में एक मित्रने उनके हाथमें जापानके एक महिला-विद्यापीठकी परिचय-पत्रिका दी। वह पत्रिका ही इस विद्यापीठकी स्थापनामें निमित्त बनी। सन् १९१५ की सामाजिक सुधार-परिपक्वके सभापति-पदसे उन्होंने अपने विचार प्रकट किये तथा एक सच्चे सुधारककी-सी श्रद्धा और धीरताके साथ एक योजनाका निर्माण किया। उसके लिए सहायकोंकी सहानुभूति भी प्राप्त की। इतिहासाचार्य डा० रामकृष्ण गोपाल भंडारकर, डा० रघुनाथ पुरुषोत्तम परांजपे प्रभृति सम्प्रान्त सज्जनोंकी सहायतासे एक कामचलाऊ समिति बनाई गई, नियम नियत किये गये और पाँच मासके अल्प समयमें इस विद्यापीठकी प्रतिष्ठा की गई। विधवाश्रमका अंगभूत वे एक विद्यालय चला रहे थे, उसे

इस विद्यापीठके साथ मिला दिया गया। प्रथम प्रवेशिका परीक्षा (Entrance) ली गई, और चार विद्यार्थिनियों द्वारा एक कालेजका प्रारम्भ हुआ।

सरकारी प्रमाणपत्र तथा बड़े स्थायी फंडकी परवा किये बिना अपने आदर्शके प्रति पूर्ण श्रद्धा रखते हुए प्रो० कर्वेने इसकी प्रतिष्ठा की, और उस समय हवाई किला प्रतीत होनेवाली इस संस्थाने एक महान शिक्षण-संस्थाका रूप धारण किया। विधवा-आश्रमके कार्यकर्ताओंने अपनी पूरी सहायता प्रदान की और कामचलाऊ योजना तथा सिनेट बनाई गई।

उद्देश्य

विद्यापीठके निम्न-लिखित उद्देश्य निश्चित हुए :—

- (१) मातृ-भाषा द्वारा स्त्रियोंको उच्च शिक्षा देना।
- (२) प्राथमिक तथा माध्यमिक शिक्षणकी कक्षाओंका निश्चय करके उनके अनुकूल शिक्षा देनेवाली संस्थाएँ स्थापित करना, उनकी सहायता करना तथा विद्यापीठसे संयुक्त करना और स्त्रियोंकी आवश्यकताओंको पूर्ण करनेवाला शिक्षणक्रम तैयार करना।

(३) प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षणके लिए स्त्री-शिक्षिकाएँ तैयार करना ।

(४) पदवियाँ प्रदान करना । आदि-आदि ।

स्त्री-शिक्षाके लिए स्वतंत्र विद्यापीठ स्थापित करनेका भारतवर्षमें यह प्रथम (कन्या-महाविद्यालय जालन्धर तथा कन्या-गुरुकुल देहरादूनके सिवा) और अन्यतम प्रयोग है । जिस समय स्त्री-शिक्षाकी भावना समाजमें व्यापक नहीं हुई थी, उस समय श्रद्धा, निष्ठा और साहसिकताके साथ स्वतंत्र स्त्री-विद्यालयकी स्थापना हुई थी । अब वह युग बीत गया है कि स्त्री-शिक्षाकी हिमायत करनी पड़े, तथापि अभी भी स्त्री-शिक्षाका प्रचार कितना कम है, इसका हमको पूरा खयाल भी नहीं है । समाजका आधा अंग अभी तो अन्धकारमें ही भटक रहा है । भारतकी मातृ-शक्ति आज भी अन्ध-विश्वासों और अन्ध-परम्पराओंके सागरमें गोते खा रही है, इसीलिए आज हमारा समाज अशक्त और अस्वस्थ है ।

इस विद्यापीठकी योजनामें विशेष रूपसे ध्यान आकर्षित करनेवाले दो तत्त्व हैं—(१) मातृ-भाषा द्वारा शिक्षण तथा (२) स्त्रियोंके अनुकूल शिक्षणक्रम । हमारे सौभाग्यसे वह समय आ गया है कि मातृ-भाषा द्वारा शिक्षा देनेके सिद्धान्तको सभी लोग स्वीकार करने लगे हैं । अन्य किसी भी विद्यापीठमें (स्वामी श्रद्धानन्दजीकी संस्था गुरुकुल कांगड़ी हरिद्वारको छोड़कर) यह सिद्धान्त स्वीकार नहीं हुआ था, ऐसे समयमें प्रो० कर्वेने एक दूरदर्शी सन्तके शिक्षण-शास्त्रीके रूपमें इस सिद्धान्तको स्वीकार किया था । यह कहना अप्रासंगिक न होगा कि शिक्षाके इस महत्त्वपूर्ण तत्त्वको विचार और व्यवहारमें सर्वप्रथम लानेका श्रेय स्वामी श्रद्धानन्दजीको है । आज इस विषयकी चर्चा करना व्यर्थ है कि विदेशी भाषाके माध्यम द्वारा शिक्षा देनेसे छात्रोंका मन गुलाम बन जाता है और समयका भी अपव्यय होता है ।

इस विद्यापीठका दूसरा विशिष्ट तत्त्व है—‘स्त्रियोंके अनुकूल शिक्षणक्रम’ सहशिक्षा और समानताके इस युगमें

ऐसी संस्थाके विषयमें कुछ गलतफ़हमी रह जाय, यह सम्भव है । यहाँपर सहशिक्षाके विषयमें लिखना बेकार है । सच तो यह है कि भारतवर्षकी आधुनिक परिस्थिति सहशिक्षाके सर्वथा प्रतिकूल है । युगके नैतिक आदर्श दिनोंदिन गिरते जा रहे हैं, ऐसी हालतमें सहशिक्षा ठीक नहीं ।

स्त्रीको पुरुषकी प्रतिकृति बनाकर पुरुषोंके प्रत्येक कार्यक्षेत्रमें उन्हें प्रतियोगिताके लिए खड़ा करनेवाले पश्चिमी देश भी अब तंग आकर अपने समानताके विचारों और सिद्धान्तोंको परिवर्तित करने लगे हैं । भारतवर्षके नैतिक आदर्श तथा व्यवहार पाश्चात्य देशोंके सिद्धान्तोंसे बहुत भिन्न हैं । अतः वहाँके अर्धदग्ध विचारोंको यहाँकी परिस्थितिका विचार बिना किये चालू करना कभी भी लाभदायक नहीं हो सकता ।

भारतवर्षको तो ऐसी महिला-शिक्षण-संस्थाकी आवश्यकता है, जो स्त्रियोंको आदर्श गृहिणी, आदर्श माता, संस्कारी, शिक्षिता तथा पतिकी सच्ची सहधर्मिणी बनावे, जो उनको समाजका उत्तरदायित्वपूर्ण सहायक और चेतनापूर्ण अंग बनावे । इस आदर्शके प्रति समाजको सम्पूर्ण मान और श्रद्धा है ।

शिक्षणक्रम

उपर्युक्त आदर्शोंके अनुकूल ही शिक्षणक्रम और शिक्षणकाल नियत किया गया है । प्रवेशिका परीक्षाके बाद तीन वर्षोंमें “गृहोतागमा” पदवी प्राप्त करनेकी पाठ-विधि है । स्वभाषा (गुजराती अथवा मराठी), इतिहास, अंगरेज़ी, अर्थशास्त्र, राज्य-विधान, पदार्थ-विद्या, जीव-विद्या, आरोग्यशास्त्र, मानसशास्त्र, बाल-मनोविज्ञान, समाजशास्त्र आदि विषय आवश्यक हैं । इसके अतिरिक्त और भी बहुतसे ऐच्छिक विषय हैं । किताबी योग्यताकी अपेक्षा सामाजिक जीवन तथा गृह-जीवनसे सम्पर्क रखनेवाले विषयोंका सामान्य ज्ञान दिया जाता है । चरित्र तथा संस्कृतिपर विशेष ध्यान दिया जाता है । इसके सिवा संगीत, चित्रकला, सीने-पिरोनेकी कारीगरी आदि ललित-कलाओंकी शिक्षापर भी खास ध्यान

दिया जाता है। अंगरेजी तीनों वर्षोंके पाठ्यक्रममें आवश्यक है। अंगरेजीको जो स्थान सरकार द्वारा सम्मानित विद्यापीठमें है, वह इस शिक्षणालयमें नहीं है; परन्तु अंगरेजी पुस्तकोंको सरलतासे पढ़ने तथा समझने जितना ज्ञान तो अवश्य दिया जाता है।

सर विट्ठलदासका दान

२१ जून १९२० का दिन इस विद्यापीठके इतिहासमें महत्त्वपूर्ण दिन है। इस दिवसपर सर विट्ठलदास दामोदर ठाकरसीने कुछ-एक शतोंके साथ इस विद्यापीठको पन्द्रह लाख रुपयेका महान दान देकर अपनी माता श्रीमती नाथीबाईका नाम अमर कर दिया। स्त्री-शिक्षाके लिए यह दान अपूर्व है। सर विट्ठलदास बम्बईके एक अग्रगण्य धनिक थे। वे एक सच्चे समाज-सुधारक और स्त्री-शिक्षाके अत्यन्त प्रेमी थे। जापानकी यात्रा करते हुए उन्होंने वहाँके एक स्त्री-विद्यालयका कार्यक्रम देखा। उसे देखकर वे बहुत प्रभावित हुए। जापानसे आते ही उन्होंने प्रो० कर्वेके साथ आवश्यक विचार करके पन्द्रह लाखके दानकी घोषणा कर दी।

कार्य-विस्तार

इस सहायतासे विद्यापीठका कार्य स्थायी और व्यापक बना। ५२,५०० रुपयेकी स्थायी आमदनी होनेपर विद्यापीठने अपने विधान (योजना) में उचित परिवर्तन करके अपनी संस्थाएँ बढ़ाना प्रारम्भ किया। पूनाका हाई स्कूल तथा कालेज, बम्बईका हाई स्कूल तथा अध्यापिकाशाला आदि संस्थाओंको विद्यापीठ स्वयं चलाती थी। अन्य कन्या-विद्यालय जो विद्यापीठसे सम्बन्ध स्थापित करते थे, उन्हें भी सहायता दी जाती थी। कई शालाओंको सरकारी सहायता भी मिलती थी। बम्बईकी वनिता-विधाम नामक संस्थाको एक अच्छी ग्रांट देकर उसमें विद्यापीठके लिए ही छात्राएँ तैयार करनेकी व्यवस्था की गई। सन् १९३१ में बम्बईमें एक कालेज स्थापित किया गया।

सन् १९३२ के फरवरी महीनेमें मतभेदोंके कारण सर विट्ठलदासके ट्रस्टियोंने ५२,५०० की वार्षिक सहायता

बन्द कर दी। विद्यापीठने न्यायालयका आश्रय लिया। सौभाग्यसे दोनों पक्षोंने मानपूर्ण समाधान स्वीकार किया। समाधानकी मुख्य शर्तें ये हैं :—

(१) सर विट्ठलदासके ट्रस्टी १५ लाख रुपयेकी कीमत वाले साढ़े तीन प्रतिशतके सरकारी नोट सात वर्षके अन्दर खरीदकर विद्यापीठके लिए पृथक् रखें।

(२) जब तक वह रकम विद्यापीठको न सौंपी जाय, तब तक उस रकमके व्याजके ५२,५०० रुपये प्रतिवर्ष विद्यापीठको मिलते रहें।

(३) पिछले तीन वर्षों तक वार्षिक सहायताकी कुल रकम १,६५,९१६ रु० बन्द कर दी गई थी, उसे ट्रस्टी लोग विद्यापीठको सौंप दें। १७ अप्रैल सन् १९३७ तक बम्बईमें कालेज तथा विद्यापीठके दफ्तरके मकानोंके निर्माणमें यह रकम खर्च की जाय।

(४) विद्यापीठका दफ्तर १ जनवरी सन् १९३६ से बम्बईमें रखा जाय।

(५) विद्यापीठ निम्न-लिखित तीन शर्तोंमें से किसीको भी पूरा करे, तब सर विट्ठलदासके ट्रस्टी पन्द्रह लाखके सरकारी नोट विद्यापीठको सौंप दें :—

क—विद्यापीठ सरकारी अधिकार-पत्र (Charter) प्राप्त करे। या—

ख—सरकारसे ऐसा प्रमाणपत्र (Recognition) प्राप्त करे, जिससे जनताका विश्वास हो जाय कि यह संस्था ठीक प्रकार चलती रहेगी और उसकी स्थापिकाओंको अन्य विश्वविद्यालयोंके समान ही प्रतिष्ठा प्राप्त होगी। या—

ग—विद्यापीठ इतना स्थायी फंड एकत्र करे, जिसमें से ५२,५०० की वार्षिक आय प्राप्त हो।

(६) ३१ जून सन् १९३७ के बाद विद्यापीठ शिक्षण-शास्त्रियोंकी एक समिति बनावे। वह समिति एक आदर्श महिला-विद्यापीठके लिए योग्य शिक्षणक्रम तैयार करके पाठ्य-पुस्तकें निश्चित करे, जो हिन्दुस्तानकी आधुनिक आवश्यकताओंको पूर्ण कर सकें।

(७) इस विद्यापीठके नियमोंके अनुसार एक गुजराती हाई स्कूल चलनेके लिए वम्बईकी वनिता-विश्राम-संस्थाको वार्षिक सहायताके रूपमें जो तीन हजार रुपये मिलते हैं, उसके स्थानपर उन्हीं शतोंपर पांच हजार रुपये वार्षिक दिये जायें। यदि किन्हीं कारणोंसे वनिता-विश्राम उक्त प्रकारका हाई स्कूल चलानेमें समर्थ न हो, तो विद्यापीठ ही एक गुजराती हाई स्कूल वम्बईमें स्थापित करे।

(८) विद्यापीठको प्राप्त होनेवाली ५२,५०० की वार्षिक सहायताकी रकमपर निम्न-लिखित संस्थाओंका प्रथम अधिकार रहेगा। उसके बाद जो कुछ बचेगा, उसमें से आधे रकम गुजराती संस्थाओंको वार्षिक सहायताके रूपमें प्राप्त होगी :—

क—विद्यापीठका आफिस खर्च,

ख—वम्बईका कालेज,

ग—वम्बईका हाई स्कूल,

घ—पूनाका कालेज,

ङ—पूनाका हाई स्कूल,

च—वनिता-विश्रामको वार्षिक ५,००० रुपये।

आर्थिक परिस्थिति

विद्यापीठका स्थायी फंड लगभग एक लाख दस हजार है। इसके सिवा पूनामें लगभग साढ़े तीन लाखकी क्रीमतकी इमारतें हैं। वम्बईमें मकान बनानेके लिए उपयुक्त १,६५,९१६ प्राप्त होनेवाले हैं। चालू वर्षमें वम्बई-सरकारने विद्यापीठको ५,००० रुपयेकी सहायता देनेका वचन दिया है। पिछले तीन वर्षोंमें प्रधान आय बन्द हो जानेके कारण विद्यापीठको कठिन आर्थिक संकट भोगना पड़ा था; परन्तु जनताकी सहानुभूति तथा कार्यकर्ताओंके स्वार्थत्यागने संस्थाको क्रायम रखा। चालू वर्षमें विद्यापीठकी कुल आय ७३,५०० होगी, ऐसा अनुमान किया जाता है। दूसरी ओर खर्चका अनुमान ८७,३३१ का है। इसमें उपयुक्त छह संस्थाओंका खर्च ही मुख्य है। अन्य संस्थाओंकी सहायताके लिए तो केवल ११,००० ही स्वीकार किये

गये हैं। इससे साफ मालूम होता है कि संस्थाको घाटा सहन करना पड़ रहा है।

शिक्षणकी स्थिति

विद्यापीठसे अब तक १९३ छात्राओंने 'गृहीतागमा' (नातिका) पदवी प्राप्त की है। ८६८ छात्राओंने मैट्रिक परीक्षा पास की है। ८५ प्राथमिक शिक्षा देनेवाली शिक्षिकाएँ तैयार हुई हैं। कुछ-एक छात्राएँ उच्च शिक्षाके लिए विदेशोंमें भी गई हैं। कुछ छात्राओंने विशेष अध्ययन करके 'प्रदेयागमा' की पदवी प्राप्त की है। विद्यापीठ स्वयं अपनी देखरेखमें चार संस्थाएँ (वम्बई तथा पूनामें स्कूल तथा कालेज) चला रहा है। पूनामें एक अस्थापिकाशाला भी है। इसके सिवा अहमदाबाद, वडोदा और हैदराबाद (सिन्ध) में तीन कालेज भी चल रहे हैं। वम्बई-प्रान्तमें पन्द्रह हाई स्कूल विद्यापीठके आश्रयमें चल रहे हैं। सब मिलाकर दो सौ छात्राएँ कालेज-विभागमें तथा चार हजार कन्याएँ स्कूल-विभागमें पढ़ रही हैं।

विद्यापीठका विधान

विद्यापीठके विधानमें सत्र मिलाकर पाँच सम्मतिदाता हैं :—

(१) संस्थाएँ—जो संस्थाएँ रजिस्टर्ड हुई हों, जिनके उद्देश विद्यापीठके उद्देश्यसे मिलते हों, विद्यापीठके नियमोंके अनुसार जो संस्थाएँ चला रही हों तथा मताधिकारके लिए विद्यापीठने जिन्हें स्वीकार किया हो, ऐसी संस्थाओंका एक मतदाता-मंडल। ऐसी संस्थाएँ कितने प्रतिनिधि चुन सकती हैं, इसका निश्चय सिण्डिकेट किया करेगी। हालमें बीस प्रतिनिधि नियत किये गये हैं।

(२) संरक्षकगण (Patrons)—जिन सज्जनोंने एक हजार रुपया विद्यापीठको दिया हो, ऐसे सज्जनोंका एक मतदाता-मंडल। उनके अधिक-से-अधिक दस प्रतिनिधि होंगे।

(३) स्नातकगण (Graduates)—किसी भी भारतीय विश्वविद्यालयके स्नातकों (तथा सिण्डिकेटने जिन्हें स्वीकार किया हो, ऐसी विदेशी यूनिवर्सिटीके स्नातक)का एक मतदाता-मंडल। जो वार्षिक दस रुपये अथवा तीन सौ रुपये एक

वारमें ही या छै वर्षमें किस्तों द्वारा विद्यापीठको प्रदान करें।

(४) शिक्षित महिलाएँ—किसी भी भारतीय विश्वविद्यालय (तथा सिण्डिकेट द्वारा अनुमति-प्राप्त विदेशी विद्यापीठ) की मैट्रिक या प्रवेशिका परीक्षा पास स्त्रियोंका एक मतदाता-मंडल। जो वार्षिक पाँच रुपये, या एक सौ पचास रुपये एक वारमें, अथवा छै वर्षमें किस्तों द्वारा विद्यापीठको प्रदान करें।

(५) सामान्य मतदाता—वार्षिक पाँच रुपये या १५० से अधिककी रकम उपर्युक्त रीतिसे देनेवाले।

सामान्य सभ्यों (Fellows) की संख्या ८० है, जिनमें २० संस्थाओंकी ओरसे, २५ संरक्षकों तथा छात्रोंकी ओरसे, २० शिक्षित महिलाओं तथा सामान्य मतदाताओंकी ओरसे, १० सिनेट द्वारा निर्वाचित तथा शेष ५ सर विट्ठलदासके उत्तराधिकारियोंकी ओरसे। सिण्डिकेटमें निम्न-लिखित महानुभाव हैं:—

१. कुलपति (चान्सलर)
२. उप-कुलपति (वायस-चान्सलर)
३. प्रबोता (रजिस्ट्रार)
४. सब कालेजोंके आचार्य (प्रिन्सिपल)
५. सिनेट द्वारा प्रतिवर्ष निर्वाचित सात सदस्य।

विद्यापीठकी सारी सम्पत्ति सिनेट द्वारा प्रतिवर्ष निर्वाचित दो ट्रस्टियोंके नामपर रहती है।

उपसंहार

चालू वर्षसे इस संस्थाका नवीन जीवन शुरू होता है। इसके शिक्षणक्रममें परिवर्तन करनेकी आवश्यकता है। उसके लिए विशाल क्षेत्र है। वैद्यकशास्त्र, अध्यापिका-शिक्षण, ललित-कला आदि अनेक स्त्रियोपयोगी विषयोंके लिए संस्थाएँ खोलनेकी आवश्यकता है। बहुत-सी स्त्री-शिक्षण-संस्थाओंको इस विद्यापीठके आश्रयमें लिया जा सकता है।

संस्थाको सर विट्ठलदास द्वारा पन्द्रह लाख रुपयेका २. मिला है, इसलिए इसकी आर्थिक दशा सन्तोषजनक होगी, ऐसी बात नहीं। इस वर्षके बजटके आँकड़े ऊपर दिये गये हैं। उनसे ज्ञात होगा कि प्राथमिक और माध्यमिक संस्थाओंको मदद देनेके लिए बचतमें कुछ भी नहीं है। इसके सिवा बम्बई और पूनाके कालेजोंको छोड़कर हैदराबाद, बड़ौदा, अहमदाबाद आदिमें स्थित संस्थाओंको भी सहायता नहीं दी जा सकी है। विद्यापीठके विस्तारको देखते हुए उसकी आमदनी बहुत कम है।

यह महिला-विद्यापीठ भारतवर्षकी अपने ढंगकी एक अपूर्व संस्था है। यह वर्तमान शिक्षा-मदतिके दोषोंसे मुक्त है। सरकारी बन्धन न होनेसे शिक्षाके आधुनिक नवीन सिद्धान्तोंका प्रयोग करनेके लिए यहाँ विशाल क्षेत्र है। हम अपने सामाजिक और सांस्कृतिक आदर्शोंके अनुसार स्वाधीनतापूर्वक इसका संचालन और नियमन कर सकते हैं।

इस विद्यापीठका कार्यक्षेत्र अब तक मुख्यतया यद्यपि बम्बई-प्रान्त ही रहा है, तथापि उसका आदर्श भारतीय है। इस विद्यापीठके आश्रयमें अन्य प्रान्तोंमें इसकी शाखाएँ बहुत सरलताके साथ खोली जा सकती हैं। स्वभाषा द्वारा शिक्षा देनेके व्यापक सिद्धान्तके आधारपर प्रत्येक प्रान्त अपनी लाक्षणिकताको अधुण रखकर इसकी शाखा खोल सकता है।

अध्यापक कर्षको भावनाओं और स्वप्नोंके प्रतिमा-स्वरूप यह संस्था भारतवर्षकी एक महत्त्वपूर्ण शिक्षण-संस्था है। सर विट्ठलदासकी प्रेमपूर्ण उदारताने इसको परिपुष्ट किया है। परमात्मा करे, यह संस्था भारतके नारी-जागरणके इतिहासमें अपना गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त करे।

शंकरदेव विद्यालंकार
नरेन्द्रदेव विद्यालंकार

अनुवादक—

एक शिक्षित परिवारकी कहानी

प्रो० मनोरंजन, एम० ए०

[यह पद्यबद्ध कहानी सच्ची घटनाके आधारपर लिखी गई है। हमारी जाग्रत महिलाओंके कारण हमारे पारिवारिक जीवनमें जो एक विचित्र उथल-पुथल-सी हो रही है, उसीका यह एक चित्र है। —लेखक]

“पढ़-लिखकर चिदुपी कहलाई,
हो गई एम० ए० पास, पिया !
मैं भी रुपये ले आऊँगी,
हो मत तनिक उदास, पिया !

गौरैया-समान हम दोनों
तिनके चुन - चुन लावेंगे ;
कोमल-कोमल सेज विछाकर
सुन्दर भवन बनावेंगे ।

नन्हें बच्चे जो होंगे
वारी - वारीसे सेवेंगे ;
अपनी इस जीवन-नौकाको
दोनों मिलकर खेवेंगे ;

दिन-भर जाकर काम करेंगे,
निशिमैं सुखसे सोवेंगे ;
जगकर गोदीमें ले लेंगे
जब ये बच्चे रोवेंगे ।

* * *
क्या कहते हो ? तुम्हें खिला लूँ ?
यह तो है अन्धेर, पिया !
मुझे अभी आफिस जाना है,
हो जायेगी देर, पिया !

वह देखो, वह मोटर आई,
खड़ी कर रही शोर वहाँ ;
लो, अपने बच्चेको पकड़ो,
मत जाये उस ओर वहाँ ।”

‘अम्मा’ कहता बेबी दौड़ा,
अम्माको थी लाचारी ;
बेबी खड़ा निहार रहा था,
भाग गई मोटर - लारी ।

* * *
“चुप रह, बेबी, आज शहरसे
सुघड़ खिलौने आवेंगे ;
चल बावूके पास, प्रेमसे
खाना तुम्हे खिलावेंगे ।”

“बाबू भी आफिस जायेंगे
करने अपना काम वहाँ ;
मैं ही बैठ जाऊँगा,
उन दोनोंके नाम यहाँ ।

नींद लगी तो सो जाऊँगा,
जग जानेपर खेलूँगा ;
नौकर जो कुछ दे देंगे,
रोकर - हँसकर ले लूँगा ।”

* * *
संझा आई, अम्मा आई,
बेबी भाँकी गोद चढ़ा ;
बाबूजी साइकिलपर आये,
सबके मनमें मोद बढ़ा ।

दिन-भरके विछुड़े सव प्राणी
मिले परस्पर दिल खोले ;
‘साईं, मेरा रैन - बसेरा’
पिंजड़ेमें पंछी बोले ।

हमारे घरोंमें कला

श्रीमती मिरियम वेनेड

कभी-कभी लाहौरकी गलियोंमें घूमते हुए मेरा मन एक प्रकारकी आशंकासे खिन्न हो जाता है। वह आशंका यह है कि इस शहरमें—और भारतके अन्य स्थानोंमें—जो सुन्दर-सुन्दर वस्तुएँ बनती थीं और व्यवहारमें आती थीं, वे सब धीरे-धीरे गायब होती जाती और मिटती जाती हैं। उनके स्थानमें जो नई चीज़ें आ रही हैं, उनमें सौन्दर्य बहुत कम है—कम-से-कम उनमें वह कारीगरी नहीं दीख पड़ती, जो इस देशकी भूमिसे स्वतः प्रादुर्भूत होती है।

जिस समय प्रातःकालीन सूर्य अपनी चमचमाती धूपसे सारे शहरको नहला देता है, उस समय शहरकी गन्दगी और बदसूरती भी मनसे विसर जाती है। मतवालोंकी भाँति एक दूसरेपर झुके हुए मैले-कुचैले मकानोंके झुंडमें भी सहसा एक राजसी शान-सी दीख पड़ने लगती है। उनकी रेखाओंमें एक ऐसा सामूहिक सौन्दर्य-सा दीख पड़ने लगता है, जो वात-वातमें लुक्स निकालनेवाले कलाकारको भी भला लग सकता है।

लाहौरकी गलियोंमें आज भी भारतीय कला और दस्तकारीकी बहुत-सी चीज़ें—रोज़मर्राके कामकी चीज़ें—विकती दीख पड़ती हैं। बर्तनोंवाली गलीमें पहुँच जाइये, तो मालूम होगा कि किसी जादूके देशमें पहुँच गये। सारी गली पीतल, काँसे और ताम्बेके तरह-तरहके आकार और घुमाव-पेंचवाले चमचम बर्तनोंसे भरी है। प्रकाशका स्पर्श उनमें चित्र-विचित्र ज्योतिषाँ पैदा करता है और तंग गलीकी दूकानोंकी भीतरी छाया उस जगमगाहटमें कोमलता ला देती है।

कहींपर हुक़े और हुक़ा रखनेकी तिपाइयाँ चमड़ेसे मढ़ी और पीतलसे जड़ी हुई विकती हैं। कहीं बनारसी कमखाव है, कहीं काश्मीरी पशमीना और कहीं देहातके हाथके बुने कपड़े। कहीं विचित्र आकारके लाल चमड़ेके देशी जूते हैं, तो कहीं दीदारेज़ीसे बनाये हुए ज़रीके कामके दिछीवाल जूते। किसी दूकानपर चूड़ियोंके लच्छे लटक रहे हैं और किसीपर रंग-विरंगी पतंगें टँगी हैं। लुकके कामकी पीढ़ियाँ, सोने-चाँदीके ज़ेब्र, तरह-तरहकी डलियाँ-टोकरियाँ और रत्तनार या

घोर नीले रंगके मिट्टीके बर्तन विकते दीखते हैं। इन सुन्दर चीज़ोंको देखकर उन्हें हाथमें लेनेका मन चल आता है। पुराने शहरकी ये चीज़ें हमारे समृद्धशाली अतीतकी सम्पत्तिका एक अंश हैं।

लेकिन जहाँ दस्तकारी और कारीगरीके यह नमूने मिलते हैं, वहीं जर्मनीसे आई हुई भद्दी और बदनुमा तसवीरें, घटिया और भड़कीले जापानी खिलौने तथा चेकोस्लोवाकियाकी आकार-विहीन तरतरियाँ और दूसरी चीज़ें भी पटी दीख पड़ती हैं। ये चीज़ें प्रकट करती हैं कि इस समय दुनियाके बाज़ारोंमें एक विभिन्नता-रहित समानता (Standardization) की हवा बह रही है।

मैं आधुनिकताकी विरोधी नहीं हूँ, और न मैं सभ्यताकी उन सुविधाओं और आरामोंकी ही उपेक्षा करना चाहती हूँ, जो इस मेशीन-युगने हमें दिये हैं। अगर यूरोप और दुनियाके अन्य सब देश हमें उपयोगी चीज़ें भेजनेके साथ-ही-साथ हमारे मनको ऐसा सिखा-पढ़ा सकें कि हम लोग विशुद्ध सरलताका सौन्दर्य समझनेके काबिल हो जायें, तब हम उनके कृतज्ञ हो सकते हैं। प्रत्येक मनुष्यके हृदयमें—चाहे वह देहातका रहनेवाला कोई मज़बूत किसान या मज़दूर हो, चाहे तत्कल्लुफवाज़ शहराती—एक सौन्दर्य-पिपासा रहा करती है। देशके दस्तकार और कारीगर हमारी इस सौन्दर्य-पिपासाको तृप्त करनेके लिए जो कुछ करते हैं, हमें उसके लिए अकृतज्ञ नहीं होना चाहिए।

लाहौर या अन्य हिन्दोस्तानी शहरोंमें घूमते हुए बहुधा मेरे मनमें ऐसे ही विचार उठा करते हैं।

जब मैं अपने भारतीय मित्रोंके मकानोंमें जाती हूँ, तब भी मेरे मनमें कुछ ऐसे ही विचार आते हैं। कुछ मकानोंको देखकर बड़ी निराशा होती है। वे अजूबा चीज़ोंसे भरे और तसवीरोंसे पटे दीख पड़ते हैं। दीवारोंपर जितनी भी जगह मिल सकती है, वह सब मित्रों, रिश्तेदारों, बड़े-बड़े लोगों तथा छुट्टियोंके फोटोग्राफोंसे भरी हुई है। धनियोंके यहाँ कामदार चाँदीके प्रेममें मढ़े हुए चित्र भी मिलते हैं। और इन्हीं चित्रोंकी ठीक बगलमें ही चटक-मटकवाली बहुत-सी अटरम-सटरम चीज़ें

रखी रहती हैं, जो बिना सोचे-समझे खरीदारी करनेकी यादगार हैं। दीवारोंपर लगे हुए घटिया आयालपेंटिंग या विशेषत्वहीन छपे हुए चित्र अगर देखना हो, तो अन्धकारपूर्ण ऊँचाईमें सारसकी तरह गर्दन उठाकर धूरिये। कोई भी चीज़ उचित ऊँचाईपर नहीं, जिससे वह आसानी और आरामके साथ देखी जा सके। अक्सर तसवीं इतनी ऊँचाईपर लगाई जाती हैं कि पाससे उनका सौन्दर्य देखना चाहें तो नसेनी लगाइये। अंगरेज़ी ढंगसे रहनेवालोंके यहाँ मोटे आकारका फर्नीचर, भारी-भरकम कोच और कुर्सियाँ आँखें फाड़कर आपको देखती जान पड़ती हैं। सारी चीज़ें अबसे ५०-६० वर्ष पहलेके मध्य-विक्टोरियन युगकी हैं, जो यूरोपियन रुचिका सबसे निकट युग था। उस युगकी रुचि भारतमें कभी न आती तो भला था। इस सब फर्नीचरपर बड़ी-बड़ी रकमें खर्च की जाती हैं, फिर भी कमरेके वातावरणमें न तो कोई विशेषता ही आती है और न शान्ति या आरामका भाव।

बहुतसे लोग नीलाममें जाकर विलायत जानेवाले किसी साहबका सारेका सारा सामान खरीदकर उससे अपने मकान आरास्ता करते हैं। ऐसे लोग एक अन्य व्यक्तिके रहने-सहनेके ढंगकी नक़ल करनेकी दूषित चेष्टा करते हैं, मानो रहन-सहनके विषयमें उनका अपना कोई निजी विचार ही नहीं। यह तो हुई फैशनेबिल कहे जानेवाले अंगरेज़ीदाँ लोगोंकी बात।

फिर इस देशमें बहुतसे आदमी ऐसे हैं, जिन्हें अपने मकानोंको गुफाओं या खोंहोंसे वास्तविक निवास-स्थानमें परिणत करनेमें कोई दिलचस्पी ही नहीं। ऐसे लोगोंके कमरे या तो बहुत अस्त-व्यस्त होते हैं, या विलकुल खाली—नंगे-बुच्चे। इन दोनों अवस्थाओंमें दूसरी अवस्था बेहतर है, क्योंकि खाली—नंगे-बुच्चे—होनेपर भी कम-से-कम उनमें सफाईका गुण तो रहता है।

भारतीय घरोंके उपर्युक्त चित्रोंसे निरुत्साहित होनेकी ज़रूरत नहीं, क्योंकि सौभाग्यसे मैंने ऐसे भी अनेक भारतीय मकान देखे हैं, जिन्हें उनके मालिकोंकी दिलचस्पी और सुरुचिने वास्तवमें आरामदे और आनन्ददायक निवास-स्थान बना दिया है; जिनमें फर्नीचर, पर्दे तथा अन्य सजावटके सामानोंमें भारतीय कारीगरी और कला-कौशलका उपयोग किया गया है और भारतीय चित्रकारोंकी बनाई हुई

कुछ चुनीदा-चुनीदा तसवीरें सुविधाजनक ऊँचाईपर दीवारोंपर लटकाई गई हैं। जहाँ-तहाँ सौन्दर्यमर्मज्ञ दृष्टिसे संग्रह की हुई, विदेशोंसे लाई हुई, कलाकी कुछ निर्दोष छोटी-मोटी वस्तुएँ सजी हैं। 'अति सर्वत्र वर्जयेत्' के सिद्धान्तका पूरा ध्यान रखा गया है। विवेकशीलोंकी सतत सहचरी पुस्तकें मेज़पर क़रीनेसे रखी हैं। फूलदानोंमें फूल इस तरीक़ेसे रखे गये हैं कि उनका और उनके पत्तोंका प्राकृतिक सौन्दर्य और ताज़गी अच्छे-से-अच्छे ढंगसे दीख पड़े। छतसे लेकर फर्श तक हर चीज़ एकदम साफ-सुथरी है। ऐसे स्थानोंमें एक प्रकारकी आढम्बरहीन शान्ति और कुशलताका वातावरण छाया जान पड़ता है। ऐसे घरोंमें पैर रखते ही सुरुचि और सुसंस्कृतिका अनुभव होने लगता है। इस तरहका वातावरण उत्पन्न करनेमें कुछ लोग काफी लम्बी रकमें खर्च करते हैं; लेकिन मैंने ऐसे घर भी देखे हैं, जिनमें बिना विशेष खर्चके केवल रोज़मर्राकी मामूली चीज़ें रखने और प्रदर्शन करनेके ढंगमें एक सरलतापूर्ण सुव्यवस्था और क़रीनेसे ही सौन्दर्य और शान्तिका यह वातावरण पैदा कर दिया गया है। यद्यपि आराम और कलाके विचार पाश्चात्य देशोंसे लिये गये हैं, फिर भी कला और सौन्दर्यकी नई और पुरानी भारतीय वस्तुओंका पूरा-पूरा उपयोग करके पश्चिमी ढंगपर भारतीयताकी गहरी छाप लगा दी गई है।

यह सौभाग्यका चिह्न है कि आजकल अधिकाधिक लोग इस प्रकारके मकानोंके इच्छुक हो रहे हैं; लेकिन ऐसे व्यक्तियोंको कला या सुरुचिके सम्बन्धमें अपने सिद्धान्त स्थिर करनेके लिए हमारे देशमें न तो समाचारपत्रोंसे ही कुछ सहायता मिलती है और न स्कूलोंसे।

स्त्रियाँ गृहलक्ष्मी कहलाती हैं। घरको सुन्दर, आकर्षक और आरामदे बनाना उनका हिस्सा है; लेकिन उन्हें भारतमें इस विषयकी कोई शिक्षा नहीं मिलती। हालमें लड़कियोंके कुछ स्कूलोंके पाठ्य-विषयोंमें 'गृह-विज्ञान' भी शामिल किया गया है; लेकिन यह 'गृह-विज्ञान' पाक-शिक्षा या बच्चोंकी देख-भाल तक ही परिमित है। मैंने भारतीय स्कूलोंके 'गृह-विज्ञान'के जितने भी कोर्स देखे हैं, वे सब एकदम कल्पनाशून्य हैं। भारतीय लड़कियोंको सौन्दर्य-विज्ञानके मौलिक सिद्धान्त सिखानेका कोई भी प्रयत्न नहीं किया जाता। किन-किन रंगोंका मिश्रण अच्छा होता है, हलके-गहरे रंगोंका

मेल करके किस प्रकार वर्ण-विभिन्नता पैदा की जा सकती है, फर्नीचरमें क्या-क्या बातें उपयोगी और सौन्दर्यवर्द्धक होती हैं, तसवीरों तथा सजावटी सामानोंमें क्या क़रीना बरतनेसे सुसंगति पैदा हो सकती है, एक ही साथ सामंजस्य और विभिन्नता कैसे मिल सकती है और 'अति सर्वत्र वर्जयेत्' का सिद्धान्त कैसे पालन किया जा सकता है, आदि बातें ऐसी हैं, जो प्रत्येक लड़कीको, प्रत्येक महिलाको, प्रत्येक गृहिणीको जानना चाहिए और बखूबी जानना चाहिए।

अमेरिकामें स्त्रियाँ गृह-सज्जामें बहुत दिलचस्पी लेती हैं। लड़कियोंके सभी स्कूलोंमें यह विषय पढ़ाया जाता है। अनेक कालेजों और यूनिवर्सिटियोंमें गार्हस्थिक अर्थशास्त्रकी उच्च शिक्षा दी जाती है और केवल इसी विषयके अनेक मासिक पत्र निकलते हैं; लेकिन हमारे देशमें अभी तक इन बातोंमें से कोई भी प्राप्त नहीं है।

ऐसी दशामें प्रश्न यह है कि यदि कोई भारतीय महिला या नवयुवती अपने घरको धाराम और सौन्दर्यका निकेतन बनाना चाहती हो, तो वह क्या करे? अंगरेज़ी जाननेवाली बहनोंको भैं यह सलाह देंगी कि वे मकानकी भीतरी सजावटपर अंगरेज़ीमें प्रकाशित कुछ पुस्तकें पढ़ें। अंगरेज़ीकी महिला पत्र-पत्रिकाओंमें भी—जैसे Good House Keeping—उन्हें समय-समयपर उपयोगी लेख मिल जायेंगे। लेकिन मैं अपनी भारतीय बहनोंसे साफ-साफ कह देना चाहती हूँ कि इन विदेशी पुस्तकों और पत्र-पत्रिकाओंसे वे जो भी नये विचार ग्रहण करेंगी, वे तब तक उनके लिए सचमुच कारामद न हो सकेंगे, जब तक वे उन्हें भारतीय साज-सामान और भारतीय कलाकी वस्तुओंकी सहायतासे भारतीय मकानोंके अनुकूल साँचेमें न ढालेंगी।

जो बहनें अंगरेज़ी नहीं जानतीं, उनकी सहायताके लिए घरोंकी भीतरी सजावटके विषयमें सुरुचि-सम्बन्धी कुछ मोटे सिद्धान्त यहाँ बतला देना अनुचित न होगा।

सबसे पहले कमरेके रंगको ही ले लीजिए। सौन्दर्यमें रंगका प्रभाव कितना ज़बरदस्त है, यह सभी जानते हैं। भारतके प्रायः अधिकांश घरोंमें सालमें एक बार पुतई ज़रूर होती है। अब प्रश्न यह है कि कमरेका रंग कौन-सा होना चाहिए? इसके लिए सबसे आसान तरीका है कमरेको ज़मीन और आसमानके रूपमें खयाल करना। ज़मीनका रंग

आसमानके रंगसे बहुत गहरा है, इसलिए फर्शका रंग—या फर्शके विछावनका रंग—गहरा होना चाहिए, छतका रंग बहुत हल्का होना चाहिए और दीवारोंका रंग दोनोंके बीचका—जैसे सुनहरा, जर्द या हल्का पीला (क्रीमका रंग), जो प्रायः अन्य सभी रंगोंके साथ मेल खाते हैं।

सजावटके सामान—साज-सरंजाम—में दो-तीन रंगोंका मिश्रण अच्छा समझता जाता है। इनमें से एक रंग तो ऐसा हो, जो सवपर हावी हो, दूसरा रंग ऐसा हो, जो उससे मेल खाता—सामंजस्य रखता—हो और तीसरा रंग विभिन्नता या प्रतिकूलता उत्पन्न करनेके लिए हो। इसके लिए अलग-अलग रंगोंके कपड़े या कागज़के टुकड़े ले लीजिए और उन्हें अलग-बगल रखकर देखिये कि कौन रंग किस रंगके साथ सोहता है। यह एक बड़ा मज़ेका खेल है।

कालीन, दरी, पर्दे, कोच और कुर्सियोंके गिलाफोंके चुनावमें रंगों और डिज़ाइनकी विभिन्नताका ध्यान रखना चाहिए। मान लीजिए कि आपका कालीन एक खास डिज़ाइनका—वेल्-बूटेवाला—है, तो आपको कोच और कुर्सियोंके गिलाफ सादे रखना चाहिए, अथवा बहुत हलके डिज़ाइनके। फर्नीचरके बड़े-बड़े अदद—जैसे बड़ी मेज़, कोच, पलंग आदि—इस ढंगसे रखना चाहिए कि उनकी रेखाएँ कमरेकी रेखाओंके समानान्तर हों। अगर कमरा छोटा है, तब तो इस बातपर ध्यान रखना बहुत ज़रूरी है। हाँ, छोटी-छोटी मेज़ें और कुर्सियाँ आकस्मिक ढंगसे एक दूसरेके सामने रखनेसे ज़्यादा भली मालूम होती हैं।

दीवारोंपर थोड़ी तसवीरें लगाना ही ज़्यादा मुनासिब है। तसवीरें दीवारसे एकदम सटी हुई टाँगनी चाहिए, झुकी हुई नहीं, और उनकी ऊँचाई आँखकी ऊँचाईके बराबर ही हो। अगर एक ही दीवारपर दो या ज़्यादा तसवीरें लगानी हों, तो इस बातका ध्यान रखिये कि उनके निचले सिरे—आधारकी रेखाएँ—एक ही सीधमें हों। यह ढंग अक्सर दूसरे ढंगोंसे ज़्यादा आरामदे साबित होता है।

कमरेमें कोई एक आकर्षणका केन्द्र होना चाहिए। कोई स्थान ऐसा होना चाहिए, जहाँ आनेवालेका ध्यान अपने ही आप खिंच जाय। अंगरेज़ी ढंगके कमरोंमें अंगीठीके ऊपरकी कार्निज—'मैटलपीस'—पर सजावटकी कुछ आकर्षक चीज़ें

रखनेसे बहुधा यह मतलब हल हो जाता है। जहाँ श्रंगीठीके ऊपरवाली कार्निंस न हो, वहाँ किसी मेज़पर कुछ मनोरंजक और आकर्षक चीज़ें रखकर यह काम निकाला जा सकता है। सजावटकी ये चीज़ें बहुत ज्यादा न होनी चाहिए। वे गिनतीमें थोड़ी हों; परन्तु हों सुन्दर और सुसज्जित। वे कमरेमें इस ढंगसे रखी जानी चाहिए कि अनुपात और संतुलन—बैलेंस—में फर्क न आये। एक वस्तु दूसरीकी पूरक हो, आकारमें प्रायः दूसरीके बराबर हो। कभी-कभी मेज़पर एक तरफ कोई बड़ी चीज़ रखनेसे दूसरी तरफ छोटी-छोटी कई चीज़ें रखकर संतुलन बराबर किया जाता है। कभी-कभी शमादानका एक जोड़ा या खूबसूरत वर्तनोंका एक जोड़ा मेज़पर सजाकर रखनेसे सजावटका संतुलन बराबर करनेमें काफी मदद मिलती है। सजावटकी चीज़ोंका ठीक-ठीक क़रीना और सन्तोषजनक अनुपात सोखनेके लिए बहुत-कुछ अभ्यास और अनेक प्रयोगोंकी ज़रूरत हुआ करती है।

पुस्तकें और फूल हमेशा कमरेमें रहायशका आभास देते हैं। उनके होनेसे मनमें अपने-आप जान पड़ता है कि इस कमरेमें कोई रहता है। घरके रहनेवालोंके व्यक्तित्वका ज़िन्ना आभास पुस्तकों और फूलोंसे मिलता है, उतना किसी अन्य वस्तुसे नहीं। फूलोंके सजानेमें जापानी लोग संसारमें सबसे बड़े कलाकार हैं। जापानी स्त्रियोंमें फूलोंका सजाना प्रायः एक धार्मिक कृत्य-सा हो गया है। वे इसपर घंटों लगाया करती हैं। फूलोंके सजानेमें उनका एक सिद्धान्त है। वह यह कि फूलोंका गुलदस्ता एक प्रकारसे त्रिभुजाकार होना चाहिए—इस त्रिभुजका आधार पृथिवीका प्रतीक है, दोनों भुजाएं आकाशकी प्रतीक और शीर्ष-स्थान स्वर्गका प्रतीक। वे बहुधा फूलोंको छिड़ले कटोरोंमें सजाया करती हैं। हमारे यहाँ पीतल

और काँसेकी थालियाँ या कटोरे इसका काम दे सकते हैं।

ऊपर जो कई सरल सिद्धान्त बताये गये हैं, उनसे हमारी गृह-देवियोंको अपने घरोंकी सजावटमें और उन्हें आकर्षक बनानेमें कुछ सहायता मिलेगी—कम-से-कम वे इन नियमोंकी सहायतासे गुरुआत तो कर सकेंगी। यदि वे हमारे देशके क़स्बे-क़स्बेमें मिलनेवाली और बननेवाली बहुत साधारण चीज़ोंको ही इस्तेमाल करें, तो वे शीघ्र ही सीख जायँगी कि इन साधारण वस्तुओंको किस प्रकार कलापूर्ण ढंगसे रखनेसे सौन्दर्य उत्पन्न किया जा सकता है। यह समझना एकदम भूल है कि घरकी सजावट क्रीमती और कमयाव चीज़ोंके बिना हो ही नहीं सकती। हमारे देशके देहातके बुने हुए कपड़ों और क़सीदोंमें भी एक विचित्रतापूर्ण कमनीयता है। हमारे साधारण पीतल और काँसेके वर्तनोंमें भी—जो प्रत्येक भले भारतीय घरमें ढेरों मिलेंगे—एक मर्यादापूर्ण सौन्दर्य है। मिट्टीकी साधारण-स-साधारण चीज़ों और लकड़ीके सामानमें बहुधा बहुत माधुर्य होता है।

भारतीयोंको—विशेषकर अत्यधिक पाश्चात्य रंगमें रंगे हुए लोगोंको—यह समझ लेना चाहिए कि किसी अन्य देश या अन्य जातिकी कला-परम्पराओंकी अन्धाधुन्ध नक़ल करनेके मानी हैं स्वयं अपनेमें वास्तविक सौन्दर्य-अनुभूतिकी कमी। उन्हें जान लेना चाहिए कि प्रत्येक देशमें कलाका वही रूप सफल हो सकता है, जिसकी जड़ अपनी स्वदेशी उत्कृष्ट परम्पराओंमें गड़ी हो। सौन्दर्यपूर्ण प्रभाव प्रचुर धन खर्च करनेसे नहीं उत्पन्न होता, वह उत्पन्न होता है विवेकपूर्ण सुसज्जित व्यवहारसे। वह सुसज्जित सुसंस्कृत वातावरणमें विकसित होती है, और वह जानती है कि अपने चारों ओरकी वस्तुओंका उपयोग किस प्रकार करना चाहिए।



स्वतन्त्रताके युद्धमें महिलाएँ

श्रीमती विजयलक्ष्मी पंडित

स्वतन्त्रताके युद्धमें स्त्रियोंने जो भाग लिया है, उसकी कहानी आश्चर्यजनक है। आजसे पन्द्रह-बीस वर्ष पहले कोई भारतीय स्वप्नमें भी यह कल्पना नहीं कर सकता था कि भारतीय महिलाएँ ऐसे काम कर सकती हैं, जो उन्होंने १९३०-३२ के आन्दोलनमें कर दिखाये। वास्तवमें गत दस वर्षकी विशाल राष्ट्रीय जाग्रति अचम्भेसे भरी है। इस कहानीको हम ज्यों-ज्यों पढ़ते हैं, त्यों-त्यों इसके महत्त्वकी छाप हमारे हृदयमें लगती जाती है। पहले तो स्फूर्ति और गौरवका अनुभव होता है। फिर ज्यों-ज्यों हम इसकी गहराईमें जाते हैं, त्यों-त्यों कहानी अधिकाधिक प्रभावोत्पादक बनती जाती है।

भारतने संसारको अनेको श्रेष्ठ महिलाएँ प्रदान की हैं। इतिहासके पृष्ठ बतलाते हैं कि भारतमाताकी अनेक पुत्रियाँ खूनसे तर पैरोंसे अनन्तके मार्गपर चली हैं। उसकी पुत्रियोंने सिद्धान्तकी रक्षा अथवा किसी पवित्र कार्यको आगे बढ़ानेके लिए अपना सर्वस्व त्यागकर जीवनको सार्थक बनाया है। बहुत-सी महिलाओंने अपनी वीरता और त्यागसे इतिहासमें वीरांगना एवं उच्चात्माका स्थान प्राप्त किया है; किन्तु इससे भी अधिक महिलाएँ अज्ञात रही हैं। यह बात केवल प्राचीन इतिहासके ही सम्बन्धमें नहीं, वरन् सविनय अवज्ञा-आन्दोलनके सम्बन्धमें भी सच है।

सन् १९३० की १० अप्रैलको महात्मा गांधीने भारतीय महिलाओंके नाम एक खुला पत्र लिखा, जिसमें उनसे बाहर निकलकर कुछ काम करनेके लिए अपील की थी। महात्माजीकी विशेष रूपसे यह इच्छा थी कि महिलाएँ वहिष्कार-कार्यक्रमको—विदेशी कपड़े और शराबकी दुकानोंपर धरना देनेके कामको—अपने हाथमें लें। महिलाओंसे आशातीत प्रत्युत्तर मिला। इसे हम गांधीजीका जादू कह सकते हैं।

जीवनके कठोर पहलुओंसे अपरिचित लजाशील भारतीय महिलाओंने अपने गृहोंकी सुरक्षित दीवारें परित्यागकर, पुरुषोंके साथ कन्धा भिड़ाकर, काम किया। महात्माजीके इच्छानुसार स्त्रियोंने विशेष रूपसे पिकेटिंगके कार्यक्रमको अपने हाथमें लिया। सैकड़ों महिलाएँ बाहर निकल पड़ीं—उन प्रान्तोंमें भी, जिनमें कई पीढ़ियोंसे पदेंका जोर था। धूप और वर्षामें, संयुक्तप्रान्तकी झुलसानेवाली लूमें भी उन्होंने विदेशी कपड़े और शराबकी दुकानोंपर धरना दिया। कानून और अमनके नुमाइन्दों तथा दुकानदारोंके गुस्सेको उन्होंने बरदाश्त किया और ज़रा भी पीछे न हटीं। उनकी वीरताके कारण केवल वहिष्कारको ही सफलता नहीं हुई, बल्कि पूरे आन्दोलनकी ताकत बढ़ गई।

भारतीय स्वाधीनताकी शान्तिमय सेनाकी अगली क्रतारोंमें महिलाओंकी उपस्थितिने और उनके त्याग-भावने संवर्षके रुखको ऊँचा बना दिया और युद्धका अहिंसात्मक रूप दृढ़ कर दिया। सारे देशमें सेविका-संघोंकी स्थापना हुई। उनमें बम्बईका 'देश-सेविका-संघ', बंगालका 'नारी-सत्याग्रह-संघ', गुजरातका 'स्त्री-स्वराज्य-संघ' और केरलका 'स्वयं सेविका-संघ' अधिक प्रसिद्ध थे। बम्बईके देश-सेविका-संघकी ओरसे हर रोज़ ३०० सेविकाएँ धरना देने जाती थीं, और २०० से ऊपर जेल-यात्रा कर आईं। बंगालमें २०० महिलाएँ जेल गईं, गुजरातमें १२५, पंजाबमें १०० संयुक्त-प्रान्तमें करीब १०० इत्यादि—यह मैं यादसे लिख रही हूँ, सम्भव है, मेरे कहनेमें त्रुटियाँ हों। केसरिया साड़ी पहने सेविकाओंका दृश्य—सौजन्य, साहस और त्यागकी निशानियोंका नज़ारा—हर एक शहरमें दिखाई देने लगा।

जब पुरुष जेल भेजे जाने लगे, तब स्त्रियाँ आगे बढ़ीं। पुरुषोंने जिस जगहको खाली किया, वह जगह

उन्होंने ले ली और इस नये भारको योग्यतापूर्वक उठाकर अपनी संगठनशक्ति साबित की। वे अपने ऊपर अधिकाधिक जिम्मेदारियाँ लेती गईं और बहुत अंशोंमें उन्होंने आन्दोलनका पूरा नेतृत्व करना आरम्भ कर दिया।

इलाहाबादमें महिलाओंके संगठन और विशेषरूपसे सेविका-संघकी स्थापनाका काम स्वर्गीया कमला नेहरूका था। राष्ट्रीय आन्दोलनमें भाग लेनेके लिए स्त्रियोंको तैयार करनेका कार्य उन्होंने अथक उत्साहके साथ किया। भीषण कठिनाइयोंका सामना करते हुए उन्होंने अपने प्रान्तकी महिलाओंमें सेवाकी भावना भरी। १ जनवरी १९३१ को उनकी गिरफ्तारीसे प्रयागकी महिलाएँ अधिक प्रभावित हुईं और बहुत बड़ी संख्यामें सेविका-संघमें शरीक हुईं। आज कमलादेवी हमारे बीचमें नहीं हैं; परन्तु मुझे विश्वास है कि उनकी वीर भावना भारतके स्त्री-समाजको स्फूर्ति प्रदान करती रहेगी।

अक्सर कहा जाता है कि पुरुषके मार्गमें स्त्री एक रोड़ा है। संग्राम-कालमें बहुतसे पुरुषोंने अपने घरमें बैठे रहकर ही सन्तोष कर लिया और यह कहकर कर्तव्यकी पुकारसे मुँह मोड़ लिया कि 'मैं विवाहित हूँ, मैं कैसे जाऊँ?' पिछले आन्दोलनके समय ऐसे बहानोंकी गुंजायश न थी। स्त्रियोंने स्वयं अपने पुरुषोंसे आगे बढ़नेको कहा और प्राचीन युगकी स्पार्टा देश (Sparta) की माताओंकी भाँति, जो युद्धमें अपने पुत्रको भेजते समय यह कह देती थीं कि 'तू हारकर जिन्दा न लौटना', भारतीय महिलाओंने अपने पति, पुत्र और भाइयोंको कार्यके प्रति सच्चा रहनेको कहा। इस विषयमें मुझे एक सच्ची कहानी याद आती है। कांग्रेसका एक स्वयंसेवक जुलूसके साथ गिरफ्तार होकर जेल गया। यह वह समय था, जब हमारे लड़कोंको अनेक कष्ट दिये जा रहे थे। जेलमें उस लड़केपर और तकलीफोंके होते हुए मार भी कई बार पड़ी। लड़का छोटी उम्र और कमजोर तबीयतका था, तकलीफ न बरदाश्त कर सका और माफ़ी माँगकर छूट गया। घर

पहुँचा तो उसकी माताने, जो एक छोटे किसानकी पत्नी थी, पूछा—“बेटा कैसे छूट गया, तुम्हें तो छै मासकी सज़ा थी?” जब उसने सुना कि लड़का माफ़ी माँगकर आया है, तो वह बहुत नाराज़ हुई और लड़केसे कहा—“इस घरमें अब तेरी जगह नहीं रही—या तो तू फिर काम करके जेल जा और अपने इस पापका प्रायश्चित्त कर, नहीं तो मेरा घर हमेशाके वास्ते छोड़ दे।” वह लड़का तुरन्त कांग्रेसके दफ्तरमें आया और कुछ रोज़ वाद धरना देते हुए गिरफ्तार हुआ और एक साल सज़ा पाई! एक और किस्सा यह है—हमारी सेविकाओंमें से एक महिलाके पति अधिक बीमार थे, उन्हीं दिनोंमें वह गिरफ्तार होकर जेल भेज दी गई। उससे पूछा गया कि यदि वह निकलना चाहे तो कोई प्रयत्न किया जाय; परन्तु वह बड़ी हिम्मतके साथ जेल ही में रही और कभी यह खयाल न किया कि माफ़ीके एक शब्दसे ही वह छूटकर पतिके पास जा सकती थी!

उस समयकी कुछ सुप्रसिद्ध महिलाओंका मैं नाम देती हूँ—बम्बईमें श्रीमती पेरिन कैपटेन, खरशेद नौरोजी (दोनों दादाभाई नौरोजीकी नातिन), श्री हंसा मेहता, सोफिया सोमजी (जिनका विवाह थोड़े दिन हुए सरहद प्रान्तके नेता डाक्टर खाँ साहबके सुपुत्रसे हुआ है), श्री गंगा वहन; गुजरातमें मृदुला साराभाई; वेलगाममें कमलादेवी चट्टोपाध्याय; पंजाबमें श्री लाडोरानी जुतशी; बेरारमें दुर्गावती जोशी; देहलीमें श्री पार्वती देवी, सत्यवती देवी और युक्तप्रान्तमें श्री उमा नेहरू, सुनीतिदेवी मित्रा, रानी राजेन्द्र कुमारी, पार्वती देवी इत्यादि। इन महिलाओंके अलावा सैकड़ों ऐसी थीं, जिन्होंने उतने ही उत्साह और हिम्मतसे काम किया और उतने ही कष्ट उठाये; परन्तु जिनके नाम जनताके सामने नहीं आये। ये बहनें उतने ही यशकी भागी हैं, जितनी वे, जिनके नामोंसे जनता परिचित हैं।

आन्दोलनके अन्धकारपूर्ण दिनोंमें जब कि जुलूसों और सभाओंपर रोक लगा दी गई थी, जब कि

आज्ञा भंग करनेका अर्थ, निश्चित दंड था, उस समय महिलाएँ बड़े हर्षसे भंडेको लेकर आगे बढ़ी थीं। केसरिया साड़ी पहने हुए हज़ारों महिलाएँ जुलूस बनाकर निकलती थीं। कई बार जुलूसोंपर लाठियाँ भी पड़ीं ;



कुमारी पेरिन कैप्यन

परन्तु स्त्रियोंने शान्ति और दृढ़तासे उनको बरदाश्त किया। मुझे कई जुलूसोंमें भाग लेनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ है। उन अवसरोंपर मेरी बहनोंने जिस साहसका परिचय दिया, उसे देखकर मैं गर्व और आनन्दसे भर गई। ज्यों-ज्यों आन्दोलन बढ़ता गया, त्यों-त्यों अधिकाधिक संख्यामें महिलाएँ जेल भेजी गईं। इन्हें चन्द सप्ताहोंसे लेकर दो-दो वर्ष तककी कैदकी सज़ाएँ मिलीं। यह बात विशेष महत्त्वकी है कि बावजूद तमाम कठिनाइयों और इस बातके कि अधिकांशको अपने छोटे-छोटे बच्चोंसे बिछुड़ जाना

पड़ा था, किसी कांग्रेसी महिलाने माफ़ी माँगकर जेलखानेसे अपनी मुक्ति नहीं कराई।

युक्तप्रान्तमें सरकारने स्त्रियोंको तीन अलग-अलग जेलोंमें रखा था और उन्हें तीन श्रेणियोंमें विभाजित किया था -- 'ए' श्रेणीकी महिलाएँ लाखनऊमें रखी गईं, 'बी' श्रेणीकी बनारसमें और 'सी' श्रेणीकी फतहगढ़में। 'बी' ओ. 'सी' श्रेणीकी जेलोंमें जिस हालतमें स्त्रियोंको



श्रीमती अम्बालाल साराबाई

मुसीबत उठानी पड़ी, उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। आन्दोलनके सबसे कठिन और अन्धकारमय दिनोंमें महिलाओंने अपूर्व देशभक्ति और साहसका जो परिचय दिया, उसके अनेक उदाहरण दिये जा सकते हैं ; परन्तु इस लेखमें उनका वर्णन करना अनावश्यक है। इतना ही कहना काफी है कि हमारी महिलाएँ हर प्रकारसे कसौटीपर कसी गईं और हर प्रकारसे खरी पाई गईं।

जब भारत स्वाधीन होगा, तब यह बात अवश्य स्वीकार की जायगी कि भारतीय महिलाओंके महान त्यागसे ही भारतीय स्वाधीनता-संग्राम सफल हुआ।

मातृपद

श्रीयुत केसरी

पीर यह कैसी निराली !

प्राणकी प्रति साँसमें यह झूलती तसवीर भाली !

हिय तथापि अधीर आली !

पीर यह कैसी निराली !

जब अज्ञान किशोर हियने प्रणयका प्रतिदान माँगा
रूपने छविने जवानीने अमर वरदान माँगा
प्राणकी वह प्यास-अनुसूया त्रिपथगा खींच लाई
तृपित जीवन-चमन देखो ! आज मालिन सींच लाई
यह प्रतिध्वनि निखिल हियकी गूँजकी चिर-वेदनाकी
पूर्ति प्रियदर्शन सजनि ! चिर-साधना-आराधनाकी
तृप्ति-तर्पण आज इस तपका करे दृग-नीर आली !

पीर यह कैसी निराली !



‘पीर यह कैसी निराली !’

चित्रकार—श्री सुभांशु राय



‘मेरी बोलियोंमें लोरियाँ हैं’

चित्रकार—श्री सत्यरंजन कर

वह दुपहरी रूपकी थी—प्राणधनकी मानिनी में
दो हृदयकी जुद्ध सीमामें बैठी अनुरागिनी में
आज मंगल मातृपद पा भुवनमें अभिमानिनी हैं
विश्व-मन्दिर दीप आशाका लिये मधुयामिनी हैं
यह हमारा स्वप्न-सुख जगके नयनकी रजत-राका
परिधि सीमित दम्पतीका विश्वसे सम्बन्ध-खाका
पल रही मम गोदमें यह राष्ट्रकी तकदीर आली !
पीर यह कैसी निराली !

उर हिमालयसे उमड़ करुणा वही जग-कलुष धोने
धुरसरी-सी आज जंगमें मोतियोंके बीज बोने
रुदन हीरोंकी लड़ी सखि ! फुलझड़ी अब त्योरियाँ हैं
हासमें मधुमास मेरी बोलियोंमें लोरियाँ हैं
धन्य रे मेरे भगीरथ ! धन्य परिवर्तन निराला
दग-कलश परिपूर्ण अमृत मृत हलाहल और हाला
प्यार-ममता-दूधसे भीगा हमारा चीर आली !
पीर यह कैसी निराली !

धन्य परिवर्तन ! धराके आज कण-कण प्यार सरसे
धूल भी चन्दन बनी मेरे ललनके पाणि परसे
आज एक रहस्य तम-आलोकमें भीषण - सलोना
पूर्णमा आशीष कल्याणी अमामें डीठ-टोना
यह मचलता सजनि अम्बरवासिनी करती निहोरा
उत्तर आता चाँद आँगनमें लिये कंचन-कटोरा
एक-एक विभूति जगकी आज परिचित सहचरी-सी
फूल ऐसा कौन जिसमें मैं न भूली मधुकरी-सी
प्राणके रे लाड़ले ! पाकर तुझे विभु-भूति पा ली
कौतुकी ! तेरे लिए जगकी छिपी अनुभूति पा ली
विश्व-विजयी आज मातृ-सुहागका सिन्दूर आली !
पीर यह कैसी निराली !

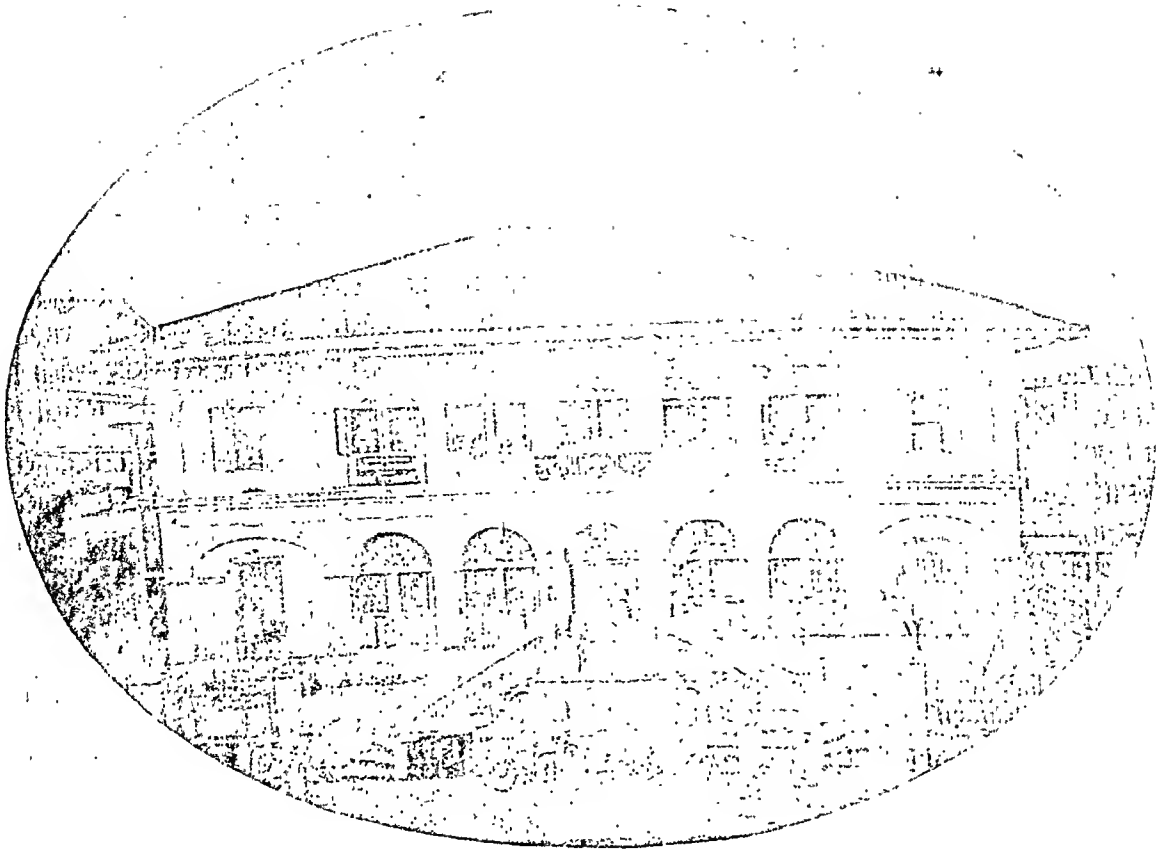
चाहती अमरावतीसे पारिजात-प्रसून लाऊँ
निखिल नन्दनवन अदनके अमिय फल तुझको चखाऊँ
चन्द्रको कर चूर चन्दन-अंगराग मंदिर बनाऊँ
तारकोंके पावड़े रे लाड़ले ! तब पथ बिछाऊँ
मेघ वालोंकी तरीपर—इन्द्र धनुषोंके नगरमें—
सतत स्वर्गगा निनादित ज्योतिकी छाया-डगरमें—
चाहती उड़ अप्सरा-सी गगन-पलनेपर भुलाऊँ
वीरसू में उर्वशी शाश्वत कुमारीको लजाऊँ
किन्तु लिपटी मानवी दौर्वल्यकी जंजीर आली !
पीर यह कैसी निराली !

होड़ ले सकती कहाँ री प्रकृति ! तेरी चित्रसारी
वह कला वह कल्पनाकी छवि कहाँ रूने उतारी
देख तो यह चित्र मेरा वर्द्धमान असीम चेतन
विश्वके क्षणभंगुरोंमें एक अक्षयवट पुरातन
सृष्टि-क्रमका श्रोत मैंने अचिरमें चिर-चित्र आँका
रूपके इस दीप अविचल दामिनी-युतिकी शलाका
वे गुलाब नहीं सजनि ! जिनमें खड़े काँटे अड़ीले
असृण ये विद्रुम लिये पीयूषके दाने सुरीले
सृष्टिकी तेरी मिठा दी लो कलंक-लकीर आली !
पूर्ण मानव - चित्र आली !



‘पल रही मम गोदमें यह राष्ट्रकी तक्रदीर आली !’

चित्रकार—श्री एच० एल० मेह

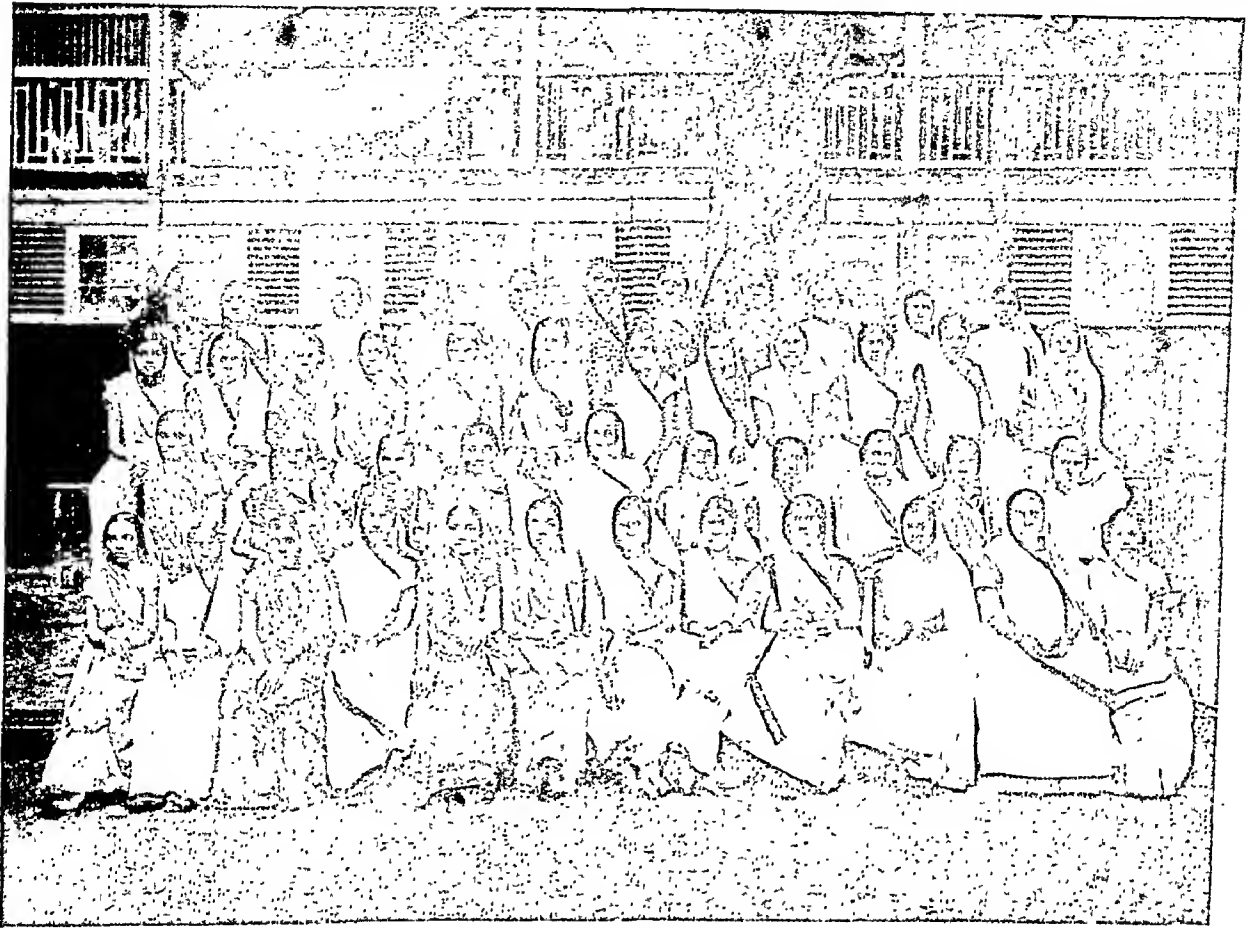


गुजराती हिन्दू स्त्री-मंडल बम्बई

इस शताब्दीके आरम्भमें बम्बईके श्री भवानीदास नारायणदास मोतीवालाके मनमें यह विचार आया कि गुजराती हिन्दू स्त्रियोंके लिए कोई संस्था होनी चाहिए। उन्होंने अपना यह विचार श्री गोवर्धनराम त्रिपाठी और श्री गोकुलदास कानदास पारेखसे प्रकट किया। फल यह हुआ कि १८ जुलाई १९०३ को बम्बईके गुजराती हिन्दुओंकी एक सभा हुई, जिसमें यह तै हुआ कि प्रयोगके लिए एक वर्ष तक एक संस्था चलाकर देखा जाय। सितम्बर सन् १९०३ में गुजराती स्त्रियोंकी एक सार्वजनिक सभा हुई और गुजराती हिन्दू स्त्री-मंडलकी स्थापना हुई। सौभाग्यसे स्वर्गीया जमनाबाई नगीनदास सकई मंडलकी प्रधान चुनी गई। जमनाबाई एक विलक्षण कार्यकुशल महिला थीं। मंडलकी सफलताका बहुत-कुछ श्रेय उन्हींके अथक परिश्रमको वे जीवन-भर—सन् १९१६ तक—मंडलकी प्रधान रहीं।

मंडलका उद्देश यह रखा गया :—

- (१) गुजराती हिन्दू स्त्रियोंमें किसी प्रकारका धार्मिक संघर्ष होनेसे रोकना।
- (२) उनमें प्रेम-साहचर्य बढ़ाना।
- (३) स्त्रियोंको शारीरिक और मानसिक शिक्षा देना।
- (४) सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक और नैतिक मामलोंमें स्त्रियोंकी प्रतिष्ठा बढ़ानेके साधनोंकी योजना करना।
- (५) स्त्रियोंकी स्वाधीनताके लिए चेष्टा करना।
- (६) भारतीय आदर्शोंके अनुसार महिलाओंका जीवन ढालनेका प्रयत्न करना।
- (७) देश-सेवा और समाज-सेवाके लिए उच्चकोटिकी कार्यकर्त्री पैदा करना।



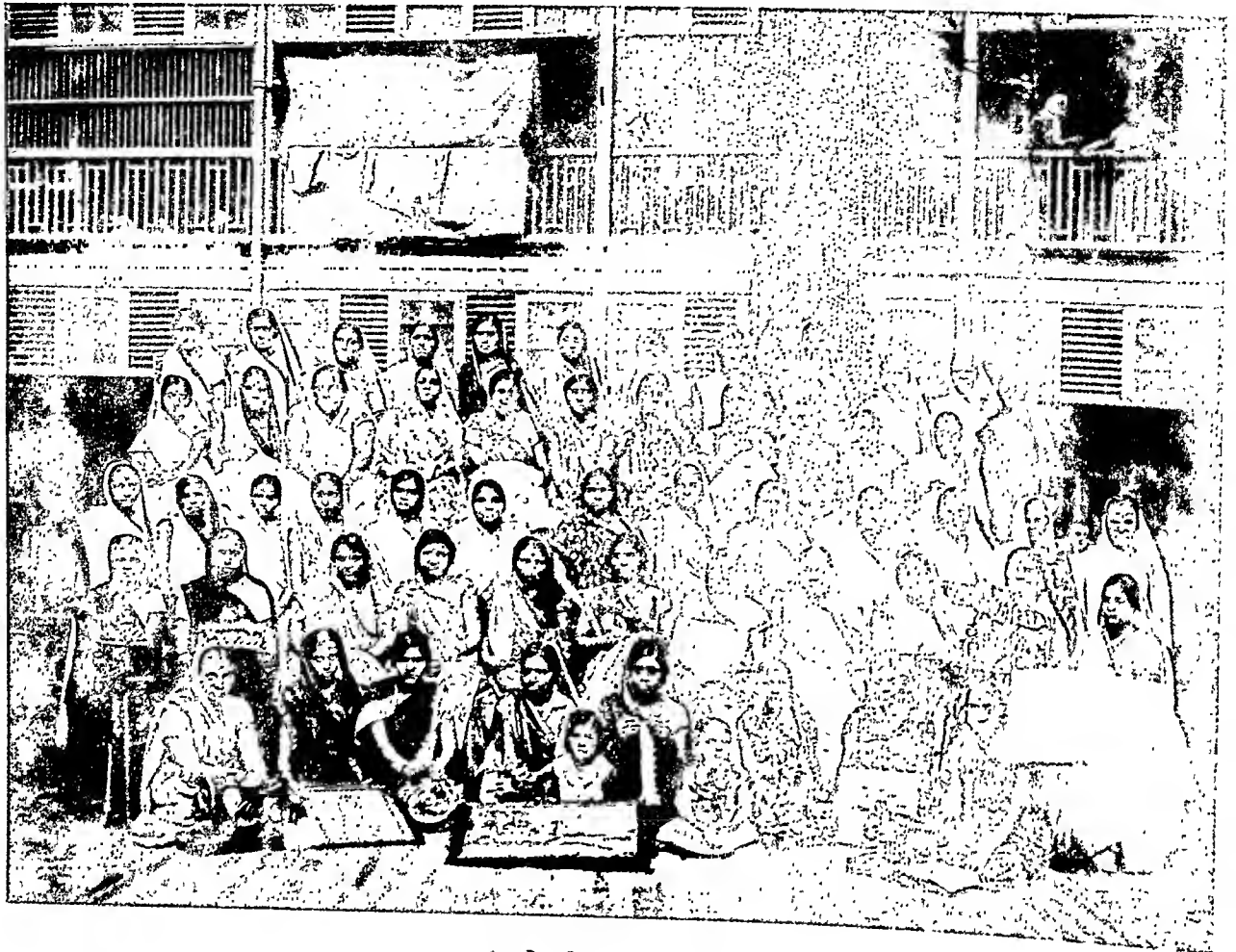
मंडलके स्त्री-विद्यालयकी छात्राएँ

गुजराती बोलनेवाली १५ वर्षसे अधिक आयुकी सभी हिन्दू स्त्रियाँ मंडलकी सदस्या हो सकती हैं। सदस्याएँ तीन प्रकारकी होती हैं, जिनका वार्षिक चन्दा क्रमसे ३, ६ और ९ है। १५) वार्षिक देनेवाले सहायक, १५.०) एक मुक्त देनेवाले जीवन सदस्य, ३०.०) देनेवाले दाता और ५०.०) देनेवाले संरक्षक कहलाते हैं।

जित समय संस्था स्थापित हुई थी, उस समय कुल १०३ सदस्याएँ थीं। आज सदस्याओंकी संख्या ३४२० है। उसमें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, हिन्दू जैन आदि सभी जातियोंकी स्त्रियाँ हैं। इस समय संरक्षक-संरक्षिकाओंकी संख्या ५६, दाताओंकी संख्या १० और जीवन सदस्याओंकी संख्या १३६ है।

संस्थाका संचालन एक कार्यकारिणी समितिके द्वारा होता है, जिसमें २२ निर्वाचित सदस्याएँ हैं। दो वर्ष तक साधारण सदस्या रह चुकनेवाली ही कार्यकारिणीमें निर्वाचित की जाती हैं। पदाधिकारियोंका चुनाव दो वर्ष बाद होता है। कार्यकारिणीमें पाँच सदस्याएँ दाता और जीवन सदस्याओंमें से चुनी जाती हैं। सभी संरक्षक-संरक्षिकाएँ कार्यकारिणी समितिकी मेम्बर मानी जाती हैं। प्रधानके अतिरिक्त पाँच उपप्रधान, तीन अवैतनिक संयुक्त मंत्रिणी और दो अवैतनिक पुस्तकाध्यक्षाएँ भी निर्वाचित की जाती हैं। संस्थाकी सन् १९३२ में रजिस्ट्री हो चुकी है।

श्री मोतीबाला और श्री केशवलाल मणियार संस्थाके अवैतनिक आजीवन सेवक हैं। सन् १९२८ में संस्थाकी



मंडलके शिल्प-गृहकी वहनें

रजत - जयन्ती मनाई गई थी, उस अवसरपर संस्थाने १,००,०००) एकत्रित किये थे।

जमनाबाई नगीनदास सकईने तेरह वर्ष तक बड़ी योग्यतासे मंडलका संचालन किया। सन् १९१९ में उनके निधनके बाद लेडी लक्ष्मीबाई जगमोहनदास संस्थाकी प्रधान निर्वाचित हुई। आजकल वही मंडलका संचालन कर रही हैं। मंडलकी रजत-जयन्तीके अवसरपर उन्होंने मंडलको ५०,०००) रुपये दान दिये थे। संस्थाके निर्माणमें उसकी अवैतनिक मन्त्रियोंका काफी हाथ है। श्रीमती रसिकमणि देसाई और श्रीमती मंगलाबहन मोतीलाल गत बीस वर्षसे मंडलकी अवैतनिक मंत्रीका कार्य कर रही हैं।

संस्थाके कार्यक्रममें स्त्री-विद्यालय, स्त्रियोंकी शिक्षाके लिए

क्लास, शिल्प-गृह, शिल्प-प्रदर्शन, शिक्षा-उपयोगी सिनेमा-प्रदर्शन, वाचनालय और पुस्तकालय, गश्ती पुस्तकालय, मासिक पत्रिका, व्याख्यान, बालोपयोगी साहित्यका प्रकाशन, गुजरातीकी साहित्यक परीक्षाएँ, कला-प्रदर्शन, संगीत और नाट्योत्सव, अन्य स्त्री-संस्थाओंके साथ सहयोग, दुष्काल और बाढ़ आदिके समय पीड़ितोंकी सहायता तथा सामाजिक कानूनोंके सम्बन्धमें सरकारको परामर्श देना आदि बातें हैं।

संस्थाके शिल्प-गृहका आरम्भ छोटे पैमानेसे किया गया है। इसमें सीना, काटना, कसीदा काढ़ना, फेंसी काम करना, छपाई आदिके क्लास चलाकर स्त्रियोंको ऐसे हुनर सिखाये जाते हैं, जिनसे आवश्यकता होनेपर वे ईमानदारीसे अपनी जीविका उपार्जन कर सकें। सेठ प्राणजी दयालने १०,०००) इस



मंडलकी कार्यकारिणी समिति

कार्यके लिए दिये हैं। जो स्त्रियाँ बहुत अच्छा काम बनाती हैं, उन्हें इस रकमसे पारश्रमिक दिया जाता है। शिल्प-गृहका कोसं डेढ़ वर्षका है। हर छठे महीने परीक्षा होती है। यहाँकी स्त्रियों द्वारा बनाई हुई ज़रीके कामकी और छपाईके कामकी साड़ियाँ, तकिये, टेबिल-क्लाथ, गिलाफ आदि प्रत्येक एकादशीको माधववागमें प्रदर्शित किये जाते और बेचे जाते हैं। वहाँ ग्राहक चीज़ें पसन्द करके अक्सर और बनानेका आर्डर दे जाते हैं। स्त्रियाँ मंडलमें आकर आर्डर ले जाती हैं और अपने घर बैठकर आर्डरके मुताबिक चीज़ें तैयार करके मंडलको दे जाती हैं और अपने पारश्रमिकके पैसे ले जाती हैं। इस प्रकार कुछ बहनोंको थोड़ा-बहुत आर्थिक सहारा मिल जाता है। शिल्प-गृहकी बनी हुई चीज़ोंपर अनेक बार

प्रदर्शिनियोंमें सोने-चाँदीके पदक और प्रशंसापत्र मिल चुके हैं। और चीज़ोंके क्लासोंमें पढ़नेवाली बहनोंके अतिरिक्त चालीस-पचास बहनें हमेशा दर्जीका काम सीखती रहती हैं।

अभी तक शिल्प-गृहका कार्य बहुत छोटे पैमानेपर ही चल रहा है। उसकी बनी हुई चीज़ोंकी बिक्री लगभग चार-पाँच सौ रुपये वार्षिककी होती है। मंडलकी इच्छा है कि वह इस शिल्प-गृहको बढ़ाकर ऐसा रूप दे, जिससे ईमानदारीसे मेहनत करके जीविका उपार्जन करनेकी इच्छा रखनेवाली स्त्रियोंकी काफ़ी बड़ी संख्याको काम प्राप्त हो सके; किन्तु धनाभावके कारण अभी तक मंडल ऐसा नहीं कर सका। दो लाख रुपये होनेसे शिल्प-गृहका कार्य बड़े पैमानेपर सुचारु रूपसे चल सकता है।



संगीत-क्रासकी छात्राएँ

मंडलके स्त्री-विद्यालयकी स्थापना सन् १९३० में श्रीयुत भूलाभाई देसाईके द्वारा हुई थी। इस विद्यालयका उद्देश्य उन वहनोंको शिक्षा देना है, जो गुजरातीकी चार-पाँच कित्तों पढ़कर ही पढ़ना छोड़ बैठी हैं। विद्यालयका कोर्स तीन वर्षका है। शिक्षा दिनमें ही दी जाती है, जिससे स्त्रियोंके घरेलू कार्योंमें अड़चन न पड़े। शिक्षाका माध्यम गुजराती है। पाँचवीं कित्त तक पढ़ी हुई स्त्रियाँ इसमें भर्ती हो सकती हैं। उनसे फीस कुछ नहीं ली जाती, केवल छै महीनेमें १७ खर्चके लिए लिया जाता है। शिक्षा स्त्री-उपयोगी विषयोंकी तथा ऐसी बातोंकी जिनसे उनका साधारण ज्ञान बढ़े, दी जाती है। कोर्स पूरा हो जानेपर उन्हें प्रमाणपत्र और पारितोषिक मिलते हैं। प्रायः ५०-५५ स्त्रियाँ प्रत्येक क्लासमें पढ़ती हैं।

इस विद्यालयके अतिरिक्त स्त्रियोंके लिए कई फुटकर विषयोंके क्लास भी लगते हैं—अंगरेजी क्लास, संस्कृत क्लास, संगीत क्लास, रोगी-परिचर्या क्लास, प्राथमिक उपचार क्लास, साहित्यवाचन क्लास और हिन्दी क्लास। जिस वहनको जिस विषयकी शिक्षा लेनी होती है, वह उस विषयके क्लासमें भर्ती हो जाती है।

मंडल स्त्रियोंके लिए प्रतिवर्ष एक निबन्ध-प्रतियोगिता भी करता है, जिसमें सर्वोत्कृष्ट निबन्धोंपर २५, १५ और १० के तीन इनाम दिये जाते हैं। अच्छे निबन्ध मंडलकी ओरसे छापे जाते हैं। व्याख्यान-प्रतियोगिताके लिए भी १५ और १० के दो इनाम हैं। मंडलके पुस्तकालयमें तीन हजार पुस्तकें हैं, जो प्रतिवर्ष बढ़ रही हैं। अनेक पाठिकाएँ इन पुस्तकोंसे लाभ



मंडलका स्टाफ

उठाती हैं। गत वर्षसे मंडलने गस्ती पुस्तकालयका प्रबन्ध किया है। ५०-५० पुस्तकोंके १८ वक्स बनवाये गये हैं। जिन्हें लेकर मंडलके कर्मचारी नगरमें घूमते हैं और मंडलकी सदस्याओंको घर बैठे पढ़नेके लिए पुस्तकें पहुँचाते हैं। इन वक्सोंमें से १४ वक्स बम्बई नगरके लिए हैं और ४ उपकूलोंके लिए।

बालक-बालिकाओंके लिए मंडलने एक बाल-पुस्तकालयका संगठन किया है, जिसमें आजकल ५०० पुस्तकें हैं, और बालकोंके लिए अनेक पत्र-पत्रिकाएँ आती हैं। ५ वर्षसे १५ वर्ष तककी आयुवाले लड़के और लड़कियाँ इसकी सदस्या हो सकती हैं। इसका वार्षिक चन्दा सिर्फ चार आना रखा गया है, ताकि साधारणसे साधारण स्थितिके माता-पिताकी सन्तान भी इससे लाभ उठा सकें।

सदस्याओंका ज्ञान बढ़ानेके लिए मंडलकी ओरसे प्रतिमास दो व्याख्यान होते हैं। ये व्याख्यान विभिन्न विषयोंपर होते हैं, और अपने-अपने विषयोंके ज्ञाता और विशेषज्ञ व्याख्यान देनेके लिए बुलाये जाते हैं। इसके सिवा बम्बई आनेवाले प्रसिद्ध पुरुष और स्त्रियाँ व्याख्यान देनेके लिए निमन्त्रित की जाती हैं।

शिक्षाके लिए मंडल मुफ्तमें सिनेमा दिखलाता है; लेकिन मंडलकी इमारतमें इतनी जगह नहीं कि साढ़े तीन हजार सदस्याएँ एक साथ बैठ सकें, इसलिए प्रत्येक फिल्म तीन बार दिखलाया जाता है।

प्रतिवर्ष मंडल 'दो शब्द' नामक एक छोटी पुस्तिका लिखाकर सदस्याओंमें बाँटता है। यह पुस्तिका देशके बड़े-बड़े



मंडलकी स्वयंसेविकाएँ

विचारशील पुरुषों और स्त्रियोंसे लिखाई जाती है। अभी तक इस प्रकारकी जो पुस्तिकाएँ निकल चुकी हैं, उनके लेखकोंमें महात्मा गांधी, आचार्य ध्रुव, अम्बालाल साकरलाल देसाई, शारदा बहन मेहता, कविवर ननालाल और तारा बहन सोडक जैसे सुप्रसिद्ध व्यक्ति हैं।

मंडलको ६,०००) इस कामके लिए मिले हैं कि वह अंगरेज़ीके अच्छे ग्रन्थोंका उल्था कराकर गुजरातीमें प्रकाशित करे। सन् १९१२ से मंडलने 'स्त्री-हितोपदेश' नामक एक मासिक पत्र निकालना आरम्भ किया था। पहले यह पत्र सदस्याओंको बिना मूल्य दिया जाता था; लेकिन जब इससे बहुत घाटा हुआ, तो उसका मूल्य २) वार्षिक कर दिया गया। फिर भी पत्रमें बहुत घाटा रहनेसे वह गुजरातीके

स्त्री-मासिक पत्र 'गुण-सुन्दरी'के साथ संलग्न कर दिया गया। कुछ दिन बाद अनुभवसे मालूम हुआ कि मंडलका काम बिना उसके मुखपत्रके सुचारु रूपसे नहीं चल सकता। इसलिए सन् १९३३ से उसने फिर एक द्विमासिक पत्र निकाला, जो आजकल मासिक हो गया है।

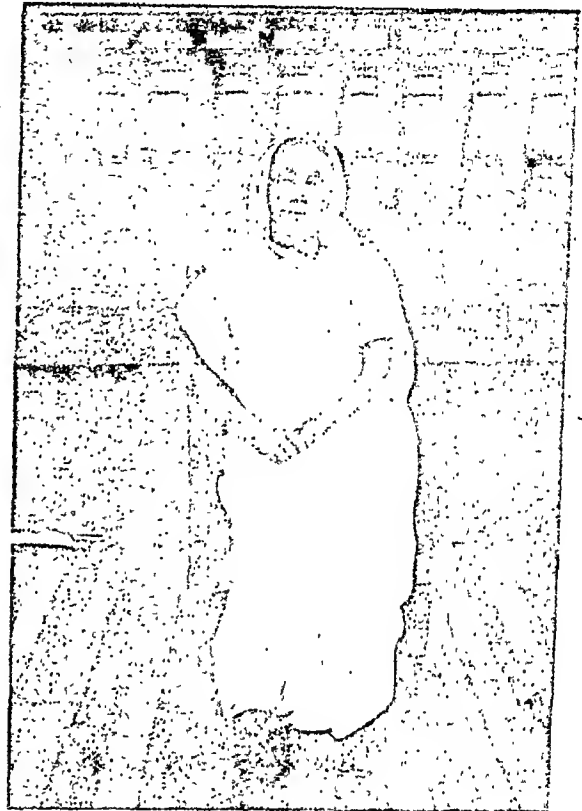
प्रतिवर्ष मंडलका एक प्रीति-सम्मेलन होता है, जिसमें सब सदस्याएँ एक-दूसरेसे मिल-जुल सकें। स्थानकी कमीके कारण यह सम्मेलन भी दो दिन किया जाता है। इसका व्यय सदस्याएँ आपसमें चन्दा करके एकत्रित कर लेती हैं। संस्थापर इसका भार नहीं डाला जाता। गुजराती कलाओंको प्रोत्साहन देनेके उद्देशसे प्रतिवर्ष नवरात्रिमें गुजरातके सुप्रसिद्ध नृत्य 'गरबा' के प्रदर्शनके लिए एक गरबा-सम्मेलन भी होता है।

इसके सिवा समय-समयपर संगीत—गान-वाद्य आदिके सम्मेलन भी होते रहते हैं।

सन् १९२७ से मंडलने एक स्वयंसेविका-दल भी संगठित किया है। इस दलका काम सार्वजनिक सभाओंमें व्यवस्था

कन्या-मंडलकी सदस्याएँ स्त्री-मंडलके सभी कामोंमें भाग ले सकती हैं। कन्या-मंडलकी सदस्याओंकी संख्या ४३० हैं।

समय-समयपर मंडल देशके प्रसिद्ध पुरुषोंकी जयन्ती



स्व० जमनाबाई नगीनदास सकई मंडलकी प्रधान १९०३-१९१६

रखना, मंडलके कामोंमें सहायता देना, दुष्कालके समय—जैसे बाढ़, दुर्भिक्ष, भूकम्प, महामारी आदि—पीड़ितोंकी सहायताके लिए चन्दा एकत्रित करना आदि है।

दरिद्र रोगियोंकी सहायताके लिए मंडलने बहुत-सा सामान एकत्रित कर रखा है—जैसे गर्म पानीके बेंग, वेडपैन्, वर्फकी टोपियाँ आदि। गरीब रोगी ज़हरत पड़नेपर मंडलसे ये चीज़ें उधार ले जाते हैं।

सन् १९२७ से मंडलने एक कन्या-मंडल भी खोल रखा है, जिसमें १२ वर्षसे १५ वर्ष तककी लड़कियाँ शामिल हो सकती हैं। इसकी सदस्याओंका वार्षिक चन्दा ११ है।

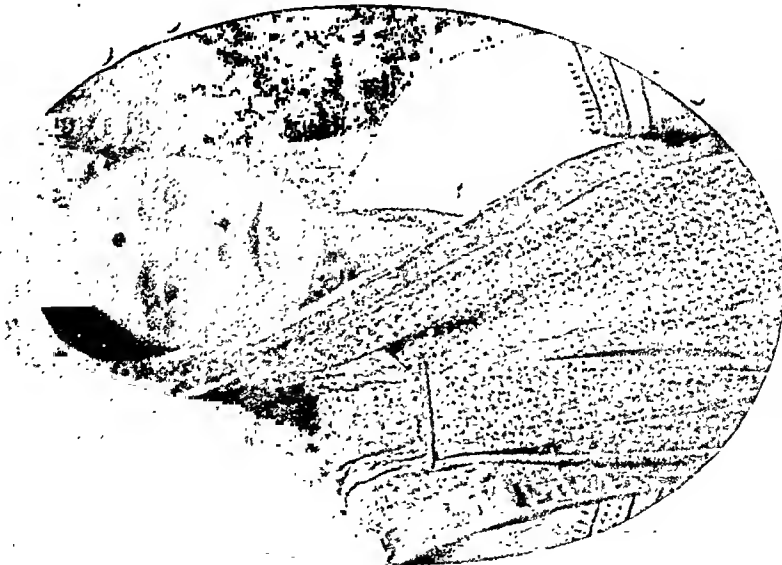
मंडलकी वर्तमान प्रधान लेडी लक्ष्मीबाई जगमोहनदास

उत्तव भी मानता है। जब कभी प्रांतीय व्यवस्थापिका सभामें या भारतीय व्यवस्थापिका सभामें किसी ऐसे सामाजिक कानूनका मतविदा पेश होता है, जिसका सम्बन्ध विशेषकर स्त्रियोंसे हो, तब मंडलकी सदस्याएँ उसका अध्ययन करके और उसपर वाद-विवाद करके सरकारको अपना अभिमत प्रकट करती हैं। बाल-विवाह निरोध कानून (शारदा ऐक्ट) को काममें लाने और लागू करनेके लिए मंडलने विशेष प्रयत्न किया है।

गुजराती हिन्दू स्त्री-मंडलका कार्य देखकर श्रीमती सरलादेवी चौधुरीने लिखा था—“पश्चिमी भारतके इस



मंडलको तीन अवैतनिक संयुक्त मंत्री



मंडलके शिव-गृहकी सुपरिन्टेन्डेंट



मंडलके संस्थापक श्री भवानीदास नारायणदास मोतीवाला

प्रदेशमें अन्धकारमें रहनेवाली वहनोंके लिए गुजराती हिन्दू स्त्री-मंडल पथ-प्रदर्शक नक्षत्र-मंडलका काम कर रहा है ।

श्रीमती सरोजिनी नायडू तो अक्सर बम्बई ही में रहती हैं, इसलिए उन्हें मंडलका कार्य देखनेके अवसर बराबर मिलते रहते हैं । उन्होंने मंडलकी सेवाएँ देखकर बम्बईवालोंसे अपील की थी—“गुजराती हिन्दू स्त्री-मंडल बम्बईके

नागरिकोंसे प्रत्येक प्रकारका प्रोत्साहन पानेका अधिकारी है ।”

अभी तक मंडलके पास अपना निजी भवन नहीं है । मकानका भाड़ा तथा अन्य बातोंमें वह १५०० प्रतिमास खर्च करता है, इसलिए अभी तक प्रतिवर्ष उसे घाटा होता है । मंडलका निजी भवन हो जानेसे उसके विकासमें बहुत-कुछ सहायता मिलेगी ।

अधूरी कहानी

कुमारी राजरानी

मैं भला क्यों उसे इतना प्यार करती थी ? उसके नाममात्रसे सारे शरीरमें विचित्र कैपकैपी फैल जाती थी । उसकी प्रशंसा सुनते ही मेरी आँखें चमक जाती थीं । उसकी निन्दा सुनकर मेरा मन भारी हो उठता था । पर मैं उसके निन्दकोंका खगडन नहीं कर सकती थी, क्योंकि उसके पक्ष-समर्थनके लिए मेरे पास पर्याप्त शब्द नहीं थे । बस, अपनी विवशतापर गुस्सा आता था । और यदि मेरे पास पर्याप्त शब्द होते भी, तो मैं किस नाते उसके निन्दकोंका मुँह बन्द करती ? वह मेरा कौन था और मैं उसकी क्या लगती थी ?

मैं उसकी पूजा करती थी । उसमें पवित्रताके अतिरिक्त कुछ नहीं था । मेरा प्यार बादामके पेड़के फूलोंके समान था, जो पत्तोंके उगनेसे पहले ही खिलते हैं । मैं सिर्फ़ तेरह सालकी थी । मेरे प्यारमें यौवनकी मादकता अभी टपक नहीं पाई थी । मेरा प्यार उस अवोध बाल-विधवाके प्यारकी तरह था, जिसे अपने पतिके ध्यानमें अपना वाक्की जीवन विताना हो । पर उस बाल-विधवाके प्यारमें विवशता है और अपने समाजके लिए कटुता और द्वेष । और लोगोंकी क्या मजाल है कि उसके आगे उसके पतिकी कोई निन्दा करे । चाहे उसको अपने पतिके दर्शन भी अच्छी तरह न हुए हों ; पर उसपर उसका समग्र अधिकार है । सारी दुनिया जानती है कि वह मृत व्यक्ति उस बाल-विधवाका पति था । पर मैं किस अधिकारसे उसके साथ अपनी तुलना करती हूँ ? वैसे तो दुनियाके आगे वह मेरा कुछ भी नहीं लगता था—वह तो मुझे जानता भी न था ; पर मैं उसको जानती थी । मैं उसका नाम प्यारके मोरे जरा जोरसे भी नहीं ले सकती थी । उस प्यारको हृदय-मन्दिरमें छिपाकर पोषण करनेके अतिरिक्त और कोई मार्ग ही न था ।

एक बारकी घटना में कभी नहीं भूल सकती । मैं उन दिनों आठवीं कक्षामें पढ़ती थी । स्कूल और कालेजोंमें उच्च-श्रेणीकी लड़कियाँ निम्न-श्रेणीकी लड़कियोंपर खूब राब जमानी हैं । उनकी हर बातमें हाँ मिलाना पड़ता है । उच्च-श्रेणीकी लड़कियोंसे दोस्ती करना गौरव समझा जाता है । मैं स्वभावसे बड़ी लजीली थी । मैं कभी बड़ी लड़कियोंके आगे जाती, तो मेरे मुँहसे आवाज़ ही न निकलती थी । हाँ, अपने बराबरकी लड़कियोंसे मेरी अच्छी तरह बनती थी ।

एक दिन दसवीं और नौवीं श्रेणीकी लड़कियाँ मिलकर उसकी चर्चा कर रही थीं । मैं भी वहींपर थी । मैं भी उन लोगोंकी बातमें दिलचस्पी लेने लगी । मेरे कान गरमागरम हो उठे, हृदय तुरी तरह धड़क रहा था । मेरे मुँहका रंग गिरगिटकी तरह चढ़ता और उतरता था । परमात्माको धन्यवाद है कि उस वक्त किसीने मेरी ओर ध्यान नहीं दिया । सभी बातें करनेमें लगी थीं । बातोंके प्रसंगमें एक लड़की बोल उठी—“मैं मानती हूँ कि वे सुयोग्य कवि हैं ; पर वे एकदम अकर्मण्य हैं । लिखते तो हैं हज़रत देशभक्तिपर और गरीब किसानोंकी दुर्गतिपर ; पर आप रहते कहाँ हैं, ज़रा जाकर देखिये । वे एक महाराजकुमारकी तरह रहते हैं । कुछ काम तो करना नहीं है । बस, ज़ब मर्ज़ी आती है, कलम लेकर घसीट मारते हैं । और उनकी लेखनी सबसे पहले दौड़ती है किसानोंकी दुर्गतिपर ! यदि मैं कल उनको हल जोतनेके लिए कहूँ, तो उनकी कविता भाग जाय । हमें ऐसे कवियोंकी ज़रूरत नहीं । आजकल देशको कर्मण्य लोगोंकी ज़रूरत है ।”

मुझसे नहीं रहा गया, मैं गरज उठी—“बस, रहने भी दो ।” सबकी सब मेरी ओर देखने लगीं । मेरा मुँह गुस्सेके मोरे तमतमा रहा था । मैं बोलती गई—“यहाँपर बैठे-बैठे किसीकी टीका-टिप्पणी

करना बहुत आसान बात है। आप लोग अकर्मण्यतापर व्याख्यान दे रही हैं; पर आप लोगोंमें कितनी कर्मण्यता भरी पड़ी है? क्या आप लोग समझती हैं कि हल जोतनेसे आदमी कर्मण्य बन जाता है? दुनियामें जितने प्रसिद्ध कवि हुए हैं और जिन्होंने 'मास्टरपीस' कविताएँ लिखी हैं, वह सब क्या कर्मण्य थे? कवि लोग जनताके प्रतिनिधि हैं। जनताकी मूकवाणीमें विचार भरकर गाते हैं। आप चाहती हैं कि सबके सब ढोल पीटें और कोई गाये नहीं।"

न-जाने मैं इतनी बातें किस तरह बक गई। मेरी आँखोंमें आँसू आ गये। मैंने कहा—“आप लोगोंको उनके बारेमें कुछ भी कहनेका अधिकार नहीं है। वे एक भ्रान्त कवि हैं।"

फिर मैं फूट-फूटकर रोने लगी। वहाँ कुछ देरके लिए सन्नाटा छा गया। सबको मेरी इस स्वतन्त्रतापर आश्चर्य हो रहा था। कहाँ तो मैं बुद्धू समझी जाती थी और कहाँ अपनेसे उच्च-श्रेणीकी लड़कियोंके साथ इस तरह प्रगल्भताके साथ बोलना! आश्चर्यके मारे सब मुँह बाये मेरी ओर देखने लगीं।

कुछ देरके बाद वही लड़की, जो इस अप्रिय प्रसंगका कारण थी, बोल उठी—“बस-बस, बहुत ज्यादा बोलनेकी जरूरत नहीं। हम तुमसे ज्यादा जानती हैं। आखिर उसके नामपर रोनेकी क्या जरूरत है? वह तुम्हारा क्या लगता है?"

मैं शर्मके मारे ज़मीनमें गड़ गई। बाक़ी लड़कियाँ ठहाका मारकर हँसने लगीं। एक लड़की, जिसकी आँखोंसे शरारत टपक रही थी, मेरे पास आकर बोली—“तुम्हारी-जैसी भक्तिनको पानेवाले वह कवि महाशय सचमुच धन्य हैं। उनकी तरफ़दारी लेकर वकालत करनेमें तुम बहुत कुशल हो।"

मेरा मन अपमान और रोषके मारे जल उठा। दिलमें आया कि मैं सबको मार डालूँ। ये सब मेरी मीठी स्मृतिको कलुषित करनेपर तुली हैं; पर मैं

अपमानके खूनकी घूँट चुपचाप पी गई। मैं वहाँसे उठकर घर चली आई। मुझे काफ़ी देर तक उनकी हँसी सुनाई देती रही। वही शरारतकी पुतली न-जाने क्या-क्या कहकर पुकार रही थी।

घर आते ही अम्माने पूछा—“आज इतनी जल्दी क्यों लौट आई?"

पहले तो मैंने कोई जवाब न देकर इस बातको ढालना चाहा; पर वे न मानीं। मेरे हृदयका बाँध टूट गया, और मैंने बिलख-बिलखकर रोते हुए उनसे सारा किस्सा कह सुनाया। अम्माने सुसकाराते हुए कहा—“अरे पगली, इसमें रोनेकी क्या बात है? हर एक कविमें कुछ-न-कुछ दोष होता ही है। आखिर वे भी हमारे-जैसे आदमी हैं। कवि और लेखक सर्वसाधारणकी सम्पत्ति हैं। हर कोई उनकी बातें कर सकता है।"

मैंने कहा—“अम्मा, पर मेरे कविके बारेमें कोई कुछ नहीं कह सकता।"

अम्मा गम्भीर हो गई और बोली—“मन्ना, तुम्हें इस तरह नहीं बोलना चाहिए। अब तुम सयानी होती जा रही हो।"

मुझे ऐसा लगा कि मानो मेरे ऊपर घड़ों पानी पड़ गया हो। आखिर अम्मा भी मेरे बारेमें ऐसा सोच रही हैं! मेरा वह प्यार कैसा था? शीतल चाँदनीकी तरह पवित्र। उस प्यारमें सांसारिकताकी ज़रा भी गन्ध न थी। थी तो सिर्फ़ संलग्नता थी, भक्ति थी। जैसे भगवानकी प्रशंसा सुनकर भक्त उसकी कल्पनामें तल्लीन हो जाता है, कुछ वैसी ही दशा मेरी थी। मेरे मनमें एक अजीब जाप्रति पैदा हो गई। आखिर मेरा भगवान आदमी है। एक निराकार अव्यक्त मूर्तिकी कल्पनाको प्यार करना आसान है; पर भौतिक वस्तुको प्यार करनेमें बहुत सावधान होना चाहिए। दुनिया तो एक जवान आदमी और एक जवान लड़कीके प्यारका इसी तरह अन्दाज़ लगायेगी ही।

परमात्माको धन्यवाद है कि पिताजीकी बदली हो

गई, क्योंकि उस दिनसे मेरा उस स्कूलमें निवाह मुश्किल हो गया था।

जब मैं दसवें क्लासमें पढ़ती थी, तो कविके प्रथम दर्शन हुए। हमारे स्कूलकी ओरसे उनके आगमनके उपलक्षमें एक सभा की गई थी। मैं स्कूलके साहित्य-संघकी सेक्रेटरी थी। मैंने आयोजनामें कोई कमी नहीं रखी थी। हॉल लोगोंसे खचाखच भरा था। कवि मुझसे काफी दूरपर बैठे कविताएँ पढ़ रहे थे। मैं मन्त्रमुग्धकी तरह उनकी ओजस्वितापूर्ण वाणी सुनती रही थी। उसके बाद सभापति महोदयने उनकी रचनाओंकी भूरि-भूरि प्रशंसा की। मेरा रोम-रोम आनन्दके मारे फड़क रहा था। सभापति महोदयने भाषण समाप्त करनेके पहले फूलोंकी मालाएँ लेकर कहा—“मैं अब आप लोगोंके इच्छानुसार कवि महोदय तथा उनकी पत्नीका सत्कार करता हूँ। आप दोनोंने यहाँ पधारकर बड़ी कृपा की है।”

मेरे ऊपर मानो विजली गिर पड़ी। मेरे सारे शरीरका रक्त सूख गया। आँखोंके आगे अंधेरा छा गया। सभापति महोदय न-जाने क्या-क्या बड़बड़ा गये और न-जाने कितनी देर तक मैं मूक बैठी रही। लोगोंने तालियाँ बजाना शुरू किया, तब मैं एकाएक होशमें आई। मैंने देखा कि औरतोंके बीचसे उठकर एक युवती प्लैटफार्मकी तरफ आ रही है। तालियाँ और भी जोरसे बज उठीं। मैं अभी उसे अच्छी तरह देख भी न सकी थी कि एक आदमीने मेरे पास आकर कहा—“सभापतिजी चाहते हैं कि आप कवि-वधूके गलेमें हार पहनावें।”

मैं तुरन्त उठ खड़ी हुई। शरीरमें ताकत न थी। गला सूख रहा था। किसी तरह मैं प्लैटफार्मपर चढ़ गई और कवि-पत्नीके गलेमें माला पहनाई। फिर अपनी जगहपर आकर बैठ गई। तालियाँ बज रही थीं। अब मैं कुछ स्वस्थ हो गई

थी। मैं कवि-पत्नीकी ओर ज़रा ध्यानसे देखने लगी—“अरे, यह क्या! यह तो वही है!”

मैं घरपर लेटी हुई थी। अम्मा पाल बैठी पंखा कर रही थीं। मेरे आँखें खोलनेपर अम्मा मेरे हाथ फेरती हुई कहने लगी—“सन्ना, अब तुम्हारा जी कैसा है?”

मैंने कहा—“पानी।”

पानी पीनेके बाद मन ज़रा स्वस्थ हो गया। अम्मा प्यारसे पूछने लगी—“सन्ना, अचानक तुम्हें यह क्या हो गया था?”

मैंने कहा—“मालूम नहीं, बड़ी गरमी थी, बड़ी भीड़ थी।”

अम्माने कहा—“ठीक है।”

अम्मासे पता चला कि मेरी बेहोशीसे लोगोंमें कोई खलबली नहीं मची। मेरे बेहोश होते ही कुछ लोगोंने मुझे घर पहुँचा दिया। मैंने मन-ही-मन परमात्माको धन्यवाद दिया। अम्मा मुझे कुछ स्वस्थ जानकर रसोईघरमें चली गई। मुझे बड़ी कमजोरी मालूम पड़ती थी, दिमाग बहुत जोर-शोरसे काम कर रहा था और दिल बुरी तरह धड़क रहा था। “आखिर वही लड़की……आँखोंमें शरारत टपक रही थी……पर अब विजय……गर्व……”

थोड़ी देर बाद आँखें खुलीं, तो देखा कि डाक्टर साहब पास बैठे हैं और अम्मा बड़ी उदास हैं। डाक्टर न-जाने अम्मासे क्या कह रहा था। मैं सोचनेकी कोशिश कर रही थी; पर सोचते ही सिरमें दर्द होता था। डाक्टरने यह कहकर छुट्टी ली कि मैं कुछ ‘नर्वस’ हूँ, हफ्ते-भर तक बिस्तरपर पड़ी-पड़ी आराम करूँ।

आजकल मैं बी० ए०के दूसरे सालमें पढ़ रही हूँ। कभी अपनी किशोरावस्थाकी घटनापर सोचने लगती हूँ—आखिर मैं बेहोश क्यों हुई थी? तो मैंने

शुरूसे ही अपने-आपको धोखा दिया था ? मेरा प्यार दैविक नहीं था ? उसमें सांसारिकताकी गन्ध आ गई थी ? यदि मैं निर्लिप्त भावसे उसकी पूजा करती थी, तो उसके किसी भी लड़कीके साथ शादी करनेसे मेरा क्या बिगड़ता ? क्या मेरे प्यारमें उसे पानेकी इच्छा गुप्त रीतिसे छिपी थी ?

मनोविज्ञानके आचार्य फ्रायडके कथनानुसार मेरा प्यार भी स्वार्थमय निकला !

मैं आजकल कभी-कभी सोचती हूँ कि क्या मैं अब भी उसे प्यार करती हूँ ? मन कहता है—“नहीं ।” प्रेमके उस पौधेमें—जिसे मैंने हृदयके ‘ग्लास-हाउस’ (Glass house) में संसारकी धूप-सरदीसे बचाकर बहुत ही लाड़-प्यारसे पाला था—जब अंकुर निकले, तो एक गिलहरीने आकर उसे जड़से कुतर डाला । वस, यहीं उसकी अधूरी समाप्ति हो गई ।

हिन्दी-साहित्य और स्त्रियाँ

श्रीमती कमला मिश्रा

कुछ लोग स्त्रियोंपर यह इलजाम लगाया करते हैं कि उन्हें साहित्यसे ज़रा भी प्रेम नहीं होता, न उसमें उन्हें तनिक भी दिलचस्पी रहती है और न कुछ भी शौक । पर यह अपराध लगानेवाले यह सोचनेका कष्ट नहीं उठाते कि उन बेचारियोंको इतना मौक़ा ही कब मिलता है कि वे साहित्य-क्षेत्रके लिए कार्य कर सकें ? वे भाग्यशालिनी महिलाएँ आजकल उँगलीपर गिनी जा सकती हैं, जो साहित्यके विशाल क्षेत्रमें अबाध गतिसे विचरण कर रही हों । स्त्रियोंकी साहित्यिक रुचि विकसित क्यों नहीं हो पाती ? जो लड़कियाँ शादीके पहले लिखने-पढ़नेमें कुशल होती हैं, अथवा जिन्हें कविता या लेख लिखनेका शौक भी होता है, वे विवाह होते ही अपना नवांकुरित साहित्य-ज्ञान क्यों भूल जाती हैं ? बात यह है कि वे नवीन परिस्थितिमें पढ़कर चकरा जाती हैं । पुस्तकोंके प्रेमके कारण असंस्कृत घरोंमें उन्हें बहुत-कुछ लांछनाएँ सहन करनी होती हैं और बहुतेरे कटु वाक्य सहन करने पड़ते हैं । चुरा-छिपाकर थोड़े दिनों तक अध्ययन चल जाता है ; पर जहाँ किताब छुना अपराध माना जाता हो, वहाँ पठन-पाठन कितना

मुश्किल है, इसका अनुमान किया जा सकता है । भला ऐसी सास-ननद, जिनके लिए काला अक्षर भैंस बराबर हो, यह कब गवारा कर सकती हैं कि नववधू गृहस्थीके कामोंसे समय बचाकर पढ़ने-लिखनेमें लगावे ? इसके लिए वे डाँट बताना शुरू करती हैं, अतः साहित्य-ज्ञान ताकपर उठाकर रख देना पड़ता है । दो-चार बरस बाद जब थोड़ी-सी स्वतन्त्रता मिलती है, तब स्वयं ही गृहस्थी और बच्चोंके कार्योंसे थककर फिर लिखने-पढ़नेकी उतनी उत्कट इच्छा नहीं रह जाती और आदत भी छूट जाती है । इसपर भी यदि वे पढ़ना चाहें, तो उनके पास कोई ग्रन्थ इत्यादि नहीं होते, जिन्हें घंटे-आध-घंटे पढ़कर दिल बहलायें या दुनियाकी कुछ बातें जान सकें ।

ऐसे सहृदय व्यक्ति बहुत कम हैं, जो अपनी स्त्रियोंके मनोरंजनके लिए हिन्दीके ग्रन्थ या मासिक पत्र भेगा देते हैं । स्वयं तो वे ‘लीडर’, ‘पायनियर’, ‘टाइम्स आफ इंडिया’, ‘मार्डन रिव्यू’ वगैरह भेगाते और पढ़ते हैं, अंगरेज़ीकी सुन्दर भावपूर्ण पुस्तकोंका मज़ा लेते हैं ; पर अपनी स्त्रियोंके मानसिक विकासके

लिए वे एक पैसा भी खर्च नहीं करते ! कितने महानुभाव ऐसे हैं, जो उस आनन्दका कुछ भाग अपनी स्त्रियोंको भी देते हैं ? मैं उन भाग्यवान् पुरुषोंकी बात नहीं कहती, जिनकी पत्नियाँ अंगरेजी भाषाका ज्ञान रखती हैं। अधिकांश सुशिक्षित पति तो अपनी स्त्रीसे कह देते हैं—‘क्या बतायें, इस किताबमें बड़ी बढ़िया-बढ़िया बातें हैं; पर अफसोस है कि तुम अंगरेजी समझ नहीं पाओगी, वरना सुना देता !’

यह ठीक है कि अंगरेजी साहित्यका ज्ञान प्राप्त करना स्त्रियोंके लिए अत्यन्त कठिन है ; पर क्या जो विषय वे समझ सकती हैं, उनकी शिक्षाका प्रबन्ध उनके घरवाले कर देते हैं ? खुद तो एक आनेसे लेकर छे आने तकके दैनिक पत्र मँगाकर पढ़ते हैं ; पर यदि कभी स्त्री अनुरोध करती है कि मेरे वास्ते अमुक पत्रिका मँगा दिया करो, तो वे यही कह देंगे—‘क्या करोगी, फ्रिजूल ही ६-७ रुपये सालमें खर्च हो जायेंगे। तुम्हें पढ़नेकी छुट्टी कहाँ है ? लड़के चीर-फाड़ डालेंगे।’ स्त्री बेचारी चुप हो जाती है, फलतः उसके साहित्य-प्रेमका बिरवा अंकुरित होते ही मुरझा जाता है।

यह तो हुई मध्यम दर्जेके गृहस्थोंकी बात, अब उन्हें लीजिए, जो ईश्वरकी कृपासे धन-दौलतसे सम्पन्न हैं, जिन्हें न रुपये-पैसेका दुःख है, न समयका अभाव; पर वे कहाँ तक पढ़ती-लिखती हैं, यह देखनेकी बात है। उनके पास प्रायः सभी पत्र-पत्रिकाएँ आती हैं ; पर बहुधा फैशनके लिए, लाइव्री सजानेके वास्ते। उन्हें अपने साज-शृंगार, टेनिस क्लब तथा सिनेमासे फुरसत ही कहाँ मिलती है, जो हिन्दी-साहित्यका अध्ययन करें ? चाहें तो पढ़ी-लिखी अमीर स्त्रियाँ बहुत-कुछ अपने साहित्यको उन्नत बना सकती हैं ; पर यहाँ तो यह दशा है कि लड़कियाँ स्कूलसे कालेज तक पढ़कर भी अंगरेजीका अधूरा ज्ञान लेकर रह जाती हैं। हिन्दीकी तरफ तो उनका ध्यान ही

नहीं जाता। वे समझती हैं, स्कूल-कालेजकी डिग्री पानेसे ही वे शिक्षिता हो गईं ! न उन्हें अंगरेजी साहित्यका ज्ञान हो पाता है, न हिन्दीका ही। आज बँगला-भाषामें कितने सुन्दर-सुन्दर उपन्यास और कहानियाँ निकल रही हैं, जिनमें अनेककी लेखिका स्त्रियाँ ही हैं। हमारी बंगाली बहनें बी० ए०, एम० ए० होनेपर भी अपनी मातृभाषाको नहीं भूलतीं, वरन् और भी उत्साहसे वे अपनी मातृभाषाकी सेवा करती हैं।

हमारी मातृभाषाकी दशा यद्यपि पहलेसे बहुत-कुछ अच्छी है और हिन्दी-भाषा-भाषी स्त्रियोंने ध्यान देना भी शुरू कर दिया है ; फिर भी अभी बहुत-कुछ काम करनेको पड़ा हुआ है। उपन्यास तथा नाटकके क्षेत्रमें स्त्रियोंका प्रायः अभाव ही है। जहाँ कहीं भी देखिये, पुरुष लेखकों, उपन्यासकारों और नाटक-रचयिताओंके नाम दीख पड़ेंगे। प्रेमचन्दजी उपन्यास-सम्राट हैं ; पर वह दिन अभी दूर है, जब कोई महिला इस क्षेत्रमें कुछ कीर्ति प्राप्त कर सकेगी। एक तो स्त्रियोंकी शक्तियाँ वैसे ही परिमित हैं, दूसरे उनके मार्गमें तरह-तरहकी बाधाएँ भी हैं। उन बाधाओंको पार करके साहित्यके विषयपर मनोयोग करना कठिन है। इसके लिए अवकाश तथा शान्तिपूर्ण जीवनकी आवश्यकता है।

यहाँपर एक नाजुक विषयपर भी कुछ कह दूँ। कुछ स्त्रियाँ अपने दुर्निवार हिन्दी-प्रेमके कारण अगर कुछ लिखती भी हैं, तो बहुतसे विवेकहीन पुरुष उनपर तरह-तरहके लांछन लगाकर उस कलाके बीजको पल्वित होनेके पहले ही नष्ट कर देते हैं। अपयशसे भयभीत होकर हिन्दीकी ये अपरिपक्व लेखिकाएँ अपने सत्साहस और सदुद्योगका अन्त ही कर देती हैं। श्रीमती महादेवी वर्माने ‘किस ओर ?’ शीर्षक लेखमें ठीक ही लिखा था—“प्रायः देखा जाता है कि कायर-से-कायर मनुष्य भी इतना कायर नहीं हो सकता कि अपनी मातृ-जातिके सम्मुख भी कायरताके प्रदर्शनमें लज्जाका अनुभव न कर सके, न अशिष्ट-से-अशिष्ट

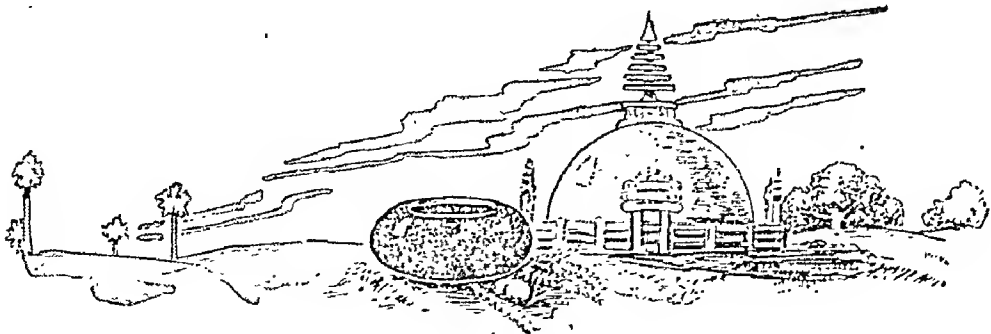
व्यक्तिकी अशिष्टताकी परिधि इतनी विस्तृत हो सकती है कि महिलाएँ भी उससे बाहर न रह सकें ; परन्तु हमारे अनेक भाई इसके भी अपवाद सिद्ध हो चुके हैं ।.....

“साहित्य-क्षेत्रमें पैर रखना होलीके दिन बाहर निकलना हो गया है, जिस दिन निकलनेवालेपर रंग, मिट्टी, धूल और कीचड़ सब-कुछ अकुंठित भावसे फेंका जा सकता है । आज ख्यातिका साधन सस्ती उत्तेजनाके अतिरिक्त और कुछ रह ही नहीं गया है । अतः लेखक, प्रकाशक, पाठक सब उसीकी आराधनामें लगे हैं ।”

इन शब्दोंको पढ़कर हृदय निराशासे भर जाता है । ऐसे सहृदय व्यक्ति कम ही हैं, जो हिन्दीकी नवीन लेखिकाओंकी रचनाओंको ध्यानपूर्वक पढ़ते तथा उसकी समुचित आलोचना करके उन्हें प्रोत्साहन देते हों ।

हमारी भाषामें स्त्रियोपयोगी साहित्य इतना कम है कि हमें लज्जा आनी चाहिए । करोड़ों माताओं तथा बहनोंके लिए हम उचित मानसिक भोजन नहीं दे सकते, यह कितने दुःखकी बात है । बहुधा पत्रिकाओंमें स्त्रियोंसे सम्बन्ध रखनेवाली ऐसी-ऐसी कहानियाँ और लेख छपते हैं कि सचमुच जी ऊब जाता है । और बड़ी झुंझलाहट आती है । सच तो यह है कि जो पुरुष स्त्रियोंके विषयमें लिखते हैं, उन्होंने स्त्रियोंके प्रश्नोंका अध्ययन ही नहीं किया । पुरुषोंकी अपेक्षा स्त्री—यदि वह काफ़ी पढ़ी-लिखी हो और उसमें प्रतिभा भी हो, तो वह स्वभावतः स्त्रियोपयोगी विषयपर बहुत

सुन्दर लिखेगी । हिन्दी-साहित्यकी अपूर्णताका एक यह भी कारण है कि अश्वत्थ तो हिन्दी-भाषा-भाषी प्रान्तोंकी स्त्रियाँ प्रायः अशिक्षित हैं, और जो शिक्षित हैं भी, वे साहित्य-क्षेत्रमें नहीं आती । हमारा साहित्य तभी सम्पन्न होगा, जब स्त्रियोंको उत्साहित किया जायगा, उनको पढ़नेकी आकांक्षा, लिखनेका ज्ञान और अध्ययनका समय सुलभ कर दिये जायेंगे । सुयोग्य सम्पादकों और समालोचकोंका कर्तव्य होना चाहिए कि वे लेखिकाओंके साहित्य-प्रेमको बढ़ावें । साथ ही स्त्रियोंका भी कुछ कर्तव्य है । उन्हें हिम्मत न हारनी चाहिए । मैं ऐसी कई बहनोंको जानती हूँ, जो पहले पत्र-पत्रिकाओंमें लेख और कहानियाँ लिखा करती थीं । अब मैंने उनसे जिक्र किया, तो वे हँस पड़ीं और बोलीं—
“अरे ! वह सब वेवकूफी थी, थोड़े दिन कर बैठी ।”
लिखना-पढ़ना वेवकूफी थी, यह पढ़ी-लिखी स्त्रियोंकी, जो स्वयं लेखिका थीं, धारणा हो गई है ! बात यह है कि उनकी पठन-पाठनकी सारी स्वाधीनता छीन ली जाती है और उनकी इच्छाशक्ति तथा प्रतिभाको कुंठित कर दिया जाता है । मैं स्वयं भी महसूस कर चुकी हूँ कि समय और परिस्थिति मनुष्यका स्वभाव कितना परिवर्तित कर देती है । पर साथ ही यह बात भी है कि जिसके हृदयमें साहित्यका प्रेम ज़बरदस्त होता है, उसकी जड़ जा नहीं सकती, तनिक भी उत्साह पाकर हरी-भरी हो सकती है ।



हिन्दू-समाजमें विधवाओंकी दशा

श्री चन्द्रकला देवी

आज देश क्रान्तिके युगमें से गुजर रहा है। सामाजिक, साहित्यिक और राजनैतिक क्षेत्रोंमें उग्र-से-उग्र विचार प्रकट किये जा रहे हैं। यदि इन विचारोंके अनुसार कुछ अंशोंमें भी काम किया जाता, तो देश उन्नतिके शिखरपर पहुँच गया होता; पर ऐसा नहीं हो रहा। यदि गम्भीरतापूर्वक विचार किया जाय, तो सामाजिक सुधारोंको कार्यरूपमें परिणत करना राजनैतिक लेख-चरवाजीसे कहीं अधिक कठिन है। कितनी ही बार ऐसा देखा जाता है कि राजनैतिक क्षेत्रमें उग्र विचार रखनेवाले लोग भी सामाजिक मामलोंमें घोर प्रतिक्रियावादी हैं। विधवाओंके प्रश्नको ही लीजिए। इतने वर्षोंके आन्दोलनके बाद भी विधवाओंकी दुर्दशा ज्यों-की-त्यों बनी हुई है। विधवाश्रम कायम किये जाते हैं, विधवाओंकी दुर्दशाका प्रदर्शन करके उनके नामपर चन्देकी अपीलें की जाती हैं और श्रद्धालु जनतासे रुपया भी इकट्ठा किया जाता है; पर क्या इससे मुख्य प्रश्न किसी अंशमें भी हल हुआ है? समय-समयपर विधवाश्रमोंके जो भंडाफोड़ समाचारपत्रोंमें पढ़नेको मिले हैं, उनसे हिन्दू-समाजके गौरवमें कोई वृद्धि नहीं होती और न पुरुष-जातिके उत्तरदायित्वके प्रति कुछ सम्मान ही उत्पन्न होता है।

दरअसल बात यह है कि रोगका निदान किये बिना ही लोग इसका उपचार करनेके लिए उतारू हो जाते हैं। पंजाबमें सर. गंगाराम तथा दक्षिणमें सेवा-सदनके उद्योगको छोड़कर देशके अन्य भागोंमें कोई उल्लेख-योग्य कार्य हो रहा हो, तो मुझे उसका पता नहीं है।

इस देशमें स्त्री-समाजकी और विशेषतः विधवाओंकी जो दुर्दशा है, वैसी शायद ही किसी देशमें हो—और बाल-विधवाएँ तो, जिन्हें गृह-जीवनका सुख एक दिनके लिए भी नसीब नहीं हुआ, इतनी अधिक किसी भी

देशमें न पाई जाती होगी। एक तो विधवाएँ वैसे ही अभागी होती हैं और फिर उनका दैनिक जीवन कठोर सामाजिक बन्धनों तथा रूढ़ियोंसे इतना अधिक जकड़ दिया जाता है कि वह मृत्युसे भी अधिक भयंकर बन जाता है। मैं यह नहीं कहती कि सभी घरोंमें विधवाओंका जीवन नरकतुल्य बना दिया जाता है; कितने ही घर ऐसे भी हैं, जहाँ वे देवीकी तरह पूज्य मानी जाती है, पर अधिकांश कुटुम्बोंमें उन्हें अपने दैनिक जीवनमें अत्यन्त कटु अनुभव होते हैं। चाहे पीहरमें रहें, चाहे ससुरालमें, पर उन्हें चैन नहीं। विधवा—रात-दिन काम-धन्धेमें जुटी रहनेवाली, रातों चक्की खींचनेवाली, दिन-भर चूल्हा भोंकनेवाली विधवा—कठिन-से-कठिन काम करनेसे न घबराती, यदि सास, ससुर, ननद, देवरानी, जिठानी आदिका व्यंग्य-वर्षा उस वेचारीके टूटे हुए हृदयपर न होती। हतभाग्य तो वह है ही; पर वह अपनेको और भी हीन समझने लगती है, जब सासजी नाक-भोंसिकोड़कर अपना फतवा देती हैं—“जबसे यह कम्बख्त हमारे घरमें आई है, तबसे हमारा तो नाश ही करती चली आई। डायन मेरे फूल-से बच्चेको निगल गई, इतनेपर भी छातीपर ही धरी रह गई। इसकी मौत न-जाने कहाँ जा छिपी। पीहर भी तो जाकर नहीं मरती। अभी न-जाने क्या-क्या गुल खिलायेगी!” और ससुर साहब भी कटु बात कहनेसे नहीं चूकते।

कितना निन्दनीय व्यवहार है। ससुरालमें ही ऐसा निन्दनीय व्यवहार होता हो, सो बात नहीं—पीहरमें भी कुछ कमी नहीं रहती। यदि वहाँ भौजाईका आतंक हो, तब तो कुछ कहना ही नहीं। अपशब्दोंका प्रयोग तो एक मामूली-सी बात है, वैसे नौबत तो चुटिया खींचने तक आ जाती है और गाली-गलौजका तो

कहना ही क्या है। ससुरालवाले पीहरको दुत्कारते हैं और पीहरवाले ससुरालको। ऐसी दशामें हतभाग्य विधवा जाय तो कहाँ जाय ? उस बेचारीका और ठिकाना ही कहाँ है ? ऐसी ही अमानुषिक परिस्थितियोंके कारण हजारों विधवाओंने वेश्यावृत्ति ग्रहण कर ली है।

घरके अत्याचारोंका अन्त नहीं। विवाहोत्सव है। बड़ी भारी चहल-पहल है। सबके हृदय-कमल खिले हैं ; परन्तु बेचारी विधवाको उत्सवमें भाग लेनेकी आज्ञा नहीं है। उसे अशुभ समझकर विवाहकी प्रत्येक रीतिसे अलग रखा जाता है। तब उसका कोमल हृदय किसी अज्ञात वेदनासे तड़प उठता है। वह रोकर दिलका गुबार निकालना चाहती है ; पर रो नहीं सकती। जिह्वा रहते हुए भी वह गूँगी है। अपनी दुःखकी बातें कहे तो किससे ? उसकी सुननेवाला इस संसारमें और है ही कौन ? बेचारी मन मारकर बैठ रहती है। मनुष्य होकर भी वह पशु है। जिस प्रकार एक पशुको खाने, पहनने और काम करनेमें दूसरोंपर आश्रित रहता पड़ता है, उसी प्रकार विधवा भी समाजके डंडेसे हाँकी जाती है। उसकी प्रत्येक इच्छाको पशु-बलसे दबाया जाता है। सुनते हैं कि गुलामीकी प्रथा कभीकी नष्ट हो चुकी ; पर यदि ध्यानपूर्वक देखा जाय, तो आधुनिक विधवाओंकी पहलेके गुलामोंकी दशासे भी कहीं अधिक बदतर है। गुलामोंको स्वतंत्रतापूर्वक हँसने-खेलने, ओढ़ने-पहननेकी आज्ञा तो थी ; पर बेचारी विधवाको इतनी भी आज्ञा नहीं कि वह किसीसे हँस-बोल सके, मन-चाहा पहन-खा भी सके। उसका जीवन जीवन नहीं है, वह एक जेलखाना है। वह इस संसारकी बन्दिनी है। विधवा अपने एकाकी जीवनको चाहे कितनी ही पवित्रतासे व्यतीत करे ; पर समाज उसके उठने-बैठने, खाने-पीने, पहनने-ओढ़ने, सोने-जागने, हरएक कामको अत्यन्त सतर्कतासे देखता है और उसके उज्ज्वल सतीत्वमें भाँति-भाँतिकी आशंकाएँ करने लगता है। भयंकर

अपराधके किसी अभियुक्तपर भी इतनी कड़ी दृष्टि नहीं रखी जाती, जितनी एक अनाथ विधवापर !

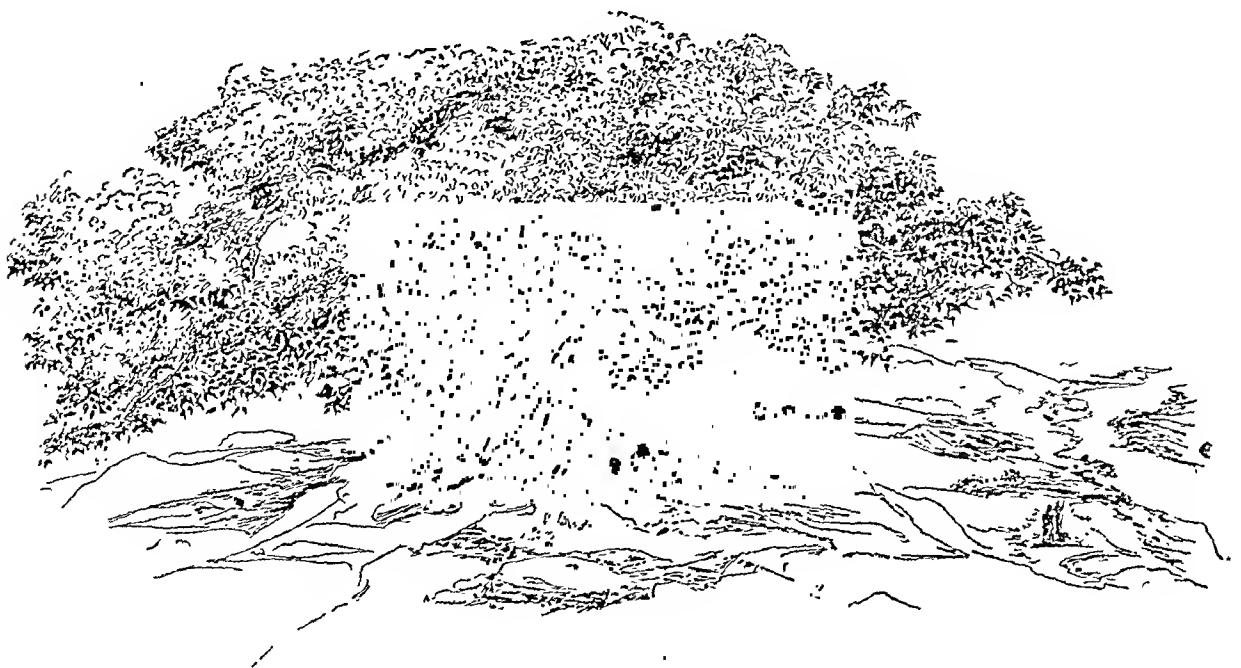
समाजके कर्णधारो ! क्या आपने कभी विधवाओंके आन्तरिक भावोंको समझनेकी चेष्टा की है ? क्या कभी आप उस अनन्त विरह-वेदनाका अनुमान भी कर सकते हैं, जो उस अभागीको दिन-रात सताया करती है ? क्या आपने कभी अशोक-वाटिकामें सीता-विलाप सुना है ? अवश्य सुना होगा और उसे सुनकर हृदय अवश्य ही दुःखित हुआ होगा ; पर विधवा-विलाप उससे कहीं उग्रतर है। उस विलापमें आशाका आलोक कुछ सात्वना प्रदान करता है ; पर इस विलापमें निराशाकी दग्ध लपटें हृदयतलको निरन्तर जलाया करती हैं। दरअसल आप विधवाओंके इस अविरल रुदन सुननेके आदी हो गये हैं। जैसे फैक्टरियोंमें काम करनेवाले क्लार्कोंके काममें मशीनोंकी खट-खटकी आवाज़ कुछ नहीं जान पड़ती, ठीक वैसे ही विधवा-जगतका करुण क्रन्दन भी आपकी सुख-शान्तिको भंग नहीं कर सकता।

समाजको विधवाओंका भार तो ढोना ही है—चाहे वह इस भारको रो-झोंककर ढोये, चाहे हँसी-खुशीसे। यह बात दूसरी है कि जो कार्य प्रसन्नचित्तसे किया जाता है, वह बहुत सरल मालूम होता है, और जो काम नाक-भों सिकोड़कर किया जाता है, उसका पूरा मुश्किलसे ही पड़ता है। ऐसी हालतमें समाजकी बुद्धिमानी इसीमें है कि वह इस प्रश्नपर गम्भीरतापूर्वक विचार करे। विधवाश्रमोंके विषयमें जो समाचार समय-समयपर पत्रोंमें प्रकाशित होते रहते हैं, उनके देखते हुए यह आवश्यक हो गया है कि किसी जिम्मेवार संस्थाकी ओरसे (उदाहरणार्थ, अखिल भारतीय महिला-सभाकी तरफसे) इन विधवाश्रमोंकी विधिवत जाँच कराई जाय। जिन गौर-जिम्मेवार आदमियोंने अपने स्वार्थकी सिद्धिके लिए विधवाश्रम खोल रखे हैं—जहाँ जानवरोंकी तरह विधवाओंका क्रय-विक्रय हुआ करता है—उन्हें समाज तथा सरकारकी ओरसे घोर

दण्ड मिलना चाहिए। मैंने सुना है कि अधिकांश विधवाश्रम पंजाब तथा सिन्धके पुरुषोंके लिए स्त्री वेचनेके अड्डे बने हुए हैं !

चाहे जिसके साथ विवाह कर देनेसे ही तो विधवाओंकी समस्या हल नहीं हो जाती, और लाचार होकर विधवाश्रमोंकी शरण लेनेवाली बहनोंकी संख्या कुल संख्याकी दस हजारवाँ हिस्सा भी न होगी। फिर अभी तक देशमें विधवाओंके लिए जो-कुछ प्रयत्न हुए हैं, वे सब प्रायः बाल-विधवाओं तक ही परिमित हैं। ऐसी विधवाओंके लिए जिनके दो-एक बच्चे हों, अभी तक कोई प्रयत्न नहीं किया गया। उनकी समस्या और भी अधिक जटिल है। उनकी ओर ध्यान दिया जाना अत्यन्त आवश्यक है। आवश्यकता इस बातकी है कि प्रत्येक प्रान्तमें पूनाके सेवा-सदनकी तरहकी एक केन्द्रीय संस्था हो, जिसका मुख्य उद्देश्य विधवाओंकी सेवा करना हो। उन्हें अध्यापन,

डाक्टरी इत्यादिकी उचित शिक्षाकी भी व्यवस्था होनी चाहिए। शिक्षा प्राप्त होनेपर कुछ बहनें ऐसी भी निकलेंगी, जिनमें साहित्यिक रुचि हो। इस रुचिको विकसित करनेके अवसर उन्हें मिलने चाहिए। सद्ग्रन्थोंके अध्ययनसे उनके दुःखोंका बोझ कुछ तो हलका होगा। विधवाओंकी दुर्दशाका वास्तविक चित्र तो कोई सुशिक्षित भुक्तभोगी बहन ही खींच सकेगी, पुरुष लेखक तो उन कठिनाइयोंकी कल्पना भी नहीं कर सकते, जो भारतीय विधवा-समाजको उठानी पड़ती हैं। जब तक हिन्दू-समाज उस महान शक्तिका, जो विधवाओंमें सन्निहित है और जो आज भारी पत्थरके रूपमें समाजकी छातीपर विद्यमान है, जीवनके भिन्न-भिन्न विभागोंमें उपयोग करना नहीं सीखता, तब तक वह पिछड़ा हुआ ही रहेगा। आवश्यकता है रचनात्मक कार्योंकी, न कि व्याख्यानों अथवा प्रस्तावोंकी।



नारी-शिक्षा-समिति

श्रीमती लेडी अबला वोस

नारी-शिक्षा-समिति और उसके अन्तर्गत संस्थाओंके विषयमें दो-चार बातें यहाँ लिखी जाती हैं, जिससे आपको मालूम हो जायगा कि गत १७ वर्षोंसे यह समिति बंगालके महिला-समाजमें किस प्रकार स्त्री-शिक्षाका प्रचार करती आ रही है।

विद्यासागर वाणी-भवन

समितिके अन्तर्गत एक विधवाश्रम है, जिसका नाम है विद्यासागर वाणी-भवन। इस आश्रममें रहकर हिन्दू-विधवाएँ अपने आदर्शके अनुसार अपने संयत निष्ठायुक्त जीवन बिताती हुई बिना खर्चके मध्य-अंगरेज़ी विद्यालयकी शिक्षा प्राप्त करती हैं। साधारण शिक्षाके साथ-साथ वे मुरब्बा-अचार बनाना, सिलाई, ताँत और रँगनेका काम आदि तथा नसिंग और प्राथमिक उपचार इत्यादिकी शिक्षा प्राप्त करती हैं। आज तक इस संस्थासे १०५ विधवाएँ शिक्षा प्राप्त करके अपने घर चली गई हैं।

महिला-शिक्षा-भवन

समितिके अधीन दूसरी संस्थाका नाम महिला शिक्षा-भवन है, जिसे दैनिक शिल्प-विद्यालय कहा जा सकता है। इस शिल्प-विद्यालयमें गरीब और मध्यम स्थितिकी महिलाएँ अपना घर-गृहस्थीका काम खतम करके दोपहरके १२ बजेसे लेकर ४ बजे तक निःशुल्क शिल्पकी शिक्षा प्राप्त करती हैं। इस संस्थामें कुमारी, सधवा और विधवा सभी-कोई शिक्षा प्राप्त कर सकती हैं। यहाँ रेशम और सूतकी सूझ सिलाई, कपड़ोंकी काट-छाँट, ताँत, आसन, गलीचा, चमड़ेका काम, अचार-मुरब्बा, चटनी आदि बनाने तथा रँगने और कपड़े छापनेका काम सिखाया जाता है। इसके सिवा निरक्षर महिलाओंको पढ़ना-लिखना भी सिखाया जाता है। यहाँ शिक्षा प्राप्त करके साधारण गृहस्थ-घरकी स्त्रियाँ अपनी घर-गिरस्तीके लिए ज़रूरी कपड़े अपने हाथसे बना सकती हैं और फुरसत मिलनेपर थोड़े-बहुत कपड़े विक्रीके लिए भी तैयार कर सकती हैं। इस तरह वे अपने घरका काम करते हुए भी आर्थिक लाभसे घरकी मदद

करनेमें समर्थ हो सकती हैं। अब तक इस विद्यालयसे ४४६ महिलाओंने शिक्षा प्राप्त की है।

ट्रेनिंग विद्यालय

समितिके अन्तर्गत यह तीसरी संस्था है। इसमें विद्यासागर वाणी-भवनकी सुयोग्य छात्राओंको, मध्य-अंगरेज़ी शिक्षा समाप्त करनेके बाद, जूनियर ट्रेनिंग शिक्षा प्राप्त करनेका मौक़ा दिया जाता है। इसके सिवा बाहरकी महिलाएँ भी यहाँ आकर दैनिक छात्राके तौरपर अध्ययन कर सकती हैं। इस विभागके छात्राओंके लिए एक प्रैक्टिसिंग टीचिंग स्कूल भी है। इस ट्रेनिंग विभागको खुले अभी कुल दो साल हुए हैं।

ग्राम्य विद्यालय

स्त्री-शिक्षाका प्रचार और गाँवोंमें प्राथमिक विद्यालय स्थापित करना समितिका एक मुख्य उद्देश्य है। इस दिशामें कलकत्तेकी समिति बंगालके विभिन्न ज़िलोंके गाँवोंमें अब तक ५४ बालिका-विद्यालय स्थापित कर सकी है। उनमें से कुछ विद्यालय बन्द कर दिये गये हैं और कुछ ज़िला-बोर्ड आदिसे सहायता प्राप्त हो जानेसे स्थानीय कमेटी द्वारा स्वाधीन रूपसे चल रहे हैं। फिलहाल समितिके अधीन २५ विद्यालय चल रहे हैं। इन सब बालिका-विद्यालयोंसे ५५०० बालिकाएँ प्राथमिक शिक्षा प्राप्त कर चुकी हैं। फिलहाल समितिके अधीनस्थ २२ विद्यालयोंमें १२०० बालिकाएँ शिक्षा पा रही हैं।

इस उद्देश्यको सार्थक करनेके लिए ही समितिको धीरे-धीरे वाणी-भवन, शिक्षा-भवन, ट्रेनिंग विद्यालय आदि निम्न-लिखित संस्थाओंकी स्थापना करनी पड़ी है। एक ओर महिलाओंको शिक्षण-कार्यमें दक्ष बनानेके लिए गाँवोंमें विद्यालय स्थापित करना जैसे समितिका एक मुख्य उद्देश्य है, उसी प्रकार शिल्प-कार्यकी शिक्षा देकर उनके द्वारा निर्मित शिल्प-वस्तुओंकी उन्नति करने तथा उन चीज़ोंकी विक्रीके लिए क्षेत्र तैयार करनेके लिए वार्षिक महिला-शिल्प-प्रदर्शनीके आयोजन और समवाय भंडारोंकी आवश्यकताको भी समिति बराबर महसूस करती आई है।

मगर खेदकी बात है कि सर्वसाधारणकी सहानुभूतिके अभावसे समवाय-भंडार फिलहाल बन्द कर दिये गये हैं।

देशकी यथार्थ उन्नति ग्रामोंकी उन्नतिपर ही निर्भर है और साथ ही प्रत्येक घरकी सन्तानोंकी उन्नति भावी माताओंपर निर्भर है। कारण, सन्तानकी भावी उन्नति और अवनतिकी जड़में पिताका प्रभाव बहुत ही मासूली पड़ता है। फिर भी आश्चर्यका विषय यह है कि अभी तक देशकी दृष्टि इन ग्रामों और बालिकाओंकी शिक्षाकी ओर नहीं गई है। यही कारण है कि एक ओर जैसे गांव निरानन्दके क्षेत्र हो रहे हैं, दूसरी ओर वैसे ही देशकी महिलाएँ भी अज्ञानके दलदलमें फँसती ही जा रही हैं। इस निरानन्द और अन्धकारमय ग्राम्य जीवनमें जब हर घरमें एक बाल-विधवा आ खड़ी होती है, तब उसका दुःख घोरसे घोरतर हो जाता है। आर्थिक और पारिपाश्विक नाना परिवर्तनोंके कारण आज घर-घरमें ये विधवाएँ उपेक्षिता और लंछिता हो रही हैं। देशकी यह विपुल विधवा-शक्ति देश और समाजके किसी काममें ही नहीं आ रही है। साथ ही देशकी ग्राम्य शिक्षाको प्राथमिक रूपसे गढ़ डालनेके लिए इन विधवाओंके समान ऐसी योग्य, कममें सन्तुष्ट, संयत, निष्ठा और त्यागशील सेविका और कहीं मिल ही नहीं सकती। देशके गठन-कार्यमें यदि इस विपुल शक्तिसे काम लिया जाता, तो देशकी कितनी श्रीवृद्धि होती और साथ ही उन विधवाओंके मुँहपर फिरसे सौम्य शान्त आनन्दकी रेखा भी चमक उठती।

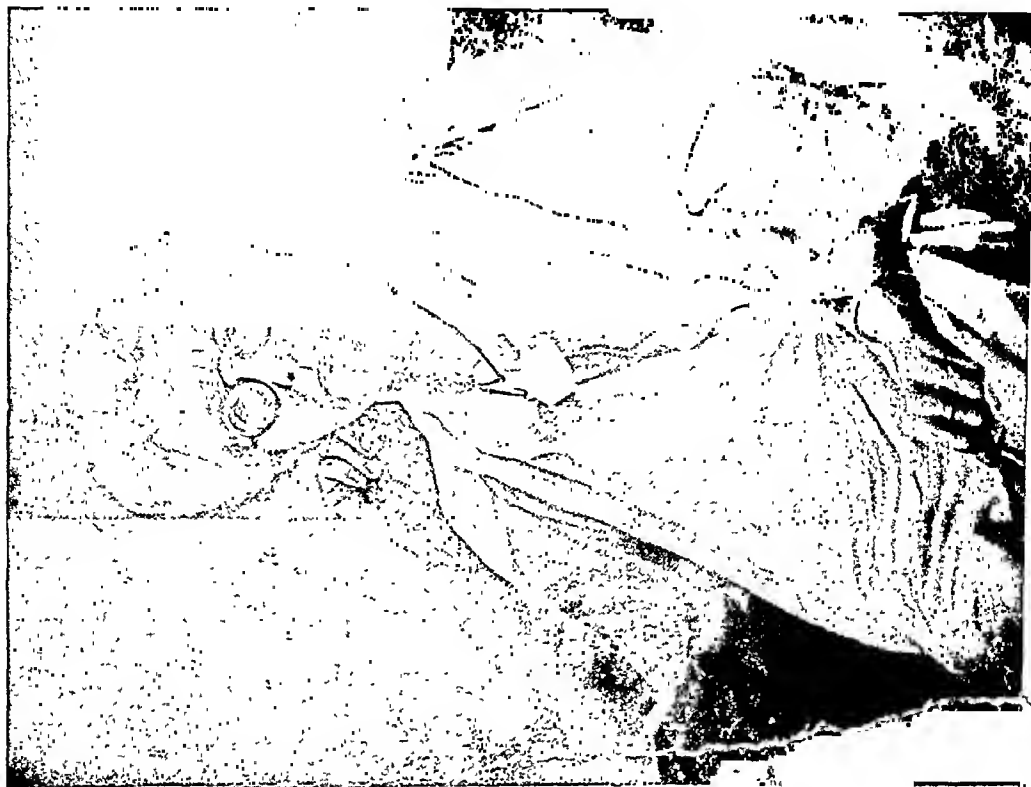
नारी-शिक्षा-समितिके देशकी इस विपुल शक्तिको काममें लानेके लिए अपने समग्र उद्योगोंको केन्द्रीभूत किया है। साधारण शिक्षाको सम्पूर्ण आकार देनेके लिए ही समितिके विभिन्न संस्थाओंकी व्यवस्था की है। समिति विधवाओंको साधारण शिक्षा, शिल्प-शिक्षा, नर्सिंग और प्राथमिक उपचारकी शिक्षा देकर आश्रमोचित संयत जीवन बिताते हुए उन्हें गाँवोंमें जाकर बालिकाओंमें प्राथमिक शिक्षा-प्रचारके केन्द्र संगठित करनेके लिए उत्साहित कर रही है। विधवाओंके लिए

भावी कार्यक्षेत्र बनानेमें सहायता पहुँचानेके उद्देश्यसे समितिकी एक महिला-सुपरिन्टेन्डेन्ट और उसकी आर्गनाइज़र गाँवोंमें जाकर शिक्षाकी आवश्यकताके विषयमें चर्चा किया करती हैं।

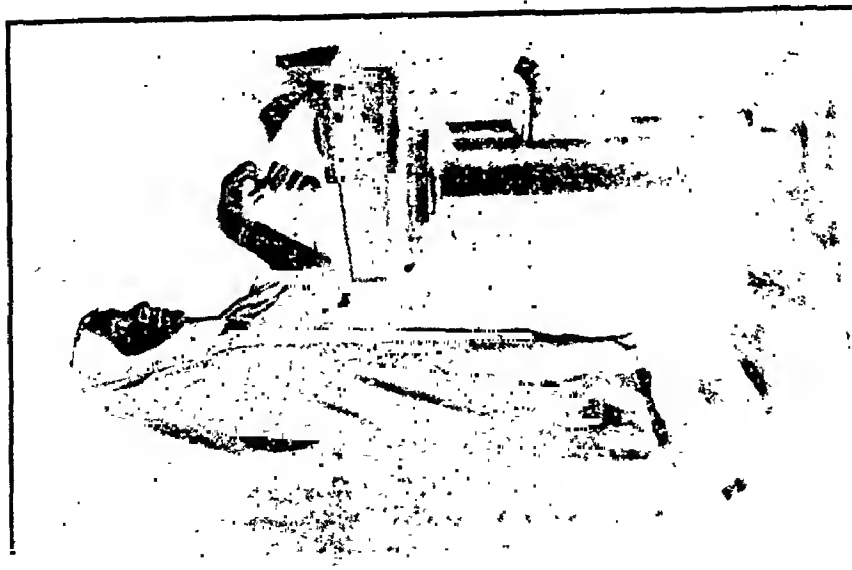
कार्यक्षेत्रमें उतरनेके बाद समितिकी शिक्षा-विस्तारके कार्यमें आर्थिक बाधाएँ और शिक्षाकी आवश्यकताके विषयमें देशवासियोंकी उदासीनता तो महसूस हो ही रही है, उसके सिवा सबसे बड़ा विघ्न, योग्य शिक्षक और शिक्षिकाओंका अभाव भी काफ़ी खटक रहा है। गाँवोंमें बालिका-शिक्षा-प्रचारके लिए एक ओर जैसे योग्य शिक्षिकाओंकी आवश्यकता है, उती प्रकार साधारण शिक्षाके साथ-साथ शिल्प-शिक्षाकी भी ज़रूरत है। घर-गिरस्तीकी अभाव-पूर्तिमें सहायता पहुँचानेवाली शिक्षा न होनेसे साधारण शिक्षाके लिए देशवासियोंकी तरफसे कोई आवाज़ सुनाई देना असम्भव है—खास तौरसे स्त्री-शिक्षाके विषयमें। यही कारण है कि गाँवोंमें शिक्षा-प्रचारके विषयमें ग्रामवासियोंको उत्साही और, विधवासी बनानेके लिए चरित्रवान, स्वावलम्बी, संयत और आडम्बरहीन जीवन बितानेवाली तेजस्विनी शिक्षिकाओंकी विशेष आवश्यकता है, जो अपने संयत चरित्रके माधुर्यसे ग्रामवासियोंको आकर्षित कर सकें और साथ ही साधारण शिक्षाके साथ कुछ-कुछ अर्थकारी शिल्प-शिक्षा भी दे सकें। इसीलिए इस महान उद्देश्य-साधनके लिए समिति अपनी शिक्षिकाओंको संयत, आडम्बरशून्य आश्रम-जीवन-धारिणी बनाने तथा उन्हें साधारण शिक्षा और शिल्प-शिक्षा देकर भावी कार्यके योग्य स्वावलम्बी जीवनकी दृढ़ता दान करनेका उद्योग कर रही है। इस उद्योग और उद्देश्यके मूलमें समग्र देशके गाँवोंकी कल्याण-भावना मौजूद है। खासकर बंगालकी चार-पाँच लाख विधवाओंमें जीवनकी सार्थकताका नया मार्ग खोल देनेसे प्रान्त-भरके गाँवोंमें नवीन शिक्षा-दीक्षा-केन्द्रका संगठन आसानीसे किया जा सकता है। इससे गाँवोंके महिला-समाजमें नवजीवनका उदय हो सकता है।

इस तरफ देशवासियोंका ध्यान जाय और उनकी सहानुभूति हो, तो समिति अपनेको सार्थक समझेगी।

कांग्रेसकी दो महिला-सभापति



श्रीमती एनी बेसेन्ट

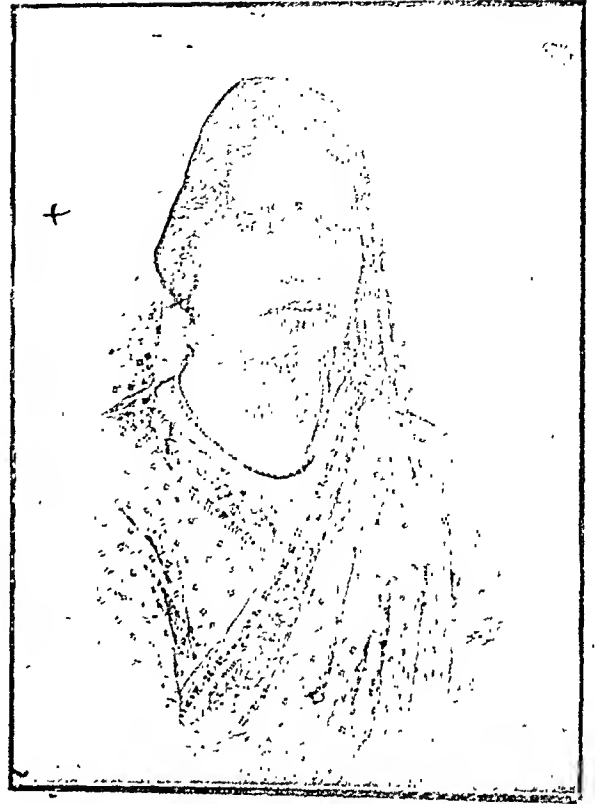


श्रीमती सरोजिनी नायडू

इस ग्रंथकी कुछ लेखिकाएँ



श्रीमती कमला चौधरी



श्रीमती धर्मशीला लाल



कुमारी पद्मावती



श्रीमती उर्मिला देवी

आर्यकन्या-महाविद्यालय बड़ौदा

श्री सुशीलाकुमारी पंडित, बड़ौदा

गुजरातके कतिपय आर्य-बन्धुओंने इस प्रान्तमें एक कन्या-गुरुकुल स्थापित करनेकी आवश्यकता बहुत पहले अनुभव की थी। उन्होंने अपने विचारको व्यावहारिक रूप देनेसे लिए सूरत जिलेके मलवाडा ग्राममें इसका आरम्भ भी कर दिया था; किन्तु वहाँ सफलता न मिलनेके कारण बड़ौदाके समीप इटोला ग्रामके कुछ महानुभावोंने मलवाडामें स्थापित

आर्यकुमार-महासभाका द्वार खटखटाया। आर्यकुमार-महासभाके प्रधान दानवीर सेठ नारायणलालजी पित्ती बम्बई-निवासीने इटोलामें फिरसे कार्य आरम्भ करनेके लिए सहायता प्रदान की, और १९२५ के जनवरी माससे इटोलामें चार कन्याओंसे आर्यकन्या-विद्यालयका श्रीगणेश हुआ। आर्यकुमार-महासभाके अधीन होनेके पश्चात् संस्था सुचारु रूपसे चलने लगी।

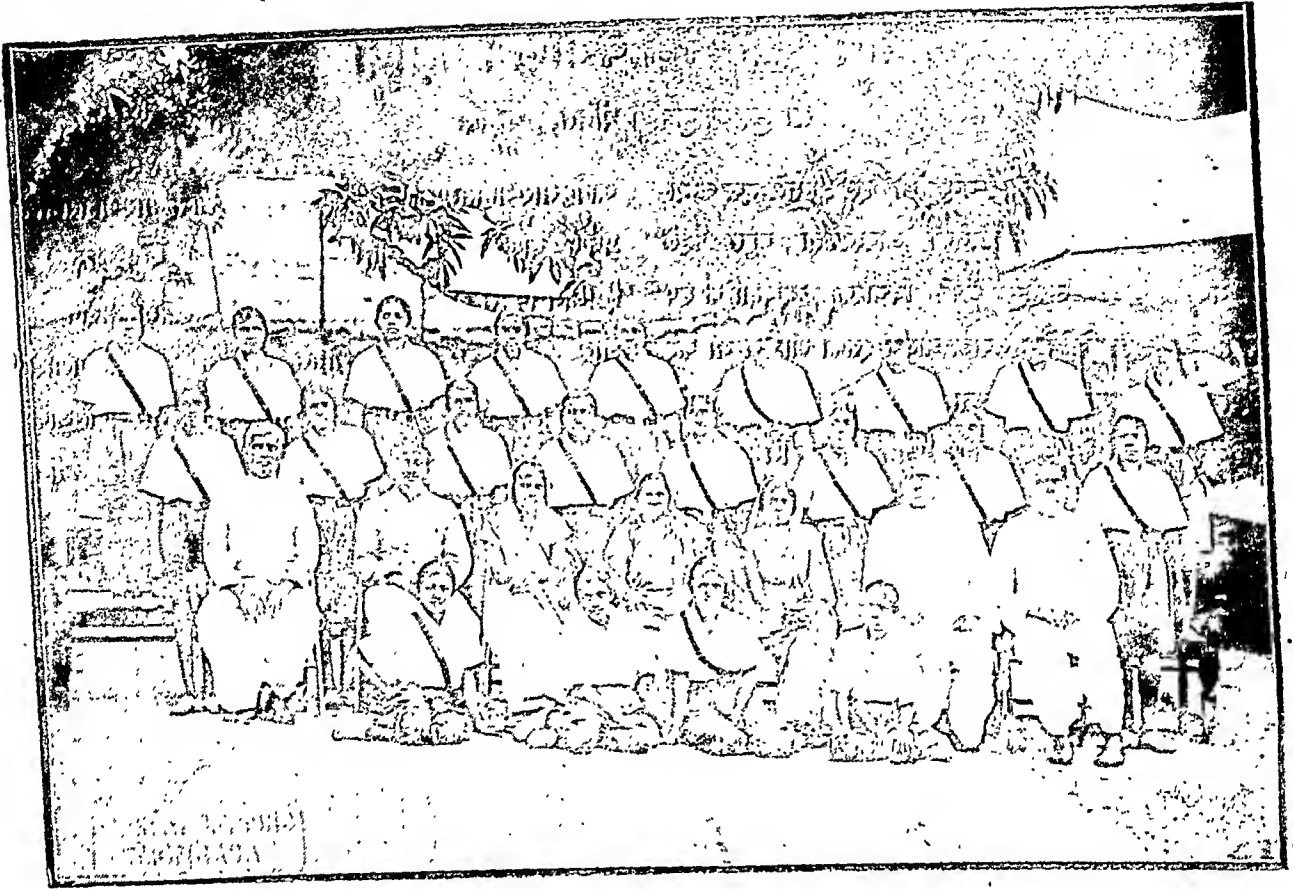


आर्यकन्या-विद्यालयकी लड़कियाँ शस्त्रोंका अभ्यास कर रही हैं

संस्थाका संचालन-भार अपने ऊपर लेकर इटोलामें कार्य आरम्भ किया। इटोला ग्राममें आरम्भमें अच्छा कार्य हुआ; परन्तु बादमें आपसी मतभेदके कारण संस्थाकी इतिश्री हो गई।

इटोलामें आर्यकन्या-विद्यालयके लिए ज़मीन तथा प्रारम्भिक मकानोंका आयोजन हुआ; परन्तु उसके पूरा होनेके पूर्व ही संस्था बन्द हो गई। इसके बाद इटोलाके कुछ महानुभावोंने बड़ौदा-आर्यसमाजके अन्तर्गत कार्य करनेवाली कर्मशील संस्था

१९२९ तक इस वाले संस्थामें कन्याओंकी संख्या लगभग साठ तक पहुँच गई। आर्यकुमार-महासभा बड़ौदाके कार्यकर्ताओंने शीघ्र ही कन्या-विद्यालयको विशाल स्वरूप देनेका विचार किया। उनका स्वप्न था कि इसको कर्बे-महिला-विश्वविद्यालयके समान आर्यकन्या-विश्वविद्यालयका स्वरूप दें। बहुत विचार करनेके पश्चात् यह तय हुआ कि बड़ौदामें कोई सुन्दर स्थान लेकर ऊँची ध्रेणियोंकी छात्राओंको इटोलासे बड़ौदामें स्थानान्तरित



आर्यकन्या-विद्यालयकी लड़कियोंका दल, जिसने अभिष्ठाकी यात्रा की थी



विद्यालयके कुलपति पं० आत्मारामजी

किया जाय, अर्थात् इटोलमें केवल चार प्रारम्भिक श्रेणियाँ ही रखी जायँ और बड़ौदामें पाँचवींसे लेकर तेरहवीं श्रेणी तकका आयोजन किया जाय ।

ईश्वरकी कृपासे बड़ौदाके करेलीबागमें रंगाईके कारखानेका एक पुराना मकान खाली पड़ा था । यह मकान बड़ौदा बैंकके पास गिरवी रखा हुआ था । इस मकानको आर्यकुमार-महासभाके प्रधान सेठ नारायणलालजीकी सहायतासे दस बीघा जमीन-सहित चौदह हजारमें खरीद लिया गया । सन् १९२९ के सितम्बर मासमें इटोलसे पाँचवीं और छठी श्रेणियोंकी सत्रह कन्याएँ इस रंगशालाके पुराने मकानमें लाई गईं । बड़ौदामें कार्य आरम्भ हो गया । संचालकोंकी इच्छा पूर्ण हुई ; परन्तु कार्यकर्ताओंके सामने बड़ी कठिनाइयाँ थीं । मिलका मकान आखिरकार मिल ही था ।

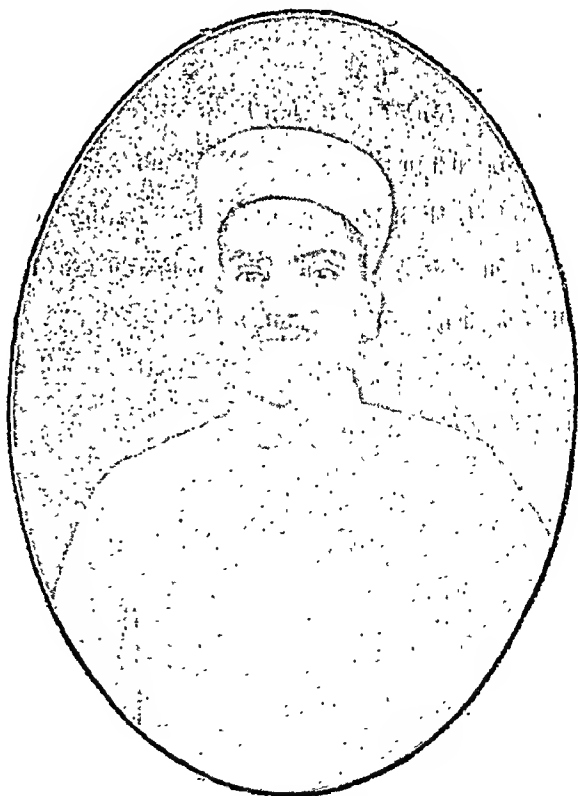


पाकशास्त्रकी व्यावहारिक शिक्षा

उसको आश्रमके रूपमें बदलना बहुत व्ययसाध्य था। संचालकोंने शीघ्र ही प्रकाशन और दौरा करके संस्थाकी उपयोगिताका प्रचार आरम्भ किया और जनतासे सहायता भी प्राप्त की। मकानकी तोड़-फोड़ आरम्भ कर दी गई। प्रतिवर्ष उसमें परिवर्तन होने लगा। इस मकानमें तीन विशाल कमरे आरम्भसे ही थे। वड़ौदा आनेके बाद कन्याओंकी भर्ती बड़े जोरसे बढ़ने लगी। परिस्थितियोंसे विवश होकर संस्थाने इटोलके उपरान्त प्राथमिक चार श्रेणियाँ भी वड़ौदामें ही खोल दीं।

जिस संस्थाके आरम्भमें, १९२९ में, केवल सत्रह कन्याएँ ही थीं, उसमें आज तीन सौ छब्बीस कन्याएँ शिक्षा पा रही हैं। आर्यकन्या-विद्यालयने अल्प कालमें ही जनताका ध्यान अपनी ओर आकर्षित कर लिया। उसके कई कारण हैं।

इस संस्थाने किताबी शिक्षाके साथ-साथ शरीरके विकास और स्वास्थ्यपर उतना ही ध्यान दिया, जितना संसारके अन्य उन्नत और स्वतन्त्र देश देते हैं। आरम्भकालसे ही प्रत्येक बालिकाको ज़रूरसे सुडौल तथा स्वस्थ बनानेके निमित्त कन्याओंमें शारीरिक



संस्थाके प्रधान पोपक राजा नारायणलालजी पित्ती



सिलाई और दस्तकारी का काम

व्यायामका समावेश किया गया। योगासन, सूर्य-नमस्कार, प्राणायाम, शरीरको विकसित करनेवाले व्यायाम तथा लोखी लेजिम, छुरा, तलवार आदिके आत्म-रक्षाके खेल और कसरतें सिखाई जाने लगीं। बालिकाओंमें इस कार्यक्रम द्वारा वीरताकी भावनाका संचार हुआ। अपनी यात्राओंमें दो-तीन स्थानोंमें गुण्डोंको दंड देकर कन्याओंने अपने इस शिक्षणका और भी प्रभाव डाला।

इसके उपरान्त कन्याओंके शिक्षणमें आर्य-संस्कृतिकी आधारशिलापर नवीन वस्तुओंका भी समन्वय किया गया। सर प्रभाशंकर पट्टणी जब संस्थाका निरीक्षण करने पधारे, तब उन्होंने कहा था कि बड़ौदाकी इस संस्थाने पूर्व और पश्चिमका बड़ा सुन्दर सम्मिश्रणकर कन्या-शिक्षणके इतिहासमें सफलतापूर्वक एक नया प्रयोग कर दिखाया है।

बड़ौदामें सब कन्याएँ आश्रमवासिनी ही हैं। उनको आश्रम-जीवनमें गृह-उद्योगकी व्यावहारिक शिक्षा मिलती है। कन्याएँ अपने कमरे स्वयं भाड़ती-बुहारती हैं, अपने कपड़े स्वयं धोती हैं, पानीकी अनुकूलताके अनुसार वर्तन स्वयं माँजती हैं, परस्पर सेवा, रोगीचर्या तथा आश्रम-संचालन



शरीरको सुदृढ़ बनानेके लिए लड़कियाँ योगासनका अभ्यास कर रही हैं।

स्वयं ही करती हैं। कन्याओंकी व्यवस्थापिका सभा प्रति शनिवारको सेवाके विभिन्न कार्य कन्याओंमें बाँट देती है। कन्याओंकी व्यवस्थापिका सभाकी सभानेत्री एक कन्या ही है। नियमन रखनेके लिए एक सेनापतिकी नियुक्ति की जाती है।

सायंकाल भोजन बनानेमें भी लड़कियाँ बारी-बारीसे सहयता प्रदान करती हैं। परोसनेका कार्य भी कन्याएँ ही करती हैं। लड़कियोंको रसोई आदिका अधिक ज्ञान तथा अभ्यास प्राप्त हो सके, संस्था आजकल इसका विशेष आयोजन कर रही है। कन्याएँ अपने भोजन-पत्रक स्वयं बनाती हैं और आश्रमको



विद्यालयकी मुख्याधिष्ठात्री कुमारी सुशीलाकुमारी पंडित

विद्यालयके मन्त्री पं० आनन्दप्रिय, बी० ए०, एल-एल० बी०



कालेज क्लासकी छात्राएँ

घर मानकर गृह-उपयोगी सब ज्ञान प्राप्त करती हैं। बड़े कन्याएँ छोटी कन्याओंकी सँभाल भी करती हैं।

प्रति रविवारको कन्याएँ अपनी वाक्चरिणी सभाएँ करती हैं, जिनमें निबन्ध-लेखन, वाद-विवाद, व्याख्यान आदिका शिक्षण पाती हैं। इन सभाओंकी मंत्रिणी भी सब कन्याएँ ही हैं। यह सभाएँ पर्वोपर संवाद, गरबा, भाषण आदिका आयोजन भी करती हैं।



विद्यालयके आचार्य मेधाव्रतजी

कन्याओंके विकासमें इन सभाओंका बड़ा भारी हिस्सा है। कन्याएँ अपनी-अपनी श्रेणीके अनुसार हस्त-लिखित मासिक पत्रिकाएँ भी निकालती हैं। कन्याओंकी एक त्रयमासिक पत्रिका 'ब्रह्मचारिणी' छपती भी है। इन मासिकों द्वारा चित्र तथा पत्रकारकलाका शिक्षण मिलता है।

आर्यकन्या-विद्यालयमें पूर्ण स्वतन्त्रताका वातावरण है। छोटीसे लेकर बड़ी कन्याएँ तक सब आश्रममें अपने घरोंकी

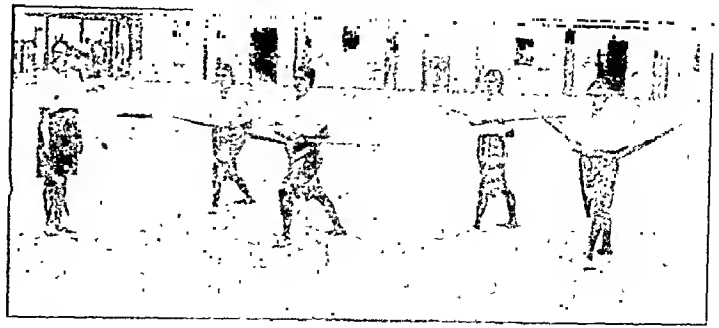
भांति विचरण करती हैं। आश्रममें प्रायः लड़कियाँ निकर तथा कमीज़ पहनती हैं। हमने उनके शरीरमें फुर्तीका विशेष मंचाग हो गया है। इस पोशाकसे एक और लाभ यह है कि बड़ी कन्याएँ भी जब तक इस पोशाकमें रहती हैं, तब तक वे 'सेक्स' (Sex obsession) के विचारसे परे रहकर निर्दोषतापूर्वक छोटी बालिकाओंके समान ही विचरण करती हैं। आश्रम-जीवनको देखकर दर्शक प्रायः यही कहते सुने जाते हैं—“हमने किसी भी संस्थामें इतना आनन्द, इतना आत्म-विश्वास तथा इतनी पारस्परिक कौटुम्बिकताकी भावना नहीं देखी।”

इस संस्थाका शिक्षण स्वतन्त्र है। कुल तरह वर्षमें एक बालिका स्नातिका बन सकती है। दस वर्षमें, अर्थात् दसवीं श्रेणी (Matric) पास कर लेनेपर वह 'विशारदा' कहलाती है। विशारदा होनेके पश्चात् तीन वर्ष 'स्नातिका' का शिक्षणक्रम है। शिक्षणमें सभी सामयिक विषय पढ़ाये जाते हैं। अंगरेजी मैट्रिक तक दसवीं श्रेणीमें ही हो जाती है। संस्कृतको प्रधानतः

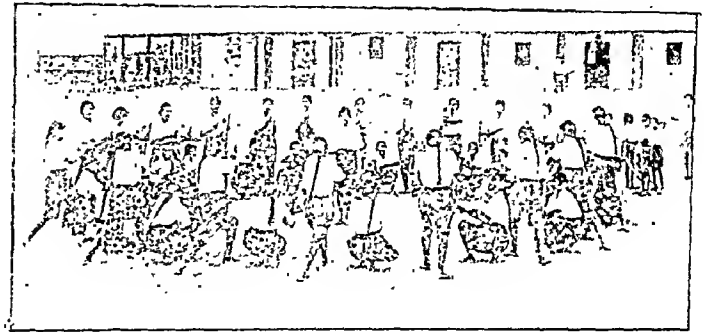


छुरेके दौड़-पेंच

दी जाती है। बालिकाओंके लिए राष्ट्र-भाषा हिन्दी अनिवार्य विषय है। इतिहास, भूगोल, अर्थशास्त्र, गृह-विज्ञान, चित्रकला, गणित, गृह-गणित, संगीत, सीना-पिरोना, शरीरशास्त्र, गुजराती आदि अन्य विषय भी पढ़ने पड़ते हैं। आर्यसमाजके सिद्धान्तोंके अनुसार धर्म-शिक्षा भी दी जाती है। इस संस्थाकी दसवीं श्रेणीकी ब्रह्मचारिणी चाहे तो बनारस-हिन्दू-विश्वविद्यालयकी मैट्रिककी परीक्षा प्राइवेट तौरसे दे सकती है। इसमें कुछ अधिक धर्म नहीं पड़ता, क्योंकि यहाँ उस समय तक उससे अधिक पढ़ाई हो जाती है।



तलवारके खेल



लेजिमकी ड्रिल

इस संस्थाने छुट्टियोंमें भिन्न-भिन्न स्थानोंकी यात्रा करनेका नियम बना रखा है। अभी तक कन्याएँ कराँची, हैदराबाद, कलकत्ता, भरिया, शान्ति-निकेतन, बनारस, प्रयाग, आगरा, कानपुर, नागपुर, जबलपुर, मथुरा, वृन्दावन, लाहौर, अमृतसर, देहली, लुधियाना, फीरोज़पुर, बम्बई, अहमदाबाद, सूरत आदि स्थानोंमें भ्रमण कर चुकी हैं।

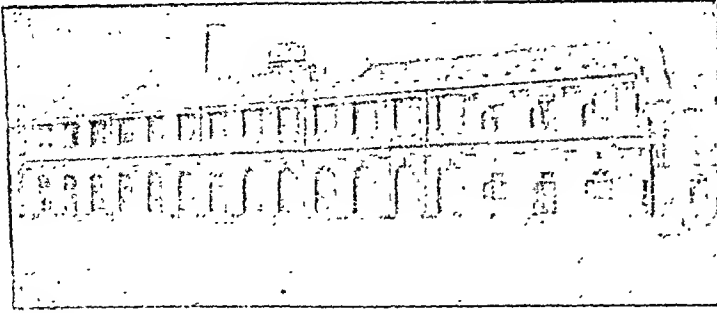
सन् १९३४ में विद्यालयकी बाईस कन्याओंकी एक टोलीने

पूर्वीय तथा दक्षिणी अफ्रिकामें भ्रमण करके भारतमाताका जो नाम उज्ज्वल किया था, उसका इतिहास किसीसे छिपा नहीं है। अफ्रिकामें और विशेषकर दक्षिण-अफ्रिकामें, जहाँ रंग-भेद बहुत है, इन कन्याओंका स्वागत यूरोपीय जनताने भी खुले दिलसे किया था। प्रेडोरियाकी म्यूनिसिपैलिटीने इनके स्वागतमें ७५०) रु० (५० पौंड) खर्च किये थे, और ईस्ट लंडनकी म्यूनिसिपैलिटीने ३,०००) (२०० पौंड) खर्चे थे! प्रायः सभी नगरोंके टाउन-मेयरोंने उनका स्वागत करके एक स्वरसे कहा था कि भारतीय कन्याएँ संसारके किसी भी देशकी कन्याओंसे संस्कृति तथा शिक्षणमें कम नहीं हैं।

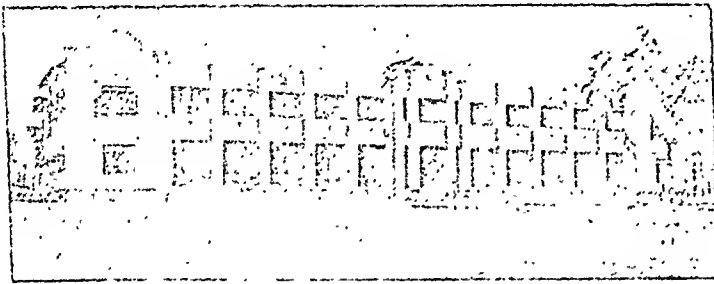


संगीतका शिक्षण

संस्थामें इस समय गरीबोंकी चालीस कन्याएँ मुफ्त शिक्षा पा रही हैं। वार्षिक १४) रुपया मासिक फीस ली जाती है। औसतमें संस्था एक कन्यापर २०) रु० मासिक खर्च करती है।



मुख्य छात्रावास



नवनिर्मित अफ्रिका छात्रावास

इसलिए प्रतिवर्ष संस्थाको पचास हजार रुपयेकी घटी सहन करनी पड़ती है, जो दानादि द्वारा पूरी की जाती है। अफ्रिका-प्रवाससे संस्थाको दो लाख रुपये मिले थे, जो नये मकानादिमें खर्च किये जा रहे हैं। अफ्रिका-छात्रावास बन भी चुका है, इस समय संस्थाके मकानोंकी कीमत लगभग पौने दो लाख रुपये हैं।

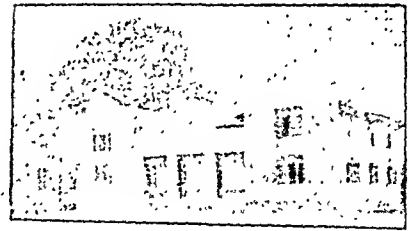
इस प्रकार अल्पकालमें ही इस संस्थाने काफी ख्याति प्राप्त कर ली है। इस संस्थाकी प्रगतिका श्रेय आर्यकुमार-महासभा तथा इसके अधिक कार्यकर्त्ताओंको है। इसके कुलपति राज्यमित्र राज्यरत्न पंडित आत्मारामजी अमृतसरी हैं, संस्थाके आचार्य कविरत्न पं० मेधाव्रतजी हैं, मुख्याधिष्ठात्री कुमारी सुशीला देवी (इन पंक्तियोंकी लेखिका) हैं, प्रधान राजा नारायणलालजी पित्ती हैं और मंत्री पं० आनन्दप्रियजी हैं।

वास्तवमें आर्यकन्या-महाविद्यालयमें एक विशाल भावनापर काम हो रहा है। आशा है कि भारतमें उत्तम नागरिक,

उत्तम मानृत्व तथा उत्तम कार्यकर्त्रियाँ उत्पन्न करनेमें आर्यकन्या-महाविद्यालय ज़रूर सफल होगा। संस्थाके मंत्री प्रायः कहा करते हैं कि हमारे पास आज एक फूटी कौड़ी भी स्थिर-कोषमें नहीं है। हमारा स्थिर-कोष हमारी कन्याएँ हैं। वह दिन दूर नहीं, जब हमारी कन्याएँ अपने शिक्षणका प्रकाश चारों ओर फैला सकेंगी।

हर्षका विषय है कि इस संस्थाके प्रभावसे प्रभावित होकर अफ्रिकाके स्वनामधन्य दानवीर सेठ नानजीभाईने इसकी एक शाखा अपने जन्म-स्थान पोरबन्दरमें खोलनेके लिए तीन लाख रुपयेका भारी दान दिया है, और जोहान्सबर्गके सूरती भाइयोंने सूरत

ज़िलेमें एक शाखा खोलनेके लिए पचीस हजार रुपये दिये हैं।



विद्यालयका पुस्तकालय

संस्थाके संचालक भारतके कोने-कोनेमें इसकी शाखाएँ खोलनेका स्वप्न देखते हैं, क्योंकि इस समय वड़ौदामें भारतके सभी प्रान्तोंकी कन्याएँ शिक्षा पा रही हैं। वह दिन दूर नहीं, जब यह संस्था प्रान्तीय नहीं; किन्तु अखिल भारतीय महिला-विद्यापीठका स्वरूप धारण कर लेगी।



स्वर्गीय सरोजनलिनी दत्त



कलकत्तेकी नारी-शिक्षा-समितिकी प्रधान
लेडी अवला बोस

वीणा

श्रीमती कमलादेवी चौधरी

वीणाके पिता अपने नगरके प्रख्यात वीणा-मास्टर थे।

वीणा बचानेका शौक बाल्यकालसे उनके हृदयमें जिस अतुल उल्लासके साथ उदीप्त हुआ, अन्त समय तक वह वैसा ही नवीनोद्भासक बना रहा। परिवर्तनशील संसारने अपने नियमानुसार उन्हें भी अपने परिवर्तनचक्रमें घुमाया, सुखकी घड़ियाँ भी दिखाई और दुःख-पीड़ाकी असह्य यातनाओंका भी कठिन अनुभव कराया; किन्तु उनकी वीणाकी गतिमें किञ्चित्मात्र भी परिवर्तन नहीं हुआ।

उन्होंने अपनी पुत्रीका नाम भी वीणा ही रख दिया और वीणाको पूर्ण कलाकार बना देना ही उनके जीवनका उद्देश्य हो गया। वे कहा करते थे—“बेटी, अन्त समय यदि तेरे पिताकी उँगलियोंमें शक्ति न रहे, तो तू उस समय वीणाकी एक मनोहारिणी भंकार सुना देना। उसी भंकारके सहारे मैं किसी अज्ञात भंकारमें लीन हो जाऊँगा।” पिताकी मृत्युके समय वीणाने उनकी आज्ञाका पालन भी कर दिया था। लोगोंने उसके इस अनोखे कार्यपर बादमें हँसी भी उड़ाई थी कि मास्टर तो सनकी था ही, जान पड़ता है, लड़की भी वैसी ही है।

- २ -

पिताकी भाँति वीणामें भी कुछ सनक थी अवश्य। पिताकी मृत्युके बाद मा-बेटी दोनों अनाथ हो गईं। पेट पालनेके लिए मजदूरीके सिवा उनके लिए अन्य कोई साधन न था—कोई मार्ग, कोई उपाय, कोई हितैषी दिखाई न देता था।

पिताने जीवन-भर सर्वांगीण कलाकार बननेकी चेष्टा की, उसके जरिये धनोपार्जन नहीं किया। सूखी दाल-रोटीमें ही वे अपनी वीणाके तार सन्हालते हुए सन्तुष्ट थे और मरते समय वही एकमात्र सम्पत्ति-रूप वीणा स्त्री और पुत्रीके लिए छोड़ गये थे।

इस दशामें अनाथ स्त्रियोंके लिए रोना और सीना दो ही उपाय शेष थे; किन्तु वीणाके पास अपने दुःखको शान्त करनेका प्रधान साधन वीणा भी थी। वह पितृशोककी वेदना, असहाय स्त्री-जातिकी निर्बलता, पेटाग्निकी ज्वलन्त ज्वाला, सब-कुछ वीणाकी ही भंकारमें मिलाकर इन अनेक भारोंसे हलकी हो जाना चाहती थी।

वह दिन-भर माका अनुकरण करती हुई कठिन परिश्रम करती। माके वेगसे बहते हुए आँसू उसकी आँखोंमें भी दरिया बहा देते; किन्तु चन्द्रदेवके आगमनपर वह खुली छतपर बैठकर वीणासे वह सुखद भंकार उत्पन्न करती कि स्वयं ही अपने संगीतपर सुग्ध हो जाती—उस भंकारमें वह बिलकुल तन्मय हो जाती। फिर उसे दुःख-सुख, कष्ट-पीड़ा कोई भी जाग्रत न कर पाता। उसी तल्लीनतामें कब वह निद्राकी गोदमें निमग्न हो जाती, उसे कुछ जान न पड़ता। उषाकी लालिमा उसके मुखपर नृत्य करके उसे जगाती, तो वह लांपरवाहीसे वीणा यथास्थान रखकर दिनके कार्यक्रममें लग जाती।

- ३ -

ऐसे ही कार्यक्रमानुसार वीणाका बहुत-सा समय व्यतीत हो गया। शोककी गति भी अब वैसी तीव्र नहीं रही। दिन-भरके कठिन परिश्रमसे गरीबीका भोजन-वस्त्र मिल जाता और धीरे-धीरे वह उसी अवस्थामें सन्तुष्ट भी हो गई। किन्तु माको वीणाके विवाहकी चिन्ता किसी प्रकार शान्तिकी रेखा ढूँढ़नेका अवकाश न देती।

माकी यह चिन्ता वीणाको कुछ महत्त्वपूर्ण नहीं जान पड़ती थी। व्यर्थ विपत्तिमें एक और उत्पात खड़ा करना माकी प्रवृत्ति है। क्यों न पिताजी माको भी वीणाकी अतुलनीय मिठासका दिग्दर्शन करा गये, बेचारी पीड़ामें कुछ सुखका आभास तो पा सकती। वीणा-जैसी १६-१७

वर्षकी नवयौवनाके लिए विवाह आवश्यक ही है, यह बात वीणाकी समझसे परे थी। मा समझती थी कि वीणा ज़रूरतसे कुछ अधिक अलहड़ है, और इसमें दोष उसके पिताका है। जान-बूझकर उन्होंने वीणाके अलहड़पनको प्रोत्साहन दिया। उन्होंने ही वीणाकी उँगलियोंको तारोंपर फुदकना सिखाया और संगीत-लहरीपर वीणाके तितली-रूपी हृदयको नाचना सिखाया। और इसके सिवा स्त्रीत्वका कोई भाव उसके समीप आ ही नहीं पाया है। क्या हुआ, संकट पड़नेपर मेरे साथ कुछ सिलाई आदि कर लेती है; किन्तु उसका मन तो दिन-रात वीणामें ही उलझा रहता है! ससुराल जाकर वह क्या करेगी—गृहस्थीका काम कैसे करेगी?

जर्मोदार घरानेसे वीणाके विवाहका प्रस्ताव हुआ। प्रथम तो वीणाकी मा सहमत नहीं हुई। इतने बड़े आदमी होकर मुझ गरीबकी कन्याको किसलिए लेना चाहते हैं। लड़केमें कुछ ऐव तो नहीं है; किन्तु स्वयं लड़केकी माने घरमें आकर वीणाकी माका शंका समाधान कर दिया—वीणाके लिए मेरे शगुन जैसा वर तुम्हें त्रिलोकमें दूसरा न मिलेगा। सभी उसके गुणोंपर मुग्ध हैं। संसारमें उसके लिए लड़कियोंकी कमी नहीं है; किन्तु वह तुम्हारी वीणापर मुग्ध हो गया है। कई बार उसने छतपर चन्द्रमाकी ज्योत्स्नामें वीणामें तल्लीन वीणाको निशीथ गान गाते देखा है। तुम्हारी वीणाका रूप भी तो अपार है। लड़केका आकर्षित होना अनुचित नहीं है। हम लोग उसके मनकी चाह पूरी करना चाहते हैं। वहन, हमारे एक ही लड़का है। और लोगोंने भी शगुनकी माके बातोंका समर्थन किया तो वीणाकी मा विवाहके लिए सहर्ष सहमत हो गई। उसने मन-ही-मन ईश्वरको कोटिशः धन्यवाद दिया।

- ४ -

विवाहकी तैयारियाँ वीणाको उसकी स्वतन्त्रतापर कुठाराघात करती प्रतीत हुईं। माकी चिन्ताके

कारण उसने प्रकटमें तो विवाहका विरोध नहीं किया; किन्तु भीतर-ही-भीतर एक प्रकारकी वेदना उसे काटने-सी लगी। विवाहके दिन तक वह एक मुरझाई हुई कलीके समान हो गई और ससुराल जाकर उसकी वह छिपी वेदना आँसुओं द्वारा फूट पड़ी। उमड़ते आँसुओंके वेगको कभी हृदयमें ही समेटना, कभी आँखोंमें ही पी जानेकी चेष्टा करना और कभी एकान्तमें पूर्ण व्यथासे आँसुओंका दरिया बहा देना—यही अब उसका कार्यक्रम हो गया।

रानियों-जैसे आरामके सामान, अद्भुत सिंगारकी वस्तुएँ, जवाहरातके आभूषण, चमकौली जरीकी साड़ियाँ, सास-ससुरका लाड़-प्यार तथा अपने रूपवान पतिका दुर्लभ पति-प्रेम कुछ भी उसके लिए आकर्षक नहीं था—जाने किस वस्तुका उसका हृदय बना था? उसमें मानवताका, स्त्रीत्वका, इतना अभाव क्यों था? संसारके अतुलनीय वैभवपर उसे मोह न था। जिसकी साधना संसार जीवन-पर्यन्त करता है, वीणाके सम्मुख उसका कुछ महत्त्व ही न था!

वीणाके अधरोंपर हँसीकी किरण देखनेकी चेष्टामें विफल शगुन तारों-भरी रातमें खुली छतपर अपलक दृष्टिसे उस अलौकिक सौन्दर्य-सुधाका पान करते हुए सोचता—यह रक्त-मांसका शरीर है या श्वेत संगमर्मरकी प्रतिमा? किसी विपरीत ही धातुका इसका हृदय बना है!

धीरे-धीरे शगुन कुछ उत्तेजित-सा हो जाता और वीणाका हाथ दाबकर पूछता—‘वीणा क्या मेरे ऊपर किसी मोहिनी मन्त्रका प्रयोग कर रही हो? मौन क्यों हो? नाराज क्यों हो? क्या मुझसे विवाह नहीं करना चाहती थी, या अब सन्तुष्ट नहीं हो? कुछ तो कहो—तुम कैसे जानोगी वीणा, मेरा हृदय व्यथासे भरता जा रहा है? मेरा क्या अपराध है? मैं तुमपर मुग्ध हूँ, आसक्त हूँ, तुमसे प्रेम करता हूँ, तुम्हें प्रसन्न करना चाहता हूँ—क्या यही मेरा अपराध है?’

वीणा सोचती—मेरे मनकी बात कोई इनसे

कह दे, मैं नाराज नहीं हूँ, तुम्हारा कुछ अपराध भी नहीं है। किन्तु हाँ, मैं सुखी नहीं हूँ। देखो, मेरा सारा आनन्द, सारा सुख नष्ट हो गया है। मैं स्वयं ही खोई-सी जा रही हूँ। बिलकुल ठीक तो मैं नहीं जानती—मुझे कहना नहीं आता, मुँहसे कैसे कहा जाय, मैं नहीं जानती, फिर तुम्हें क्या बताऊँ ? और तुम्हारी यह बातें मुझे बहुत ही लज्जित करती हैं। इसी कारण मुझे और भी दुःख होता है। हर समय लज्जामें डूबी रहती हूँ, इसी लिए तुम्हारे आग्रह करनेपर भी वीणा नहीं बजा पाती, चेष्टा करनेपर भी ध्वनि स्फुटित नहीं होती। गाने-बजानेमें कुछ लज्जा, कुछ ग्लानि-सी प्रतीत होती है। जाने कैसा लगता है। मुझे जाने क्या हो गया है। मेरी सारी शक्ति, साहस, चेतना क्या हुई ? बोला ही नहीं जाता—यह सब इनसे कैसे कहूँ ? अच्छा, इतना तो कह ही दूँ कि मैं नाराज नहीं हूँ।

आज साहस बटोरकर उसने निश्चय किया कि इतना तो कहूँगी ही कि मैं नाराज नहीं हूँ। कठिनतासे उसने आँखें ऊपर उठाईं। शगुन एकटक उसकी ओर देख रहा था। लज्जाके मारे वीणाका मुँह लाल हो आया। फिर तो वह आँखें धरतीपर ऐसी गड़ों कि शगुन किसी प्रकार उठा ही न सका।

हताश होकर शगुनने कहा—‘मा, वीणाको उसकी माके पास भेज दो, वरना बीमार हो जायगी।’

‘विचित्र स्वभावकी लड़की है ! ससुराल जानेपर कुछ दिनों तक माता-पिताकी सुध सभीको आती है ; किन्तु इसकी-सी दशा किसीकी नहीं होती ! तुमसे तो कुछ कहती ही होगी ?’

शगुनने अपना मुँह दूसरी ओर फेर लिया और भारी गलेसे केवल इतना ही कहा—‘उसे भेज दो।’

पुत्रकी आन्तरिक व्यथा मासे छिपी नहीं रही। उसे वीणापर क्रोध होने लगा—अच्छी बहू मिली ! लड़केका दिल ही तोड़े देती है। यह तो सोचती नहीं कि ऐसा पति पाकर उसके भाग जाग गये, ऊपरसे अभिमान करती है ! किन्तु अपने भाव मन ही में

छिपाकर वह सान्त्वनाके शब्दोंमें बोली—‘वेटा, वीणा और लड़कियोंकी भाँति चपल नहीं है, लजाती बहुत है, कुछ दिनोंमें हम लोगोंसे हिल-मिल जायगी। हाँ, अभी तो उसे भेजे ही देती हूँ—उसकी मा बुलावे भी बहुत भेज चुकी है।’

- ५ -

शगुनके कोई अपना भाई - बहन न था। उसकी एक स्नेहमयी भाभी थी। इस देवर-भाभीके सम्बन्धमें नाते-रिश्तेका तालुक न था। विपिन शगुनका घनिष्ठ मित्र था—सगे बड़े भाईके समान, और उसकी स्त्री सुमुखी उसकी भाभी थी। शगुनके विवाहमें भाभी सम्मिलित नहीं हो सकी। विवाहके ऐन मौकेपर उसके पिताकी बीमारीका तार आया और भाभीको वहाँ जाना पड़ा। शगुनने विवाहकी तिथि बदलनेकी यथाशक्ति चेष्टा की ; किन्तु सारी तैयारियाँ हो चुकी थीं, नाते-रिश्तेदार घरमें आ चुके थे, तिथि बदलना सम्भव न हो सका। वीणासे निराश होकर शगुनको ऐसा लगने लगा, मानो यह घटना भाभीके अभावके ही कारण हुई है और अब भाभीके ही पास जानेमें उसका कल्याण है। इसके अतिरिक्त सारे संसारमें उसके लिए शान्तिका कोई दूसरा साधन भी तो नहीं है। सम्भव है, भाभी अपनी वाक्पटुताका चमत्कार वीणापर छोड़ सकें, उसके कानोंमें अपनी कोकिल-जैसी वाणीकी मधुर कूक कूककर वीणाको मेरे हृदयका दिग्दर्शन करा सके ; किन्तु नहीं, वीणापर इसका ज़रा भी प्रभाव न होगा।

वीणा मुझे नहीं चाहती ; पर मैं तो उसे चाहता हूँ, मेरा क्या होगा ? इस जीवनमें उसे मैं कैसे भूल सकूँगा ? भूलना ही होगा इस आगको। हृदयको तोड़नेवाली इस वेदनाको मैं अधिक दिन सहन नहीं कर सकूँगा। किन्तु उसे भूलेनेका मन्त्र कहाँ मिलेगा, कैसे मिलेगा ?

ऐसी ही चिन्ताओंमें पड़कर शगुन बीमार रहने लगा। बीमारीका समाचार पाकर विपिन उसकी भाभीको लेकर आ गया। आज शगुनने भाभीके सामने अपना सारा हृदय खोलकर रख दिया। भाभीकी आँखोंमें आँसू आ गये।

शगुनको ऐसा जान पड़ा कि भाभीने अपने हृदयका सारा स्नेह मुझपर निछावर कर दिया। कितनी ही रातों बाद आज भाभीके बीच उसे कुछ देर मीठी नींद आई। भाभी गुलाबजलमें कपड़ा भिगोकर उसके सिरपर रखती रही। सरकी पीड़ाके साथ ही कुछ हृदयकी पीड़ा भी कम हुई। पर रह-रहकर एक टीस-सी उठती रही—वीणाका हृदय मेरी भाभीके समान क्यों नहीं है और क्या कभी ऐसा नहीं हो सकेगा ?

- ६ -

भाभीने वीणाको बुलानेके प्रस्ताव किया ; पर शगुनने उसका विरोध किया—‘जब यहाँ उसे क्लेश होता है, तो बुलानेकी आवश्यकता ही क्या है ?’

‘आवश्यकता क्यों नहीं है ? वह इस वरकी बहू जो है। किसी प्रकार भी उसे यहीं अपने मनको प्रसन्न रखना होगा।’

‘नहीं, जब उसकी आनेकी इच्छा होगी, आवेगी, जबरदस्ती—’

‘तो फिर मैं तुम्हारी बहूको कैसे देखूँ ?’

‘पास ही तो घर है, जाकर देख लो।’

‘यह भी देखनेका कोई तरीका है ! यहीं बुलाऊँगी—मैंने गाड़ी भेज दी है।’

‘बुलाओ ; लेकिन जब तक वह यहाँ रहेगी, मुझे प्रवासी बनना पड़ेगा। भाभी, तुम नहीं जानती, वह यहाँ नहीं रह सकेगी। वह किसी—’

बात करते-करते शगुन सावधान हो गया और दूसरे कमरेमें कोचपर जाकर गिर पड़ा।

वीणाने सुना, शगुन बीमार है और उसकी एक भाभी आई है। सारे घरपर भाभीका ही अधिकार

है और शगुनपर भी। वीणाको उसने बुलाया था ; पर जब वह जानेको तैयार हुई, तो दूसरे नौकरने आकर कहा—‘बहूजी स्वयं ही आयँगी।’ वीणा गाड़ीपर बैठते-बैठते रुक गई।

इस बार वीणाको समुराल न जानेसे प्रसन्नता नहीं हुई, बल्कि उसके आत्म-सम्मानपर धक्का लगा—यह भाभी कौन है ? इस प्रकार अपमानित करनेका अधिकार उसे किसने दिया ? क्या शगुनको यह बात मालूम है और उन्हें अपनी भाभीकी यह बात अनुचित नहीं जान पड़ी ?

मुझे अपमानित करने ही के लिए वह बुलावेपर बुलावा भेजती है—मैं बहूको देखनेके लिए बहुत ही अधीर हूँ। और जब मैं जानेको तैयार हो गई तो कहला भेजती है—मत आओ, मैं खुद ही आऊँगी। और आज सप्ताह व्यतीत होनेको आया—आनेका अवकाश ही नहीं ! केवल मुझे लांछित करनेके लिए ही इस रहस्यकी रचना हुई थी। क्या इस रहस्यमें वे भी शामिल हैं ? अवश्य होंगे। सुनती हूँ, भाभीसे उनका बहुत प्रेम है—उन्हींपर क्यों, सारे घरपर भाभीका अधिकार है। मैं कुछ भी नहीं, मेरा उस घरपर तनिक भी अधिकार नहीं !

‘इस घटनाने एक बारगी वीणाके हृदयमें जाने कैसे सम्पूर्ण स्त्रीत्व जाग्रत कर दिया। सोचते-सोचते उसके आँसू आ गये। वह कहने लगी—अपराध उनका नहीं, मेरा ही है। सारी परिस्थिति उसके सम्मुख सजीव अवस्थामें घूमने लगी।

वह पतिके सम्मुख अपराधिनी है—बहुत बड़ी अपराधिनी है। जो बात पहले वह तनिक भी नहीं समझ सकी थी, आज अनायास ही सब-कुछ उसकी समझमें आ गया, और वह विकल हो उठी। व्यथासे उसका हृदय फटने लगा। मन चाहा, पतिके पैरोंपर गिरकर इन आँसुओं द्वारा सब-कुछ उसे समझा दे, उनसे क्षमा माँग ले।

अब माका घर उसे काटने लगा—चारों ओर

अभाव-ही-अभाव दीखने लगा। कई बार वह इस प्रकार विकल हो उठी कि मनमें आया कि मासे कह दे—मुझे मेरे घर भेज दो ; लेकिन साहस नहीं हुआ। माका भी तो अपमान है।

वीणा क्या करे ? उसे दिन-पर-दिन ऐसा प्रतीत होने लगा कि पति उससे बहुत दूर हुआ जा रहा है, और वह भाभी कैसी है—

उसने साहस करके धड़कते दिलसे कहा—‘मा, एक बार पुछवाओ ना। आखिर आई क्यों नहीं ?’

मा स्वयं भी बहुत चिन्तित थी। वीणाके परिवर्तनमें जितना ही उसे सन्तोष था, उतनी ही वह ससुरालवालोंकी उदासीनतासे दुखी थी। वीणाकी बात उसे उचित जान पड़ी। उसने उसी दिन खबर मँगाई। सासने कहला भेजा कि शगुन बीमार है, इसी कारण भाभी बहूको देखने नहीं आ सकी। किन्तु वीणाके बुलानेका कोई जिक्र नहीं किया। नौकरने अपनी ओरसे यह भी बतलाया—‘बहूजी शगुन बाबूकी तीमारदारीमें लगी रहती हैं। उनकी तबीयत अच्छी नहीं है।’

वीणाने सब-कुछ सुना। मुँह छिपाकर वह छतपर चली गई और फूट-फूटकर रोने लगी—उनकी बीमारीमें किसीको भी मेरी आवश्यकता प्रतीत नहीं होती ! भाभीकी तीमारदारी यथेष्ट है ! मैंने माना कि अपराध मेरा है। उनकी प्रेमपूर्ण बातोंसे मुझे लज्जा होती थी, एक प्रकारका भय लगता था ; किन्तु उन्होंने मुझे इस प्रकारका दण्ड क्यों दिया ? माके घर क्यों भेज दिया ? मेरी इच्छाके विरुद्ध वहीं रहनेकी मुझे आज्ञा क्यों नहीं दी ?

अब मेरे हृदयमें स्वतन्त्रताकी कीमत वैसी नहीं है, बल्कि वह किसीकी अधीनता चाहता है—केवल अपना ही अधिकार नहीं, किसी औरका अधिकार भी चाहता है। कितनी चेष्टा करती हूँ—वीणा भी तो इस वेदनाको दूर करनेमें असमर्थ है। क्षण - भरको सान्त्वना भी तो नहीं दे पाती है। देखती हूँ, उसे

बजानेमें अब सुख ही नहीं रहा और उस असफलतासे अधिक रंज मुझे उनकी नाराज़गीका है।

इसी उधेड़-बुनमें उसने बहुत-सा समय व्यतीत कर दिया। मा भी अपना मुँह लपेटे नीचे लेटी-लेटी सो गई। दोनोंका ही मन मलीन था—एक-दूसरेकी खबर कौन लेता ? आजकी संध्या सूनी ही समाप्त हो गई—घरमें चूल्हा भी नहीं जला।

- ७ -

वीणा पीड़ासे छटपटा उठी। खामोश पड़े रहना उसे असह्य हो गया, तो उन्मादिनी-जैसी अवस्था लेकर वह उठ खड़ी हुई। खिड़की खोलकर शगुनके घरकी ओर उसने दृष्टि डाली—यह फुलवारी है, और इसी फुलवारीके चबूतरेपर शगुन लेटा होगा। गर्मी बहुत है, भाभी पंखा करती होगी।

इस काल्पनिक चित्रने वीणाके हृदयमें हजार विच्छ्वोके एक साथ डंक मारने-जैसी पीड़ा उत्पन्न कर दी। वह बहुत ही विकल हो उठी। उसे उचित-अनुचितका ज्ञान ही न रहा। वे इतने समीप हैं, और मैं देखनेको भी तरसती हूँ ! वह मुझसे कितने ही नाराज़ क्यों न हों, जब मैं जाकर पैरोंपर गिरकर क्षमा माँगूंगी, तो प्रसन्न हो जायँगे।

उसने नीचे झाँककर देखा मा सो रही है। फिर धीरेसे घरके पीछेकी ओर जो जीना था, उसका दरवाज़ा खोला और साँस रोककर सीढ़ियाँ पार कर गई ; किन्तु आगे कदम रखनेका साहस नहीं हुआ। ससुरालके घरमें चाँदनी छिटकी थी। सीढ़ीपर से उसे साफ दिखलाई दिया—दुग्ध-जैसी श्वेत शय्यापर कोई लेटा है, शायद शगुन ही होगा, और पलंगके पास ही आरामकुर्सीपर जो लेटी है, उसकी साड़ीकी काली पाड़ साफ़ चमक रही है। वह अधिक खड़ी न रह सकी। हृदयकी व्यथा आँखोंके राह उफ़ानने लगी। शरीर काँपने लगा। जो बैठने-सा लगा। वेसुव-सी आकर वह गिर पड़ी और रोने लगी।

इस ज्वार-भाटेका वेग कम होनेपर उसने सोचा, क्या मेरी इन उँगलियोंमें अब इतना भी दम नहीं है, जो अपनी वीणाके द्वारा इस पीड़ाका—विरह-वेदनाका उन्हें अनुमान करा सकूँ ? क्यों नहीं है, मेरी एकमात्र सहायिका वीणा मेरे पास है, आज सारी शक्ति बटोरकर प्रयासका अन्त कर दूँगी—सम्पूर्ण कलाका कोष खाली कर दूँगी । उँगलियो ! धोखा न देना । आज तुम्हारी परीक्षा है मेरी वीणा ! अनजानमें ही इतने दिनों तक जिस लिए तेरी साधना की है, आज वह घड़ी आ गई है । देवताका वरदान या शाप तेरी सफलतापर ही निर्भर है । उसने वीणासे कारुणिक भंकार उत्पन्न करनेमें अपनी सारी शक्ति, सारी कला, हृदयकी सारी वेदना और सारी पीड़ा खर्च कर दी ।

वीणाकी भंकार सुनकर शगुन वेचैन हो गया—अपनेपर क्लृप्त रखना उसके लिए कठिन हो गया । इस अर्द्धरात्रिके समय वीणा इस विरह-रागसे किसके हृदयको रिम्मानेकी चेष्टा कर रही है ? आज एक बार सब-कुछ शगुन अपनी आँखोंसे देखेगा । ज़ीनेका द्वार अब भी खुला है । तनिक देर पहले सीढ़ियोंपर उसे किसी व्यक्तिकी छाया प्रतीत हुई थी । शगुन अपनेको रोक न सका । वरके सब लोग मीठी निद्रामें निमग्न थे । बीचमें कोई बाधा नहीं

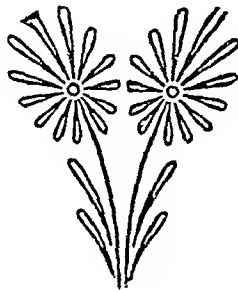
थी ; किन्तु फिर भी पैर काँप रहे थे, दिल धड़क रहा था । इसी अवस्थामें उसने वीणाके वरकी सीढ़ियाँ पार कीं । इतनी रात गये भी द्वार खुला है, इस विचारसे उसके काल्पनिक रहस्यकी पुष्टि हुई ।

किन्तु छतपर पहुँचकर उसने देखा, आँगनमें श्वेत चाँदनी फैली है और उसी चाँदनीमें भीगी हुई वीणा आँखें बन्द किये अपने रागमें तन्मय है । शगुन सब-कुछ भूलकर अपलक दृष्टिसे क्षणभंग देवकन्या-जैसी वीणाकी अपार रूपराशिको निहारता रहा । उसे ऐसा प्रतीत हुआ, मानो इस रागनीके साथ वीणाका कोमल हृदय टूटा-सा जा रहा है । इस संगीतके साथ उसके प्राण भी बहे जाते हैं । उसके शरीरकी सम्पूर्ण शक्ति इस मार्मिक रागमें समाप्त हुई जा रही है ।

छटपटाकर शगुनने वीणाकी वह साधना भंग कर दी । वीणाके कन्धेका स्पर्श करके बोला—‘वीणा !’ चौंकर वीणाने आँखें खोल दीं ।

साधना सफल हो गई । वरदानके लिए देवता सामने ही उपस्थित हैं । उसने चाहा, चरणोंपर माथा टेककर कहूँ—‘क्षमा ।’

किन्तु क्षमा-प्रार्थना कुछ हो नहीं सकी—पूर्व ही शगुनके आलिंगनने प्रार्थनाकी वेला खण्डित कर दी ।



भारतके विभिन्न प्रान्तोंकी महिलाएँ

श्री इंगरशी धरमशी सम्पद

अनेक सम्प्रदायों, जातियों, धर्मों, साहित्यों, भाषाओं, और लिपियोंमें विभक्त दीखनेवाले हमारे इस देशमें एकताकी एक छिपी धारा बहती है ! सूक्ष्मतासे देखनेसे जान पड़ेगा कि हिमालयसे कन्याकुमारी तक और कच्छसे आसाम तक भारतीय प्रान्तीय महिलाओंमें 'भारतीयत्व' का एक ही सूत्र, मालाकी विभिन्न मणियोंमें पिरोई डोरीके समान, व्यापक है।

यूरोपमें भी अनेक प्रान्त या देश हैं ; किन्तु संस्कृतिकी जो सूक्ष्म एकता भारतमें दीख पड़ती है, वह वहाँ नहीं। गार्गी, सावित्री, मैत्रेयी और सीताके आदर्श भारतीय महिलाओंके हृदयमें सर्वत्र मिलते हैं। प्रान्त-प्रान्तकी वेश-भूषा जुदी है, बोलियाँ जुदी हैं और रहन-सहन तथा रीति-नीति जुदी है, फिर भी महाभारत और रामायणके आदर्शोंसे निकली हुई प्रेरणा सूक्ष्मदृष्टाको सर्वत्र दीख पड़ती है।

इस लेखका उद्देश्य जुदे-जुदे प्रान्तोंकी स्त्रियोंकी विलक्षणताएँ और स्थिति दिखलाना है, इसलिए एकताके प्रश्नपर यहाँ केवल प्रासंगिक रूपसे ही चर्चा की गई है। उसपर तो पृथक् लेख ही लिखा जा सकता है।

बंगालकी महिलाओंमें शिक्षाने खूब उन्नति की है। उन्होंने यूनिवर्सिटीमें युवकोंके साथ प्रतियोगिता करके यह सिद्ध कर दिखाया है कि वे बुद्धिमें पुरुषोंसे किसी भी भाँति कम नहीं हैं। कई बार तो उन्होंने पुरुषोंको परास्त भी किया है। बंग-महिलाओंमें प्रेजुएटोंकी संख्या दिन-ब-दिन बढ़ रही है। बंगालने अनेक शक्तिमती महिलाओंको जन्म दिया है। श्रीमती सरोजिनी नायडू, सरलादेवी चौधरानी, स्वर्णकुमारी देवी, मिसेज़ घोषाल आदि अनेक नाम तो भारत-भरमें विख्यात हैं। लेखिकाओंमें स्वर्णकुमारी देवी, निरुपमा देवी, अनुरूपा देवी, शैलवाला देवी, सीता देवी,

शान्ता देवी आदि अनेक महिलाएँ प्रसिद्ध हैं। बंगालमें स्त्री-शक्ति दिन-प्रति-दिन विकसित होती जा रही है।

बंगालकी स्त्रियाँ शान्त, सुशील और सुगृहिणी होती हैं ; परन्तु अभी तक औसतमें वे शिक्षामें बहुत पिछड़ी हुई हैं। बंगालमें वर-विक्रय—दहेज—की प्रथा बहुत खराब है। इससे गरीब माता-पिताकी योग्य कन्याके लिए भी वर नहीं मिलता। अच्छे वर अपनी लम्बी-चौड़ी कीमत आँकते हैं और कन्याके पितासे वसूलते हैं। कुलीनोंमें बहु-विवाहका चलन अब बंगालमें बहुत कम हो गया है। बंगालमें ब्राह्मसमाजी और शिक्षित वर्गके लोग अपनी कन्याओंको उच्च शिक्षा देते हैं। बाकी समाज कन्याओंको नाममात्रकी शिक्षा ही देता है।

बंगालकी स्त्रियोंमें पर्दा है। मध्यम श्रेणीकी स्त्रियाँ तो अन्तःपुरमें सुरक्षित रहती हैं। इससे स्त्रियोंकी उन्नतिमें काफी बाधा पड़ती है। दीर्घ काल तक मुसलमानी राज्य रहनेके कारण यह प्रथा बंगालके सामाजिक जीवनमें बहुत गहराई तक पैठ गई है। इससे उनका सार्वजनिक जीवन विकसित नहीं हो पाता और स्वास्थ्यको भी हानि पहुँचती है। कन्याओंके लिए बंगालमें अनेक संस्थाएँ स्थापित हैं। यद्यपि इस समय स्त्री-शिक्षाके विषयमें खूब जाग्रति हो रही है, फिर भी समूचे प्रान्तकी स्त्रियोंकी संख्या देखकर यही कहना पड़ेगा कि अब तक स्त्रियाँ बहुत पिछड़ी हुई हैं। मध्यम वर्गके बंगाली गृहस्थोंकी कन्याएँ बंगला भाषा सीखती हैं, अंगरेज़ी तो बहुत थोड़ी संख्यामें पढ़ती हैं। ब्राह्मसमाजकी स्त्रियाँ खूब सुशिक्षित हैं ; किन्तु उनमें सादगी और हिन्दू-स्त्री-मुलभ मितव्ययता नहीं होती, यह शिकायत सुननेमें आती है। बंगालकी शिक्षित स्त्रियाँ सीना-पिरोना, काढ़ना, कला, संगीत,

चित्रकला आदिमें समुचित प्रगति नहीं कर सकीं।

बंगालके ग्रामोंकी स्त्रियाँ तो अभी तक बहुत पीछे हैं। उनमें स्त्री-शिक्षण-संस्थाओंकी कमी है। पीढ़ी-दर-पीढ़ीसे घरका काम-काज करना, लड़कोंको देखना-भालना, देवता और ब्राह्मणोंमें श्रद्धा रखना, अज्ञान और अन्ध-श्रद्धामें रहना, वस इसीमें बंगालकी ग्रामीण स्त्रियोंका जीवन व्यतीत होता है। ग्रामोंकी स्त्रियोंके सम्बन्धमें नगर - निवासी और सरकार दोनों ही लापरवाही दिखाते हैं।

बिहार-उड़ीसाकी स्त्रियाँ बंगालकी स्त्रियोंसे बहुत ज्यादा पीछे हैं। बंगालमें रानी भवानी-जैसी महान परोपकारिणी देवियोंने अपने महान कार्योंसे बंगालियोंका नाम उजागर किया था। बिहार-उड़ीसामें ऐसी कोई महान महिला नहीं हुई। बिहारमें पर्दा-प्रथा अत्यन्त उग्र रूपमें प्रचलित है, इसलिए किसी सार्वजनिक कार्यमें स्त्रियोंका शामिल होना बहुत मुश्किल है। अभी हालमें कुछ-कुछ पर्दा उठना शुरू हुआ है। पटनामें लड़कियोंकी शिक्षाके लिए कुछ जाग्रति हुई है; लेकिन दूसरे शहर पिछड़े हुए हैं। ग्रामोंमें स्त्री-शिक्षाका सर्वथा अभाव है। शिल्प, कला, उद्योग, संगीत, साहित्य, चित्रकला आदिमें बिहारी स्त्रियाँ बंगालसे बहुत अधिक पीछे हैं। और उड़ीसा तो बिहारसे भी गया-बीता है। वह अत्यन्त गरीब प्रान्त है। दुर्भिक्ष और महानदीकी प्रलयकारी बाढ़ोंके समय फटे-चिये वस्त्रोंसे शरीर ढँकनेकी चेष्टा करती हुई उड़िया स्त्रियाँ और भूखे बालक कभी-कभी हमारी नज़र पड़ जाते हैं। उड़िया प्रान्तकी ख़ूराक भी ऐसी है, जिससे स्त्रियाँ सशक्त नहीं होती। उड़ीसाकी घनवान श्रेणीकी स्त्रियाँ भी पर्दा रखती हैं।

बिहारकी अपेक्षा संयुक्त-प्रान्तकी स्त्रियोंने अधिक उन्नति की है। आगरा-विश्वविद्यालयकी परीक्षाओंमें विद्यार्थिनियोंके नाम अब बराबर देखनेमें आते हैं। शहरोंमें लड़कियोंके लिए स्कूल भी हैं। इलाहाबाद, बनारस, लखनऊ, कानपुर आदिमें लड़कियोंके

कालेज हैं। प्रयागमें महिला-विद्यापीठ और देहरादूनमें कन्या-गुरुकुल भी है। लेकिन कसबों और ग्रामोंमें स्त्री-शिक्षा अभी तक बहुत पिछड़ी है। युक्तप्रान्तमें धनी श्रेणियोंकी स्त्रियोंके पहगवेमें आजकल बम्बैया साड़ियोंका चलन चल गया है। यहाँ भी पर्दा बहुत कड़ा है, यद्यपि बिहार-जैसा नहीं है। पिछले सत्याग्रह-युद्धने पर्देके तोड़नेमें बहुत मदद पहुँचाई। अनेक वकीलों, अहलकारों और अफसरोंकी स्त्रियाँ इलाहाबाद जैसे शहरोंमें सार्वजनिक जीवनमें भाग लेती हुई दीख पड़ती हैं। परन्तु नेहरू-परिवारको छोड़कर ऐसी देवियाँ नहीं दीख पड़तीं, जो समूचे देशमें विख्यात हों। काशी-विश्वविद्यालयमें पढ़नेवाली विद्यार्थिनोंकी संख्या भी बहुत कम है। काशीमें हजारों विद्यार्थी पंडितोंके पास संस्कृत सीखते हैं; लेकिन उनमें स्त्री एक भी नहीं। लखनऊ-विश्वविद्यालयसे प्रतिवर्ष निकलनेवाले ग्रेजुएटोंमें भी स्त्रियोंकी संख्या बहुत थोड़ी होती है। अलीगढ़-विश्वविद्यालयमें स्त्री ग्रेजुएट होना तो असम्भव ही है। प्रान्तमें पाँच-पाँच विश्वविद्यालयोंके होते हुए भी छात्राओंकी संख्या बहुत थोड़ी होती है।

युक्तप्रान्तके ग्रामोंकी दशा भी बंगाल-जैसी ही है। अत्यन्त गरीबी, वहम, अन्ध-श्रद्धा आदि भयंकर रोग सर्वत्र प्रचलित हैं। स्त्री-शिक्षा या स्त्रियोंके सार्वजनिक जीवन जैसी कोई चीज़ ग्रामोंमें नहीं है।

शहरोंमें स्त्रियाँ पत्र भी पढ़ती हैं, संसारमें क्या हो रहा है, इसकी खबर भी कुछ स्त्रियाँ रखती हैं; लेकिन ग्रामोंकी स्त्रियोंमें अखबारोंका प्रवेश नहीं। शहरकी स्त्रियोंमें टीम-टाम, सिनेमा-तमाशोंका शौक और विलासिता बढ़ रही है। हाँ, ग्रामोंमें दरिद्रताके कारण अभी तक यह दुरुग्न प्रवेश नहीं कर सका है। हिन्दी भाषाके उत्कर्षमें संयुक्त-प्रान्तकी स्त्रियोंका विशेष भाग नहीं। साहित्य-सम्मेलनकी परीक्षामें कुछ छात्राएँ सम्मिलित होती हैं। काशी-नागरी-प्रचारिणी सभाके व्यवस्था-मंडलमें कोई भी स्त्री नहीं।

साहित्य-क्षेत्रमें घुसनेका प्रयत्न थोड़ी ही देवियोंने किया है। कुछ बड़े नगरोंमें स्त्री-सभाएँ हैं, जिनसे यदाकदा स्त्री-जीवन चमक उठता है ; पर स्थायी रूपसे स्त्री-जीवनका विकास नहीं दीखता।

राजपूतानेकी स्त्रियाँ भूतकालमें अपनी वीरताके लिए प्रसिद्ध थीं ; किन्तु अब वह स्थिति नहीं रही। राजपूत स्त्रियाँ अपने हाथों अपने पुत्र और पतिको सजाकर रणभूमिमें भेजती थीं, मौका पड़नेपर स्वयं खड्ग उठाती थीं, कुलकी मर्यादाके लिए जौहर करती थीं और शेर-चीतेका शिकार करती थीं। लेकिन अब अंगरेजी राज्य और मेशीनगनोंके युद्धमें वे सब बातें गायब हो गईं। अब राजपूत नारियाँ अन्तःपुरके भीतर ही अपनी वीरता दिखाती हैं। उनमें शिक्षा, सुधार, उन्नति और नवीन विचारोंका प्रवेश नहीं। सार्वजनिक जीवनका तो प्रश्न ही व्यर्थ है। समूचे राजपूतानेमें 'स्त्री-मंडल' जैसी बड़ी संस्था नहीं मिलेगी। राजा सब पुराने विचारके हैं। रानियाँ उनसे भी ज्यादा। जब राजाओंकी राजधानियोंमें ही स्त्री-जीवन नहीं है, तब ग्रामोंकी बात ही क्या ?

मध्य-भारत (ग्वालियर, इन्दौर, भोपाल आदि) में स्त्रियोंका स्थान राजपूतानेसे ऊँचा है। ग्वालियरका शासन आजकल रीजेन्ट महारानीके हाथमें है। भोपालमें कई पीढ़ियोंसे वेगमका राज्य था। ग्वालियर, इन्दौर आदिके शासनकर्ताओंमें पढ़ेकी प्रथा न थी, इसका प्रभाव प्रजापर भी पड़ा। इन स्थानोंमें स्त्री-शिक्षाकी कुछ संस्थाएँ भी हैं और अपेक्षाकृत स्त्री-स्वतन्त्रता भी है। विश्वविद्यालयकी ग्रेजुएट महिलाएँ तो कम मिलती हैं ; लेकिन साधारण तौरपर सार्वजनिक जीवनमें भाग लेनेवाली स्त्रियाँ मिल जाती हैं। मुसलमानी राज्य होनेके कारण भोपालमें कड़ा परदा रहा है, इसलिए स्त्रियोंकी उन्नति भी कुछ नहीं हुई। ग्वालियरमें लड़कियोंको कला-कौशल सिखानेकी सुविधा भी है ; लेकिन ग्रामोंकी दशा बहुत खराब है। वे अज्ञान और अन्धकारमें ही हैं।

मध्य-प्रान्त और बरारमें महाराष्ट्रोंकी प्रधानता है, जिनमें कभी परदा नहीं रहा। दूसरी बड़ी जाति है आदिम जाति गोंड। नागपुरमें स्त्री-संस्थाएँ हैं, और वहाँके विश्वविद्यालयमें स्त्री ग्रेजुएटोंकी संख्या भी काफी मिल जाती है। जबलपुर, अमरावती, अकोला आदिमें भी शिक्षाकी साधारण संस्थाएँ हैं ; लेकिन महिलाओंकी कोई विशेष प्रगति नहीं दीख पड़ती। स्त्रियाँ बाहर निकलनेके लिए उत्सुक हैं, असहयोगके समय वे बाहर निकली भी थीं ; परन्तु उन्हें बाहर निकलनेके अवसर नहीं मिलते। शिक्षित वर्ग अपनी लड़कियोंको उच्च शिक्षा देना चाहता है। अभी बहुत उन्नतिकी आवश्यकता है। ग्रामोंकी दशा तो अन्य प्रान्तों जैसी ही है।

पंजाब वीरांगनाओंका देश है। सिख स्त्रियाँ बड़ी पानीवाली होती हैं। वे भारतके सभी प्रान्तोंकी स्त्रियोंसे सशक्त और तेजस्विनी हैं। १६२०-२२ के अकाली-युद्धमें सिख स्त्रियोंने मोर्चा लेकर अपनी वीरताका परिचय दिया था। सत्याग्रह-आन्दोलनमें भी उन्होंने भाग लिया था। पंजाबी स्त्रियोंमें भी परदा उठ चुका है, अतः वे खुलेआम प्रतियोगिता करती हैं। पंजाब आर्यसमाजका प्रधान केन्द्र है। वहाँ आर्यसमाजने अनेक शिक्षण संस्थाएँ स्थापित की हैं, जिनमें कुछ स्त्रियोंके लिए भी हैं। आर्यसमाजने स्त्रियोंकी जाग्रतिमें काफी हिस्सा लिया है। इतिहासमें भी सिख स्त्रियाँ यश प्राप्त कर चुकी हैं। धार्मिक उत्सवों और मेलोंमें सिख स्त्रियाँ बराबर भाग लेती आती हैं। पंजाबी स्त्रियाँ स्वयं अपनी रक्षा करनेमें कुशल हैं। वे अकेली मुसाफिरी करती हैं। सिख स्त्रियाँ शिक्षामें विशेष आगे नहीं हैं ; किन्तु साधारण श्रेणीकी सिख स्त्रियाँ ग्रन्थसाहबका पाठ कर लेती और गुरुमुखी लिख लेती हैं। मुसलमान स्त्रियाँ कड़े परदेमें रहती हैं, फिर भी वे शरीरसे सशक्त हैं और शिक्षामें बहुत ज्यादा पिछड़ी हुई हैं।

पंजाबमें आर्यसमाजने स्त्रियोंकी शिक्षाके लिए

कई संस्थाएँ खोल रखी हैं। सरकारकी ओरसे भी कुछ संस्थाएँ हैं। जालंधरमें लाला देवराज द्वारा स्थापित कन्या-महाविद्यालय एक महत्वपूर्ण संस्था है। लाहौर, अमृतसर, मुल्तान, जालंधर आदि नगरोंके सार्वजनिक जीवनमें भी स्त्रियाँ कुछ-कुछ भाग लेती हैं। साधारण तौरपर पंजाबकी स्त्रियोंके शिक्षित होते हुए भी उनमें ऐसी स्त्रियाँ नहीं हैं, जो सारे देशमें प्रसिद्ध हों।

सरहद प्रान्तकी स्त्रियाँ चंडी-जैसी होती हैं। उनमें से अनेक बन्दूक चला सकती हैं। प्रायः सभी स्त्रियाँ छुरे बाँधती हैं। अकेले-दुकेले मुसाफिरोको लूट लेनेमें भी वे भाग ले सकती हैं। वे सब सशक्त और बलवान होती हैं। मुसलमान होनेपर भी उनमें परदा नहीं है। पहाड़ोंपर घूमने-फिरनेमें भी वे निडर हैं। हाँ, शिक्षा और संस्कृतिसे वे कोसों दूर हैं। उनमें किसी प्रकारकी ललित-कलाओंका भी अभाव है। वहाँकी स्त्रियाँ अपनी स्वतन्त्रताका अभिमान रखनेवाली हैं।

बम्बई-प्रान्तकी स्त्रियाँ अन्य प्रान्तोंकी स्त्रियोंसे उन्नतिमें कहीं ज्यादा आगे बढ़ी हुई हैं। वे सार्वजनिक जीवनमें भी खूब भाग लेती हैं। बम्बई नगर भारतीय व्यापारका बड़ा केन्द्र है, वहाँ धनिकोंकी भी बहुतायत है, इसलिए उनकी स्त्रियोंमें टीम-टाम और फैशन बहुत है। अच्छे-से-अच्छा और नये-से-नया फैशन उनमें मिलेगा। सार्वजनिक जीवनमें भी यहाँकी स्त्रियोंको अन्य सब प्रान्तोंसे अधिक सुविधा है। बम्बईमें पारसी, गुजराती—माटिया, कच्छी, खोजा आदि—तथा महाराष्ट्र बसते हैं। पारसी जाति पढ़ी-लिखी और सुधरी हुई है। इन सब जातियोंकी स्त्रियाँ मिलकर सार्वजनिक जीवनमें भाग लेती हैं। सत्याग्रहमें उन्होंने बड़ा प्रशंसनीय कार्य किया था।

गुजरातमें वड़ौदाके महाराजने स्त्री-शिक्षाके लिए बहुत प्रयत्न किया है। उन्होंने अनेकों संस्थाएँ खोली हैं। महारानी वड़ौदा भी बराबर स्त्रियोंके सार्वजनिक

जीवनमें भाग लेती हैं। बम्बई-विश्वविद्यालयकी वार्षिक परीक्षाओंमें भी स्त्री ग्रेजुएटोंकी संख्या अन्य प्रान्तोंसे अधिक रहती है। वनिता-विश्राम, गुजराती हिन्दू स्त्री-मंडल, सेवा-सदन आदि कई स्त्री-संस्थाएँ बम्बईमें काम कर रही हैं। पूनामें कर्वेका महिला-विश्वविद्यालय भारत-भरमें अपने ढंगकी एक ही संस्था है।

अहमदाबादमें स्त्रियाँ स्वतन्त्रतापूर्वक सार्वजनिक जीवनमें भाग लेती हैं। श्रीमती विद्यागौरी नीलकण्ठने स्त्रियोंकी जाग्रतिके लिए बहुत बड़ा प्रयत्न किया है। उनकी स्थापित की हुई कई संस्थाएँ काम कर रही हैं। गुजरातका स्त्री-जीवन किसी हद तक स्वतन्त्र है। गुजराती स्त्रियोंकी साड़ीकी नक़ल तमाम हिन्दुस्तान करता है। सूरतसे राजकोट तककी स्त्रियोंकी सार्वजनिक प्रवृत्ति थोड़ी-बहुत एक-सी है। वहाँ स्त्री-मंडल और स्त्री-संस्थाएँ भी हैं। शिक्षामें भी उन्नति हो रही है। काठियावाड़ी स्त्रियाँ गुजराती स्त्रियोंसे पीछे हैं। कच्छ तो और भी पिछड़ा है। महाराष्ट्रकी स्त्रियाँ भी परदा नहीं करती। शिक्षामें भी वे गुजराती स्त्रियोंसे बढ़कर हैं; पर सार्वजनिक जीवनमें गुजराती स्त्रियोंसे कम भाग लेती हैं; लेकिन उनमें उतना फैशन नहीं है। महाराष्ट्रकी स्त्रियाँ अपनी सादगी, मितव्ययता और घरोंकी सफाईके लिए प्रसिद्ध हैं।

सिन्धकी स्त्रियाँ भी प्रगति कर रही हैं। बम्बईकी सुशिक्षित स्त्रियोंकी भाँति वे भी सार्वजनिक जीवनमें भाग लेने लगी हैं। सिन्धकी आमिल जातिकी स्त्रियोंमें काफ़ी सुधार हुआ है। परदा-प्रथा उठ गई है। यद्यपि आमिलोंमें अब तक बर-विक्रयकी कुप्रथा चालू है। कराचीमें लड़कियोंके हाई स्कूल हैं। गत वर्ष अखिल भारतीय महिला-परिषदका अधिवेशन भी कराचीमें हुआ था।

मदरासमें भी परदा-प्रथा नहीं थी। वहाँकी स्त्रियोंमें साधारण उन्नति हो रही है। विश्वविद्यालयकी

परीक्षाओंमें स्त्री प्रेज्युएटोंकी संख्या भी काफी दीखती है। सार्वजनिक जीवनमें भी स्त्रियाँ भाग लेती हैं, परन्तु बम्बईसे कम। कुछ स्त्री-संस्थाएँ भी कार्य कर रही हैं; लेकिन वहाँ बम्बईकी तरह फैशनकी बला नहीं है। यद्यपि मदरासमें पंजाब-जैसी वीरांगनाएँ नहीं हैं, फिर भी वहाँकी स्त्रियाँ अपनी यथोचित मर्यादा रखती हैं। बड़े नगरोंमें स्त्री-शिक्षण-संस्थाएँ भी हैं; लेकिन पुरुषोंको देखते हुए स्त्रियाँ बहुत पीछे हैं। श्रीमती सुब्बारायन, श्रीमती रुक्मिणी लक्ष्मीपति और श्रीमती मुथुलक्ष्मी रेडी आदि स्त्रियोंने अपने कार्योंसे काफी यश प्राप्त किया है; लेकिन वहाँकी महिलाओंके सार्वजनिक जीवनमें अभी काफी उन्नतिकी जरूरत है।

निजाम राज्यमें महिलाओंकी कोई संस्था नहीं। मुसलमानी राज्यमें स्त्रियाँ बराबर पिछड़ी हुई दीखती हैं। वहाँ स्त्रियोंको सार्वजनिक कार्योंमें भाग लेनेके अवसर नहीं मिलते। हाँ, निजामकी युवराज्ञी सुशिक्षिता हैं, और अब उन्होंने स्त्री-शिक्षाके लिए आवाजें उठाई हैं।

इसके विरुद्ध मैसूर राज्य स्त्री-शिक्षामें खूब आगे बढ़ा हुआ है। इस राज्यमें स्त्री-शिक्षाके लिए अनेक संस्थाएँ स्थापित हैं। स्त्रियोंको उच्च शिक्षाकी सुविधा है। मैसूरकी स्त्रियोंमें परदा नहीं है। वे सार्वजनिक जीवनमें भी भाग लेती हैं।

स्त्री-शिक्षामें भारतमें सबसे आगे है त्रावणकोर राज्य। इस राज्यमें स्त्री-शिक्षाकी अनेकों संस्थाएँ हैं। त्रावणकोरमें प्रत्येक हजार स्त्रियोंमें साक्षर स्त्रियोंकी संख्या २२५ है, जब कि ब्रिटिश भारतमें हजारमें केवल ६० स्त्रियाँ ही साक्षर हैं। स्त्री-शिक्षामें दूसरा नम्बर बड़ौदाका और तीसरा मैसूरका है।

कोचीन, त्रावणकोर, पददुकोटा और मैसूर राज्य सारे राज्योंसे प्रगतिशील हैं। स्त्री-शिक्षा और राज्यकी उदारतामें ये राज्य सबके आगे हैं। इनमें स्त्रियोंको शिक्षा और स्वतन्त्रता प्राप्त है। सांसारिक रीति-रिवाजमें भी स्त्रियाँ बहुत-कुछ स्वतन्त्र हैं। मलाबारमें दौहित्र अथवा भांजेके उत्तराधिकारकी प्रथा है।

मदरासकी ब्राह्मण स्त्रियाँ काफी सुघड़ होती हैं। ग्रामोंमें भी उनके घर और शरीर दोनों ही साफ-सुथरे रहते हैं। अपने घरोंके अगले भागको वे आलीपनसे खूब सजाती हैं, इससे ग्रामीण घर भी सुन्दर दिखाई देते हैं।

अब रहीं ब्रह्मदेशकी स्त्रियाँ। वे भारतके अन्य सब प्रान्तोंसे अधिक स्वतन्त्र हैं। वे इच्छानुसार विवाह करती हैं, व्यापार करती हैं, दूकानें रखती हैं और जीवनके प्रत्येक कार्यमें मर्दोंके बराबर भाग लेती हैं। वे बहुत किफायतशार और सुगृहिणी होती हैं। बहुधा सांसारिक बातोंमें पुरुषोंसे स्त्रियाँ अधिक चतुर हैं। अंगरेजी शिक्षामें पीछे होनेपर भी वर्मी स्त्रियोंकी काफी बड़ी संख्या अपनी भाषा पढ़ना-लिखना जानती है। वे आने-जानेमें स्वतन्त्र और अपनी रक्षा करनेमें कुशल होती हैं। बहुतेरी स्त्रियोंकी अपनी अलग सम्पत्ति और दूकानें आदि हैं। वे अत्यन्त साफ-सुथरी होती हैं। हाँ, वे टीम-टाम और फैशनकी बहुत शौकीन हैं।

यह है भारतके विभिन्न प्रान्तोंकी स्त्रियोंकी स्थितिकी रूप-रेखा। यूरोप, अमेरिका और जापानकी स्त्रियोंकी तुलनामें भारतीय स्त्रियाँ बहुत पिछड़ी हुई हैं। यूरोपकी स्त्रियाँ जीवनकी प्रत्येक बात और काम-धन्धेमें पुरुषोंकी बराबरी करती हैं। वहाँ ६० प्रतिशत स्त्रियाँ पढ़ी-लिखी हैं। फौजको छोड़कर सर्वत्र उनका प्रवेश है। वे अनेक धन्धोंमें पुरुषोंकी बराबरी कर सकती हैं। हमारी भारतीय स्त्रियाँ केवल ४ प्रति सैकड़ा शिक्षित हैं। वे घरकी चहारदीवारीके भीतर ही स्वतन्त्र हैं। वे प्रत्येक बातमें पुरुषोंके अधीन हैं। वहम, अन्ध-श्रद्धा, भीरुता और अज्ञानसे भारतीय स्त्री-समाज घिरा हुआ है। हमारे शास्त्र भी 'न स्त्री स्वातन्त्र मर्हती' (स्त्री स्वतन्त्रताके योग्य नहीं) की पुकार लगाते हैं। रूसमें भी पन्द्रह वर्ष पूर्व स्त्रियोंकी ऐसी ही स्थिति थी; किन्तु सोविएट सरकारने इतने थोड़े समयमें ही सत्तर-अस्ती लाख

स्त्रियोंको कारखानोंमें कामपर लगा दिया। उन्हें प्रत्येक बातमें पुरुषोंके बराबर हक मिले हैं। वे फौज तकमें भर्ती होती हैं। अब उन्हें घरके तमाम कार्योंसे छुट्टी मिल गई है। बालकोंके लालन-पालनका भार राज्यने अपने ऊपर ले लिया है। स्त्रियोंके लिए वाचनालय, शिक्षण संस्थाएँ, रेडियो, अच्छे घर, अच्छे बगीचे, घूमने-फिरनेके स्थान, सिनेमा, लेक्चर हॉल, नाटक आदिका प्रबन्ध सरकार करती है। उन्हें रसोई बनाने तकसे छुटकारा मिल गया है, क्योंकि सरकारी अथवा सहयोगी समितियोंके रसोईघरोंसे उन्हें बहुत थोड़े खर्चमें बना-बनाया भोजन मिल सकता है। स्त्रियोंकी शिक्षा, प्रवास, अभ्यास, भोजन और डाकटरी

सहायता आदिके लिए राज्य बहुत-कुछ करता है।

अपने यहाँ इस प्रकारकी एक भी सुविधा नहीं। हमारा हिन्द अत्यन्त गरीब है। हमारी सरकार शिक्षापर काफ़ी व्यय नहीं करती। स्त्री-शिक्षाके लिए हजारों संस्थाओंकी जरूरत है। धार्मिक अन्ध-विश्वास, वहम और अज्ञानकी निवृत्ति शिक्षाके बिना नहीं हो सकती। सरकार फौज और सिविल सर्विसपर मोटी रकम खर्च करती है; किन्तु स्त्री-शिक्षाके लिए खर्च करनेका उसे योग ही नहीं मिलता, इसलिए हमारी स्त्रियोंका बहुत बड़ा भाग अज्ञान रहता है। जापान-जैसा देश भी बीस वर्षमें ८७ प्रतिशत स्त्रियोंको शिक्षित बनानेमें समर्थ हुआ है।

विवाहका भविष्य

श्री चन्द्रगुप्त विद्यालंकार

मानव-जातिके भविष्यके सम्वन्धमें मि० एच० जी० वेल्सने एक भयपूर्ण सम्भावना, काफ़ी समय हुआ, प्रकट की थी। वेल्स महोदयका कहना था कि मानव-जातिके प्राचीन इतिहासमें दो बार पीले और लाल खतरे, हूण और गाल लोगोंके रूपमें, अचानक आ प्रकट हुए थे। किसीने कल्पना भी नहीं थी कि वे इतने दुर्दमनीय सिद्ध होंगे कि उनके द्वारा सुसंगठित सभ्य साम्राज्योंका भी विनाश हो जायगा; मगर उन असंख्य हूणों और गाल लोगोंने एशिया तथा यूरोपके अनेक महाशक्तिकाली साम्राज्योंको अनायास ही तहस-नहस कर दिया था। ठीक उसी तरह आजकी सभ्य मानव-जातिके सम्मुख एक नया खतरा उपस्थित हो सकता है, और इस खतरेकी सम्भावना एक बहुत ही अचिन्त्य और अकल्पनीय दिशासे है। महान ऐतिहासिक वेल्सका कहना है कि यह असम्भव नहीं कि वर्तमान युगका नारी-जाग्रति-आन्दोलन कभी इतना भयंकर और उग्र रूप धारण कर ले कि उसके सम्मुख

पुरुषोंकी बनाई हुई अब तककी सम्पूर्ण सभ्यता ही नष्ट-भ्रष्ट हो जाय।

वर्तमान युगकी स्त्रियोंका समानाधिकार-आन्दोलन आगे चलकर क्या रूप धारण कर लेगा और उसके द्वारा पुरुषोंकी बनाई हुई अब तककी सम्पूर्ण सभ्यता तथा सम्पूर्ण मर्यादाएँ कभी तहस-नहस हो जायँगी, इसपर विचार करना मेरे इस लेखका उद्देश्य नहीं है। एच० जी० वेल्सकी सम्भावनाका उल्लेख मैंने केवल इसी उद्देश्यसे किया है कि उसके द्वारा स्त्रियोंके समानाधिकार-आन्दोलनकी गम्भीर विराटताका अन्दाज़ा लगाया जा सके।

इस नारी-जाग्रति-आन्दोलनका एक परिणाम तो स्पष्टरूपसे दिखाई दे रहा है, और वह यह कि आधुनिक स्त्री अब पुरुषके अधीन होकर नहीं रह सकती। वह सहयोगिनी और मित्र होना भले ही स्वीकार कर ले; परन्तु पुरुषके शासनके नीचे रहना उसे सहन न होगा। मानव-जातिके इतिहासमें आज तक

कभी ऐसा समय नहीं आया, जब स्त्री और पुरुष दोनों एक ही दर्जेपर, एक ही समता (Level) पर रहे हों। आज तक कभी स्त्री और पुरुषका कार्यक्षेत्र भी एक ही नहीं रहा। अधिकांश देशों, जातियों और सम्प्रदायोंमें स्त्री पुरुषके अधोन रही है, उसके अनुशासनमें रही है और कतिपय उदाहरणोंमें, जिन्हें अपवाद ही कहना चाहिए, कहीं-कहीं और कभी-कभी स्त्रियोंने पुरुषोंको अपने अधोन भी रखा है। संसारके इतिहासमें यह पहला ही समय आयगा, जब मानव-समाजमें पुरुष और स्त्री दोनोंका एक ही दर्जा, एक-सी ज़िम्मेदारियाँ और एक ही कार्यक्षेत्र बन जायगा।

स्त्री और पुरुषकी इस समस्थितिका विवाहकी संस्थापर सीधा प्रभाव पड़ना विलकुल स्वाभाविक और अवश्यम्भावी है। विवाह करके नारी पुरुषकी प्रधानता स्वीकार कर लेती है। वह उसकी सहयोगिनी और सहायिका बन जाती है। परिवारमें प्रधानता पति या पिताकी ही रहती है, पत्नी या माताकी नहीं।

सम्भवतः विवाहकी प्रथा ही मानव-जातिकी एकमात्र ऐसी प्राचीनतम प्रथा है, जो सैकड़ों शताब्दियोंके धीरे-धीरे जानेपर भी आज तक कायम है। मानव-जातिकी अन्य सभी प्रथाओं और संस्थाओंमें बीसियों क्रान्तिकारी परिवर्तन आ चुके हैं; परन्तु विवाहकी संस्था आज तक भी उसी तरह कायम है, जिस तरह वह वैदिक युगमें थी। इस संस्थामें भी थोड़े-बहुत हेर-फेर और परिवर्तन अवश्य होते रहे हैं; पर विवाह-प्रणालीका आधारभूत सिद्धान्त आज तक भी स्थिर है। परन्तु आज जब नारी पुरुषसे समानाधिकारका दावा करने लगी है और जीवनके प्रत्येक पहलूमें वह पुरुषके साथ-साथ कन्धसे कन्धा मिलाकर खड़ी होनेको तैयार है, तो प्रतीत होता है कि विवाहकी इस प्राचीनतम प्रथाका भविष्य भी खतरेसे खाली नहीं रहा।

यह तो स्पष्ट है कि पारिवारिक जीवनके प्राचीन आदर्श आज कायम नहीं रह सकते। प्राचीन परिवारोंमें बहुपत्नी-प्रथा आदिकी जो बुराईयाँ थीं, उनकी बात में नहीं कर रहा हूँ। मेरा अभिप्राय तो यह है कि प्राचीन आदर्श परिवारमें स्त्रीका स्थान 'घरके अन्दर' समझा जाता था, और आजकी स्त्री

उस सिद्धान्तको माननेको तैयार नहीं है। प्राचीन परिवारमें स्त्री आर्थिक दृष्टिसे अपने पतिके आश्रित रहती थी, वह स्वयं उपार्जन नहीं कर सकती थी। आजकी स्त्री कमसे कम अपनेमें इतनी सामर्थ्य अवश्य उत्पन्न कर लेना चाहती है कि आवश्यकता पड़नेपर वह स्वयं धनोपार्जन कर सके। कौन जानता है कि कल वह आर्थिक दृष्टिसे भी पूर्णतया स्वावलम्बी हो जानेकी माँग न करने लगेगी।

इस लेखमें बहुत संक्षेपसे मैं यह विचार करनेका प्रयत्न करूँगा कि स्त्रियोंके दृष्टिकोणों और आकांक्षाओंमें इतना असाधारण परिवर्तन आ जानेका विवाह-संस्थापर कैसा प्रभाव पड़ेगा और विवाहका वर्तमान रूप यदि नष्ट ही हो गया, तो उस समय समाजके सम्मुख जो नई समस्याएँ पैदा होंगी, उनको हल किस तरह किया जा सकेगा।

पुरुष विवाह क्यों करना चाहता है, इसका उत्तर अधिकांश उदाहरणोंमें इन्हींमें से कोई मिलेगा :—

(क) जीवन-संगी प्राप्त करनेके लिए।

(ख) सन्तान और सम्भोगकी लालसासे।

(ग) इस इच्छासे कि पत्नी उसकी सेवा करेगी, उसे सुख पहुँचायेगी और उसका खयाल रखेगी।

(घ) एक व्यक्ति (पत्नी) पर अपना स्थायी स्वत्व जमाये रखनेकी अभिलाषासे।

स्त्री विवाहकी प्रथाको क्यों सहन कर लेती है, इसके निम्न-लिखित कारण हो सकते हैं :—

(क) सन्तान और सम्भोगके लिए।

(ख) आश्रय, भरोसा और निर्भयता प्राप्त करनेके लिए।

(ग) संसारकी चिन्ताओं—मुख्यतया आर्थिक चिन्ताओंके बोझसे निश्चिन्त हो जानेके लिए।

चाक्री रहा प्रेम। मेरा खयाल है कि प्राचीन विवाहोंमें प्रेमका स्थान बहुत गौण था। भारतवर्षके विवाहोंमें आज तक भी प्रेमका स्थान गौण है। पश्चिमके देशोंमें भी, जहाँ विवाह प्रेमके आधारपर किये जाते हैं, विवाह एक ऐसी मंजिल साबित होता है, जिसके बाद प्रेमके समुद्रमें भाटा (उतार) आने

लगता है। विवाह प्रेमका 'क्लाइमैक्स' है, और यह 'क्लाइमैक्स' साहित्यके 'क्लाइमैक्स' की तरह थोड़े ही समय तक ही जारी रहता है। उसके बाद प्रेमका स्थान कर्तव्य और अभ्यास ले लेता है। मेरी तो धारणा है कि जब तक विवाह नहीं होता, प्रेम अधिक उज्ज्वल, गहरा और उल्लासपूर्ण होता है। विवाहकी प्रथा प्रेमको वास्तविकताके ठोस धरातलपर उतार लाती है, जहाँ उसमें से कविताका अंश प्रायः भाप बनकर उड़ जाता है। इसीसे विवाहके भविष्यपर विचार करते हुए हमें इस बातकी चिन्ता करनेकी आवश्यकता नहीं है कि विवाह-संस्थाके नष्ट हो जाने अथवा बहुत शिथिल हो जानेपर स्त्री और पुरुषके प्रेमकी स्वाभाविक समस्या किस तरह हल की जाया करेगी।

संसारके आधुनिक विवाहोंको मुख्यतया तीन श्रेणियोंमें बाँटा जा सकता है :—

(१) ऐसे विवाह, जिनमें पुरुषकी प्रधानता रहती है। परिवारमें स्त्रीका स्थान अत्यन्त गौण होता है। पूर्वके देशोंमें प्रायः यही प्रथा है। एशियाकी अनेक जातियोंमें तलाक़की प्रथा है ही नहीं। और यदि है भी, तो तलाक़ देनेका अधिकार स्त्रीको नहीं, केवल पुरुषको है।

(२) जहाँ स्त्री अपने पतिको निर्वाचन करती है; परन्तु परिवारका मुखिया पुरुष ही रहता है, तलाक़का अधिकार स्त्री और पुरुष दोनोंको प्राप्त है। यूरोप और अमेरिकाके अधिकांश देशोंमें यही प्रथा प्रचलित है।

(३) जहाँ स्त्री और पुरुष दोनों मित्र-भावसे रहते हैं। दोनों आर्थिक दृष्टिसे स्वावलम्बी हैं। दिन-भर पुरुष अपना काम करता है और स्त्री अपना काम करती है। परिवारमें स्त्री और पुरुष दोनोंकी सहता क़रीब-क़रीब बराबर ही है। विवाहकी संस्थाको आध्यात्मिक या धार्मिक रूप नहीं दिया जाता। तलाक़ बहुत ही आसान है। स्त्री और पुरुषकी इच्छा होते ही शादी हो सकती है और इच्छा करते ही तलाक़ दिया जा सकता है। इसमें यह प्रथा है, जो अभी तक परीक्षणकी दशामें कही जाती है।

इसके अतिरिक्त कुछ देश ऐसे भी हैं, जहाँ अभी तक

परिवारमें स्त्रीकी ही प्रधानता रहती है; परन्तु ऐसे लोगोंकी संख्या बहुत ही नगण्य है।

प्रवाह किस ओर है, यह बात तो विलकुल स्पष्ट ही है। स्त्री अपनी जीविका स्वयं उपार्जन करे, यह बात प्राचीन जगतमें अचिन्त्य थी। सिर्फ़ गणिकाएँ, बेइयाँ और नर्तकियाँ ही उस ज़मानेमें अपनी आजीविका स्वयं उपार्जन करती थीं और समाज एक आवश्यक बुराई समझकर उन्हें सहन करता था; परन्तु आज यह बात नहीं रही। आजके संसारमें करोड़ों स्त्रियाँ ऐसी हैं, जो अपनी आजीविका स्वयं उपार्जन कर रही हैं और जिन्हें समाजमें तिरस्कारकी दृष्टिसे नहीं देखा जाता।

यह एक तथ्य है कि इंग्लैंडकी पढ़ी-लिखी ग्रंथएट लड़कियोंमें ६० प्रतिशत लड़कियाँ विवाह करना पसन्द नहीं करतीं। अन्य देशोंके आँकड़े मुझे मालूम नहीं; परन्तु मेरा खयाल है कि संसार-भरके देशोंमें अधिक पढ़ी-लिखी—कमसे कम ग्रंथएट—लड़कियोंमें अधिकांश विवाह करनेके पक्षमें नहीं रहतीं। इसके कारण निम्न-लिखित हैं :—

(१) विवाहकी प्राचीनतम प्रथाओंके अनुसार परिवारमें पुरुषकी प्रधानता चली आ रही है, और इस बातको सुशिक्षित लड़कियाँ पसन्द नहीं करतीं।

(२) पढ़ाई-लिखाईके द्वारा लड़कीका अपना पृथक् व्यक्तित्व विकसित हो जाता है। अभी तक पुरुषोंका व्यक्तित्व तो विकसित करनेका प्रयत्न किया जाता था; परन्तु लड़कियोंके सम्बन्धमें यही आदर्श माना जाता था कि उनमें अपनेको परिस्थितियोंके अनुकूल बना लेनेका गुण होना चाहिए। वे अपनेको पतिके अनुकूल बना लें। पतिके घरकी परिस्थितियों और उसकी रुचियोंके अनुकूल जो पत्नी अपने व्यक्तित्वको जितना ढाल सके, वह उतनी ही प्रशंसाके योग्य मानी जाती थी; परन्तु अब पढ़ी-लिखी लड़कियोंके लिए यह बात सम्भव नहीं रही। यह तो स्पष्ट है कि ऐसे दो व्यक्तियोंमें, जिनका पृथक्-पृथक् व्यक्तित्व अच्छी तरह विकसित हो चुका हो, परस्पर मित्रताका सम्बन्ध भले ही रह सके, उनमें से एक व्यक्ति दूसरेके लिए अपने व्यक्तित्वकी क़ुरबानी प्रायः नहीं कर सकता।

(३) पहले ज़मानेमें स्त्रियोंको अवला माना जाता था। विवाह किये बिना वे अपनेको निरापद या भय-विहीन नहीं समझ सकती थीं; परन्तु अब पढ़ी-लिखी लड़कियाँ अपनेमें वह सामर्थ्य अनुभव करती हैं, जिससे उनपर कोई बलात्कार या अत्याचार नहीं कर सकता। अतः अपनी हिफाज़तके लिए अब उन्हें पतिके संरक्षणकी आवश्यकता अनुभव नहीं होती।

(५) जीविकोपार्जनकी सामर्थ्य आ जानेपर अपनेको बन्धनोंमें जकड़ना उन्हें पसन्द नहीं आता।

यह तो स्पष्ट है कि इन उपर्युक्त दृष्टियोंसे आजकलकी पढ़ी-लिखी लड़कियोंके लिए विवाहकी संस्थामें कोई आकर्षण बाकी नहीं रहा; परन्तु इसका यह अभिप्राय नहीं कि वर्तमान नारी-समाजसे वासनाकी वृत्ति ही नष्ट हो गई है। आजकल शिक्षा-प्रणालीमें यदि किसी चीज़की सबसे अधिक उपेक्षाकी जाती है, तो वह संयमके प्राचीन आदर्शोंकी शिक्षाकी। इससे ऐन्द्रिक सुखोंकी अभिलाषा आजकी नारीमें पहलेकी नारियोंसे अधिक तीव्र हो उठी है। यही बात आजके पुरुषोंके सम्बन्धमें भी निस्संकोच होकर कही जा सकती है। पश्चिमके देशोंमें, जहाँ अविवाहित स्त्री और पुरुषोंका स्वच्छन्दतापूर्वक मिलना-जुलना लोकापवादकी चीज़ नहीं समझा जाता, स्वाभावतः वासनापूर्तिके निमित्त भी किसी पुरुष या स्त्रीके लिए यह आवश्यक नहीं रहता कि वह विवाह अवश्य करे।

एक बात और भी। मानव-जातिको विवाहकी संस्था इसलिए जारी करनी पड़ी थी कि इसके बिना समाजमें कोई व्यवस्था कायम नहीं रह सकती थी। क्रमशः मनुष्यके मस्तिष्कमें यह बात बहुत गहराईके साथ भर दी गई कि विवाह द्वारा पति-पत्नी परस्पर मिलकर एक हो जाते हैं और तब उनपर किसी औरका अधिकार नहीं रहता। अनेक आध्यात्मिक और धार्मिक दृष्टिकोण भी विवाह-प्रथाके साथ मिला दिये गये, और इसका परिणाम भी बहुत लाभकर सिद्ध हुआ। किसी लड़कीके लिए अनेक नवयुवकोंके दिलमें चाहे कितनी ही गहरी लालसा और प्रतिद्वन्द्विता क्यों न हो, उस लड़कीका विवाह होते ही वह सम्पूर्ण होड़ समाप्त हो जाती थी और यह समझ लिया

जाता था कि उसे प्राप्त कर सकना अब असम्भव है।

यह सब तो ठीक है; परन्तु यदि ज़रा अधिक गहरी दृष्टिसे देखा जाय, तो प्रतीत होगा कि नवयुवकोंमें वह होड़ या प्रतिद्वन्द्विता इसी कारण रहती थी कि तब नारीको अधिकारमें (possess) करनेकी चीज़ समझा जाता था। आज जब सैकड़ों सदियोंकी निरन्तर कष्ट-साधनाके बाद नारी-जाति अपनेमें वह शक्ति अनुभव करने लगी है कि वह अब अधिकारमें रखने (possession) की चीज़ नहीं रही, उसका भी पृथक् और स्वतन्त्र व्यक्तित्व है, तब उस तरहकी होड़ या प्रतिद्वन्द्विताका सवाल ही पैदा नहीं होता। एक स्त्री जिससे चाहेगी, उससे विवाह करेगी, उसका विवाह ज़बरदस्ती किसीके साथ नहीं किया जा सकता। और विवाहकी प्रथा न रहनेपर भी एक स्त्री चाहे जिस पुरुषके साथ मित्रताका सम्बन्ध रखेगी, इस सम्बन्धमें प्रतिद्वन्द्विता और सामाजिक अव्यवस्थाका सवाल ही नहीं उठता।

पश्चिमके अनेक विचारकोंकी राय है कि अब समय आ गया है, जब मानव-जाति प्रेम, वैषयिक प्रवृत्ति (sexual passion) और सन्तानोत्पत्ति इन तीनों बातोंमें भेद कर सके। अभी तक सम्भोगका धार्मिक उद्देश्य सन्तानोत्पत्ति ही समझा जाता रहा है। और धार्मिक विधान एक ही व्यक्तिसे प्रेम तथा वैषयिक सम्बन्ध रखनेकी इज़ाज़त देते हैं। अर्थात् धार्मिक मन्तव्योंके अनुसार एक पुरुषको अपनी पत्नीसे ही प्रेम करना चाहिए और अपनी इसी प्रेयसीसे उसे ऐसा सम्बन्ध रखना चाहिए, जिससे सन्तानोत्पत्ति हो और उसके द्वारा दम्पत्तिका परलोक वने। पश्चिमके अनेक अर्वाचीन विचारक इन विचारोंको उलझा हुआ तथा मानव-जातिकी उन्नतिमें बाधक समझते हैं। सम्भोगकी इच्छा (sexual appetite) को वे भौतिक शरीरकी स्वाभाविक इच्छा मानते हैं। और प्रेम नामक तत्त्व उनकी रायमें विकसित मस्तिष्क और अनुभूतिपूर्ण हृदयकी उपज है। यह आवश्यक नहीं कि प्रत्येक मनुष्यके हृदयमें प्रेम नामक तत्त्व गहरी अनुभूतिके साथ विद्यमान हो। और यह तो स्पष्ट ही है कि एक मनुष्यके हृदयमें किसी

व्यक्ति-विशेषके लिए गहरे प्रेमके भाव विद्यमान न रहनेपर भी उसके जीमें सम्भोगकी इच्छा उत्पन्न हो सकती है। इससे उन लोगोंका कहना है कि यह आवश्यक नहीं कि प्रेम और सम्भोगकी लालसाको एक ही जगह मिला दिया जाय।

और सन्तानके सम्बन्धमें तो इन विचारकोंका दृष्टिकोण बहुत ही क्रान्तिकारी है। उनकी राय है कि सन्तानोत्पत्तिकी अधिकार सिर्फ थोड़ेसे पुरुषोंको और उनसे कुछ ही अधिक स्त्रियोंको होना चाहिए। आप आज घोड़ों और गौओं तककी अच्छी नसलें पैदा करनेका प्रयत्न कर रहे हैं। प्रत्येक बैल या प्रत्येक घोड़ेको आप सन्तानोत्पत्तिकी अवसर नहीं देते; परन्तु मनुष्य-समाजमें सभी पुरुषोंको, यहाँ तक कि भयंकर रोगग्रस्तोंको भी, सन्तानोत्पत्तिकी खुली छुट्टी है। इसीका यह परिणाम है कि मनुष्योंमें लाखों-करोड़ों अजीब-अजीब और भेदे नमूने देखनेको मिलते हैं।

ये विचारक इस सम्बन्धमें जो रचनात्मक स्कीम पेश करते हैं, उसमें विवाहकी महत्ता बहुत ही सीमित रूपमें बच रहती है। बच्चोंको पालने और शिक्षा देनेका काम, इन लोगोंकी रायमें, सरकारका है, जो विशेषज्ञों द्वारा राष्ट्रके बालकोंका पालन-पोषण करवाया करेगी। कुछ अंश तक इस सिद्धान्तका समर्थन आर्य-समाजके प्रवर्तक स्वामी दयानन्दने भी किया है। उन्होंने लिखा है कि राष्ट्र द्वारा शिक्षित कर दिये जानेके बाद सन्तानको अपनी रुचि और प्रवृत्तियोंके अनुसार मा-बाप मिल जाने चाहिए। सन्तान और मा-बापके सम्बन्धकी अटूटता स्वामी दयानन्द स्वीकार नहीं करते।

वास्तवमें वर्तमान विवाह-संस्थाके नष्ट या बहुत शिथिल हो जानेपर मानव-समाजके सम्मुख दो समस्याएँ उपस्थित होनेकी आशंका है—(१) सामाजिक अव्यवस्थाका भय और (२) बच्चोंके पालन-पोषणका सवाल। इनमें से सामाजिक अव्यवस्थाका भय तो तभी तक है, जब तक स्त्रियोंको निर्बल समझा जाता है और उन्हें अपने पृथक् व्यक्तित्वके विकासका पूरा अवसर नहीं दिया जाता। इसके परीक्षणमें यह स्पष्ट हो गया है कि इस तरहके भयकी आशंका

विकसित शरीर, विकसित हृदय और विकसित नारीके सम्मुख ज़रा भी नहीं है। नारीकी सामाजिक स्थितिमें क्रान्तिकारी परिवर्तन आ जानेसे परिस्थितियाँ ही बदल गई हैं। यह भी एक तथ्य है कि आवागमनके उपाय बहुत सहज हो जाने तथा वैज्ञानिक आविष्कारोंकी सहायतासे आजकलकी सरकारोंके लिए समाजकी शान्तिकी रक्षा करना अधिक आसान हो गया है। इन वैज्ञानिक आविष्कारोंकी वदौलत आज शारीरिक शक्तिकी उतनी महत्ता भी नहीं रही। जिस नारीके हाथमें पिस्तौल हो, उसे अबला कोई नहीं कह सकता।

इन परिस्थितियोंमें किसी स्त्री और पुरुषमें परस्पर स्नेह-भाव तभी तक रह सकेगा, जब तक वे दोनों उसे कायम रखना चाहेंगे, अथवा रख सकेंगे। एक व्यक्ति दूसरे व्यक्तिपर अपना प्रभुत्व अथवा स्वामित्व कायम न रख सकेगा—ठीक दो मित्रोंके समान। मित्रता आजन्म स्थिर भी रह सकती है और बीच ही में टूट भी सकती है।

हाँ, सन्तान-पालनका सवाल इतना आसान नहीं है। यह स्वीकार करना पड़ेगा कि हस-जैसे देशोंमें भी इस सम्बन्धमें जो परीक्षण हुए हैं, उन्हें बहुत सफल नहीं कहा जा सकता। इसी विशेषज्ञोंका कहना है कि इस परिवर्तन (transition) के युगमें सन्तान-पालनकी समस्या हल हो ही नहीं सकती। उन्हें भरोसा है कि बादमें यह समस्या भी सन्तोषजनक ढंगसे हल हो जायगी।

‘लिटरेरी डाइजेस्ट’ के मतानुसार अकेले हसमें करीब ४० लाख बालक और बालिकाएँ ऐसी हैं, जिनके माता-पिता जीवित रहते हुए भी उनके माता-पिता नहीं रहे। तलाक़ द्वारा उनके माता-पिताकी परिस्थितियोंमें परिवर्तन आ चुका है। इन बच्चोंका पालन वहाँ इस तरह किया जाता है :—

(१) तलाक़ दे देनेके बाद बच्चे अपनी माताके ही पास रहते हैं। अदालत द्वारा प्रत्येक बच्चेके पिताको इस बातके लिए बांधित किया जाता है कि वह अपनी सन्तानके बाल्या होने तक एक निश्चित रक़म (जो अदालत नियत करती है) बच्चेकी माके पास भेजता रहे।

(२) बच्चोंके लालन-पालनके लिए सरकारी तौरपर बहुतसे शिशु-गृह खोले गये हैं। इन गृहोंमें बच्चोंके पालन और शिक्षा-दीक्षाका प्रबन्ध सरकारकी ओरसे किया जाता है; परन्तु सरकारकी ओरसे काफ़ी धन व्यय किये जानेपर भी इस परीक्षणमें सफलता बहुत कम मिली है। इसका कारण यह है कि शिशु-गृहोंके बच्चोंको मा-बापका प्यार नहीं मिलता।

(३) पुराने किसान-परिवारोंको दो-दो, तीन-तीन बच्चे सरकारकी ओरसे दे दिये जाते हैं, और इस कार्यके लिए उन किसानोंको कुछ आर्थिक सहायता दी जाती है; परन्तु यह उपाय व्यापक तौरसे प्रयोगमें नहीं लाया जाता।

उग्र वोल्गेविक विचारकोंकी राय है कि यह समस्या तभी जाकर हल होगी, जब राष्ट्रके सम्पूर्ण बच्चोंकी शिक्षा-दीक्षा तथा लालन-पालनका कार्य सरकारके हाथोंमें आ जायगा। तब इन शिशु-गृहोंमें वही देवियाँ और वही पुरुष सरकारी वृत्ति लेकर काम करेंगे, जिनमें बच्चोंको मा और बापका प्यार देनेकी सामर्थ्य है।

एक बात तो आजकल भी स्पष्ट है। वर्तमान युगकी पढ़ी-लिखी और सम्पन्न माताएँ आज अपने बच्चोंके लिए वह कष्ट उठानेको तैयार नहीं हैं, जो प्राचीनकालकी या मध्य-युगकी माताएँ उठाया करती थीं। किसी सम्पन्न घरका उदाहरण आप ले लीजिए। आप देखेंगे, एक माता अपने बच्चेको नहलाना-धुलाना, उसका मैल साफ़ करना और उसे रोतेसे चुप कराना स्वयं पसन्द नहीं करेगी। ये काम बच्चेकी धायके सुपुर्द होंगे। हाँ, उस दशामें जब सुन्दर वस्त्र पहनकर बच्चा एक जीवित खिलौनेके समान प्रतीत हो रहा हो, वे उसे प्यार अवश्य करना चाहेंगी। वर्तमान युगकी माताओंकी यही प्रवृत्ति देखकर यह सम्भवतः उम्मीद की जाती है कि भविष्यमें सभी माताएँ अपनी सन्तानका लालन-पालन स्वयं न करना चाहेंगी और तब राष्ट्रको इस बातकी व्यवस्था करनी पड़ेगी।

सब परिस्थितियाँ देखकर प्रतीत यह होता है कि हसकी शिथिल विवाह-संस्था, थोड़े-बहुत हेर-फेरके साथ, संसारके सभी

देशोंमें अधिक लोकप्रिय होती चली जायगी। वादमें यह भी असम्भव नहीं कि विवाह-प्रथा बिल्कुल ही शिथिल हो जाय।

रूसमें यह विवाह-प्रणाली संक्षेपमें इस प्रकार है—वहाँ विवाह दो प्रकारके होते हैं; रजिस्टर्ड और अन-रजिस्टर्ड। अन-रजिस्टर्ड विवाहमें किसी प्रकारका कोई भंगद नहीं किया जाता। कोई रस्म भी अदा नहीं की जाती। स्त्री और पुरुषके एक साथ रहनेका अभिप्राय है कि उनका परस्पर विवाह हो गया है। रजिस्टर्ड विवाहको अदालतमें जाकर दर्ज कराना पड़ता है। इसके अतिरिक्त अन्य बँधी हुई रस्म पूरी करनेकी कानूनी आवश्यकता नहीं है। रजिस्टर्ड विवाहोंमें तलाक़ भी अदालतको सूचना देकर ही हो सकती है, और तब अदालतकी ओरसे सन्तानके पिताको बच्चोंके पालनके लिए एक मासिक वृत्ति देनेके लिए बाधित किया जाता है। अतः अधिकांश स्त्रियाँ रजिस्टर्ड विवाह करना ही पसन्द करती हैं।

परिवारमें स्त्री और पुरुष दोनों उपजाऊ (आर्थिक दृष्टिसे) काम करते हैं। पति यदि कहीं प्रोफेसर है, तो पत्नी किसी रंगसाज़ीके कारखानेमें केमिस्टका काम करती है। दिनके बच्चे दोनों अपने-अपने कामपर चले जाते हैं और सन्तानको सरकारी शिशु-गृहोंमें छोड़ जाते हैं। सरकारी शिशु-गृहोंमें बच्चोंको नहलाया-धुलाया जाता है, कपड़े बदले जाते हैं, दूध दिया जाता है और नर्सोंकी देख-रेखमें खेलनेका प्रबन्ध किया जाता है। दोपहरका भोजन प्रायः पति-पत्नी अपने-अपने दफ्तरोंमें करते हैं। रातका भोजन घरमें एक साथ किया जाता है, और तब सन्तान भी शिशु-गृहसे घरपर ले आई जाती है। व्यवहारमें तथा कानूनी दृष्टिसे स्त्री और पुरुष दोनोंकी स्थिति बिल्कुल बराबर है।

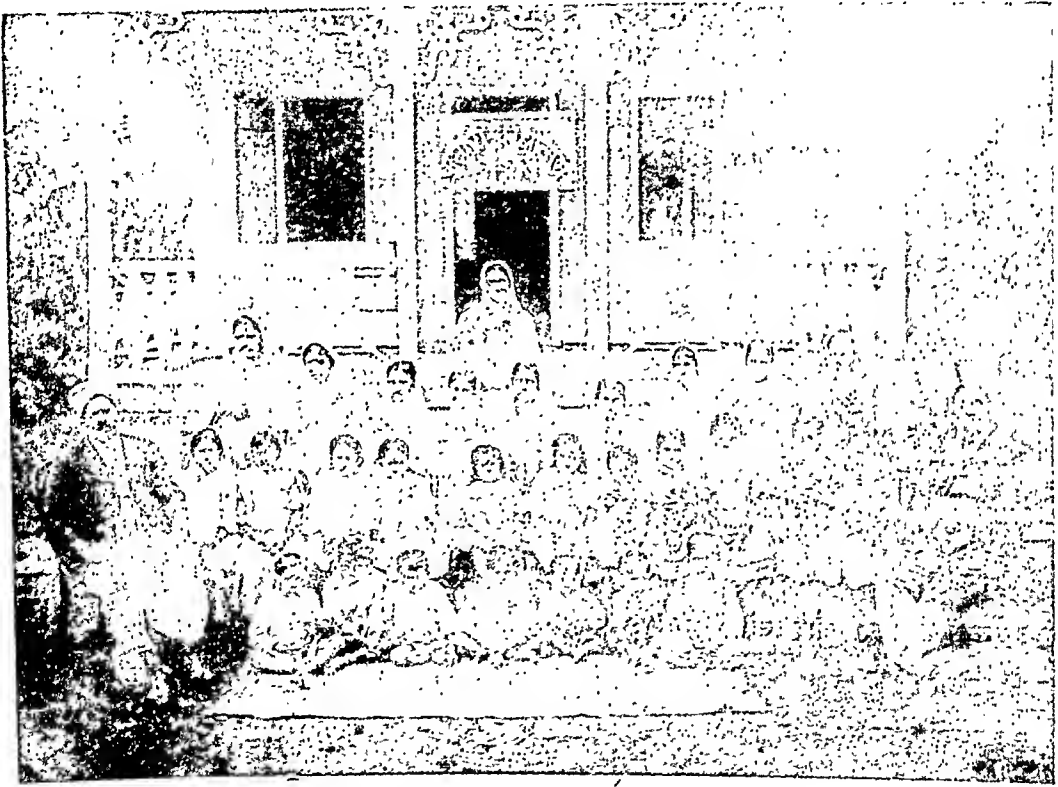
विवाहके भविष्यके सम्बन्धमें मैंने इस लेखमें अपने व्यक्तिगत विचारोंका उल्लेख बिल्कुल नहीं किया है। विवाहकी संस्थामें इतने क्रान्तिकारी परिवर्तन हो जानेपर स्त्री और पुरुषके पारस्परिक सम्बन्ध अधिक सुखमय बन जायँगे अथवा नीरस हो जायँगे, इस सम्बन्धमें अपने व्यक्तिगत विचार मैं फिर कभी किसी अन्य लेखमें प्रकाशित करूँगा।

प्रवासी भारतीय स्त्री-समाज

श्रीमती सरयूदेवी मोहनराम, ब्रिटिश-गायना

प्रवासी स्त्री-समाज दो भागोंमें विभक्त किया जा सकता है ; एक तो वे महिलाएँ, जो हिन्दुस्तानसे यहाँपर आई थीं, और दूसरी उनकी सन्तति, यानी जो उपनिवेशोंमें उत्पन्न हुई हैं। परन्तु प्रायः दोनोंकी रहन-सहन एक ही तरहकी हो गई है, यद्यपि विचारोंमें अब भी बहुत अन्तर है।

अप-टू-डेड पाश्चात्य वेश-भूषामें रँगती जा रही हैं, तब वे भी मोहवश लाचार होकर अपने प्राचीन चाल-चलन और रहन-सहनको छोड़कर बच्चोंके साथ ही नवीन लहरमें बहने लगती हैं। फिर भी एक बात ध्यान देने-योग्य और उल्लेख-योग्य भी है, वह यह कि आर्य-संस्कृतिकी जड़ भारतीयोंके जीवनमें इतनी गहराई तक



आर्यकन्या-विद्यालय ओमेनी मारीशसकी छात्राएँ

उपनिवेशोंमें उत्पन्न हुई भारतीय बालिकाएँ जोरोंसे विदेशी महिलाओंका अनुकरण कर रही हैं। उनकी माताओंकी स्थिति दयनीय है। उनके मनमें एक प्रकारका अन्तर्द्वन्द्व-सा मचा रहता है। पहले तो ये बेचारी अपनी पुरानी रूढ़ियोंपर चलनेका प्रयत्न करती हैं ; परजब वे देखती हैं कि उनके प्रिय बालक और बालिकाएँ

चली गई है कि वह एकाएकी उखड़ नहीं सकती। इसी कारण भारतसे आई हुई हमारी माताओंपर पाश्चात्य सभ्यताका रंग गाढ़ा नहीं चढ़ने पाता। प्राचीन सदाचारकी झलक निरन्तर बनी ही रहती है। आर्य-संस्कृतिके स्थायित्वका यह एक प्रबल प्रमाण है।

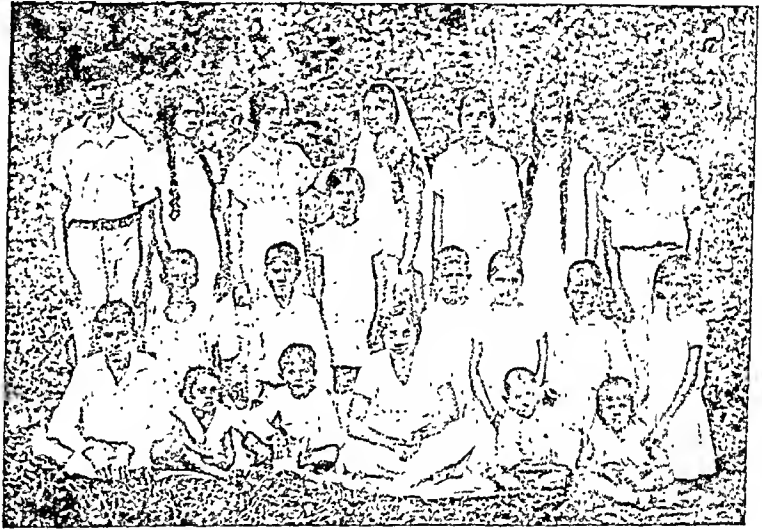
लेकिन चिन्ताकी बात यह है कि इन माताओंके पीछे आर्य-संस्कृतिकी रक्षा किस प्रकार हो सकेगी ? उपनिवेशोंमें पैदा हुई बहनोंमें शायद पाँच फी-सदी भी ऐसी न निकलेंगी, जो अपनी मातृभाषाकी ज्ञाता हों, और इन पाँच फी-सदीका ज्ञान भी मामूली बोल-चालसे अधिक नहीं है। ये न तो हिन्दी-ग्रन्थ पढ़ती हैं और न हिन्दी-समाचारपत्र। पढ़ भी लें तो समझना इनके लिए आसान नहीं, लिखनेकी बात तो दूर रही। जब ये बहनें जनताको अपना हिन्दुत्व जताना चाहती हैं, तब कुछ घंटोंके लिए यूरोपीय वेश

उतारकर भारतीय साड़ी पहन लेती हैं और विदेशी भाषा द्वारा सभा-समितियोंमें अपने विचार ज्यों-त्यों करके प्रकट कर लेती हैं। यह भी एक प्रकारका शौक पूरा करना है।

खेदकी बात है कि उपनिवेशोंमें उत्पन्न हुई भारतीय बालिकाएँ मातृभाषाके महत्त्वको नहीं समझतीं। पूर्व-अफ्रिका जैसे भारतके निकटस्थ प्रदेशोंकी बात में नहीं कहती। वहाँ तो भारतके साथ आवागमन बराबर रहता है, इसलिए मातृभाषाके महत्त्वको इन प्रदेशोंकी भारतीय लड़कियाँ नहीं भूल सकतीं। मेरा

कहना तो ब्रिटिश-गायना, टिनीडाड और सुरिनाम जैसे दूरस्थ टापुओंके विषयमें है। दुर्भाग्यकी बात है कि हमारे भारतीय भाइयोंने भी इधरके प्रदेशोंका एक प्रकारसे बहिष्कार-सा कर रखा है। वर्षों बाद कोई उपदेशक आ जाय, तो आ जाय। परिणाम यह हुआ है कि भारतीय महिला-समाज भी प्राचीन भारतीय संस्कृतिको भूलता जाता है। उदाहरणार्थ, इस देशमें ऐसी भारतीय महिलाएँ भी हैं, जो कहनेको तो अपनेको हिन्दू व आर्य कहती हैं ; पर यूरोपियन स्त्रियोंकी तरह पर-पुरुषोंके साथ नाचनेमें अपना सौभाग्य समझती हैं !

वैभव तथा ऐश्वर्यमें पली हुई अनेक भारतीय बहनें सदा इसी प्रयत्नमें रहती हैं कि किस प्रकार हम यूरोपियन महिलाओंकी नक़ल करके बिलकुल उन जैसी ही बन सकें। यदि ये बहनें कुछ-कुछ हिन्दी बोल भी सकती हैं, तो भूलकर भी उसका उपयोग नहीं करतीं, क्योंकि वे समझती हैं कि हिन्दी बोलनेसे उनकी शानमें बड़ा लग जायगा और वे कुली-श्रेणीकी समझी जायँगी। यदि कोई हिन्दीमें उनसे कोई सवाल पूछ बैठे, तो वे मुँह बनाकर बड़े अभिमानसे उत्तर देती हैं—
“I am sorry, I cannot understand you.”



टिनीडाडमें हिन्दीकी छात्र-छात्राएँ और उनकी शिक्षिका श्रीमती सरयू देवी

—‘मुझे खेद है कि मैं आपकी बात समझ नहीं सकती।’ हिन्दुस्तानी भाषा तथा भारतीय संस्कृतिसे अनभिज्ञ इन बहनोंपर मैं दोषारोपण नहीं करती। जब कि इनके माता-पिता, भाई-बहन, पति इत्यादि ही पाश्चात्य संस्कृतिकी लहरमें बहे जा रहे हैं, जब कि ये संरक्षक लोग ही अपनी बालक-बालिकाओंसे विदेशी भाषामें वार्तालाप करते हैं, जब इन्हींके हृदयमें भारतीय संस्कृतिके प्रति उपेक्षाके भाव हैं, तो फिर इन भोली-भाली बहनोंका क्या अपराध है ? इन बहनोंको विदेशियों द्वारा संचालित स्कूलोंमें विदेशी भाषामें

शिक्षा मिलती है और प्रतिदिन विदेशी स्त्री-पुरुषोंसे मिलने-जुलनेके अवसर भी मिलते हैं। ऐसी परिस्थितिमें यदि इनपर विदेशी संस्कृतिका प्रभाव जमकर बैठ जाय, तो इसमें आश्चर्य ही क्या ?

पर अब किया क्या जाय ?

मेरा तो यह दृढ़ विश्वास है कि जब तक मातृभूमि भारतसे इस विषयमें सहायता नहीं मिलेगी, तब तक यहाँ दूरवाले उपनिवेशोंमें भारतीय संस्कृति तथा मातृभाषाओंका जीवित रखना असम्भव ही है। जिन वहनोंके हृदयमें मातृभूमि तथा मातृभाषाके प्रति प्रेमके



फिजीमें हिन्दी-शिक्षाकी प्रचारक-प्रचारिकाएँ, बीचमें श्री श्रीमती चन्दजी बैठे हैं

अंकुर विद्यमान हैं भी, उन्हें सींचनेवाला कौन है ? उनके लिए कौन साधन जुटावेगा ? उन्हें कौन उत्साह देगा ? जैसा कि मैं ऊपर लिख चुकी हूँ, बड़े घरोंकी लड़कियोंपर पाश्चात्य सभ्यताका रंग जोरोंसे चढ़ रहा है, वे तो इस ओर ध्यान देनेसे रहीं। साधारण परिस्थितिकी स्त्रियाँ यदि कुछ प्रयत्न करती भी हैं, तो उनको कहींसे सहायता नहीं मिलती। भारतवर्षसे समाचारपत्र, मासिक पत्र और ग्रन्थ मँगानेके लिए रुपये कहाँसे आवें ? यहाँ हिन्दीका कोई पुस्तकालय भी नहीं, जहाँसे पुस्तक कुछ दिनोंके लिए उधार ली जा सकें।

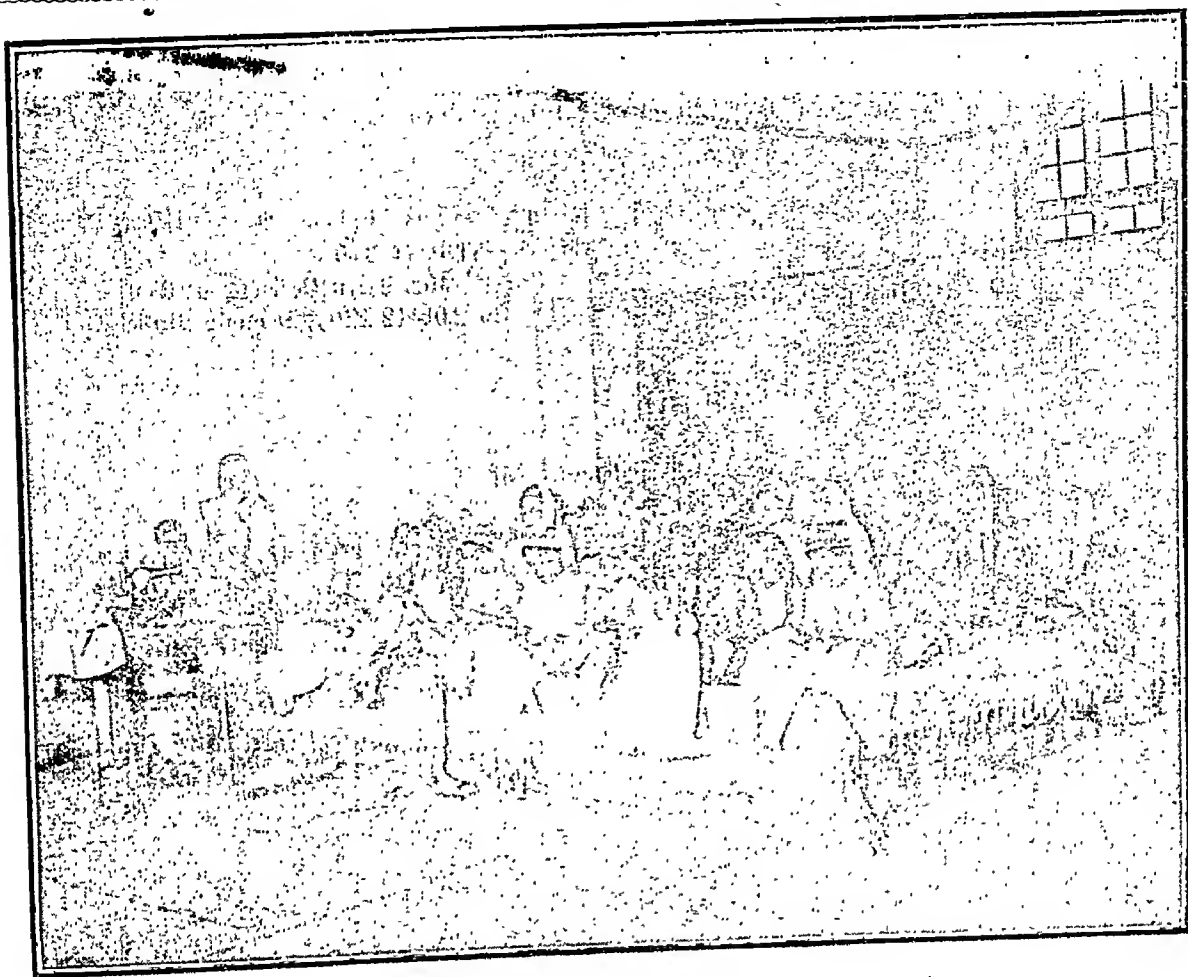
मैंने सुना है कि हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनके कार्यकर्ता प्रवासी भारतीयोंमें भी अपनी परीक्षाओंका प्रचार करना चाहते हैं। यद्यपि उनके इस उत्साहकी सुभे प्रशंसा ही करनी पड़ेगी, तथापि इतना निवेदन मैं उनकी सेवामें अवश्य करूँगी, वह यह कि 'West Indies' यानी पश्चिमी द्वीप-समूह (टिनीडाड, ब्रिटिश-गायना, सुरिनाम इत्यादि) में हिन्दी-भाषाकी परीक्षाओंका प्रचार होनेमें कुछ समय लगेगा। उसके लिए पहले क्षेत्र तैयार करना पड़ेगा। हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन अथवा प्रयाग-महिला-विद्यापीठको

यदि अपनी परीक्षाओंका यहाँ प्रचार करना है—और भारतीय संस्कृतिकी रक्षाके लिए यह भी एक अत्युत्तम उपाय है—तो प्रारम्भमें उसे कमसे कम पुस्तकोंकी सहायता देनी पड़ेगी। हिन्दीके पुस्तक-प्रकाशक भी यदि इस ओर ध्यान दें, तो बहुत-कुछ काम हो सकता है। इस प्रसंगमें मैं सार्वदेशिक सभा दिल्ली तथा साहित्य-सदन चिरगाँव भाँसीके प्रति कृतज्ञता प्रकट कर देना अपना कर्तव्य समझती हूँ। इन दोनों संस्थाओंके संचालकोंने पुस्तकों द्वारा मेरे हिन्दी-प्रचार-

सम्बन्धी कार्यमें बड़ी सहायता दी है।

हमारे यहाँ कितने व्यक्ति ऐसे हैं, जो यह समझते हैं कि भारतकी राष्ट्र-भाषा तो हिन्दी है ही, विशाल भारत (Greater India) या उपनिवेशोंकी सामान्य भाषा भी हिन्दी ही हो सकती है ? फिजी-सरकारने हिन्दीको ही भारतीयोंकी सामान्य भाषा स्वीकार किया है।

मैंने सुना है कि पहले पश्चिमी द्वीप-समूहोंके प्रवासी भारतीयोंकी दशा और भी चिन्तनीय थी। उस समय भाई परमानन्दजीने आकर यहाँ वैदिक धर्म,



नैरोबीमें खोजा लड़कियोंका स्कूल

मातृभाषा तथा देशभक्तिके बीज बोये। उस प्रारम्भिक जाग्रतिका श्रेय निस्सन्देह भाईजीको ही मिलना चाहिए। खेदकी बात है कि भाईजी यहाँ अधिक दिन तक नहीं ठहर सके। इसके कितने ही वर्ष बाद मेहता जैमिनीजी पधारे। आपने अपने प्रभावशाली व्याख्यानो द्वारा भाईजीके लगाये हुए पौधेको सींचा और अब इस कार्यको अग्रसर करनेके लिए आर्यसमाजके प्रेसिडेंट पंडित रामनारायणजी प्रशंसनीय उद्योग कर रहे हैं। सौभाग्यकी बात है कि सार्वदेशिक सभा दिल्लीका ध्यान इस महत्वपूर्ण प्रश्नकी ओर गया है, और पंडित अयोध्याप्रसाजी तथा पंडित सत्याचरणजीने इन उपनिवेशोंकी यात्रा करके

भारतीय संस्कृति तथा हिन्दी-भाषाके प्रति प्रेम उत्पन्न किया है। यदि भारतसे उपदेशकोंके आनेका यह कार्य निरन्तर जारी रहे, तो निस्सन्देह प्रवासी भारतीय जाग्रत हो जायेंगे।

अन्तमें एक बात और भी निवेदन करनी है। भारतवर्षसे यदि कुछ सद्गृहस्थ अपने घरवालोंके साथ यहाँपर आवें और कई वर्ष रहें, तो स्थायी काम हो सकता है। उपदेशकोंके साथ-साथ यदि उनकी शिक्षित पत्नी भी पधारें, तो वे अपने जीवनसे बहुत-कुछ हम सबको सिखा सकती हैं। मेरे कहनेका तात्पर्य यह है कि उपदेशकों तथा प्रचारकोंके साथ-साथ अध्यापिकाएँ भी यहाँ आनी चाहिए। हमें

मुख्य बात यह न भूल जानी चाहिए कि जब तक प्रवासी बहनोंके हृदयमें मातृभूमि तथा मातृभाषाके प्रति प्रेम जाग्रत न किया जायगा, तब तक कोई स्थायी कार्य नहीं हो सकता, क्योंकि ये बहनें ही थोड़े दिनों बाद माताएँ होंगी और माताएँ ही अपनी बालक-बालिकाओंकी प्रथम शिक्षिका होती हैं।

पचीस लाख प्रवासी भारतीयोंमें भारतीय संस्कृति

तथा देशी भाषाओंके प्रति प्रेम जाग्रत रखना एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण पुरयकार्य है। आशा है कि भारतीय जनता इस कार्यको उपेक्षाकी दृष्टिसे न देखेगी।

नोट—जो महाशय इस विषयमें रुचि रखते हों, वे निम्न-लिखित पतेपर पत्र-व्यवहार कर सकते हैं :—

Mrs. Saryu Devi Mohan Ram

Bar Str. 201-202 Kitty, Demrara, British-Guiana.

एक बात

श्रीमती लीलावती मुंशी



मुझे अपनी भारतीय बहनोंसे केवल एक ही बात कहनी है। हमारी भारतीय बहनें शताब्दियोंसे पिछड़ी हुई हैं। पिछले चालीस-पचास वर्षसे कुछ उदारचेता पुरुष और स्त्रियाँ भारतके महिला-समाजको बन्धनसे छुड़ानेका प्रयत्न कर रहे हैं। महात्मा गांधीके सत्याग्रह-आन्दोलनने देशकी महिला-प्रगतिको बहुत बड़ा प्रोत्साहन दिया था।

किन्तु मुझे खेदके साथ कहना पड़ता है कि सन् १९३१-३२ की ज्वारमें जो महिलाएँ बाहर आई थीं, आजकल उनमें से बहुत थोड़ी बहनें ही सार्वजनिक कार्योंमें भाग लेती दीख पड़ती हैं। हमारी बहनोंमें उस समय जो जोश और जो राजनैतिक उत्साह आया था, ऐसा जान पड़ता है कि वह अब सूख-सा गया है। एक बार आगे बढ़ चुकनेपर फिर पीछे पैर हटाना हमारी महिला-प्रगतिकी गतिको धीमा करना है। बाढ़ जब आती है, तब आसपासकी बहुत-सी चीजें उसके साथ खिंच आती हैं। इसी प्रकार राजनैतिक आन्दोलनकी बाढ़में भी बहुत-सी स्त्रियाँ खिंच आई थीं। लेकिन सच्ची उन्नति तो शान्तिके समय धीरे-धीरे ठोस काम करनेसे ही होती है। मैं चाहती हूँ कि हमारी भारतीय बहनें इस बातको हृदयंगम कर लें। यदि उनके मनमें यह बात भलीभाँति जम जाय, तो फिर उनके अग्रसर होनेको कोई भी नहीं रोक सकता।

श्रीमती लीलावती मुंशी

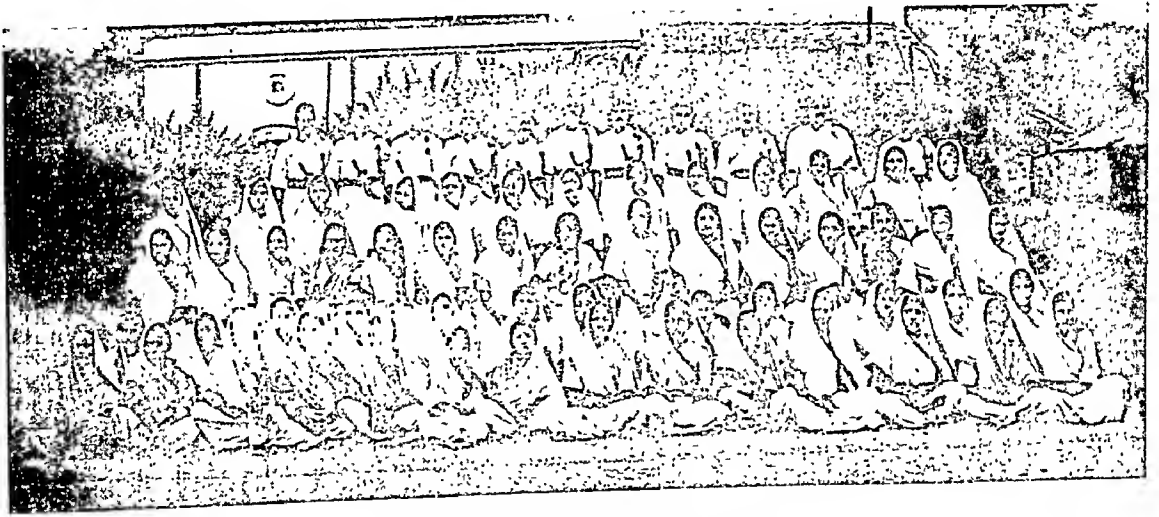
कन्या-गुरुकुल देहरादून

आचार्य रामदेवजी

जिस समय गुरुकुल-कांगड़ीकी स्थापना हुई थी, उसी समय उसके नियमोंमें, गुरुकुलके उद्देश्योंकी व्याख्या करते हुए, यह स्पष्ट लिख दिया गया था कि लड़कियोंके लिए भी एक अलग गुरुकुल खोला जायगा। गुरुकुल-कांगड़ीका प्रयोग सफल होते हुए ही जनतामें कन्या-गुरुकुलकी स्थापनाकी जोरदार माँग पैदा हो गई। जनताकी इस आकांक्षाका प्रतिनिधित्व एक भावुक, धर्मशील सेठने लिया। जनताके प्रतिनिधि भावुक लोग ही हुआ करते हैं। विचारक लोग तो प्रायः जनताको अपने पीछे लगाना चाहते हैं।

सभी स्थानोंसे आने लगीं। इसलिए आवश्यक प्रतीत हुआ कि कन्या-गुरुकुल ऐसे स्थानमें रखा जाय, जो जलवायुकी दृष्टिसे समूचे भारतवर्षका प्रतिनिधि हो, जहाँ दार्जिलिंगकी लड़कियाँ जैकोबाबाद और अकोलाकी लड़कियोंके साथ बिना किसी कष्टके ब्रह्मवर्षका जीवन व्यतीत कर सकें। ऐसा स्थान देहरादूनके सिवा और कौन हो सकता है ?

इस विचारके परिणाम-स्वरूप कन्या-गुरुकुल सन् १९३० में देहरादून ले जाया गया और राजपुरा रोडपर दो कोठियाँ किरायेपर लेकर स्थिर रूपसे यहीं स्थापित हो गया। धीरे-धीरे



कन्या-गुरुकुल देहरादूनकी अध्यापिकाएँ और छात्राएँ

सेठ रघुमलजी स्वामी श्रद्धानन्दजीके भक्त थे। सन् १९२१ में गुरुकुल-कांगड़ीके उत्सवपर इन्हीं सेठजीकी ओरसे कन्या-गुरुकुलकी स्थापनाके लिए एक लाख रुपयेके दानकी घोषणा की गई। इसके दो वर्ष बाद दीपावलीके दिन जगमगाते आलोकमें दिल्ली नगरमें एक किरायेकी कोठी लेकर कन्या-गुरुकुलकी स्थापना की गई। प्राचीन गुरुकुल-शिक्षा-प्रणालीकी नींवका दूसरा पत्थर रखा गया।

पहले वर्ष पाँच श्रेणियाँ खोली गईं और पचास लड़कियाँ भर्ती हुईं। लड़कियाँ भारत और भारतके बाहरके ठंडे, गरम,

इस स्थानपर भवन-निर्माण होने लगा। इस समय गुरुकुलके पास लगभग एक लाख रुपयेकी अपनी इमारत और ज़मीन है। ज़मीनके साथ ही एक बहुत सुन्दर बाग भी है, जिनमें फलोंके पेड़ हैं। जगह-जगहपर फूलोंके तख्ते भी हैं, जिनका दृश्य बहुत सुन्दर है। सामने मेसूरी है। उसपर हरियालीका एकछत्र राज्य है, चांदनी आँचमिचौनी खेलती है, सूर्यकी किरणें अठखेलियाँ करती हैं, विजली प्रकाश फेंकती है, हवा सौरभ बिखेरती है। गुरुकुलके आसपासकी वनस्थली फूलोंसे लदी हुई है। चारों ओर उज्ज्वलता एवं सौन्दर्यका वातावरण है। बीचमें गुरुकुल है।

भारतवर्षमें यह अपने ढंगकी एक ही संस्था है। इसमें वेद, उपनिषद्, गीता, संस्कृत और हिन्दी-साहित्य, भारतीय इतिहास, ऐशियाटिक और यूरोपियन इतिहास, अर्थशास्त्र, नागरिक विज्ञान, मनोविज्ञान, सापेक्षिक धर्म-ज्ञान, प्रसूति-तन्त्र, रोगी-परिचर्या, गृह-प्रबन्ध, ऊँचे दर्जेकी सिलाई, आलेख्य, संगीत, अंगरेज़ी और स्त्रियोपयोगी अन्य विषयोंकी शिक्षा दी जाती है।

चाहे लड़कियाँ किसी जाति, किसी देश और किसी वर्गकी हों, किसी करोड़पति अथवा साधारण वृत्तिके मनुष्यकी हों—सबके साथ भोजन, वस्त्र इत्यादिमें समानताका व्यवहार किया जाता है।

नियन्त्रणके नियमोंका आधार प्रेम है। लड़कियोंके अन्दर जो देवी शक्तियाँ हैं, उनको जाग्रत करनेकी ओर भी पर्याप्त ध्यान दिया जाता है। संध्या, अग्निहोत्र और वेदमन्त्र-गानसे एक आध्यात्मिक वायुमंडल उत्पन्न किया जाता है। भारतमें आध्यात्मिकता भौतिकतापर सदैव विजयिनी होती आई है।

भोजन एक योग्य लेडी डाक्टरकी देख-रेखमें बनता है। भोजन निरामिष और सादा है; किन्तु है स्वास्थ्यप्रद और बलकारक। खट्टी चीज़ें, लालमिर्च, चाय इत्यादि वस्तुएँ लड़कियोंको थिलकुल नहीं दी जाती; किन्तु दूध, घी और फल पर्याप्त मात्रामें मिलते हैं। लड़कियाँ अपने हाथसे सुन्दर भोजन और स्वादिष्ट मिठाइयाँ बनाना भी सीखती हैं।

व्यायाम सब लड़कियोंके लिए अनिवार्य है। इसके लिए खास प्रबन्ध किया गया है। व्यायामके तरीकोंमें लड़कियोंके और लड़कोंके शरीर-विज्ञान और मनोविज्ञान-सम्बन्धी भेदोंका खयाल रखा गया है। लड़कियोंको लाजिम, लाठी, डुरा, बास्केट बाल, जिमनास्टिक इत्यादि खेल सिखाये जाते हैं। इन सब खेलोंमें संगीतका भी उचित मात्रामें प्रयोग किया जाता है। संगीत धार्मिक और देशभक्तिके भावोंसे पूर्ण होता है। खेल करवानेवाली भी दो देवियाँ ही हैं, इसलिए ये सारे खेल और कसरतें निस्संकोच की जा सकती हैं, और लज्जाको—जो भारतीय स्त्रियोंका भूषण है—किसी भी प्रकारका आघात नहीं पहुँचता। सारांश यह है कि इन खेलोंमें लड़कियोंके जिन्हें, भविष्यमें योग्य पत्नी और माताएँ

बनना है, शारीरिक और आत्मिक बल तथा स्त्रीत्वकी शानका भी ध्यान रखा जाता है।

शिल्प-विभागकी स्थापना शाहपुराधीशकी महारानीके १०००) २० के दानपर हुई थी। इस कलामें लड़कियोंने आशातीत उन्नति की है। लड़कियाँ बढ़ियासे बढ़िया फाक, कमीज़ें इत्यादि काट और सी सकती हैं। उनके स्वेटर, वेवी-कोट, जम्पर, दस्ताने, मोजे इत्यादि बुन सकती हैं। अरबी और काश्मीरी कामकी वेलेँ, लेसँ, गलीचे, ब्रासन आदि भी अच्छे बनाते हैं। १९२९ की लाहौर-कांग्रेसकी प्रदर्शनीमें संस्थाको अपनी सिलाईके लिए प्रशंसापत्र मिला था। अजमेर-अर्ध-शताब्दीकी औद्योगिक प्रदर्शनीमें भी यहाँकी छात्राओंने कई पारितोषिक प्राप्त किये थे। ललित-कला और सिलाईके विभागकी अधिष्ठात्री श्रीमती ओश्मवती विशारदा हैं, जिन्होंने सिलाई और बुनाईपर प्रामाणिक पुस्तकें लिखी हैं। सारांश यह है कि सुशिक्षिता, भारतीय संस्कृतिमें, रंगी हुई, देशकी समस्याओंको समझनेवाली भारतीय और मार्गीके समान प्रकाश विद्युपियाँ, गृह-कार्यमें निपुणा गृह-पतिनयाँ तैयार करना ही इस संस्थाका मुख्य उद्देश्य है। इस उद्देश्यसे यह संस्था पर्याप्त सफलता भी प्राप्त कर रही है।

यहाँकी शिक्षा-प्रणाली मौलिक है, और इसके निर्माणमें शिक्षण-कलाके नवीनतम सिद्धान्तोंसे सहायता ली गई है। पहले तीन वर्ष हिन्दीके अतिरिक्त और कोई भाषा नहीं सिखाई जाती। लड़कियोंका नन्हा और कोमल मस्तिष्क विदेशी अथवा प्राचीन साहित्यिक भाषाओं (Classical) के व्याकरण-सम्बन्धी पारिभाषिक शब्दोंसे बोझिल नहीं बनाया जाता।

पहली तृण श्रेणियोंमें भूगोल और प्राकृतिक विज्ञान, किंडर गार्टन और मौन्टीसोरी विधिसे पढ़ाया जाता है। देशका पुरातन इतिहास कहानियों और लोकोक्तियोंकी सहायतासे पढ़ाया जाता है। गणित इत्यादि पढ़ानेमें 'प्रोजेक्ट सिस्टम' से काम लिया जाता है। चौथी श्रेणीमें संस्कृतका अध्ययन आरम्भ किया जाता है। चौथी और पाँचवीं श्रेणीमें सामयिक इतिहास मध्यकालीन और वर्तमान प्रसिद्ध राष्ट्र-निर्माताओंके जीवन-चरित्रों द्वारा पढ़ाया जाता है। पाँचवीं श्रेणीकी लड़कीसे

आशा की जाती है कि वह राममोहन, दयानन्द, केशवचन्द्र सेन, गांधी, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, तिलक, गोखले, दादाभाई नौरोजीके जीवन-कार्यके विषयमें कुछ बतला सके। इन श्रेणियोंमें मस्तिष्कपर तिथियोंका बोझ नहीं डाला जाता। छठी श्रेणीमें सम्पूर्ण भारतका इतिहास तिथियों-सहित पढ़ा दिया जाता है। सातवीं श्रेणीमें भारतका प्राचीन इतिहास, भारतीय संस्कृतिके विकास और विस्तारकी दृष्टिसे पढ़ाया जाता है। आठवीं श्रेणीमें मध्यकालीन और वर्तमान इतिहास, राष्ट्रीय दृष्टिबिन्दुसे पढ़ाया जाता है। साथ ही नागरिक शास्त्र और अर्थशास्त्र भी पढ़ाया जाता है। विद्यालयकी पढ़ाई अपने-आपमें सम्पूर्ण है। यहाँकी 'आठवीं' श्रेणीकी परीक्षा 'अधिकारी' परीक्षा कही जाती है। गुरुकुल-विश्वविद्यालय कांगड़ीके शिक्षा-पटल द्वारा यह परीक्षा ली जाती है। 'अधिकारी' परीक्षा पास लड़की हिन्दी और संस्कृतके अतिरिक्त गुजराती, मराठी और बंगालीमें से एक भाषा सीख लेती है। गणित और भूगोल मैट्रिक तक पढ़ लेती है। इतिहास, अर्थशास्त्र और नागरिक विज्ञानके विषयमें हम ऊपर लिख आये हैं। इसके अतिरिक्त धर्म-शिक्षा, पाक-विद्या, गृह-प्रबन्ध, रोगी-परिचर्या, सिलाई, संगीत, चर्खा, खड़ी ललना इत्यादि विषय भी सिखाये जाते हैं।

सारांश यह है कि 'अधिकारी' परीक्षामें उत्तीर्ण लड़कियोंका दो विकसित देशी भाषाओं और संस्कृतपर अधिकार होता है। साथ ही स्त्रियोपयोगी विषय भी आते हैं। चौदह-पन्द्रह वर्षकी लड़कीके लिए यह योग्यता साधारण नहीं है। इसीलिए पं० रामनारायण मिश्र, जिन्होंने सभ्य संसारकी शिक्षा-संस्थाओंको देखा है, 'सम्मति-पुस्तक' में लिख गये हैं—“कन्या-गुरुकुलके विद्यालय - विभागकी लड़कियाँ सभ्य संसारके किसी स्कूलके लड़कों या लड़कियोंसे कम योग्यता नहीं रखतीं।”

'अधिकारी' पास लड़कियाँ अच्छी शुद्ध हिन्दी लिख सकती हैं। संस्कृत भी बोल सकती हैं। शिक्षाका माध्यम हिन्दी है, इसलिए उनको इतिहास, अर्थशास्त्र और वर्तमान राजनीतिका ज्ञान इंटरमीडिएटके विद्यार्थियोंसे भी अधिक होता है। यह सब इसलिए भी सम्भव है कि विद्यालय-विभागमें अंगरेज़ी पढ़ाई ही नहीं जाती।

सन् १९२६की 'अधिकारी' परीक्षाकी लड़कियोंसे वस्तुओंके मूल्य घटने-बढ़नेके नियम पूछे गये थे। लेजिस्लेटिव एसेम्बली और राज्य-परिषद्के सदस्योंकी निर्वाचन-प्रणाली पूछी गई थी। इससे छात्राओंके ज्ञानका स्टैण्डर्ड जाना जा सकता है। 'अधिकारी' परीक्षाके परीक्षक बाहरके विद्वान होते हैं। विदेशी भाषा तभी अच्छी तरह आ सकती है, जब उसकी पढ़ाई उस समय आरम्भ की जाय, जब विद्यार्थीकी बुद्धि पर्याप्त विकसित हो जाय और उसकी विचार-राशि विस्तृत। इसीलिए अंगरेज़ीकी शिक्षा निम्न-श्रेणियोंमें नहीं दी जाती। नौवीं श्रेणीसे अंगरेज़ी शुरू की जाती है, और हमारा अनुभव है कि तीन वर्षमें ६, १० और ११ वीं श्रेणीमें छात्राओंको मैट्रिक तककी अंगरेज़ी आ जाती है। ११ वीं श्रेणीमें वे ही पुस्तकें पढ़ाई जाती हैं, जो यू० पी० की मैट्रिक परीक्षामें। उसी स्टैण्डर्डसे परीक्षा भी ली जाती है। नौवीं श्रेणीसे महाविद्यालय-विभाग आरम्भ होता है, और तीन वर्षमें लड़की स्नातिका बन जाती है।

बड़े-बड़े योग्य दर्शकोंने गुरुकुलकी शिक्षण-प्रणालीकी प्रशंसा की है। श्रीयुत सेन्ट निहालसिंहजी इस संस्थाको अद्वितीय कहते हैं।

श्री सत्यमूर्तिजीने लिखा है—“यह संस्था सर्वतोमुखी दृष्टिसे राष्ट्र-निर्माणका काम कर रही है। मैं इस बातसे बड़ा प्रभावित हुआ हूँ कि इस संस्थामें पूर्वीय और पश्चिमीय संस्कृतियोंके सर्वोत्तम अंशोंका समन्वय और सम्मिश्रण है।”

श्री पुस्तोत्तमदास टण्डन लिखते हैं—“अन्य कन्या-पाठशालाओंके प्रबन्धकोंको यहाँ आकर देखना चाहिए कि किन साधनोंसे यहाँके संचालक इतने थोड़े कालमें इतना ज्ञान उपार्जन करवा देते हैं।”

कन्या-महाविद्यालय जालन्धरके संस्थापक स्वर्गीय लाला देवराजजी लिख गये हैं—“इस संस्थाके संचालक धन्यवादके योग्य हैं कि उन्होंने कन्या-शिक्षाकी जटिल-समस्याको सुलभाया है।”

लाहौरके श्रीयुत महात्मा हंसराजजी भी बहुत प्रभावित हुए हैं, उन्होंने लिखा है—“यहाँकी लड़कियोंको ज्ञानकी उपलब्धिमें बहुत कम समय खर्च करना पड़ता है, क्योंकि शिक्षाका माध्यम हिन्दी है।”

कन्या-गुरुकुलका संचालन आर्य-प्रतिनिधि-सभा पंजाब करती है। कन्या-गुरुकुलकी मासिक फीस १५) ६० है, जिसमें से १०) ६० भोजनके और ५) ६० वस्त्र, ट्रेक, ताला, वर्तन, तेल, साबुन, कंधी इत्यादि अन्य आवश्यक वस्तुओंके हैं।

कन्या-गुरुकुलमें ८-९ वर्ष तककी लड़कियाँ ली जाती हैं। लगातार ८ वर्षों तक वे गुरुकुलके वातावरणसे बाहर नहीं जाने पातीं। उनके कमराउपडमें छोटे वच्चेके सिवा कोई पुरुष नहीं जा सकता। हरएक विभागमें देवियाँ ही काम करती हैं। अध्यापिकाएँ और नौकरानियाँ भी चुनकर रखी जाती हैं।

पाँचवीं श्रेणी तककी कन्याओंके लिए संरक्षिकाएँ होती हैं। एक संरक्षिकाके पास पन्द्रह-बीस कन्याएँ तक होती हैं। संरक्षिका लड़कियोंके रहन-सहन और पढ़ाई आदिकी देख-भाल करती है। कोई कन्या-गुरुकुलकी सीमाके बाहर नहीं जाने पाती। भ्रमणमें भी अध्यापिकाएँ या संरक्षिकाएँ साथ रहती हैं। कन्याओंके संयमपर विशेष ध्यान रखा जाता है। उनमें किसी प्रकारका विकार या कुरूपि उत्पन्न न होने देनेका

यथासम्भव प्रयत्न किया जाता है। यहाँ कन्याओंमें विलासिताकी कम, पर कष्ट सहनेकी अधिक आदत डाली जाती है।

शिक्षा-विभागमें निम्न-लिखित देवियाँ काम करती हैं— श्रीमती विद्यावती सेठ, बी० ए० (आचार्या); श्रीमती राधारानी; श्रीमती गोदावरी 'समर्थ', बी० ए० (मुख्याध्यापिका); श्रीमती जानकी देवी, बी० ए० (उपाध्याया); श्रीमती सुशीला देवी (उपाध्याया); श्रीमती सुशीला देवी, बी० ए०; श्रीमती ईश्वर देवी; श्रीमती कुलदीप कौर (लेडी डाक्टर)।

कन्या-गुरुकुलकी स्नातिकाएँ भी शिक्षा-विभागमें काम करती हैं। यह भी गुरुकुलकी शिक्षाकी सफलताका चिह्न है। कुमारी सुशीला देवी, कुमारी दमयन्ती देवी और कुमारी ब्रह्मावती देवी गुरुकुलमें पढ़ाती हैं।

इस समय संस्थामें २१२ कन्याएँ पढ़ती हैं। ये सब भारतवर्षके सभी प्रान्तोंके अलावा बर्मा, पूर्वी-दक्षिणी अफ्रिका, तथा फीजी आदि स्थानोंसे आई हैं। गुरुकुलकी इस आशातीत उन्नतिके श्रेय यहाँकी आचार्या श्रीमती विद्यावती सेठको है।

राष्ट्र-भाषाकी पूजा

दीना-हीना समझ तुझे माँ, हमने था ठुकराया ;
गैरोंके आगे अपना कर, भिक्षा - हित फैलाया ।
पर भिखारियोंने कब जगमें मान किसीसे पाया ;
जो कुछ था वह भी खो बैठे, जयसे तुझे भुलाया ।
प्रभा-विहीन प्रभाकर क्या है, कला-विहीन कलाधर ;
आभा विरहित मुक्ता क्या है, बीचि बिना क्या सागर ?
प्राणोंमें चेतना न हो तो वह कैसा जीवन है ;
भाषा-हीन राष्ट्रका निश्चित इसी प्रकार मरण है ।
ठोकर खाकर खुली आँख जब तब तुम्हको पहचाना ;
तेरी शरण बिना कब सम्भव उन्नति-पथपर आना ।

अग्नि भारतकी भव्य भारती ! तू ही शक्ति हमारी ;
तेरे चरणोंकी सेवासे होगी मुक्ति हमारी ।
जो तेरी सन्तान तुझे तज भटकी मारी-मारी ;
वही आज तन-मनसे करती पूजाकी तैयारी ।
दे आशीश सफल हो जाये यह आयोजन सारा ;
फिर न भूलकर कभी भुलायें हम अपनापन प्यारा ।
तेंतिस कोटि पुत्र माँ तेरे यही लगायें नारा—
'हिन्दी है भारती हमारी भारत देश हमारा ।'
हिमगिरिके शिखरोंसे तेरी धवल ध्वजा फहराये ;
तेरे पद - पद्मोंमें सादर मस्तक विश्व झुकाये ।

—राजकुमारी देवी श्रीवास्तव

हमारा साहित्य और स्त्री-समाज

सौ० कमलाबाई किवे

मध्य-श्रेणीके लोगोंको सारे दिन कड़ी मेहनतके काम करने पड़ते हैं, इसलिए उन्हें यह मालूम ही नहीं पड़ता कि दिन कब बीता। थोड़ी-बहुत जो फुरसत मिलती है, तो उसमें पढ़नेकी प्रवृत्ति कम होती है। किताब मोल लेकर पढ़ना तो बहुत दूरकी बात है। यदि मुफ्तमें पुस्तक मिल जाय, तो उसपर भी मुश्किलसे ही ध्यान जाता है। वे यही कहते हैं—“हमें पढ़नेका वक्त ही कहाँ है? काम करते-करते जी ऊब उठता है, थोड़ा आराम करनेको भी फुरसत नहीं मिलती, फिर पढ़ना कैसा? अगर पढ़ें भी तो किताबें चाहिए, उन्हें मोल लेनेके लिए पैसा नहीं है। किसीसे माँगने जायँ तो देता नहीं। पुस्तकालयोंमें लिखा करें, तो मातृभाषाकी पुस्तकें रखनेवाले पुस्तकालयोंका अभाव है।” दूसरी ओर प्रकाशकों और पुस्तक-विक्रेताओंकी यह चिन्ताहट सुनाई पड़ती है कि पाठकों और खरीदारोंके अभावमें उन्हें अपनी पुस्तकोंकी प्रतियाँ रद्दीके भावमें बेचनी पड़ती हैं। इस बातमें सत्यका अंश न हो, सो बात नहीं। हाँ, कुछ लोगोंको मुफ्तमें कोई किताब मिल जाय, तो पढ़नेकी अनिवार्य इच्छा हो आती है; लेकिन पुस्तक जिस हालतमें मिलती है, उसी हालतमें उसका वापस आना बहुत कम होता है; पर इससे अधिक आशा करना भी फिजूल है।

इधर हमारे अनेक देशवासी सन्तोषकी मूर्ति बने बैठे हैं। भविष्यमें अच्छा समय आनेवाला है, बस इसी आशापर किसी वर्तमान हलचलमें भाग लेना हराम समझते हैं—नशेबाजोंकी तरह सुखस्वप्न देखनेमें ही व्यस्त हैं। भविष्यमें नया जोश और नई स्फूर्ति आनेकी बातें सोचते हैं; किन्तु स्फूर्ति लानेका जो प्रधान साधन है पुस्तकावलोकन, उससे स्वप्नमें भी परिचय प्राप्त नहीं करते। संसारके अनेकानेक

विषयोंके ज्ञानसे भरी हुई पुस्तकें आप लोगोंका उत्सुकतासे मुँह ताक रही हैं। बाहरसे निर्जीव दीखनेवाली पुस्तक आपको घर बैठे सब प्रकारकी जानकारी देनेको सदा तैयार रहती है। पुस्तकोंका यह स्वाभाविक धर्म ही है कि मनुष्य जब चाहे, तभी वे उसे ज्ञान दान करनेको प्रस्तुत हैं। उन्हें कभी आलस छूकर भी नहीं निकलता, पढ़नेवाले यदि उसकी उपेक्षा भी करें, तब भी वे उसका तिरस्कार नहीं करतीं, वरन् वे अपने पाससे निकलनेवाले व्यक्तिकी ओर भी प्रेमसे निहारा करती हैं। तब जो उन्हें अपनावेगा, उसके प्रति उनमें कितनी सहानुभूति और आदर पैदा होगा, यह आप स्वयं सोच लीजिए। जो पुस्तक अपनेमें भरा हुआ अगाध ज्ञान-भंडार हमें हरदम सौंपनेको तैयार रहती है, उसे अपने पाससे हटाना कितनी शरमकी बात है। इसका अर्थ तो यही है कि सब सुखदाता कल्पवृक्षके नीचे बैठकर भी मनुष्य अकिंचन ही रहे। कल्पवृक्षको साधारण इतर वृक्ष समझनेवाले नादान मनुष्यके समान ही हमारे समाजकी दशा है। इसका एक कारण यह भी है कि समाजको सीधी राहपर ले जानेवाले अच्छे लेखकोंकी भी कमी है।

आजकल समाजमें पढ़नेकी कुछ-कुछ रुचि उत्पन्न हुई दीख पड़ती है। ऐसी परिस्थितिमें पुरुषों और स्त्रियोंके हाथमें जो साहित्य पहुँचे, वह उच्चकोटिका होना चाहिए। यदि ऐसा न होगा, तो समाज बाल्यावस्थामें ही गलत रास्तेपर भटक जायगा, जिससे समाज और देश दोनोंको हानि पहुँचेगी। ऐसा होनेसे उसका उत्तरदायित्व हमारे साहित्य-निर्माताओंपर होगा। भावी पौधके कल्याणपर दृष्टि रखकर हमारे साहित्यकारोंको न्याय-बुद्धि, संगठन और विकार-रहित भावसे अपने इस कर्तव्यको निभाना चाहिए—विशेषकर इस बातमें बहुत सतर्क रहना

चाहिए कि हमारी महिलाओंके हाथमें जो पुस्तक जाय, वह ऐसी हो, जो उसके विचारोंको सन्मार्गकी ओर प्रेरित करे और उनके मनमें अच्छे संस्कार उत्पन्न करे। बात यह है कि कोई भी पुस्तक पढ़नेसे उसका प्रभाव पाठकके मनपर पड़ता ही है—अच्छीका अच्छा, दुरीका दुरा। स्त्रियोंके स्वाभाविक कोमल अन्तःकरणपर तो यह प्रभाव बहुत जल्द पड़ता है। इसलिए यदि हमारी देशी भाषाओंके लब्धप्रतिष्ठ साहित्यिक खोज-बीन करके अपनी-अपनी भाषाओंकी ऐसी पुस्तकोंकी सूची प्रकाशित कर दें, जो विशेषकर महिलाओंके पढ़ने योग्य और हितकारी हों, तो देशका बड़ा उपकार हो। इस कामको अनिश्चित समय तकके लिए उठा रखना हानिकारक है, क्योंकि महिलाएँ ही प्रत्येक समाजकी आधार होती हैं, अतः देश-हितैषी साहित्यकारोंका कर्तव्य है कि वे महिलाओंकी सर्वांगीण उन्नतिमें सहायता पहुँचायें।

प्रतिवर्ष अनेकों पुस्तकें निकलती हैं, बहुत-सा सामयिक साहित्य भी पैदा होता है; किन्तु महिलाओंमें उन्हें पढ़नेवालीयोंकी संख्या कितनी है? बहुत कम। यह बात ठीक नहीं है। मैं यह मानती हूँ कि सब साहित्य एकदम नहीं पढ़ा जा सकता, फिर भी बराबर समय निकालकर प्रयत्न करते रहनेसे बहुत-कुछ पढ़ा जा सकता है। दुर्भाग्यवश हमारे समाजमें कितनी ही स्त्रियाँ ऐसी पाई जाती हैं, जो अंगरेजी भाषामें प्रकाशित कहानियों और उपन्यासोंको पढ़नेमें तो अपना गौरव समझती हैं; पर जब मातृभाषाके ग्रन्थोंका प्रश्न आता है, तो वे कह बैठती हैं—“हमारी भाषामें पढ़ने लायक चीज़ निकलती ही क्या है?”

ऐसी महिलाएँ क्या कभी अपनी सन्तानमें मातृभाषाके प्रति प्रेम उत्पन्न कर सकेंगी? क्या संकुचित विचारोंकी ये स्त्रियाँ आदर्श माता बन सकती हैं? इस प्रसंगमें एक घटनाका वर्णन कर देना अनुचित न होगा। एक मुख्य विद्यालयकी अध्यापिकासे मैंने पूछा—“क्या आपके विद्यालयमें खास-खास धार्मिक

ग्रन्थ पढ़ाये जाते हैं?” उक्त अध्यापिकाजीने तुरन्त ही उत्तर दिया—“पाठ्य-विषय तथा विद्यालय-सम्बन्धी अन्य व्यावहारिक कार्य ही कौन थोड़े हैं, जो धार्मिक ग्रन्थोंका बोझ सिरपर लादा जाय?” यह उत्तर सुनकर मैं आश्चर्यमें आ गई। जिन शिक्षिकाओंके हृदयमें धार्मिक ग्रन्थोंके प्रति ऐसी भावना हो, वे लड़कियोंको धर्मका ज्ञान क्या देंगी? अच्छा भाई, धार्मिक भावनासे नहीं, बल्कि सुन्दर ग्रन्थ समझकर ही हमारी बहनें यदि रामायण और महाभारत पढ़ें, तो उनको कितना बौद्धिक लाभ होगा? जब शिक्षिता महिलाएँ इन राष्ट्रीय ग्रन्थोंका इतना अनादर करती हैं, तो फिर अशिक्षिता स्त्रियोंके विषयमें क्या कहना?

जिन स्त्रियोंके हृदयमें राष्ट्रीय ग्रन्थोंके प्रति ऐसी उपेक्षा हो, उनकी लड़कियोंमें राष्ट्रीय विचार कैसे उत्पन्न हो सकते हैं? बच्चोंको क्या-क्या अवश्यमेव पढ़ाया जाना चाहिए, इसका एक पाठक्रम बनानेकी जरूरत है। हिन्दी-भाषा-भाषी बच्चोंके विषयमें मैं अधिकारपूर्वक कुछ नहीं कह सकती। हाँ, मराठी-भाषा-भाषी बच्चोंको प्रारम्भमें श्री वासुदेव गोविन्द आपटेकी किताबें पढ़ानी चाहिए, फिर लिमयेकी और तत्पश्चात् द्रविड़की। इसके बाद रामायण और महाभारतका अध्ययन कराना चाहिए। इस प्रकार बच्चोंके कोमल हृदयपर राष्ट्रपयोगी गुणोंकी छाप पड़ सकती है। यहाँपर मैं उत्तर-भारतकी स्त्रियोंकी प्रशंसा करूँगी। उत्तर-भारतमें सुशिक्षित महिलाएँ तुलसीकृत रामायण भक्ति-भावसे पढ़ती हैं और कितनी ही स्त्रियाँ तो पढ़ना इसीलिए सीखती हैं कि वे रामायण पढ़ सकें। अपने ग्रन्थका कितना सम्मान है उनके हृदयमें! इस बातसे मेरे हृदयमें उत्तर-भारतकी स्त्रियोंके प्रति श्रद्धा उत्पन्न होती है; पर साथ ही अपनी महाराष्ट्रीय बहनोंको देखकर खेद भी होता है। जिसे पंचम वेद कहते हैं, उस महाभारतको तो प्रत्येक भारतीय महिलाको पढ़ना ही चाहिए। अपने देशके सुयोग्य कवियोंकी रचनाओंसे परिचित

होना प्रत्येक शिक्षित व्यक्तिका कर्तव्य है। जो लोग शेक्सपियरकी कविताओंको कण्ठस्थ करनेमें अपना गौरव समझते हैं, यदि वे अपने देशके कवियोंको उपेक्षाकी दृष्टिसे देखें, तो कितने खेदकी बात है।*

अपनी मातृभाषाके ग्रन्थोंका अध्ययन तो नित्यप्रति कर्तव्यकी भाँति होना चाहिए। स्वयं तो पढ़ना ही चाहिए, अन्य भाई-बहनोंको भी स्वाध्यायकी आदत डालनेके लिए प्रेरित करना चाहिए। सुन्दर विचारोंसे परिपूर्ण पुस्तक तो संसारके असंख्य रत्नोंसे भी अधिक मूल्यवान है। यदि किसी आदमीके पास अगणित द्रव्य हो, तो वह रत्नोंको खरीद सकता है, शूर सैनिकोंकी सहायतासे मनुष्य सम्राट भी भले ही बन जाय; पर यदि प्रतिभाशाली लेखककी प्रतिभा वाचकोंके अभावसे निरुत्साहित होकर लुप्त हो गई, तो वह किसी मूल्यपर भी वापस नहीं मिल सकती। मातृभाषाकी अभिवृद्धिके लिए प्रत्येक स्त्री-पुरुषका कर्तव्य है कि वह यथाशक्ति द्रव्य, लेख अथवा प्रोत्साहन द्वारा अपने लेखक-समाजकी सहायता करे।

हमारी मातृभाषामें जो ग्रन्थ निकलते हैं, उनपर मासिक पत्रों तथा समाचारपत्रोंमें सम्मतियाँ तथा आलोचनाएँ प्रकाशित होनी चाहिए जिससे लेखकोंको प्रोत्साहन मिले। जनताको यह बतलानेकी आवश्यकता है कि कौन-कौनसे ग्रन्थोंमें क्या-क्या विचार हैं।

* महाराष्ट्रके प्रत्येक स्त्री-पुरुषको मोरोपन्त, तुकाराम आदि साधुश्रेष्ठ कवियोंकी रचनाएँ जाननी चाहिए। श्री पंगारकरने मोरोपन्त कविका जो जीवन-चरित प्रकाशित किया है, वह भी अत्यन्त मनोरंजक है और एक बार प्रारम्भ करनेपर पुस्तक समाप्त करनेपर ही छूटती है।

—लेखिका

वह दिन सचमुच बड़े सौभाग्यका होगा, जब अपने देशके श्रेष्ठ कवि, उत्तम निबन्धकार, प्रतिभाशाली नाटक-रचयिता और उच्चकोटिके दार्शनिकोंके विचारोंसे हमारे घर-घरके छोटे-बड़े सभी परिचित होंगे। अभी उस दिन एक बड़े घरानेकी महिलासे मैंने कवीन्द्र रवीन्द्रनाथका झिक्क किया, तो मुझे यह देखकर अत्यन्त आश्चर्य हुआ कि कवीन्द्रके विषयमें वे विलकुल नहीं जानतीं! मेरा ऐसा खयाल नहीं था कि हमारे लक्ष्मीपतियोंने विद्वानोंको अपने घरसे इतनी दूर रखा है। बिजलीके छू जानेसे जैसा धक्का लगता है, वैसा ही धक्का मुझे उपर्युक्त घटनासे लगा।

अन्तमें एक बात और निवेदन कर दूँ। आजकल पढ़ी-लिखी स्त्रियोंमें भी एक बड़ आदत पड़ती जाती है, वह यह कि अपनी मातृभाषा बोलते समय वे अंगरेज़ी शब्दोंका व्यवहार करने लगती हैं। यह लक्षण ठीक नहीं है। मेरी प्रार्थना इतनी ही है कि बोलना किसी एक ही भाषामें चाहिए, जब मातृभाषामें बोलना हो, तब शुद्ध मातृभाषामें और जब अंगरेज़ीमें बोलना हो, तो केवल अंगरेज़ीमें। दोनों भाषाओंकी खिचड़ी बनाना ठीक नहीं।

अपनी मातृभाषाका प्रयोग शुद्ध रीतिसे हो और उसकी दिनों-दिन वृद्धि हो, इसके लिए प्रयत्न करना प्रत्येक स्त्री-पुरुषका कर्तव्य है। दृढ़ इच्छाशक्तिवाला एक व्यक्ति भी अपनी कार्यक्षमतासे जब परिस्थितिको बदल सकता है, तो फिर यदि हम मिलकर अपनी मातृभाषाके साहित्यके भंडारकी पूर्तिका प्रयत्न करें, तो हमें सफलता अवश्य मिलेगी।



यह किसकी तसवीर है ?

श्री मिर्जा अजीमवेग चगताई, वी० ए०, एल-एल० वी०

अगर यह उसल कायम हो जाता कि शादीसे पहले किसी तरह लाजिमी तौरपर लड़की लड़केको देख ले और लड़का लड़कीको, तो जनाव, आप यकीन मानिये कि कमसे कम मेरी तो शादी ही नासुमकिन थी।

शादीसे पहले मैं इस उसलका कट्टर हामी था। जिस लड़कीसे पहली बार मेरी सगाई तै हुई, उसे मैंने किसी-न-किसी तरह ताक-भाँककर देख लिया। वेहद पसन्द आई। उसके बाद यह शौक चर्चाया कि वह भी किसी तरह मुझे देखे। यह भी सुमकिन हो गया। मगर जनाव, साथ ही उसका नतीजा यह निकला कि उस शोख और खवसूरत लड़कीने मेरे बारेमें अपनी एक सहेलीको जो-कुछ लिख मारा, उसका हृवह उद्वरण यह है—“...आँखोंके गिर्द घेरे, कमर झुकी, पीनकमें रहते हैं। हाँ, यह मैं मानती हूँ कि पढ़ने-लिखनेमें तेज हैं। समझदार हैं। खुश तबीयत हैं; लेकिन मेरी समझमें साथ ही अफ्रीमची भी हैं। खुदाकी कसम, तुम्हीं बताओ कि यह भी कोई हुलिया है कि छोटा-सा क़द, उसपर कुवड़ी कमर, ऐनक लगाये...मैंने चढ़ाये...चले जा रहे हैं, गर्दन झुकाये, टटोलते हुए। चेहरेको देखो तो ज़र्द, चपट्टी-सी नाक, वदरंग मटीला चेहरा, मुर्दनी छाया हुआ—मालूम दे, जैसे हठियोंपर खाल मढ़ दी हो! फिर मोटे-मोटे होठ और जगह-जगहपर चेहरेपर कोण, त्रिभुज, आयत चतुर्भुज, कोने और कंगूरे निकले हुए और खुदा भूठ न बोलवाये तो गालोंमें इसी उम्रमें ऐसे गढ़े कि दोनों तरफ आध-आध पाव चने आ जायँ!...यह हिन्दोस्तान है। मेरी शादी ज़बरदस्ती कर दी गई तो यह सब सर आँखोंपर; मगर दिलकी पूछती हो तो बता चुकी न मैं रंजीदा हूँगी और न खुश, क्योंकि यही दस्तूर है...इत्यादि।”

खत मैंने पढ़ा। आत्म-सम्मान भी तो आखिर कोई चीज़ है। लड़कीको मैंने खूब अच्छी तरह देख लिया था। मेरा दिल बैठ गया। आईना उठाकर देखा और चुपकेसे रख दिया। अजीब खींच-तानमें था। कल या न कल? ऐसी लड़की दायसे जानेका एक तरफ अफसोस था और दूसरी तरफ घेरत तकाज़ा करती थी। बहुत खींच-तानके बाद तै

कर लिया कि ऐसी नालायक लड़कीसे हर्गिज़-हर्गिज़ शादी न कहूँगा, जो खुद मुझे पसन्द नहीं करती। चुनाचे चुपकेसे मैंने वहनजीको वह खत दिखा दिया। वे खतको देखते ही आग-ववूला हो गई। खुदा-खुदा करके उन्हें चुप किया। उन्होंने मुझे यकीन दिलाया—“लड़की वदतमीज़ है, फूहड़ है, किसी करमकी नहीं, मैं खुद यही चाहती थी।” फिर उन्होंने दरजनों नाम ले डाले।

इसके बाद दो लड़कियाँ मैंने नापसन्द कर दीं, क्योंकि वे बाहरी खूबसूरतीमें पहली-जैसी नहीं थीं। उसके बाद तीनने मुझे नापसन्द कर दिया और तीसरी तो इस क़दर वदतमीज़ निकली कि एन्ट्रेन्स पास होने और नई सभ्यतामें शिक्षित होनेपर भी उसने शरारतन मेरा नाम रोज़ीनैन्ट (Rosinant) रख दिया।* ज़ाहिर है कि इसपर मेरा खून कैसा खौला होगा।

इसके बाद दस-पन्द्रह जगह चुनावकी कोशिश की; लेकिन नतीजा यह हुआ कि या तो मुझको किसीने पसन्द न किया, या जिन्होंने मुझे पसन्द किया—यानी जिन्होंने मुझे नापसन्द नहीं किया—उन्हें मैंने नापसन्द कर दिया। फल यह हुआ कि मैं खुद तंग आ गया और वहनजी भी परेशान हो गई, क्योंकि मुझे चुपकेसे लड़की दिखानेका इन्तज़ाम उन्हींके सिपुर्द था। हम वहन-भाईकी तजवीज़ यह थी कि लड़की पसन्द आ जानेपर सगाईकी बातचीत हो। अब तब जितनी लड़कियाँ मैंने नापसन्द की थीं, वे सब मुझसे कहीं ज्यादा खूबसूरत थीं; लेकिन जनाव, मैं तो सबसे खूबसूरत चाहता था। किस्सा मुत्तसर यह कि जल्द ही मुझे मालूम हो गया कि यह उसल ही एक सिरसे गलत है कि लड़की लड़केको देखे। लड़केका लड़कीको देख लेना ही काफी है, और यही कामयाबीकी कुंजी है।

वस, इसी सुनहरे उसलपर चलनेसे ही मेरी मनचाही शादी सुमकिन हुई। सगाई तै होनेके बाद ही मैंने अपनी तमाम

* एक यूरोपियन क्रिस्सेके Don Quixot la Manche नामक खन्ती सरमा नायकके घोड़ेका नाम रोज़ीनैन्ट था, जिसके वदनपर दुबलेपनके कारण तरह-तरहके कोने-कंगूरे निकले थे।

फोटो हिफाजतसे छिपा दीं, ताकि हरएक आने-जानेवालीकी नज़रमें न पड़ें और उन्हें उड़ा ले जानेका डर भी न रहे। क्योंकि वहनजीने कह दिया था—“अबकी मरतवा अगर तुमने अपनी देखा-भाली कराई, तो मैं फिर कोई दिलचस्पी न लूँगी।” मैं भी अच्छी तरह जानता था कि अगर यह लड़की मुझे देख पायगी, तो ताज्जुब नहीं कि हुसक जाय या मेरे ऊपर तरह-तरहके रिमार्क पास करके मुझे ही मजबूर कर दे कि मैं उसकी तरफसे फिर जाऊँ। खैर, इसी किस्मकी तमाम एहतियात वरतनेपर मुझे कामयाबी मिली और मेरी शादी हो गई—लेकिन लड़का-लड़की एक दूसरेको पहले देख लें, इस सिद्धान्तको तिलांजलि देकर।

[२]

मुझे अगर अपनी बीबीकी तरह-तरहकी तसवीरें खींचने और खिंचवानेका शौक था, तो कोई ताज्जुब नहीं। तसवीरें खिंचवाई, जगह-जगहसे इलार्ज करवाई, हर रखसे बिठाकर तसवीर ली, हर लिवास और तर्ज़में तसवीरें खींचीं, उम्दा-उम्दा फ्रेम लगवाये, तसवीरोंमें तरह-तरहके रंग भरवाये; गरज़ फोटोग्राफीकी हद्द कर दी और कमरा मेरी बीबीकी तसवीरोंकी चित्रशाला बन गया।

लेकिन इस चित्रकारीका नतीजा यह हुआ कि ‘खरबूजेको देखकर खरबूजेने रंग पकड़ा’ और मेरी प्यारी बीबीको अपने दिलरुबा शौहरकी तसवीरें खींचने-खिंचवानेका शौक लग गया। अब तो खुदा ही हाफिज़ है।

× × ×

खानम (श्रीमतीजी) ने मेरी मौजूदा तसवीरोंको गौरसे देखकर कहा—“इनमें से कोई भी ठीक नहीं, सब घरकी खींची हुई हैं न।”

भाभीजीने मुसकराकर तानेसे कहा—“यह घरकी खींची हुई हैं ! ज़रा आँखोंसे तो देखो।”

“घरकी खींची हुई नहीं हैं, तो किसी ऐसे-वैसेने खींची हैं।”—खानम बोली।

भाभीजीने कहा—“नीचे नाम लिखा है—ऐसे मशहूर फोटोग्राफकी दूकानकी...”

खानम मज़ाकर बोली—“ऊँची दूकान फीका पकवान,

सब बेगार टालते हैं। इससे अच्छी तो खुद मैंने खींची है।”

“आखिर इसमें खराबी कौन-सी है ?”—भाभीने खानमसे पूछा—“साफ तसवीर है, बाल-बाल साफ आया है। यह देखो, आँखके नीचेकी हड्डी...ज़रा भाई, उधर मुँह फेरना तो,”—मैंने मुँह फेर लिया तो बोलीं,—“यह, यह, यह ! देखों, आँखके नीचेकी हड्डी जैसी साफ इस तरफसे दीखती है, वैसी ही तसवीरमें है...और यह देखो, आँखसे नीचेका ढाल बराबर चला आ रहा है और ठोड़ीके पास...यह देखो, उभरी हुई हड्डी कैसी साफ है।”

इस तरह भाभीने मेरे चमखे चेहरेके चढ़ाव-उतारका भाष्य करके साबित कर दिया कि तसवीर हूबहू ठीक है। नक़ल एकदम असल जैसी है। खानमको वेहद बुरा मालूम हुआ। उसने तसवीर भाभीके हाथसे भपट ली और जल-भुनकर कहा—“अच्छा वहन, मैं कुछ तुमसे थोड़े कह रही हूँ, जो बहसपर तुल पड़ी।”

मेरे एक दोस्त थे, जिनसे मेरी बहस रहती थी कि मैं तगड़ा या वह। जाइँमें हम दोनों बादामका हलवा खाते थे और छिपे-छिपे दंड पेलते थे, फिर दोनों पहलवान अपने-अपने हट-मुट शरीरको नापते और स्टेशनपर जाकर अपनेको तौलकर मुकाबला करते थे। कभी मैं एक मन पाँच सेरका निकलता था और वे एक मन छे सेरके, कभी वे सेर-प्राध-सेर घट जाते थे। मेरी तसवीरोंमें कहीं उनकी भी एक तसवीर निकल आई। भाभीने उसे देखकर कहा—“ज़रा इस चमखेको देखना...देखकर ही डर लगता है !”

खानम दिल-ही-दिलमें सुलग गई और फुर्तीसे तीसरी तसवीर निकाली और कहा—“ज़रा जेठजीको देखना, जान पड़ता है, मानो बोर रखे। मुझे तो देखकर फुरेरी आती है...ज़रा देखिये तो गर्दन !”

भाई साहब दरस्ल वेहद मोटे थे। मगर यह चोट थी दरस्ल भाभीके ऊपर, और भाभीजीने एक मुसकराहटसे उसे महसूस भी किया। खानमने कहा—“न भागनेके, न दौड़नेके...”

भाभीने फौरन प्रतिवाद करते हुए कहा—“खैर, दौड़ने-भागनेकी भले आदमियोंकी ज़रूरत ही क्या है ? मुर्गियाँ पकड़नेके लिए आदमी नौकर है।”

परसों भाई साहबके दौड़नेका नमूना मेरे सामने अजीब भद्दी तरह पेश आया था। बात यह हुई कि मुर्गी भाग निकली थी। उसे पकड़नेकी एक तरफसे भाई साहबने कोशिश की थी और दूसरी तरफसे मैंने। यह ज़ाहिर है कि भाई साहब अपने मोटे बदनसे कैसा कुछ दौड़ सके थे।

“जो खुद दौड़-धूप न सके, वह आदमी ही क्या?”—कहकर खानम तसवीरें समेटकर चलती बनी; लेकिन चलते वक्त मुझसे कह गई—“आज शामको फोटोग्राफरको ले आना।”

[३]

फोटोग्राफर आया तो सबसे पहले खानमने उसका कैमरा देखा। फोटोग्राफी वह जैसी जानती थी, वह मुझे मालूम है; लेकिन ‘कोडक’ और ‘ज़ाइस’ आदि कैमरोंके सूचीपत्र देख-देखकर उसे तरह-तरहके कैमरों और लसोंके नाम ज़रूर याद हो गये थे, और दरअसल उसकी फोटोग्राफीकी जानकारी यहीं तक थी।

“आपके कैमरेमें कौन-सा लेंस है?”—खानमने फोटोग्राफरी शानसे पूछा। फोटोग्राफरने किसी ऐसे जर्मन लेंसका नाम लिया, जो खानमने ख्वाबमें भी न सुना था। खानमके चेहरेपर अज्ञानकी एक हल्की-सी धराहट दौड़ गई; लेकिन मज़ा यह कि जवाबमें ‘अच्छा’ कहकर उसने लेंस उठा लिया और उसपर लिखे हुए नामको पढ़ने लगी; लेकिन वह वेतुका कम्बल्ट जर्मन नाम-कोई पचीस-तीस अक्षरोंका था, जिसका उच्चारण हम हिन्दोस्तानियोंके लिए नामुमकिन-सा है। लिहाज़ा नाम पढ़नेकी बेकार कोशिश करके खानमने पूछा—“कितनेका कैमरा है आपका?”

“नया सँगाया है।”—कुछ धमकीके साथ आँखोंमें आँखें डालकर फोटोग्राफरने कहा—“सिर्फ लेंस चौदह सौका है।”

खानमने आहिस्तासे लेंस फोटोग्राफरके हाथमें दे दिया। फोटोग्राफर बोला—“आप कहेगी कि लेंसपर इतने दाम क्यों खर्च किये, तो वह इसलिए कि यह लेंस बालकी खाल खींच लेता है।” ‘बालकी खाल’ कहते वक्त फोटोग्राफर साहबने इस ढंगसे हाथ चलाया, गोया वे खुद ही बालकी खाल उधाड़ रहे थे।

लेंस कैमरेपर चढ़ा दिया गया, तब खानमने प्लेटोंपर ध्यान दिया और कहा—“रैपिड हैं न?” यह कहकर उसने प्लेटोंके डिव्वेकी तरफ हाथ बढ़ाया।

“एक्स्ट्रा रैपिड।”—फोटोग्राफरने कहा।

खानमको मालूम हो गया कि यह फोटोग्राफर रोबमें आनेवाला नहीं, वरना इससे पहले जो आया था, उसे तो उसने न-मालूम कितना सिखाकर छोड़ा था। कैमरा जगहपर लगा दिया गया। खानमने मुझे कपड़े पहननेका हुक्म दिया।

मैं कोट पहनकर टाई लगा रहा था कि खानम कमरेमें आई—“आपको तो मुझसे ज़िद है।”—यह कहकर हाथसे टाई घसीटकर उसने वह फेंकी।

“हैं, हैं।”—मैंने मुँह फाड़ा।

“कोई दूसरी टाई ही नहीं जुरती, बस यही एक रह गई है? सुबह यही, शाम यही...शाम यही, सुबह यही।”

ट्रंक खोलकर डिव्वेसे एक नई-सी टाई निकाली और उसे हाथमें लेकर उसने कहा—“और कोट! कोट!”

मैंने कोटकी तरफ देखा—“क्यों, क्या हुआ?”

“जैसे जानते ही नहीं कि फोटोके लिए काला कोट होना चाहिए।”—यह कहकर वह जाड़ोंका कर्थई ब्लेज़र निकाल लाई।

“मार डालोगी...गर्मीमें।”—मैंने ब्लेज़र देखकर कहा—“खुदाके लिए...”

“आपको तो फिज़ूल बातें आती हैं। छिन्न-भरको तो पहनना है।” यह कहकर वुस्स किया जाने लगा।

“आइये साहब।”—फोटोग्राफर साहबने आवाज़ दी।

मैंने जल्दी-जल्दी कपड़े पहने और बाहरको चला। खानमने जोरसे बाँह पकड़कर कहा—“आइनेमें देखो तो ज़रा। ज़रा सिरको—सिरको...”

मैंने शीशेमें देखा। बाल बिलकुल ठीक बने थे; लेकिन वैसे नहीं, जैसे खानमको पसन्द थे। वैसे बनाना ही मुश्किल था। मैंने कहा—“खुदाके वास्ते मुझसे वैसे बाल न बनवाओ—औरतों-जैसे।”

“आप भी क्या फिज़ूल बातें करते हैं...नहीं मानेंगे आप...इधर...इधर लाओ...मैं न मानूँगी।”

पकड़ लिया खानमने आखिरको। मुझे बालोंका यह नामाकूल तर्ज सख्त नापसन्द था; मगर...

कुर्सीपर बैठ गया और मेरी प्यारी नाइनने पीछे खड़े होकर ठोड़ी पकड़कर मेरा सिर अपनी गोदसे लगाकर बाल बनाना शुरू किया। बड़ी कामयाबीके साथ बुरुशसे नोक-पलक ठीक करके इत्मीनानसे देखा। अब मुझे जानकी इजाजत थी। मैं जाकर कैमरेके सामने कुर्सीपर बैठ गया। फोटोग्राफरने कैमरेका 'लेवेल' ठीक करके काले कपड़ेमें सिर डालकर शिस्त लगाई और थोड़ी देर बाद सिर निकाला।

“ठीक है न ?”—खानमने पूछा और अपना सिर काले कपड़ेमें डाल कर देखा। कैमरेके ताकतवर लेंसने कुछ और ही कहानी कही। एकाएक खानमने सिर निकालकर फोटोग्राफरसे कहा—“विलकुल गलत है।”

“कैसे ? साहब, कैसे ?”

“तुम खुद देखो।”

फोटोग्राफरने फिर अपना सिर कपड़ेमें डाला और खानमने कहा—“देखिये गौरसे...दोतरफा चेहरेको...बाई तरफ...”

“क्या है ?”—फोटोग्राफरने उसी तरह सिर डाले हुए पूछा।

“किस कदर खराब तसवीर आयगी...और आप कहते हैं, क्या है ? ‘पोज़’ ही गलत है।”—खानम बोली।

“तो साहब गालोंका गड्ढा तो आयेगा ही।”—सिर निकालकर फोटोग्राफरने कहा। इधर मैंने अपने-आप एक अज्ञात भावसे, वे-अख्तियारीके साथ, ज़रा गाल फुलाये। जबबमें खानममें घुमाकर फोटोग्राफरको देखा और कहा—“कैसे आप कहते हैं ?” फिर मेरी थोर घूमकर बोली—“आप सीधमें उस बकरीकी तरफ देखिये।” सामने ज़रा बाएँ हाथको एक बकरी बैठी जुगाली कर रही थी।

अब खानमने फिर कपड़ेमें सिर डालकर देखा और हाथसे इशारा करके कहा—“उधरको...उधर...उधर...बस-बस...ऊँह...इतना नहीं। बस। एक ज़रा इस तरफ...हाँ, सिर ऊँचा...अरे, इतना नहीं...बस, बस, ज़रा आगे...” यह कहकर खानमने सिर निकाला और कहा—“बस, अब आप हिलियेगा नहीं। आप तो उस बकरीपर नज़र जमाये रहिये।”

अब फिर फोटोग्राफर साहबकी वारी आई। उन्होंने सिर डाला और बोले—“यह ‘पोज़’ तो उससे भी गलत है।”—यह कहकर उन्होंने सिर निकाल लिया और कहा—

“बालोंको आपने नहीं देखा। बेतरह ‘हाई लाइट’ पड़ रही है। फिर ओठ बाहर निकले मालूम हो रहे हैं। और ठोड़ीकी हड्डी...आगेको...फिर कनपटी।”

इधर कुछ मेरा भी हाल सुनिये। गर्मीके मारे बुरी दशा थी। उसपरसे गर्दनकी रंग-रंगमें दर्द, क्योंकि सारी रंगें गर्दनको एक खास तरीकेपर साधनेके लिए मजबूरन तैनात की गई थीं—जैसे खीमा खड़ा करनेके लिए डोरियाँ बाकायदा खिंची रहती हैं। ओठ भरे मोटे हैं। उन्हें मैं खुद ही दाँतोंसे पकड़े ही नहीं, बल्कि मानो पिये बैठा था। बाङ्गोंकी पतली नाज़ुक रों इस खींच-तानमें शल हो चुकी थीं। पिची गालोंको थोड़ा फुलानेकी कोशिशमें मुँहमें हवाकी थोड़ी साँस रोके बैठा था। इधर यह डर लगा था कि गालोंमें हवाका परिमाण कम-ज्यादा न हो जाय, या एक तरफका गाल दूसरी तरफसे ज्यादा न फूल जाय। आप खुद तज्जुवा करें, तो आपको मालूम होगा कि यह काम कितना मुश्किल है। ये सब बातें तो थीं ही और फिर बकरी ! वह भला निचली काहेको बैठती। खड़ी हो गई और घूमकर दूसरी जगह जा बैठी। मैंने उसकी जगह अन्दाज़ ली थी कि यहाँ बैठती है और सोच लिया था कि उसी जगह नज़र रखूँगा ; लेकिन किलहाल आँखें बकरीपर थीं। बोल सकता न था, क्योंकि ओठ मसूड़ोंसे चिपकाये बैठा था।

खानमने फिर सिर डाला और थोड़ा-सा “इधर...उधर...ऊपर...नीचे” करनेके बाद फोटोग्राफरसे कहा—“अब तसवीर ले लो।”

फोटोग्राफरने भी भगड़ा खत्म करना चाहा। उधर उसने ‘रेडी’ कहा, इधर मैंने ज़रा गालोंमें थोर हवा पकड़ी। “वन, टू, थ्री !” तसवीर खिंच गई।

मैंने इत्मीनानकी साँस ली। खानमने फोटोग्राफरसे तसवीर बढ़िया होनेकी वारेमें वातचीत की और उसे हुकम दिया गया कि जल्दसे जल्द प्लेट धोकर दिखाये, उसके बाद ‘पूफ’।

[४]

शायद आपने स्कूलमें हिसाब पढ़ा होगा, और आप धन, ऋण, गुणा, भाग, कोष्टक, वर्गमूल आदिके चिह्नोंसे परिचित होंगे। ऋणका चिह्न होता है यह ‘—’, जिसको अंगरेज़ीमें ‘माइनस’ कहते हैं, और छोटे कोष्टकका चिह्न है यह (), जिसे अंगरेज़ीमें ‘ब्रैकेट’ कहते हैं।

प्लेट धुलकर सूखकर आया, तो खानमने कहा—“यह क्या है ?” नाक और ठोड़ीके बीचमें छोटे कोष्ठके भीतर कृष्णका चिह्न मौजूद था—इस तरह (—) !

“मुँह है ।” फोटोग्राफरने कहा और वाकई था भी मुँह ही ! मुँह में मुँहवाता था ।

“अरे साहब, यह क्या ?...दोनों तरफ !”—खानमने कोष्ठकोंको दिखाकर पूछा—“यह क्या है ?” फोटोग्राफरने इसे जान-बूझकर अनजान बनना खयाल किया और जवाबमें मेरे चेहरेको देखा । मैंने स्वभावतः एक जम्हाई लेकर एक खास ढंगसे मुँह सिकोड़ते हुए उन कोष्ठकोंको उड़ानेकी कोशिश करनी चाही—यानी ओठ समेटकर ज़रा आगे कर दिये ।

फोटोग्राफरने मेरी तरफ उँगली उठाकर कहा—“ये भुर्रियाँ हैं । बाँझोंके इधर-उधर देखिये ।”

“इतनी ज़ाहिर तो नहीं हैं ।”—खानमने कहा ।

“मेरा लेंस तो बालसे भी बारीक निशानको नहीं छोड़ता, फिर मेरी क्या खता है ? लेंसका तो काम ही यही है कि असलकी नक़ल उतार दे ।”

“प्रिन्ट लीजिए...प्रूफ लाइये...देखें ।” खानमने कहा ।

× × ×

प्रूफ आया और मैं वेचैन-सा हो गया, क्योंकि गाल कृत्रिम ढंगपर फुलाये हुए थे, यह साफ मालूम होता था । “यह क्या ?”—कहकर खानमने एक प्रलयकारी दृष्टि मेरे ऊपर डाली—“इसी हरकतकी वदौलत तो ये कोष्ठक इतने ज़्यादा ज़ाहिर हो गये ।”

मैं क्या जवाब देता ? कुछ हक़लाकर अपराधीकी तरह उस प्रलयकारी दृष्टिको देखकर मन-ही-मन दुआ माँगने लगा ।

खानमने गुस्सेमें भरकर प्लेट उठाकर फेंक दिया । प्लेट मन्त्रसे फर्शपर गिरकर खील-खील हो गया ।

प्लेट फेंककर खानमने फोटोग्राफरसे कहा—“आप न तो ‘पोज़’ लेना जानते हैं, न यह कि किसी खास जगहका कैसे फोकस लें । आपको यह भी पता नहीं कि रोशनीका रुख किधर है और फिर प्लेट धोनेमें तो आप कमाल करते हैं । विलकुल सियाह भट तसवीर खींचकर रख दी । वस, कैमरा कीमती हो, यह न-मालूम क्या सोच रखा है सबने !”

फोटोग्राफर इसका क्या जवाब देता ? उसने मेरी तरफ देखा । मैंने उसे आँख मार दी कि चुप रहे । दूकानदार आदमी । समझ गया और बोला—“आप खफा क्यों होती हैं, मैं दूसरी तैयार करता हूँ...अभी ।”

“आपसे नहीं खिंचेगी ।”—खानमने कहा ।

“अभी लीजिए । अभी-अभी । ज़रा देखिये मेरी कारीगरी ।”—खानमकी कमज़ोरीको उसने मेरे आँख मफ़काते ही ताड़ लिया था ।

× × ×

फिर मुझे सौ सिंगार करने पड़े । वन-ठनकर फिर मैं मूर्तिकी तरह कुर्सीपर जा उठा । फिर वही मंजिलें तें की गई । अबकी बार मैंने गाल एकदम नहीं फुलाये, क्योंकि फोटोग्राफरने दूसरी ही तरकीब निकाली थी । वह यह कि छोटे-छोटे दो पान खिलाकर उसने कहा कि इन्हें चबाकर दो बराबरके हिस्सोंमें इधर-उधर बाँट लो । ज्यों-त्यों करके तसवीर ली गई ।

शाम ही को फोटोग्राफरने प्लेट पेश की । खानमने फौरन नापसन्द कर दी । मगर इसके पहले कि वह नापसन्दीका कारण बताये, फोटोग्राफरने यह कहकर उसकी ज़वानचन्दी कर दी—“आप अभी कुछ न कहें । अगर तसवीर न पसन्द हो, तो जो चोरकी सज़ा, सो मेरी ।”

प्रूफ लिया गया, वेहद खराब आया—यानी दूसरे शब्दोंमें विलकुल असल जैसा था । कैमरेके ताक़तवर लेंसने गालोंकी मिट्टी पलीद कर दी थी । बीचमें पान दबा होनेसे वे उठ आये थे ; लेकिन उनके इर्द-गिर्द आगेरेके क़िले-जैसी खाई थी । मुँहके दोनों ओर कोष्ठक अपनी जगहपर वदस्तूर थे ; लेकिन उतने ज़्यादा ज़ाहिर नहीं थे, जितने हवासे गाल फुलानेवाली तसवीरमें । फिर चेहरेकी दूसरी जगहोंकी तमाम भुर्रियाँ, जो एक चमरखे चेहरेकी अपनी खास निशानियाँ हैं, इस सफाईसे अपनी-अपनी जगह मौजूद थीं कि जी यही चाहता था कि सबको एकदमसे मिटाकर धर दे । फिर प्रूफ़के अधूरेपनसे सारे चेहरेपर धूपड़ाह-सी छिड़की हुई थी । अपनी आँखोंपर खुद-पसन्दीकी ऐनक चढ़ी रहनेसे चेहरेकी ये स्वाभाविक विशेषताएँ मुझे आईनेमें नज़र न आती थीं ; लेकिन एक ताक़तवर लेंस और उम्दा कैमरेने सारा कच्चा चिट्ठा खोलकर धर दिया था ।

फोटोग्राफर इस बढ़िया तसवीरको 'अधूरी' है, 'सिर्फ खाका है' कहकर वापस ले गया—'रिटच' करनेके लिए। वरना हकीकत तो यह है कि तसवीर न सिर्फ मेरी सबसे सच्ची तसवीर थी, बल्कि हबहब असलके मुताबिक थी।

"अरे बुलाना तो ज़रा।"—खानमने बौखलाकर फोटोग्राफरको बुलवाया। वह आया तो खानमने उँगलीके इशारेसे प्रूफको देखकर बताया—"यह न आना चाहिए।"—यानी दोनों कोष्टक।

फोटोग्राफरने इत्मीनान दिलाते हुए कहा—"खातिर जमा रखिये, इनका कहीं पता भी न चलेगा।"

× × ×

पाँच दिन बादकी बात है। मैं कालेजसे वापस आया; देखा कि सारा कमरा आईनेकी तरह चमक रहा है। खानम खड़ी हुई दोनों हाथोंकी मुठ्ठियोंको दूरबीन बनाये हुए दीवारकी तरफ देख रही थी। मेरे पैरोंकी आहट सुनकर उसने मेरी तरफ देखा। मेरा एक कदम बरामदेमें था और दूसरा कमरेमें। हम दोनोंने एक दूसरेको देखा, फिर मैंने दीवारकी तरफ देखा। सामने दीवारपर मेरी तसवीर शोभायमान थी। वल्लाह! क्या तसवीर थी कि मैं देखतेका देखता रह गया।

"इस बार तो फोटोग्राफरने कमाल कर दिया।"—मैंने कहा।

"क्या लाजवाब तसवीर खींची है!"—तसवीरकी मालिकिन यानी खानमने कहा।

"यह किसकी तसवीर है?"—कमरेमें दाखिल होते हुए भाभीजीने पूछा। फिर ज़रा ज़ोर देकर—"यह किसकी तसवीर है?"

खानमने भाभीजीकी तरफ देखा। भाभीजीने खानम और तसवीर और मेरी तरफ देखकर खानमसे फिर सवाल किया—"कहाँसे आई...यह किसकी तसवीर है?"

खानमके आन्तरिक विचारोंका मुझे पता नहीं, सिवा इसके कि उसके खूबसूरत खिले हुए चेहरेपर गुस्सेका गुबार-सा छा गया। हाँ, मुझसे पूछिये कि मेरा क्या हाल हुआ। हालाँकि तसवीर किसी तरह मेरा फोटो कहलानेकी हक़दार न थी और न मैंने उसे बनवाया ही था, फिर भी उसकी पैदाइशका

ज़िम्मेदार होनेकी वजहसे मैं कुछ अजीब शरमिन्दगीमें था।

भाभीजीने मेरी खामोशीके कुछ और मानी लिये और गौरसे तसवीर और मेरे चेहरेका मुकाबला करके मुसकराकर सिर हिलाते हुए कहा—"आपकी है?...सच बताइये...आपकी है न?"

"उफ़फ़ोह!"—खानमने जलकर कहा—"उफ़फ़ोह, कैसी बनती हैं, आप जैसे..."

इतनेमें दरवाज़ेकी चौखटपर खटसे आवाज़ हुई और भाई साहबने अपनी भारी आवाज़में कहा—"क्या है?... हैं!...यह किसकी तसवीर है?"

"खूब! यह आपकी तसवीर है!"—भाभीजीने कहा।

"यह किस गधेने तसवीर खींची है?"—भाई साहबने कहा—"लाहौल विलाकूबत!"

खानमका दिल बैंगनका भुर्ता हो रहा था। क्या मैं जवाब देता, क्या वह!

भाभीजीके चेहरेपर वेइन्तहा शरारत-भरी मुसकराहट नाच रही थी। उन्होंने जल्दी-जल्दी ऐनक साफ की और दाढ़ने हाथमें ऐनक पकड़कर पहले मुझे निहायत गौरसे देखा, फिर ऐनक लगाकर तसवीरको घूरना शुरू किया। उनका चेहरा और भी खिल उठा। उनकी शरारत-भरी मुसकराहट और मुसकराहट-भरी शरारत ज्यादासे और भी ज्यादा ज़ाहिर होती गई। खानम उनके चेहरेकी तरफ टकटकी बाँधे देख रही थी। जिस अनुपातमें भाभीजी खिलती जा रही थी, उसी अनुपातमें खानमके चेहरेपर गुस्सा और मुँहफलाहट बढ़ती जाती थी। यहाँ तक कि आखिरकार आँखों ही आँखोंमें जंगका ऐलान हो गया!

× × ×

भाभीजी कमरेसे कदक़हा लगाती हुई गईं। जब ज़रा गुस्सा कम हुआ, तो खानमने उस पड़्यन्त्रकी आशंकाका कुछ आभास दिया, जिसकी शुरूआत भाभीजीने की थी। दरस्ल भाभीजी और भाई साहब दोनों लड़नेकी नीयतसे सलाह करके आये थे।

अभी यह बातें हो ही रही थीं कि गुलाबो बुआ हाथमें तश्तरी लिये हुए आ पहुँचीं।

"यह तसवीर किसकी है?"—उन्होंने गौरसे देखकर

रक्षावीरसे तसवीरकी तरफ इशारा करके मुसकराते हुए पूछा—
“किसी फिरंगिनकी है ? मेमकी ?”

खानम इस जोरसे फट पड़ी कि खुदाकी पनाह !—“ऐसी बातें वहीं (भाभीजीसे) जाकर किया करो । खबरदार, जो मुझसे ऐसी बातें कीं ।”

गुलाबो बुआ बड़बड़ाती हुई कमरेसे निकल गई ।

इतनेमें खरबूजेवाली आई । रोज़ खरबूजे बेचने आती थी । मेरी समझमें भाभीजीके कमरेमें होकर आई थी, जभी तो उसको उन्होंने सिखलाकर भेजा था । उसने आते ही खरबूजोंकी बातचीत करनेके बजाय फौरन खानमकी तरफ देखकर पूछा—“यह तसवीर किसकी है ?”

“निकल यहाँसे,”—खानमने आग-बवूला होकर कहा—
निकल यहाँसे चुड़ैल, निकल । नहीं...निकल-निकल...”

× × ×

“बहूजीने मशीनकी एक सुई माँगी है ।”

मुड़कर खानमने देखा । पड़ोसके बँगलेमें खानमकी सुँहवोली बहन रहती थी । उन्होंने अपने लड़के-नौकरको एक सुई लेनेको भेजा था ।

“अच्छा देती हूँ ।”—खानमने कहा ।

“यह तसवीर किसकी है ?”—मानो उसने जवाबमें कहा ।

खानमने इस जोरसे एक चाँटा उसके गालपर दिया कि जब तक खानम लकड़ी तलाश करे-करे, तब तक वह रोता हुआ भागा ।

“अबे, सुई तो लेता जा ।”—मैंने पुकारकर कहा, मगर वह तो चौकड़ी भर रहा था ।

अभी खानम बड़बड़ा ही रही थी कि मामीजीके यहाँसे आयाजी आई । वे भेजी गई थीं खानमकी तबीयतका हाल पूछने ; लेकिन देखिये तो मक्कारकी बातें, पूछती है—“यह तसवीर किसकी है ?”

खानमने एक डाँट बताई और दपटकर निकल दिया ।

“मैं तो तबीयतका हाल पूछने आई थी...”

“चूल्हेमें जाय तबीयत...निकलो यहाँसे ।”

आयाजीको निकालकर अब खानमकी अजीब हालत थी ।

आयाजी गई ही थी कि मालीका लड़का इनाम माँगने आया । उसकी भी खबर ली गई । इतनेमें धोबिन आई, उसकी भी वही दशा हुई, जो खरबूजेवालीकी हुई थी । उसके

वाद अम्मा आई, फिर नानी आई, और उन्होंने भी आँखें मिंचाकर पूछा—“यह किसकी तसवीर है ?”

दिन-भर इसी हड़बोलमें कटा । शामको जो मैं वापस आया, तो क्या देखता हूँ कि एक मोटी-सी लकड़ी रखी है । सबका प्याला भर चुका है—“अगर अब किसीने पूछा कि यह तसवीर किसकी है, तो उसकी खैर नहीं ।”—खानमने लकड़ी दिखाकर कहा ।

इतिहास तो देखिये कि भाभीजीका कुत्ता टामी कमरेमें आया और लगा दुम हिलाकर देखने तसवीरकी तरफ । उसने दुम हिलानी बन्द कर दी । गौरसे तसवीरकी तरफ देखकर अचल हो गया—जैसे सनाटेमें आ गया हो । देखते-देखते उसने तसवीरसे आँखें हटाकर खानमकी तरफ प्रश्नवाचक दृष्टि डाली ही थी कि वही लकड़ी इस जोरसे उसकी पीठपर पड़ी कि दोहरा हो गया और चिल्लाता हुआ बेतहाशा भागा—
खानम उसके पंछे-पीछे...

दरवाजेके आगे भूलेदार कुर्सीमें कुत्ता उलझा...इधरसे खानम... और उधरसे अपने प्यारे टामीकी चिल्लाहट-भरी फरियाद सुनकर भाभीजी लपकीं । कुत्ता तो कूदकर निकल गया, मगर जिठानी-देवरानीमें ऐसी टक्कर हुई कि दोनों गिरीं ।

भाभीजीकी ऐनक टूट गई, जो उन्होंने अभी-अभी मुझसे मोल मँगवाई थी और जिसके दाम भी अभी तक नहीं दिये थे ।

“यह लीजिए अपनी ऐनक !”—भाभीजीने हट्टी हुई ऐनक मेरे हाथमें धर दी, गोया अब उसके दाम न देंगी, और फिर उसके बाद...

× × ×

आज तक खानम और भाभीजीमें बातचीत नहीं हुई और हो कैसे ? क्योंकि खानमने क्रसम खा रखी है कि मैं इस तसवीरको न हटाऊँगी और भाभीजीने क्रसम खा रखी है कि मैं लोगोंको सिखाने-पढ़ानेसे बाज़ न आऊँगी । चुनावे जो आता है, यही पृष्ठता है—“यह तसवीर किसकी है ?” और भाभीजीको देखिये कि भूटी क्रसमें खाती है कि मैंने किसीको नहीं सिखाया ।

क्या ‘विशाल भारत’ की पाठिकाँ कोई तसवीर बतलायेंगी कि भाभीजी लोगोंको सिखाना छोड़ दें और लोग यह नामाकूल सवाल करना छोड़ दें ?

घरकी लक्ष्मी

श्रीमती शान्ता देवी

स्त्रियाँ घरकी लक्ष्मी होती हैं और उन्हींसे घरकी शोभा है। लक्ष्मी धन और ऐश्वर्यकी देवी हैं, यह ठीक है ; परन्तु घरमें धन-सम्पदाकी भरमार होनेसे ही यह नहीं कहा जा सकता कि घरमें लक्ष्मीकी शोभा हो गई। कारण, लक्ष्मी जैसे धन-ऐश्वर्यकी देवी हैं, वैसे ही गृह-लक्ष्मी शोभाकी देवी। जिस सम्पदमें शोभा नहीं, सौन्दर्य नहीं, शृंगला नहीं, वह कुवेरका ऐश्वर्य हो सकता है ; परन्तु लक्ष्मीके श्रीहस्तका स्पर्श उसमें नहीं है। साधारणको जो असाधारण बना सकती हैं, तुच्छको जो अनुपम रूप दे सकती हैं, मनुष्य उन्हींको लक्ष्मी कहता है। यह लक्ष्मी नारी है, न कि पुरुष। पुरुषका कारबार है दूकान, कारखाना, आफिस, अदालत, राज्य और साम्राज्यके साथ ; छोटी चीजोंपर आसानीसे उनकी दृष्टि नहीं जाती। परन्तु स्त्रियोंका कारबार छोटी-मोटी बातों और तुच्छ-से-तुच्छ चीजोंसे चलता है। इन सब बातोंमें आर्थिक बलपर नहीं, बल्कि सिर्फ अपने गुणोंसे जो सौन्दर्य और शोभाकी सृष्टि कर सकती हैं, वे ही लक्ष्मी-स्वरूपिनी कहलाती हैं। वास्तवमें गृह-रचना और घर सम्हालना एक जबरदस्त कला है, इसमें सृजनी शक्तिका अभाव होनेसे काम नहीं चल सकता।

साधारणतः आर्ट या कला कहनेसे हम जो-कुछ समझते हैं, स्त्रियोंकी घर-गृहस्थीमें उसका स्पर्श बिना हुए घर हतथ्री और प्राणहीन हो जाता है। शिद्दाके बलसे हो और चाहे अशिक्षित-पटुत्वके कारण ही हो, सुगृहिणीमें कला-प्रतिभाका थोड़ा-सा मिश्रण होना जरूरी है। परन्तु संसारमें अशिक्षित-पटुत्व इतना मुलभ नहीं, जो बिखरा-बिखरा फिरे। इसलिए स्त्री-शिद्दाका उद्देश्य यदि 'घरके लिए सुगृहिणी बनाना' या 'घरकी लक्ष्मी' बनाना हो, तो लड़कियोंको घर और

विद्यालयमें सर्वत्र ही शिल्प-कलाकी शिद्दाकी ओर ध्यान देना चाहिए। इस आधुनिक सभ्यताके जमानेमें घर-गृहस्थीको कल-कारखानोंसे बहुत आराम मिलने लगा है। अब कमल और ताड़पत्रके पंखेसे या बीने हुए बीजनेसे बयार करनेकी भी जरूरत नहीं पड़ती, अब तो बिजलीका बटन दबाते ही पंखा चलने लगता है। गई-गाँवमें भी रुईकी बत्ती बटकर दिया जलानेकी जरूरत नहीं रही, अगर हरीकेन लालटेनके लिए एक रुपया खर्च करनेकी सामर्थ्य हो। शहरोंमें तो गैस और बिजलीकी बत्तियोंकी भरमार है। पैसा पास हो तो अब मिट्टीके घरोंमें रहनेकी भी जरूरत नहीं, और वैसी हालतमें लीपने-पोतनेकी जरूरत तो खामख्वाह ही मिट जाती है। पक्के मकानोंके फर्श और दीवारें सीमेन्ट और पलस्तरसे वैसे ही भूक दिखाई देती हैं, यही कारण है कि स्त्रियोंमें फर्श और दीवारोंको लीपने-पोतने और चित्रित करनेका आग्रह अपने-आप ही जाता रहा है।

बच्चोंको मा स्वयं अपना दूध पिलाती थीं, और अब विलायती डब्बेके दूध और कहीं-कहीं धायसे काम लिया जाता है। दूध पिलानेके पुराने तरीकेको दूरकर अब बोतल और रबरकी नलीसे काम लिया जाता है। इसी तरह अनेक पुरानी चीजोंकी जगह नई चीजोंने ले ली है। इसका नतीजा यह हुआ है कि आदमीके हाथ आलसी और निठल्ले बेकार हुए जा रहे हैं, मनमें भी जड़ता आ रही है और वह उसकी सृजनी शक्तिको ढके दे रही है। बड़े-बड़े वैज्ञानिक बड़े-बड़े आविष्कार कर-करके संसार-भरके अभावको दूर करनेकी व्यवस्था किये दे रहे हैं, और छोटे-छोटे साधारण मनुष्य कल-कारखानोंसे या तो उनकी आज्ञा पालन कर रहे हैं, और नहीं तो निकम्मे बैठे हुए हैं। स्त्रियोंकी सृजनी शक्ति तो बिलकुल ही दब गई है, मानो उसे लकवा

ही मार गया हो। वे अपने घर-गृहस्थीकी छोटी-मोटी ज़रूरतें पूरी करनेके लिए अपने निजी सौन्दर्य-ज्ञान और कला-प्रतिभाका प्रयोग किया करती थीं; परन्तु अब मशीनकी बनी मार्केवाली चीज़ोंकी बाढ़से उनकी अपनी चेष्टा और पसन्दकी कोई ज़रूरत ही नहीं पड़ती। अब स्त्रियोंको फुरसत ज्यादा मिलने लगी है, और साथ ही एक तरहकी शोभाहीन घर-गृहस्थीमें वरतन आदि असवाबोंकी भरमार होती जा रही है। और इससे ज़रूरत भी पूरी हो जाती है, इसलिए अधिकांश लोगोंके मनमें सौन्दर्यके प्रति विशेष आकर्षण न होनेसे स्त्रियोंके मनमें भी घर-गृहस्थीमें सौन्दर्य-शोभा लानेकी कोई खास तागीद भी नहीं आती। बचपन ही से इस तरहकी तागीद या इच्छाको, घर और विद्यालयोंमें, लड़कियोंमें जाग्रत कर देना ज़रूरी है। घर-गृहस्थीका काम 'किसी तरह काम चल जाने' की भावनासे न होना चाहिए, उसमें सौन्दर्य और लक्ष्मीकी शोभा रहनी ही चाहिए। उस सौन्दर्य-सृष्टिसे ही स्त्रियोंकी अपनी-अपनी प्रकाशन-शैली विशेष-विशेष रूपमें दिखाई देगी। उसीमें उनकी विशेषता है। थोड़ेसे अलमुनियमके वरतन, वाल्टी, लालटेन तथा चीनी मिट्टीके प्याले, प्लेट और कुछ जापानी देशी या विलायती मिलके कपड़े और कम्बल होनेसे ही घरका काम किसी तरह चल ही जाता है। तो फिर उसके पीछे पैसा या वक्त बरबाद करके सौन्दर्य लानेका कारण बहुतोंकी समझमें नहीं आता। बहुतसे लोग कहेंगे 'इतना सुन्दर करनेकी कोशिश भी विलासिता है, यह सब न करना ही अच्छा है।' परन्तु विशृंखलता और असुन्दरता मनुष्यकी आँखों और मनको कष्ट पहुँचाती है, इस बातका अज्ञात दशामें अनुभव करते रहनेपर भी, स्पष्टरूपसे हम उसे समझ नहीं पाते।

वास्तवमें सौन्दर्य-ज्ञान विलासिता नहीं, बल्कि शृंखलाका ही नामान्तर है। कुछ रेखाएँ और रंग जहाँ छन्दहीन वेसिलसिलेसे पड़े हों, वहाँ

अशोभन है। जहाँ उन रेखाओं और रंगोंको किसी खास सिलसिलेसे सजा दिया जाता है, वहाँ सौन्दर्य और शोभा हो जाती है। उस सौन्दर्य और शोभाको देखकर हमारी आँखें तृप्त होती हैं, मन सुग्ध और शान्त होता है। इसलिए यह सौन्दर्य-विलास हमारा उपकार ही करता है। अगर हम पृथिवीकी ओर अच्छी तरह देखें, तो मालूम होगा कि यह विलासिता हमने प्रकृतिसे ही सीखी है। हम धोतियों या साड़ियोंकी किनारियोंपर पर्वत-शिखर, पानीकी लहरें, लताओंकी गति, मेघोंके स्तर आदि अंकित करते हैं और पेड़के हरे पत्तोंपर लाल फूल देखकर साड़ीकी पाड़पर भी हम उसीकी नक़ल करते हैं। प्रकृतिकी वर्ण-सुषमा या रेखाओंके छन्दको जहाँ हम लाँघना चाहते हैं, वहाँ देखते हैं कि हमारी आँखें उसका अनुमोदन नहीं करतीं, मन व्यथित हो उठता है। विधाताकी सृष्टिको स्वीकार करते हुए अगर हम घर-गृहस्थीकी छोटी-से-छोटी सृष्टिका काम कर सकें, तभी हम कलाकी मर्यादा रख सकते हैं। विधाताकी प्रकृतिमें नील आकाशमें सफ़ेद मेघ उड़ा करते हैं, हरे पेड़ोंपर अनेक रंगोंके फूल खिलते हैं, तितलीके पंखोंपर एकके ऊपर एक कितने ही विचित्र रंग कैसे सुन्दर ढंगसे दिखाई देते हैं, मोरके पंखोंमें कैसे मनोहारी विचित्र रंगोंका इन्द्रजाल-सा होता है। इसी तरह पानीकी लहरोंमें, पेड़ोंकी डालियों और पत्तियोंमें, राजहंसकी गरदनमें, नदीके मुहानेमें, लताकी गतिमें, पक्षियोंके पंखोंमें, मछलियोंके डँनोंमें, फूलोंकी पंखड़ियोंमें, पानीके भँवरमें कैसी विचित्र और देखने-लायक सजावट और शोभा होती है। कला तो उसी प्रकृतिकी छाया है—उसीका प्रतिविम्ब है। फिर मला वह कैसे हमसे छूट सकती है? प्रकृतिकी यह विचित्रता ही तो हमारी कला-प्रियताकी मुख्य बाधाको दूर कर देती है। असलमें प्रकृतिको देखना ही कलावानका मुख्य कार्य है। प्रकृतिको जिसने पहचाना है, उससे जो प्रेम करने लगा है और उसके भीतरकी शृंखलाके नियमोंको जो जान गया है, उसकी

आँखें अशोभनको कभी सह ही नहीं सकती।

प्रकृतिको पहचाननेका ही दूसरा पहलू है देशको पहचानना। विधाताकी पृथिवीपर नारियलके पेड़पर सेब या ताड़वृक्षपर अंगूर नहीं लगते। परन्तु हमारे देशके बाजारोंमें बहुतसी शिल्प-वस्तुओंमें ऐसी असम्भव बात भी सम्भव हो रही हैं। भारतकी स्त्रियोंके गहने, कपड़े, वासन और असवाबोंपर यथासम्भव भारतकी प्रकृतिकी छाया न पड़े, तो कलाकी दृष्टिसे उसे उपयुक्त नहीं कहा जा सकता। भारतीय स्त्रियोंकी साड़ीकी किनारीपर 'विलो' या बेंतके पेड़के नीचे राजहंसका चित्र देखा है; परन्तु महावर-रंजित-चरणा और सिन्दूर-शोभिता भारतीय वधूके शरीरपर वह साड़ी और काली लेसदार विक्टोरिया-कटका ब्लाउज कितना वेढंगा और भद्दा दिखाई देता है, इसे हमारे व्यापारी भाई और घरके मालिक बिना समझे ही घर-घरमें उन कपड़ोंका चलन चलाते ही जा रहे हैं।

जिनके पास पैसा है, वे दो-चार सौ रुपये खर्च करके श्यामा भारतीय ललनाओंके लिए भड़कीली क्रोप या जार्जेटपर चमकदार जरीकी फेजन्ट फ्लैसिंगो या बर्ड-ऑफ-पैराडाइज लगवाकर समझते हैं कि आधुनिकता और आभिजात्यका चरम कर डाला। परन्तु भारतीय स्त्रियोंके शरीरके रंग और गढ़नपर हजार विलायती रंग-ढंगकी चीजें लाद दीजिये, उन विजातीय चीजोंसे उनकी शोभा नहीं बढ़ सकती, बल्कि एक तरहका बेतुकापन ही दिखाई देगा। परेशानी तो यह है कि हम इस अस्वाभाविकताको समझ ही नहीं पाते।

भारतवर्षके विभिन्न प्रान्तोंके शिल्पकार अपने-अपने प्रान्तोंके लिए अपने यहाँकी लड़कियों और प्रकृतिको ममताकी दृष्टिसे देखा करते थे, इसीलिए सैकड़ों वर्षोंसे उन्होंने अपने जनोंको जिन आभरणोंसे सुशोभित किया है, वह समयकी कसौटीपर ठीक उतरा है, और आदमीकी नज़रोंमें क्रमशः वह प्रकृतिके समान ही स्वाभाविक हो गया है। अगर

सहसा हम दो-चार वर्षके अत्याचारसे उसे उड़ा देनेकी कोशिश करें, तो यह हमारी भूल है, और हमें यह शोभा भी नहीं देता। हमारे ढाका, बालूचर, मुर्शिदाबाद, बनारस आदिके बने हुए कपड़ोंपर जो काम या नक्शा होता है, उसके भीतरकी रेखाओं और रंगोंमें जो सौन्दर्य है, उसे समझकर उसी धाराके अनुसार हमें नई सृष्टिकी जाँच करनी होगी। यह ठीक है कि मनुष्य सिर्फ पुरानेको लेकर ही नहीं रह सकता, नवीनकी सृष्टि हमेशासे चली आई है और चलती रहेगी; परन्तु नवीनका मतलब सिरके बल चलना या दिनमें चाँदका उदय होना हरगिज़ नहीं। वास्तवमें उसके भीतर पुरातनकी धारा ही नवीन रूप धारण करती है।

स्कूलकी लड़कियोंको सूची-शिल्प (सूईका काम) सिखाते समय, कुड़तीकी बाहोंपर आसमानी रंगमें आइवी लता न कढ़ाकर हम अगर पुराने दुशालों या जामदानी साड़ीकी पाड़ कढ़ानेकी कोशिश करें, तो बहुत-कुछ सामंजस्यकी रक्षा हो सकती है। इसी तरह घरकी दीवारोंपर गुलाबी ऊनसे बुने हुए कार्पेटके विलायती कुझर किट्चके फूल न टाँगकर अगर कसीदेके कामकी कोई चीज़ टाँगें, तो वह अपना देशी घर-सा मालूम होगा।

लोग कह सकते हैं कि घर-बार अच्छी तरह सजानेके लिए काफी पैसा चाहिए। परन्तु वास्तवमें यह बात नहीं! तेलके कनस्तर, काँच और चीनी-मट्टीके भाँड़ोंसे घर न भरकर अगर हम सुन्दर बनावटके मिट्टीके बरतनोंको एक पैसेके रंगसे चित्रित करके उन्हींसे अपना भंडार-घर सजावें, तो उसमें कम ही खर्च होगा। पुरानी धोती-साड़ियोंकी पाड़ोंमेंसे रंगीन सूत निकालकर उससे कुड़ती, जम्फर आदि तथा कँथड़ियोंपर नक्शे काटें, तो उसमें एक कौड़ीका भी खर्च नहीं। गाँवोंकी दूकानोंमें सेलुलायडके बने जापानी खिलौनोंकी भरमार है, और सिफत यह कि एक पैसेवाले मिट्टी या लकड़ीके खिलौने ढूँढ़ें, तो मिले नहीं! स्त्रियाँ अगर मिट्टी और लकड़ीके खिलौने बनाकर अपने हाथोंसे उन्हें

रंगकर उन्हींसे अपना घर सजावें, तो उसमें क्या खर्च है ? पुराने ज़मानेकी माताएँ मिट्टीके खिलौने और पुराने कपड़ोंसे गुड्डे-गुड़ियाँ बना-बनाकर अपने बच्चोंको दिया करती थीं और बच्चे उनसे तरह-तरहके खेल खेला करते थे । साथ ही माकी देखादेखी बच्चे भी खिलौने बनाना सीख जाया करते थे । मगर आज हमें अघेलेका खिलौना भी लेना हो, तो वही जापानी !

यह सच है कि अपने देशके महान कलाकारोंकी सहायता सब समय सबको नहीं मिल सकती । परन्तु सुप्रसिद्ध कलाकार नन्दलाल बसु आदिकी पुस्तकें हम आनायास ही प्राप्त कर सकते हैं, जिनमें उनके रचे हुए अनेक प्रकारके चित्र और नक्शे हैं,—आलीपनके नक्शे, पीढ़ेके चित्र, कपड़ोंकी किनारी और पल्ले आदि । 'रूपरेखा' आदि पुस्तकोंमें मनुष्यके हाथ-पैर, मुँह, गरदन, वालोंकी बनावट, अनेक प्रकारके जूड़े तथा सुन्दर-से-सुन्दर गहनोंके चित्र हैं, जिन्हें देखकर सीखना, अंकित करना और काढ़ना सहज है । इसके सिवा 'गाँवोंमें जो अप्रसिद्ध कलाकार हैं, जिनपर आधुनिकताका तुषार अभी तक नहीं पड़ा है, उनसे बहुत-सी बातें सीखी जा सकती हैं, जैसे पुराने ज़मानेके-से खिलौने, गुड्डे-गुड़ियाँ, लकड़ीके घोंड़े और डिवियाँ, मिट्टीके खिलौने, काँसेके वरतनोंपर नक्कासीका काम, बालूचरी और ढकाई साड़ियोंके पल्ले, कपड़ेके चंदोओंपर फूलकारीका काम, बाँसकी रंगीन डालियाँ और सूप तथा आलीपन आदि । आजकल मेलों आदिमें भी उनकी ये कृतियाँ कम दिखाई देती हैं, परन्तु देशमें स्वादेशिकताके नवजागरणसे अब फिर पुराने गहने और कपड़े आदि कुछ-कुछ नवीन रूपमें दिखाई देने लगे हैं । फिर भी स्त्रियोपयोगी कम कीमतकी चीज़ें अब प्रायः देखनेमें ही नहीं आतीं । इस तरफ हमारा ध्यान जाना चाहिए ।

सचमुच, अब ज़रूरत इस बातकी है कि देशमें जहाँ-जहाँ पीढ़ी-चित्र, कंधड़ी-सिलाई, सुपारी कतरना,

मिठाई बनानेके साँचे, नारियल और मूँजकी रस्सी, जूड़ा बाँधनेकी सूत या उनकी चीज़ें तथा छींके बनानेकी जो कारीगरी है, उन सबका संग्रह किया जाय । देशमें जितने भी बालिका-विद्यालय हैं, उन सबसे पत्र-व्यवहार करके यदि इस बातका पता लगाया जाय कि वे लड़कियोंको शिल्पकी शिक्षा देते हैं या नहीं, और खासकर देशी शिल्पपर जोर देते हैं या नहीं, तो इस तरह शिल्प-शिक्षाका प्रचार बढ़ सकता है । इसके सिवा प्रत्येक पाठशाला और विद्यालयसे अनुरोध करना चाहिए कि वे देशके शिल्पोंका नमूना, जब जैसा मिलता रहे, संग्रह करके एक खास कमरेमें रखते रहें और छात्राओंको हमेशा उस संग्रहके काममें उत्साहित करते रहें । हमारे गाँवोंमें अब भी देखा जाता है कि पैसे-पैसेके मटैले-पत्थरके दिए, चार-चार पैसेकी दीवटें, छोटे-छोटे सुन्दर वरतन, सुराहियाँ, खाटके पाये, पानदान, पंखे आदि बिका करते हैं, जिनका गठन और काम बिलकुल निर्दोष और सुन्दर होता है । इन सब चीज़ोंसे विद्यालय और घर सजानेसे बहुत ही सुहावना मालूम पड़ता है और साथ ही बालक-बालिकाओंका शिल्प-सौन्दर्यका ज्ञान भी बढ़ता है ।

हमारे देशके विभिन्न प्रान्तोंमें अमरक और रेशमके कामके पंखे, अमरकके साथ सिलाईका काम, सोने-चाँदीके सलमा-सितारे और गोटा-किनारीका काम, लाखका काम, काश्मीरी रेशम और उनका काम, इसी तरहके और भी अनेक प्रकारके शिल्प-कार्य प्रचलित हैं, जिनकी शुमार नहीं की जा सकती । इन सबपर हमारी दृष्टि रहनी चाहिए, क्योंकि बिना जाग्रत दृष्टि रखे हमारे हाथोंका आलस छूटना और मनमें सौन्दर्य-ज्ञानको पुनर्जीवित करना कठिन है । इस लेखमें जिस शिल्प-कलाकी आलोचना की गई है, वह है मंडन-शिल्प, अर्थात् घरेलू कारीगरी । यह हमारे घर-गृहस्थीमें काम आनेवाली चीज़ोंकी सौन्दर्य-वृद्धिके ही काम आती है । इससे बड़ी चीज़ अर्थात् भास्कर-शिल्प और चित्रविद्या सीखना हरएकके लिए

कठिन है। भारतीय भास्कर्य और चित्रविद्या देखनी हो, तो प्राचीन मन्दिरोमें उसके अच्छे-से-अच्छे नमूने मिल सकते हैं। परन्तु यहाँ हमें उस विषयकी चर्चा नहीं करना। साधारणतः स्त्रियोंमें जो शिल्प चलता चला आया है, उसीकी रक्षाका उपाय होना चाहिए। कहनेका मतलब यह कि हमारे देशकी वर्तमान और भावी गृहलक्ष्मियोंके लिए घरेलू शिल्पका ज्ञान होना अत्यन्त आवश्यक है, और साथ ही घर-घरमें उसका प्रचलन भी।

इससे कोई यह न समझ बैठे कि हम विदेशी शिल्पका बहिष्कार करना चाहते हैं। शिल्पमें स्वदेश-विदेशका प्रश्न उठ ही नहीं सकता; जो सच्ची कला है, वह कलाके सिवा और कुछ हो ही नहीं

सकती। परन्तु कलाकी रचना यदि अपने वा-
आवेष्टनमें न रहे और प्रकृतिके परे चली जाय, तो उसका रूप निखरता नहीं। यही कारण है कि इस देशकी महिलाके हाथमें कमल और फारसकी सुन्दरीके हाथमें बसरेरा-गुलाब ज्यादा खिलेगा—यद्यपि देखनेमें दोनों ही फूल अतुलनीय हैं।

वास्तवमें, नारीका घर लक्ष्मीका मन्दिर होना चाहिए, इस बातको यदि नारी सर्वदा याद रखे और इस बातको सच समझे कि प्रकृतिकी रूप-सृष्टि तथा अपने देशकी विशेषताको घर-गृहस्थीके काममें भुलाया नहीं जा सकता, तो क्या घर और क्या शिक्षा-मन्दिर, सर्वत्र ही उनके लिए शिल्प-शिक्षा सहज हो सकती है। घरकी लक्ष्मीकी सार्थकता इसीमें है।

निस्पृह

जीवनकी मधुमय घड़ियोंमें;

लखा नहीं मैंने मधुमास;

हास्यमयी ऊपाकी लाली;

मुझसे रही सदैव उदास।

मैं क्या जानूँ कैसी होती;

क्रीड़ा इन्दु - करोंके संग;

नव नीरदकी मृदु वर्षासे;

शीतल हुआ न मेरा अंग।

सुख-स्वप्नोंकी चाह मुझे क्या?

बना निराशाका प्रतिरूप।

सुख-दुख मेरे लिए बराबर;

जैसी छाया वैसी धूप।

—सरस्वती देवी

जालन्धर कन्या-महाविद्यालय

श्रीमती लज्जावती देवी

उत्तरी सदी के अन्त में इस चिर-पुरातन और नित-नूतन देश की हृदयों में नवजीवन की जो जोत जगी थी, उसके भिन्न-भिन्न प्रान्तों में भिन्न-भिन्न रूप प्रकट हुए थे। पाँच नदियों वाले पंजाब में वह आर्यसमाज के रूप में प्रकट हुई थी।

उस समय आर्यसमाज ने हिन्दुओं में धार्मिक और समाज-सुधार के जो काम किये, उनमें स्त्री-शिक्षा एक मुख्य काम था।

जालन्धर का कन्या-महाविद्यालय भी देश को आर्यसमाज की ही देन है। यह कहने में अत्युक्ति नहीं कि यह उत्तर-भारत की स्त्रियों में जाग्रति उत्पन्न करने वाली अग्रणी (Pioneer) संस्था है। इसकी बुनियाद आजसे ठीक पचास वर्ष पहले सन् १८८६ में—डाली गई थी। उस समय पंजाब में लड़कियों को पढ़ाना लोग जितना बुरा समझते थे, उसका अन्दाज़ा इसीसे

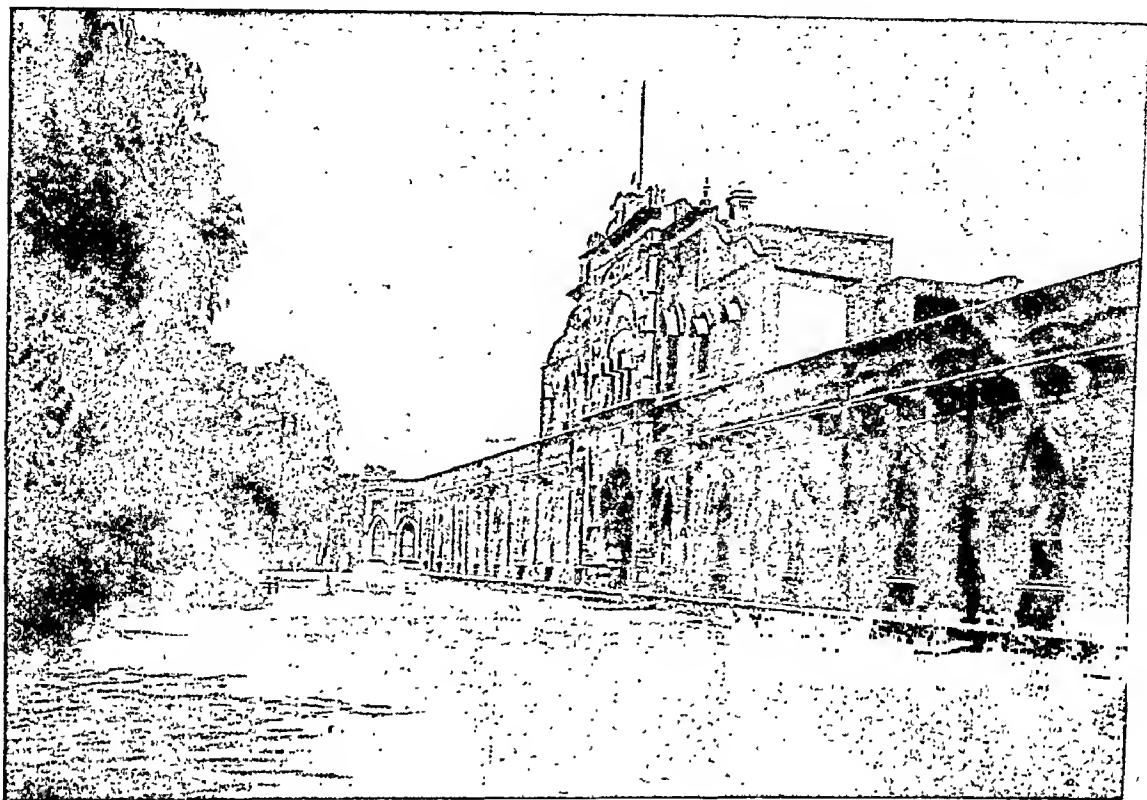
लगा सकते हैं कि १८८६ में १८९६ तक तीन बार इसका काम बन्द हुआ। अन्त में सन् १८९६ में कन्या-महाविद्यालय के नाम से इसकी स्थापना हुई, और इसका प्रबन्ध एक रजिस्टर्ड संस्था को सौंप दिया गया।

इसकी कार्यकाणि में सभामें उन आर्यसमाजियों की ओरसे जो इसके केषमें १००२ में, प्रतिनिधि आ सकते हैं। हर चौथे वर्ष दस सभाका नया चुनाव होता है। विधान की दृष्टि से यह संस्था विलकुल आर्यसमाजिक है। धर्म-शिक्षा भी आर्यसमाज के गिद्धान्तों के अनुसार ही दी जाती है तथा छात्रावास की प्रत्येक छात्रा के लिए दोनों समय संस्था और हवनमें शामिल होना जरूरी है। यह सब होते हुए भी इसका वातावरण विलकुल राष्ट्रीय है—वह आजसे नहीं, १९२० से भी नहीं, बल्कि शुरू से ही अर्थात् १८८६ से ही।

चार-पाँच वर्ष पहले तक यहाँ यूनिवर्सिटी की परीक्षाएँ बहुत कम दिलाई जाती थीं। विद्यालय की अपनी ही पाठ्य-प्रणाली थी और विद्यालय-सभा अपनी ही डिग्री देती थी; पर अब चूँकि कन्याएँ अध्यापन-कार्य अधिक संख्या में करने लगी हैं, डाक्टरों आदि पढ़ने के लिए भी दिनों-दिन अधिक संख्या में जाने लगी हैं और कुछ उच्च



लाला देवराजजी



बोर्डिंग हाउस

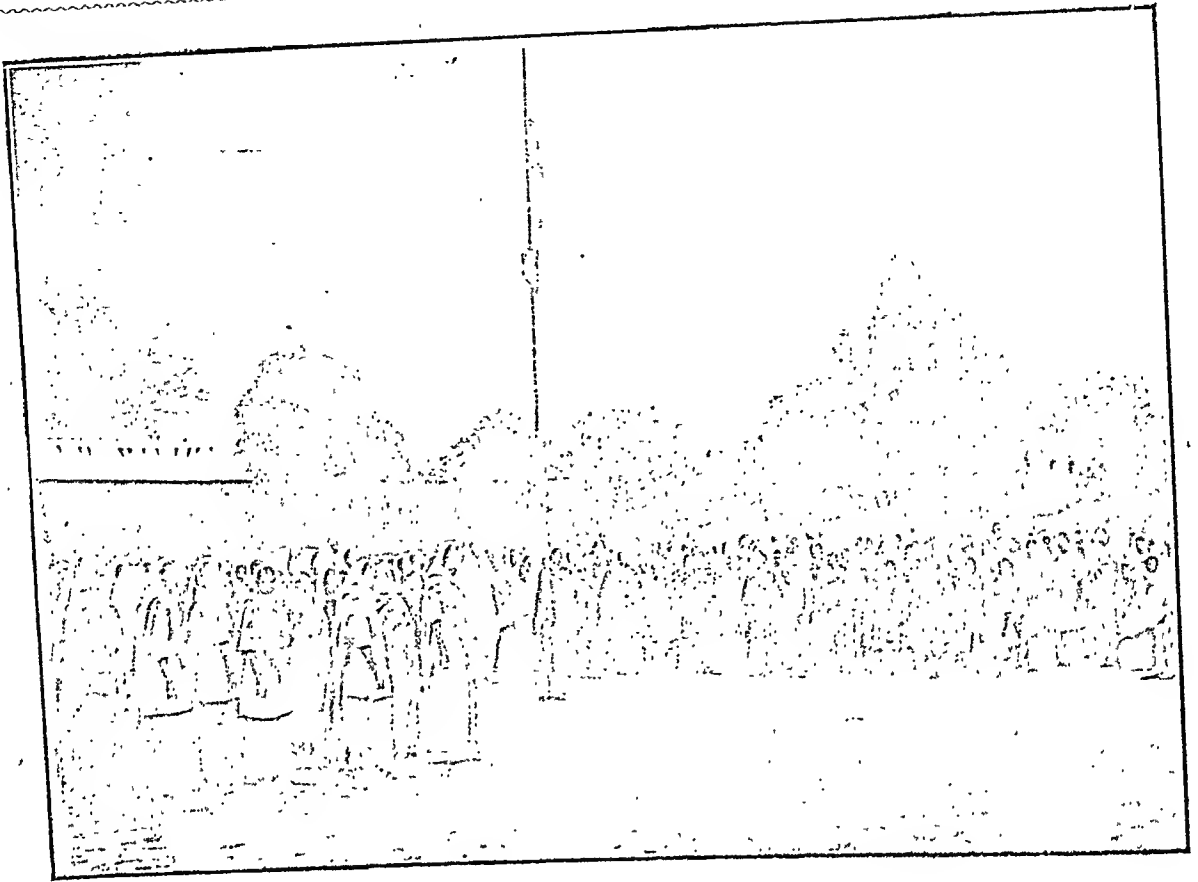
शिक्षाके लिए विदेश भी जाती हैं, इसलिए पिछले पाँच वर्षसे यहाँ पंजाब-यूनिवर्सिटीकी मैट्रिक और एफ० ए० की परीक्षाएँ दिलाई जाने लगी हैं, यद्यपि विद्यालय अब भी अपनी डिग्री देता है। किन्तु इस परिवर्तनसे इसके वातावरणमें कोई परिवर्तन न हो, संचालकगण भरसक इसका प्रयत्न कर रहे हैं।

सन् १८८६ से आज तक इसने गवर्नमेंटसे कभी भी कोई सहायता नहीं ली। पाँच-छै वर्ष पहले तक तो यहाँ उच्च-से-उच्च शिक्षा निःशुल्क थी; पर पिछले कुछ वर्षसे छात्राओंसे थोड़ा-सा शिक्षा-शुल्क लिया जाने लगा है, किन्तु व्ययका अधिक भाग तो अब भी जनतासे ही इकट्ठा किया जाता है।

इस समय विद्यालयके पास उन्नीस एकड़से ज्यादा भूमि है। छात्रावासके लिए विशाल भवन है, जिसमें २५० के लगभग छात्राएँ रह सकती हैं। विधवाओं और विवाहिता लड़कियोंके लिए तथा अनाथ लड़कियोंके लिए भी छात्रावास हैं। यह

सभी मकान जनताके धनसे बने हैं। विधवा-भवनके मकानका मुख्य दरवाज़ा तो जालन्धर शहरके पासके एक गौवकी मुसलमान वहनोंके चन्देसे बना है। इस तरह सरस्वतीके इस मन्दिरमें हिन्दू, मुसलमान और ईसाई सभीका पैसा लगा है।

पचास वर्षके इस लम्बे अवसरमें, विशेषतः उन दिनोंमें जब यहाँ शिक्षा निःशुल्क थी, कई बार तो ऐसा मौलम होता था कि धनाभावसे इसे बन्द ही करना पड़ेगा; किन्तु निराशाके घनघोर बादलोंमें भी इसके संस्थापक स्वर्गीय लाला देवराजने कभी भी गवर्नमेंटसे सहायता लेनेका विचार नहीं किया, केवल इसलिए कि वे समझते थे कि गवर्नमेंटसे सहायता लेनेके बाद उन्हें कन्याओंको अपने आदर्शके अनुसार शिक्षा देनेकी स्वतंत्रता न रहेगी। आज तो संस्थाके पास अपना विशाल भवन है; पर जिन दिनों मई और जूनके महीनोंमें भी लड़कियाँ टीनकी छतोंवाले कमरोंमें रहती और पढ़ती थीं तथा गर्मीसे कभी-कभी



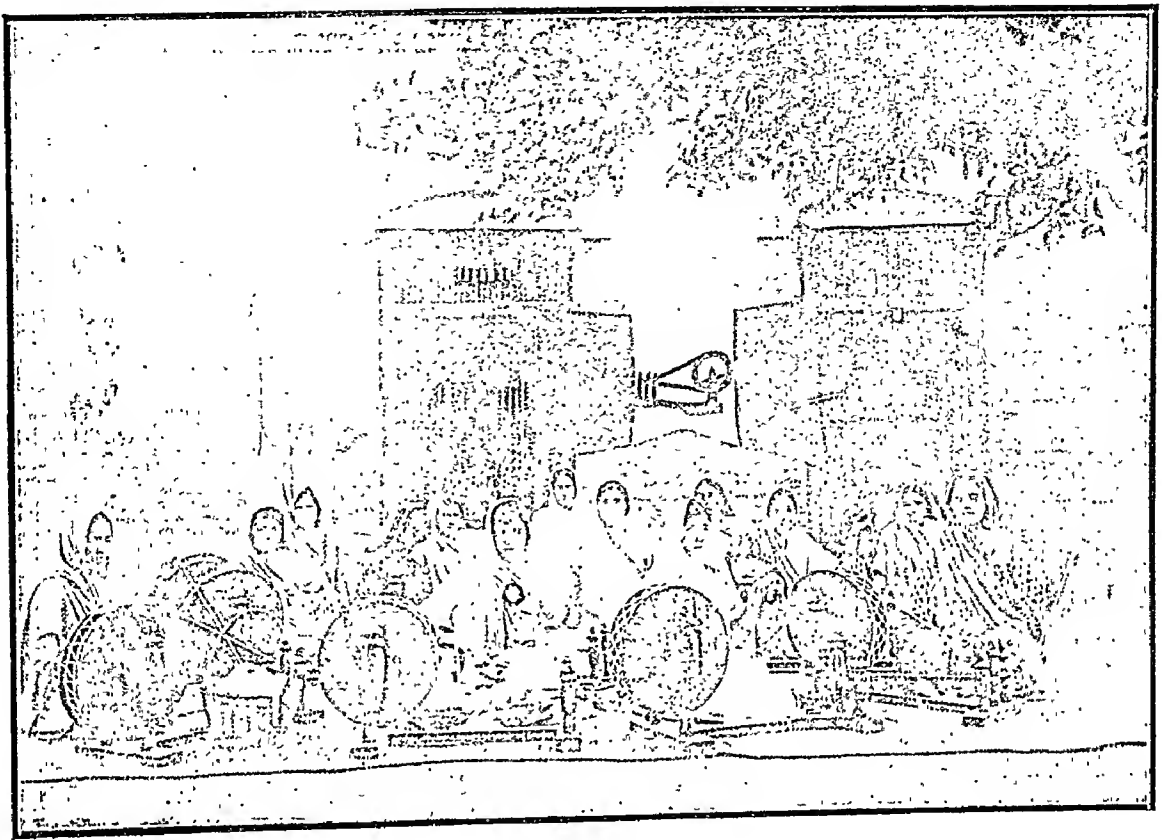
मण्डा-अभिवादन

बीमार भी हो जाती थीं, तब भी लाला देवराजने स्वयं गवर्नमेंटकी ओरसे आये हुए सहायताके सन्देशको ठुकरा दिया था।

असहयोग-आन्दोलनके बादसे तो देशका वातावरण ही बदल गया है। अब तो लड़के-लड़कियोंके नाम भी क्रान्तिकुमार और स्वराज्यकुमारी रखे जाते हैं। देशकी स्वाधीनताके लिए त्याग और बलिदान करनेवाले युवक और युवतियाँ पूज्य समझी जाती हैं। आजकल तो सभी भारतवासी—स्त्री-पुरुष—एक स्वाधीन और नवीन हिन्दुस्तानकी कल्पनाको सत्य बना देनेके लिए मानो उतावले हो गये हैं। पर लाला देवराजने इस विद्यालयका वातावरण शुरूसे कैसा रखा, इसके दो-एक उदाहरण में 'विशाल भारत' के पाठकोंके सामने रखूँगी।

शायद १९०३ का जिक्र है। मईका महीना था।

जालन्धरसे बहुत दूर सीमा-प्रान्तके एक शहरके एक साधारण स्थितिके परिवारकी एक स्त्री अपनी छोटी-सी—शायद पाँच वर्षकी—बालिकाको पढ़ानेकी प्रयत्न इच्छासे लाला देवराजजीके सिपुर्दे कर गई थी। बालिका माँ-बापको छोड़नेपर कुछ उदास हो गई थी। शनिवारका दिन था। दस्तूरके अनुसार घंटी बजनेपर पाठशालाकी सभी लड़कियाँ एक कमरेमें इकट्ठी हुई। वहाँ उस दिन लाला देवराज भी उपस्थित थे। उन्होंने उस बालिकाकी गोदमें ले लिया और एक कापी देकर, जिसमें कुछ गीत लिखे थे, सबके साथ गानेकी कोशिश करनेको कहा। इन पंक्तियोंकी लेखिकाको आज भी उस दिनकी धुँधली-सी स्मृति बनी है। विद्यालयकी सभी लड़कियाँ गा रही थीं, साथ ही नाचाजी (लाला देवराज विद्यालयमें इसी नामसे पुकारे जाते थे) भी गुनगुना रहे थे—



चरखा-श्रेणी

“देश-भक्ती, देश-सेवा, देश-रक्षाके लिए ;
प्राण भी जायं अगर तो भी भलाई मानिए ।
देश जिसके अन्न-जलको भोगती हो रात-दिन ;
कमर बांधो होके चैतन्य टारो उसके सब विघन ।”

गीत लालाजीका अपना बनाया हुआ था । यह प्रथा १९०३ से पहले विद्यालयमें कबसे शुरू हुई थी, यह तो मुझे उनसे पूछनेका कभी ध्यान नहीं आया ; पर १९०३ से लेकर वहाँ तक विद्यालयमें प्रति शनिवारको लड़कियोंको ऐसे ही गीत गानेके लिए बैठना पड़ता था ।

पाठक इस गीतमें कविताके गुण-दोष न देखें । वं केवल यह देखें कि जिन दिनों हिन्दीमें देश-भक्तिके भावकी कविता वृंद्से भी नहीं मिलती थी, उन दिनोंमें भी वं उस कमीको किस तरह पूरा करते रहे ।

१९०६ या १९०७ की एक और घटना भी इन पंक्तियोंकी

लेखिकाके मानस-पटलपर अच्छी तरह अंकित है । शामके वक्त हम लोग उनके साथ बाहर घूमने गईं । खेतमें पहुँचकर हमने टोली बनाकर रेतमें पाँव रखकर घर बनाना शुरू ही किया था कि उन्होंने जेबसे एक कागज़ निकाला और हम सबको बुलाया । उस दिन खेतमें भी और लौटते हुए सड़कपर भी हम लड़कियोंकी वह टोली गाती रही—

“मना तू वं मेरिया देशसे प्रीति लगा
जननी भूमि जन्मकी जो है ताको सीस नवा
उच्च शिखरपर देश पहुँचाओ व्रत यह हो सबका
तेजसे ऐसा नाद बजाओ सबको देओ जगा ।”

कुछ वरस बाद मुझे मालूम हुआ कि उस दिन पंजाबकेसरी लाला लाजपत रायको देश-निर्वासनका दण्ड दिया गया था । शायद इसीलिए आज भी मैं इस गीतके महत्त्वको बिल्कुल भूल न सकी ।



वाटिकाका दृश्य

१९२९ के कांग्रेस-अधिवेशनमें, जो लाहौरमें हुआ था, इन पंक्तियोंकी लेखिकाके जिम्मे स्वयंसेविकाओंके संगठनका काम था। विद्यालयसे मुझे कितनी स्वयंसेविकाएँ मिल सकेंगी, इस प्रश्नके उत्तरमें लाला देवराजने सारी संस्था ही मेरे हवाले कर दी थी। उस वर्ष लाहौर-कांग्रेसमें लगभग ७० स्वयंसेविकाएँ इसी संस्थासे गई थीं। तबसे आज तक विद्यालयमें प्रति सोमवारको सुबह भंडा-अभिवादन होता है। इन दिनों ग्रीष्मवर्षाके कारण विद्यालय बन्द है। केवल १२ बालिकाएँ हैं, जिनके माता-पिता अफ्रिका आदि देशोंमें हैं, फिर भी सोमवारको सुबह यहाँ आपको 'विजयी विश्व तिरंगा प्यारा' की ध्वनि अवश्य सुनाई देगी।

१९३३ के दिसम्बरमें विद्यालयमें कालेजकी श्रेणियोंके लिए जो कमरे बने, उनकी आधारशिलामें लगानेके लिए लाला देवराजजी स्वयं जाकर हल्दीघाटकी मिट्टी लाये थे !

पहले यहाँ केवल हिन्दू लड़कियाँ ही पढ़ती थीं ; पर जयसे यहाँसे पंजाब-यूनिवर्सिटीकी मैट्रिक और एफ० ए० परीक्षामें लड़कियाँ भेजी जाने लगी हैं, तबसे मुसलमान लड़कियाँ भी दिनमें पढ़नेके लिए (Day scholar होकर) आने लगी हैं। यूनिवर्सिटी-शिक्षा-विभागसे इसका और कुछ भी सम्बन्ध नहीं, सिवा इसके कि यूनिवर्सिटीने इस संस्थाको ग्राइवेट रूपसे लड़कियोंको अपनी परीक्षाओंमें भेजनेकी इजाजत दे दी है। अंगरेजीकी इन परीक्षाओंके अलावा कन्याएँ पंजाब-यूनिवर्सिटीकी रत्न, भूपण, प्रभाकर इत्यादि परीक्षाओंमें भी बैठती हैं। कभी-कभी साहित्य-सम्मेलनकी मध्यमा आदि परीक्षाओंकी तैयारी भी करती हैं।

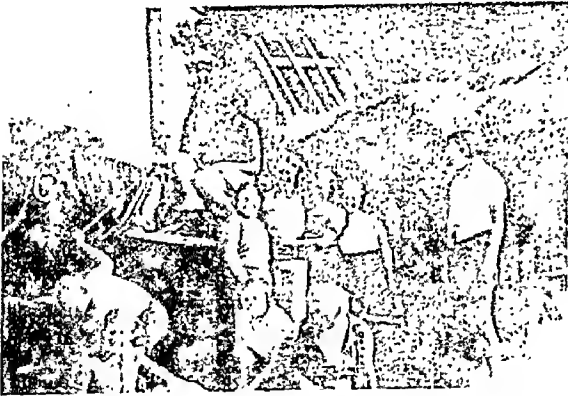
इस समय इसके छात्रावासमें १२५ लड़कियाँ हैं, जिनमें से कुछ तो अफ्रिका, फिजी और ब्रह्मासे भी आई हैं। भारतके लगभग सभी प्रान्तोंसे यहाँ लड़कियाँ आती हैं।

इंग्लैण्डकी मजदूर स्त्रियाँ

कुमारी पद्मावती

गत महायुद्धसे इंग्लैण्डकी स्त्रियोंकी स्वतंत्रतामें विशेष प्रौढ़ता आई है। उससे पहले लोग-बाग और सरकार समझती थी कि स्त्रियोंके केवल इने-गिने कार्य-क्षेत्र हैं। पुरुषोंके समान जिम्मेवारीका काम वे नहीं कर सकती। यहाँ तक कि श्रमिकोंके मजदूर-संघोंमें (ट्रेड यूनियन्समें) भी स्त्रियोंके हर एक क्षेत्रमें भाग लेनेके विषयमें काफ़ी अड़ंगा लगाये गये थे। लेकिन महायुद्धके समय स्त्रियोंको सभी तरहके कार्यक्षेत्रोंमें काम करना पड़ा—बारूदके कारखानोंसे लेकर यातायातके साधन (Transport Service) तकमें। परिणाम-स्वरूप दुनियाको

भी काफ़ी सुव्यवस्थित प्रबन्ध किया। मिल-क्षेत्रोंमें मातृ-मंगल और शिशु-मंगल (Maternity & Child Welfare Centres) स्थापित किये गये, जिसमें गर्भिणी और प्रसूताके स्वास्थ्यकी उचित देख-भाल हो सके। पाँच साल तकके बच्चोंकी देख-रेखकी जिम्मेवारी भी सरकारपर रखी गई। फिर चौदह सालकी उम्र तक बच्चे शिक्षा-विभाग (Educational authorities) के अधीन समझे जाते हैं। हर एकके लिए Care Committee और After Care Committee होती है, जिसमें बाहरी लोग निःशुल्क काम करते हैं। इन कमेटियोंमें आम तौरपर स्त्रियाँ ही होती हैं।



सेटेलमेन्टके प्रबन्धमें मजदूर लड़कियाँ देहातमें छुट्टियाँ बिता रही हैं

यह मालूम हो गया कि स्त्रियाँ भी पुरुषोंके समान काम कर सकती हैं। साथ ही महायुद्धके बादसे नई-नई मेशीनोंके आविष्कारोंने शारीरिक परिश्रमका महत्त्व बहुत कम कर दिया है। इस बीचमें सरकारने न्यूनतम मजदूरी (Minimum wages) की दर निश्चित कर दी, जिससे स्त्रियोंको सस्ती मजदूरी (Cheap labour) के संकटसे छुटकारा मिला और उनकी आर्थिक स्थिति बहुत-कुछ सुधर गई। गवर्नमेंटकी तरफसे मिलोंमें काम करनेका समय भी स्थिर हो गया। साथ ही सरकारने मजदूरवर्गकी स्त्रियोंके स्वास्थ्य आदिके बारेमें



लड़कियोंका गर्ल गाइड दल

वे बच्चोंके घर जाती हैं, रोगी बच्चोंकी उपचारशालाओं (Clinics) में भेजनेकी सलाह देती हैं और स्कूलोंके साथ मा-बापका सम्बन्ध निकटतम करनेमें सहायता पहुँचाती हैं। जब लड़कियाँ चौदह सालके विराध्ययनके बाद काम करने निकलती हैं, तो उनकी योग्यता और रुचिके अनुकूल नौकरी ढूँढ़नेमें After Care Committees मदद देती हैं। इन कमेटियोंकी कार्यकविर्गें मिलों और फर्मोंके मालिकोंके साथ पत्र-व्यवहार रखती हैं, और उन्हें यह पता रहता है कि कौन-सी फर्मकी व्यवस्था अच्छी है और किसको क्या जरूरत है? इस कमेटीकी

बदौलत मजदूर लड़कियोंको नौकरीकी तलाशमें इधर-उधर भटकना नहीं पड़ता ।

इन सब व्यवस्थाओंके कारण आजकल बच्चों तथा प्रसूता माताओंकी मृत्यु-संख्या बहुत घट गई है, और साथ ही विद्यार्थी-जीवनमें बच्चोंके स्वास्थ्यकी देख-भाल रखने और रिपोर्ट निकालनेका बड़ा अच्छा परिणाम निकला है । पर हमें यह देखना चाहिए कि जब ये लड़कियाँ चौदह सालकी शिक्षाके बाद फैक्टरीमें काम करने जाती हैं, तब क्या होता है ? विद्यार्थी-जीवन तक वे किसी-न-किसी संस्थाके अधीन रहीं । अब वे कमानेवाली हो जाती हैं । वे अपने-आपको सर्वस्वतन्त्र



सेटेलमेन्टमें लड़कियाँ नाचना सीख रही हैं

समझने लगती हैं । उनकी उम्र कच्ची होती है । बँधी नदीका बाँध टूट जानेके समान ये लड़कियाँ भी अपनी स्वतन्त्रतामें वह जाती हैं । बेचारी फैक्टरियोंमें जानेसे पहले शिष्ट भाषामें बोलती हैं ; किन्तु जब फैक्टरीमें काम प्रारम्भ करती हैं, तो आदतके अनुसार 'क्षमा कीजिए' (Excuse me miss) या 'मुझे अफ़सोस है' (I am sorry) इत्यादि वाक्योंका ज्यों ही प्रयोग किया, त्यों ही उनपर हँसी-मजाककी वर्षा हुई । अतः इन नौसिखुओंको शर्मके मोरे धीरे-धीरे शिष्ट भाषाका व्यवहार छोड़ना पड़ता है । उनकी नौकरी भी क्या है ? मशीनकी भाँति एक ही कामको

बारम्बार करना । इस तरहके कामोंमें फुर्तीकी जरूरत है, जैसे चाकलेटको बक्समें रखते जाना या डिब्बेका ढक्कन लगाते जाना । इसके लिए अभ्यासकी जरूरत है । कहाँ स्कूलोंका शान्तिपूर्ण वातावरण और कहाँ फैक्टरीका शोरगुल और मजदूरोंका साथ । इन सब बातोंके बीच उनमें ओछे विचार कैसे न उगें ? इन लड़कियोंकी बातें स्वभावतया अतीव निम्न-श्रेणीकी होती हैं । फैक्टरीमें काम करनेवाली एक लड़कीने मुझे बतलाया कि—“लड़कियाँ हर वक्त अपने छोक्के प्रेमियोंकी बातें करती हैं और ऐसी-ऐसी बातें करती हैं, जिनका सुनना भी भला नहीं । उनकी बातचीत लगातार



मजदूर बस्तीका मकान, बच्चोंको खेलनेकी जगह नहीं है, सड़कपर खेलते हैं

चलती रहती है । कभी-कभी तो वह अत्यधिक गन्दी होती है । मैं कोशिश करती हूँ कि उनकी बातें न सुनूँ ; लेकिन ऐसा जान पड़ता है कि हमारा दिमाग उन बातोंमें डूब गया हो । लड़कियाँ काम करते हुए जो बातें करती हैं, उनमें मुख्यतया होती हैं पोशाककी बातें, मौज-मजेकी बातें, अपने-अपने छोक्कोंकी बातें और पिछली रातको वे कहाँ गई थीं, उसकी बातें । ऐसा जान पड़ता है कि सारी फैक्टरीमें एक भी भली लड़की न मिलेगी । अगर कोई किसी अन्य विषयकी बात करे, तो सब उसका मजाक उड़ाती हैं, और थोड़े ही दिनमें कोई उससे बात भी नहीं करता ।”

इससे स्पष्टतया प्रकट है कि इन लड़कियोंका जीवन कैसा है। बस, सबेरे उठकर जैसे-तैसे कलेवा करके कामर चली गई और शाम तक काम करती रहीं। फिर अपने दोस्तोंके साथ घूमने जाना। अपने घरपर शाम कैसे बितायें? सारा घर बच्चोंसे भरा पड़ा है, फिर घरमें उसकी कोई खास पूछ भी नहीं है, अतः प्रेमिकोंके साथ बाहर आनेके सिवा और क्या हो सकता है? इसलिए दूसरे दिन अपनी सहेलियोंके साथ बातें करनेकी सामग्री इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं होती है। इस लेखिकाके स्वतः अनुभवकी बात है कि ये लड़कियाँ अपने मा-बापको घरेलू खर्चके लिए बहुत ही कम पैसे देती हैं। उन्हें अपनी पोशाकपर खर्च करना पड़ता है, जिससे नवयुवकोंको अपनी ओर आकर्षित कर सकें। इसमें वे अपनी शान समझती हैं कि हर रोज नये-नये युवकोंसे दोस्ती करें। ऐसी लड़कीको और लड़कियाँ ईर्ष्या एवं आदर्शकी दृष्टिसे देखती हैं। कभी-कभी इन लड़कियोंको अपनी करनीका फल भी भोगना पड़ता है, तब उनका स्थान अपने समाजमें कुत्तेसे भी गया-बीता हो जाता है। उन्हें मा-बापके तिरस्कार, पड़ोसियोंकी गन्दरी गालियाँ और फैक्टरीमें काम करनेवाली साथियोंकी भर्त्सनाका सामना करना पड़ता है।

कुछ लड़कियाँ जब घरके जीवनसे और फैक्टरीमें काम करते-करते तंग आ जाती हैं, तो किसी युवक लड़केको फन्देमें फँसानेकी कोशिश करती हैं। कभी-कभी यह भी देखनेमें आता है कि लड़कियाँ अपने छोकड़ोंपर खर्च करती हैं। बस, उनका उद्देश होता है किसी-न-किसी तरह विवाहका सौदा कर लेना। विवाह कर लेनेसे समाजमें उनका कुछ महत्त्व बढ़ जाता है, और जब वे अपने पतिके साथ शराखानेमें (Public House) जाती हैं, तो वहाँ कोई उनसे छेड़-छाड़ नहीं करता। रहनेका मकान कितना ही गन्दा क्यों न हो, फिर भी वह अपना है। एक बच्चा होने तक उनका उत्साह रहता है। उसके बाद वे बच्चेके प्रेममें

पतिकी कुछ-कुछ उपेक्षा करने लगती हैं। अब बनाव-शृंगारका शौक कम हो जाता है। फिर और बच्चोंका आना शुरू हो जाता है। बस, बहुतेका वैवाहिक जीवन इतना ही होता है। जो लड़कियाँ अविवाहिता रह जाती हैं, उनकी जवानी नष्ट होनेके बाद उन्हें कोई नहीं पूछता। उनकी गिनती बुद्धियोंमें होने लगती है और उनका शुष्क जीवन इसी तरह अपूर्ण रह जाता है।

फैक्टरीमें काम करनेवाली लड़कियाँ और युवकोंके लिए समुचित क्लब बहुत ही कम हैं। आदमीकी मनोवृत्तियाँ कभी चुप नहीं रह सकती। आदमीमें हर तरहकी मनोवृत्तियोंका होना एकदम स्वाभाविक है। मनोविज्ञानके आचार्य फ्राइडेके कथनानुसार वासना-प्रवृत्ति (Sex instinct) आदमीमें प्रबल-रूपमें वर्तमान है। उस वासनाको दमन करना सर्वथा असम्भव है। हाँ, हम उसकी गतिको दूसरी दिशाओंमें घुमा सकते हैं। मिलोंमें काम करनेवाली लड़कियोंकी दशा यह है कि शामको जब घर आती हैं, तो उनके पास कुछ करनेको नहीं रह जाता, अतः वे वासनाकी ओर बह जाती हैं। आवश्यकता इस बातकी थी कि काम करके लौटनेपर इन युवक-युवतियोंकी मनोवृत्तियोंको सन्मार्गपर लगाया जाय। इस आवश्यकताको सबसे पहले एक पादरी - दम्पतिने अनुभव किया, और उन्होंने लन्दनके पूर्वीय भागके ह्वाइट चैपलमें एक उपनिवेशकी स्थापना की। इस दम्पतिका नाम कैनेन एस० ए० वारनेट और श्रीमती हेनरीटा आक्टेविया वारनेट था। श्री वारनेट ह्वाइट चैपलके पादरी (Vicar) के पदपर नियुक्त थे। श्रीमती वारनेटका नाम विशेष उल्लेखनीय है। लन्दनके पूर्वीय अंचल—जहाँ मज़दूरोंकी बस्ती है—की परम सोचनीय अवस्था देखकर उनका हृदय द्रवीभूत हो गया। मज़दूरोंकी स्थितिपर उन्होंने यूनिवर्सिटीके विद्यार्थियोंका ध्यान आकर्षित किया। कैम्ब्रिज और आक्सफोर्डसे आकर विद्यार्थी मज़दूरोंकी सेवा करनेको तैयार तो थे ;

पर उनके रहनेका प्रबन्ध मुश्किल था। इसपर श्रीमती बारनेटने ह्याइट चैपलमें सन् १८८३ में टोय्न्बी हॉल (Toynbee hall) नामक यूनिवर्सिटी उपनिवास (सेटलमेंट) की स्थापना की, जिसमें रहकर कालेजके छात्र और छात्राएँ अपनी छुट्टियोंके दिनोंमें मजदूरोंकी सेवाके काम करें। यहाँ हैम्पस्टेड गार्डन उपकूल (Hampstead Garden Suburbs) का नाम लेना अनिवार्य है। उसकी स्थापनाका श्रेय श्रीमती बारनेटको है। उनका उद्देश्य था कि ऐसे आरोग्यप्रद और रमणीय स्थान स्थापित करके लन्दनके अन्य भागोंके आगे एक आदर्श उपस्थित करें। उनकी महती देश-सेवाके लिए उनको C. B. E. और D. B. E. की पदवियाँ मिलीं।

अब इस तरहके उपनिवास (सेटलमेंट्स) इंग्लैण्डके हर एक औद्योगिक शहरमें स्थापित हुए हैं। श्रीमती बारनेटने अमेरिकामें भी इस पद्धतिको चलाया, और वहाँ यह काम बहुत ही सफलतापूर्वक चल रहा है। फ्रांस, जर्मनी, जापान, कनाडा, नार्वे, स्वीडन, हालैण्ड, फिनलैण्ड और आस्ट्रियामें भी इस नूतन सुधार-पद्धतिका स्वागत हुआ और सेटलमेंटोंकी स्थापना हुई।

मुझे लन्दनके एक सेटलमेंटमें काम करनेका मौका मिला है। सेटलमेंटोंकी कार्यकर्त्री अधिकतर स्त्रियाँ होती हैं। एक-आधको छोड़कर सब अवैतनिक रूपसे ही काम करती हैं। कालेजमें पढ़नेवाली लड़कियाँ अपनी छुट्टियोंमें काम करती हैं। इन सेटलमेंटोंका मुख्य उद्देश्य यह है कि मजदूर लोग अपने फुरसतके वक्तका लाभदायक ढंगसे सदुपयोग करें। वे मनोरंजन और ज्ञानवर्द्धनके साधन पा सकें (To utilise their leisure hour properly—Education for Joyous leisure—That is where the Settlement comes in.)। सेटलमेंट औद्योगिक जिलोंमें ही होते हैं। काम करनेवाले स्त्री-पुरुषोंके लिए सेटलमेंटोंके अन्दर हर तरहके मनोरंजनका प्रबन्ध रहता है। खासकर लन्दनके ईस्ट एण्डमें बच्चोंके खेलनेके लिए पार्कका प्रबन्ध नहीं है। मजदूरन बच्चे गन्दी सड़कोंपर

खेलते हैं और गन्दी आदतें सीखनेमें कोई कसर नहीं रखते। सेटलमेंटोंमें बच्चोंपर बहुत ज्यादा ध्यान दिया जाता है। वे शामको आकर यहाँ खेलते हैं। यहाँ उन्हें नाच, गाना, कसरत, सिलाई इत्यादि सिखाई जाती हैं। मिलोंमें काम करनेवाली युवक-युवतियाँ शामका खाना खानेके बाद यहाँ आकर नाचती हैं। कभी उन्हें शिक्षाप्रद सिनेमा दिखाया जाता है। हफ्तेमें एक बार इन लोगोंकी योग्यताके अनुकूल किसी-न-किसी मनोरंजक विषयपर वाद-विवाद होता है। अथवा कभी बाहरके कोई सज्जन आकर मैजिक लैंटर्नके चित्र दिखाकर किसी विषयपर भाषण देते हैं। सेटलमेंटोंकी कार्यकर्त्रियाँ मजदूरोंके साथ घुल-मिलकर बातें करती हैं, ताकि इन लोगोंके विश्वासपात्र बनकर उनकी मनोवृत्तियोंको ठीक रास्तेपर ले जानेकी कोशिश कर सकें। यहाँ संगीत-संघ होता है, जिसमें लड़के और लड़कियाँ मिलकर 'कोरस' गाना सीखती हैं। साथ ही अभिनय-संघ होता है, जिसमें जिनकी अभिरुचि हो, भाग ले सकते हैं।

लन्दन अपने-आप बढ़ता गया है, इसलिए नगर-निर्माण (Town planning) की कला यहाँ नहीं दिखाई देती। इसीलिए शहरके औद्योगिक भागोंमें पब्लिक पार्कोंका अभाव है। यहाँ बहुतसे बच्चे सड़कपर खेलते हुए दिखाई देते हैं। साथ ही मजदूर स्त्री-पुरुषोंके योग्य क्लब भी नहीं हैं। लन्दनमें कितने मजदूर ऐसे हैं, जो सिर्फ संसर्गके लिए—यार-दोस्तोंसे गपशप लड़ानेके लिए ही—शराबखानेमें जाते हैं। एक गिलास 'बियर' पीनेसे वे उसके अन्दर जिलियर्ड्स या शतरंज खेल सकते हैं। साथ ही अपने मित्रोंसे बातचीत हो सकती है। इसी तरह धीरे धीरे शराब पीनेकी लत पड़ जाती है।

अब सेटलमेंटोंके कारण कितने ही लोग अपने शामके समयको अच्छी तरह बिताने लगे हैं। फैक्टरियोंमें काम करनेवाली लड़कियाँ अपनी फुरसत काफ़ी अच्छी तरह बिताने लगी हैं। मैं यह नहीं कहती कि फैक्टरियोंमें

श्रीमती हैरियट एलीजबेथ स्टो

वनारसीदास चतुर्वेदी

As long as the baby sleeps with me nights I cannot do anything, but I will do it at last. I will do that thing if I live."

पाँच बच्चोंकी एक माने जब उसके छठवाँ बच्चा हुआ था, तब अपनी भाभीको एक पत्रमें उपर्युक्त वाक्य लिखा था—“भाभी, जब तक बच्चा रातको मेरे पास सोता है, तब तक मैं कोई काम नहीं कर सकती ; पर मैं करूँगी जरूर। अगर ज़िन्दा रही, तो दासत्व प्रथाके खिन्नाफ जरूर लिखूँगी।”

अमेरिकामें उन दिनों गुलामीकी प्रथा जोरोंपर थी। बेचारे नीग्रो लोगोंको नरकतुल्य यातनाएँ सहनी पड़ती थीं। जानवरोंकी तरह उनकी खरीद और बिक्री की जाती थी। मा बच्चोंसे अलग की जाती थी, पति पत्नीसे, पिता पुत्र-पुत्रियोंसे। गुलामोंकी इस दुर्दशाको देखकर श्रीमती हैरियट एलीजबेथ स्टोका दिल पित्रल गया, और उन्होंने दृढ़ प्रतिज्ञा कर ली कि इस दासत्व प्रथाके विरुद्ध अवश्य लिखूँगी।

एक बार उन्होंने लिखा था—“अगर मेरे समुद्रमें डूबनेके साथ-साथ गुलामीकी प्रथाके तमाम पाप और अत्याचार भी डूब जायँ, तो मैं समुद्रमें डूबकर प्राण देनेको भी तैयार हो जाऊँगी।”

रविवारका दिन था। मिसेज़ स्टो गिरजाघर गई हुई थीं और वहाँ धर्मोपदेश सुन रही थीं कि एक साथ उनके मनमें पुस्तक प्रारम्भ कर देनेकी प्रेरणा उत्पन्न हुई, और उन्होंने पहला अध्याय वहींपर बैठे-बैठे लिख डाला। फिर उन्होंने वह अध्याय अपने बच्चोंको सुनाया। सुनकर बच्चोंकी आँखोंसे आँसू टपाटप टपकने लगे ! इतनेमें मिस्टेज़ स्टोके पतिदेव भी आ गये। बच्चोंको रोते हुए देखकर वे आश्चर्यचकित रह गये। समझमें नहीं आया कि माजरा क्या है। तब मिसेज़ स्टोने वह अध्याय पतिको भी सुनाया, और वे

भी रोने लगे ! इस प्रकार प्रारम्भ हुआ उस महत्वपूर्ण ग्रन्थका, जिसने आगे चलकर संसारमें अक्षय कीर्ति प्राप्त की, जिसका अनुवाद शीघ्र ही तेईस भाषाओंमें हो गया और जिसकी लाखों ही कापियाँ शीघ्र ही जनताके हाथों तक पहुँच गईं। इस पुस्तकका नाम है ‘Uncle Tom’s Cabin’ अर्थात्—‘टाम काकाकी कुटिया’। इस पुस्तकने हजारों-लाखों ही आदमियोंको



मिसेज़ हैरियट एलीजबेथ स्टो

रुलाया और हजारों ही आदमियोंको गुलामीकी प्रथाका घोर विरोधी बना दिया। औरतें वर्तन साफ करते समय आपसमें बातचीत करतीं—“वहन, तुमने ‘टाम काकाकी कुटिया’ पढ़ी है ? बड़ी हृदयवेधक है !” मजदूर

बोम्बा ढोते समय कहते—“बड़ी भयंकर पुस्तक है ! पढ़कर तबीयत दहल जाती है ।” क्या सड़कपर, क्या बाज़ारमें और क्या होटलोंमें, सर्वत्र इसीकी चर्चा थी । इस किताबने लोगोंके हृदयमें आग-सी लगा दी । वे दक्षिणी रियासतोंसे, जहाँ यह गुलामीकी प्रथा प्रचलित थी, घोर घृणा करने लगे । दर असल इस एक पुस्तकने गुलामी-प्रथाके उच्छेदके लिए जो कार्य किया, वह किसी पुस्तकने अभी तक नहीं किया था । उत्तरी और दक्षिणी रियासतोंमें इसने युद्ध करा दिया और गुलामी-प्रथाको जड़-मूलसे नष्ट ही करा दिया । सन् १८६३में जब मिसेज़ स्टो अमेरिकाके पार्लामेंट भवन White House में गई और उनका परिचय प्रेसिडेंट लिंकनसे कराया गया, तो लिंकनने, जो क्रुद्धके काफ़ी ऊँचे थे, मिसेज़ स्टोसे हाथ मिलाते हुए कहा—
“Is this the little woman who brought on so great a war?”—“क्या इसी छोटी-सी महिलाने वह महान युद्ध करा दिया ?”

आशा है, इन मिसेज़ स्टोका संक्षिप्त परिचय ‘विशाल भारत’के पाठक-पाठिकाओंके लिए उपदेशप्रद होगा । हैरियट एलीज़वेथका, जिनका नाम आगे चलकर स्टो हुआ था, जन्म १४ जून सन् १८११ को संयुक्त-राज्य अमेरिकाके लिचफील्ड नामक स्थानमें हुआ था । ये अपने माता-पिताकी सातवीं सन्तान थीं । हैरियटको अधिक दिनों तक मातृस्नेह प्राप्त नहीं हुआ । जब ये कुल चार वर्षकी ही थीं, इनकी पूज्य माताका स्वर्गवास हो गया । इसलिए इनके लालन-पालनका भार पड़ा इनकी बड़ी बहन कैथेराइनपर, जो उस समय पन्द्रह वर्षकी थीं । कैथेराइन सुशिक्षित थीं, और उन्होंने एक स्कूल भी कायम कर रखा था । हैरियटको उन्होंने अपने स्कूलमें ही पढ़ाया और आगे चलकर इसी स्कूलमें ये छोटी बहन मास्टरनी भी बन गईं । सन् १८२३ में हैरियटके पिताजी एक धार्मिक विद्यालयके प्रधान बनकर सिनसिनाटी नामक नगरको गये और उनके साथमें दोनों बहनें भी गईं । बड़ी

बहनका विचार एक कन्या-महाविद्यालय कायम करनेका था, और हैरियट अपनी बहनकी सहायकके रूपमें वहाँ गईं थीं । विद्यालयके साहित्यिक जीवनमें हैरियट खूब भाग लेती थी । स्थानीय पत्र-पत्रिकाओंमें छोटे-छोटे लेख भी लिखती थीं । दो-चार कहानियाँ और स्केच भी उसने लिखे थे, और अपनी जीजीकी मददसे उसने भूगोलकी एक किताब भी बना डाली थी । पिताजीके धार्मिक विद्यालयमें एक अध्यापक थे, जिनका नाम था कैलविन ऐलिस स्टो । ६ जनवरी सन् १८३६ को हैरियटका विवाह मि० स्टोके साथ हुआ, और तबसे वे श्रीमती स्टोके नामसे प्रख्यात हुईं । दुर्भाग्यवश मिस्टर स्टोका स्वास्थ्य खराब रहा करता था और आमदनी भी उनकी थोड़ी ही थी । मिसेज़ स्टोको बहुत चिन्ताग्रस्त रहना पड़ता था और कभी-कभी खाने-पीनेका भी कष्ट हो जाता था, इसलिए पतिव्रता मिसेज़ स्टोको लेख लिखकर कुछ कमाना पड़ता था । इस प्रकार अपने पतिकी आर्थिक सहायता भी वे करती थीं । सन् १८४३ में ‘मे फ्लावर’ नामसे उनकी कहानियों और स्केचोंका संग्रह प्रकाशित हुआ । सन् १८५२ में उनकी अमर पुस्तक ‘टाम काकाकी कुटिया’ छपकर जनताके सम्मुख आई । किन्-किन कठिनाइयोंमें मिसेज़ स्टोको अपना साहित्यिक कार्य करना पड़ता था, इसका अन्दाज़ निम्न-लिखित बातोंसे लग सकता है ।

उन्हें घर-गृहस्थीका सारा काम—वर्तन साफ़ करना, कपड़े धोना, कपड़े सीना, भोजन बनाना, सामान ठीक-ठिकाने रखना इत्यादि—खुद ही करना पड़ता था । खुद ही वे क्वाड्रोंपर रंग करती थीं, तकिये, गिलाफ़, रजाई सीती थीं ; और तो और पतिके जूतोंकी भी सिलाई वे खुद ही कर लेती थीं । एक बार वे अपने लिए कोई कपड़ा काट रही थीं कि उनकी एक पड़ोसिनने कहा—“कोई नमूना भी तुम्हारे सामने है कि यों ही कपड़ा काटती जाती हो ?” मिसेज़ स्टोने उत्तर दिया—“बहन, मेरा खयाल है कि अपनी शकल

तो मैं जानती ही हूँ।” पतिदेव हेब्रू, ग्रीक, लेटिन तथा अरबीके ग्रन्थ पढ़ा करते थे और विद्यालयमें बाइबिल पढ़ाया करते थे। अपनी पत्नीसे प्रसन्न होकर एक बार उन्होंने कहा था—“तुम्हारी जैसी स्त्री दुनियामें थोड़े ही मिल सकती है। भला, कौन औरत ऐसी होगी, जो इतनी परिश्रमशील हो और इतनी किफायतसार, जिसकी भाषणशक्ति इतनी प्रबल हो; पर जो कभी डाट-फटकार न बतलावे, जिसमें इतना माधुर्य हो और साथ-ही-साथ इतनी दृढ़ता।”

इसका उत्तर मिसेज़ स्टोने बड़ी मधुरतापूर्वक दिया था—“If you were not already my dearly loved husband, I should certainly fall in love with you.”—“अगर तुम पहले से ही मेरे प्रिय पति न होते, तो जरूर ही तुम्हारे गुणोंपर मुग्ध होकर मैं तुम्हारे प्रेममें फँस गई होती!”

मिसेज़ स्टोमें मातृत्व काफ़ी था। बच्चोंकी सेवा शुश्रूषा करते हुए अपने जीवनको खपा देनेमें वे अपना गौरव मानती थीं। स्कूलके दिनोंकी अपनी एक सहेलीको उन्होंने चिट्ठीमें लिखा था—“बहन, मुझे तो अपने ६ बच्चोंकी देखभाल और उनका पालन-पोषण करनेमें बड़ा आनन्द आता है। इच्छा होती है कि इसी प्रिय कार्यको करते-करते बूढ़ी हो जाऊँ, अपना जीवन बिता दूँ। मैं चाहती हूँ कि कभी तुम यहाँ आकर इन बच्चोंके बीचमें मुझे देखो। मेरी सारी चिन्ताओं और विचारोंका वे केन्द्र हैं, और यदि वे कहीं दूसरी जगह चले जायँ, तो मेरे जीवनके लिए रह ही क्या जाय? ये बच्चे ही मेरे कार्यक्षेत्र हैं और डरती-काँपती हुई इन्हींकी मैं सेवा किया करती हूँ।”

सन् १८५६ में सिसिनाती नगरमें हैजेका प्रकोप हुआ और एक दिनमें ही १५० आदमियोंकी मृत्यु हो गई, जिनमें एक बच्चा मिसेज़ स्टोका भी था। पतिदेव स्वास्थ्य-सुधारके लिए दूर गये हुए थे, और वे बेचारी अकेली ही बच्चोंकी देखभाल कर रही थीं। प्रेमी

माताके दुःखका अनुमान ही किया जा सकता है। जिन दिनों मिसेज़ स्टो पुत्र-शोकके बज्राघातसे पीड़ित थीं और जिन दिनों उनकी गोदका बच्चा दूध पीता था, उन्हीं दिनों मातृ-हृदयकी असीम करुणासे प्रेरित होकर उन्होंने इस अमर पुस्तककी रचना की थी। पुस्तकके फार्म जब छप-छपके आते थे, तो वे उन्हें अपने पति और बच्चोंको सुनाती थीं। सब बैठकर एक साथ पवित्र आँसू बहाते थे। कोई आश्चर्यकी बात नहीं कि ‘टाम काकाकी कुटिया’ ने आगे चलकर असंख्य पाठक-पाठिकाओंको रलाया। पुस्तककी सफलताका अन्दाज़ इसीसे लगाया जा सकता है कि पुस्तकके छपते ही उसकी तीन लाख प्रतियाँ एक साथ बिक गईं। आठ प्रेस इसी अकेली पुस्तकके छापनेमें लगे हुए थे। अमेरिकाके प्रसिद्ध-प्रसिद्ध लेखकों और कवियोंने मिसेज़ स्टोके पास बधाईकी चिट्ठियाँ भेजीं। इंग्लैण्डके सुप्रसिद्ध लेखक डिकिन्स, मेकाले, किंग्सले, लार्ड कार्ललाइसिल इत्यादिने उनका अभिनन्दन किया। इंग्लैण्डमें पुस्तक इतनी लोकप्रिय हुई कि एक सालमें इसकी डेढ़ लाख प्रतियाँ बिक गईं। पेरिसमें इसके आधारपर एक ड्रामा लिखा गया और खेला गया। यह आठ अंकोंमें समाप्त हुआ था और जनता इसे रातके डेढ़ बजे तक देखती रही और रोती रही। फ्रेंच, जर्मन, रशियन, जापानी, चीनी, हिन्दी इत्यादि भाषाओंमें इसके अनुवाद हुए। पुस्तकके प्रकाशित होनेके चार महीने बाद मिसेज़ स्टोको १० हजार डालर (या ३० हजार रुपये) का एक चेक मिला और तब उन्होंने अपने पतिको लेकर पहली बार यूरोप-यात्रा की। यूरोपसे लौटकर उन्होंने एक दूसरी पुस्तक लिखी—‘A Key to Uncle Tom’s Cabin’—‘टाम काकाकी कुटियाकी कुंजी’। इस ग्रन्थमें उन्होंने अकाव्य प्रमाणों द्वारा अपनी कहानीकी सत्यता सिद्ध की थी। मिसेज़ स्टोने और भी कई ग्रन्थ लिखे, जिनमें मुख्यके नाम ये हैं—(1) Dred, a Tale of the Dismal Swamp. (2) The Minister’s Wooing.

उन्होंने धार्मिक कविताओंका एक संग्रह भी प्रकाशित किया। इसके अतिरिक्त वे 'अटलांटिक मंथली', 'इण्डिपेंडेंट', 'क्रिश्चियन यूनियन' इत्यादि पत्रोंमें लेख भी लिखा करती थीं। उनके भाई इन पत्रोंमें सहायक सम्पादक या सम्पादकका कार्य करते थे, और इन दोनों भाई-बहनोंकी साहित्य-सेवा वास्तवमें आदर्श थी। सन् १८६३ में पतिदेवने अपने अध्यापकीके कार्यसे छुट्टी ले ली। मिसेज स्टोका एक पुत्र कैप्टन फ्रेडरिक बीचर स्टो युद्धमें वीरतापूर्वक लड़ा था और बहुत घायल हो गया था। प्रेमी माताने अपने पुत्रके स्वास्थ्य-लाभके लिए फ्लोरिडामें एक कोठी खरीदी और वहाँ उसके साथ रही। सन् १८८६ में मिसेज स्टोके पतिका देहान्त हो गया। इसके बाद दस वर्ष तक और वे जीवित रहीं; पर अब इस सती-साध्वी विधवाका जीवन

सर्वथा एकान्तमय था। पहली जुलाई सन् १८९६ को ८५ वर्षकी उम्रमें वे स्वर्ग सिधारीं। अगडोवर नामक स्थानमें पतिकी समाधिके पास ही उनकी समाधि बनी हुई है।

वह दिन हमें अच्छी तरह याद है, जब रेलमें बैठे-बैठे हमने 'टम काकाकी कुटिया' पढ़ी थी और पुस्तकसे मुँह ढककर आँसू बहाये थे, जिससे साथके यात्री रोनेका कारण न पूछ बैठें। यदि जीवनमें कभी अमेरिका-यात्राका अवसर मिला, तो दो स्थानोंकी तीर्थ-यात्रा हम अवश्य करना चाहते हैं, एक तो एमर्सनकी समाधि और दूसरे इस आदर्श दम्पति मिस्टर और मिसेज स्टोकी समाधि।

वह सौभाग्यपूर्ण दिन कब आवेगा, जब हमारी मातृभाषामें भी श्रीमती हैरियट एलीजबेथ स्टो जैसी लेखिकाएँ उत्पन्न होंगी।

मैसूरका भगिनी-समाज

हमारे देशमें लड़कियोंका विवाह बहुत छोटी उम्रमें हो जाता है, और बहुतोंको छोटी उम्रसे ही गृहस्थीका भार बहन करना पड़ता है। ऐसी लड़कियों और महिलाओंको, जिन्हें गृहस्थीके भारके कारण साधारण स्कूलोंमें जानेका अवकाश नहीं, सांस्कृतिक और औद्योगिक सुविधाएँ प्रदान करनेके लिए ही मैसूरके भगिनी-समाजका जन्म हुआ था। पिछले बारह वर्षसे समाज अपने स्वनिर्मित मार्गपर अग्रसर होकर स्त्रियोंको ऐसी शिक्षा प्रदान कर रहा है, जिससे उनका गार्हस्थिक जीवन 'सुख, सौन्दर्य और सुव्यवस्था' का केन्द्र बन सके। समाजका एक उद्देश है स्त्रियोंमें ऐसा आत्म-विश्वास उपजाना, जिससे वे जीवनकी सब प्रकारकी दुर्घटनाओंका सामना करनेकी शक्ति पा सकें।

समाजने सन् १९२३ में बहुत छोटे पैमानेपर काम शुरू किया था। पहले सदस्याओंको सिर्फ अंगरेजी और कन्नड़ पढ़ाने तथा सीना-पिरोना सिखानेका प्रबन्ध ही हुआ था। एक लोकहितकारी सज्जन, जो अपना नाम प्रकट नहीं करना चाहते, समाजके कार्यमें दिलचस्पी लेने लगे और सन् १९२३ से १९२७ तक समाजको पचास रुपये महीनेकी आर्थिक सहायता देते रहे। इस धनसे तथा कुछ और पब्लिक चन्देसे समाजका काम आरम्भ हुआ। शुरू-शुरूमें पढ़ाई सप्ताहमें केवल तीन दिन ही होती थी और कुछ सुशिक्षिता महिलाएँ अवैतनिक शिक्षिकाओंका काम करती थीं।

थोड़े ही दिनोंमें समाजकी लोकप्रियता बढ़ जानेपर यह जरूरी हो गया कि प्रतिदिन पढ़ाई हो। बादमें

वीणा सिखानेका काम भी शुरू हुआ और हिन्दी-भाषा एक ऐच्छिक विषय बना दी गई। सन् १९२६ से समाज दक्षिण-भारत-हिन्दी-प्रचार-सभाकी परीक्षाओं तथा मैसूर लोअर सेकेंडरी परीक्षाओंमें छात्राओंको भेजता है।

किन्तु भगिनी - समाजका मुख्य लक्ष्य है महिलाओंकी सांस्कृतिक उन्नति और औद्योगिक शिक्षा, जिससे निस्सहाय और गरीब स्त्रियोंको जीविका उपार्जनमें कुछ सहायता मिल सके। सन् १९३० से भगिनी-समाजका काम इतना बढ़ा कि मैसूर-सरकारका औद्योगिक विभाग भी समाजको ५०) मासिककी सहायता देने लगा।

दो वर्षके बाद समाजके कार्यको और भी सुव्यवस्थित बनानेके लिए एक शिक्षा-कमेटी नियुक्त की गई। इस कमेटीने समाजके विभिन्न शिक्षा-विभागोंके लिए सुव्यवस्थित योजना तैयार कर दी, जिसके अनुसार काम होने लगा। इसपर मैसूर-सरकारके शिक्षा-विभागने भी समाजको ५०) मासिककी सहायता देनी शुरू कर दी। महाराज मैसूरकी भांजी श्रीमती सौभाग्यवती राजकुमारी लीलावती अवरूने समाजकी संरक्षिका बनकर उसका सम्मान बढ़ाया।

समाजकी साधारण शिक्षा तीन भागोंमें विभक्त है। प्रथम भागका कोर्स दो वर्षका है, जिसमें कन्नड़, हिसाव और भूगोल, इतिहास, गृह-विज्ञान, संगीत, ड्राइंग और सीने-पिरोनेके साथ संस्कृत, हिन्दी या अंगरेज़ीमें से कोई एक भाषा पढ़ाई जाती है।

द्वितीय भागमें कन्नड़, तीन उपर्युक्त भाषाओंमें से

एक, गार्हस्थिक अर्थशास्त्रके अलावा निम्न-विषयोंमें से कोई दो विषय पढ़ाये जाते हैं—गणित, भूगोल और इतिहास, ड्राइंग, संगीत, दर्जीगीरी और कसीदा।

तृतीय और सबसे उच्च विभागमें कन्नड़, हिन्दी, अंगरेज़ी, संस्कृत, ड्राइंग, संगीत, सीना और कसीदा, गृह-विज्ञान और टाइपराइटिंगमें से कोई तीन विषय पढ़ाये जाते हैं।

कन्नड़-भाषा पढ़ना अनिवार्य है। शिक्षाका माध्यम भी वही है। समाजमें साधारण कला-विभाग, औद्योगिक विभाग और लोकप्रिय संस्कृति विभाग नामके चार विभाग हैं। रामनवमी, कृष्ण-जयन्ती और गणपति-उत्सव समाजमें बड़े समारोहके साथ मनाये जाते हैं। इन अवसरोंपर हज़ारों महिलाएँ चारों ओरसे आती हैं। व्याख्यानों, हरि-कथाओं और प्रदर्शिनियों द्वारा उनके ज्ञानकी वृद्धि की जाती है। प्रत्येक उत्सव एक सप्ताह तक होता है। अब समाजने मातृ-मंगल और शिशु-मंगलका एक केन्द्र भी स्थापित कर लिया है। समाज प्रतिवर्ष गरीब बच्चोंको कपड़े भी बाँटता है। समाजके पुस्तकालयमें कन्नड़, हिन्दी, मराठी और अंगरेज़ीकी पुस्तकें संग्रहीत हैं।

अब तक समाजके द्वारा लगभग ४०० महिलाएँ शिक्षा प्राप्त कर चुकी हैं। मैसूर-भगिनी-समाजकी स्थापना और सफलताका अधिकांश श्रेय समाजकी सेक्रेटरी श्रीमती वाई०के० अमृताबाईको है। अमृताबाईको अंगरेज़ी यूनिवर्सिटियोंकी उच्च शिक्षा प्राप्त नहीं है; किन्तु उन्होंने यह सिद्ध कर दिखाया है कि अध्यवसाय, लगन और ईमानदारीसे कितना बड़ा काम हो सकता है।

बालिकाओंके भूलनेके गीत

श्रीराम शर्मा

आह्लाद और विषादकी हिलोरसे मानव-हृदयमें भावोंका संचार होता है, जो शब्दोंका जामा पहनकर चमत्कारिक ध्वनियाँ पैदा करते हैं। ध्वनियोंकी एक लय होती है, और उसी लयमें चढ़ाव-उतारके साथ वे गाई जाती हैं—गीतोंके रूपमें। संसारमें गीत अनादि कालसे चले आ रहे हैं। हर्ष और विषाद जीवन-सरिताके दो तट हैं, जिनकी छूती, उछलती और कूदती, शोरगुल मचाती और कभी निर्मम शान्ति धारण करती हमारी जीवन-सरिता बहती रहती है। भिन्न-भिन्न अवस्थाओं और ऋतुओंमें भिन्न-भिन्न भाव उठते हैं। परिस्थितियाँ उनपर धार-सी धर देती हैं, और गीतोंकी सृष्टि होती है।

x x x

ब्रज-मंडल भारतवर्षका एक ऐसा प्रदेश है, जहाँपर कुछ विशेषताएँ हैं। संसारमें निरामिषभोजी अपेक्षाकृत ब्रजमें ही अधिक मिलेंगे। माखन, मिसरी और दूधकी नदियाँ तो वहाँ अब नहीं बहती। गरीबीने ब्रजके देहातोंकी, देशके अन्य भागोंके समान, कमर-सी तोड़ दी है। लोगोंमें उस्ताह नहीं है। जीवनकी कठिनाइयाँ लोगोंकी चिन्तित आकृतिसे बरस रही हैं। हाँ, तीज-थौहरोंपर देहातकी आत्मा कुछ सजीव-सी हो जाती है—देहातकी देवी साँस-सी लेने लगती है।

सावनका महीना यों तो देश-भरके लिए महत्त्वपूर्ण है। वर्षाकी जयान्तीका महीना है वह, और ब्रजमें बालिकाएँ और स्त्रियाँ इस महीनेमें अपने पीहर आकर झूला झूला करती हैं।

सावनका महीना है। चारों ओर हरियाली है। प्रकृतिने धानी साड़ी पहन रखी है। बादल गरजते हैं अरर-धड़र और बिजली कड़कती है कड़ाक-धड़क। मोर अपनी कुहकसे ताल देते हैं। पपीहा पी-पी पिय-पियका गाना गाता रहता है। नदियाँ और तालाब मलारों गाते हैं। कौंगुरों और मेंड़क भी सुजरमें शामिल हैं। ऊपर आकाशमें काले-पाले बादल

उमड़-धुमड़कर अपनी प्यारी—पहाड़ोंकी उँचाई—से मिलनेके लिए भागे जा रहे हैं। और नीचे पृथिवीपर ब्रजके गाँवोंमें स्त्रियाँ झूलोंपर बैठी अपने स्नेहके भोटोंपर मनकी पंग बढ़ाती एक स्वरमें गाती हैं—

“सैयाँ तो मेरो जुगिया है गयौ, और हौऊँ जोगिन है जाँउ।

सैयाँ तौ मेरो जुगिया है गयौ।”

दसों झूले पड़े हैं। एक-दूसरेके झूलोंकी रस्सियोंको पैरके अंगूठोंसे थामे युवतियाँ झूलोंका एक पैण्डुलम-सा चला रही हैं। अपने पीहरमें महिलाओंकी बाल-स्मृतियाँ जाग्रत हो उठती हैं और वे अपने दिलोंके उद्गारोंको निकालती हैं। पर आज हम युवतियोंके झूलोंके गीतोंको नहीं सुनना चाहते। यों ही एक गीतकी भक्त कानमें पड़ गई। समीपके पेड़पर भी दो-एक झूले हैं, और उसपर छोटी-छोटी बालिकाएँ—बस, आठ-आठ और दस-दस वर्षकी बालिकाएँ—भूल रही हैं। उनका गीत प्रारम्भ है—

“बाजराके खेतमें दो चिरई चूँ-चूँ करती थीं,

बाजराके खेतमें दो चिरई चूँ-चूँ करती थीं।

विततँ आवे रमेश भैया,

का-का सौदा लाये जी।

आपकूँ घोड़ा बापकूँ घोड़ा,

धनाकूँ लुगरा लाये जी।

भैंनकी चुँदरी भूलि आवे,

सौ-सौ नाम धराये जी।”

बाजरेके खेतमें रमेश एक बालिकाका भाई है। सब लड़कियाँ बारी-बारीसे अपने भाइयोंका नाम लेती हैं। बहनके मधुर व्यंगका तनिक मजा लट्टिये। रमेश भैया अपने लिये घोड़ा लाते हैं। अपने पिताके लिए भी घोड़ा लाते हैं। भला, अपनी धन (पत्नी)—बहनकी भाभी—को कैसे भूल आते? उसके लिए तो वे लुगरा लाये हैं; पर बहनके लिए एक चुँदरी

लाना भूल गये । और नतीजा ? सँकड़ों नाम रखे गये इस शल्लकीके लिए । कितनी स्वाभाविक बातें हैं । शब्द-विन्यास तो देखते ही घनता है । भाई-बहनके असीम प्रेम और मीठे व्यंगका कितना अनुठा उदाहरण है । गीत सुनते ही सूरदासके पद स्मरण हो आते हैं । अर्थमें गाम्भीर्य नहीं हैं, उसमें विरहिणी नायिकाका भी व्यंग नहीं है, वरन वहनकी माधुर्यपूर्ण शिकायत है भाईसे, जो दुरा नहीं मानता ।

गीत खत्म होता है । भूले ठीक किये जाते हैं और बादल घिर आते हैं । आकाशमें रणभेरी-सी बजने लगी और वाल्मिकीयोंका गीत शुरू होता है—

“कारी-पीली बदली, कोई वरसि बबुलके देस,
रँगाय दै चूँदारी ।

मति मेई अम्मा सुदिय करै,
मति मेओ भैया लेइय जाय,
रँगाय दै चूँदारी ।”

काली-पीली बदली उठती है और किसी लड़कीके हृदयमें अपनी माता-पिता और भाईकी स्मृतिका तूफान खड़ा कर देती है । उसकी सहेलियाँ पीहर आई होंगी । उसे बुलाने उसका भाई नहीं आया । बदली उठती है । लड़की प्रेम-विह्वल हो जाती है । कालिदासके ‘मेघदूत’ में यक्षने संवाद भेजा था मेघ द्वारा ; पर भोली-भाली लड़की कोई संवाद नहीं भेजती । वह तो चाहती है कि वह बदली उसके बबुल—पिता—के यहाँ बरसे, ताकि खेती-बारी अच्छी हो ; पर बदली देखकर उसे एक बातकी और आशा बँध जाती है—एक आशा-किरण उसके हृदयमें उगती है कि कारी-पीली बदली देखकर उसकी माँको अपनी बेटाकी याद आ जाय । इसलिए वह अपनी साससे याचना करती है कि मुझे एक चुनरी तो अम्मा रँगा ही दो । मति (शायद) मेरी माँको मेरा स्मरण हो जाय और क्या मालूम, मेरा भाई मेरी विदाको आ जाय । यदि भाई लिवाने आ जाय, तो फिर प्रतीक्षा कौन करेगा ? चुनरी पहनकर वह शीघ्र ही अपनी बहनोंमें जा मिलेगी ।

गीतमें कसगापूर्ण याचनाका चित्र खींच दिया है । मेई अम्मा सुदिय करै, मति मेओ भैया लेइय जाय’ शब्द दिलपर सीधी चोट करते हैं ।

× × ×

देहातवालोंके लिए बादल निजीव—कोरे भापके बने नहीं हैं, वरन् सजीव प्राणी हैं । वे चलते-फिरते और थिरकते दिखाई पड़ते हैं और लड़कियाँ गाती हैं—

“झुकि जा रे बदरा वरसि जा रे मेंह,
कौनकी भीजें आली चूँदारी,
और कौनकी मिरगुल पाग,
झुकि जा रे० ।”

‘कौनकी’ के स्थानमें बहिनोँका नाम लिया जाता है और ‘मिरगुल पाग’ से पहले भाइयोंका नाम लिया है । गीतकी आवृत्तियाँ होती हैं । तनक ‘बदरा’ शब्दपर ध्यान दीजिए । बदरा मानो उनका कोई नौकर है अथवा छोटा भाई, जिसको आज्ञा दी जा सकती है—तू-तझाक बोला जा सकता है । तुलसीदासजी जब रामसे कहल्लाते हैं—‘घन घमंड नभ गर्जत घोरा, प्रियाहीन डरपत मन मोरा’, तब शब्दोंके चुनावको देखिये । शब्द-शास्त्र (Phonetics) से ‘घन’ शब्द कहनेसे भयानकता प्रकट होती है, और फिर उसके साथ ‘घमंड’ और फिर ‘गर्जत घोरा’ । गर्जन और तड़पनका समा बँध जाता है । क्रोध और आदेशका चित्र खिंच जाता है । और जब कोई तरुणी अपने प्रियतमसे कहती हैं—‘रिमझिम बदरिया वरसै जिया मोरा तड़पै’, तब रिमझिम और बदरियाका जोड़ देखिये । घन और गर्जत नहीं है । वह कँपती है और बदरिया क्या मौजूद शब्द है । लड़कियोंके गीतमें ‘झुकि जा रे बदरा’ से प्रकट होता है कि बदरा उनका कहना मान लिया । अपने हितैषी परिचितसे प्रार्थना है ।

भाईके प्रति वहनका स्नेह असाधारण है और सावनमें न बुलाये जानेपर वह कौएसे ही बातें करती है । भाई आया नहीं है । माँको याद आ रही है । शायद लड़की पट्टी-लियी

नहीं है और अपना संवाद भी नहीं भेज सकती है और इसलिए
कौएसे प्रार्थना करती है—

“उड़ि - उड़ि काग सुलोचने,
काग भैया जो वीर आवेंगे आज
सोने मढ़ाऊँ तेई चैंचोली,
और हूँ मढ़ाऊँ तेए पंख
उड़तमें चमकैं चैंचोली,
औ चैंछत दोऊ पंख।
काग भैया०।

हिन्दी-साहित्यमें कौएका वर्णन प्रायः विरहमें आया करता
है। कौआ मकानपर आकर उड़ जाय, तो किसी प्रियके
आगमनका सूचक होता है। कौआ आकर छप्परपर बैठता है
और लड़की इस आशामें है कि वह उड़ जाय, तो उसके भाईके
आनका शगुन हो जाय, इसलिए खुशामदके तौरपर लड़की
कौएको सुलोचन कहती है। कहा वह जाता है काना और
अपनी धूर्तताके कारण ढेड़; पर ऐसे अपशब्दोंका प्रयोग
नामावरके प्रति नहीं होता। फिर कौएके लिए कितना प्रलोभन
है, उसका कितना आदर है, उसे भाई कहा जाता है और इस
वातका आश्वासन दिलाया जाता है कि यदि उसके भाई आ
गये, तो पुरस्कारमें चाँच सोनेसे मढ़ा दी जायगी और पंख
चाँदीसे मढ़ा दिये जायेंगे। सोना क्रीमती भी होता है और
इसलिए चाँच ही उससे जड़ी जायगी। चाँदीसे उसके पंख
मढ़े जायेंगे और वह कितना सुन्दर लगेगा! उड़ते हुए उसकी
स्वर्ण-चंचु चमकेंगी और बैठते ही उसके पंख चमकेंगे।

और भाईके प्रति वहनका कितना स्नेह है। ज़रा
समझिये—

“बना-मटरके दोऊ पला,
मिल्लिमिलायकी बीजाना।
बु आवेंगी पुरदँया लोग,
तौऊ नई देउँगी बीजाना।

बु आवेंगी पाछँया लोग,
तौऊ नई देउँगी बीजाना।
आमँगे वे रमेश भैया,
भटपट होरँ बीजाना।”

वेचारी वहनने बीजाना—पंखा—बनाया है मिल्लिमिलियाका।
चतुर्दिक्से कोई आये, वह अपने बीजनेको किसीको देनेवाली
नहीं। हाँ, यदि उसका भाई आ जाय, तो भटपट वह पंखसे
हवा करेगी। अपनी बढ़िया-से-बढ़िया चीज़ भाईके लिए
हाज़िर है। भ्रातृ-स्नेहका सराबोर प्याला है यह गीत।
भाईके लिए वहनके हृदयमें कितना स्नेह है—

“ऐ मेरे पीपर रे, तेरी जर गहर गम्भीर,
ए मेरे घीरन रे, तेरी जर गहर गम्भीर।

और अपनी सखियों और बचपनमें पाले मोरोंको भी नहीं
भुलाया जाता है। चुनरी रंगानी है। वह छपाई भी जाती
है, बेल-बूटे काटे जाते हैं, उसपर लड़की कहती है—

“ढिंग-ढिंग लिखिये कै छोपी बें दोऊ मोर,
और बीचमें लिखिये सहेला री।”

हे छोपी, मेरी चुनरीके किनारोंपर बें दोनों मोर अंकित
करना, जिनको बचपनमें मैंने चुगाया था और पाला था और
बीचमें मेरी सहेलियोंके चित्र बनाना, ताकि बें सब मेरे साथ ही
वने रहें।

यस, अब झूलोंकी ओरसे ध्यान हटाइये। पर वहाँसे
ध्यान हटाते ही कानोंमें सुनाई पड़ता है। युवतियाँ गा
रही हैं :—

“देखौं री मुकट मोका लें रहे,
लें रहे जमुनाके तीर (ती प्युत)

देखौरी मुकट०।”

और इसी प्रकार अनेकों गीत हैं झूलके। सावनके
गीतोंकी—बालिकाओंके गीतोंकी—एक भाँकी ही यहाँ दिखाई
गई है।

श्रीमती रमादेवी और उनका कार्य

श्री अनुसूयाप्रसाद पाठक, हिन्दी-प्रचारक, कटक

महात्मा गांधीके सत्याग्रह-आन्दोलनसे राजनैतिक जाग्रति तो हुई ही ; पर उसके साथ-ही-साथ और भी अनेक दिशाओंमें भारतीय समाजको लाभ हुआ । स्त्रियोंको परदेसे बाहर निकालना और राष्ट्रीय कार्योंमें भाग लेनेके लिए प्रेरित करना यह भी महात्माजीके आन्दोलनका ही प्रत्यक्ष परिणाम है । यद्यपि परदेके खिलाफ प्रचार तो बहुत दिनोंसे होता आ रहा था और राजनैतिक सभा-समितियोंमें स्त्रियाँ कभी-कभी चली जाती थीं ; पर व्यापक रूपसे भिन्न-भिन्न क्षेत्रोंमें और भारतके अनेक भागोंमें इतना कार्य उन्होंने कभी नहीं किया था । उदाहरणके लिए, उत्कल-प्रान्तको ही लीजिए ।

पन्द्रहवीं शताब्दीमें उत्कल-प्रान्तमें माधवी नामक एक कवियित्री हुई थीं, और उनका नाम आज भी आदरके साथ लिया जाता है । इसके बाद भी स्त्रियों द्वारा साहित्यका कुछ-न-कुछ काम होता रहा है और उसका थोड़ा-बहुत इतिहास भी मिलता है ; पर वह विशेष उल्लेख-योग्य नहीं है । आधुनिक कालमें उत्कलमें नारी-शिक्षाकी नींव डालनेवाली श्रीमती रेवा राव हैं । सन् १९०५ में उन्होंने एक रेवा-बालिका-विद्यालयकी स्थापना की थी, और आज वह विद्यालय रेवानसा गर्ल्स स्कूलके नामसे विख्यात है । श्री रेवाराव महाराष्ट्रीय हैं, और श्रीमती रेवाराव उत्कलके प्रधान कवि मधुसूदन रावके भाईकी कन्या हैं । अन्तर्जातीय विवाह करनेवाली सर्वप्रथम उत्कल महिला वे ही हैं । वे 'प्रभात' नामक पत्रका सम्पादन करती थीं । इनके अतिरिक्त श्रीमती शैलबाला दासका भी नाम उल्लेख-योग्य है । वे उत्कलकी प्रथम महिला हैं, जो विलायत पढ़नेके लिए गई थीं । वे ईसाई हैं ; पर उनके पूर्वजोंने उत्कल-प्रान्तकी काफी

सेवा की थी । वे आनरेरी मैजिस्ट्रेट थीं और सीनेटकी मेम्बर भी ।*

पर उत्कल-प्रान्तमें सबसे अधिक उल्लेख-योग्य कार्य है श्रीमती रमा देवीका । वे श्री गोपबन्धु चौधरीकी धर्मपत्नी हैं । श्री गोपबन्धु चौधरीने सन् १९२३ में अपनी डिप्टी-कलकटरी छोड़ दी थी, और तबसे वे निरन्तर देशहितके कार्यमें लगे हुए हैं । श्रीमती रमा देवी स्त्री-समाजके हितके कार्य तो बहुत दिनोंसे कर रही हैं ; लेकिन परदेसे बाहर आकर काम करना उन्होंने सन् १९३० से ही शुरू किया है । उत्कलके लिए एक ही घरसे दो स्त्रियोंका बाहर आना मंगलमय हुआ है ; एक तो श्रीमती रमा देवी और दूसरी श्रीमती मालती देवी । इनमें पहली महात्माजीके पथकी अनुगामिनी हैं और दूसरी साम्यवादकी समर्थक । जिठानी-दौरानीकी यह जोड़ी उड़ीसाके लिए बड़ी सौभाग्यसूचक है । इनके उज्ज्वल उदाहरणसे उत्साहित होकर उत्कलके नारी-समाजने भिन्न-भिन्न कार्यक्षेत्रोंमें पग बढ़ाया है ; पर नेतृत्व अभी तक इन्हीं दो महिलाओंके हाथमें है ।

इन पंक्तियोंके लेखकको गत चार वर्षसे उड़ीसा-प्रान्तमें रहनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ है, और उसने अपनी आँखोंसे श्रीमती रमा देवीका महत्त्वपूर्ण कार्य

* इस प्रसंगमें अन्य दो-तीन महिलाओंका जिक्र कर देना उचित होगा । श्री मनोरमा देवी एम० ए० उत्कलकी प्रथम महिला हैं, जो जालन्धरमें प्रोफेसर हैं । श्रीमती अर्पणा देवी उत्कलकी श्रेष्ठ कवि और लेखिका हैं । उन्होंने कई उपन्यास और काव्य-ग्रन्थ लिखे हैं । इस प्रान्तकी एक आदरणीय महिला और भी हैं और उनसे हिन्दी-संसार कुछ-कुछ परिचित भी है । वे हैं श्रीमती कुन्तलाकुमारी देवी । वे आजकल दिह्रीमें डाक्टरी करती हैं । उनसे उत्कल साहित्य गौरवान्वित हुआ है । हिन्दीकी प्रेमी हैं ।

देखा है। कांग्रेस-आन्दोलनमें तथा हरिजन-उद्धार-कार्यमें अत्यन्त कौशल तथा प्रेमके साथ श्रीमती रमा देवीने जनताका जितना सहयोग प्राप्त किया है, उतना किसी दूसरेके लिए अत्यन्त कठिन होता। श्रीमती रमा देवीको देखते ही लोगोंके मनमें मातृभाव जाग्रत हो उठता है। कार्यकर्ताओंसे मिलकर और उनका हृदय ग्रहण करके उनसे काम लेना वे खूब जानती हैं। उत्कल-प्रान्तमें यह शक्ति इतनी मात्रामें किसी दूसरेमें नहीं पाई जाती। जिस समय महात्मा गांधी उत्कल-प्रान्तमें पैदल यात्रा कर रहे थे, उस समय उन्होंने कहा था—‘उत्कलमें रमा देवीका स्थान खाली होनेपर उसका पूर्ण करनेवाला यहाँ कोई नहीं है।’

श्रीमती रमा देवीको जिसने घर-घर, द्वार-द्वार और ग्राम-ग्राममें हरिजनोंकी वस्तियोंको साफ़ करते देखा है, वह उनके सेवा-भावसे अनुप्राणित हुए बिना नहीं रहा। यह किसे आशा थी कि डिप्टी-कलक्टर श्री गोपालबल्लभ दास और श्रीमती वसन्तकुमारी देवीकी एकमात्र प्रिय कन्या, जो राजप्रासादोंमें रहनेकी अभ्यस्त थी, आगे चलकर भोपड़ियोंमें झाड़ू लगानेका गौरवपूर्ण कार्य करेगी ?

श्रीमती रमा देवी समझ गई हैं कि असली भारत भोपड़ियोंमें रहता है, इसीलिए वे भोपड़ियोंको सजाने और आबाद करनेके कार्यमें संलग्न हैं। एक बार उनके पति श्री गोपबन्धु चौधरीने मज़ाक करते हुए कहा था—“महिलाएँ कार्यकर्ताओंके मार्गमें बाधक हुआ करती हैं। वे कार्यकर्ताओंको सेवा-क्षेत्रसे विरक्त कर देती हैं।” पर श्रीमती रमा देवीने अपने पतिके प्रत्येक कार्यमें हाथ बैठाया है और सच्ची सहधर्मिणी बनी हैं। आज वे अपनी सेवासे इतनी प्रसिद्ध हो गई हैं कि उनका परिचय देनेके लिए यह कहना आवश्यक नहीं रहा कि आप श्री गोपबन्धु चौधरीकी धर्मपत्नी हैं, बल्कि वह ज़माना आनेवाला है, जब गोपबन्धुजीका परिचय इस प्रकार दिया जायगा कि आप श्रीमती रमा देवीके पति हैं। हाँ, यह बात ईमानदारीके

साथ कहनी पड़ेगी कि श्रीमती रमा देवीको कार्यक्षेत्रके लिए तैयार करनेका श्रेय चौधरी महाशयको ही है।

श्रीमती रमा देवी दो वर्षसे बरी नामक ग्राममें हरिजन-सेवा, ग्राम-संगठन और खादी-प्रचार इत्यादिके कार्यमें लगी हैं। अनेक महिलाएँ और बालिकाएँ भी उनके साथ हैं। उन्होंने यहीं बरी ग्राममें अपना एक आश्रम बना लिया है, जिसका नाम है—‘सेवा-घर’। आश्रममें इस समय चौदह महिलाएँ हैं। सबका जीवन सरलता तथा सादगीका नमूना है। खाने, पीने, पहनने, ओढ़ने—सबमें सादगी है। मासिक भोजन-व्यय कुल चार रुपया पड़ता है। सेवा-घर वास्तवमें अपने नामको सार्थक करता है। डेढ़ वर्ष पूर्व श्री सतीशचन्द्र दास-गुप्त बरी पधारे थे, और उन्होंने इस सेवा-घरके कार्यको भी देखा था। उन्होंने उस समय कहा था—“भारतमें श्रीमती रमा देवीके मुकाबलेकी महिलाएँ बहुत कम होंगी और उत्कलमें तो वे अद्वितीय ही हैं।”

बरीके सेवा-घरमें चार-पाँच छोटी-छोटी लड़कियाँ भी हैं, जिनकी उम्र दस वर्षसे कम है। वे सब श्रीमती रमा देवीको मा कहकर बुलाती हैं। ये बालिकाएँ हर काममें माताजीके साथ ही रहती हैं, उनके सामने बैठकर सूत कातती हैं और अपना काम खुद ही करती हैं। वह दृश्य बड़ा सुन्दर होता है, जब छोटी-छोटी बालिकाएँ फूल-पौधोंको पानी पिलाती हुई दीख पड़ती हैं। उत्कल-प्रान्तमें बरीके सेवा-घरकी लोकप्रियता बढ़ती ही जाती है और दूर-दूरके लोग उसके दर्शन करनेके लिए आते हैं।

श्रीमती रमा देवीके जीवनमें आध्यात्मिकताका जो पुट है, वही उनको श्रेष्ठ बनाता है, वैसे आज उड़ीसा-प्रान्तमें बी० ए०, एम० ए० पास महिलाएँ भी हैं और कुछ उच्च शिक्षा-प्राप्त स्त्रियाँ शिक्षा-विभागमें काम भी करती हैं; पर न तो उनमें श्रीमती रमा देवी जैसी लगन है और न उन जैसा व्यक्तित्व। स्वयं ये

महिलाएँ भी इस बातको समझती हैं और श्रीमती रमा देवीके सामने उनका मस्तक स्वयं ही नम्र जाता है। जो लोग कांग्रेसके अथवा हरिजन-आन्दोलनके विरोधी हैं, वे भी श्रीमती रमा देवीके गुणोंपर मुग्ध होकर उनकी प्रशंसा ही करते हैं। जो कभी घरसे बाहर नहीं निकलती थीं, उन्हें आज पैदल, भयंकर धूप, कड़ी वर्षा अथवा कठोर जाड़ेके दिनोंमें इधर-उधर दौड़ते देखकर भला कौन प्रभावित न होगा ?

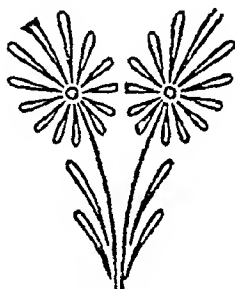
श्रीमती रमा देवीने अपनी लगन और परिश्रमसे उत्कल-प्रान्तके निवासियोंके हृदयमें अत्युच्च स्थान प्राप्त कर लिया है। कई वर्ष पहलेकी बात है, मैंने एक वकील साहबसे, जो एक साप्ताहिक समाचारपत्रके संचालक थे और अब भी हैं, पूछा—“आप कांग्रेसवालोंपर निरन्तर आक्षेप क्यों किया करते हैं ?”

उन्होंने उत्तर दिया—“मैं आक्षेप तो नहीं करता, हाँ, आलोचना अवश्य करता हूँ। जब मैं उनकी भूलें देखता हूँ, तो अपना कर्तव्य समझकर मुझे लिखना पड़ता है। हाँ, उत्कल-प्रान्तमें एक मनुष्य ऐसा है, जिसके सम्बन्धमें मुझे खोजनेपर भी कोई बुराई नहीं मिली, और वे हैं श्रीमती रमा देवी। उत्कलमें मेरा मस्तक दो ही जगह नम्रता है ; एक तो पुरीमें



श्रीमती रमा देवी

जगन्नाथजीके सम्मुख और दूसरे रमा देवीके सामने।”
निरसन्देह श्रीमती रमा देवी वन्दनीय हैं।



भारतीय कुष्ठियोंकी सेवामें ४५ वर्ष

“वहन, तुम और किसी भाई-बहन या मातासे एक बात मत कहना, जो मैं तुम्हें बतलाती हूँ, नहीं तो उन्हें महान दुःख होगा। वह बात यह है कि मुझे कोढ़ हो गया है। मैं अब भारतवर्षको लौट रही हूँ।” ओहियो (संयुक्त-राज्य अमेरिका) में रहनेवाली मिस मेरी रीड नामक एक ३५ वर्षीया युवतीने यह बात अपने आठ भाई-बहनोंमें से केवल एक बहनसे कही थी। मासे सिर्फ उसने इतना कहा—“मा, मेरी विदाईके लिए कोई ख़ास प्रबन्ध मत करना, क्योंकि मैं जल्दी ही लौट आऊँगी।”

माको भी इस बातका पता नहीं था कि मामला क्या है। वह अपनी प्यारी बेटीसे, जो हिन्दुस्तानमें छे वर्ष रहकर अभी लौटी थी, यह आशा कर रही थी कि अभी यह कुछ दिन और ठहरेगी। पर मिस मेरी रीड वरसे भारतवर्षके लिए चल दी।

इस घटनाको ४५-४६ वर्ष हो गये। मिस मेरी रीड आज वृद्धा हो गई हैं, उनके बाल पक गये हैं; पर उनके हृदयमें उत्साह ज्यों-का-त्यों बना हुआ है। चन्दग (ज़िला अल्मोड़ा) के कुष्ठश्रममें चीसियों भारतीय कोष्ठियोंकी सेवा-शुश्रूषामें इस वृद्धाने अपने जीवनकी करीब अर्द्ध शताब्दी बिता दी है। मिस मेरी रीडका जीवन-चरित्र वास्तवमें हम सबसे लिए उत्साहप्रद सिद्ध होगा।

मेरी रीडका जन्म सन् १८५५ में ओहियोमें हुआ था। घरमें आठ भाई-बहन थे। कुटुम्ब बड़ा आनन्दमय था। पढ़-लिखकर मेरी रीड अध्यापकीका काम करने लगीं। दस वर्ष तक उन्होंने बड़ी सफलतापूर्वक यह कार्य किया। सन् १८८४ में मैथोडिस्ट मिशनकी ओरसे पादरी बनकर वे भारतवर्षके लिए रवाना हुईं और कानपुरमें जनाना मिशनके अधीन काम करने लगीं। कानपुर आकर वे त्रिमास पढ़ गईं और स्वास्थ्य-सुधारके लिए उन्हें हिमालयके पिथौरागढ़ नामक स्थानको जाना पड़ा। यहाँपर उन्हें कई महीने

रुका रहा; पर ये महीने उन्होंने व्यर्थ ही नहीं गँवाये। इन दिनों वे हिन्दी पढ़ती रहीं। एक दिन वे चन्दगके कुष्ठश्रमको भी देखने गई थीं। उस दिन उन्हें स्वप्नमें ही यह खयाल नहीं आया था कि उन्हें इस कुष्ठश्रममें अपने जीवनका अधिकांश भाग व्यतीत करना पड़ेगा! स्वस्थ होकर मेरी रीड कानपुर लौट आईं और उन्होंने चार वर्ष तक वहाँपर कार्य किया। तत्पश्चात् उनकी बदली गौशडाको हो गई। वहाँ लड़कियोंके बोर्डिंग हाउसमें उन्हें संरक्षकका काम करना पड़ा। यहाँ उनका स्वास्थ्य फिर खराब हो गया और जनवरी सन् १८९० में वे छुट्टी लेकर अमेरिकाको वापस चली गईं। उन्हें आशा थी कि कुछ महीने घरपर विश्राम करनेके बाद वे भारतवर्षको लौट आवेंगी।

अमेरिका पहुँचकर उनकी तबीयत और भी खराब हो गई। डाक्टरोंको दिखलाया; पर किसीकी समझमें कुछ न आया। सीधे हाथकी एक उँगलीमें उनके कुछ खुजली शुरू हुई और गालके ऊपर कानके पास कुछ जगह लाल-लाल-सी हो गई। डाक्टरोंने आपरेशन किया; पर उससे कुछ लाभ न हुआ। एक दिन जब मिस रीड सिनसिनाती नामक स्थानमें विश्राम कर रही थीं, तो उन्होंने पासके एक पुस्तकालयसे डाक्टरकी कुछ किताबें मँगा लीं, और उनमें से कुछ-प्रकरण उन्होंने प्रारम्भसे अन्त तक पढ़ डाला। इसके बाद उन्होंने अपने डाक्टरसे कहा—“मुझे तो ऐसी आशंका होती है कि कहीं मुझे कुछ तो नहीं हो रहा।” डाक्टरको इस मर्जका पता न था। आखिर न्यूयार्कमें एक विशेषज्ञसे इसकी जाँच कराई गई। उसने निश्चयात्मक रूपसे बतला दिया कि हाँ, यह तो कोढ़का प्रारम्भ ही है। उस समय मिस मेरी रीड चबराई नहीं, बल्कि उन्होंने कहा—“यह रोग भी ईश्वरने किसी-न-किसी भलाईके खयालसे ही मेरे लिए भेजा है। मैं अब अपनी नई मातृभूमि भारतको वापस जाकर वहाँ काम करूँगी।”

जिस दिनसे मिस रीडको निश्चयात्मक रूपसे यह ज्ञात हो गया कि मुझे कुछ हो गया है, उसी दिनसे उन्होंने प्रतिज्ञा कर ली कि मेरा जीवन बस भारतीय कुष्ठियोंकी सेवामें ही व्यतीत होगा। मिस मेरी रीडने अपनी प्रतिज्ञाको खूब निबाहा है। अल्मोड़ासे ५० मीलकी दूरीपर चन्दग नामक स्थानमें उनके जीवनके ४५ वर्ष भारतीय कुष्ठियोंकी सेवामें ही व्यतीत हुए हैं।

वह दिन चन्दगके कुष्ठाश्रमके इतिहासमें और मिस मेरी रीडके जीवनमें भी चिरस्मरणीय है, जिस दिन पहले-पहल उन्होंने चन्दग-आश्रमका काम अपने हाथमें लिया। पहले उन्होंने आश्रमके कुष्ठी स्त्री-पुरुषोंको बुलाया और ईश्वर-प्रार्थना की। तत्पश्चात् उन्होंने कहा—“ईश्वरने मुझे भी यह रोग देकर मानो मुझे आप लोगोंकी सेवाके लिए खास तौरसे चुना है।” यह सुनकर कितने ही कोढ़ी स्त्री-पुरुषोंकी आँखोंसे आँसू टपाटप टपकने लगे। अपने कष्टोंका खयाल करके उनके हृदयमें इस गोरी मेमके प्रति बड़ी सहानुभूति उत्पन्न हुई। पर मेरी रीड उन मनुष्योंमें नहीं हैं, जो सबके सामने अपने दुःखका रोना रोया करते हैं। अंगरेज़ीमें एक कहावत है—
“Happiness is found not in doing what one likes, but in liking what one has to do.”
—“सुख अपने पसन्दके काम करनेमें नहीं है, बल्कि जो काम हमें करना पड़ता है, उसे पसन्द करनेमें है।”

मेरी रीडको यह कहावत बहुत प्रिय है, और इसीके अनुसार वे तन-मनसे कुष्ठियोंकी सेवामें लग गईं। उन्हें लिखना-पढ़ना सिखाना, घावोंकी मलहम-पट्टी करना, शुश्रूषा करना और धर्मोपदेश देना—ये सब काम उन्हें ही करने पड़ते थे। धीरे-धीरे यह कार्य बढ़ने लगा, और इस समय चन्दगमें ६७ कुष्ठी रहते हैं—२६ पुरुष हैं, ३५ स्त्रियाँ और ३ बच्चे।

चन्दगमें स्त्रियोंके लिए अलग आश्रम है, पुरुषोंके लिए अलग। एक छोटा-सा बैंगला मिस रीडका भी है, जिसे वे ‘सनी ग्रेस्ट कॉटेज’ (Sunny Crest Cottage) के नामसे पुकारती हैं। कितने ही भारतीय

स्त्री-पुरुषोंके जीवनमें उन्होंने आशाका सन्देश दिया है, कितनों ही की बीमारीको रोका है और कितने ही पीड़ितोंकी मरहम-पट्टी करके उनकी पीड़ाको कम किया है। कभी-कभी उनके सीधे-सादे इलाजसे बीमारी बिलकुल रुक गई है। एक पत्रमें उन्होंने लिखा था—“बच्चुली दस वर्षकी बड़ी सुन्दर लड़की है। हर्षकी बात है कि वह पिछले महीनोंमें बिलकुल अच्छी हो गई है। अब उसके शरीरमें कहींपर



मिस मेरी रीड

कोढ़का चिह्न भी नहीं है और कोई लक्षण ऐसा नहीं, जिससे कोई यह अनुमान कर सके कि इसे कोढ़ हुआ था। मैं वही वृत्ति उसे और दूसरोंको भी दे रही हूँ। तीनपर उसका बड़ा आश्चर्यजनक परिणाम हुआ है, जिनमें एक बच्चुली है।”

सौभाग्यसे खुद मेरी रीडकी बीमारी बिलकुल रुक गई, और सन् १९०६ में उन्हें अपनी पूज्य माता तथा

माई-बहनोसे मिलनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ था। सन् १९२० में उनकी एक बहनने लिखा था—“अब तुम हिन्दुस्तानमें ३६ वर्ष रह चुकी, बुढ़ापेमें तो अमेरिका आकर हम लोगोंके बीचमें रहो।”

उस समय मिस मेरी रीडने जवाब दिया था—

“No, my work and duty here are not yet finished. How I do long to see you dear, but the meeting will be in the Heavenly Home.”

‘नहीं, यहाँपर मेरा कार्य और कर्तव्य खतम नहीं हुआ।

मेरे दिलमें तो बड़ी इच्छा है कि तुम सबसे, जो मुझे इतने प्रिय हैं, मिलू; पर अब तो स्वर्गमें ही हम लोगोंका मिलन होगा।’

मिस मेरी रीड अब ८१ वर्षकी हैं। भारतवर्षको वे अपना घर समझती हैं, और इसी मातृभूमिके दीनहीन पीड़ितोंकी सेवा करते हुए उनका जीवन व्यतीत हुआ है। इन बूढ़ी माताका पता है :—

Miss Mary Reed.

Chandag, Almora, U.P.

प्रयाग महिला-विद्यापीठ

श्री भवानीप्रसाद गुप्त, परीक्षा-इन्स्पेक्टर महिला-विद्यापीठ

भारतवर्षमें स्त्रियोंकी शिक्षा-प्रणालीपर भले ही अनेकों मत हों; किन्तु यह बात निर्विवाद सिद्ध हो चुकी है कि स्त्रियोंकी शिक्षित किये बिना देशका कोई भी कार्य सुचारु रूपसे नहीं चल सकता।

गत पन्द्रह वर्षोंसे स्त्री-शिक्षाका वेग बढ़ रहा है। अनेक संस्थाएँ स्थापित हुई; जिनमें कुछ तो बूट गई और कुछ थोड़ा-बहुत कार्य कर रही हैं। हम आपके समक्ष आज प्रयाग महिला-विद्यापीठका विशेष रूपसे परिचय देंगे, जो गत पन्द्रह वर्षोंमें सफलतापूर्वक स्त्री-जातिमें प्राचीन आदर्शोंके साथ, किन्तु नवीन पद्धतिसँ, कार्य कर रहा है।

दुर्भाग्यसे देश और समाजके नेताओं तथा शिक्षा-सम्यन्धी विशेषज्ञोंके सम्मुख अभी तक यह विषय विवादग्रस्त रहा है कि स्त्रियोंकी किस प्रकारकी शिक्षा देनी चाहिए। कौन-सी शिक्षा उनके, उनके परिवार, देश और जातिके लिए उपयोगी होगी? प्रकृति उन्हें किस प्रकारकी शिक्षाके लिए आज्ञा देती है? भारतीय शिक्षा-प्रणाली विभिन्न मतोंके चक्रव्यूहमें चकर लगा रही है। फिर भी वर्तमान समयमें इसके दो मुख्य रूप दिखाई पड़ते हैं। दो मतोंमें से एक तो इस प्रकारके लोग हैं,

जो स्त्रियों और पुरुषोंकी शिक्षा-प्रणालीमें कोई भेद नहीं रखना चाहते, और कुछ लोग ठीक इसके विपरीत मत रखते हैं। उनकी दृष्टिमें स्त्री-पुरुषकी शिक्षा-प्रणाली भिन्न-भिन्न होनी चाहिए। पुरुष ही नहीं, स्त्रियोंमें भी इसी प्रकार दो मत हैं।

इन दो प्रणालियोंमें से विद्यापीठने दूसरी प्रणालीको स्त्रियोंके लिए अधिक उपयोगी समझा, और उसीपर वह सफलताके साथ कार्य कर रहा है। महिला-विद्यापीठके संस्थापक बाबू पुरुषोत्तमदास टंडन तथा बाबू संगमलाल अग्रवालने, जो सन् १९२१ में प्रयाग म्यूनिसिपल बोर्डके क्रमशः बोर्ड और शिक्षा-विभागके चेयरमैन थे, इस प्रकारकी संस्थाकी आवश्यकताका अनुभव किया। उनकी भावनामें शिक्षाके क्षेत्रमें जो लोग अग्रगण्य थे, उनके पास एक योजना भेजी गई, जिसमें इस प्रकारकी संस्थाकी आवश्यकता दिखलाई गई थी और उनके विधानकी एक पाण्डुलिपि भी उसमें थी।

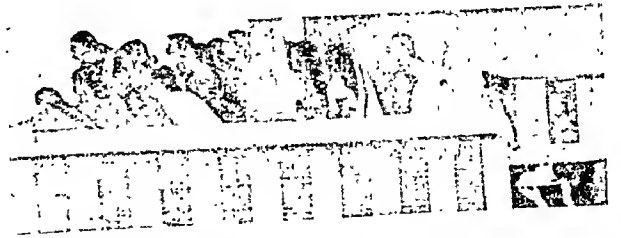
इन्की अनुसार महिला-विद्यापीठकी स्थापना २ फरवरी सन् १९२२को वसन्तपंचमीके दिन प्रयाग म्यूनिसिपल बोर्डमें हुई थी। उस समयके विधानके अनुसार म्यूनिसिपल बोर्डके चेयरमैन विद्यापीठके प्रधान होते थे और शिक्षा-विभागके



विद्यापीठका चित्रकला-क्रास । पीछे खड़ी हुईं बाईं ओरसे—वीणापाणि (आसाम), दमयन्ती देवी (जालन्धर), प्रमीलादेवी शर्मा, सरलादेवी सिनहा । बैठी हुईं—मीरा सिनहा, विद्यावती गुर्गू, माधवी वनजी, विद्या देवी (बिहार), कुमद इन्दिरा (मैसूर), लावण्यप्रभा (आसाम), लालमणि और लाजवन्ती देवी । नीचे बैठी हुईं—सत्यवती टंडन, जानकी देवी ठाकुर, चन्द्रमुखीदेवी सिनहा, कमलादेवी शर्मा, शान्तिदेवी शर्मा, रुक्मिणी देवी (हैदराबाद) ।

चेयरमैन उसके उपप्रधान । इस नियमके अनुसार श्रीमान टंडनजी तथा बाबू संगमलाल अग्रवाल महिला-विद्यापीठके क्रमशः प्रधान तथा उपप्रधान थे । म्यूनिसिपल बोर्डके शिक्षा-सुपरिन्टेण्डेन्ट नियमानुसार विद्यापीठके अवैतनिक रजिस्ट्रार होते थे । लेकिन यह विधान केवल अर्द्धई वर्ष तक ही चल पाया । उसके बाद नियम और विधानमें एकदम परिवर्तन कर दिया गया । बोर्डसे एक तरहसे विलकुल सम्बन्ध-विच्छेद कर लिया गया । विद्यापीठके प्रधान और उपप्रधान स्वतन्त्र रूपसे चुने जाने लगे और रजिस्ट्रारका पद वैतनिक हो गया । विद्यापीठका भवन भी अन्यत्र बना लिया गया । नये विधानके अनुसार विद्यापीठके प्रधान डाक्टर कैलाशनाथ काटजू चुने गये, जो आज तक उसी पदपर विद्यापीठका कार्य सम्पन्न कर रहे हैं । राजनैतिक कार्योंमें व्यस्त रहनेके कारण बाबू पुरुषोत्तमदास टंडनका हाथ विद्यापीठके कार्योंमें बहुत दिनों तक न रह सका ; किन्तु उनकी सद्भावनाएँ विद्यापीठके साथ

बराबर रहीं हैं । बाबू संगमलाल अग्रवाल तो विद्यापीठके प्राण ही हैं । उनके अथक उद्योग और लगनने ही विद्यापीठको इतना बड़ा और उपयोगी बनाया है । विद्यापीठके वैतनिक रजिस्ट्रार बाबू रामेश्वरप्रसाद अग्रवाल बी० ए० का सदुद्योग भी अधिकारियोंके कार्योंमें बहुत सहायता करता है ।



विद्यापीठकी छात्राओं द्वारा दीवारपर अंकित 'उत्सव' नामक विशाल चित्रका एक अंश

इस तरह विद्यापीठ उपर्युक्त अधिकारियों और अन्तरंग परिपदके सहयोगसे कार्य कर रहा है । अन्तरंग परिपद ११ सदस्योंसे बनती है । ये सदस्य परिपद (सिनेट) के

सदस्योंमें से चुने जाते हैं। विद्यापीठकी परिषद्में कुल ४० सदस्य होते हैं।

विद्यापीठकी स्थापनाका एक 'परीक्षक-संस्था' के रूपमें हुई थी। स्त्रियोंकी आवश्यकताओंका ध्यान रखते हुए पाठ्यक्रम बनाया गया था और उसीके द्वारा परीक्षाएँ ली जाती थीं।



श्रीमती महोदेवी वर्मा, एम० ए०, विद्यापीठकी प्रिन्सिपल

अब तो विद्यापीठका कार्यक्षेत्र बहुत विस्तृत हो गया है। इस समय विद्यापीठमें सात विभागों द्वारा शिक्षा दी जाती है। यथा—(१) परीक्षा-विभाग, (२) महिला-सेवा-सदन, (३) महिला-विद्यापीठ-कालेज, (४) संगीत तथा निचकला विभाग, (५) महिला-व्यायाम-मन्दिर, (६) उद्योग-मन्दिर और (७) गार्हस्थ्य-शास्त्र। इन विभागोंमें कई उपविभाग भी हैं।

विद्यापीठने सर्वप्रथम परीक्षाओंकी स्थापना की। इसके सामने मुख्य तीन उद्देश्य थे—मातृभाषा द्वारा उच्च-से-उच्च शिक्षाका प्रचार, स्त्रियोंपयोगी विषयोंका अध्ययन तथा घरमें रहते हुए स्त्रियोंको शिक्षा प्राप्त करनेकी सुविधा। इन तीनों उद्देश्योंके आधारपर विद्यापीठने चार परीक्षाओंकी स्थापना की—'प्रवेशिका', 'विद्याविनोदनी', 'विदुषी' तथा 'सरस्वती'। इन परीक्षाओंका स्टैण्डर्ड क्रमशः मिडिल, एन्ट्रेंस, बी० ए० तथा एम० ए० रखा गया। प्राथमिक शिक्षा प्राप्त करनेके बाद बालिकाओं तथा स्त्रियोंको विद्यापीठकी परीक्षामें पास करनेका प्रोत्साहन मिला। परीक्षाओंमें अनेक सुविधाएँ दी गईं। एक तो परीक्षाएँ सालमें दो बार होती हैं; दूसरे परीक्षार्थि एक-एक विषय लेकर भी परीक्षामें बैठ सकती है और सम्पूर्ण विषय पास कर लेनेपर प्रमाणपत्र तथा उपाधिपत्र मिल जाता है। फिर किसी भी स्थानमें कम-से-कम तीन परीक्षाधिनियोंके होनेसे ही केन्द्रकी स्थापना कर दी जाती है। इस तरह दो ही वर्षके भीतर सैकड़ों केन्द्र खुल गये और परीक्षाएँ सुचारु रूपसे होने लगीं। बादमें विद्यापीठने 'विदुषी आनर्स' तथा 'सुगृहिणी-परीक्षा' की भी स्थापना की। सुगृहिणी-परीक्षा विशेषकर कालेजकी ऊँचे क्लासकी लड़कियों तथा नई रोशनीमें गार्हस्थ्यक कर्तव्योंसे वैराग्य लेनेवाली स्त्रियोंके लिए विशेषकर हितकर है। इस परीक्षामें हिन्दी-साहित्य, स्वास्थ्य-रक्षा, सन्ततिशास्त्र, शिशु-विज्ञान तथा समाजशास्त्र अनिवार्य विषय हैं। संगीत, सिलाई तथा पाकविद्या ऐच्छिक विषय हैं। इस परीक्षाको पास करनेपर स्त्रीको अपने प्राचीन और नवीन उपयोगी विषयोंका ज्ञान हो जाता है, और वह वास्तवमें सुगृहिणी बन सकती है। विवाहिता स्त्रियोंके लिए सुगृहिणी-परीक्षाका पाठ्यक्रम बड़ा रोचक और उपयोगी है। ऐसी परीक्षा अभी तक हिन्दुस्तानके किसी भी विश्वविद्यालयने नहीं स्थापित की। गार्हस्थ्य-जीवनको सुखी करनेकी दृष्टिकोण से महिलाओंको यह परीक्षा अवश्य देनी चाहिए। सुगृहिणी-परीक्षाके अतिरिक्त जो परीक्षाएँ हैं, उनके द्वारा मातृभाषामें मिडिलमें लेकर एम० ए० स्टैण्डर्ड तकका ज्ञान हो जाता है। हिन्दी-साहित्यमें इन

परीक्षाओंसे यथोचित योग्यता प्राप्त होती है। स्त्रियोपयोगी कोई ऐसा विषय नहीं, जो इन परीक्षाओंमें सम्मिलित न हो। आज तक कितनी ही इन परीक्षाओंको अव्ययनकर कवियित्री और लेखिकाएँ बन गई हैं। इस समय विद्यापीठकी परीक्षाओंका भारतमें काफ़ी सम्मान है। सार्वजनिक शिक्षा-संस्थाओंने अपने स्कूलोंकी अध्यापिकाओंको इन परीक्षाओंमें सम्मिलित

विषयोंमें उत्तीर्ण हुई, जिन्हें प्रमाणपत्र तथा उपाधिपत्र दिये जा चुके हैं। इस तरह विद्यापीठ अपनी परीक्षाओं द्वारा स्त्री-जातिकी सेवा कर रहा है। जो अपनी बालिकाओं और स्त्रियोंको स्कूल-कालेज भेजे बिना ही उच्च शिक्षा दिलाना चाहते हैं, उन्हें इस उपयोगी संस्थासे लाभ उठाना चाहिए।

विद्यापीठका अन्य यूनिवर्सिटियोंकी तरह उपाधि-वितरणोत्सव (Convocation) वसन्तपंचमीके दिन होता है,



विद्यापीठकी छात्राएँ भीत-चित्र (फ्रेस्को पेंटिंग) अंकित कर रही हैं

कराकर शिक्षा-सम्बन्धी लाभ उठाया है। विद्यापीठकी ऊँची परीक्षामें पास करके कई स्त्रियाँ विभिन्न स्थानोंमें शिक्षा-प्रसारका कार्य कर रही हैं। कई अन्य प्रान्तोंमें भी विद्यापीठकी परीक्षाओंका ही कोर्स पढ़ाया जाता है। पन्द्रह वर्षके भीतर महिला-विद्यापीठमें लगभग १३००० परीक्षार्थिनियाँ सम्मिलित हुईं और लगभग ४००० परीक्षार्थिनियाँ सम्पूर्ण

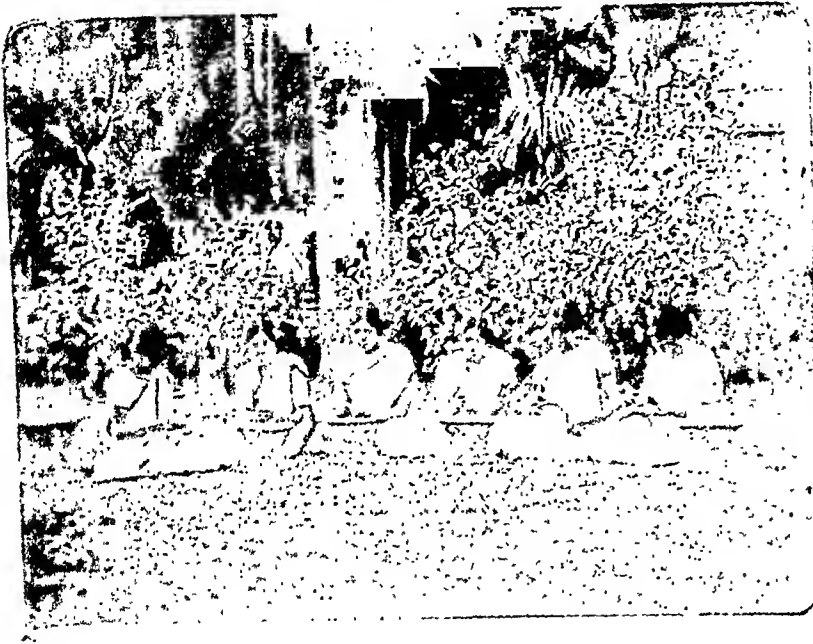


विद्यापीठकी प्रिन्सिपल श्रीमती महादेवी वर्मा द्वारा अंकित रंगीन चित्र—'तूफान'

जिसमें प्रतिवर्षकी उत्तीर्ण परीक्षार्थिनियोंको प्रमाणपत्र तथा उपाधिपत्र दिये जाते हैं। विद्यापीठमें अब तक डाक्टर भगवानदास बनारस, महात्मा नारायण स्वामी देहली, मिसेज़ कमलाबाई किन्ने इन्दौर, श्री राजेन्द्रप्रसाद, पं० जवाहरलाल नेहरू और सेठ गोविन्ददास जबलपुरके दीक्षान्त भाषण हो चुके हैं।

महिला-सेवा-सदन

विद्यापीठका दूसरा विभाग 'महिला-सेवा-सदन' के नामसे कार्य कर रहा है। इस विभागकी स्थापना ४ अगस्त १९३० को हुई थी। यह सरकारी शिक्षा-विभागसे सम्बद्ध है। इस विभागको गवर्नमेंटसे सहायता मिलती है। यह विभाग गरीब स्त्रियोंके लिए अत्यन्त उपयोगी है। इस विभागमें शिक्षा-विभागके पाठ्यक्रमके अनुसार लोअर-मिडिल तककी शिक्षा दी जाती है। जो स्त्रियाँ विधवा हैं, बहुत गरीब हैं, दूसरोंकी आश्रिता होकर दुःख भोग रही हैं, जो पेटके कारण अत्याचार



और अत्याचारकी शिकार हो रही हैं, उनके लिए महिला-सेवा-सदनसे बहुत कोई सहायक नहीं। निरक्षरा स्त्रियोंके केवल तीन सालमें लोअर-मिडिल तककी शिक्षा दे दी जाती है और उन्हें २०-२५ रुपये महीनेकी नौकरी स्कूलोंमें दिला दी जाती है। इस तरह उन्हें आर्थिक सहायता प्राप्त होती है। अब तक बीसियों स्त्रियाँ यहाँकी शिक्षा समाप्त करके स्कूलोंमें अध्यापनका कार्य कर रही हैं। गरीब स्त्रियोंके लिए इस विभागमें 'महिला-असहाय-कोष' भी है, जिसके द्वारा उन्हें भोजन और सुप्त शिक्षा दी जाती है। अत्यन्त गरीब

स्त्रियोंको थोड़ा-बहुत वस्त्र भी दिया जाता है। बोर्डिंगमें रहनेका स्थान निःशुल्क मिलता है। इस कोषसे अब तक बीसियों स्त्रियोंको सहायता मिल चुकी है। बोर्डिंगमें इस समय असहाय और अपने व्ययमें पढ़नेवाली कुल स्त्रियोंकी संख्या ५० है। सेवा-सदनमें एक उद्योग-विभाग भी है, जिसमें बनिआइन बुननेका कार्य सिखाया जाता है। इसके सीखनेसे स्त्रियाँ अपने घरोंके भीतर बैठ कर १५-२५ रुपये महीने पैदा कर सकती हैं। सेवा-सदनमें सभ्य तथा सिलाईकी शिक्षाका विशेष प्रयत्न है। इसके द्वारा

भी गरीब और अपाहज स्त्रियाँ आर्थिक कष्टसे मुक्त हो जाती हैं। इन दोनों विभागोंके शिक्षक क्रमशः गायनाचार्य विष्णु दिगम्बरके शिष्य श्री एस० डी० आपटे और श्री ए० के० चटर्जी हैं। सेवा-सदनकी आचार्या श्रीमती रमादेवी सरस्वती हैं। आप प्रयाग महिला-विद्यापीठकी सबसे उच्च परीक्षा पास हैं।

सेवा-सदनमें पढ़नेवाली स्त्रियोंकी अधिकांश संख्या देहातोंकी है। इसके अतिरिक्त बड़े घरोंकी वे स्त्रियाँ भी इस विभागमें पढ़ने आती हैं, जो बालापनमें किसी कारणसे शिक्षा नहीं पा सकी हैं,

या जिनके पति शिक्षित हैं और वे निरक्षरा हैं, ऐसी स्त्रियोंकी संख्या भी सेवा-सदनमें काफी है। इस विभागमें सात वर्षका कोसे तीन वर्षमें समाप्त किया जाता है, इससे स्त्रियोंके समयकी बहुत बचत होती है। इस विभागमें १५ वर्षसे ५० वर्ष तककी स्त्रियाँ शिक्षा पाती हैं। १५ वर्षसे नीचेकी स्त्रियाँ इसमें भर्ती नहीं की जाती। महिला-सेवा-सदनको यह अनुभव हुआ है कि बड़ी उम्रकी स्त्रियोंके लिए ऐसी अनेक संस्थाओंकी आवश्यकता है। इस वर्षसे शिक्षा-विभागने सेवा-सदनमें ट्रेनिंग क्लास भी चालानेकी आज्ञा दे दी है।

गत जुलाईसे यह क्लास भी अपना कार्य कर रहा है।

प्रयाग-महिला-विद्यापीठ सन् १९२२ से १९३१ तक तो परीक्षक-संस्थाके रूपमें कार्य करता रहा है; किन्तु एक ऐसे शिक्षालयकी आवश्यकता प्रतीत हुई, जो विद्यापीठका कोर्स पढ़ावे। साथ ही चित्रकला और संगीत आदि विषय ऐसे हैं, जिनका अध्ययन प्राइवेट तौरपर कठिन और व्ययसाध्य है। फिर कुछ स्त्रियाँ हिन्दीके साथ अंगरेज़ी भी, ऐच्छिक विषयके रूपमें, पढ़ना चाहती थीं। इसके लिए मार्च सन् १९३२ में कालेज-विभागकी स्थापना की गई। तीन ही वर्षके भीतर कालेज-विभागने इतनी उन्नति की कि उसके लिए स्थानकी अत्यन्त कमी हुई। वाघू संगमलालजीने एलगिन रोडपर एक नया भवन बनवाया। २० फ़रवरी १९३५ को कालेज-विभाग नये मकानमें आ गया।

कालेज-विभागका मुख्य उद्देश्य हिन्दीके द्वारा एम० ए० स्टैन्डर्ड तककी शिक्षा देना है; किन्तु गौण रूपसे विद्यापीठने अंगरेज़ीको भी अपनाया है, और उसका पाठ्यक्रम इस ढंगसे बनाया गया है कि केवल पाँच वर्षमें तीसरे क्लासका ज्ञान रखनेवाली लड़की बनारस हिन्दू-यूनिवर्सिटीका मैट्रिक पास कर ले। इस तरह अभी तक एफ० ए० क्लास तककी इंगलिश विद्यापीठ कालेजमें पढ़ाई जाती है; किन्तु हिन्दीकी शिक्षा एम० ए० स्टैन्डर्ड तककी दी जाती है।

दूसरे स्कूलोंमें मैट्रिक पास करनेमें आठ सालसे कम नहीं लगते। विद्यापीठमें यही कार्य सफलताके साथ पाँच सालमें हो जाता है। इसके साथ ही विद्यार्थिनियोंको ऐसी शिक्षा दी जाती है, जिससे वह अपनी योग्यताको प्रत्येक कार्यमें लगा सकती हैं।

कालेज-विभागकी प्रिन्सिपल भारतकी प्रसिद्ध कविवित्री महादेवी वर्मा एम० ए० हैं। कालेजकी स्थापनाके बाद जुलाई १९३३ में आप विद्यापीठकी प्रिन्सिपल होकर आई हैं, और यहाँपर बड़ी दिलचस्पी और त्यागवृत्तिसे सफलतापूर्वक कार्य कर रही हैं।

विद्यापीठ-कालेजमें अनेकों उपयोगी विभाग हैं। कालेजका

बोर्डिंग भी है, जिसमें इस समय ६० विद्यार्थिनियाँ रहती हैं, जिनमें २० फ्री हैं। भारतका कोई भी प्रान्त ऐसा न होगा, जहाँकी लड़कियाँ कालेजकी बोर्डर न हों। सन् १९३३ से तो विद्यापीठमें मदरास और आसामसे भी लड़कियाँ तथा बड़ी उम्रकी स्त्रियाँ आने लगी हैं। इन प्रान्तोंसे आई हुई महिलाओंको विद्यापीठ सुपत भोजन, रहनेका स्थान और निःशुल्क शिक्षा देता है, केवल यही आशा रखकर कि ये लोग हमारे यहाँसे हिन्दीमें उच्च शिक्षा प्राप्तकर अपने प्रान्तोंमें जायँगी और स्त्रियोंमें हिन्दीका प्रचार और विद्यापीठकी परीक्षाओंका प्रसार करेंगी। मदराससे अब तक लगभग २४ और आसामसे लगभग ७ स्त्रियाँ आ चुकी हैं। सन् १९३४ और ३५ में मदरासकी कुछ स्त्रियाँ उच्च शिक्षा समाप्त कर हिन्दीकी सेवा और उच्च पदपर शिक्षण-कार्य भी कर रही हैं। विद्यापीठने अपने कार्यक्रममें कम समय और कम व्ययका विशेष ध्यान रखा है। अतः शरीर और अमीर सभीकी लड़कियाँ तथा स्त्रियाँ इसमें शिक्षा प्राप्त कर सकती हैं। इसमें उम्रका कोई बन्धन नहीं है। छोटी लड़कियाँ भी यहाँपर भर्ती की जाती हैं।

महिला-व्यायाम-मन्दिर

स्त्रियोंका स्वास्थ्य दिन-पर-दिन गिरते हुए देखकर विद्यापीठने अपने यहाँ सन् १९३३ में महिला-व्यायाम-मन्दिरकी स्थापना की। इसकी एक पाठविधि भी बनाई गई है, जिसे विद्यापीठ अन्यान्य संस्थाओंमें भी प्रचलित करनेका उद्योग कर रहा है। इस पाठ्यक्रममें 'कन्या-आरोग्य-मन्दिर' बड़ौदाकी प्रणालीका अनुकरण किया गया है। इसका पाठ्यक्रम उम्रके अनुसार चार वर्षोंमें बाँटा गया है। ६ वर्षसे ११ वर्ष तक, ११ वर्षसे १३ वर्ष तक, १३ वर्षसे १६ वर्ष तक और १६ वर्षसे अधिक उम्रवालि्योंके लिए अलग-अलग व्यायाम निश्चित किये गये हैं। इस पाठविधिमें व्यायामके साथ ही स्वास्थ्य-विज्ञान, रोगी-सेवा, प्रारम्भिक चिकित्सा, शरीर-विज्ञान, सुश्रूषा, तैरना इत्यादिका भी समावेश है। किस-किस व्यायामसे कौन-कौन-सा लाभ होता है, इसका भी उल्लेख किया गया है। विद्यापीठ इसी

पद्धतिके अनुसार शिक्षा देता है। सन् १९३४ की गर्मीकी छुट्टियोंमें स्थानीय तथा बाहरके म्यूनिसिपल तथा डिस्ट्रिक्ट बोर्डोंसे कुछ अध्यापिकाओंको बुलाकर व्यायामकी शिक्षा दी गई थी। वे अध्यापिकाएँ प्राइमरी स्कूलोंमें व्यायाम सिखानेका कार्य कर रही हैं। विद्यापीठने जनवरी १९३४ में शारीरिक शिक्षा-सम्मेलन द्वारा अन्यान्य प्रान्तोंका ध्यान भी इस ओर आकर्षित किया था।

विद्यापीठका संगीत और चित्रकला विभाग बहुत अच्छा कार्य कर रहा है। संगीतकी प्रणाली गायनाचार्य विष्णु दिगम्बरजीके अनुसार है। पहले संगीत-विभाग अलग था; पर सन् १९३५ में चित्रकला-विभाग खुलनेपर दोनोंको मिलाकर एक विभाग कर दिया गया है। विद्यापीठका चित्रकला-विभाग शान्ति-निकेतनके ढंगपर संचालित हो रहा है। कालेज-विभागमें संगीतकी उच्च शिक्षा दी जाती है। यहाँसे संगीत-शिक्षिकाएँ भी तैयार की जाती हैं। अब तो विद्यापीठने 'सरस्वती-परीक्षा' का भी संगीतका कोर्स तैयार कर दिया है।

चित्रकला-विभागको स्थापित हुए अभी बहुत थोड़े दिन हुए हैं; किन्तु इस विभागने आशासे अधिक उन्नति की है। साधारण चित्रकारीसे लेकर उच्च भावमय चित्रोंका बनाना तक सिखाया जाता है। प्रेस्कॉपेंटिंग, लीनोकटिंग और क्रेस्माइलिंगके सिखानेका भी प्रयत्न हो गया है। इस ओर लड़कियोंकी विशेष रुचि भी है। संयुक्त-प्रान्तमें केवल यही एक संस्था है, जो महिलाओंको उनाकोटिकी चित्रकलाकी शिक्षा देनेका प्रयत्न कर रही है।

उद्योग-मन्दिरका अभी थोड़े ही दिनोंसे श्रीगणेश हुआ है। इसका मुख्य उद्देश्य निम्नहाय स्त्रियोंको प्रतिष्ठाके साथ धन उपार्जन करनेकी विधि बतलाना है, जिससे वे अपने ऊपर आये हुए आकस्मिक आर्थिक कष्टको संभाल सकें। भारतमें ऐसी हज़ारों स्त्रियाँ हैं, जो पेटके लिए न-मालूम किस-किस दुर्गतिको भोग रही हैं। यदि उन्हें पेटभर अन्न खानेको मिल जाय, तो उनका जीवन किमी अच्छे कार्यकी ओर लग

सकता है। इस विभागमें अभी तक मोजा और बनिआइंग सिखानेका उद्योग हुआ है। धनकी कमीके कारण यह विभाग अभी विशेष कार्य नहीं कर सका है। इसे बढ़ानेका प्रयत्न हो रहा है।

विद्यापीठका गार्हस्थ्य-विभाग भी है, जिसकी स्थापना कालेजके साथ ही हुई थी। विद्यापीठमें जहाँ स्त्रियोंको हिन्दी और अंगरेज़ीकी उच्च शिक्षा दी जाती है, वहाँ गृहलक्ष्मी और सुगृहिणी बनानेका क्रियात्मक उद्योग भी किया जाता है। इस विभागमें अनाजकी सफ़ाई, भोजन, मिठाई, पकवान, अचार, चटनी, मुरब्बे आदि बनानेके उत्तम प्रयोग बताये जानेका प्रबन्ध हो रहा है। व्यवहारशास्त्र और रहन-सहनकी क्रियात्मक शिक्षा भी दी जाती है।

उपर्युक्त सात विभागोंका परिचय तो दिया जा चुका, इसके अतिरिक्त भी विद्यापीठ स्त्री-जनताके लाभके निमित्त कुछ-न-कुछ विशेष कार्य करता ही रहता है। जनवरी १९३० में विद्यापीठने श्रीमती सरोजनी देवी नायडूके सभापतित्वमें महिला-शिक्षा-सम्मेलन किया था। सन् १९३४ में विद्यापीठ सप्ताह मनाया गया था, जिसमें शारीरिक शिक्षा-सम्मेलन, महिला-ललितकला-सम्मेलन यू० पी०, डिस्ट्रिक्ट तथा म्यूनिसिपल बोर्ड लेडी मेम्बर्स कानफ़रेंस आदि बहुत सफलता-पूर्वक सम्पन्न हुई थीं, जिसके कार्यका प्रभाव स्त्री-शिक्षा संस्थाओंपर विशेष रूपसे पड़ा।

श्रीमती महादेवी वर्माके उद्योगसे विद्यापीठ प्रतिवर्ष मोरा-जयन्ती मनाता है। महिला-कवि और महिला-गल्प-सम्मेलनका श्रीगणेश विद्यापीठसे ही हुआ है, जिसके द्वारा कितनी ही कवियित्रियों और लेखिकाओंको प्रोत्साहन मिला।

विद्यापीठका पुराना भवन अब बिलकुल तैयार हो गया है। इस भवनका शिलारोपण १९२८ में श्री जवाहरलाल नेहरूने किया था। कालेज-भवनका शिलारोपण १९३५ में बाबू राजेन्द्रप्रसादने किया। इन सब कार्योंमें धनकी प्राप्ति विद्यापीठको अधिकांश रूपमें फुटकर चन्दोंमें हुई है। इसके

अतिरिक्त प्रयाग म्यूनिसिपल बोर्डने भी इसकी आर्थिक सहायता समय-समयपर की है। डाक्टर कैलाशनाथजी काटजू विद्यापीठकी बराबर सहायता करते रहते हैं। कलकत्तेके श्री सीताराम सेकसरियाने विद्यापीठकी यथोचित सहायता की और कराई। महिला-सेवा-सदनकी आचार्या श्रीमती रमादेवी सरस्वतीके उद्योगसे विद्यापीठको अच्छा धन प्राप्त हुआ है। प्रयागके पं० चतुर्वेदीने अपनी स्वर्गीय स्त्रीकी

स्मृतिमें एक 'कपूर्री महिला-पुस्तकालय' तथा स्वर्गीय पुत्रकी स्मृतिमें एक फ़व्वारा विद्यापीठ-भवनमें स्थापित किया है। पुस्तकालयसे विद्यार्थिनियोंको लाभ पहुँच रहा है और फ़व्वारा भवनकी शोभा बढ़ा रहा है।

यदि विद्यापीठके कार्यका ढंग यही रहा, तो निस्सन्देह यह स्त्रियोंके लिए एक आदर्श संस्था होगी और महिला-संसारका इससे बहुत उपकार होगा।

विहार-महिला-विद्यापीठ

जहाँ तक महिलाओंकी जाग्रतिका सवाल है, विहार भारतके अन्य सभी प्रान्तोंसे पिछड़ा हुआ था—उड़ीसाको छोड़कर। उड़ीसा शायद भारतका सबसे दरिद्र प्रान्त है; किन्तु इसके विपरीत विहार उपजाऊ ही नहीं है, बल्कि उसके कुछ हिस्सोंकी ज़मीन तो सोना उगलनेवाली है। इसपर भी विहारको महिला-जाग्रतिमें सबसे पिछड़ा देखकर आश्चर्य होता है। एक बात तो यह है कि विहारमें परदेकी प्रथा जितनी कड़ाईके साथ बरती जाती है, उतनी—कुछ रूढ़िवादी मुसलमानोंको छोड़कर—अन्य कहीं भी नहीं मिलेगी। वास्तवमें समूचे भारतके किसी भी प्रान्तके हिन्दुओंमें इतना कड़ा परदा नहीं मिलेगा, जितना विहारमें है।

विहारमें स्त्री-शिक्षाका बहुत बड़ा अभाव था। शान्ति-निकेतन, कर्वे-महिला-विश्वविद्यालय, जालन्धर-महाविद्यालय या प्रयागके महिला-विद्यापीठ सरीखी संस्थाएँ तो दूरकी चीज़ हैं, भारतीय ढंगसे लड़कियोंको शिक्षा देनेवाली कोई छोटी-मोटी संस्था भी विहारमें नहीं थी। दो-एक बड़े शहरोंमें विदेशी मिशनरियोंके दो-चार स्कूल थे, जो लड़कियोंको सरकारी ढंगकी शिक्षा देते थे; किन्तु यह बात भलीभाँति सिद्ध हो चुकी है कि सरकारी ढंगकी अंगरेज़ी शिक्षा हमारे वर्तमान

समाजके एकदम अनुपयुक्त पड़ती है। अंगरेज़ी शिक्षिता स्त्रियोंमें कुछ ऐसी अंगरेज़ियत आ जाती है कि उनका और उनकी अशिक्षिता मा-बहनोंका एक साथ रहना कठिन हो जाता है। स्त्री-शिक्षा-विरोधियोंकी यह आम शिकायत है कि पढ़ी-लिखी स्त्रियाँ घरेलू बातोंसे इतनी उदासीन हो जाती हैं कि घर-गृहस्थीके समुचित परिचालनके कामकी नहीं रहती। इस शिकायतमें सत्यका अंश ज़रूर है; किन्तु इसका उत्तरदायित्व शिक्षापर नहीं, बरन एक विशेष शिक्षा-प्रणालीपर है। यदि भारतीय आवश्यकताओंके अनुसार उचित ढंगपर शिक्षा दी जाय, तो देशका स्त्री-समाज हमारे लिए एक भार न होकर हमारी उन्नतिका प्रबल सहायक हो सकता है। सन् १९३०-३१ के राष्ट्रीय आन्दोलनके समय हज़ारीबाग जेलमें बैठे हुए पंडित रामनन्दन मिश्र और उनके कुछ साथियोंने इन सब बातोंपर अच्छी तरह विचार करके यह निश्चय कर लिया कि विहारमें एक महिला-विद्यापीठ स्थापित किया जाय, जो लड़कियोंको भारतीय आदर्शोंके अनुसार तथा अपने सामाजिक और गार्हस्थिक उत्तरदायित्वके अनुकूल उच्चकोटिकी शिक्षा देनेका प्रधान केन्द्र बने।

यहाँ यह बतला देना अनुचित न होगा कि

श्री रामनन्दन मिश्र ही सर्वप्रथम व्यक्ति हैं, जिन्होंने बिहारमें परदेके खिलाफ जेहादका झंडा उठाया था। इसके लिए उन्हें घरवालोंका तिरस्कार सहना पड़ा, जाति और समाजमें लांछित होना पड़ा और अनेक प्रकारकी कठिनाइयों और मुसीबतोंका सामना करना पड़ा; किन्तु अन्तमें उन्हें किसी हद तक सफलता भी मिली थी।

मिश्रजीने विद्यापीठकी स्थापनाका निश्चय तो कर लिया; लेकिन उसे पूरा करनेमें अगणित कठिनाइयाँ थीं। शिक्षा-प्रणालीका प्रश्न, स्थानका प्रश्न, एक संस्थाके संचालनका प्रश्न, माता-पिताको अपनी लड़कियोंको विद्यापीठमें पढ़नेके लिए भेजनेका प्रश्न और इन सबसे बड़ा प्रश्न था धनका। मिश्रजीने इन सब कठिनाइयोंके होते हुए अपना काम शुरू कर दिया।

स्थान ऐसा होना चाहिए, जो खुला हुआ हो, बहुत दूर न हो और महँगा भी न हो। अन्तमें इन सब बातोंपर ध्यान रखकर मम्नौलिया ग्राममें जगह चुनी गई। यह जगह लहेरियासराय स्टेशन (दरभंगा शहर) से सिर्फ दो मील दूर है। स्थान खूब खुलासा और स्वच्छ है। यहाँपर मिश्रजीके प्रयत्नसे लड़कियोंके रहने पढ़ने आदिके लिए कुछ झोंपड़े खड़े किये गये। अब छात्राओंके लानेके लिए कोशिश हुई। खैर, दौड़-धूपके बाद एक लड़की भर्ती हुई और कुछ दिनों तक वही अकेली बिहार-महिला-विद्यापीठकी एकमात्र छात्रा रही। कुछ दिन बाद एकसे दो हुई, दो से तीन, तीनसे चार और अब संख्या सवा सौके लगभग है। अब तो कभी-कभी स्थानकी कमीके कारण भर्ती करनेसे इनकार कर देना पड़ता है। इस समय विद्यापीठके स्टाफमें सात सुशिक्षिता वहन बड़ी लगन और त्यागके साथ कार्य कर रही हैं।

छोटी लड़कियोंको 'मान्टसेरी-प्रणाली' के अनुसार शिक्षा दी जाती है। संगीतकी शिक्षाका भी प्रबन्ध है। लखनऊके मेरिस म्यूजिकल कालेजकी पासशुदा एक गुजराती वहन संगीतकी शिक्षा देती हैं। लड़कियोंके स्वास्थ्यपर बहुत काफी ध्यान दिया जाता है। उनका खाना-पीना पुष्टिकारक और रहन-सहन सादा है। शिक्षिकाओं और छात्राओंमें अधिक-से-अधिक बराबरी सरलता और सहज स्वतन्त्रताका व्यवहार वरता जाता है। विद्यापीठमें एक छोटा पुस्तकालय भी है। विद्यापीठका कार्य बढ़ जानेसे इस समय जगहकी कमी है, जिसके लिए कुछ नये मकान शीघ्र ही बनवाना चाहिए।

बाबू राजेन्द्रप्रसाद, सर गणेशदत्त सिंह, आनरेबिल मौलाना अजीज़ साहब, मि० फ्रेस्टन आदिने विद्यापीठका निरीक्षण करके उसके कार्यकी सराहना की है। अजीज़ साहबने लिखा था कि लड़कियोंकी शिक्षाके लिए इसी ढंगकी एक आदर्श संस्थाकी कल्पना बहुत दिनसे उनके दिमागमें थी।

विद्यापीठका काम सार्वजनिक चन्देसे चलता है। पीठके डायरेक्टरोंने यह योजना बनाई है कि १०) वार्षिक चन्दा देनेवाले सज्जन विद्यापीठके ऐसोसियेट माने जायँ। यदि २,००० ऐसोसियेट बन जायँ, तो पीठको २०,०००) वार्षिककी आय हो जायगी, जिससे वह अपने निश्चित ध्येयपर उचित रूपसे अग्रसर हो सकेगा। मिश्रजीके अथक परिश्रम और विद्यापीठके हितपियोंकी सहायतासे ऐसोसिएटकी संख्या १,००० के लगभग पहुँच चुकी है। बिहारमें बड़े-बड़े धनी जमींदारोंकी कमी नहीं है। यदि वे इस ओर थोड़ासा ध्यान देंगे, तो बिहार-महिला-विद्यापीठ शीघ्र ही समूचे प्रान्तमें राष्ट्रीय स्त्री-शिक्षाका सबसे बड़ा केन्द्र बन जायगा।

स्त्रियोंमें संगीत

श्री केशवगणेश डेकने

ललित-कलाएँ मनुष्यकी सभ्यताका अंग हैं। जो जाति ललित-कलाओंमें जितनी अधिक प्रवीण होती है, वह उतनी ही अधिक सभ्य समझी जाती है। सभ्यता—और उसकी प्रतीक ललित-कलाओं—को कुछ लोग एक प्रकारकी कृत्रिमता कहते हैं। सभ्यता और कला कृत्रिम चीज़ हों या न हों, परन्तु हम कह सकते हैं कि ललित-कलाओंमें संगीत एक ऐसी चीज़ है, जो मनुष्यके लिए विलकुल स्वाभाविक है। क्योंकि हम देखते हैं कि संसारकी आदिम और जंगली जातियाँ भी, जो सभ्यतासे कोसों दूर हैं, जिनका कोई साहित्य नहीं है, जिनकी भाषा भी विकसित नहीं है, किसी-न-किसी प्रकारके गान गाती हैं, अच्छा-बुरा किसी-न-किसी तरहका संगीत जानती हैं। वास्तवमें मानव-जीवनको सरस और मधुर बनानेमें संगीतका एक खास स्थान है। कविताका सौन्दर्य स्वर-रचना—संगीत—से है। विना स्वर-रचनाके अच्छी कविता वैसे ही है, जैसे पीतलमें जड़ा हीरा।

आजकल मनुष्यका जीवन बहुत कठिन हो रहा है, और भविष्यके आसार देखनेसे जान पड़ता है कि वह दिन-प्रति-दिन कठिन होता जायगा। जीवन-संग्रामकी कठोरता, आर्थिक चिन्ताओंके बन्धन और सांसारिक घात-प्रतिघातसे तंग आकर मनुष्यका हृदय कुछ मनोरंजन प्राप्त करनेके लिए विकल हो उठता है; वह थियेटर जाता है, सिनेमा देखता है, नाच-तमाशेमें भाग लेता है। मनोरंजनके साधनोंमें संगीत सबसे उत्कृष्ट है, क्योंकि अच्छा संगीत गाने या सुननेसे केवल हृदयमें उत्फुल्लता और ताज़गी ही नहीं आती, वरन चित्तमें एक प्रकारकी शीतल शान्ति उत्पन्न हो जाती है। फिर संगीत एक ऐसा मनोरंजन है, जिसमें कौड़ी भी खर्च नहीं होती। वाद्य-यन्त्रमें एक बार थोड़ेसे पैसे ज़हूर लगते हैं; किन्तु स्वर-संगीत

(Vocal Music) में कुछ भी नहीं लगता। इस मनोरंजनमें किसी दूसरे व्यक्तिकी सहायताकी आवश्यकता भी नहीं। दिन-रात किसी भी समय, किसी भी स्थानमें, आप गाना गाकर मन बहला सकते हैं। सभ्यता और विज्ञानके विकासके साथ-साथ धीरे-धीरे ललित-कलाओंके विषयमें भी लोगोंकी रुचि बढ़ल गई है। कविता और मूर्तिकलाका वह महत्त्व नहीं रहा, जो पहले था। चित्रकलाकी महत्तामें भी फ़र्क आ चुका है; किन्तु संगीतका महत्त्व ज्योंका त्यों है—नहीं, वह और भी बढ़ गया है, क्योंकि उसकी गणना अब विज्ञानमें होने लगी है।

प्रत्येक जीवनमें हमेशा ऐसे अवसर आते रहते हैं, जब मन अपने-आपको प्रकट करनेके लिए अधीर हो उठता है। ऐसे अवसरपर हम देखते हैं कि प्रत्येक व्यक्ति भावातिरेकसे कुछ-न-कुछ गुनगुनाने लगता है। बात यह है कि संगीत मानव-अन्तस्तलके मर्मस्पर्शी भावोंको बड़ी उत्तमतासे प्रकट करता है। जीवनके घात-प्रतिघात, सुख-दुख अनुभूति-सहानुभूति, करुणा-व्यथा, उल्लास-हास आदिको प्रकट करनेके लिए संगीत सबसे स्वाभाविक और उत्तम साधन है। चूँकि स्त्रियाँ स्वभावसे ही कोमल और भावुक होती हैं, इसलिए वे अन्तरतमके भावोंको संगीतके द्वारा जितनी अच्छी तरह प्रकट कर सकती हैं, पुरुष उतनी अच्छी तरह नहीं कर सकते। इसीलिए सब देशों, सब कालों और सब जातियोंमें संगीत स्त्रियोंकी एक खास चीज़ रही है।

हमारे देशके पतनकालमें दुर्भाग्यवश संगीत एक ऐसी जमातके हाथों पहुँच गया था, जिससे लोग उसे हेय और नीच समझने लगे थे। राष्ट्रकी नवीन जाग्रतिके साथ-साथ अब कुछ-कुछ लोग संगीतकी महत्ता और उसके प्रभावको समझने लगे हैं। लेकिन

अभी तक देशमें वास्तविक संगीत-साधना बहुत ही कम है। अंगरेजी फैशनके कुछ धनी लोगोंके ड्राइंग-रूममें पयानों रखा दीख पड़ेगा। लेकिन वह प्रायः अपनेको अप-टू-डेट तहजीबवाफता साबित करनेके लिए ही होता है, नजानेके लिए नहीं ! कुछ साधारण घरोंमें संगीतके नामपर हारमोनियम मिलेगा। बाक़ी तो ईश्वरका नाम है। ज़रूरत इस बातकी है कि हमारी माताओं और बहनोंमें संगीतकी रुचि उत्पन्न की जाय। स्कूलोंमें संगीत सीखना लड़कियोंके लिए—जो आगे चलकर देशकी माताएँ होंगी—अनिवार्य बना दिया जाय। कुछ कन्या-शालाओंमें संगीतके क्लास होते हैं ; किन्तु खेदके साथ कहना पड़ता है कि अब तक स्कूलोंमें संगीतकी जो शिक्षा दी जाती है, वह कहने-भरकी है। उसका वास्तविक मूल्य शून्यसे कुछ अधिक नहीं है। स्कूलकी निकली हुई कितनी देवियाँ ऐसी हैं, जो अच्छे संगीतका परिचय दे सकें ?

हमारे संगीतको सबसे अधिक हानि यदि किसी चीज़ने पहुँचाई है, तो वह हारमोनियम है। यूरोपके इस दोगले वाद्य-यन्त्रने हमारे संगीतका नाश कर दिया है। यूरोपवाले—जो हारमोनियमके पिता हैं—हमारी हारमोनियम-प्रियता देखकर आश्चर्य करते हैं और हमारी मूर्खताका मखौल उड़ाते हैं। मैं अपनी बहनोंसे यही प्रार्थना करूँगा कि वे संगीतके अभ्यासमें हारमोनियमको काममें न लायें। सितार, वीणा, सारंगी, सरोद, जलतरंग आदि देशी वाजोंपर ही अभ्यास करें।

जिन कन्या-शालाओंमें संगीत-शिक्षणका प्रबन्ध है, उनमें भी अच्छे शिक्षकोंका अभाव है। जब तक

कन्या-शालाओंमें संगीतके सच्चे और योग्य शिक्षक न नियुक्त किये जायेंगे, तब तक न तो संगीतकी उन्नति हो सकती है और न तब तक हमारी महिलाएँ संगीतका ठीक-ठीक अभ्यास ही कर सकती हैं। यह बात स्मरण रखनेकी है कि स्वरोंकी शुद्धता रखकर सीखनेसे ही संगीतका सच्चा रस मिलता है और वही लाभदायक होता है।

संगीत एक अत्यन्त व्यापक चीज़ है। उसके प्रत्येक अंगपर अधिकार प्राप्त करना यदि असम्भव नहीं, तो बहुत कठिन ज़रूर है। यही सोचकर बहुतसे पुरुष-स्त्रियाँ उसे सीखनेमें हिचकिचाती हैं। यह उनकी भूल है। यह ज़रूरी नहीं कि प्रत्येक व्यक्ति समूचे संगीतपर अधिकार प्राप्त करे, तभी काम चल सकता हो। संगीतके किसी एक अंशकी जानकारी प्राप्त कर लेनेसे ही संगीतज्ञ रसकी सृष्टि करके अपने हृदयको प्रसन्न कर सकता है और सुननेवालेको भी मोहित कर सकता है।

संगीत केवल एक मनोरंजनका साधन ही नहीं है। सामाजिक विज्ञानमें उसका ऊँचा स्थान है। कलाओंमें उसकी गणना सर्वश्रेष्ठ कलाओंमें है, क्योंकि मूर्तिकार जिस चित्रको कठोर पत्थर गढ़कर प्रकट करता है, कवि जिसे शब्दोंके जादू-भरे जालसे दिखाता है और चित्रकार जिसे तूलिका और रंगोंके द्वारा प्रकट करता है, उसे संगीतज्ञ केवल अपने स्वरके चढ़ाव-उतारसे ही मूर्तिमान कर दिखाता है। साहित्य और धर्ममें भी संगीतने सदा ही अत्यन्त महत्त्वपूर्ण प्रभाव डाला है। अतः हमारी माताओं और बहनोंको इस महान कलासे अवश्य ही परिचित होना चाहिए।

आधुनिक शिक्षा और कन्याएँ

श्रीमती उर्मिला देवी

करीब दो वर्ष पहलेकी बात है। एक हिन्दी-सम्पादक मेरठमें हमारे घर पधारे थे। बातचीतके सिलसिलेमें मैंने कहा—“लड़कियोंकी आधुनिक शिक्षा-प्रणालीके विषयमें आपके क्या विचार हैं?”

उन्होंने एक संक्षिप्त-सा उत्तर दिया—“कुछ भी नहीं।”

मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ। मैंने पूछा—“यह क्यों?”

उन्होंने कहा—“मेरी समझमें यदि लड़कियाँ यह पढ़ाई छोड़कर घरपर चक्की पीसा करें, तो कहीं अच्छा हो।”

सम्पादक महोदय चले गये। बात वहीं समाप्त हो गई; किन्तु उपर्युक्त उत्तरने मेरे मनमें एक समस्या उत्पन्न कर दी। मैंने इस प्रश्नपर गम्भीरतापूर्वक विचार किया, अन्य सज्जनोंसे इस विषयपर विचार परिवर्तन किया, पत्रोंमें उठनेवाले इस विषयके वाद-विवादको पढ़ा और अन्तमें इस निर्णयपर पहुँची कि कन्याओंकी शिक्षाका मुख्य लक्ष्य सुगृहिणी बनना ही होना चाहिए।

जिस प्रकार साधारणतः एक युवकका उद्देश्य अपने माता-पिता और परिवारका लालन-पालन और यथाशक्ति तथा यथासम्भव समाज-सेवा होता है, उसी तरह सुचारु रूपसे गृह-कार्य-सम्पादन करके परिवारको सुखी और समृद्ध बनाना नारी-जीवनका आदर्श है। यदि पुरुष सूर्य है, तो स्त्री शान्तिदायिनी सुधा है, और इन दोनोंके पारस्परिक सहयोग तथा समन्वयसे ही गृहस्थ-जीवन आनन्दप्रद बन सकता है। मैं यह नहीं कहती कि कन्याओंको स्कूलों तथा कालेजोंमें भेजा ही न जाय। निरक्षरता तो वर्तमान अवस्थासे भी कई गुनी अधिक हानिकारक सिद्ध हो चुकी है। मेरे कहनेका अभिप्राय केवल इतना ही है कि जिस नारीपर देश,

समाज और जातिका भविष्य निर्भर है, उसके हृदय, शरीर और मस्तिष्क तीनों ही यथोचित रूपसे विकसित होने चाहिए। इनमें से एककी भी उपेक्षा नारी-जातिको एकांगी बना देगी, और उसका दुष्परिणाम भावी सन्तानको भोगना पड़ेगा।

यह बतलानेकी आवश्यकता नहीं कि हमारी माताओंकी निरक्षरता तथा अज्ञानके कारण देशकी कितनी भयंकर हानि हो रही है; पर दुःखकी बात तो यह है कि नवीन शिक्षित मातृमण्डल भी सन्तानको उचित शिक्षा और बुद्धिबल देनेमें असमर्थ प्रतीत हो रहा है। बीस-बीस और पचीस-पचीस वर्षकी आयु तक विश्वविद्यालयोंकी उच्च परीक्षाएँ पास कर लेनेके बाद जब लड़कियाँ अपना संसार बसाने बैठती हैं, तो वे इस नवीन क्षेत्रमें अपनेको विलकुल अनभिज्ञ पाती हैं। पढ़ाई समाप्त करनेके समय तक उनके स्वास्थ्य तथा शक्तिका इतना अधिक हास हो चुका होता है कि कोई नई बात सीखनेका न उनमें उत्साह रहता है और न दम। उनका शरीर ही साथ नहीं देता। जब वे देखती हैं कि संसारका नग्न सत्य उनके किताबी ज्ञानसे इतना अधिक भिन्न है, तो वे हतबुद्धि हो जाती हैं और गृहस्थ-जीवनसे एक प्रकारकी घृणाके भाव उनके मनमें उत्पन्न हो जाते हैं। इसका एक दुष्परिणाम और भी होता है, वह यह कि इन सुशिक्षिता स्त्रियोंके कष्टमय गृहस्थ-जीवनको देखकर अनेकों पढ़ी-लिखी लड़कियाँ विवाहसे ही मुँह मोड़ लेती हैं। इस श्रेणीकी कन्याओंका जीवन और भी अन्धकारपूर्ण हो जाता है। धीरे-धीरे इस तथ्यको वे सभी लोग, जिन्हें समाजके भविष्यकी चिन्ता है, अनुभव करने लगे हैं।

हमारी पाठ्य-प्रणाली कितनी दूषित है, इसका उल्लेख करना एक पुरानी बातको दुहराना होगा। इस

प्रकारकी शिकायत करते-करते बहुत दिन हो गये । ज़रूरत इस बातकी है कि देशके शिक्षा-विशेषज्ञ क्रियात्मक रूपमें कुछ कदम आगे बढ़ावें । हमें अपने विश्वविद्यालयोंमें दी जानेवाली शिक्षाका रूप बदलना होगा । स्कूलोंमें दसवीं श्रेणी तक दी जानेवाली शिक्षासे हमारा उतना अधिक मतभेद नहीं है,—यद्यपि उसमें भी सुधारकी काफी गुंजाइश है,—पर उसके बादकी शिक्षामें तो बहुत-कुछ परिवर्तन होने चाहिए । भाषा, भूगोल, व्याकरण आदिकी पढ़ाई तो कुछ-कुछ ठीक भी हो रही है ; पर हमारे स्कूलोंमें पढ़ाई जानेवाली इतिहासकी पुस्तकोंका दृष्टिकोण ठीक नहीं है । इतिहासकी पुस्तक राष्ट्रीय दृष्टिसे लिखी जानी चाहिए, जिससे वे राष्ट्रीय भावोंको पुष्ट करें । गणितकी भी पढ़ाईमें संशोधनकी आवश्यकता है । जमा, बाकी, गुणा, भाग आदि तो आगे चलकर गृह-प्रबन्धके समय काम आ सकते हैं ; पर ज्योमेट्री और अलजबरा (रेखागणित तथा बीजगणित) तो व्यर्थ ही सिद्ध होंगे । कई विश्वविद्यालयोंमें इनके स्थानपर डोमेस्टिक साइन्स (गृह-विज्ञान), होम नर्सिंग आदि विषय रख दिये गये हैं, जिसमें कन्याएँ साधारणतया रोगीकी देखरेख, भोजन बनाना, सिलाई इत्यादिका काम सीखती हैं । जिन महाविद्यालयोंमें मैट्रिक परीक्षामें इन विषयोंका प्रबन्ध किया गया है, वहाँ अधिकांश कन्याएँ रेखागणित और बीजगणितके बदले उन्हीं विषयोंको अपना रही हैं । किसी-किसी प्रान्तमें पाँचवीं या छठवीं श्रेणीसे स्वास्थ्य-विज्ञान भी पढ़ाया जाता है । पंजाबके स्कूलोंमें सरल रीतिपर लिखी हुई अनेक पुस्तकें इस विषयकी पढ़ाई जाती हैं । यद्यपि इन पुस्तकोंसे लड़कियोंको अनेक आवश्यक बातोंका ज्ञान हो जाता है, तथापि जितने ज्ञानकी उन्हें आवश्यकता है, उतना नहीं हो पाता । स्वास्थ्य-विज्ञान जितना पुरुषोंके लिए आवश्यक है, उससे कहीं अधिक स्त्रियोंके लिए ।

और भी कई विषय ऐसे हैं, जो स्त्रियोंके लिए अत्यन्त उपयोगी हैं—उदाहरणार्थ, चित्रकला, संगीत,

नृत्य, कपड़े धोना, रँगना आदि । प्राइवेट संस्थाओंमें कहीं-कहीं इन विषयोंमें से किसी-किसीकी पढ़ाई होती भी है ; किन्तु धनाभावसे ये संस्थाएँ इन विषयोंके अध्यापनका उचित प्रबन्ध नहीं कर पातीं । मेरी समझमें मैट्रिक तक उपर्युक्त विषयोंका आरम्भिक ज्ञान तो लड़कियोंको ज़रूर करा देना चाहिए । भोजन बनाना भी अब कुछ स्कूलोंमें सिखाया जाने लगा है ; पर इस विषयकी जो आध्यापिकाएँ रखी जाती हैं, वे स्वयं पाकशास्त्रकी अच्छी ज्ञाता नहीं होतीं । ठीक तौरपर मिठाई इत्यादि बनाना वे जानती ही नहीं ।

कन्याओंकी रुचिका भी खयाल रखना चाहिए । पाठ्य-विषयोंमें चुनाव करनेका अधिकार उन्हें होना चाहिए, इसलिए अधिक-से-अधिक वैकल्पिक विषय रखे जाने चाहिए ।

मैट्रिक पास कन्याएँ जहाँ किसी विशेष विषयको लेकर पाँच-छै वर्ष तक अध्ययन करनेके बाद पूर्ण दक्षता प्राप्त कर सकें, ऐसे कालेजोंका भी प्रबन्ध होना चाहिए । आवश्यकता है ऐसे महाविद्यालयोंकी, जहाँ कन्याओंको राजनीति, देशी-विदेशी साहित्य, संगीत आदिकी शिक्षा दी जा सके । आजकल हमें स्कूलोंमें पढ़ानेके लिए पुरुष संगीत शिक्षक रखने पड़ते हैं ; पर जब महाविद्यालयोंसे संगीताचार्या निकलेंगी, तो वे उनकी जगहपर नियुक्त की जा सकेंगी । चित्रकलाका ज्ञान तो कन्याओंके लिए निजी वस्तु होना चाहिए । नृत्यकला भी स्त्रियोंके लिए रुचिकर और स्वास्थ्यप्रद विषय हो सकता है । सुना है कि कई एक क्लबोंमें शौकीन स्त्रियाँ पुरुषों द्वारा इस विषयकी शिक्षा प्राप्त करने लगी हैं ।

कपड़े सीना एक ऐसा विषय है कि यदि उसमें पूर्ण दक्षता प्राप्त कर ली जाय, तो उसमें न केवल अपनी वचत की जा सकती है, बल्कि कुछ धनोपार्जन भी किया जा सकता है । आज हमें अपने कपड़ोंपर साधारण-से-साधारण फूल और पत्तियाँ काटनेके लिए दूसरोंका मुँह ताकना पड़ता है । रेशमी या रंगीन

साड़ी धोनेके लिए हमें लौखड़ीवालोंको काफी पैसे देने पड़ते हैं। क्या यह कोई ऐसी विद्या है, जिसे लड़कियाँ न सीख सकें ?

भारतमें अच्छे-से-अच्छे फल पाये जाते हैं ; पर आवश्यकता पड़नेपर हमें डिब्बेमें सुरक्षित फल विदेशोंसे खरीदने पड़ते हैं। हर तरहके अचार और मुरब्बे बनाकर उन्हें वर्षों तक सुरक्षित रखना भी एक कला है।

नर्सिंग (शुश्रूषा) की लाइनको ही लीजिए। किसके यहाँ रोगके आक्रमण नहीं होता ? हमारे घरोंमें मरीजोंकी उचित तीमारदारी नहीं की जा सकती, इस बातको कौन नहीं जानता ? धनी लोग तो रुपये खर्च करके अस्पतालोंसे नर्सोंको बुला लेते हैं ; पर साधारण गृहस्थ लोग क्या करें ? यदि पत्नी, पुत्री या बहन शुश्रूषा-कार्यमें दक्ष हो, तो वह अपनी प्रेमपूर्ण सेवासे ही आधा रोग भगा सकती है। पर हम लोगोंकी अकलमन्दीपर गौर कीजिए कि हमने नर्सिंगको नीच कार्य समझ रखा है और इसे अपने घरोंकी लड़कियोंको नहीं सीखने देते ! पर वास्तवमें सच्चे तप और त्यागसे की गई नर्सिंग या शुश्रूषा एक अमूल्य वस्तु है।

सन्तानको स्वस्थ रखना कोई आसान काम नहीं। जब तक माताको स्वास्थ्य-विज्ञानका व्यावहारिक ज्ञान छात्रावस्थामें नहीं कराया जायगा, तब तक वे फूहड़ ही बनी रहेंगी, और इसका नतीजा उनकी भावी सन्तानको भोगना पड़ेगा। किसीने ठीक ही कहा है कि आजकल बच्चे पैदा नहीं किये जाते, बल्कि हो जाते हैं ; पाले नहीं जाते, वरन् भाग्यवश पल जाते हैं। मरियल सन्तति मला देशका क्या कल्याण कर सकती है ? मेडिकल लाइन या डाक्टरोंमें भी हमारी बहनोंके जानेकी आवश्यकता है।

यदि हम सोचनेके लिए बैठें, तो इसी तरहके वीसियों मज्जमून हमारे सामने आवेंगे। इन विषयोंके सीखनेसे गृह-कार्य तो सुन्दर ढंगपर होगा ही और साथ-ही-साथ स्त्रियाँ कुछ धनोपार्जन भी कर सकेंगी। मैं तो यहाँ तक कहूँगी कि तब तक किसी कन्याको

विवाह ही न करना चाहिए, जब तक उसमें इतनी योग्यता न आ जाय कि वह अपना खाली समय उपयोगमें ला सके, आवश्यकता पड़नेपर कुटुम्बकी सहायता कर सके और कठिन समयमें स्वाधीनतापूर्वक अपना जीवन यापन कर सके। हमारे देशमें आमदनीका जो हाल है, उसे सब जानते ही हैं। ऐसी अवस्थामें किसी खरचीली पत्नीका स्वागत वह व्यक्ति कैसे कर सकता है, जो ५० या ६०) महीने कमाता हो ? इतनी आमदनीमें माता, पिता, पत्नी और सन्तानका पालन करके आनन्दसे जीवन व्यतीत करना यदि असम्भव नहीं, तो अत्यन्त कठिन अवश्य है। फिर कितने युवक ऐसे हैं, जिन्हें ५० या ६०) की मासिक आय भी हो ?

आजके युवक और उनके माता-पिता उन्हीं गृह-देवियोंका स्वागत कर सकते हैं, जो सुचारु रूपसे गृह-कार्योंका सम्पादन करती हुई थोड़ी आमदनीमें अपने घरको सुखधाम बना सकें। घरमें और घरसे बाहर भी पतिकी सहधर्मिणी बनकर परस्पर प्रेम-बन्धनको सुदृढ़ बनाना ही भारतीय नारीका आदर्श है। यद्यपि मैंने इस लेखमें घरके कर्तव्योंपर ही जोर दिया है, तथापि इसका अभिप्राय यह नहीं है कि मैं बाहरके कर्तव्योंको उपेक्षाकी दृष्टिसे देखती हूँ। घर और बाहरके कर्तव्योंमें उचित सामंजस्य होना चाहिए।

कवीन्द्र श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुरने श्री सरोजनलिनी दत्तके जीवन-चरितकी भूमिकामें लिखा है—“इस ज़मानेमें जो नारी एकान्त रूपसे केवल गृहिणी ही हैं, वे हमारी आदर्श नहीं—घर और बाहर सर्वत्र ही जो कल्याणी हैं, वे ही आदर्श हैं। जिनका जीवन सिर्फ हमेशासे चली आई प्रान्तीय प्रथा और संस्कारोंके साँचेमें ढला हुआ है, वे आदर्श नहीं हैं ; बल्कि जिनमें विशाल विश्वके ज्ञान और भावकी विचित्र धाराएँ गभीर और सुन्दर रूपसे मिली हैं, वे ही आदर्श नारी हैं।”

पत्नी या पति कैसा हो ?

[हमने कुछ नवयुवक लेखकोंसे प्रश्न किया था कि वे अपनी जीवन-संगिनीके लिए कैसी स्त्री चाहते हैं ? इसी प्रकार कुछ लेखिकाओंसे प्रश्न किया गया था कि वे अपने जीवन-साथके लिए कैसा पुरुष पसन्द करेंगी ? इन प्रश्नोंका उत्तर दो लेखकों और एक लेखिकाने दिया है, जो यहाँ प्रकाशित किया जाता है । —सम्पादक]

मैं कैसी स्त्री चाहता हूँ ?

डा० ए० लतीफ

मैं कैसी स्त्री चाहता हूँ, इसका जवाब आसान नहीं है । क्योंकि किसीको इसका ठीक-ठीक उत्तर देना हो, तो पहले इसी बातका निर्णय करना होगा कि वह विशेष 'मैं' स्त्री चाहता भी है या नहीं । और फिर यह भी सोचनेकी बात है कि कल्पनाकी उड़ानमें जैसी स्त्रीकी चाहना की जाती है, क्या वास्तविक जीवनमें भी वैसी ही स्त्री चाही जा सकती है, या मिल सकती है ?

इतने बड़े सवालका समुचित उत्तर देनेका यहाँ न समय है, न स्थान । अधिक-से-अधिक इतना किया जा सकता है कि एक विचार-पद्धतिका संकेत-भर दे दिया जाय । उससे आगे प्रत्येक व्यक्तिके जीवनमें वह परिस्थिति आती है, जहाँ वह प्रार्थना करता है—'हे देव ! जैसी स्त्री मैं चाहता हूँ (लेकिन स्वयं नहीं जानता कि कैसी चाहता हूँ), वैसी ही मुझे मिले !'

× × ×

वातके दो पहलू होते हैं । जब दामाद अपनी स्त्रीके वशमें होता है, तब कन्या देवी जान पड़ती है और दामाद साधु पुरुष ; लेकिन जब पुत्र अपनी स्त्रीके वशमें होता है, तब बच्चा डायन हो जाती है और पुत्र नालायक । प्रत्येक पुरुष दो प्रकारकी स्त्रियाँ चाहता है—एक तरहकी औरोंके लिए, दूसरी तरहकी अपने लिए ।

सौन्दर्यकी बात तो जाने दीजिए । प्रत्येक पुरुष चाहता है कि सब स्त्रियाँ सुन्दर हों, यत्कि कुछ तो शायद यह भी चाहते हैं कि दूसरोंकी स्त्रियाँ अपनी स्त्रीसे कुछ अधिक ही सुन्दर हों (लेकिन दूसरे पुरुष उनसे कदापि सुन्दर न हों !), क्योंकि जब आँखें हैं, तो उनका इस्तेमाल तो होगा ही, और

जब उनका इस्तेमाल होगा ही, तब उन्हें सुन्दर चीज़ ही दीखनी चाहिए । (और यदि दूसरे पुरुष सुन्दर होंगे, तो अपनी स्त्रीका शील कैसे निभेगा ?)

दूसरोंकी स्त्रियाँ मिलनसार होनी चाहिए । अतिथिका सत्कार करनेमें दक्ष और कर्तव्यनिष्ठ यहाँ तक कि मेहमानदारी निभानेमें उन्हें अपने पतिको कष्ट देनेके लिए भी तैयार रहना चाहिए ।

दूसरोंकी स्त्रियोंमें वहिर्जगतका आकर्षण होना चाहिए—सैरमें, पिकनिक-पार्टियोंमें, सिनेमा-तमाशोंमें उन्हें रुचि होनी ज़रूरी है, क्योंकि इनके बिना व्यक्तित्वका विकास नहीं हो सकता और स्त्रियाँ अब तक गुलाम इसीलिए हैं कि उनका व्यक्तित्व विकसित नहीं हुआ ।

दूसरोंकी स्त्रियोंमें गुणग्राहकता होनी चाहिए और दूसरोंकी त्रुटियोंके प्रति उदारता । जिसमें जो गुण हो, उसे पहचानकर उसका समुचित आदर करनेके लिए उन्हें तैयार रहना चाहिए और पहचानके मामलेमें उन्हें पक्षपातपूर्ण या संकुचित नहीं होना चाहिए—अपने पतिको सर्वगुण-निधान मानकर आँखें बन्द नहीं कर लेनी चाहिए ।

दूसरोंकी स्त्रियोंको 'माडर्न' (आधुनिक) होना चाहिए, प्रगतिशील होना चाहिए । आजकलके ज़मानेमें घूँघट-पर्दा जैसी व्यर्थ चीज़ोंका उन्हें कार्यात्मक विरोध तो करना ही चाहिए, इसके अलावा विवाहित जीवनका जो 'घरेलू' आदर्श हमारे पुरखा मानते थे, उसका भी उन्हें खण्डन करना चाहिए । जो स्त्री समयके साथ नहीं चल सकती, उसका जीवन ही क्या ?

× × ×

लेकिन अपनी स्त्री—डैटिंग ! अपनी स्त्रीमें एकाग्रता और संयमका गुण होना चाहिए । उसमें चमत्ता होनी चाहिए कि सौ काम छोड़कर भी पतिकी ओर ध्यान दे सके (और दे) ।

जीवनकी भीत ही है कुटुम्ब, उसकी रक्षा करना स्त्रीका परम कर्तव्य है। इसके लिए सैर-सपाटे और खेल-तमाशोंका त्याग करना पड़े, तो उसे चाहिए कि प्रसन्नतासे उन्हें तिलांजलि दे दे और इसे वेगार न समझकर अपना गौरव जाने, क्योंकि इसके द्वारा वह जगतकी पालनेवाली, ईश्वरकी समक्ष, हो जाती है।

अपनी स्त्रीमें विवेक आवश्यक है। यह मानी हुई बात है—आजकलका विज्ञान भी यही कहता है—कि स्त्री स्वभावतः रुढ़िवादी है, पुरुष क्रान्तिवादी। स्थायित्व स्त्रीकी मुख्य देन है। उसीका काम है कि वह जीवनको एकदम ड़ाँवाडोल नहीं हो जाने देती, हरएक लहरमें स्वयं नहीं वह जाती। नयेपनके आकर्षणमें पड़कर उसे अपना सनातन रूप नहीं भूल जाना चाहिए। जो नया है, वह कल पुराना भी तो हो जायगा; लेकिन जो प्राचीन है, वह चिरन्तन है। 'मार्डन' होनेका तो आजकल एक रोग हो गया है, जिससे खुदा बचाये !

और अपनी स्त्रीको सादगी-पसन्द होना चाहिए। सिलक-सैटिन, जॉर्जेट-क्रिमखाद्य, ज़री-गोटा, पाउडर-क्रीम, वेंगल-ब्रेसलेट—जिसका जीवनमें इन्हींमें रमा हो, उसकी छुद्र आत्मा क्या कर सकेगी ? आर्थिक दृष्टिसे भी देखा जाय, तो यह पूँजीको ऐसी जगह डाल देना है, जहाँ मूलधन तो नष्ट होता ही है, सूद भी नहीं प्राप्त होता। और कौन यह नहीं जानता कि फैशनका मोह कितना भयंकर है ? दूसरोंकी स्त्रियाँ फैशनेबल होती हैं—तो हों, बलासे !

× × ×

लेकिन ये सब ग्राम—जेनरल—बातें हैं। इस प्रकारकी बातें कोई भी पुरुष स्त्रियोंके वारेमें कह सकता है। जहाँ व्यक्तिगत मेरा प्रश्न आता है, वहाँ मैं अपने लिए एक बड़ी भारी कैद (Reservation) रखना चाहता हूँ।

किसी भी स्त्रीको—चाहे कैसी भी स्त्रीको—चाहनेकी प्रकांड वेवकूफी जब मैं कहूँगा, तब उसे अखबारमें छपाने नहीं जाऊँगा। ('विशाल भारत' जैसे अखबारमें भी नहीं, यद्यपि उसके सम्पादक मेरे रज़ीक हैं और इस मामलेमें बहुत सहानुभूति रख सकते हैं।) अखबारमें यदि कुछ घोषित कर सकता हूँ, तो यही कि सिद्धान्ततः मैं इस बातको ही गलत समझता हूँ कि

कोई पुरुष किसी स्त्रीको चाहे। दुनियाकी तमाम वेवकूफियोंकी यह जड़ है। इसके अलावा चाहनेका काम प्रकृतिने तो मादाके हँ सिपुर्द किया है। हाँ, स्त्री द्वारा चाहा जाना दूसरी बात है। कोई यह पूछे कि कैसी स्त्री द्वारा चाहा जाना में पसन्द करूँगा, तब दो-एक बातें मैं कह सकता हूँ। सुनिये :—

प्रकृतिने आरम्भमें मानवेतर प्राणियोंको एकव्रती (एक समयमें केवल एक ही पत्नी रखनेवाला, monogamous) बनाया था; लेकिन जब प्रकृतिकी उत्पत्तिशीलताने उनके आगे जीवन-संग्रामकी—अस्तित्वके लिए संघर्षकी—समस्या खड़ी कर दी, तब सहृदयता और क्रिफायत (Biological economy) के कारण वे बहुविवाही दलोंमें रहने लगे। उदाहरणार्थ, वन्दरोंके गिरोहमें एक वानरराज ही सारे 'हरम'का पति होता है, बाक़ी वन्दर 'दरबारी' होते हैं, जो इस ताकमें रहते हैं कि वानरराज कब कमज़ोर हों और कब उन्हें मौक़ा मिले। एकको हटाकर दूसरा वही राजा बनता है, जो अपने पराक्रमसे बाक़ी सबको मार भगाये—हरा दे। तब यह दूसरा राजा उसी 'हरम'का पति बन जाता है।

इसके विपरीत मनुष्य प्रकृतिसे बहुविवाही (Polygamous) है और आर्थिक दबावके कारण मजबूर होकर ही एकव्रती बनकर रहने लगा है। यहाँ नैतिकताका प्रश्न नहीं है, क्योंकि नैतिकता तो हमारी जीव - प्रकृति - सम्बन्धी—biological—प्रेरणाओंके पीछे चलनेवाली चीज़ है।

पुरुषता-पुरुषसे एकव्रती होकर रहनेपर भी पुरुष अपनी बहुविवाही वृत्तियोंको एकदम दबा नहीं सका है। वह उन्हें दूसरे तरीकोंसे शान्त करना चाहता है। फलस्वरूप अनेक प्रकारके खिंचाव पैदा हो जाते हैं, एक संघर्ष सा उठ खड़ा होता है, जो कभी-कभी विनाशकारी भी हो सकता है। इसलिए स्त्रीको ऐसा होना चाहिए (यानी मैं ऐसी स्त्री द्वारा चाहा जाना पसन्द करूँगा) जो एक ही में अनेक व्यक्तित्व रख सके, विभिन्न अवसरोंपर जिसके विभिन्न रूप और विभिन्न पहलू हों। और इस प्रकार जो स्वयं एक होकर भी पुरुषकी बहुविवाही वृत्तिकी शान्त कर सके।

प्रकृतिका काम तो वहीं समाप्त हो जाता है, जहाँ स्त्रीको मातृत्व मिल जाता है (आज भी लोग स्त्रीको 'अमुककी मा' कहकर पुकारते हैं) ; लेकिन स्त्रीका काम वहाँ समाप्त नहीं होता । स्त्रीको कमसे-कम इतने रूप धारण करनेमें तो समर्थ होना ही चाहिए—(१) बच्चोंकी माता, (२) बौद्धिक सहयोगी और सखी, (३) उद्यमशील और पराक्रमी शिकारीकी साथिन (यानी जो जीवन-संग्राममें लड़ सके, लड़नेको उत्साहित कर सके और संघर्षमें जय की हुई वस्तुकी निधि हो सके), (४) नुमाइशी कलाकी कोमल वस्तु (जिसे यत्नके साथ सम्हालकर रखा), (५) खिलौना (जिसके साथ खेलकर मनोरंजन लिया जा सके) और (६) रक्षिका (वह मजबूत लकड़ी, जिसपर वक्त पड़नेपर भुका जा सके, जो सम्हाले) ।

यह न समझना चाहिए कि इसमें स्त्रीपर कोई ऐसा विशेष बोझ डाला जा रहा है, जिससे पुरुष मुक्त है । स्त्रीके ये विभिन्न रूप वास्तवमें उन विभिन्न रूपोंके प्रतीक हैं, जो पुरुष अपनेमें पाता है । पुरुष अपने माता-पिता, भाई-बहनको छोड़कर जिसे अपनाता है, उसमें इतनी सामर्थ्य होनी चाहिए कि वह उसकी पूरक हो—उसकी कमियोंको पूरा कर सके ।

स्त्री स्वभावतया रुढ़िवादी है, जीवनको स्थायित्व देती है । पुरुष स्वभावतया क्रान्तिवादी है, विकासकी ओर बढ़ता है । लेकिन प्रत्येक पुरुषमें स्त्रीत्वका कुछ अंश होता है (जो अनेक प्रकार प्रकट हो सकता है), तब प्रत्येक स्त्रीमें भी पौरुषका कुछ अंश होना चाहिए । लेकिन कैसा पौरुष ? लड़ना भी तो पुरुषका गुण है ! स्त्रीमें पौरुषका सर्वश्रेष्ठ रूप वह है, जो उसे उदार बनाता है, जो उसे सामर्थ्य देता है कि वह विकास और परिवर्तनके प्रति सहनशील हो सके और उसे जीवनमें घटित करनेमें पुरुषकी सहायक हो सके । प्रकृतिसे वह रुढ़िवादी है ; लेकिन बुद्धिसे वह क्रान्तिवादी हो सकती है । पुरुष आगे बढ़ जाता है ; लेकिन उस नई स्थितिको कायम रखना स्त्रीका काम है, ताकि पुरुष फिर पीछे न खिसक आये । पुरुषमें इस प्रकारकी व्यावहारिक कार्यकुशलता (Practical ability) नहीं होती ; उसकी कमी स्त्री ही पूरी कर सकती है ।

स्त्रियोंमें हासवृत्ति (humour) नहीं होती । इस आक्षेपपर पाठिकाओंको सख्त आपत्ति हो सकती है ; लेकिन इसके अनेक प्रमाण हैं । मैं एक ही देता हूँ । संसारके साहित्यमें कोई हास्य-लेखिका नहीं दीख पड़ती । हाज़िरजवाबी उनमें रही है । एक पैना और कभी-कभी विप्रेला चातुर्य (wit) उनमें बहुत मिलता है ; लेकिन सच्चा हास्य कभी नहीं । यह शायद इसीलिए है कि जीवनका सबसे गम्भीर उत्तरदायित्व उनपर है—जातिको कायम रखना—प्रजनन । पुरुषको गम्भीर sex समझा जाता है ; लेकिन उसमें तटस्थ होनेकी योग्यता उसे हास्यप्रवृत्ति देती है । स्त्रियोंमें तटस्थ होनेकी योग्यता नहीं होती (मौका भी नहीं होता, यह ठीक है) । यदि मैं कभी यह गवारा कहूँ कि किसी स्त्रीकी चाहना मुझमें हो, तो ऐसी स्त्री चाहूँगा, जिसमें हास्यवृत्ति काफी मात्रामें हो, जो संसारपर भी हँस सके, अपनेपर भी हँस सके और हाँ, मुझपर भी हँस सके—यद्यपि मुझपर बहुत अधिक नहीं !

× × ×

लिख तो मैं गया ; लेकिन अब सोच रहा हूँ कि इससे होगा क्या ? शायद मेरी गति उस आदमी-सी ही होगी, जो फाँसीके खिलाफ प्रचार किया करता था । वह सदा कहता था कि तलवारसे मरना ठीक, ज़हर खाकर मरना ठीक, डूबकर मरना ठीक, विजलीसे मरना ठीक ; लेकिन फाँसी ! यह किसी राक्षसकी सूझ है । एक दिन उसे एक ज़ाद मिल गया । उसकी बात सुनकर ज़ादको क्रोध हो आया । ज़ादने कहा—“क्यों वे, तू मेरे निस्पृह आत्म-त्यागकी कद्र न करके उलटा मेरे व्यवसायके विरुद्ध प्रचार करता है ?” और प्रचारकको एक चाँटा रसीद किया । प्रचारकने आवेशमें आकर छुरा निकाला और उसकी छातीमें भोंक दिया । उसके बाद, जानते हैं प्रचारकका क्या हुआ ? उसे दी गई—फाँसी !

लेकिन खैर । जो आता है, सो आये । अभी तो मैं अपने मनकी कह लूँ और खुश हो लूँ कि मैं अभी तक विवाहित नहीं हूँ, नहीं तो यह बात भी न कह पाता—ऐसा कुछ कहना बेमौत मरना होता—बल्कि उससे भी बदतर, बेमौत जीना होता ।

मैं कैसी पत्नी चाहता हूँ ?

श्री चन्द्रगुप्त विद्यालंकार

मैं किसीका 'पति', 'स्वामी' या 'भर्ता' नहीं बनना चाहता।

किसीका—विशेषकर किसी नारीका—'मालिक' बनकर रहनेकी इच्छा भी मुझमें बिल्कुल नहीं है। मुझे 'आधे' और 'दुर्बल' अंगकी 'अवला' भी नहीं चाहिए। किसीके शासनके नीचे रहना मैं सहन नहीं करता और किसीपर शासन करना मुझे पसन्द नहीं; परन्तु फिर भी मैं कहता हूँ कि मुझे विवाहसे चिढ़ नहीं है !

दुनियाकी इस लम्बी राहपर मुझसे मैं अकेला सफ़र कर रहा हूँ। न-जाने कबसे। और न-जाने कब तक यह सफ़र जारी रहेगा। ज़िन्दगीकी इस राहके ऊपरका आस्मान कभी-कभी बादलोंसे घिर जाता है। क्योंकि साथ-साथ अन्धड़ चलने लगता है—पूरा तूफ़ान। मेरा जो सहसा घबरा उठता है, और तब इच्छा होती है कि मेरा कोई साथी होता। कोई ऐसा साथी होता, जिसके कोमल हृदयकी गहरी सहायुभूति पाकर मैं इस अज्ञात राहके बड़े-से-बड़े तूफ़ानोंकी भी परवा न करता।

मुझे मालूम है कि इस तरहका साथी बननेकी सर्वश्रेष्ठ सामर्थ्य नारीमें है, और यह देखकर मुझे होता है कि नारीकी इस बहुमूल्य सामर्थ्यकी उपेक्षा करके पुरुषने उसे अपनी दासी और जन्म-भरके लिए परावलम्बी बनना क्यों पसन्द किया ?

संक्षेपमें, पत्नीके रूपमें मैं कोई पालतू प्राणी या दासी नहीं चाहता। मुझे एक अनुभूतिशील जीवन-संगिनी चाहिए।

पति-निर्वाचन

कुमारी अनामिका देवी

मनुष्यके जीवनमें ऐसा एक समय आता है, जब वह हृदयकी सूक्ष्मतम अनुभूतिसे कहना चाहता है—कविको भाषामें—'For God's sake hold your tongue and let me love.' ठीक इसी समय भारतीय नारीके जीवनमें विवाह अनिवार्य हो जाता है। उसे एक ऐसे आश्रयकी ज़रूरत होती है, जिसे केन्द्र बनाकर नारी अपने नारीत्वकी सम्पूर्ण इच्छा-अभिलाषाओंको पूर्णरूपसे प्राप्त करेगी, उसका जीवन सार्थकतासे भर उठेगा, और वह है विवाह।

उसे एक ऐसा साथी चाहिए ही—सामयिक खामखयाली दूर करनेके लिए नहीं, बल्कि जीवन-भर साथ देनेवाला साथी—जिसके चरणोंमें वह नारीत्वका सर्वस्व लुटाकर जीवनको सार्थक कर सके, प्रेमका अर्थ लगाकर उसकी पूजा कर सके।

ऐसा जो जीवन-साथी या पति है, वही नारीकी सम्पूर्ण अभिलाषाओंका केन्द्र है। वह पुरुष ऐसा होना चाहिए, जिसपर वह पूर्ण रूपसे श्रद्धा कर सके। पुरुषपर श्रद्धा करनेका तात्पर्य है उसके पुरुषत्व और वीरतापर श्रद्धा करना।

धन ? पुरुषके पास धनकी अधिकता मैं नहीं चाहती। कार्यहीन, मन्थरगतिसे चलनेवाला समयको आलस और फालतू कामोंमें बिताकर जो अपने धन-दौलतके बलपर शामको सज-धजकर अपनी जीवन-संगिनीको लेकर मोटरोंमें भ्रमण करना पसन्द करते हैं। सचमुच उनके प्रति मेरा कोई आकर्षण नहीं, बल्कि उन्हें तो मैं अनुकम्पा और सहायुभूतिका पात्र समझती हूँ।

बड़े-आदमी मैंने बहुत देखे हैं; परन्तु उन्हें मैं वरण करना नहीं चाहती। मैं चाहती हूँ बड़े मनुष्यको, जिसकी आँखोंमें स्वप्न हो, हृदयमें बल हो, चरित्रमें अपूर्व उज्ज्वलता हो, उसके एक हाथमें आशा और दूसरे हाथमें आशीर्वाद हो, मनुष्यमात्रसे उसकी निःस्वार्थ सहायुभूति हो, नारीको वह उसी तरह चाहे, जिस तरह अपनेको और औरोंको।

उसीके आदर्शको मैं सत्य समझती हूँ, जो किसी तरह टिके रहनेकी ही ज़िन्दा रहना नहीं समझता। और वह पुरुष जो आदर्श जीवनके लिए जीवनके युद्धक्षेत्रमें क्लान्तिहीन परिश्रम करनेपर भी भुँभुलाहट नहीं आने देता, अपनेको खत्म नहीं कर देता, हर चीज़पर श्रद्धा नहीं खो बैठता, बल्कि दूने उत्साहसे युद्ध करते हुए आगे बढ़ता चला जाता है, और उन कर्ममय क्षणोंमें जो अपनी जीवन-संगिनीको उपेक्षाके साथ भूलता नहीं, बल्कि उसे भी अपने कार्यक्षेत्रमें अपने साथ लेकर आगे बढ़ता है—उसीको मैं श्रद्धाके साथ पति-रूपमें वरण कर सकती हूँ।

हाँ, और एक बात पतिमें होनी चाहिए, जो नारी-जीवनके लिए बहुत ही ज़रूरी है। पतिके मनमें सरसता और सुरसिकताका चोत ऐसा बहता रहना चाहिए, जिसे जीवनकी कोई भी बाधा रोक न सके। द्वन्द्व और कोलाहलमय जीवन-यात्रामें हास्य-रसिकताकी बहुत ज़्यादा ज़रूरत है। हलके मनकी स्त्रियाँ ज़रा रसिकताकी ज़्यादा भक्त होती हैं। और

पतिके द्वारा यदि उनकी उस सरसताका आदर न हुआ, तो उससे उन्हें आघात लगता है। इसलिए, बाहरके द्वन्द्व, कोलाहल और कर्ममयतामें भी जिस पुरुषके मनकी हँसी सूखती नहीं, उसे स्त्रियाँ अधिक पसन्द करती हैं।

छोटी-मोटी और भी बहुत-सी आकांक्षाएँ हैं, जो स्त्रीके मनमें होती हैं; परन्तु उन सबपर प्रकाश नहीं डाला जा सकता। मैं अपने पति-निर्वाचनके विषयको रवीन्द्रनाथकी भाषामें कुछ कहकर पूरा कर देना चाहती हूँ। मैं उसीको श्रद्धाके साथ पति-रूपमें वरण कर सकती हूँ, जो मुझे लक्ष्य करके हृदयके स्वरमें यह गा सके:—

“हम दोनों मुग्ध-ललित अश्रु-विगलित गीतांसे
धरणीपर स्वर्गके खिलौने नहीं बनाना चाहते।

प्रिये, पंचशरोंकी वेदना और माधुरीसे
हम सुहाग - रात नहीं रचना चाहते।
भाग्यके चरणोंमें दुर्बल हृदयसे
हमें भिक्षा न माँगना पड़े।
कोई भय नहीं, जानता हूँ निश्चयपूर्वक,
क्योंकि तुम हो और मैं हूँ।
उड़ायेंगे हम प्रेम-यताका, दुर्गम पथपर,
दुर्दमनीय तेजसे, महान कार्यमें।
रुखे दिनोंमें दुःख पायें तो पायें,
शान्ति न चाहें सान्त्वना न चाहें।
नदी पार करनेमें यदि पतवार टूट जाय, पाल फट जाय,
मौतके सामने खड़े होकर भी, समझेंगे तुम हो मैं हूँ।”

हम क्या नहीं जानते ?

डाक्टर के० जी० बोस

प्राचीन कालमें देवताओंने समुद्र मंथन था। समुद्र-मंथनसे निकला अमृत, जिसे पान करके देवतागण सशक्त, सुन्दर और अमर बने। मनुष्य समुद्र-मंथन नहीं कर सकता, फिर भी उसने अमृतका पता लगा लिया है। प्रकृतिके वरदानोंका मंथन करके मनुष्यका शरीर भी एक तरल पदार्थ निकालता है, जिसे हम रक्त कहते हैं। यह तरल पदार्थ हमें स्वास्थ्य और सौन्दर्य प्रदान करता है, और हमारे शरीरको अमर बनानेकी कोशिश करता है।

जैसे ही मनुष्य इस संसार-भरमें पहले-पहल प्रवेश करता है—निपट अकेला और असहाय—वैसे ही मृत्यु उसके जीवनके विरुद्ध पड्यन्त्र आरम्भ कर देती है। कीटाणुओंके संसारमें, जो मृत्युके सैनिक हैं, वाक्पायदा हलचल मच जाती है। उसी समयसे वे अविराम गतिसे मनुष्यके जीवनपर लगातार चढ़ाईयाँ करते रहते हैं। इन आक्रमणकारियोंको मार भगानेके लिए जो सन्तरी सदा आगे बढ़ते हैं, वे हैं हमारे रक्तके लाल कणाणु।

यह केवल उदाहरणमात्र नहीं है, और न यह कोई मनगढ़न्त किस्सा है, यह एक कठोर वास्तविक तथ्य है। यह

हमारा रक्त ही है, जो रोगके कीटाणुके लगातार हमलोंको व्यर्थ करके एक अमेवा दुर्गकी भाँति शरीरकी रक्षा करता है। इसीलिए हम देखते हैं कि जब शरीरमें रक्षिकी कमी हो जाती है, तभी मृत्यु उसपर कब्ज़ा जमानेकी कोशिश करने लगती है। अतः शरीरको मृत्युके जवड़ेसे बचानेके लिए सदा नवीन रक्त-प्रवाह चाहिए। लेकिन होता यह है कि रक्तक्षीणतासे टूटे हुए शरीरमें इतनी शक्ति नहीं रहती कि दैनिक भोजनको पूरा पचाकर नया रक्त पैदा कर सके। अतः यह आवश्यक होता है कि भोजनके साथ कोई ऐसी चीज़ भी हो, जो न केवल भूख और पाचनक्रियाको ही बढ़ावे, बल्कि जो अशक्त शरीरको नई संजीवनी शक्ति प्रदान करके मृत्युके दूतोंको हरा भी सके। इस प्रकारकी बहुत बढ़िया चीज़ है सुप्रसिद्ध ‘रचि प्रयोगशाला’ में बनी हुई ‘रचिटोन’। इसके अचूक गुणोंके कारण संसारके विभिन्न देशोंके स्त्री-पुरुष इसे बहुतायतसे इस्तेमाल करते हैं। जो आदमी अन्य चीज़ोंसे एकदम निराश हो चुके हैं, उन्हें ‘रचिटोन’ नया जीवन और नई आशा देती है और मरीज़को एकदम नया मनुष्य बना देती है। इसकी जादूभरी शक्तिसे मनुष्यका कायाकल्प हो जाता है।

इस अंकके लेखक और लेखिकाएँ

श्री आरसीप्रसाद सिंह—विहारके नवयुवक कवि हैं।

आपकी 'कलापी' शीर्षक सुन्दर कविता प्रकाशित है।

श्रीमती महादेवी वर्मा, एम० ए०—हिन्दीकी प्रसिद्ध कवियित्री और प्रयाग महिला-विद्यापीठकी प्रिन्सिपल हैं।

आपने 'पिंजरबद्ध साहित्यिक' शीर्षक लेखमें स्त्री लेखिकाओंके प्रति पुरुष लेखकोंके व्यवहारकी ओर ध्यान दिलाया है।

कुमारी इचा रूज़का—आपने सुदूर पोलैण्डमें रहते हुए हिन्दी सीखी है। पोलैण्डमें आप ही एकमात्र महिला हैं, जिन्होंने कौंसुलर सर्विसकी प्रतियोगिता-परीक्षा पास करके वैदेशिक विभागमें प्रवेश किया है। संसारके अन्य देशोंके वैदेशिक विभागोंमें भी मुश्किलसे दस-पाँच स्त्रियाँ होंगी। आपने भ्रमण भी खूब किया है। अपने देशकी स्त्रियोंके विषयमें आपने लिखा है।

कुँवरानी गुणवन्ती महाराजसिंह—संयुक्त-प्रान्तके होम-मेम्बर कुँवर सर महाराजसिंहकी पत्नी और सुसंस्कृत महिला हैं। आपने महिलाओंकी जाग्रतिपर प्रकाश डाला है।

श्रीमती मूर्खा—'विशाल भारत' के एक सुपरिचित लेखककी पत्नी हैं।

प्रोफेसर परसराम एम० ए०—लाहोरके फोरमैन क्रिश्चियन कालेजमें मनोविज्ञानके अध्यापक हैं। 'आधुनिक युगमें परिवार' शीर्षक लेखमें आपने परिवार-समस्याका वैज्ञानिक विवेचन किया है।

श्रीमती सूर्यदेवी दीक्षित, बिदुषी—हिन्दीके प्रसिद्ध लेखक स्व० मन्नन द्विवेदी राजपुरीकी बहन हैं। आप हिन्दीमें सुन्दर कविता करती हैं, जिसका उदाहरण 'हृदय देवताके प्रति' शीर्षक कवितामें मिलेगा।

श्रीमती धर्मशीला लाल, एम० ए०, चार-एट-ला—भारतके सुप्रसिद्ध पुरातत्त्ववेत्ता श्री काशीप्रसादजी जायसवालकी पुत्री हैं। आप पटनामें वैरिस्ट्री करती हैं। 'सौन्दर्य प्रेम' शीर्षक लेखमें आपने गृह-सौन्दर्य और शारीरिक सौन्दर्यका विवेचन किया है।

श्रीमती सत्यवती मलिक—काश्मीरकी रहनेवाली हैं। आपकी कई मनोवैज्ञानिक कहानियाँ 'विशाल भारत' में निकल चुकी हैं। 'जीवन-संध्या' आपकी नई कहानी है।

श्री सुरेन्द्र शर्मा—प्रतापके भूतपूर्व सहकारी सम्पादक और

अनेक पुस्तकोंके लेखक हैं। 'वीरांगना'में आपने रूसकी एक विचित्र महिलाका चरित्र चित्रण किया है।

श्री चिमनलाल सी० शाह, एम० ए०, एल० एल० बी०—गुजरातीके लेखक हैं। आपने कर्बे-महिला-विश्वविद्यालयका परिचय लिखा है।

श्रीमती मिरियम बेनेड—अमेरिकन हैं; किन्तु आपका जन्म भारतमें हुआ है और उसे ही आप अपनी मातृभूमि मानती हैं। आप एक अमेरिकन यूनिवर्सिटीकी ग्रेजुएट और हिन्दीकी प्रेमी हैं। भारतीय घरोंकी सजावटका आपने विशेष अध्ययन किया है, जिसका प्रमाण 'हमारे घरोंमें कला' शीर्षक लेखमें मिलेगा।

श्रीमती विजयलक्ष्मी परिडत—श्री जवाहरलाल नेहरूकी बहन और प्रयाग म्यूनिसिपल बोर्डकी सदस्या हैं। आपने पिछले सत्याग्रह-युद्धमें प्रमुख भाग लिया था। 'स्वतन्त्रताके युद्धमें महिलाएँ' शीर्षक लेख आपने अपने निजी अनुभवोंपर लिखा है।

श्रीयुत केसरी—विहारके एक नवयुवक कवि हैं। आपकी 'मातृपद' नामक कविता प्रकाशित है।

कुमारी राजरानी—आजकल उच्च शिक्षाके लिए इंग्लैण्ड गई हैं।

श्रीमती कमला मिश्र—हिन्दीकी उत्साही लेखिका हैं। हरदोईके श्रीयुत मणिशंकर मिश्रकी पत्नी हैं। आपने एक सुन्दर उपन्यास लिखा है, जो अभी अप्रकाशित हैं।

श्री चन्द्रकला देवी—पंडित मुकुटलाल शर्मा [बाँहपुर, कचेसर, जिला मेरठ] की पुत्री हैं।

लेडी अचला बोस—भारतके सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक सर जगदीशचन्द्र बोसकी पत्नी हैं। बंगालकी नारी-शिक्षा-समितिसे आपका घनिष्ठ सम्बन्ध है, जिसका परिचय आपने लिखा है।

कुमारी सुशीलादेवी परिडत—बड़ोदा आर्यकन्या-विद्यालयके कुलपति पंडित आत्मारामजीकी पुत्री और उक्त विद्यालयकी आचार्या हैं।

श्रीमती कमलादेवी चौधरी—मेरठके सुयोग्य चिकित्सक डाक्टर जे० एम० चौधरीकी पत्नी और हिन्दीकी प्रसिद्ध कहानी-लेखिका हैं। आपके 'उन्माद' नामक कहानी-

संग्रहका काफी आदर हुआ है। आपकी 'वीणा' नामक नई कहानी प्रकाशित है।

श्री डूंगरशी धरमशी सम्पट—कच्छके रहनेवाले एक मननशील बहुश्रुत विद्वान हैं। आजकल अपने व्यापारसे अवसर ग्रहण करके आप अध्ययनमें ही अपना समय लगाते हैं। आपने भारतके विभिन्न प्रान्तोंकी स्त्रियोंकी वर्तमान अवस्थाका दिग्दर्शन कराया है।

श्रीमती सरयूदेवी मोहनराम—आपका जन्म डच-गायनामें हुआ था। आपने ट्रिनीडाड तथा ब्रिटिश-गायनामें हिन्दी-प्रचारके लिए प्रयास किया है।

श्रीमती लीलावती मुंशी—गुजरातीके प्रसिद्ध लेखक श्री कन्हैयालाल मुंशीकी पत्नी हैं और स्वयं भी गुजरातीकी प्रसिद्ध लेखिका हैं। 'एक बात'में आपने स्त्रियोंकी वर्तमान प्रगतिकी और भारतीय महिलाओंका ध्यान आकर्षित किया है।

श्रीमती राजकुमारी देवी श्रीवास्तव—स्वर्गीय जे० पी० विद्यार्थीकी पत्नी हैं। आपने मैसूरमें अपने सुयोग्य पतिके साथ राष्ट्रभाषाके प्रचारके लिए बड़ा प्रयत्न किया था। आपकी 'राष्ट्र-भाषाकी पूजा' शीर्षक कविता प्रकाशित है।

सौ० कमलाबाई किवे—इन्दौर राज्यके मंत्री सरदार बृहादुर साधव विनायक किवेकी पत्नी और मराठी भाषाकी प्रसिद्ध लेखिका और वक्ता हैं। 'हमारा साहित्य और समाज' शीर्षक लेखमें आपने स्त्रियोंमें पठन-रुचि उत्पन्न करनेकी आवश्यकता बताई है।

मिर्जा अज़ीमबेग चरताई, बी०ए०, एल-एल० बी०—'विशाल भारत'के सुप्रसिद्ध हास्य-लेखक हैं। आपकी कहानियोंको लोग बहुत चावसे पढ़ते हैं। 'यह तसवीर किसकी है?' नामक आपकी हास्य-रसकी रचना प्रकाशित है।

श्रीमती शान्ता देवी—श्री रामानन्द चट्टोपाध्यायकी पुत्री और बंगला-भाषाकी, सुप्रसिद्ध लेखिका हैं। आपने 'घरकी लक्ष्मी' शीर्षक लेखमें स्त्रियोंके रहन-सहन और धरोखू कलाके सम्बन्धमें रचनात्मक विचार प्रकट किये हैं।

श्रीमती सरस्वती देवी काव्यतीर्थ, साहित्याचार्य—संस्कृत और हिन्दीकी विदुषी हैं। आपकी 'निस्पृह' शीर्षक कविता प्रकाशित है।

श्रीमती लज्जावती देवी—जालन्धर कन्या-महाविद्यालयकी आचार्या हैं। आपने विद्यालयका परिचय लिखा है।

कुमारी पद्मावती—कुर्गकी रहनेवाली हैं। आप अच्छी हिन्दी लिखती हैं। आजकल आप इंग्लैण्डमें अध्ययन कर रही हैं, जहाँकी मजदूर स्त्रियोंके सांस्कृतिक विकासके सम्बन्धमें आपने लिखा है।

श्री वरदाचरण उकील, एफ० आर० एस० ए०—दिल्लीके मशहूर चित्रकार हैं। आपने भारतकी एक प्रतिभाशालिनी महिला चित्रकारका परिचय दिया है।

श्री अनुसूयाप्रसाद पाठक—पिछले दो-तीन वर्षसे उड़ीसामें हिन्दी-प्रचारका काम करते हैं। उड़ीसाके सार्वजनिक कार्यकर्ताओंसे आपका अच्छा परिचय है। आपने उड़ीसाकी कार्यकर्त्री श्रीमती रमा देवीका परिचय दिया है।

श्री भवानीप्रसाद गुप्त—प्रयाग महिला-विद्यापीठके एक कार्यकर्ता हैं। आपने विद्यापीठका परिचय लिखा है।

श्री केशव गणेश डेकने—संगीत-विद्याके अच्छे जानकार और हमरीके विशेषज्ञ हैं। आपने स्त्रियोंमें संगीतकी रुचि उत्पन्न करनेकी आवश्यकता बताई है।

कुमारी अनामिका देवी—के उपनामसे लिखनेवाली लेखिका एक उच्चकोटिकी शिक्षा-प्राप्त (पी-एच० डी०) महिला हैं। आपने 'पति-निर्वाचन' शीर्षक लेखमें 'कैसा पति चाहिए' प्रश्नका उत्तर दिया है।

डाक्टर ए० लतीफ—के छद्म नामसे लिखनेवाले सज्जन हिन्दू हैं। आप उच्चकोटिके शिक्षा-प्राप्त, सुलभे हुए विचारोंके मननशील युवक हैं। 'सुभे कैसी पत्नी चाहिए' इस प्रश्नका उत्तर आपने वैज्ञानिक, किन्तु मज्जेदार ढंगसे दिया है।

श्रीमती उर्मिला देवी—मेरठकी प्रसिद्ध कांग्रेस कार्यकर्त्री हैं। आपने लड़कियोंकी शिक्षाके सम्बन्धमें अपने विचार प्रकट किये हैं।



ऊपर बाईं ओर :—इंग्लैण्डमें महिलाओंके समानाधिकार आन्दोलनकी जन्मदात्री स्व० श्रीमती एमेलिन पंखर्स्ट । चित्रमें एक कान्स्टेबिल श्रीमती पंखर्स्टको गिरफ्तार कर रहा है ।

ऊपर दाहनी ओर :—साम्यवादके पैगम्बर निकोलाय लेनिनकी पत्नी श्रीमती कुप्सकाया ।

नीचे बाईं ओर :—श्री रोमां रोलांकी जननी ।

दाहनी ओर :—लेडी गुणवन्ती महाराजसिंह (पृष्ठ २६३)

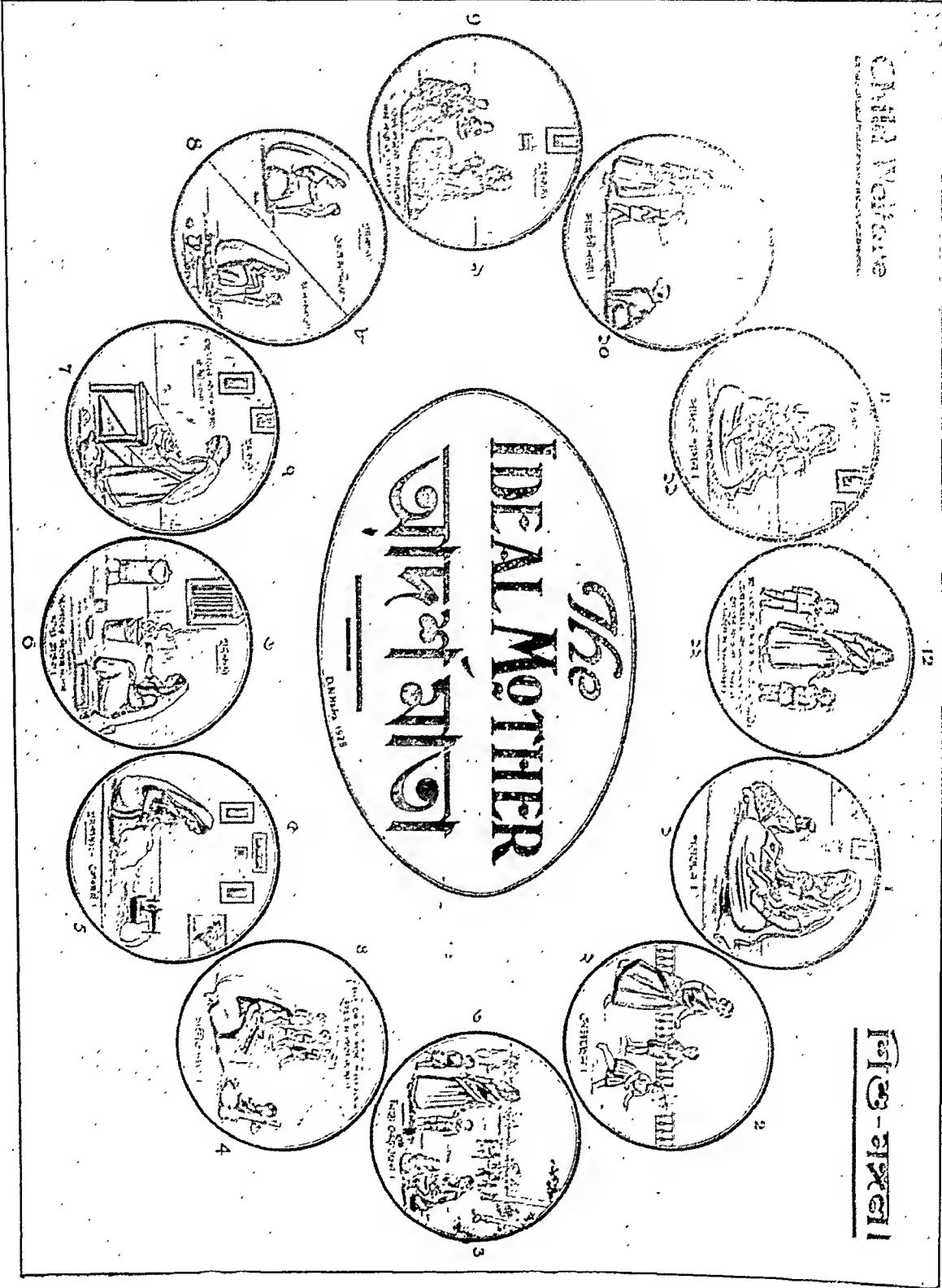
Child Welfare

निम्न-वर्णन

The IDEAL MOTHER आदर्श माता

D.M.W. 1975

- आदर्श माता—
1. बच्चोंको पढ़ाती है,
 2. साथ खेलती है,
 3. दखाने ले जाती है,
 4. संगीत सिखाती है,
 5. कपड़े सीती है,
 6. भोजन बनाती है,
 7. कपड़े धोकर इस्तरी करती है,
 8. तेल मलकर खाना कराती है,
 9. बच्चोंके साथ शार्थन करती है,
 10. बच्चोंको साहसी बनाती है,
 11. प्यारसे समझाकर डाँटती है, 12 में इन बच्चोंकी माता है।
- मेरे बच्चे मुझसे कोई बात नहीं ब्रियावे।



माताको क्या जानना चाहिए

बच्चोंका भोजन

बच्चेके लिए माताके दूधसे बढ़कर संसारमें कोई दूसरा भोजन नहीं। प्रकृति बच्चेको पुष्टिकारक भोजन प्रदान करनेके लिए ही माताके स्तनोंमें दूध उत्पन्न करती हैं। अतः जो चीज़ असली है, स्वाभाविक है और प्रकृतिप्रदत्त है, उसकी समता कोई भी कृत्रिम या नकली चीज़ नहीं कर सकती। बच्चोंके लिए डब्बोंके तरह-तरहके दूध और भोजन बने हैं; किन्तु माताके दूधके समान गुणकारी कोई नहीं। आँकड़ोंसे पता चलता है कि माताके दूधपर पाले जानेवाले बच्चोंमें, ऊपरी दूध अथवा डब्बोंके भोजनोंपर पाले जानेवाले बच्चोंकी अपेक्षा मृत्यु-संख्या बहुत कम होती है। नाजुक बच्चोंके लिए तो माताका दूध बहुत जरूरी है।

माताका भोजन

प्रकृतिने माताकी शारीरिक प्रणाली इस प्रकारकी बनाई है कि वह अपने बच्चेको दूध पिलानेमें सर्वथा समर्थ है। बच्चेको पूरा-पूरा दूध मिले, इसके लिए यह जरूरी नहीं है कि दूध पिलानेवाली माता अपनी साधारण खुराकसे ज्यादा खाए। उसे अपनी साधारण खुराकसे ज्यादा खाकर अपच उत्पन्न करनेकी जरूरत नहीं। हाँ, सिर्फ इस बातपर ध्यान रखना चाहिए कि उसका भोजन अच्छा और पुष्टिकर हो। दूध पिलानेवाली माताके भोजनमें ताजे फल, तरकारियाँ, सब्जी, सलाद, दूध आदि होना आवश्यक है, क्योंकि इन पदार्थोंमें विटामिन काफ़ी होते हैं, जो माताके भोजनसे छनकर दूधमें पहुँचते हैं और बच्चेको पुष्टि देते हैं।

बच्चेकी नींद

बच्चोंकी नींदकी बहुत ज्यादा जरूरत है। नीचे लिखे अंकोंसे माताको यह जाननेमें सहायता मिलेगी कि बच्चेको कितना सोना चाहिए :—

उम्र

कितने घंटे

कितने घंटे

सोना चाहिए

जागना चाहिए

१ मास

२१

३

६ मास

१८

६

१ साल

१५

८

४ साल

१३

११

६ साल

१२

१२

८ साल

११

१३

बच्चोंके खिलौने

दो वर्षकी उम्र तकके बच्चोंके लिए ऐसे खिलौने चुनने चाहिए, जो सीधे-सादे हों, गिर पड़नेपर जल्दी टूटें नहीं और आसानीसे साफ किये जा सकें। गेंद, लकड़ीके खिलौने या रोयेवाले जानवर छोटे बच्चोंको सन्तुष्ट रखनेके लिए काफ़ी हैं। चाबीवाले खिलौने छोटे बच्चोंके लिए उपयुक्त नहीं होते। डोरी बाँधकर छोटी खिलौनेवाली गाड़ीको फर्शपर घसीटनेमें बच्चेको जितना आनन्द आता है, उतना अपने-आप चाबीसे चलनेवाली क्रीमती मोटरसे नहीं आता।

बच्चेकी तीमारदारी

छोटे बच्चेकी ज़रा भी तबियत खराब होनेपर—देह कुनकुनी होनेपर भी—उसे चारपाईपर लिटाये रखना चाहिए—चाहे डाक्टर बुलाया गया हो या न हो। जिस कमरेमें बच्चेको सुलाया जाय, वह ऐसा खुला हुआ होना चाहिए, जिसमें साफ हवा और धूप आती हो। कमरेसे सारा गैर-जरूरी फर्नीचर हटा देना चाहिए। कमरेका फर्श दिन-भरमें कमसे कम एक बार गीले कपड़ेसे फेनाइलसे पोंछा जाना चाहिए। दवाईकी शीशी, पुडियाँ या दूसरी चीज़ें बच्चेकी आँखोंके सामने न रखनी चाहिए। बच्चेके सामने बीमारीकी बातचीत भी न करनी चाहिए।

दिन-भरमें एक बार बच्चेका वदन कुनकुने पानी और साबुनसे गीली तौलिया या स्पंज (मुर्दा नादल) से

पोंछ देना चाहिए। इससे बच्चेका चर्म अपना काम ठीक-ठीक करता रहता है। नौद प्रकृतिकी दी हुई सबसे बढ़िया दवा है। जहाँ तक सम्भव हो, दवा देने या मरहमपट्टी आदिके लिए भी बच्चेको सोतेसे न जगाना चाहिए।

रोगमें या अच्छे-भलेमें बच्चेको जबरदस्ती खिलाना हानिकारक है। दूध पिलानेके बाद बच्चेका मुँह गीले कपड़ेसे पोछ देना चाहिए। पानीमें अगर ज़रा-सा

सोडा (बाइकारबोनेट आफ सोडा) डाल लिया जाय, तो अच्छा है। बच्चोंको छोटी ही उम्रसे कुल्हा करना सिखाना चाहिए। डेढ़ पाव खौलते पानीमें एक चायका चम्मच-भर चौकिया मुहागा डालकर ठंडा कर लीजिए और उससे बीमार बच्चेकी आँखें सुबह शाम धोइये।

चेचक, कूकुरखाँसी आदि छुत्तैली बीमारियोंमें रोगीके व्यवहारकी प्रत्येक वस्तु घरके अन्य लोगोंसे अलग रखनी चाहिए।

सम्पादकीय विचार

स्त्रियाँ और साहित्य-सेवा

हर्षकी बात है कि हिन्दी-साहित्य-क्षेत्रमें स्त्री-लेखिकाओं और कवियित्रियोंकी संख्या बराबर बढ़ती जाती है, और वह दिन दूर नहीं है, जब वे इस क्षेत्रमें अपना उचित स्थान प्राप्त कर लेंगी। अब इतनी अधिक स्त्रियोंके हृदयमें साहित्य-प्रेम उत्पन्न हो गया है कि यदि पुरुष समुदाय चाहे तो भी उनको इस क्षेत्रमें आनेसे रोक नहीं सकता। हाँ, हम लोग अपने हार्दिक सहयोग द्वारा स्त्रियोंकी साहित्यिक उन्नतिकी प्रगतिको बढ़ा सकते हैं। साहित्य-सेवी स्त्रियों और उनकी रचनाओंके प्रति हमारी जो मनोवृत्ति होगी, उसकी प्रतिक्रिया उनके साहित्यमें अवश्य प्रतिबिम्बित होगी। उदाहरणके लिए हम, अपने पाठक-पाठिकाओंका ध्यान श्रीमती महादेवी वर्माके 'हमारे पिंजरबद्ध साहित्यिक' शीर्षक लेखकी ओर आकर्षित करते हैं। लेखमें काफी कटुता है, और उसकी ज़िम्मेवारी हिन्दी-भाषा-भाषी पुरुष-सम्प्रदायपर है। दर असल अब तक हमारे साहित्य-क्षेत्रमें स्त्रियोंके प्रवेशको उसी दृष्टिसे देखा जाता है, जिस दृष्टिसे बावले गाँवमें कभी ऊँटको देखा गया था। परदेकी प्रथाके कारण और अपनी असंस्कृतिकी वजहसे भी हम लोगोंमें से अधिकांशका

दृष्टिकोण स्त्रियोंके प्रति सीधा और स्वाभाविक नहीं है। उसमें एक प्रकारका टेढ़ापन और अस्वाभाविकता है, इसलिए यदि स्त्रियाँ हमारे साहित्यिक उत्सवोंमें आनेमें भिन्नकें—संकोच प्रकट करें, तो उन्हें कोई दोष नहीं दे सकता। उनका यह संकोच उनके साहित्यपर भी प्रभाव डाले बिना नहीं रह सकता। वास्तवमें यह अनुसन्धानका विषय है कि अनेक महिलाओंकी रचनाओंमें अस्पष्टता अथवा घुमा-फिराकर कहनेका जो ढंग दीख पड़ता है, उसके लिए यह संकोच कितने अंशोंमें ज़िम्मेवार है।

जैसा कि हम ऊपर कह चुके हैं स्त्रियोंको अब कोई साहित्य-क्षेत्रमें आनेसे रोक नहीं सकता, यद्यपि हम लोग अपने वर्तावसे उनकी रचनाओंकी गतिको बदल सकते हैं। स्त्रियों और पुरुषोंके निस्संकोच विचार-परिवर्तनके बिना दोनोंकी ही रचनाओंमें अधूरापन रह जायगा, इसमें सन्देह नहीं।

ग़लतफहमियोंकी आशंका

हम इस बातको स्वीकार करते हैं कि इस प्रकारके निस्संकोच विचार-परिवर्तनका मार्ग ख़तरनाक है। उसमें ग़लतफहमियोंकी पूरी आशंका है। यदि कोई लेखिका किसी लेखक या कविके साथ हँसती-बोलती

है, तो उन दोनोंपर अनुचित आक्षेप करते हुए लोगोंको कुछ भी लज्जा नहीं आती। इस सिलसिलेमें हमें यह भी कहना पड़ेगा कि आशंका करनेवालोंमें जितनी संख्या पुरुषोंकी होती है उससे अधिक स्त्रियोंकी। पर स्त्रियोंके पक्षमें एक बात कहनी पड़ेगी, वह यह कि स्त्रियाँ इतने अधिक दिनों तक पराधीन रखी गई हैं कि उनके हृदय यदि शंकाशील बन जायँ तो वे क्षम्य समझी जानी चाहिए। पर उन असंस्कृत पुरुषोंके अपराधको कभी क्षमा नहीं किया जा सकता, जो दूसरोंकी बहन-बेटियोंकी इज्जतका कुछ भी खयाल न करके उनके विषयमें मनमानी चर्चा किया करते हैं।

जनमतको जाग्रत करनेकी आवश्यकता

इस प्रकारके अनाचारको रोकनेके लिए जनमतको जाग्रत करना चाहिए। जब तक हमारे यहाँ कुछ पत्रकार ऐसे न होंगे, जो निर्भयतापूर्वक ऐसे छिछोरोकी धृष्टताका प्रबल विरोध कर सकें, तब तक इसके रूकनेकी सम्भावना नहीं है।

स्वयं स्त्रियोंकी इस विषयमें दृढ़तासे काम लेना चाहिए। यदि हमारा पुरुष-सम्प्रदाय स्त्रियोंकी इज्जत करना नहीं जानता, तो उसे अधिकार नहीं कि वह स्त्रियोंसे सम्मानकी आशा करे। हमने सुना था कि एक बार किसी बँगला-पत्रमें किसी स्त्रीके चरित्रपर निराधार आक्षेप किये गये थे। वह स्त्री सीधी पत्रके आफिसमें चली गई। पूछा, सम्पादकजी कहाँ है? जब वह सम्पादकके कमरेमें पहुँची, तो उसने उतारके पाँच-सात जूते उनके लगा दिये और कह दिया कि यह आपके लेखोंका उत्तर है। सम्पादक महोदय घबड़ा गये और उनसे कुछ करते-धरते नहीं बना। हिन्दी-साहित्य-क्षेत्रमें प्रवेश करनेवाली स्त्रियोंसे हमारी एक प्रार्थना है कि वे आत्म-सम्मानकी रक्षाके लिए सदैव उद्यत रहें।

आत्म-विश्वासकी कमी

लेखिकाओंमें प्रायः आत्म-विश्वासकी कमी पाई जाती है। उन्हें इस बातका पता नहीं कि पुरुषोंके

भी लेखोंमें कितने संशोधन करने पड़ते हैं। लिखना तैरनेकी तरह है, और इसमें अभ्यासकी ज़रूरत है। असाधारण योग्यताकी बात दूसरी है; पर मामूली तौरपर अपने भाव प्रकट कर लेना किसी भी पढ़ी-लिखी स्त्रीके लिए कठिन नहीं है। जिन विषयोंको स्त्रियाँ जानती हैं, और जिनका जानना पुरुषोंके लिए कठिन है, उन विषयोंपर यदि लिखें, तो बड़ी आसानीसे उनकी रचनाएँ छप सकती हैं। उदाहरणार्थ, विधवाओंकी दुर्दशाके विषयमें जितनी हृदयवेधक पुस्तक कोई भुक्तभोगी बहन लिख सकती है, उतना पुरुष कदापि नहीं लिख सकता। यद्यपि कुछ जनाने आदर्शियोंने स्फुरणा देवी, प्रियम्बदा देवी आदि फर्जी नाम दे-देकर अपनी पुस्तकोंको चलानेका निन्दनीय प्रयत्न किया है, तथापि उनके असंयत विचारोंकी बीभत्सताके कारण उनकी कलई खुलनेमें देर नहीं लगी। हमारा विश्वास है कि कर्ण रसकी चीज़ें जितनी सफलतापूर्वक कोई स्त्री लिख सकेगी उतनी सफलता पूर्वक पुरुष लिख ही नहीं सकते। यह बात ध्यान देने योग्य है कि भविष्य कर्णरसका ही है। भविष्यमें जनता उसी साहित्यको सम्मानकी दृष्टिसे देखेगी, जिसमें भिन्न-भिन्न जातियों तथा देशोंके मनुष्योंको एक दूसरेको समझने और पारस्परिक भ्रातृत्व स्थापित करनेके लिए प्रेरणा होगी। स्त्रियाँ इस प्रकारके कार्योंको व्यावहारिक रूपमें आसानीसे कर सकती हैं, इसलिए यदि वे इस विषयके साहित्यमें पुरुषोंसे आगे बढ़ जायँ, तो कोई आश्चर्यकी बात न होगी।

ज्ञान-क्षेत्रको विस्तृत करनेकी आवश्यकता

वरकी चहारदीवारीमें बन्द रहनेके कारण स्त्रियोंका ज्ञानक्षेत्र बड़ा संकुचित हो गया है। उसे विस्तृत बनानेके लिए यह आवश्यक है कि वे हिन्दी-साहित्यके साथ-ही-साथ बँगला, गुजराती अथवा मराठी इन भाषाओंमें से किसी एकको अवश्य पढ़ें। यदि अंगरेज़ीका ज्ञान प्राप्त कर सकें, तब तो बात ही क्या है, अंगरेज़ी-साहित्यका भंडार परिपूर्ण है; पर हम जानते हैं

कि अंगरेजी पढ़नेका अवसर अधिकांश बहनोंको नहीं मिल सकता। वरपर दो-घंटे नित्य परिश्रम करनेसे छे महीनेमें मामूली तौरपर समझने लायक बँगला-भाषा आ सकती है। गुजराती और भी सरल है। हाँ मराठी अपेक्षाकृत कठिन सुनी जाती है। जो बहनें बँगला पढ़ना चाहें वे हरिदास कम्पनी मथुरासे 'हिन्दी-बँगला-शिक्षक' दोनों भाग मँगा सकती हैं। मूल्य दोनों भागका अनुमानतः डेढ़ रुपया है। जो बहनें संस्कृत जानती हैं, उनके लिए बँगला पढ़ना और भी आसान है।

निर्भयतापूर्वक आगे बढ़िये

साहित्य-क्षेत्रमें आनेकी इच्छुक स्त्रियोंसे अन्तमें हमें यही कहना है कि आप सर्वथा निर्भय होकर आगे बढ़ें। जब अधिक संख्यामें स्त्रियाँ इस क्षेत्रमें प्रवेश करेंगी, तो असंस्कृत पुरुषोंकी धृष्टता भी अपने-आप कम हो जायगी। साहित्य-क्षेत्र सर्वथा जनसत्तात्मक रहा है और रहेगा। यदि स्त्रियोंमें योग्यता और लगन होगी, तो उन्हें कीर्तिके पथपर आगे बढ़नेसे कौन रोक सकता है? उन्नतिके उच्च शिखर तक पहुँच जानेपर ये क्षणस्थायी बाधाएँ गौरवका ही कारण प्रतीत होंगी।

हमारी महिला-जाग्रति

भारतकी नवीन महिला-जाग्रतिका आरम्भ अबसे सौ वर्ष पहलेसे हुआ था। हमारी नवीन राष्ट्रीय, धार्मिक और सामाजिक जाग्रतिके पैराम्बर राजा राममोहन राय थे। युगोंके अन्धकारके बाद उन्होंने पहले-पहल भारतके आधे मूक अंग—महिलाओं—को ओर ध्यान दिया। राजा साहबके सद्प्रयत्नोंकी बदौलत ही सती-प्रथाका अन्त हुआ था।

राजा राममोहन रायके बाद स्वर्गीय ईश्वरचन्द्र विद्यासागरने हिन्दू-विधवाओंकी करुण पुकार सुनी, और उन्होंने ही हिन्दू-विधवाओंके पुनर्विवाहकी आवाज

उठाई। इसपर स्वर्गीय विद्यासागरको कट्टर सनातन-धर्मियोंकी ओरसे न-जाने कितना लांछित और अपमानित होना पड़ा था, किन्तु वे अपने निर्दिष्ट पथसे विचलित न हुए और उनके प्रयत्नसे हिन्दू-विधवाका विवाह कानूनन जायज हो गया।

महिलाओंकी जाग्रतिमें ब्राह्मसमाजका सबसे बड़ा हाथ रहा है। राजा राममोहन रायके बाद आगे चलकर ब्राह्मसमाजमें दो दल हो गये थे। एक दलके नेता स्वर्गीय केशवचन्द्र सेन थे। उन्होंने ब्राह्म-मन्दिरमें स्त्रियोंको भी स्थान दिया था। स्त्रियोंके लिए मन्दिरमें पृथक् स्थान निश्चित था, जिसपर परदेके लिए चिकें पड़ी रहती थीं। किन्तु स्त्रियोंको पुरुषोंके समान एकदम बराबरीका अधिकार देनेका श्रेय ब्राह्मसमाजके दूसरे दल अर्थात् साधारण ब्राह्मसमाजको है। इस दलके नेताओंमें श्री दुर्गामोहन दास, श्री शिवनाथ शास्त्री, श्री रामेन्द्रमोहन दास और श्री द्वारकानाथ गंगोली आदि थे। इन्होंने साधारण ब्राह्मसमाजके नियमोंमें स्त्री-पुरुषका कोई भेद नहीं रखा था। इन नियमोंके अनुसार स्त्रियाँ समाजके पुरोहितका पद भी प्राप्त कर सकती थीं। साधारण ब्राह्मसमाजके मन्दिरमें स्त्रियाँ पुरुषोंके बीचमें जहाँ चाहें बैठ सकती थीं। चूँकि उस समय तक जमाना इतना आगे नहीं बढ़ पाया था और कुछ स्त्रियोंको पुरुषोंके साथ बैठनेमें आपत्ति थी, इसलिए उनके लिए एक अलग स्थान भी बना दिया गया था; किन्तु उसपर कोई चिक या परदा न था।

कांग्रेसके मंचसे सबसे पहले भाषण देनेवाली स्वर्गीया कुमुदिनी गंगोली थीं। कुमुदिनी गंगोली शायद हिन्दू महिलाओंमें सबसे पहली ग्रेजुएट थीं और वे ही सर्वप्रथम लेडी डाक्टर भी थीं। कांग्रेसके अनेकों अधिवेशनोंमें कार्य प्रारम्भ होने पूर्व 'वन्देमातरम्' गान गानेका सम्मान श्रीमती सरलादेवी चौधुरानीको प्राप्त है।

कविवर रवीन्द्रनाथ ठाकुरकी बड़ी बहन स्वर्णकुमारी देवी ही पहली भारतीय महिला हैं, जिन्होंने किसी

पत्रका सम्पादन किया। वे 'भारती' नामक मासिक पत्रकी सम्पादिका थीं। उन्होंने भूगर्भ-विद्यापर बंगलामें एक पुस्तक भी लिखी थी। वैज्ञानिक विषयपर पुस्तक लिखनेवाली सर्वप्रथम भारतीय महिला भी वही थीं। हिन्दी-भाषा-भाषी महिलाओंमें, हमें जहाँ तक मालूम है, श्रीमती रामेश्वरी देवी नेहरू ही प्रथम पत्र सम्पादिका हैं, उन्होंने कई वर्ष तक 'गृह-लक्ष्मी' का सम्पादन किया था।

उत्तर-भारतमें महिला - जाप्रतिके जन्मदाता स्वामी दयानन्द सरस्वती थे। निस्सन्देह आर्यसमाजने उत्तर-भारतकी महिलाओंमें—विशेषकर पंजाबमें—जाप्रति उत्पन्न करनेमें जितना कार्य किया है, उतना अन्य किसी संस्थाने नहीं किया। उत्तर-भारतमें विधवा-विवाहका प्रचार भी आर्यसमाजने ही किया था।

हिन्दीकी प्रसिद्ध लेखिका श्रीमती हेमन्तकुमारी चौधुरानीके पिता स्वर्गीय नवीनचन्द्र रायने पंजाबमें स्त्री-शिक्षा-प्रचारका बड़ा प्रयत्न किया था; किन्तु इस दिशामें सबसे बढ़कर काम जिन्होंने किया, वे थे जालन्धर-कन्या-महाविद्यालयके संस्थापक लाला देवराज। आरम्भिक दिनोंमें लाला देवराजको भी कष्टपन्थियोंके हाथों न जाने कितनी-कितनी तकलीफें उठानी पड़ी थीं; किन्तु यह महापुरुष अपने उद्योगमें लगा रहा, और अन्तमें उसने एक ऐसी संस्था बनाकर खड़ी कर दी, जो पंजाबमें स्त्री-शिक्षाका सबसे बड़ा केन्द्र है।

भारतीय विधवाओंके सबसे बड़े बन्धु पंजाबके स्वर्गीय सर गंगाराम थे। उन्होंने विधवा-विवाहके लिए कई लाख रुपये दान दिये। उनके दानसे कन्याओंके स्कूल, अस्पताल आदि चल रहे हैं। उनकी विधवा-विवाह-सहायक समाजी शाखाएँ भारत भरमें फैली हैं।

गुजरातमें नारी-जाप्रतिका श्रीगणेश अहमदाबादके सर रमणभाई नीलकण्ठकी पत्नी लेडी विद्यागौरी नीलकण्ठने किया। गुजराती महिलाओंमें लेडी विद्यागौरी ही सबसे पहली प्रेजुएट हैं। आज जब महिलाएँ बहुत

आगे बढ़ चुकी हैं, तब भी लेडी विद्यागौरी पूर्ववत् कार्य करती जाती हैं। अहमदाबादकी कोई ऐसी प्रमुख सार्वजनिक संस्था नहीं है, जिसमें लेडी विद्यागौरीका हाथ न हो।

महाराष्ट्रमें स्वर्गीय विष्णुशास्त्री चिपलूणकरने पहले-पहल विधवा-विवाहका प्रश्न उठाया था। महाराष्ट्रीय महिलाओंकी जाप्रतिमें फर्ग्यूसन कालेज पूनाके प्रिन्सिपल स्वर्गीय आगरकर तथा बम्बई हाईकोर्टके जज स्व० महादेव गोविन्द रानाडे और उनकी स्त्री रमाबाई रानाडेने बहुत काम किया। पंडिता रमाबाईने हिन्दू-विधवाओंकी दुर्दशा दूर करनेका बहुत बड़ा प्रयत्न किया। विधवाओंके प्रति कष्ट हिन्दुओंके अत्याचारोंसे ऊब कर वे ईसाई हो गई थीं। इस शताब्दीमें भारतीय स्त्रियोंके लिए सबसे बढ़कर काम पूनाकी भारत-सेवक-समितिके सभापति स्वर्गीय देवधरने किया है। उनका सेवा-सदन स्त्रियोंकी एक महान संस्था है। महाराष्ट्रमें स्त्री-शिक्षाके लिए बहुत बड़ा प्रयत्न करनेवालोंमें प्रोफेसर कर्वेका नाम अमर रहेगा। कर्वे महाशयने पूनामें महिला-विश्वविद्यालयकी स्थापना की है, जो भारतमें महिलाओंका एकमात्र विश्वविद्यालय है। इस विश्वविद्यालयके लिए सर विठ्ठलदास दामोदर ठाकरसीने पन्द्रह लाख रुपये अपनी माता स्वर्गीया नाथीबाईके नामपर दान दिये थे।

आन्ध्र-प्रदेशमें महिलाओंकी जाप्रतिके जन्मदाता वेजवाड़ाके स्वर्गीय वीरेशलिंगम पन्तुलू थे। पन्तुलू महाशय एक बड़े समाज-सुधारक और साहित्यकार थे। उन्होंने महिलाओंकी शिक्षा, उनके समान अधिकार, विधवा-विवाह आदिके लिए बड़ा प्रयत्न किया था। सुदूर दक्षिणमें स्वर्गीय रघुनाथरावने पहले पहल विधवा-विवाह और स्त्री-शिक्षाके लिए आवाज उठाई थी।

संयुक्त-प्रान्तमें हालमें स्त्री-शिक्षाका एक बहुत बड़ा प्रयत्न प्रयागकी महिला-विद्यापीठने किया है,

जिसके जन्म देनेका श्रेय श्रीयुत संगमलाल अग्रवाल और श्रीयुत पुरुषोत्तमदास टंडनको है।

बिहार भारतके सबसे पिछड़े प्रान्तोंमें है। वहाँ परदा भी बहुत कड़ा है। बिहारमें परदा प्रथाके विरुद्ध संगठित प्रयत्न पिछले सत्याग्रह-आन्दोलनमें हुआ था। उच्च श्रेणीकी स्त्रियोंमें तो कुछ-कुछ जाग्रति हो गई थी; किन्तु जनसाधारणमें परदा दूर करनेमें श्री रामनन्दन मिश्रने विशेष प्रयत्न किया है।

बंगालमें 'सरोजनलिनी दत्त मेमोरियल एसोसियेशन' महिलाओंकी एक बड़ी भारी संस्था है। यह एसोसियेशन बंगालकी स्त्रियोंमें शिक्षा-प्रचारका विशेष प्रयत्न कर रहा है। इस समय समूचे बंगालमें इसकी कई सौ शाखाएँ हैं। विधवाओंको शिक्षा देकर उन्हें अपनी जीविका उपार्जन करनेके योग्य बनानेका अच्छा कार्य बंगालकी 'नारी-शिक्षा-समिति' कर रही है, जिसकी प्रधान लेडी अवला बोस हैं। बंगाल और आसामकी दलित और पिछड़ी हुई जातियोंकी बालिकाओंको शिक्षा देनेके लिए 'सोसाइटी फार दी इम्प्रूवमेंट आफ बैकवर्ड क्लासेज आफ बंगाल आसाम' एक सौसे अधिक स्कूल चला रही है।

महिलाओंकी नवीन जाग्रतिमें हमारी मुसलमान वहन बहुत पिछड़ी हुई हैं। एक बात तो यह है कि मध्य और उच्च श्रेणियोंकी मुसलमान स्त्रियोंमें परदा बहुत कड़ा था, और अब तक है—यद्यपि अब जमानेकी रफ्तारने उसमें काफी धक्का पहुँचाया है, दूसरे राजनैतिक कारणों, धार्मिक कट्टरपन और साम्प्रदायिक विद्वेषके कारण न तो मुसलमान इस दिशामें हिन्दुओंका साथ दे सके और न उनसे शिक्षा ही ग्रहण कर सके। इस समय यद्यपि वेगमशाह नवाज, अतियावेगम आदि जैसी दो-चार पढ़ी-लिखी सुसंस्कृत महिलाओंके नाम सुन पड़ते हैं, और जहाँ-तहाँ लड़कियोंके लिए कुछ स्कूल भी देख पड़ते हैं—ढाका कलकत्ता, लाहौर आदिमें ऐसे स्कूल हैं; किन्तु वे सब सरकारी ढंगपर शिक्षा देनेके लिए ही हैं। जालन्धर महाविद्यालय या

सेवा-सदन और कर्वे यूनिवर्सिटी या महिला-विद्यापीठ-जैसी संस्थाओंका उनमें एकदम अभाव है।

हमारी महिला-जाग्रतिमें सबसे बढ़कर काम महात्मा गांधीके सत्याग्रह आन्दोलनने किया। पिछले पचास-साठ वर्षमें महिलाओंमें जितनी जाग्रति हुई, उतनी या उससे भी अधिक सत्याग्रह-आन्दोलनके दो-तीन वर्षोंमें हो गई। महात्मा गांधीके आह्वानपर सहस्रों भारतीय ललनाएँ घरोंसे निकल पड़ीं। उन्होंने धरने दिये, सभाएँ कीं, जुलूस निकाले, डंडे खाये, गिरफ्तार हुई और जेल गईं। वास्तवमें सत्याग्रह आन्दोलन हमारी महिला-जाग्रतिके इतिहासमें स्वर्णाक्षरोंमें लिखा जायगा।

‘शक्ति’ का जन्म

यह जानकर हमें हर्ष हुआ कि शीघ्र ही लाहौरमें एक नवीन हिन्दी दैनिक पत्र ‘शक्ति’का जन्म होनेवाला है। इसकी संचालिका होंगी श्रीमती शन्नोदेवी। श्रीमती शन्नोदेवीसे हिन्दी-भाषा-भाषी भलीभाँति परिचित हैं। उन्होंने स्त्रियोंकी जाग्रतिके लिए प्रशंसनीय उद्योग किया है। वे धुनकी पक्की हैं, और यह आशा की जा सकती है, जिस कामको वे हाथमें लेंगी, उसे सफल बनाकर ही छोड़ेंगी।

संचालिकाजीसे हमारी एक विनम्र प्रार्थना है, वह यह कि वे ‘शक्ति’को विवादग्रस्त राजनीति तथा चुनावके दलदलसे सर्वथा अलग रखें। अभी भारतीय स्त्री-समाजके लिए इतना अधिक काम करनेके लिए पड़ा है कि श्रीमती शन्नोदेवी जैसी अनुभवी कार्यकर्त्रीका चुनावके झगड़ोंमें फँसना ‘शक्ति’का अपव्यय ही समझा जायगा। वैसे उनकी योग्यतामें किसी प्रकारका सन्देह नहीं किया जा सकता। जिस क्षेत्रमें भी वे जायँगी, स्त्रियोंके लिए उपयोगी काम ही करेंगी।

पंजाबमें हिन्दी-प्रचारके लिए जो कुछ भी उद्योग किया जाय, उसमें सहायता पहुँचाना हम सबका कर्तव्य

है। हमें नहीं मालूम कि भारतवर्षमें और भी किसी महिलाने कभी दैनिक पत्रके संचालनका भार अपने ऊपर लिया है या नहीं। निस्सन्देह यह बड़े उत्तरदायित्वका कार्य है, और इसके लिए श्रीमती शन्नोदेवीके साहसकी जितनी प्रशंसा की जाय, थोड़ी होगी। हिन्दीके लेखकों कवियों तथा सम्पादकोंसे हमारा अनुरोध है कि वे लेख, कविता तथा उचित परामर्श द्वारा श्रीमती शन्नोदेवीकी सहायता करें। इसके लिए वे अत्यन्त कृतज्ञ होंगी। उनका पता है:—

श्रीमती शन्नोदेवी, कूचा खन्ना, लाहौर

एक बढ़ती हुई बीमारी

श्रीमती सीतादेवी 'प्रभाकर' प्रताप-भवन, हापुड़से लिखती हैं—

“एक बढ़ती हुई बीमारीकी ओर मैं आपका ध्यान आकर्षित करती हूँ, वह है स्त्रियोंसे नौकरी कराके उनका आश्रय लेना। आजकल कितने ही व्यक्ति ऐसे पाये जाते हैं, जो अपनी स्त्रियोंकी कमाई खाते हैं। स्त्री थोड़ी भी पढ़ी-लिखी होती है तो वे उससे यह आशा करने लगते हैं कि वह नौकरी करे! मैंने अनेक ऐसी स्त्रियोंको देखा है, जिन्हें अपनी इच्छाके विरुद्ध नौकरी करनी पड़ती है। गृहके समस्त कार्य, प्रतिवर्ष बच्चोंकी उत्पत्ति और इसपर उदरपूर्तिके लिए नौकरी, ये तीनों चीजें मिलकर उनके जीवनको अभिशाप बना देती हैं। स्वास्थ्य तथा सौन्दर्य दोनोंके लिए अवकाश और विश्रामकी आवश्यकता है; पर वह नौकरी करनेवाली स्त्रियोंको कहाँ मिल सकता है? खुद उनका स्वभाव चिड़चिड़ा हो जाता है, और बच्चे अलग भिनकते फिरते हैं। पारिवारिक शान्तिका लोप हो जाता है। जो लोग भर्ता होनेपर भी भरण-पोषण नहीं कर सकते, उन्हें क्या अधिकार है कि वे विवाह करें? यदि पति अधिक नहीं कमा सकता, तो उसे थोड़ेमें ही गुज़र करना सीखना चाहिए। यह बात

ध्यान देने-योग्य है कि उन लोगोंमें, जो अपनी पत्नीकी कमाईपर निर्भर रहते हैं, कितने ही ऐसे हैं, जो समाज-सुधारक शिक्षित और सभ्य कहलानेका ढोंग भी करते हैं।

स्त्रियाँ स्वयं अपने घरके और बाल-बच्चोंके प्रेमपूर्ण वायुमण्डलको छोड़कर नौकरी करना कभी पसन्द नहीं कर सकती; पर उन्हें मजबूरन ऐसा करना पड़ता है। मैंने पढ़ा था कि अभी कुछ महीने पहले अमेरिकामें महिलाओंकी एक कानफरेन्समें इस बातपर जोर दिया गया था कि पारिवारिक जीवनको सुखमय बनानेके लिए यह आवश्यक है कि स्त्रियोंको नौकरी करनेके लिए बाध्य न किया जाय।

जो विवाहित बहनें भ्रमवश मजबूर होकर अथवा महत्वाकांक्षाके कारण नौकरियोंके चक्करमें पड़ गई हैं, उनकी सेवामें मुझे यह निवेदन करना है कि इस प्रश्नपर गम्भीरतापूर्वक विचार करें कि कहीं वे आमकी जगह बबूलको तो नहीं रोप रही हैं। सबसे बड़ी चीज़ है उनका नारीत्व। कहीं इस चक्करमें पड़कर वे अपने नारी-सुलभ गुणोंको तो नहीं खो रही हैं?

उन पुरुषोंके विषयमें मैं क्या कहूँ जो अपने भारको स्वयं बहन न कर उसे इस प्रकार अपनी स्त्रियोंके कन्धेपर डाल देते हैं!”

श्रीमती सीतादेवी 'प्रभाकर'ने जिस विषयकी ओर पाठकोंकोका ध्यान आकर्षित किया है, वह निस्सन्देह महत्त्वपूर्ण है। केवल खास-खास परिस्थितिको छोड़कर—मसलन पतिका बीमार होना—साधारण तौरपर पारिवारिक जीवनके लिए यही उत्तम होगा कि स्त्रियोंको नौकरी न करनी पड़े। पर जो विवाहित स्त्रियाँ स्वेच्छापूर्वक यह काम करती हैं, उनके विरुद्ध हम कुछ नहीं कह सकते। स्त्रियोंको पुरुषोंने सहस्रों वर्षोंसे पराधीनताके जालमें इस तरह जकड़ रखा था कि अब यदि स्वाधीन होकर स्त्रियाँ कुछ भूल भी करें, तो वे क्षम्य समझी जानी चाहिए।

उड़ीसाकी सबसे बड़ी आवश्यकता

श्रीयुत सतीन्द्रनारायण राय एडवोकेट कटक (उड़ीसा) ने कृपा कर हमारे पास 'उत्कल-समाजमें स्त्रियोंकी स्थिति' के विषयपर एक विस्तृत लेख भेजा है। देरमें मिलनेके कारण हम उसे इस अंकमें नहीं छाप सके। किसी अगले अंकमें वह छपेगा; पर उक्त लेखमें एक महत्वपूर्ण बात ऐसी है, जिसका ध्यान हम पाठक-पाठिकाओंकी ओर आकर्षित करना चाहते हैं। श्रीयुत राय महोदयने बतलाया है कि उड़ीसाकी सबसे बड़ी सामाजिक आवश्यकता है अनाथालयों तथा विधवाश्रमोंकी स्थापना। भारतके अन्य भागोंकी तरह उड़ीसामें भी व्यभिचारी पुरुषको कोई दण्ड नहीं मिलता और सारी-की-सारी जिम्मेवारी आ पड़ती है उस गरीब स्त्रीपर, जो पुरुषोंके अनाचारोंकी शिकार बनती है और वह दर-दरकी भिखारिन बना दी जाती है। उड़ीसामें ऐसी स्त्रियोंके उद्धारके लिए और अनाथ बच्चोंके पालन-पोषणके लिए भी कोई संगठित प्रयत्न नहीं किया गया।

उड़ीसा एक अत्यन्त निर्धन प्रान्त है। आवश्यकता इस बातकी है कि मारवाड़ी, गुजराती, बंगाली तथा अन्य प्रान्तोंके निवासी इस पुण्यकार्यमें उड़ीसावालोंकी मदद करें। सर गंगाराम ट्रस्ट, आर्यसमाज तथा अन्य समाज-सेवक संस्थाओंका ध्यान हम इस आवश्यक विषयकी ओर आकर्षित करते हैं। जो महाशय इस विषयमें अधिक जानना चाहें, वे निम्न-लिखित पतेपर पत्र-व्यवहार कर सकते हैं:—

Syt. S. N. Ray, Advocate,
Cuttack, Orrisa.

ग्राहकोंसे निवेदन

'विशाल भारत' का 'महिला-अंक' आपकी सेवामें उपस्थित है। इस वर्षके भीतर 'विशाल भारत' का यह दूसरा विशेषांक है। अप्रैलमें हमारा 'राष्ट्रीय अंक' निकला था, जिसकी हिन्दी-संसारमें काफी प्रशंसा हुई। प्रस्तुत विशेषांकमें २०० पृष्ठ और लगभग १०० चित्र हैं। 'विशाल भारत' के २०० पृष्ठ किताब साइजके ४०० पृष्ठोंके बराबर हुए। इस प्रकार स्थायी ग्राहकोंको ४०० पृष्ठोंकी किताबका मसाला सौ चित्रों सहित केवल आठ आनेमें पड़ता है !

'विशाल भारत' अपने पाठकोंके सामने सदैव सुरुचिपूर्ण सुपथ्य सामग्री उपस्थित करता रहा है। यदि आपको यह विशेषांक पसन्द आये, तो क्या आप कृपा करके अपने दो-चार मित्रोंको अनुरोध करके 'विशाल भारत' का ग्राहक बनायेंगे? आपकी इस कृपासे 'विशाल भारत' आपकी और भी अच्छी तरह सेवा कर सकेगा। जो सज्जन ग्राहक बनायेंगे, उनके नाम सधन्यवाद 'विशाल भारत' में प्रकाशित किये जायेंगे।

— मैनेजर



विशाल भारत

“ सत्यम् शिवम् सुन्दरम् ”

“ नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः ”

भाग १८, अंक ४]

कार्तिक १९९३ :: अक्टूबर १९३६

[पूर्ण-अंक १०६]

महात्मा गांधी : एक विश्व-शक्ति

स्वर्गीय डाक्टर जे० टी० सगडरलैण्ड

मेरे विचारमें महात्मा गांधी एक महान विश्व-शक्ति हैं, इसलिए कि वे केवल एक बड़े सुधारक ही नहीं हैं, वरन् नैतिक और आध्यात्मिक क्षेत्रमें वे, इतिहासमें बुद्ध और ईसाके बाद, सबसे महान सुधारक हैं। वे जिस आन्दोलनका नेतृत्व कर रहे हैं—अर्थात् समूची पृथिवीके षष्टांश लोगोंके लिए स्वतन्त्रता प्राप्त करना—उसकी विशालता और महत्ताकी कल्पना करना भी मनुष्यके दिमागके बाहरकी बात है। मानव-जातिके इतिहासमें राष्ट्रोंने स्वतन्त्रता प्राप्त करनेके लिए जिन-जिन उपायोंका अवलम्बन किया, महात्मा गांधीके उपाय उन सब उपायोंसे उच्च, सबसे सुन्दर और सबसे अधिक सम्पन्न हैं। दूसरे राष्ट्रोंने आजाद होनेके लिए खून-खराबी, प्रतिहिंसा और मानव-जीवनको नाश करनेके साधन इस्तेमाल किये हैं। गांधीजीके साधन अनोखे हैं, वे इतने उच्च और पवित्र हैं कि उनकी कल्पना कठिन है। उनके साधन हैं अहिंसा, आत्म-त्याग और विरोधीका एक वूँद भी रक्त बहानेसे इनकार। सारे संसारको इसमें दिलचस्पी लेनी

चाहिए। मेरा विश्वास है कि संसारके उच्चतर मस्तिष्कके सभी व्यक्ति गांधीजीके आन्दोलनसे गहरी दिलचस्पी रखते हैं और उनकी सफलताके इच्छुक हैं। वे देखते हैं कि भारतमें जो संघर्ष चल रहा है, वह विश्वव्यापी महत्त्व रखता है। उसकी असफलता केवल भारतके लिए ही एक महान दुर्घटना न होगी, बल्कि वह संसारकी स्वतन्त्रता, न्याय और औचित्यकी समूची नीतिके लिए भी एक भयंकर प्रहार सिद्ध होगी। यह असफलता संसारके राष्ट्रोंमें पशु-बलको नया जीवन दे डालेगी और इससे संसारकी सम्पत्ताको निश्चित रूपसे पीछे हटना पड़ेगा।

दूसरी ओर भारतको स्वतन्त्र बनानेका आंदोलन यदि महात्माजीके नैतिक और आध्यात्मिक उपायोंसे सफल हुआ, तो इससे संसार-भरकी नैतिक और आध्यात्मिक शक्तियोंको बल मिलेगा और मानव-जातिके इतिहासमें एक नये युगका श्रीगणेश होगा।

[उपर्युक्त पत्र डाक्टर जे० टी० सगडरलैण्ड 'विशाल भारत'

सम्पादकको २७ जुलाई १९३३को भेजा था।]

स्पेन और फिलिस्तीन

ब्रजमोहन वर्मा

कहते हैं कि बनारसका मणिकर्णिका घाट और कलकत्तेका नीमतल्ला स्मशान कभी ठंडा नहीं होता। हर वक्त कोई-न-कोई चिता धधका करती है। कुछ ऐसी ही दशा रणचण्डीके खप्परकी जान पड़ती है। वह कभी रीता नहीं रहता। यूरोपियन महायुद्धके समय यह सुनाई देता था कि यह युद्ध अन्तिम युद्ध है। इसके बाद लीग आफ नेशन्सकी स्थापना हुई, केलाग पीस पैकटपर संसारके सभी देशों और राष्ट्रोंने हस्ताक्षर किये। इन सबका उद्देश था संसारमें शान्ति रखना और युद्ध न होने देना; मगर ऐसा होनेसे रणचण्डीका खप्पर खाली हो जाता। लीग आफ नेशन्स और केलाग-पैकटके होते हुए भी जापान चीनपर चढ़ दौड़ा। मंचूरिया युद्धका मैदान बन गया। शंघाईपर तोपोंके मोहरे खुल गये और रणचण्डीका नाच होने लगा।

जापानी सेनाने चीनियोंके रक्तसे तर्पण करनेमें कुछ ढिलाई की ही थी, तब तक दक्षिण-अमेरिकामें ग्रेन-चैंको युद्ध शुरू हो गया; बोलिविया और यूराग्वेमें वज्र उठी और खूब वजी। दक्षिण-अमेरिकाकी भूमि मानव-रक्तसे सींची जाने लगी और रणचण्डीका खप्पर भरने लगा। लगभग दो वर्ष तक दक्षिण-अमेरिकामें लोहे-से-लोहा वज्रता रहा, यहाँ तक कि दोनों लड़नेवाले इतने शल हो गये कि आगे लड़नेका दम ही न रहा। मजबूरन मैदान ठंडा पड़ गया।

अमेरिकासे युद्धकी देवीने अफ्रिकाका रुख किया। इटलीने एवीसीनियापर दाँत लगाये। हव्शकी पहाड़ियोंपर रणचण्डीका डंका बजने लगा। मेशीनगनोंके तालपर मृत्यु नाचने लगी। हवाई-जहाजोंने बम बरसाये। इटैलियनोंने गैस छोड़-छोड़कर हव्शियोंको ज़िन्दा जलाया। छै-सात महीने हव्शका मैदान खूब गर्म रहा। खूनकी नदियाँ वहीं, लोथोंके अम्बार लगे। अन्तमें इटैलियन एवीसीनियाको हड़प कर गये। यद्यपि अब तक एवीसीनियाका मार्का एकदम

सर्द तो नहीं हुआ है—अब भी समय-समयपर राइफलका संगीत और मेशीनगनोंकी लेक्चरबाजी हो जाती है, फिर भी रणचण्डीकी अविराम धूमधाम ज़रूर ही ठंडी पड़ गई है।

एवीसीनियामें लोहा सर्द हुआ, तो स्पेन और फिलिस्तीनमें बजने लगा। इन दोनों जगहोंमें किसी विदेशी शत्रुसे लड़ाई नहीं हो रही है। स्पेनमें तो प्रजातन्त्र शासनके विरुद्ध फासिस्टोंका गृह-युद्ध चल रहा है, और फिलिस्तीनमें अंगरेजोंके खिलाफ़ अरबोंका विद्रोह।

स्पेन

स्पेन बहुत दिनोंसे गड़बड़ीका शिकार है। एक ज़माना था, जब स्पेन यूरोपकी महान शक्तियोंमें था, जब स्पेनिश बादशाहोंकी शान-शौकत और ऐश्वर्य देखकर यूरोपके अन्य बादशाह ईर्ष्या करते थे। स्पेनका दक्षिण-अमेरिकामें विशाल साम्राज्य था; लेकिन जमानेने पलटा खाया और स्पेनकी किस्मतने भी करवट ली। दक्षिण-अमेरिकाके तमाम अधीन देश एक-एक करके स्वतन्त्र हो गये और स्पेन आत्म-विस्मृतिमें गार्क होकर सो गया। पिछली शताब्दीमें यूरोपके अन्य देशोंने सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक क्षेत्रोंमें जो चौकड़ियाँ भरी थीं, स्पेन उनमें एकदम पिछड़ गया। वहाँ उद्योग-धन्धों और ज्ञान-विज्ञान आदिकी वैसी उन्नति नहीं हुई, जैसी इंग्लैण्ड, फ्रांस या जर्मनीमें हुई। इस प्रकार यूरोपकी तुलनामें स्पेन अभी तक उन्नीसवीं सदीमें ही पड़ा है।

स्पेनकी दशा भी भारतकी तरह थी। वहाँ धर्मका बड़ा जोर था, गिरजों और पादरियोंका बड़ा प्रभुत्व था। साधारण जनतामें धर्म और अन्ध-विश्वासका चोली-दामनका साथ है। स्पेनिश पादरी इस अन्ध-विश्वासका नाजायज़ फायदा उठाकर धर्मकी आड़में दुनिया-भरके अधार्मिक कृत्य करते थे। स्पेनमें भी



ऊपर—स्पेनके गृह-युद्धमें सरकार पक्षके सिविल गार्ड गोली मारा रहे हैं
नीचे—सरकारी फौज वालेके बोरोके मोर्चेके पीछेसे वासियोंको मार रही है



व्यावर्तके दिनोंमें वार्सालोना शहरकी एक सड़क

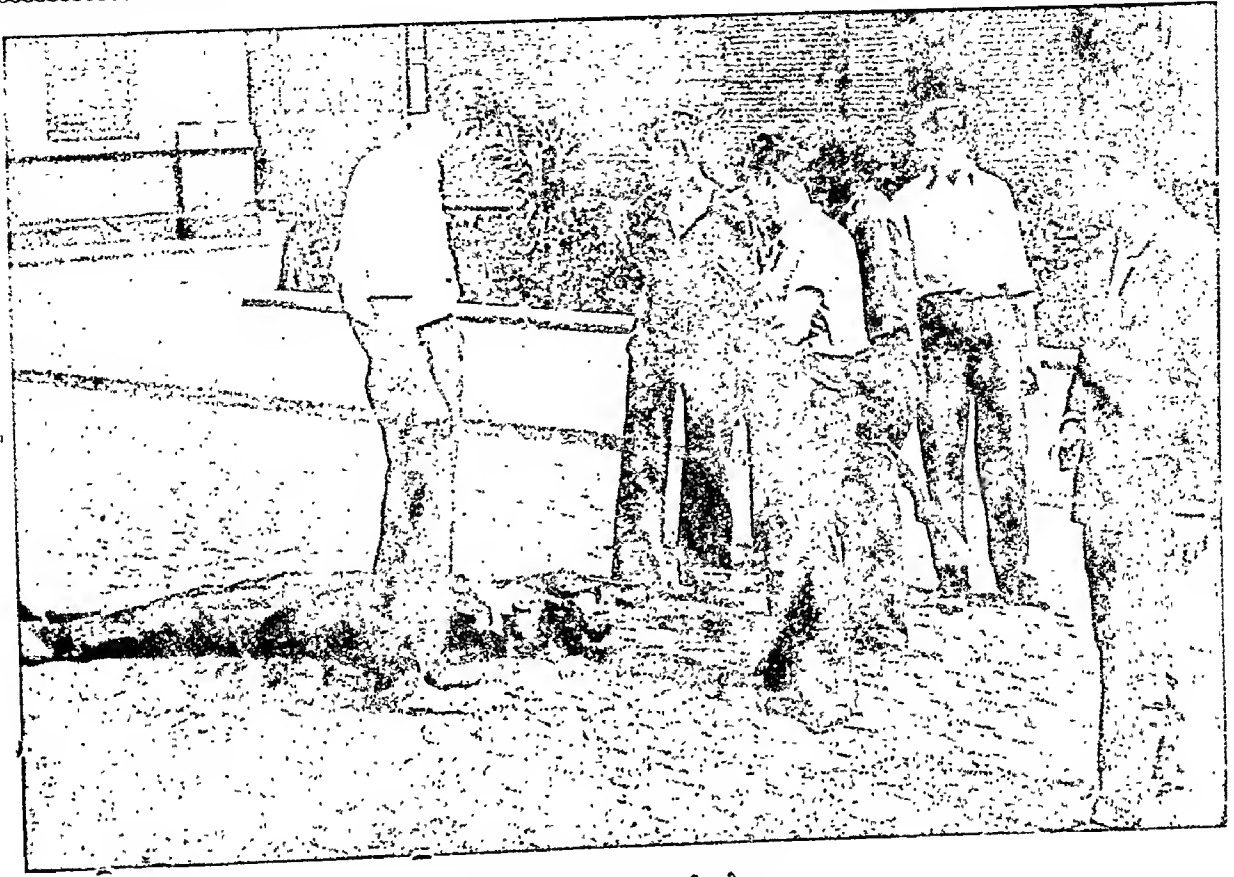
भारतकी भाँति जमींदारी-प्रथा है। किसान गाँवमें खेतपर काम करके मरता है और जमींदार शहरोंमें तोंद फुलाये गुलछेर उड़ाते हैं। कल-कारखानोंमें पूँजीवादी पद्धति वैसी ही है, जैसी अन्य पूँजीवादी देशोंमें ; लेकिन संसारमें मजदूर-आन्दोलनों और साम्यवादकी जो हवा चल रही है, स्पेन भी उससे अछूता न रह सका। वहाँ भी मार्क्सके सिद्धान्त पहुँचे, ट्राट्स्कीके पैरोकार पैदा हुए और लोग-व्राग बाकूनिनके अनुयायी बनने लगे।

स्पेनके गद्दीसे उतरे हुए बादशाह अलफान्सोके शासनकालमें काफ़ी अस्थिरता पैदा हो गई। न-जाने कितनी साजिशें हुई, न-जाने कितने मन्त्रिमण्डल बने और टूटे, कई डिक्टेटर हुए। स्पेनकी फ़ौजमें कुछ छोटी-छोटी फ़ौजी सभाएँ हैं, जो 'जन्टा' कहलाती हैं। मन्त्रिमण्डलों और डिक्टेटरोंको बनाने-विगाड़नेमें इन

फ़ौजी समितियोंका बहुत काफ़ी हाथ रहा है। अन्तमें सन् १९३१ में एक प्रजातन्त्रात्मक विद्रोह हुआ, जिसने स्पेनसे बादशाहीका खात्मा कर दिया। बादशाह अलफान्सोको देश छोड़कर भागना पड़ा और स्पेनमें १४ अप्रैल १९३२को प्रजातन्त्र स्थापित हो गया ; लेकिन इससे भी देशमें शान्ति न हुई।

स्पेनकी अव्यवस्थाका कारण है वहाँ बहुत अधिक राजनैतिक दलोंका होना। स्पेनमें कम-से-कम इतने दल हैं :—(१) शाही पक्षवादी, (२) फ़ासिस्ट, (२) राष्ट्रवादी, (४) पृथक्करणवादी, (५) प्रजातन्त्रवादी, (६) साम्यवादी, (७) समष्टिवादी (मास्को मार्का कम्यूनिस्ट), (८) मार्क्सवादी, (९) अराजकवादी आदि।

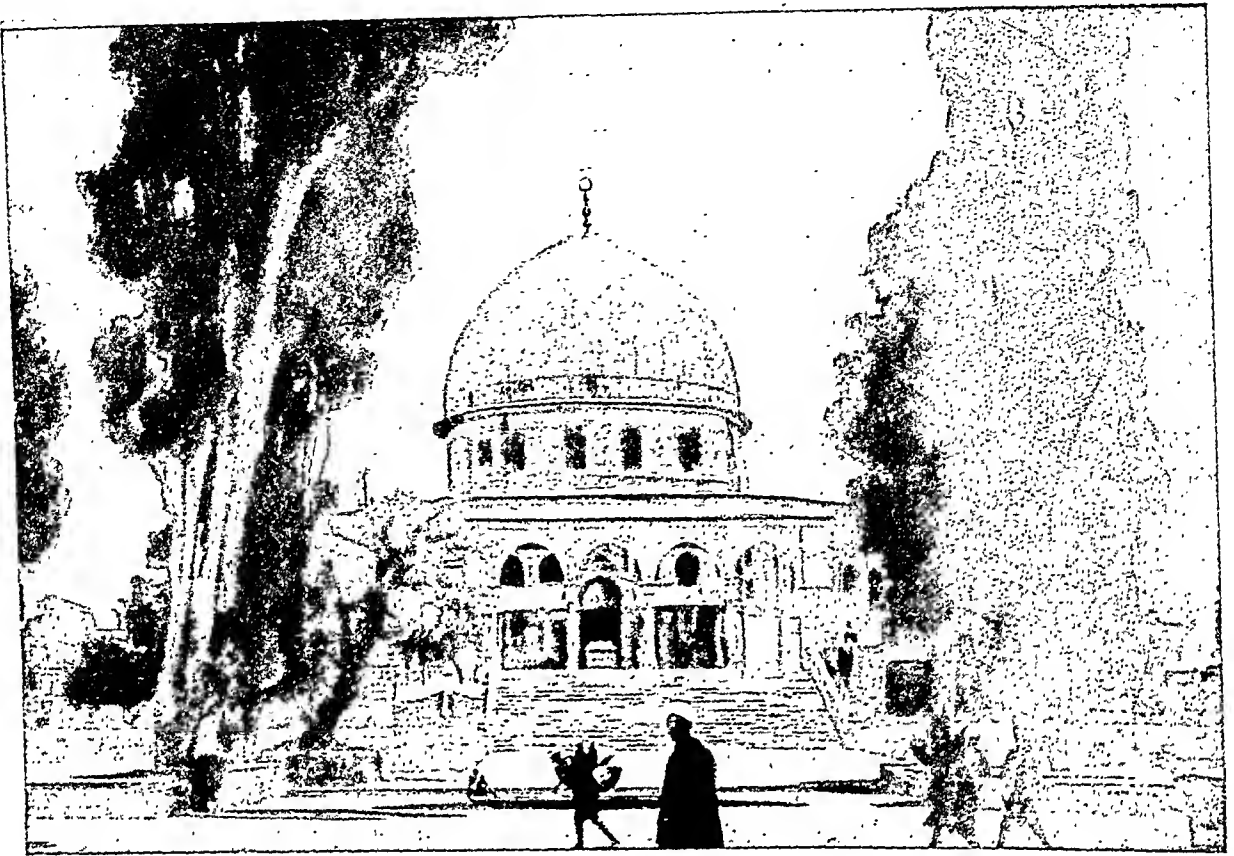
प्रजातन्त्र स्थापित होनेके बाद भी मजदूरों और किसानोंकी आर्थिक और सामाजिक स्थितिमें सरकार



बासीलोनोमें सड़क पर पड़ी हुई लाश

कोई सुधार न कर सकी। नतीजा यह हुआ कि मजदूर और किसान बेचैन हो उठे, और उन्होंने बगावत शुरू कर दिया। सन् १९३१ से अब तक चार विद्रोह हो चुके हैं; मौजूदा विद्रोह पाँचवाँ है। प्रत्येक विद्रोह या क्रान्ति पिछले विद्रोहसे अधिक व्यापक और भयंकर थी। मौजूदा विद्रोह तो पूरा गृह-युद्ध है; लेकिन चूँकि मजदूर और किसान लोग साम्यवादी, समष्टिवादी, मार्क्सवादी, अराजकवादी आदि दलोंमें बँटे थे—फिर तुरा यह कि इनमें से भी हर एक दलमें कई टुकड़े थे—इसलिए उनके सारे विद्रोह और क्रान्तियाँ असफल हुईं, क्योंकि जब एक दलके मजदूर या किसान बगावतका झंडा उठाते थे, तो दूसरे दलवाले उसे किसी तरहकी मदद न देते थे। इन विद्रोहोंमें ज़मींदार और पादरियोंके प्रति काफ़ी विद्वेष दिखाया गया। बहुतसे गिरजे और मठ जलाकर राख कर दिये गये।

गत फरवरी मासमें स्पेनिश प्रजातन्त्रकी व्यवस्थापिका सभाका नया निर्वाचन हुआ। इस निर्वाचनमें तीन उग्र दल—(१) साम्यवादी, (२) कम्युनिस्ट और (३) अराजकवादी आपसमें मिल गये, और उन्होंने ४७० सीटोंमें से २८६ सीटें प्राप्त कर लीं। इन सदस्योंमें जो अधिक उग्र नीतिके थे, वे फ़ौजन ही आर्थिक बातोंमें चरम परिवर्तन करना चाहते थे; लेकिन सरकारने मजदूर-किसानोंकी हालत सुधारने लिए कोई विशेष चेष्टा नहीं की। इसपर मैड्रिडमें बड़ी भारी हड़ताल हो गई। सरकार कुछ दिन पहलेसे फ़ौजी 'जन्टा' की शक्ति कम करनेकी कोशिश कर रही थी। बहुतसे फ़ौजी अफसरोंका उसने मोरक्कोकी दूर-दराज़ जगहोंमें तबादला कर दिया था। ये सब अफसर भीतर-ही-भीतर फ़ासिस्टोंसे मिलकर षड्यन्त्र कर रहे थे। मैड्रिडमें हड़ताल होनेसे आर्थिक स्थिति



जेरुसलमका एक प्रसिद्ध तीर्थ-स्थान, जो चट्टानी गुम्बदके, नामसे प्रसिद्ध है

खराब हो गई। फासिस्टोंने इस मौक़ेको गनीमत जाना और विद्रोह शुरू कर दिया। कहते हैं कि विद्रोहका तात्कालिक कारण व्यवस्थापिका सभाके एक फासिस्ट सदस्य सोटेलोका १३ जुलाई १९३६ को किसी हत्यारेके हाथसे मारा जाना था।

विद्रोह या गृह-युद्धका आरम्भ स्पेनमें न होकर अफ़्रीकाके उत्तरी भाग मोरक्कोमें हुआ। मोरक्कोके राजद्रोही फ़ौजी अफ़सरोंने विद्रोह किया। वे अपनी स्पेनिश फ़ौज तथा मोरक्कोकी मुसलमान फ़ौजोंको साथ लेकर जहाज़ोंपर सवार होकर स्पेन आ गये और वहाँ बग़ावत शुरू हो गई। यह हुई दक्षिणी हिस्सेकी बग़ावत। इसीके साथ देशके उत्तरी भागमें भी फ़ौजोंने बग़ावत कर दी। पहले इन दोनों दलोंका षड्यन्त्र यह था कि उत्तर और दक्षिण दोनों ओरके बागी विजलीकी तेज़ीसे बढ़कर

आनन-फ़ाननमें सरकारी शासन-यन्त्रपर कब्ज़ा कर लेंगे, क्योंकि फ़ौजें प्रायः सभी बागियोंके साथ हैं; लेकिन सिविल गार्डने सरकारका साथ दिया, जिससे आनन-फ़ाननमें सरकारका तख़्ता उलटना सम्भव न हो सका और दोनों ओरसे डटकर लड़ाई होने लगी।

अभी तक देशमें लोग अनेक राजनैतिक दलोंमें विभक्त थे; लेकिन इस लड़ाईने लोगोंको एक-न-एक ओरका पक्ष लेनेके लिए मजबूर किया। लिहाज़ा अब या तो लोग अपनेको फासिस्ट कहते हैं या मार्क्सवादी। इस युद्धमें एक ओर हैं बादशाही पक्षवाले, फ़ौजी, नौकरशाह, मिल-मालिक, बड़े ज़मींदार और पादरी, और दूसरी ओर हैं मज़दूर, किसान और छोटे दूकानदार। कहते हैं कि डान जुआन मार्च नामक एक बहुत बड़ा धनी रुपये-पैसेसे

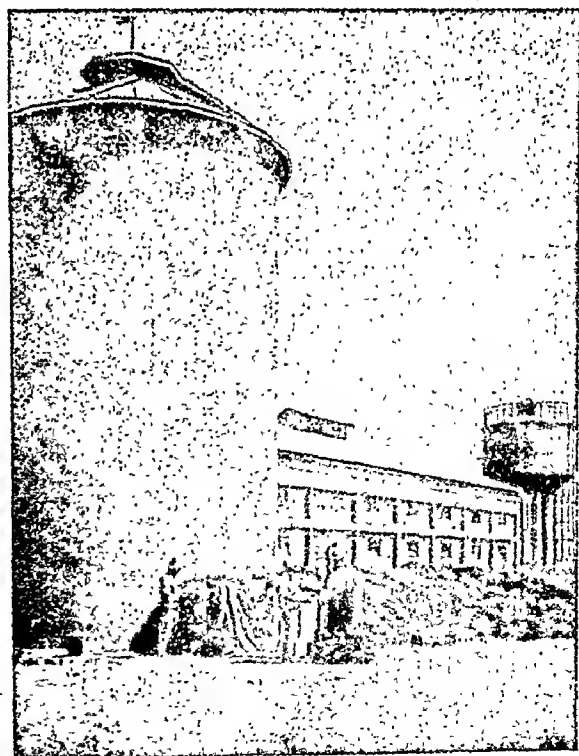


फिलिस्तीनमें जार्डेनकी घाटीमें यहूदियोंका बसाया हुआ एक नया वसतिगृह

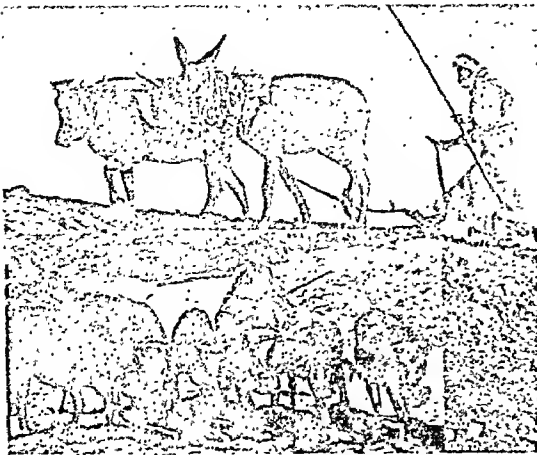
बागियोंको मदद दे रहा है। दोनों ओरसे भयंकर खूनखराबी हो रही है। आदमीकी जानकी कोई कीमत नहीं रह गई। बात-की-बातमें सैकड़ों निरस्त्रोंको गोली मार दी जाती है। लार्शें सड़कोंपर छोड़ दी जाती हैं।

स्पेनिश गृह-युद्धमें कुछ विदेशी शक्तियाँ कोढ़में खाजका काम कर रही हैं। इटली, जर्मनी और पोर्चुगाल विद्रोहियोंको अस्त्र-शस्त्रसे मदद पहुँचा रहे हैं। यद्यपि इंग्लैण्ड और फ्रान्सवाले चाहते हैं कि इस घरेलू युद्धमें बाहरी लोग दस्तन्दाजी न करें; लेकिन ऊपरसे हाँ-हाँ करते हुए भी विदेशी राष्ट्र बागियोंको मदद दे रहे हैं। इंग्लैण्डकी बहुत बड़ी पूँजी स्पेनमें लगी है, जिसका मुनाफा अंगरेज खाते हैं। उनका खयाल है कि मजदूर किसानोंकी जीतसे उनके हितोंमें हानि होगी। अतः ये पूँजीपति भी बागियोंके पक्षमें हैं। यह खबर भी मशहूर है कि इटलीने बागियोंको इस शर्तपर मदद दी है कि बागी क्यूटा और मनोरिका इटलीको दे डालेंगे। इन स्थानोंको पाकर भूमध्य-सागरमें इटली अंगरेजोंकी ताकत तोड़ देगा। क्यूटापर कब्जा कर लेनेसे जिब्राल्टरका सारा महत्त्व कम हो जायगा। इन सब बातोंने यूरोपकी राजनैतिक स्थितिमें

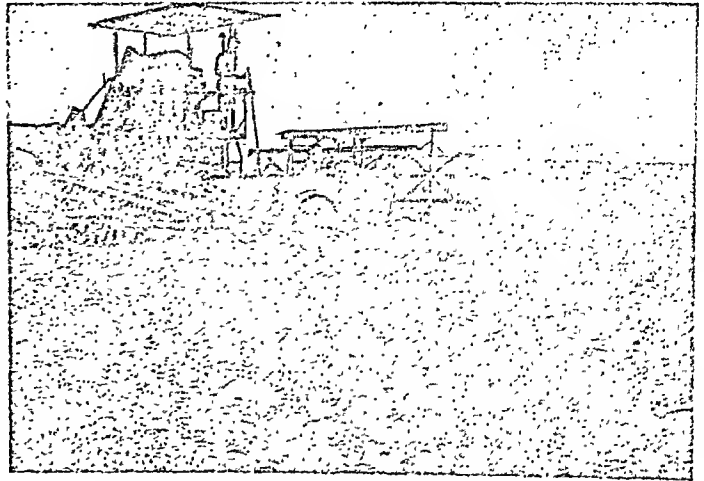
बड़ा गड़बड़-घोटाला कर रखा है। यूरोपके कुटिल राजनीतिज्ञ अपना मतलब गाँठनेके लिए चालें चल रहे हैं। हिटलर बागियोंकी जीतपर बघाईका तार भेजता है, और स्पेनियोंके खूनकी नदियाँ बह रही हैं।



क्यूटा मिसरा नामक गाँवमें यहूदियोंका एक अन्न-संग्रार



अरब किसान बाबा आदमके ढंगपर खेती करते हैं



यहूदी किसान नवीनतम मेशीनसे खेती करते हैं

फिलिस्तीन

अब फिलिस्तीनकी कथा सुनिये। फिलिस्तीन संसारके प्राचीनतम देशोंमें है। उसका इतिहास यूरोपियन देशोंसे कहीं पुराना है। यहूदी उसके आदि-निवासी हैं। अबसे चार हजार वर्ष पहले चाल्डियन लोगोंने उसपर कब्जा करके यहूदियोंको गुलाम बनाया था। उसके बाद फिलिस्तीनपर रोमनोंका अधिकार हुआ। अबसे लगभग दो हजार वर्ष पहले

फिलिस्तीनके प्रधान नगर येरूसलम उर्फ जेरूसलममें ही ईसा मसीहका जन्म हुआ था। उनका आदि-स्थान होनेसे जेरूसलम यहूदियोंका तीर्थ-स्थान तो था ही, ईसाके जन्मसे वह ईसाइयोंका तीर्थ-स्थान हुआ और आगे चलकर मुसलमानोंका तीर्थ-स्थान बना। इस प्रकार आजकल यहूदी, ईसाई और मुस्लिम तीनों ही उसे तीर्थ मानते हैं।

सातवीं शताब्दीमें इस्लाम और अरबोंका बोलबाला हुआ, और उन्होंने फिलिस्तीनपर कब्जा जमाया। धीरे-धीरे इस्लामका जोर इतना बढ़ा कि फिलिस्तीनसे यहूदी प्रायः नेस्तनाबूद हो गये। लगभग १३०० वर्ष तक फिलिस्तीन मुसलमानोंके हाथमें रहा। मध्य-युगमें यूरोपके ईसाई राज्योंने मिलकर अपनी तीर्थ-भूमि मुसलमानोंके हाथसे छुड़ानेके लिए पचासों वर्ष तक युद्ध किया; किन्तु सफलता न मिली। फिलिस्तीन पहले अरब मुसलमानोंके हाथमें रहा, फिर तुर्कोंके हाथमें रहा, यद्यपि उसके अधिवासी अरब ही हैं।



नहलाल नामक स्थानमें यहूदी लड़कियोंको खेती सिखानेका एक स्कूल

यहूदी फिलिस्तीनसे निकलकर दुनियाके कोने-कोनेमें फैल गये। उनका अपना कोई स्वदेश न रहा। चूँकि ईसा मसीहकी सलीबपर लटकानेवाले लोग यहूदी ही थे, इसलिए यूरोपके ईसाई सदासे उन्हें घृणाकी दृष्टिसे देखते रहे। उनपर तरह-तरहके अत्याचार होते थे, और वे पग-पगपर अपमानित किये जाते थे। उनका न तो अपना कोई देश रहा और न अपनी सरकार। दुनियाके ईसाई देशोंमें भी सरकारी नौकरियोंका दरवाजा उनके लिए बन्द था। लिहाजा यहूदी स्वभावतः रोजगारकी ओर झुके। पुश्तहा-पुश्तसे एक ही पेशा करते रहनेसे वे व्यापारमें बड़े चतुर हो गये। संसारके प्रत्येक देशके रोजगारियोंमें थोड़े बहुत धनाढ्य यहूदी जरूर मिलेंगे। भारतमें भी हैं। पिछली शताब्दीमें पश्चिमी यूरोपके देशोंमें यहूदियोंके प्रति घृणाके भाव कुछ ढीले पड़ गये, इसलिए उन्होंने डाक्टर, वकालत, विज्ञान आदि पेशोंमें भी घुसकर काफ़ी उन्नति की। यहूदियोंकी प्राचीन भाषा हिब्रू थी। आदि बाइबिल भी इसी भाषामें लिखी गई थी; लेकिन भिन्न-भिन्न देशोंमें बसकर यहूदी वहाँकी भाषा बोलने लगे और हिब्रू हमारी संस्कृतके समान मुर्दा होकर केवल धार्मिक ग्रन्थोंकी ही भाषा रह गई। दुनियाके कोने-कोनेमें बसकर भी यहूदी फिलिस्तीनको अपनी पितृभूमि मानते रहे और भविष्यमें उसे फिर कभी यहूदी-देश बनानेका स्वप्न देखते रहे। इंग्लैण्डके धनकुवेर राथ्सचाइल्डने बहुत धन खर्च करके फिलिस्तीनमें यहूदी-उपनिवेश बसानेका प्रयत्न भी किया था, जो उस समय सफल न हुआ। ज़ारशाहीने रूसी यहूदियोंपर अगणित अमानुषी अत्याचार किये थे, जिससे त्रस्त होकर उन्नीसवीं शताब्दीके अन्तमें अनेक रूसी यहूदी आ-आकर फिलिस्तीनमें बसने लगे थे; लेकिन उस समय इस प्रकारके आगन्तुकोंका औसत लगभग १००० व्यक्ति प्रतिवर्ष था।

सातवीं शताब्दीसे लेकर १९१७ तक फिलिस्तीन मुसलमानोंके अधिकारमें रहा। सन् १९१४ में जब

यूरोपियन महायुद्ध आरम्भ हुआ, तो टर्कीने जर्मनीका साथ देकर अंगरेज और उनके मित्रोंसे शत्रुता की। इसपर सुप्रसिद्ध षड्यन्त्रकारी कर्नल लारेन्सने अरबोंको टर्कीके खिलाफ़ बगावतपर आमदा किया। अंगरेजोंने २४ अक्टूबर सन् १९१५ को मक्केके शरीफ़ हुसेनसे एक गुप्त सन्धि की, जिसमें यह तैय्य हुआ कि अरब लोग टर्कीके विरुद्ध बगावत करके अंगरेजोंका साथ देंगे और बदलेमें अंगरेज लड़ाईके बाद अरबकी स्वतन्त्रताको स्वीकार करेंगे और उसका समर्थन करेंगे। इस सन्धिमें अरबकी जो सीमाएँ बताई गई थीं, उनमें अदन, सीरिया, मर्सिना और एलेक्जेंड्रेटाके जिले छोड़ दिये गये थे। इन सीमाओंके अनुसार फिलिस्तीन स्वाधीन अरबमें आता है। दिसम्बर सन् १९१७ में अंगरेजी क्राउनने अरबी क्राउनकी सहायतासे फिलिस्तीन फतह कर लिया।

इसी समय संसारके धनी यहूदियोंकी सहानुभूति प्राप्त करनेके लिए ब्रिटिश मन्त्री मि० बालफोरने एक घोषणा की कि लड़ाई जीतनेपर फिलिस्तीनको यहूदी लोगोंका राष्ट्रीय स्वदेश बना दिया जायगा। युद्ध समाप्त होनेपर अरबोंसे जो-जो वादे किये गये थे, वे हवा हो गये। कर्नल लारेन्सने मित्रराष्ट्रोंके विश्वासवातपर बहुत प्रतिवाद किया; लेकिन कुछ न हुआ। वार्साईकी सन्धिके अनुसार लीग आफ नेशन्सकी देख-रेखमें सीरियापर फ्रेंचोंका और फिलिस्तीनपर अंगरेजोंका राज्य हो गया। लीगने फिलिस्तीनको यहूदियोंका राष्ट्रीय स्वदेश बनाना स्वीकार कर लिया; लेकिन यह शर्त लगा दी कि इससे वहाँके मौजूदा वाशिन्दोंके नागरिक और धार्मिक अधिकारोंपर कोई आँच न आये। उस समय फिलिस्तीनकी आबादीमें ६३ प्रतिशत अरब थे और उनकी संख्या ६,६४,००० थी।

अब फिलिस्तीनमें यहूदियोंका आना शुरू हुआ। पहले तो व्यक्तिगत रूपसे ही यहूदी आये। बादमें यूरोप और अमेरिकामें कई ज़ियानिस्ट (यहूदी) संस्थाएँ फिलिस्तीनमें बसनेवाले यहूदियोंको मदद देनेके

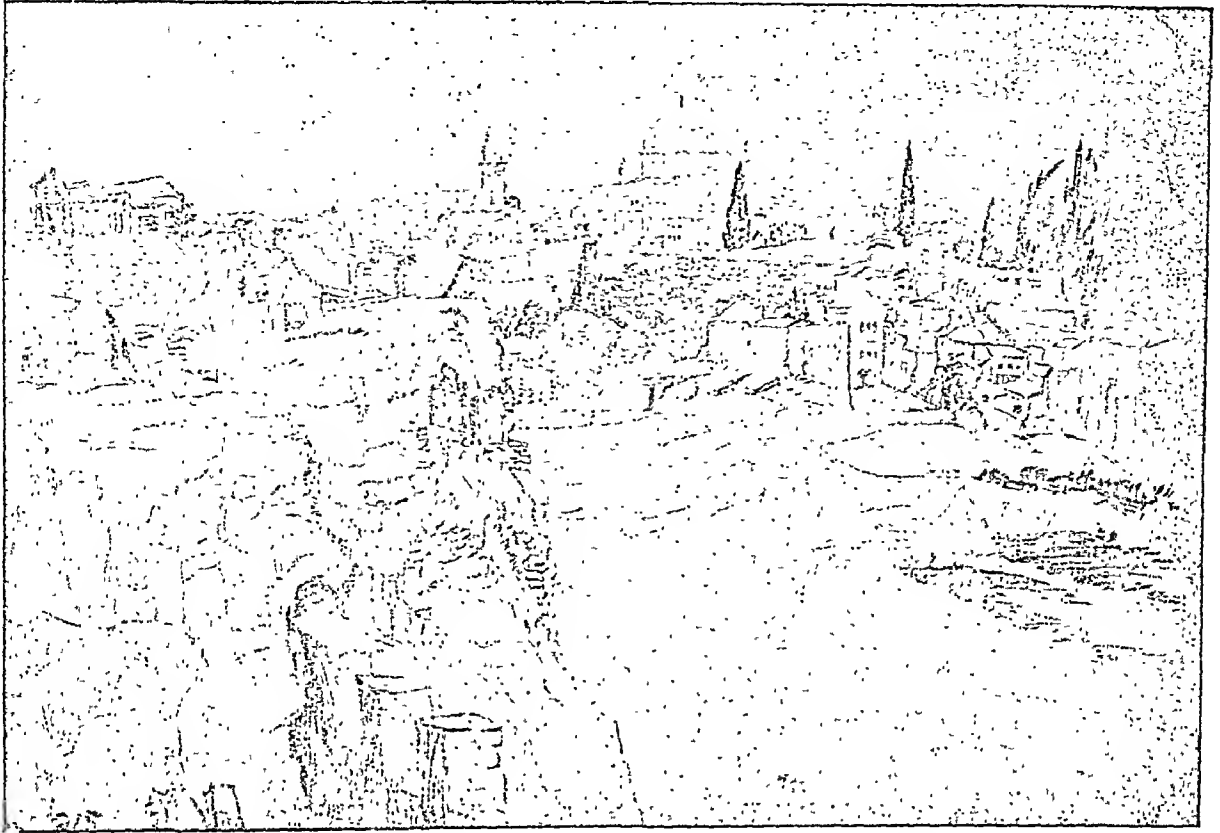
लिए वन गई और उनकी सहायतासे यहूदी वहाँ पहुँचने लगे। यद्यपि यह नियम बना दिया गया है कि फिलिस्तीनमें बसनेके लिए जानेवाले प्रत्येक यहूदीके पास कम-से-कम १,००० पौण्ड (१३,५०० रु०) की रकम होनी चाहिए ; किन्तु इससे यहूदियोंकी आमदमें कोई रुकावट नहीं हुई, क्योंकि उनकी पीठपर जो ज़ियानिस्ट संस्थाएँ हैं, वे दुनिया-भरके धनकुवेर यहूदियोंके सहारे चलती हैं और उनके पास अमित धन है। आरम्भिक वर्षोंमें १०,००० नये यहूदी प्रतिवर्ष फिलिस्तीनमें बसनेके लिए आते रहे। इन लोगोंने आ-आकर अरबोंकी ज़मीनें खरीदीं और अपने कारवार फैलाये। इस प्रकार बहुतसे अरब वे-ज़मीनके हो गये। स्वतन्त्रता न मिलनेसे फिलिस्तीनके अरब पहलेसे ही जले-भुने बैठे थे, अब यहूदियोंकी आमदसे और ज़मीनें हाथसे निकल जानेसे वे और भी विगड़ उठे। लिहाज़ा यहूदियोंके विरुद्ध और ब्रिटिश शासनके विरुद्ध उनमें अर्थकर रोष फैलने लगा। नतीजा यह हुआ कि वहाँ अर्थकर दंगे हुए। इस तरहके खून-खराबीके चार दंगे हो चुके हैं। मौजूदा विद्रोह पाँचवाँ है। हरएक दंगेके बाद ब्रिटिश पार्लामेंटने दंगोंकी जाँचके लिए शाही कमीशन नियुक्त किया ; लेकिन फिलिस्तीनकी समस्याका चिरस्थायी समाधान न हो सका।

फिलिस्तीनके अरब कृषि-जीवी हैं, और उनकी दशा हमारे भारतीय किसानों-जैसी ही है। उनकी खेतीका ढंग बाबा आदमके ज़मानेका है। गधों और ऊँटोंसे खेती होती है। सिंचाई आकाशी वर्षापर निर्भर करती है, और अरबी किसान अपनी किस्मतपर और अल्लाह मियाँकी मेहरबानीपर निर्भर करता है। फिलिस्तीनकी भूमि रेतीली और पहाड़ी है। वरसातकी कमीसे उसमें उपज भी कम होती थी।

यहूदियोंने आकर पहले तो अलग-अलग व्यक्तिगत रूपसे खेती शुरू की ; किन्तु उसमें उन्हें विशेष सफलता न मिली। इसपर उन्होंने रुससे सवक लिया और सहयोगी समितियाँ बनाकर सोविण्ट रुसकी

सामूहिक खेतियों (Collective Farms) के तरीक़ेपर खेती शुरू की। उनके पास धन भी है, विद्या भी है, बुद्धि भी है। उन्होंने जगह-जगहपर कृषि-विज्ञानकी प्रयोगशालाएँ खोलीं, जिनमें मिट्टीकी परीक्षा की गई कि किस ज़मीनमें कौन चीज़ अच्छी पैदा हो सकती है ; वृद्धोंकी परीक्षा हुई कि कौन-कौनसे विदेशी वृद्ध फिलिस्तीनकी मिट्टी और वायुहवामें पनप सकते हैं। खेतीके नये-से-नये यन्त्रों और मशीनोंका उपयोग किया गया। जार्डन नदीसे, जो ईसाइयों और यहूदियोंके लिए गंगाकी तरह पवित्र है, नहरें निकालकर तथा तालाबों, झीलें और कुओंसे पाइप आदि लगाकर सिंचाईका प्रबन्ध किया गया। दस वर्ष पहले ५ लाख घनमीटर पानीसे सिंचाई होती थी, अब ७ करोड़ घनमीटरसे होती है। इन सब उपायोंसे फिलिस्तीनका सूखा-खंड रेगिस्तान हरा-भरा लहलहा-डहडहा बन गया। उन्हीं खेतोंकी उपज पहलेसे अठगुनी हो गई। भूमध्य-सागरके समीपके सभी स्थान फलोंके लिए प्रसिद्ध हैं। फिलिस्तीनमें भी फल खूब होते थे। यहूदियोंने फलोंकी पैदावारमें खूब उन्नति की। अंगूरकी खेती बढ़ाई और नारंगी तो खूब ही पैदा की। नारंगी फिलिस्तीनकी खास पैदावार हो गई है। पहाड़ोंपर चीड़के जंगल उगाये गये, जिसकी लकड़ी विदेशोंमें बेचकर आमदनी की जाने लगी। साथ ही उन्होंने गोभी, आलू, टोमाटो आदि भी उपजाना शुरू किया। किन्तु यह देखकर कि केवल ज़मीनकी उपजपर ही निर्भर करना ठीक नहीं है, उन्होंने जानवरों—गाय, बैल, मुर्गी, बत्तख आदि—के पालनेका रोज़गार भी चलाया। गायोंके लिए चरागाह बनाकर हज़ारों मन चारा पैदा किया और नये वैज्ञानिक तरीक़ोंपर चलकर गायोंका दूध खूब बढ़ाया।

रोज़गार-व्यापारमें यहूदी चतुर तो होते ही हैं, लिहाज़ा उन्होंने खेती-बारीके इन कामोंके साथ-साथ तरह-तरहके कल-कारखाने और उद्योग-धन्धे भी खोल दिये। उद्योग-धन्धोंसे अछूता देश, सहयोगी-समितियोंकी प्रणाली, ज़ियानिस्ट राष्ट्रीय फण्डकी अमित



जेरुसलमकी 'वेर्लिगवाल' (मसिया दीवार), जिसके नीचे बैठकर लोग ईसाकी फाँसीके लिए रोते हैं । इस दीवारके नीचे पूजा करना भी फिलिस्तीनके भगड़ेका एक कारण है

धनराशि, व्यापारकी पैदाइशी कुशलता और यहूदियोंके अथक परिश्रम और अध्यवसायने उनके उद्योग-धन्धोंको खूब चमकाया । पिछले कुछ वर्षोंमें जब सारा संसार व्यापारकी मन्दीसे परेशान था, उस समय फिलिस्तीन तेज़ीसे व्यापारिक समृद्धिकी ओर बढ़ रहा था ।

फिलिस्तीनमें जगह-जगह यहूदियोंके उपनिवेश—गाँव और क़स्बे—बस गये । इन वस्तियोंमें सब प्रकारकी आधुनिक सुविधाओं—तार, टेलीफोन, पाइप, बिजली आदि—का प्रवन्ध किया गया । उन्होंने अपने बच्चोंको तालीम देनेके लिए स्कूल स्थापित किये । जेरुसलममें ज़ियानिस्ट विश्वविद्यालय स्थापित किया गया । सैकड़ों वर्षोंकी मुरदा हिब्रू भाषा फिरसे जीवित की गई और उसमें अखबार ही प्रकाशित नहीं होने

लगे, बल्कि नवीनतम वैज्ञानिक विषयोंकी पुस्तकें भी लिखी और छापी जाने लगीं ।

हिटलरने जर्मन यहूदियोंपर जो जुल्म किये हैं, उन्हें दुनिया जानती है । हिटलरकी मारसे त्रस्त होकर और फिलिस्तीनकी खुशहाली देखकर जर्मनीके भागे हुए यहूदियोंने भी फिलिस्तीनका ही रुख किया । नतीजा यह हुआ कि फिलिस्तीनमें यहूदियोंकी वाढ़ आ गई । जहाँ पहले औसतमें १०,००० नये यहूदी फिलिस्तीनमें आते थे, वहाँ सन् १९३३ में ३१,००० आये । सन् १९३४में उनकी संख्या ४३,००० और सन् १९३५में ६२,००० तक जा पहुँची । चोरी-छिपे (Smuggling) आनेवाले इससे अलग हैं । इस प्रकार पिछले तीन वर्षमें लगभग १,५०,००० नये यहूदी फिलिस्तीनमें

पहुँचे। सन् १९२२ में फिलिस्तीनमें उनकी संख्या ५०,००० थी, तो अब ४,००,००० हो गई। यद्यपि इस बीचमें अरबोंकी आवादी भी बढ़ी, और वे ६,६४,००० से बढ़कर ९,६०,००० हो गये हैं; लेकिन यहूदियोंके अनुपातमें उनकी वृद्धि कुछ भी नहीं है।

यहूदियोंकी इस बाढ़से अरब बौखला उठे और उन्होंने बगावत कर दी। यह बगावत पहले तो देशव्यापी आम हड़ताल और यहूदी-विरोधी दंगोंके रूपमें शुरू हुई, बादमें उसने गोरिल्ला-युद्धका रूप धारण कर लिया। ब्रिटिश फौज प्रान्त-भरका गश्त लगाती घूमती है। विद्रोही अरबोंकी हथियारबन्द टोलियाँ इधर-उधर छिपी बैठी रहती हैं और मौका पाते ही सरकारी फौजपर गोलियाँ दनदनाने लगती हैं। इधरसे भी मेशीनगनोंसे जवाब दिया जाता है। थोड़ी देरके लिए मार्का गर्म हो जाता है। रणचण्डीका खप्पर भरने लगता है। अरब लोग दो-चारकी जानें लेकर और अपने दो-चारकी जानें गँवाकर चम्पत हो जाते हैं। फिलिस्तीनकी अंगरेजी फौज लारी, तोप, मेशीनगन, बम और हवाई-जहाज रखते हुए भी इन बागियोंको दबा न सकी, इसलिए इंग्लैण्डसे फौजें बुलाई गई हैं।

अरबोंकी तीन माँगें हैं—(१) उन्हें स्वायत्त शासन

मिले, (२) उनकी ज़मीनें उन्हींके कब्जेमें रहें और (३) फिलिस्तीनमें यहूदियोंका आना एकदम रोक दिया जाय। ब्रिटिश सरकार कहती है कि पहले यह हड़ताल और मार-काट बन्द करो, तब तुम्हारी शिकायतें सुननेके लिए शाही कमीशन मुकर्रर किया जायगा। मगर अरब लोग शाही कमीशनोकी क्रीमत अच्छी तरह जानते हैं, वे इसके लिए तैयार नहीं। अब तक सरकारी रिपोर्टके अनुसार लगभग ४०० आदमी जानसे मारे जा चुके हैं। दर असल मरनेवालोंकी संख्या कितनी है, इसका पता नहीं। सारे देशमें मार्शल लॉकी घोषणाकी सारी तैयारी हो चुकी है; लेकिन एक बार फिर सुलहकी कोशिश हो रही है। यदि अंगरेजी सरकारका निजी मामला होता, तो वह फिलिस्तीनमें भी वही साम्राज्यवादी नीति काममें लाती, जो वह अपने अधीन अन्य देशोंमें बरतती है; मगर इस मामलेमें लीग-आफ-नेशन्सका भी हाथ है। ब्रिटिश सरकार फिलिस्तीनके शासनके लिए लीग-आफ-नेशन्सके प्रति जवाबदे है। इससे उसका पोजीशन नाजुक हो जाता है। लीगकी पिछली बैठकमें इस मामलेमें अंगरेजोंकी कड़ी आलोचना भी हुई थी। फिलहाल तो रणचण्डीका खप्पर भर रहा है, आगे देखें क्या होता है।



चलता-फिरता घर

श्री हरि जी० गोविल

अमेरिकाके सामाजिक तथा आर्थिक जीवनमें बड़े-बड़े परिवर्तन करनेवाले जितने आधुनिक वैज्ञानिक आविष्कार हुए हैं, उनमें मोटरगाड़ी, टाइपराइटर तथा चलचित्रका आविष्कार अत्यधिक प्रभावशाली साबित हुआ है। स्त्रियोंको व्यापारिक दुनियामें पुरुषोंकी अनिवार्य सहायिका बनानेमें टाइपराइटरके आविष्कारने जितना बड़ा काम किया है, उनमें गति-स्वातन्त्र्य लानेमें मोटरोंने उतना ही काम किया है। आज अमेरिकामें पुरानी चालका जीवन बिखर-सा गया है, और स्त्री-पुरुषोंका एक नया सम्बन्ध और नया जीवन हो गया है, जिसमें दोनों एक दूसरेके, अधिकाधिक जीवन-संगी तथा जीवन-संगिनी बन रहे हैं। इस नवीन परिवर्तनको लानेमें मोटरके आविष्कारने बड़ा काम किया है।

आज मोटरगाड़ियोंका व्यवहार अमेरिकाके जीवनमें अपूर्वरूपसे व्यापक बन रहा है। वहाँ इतनी मोटरें दैनिक व्यवहारमें लाई जा रही हैं कि यदि उनमें से हरएक मोटरमें छे नर-नारी बैठें, तो अमेरिकाकी सारी जनसंख्या उनमें बैठ सकती है। मोटरोंकी उतनी ही कीमत रखी गई है, जितनी वहाँके साधारण आदमीके आर्थिक सामर्थ्यके अन्दर है। वहाँ कारखानेका साधारण मज़दूर भी अपनी मोटरमें बैठकर कामपर जाता है।

अमेरिकाकी सड़कें संसार-भरकी सड़कोंसे अच्छी हैं। वे खासकर मोटरोंके चलनेकी सुविधाकी दृष्टिसे ही तैयार की गई हैं। प्रधान सड़कोंपर जगह-जगह मोटरोंमें भरनेके लिए गैसके स्टेशन, मोटरखाने, मरम्मतकी दूकानें, चाय-पानीके स्थान, विश्राम-गृह, भोजनालय आदि सुविधाएँ मौजूद हैं। मोटर-यात्रियोंकी वृद्धिके कारण सड़कोंके निकटवर्ती किसान भी इस प्रकारकी कोई-न-कोई दूकान खोलकर, या अपने गाँवोंकी बनी-चीजोंकी हाट लगाकर, चार पैसे कमानेका रास्ता निकाल लेते हैं। मोटर-यात्राकी

असाधारण वृद्धिका अनुमान आप इसीसे कर सकते हैं कि सारे अमेरिकामें होनेवाली मृत्यु-संख्यामें २१ प्रतिशत मृत्युएँ केवल मोटर दुर्घटनाओंसे ही होती हैं।

स्वभावतः मोटरगाड़ियोंकी रेल तथा हवाई-जहाजोंसे बड़ी प्रतियोगिता चलती है। आधुनिक सारे आराम तथा सुविधाओंसे सुसज्जित लारियाँ प्रशान्त और एटलान्टिक महासागरोंके बीच—जिसकी दूरी ३००० मील है—बराबर चलती हैं। जब लोग छुट्टियोंमें हवाखोरी या आमोद-प्रमोदके लिए शहरोंसे बाहर जाना चाहते हैं, तो उनकी पहली आवश्यकता होती है मोटर। जहाँ अपनी मोटर नहीं हुई, वहाँ कई मित्र मिलकर एक गाड़ी भाड़ेपर ले लेते हैं और उसका खर्च सभी लोग आपसमें बाँट लेते हैं। जहाँ रेल नहीं जाती, वहाँ मोटर आपको सीधे देशके भीतरीसे भीतरी भागोंमें पहुँचाकर उनके अनेक छुपे हुए रमणीक स्थलोंको दिखला देती है।

मोटरोंका एक नया प्रयोग अब निकला है। मनुष्यकी सबसे बड़ी जरूरत है रहनेका मकान। इसी जरूरतकी वजहसे दुनियामें शहर बसे हैं। यद्यपि आज भी दुनियामें कुछ खानाबदोश जातियाँ ऐसी हैं, जो एक ठिकाने जमकर नहीं रहतीं। अरबके बहू, मंगोलिया-मंचूरियाकी कुछ जातियाँ, यूरोपके जिप्सी और भारतके कंजड़ आदि लोग खानाबदोश जीवन व्यतीत करते हैं। मोटरोंके नये प्रयोगने अमेरिकनोमें खानाबदोश जीवन बितानेकी प्रबल इच्छा उत्पन्न कर दी है। अब ऐसी मोटरें बनने लगी हैं, जिनमें बैठने और खानेके कमरे, सोनेके कमरे, रसोईघर, गुसलखाना, पाखाना, सड़ियों में कमरे गर्म रखनेका प्रबन्ध, बिजलीकी रोशनी, टेलिफोन, रेडियो—गरज कि सारी आधुनिक सुविधाएँ मौजूद हैं। मोटर क्या हैं, पहियोंपर चलते-फिरते मकान हैं। इन मकानोंमें हजारों अमेरिकन परिवार अपनी-अपनी गृहस्थी लिये घुमते हैं। एक अमेरिकन पत्रके एक

लेखसे इन खानाबदोश अमेरिकनोके जीवनका वृत्तान्त 'विशाल भारत' के पाठकोंके विनोदार्थ सुनाता हूँ :—

अमेरिकाकी एक कहावत है—'बड़े चलो।' मौजूदा अमेरिकनोके पुरखे जब नये-नये आकर अमेरिकामें बसना शुरू हुए थे, तब वे जब जी चाहता था, तब अपना सारा माल-मत्ता बैल या घोड़ा गाड़ियोंपर लादकर दूसरे स्थानमें बसनेके लिए चल देते थे। अब यह चलन चला है कि सारे वरको ही पहियोंपर चढ़ाकर मोटरके सहारे सड़कोंपर दौड़ाये चलो।

सन् १९३६ के शुरूमें हिसाब लगाया गया था कि उस समय लगभग ३,००,००० अमेरिकनोकी गृहस्थियाँ पहियोंपर होंगी। अब एक प्रख्यात इंजीनियरकी भविष्यवाणी है कि तीस सालके अन्दर अमेरिकाकी आधी गृहस्थियाँ सचल हो जायँगी। एक दूसरे भविष्यवक्ता तो दस साल और भी कम किये देते हैं। उनका कहना है कि बीस सालके अन्दर ही आवे अमेरिकन पहियोंपर रहने लगेंगे। यदि ये भविष्यवाणियाँ सही उतरीं, तो आप बनी-बनाई और सजी-सजाई गृहस्थियाँ उसी तरह खरीद सकेंगे, जैसे आज मोटर खरीदते हैं। यदि आप अपने पड़ोसीपर नाराज हुए, या किसी टैक्सकी ज्यादातीसे नाखुश हुए, तो बस मोटरका पहिया घुमाया और पन्द्रह मिनटमें दूसरी जगह जा बसे।

यदि आप भविष्यवक्ताओंपर ज्यादा विश्वास करना न चाहें, तो आइये, एक सीधे-सादे सज्जनकी बातें आपको सुनाऊँ। इनकी उमर ६७ सालकी है और पेशा है बढ़ईगीरी। एक दिन मैक्सिकोकी खाड़ीकी बालूके किनारे मेरी अचानक इनसे जान-पहचान हो गई। ये हज़रत अपने हाथों बनाये हुए गृह-यानके सामने खड़े चुरट फ्रँक रहे थे। मुझे इनकी गाड़ी बहुत पसन्द आई। वुड्जने कहा कि यह गश्ती ज़िन्दगी बड़े मजेकी ज़िन्दगी है। उनकी वृद्धा स्त्रीने मुसकराते हुए इसकी तारीफ़ की। सन्

१९३४के अन्तमें इन्होंने केवल जाड़ा बितानेके लिए ही इस गृह-यानपर दक्षिणकी यात्रा की थी; पर यह नई ज़िन्दगी इन्हें इतनी पसन्द आई कि तबसे वे निरन्तर इसी तरह बसर कर रहे हैं। इन दो सालोंमें उन्होंने अमेरिकाकी बाईस रियासतोंको छान डाला है।

आखिर उन्होंने ऐसा सुन्दर गृह-यान मटपट तैयार कैसे कर लिया? कहने लगे—“मैं और मेरी पत्नी निश्चल ज़िन्दगीसे आजिज़ आ गये थे। एक दिन मैंने सड़कोंपर कई गृह-यानोंको गुज़रते देखकर अपनी स्त्रीसे कहा कि ऐसा चलता-फिरता घर तो मैं भी तैयार कर सकता हूँ। किया भी वैसा ही। पुरानी मोटरोंके टूटे-फूटे हिस्से लेकर लोहारोंसे इसका चैसिस (ढाँचा) तैयार कराया। मैं ठहरा बढ़ई, सो ऊपरकी बॉडी बनाना तो मेरे बाएँ हाथका खेल था। दो महीनेमें इसे तैयार काके आज़माया, तो खूब ही निकला। फिर तो गर्मियोंमें मैंने अपना मकान भी बेच डाला। कुछ घाटा तो जरूर लगा। ऐसे मौकोंपर कुछ न कुछ घाटा तो लगता ही है; लेकिन मकानके टैक्स और मरम्मत खर्चोंसे भी तो छुटकारा मिल गया। अब तो सिर्फ़ गाड़ीकी देख-भालमें जो-कुछ खर्च होता है, वही होता है। गृहस्थीका खर्च भी हमें उतना ही पड़ता है, जितना मकानमें रहनेसे पड़ता था। अब तो हम लोग देश-दुनिया देखते डोलते हैं। बीच-बीचमें अपने बच्चोंसे भी जाकर मिलते-जुलते रहते हैं। जिस शहरमें तबियत आई, महीने-दो-महीने रहे, फिर दूसरा शहर देखा। अब तो कहीं मुफ्त भी मिले, तो मैं मकान न लूँगा।”

फिर मुझे अन्दर ले जाकर उन्होंने दिखलाया। उनकी स्त्री विस्कुट तैयार कर रही थी। मैंने देखा कि वहाँ पानीके नलकी, पानी बाहर निकलनेकी तथा यथास्थान चीज़ें रखनेकी सुन्दर व्यवस्था थी। मैंने पूछा कि इस चलते-फिरते जीवनमें खर्च कितना बैठता होगा?

फौरन जवाब मिला—“साठ डालर (अर्थात् लगभग पौने दो सौ रुपये) माहवार। इसके अलावा

चलने-फिरनेमें पेट्रोल और गैस वगैरहका खर्च, यदि २५० मील रोज़ चला जाय, क़रीब ४ डालर (प्रायः १०) २०) रोज़ाना और पड़ जाता है ।”

अमेरिकामें जहाँ मज़दूर दस डालर (क़रीब २५) २०) रोज़ कमाता है, यह खर्च कुछ अधिक नहीं है । गृह-स्वामिनीने मुझे अपने गैसके चूल्हेपर पकाया हुआ सुन्दर नाश्ता कगके यह भी साबित कर दिया कि फिरन्त गृहस्थियोंके चूल्हेकी पकी चीज़ें कैसी सुस्वादु होती हैं ।

फिर मैंने पूछा, क्या अधिकतर स्त्रियाँ इस चलती-फिरती ज़िन्दगीको पसन्द करेंगी ? मसलन, वे क्या करती होंगी, जिनके बच्चे स्कूलमें पढ़ते होंगे ?

उन्होंने कहा—“आजकल गृह-यानोंपर तो स्कूल जानेवाले बहुतेरे बच्चे दिखाई देते हैं । फिर भी कुछ बन्धन तो अवश्य लग ही जाता है, क्योंकि ऐसे परिवारोंको नौ-नौ महीने एक ही शहरमें रहना पड़ता है ; लेकिन बहुतेरी तो ऐसा करती हैं कि तीन महीने एक जगहके स्कूलमें बच्चोंको पढ़ाती हैं, फिर तीन महीने दूसरी जगहके स्कूलमें । उनका कहना है कि इस तरह मुसाफिरतमें बच्चे उससे ज़्यादा सीखते हैं, जितना कि सात साल एक ही स्कूलमें रहकर सीखते हैं । वे कहती हैं कि विचरते रहनेसे बुद्धिका विकास अधिक होता है ।”

मैंने सवाल किया—“पहियोंपर चक्कर काटनेवाले लोग गिरजाघरोंसे भी कुछ सम्पर्क रखते हैं ?”

इसपर वृद्धा तिरस्कार-भरी दृष्टिसे देखकर बोली—“क्या पहियोंपर रहनेवाले औरोंसे भिन्न होते हैं ? कुछ लोग गिरजाघर जाते हैं, कुछ नहीं भी जाते । रविवारकी सर्विस तो कैम्पोंमें भी मना ली जाती है । फिर जिस शहरमें जाओ, वहाँ गिरजाघर मिल जाते हैं । हम लोग जिप्सियोंकी तरह भले ही रहते हों ; पर वेपेंदीके थोड़े ही हो गये हैं ?”

फिर मैंने वृद्धेसे पूछा कि इस सुन्दर यानके बनानेमें कितना खर्च बैठा होगा ? जवाब मिला—“क़रीब

४०० डालर (अर्थात् लगभग १ हजार २०) ; लेकिन मैंने इस गाड़ीमें क्रोमियम धातुका प्रयोग अधिक किया है, काँसेकी जालीके पर्दे लगाये हैं, पलंगोंमें स्प्रिंग लगाये हैं और रेडियो सेट भी लगाया है । इन सबमें क़रीब ८०० डालर और लग गये हैं ।”

‘सैरासॉटा’ की नुमाइशमें मैंने गृह-यानोंके पचास भिन्न-भिन्न नमूने प्रदर्शित देखे थे । वहाँ एक सप्ताहमें क़रीब ५० हजार आदमियोंने उन्हें देखा होगा । गृह-यानोंको चलानेसे ‘हिफ़ाज़त पहले करो’ वाले सिद्धान्तका पूरा अभ्यास हो जाता है, क्योंकि यह आप कभी नहीं भूल सकते कि आपकी सारी गृहस्थी साथ चल रही है । गोकि हर चीज़का बीमा कराया रहता है, फिर भी कोई अपनी गृहस्थीको नष्ट-भ्रष्ट होते नहीं देख सकता । आपको इसका अभिमान रहता है कि यह आपका चलता-फिरता घर है ।

सैरासॉटामें ‘पर्यटक-उपवन’ नामका एक खासा शहर ही बसाया गया है, जहाँ इस तरहके घुमक्कड़ोंका बराबर पड़ाव पड़ा रहता है । इस उपनिवेशका प्रबन्ध खास तौरसे पर्यटकोंकी सुविधाकी दृष्टिसे होता है । यह पहियोंपर बसनेवाली सबसे बड़ी बस्ती है । यह तीस एकड़का एक घिरा हुआ अहाता है, जिसमें नालियाँ, बम्बे, रोशनी, पुलिस आदिका पूरा प्रबन्ध है । बीचमें खेल-कूदके लिए एक बड़ा हाल है और स्वयं कपड़े धोनेवाली महिलाओंके लिए एक धोबीखाना भी है ।

अन्तर्राष्ट्रीय सगेह पर्यटकोंका हर एक जाड़ेमें एक मेला होता है । गत समारोहमें आनेवाले गृह-यानोंकी संख्या १०६४ तक पहुँची थी, जिनमें पहियानशीन खीमोंसे लेकर ५,००० डालर तककी भू-नौका भी थी । जनसंख्या २६१९ तक पहुँची थी, और इनमें डाक्टर, वकील, सेठ, साहूकार, धनपति, कसाई और रोटियाँ पकानेवालोंसे लेकर पकेटमार और उठाईगीर तक थे । अमेरिकाकी चौबीस रियासतों, कनाडाके अनेक प्रान्तों तथा क्यूबा, मैक्सिको आदि देशोंके लोग भी थे ।

सैरासॉटाकी म्यूनिसिपैलिटीमें गाड़ियाँ खड़ी

करनेका टैक्स दो आदमियोंके लिए औसतमें १ डालर फी-सप्ताह था। विजलीकी बत्तीके चार्जके साथ टैक्स १ डालर ३५ सेन्ट (यानी आठ आने रोज) हो जाता था। ढाई डालर फी-सप्ताहमें एक दम्पतिके सभी खर्च हो जाते थे, जिनमें रोशनी, गर्मी तथा घरेलू कामोंके लिए इच्छानुसार विजली, खेल-कूद, नाच-गाना, रेडियो आदि सभी शामिल थे। टेलीफोनकी सुविधा भी इसीमें उपलब्ध थी।

यदि आपके गृह-यानमें अपना डाइनेमो भी हो, जैसा बहुतांशमें होता है, तब तो आप जंगलोंमें भी गाड़ी खड़ी करके बिना किराये या टैक्सके बहार ले सकते हैं। एक विशेष मसाला साथ रखनेसे गुसलखानेकी सफाई भी सुगम हो जाती है। गृह-यानोंके चूल्होंमें किरासन तेल, गैसोलीन या लकड़ीका कोयला भी इच्छानुसार जलाया जा सकता है। गाड़ीके नीचे एक उपाय करनेसे कड़ी-से-कड़ी सर्दियोंमें भी कमरे गर्म रखे जा सकते हैं, जिसके लिए १ डालर फी-सप्ताहसे अधिक खर्च नहीं लगता। आजकल तो साधारण मोटरोंके भीतर हवाको भी इच्छानुसार सर्द या गर्म किया जा सकता है।

मोटर-खर्चके अलावा गृह-यानको खींचनेका खर्च एकचौथाई सेन्ट (एक धेला) फी माइल लगता है। आप गृह-यानके साथ भी उतनी ही रफ्तारसे चल सकते हैं, जितनी साधारण मोटरसे; लेकिन ४५ मील फी-घंटेकी रफ्तारसे ऊपर चलानेमें दुर्घटना होनेपर आपके घरके छिन्न-भिन्न हो जानेका डर रहेगा। आजकल भिन्न-भिन्न रियासतोंमें गाड़ीके भिन्न-भिन्न वजनके अनुसार गृह-यानके लाइसेन्सकी कीमत ३ डालरसे २० डालर तक है।

चार साल पहले गृह-यान बनानेवाली कम्पनियाँ एक दर्जन भी नहीं थीं। आजकल क़रीब चार सौ हैं, और इसपर भी वे ग्राहकोंकी माँगोंको पूरा नहीं कर पातीं। मोटरका उद्योग अपने पहले चार वर्षोंमें जितनी तेज़ीसे बढ़ा था, उससे कहीं अधिक तेज़ीसे गृह-यानोंका उद्योग बढ़ रहा है।

शुरुमें होटलवाले और मकानोंके मालिक इनकी बड़ी खिष्टियाँ उड़ाते थे। जिन शहरोंकी आय वहाँके

वाशिनटोंपर ही निर्भर थी, वहाँ इनके प्रति विरोधका भाव भी काफी फैला। इन जगहोंकी म्यूनिसिपैलिटियोंने सगेह-पर्यटकोंके कैम्पोंकी सफाईके सम्बन्धमें अनेक कड़े कानून बना डाले। पर यह नहीं कहा जा सकता कि इनकी बिलकुल आवश्यकता ही न थी। लेकिन इन कैम्पोंकी सफाईमें सुधार होनेसे गृह-यान और भी अधिक तादादमें और तेज़ीसे पहुँचने लगे।

लेकिन अब वह भय नहीं रहा। अब तो फ्लोरिडाके कई क़स्बोंमें सड़कोंके किनारे स्वागत-भवन भी बन गये हैं, जहाँ इन पर्यटकोंका नारंगीके शर्वतसे स्वागत किया जाता है और उन्हें आवश्यक सूचनाएँ और खबरें देकर सहायता पहुँचाई जाती है।

इन गाड़ियोंके और भी उपयोग होते जा रहे हैं। एक गाड़ी तो केवल 'रेफ्रिजरेटर' (बर्फ जमानेकी अल्मारी) के नमूनेका इश्तहार-मात्र थी। उसका एक कमरा ही 'रेफ्रिजरेटर' बना हुआ था। उसके मालिकका कहना था कि ऐसा प्रदर्शन सूचीपत्रोंसे अधिक काम करता है। एक गृह-निर्माणकी सामग्रीकी दुकान ही पहियोंपर चलती देखी। हालीवुडमें एक चलता-फिरता पुस्तकालय भी देखा। एक दाँतसाज़की भी ऐसी ही गाड़ीमें अपना पेशा करते चलते देखा। एक घूमता-फिरता गिरजाघर भी ऐसी वस्तियोंके लिए, जहाँ कोई गिरजावर या पादरी न हो, नज़र आया।

अब इसके बाद पाठक अपने अनुमानसे ही काम लें और इस नये उद्योगकी सम्भावनाओंका अन्दाज़ा कर लें। अनुमान तो करिये कि १९६५ तक आधी आबादी स्वतन्त्र रूपसे इच्छानुसार घूमती फ़िरेगी, तब गृह-टैक्सके ऊपर निर्भर करनेवाली संस्थाओंकी क्या दशा होगी? और बिल वसूल करनेवालोंको तो शायद हवाई-जहाज़ रखना पड़ेगा! राजनैतिक मशीनकी भी क्या दशा हो जायगी? चुनावके दिन सारे 'वोटर' लोग सारे नक्शेके ऊपर छिटके होंगे! कुशल इतनी ही है कि मानव-बुद्धिमें समस्याओंको उत्पन्न करनेकी जैसी क्षमता है, उन्हें हल करनेकी भी वैसी ही क्षमता है।

प्रेमकी भूल

कुमारी सुशीला आगा, वी० ए०

शाम्मीकी छुट्टियोंके बाद विश्वविद्यालय खुला था। नित्य नये रूप छात्रावासमें दिखाई पड़ते। पुराने विद्यार्थी नवागत साथियोंको देखकर अपने लिए हास्यकी सामग्री ढूँढ़नेका प्रयत्न करते। नवागत विद्यार्थीगण आपसमें एक दूसरेकी ओर निहारकर सान्त्वना प्राप्त करनेका प्रयत्न करते।

नया जीवन था। पढ़ाई अभी तक आरम्भ नहीं हुई थी, इस कारण विद्यार्थियोंके हृदयमें उल्लास था। रविवारका दिन था। छात्रावासकी बरसातीमें एक इक्का आ खड़ा हुआ। पासके लड़कोंको सूचना मिली, और कुछ ही क्षणोंमें होस्टलके चारों ओर टोलियाँ बनकर नवागतका स्वागत करनेको तैयार हो गईं। कुछ विद्यार्थियोंको तो इतनी उतावली हुई कि लपककर इक्केके सामने आ खड़े हुए। देखनेसे नवागत युवक मदरासी ज्ञात होता था। वही सादा-सा पहनावा, कन्धेपर चादर, सिंगपर पगड़ी और पैरोंमें पम्प शू, जिनका रंग उस युवकके रंगसे बहुत-कुछ मिल रहा था। लड़कोंने एक दूसरेके कानमें फूँका—“कोचरा बूट पालिश!” एक हल्की मुसकहाइट सबके होठोंपर दौड़ गई।

इसके लिए अधिक समय न देकर नवागतने आगे बढ़कर एक युवकसे कहा—“कृपया मुझे २६ नम्बरका कमरा बता दीजिए।”

लड़कोंने कमरा बता दिया और नौकरोँकी सहायतासे उसका सामान भी कमरेमें पहुँच गया। यार लोग अपने-अपने अट्टेपर वापस आ गये। टिप्पणी करनेके निमित्त पर्याप्त सामग्री मिल चुकी थी। जो युवक दूरसे तमाशा देख रहे थे, सब-के-सब अपने साहसी साथियोंके पास आये और उन्हें घेरकर उस नवागतके विषयमें पूछने लगे।

एक युवक बोला—“बड़ा बलिया-सा जान पड़ता है।”

दूसरेने कहा—“मैंने उसे अच्छी तरह परख लिया, ‘कलचर’ तो उससे मीलों दूर मालूम देता है।”

तीसरे साहबने कुछ खीस काढ़कर कहा—“चलो भाई, अब जिनके पास काले जूते हैं, उन सबको आराम रहेगा। बस, उसकी चमड़ीसे रगड़ देना।”

लड़कोंमें हँसीकी एक लहर-सी दौड़ गई।

हँसी-खेलके दिन वायुके एक भोंकेकी नाई मालूम नहीं कब आये और कब निकल गये। अब तो—“फिर वही कुंज कफ़स और वही सप्पादका घर।” उस ‘कोचरा बूट पालिश’से इस बीचमें बहूतोंने परिचय प्राप्त कर लिया था। उसका नाम था गोपालराव अंगरेजीमें एम० ए० पढ़ने आया था। धीरे-धीरे लड़कोंकी धारणा गोपालकी ओरसे बदल गई। यद्यपि देखनेसे वह महा उजड़-सा लगता; परन्तु पढ़ने-लिखनेमें बहुत अच्छा था। अंगरेजी बोलनेमें तो छात्रावास-भरमें कोई उसका सानी न था। यह सब होते हुए भी गोपाल गम्भीर प्रकृतिका था, और युवकोंकी तरह उसमें चुलबुलापन न भरा था। वह अपने साथके लड़कोंसे बहुत कम बात करता। हाँ, यह बात अवश्य थी कि वह अपने प्रान्तके लड़कोंके साथ अधिक रहता और बोलता, जिसके लिए दूसरे लड़के उससे चिढ़ते।

विश्वविद्यालयमें दर्शनशास्त्रके एक प्रोफेसर डाक्टर सुन्दरम् भी मदरासी थे, इस कारण मदरासी लड़के बहुधा इनके घर आया-जाया करते। डाक्टर सुन्दरम् लगभग पचास वर्षकी आयुके थे; परन्तु उनकी पत्नी देखनेमें उनसे कहीं छोटी लगती थीं। गोपालरावने प्रथम बार जब श्रीमती सुन्दरम्से परिचय प्राप्त किया, तो उसे बहुत आश्चर्य हुआ, क्योंकि वह डाक्टर सुन्दरम्की पत्नीका चित्र अपनी कल्पनामें इससे कहीं भिन्न देख चुका था। अस्तु, लड़कोंसे पूछनेपर ज्ञात हुआ कि श्रीमती सुन्दरम् डाक्टर सुन्दरम्की दूसरी पत्नी हैं।

और विवाह हुए अभी केवल छै वर्ष हुए हैं। श्रीमती सुन्दराम् गौरवर्णकी छोटी और मोटी-सी थीं, इसलिए और भी छोटी लगती थीं।

अन्य मद्रासी युवकोंके साथ गोपालराव भी धीरे-धीरे डाक्टर सुन्दरम्के घर जाने लगा, यद्यपि डाक्टर साहब अधिकतर अपने विचारोंमें मस्त आफ़िसमें ही बैठे रहते; परन्तु श्रीमतीजी लड़कोंका खूब सत्कार करतीं और कभी-कभी उन्हें खानेके लिए भी बुला लेतीं। वस, फिर क्या था, श्रीमतीजीकी प्रशंसाओंके पुत्र वैध जाते। उनके सामने और पं.छे भी लड़के खानेकी प्रशंसा करते—वास्तवमें होस्टलका अध्यापक खाना खानेके बाद यह परिवर्तन उन्हें बहुत ही भ्रंशित।

एक दिन शामको बहुतसे लड़के सिनेमा देखने गये। गोपालरावका मन कहीं जानेको न था, इसलिए अपने कमरेमें लेटकर पढ़ना ही उसने उचित समझा। कविताकी एक पुस्तक उसके हाथमें थी। पढ़ते-पढ़ते गोपालको, मालूम नहीं, कब नींद आ गई; परन्तु कुछ ही क्षणोंमें किसी स्वप्नसे चौंकर वह उठ बैठा। देखा, घड़ीमें सात बजे थे। संध्याकी अन्तिम ज्योति भी अब लोप हुआ चाहती थी। गोपालराव उठ खड़ा हुआ और खूंटीपर से अपना चादरा उठा लिया। दर्पणके आगे वाल सँवार, चादरा कन्धेपर डाला और कमरेसे बाहर हो गया। उसके पैर बड़ी फुर्तीसे उठ गये थे, और चारोंकी नाई वह बीच-बीचमें आँखें दौड़ाकर देख लेता कि कोई उसे देख तो नहीं रहा है। कुछ ही मिनटों बाद गोपालरावने अपनेको डाक्टर सुन्दरम्के द्वारके समीप पाया। किसी मधुर संगीत-ध्वनिने गोपालरावके पैरोंको कुछ समयके लिए एक ही स्थानपर जड़ दिया। वह सुनने लगा। श्रीमती सुन्दरम् गोल कमरेमें बैठी अपनी भाषामें एक गाना गा रही थीं। उसका एक-एक शब्द गोपालरावके कानोंमें स्पष्ट सुनाई पड़ रहा था। उस गानका अर्थ था—‘हमारे मिलनकी अवधि बीत गई पर तुम न आये!’ गोपालरावका हृदय नाच उठा। उसने स्वप्नमें भी तो श्रीमती सुन्दरम्के

सुँहसे इसी आशयका गाना सुना था। इस प्रकार चारोंकी नाई बाहर खड़े रहना उचित न समझकर गोपालरावने बाहरसे घंटी बजाई। श्रीमती सुन्दरम् चौंकर उठ खड़ी हुई। गोपालने हाथ जोड़ते हुए कहा—“क्षमा करियेगा, मैंने आपको बाधा पहुँचाई!”

श्रीमती सुन्दरम् अपनी सरलतापूर्ण हँसी हँस पड़ी। गोपालने आँख उठाकर एक बार श्रीमतीजीकी ओर निहाया। इस समय वह अपनी उन्नावी मद्रासी साड़ीमें गोपालरावको अप्सरा-सी लगती। गोपालराव मन-ही-मन सोचने लगा, भाग्य भी क्या चीज़ है! इतनी रूबरूकी युवती डाक्टर सुन्दरम्के ही पाले पड़नी थी! क्या उस बूढ़ेसे पटती होगी? गोपालको विचार-सागरमें अधिक समय डुबकियाँ लगानेका अवकाश न दे श्रीमती सुन्दरम्ने कहा—“चलिये, भीतर बरामदेमें बैठिये, आज मेरे पति भी वरपर नहीं हैं।”

गोपालरावने सोचा, स्वप्नमें भी तो यही देखा था कि डाक्टर सुन्दरम् कहीं दौरेपर गये हैं। वह तनिक हिचकिचाहट दिखाते हुए बोला—“तब तो मैंने आपको बड़ा कष्ट दिया।”

श्रीमतीजी बोलीं—“कष्टकी कौन बात है? वह तो प्रायः बाहर रहते हैं। आप लोगोंके आ जानेसे मेरा समय कट जाता है।”

इसी प्रकार गोपालरावने ढेरों इधर-उधरकी बातें श्रीमती सुन्दरम्ने कर डालीं। अधिक रात हो चली थी, इसलिए उठ खड़ा हुआ; परन्तु श्रीमतीजीके आग्रहने गोपालरावको थोड़ी देरके लिए और रोक लिया। वे बोलीं—“अब इतनी रात गये होस्टलका खाना खराब हो गया होगा। मैंने आपके लिए खाना यहीं बनवाया है।

श्रीमतीजीका थोड़ा आग्रह ही गोपालरावको पर्याप्त मालूम दिया। वस, बैठकर जल्दी-जल्दी खाना समाप्त किया और धन्यवाद देकर श्रीमती सुन्दरम्से विदा ली।

रास्तेमें मारे प्रसन्नताके गोपालरावके पैर जमीनपर पड़ते ही न थे। रह-रहकर उसे श्रीमती सुन्दरम्मा भोला मुखड़ा और फिर उनका अतिथि-सत्कार याद आ जाता था। गोपालरावने अन्तमें यही निष्कर्ष निकाला कि श्रीमतीजी उसपर विशेष अनुकूल हैं, यद्यपि वह यह बात भली प्रकार जानता था कि वह सभी मदरासी युवकोंकी खातिर करती हैं। इन्हीं विचारोंमें तैरते-तैरते गोपालराव होस्टल पहुँच गया। जिन मित्रोंको उसने सिनेमा जानेके लिए मना कर दिया था, वे भी लौट आये थे और बड़ी उत्कण्ठाके साथ प्रतीक्षा हो रही थी। गोपालरावको देखते ही सब-के-सब लड़के उसपर टूट पड़े और प्रश्नोंकी झड़ी लग गई—“क्यों भाई, सिनेमासे अधिक कौन स्थान तुम्हें प्रिय था? कहाँ छिपकर इतनी रात तक बैठे थे?”

गोपाल कुछ असमंजसमें पड़ गया। सत्य बोले या झूठ बात बना दे, कुछ उसकी समझमें न आया। झूठ बोलना उसे अधिक न आता था, इसलिए इच्छा न रहनेपर भी उसे स्वीकार करना पड़ा कि वह श्रीमती सुन्दरम्माके घर दावत उड़ाने गया था। बस, फिर क्या था, लड़कोंने उपहास करना आरम्भ कर दिया—“यह बात है, जभी तो उस मीठे खानेके आगे तुमने सिनेमाको तुच्छ समझा। तुम्हारा भाग्य आजकल अच्छा है, तभी तो ऐसी सुन्दरीके कृपा-कटाक्षोंको प्राप्त कर सके। क्या हूँदकर समय निकाला! डाक्टर सुन्दरम्मा भी विदा कर दिया, जिससे बातें करनेमें बाधा न पड़े।” इसी तरहकी ढेरों बातें लड़कोंने एक ही साँसमें कह डालीं। गोपालरावका मुँह चोरोका-सा हो गया। मारे लज्जाके उसके नेत्र ऊपर न उठ रहे थे। लड़के तो हँस ही रहे थे; पर चोरकी दाढ़ीमें तिनका। कुछ चलते-पुगजा समझ गये कि दालमें कुछ काला है; पर किसीसे कुछ न कहा।

कुछ दिनों बाद होस्टलके एक-एक लड़केको मालूम हो गया कि गोपाल और श्रीमती सुन्दरम्मा

अनुचित प्रेम हो गया है। गोपालरावको भी यह बात भलीभाँति मालूम हो चुकी थी। वह स्वयं अनुभव कर रहा था कि वह श्रीमती सुन्दरम्मासे प्रेम करने लगा है। अब वह अपने दूसरे मित्रोंके साथ डाक्टर सुन्दरम्माके घर न जाता, वरन् अकेले जाना ही पसन्द करता। श्रीमती सुन्दरम्मा इन बातोंसे पूर्णतया अनभिज्ञ थीं। वे बेचारी सीधी-सादी पतिपरायणा स्त्री थीं; पर लड़कोंने उन्हें भी इस खिचड़ीमें रौंध लिया।

गोपालरावमें महान परिवर्तन हो गया था। हर समय पुस्तक सामने रखे न-जाने किन विचारोंमें लीन वह कुर्सीपर पड़ा ऊँचता रहता। उधर लड़कोंको भी गोपालरावको किसी प्रकार छकाकर सीधा कानेकी सूझी।

रविवारका दिन था। सब मदरासी लड़के श्रीमती सुन्दरम्माके पास गये और उनकी वही मदरासी सड़ी जो वह बहुधा पहनती थीं, माँगीं। कारण पूछनेपर लड़कोंने कहा स्वांग बनानेके निमित्त चाहिए। श्रीमती सुन्दरम्माको क्या आपत्ति हो सकती थी? साड़ी और एक ब्लाउज निकालकर दे दिया। एक लड़का साहस करके श्रीमती सुन्दरम्माकी मेजपर से उनके राइटिंग पैडका एक परचा फाड़ लाया। उसमें बई ओर श्रीमतीजीका नाम लिखा था। मतलब पूरा होते ही लड़के होस्टल लौट आये और एक कमरेमें छिपकर उन्होंने गोपालरावको तैलुगू भाषामें एक पत्र लिखा, जो इस प्रकार था—

“प्रिय गोपाल,

तुम इधर दो दिनसे नहीं आये, मैं नित्य प्रतीक्षा किया करती हूँ। आज डाक्टर सुन्दरम्मा चार दिनके लिए बाहर गये हैं। मुझे तुमसे मिलनेकी उत्कण्ठा है। घरपर इस प्रकार मिलना उचित नहीं है, इसलिए पेरड मैदानके पास जो पेड़ोंका झुंमुट है, वहाँ तुम आज रातको आठ बजे मिलो। देखो, निगाश न करना।

तुम्हारी ही—

रंगम्मा।”

लिफाफेमें बन्द करके लड़कोंने वह पत्र गोपालरावके पास भेज दिया । कुछ लड़के पहलेसे ही गोपालरावके कमरेके पीछे छिपे थे । पत्र देखते ही कुछ समय तक गोपालरावकी समझ काम न कर सकी । उसने चुपकेसे अपने कमरेके द्वार बन्द किये और लिफाफा खोला । ऊपर बड़े-बड़े अक्षरोंमें 'रंगम्मा' लिखा देख गोपालराव उछल पड़ा । उसने पत्रको दो-तीन बार पढ़ा । उसे अपने नेत्रोंपर विश्वास न हो रहा था । पत्रको हृदयसे चिपकाकर वह कुर्सीपर लेट गया । उसके नेत्र बड़ी देर तक बन्द रहकर उस शीतलताका पान करते रहे ; परन्तु यह सुख-स्वप्न भी टूटना था । गोपालरावने जल्दीसे चादरा उठा लिया और बक्समें से रुपयोंका पर्स लेकर वह बाहर हो गया । लड़के समझ गये, गोपाल शामके मिलनकी तैयारी करने बाज़ार गया है ।

इधर लड़के बड़े उत्तरदायित्वका काम सिरपर ले बैठे थे, उसे कुशलतापूर्वक पूरा कर दिखाना था । होस्टलमें एक ठिगना मोटा लड़का था, जो सदैव अभिनयमें स्त्रीका पार्ट करता था । लड़के उसे 'शुक्ला' कहकर पुकारते थे । इस समय सबकी शुक्लासे ही अटकी थी । किसी प्रकार उसे मनाया गया और शामसे ही अभिनयकी तैयारी होने लगी । लड़कोंने आपसमें चन्दा करके स्त्रियोंके नकली बाल और पेन्ट पाउडर मोल लिया और शुक्लाको सजाया जाने लगा । श्रीमती सुन्दरम्की साड़ी पहन-पहनाकर शुक्ला यद्यपि श्रीमतीजीके समान तो नहीं, पर स्त्री अवश्य लगने लगा । लड़के अपनी सफलतापर नाच उठे । उन्हें पूर्ण विश्वास था कि अंधेरी रातमें गोपालराव क्या, कोई भी बुद्धिमान धोखा खा सकता है । मदरासी लड़कोंने तीन बातें तेलुगू भाषाकी शुक्लाको सिखा दीं । वे इस प्रकार थीं—“तुम कितने सुन्दर हो !” “शर्माते क्यों हो ?” “पास आकर बैठो ।”

उसी निश्चित स्थानपर एक पत्थरकी बेंच-सी बनी हुई थी । शुक्लाको ताँगेपर बैठाकर वहाँ पहुँचाया गया ।

संगी-साथी इधर-उधर पेड़ोंके नीचे छिपकर खड़े हो गये और अभिनयकी श्रीमती सुन्दरम् उस बेंचपर अपनेको भलीभाँति ढँक सिकुड़कर बैठ गई । भुरमुटके नीचे सवन अंधकार था । उसका कारण कुछ तो स्वयं पेड़ोंका घना होना था और कुछ कृष्णपक्षकी रात । कुछ ही दूर सड़कपर लैम्प जल रहा था और सड़कपर आती-जाती प्रत्येक वस्तु स्पष्ट दिखाई पड़ती थी । यार-दोस्तोंके नेत्र सड़कपर जमे हुए थे । समय हुआ ही चाहता था कि इतनेमें एक ताँगेका शब्द सुनाई पड़ा । सब अपने-अपने स्थानमें उछल पड़े । लड़कोंने पहचान लिया कि गोपालराव ही सजे-बने उसपर आ रहे हैं । ताँगा रुका और उसमें से गोपालराव उतर पड़े । लड़कोंने देखा, गोपालरावकी वेशभूषा खूब बनी हुई है—श्वेत सिल्कका कुरता, ज़रीकी चादर और चमचमाता नया जूता । गोपालरावने जेबमें से पैसे निकालकर ताँगेवालेको दिये । धीरेसे ताँगेपर से एक बड़ा-सा दोना और फूलोंकी एक माला हाथमें उठाकर उसी पेड़ोंके भुरमुटकी ओर बढ़ने लगा । लड़कोंको अनुभव हुआ, गोपालराव कुछ घबराता-हिचकिचाता हुआ बढ़ रहा है । नाप-नापकर पग बढ़ाते हुए गोपालराव उसी बेंचके समीप पहुँच गया । धीरेसे पोटली और माला बेंचपर रखकर गोपालरावने हाथ जोड़े । श्रीमती सुन्दरम् सिर झुकाये बैठी थी, मानो उन्होंने देखा ही न हो । गोपालरावको यह चुप्पी असह्य थी, स्वयं ही साहस करके पुकारा—“रंगम्मा !”

श्रीमतीजी कुछ हिली-डुली । गोपालरावका और साहस बढ़ा । तेलुगू भाषामें उसने धीरेसे कहा—“आपकी इस कृपासे मैं कब उद्भूत हो सकूँगा ? आप इतनी प्रिय हैं !”

श्रीमती सुन्दरम् गोपालकी बात तो क्या समझती ; पर उचित समय समझकर अपनी याद की हुई तीन बातोंमें से एक बोल ही पड़ी—“तुम कितने सुन्दर हो !” गोपालराव कुछ शर्माकर हाथ मलने लगा ।

श्रीमतीजीने अपना दूसरा वाक्य कुछ रुककर कहा—“क्यों शर्मति हो ?”

गोपालराव बोला—“नहीं रंगम्मा, मैं शरमाऊँगा क्यों ? मुझे इसी बातपर आश्चर्य हो रहा है कि तुम्हारी बातोंमें कितनी मिठास है, क्या मैं इसे पी सकूँगा ?”

श्रीमतीजीने तीसरा वाक्य भी कह ही डाला—
“पास आकर बैठो ।”

शब्द कानमें पड़ते ही गोपालरावने श्रीमतीजीके हाथ पकड़े—पर यह क्या, बनावटी केश ज़रा-से धक्केसे नीचे आ पड़े । गोपाल जड़वत हो गया । उसके होस उड़ गये । उसके नेत्रोंमें निराशाके आँसू थे और हृदय हाय-हाय कर रहा था । श्रीमती रंगम्माने उचित अवसर देखकर ताली बजाई । गड़रियेकी

भेड़ोंकी तरह छिपे हुए यार-दोस्त निकल पड़े । शुक्लाने हँसकर वह हार अपने गलेमें डाल लिया और मिठाईका दोना यार-दोस्तोंने चाटकर बराबर किया । पेट-पूजाके बाद यार-दोस्तोंने देखा, उसी प्रकार सिर नीचा किये गोपालराव रो रहा है । कुछ सहानुभूति उनके हृदयमें हो आई, सबने उसके आगे प्रण किया कि छात्रावासमें किसीको यह रहस्य न बतायेंगे, और उसे पकड़कर हँसते हुए छात्रावासकी ओर चल दिये ।

दूसरे दिन सबेरे लोगोंने सुना, गोपालराव अपना सामान इत्यादि लेकर रात ही रातमें कहीं चला गया । लड़कोंने शुक्लसे इसका कारण पूछा, तो वह हँसकर बोला—‘प्रेमकी भूल’ थी । अब भी ‘प्रेमकी भूल’ लड़कोंको एक पहेली-सी ज्ञात होती है ।

फिर भी

श्री सोहनलाल द्विवेदी

घन उमड़-धुमड़ हों गरज रहे, छाई काली अँधियाली हो,
अविरल अजस्र जल गिरता हो, पथमें न कहीं उँजियाली हो;
निजली भी भयसे काँप रही, छिपती हो घनके अंचलमें,
उपलोंकी भीषण वर्षा हो, साहस थकता हो पल-पलमें;
दाँएँ खाई, बाँएँ खाई, हो राह बीचमें सँकरीली,
उस पार, उसीसे जाना हो, बिछलन हो, हो मिट्टी गीली;

फिर भी, अधीर हो नहीं पाँध,

दृढ़ दृष्टि, समुन्नत भाल किये,

अविचल गतिसे तुम बढ़े चलो,

प्राणोंकी अन्तिम ज्वाल लिये ।

लगभग दो वर्ष हुए हिन्दीकी एक प्रसिद्ध पत्रिकामें एक महाशयने उपेक्षा-मिश्रित व्यंगसे लिखा था कि शिकार-विषयके स्थानमें हम ककड़ी और खरबूजोंपर लिखा करें। लेखक महोदयकी बात पढ़कर हमें दो बातें स्मरण हो आईं। एक तो भवभूतिका प्रतवा 'अरसिक्केपु कवित्वनिवेदन्म् शिगसि मा लिख मा लिख मा लिख' और दूसरी एक सेहग लिखनेके सम्बन्धमें गालिब और जौककी नोक-भोक। अपनी सफ़ाईमें कविवर गालिबने बहादुरशाह बादशाहको कुछ पद्य लिख भेजे थे, जिनका प्रारम्भ था—

“सौ पुस्तसे है पेशए आवा सिपहगरी,
कुछ शायरी ही जरियए इज्जत नहीं मुझे।”

हमारे पूर्वजोंका पेशा—मध्यकालीन युगसे सन् ५७ से पहले तक—सैनिकवृत्ति और खेती थे। खेती हमारे अब भी होती है और उसे हम स्वयं करना भी जानते हैं। किसानोंके साथ कन्धेसे कन्धा लगाकर चलनेमें हम अपना सौभाग्य समझते हैं, इसलिए गालिबके शब्दोंको कुछ बदलकर हम साभिमान कह सकते हैं—

“सौ पुस्तसे है पेशए आवा जरायती,
कुछ जर्नलिज्म जरियए इज्जत नहीं मुझे।”

हमें तो लज्जा इस बातकी है कि हम किसान-समस्या और देहाती जीवनपर ही क्यों नहीं अधिक लिखते? रही शिकार-साहित्यकी, सो उसके लिए हमारा कहना है कि शिकारपर हमने जो-कुछ लिखा है, वह बहुत थोड़ा है। शिकार-साहित्यपर यदि हम जीवन-भर भी लिखते रहें, तो भी उस विषयका शतांश न लिख पायेंगे।

× × ×

“पंडितजी, आप परवल भी तो कर लेते हैं?”

“जी हाँ, परवलकी काश्त करना कौन-सी बड़ी बात है? कोई भी कर सकता है।”

“परवल तो पानका फल होता है?”

“अच्छा! आपका नाम भी सूचीमें लिख दिया गया।”

“यह क्या बात हुई?”

“बात यह हुई कि मुझसे बहुतसे आदमियोंने यही बात कही कि परवल तो पानका फल होता है।”

ये बातें हुई देनमें एक प्रसिद्ध कालेजके एक परिचित केमिस्ट्रीके प्रोफेसर और इन पंक्तियोंके लेखकसे गत मार्च मासमें। प्रोफेसर साहब अपने विषयमें प्रवीण हैं। हड्डीकी खादकी रासायनिक क्रियापर हमारी और उनकी बातें हो रही थीं, उसी सिलसिलेमें परवलकी बात छिड़ गई। यदि और लोगोंने भी ऐसे प्रश्न न किये होते, तो हमें प्रोफेसर साहबके ज्ञानपर तरस आता।

हमारे बिहारी और बंगाली भाई और कानपुर तथा उन्नावसे लगाकर काशी तकके लोग कहेंगे कि क्या साधारण-सा विषय—परवल—ले रखा है लिखनेको; पर जो बात हमारे परवलसे परिचित भाइयोंको साधारण और तुच्छ प्रतीत होती है, वही हजारों लोगोंको महत्त्वपूर्ण और कठिन प्रतीत होती है, इसीलिए हम परवलकी काश्तपर कुछ लिखते हैं। आशा है, पंजाब, मध्यप्रदेश, राजपूताना और युक्तप्रान्तके पश्चिमी भागके लोग परवलकी काश्त करने लगेंगे।

× × ×

यों तो परवलके तीन भेद हैं—(१) देशी छोटे आकारका, (२) काँटेदार और (३) पटनई बड़े आकारका, जो बंगाल और बिहारके पूवी भागमें होता है।

छाँटे और बड़े तुलनात्मक शब्द हैं, और देशी परवलसे तात्पर्य उस परवलसे है, जो बनारस, उन्नाव, लखनऊ और हरदोई जिलोंमें होता है। यह आकारमें अंडाकार और ढाई-तीन इंच लम्बा होता है।

काँटेदार परवल भी देशी परवलके समान होता है। कहते हैं, गुणमें यह सर्वोत्कृष्ट होता है; पर पैदावारमें कम।

पटनई परवल देशी परवलसे लगभग दूना बड़ा होता है; पर स्वादकी दृष्टिसे देशी परवलकी अपेक्षा हेच होता है। सम्भवतः जलवायुके प्रभावसे ऐसा हो, क्योंकि कलकत्तेकी साग-भाजियाँ अपेक्षाकृत नीरस और कम स्वादिष्ट जँची। पहाड़की साग-भाजीका मज़ा वे ही जानते हैं, जिन्होंने वहाँकी चीज़ोंको खाया है।

जमीनकी तैयारी

होनेको तो परवल प्रत्येक प्रकारकी उपजाऊ भूमिमें हो जाता है; पर परवलकी काश्रतके लिए उन स्थानोंमें जमीन खास तौरसे तैयार करना चाहिए, जहाँपर बारिश ३५" से अधिक नहीं होती। रेतीली जमीनमें प्रति साधारण क्यारी दो डालियाँ चिकनी मिट्टी—पोखरकी—डालनी चाहिए। चिकनी मिट्टीको खूब बारीक करके एक इंच गहरी डालनी चाहिए।

लगानेका समय और विधि

परवल तीन प्रकारसे लगाया जा सकता है—(१) बीजसे, (२) वेजसे और (३) जड़से। बीजसे परवल नहीं लगाना चाहिए। बीजसे उत्पन्न परवलकी बेल कमजोर होती है और कभी-कभी फल भी नहीं देती। यह अपना निजी अनुभव है। सम्भव है, किसीको बीज बेलसे सफलता मिली हो। अब रह गये शेष दो ढंग और वे दोनों ही ठीक हैं।

परवल लगानेके दो ही समय ठीक हैं। एक तो आधे फागुनसे आधे चैत तक—अंगरेज़ी हिसाबसे मार्चका महीना समझ लीजिए। दूसरा समय वर्षाऋतुका—सावन और भादोंके महीनेका—जुलाई और अगस्त। अच्छी, स्वस्थ और काफ़ी फल देनेवाली बेलकी

जड़ें काटकर दो-दो गज़की दूरीपर तैयार किये हुए खेत या क्यारियोंमें गाड़ देनी चाहिए। जड़ोंको थोड़ा-थोड़ा ऊपर खुला रहने देना चाहिए। जड़ें गाड़नेके बाद पानी देना चाहिए।

बेलसे परवल लगानेका कायदा यह है कि बढ़िया बेल गज़-डेढ़-गज़ तोड़ी और उसकी ईडरी-सी बनाई, जैसे रस्सी या तारको गोलाकार धरीमें रखते हैं और उसको जमीनमें जड़की भाँति लगा दिया। जब बेल पौडने लगे, तब उसके सहारे अरहरके सूखे पेड़ या और कोई सहारेकी चीज़ गाड़ देनी चाहिए, ताकि परवलकी बेल उसीके सहारे चढ़ने लगे। जब बेल घुटनों या छातीके करीब बढ़ जाय तब या उससे पहले मोटी-मोटी लकड़ियोंको क्यारियोंमें दूर-दूर गाड़कर ऊपरसे बाँसको खप्पोंसे छा देना चाहिए, ताकि बेल ऊपरकी बाँसपर फैले। नीचे जमीनपर क्यारियोंमें बेल नहीं फैलने देना चाहिए, नहीं तो परवल्लोंके तोड़नेमें कठिनाई होगी और परवल खराब भी हो जायँगे। पानी देनेका हिसाब यह होना चाहिए कि पानी परवल्लोंकी क्यारियोंमें बहुत रुकना नहीं चाहिए और न क्यारियोंको सूखने ही देना चाहिए।

परवल बहुत फलता है। गज़ भरकी बेल हुई कि छोटे-छोटे फल आने शुरू हो जाते हैं। चैत माससे लेकर कार्तिक तक परवलकी बेलपर फल आते हैं। शीतकालमें बेल मर जाती है। यदि ढाँककर उसे रखा जाय, तो बच भी सकती है। फागुनके शुरूमें—गरमीके आगमनपर—सूखी बेलको ऊपरसे काट देना चाहिए। जड़ और बेलमें से नई फुँगगी निकलती है और परवल्लोंका आना शुरू हो जाता है। जाड़ोंके अखीरमें सरसोंकी खली या हड्डीकी खाद देनी चाहिए। नराई और गुड़ाई करना तो जरूरी है। तीन वर्ष तक एक ही स्थानपर परवलकी बेल रखी जा सकती है।

पेसुरुआनका विश्वविदित विज्ञान-मन्दिर

श्री अमृतलाल नायक, एम० ए०

जावाकी समृद्धिका अधिकांश श्रेय चीनीके व्यापारको था, और अब भी है। जावाके चीनीके व्यापारको संसारमें प्रमुख स्थान दिलानेवाला पेसुरुआनका विज्ञान-मन्दिर है, जहाँ सदा इसी उद्देश्यसे अन्वेषण होता है कि किस प्रकार जावाका चीनी-विषयक व्यापार उन्नतिके उच्चतम शिखरपर पहुँचे। पेसुरुआनमें बड़े-बड़े धुरन्धर विद्वान सदा इस बातकी खोज किया करते हैं कि किस प्रकारसे कम आयोजन और उपकरणसे अधिक-से-अधिक लाभ हो।

जावा आनेपर मेरी प्रबल इच्छा हुई कि पेसुरुआनकी प्रसिद्ध प्रयोगशालाका दर्शन करूँ और वहाँके ख्यातनामा वैज्ञानिकोंका संसर्ग लाभ करूँ; पर सुननेमें आया कि बिना किसी बड़े आदमीके परिचय-पत्रके प्रयोगशालाका सांगोपांग देखना मुश्किल है। वैज्ञानिक अपने अन्वेषण-कार्यमें लगे रहते हैं। उन्हें क्या पड़ी है कि जितने मुसाफिर आयें, सबको यत्नपूर्वक प्रयोगशालाका कार्य समझाएँ और उसकी खूबियोंसे परिचित करें? परन्तु मुझे ऐसे परिचय-पत्रकी प्राप्तिमें कोई कठिनाई नहीं हुई। जिस समय भारतवर्षकी गवर्नमेंटने 'सुगर कमेटी' बनाकर चीनीके व्यवसायकी जाँच कराई थी, उस समय जावाका व्यवसाय देखनेके लिए कमेटीके सदस्य जावा भी गये थे। उनमें मेरे पिता रायसाहब कसनजी नायक (भूतपूर्व सुपरिंटेंडेंट, सुगर ब्यूरो, पूसा) और उनके अध्यक्ष मि० वार्डन सेयर भी थे। मेरे पिता तथा मि० वार्डन सेयर जावा-भ्रमणके समय वहाँके कई चीनीके कारखानोंके व्यवस्थापक मि० फौन रोसमसे भलीभाँति परिचित हो गये थे। मैंने अपने पिताको पत्र लिखा। उन्होंने मि० वार्डन सेयर द्वारा एक पत्र मि० फौन रोसमको लिखवाया। उस पत्रको पाकर मि० फौनने मुझे V. J. P. (जावाके समस्त चीनीकी मिलोंका विक्रेता-संघ) के आफिसमें मिलनेको बुलाया।

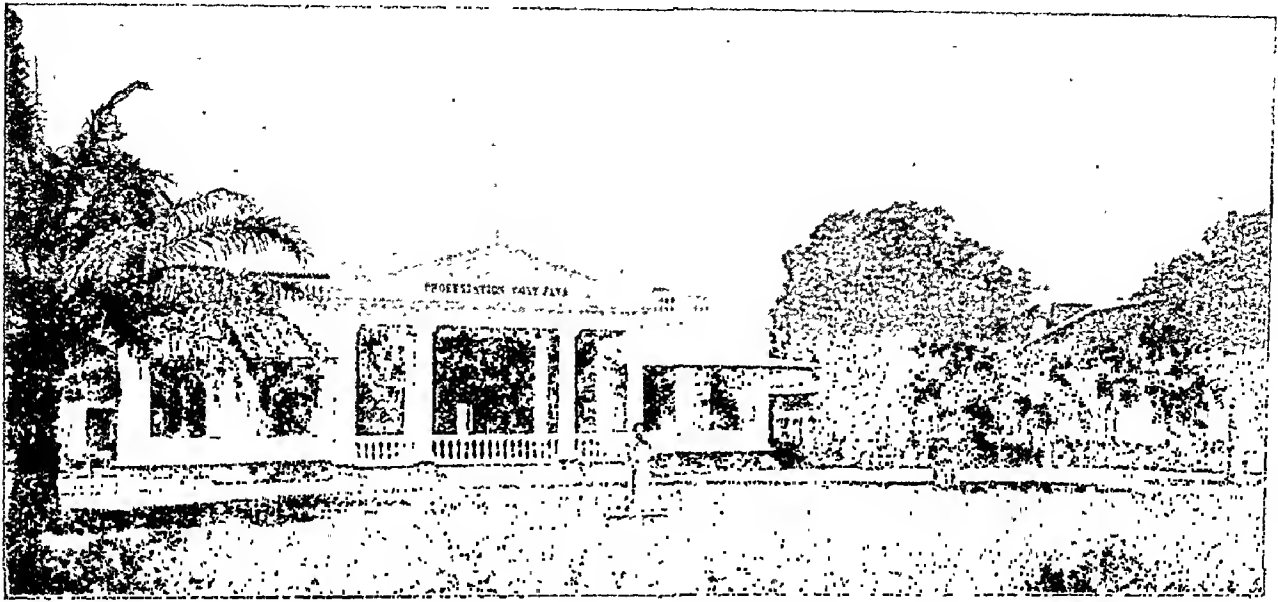
फौन रोसम साहबका निमन्त्रण पाकर मैं फूला न समाया। जावाके डेढ़ सौ मिलोंके भाग्यविधातासे साक्षात्कार-लाभ और वह भी उनके बुलानेपर! मैं दूसरे दिन सुबह उनसे मिलने गया। सुराबायामें हरएक आफिस प्रातःकाल आठ बजेसे बाह्र बजे तक और फिर ढाई बजेसे पाँच बजे तक खुला करता है। फौन साहबने आठ बजे मुझसे मुलाकात की। मैंने सोचा था कि इतना धनी-मानी व्यक्ति ठाट-बाटसे बैठे होगा। अभिमान भी पूरी मात्रामें होगा और सैकड़ों कार्यकर्ताओंसे घिरा होगा; परन्तु बात ठीक इसके विपरीत थी। मेरा कार्ड देखकर स्वयं फौन साहब बाहर आ गये और उन्होंने पूछा—“आप ही मि० वार्डन सेयरके भेजे हुए मि० नायक हैं?”

मैं अपनी आँखोंका विश्वास न कर सका। फौन साहब सीधी-सादी बन्द कालरकी पोशाक पहने थे। चेहरेसे नम्रता और सादगी टपक रही थी। उनके सवालके जवाबमें मैंने घबराहटसे कहा—“हाँ।”

फौन साहबने हाथ मिलाया और भीतर ले गये। मेरी घबराहट देखकर उन्होंने कहा—“क्यों, इतनी घबराहट क्यों? हाल ही में तुमने कालेज छोड़ा है, इसीलिए शायद अपनी शक्तिपर तुम्हें अभी पूरा भरोसा नहीं है, क्यों?” इतना कहकर हँसते हुए उन्होंने फिर कहा—“इतने दिनोंसे जावा आये हो और आज मुझसे मिलनेकी तुम्हें फुरसत मिली है? मुझे भी मिस्टर सेयरकी तरह अपना शुभचिन्तक समझो।”

मैंने कहा—“मैं पेसुरुआनकी प्रयोगशाला देखना चाहता हूँ। आशा है, आप इसका प्रबन्ध कर देंगे।”

फौन साहबने कहा—“अवश्य। मैं विज्ञान-मन्दिरमें आज सूचना भेजे देता हूँ। वहाँ जगत्प्रसिद्ध डाक्टर होनिंग साहब तुम्हें स्वयं सब-कुछ दिखला देंगे और दूसरे दिन जाकर केड़ावूंग मिलके मालिक स्मिथ साहबसे भी मिल आना। उनकी मिल



पेसुरुआनका विश्वविदित विज्ञान-मन्दिर

पेसुरुआनके समीप ही है। उन्होंने बहुत रुपया खर्च करके एक प्राकृतिक झरनेको बाँधकर एक सुन्दर झील बनाई है, उसे अवश्य देखना।”

मैं फौन साहबको धन्यवाद देकर अपने निवास-स्थानपर लौट आया।

× × × ×

दूसरे दिन प्रातःकाल छे बजे मैं रवाना हुआ। इस यात्रामें मैं अकेला था। साथमें सिर्फ एक चीनी किरानी था। सुराबायासे पेसुरुआन पूर्वकी ओर दो घंटेका रास्ता है। पूरा रास्ता मानो एक उद्यानसे होकर जाता है। केलेके पेड़, बाँसकी झाड़ियाँ और शस्यश्यामल क्षेत्र मनको मोहित कर रहे थे। सड़क बहुत अच्छी, कोलतारकी थी। सिद्धोअर्जोंके निकट मैंने जैसे सुन्दर ईखके खेत देखे, वैसे शायद ही जीवनमें अन्यत्र देखनेको मिलें। P. O. J. 2878 नामक उच्चतम श्रेणीका गन्ना चारों ओर लहलहा रहा था, जिसमें समीर आँखमिचौनी खेल रहा था। वहाँका इस श्रेणीका गन्ना अठारह फीट ऊँचा होता है! फिर हरएक गन्ना एकदम सीधा—पन्नेके डंडे-सा—था।

टेढ़ा-मेढ़ा शायद ही कहीं दीख पड़े। यहाँ इसके बारेमें कहावत है कि यदि इन गन्नोंकी फुँनगीपर कोई थाली एक छोरसे दूसरे छोरको फेंकी जाय, तो वह नीचे गिरे बिना दूसरे छोर तक चली जायगी। वैज्ञानिक कृषि-पद्धतिके लिए डच लोगोंको जितना धन्यवाद दिया जाय, थोड़ा है। सभी तरफ एक-से खेत बने हुए हैं, जिनमें सिंचाईके लिए जल-प्रणालियाँ बनी हुई हैं। सर्वत्र नियमका राज्य है। इसीलिए क्या गन्नेकी खेती, क्या चायकी, क्या कहवेकी, हरएकमें जावाका स्थान विश्वमें निराला ही है।

करीब साढ़े आठ बजे मैं पेसुरुआन पहुँच गया। रास्ता शायद साठ किलोमीटर था। विज्ञान-मन्दिरकी प्रधान इमारत बहुत मामूली है। स्थापत्य-कला विलकुल अनाकर्षक है; पर है सुविधाजनक। उसमें बड़े-बड़े विशाल कमरे हैं। उसके चारों ओर एक विशाल हरित भूमिखण्डमें बने हुए छोटे-छोटे चित्ताकर्षक मकान हैं, जो अन्वेषण-कार्यके लिए बहुत ही अनुकूल हैं। इन मामूली मकानोंमें जैसे अन्वेषण होते हैं, वैसे भारतके किसी भी बृहदकाय अन्वेषण-गृहमें भी

शायद ही होते हों। विज्ञान-मन्दिरकी तारीफ यह है कि इसका संचालन मिलों द्वारा होता है। यह कोई सरकारी संस्था नहीं है। जावामें कार्यकी ओर अधिक ध्यान दिया जाता है, उपकरणकी ओर कम। महान् पुरुष उपकरणका बहाना नहीं करते।

फौन रोसम साहबकी सूचना पहुँच चुकी थी, इसलिए पहुँचते ही चपरासी मुझे सेक्रेटरी मि० मुल्डरके पास ले गया। वे मेरी प्रतीक्षा कर रहे थे। उन्होंने मेरे जावा आनेका प्रयोजन पूछा और भारतके विषयमें कुछ बातचीत की। फिर वे बोले—“डाक्टर होनिंग तो इस समय दूसरे आवश्यक काममें व्यस्त हैं, तब तक (एक नवयुवककी ओर इशारा करके) ये आपको कृषि-कार्यका अन्वेषण और यहाँके नई-नई जातियोंके प्रयोग-क्षेत्र आदि दिखला देंगे।” यह कहकर उन्होंने मेरा परिचय उनसे कराया।

दो-एक घंटे साथ रहनेपर भी मैं उनके नामसे अपरिचित ही रह गया। उन्होंने कहा कि वे पेसुरआनमें वैज्ञानिक अन्वेषण-कार्यके लिए आये हैं। कृषिसे उनको विशेष प्रेम है। उनकी इच्छा भविष्यमें किसी मिलके कृषि-विभागके अध्यक्ष होनेकी है। वे मुझे पहले कृषि-विभागमें ले गये। इस विभागके अध्यक्ष मि० कोनिगसवर्जर थे, जिन्होंने अपने कार्यके लिए खासा नाम पैदा किया है। वे भी मुझसे प्रेमपूर्वक मिले; पर मुझे वे कुछ शुष्क और अत्यधिक गम्भीर मालूम हुए। उनके द्वारा ज्ञात हुआ कि कृषि-विभागके दो काम हैं; अन्वेषण करना और कारखानोंसे वैज्ञानिक सम्पर्क रखना। दूसरे कार्यके लिए पन्द्रह एजेन्ट रखे गये हैं, जो पन्द्रह-बीस मिलोंके निरीक्षक रहते हैं। वे हरएक मिलकी कठिनाइयों, उनकी समस्याओं और उनकी इच्छाओंसे कृषि-विभागको परिचित रखते हैं। उनकी आवश्यकताओंपर खास तौरसे ध्यान रखा जाता है। कृषि-अन्वेषण-कार्यमें मुख्यतया ये कार्य होते हैं—मानस-विज्ञान, उद्भिज-विज्ञान और रचना-विज्ञानकी दृष्टिसे गन्नेका पूर्ण अध्ययन, बाह्य-रचना, मूल-विज्ञान और

जनन-विज्ञानकी पद्धति द्वारा भूमि निरीक्षण, विशेष-विशेष प्रकारकी जमीनोंका पठन, गन्नेको हानि पहुँचानेवाले लता-गुल्मोंका अध्ययन और भिन्न-भिन्न प्रकारके गन्नोंकी विशेषताओंका सूक्ष्म अवलोकन। इस बातका पूरा खयाल रखा जाता है कि किस प्रकारकी खाद किस प्रकारकी जमीनके लिए उपयुक्त होगी, किस समय गन्ने खेतमें लगाये जायँ और लगानेकी पद्धति कैसी होनी चाहिए। सूर्य-प्रकाशका प्रमाण, वर्षा-गणना और हरएक कारखानेका कार्य-फल—इनका खास संचालन किया जाता है।

पन्द्रह एजेन्ट निम्न-लिखित विभागोंका अध्ययनकर प्रयोगशालाको सूचना भेजते हैं। ये सूचनाएँ खास महत्त्व रखती हैं। इस बातका ध्यान रखा जाता है कि उनमें त्रुटियाँ न हों।

पूर्व-जावा—सेतुबन्धो, प्रभे लिंगो, पेसुरआन, सिद्धो आर्जो, मोजोकर्तो, जोंवांग, केदीरी और ज्ञानजुक-मेडीओन।

मध्य-जावा—सोलो, जोकजा, बायुमास और कूहुम।

पश्चिम-जावा—पेकालोंगन, टेगल और चेरीवन।

क्षेत्रान्वेषणके लिए भिन्न भूखंड बने हुए हैं। १९२८ से इस बातका महत्त्व बढ़ गया है कि खादका परिमाण कितना हो। यह कृषि-विभागकी कार्यदक्षताका ही प्रमाण है कि चार वर्षमें जावाकी ६३ प्रतिशत कृषि-भूमिमें P. O. J. 2878 नामक गन्ना फैल गया है।

भूमि-सम्बन्धी अन्वेषण—इसके अन्वेषणके लिए दूसरा ही विभाग है। जावाकी जमीन, उसकी रचना, भिन्न प्रकारके कीटाणु और उनसे हानि-लाभ आदि बातें यहाँ जाँची जाती हैं। जावाकी भूमि इतनी उर्वरा है कि १६ प्रतिशत भूमिमें ही खाद दी जाती है। खाद किस प्रकारकी दी जाय, इसका निर्णय यह विभाग करता है। सल्फेट आफ अमोनिया इस समय गन्नेकी मुख्य खाद है। जमीनकी उर्वराशक्ति,

उसकी जल-ग्रहणशक्ति, हलकापन या भारीपन और उसका वर्ण-समुदाय—इसका अध्ययन-कार्य डाक्टर आरहेनियस नामक एक स्वीडन-निवासी विश्वप्रतिष्ठ विद्वानने किया था। सूर्य-प्रकाशका नापना जारडन-पद्धतिके अनुसार किया जाता है। कीटाणु-विषयक कार्य बड़ी खोजके साथ किया जाता है। टोपबोस नामक कीड़ा क्रोमल गन्नेको बहुत नुकसान पहुँचाता है। इसके निवारणका कार्य बड़ी तत्परतासे हो रहा है।

गन्नेका अनुलोम, प्रतिलोम, संवनन और वंशवृद्धि—नवीन-नवीन जातिके गन्ने दुनियाके चारों कोनेसे लाकर उनकी विशेषताओंका अध्ययन और उनके हानि-लाभकी जाँचका काम विज्ञान-मन्दिरका मुख्य कर्तव्य है। विभिन्न प्रकारके गन्नेका समिश्रण-कार्य और उसके द्वारा उच्चतर कोटिके गन्नेकी प्राप्ति, यह मुख्य ध्येय है। जब बाहरसे गन्ने लाये जाते हैं, तब वे प्रथम सुमेरु पर्वतके दक्षिणी ढालपर स्थित 'रान् डारंगन' नामक उद्यानमें लगाये जाते हैं। वहाँसे पेसुरमान और मालांगकी उपत्यकामें लगाये जाते हैं। इस प्रकार तीन जगह लगानेसे यह होता है कि उसके स्वभाव और जलवायुकी जाँच आसानीसे हो जाती है। जावाके गन्नेका समिश्रण-कार्य और उच्चतम कोटिके गन्नेकी प्राप्तिका इतिहास बहुत लम्बा है। किस प्रकार 'सरैह' नामक बीमारीसे तंग आकर कोबस नामक विद्वानने भारतसे चुन्नी नामक ईख-विशेष मँगाकर उसका संवनन ब्लैक चेरीवन और स्ट्राइप्ड प्रायंगरसे किया और किस प्रकार डाक्टर जेसविटने उसी कार्यको जारी रखकर अन्तर्गत् P. O. J. 2878 नामक प्रसिद्ध जातिका आविष्कार किया, यह सब मनोरंजक और ज्ञातव्य होनेपर भी स्थानाभावसे नहीं दिया जा सकता।

मूल-विज्ञानका अन्वेषण—यह अत्यन्त कठिन कार्य है। अभी वैज्ञानिक जगतमें इसका श्रीगणेश ही हुआ है। इसका शुद्ध शब्द cytology है। हरएक गन्नेका मूल, उसकी रचना, उसके कोष-समूह तथा

अन्य विशेषताओंको जाननेके लिए 'कारनोव' रसमें गन्नेके बालकुसुमको मारकर उसका अध्ययन किया जाता है। इस कार्यसे यह पता लगता है कि कौन गन्ना शुद्ध है, कौन मिश्रित है, किसके कौन गुण पैतृक हैं, या और कहींसे आये हैं। इस विभागके अध्यक्ष डाक्टर ब्रेमर विद्वान होते हुए भी भोलेपनमें छोटे बच्चोंसे टकर लेते हैं। उन्होंने मुझे बड़े प्रेमसे समझाया। उनकी बालोचित सरलता और निर्दोष हँसी मैं इस जीवनमें कभी नहीं भूलूँगा।

रोग-परीक्षक विभाग—इसका मुख्य स्थान चैरीवन है, जो पेसुरमानकी शाखा समझा जाता है। वहाँ उसकी अध्यक्षता एक मिस-विलब्रिक हैं। यहाँ गन्नेके रोगोंकी परीक्षा होती है। मिस बाल नामक एक अन्य विदुषी महिला भी वहाँ काम करती हैं। जिस समय मैं पेसुरमान गया था, इस बातकी आशा की जाती थी कि वे शीघ्र ही पेसुरमानको अपना कार्यक्षेत्र बनायँगी।

× × ×

इतनेमें मैंने खबर पाई कि डाक्टर होनिग अपने विशेष कार्यसे निवृत्त होकर अपने विभागके दफ्तरमें मेरी प्रतीक्षा कर रहे हैं। मेरे साथ जो नवयुवक था, वह मुझे डाक्टर साहबके पास ले गया। मैंने आशा की थी कि अन्य वैज्ञानिकोंकी भाँति डाक्टर होनिग भी गम्भीर और मेल-जोलसे दूर रहनेवाले व्यक्ति होंगे; परन्तु उनसे मिलते ही मेरा सन्देह छूमन्तर हो गया। वे बड़े ही मिलनसार, सौम्यमूर्ति और अपने सम्पर्कमें आनेवालोंके प्रति एक प्रकारकी ममता रखनेवाले जान पड़े। उन्होंने बड़े उत्साहसे हाथ मिलाया और स्निग्ध शब्दोंमें पूछा—“दूसरे काममें फँसे रहनेके कारण मैं शीघ्र न आ सका, आपको कोई कष्ट तो नहीं हुआ?”

जब मैंने कहा कि जिस युवकको सेक्रेटरी साहबने मुझे सौंपा था, उसने मुझे कृषि-विभागसे भलीभाँति परिचित करा दिया है, तब वे बड़े सन्तुष्ट हुए।

उसके बाद उन्होंने कहा—“तुम्हारे पिता और मि० वार्डन सेयरको मैं भी जानता हूँ। अपने मित्रके पुत्रको देखकर मुझे अतीव आनन्द हुआ। चलो, मैं अपना टेक्नोलोजी (शक्कर-प्राप्तिका अन्वेषण) विभाग दिखा लाऊँ। बादमें हम लोग आरामसे बातचीत करेंगे।”

मेरा हाथ पकड़कर वे मुझे भीतर ले गये। इस विभागकी जिम्मेदारी गन्नेके काटनेसे लेकर चीनी बनने तक रहती है। गन्नेसे तैयारशुदा शक्कर तक पहुँचनेमें जो कार्य-प्रणालियाँ होती हैं, उनका अध्ययन इसका मुख्य कार्य है। चीनी बनानेमें जिन-जिन रासायनिक पदार्थोंका काम पड़ता है (यथा चूना, गंधक आदि) तथा चीनी बनानेमें उत्पन्न होनेवाली अन्य चीजों—By Products—(यथा शीरा, खुइया आदि) के उपयोगकी ओर यहाँ विशेष ध्यान दिया जाता है। इस विभागमें खास दर्शनीय वस्तु ‘सुगर लेबोरेटरी’ है। यहाँ सालमें १८०० के लगभग नमूने आते हैं और मिलोंके चीनी-विषयक झगड़े यहाँ तय होते हैं। मिलकी बनाई हुई चीनी नमूनेके अनुसार थी या नहीं, यह तय करना इसका मुख्य काम है। जावामें चीनीकी विक्री नमूनेके अनुसार होती है। यदि व्यापारीको सन्देह हुआ कि उसे धोखा दिया गया है, तो वह इस लेबोरेटरीकी शरण ले सकता है। दूसरी दर्शनीय वस्तु ‘विन्यास लेबोरेटरी’ है, जहाँ विभिन्न नमूनेकी जाँच-पड़ताल की जाती है। इसका अध्ययन बड़ी गम्भीरतापूर्वक किया जाता है। इसके सिवा ‘रसायन लेबोरेटरी’ है, जहाँ गन्नेका रस, रसका वनीकरण, गरमीका प्रमाण इत्यादि बातोंका अनुसन्धान किया जाता है। रसमें वाह्य वस्तु कितनी है, इसका भी अन्दाज़ा लगाया जाता है।

अन्वेषणागारके तृतीय विभागका नाम इंजीनियरिंग विभाग है। इसका काम नये-नये कल-पुर्जोंका अध्ययन करना और मिलोंको कल-पुर्जा-सम्बन्धी सलाह देना है। इस विभागके अध्यक्ष फौन प्रिंस्टेलवीट्ज

फान डेर हर्स्ट हैं। इस विभागके कार्य द्वारा ही मिलोंके कार्यकी प्रतिदिन उन्नति हो रही है। दिन प्रतिदिन गन्नेका रस अधिकाधिक मात्रामें निकला जाता है और जलावनका खर्च भी कम हो रहा है। इस विभागकी मुख्य प्रेक्षणीय वस्तु ‘यन्त्रालय’ है, जहाँ भिन्न-भिन्न प्रकारके यन्त्रोंकी मरम्मत होती है।

× × ×

इस प्रकार देखते-देखते चार घंटे बीत गये। यदि पूरी तरह सांगोपांग देखा जाय, तो सप्ताह-भर चाहिए। देखनेके पश्चात् पुनः डाक्टर होनिगने डिपार्टमेंटमें लौटे। उन्होंने जावाका मधुर पेय-विशेष पीनेको दिया और बोले—“यह वस्तु यहाँ भातृभाव सूचित करती है। आजसे तुम मेरे लघु बन्धु हुए।” उसके बाद उन्होंने कहा—“शक्करका व्यवसाय दिन-प्रति-दिन अस्ताचलकी ओर जा रहा है। जावाका व्यापार दूसरे देशोंपर निर्भर है। भारत, चीन, जापान, स्याम और कम्बोडिया ही इसकी तीनचौथाई चीनी खरीदते हैं। भारत बन्द ही कर रहा है। देखें, भविष्यमें क्या होता है।”

मैंने पूछा—“तो क्या इस प्रयोगशालामें दिन-रात परिश्रमकर जिन विद्वानोंने जावाके शक्कर-व्यापारको इतना समृद्धिशाली बनाया है, उनका परिश्रम विफल होगा?”

उन्होंने दृढ़तापूर्वक कहा—“नहीं, डच लोग भयसे परिचित नहीं। वे कालसे परे होनेकी कोशिश करते हैं। निराश होना उनका स्वभाव ही नहीं। हम लोगोंका ध्येय ‘प्राप्य वर्णनबोधत’ है। इसी अन्वेषणागारके इतिहासको देखो। पहले शक्करके व्यापारियोंने एक अनुसन्धान-गृह पेसुरुआनमें और दूसरा पेकालोंगनमें बनाया था। १८८३-८४ में भी शक्कर-व्यवसायकी बुरी हालत हुई थी, तब व्यापारियोंने विज्ञानकी मदद ली थी। उन्होंने समारंग, काजोक और पेसुरुआन—ये तीन विज्ञान-मन्दिर स्थापित किये। कालक्रमसे दो टूट गये और १९२४ में पेसुरुआनमें

तीनों विभाग स्थापित किये गये। पहली प्रयोगशाला एक मामूली टूटे-फूटे स्थानमें थी। १९०४ में नया मकान बना। अनेक आपत्तियाँ सहकर इस विज्ञान-गृहने जावाके व्यवसायियोंकी सेवा की है और भविष्यमें करेगा।”

मैंने सवाल किया—“मान लीजिए, चीनीका व्यापार एकदम टूट जाय, तो क्या आपका प्रयास असफल नहीं कहा जायगा?”

गम्भीर मुखसे डाक्टर साहबने उत्तर दिया—
“कदापि नहीं। मैं चीनीमें से किसी ऐसी नवीन वस्तुका आविष्कार करूँगा कि व्यापार नष्ट होनेसे बचेगा। शायद मेरे जीतेजी यह आविष्कार पूरा न भी हो सके; पर भविष्यमें कोई दूसरा डच उसे कर दिखावेगा। इसका मुझे पूरा भरोसा है।” उनके कथनमें डच लोगोंके आत्म-विश्वास और दृढ़ताका आभास था। मैंने मन-ही-मन कहा, भवभूतिने ठीक ही कहा है—“कालोऽयं निरवधिविपुला च लक्ष्मी।” डाक्टर साहबने फिर कहा—“इस साल भारतमें इतनी नई मिलें बनी हैं।” यह कहकर उन्होंने उनके नाम गिनाये और नकशा निकालकर मुझसे उनके स्थान पूछे। मुझे यह जानकर बड़ा आश्चर्य हुआ कि डाक्टर साहब भारतके विषयमें इतनी जानकारी रखते हैं! भारतके वैज्ञानिक शायद ही जावाकी एकआध मिलके नाम जानते होंगे। डाक्टर साहबको हिन्दू-संस्कृतिसे बहुत प्रेम है। उन्होंने कौतुकवश पूछा—“मैं भारतवर्षकी मनुष्य-गणनामें बराबर देखता हूँ कि हिन्दू कम हो रहे हैं और अन्य मतावलम्बी बढ़ रहे हैं। क्या भारतका हाल भी जावा-जैसा होगा?”

मैं क्या उत्तर देता? मैंने कहा—“सामाजिक त्रुटियाँ ही इसके कारण हैं।”

“उनका प्रतिकार अभी ढूँढ़ा नहीं गया?” साश्चर्य

उन्होंने पूछा। इसके बाद उन्होंने भारतके कृषि-वम, ईखके विशेषज्ञ राव बहादुर वेंकटरामनकी कुशल पूछी, और उन्हें यह जानकर आनन्द हुआ कि मैं रावबहादुरसे पूर्णतया परिचित हूँ।

×

×

×

दोपहर ढल चुका था। डाक्टर साहबसे विदा माँगनेका साहस नहीं होता था। डाक्टर साहबने कहा—“कम-से-कम एक महीना पेसुरुआन आकर रहो।”

मैंने कहा—“अवकाश नहीं है। यदि भविष्यमें जावा आया, तो अवश्य आऊँगा।”

उन्होंने हँसते हुए कहा—“भविष्य! भविष्यके गर्भमें क्या निहित है, यह कौन जान सकता है? उसकी कुटिलताका क्या कहना?” यह कहते-कहते उनका कंठ गद्गद हो गया। वे मुझे मोटर तक पहुँचाने आये। मैंने उनसे कहा—“गुडबाई।”

उन्होंने कहा—“गुडबाई? गुडबाई क्यों? क्या भविष्यमें हम लोग नहीं मिलेंगे? मैं गुडबाई नहीं करूँगा।” फिर उन्होंने कहा—“Au revoir. अर्थात् हम लोग पुनः मिलेंगे, तब तक सस्नेह स्मरण।” कहकर मुझसे हाथ मिलाया और प्रेमपूर्वक बोले—“अबकी बार फौन रोसम साहबका परिचय-पत्र लानेकी ज़रूरत नहीं।”

उनकी वाणीमें एक कातरताकी ध्वनि थी। मैं वहाँ अधिक नहीं ठहर सका, मानो मैं अपने चिर-स्नेही और परम मित्रसे विदा हो रहा था। मैंने नतमस्तक मोटरमें प्रवेश किया। इतनी शक्ति भी नहीं थी कि अन्तिम बार दृष्टि उठाकर उनकी ओर आभारपूर्ण नयनोंसे देखता। यह दृश्य सदाके लिए मेरे हृत्पटपर अंकित हो गया। मात्सूम नहीं, इस जीवनमें ममता-मूर्ति डाक्टर होनिगके दर्शन कब होंगे?

मैं तुम्हारे ध्यानमें हूँ !

श्रीयुत अज्ञेय

मैं तुम्हारे ध्यानमें हूँ !

वह गया जग मुग्ध सरि-सा

मैं तुम्हारे ध्यानमें हूँ—

प्रिय, मैं तुम्हारे ध्यानमें हूँ !

तुम विमुख हो, किन्तु मैंने
कब कहा उन्मुख रहो तुम ?
साधना है सहस्रनयना—
वस कहीं सम्मुख रहो तुम !

विमुख-उन्मुखसे परे भी
तत्त्वकी तल्लीनता है—

लौन हूँ मैं, तत्त्वमय हूँ
अचिर चिर-निर्वाणमें हूँ !

मैं तुम्हारे ध्यानमें हूँ !

क्यों डहँ मैं मृत्युसे या
क्षुद्रताके शापसे भी ?
क्यों डहँ मैं क्षीणपुण्या
अवनिके सन्तापसे भी ?

व्यर्थ जिसको सापने में
हैं विधाताकी भुजाएँ—

वह पुरुष मैं मर्त्य हूँ पर
अमरताके मानमें हूँ !

मैं तुम्हारे ध्यानमें हूँ !

रात आती है, मुझे क्या ?
मैं नयन मूढ़े हुए हूँ,
आज अपने हृदयमें मैं
अंगुलीको लिये हूँ !

दूरके उस शून्य नभमें
सजल तारे छलछलाएँ—

घञ्ज हूँ मैं, ज्वलित हूँ,
वेरोक हूँ, प्रस्थानमें हूँ !

मैं तुम्हारे ध्यानमें हूँ !

वह गया जग मुग्ध सरि-सा

मैं तुम्हारे ध्यानमें हूँ !

प्रिय, मैं तुम्हारे ध्यानमें हूँ !

मूक संसृति आज है, पर
गूँजते हैं कान मेरे—
बुझ गया आलोक जगमें
धधकते हैं प्राण मेरे—

मौन या एकान्त या
विच्छेद वयों मुझको सताये ?

विश्व भंङ्गत हो उठे, मैं
प्यारके उस गोलमें हूँ !

मैं तुम्हारे ध्यानमें हूँ !

जगत है सापेक्ष, याँ है
कलुष तो सौन्दर्य भी है—
हैं कठिनताएँ अनेकों—
अन्तमें सौकर्य भी हैं !

किन्तु क्यों विचलित करे मुझ
को चिरन्तनकी कमी यह—

एक है अद्वैत जिस थल
आज उस स्थानमें हूँ !

मैं तुम्हारे ध्यानमें हूँ !

वेदना अस्तित्व की,
अवसानकी दुर्भावनाएँ—
भव-सरण, उत्थान-अवनति,
दुःख-सुखकी प्रक्रियाएँ—

आज सब संघर्ष मेरे
पा गये सहसा समन्वय :

आज अनिमिष देख तुझको
लौन मैं चिर-ज्ञानमें हूँ !

मैं तुम्हारे ध्यानमें हूँ !

स्मृति-चिह्न

श्रीमती होमवती

जेठ मासका सवेरा था। ठंडी हवाके मन्द झोंकोंसे प्रकृति अँगड़ाई-सी ले रही थी। वृद्ध और पल्लवोंको थपकियाँ देता हुआ पवनका एक तीव्र झोंका कंचनके मन-प्राणको शीतल करके रोग-रोममें व्याप्त हो गया। मुँहपर अस्तव्यस्त पड़ी हुई अलकोंको हाथसे थोड़ा इधर-उधर करके लापरवाहीसे वह फिर सो गई। इसी समय रामसेवकने झोंपड़ीमें प्रवेश करके जीवनकी एकमात्र आधार कंचनके माथेको सहलाते हुए कहा—“उठ बिठिया, सवेरा हो गया। क्या सोती ही रहेगी? देख, कुआँ चलानेको देर हो रही है। उधर मालिकके घरके लिए डाली भी सजानी है, इधर बहुत-सी घास छीलनेको पड़ी है। और देख, तेरी प्याऊपर राहगीरोंकी भीड़ लग जायगी, उन्हें पानी कौन पिलायेगा भला?”

बूढ़ा माली अपने दिन-भरके कार्यका लेखा-जोखा करने लगा; पर उसकी लाड़ली बिठिया कंचनके कानोंपर झूँ तक भी न रेंगी। दोष तो सारा इसीका है। जबसे घरवाली परलोक सिधारी, लड़कीको उँगलियोंसे नाप-नापकर पालता रहा है। कभी आधी बात नहीं कहता—मारना-पीटना तो अलग रहा, डाँटता-फटकारता तक नहीं। कंचनपर बूढ़ेके इस भाषणका कुछ भी प्रभाव न पड़ा। उसने—“ऊँह दादा, सोने दो, नौद बड़े जोरकी लगी है।” कहकर कारवट बदल ली। किन्तु वह बेचारा भी आखिर करे क्या? जगाना तो पड़ेगा ही। अबकी वृद्ध पिताने उसे थोड़ा गुदगुदा दिया। बालिका खिलखिलाकर हँस पड़ी और थोड़ी सिकुड़-सिकुड़ाकर दोनों हथेलियोंसे मुँह ढाँककर फिर ज्यों-की-त्यों पड़ रही।

रामसेवकने तनिक कराहते हुए कहा—“ऊँ...अरे देख तो बिठिया, कितने जोरसे हाथमें खुरपा लग गया है, खून बन्द ही नहीं होता। लोटा-भर पानी

तो लाकर डोल गया है।”

अबकी कंचन पड़ी न रह सकी। इतना सुनना था कि हड़बड़ाकर वह बैठ ही गई, मानो बादलोंको चीरकर बिजली चमक गई। सिरके ऊपरसे गिरी हुई ओढ़नीको सम्हालती हुई वह पानी लेने दौड़ी। पिता मन-ही-मन हँसा। उसकी कंचन उसे कितना प्यार करती है!

बालिका पानी लेकर लौटी, तो उसने देखा कि उसका दादा झोंपड़ीमें न होकर सामनेवाले मैदानमें बैठा घास छील रहा है। वह तो सोच रही थी कि दादाको बड़ी तकलीफ होगी; पर यह तो बठे घास छील रहे हैं! कंचनने खीझकर जलसे भरा लोटा कुटियाके द्वारपर पटक दिया—“और कुछ नहीं, यह सब मुझे सोतेसे जगानेकी चाल है दादाकी।”

“हाँ, और नहीं तो क्या? जाओ कंचन, सो रहो।”

नित्यकी परिचित ध्वनि सुनकर वह सिहर उठी। पीछे फिरकर देखा, तो छड़ी घुमाते हुए जर्मीदार-पुत्र राजेन्द्रकुमार हँस रहे हैं। वह लजा गई और सावधानीसे सिरका आँचल ठीक करती हुई पिताके पास जाकर बोली—“दादा! देखते नहीं, राजा बाबू आये हैं।”

मालीने सामने पड़े हुए घासके ढेको एक ओर सरका दिया और खड़ा होकर अपने छोटे मालिक जर्मीदारके होनहार और इकलौते पुत्र राजेन्द्रकुमारको झुककर सलाम किया।

राजेन्द्रकुमारने अपने रूमालमें से हरे-हरे ढाकके पत्तोंका दोना रामसेवककी ओर बढ़ाकर कहा—“लो ठाकुर! मैं पास हो गया हूँ—तुम्हारे लिए यह मिठाई है। कल ही नतीजा मालूम हुआ है।”

वृद्ध चौधरीने दोनेको माथेसे लगाकर कहा—“बड़ी उमर हो, भैया! भगवान तुम्हें दिन-दिन तरकी दें।”

“अच्छा, तुम अपना काम करो। मैं अभी थोड़ी देर घूमकर चला जाऊँगा। सूरज चढ़ने लगा है, धूप हो आयेगी।” और फिर फूले हुए वेलेकी रौसपर वह धीरे-धीरे टहलने लगा।

कंचन कुएँकी मेढ़पर बैठी न-जाने क्या सोच रही थी? गड़ाडीलकी फूलदार ओढ़नीका एक छोर नीचे लटक रहा था तथा दूसरा छोर उसकी लम्बी सुराहीदार गर्दनमें उलझा पड़ा था। धारीदार गिमका लँहगा उसने अभी नया ही पहना था; पर उसके मैला हो जानेकी कंचनको रत्ती भर भी चिन्ता न थी। वह यों ही लापरवाहीसे कुएँकी कच्ची मेढ़पर पैर लटकाये बैठी थी। हाथोंमें पन्नी लिपटी हुई चार-चार छे-छे लाखकी चूड़ियाँ खूब चमक रही थीं। कानोंमें भूमते हुए चाँदीके बड़े-बड़े झूमके कपोलोंको छू जाते थे। बड़े-बड़े सरस नैनोमें काजलकी पतली डोरीके साथ-साथ गम्भीरता, हास्य, चंचलता, न-जाने क्या-क्या भरा था। होठ अधिक पतले नहीं और नासिका ऊँची तथा लम्बी सुन्दर लगती थी। गोल चेहरा, न बहुत दुबली और न मोटी। रंग उतना गोरा नहीं; पर एकदम साँवला भी नहीं, कुछ पीलापन लिये हुए कुन्दन-सा चमकता हुआ। खाने-पहननेकी उसे कमी ही क्या थी? उसका पिता उसीके लिए तो रात-दिन खून-पसीना एक करके पैसे कमाता था। बारह रुपये महीना पाकर वह मस्त रहता। आगेकी उसे चिन्ता ही क्या थी? कंचनके लिए तो उसकी माँका ही जोड़ा-जँगोड़ा गहना कपड़ा पड़ा था। वह नित-नया खाती और पहनती थी। उसका बाप उसे ही देखकर तो जीता था। कंचनके रूपमें रामसेवकको अपनी गृहिणीकी छाया साफ दिखई देती थी। यही कंचन उसका स्मृति-चिह्न थी। अपना दूसरा घर बसानेका तो उसने कभी विचार ही नहीं किया। नाते-गोतेका कोई आदमी इस विषयमें यदि कभी उससे कुछ कहता भी, तो रामसेवक हँसकर टाल देता—“अब तो बुढ़ापा आ गया, भैया!

किसी दिन विटियाका ब्याह काके वरजमाई रख लूँगा, फिर हरी-भरी गृहस्थी हो जायगी।”

इसी प्रकार रामसेवकने पत्नीके वियोगमें अपनी आयुके लम्बे दस वर्ष बिता दिये। जिस समय उसकी पत्नीका परलोकवास हुआ था, तब कंचन केवल ढाई या तीन वर्षकी ही थी। आज तक कलेजेसे लगाकर उसने कंचनको पाला है। हर आठवें या दसवें दिन वह अपने हाथोंसे मेंहदी पीसकर उसके हाथ पैर रचा देता है। उसके बाल धोने तथा उन्हें सँवारकर गूँथ देनेमें और कंचनकी आँखोंमें काजल लगानेमें न-जाने उसे कितनी निराशा और कष्टके साथ अभ्यास करना पड़ा है, यह तो वही जानता है। इतने कष्टसे पाली हुई लड़कीके विवाहकी चिन्ता भी अब उसे कुछ कम नहीं है। वह किसी ऐसे वरकी खोजमें है, जो घरजमाई बनकर रह सके और उसकी विटियाको आँखोंमें काजलकी नाई रख सके। कंचन भी तो उस कंचनके फूलके समान है, जिसे शिल्पीने बड़ी लगन और चतुराईसे गढ़ा हो। रूप तो फूटा ही पड़ता है। निर्धन पिताकी झोपड़ी कंचनके रूपकी ज्योतिसे सदा जगमगाती रहती है। मन होता, तो थोड़ा-बहुत काम कर लेती, अन्यथा प्याऊपर बैठकर राहगीरोंको पानी पिलाना या अपनी मैनाको पढ़ाते रहना—यही दो काम उसके लिए मुख्य थे।

- २ -

“इतनी अपने-आप नहीं, जितना बड़ा घड़ा है।”

“सो क्या हुआ, बाबू! रोज ही तो भरकर ले जाती हूँ।”

“लाओ, मैं उठाकर तुम्हारे सिरपर रख दूँ।”
—राजेन्द्रने कहा।

“नहीं, उन हाथोंको क्या ऐसा काम करनेकी बान थोड़े ही है।”—कंचन हँसकर बोली।

“वाह, बान ही क्या कहती हो? एक ही हाथसे उठाये देता हूँ।”

“हाँ-हाँ, यह क्या करते हो? लो, बस, फोड़

डाला न नया घड़ा—कल ही तो दादा लाये थे। अब पिटाई किसकी होगी ?”—कंचनने मुँह बनाकर कहा।

राजेन्द्र सहम गया। घड़ेके खंड-खंड हो गये थे। वह अपराधीकी भाँति मुँह लटकाकर खड़ा रह गया। कंचन मन-ही-मन हँसती हुई मोंपड़ीकी ओर चल दी और फट दूसरा घड़ा उठा लाई।

“अरे, कहाँ चले गये ? लो, डोल उसारती हूँ। पानी पीना है या नहीं ?”

सामने देखा, राजेन्द्र आमके वृद्धकी आड़में बैठान-जाने कौन-सी समस्याको हल करनेमें व्यस्त है। वह उसी ओरको चल दी। राजेन्द्रकुमारके निकट जाकर, दोनों हाथ कमरपर धरे, ग्रीवाको तनिक झुकाकर बोली—“क्या सोच रहे हो ?”

“कुछ नहीं।”

“कुछ तो ?”

“यही कि ठाकुरसे कह आई न कि किसने तुम्हारा नया घड़ा फोड़ डाला ?”

बालिकाका मुँह उतर गया। वह क्या ऐसा भी कर सकती है ? बोली—“क्या इतनी-सी बात भी नहीं समझती मैं ?” और फिर तेज़ीके साथ तिनककर कुएँपर लौट आई और फटकेसे कुएँमें डोल दे मारा। राजेन्द्रके चेहरेपर एक हल्की मुसकान फैल गई।

“बस, रूठ गई !” कहकर वह अपना कुरता फाड़ते हुए उसी ओरको चल दिया। थोड़ी देर खड़े रहनेके उपरान्त बोला—“कंचन !”

कंचन चुप रही।

“नहीं बोलती, नाराज़ हो गई ?” वह कुछ खिन्न हो गया।

“जो पेट भरकर दोनों जून रोटी देता है, उससे नाराज़ी कैसी, बाबूजी !” उसने भर्राई हुई आवाज़में कहा। बालिकाकी आँखोंमें आँसू चक्कर लगा रहे थे। इतना कहकर उसने अपने आँचलके छोरसे आँखें मसल डालीं।

अब राजेन्द्रने कंचनके उतरे हुए चेहरेपर दृष्टि

गड़ाकर कहा—“कंचन, तुम्हारी तरह तो हमारी किताबें भी कठिन नहीं होतीं ? कोशिश करनेसे उनका मतलब भी समझमें आ ही जाता है।”

कंचन बिना कुछ उत्तर दिये, अपने होठोंपर मचली हुई मुसकराहटको बरबस रोकती हुई, बगलमें गगरी दबाकर प्याऊकी ओर चल दी।

तनिक उतावलीसे उसे रोकनेका यत्न करते हुए राजेन्द्रने कहा—“ज़रा ठहरो कंचन ! लो सुने जाओ। अरे, मैं जा रहा हूँ, बहुत दिनोंके लिए चला जाऊँगा। कल ही तो जाना है।”

“ऐं, जा रहे हो ? कल ही, बहुत दिनोंके लिए ? पर कहाँ ?”

घड़ेको मौलसिरीकी जड़में टिकाकर वह लौट आई। राजेन्द्र खिलखिलाकर हँस पड़ा। उसकी हँसी बागके कोने-कोनेको चैतन्य करती हुई, गुलाबके पौधोंको ठीक करते हुए, मालीके कानोंको भी पार कर गई। खुरपी वहीं डालकर वह कुएँकी ओर यह कहता हुआ लपका—“यह भी घड़ा फोड़ डाला क्या ? जान पड़ता है कि फिर ठोकर खाकर गिर पड़ी। कहा था कि थोड़ा सन्न करो, मैं अभी चार घड़ा पानी डाल दूँगा ; लेकिन मानती ही नहीं।”

“कहाँ दादा ? देखो न, घड़ा तो वह धरा है। पैरमें न-जाने कैसे—जान पड़ता है, काँटा चुभ गया है।” कहकर वह धम्मसे वहीं बैठ गई।

“देखूँ, कहाँ काँटा गड़ा है ?” कहकर वृद्ध बालिकाका पैर पकड़कर बैठ गया। राजेन्द्रने बरबस हँसीको रोककर देखा कि कंचन उसीकी ओर भृकुटि ताने घूर रही है। थोड़ा सम्मलकर राजेन्द्रने कहा—“लाओ चौधरी, एक-आध खीरा-वीरा अपने बागका खिलाओ। कल तो हम जा ही रहे हैं।”

बालिकाकी तनी हुई भौंहें ढीली पड़ गईं। वह आगेकी बात सुननेकी लालचसे सम्मलकर खड़ी हो गई। मालीने आश्चर्यसे पूछा—“कहाँ जा रहे हो बाबू ?”

“पढ़ने। तुम्हारी इस वस्तीमें कालेज है नहीं,

फिर क्या किया जाय ? यहाँकी पढ़ाई ख़तम हो गई ।”

“फिर कब आओगे राजा ?” मालीने उत्सुक होकर पूछा ।

“यही कभी छुट्टी-बुट्टीमें आयँगे ।” राजेन्द्रने आकाशकी ओर देखते हुए कहा । उसका हृदय उमड़ने-सा लगा ।

बूढ़ा बोला—“भगवान सुखी रहें भैया ! खूब तरक्की हो । हमारा भी मुँह मीठा होता रहे । पर भैया ! जाड़ोंमें कंचनके व्याहकी सोच रहा हूँ, तब ज़रूर आना मालिक ! बड़े बाबूसे कहकर दस-बीस रुपयेका सहारा तब भी लगवा ही दोगे ।”

“अच्छा ।” कहकर राजेन्द्र सोचने लगा—
“हैं, जाड़ोंमें—इन्हीं जाड़ोंमें विवाह...खैर ।” और फिर छड़ी उठाकर घरकी ओर चल दिया ।

जाते-जाते भी एक बार दोनोंके नेत्र मिल गये । दोनों ही की दृष्टि शून्य थी । वह सोचने लगा—
छिः ! छिः ! मालीकी लड़कीसे मेरा क्या अपनापा । पर अनायास ही हृदयसे एक ठंडी साँस निकल पड़ी ।

उधर कंचन सोच रही थी—दादाकी बात कहनेकी तनिक भी अकिल नहीं ।

इसी समय बूढ़ेने लड़कीको झकझोरकर कहा—
“चल, उजालेमें काँटा निकालूँ ।”

- ३ -

प्रकृतिके नियम और संसारके चक्रकी चालमें कभी कोई अन्तर नहीं पड़ता । यदि कोई उदास है तो उसकी बलासे, कोई प्रसन्न है तो इससे उसे क्या ?

आज तिजोरा गाँवसे कंचनको देखने-सुननेके लिए कुछ लोग रहे हैं ; पर उसकी तबीयत अच्छी नहीं है, कलसे कुछ खाया भी नहीं । इधर रामसेवक इस चिन्तामें है कि कहीं यह वर हाथसे न निकल जाये । बेटी तो आखिर व्याहनी ही है । कोई राजा-महाराजा तो मिलनेसे रहा । गरीबकी लड़की तो गरीबके ही घर जायगी—चाहे देखने-सुननेमें वह कैसा ही क्यों न हो ?

फिर घर-घर दोनों ही अच्छे हैं । सौ बीघेकी काश्त करता है । चार लड़के हैं । दो लड़कियाँ हैं । समधी बड़ा नेक है । वह खुशीसे एक लड़केको ससुरालमें रहनेकी इजाज़त दे देगा । यहाँपर भी उसके मालिक भले हैं । वे कंचन और उसके पतिको बेठिकाने न होने देंगे, कोई जगह दे ही देंगे । बस, इतनी ही कसूर है कि लड़का कुछ छोटा जँचता है, सो कुछ नहीं, सब ठीक हो जायगा ।

घरमें प्रवेश करते हुए रामसेवकने कहा—“बिटिया, तीन दाल तीन ढंगसे बने और देख मटकीमें राव रखी है, न हो इमली भिजोकर थोड़ी सोंठ बना ले । तब तक मैं हुक्का-चिलम ठीक करता हूँ ।” कहकर वह वर्षोंसे यों ही पड़े हुए अपने पीतलके नारियलको खूब माँजकर चमकाने लगा । जबसे कंचनकी मा मरी, तभीसे रामसेवकने इसे पीना छोड़ दिया था । वही माँज-धोकर इसे ताज़ा कर दिया करती थी ।

आखिर बड़ी खातिर-तवाज़ोंके साथ कंचनका नाता पक्का हो गया । जाड़ोंमें विवाह भी तय हो गया । जब वे सब चले गये, तो कंचनको बड़ी फटकार सहनी पड़ी । कारण, अरहरकी दालमें वह कच्ची आमी डालना तो भूल ही गई थी और नमक भी नहींके बराबर था । दो दिनसे लड़कीने कुछ खाया भी नहीं और रातको उसे हल्का-सा ज्वर भी हो गया था । सब कामोंसे छुट्टी पाकर रामसेवकने कंचनके माथेको दबाते हुए कहा—“सोच न करना बिटिया, मैं तुम्हें अपनी आँखोंसे ओझल न होने दूँगा । मैंने ठाकुरसे पहले ही ठहरा लिया है कि जब तर्क मैं जीता हूँ, अपनी कंचनको आँखोंसे दूर न होने दूँगा, फिर चाहे जो करना । कहकर बूढ़ेने अपने कुरतेकी बाँहसे आँखें पोंछ डालीं । कंचनने आँखें न खोलीं, न कुछ उत्तर देनेकी ही बात थी, केवल उसकी आँखोंसे भी दो बूँद आँसू निकलकर अदृश्य हो गये ।

हृदयकी मूक व्यथाका अनोखा दूत आँसूसे बढ़कर कौन हो सकता है ?

- ४ -

सात वर्षका लम्बा समय बीत गया। अनेक अवसर आये और चले गये। बचपनके कितने ही कौतुक और अनेक स्मृतियाँ वयस और वैभवके गह्वरमें दब-गईं। तब क्या था और अब क्या हो रहा है ? इसकी ओर ध्यान देनेका न तो किसीको अवसर ही मिलता है और न इसकी आवश्यकता ही जान पड़ती है। प्रकृतिका यही नियम है। कंचन दो बच्चोंकी मा हो गई है। राजेन्द्रकुमार जबसे कानपुरके 'एप्रिकल्चर कालेज' से शिक्षा प्राप्त करके आया है और अपना 'फार्म' खोला है, तबसे उसके समयका एक-एक क्षण अमूल्य हो गया है। जैसे-तैसे अपने जरूरी काम पूरा करता है। आस-पासके गाँव तथा शहरोंमें उसकी प्रशंसाका सूर्य चमक उठा है। दो वर्ष होनेको आये कि एक अच्छे घरानेकी शिक्षिता और गविता कन्याके साथ उसका विवाह भी हो गया। यद्यपि छै मास बीत गये, उसकी माताका स्वर्गवास हो गया और पिता वृद्ध रोगी-से रहने लगे हैं, फिर भी किसी प्रकारका कष्ट या अभावका कोई कारण नहीं दीखता। सब ओर सुख-सम्पदाकी हरियाली छाई रहती है।

पर संसारमें सभीका जीवन सुखी नहीं हो पाता। एक कंचन है, जो लाख प्रयत्न करनेपर भी अपना जीवन सुखी नहीं बना सकी। साल-भर हो गया, उसका पिता भी चल बसा। अब पतिका उड़ंड स्वभाव और भी कठोर और अत्याचारी हो उठा है। वह न अपनेको ही भुला सकी, न अपने दुःखको ही। जो कुछ रुपया-पैसा था, सब ताड़ी, शराब और जुएकी भेंट चढ़ गया। अब रह गया कंचनका गहना, जिसके कारण उसे नित्य ही मार खानी पड़ती ; पर वह कह देती—“मेरे पास अब कुछ नहीं है।” उसे अपने बच्चोंकी भी तो चिन्ता थी। गनीमत तो यह थी कि पतिके खराब हो जानेपर भी वह किसी प्रकार उसके कामको अपने हड्डे तोड़कर पूरा कर लेती थी, और जमींदारकी इस कृपाके

लिए रात-दिन उन्हें तथा उनके बाल-बच्चोंको असीसती रहती थी ; नहीं तो भूखों मरनेका दिन दूर नहीं रह गया था।

फागुनका महीना था। ऋतुराजने अपने हाथोंसे प्रकृतिको खूब सजाया था। सब-कुछ नया-ही-नया था। पतझड़के साथ-साथ नई-नई कोंपले भी तैयारीपर आ रही थीं। इधर बहुत दिनोंसे राजेन्द्रकुमारका एक भी चक्र बागमें न लगा था। कितने ही कामोंमें व्यस्त रहनेके कारण कभी उस ओर जानेका ध्यान ही न आया था। आज अनायास ही छड़ी उठाकर वह बागकी ओर घूमनेकी इच्छासे चल दिया। प्रातःकालकी मन्द शीतल वायु बचपनकी अनेक भूली हुई स्मृतियोंको धीरे-धीरे स्पष्ट करनेकी चेष्टा करने लगी। राजेन्द्रने बाटिकामें प्रवेश किया और न-जाने किस प्रेरणासे प्रेरित होकर वह मालीकी कुटियाके सामने आकर तनिक ठिठक गया। चम्पेकी आड़से देखा कि युवती कंचन भोंपड़ीके द्वारको बहार रही है। एक ओर दो बालक बैठे मटरकी सूखी-सी फलियाँ खा रहे हैं और अमरुदके पेड़पर तोता-मैनाका पिंजरा लटक रहा है। झाड़ू देते-देते कंचन अमरुदकी छाथामें घुटनोंमें सिर देकर बैठ गई, मानो वह नित्यकी यातना सहते-सहते थक गई है। दिनोंदिन उसकी शक्ति क्षीण होती जाती है। जो सुमन विकसित होनेको था, वह असमयमें ही मुरझाने लगा। रूप-यौवन था ; पर दुःखकी लूसे फुलस गया था। इसी समय मैना बोल उठी—“काका....काका !” कंचनकी विचार-धारापर धक्का-सा लगा, वह टूट गई। उसने चौंककर चारों ओर देखा। फिर धीरेसे बोली—“काका नहीं मैना, कहो राजा....बाबू !” और फिर उमड़ते हुए आँसुओंको पी गई।

बहुत दिनकी सोई हुई स्मृति जाग्रत हो गई। राजेन्द्रकुमार देश, काल और परिस्थिति सभी कुछ भूल पल-भरमें युवतीके सामने जाकर खड़ा हो गया। स्नेहसे पुकारा—“कंचन !” आज बहुत दिनों बाद

यह मधुर सम्बोधन सुनकर वह सिहर उठी। राजेन्द्रका स्वर भी काँपने लगा, पूछा—“कैसी हो?”

“अच्छी।” कहकर उसने फिर चारों ओर भयभीत दृष्टिसे देखा।

राजेन्द्रको अब कुछ अधिक समझनेके लिए बाक़ी न रहा। पहलेकी और आजकी कंचनमें आकाश-पातालका अन्तर है। उसकी सारी चंचलता किसी अज्ञात व्यथामें डूब गई है, और अब वह साक्षात् करुणा और गम्भीरताकी प्रतिमा-सी बन गई है। राजेन्द्रने क्षण-भर बाद पूछा—“क्या उससे बहुत डर लगता है, कंचन? वह बहुत तंग करता है?”

पर कंचनने कुछ कहा नहीं, केवल अपनी गोरी-गोरी पीठ उघाड़कर दिखलाई, सारी कमर उधड़ी पड़ी थी। युवक जर्मीदारका हृदय हाहाकर कर उठा। इच्छा हुई कि अभी उसका कान पकड़कर बाहर निकाल दूँ। कंचन क्या इस योग्य थी? किन्तु सोचा—क्या यह उचित होगा? मेरा इसपर अधिकार ही क्या है? और यह भी इसे स्वीकार करेगी, इसपर भी तो विश्वास नहीं होता। उसके दो दो बच्चे, वह इसका पति। यह सब सोचकर उसका सर चक्कर खाने लगा।

कंचन घरके भीतर गई और दो छोटी-छोटी पोटलियाँ निकाल लाई और राजेन्द्रके पैरोंके पास रखकर बोली—“यह लेते जाओ।”

“यह सब क्या है कंचन?” उसने पूछा।

“विवाहके समय तुमने सौ रुपये भेजे थे। न-जाने क्या सोचकर दादाने उन्हें खर्च नहीं किया। और यह है मेरी माँके सहेजकर रखे हुए गहने। इन्हें बेचकर दादाकी एक कुँइयाँ बनवा सको तो बनवा देना और जो-कुछ बच्चे, वह अपने पास जमा रखना, कभी जरूरत आ पड़े, तो उससे इन बच्चोंकी कुछ मदद कर सको तो कर देना।” इतना कहकर वह रो पड़ी। उसकी आँखोंके बहुत देरके रुके हुए आँसू बड़े वेगसे बरस पड़े।

सब-कुछ देख-सुनकर राजेन्द्रके हृदयसे एक गहरी साँस निकल पड़ी। फिर कहा—“यह इतना सब-कुछ तुम्हें देना न होगा, कंचन! ठाकुरके नामका कुआँ भी बन जायगा और जरूरत आ पड़नेपर बच्चोंको भी देख लिया जायगा।”

“पर मैं तो कल जा रही हूँ, बाबू! ऐसे कितने दिन चलेगा? गाँवपर ख़बर भेज दी है। कल इनके ताऊ लेने आ रहे हैं।” बच्चोंकी ओर इशारा करके उसने कहा।

“वहाँ क्यों जा रही हो, कंचन? अब तक इतना दुःख सहती रही—मुझे क्यों नहीं ख़बर कर दी थी? चलो, घर चलो।” राजेन्द्रने कहा।

“सो तो ठीक था बाबू, पर कुलकी कान? हाँ, कभी कोई बात-बच्चा खेलानेके लिए जरूरत आ पड़े, तो ख़बर भेज देना; पर अब……”

वह आगे कुछ न कह सकी। बीच ही में रोककर राजेन्द्र बोले—“पर अब क्या? अब हमें भी तो देखने-सुननेके लिए कोई चाहिए ही न? जबसे अम्माँ मरी हैं, घरका प्रबन्ध करनेवाला कोई नहीं। सब घरको नौकर-चाकर ही लूट कर खा जायेंगे।”

कंचनकी इच्छा कुछ पूछनेकी हुई; पर मुँहसे शब्द ही न निकले, केवल “क्या बहुरानी……” ही कहने पाई थी कि ज़बानपर जैसे ताला लग गया। किन्तु राजेन्द्रने सहज ही उसके प्रश्नको हल करते हुए कहा—“आजकलकी पढ़ी-लिखी लड़कियाँ वैसी सुवर्णसे गृहस्थी थोड़े ही चला सकती हैं, कंचन!”

इतना कहकर वह किसी विचारमें पड़ गया। कंचन थोड़ी देर कुछ सोचती रही, फिर बोली—“यह सब कैसे हो सकेगा, बाबू? कोई क्या कहेगा? मैं किसीके मुँहसे अपने बारेमें वैसी कोई भी बात क्योंकर सह सकूँगी, राजा? अब तुम जाओ, धूप चढ़ी आ रही है।”

राजेन्द्र निरुत्तर हो गया। ठीक है, समाजका मुँह बन्द कर देनेकी सामर्थ्य उसमें न थी। बोला—

“अच्छा, यह सब रखो और किसी प्रकारकी चिन्ता न करना। क्षण-भर रुककर फिर कहा—“फिर कभी आभोगी न कंचन ?”

“हाँ, जब जरूरत होगी, तब जरूर आऊँगी।” कहकर उसने थोड़ी हँसनेकी चेष्टा की। फिर अपने बचपनके साथी और अनन्दाता मालिकके पैर छूनेको हाथ बढ़ाया, तभी दो बूँद आँसू उसके व्याकुल नयनोंसे निकलकर उसके पैरोंमें लोट गये। राजेन्द्रकी पलकें भी सूखी न रह सकीं। वह हृदयपर एक कठिन और कभी न हल्का होनेवाला भार लादकर घर जानेको उद्यत हुआ। इसी समय मैना फिर बोल उठी—“राजा बाबू.... राजा बाबू !”

राजेन्द्रने तनिक घूमकर कहा—“इसकी बोली बड़ी प्यारी है। यह सब इसे क्यों सिखा दिया है, कंचन ?”

“क्या तुम इतना भी नहीं समझ पाते राजा ? मैं इसीके सहारे तो जीती ही हूँ।” और फिर उसके लोचनोंसे जल-धारा बह निकली। रास्तेमें जाते-जाते राजेन्द्रने भी कई बार रुमालसे आँखें पोछीं।

कुछ दूर जाकर उसने देखा कि एक ताड़ीकी मटकी, जो ऊपरसे बहुत ही गन्दी दीख रही थी, एक पाकरके पेड़पर लटक रही है और उसीपर कुछ लोग बुरी तरहसे आपसमें झगड़ा कर रहे हैं। उनमें कंचनका पति भी है, जिसके मैले गबरुनके

कुरतेकी धजियाँ उड़ रही हैं। जान पड़ता था कि इस समय वह तनिक भी आपेमें नहीं है। उसकी ऐसी दयनीय दशा देखकर अचानक राजेन्द्रके दिलपर एक चोट-सी लगी, जैसे कंचनका भविष्य उनके सामने आ गया हो ? वह घर पहुँचा तो गृहिणीने पूछा—“आज आँखें बड़ी सुखे हो रही हैं, क्या दुखनी आयँगी ?”

उसने कहा—“हाँ, कुछ पड़ गया है।”

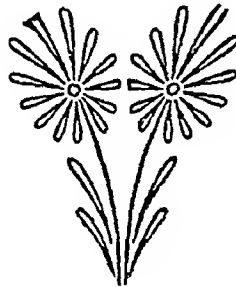
“देखूँ।”

“पर तुम निकाल न सकोगी, उषा ! आप ही ठीक हो जायगा।”

× × ×

थोड़े दिनों बाद बागके दरवाजेपर एक विशाल पक्का कुआँ बन गया, जिसके पानीकी प्रशंसा आस-पासके सभी गाँवोंमें थी। आते-जाते सभी पथिक नये जमींदारकी तारीफ़ करते थे। न-जाने कब किसने उसका नाम ‘कंचन-कुँइयाँ’ के नामसे विख्यात कर दिया।

जब कभी राजेन्द्रकुमार बागमें जाते, तब उस कुटियाके द्वारपर लगे हुए अमरुदके पेड़के नीचे क्षण-भर खड़े हुए बिना न लौट पाते। मानो वह उनके युवा हृदयकी किसी ऐसी गोपनीय स्मृतिका चिह्न है, जो न तो भुलाई ही जा सकती है और न कभी प्रकट हो सकेगी।



विदेशोंमें हम

श्री आनन्दमोहन सहाय, जापान

सन् १९२० के महान सत्याग्रह-आन्दोलनके समयसे ही सारी वसुन्धराके सभ्य व्यक्तियों तथा जातियोंकी जिज्ञासु दृष्टि भारतकी ओर खिंची हुई है। भारतकी नवीन नैतिक तथा राष्ट्रीय जाग्रति कैसी है और भारतपर अंगरेजोंके आधिपत्यका वास्तविक रूप क्या है, इसे जानना वे अपना मनुष्य-धर्म समझते हैं। कई बार मैंने देशके पूज्य नेताओंके पास अखबारों द्वारा यह सन्देश भी भिजवाया कि सभ्य-संसार हमारी बातें जाननेके लिए व्यग्र है; किन्तु उसपर कोई विशेष ध्यान नहीं दिया गया। जब दूसरे देशवाले हमारी बातें सुननेको तरस रहे हों, तब गालपर हाथ धरे सोचते रहना और उनकी इस पवित्र इच्छाकी अवहेलना करना कहाँ तक बुद्धिमानी और दूरदर्शिताका परिचायक हो सकता है? इसके विपरीत भारतके अमित्रोंने हमें बदनाम करनेके लिए जिस नीचतासे वेसिर-पैरकी मगदुन्त बातें फैलाई हैं, वे क्या कभी भूलनेकी हैं?

विदेशमें मुझे आज दस वर्षसे अधिक गुजर गये। मैं अधिकतर जापानमें ही रहा हूँ; परन्तु इन दस वर्षोंमें मैं इस सुदूर-पूर्वमें रहनेवाले भारतीयोंसे तथा भारतमें स्थित अपने बन्धुओंसे बाबर सम्पर्क रखता आया हूँ। इससे मुझे इस बातका पता बराबर लगता रहता है कि हमारे शत्रु किस-किस तरहके प्रोपेगैण्डेसे संसारके कोने-कोनेमें हमारी असभ्यता, हमारी असहायता और हमारी वर्चस्वताकी घोषणा करने तथा हमें सर्व-अवगुण-सम्पन्न प्रसिद्ध करनेकी कुचेष्टा करते आ रहे हैं। उनके कुत्सित व्यवहारपर कोई आपत्ति करता है, तो उसे यह जवाब मिलता है कि भारतीय सर्वथा अयोग्य हैं। यह तो अंगरेजी राज्य ही है, जो देशमें शान्ति बनाये है। यदि आज अंगरेज भारतकी देख-रेख छोड़ दें, तो कल ही सारा देश भयानक गृह-युद्धसे रसातलको पहुँच जायगा। अंगरेजी आधिपत्यकी बदौलत ही देशमें इतना अमन-चैन है। साम्प्रदायिक कलह, अशिष्टा,

कुप्रथा आदिसे जर्जरित भारतवासी कहीं राज्य चलानेमें समर्थ होंगे? हमारे शत्रु इस प्रकारकी बातोंसे कान फूँकनेमें बड़े दक्ष हैं, अतः उन्हें तुरत ही सफलता भी मिल जाती है। जो लोग हमारी उच्च भावनाओं तथा हमारी सचाईसे परिचित हैं, वे जल्दी पंजेमें नहीं आते। किन्तु सब प्रकारके अथक और निरन्तर प्रचारसे मनुष्यकी स्वाभाविक कमजोरी अन्तमें विवश होकर अपनेको अर्पण कर ही देती है—उच्चाटन मंत्रकी जीत होती है।

ऐसी परिस्थितिसे केवल देशके स्वतन्त्रता-संग्राममें ही बाधा नहीं पहुँचती, बल्कि विदेश-प्रवासी बन्धुओंको भी 'भारत और भारतीय' के नामपर नाना प्रकारके क्रूर उपहासोंका सामना करना पड़ता है। कांग्रेस भारतकी प्रमुख संस्था होकर केवल भारतमें रहनेवाले भारतीयोंकी ही मान-रक्षा करे और विदेश-स्थित प्रवासी भारतीयोंको त्याग दे, यह कैसे हो सकता है? यह महान दुःखकी बात है कि हमारे कुछ कांग्रेसी नेता भारतकी ओरसे विदेशोंमें प्रोपेगैण्डा होनेका विरोध करते आये हैं। प्रसन्नताकी बात है कि इस बार लखनऊ-कांग्रेसने वैदेशिक विभाग स्थापन करनेका निर्णय किया है और राष्ट्रपति नेहरूजीने डाक्टर राममनोहर लोहियाको इस कामको चलानेके लिए निर्वाचित भी कर लिया है। जो लोग विदेशमें भारतके आन्दोलनके विरुद्ध हैं, उनके विचारोंसे हम लोगोंको, जो विदेशमें कुछ कर रहे हैं, बहुत हतोत्साह होना पड़ा है। हमारे प्रचार-कार्यका महत्त्व इस सुदूर-पूर्वमें हमारे फलीभूत प्रभावसे ही तोला जा सकता है। यहाँ जापानमें भारतीय कांग्रेसकी शाखाने गत आठ वर्षोंसे लगातार कार्य करके 'भारत और भारतीयों' के लिए जो स्थान प्राप्त किया है, उसके लिए हमारे देशवासियोंको गर्व होना चाहिए। शायद जापान ही एक ऐसा देश है, जहाँ भारतीय तथा अन्य

यूरोपियन जातियाँ समदृष्टिसे देखी जाती हैं। भारतीय घृणाके पात्र हैं, यह बात यहाँ नहीं है। हममें अनेक दुर्बलताएँ अवश्य हैं, पूरी एकताकी भी कमी है और कभी-कभी भूलसे हम लोग अनुचित कार्य भी कर बैठते हैं; पर यहाँके लोगोंको यह अच्छी तरह मालूम हो गया है कि हम लोग किस प्रकार अशिक्षित और अज्ञान रखे जाते हैं, और उनके लिए कौन जिम्मेदार है। इसी कारण वे हमारी भूलों और गलतियोंपर तरस खाकर रह जाते हैं।

जापानके प्रेस और समाचारपत्र भी हमपर कटाक्ष न करके हमारे साथ सहानुभूति दिखलाते हैं। यह बात ठीक है कि वे भारतके पक्षमें खामखवाह प्रचार या प्रोपेगैंडा नहीं करते; पर साथ ही वे हमारे दुश्मनों और उनके अखबारोंकी भाँति कलुषित अफावाहें भी नहीं फैलाते।

पिछले कई वर्षके निरन्तर परिश्रम तथा उद्योगका ही यह फल है। परन्तु इतना होनेपर भी नीच पाशविक शक्तियाँ अपनी कुटिल चालोंसे बाज़ नहीं आती। यहाँके अधिकारियोंसे मित्र-भाव रखनेके कारण तथा भारतीयोंके आपसी झगड़ोंसे पूर्णतया परिचित होनेके कारण मुझे सारी बातोंकी जड़ समझनेके मौक़े मिलते रहते हैं। मुझे पूर्ण विश्वास है कि यदि हमारी सरकार विदेशोंमें स्थित भारतीयोंकी—व्यापारियों, यात्रियों, विद्यार्थियों आदिकी—मान-मर्यादाकी रक्षा करना चाहे, तो निश्चय ही कर सकती है; परन्तु आज तकके अनुभवसे यही जान पड़ता है कि हमें जान-बूझकर उपहासका शिकार बननेके लिए इस प्रकार छोड़ दिया जाता है। यह बात सभीकी आँखोंसे नहीं छिप सकती, और बुद्धिमान व्यक्ति तो इसे ताड़ ही लेते हैं।

विदेशोंमें भारतीयोंकी परिस्थितिका पूर्ण ज्ञान प्राप्त करनेके लिए दो बातोंपर अवश्य ध्यान देना होगा। विदेशोंमें हरएक भारतीय समूचे भारतका प्रतिनिधि समझा जाता है। उसकी शिक्षा-संस्कृति, रहन-सहन, स्वभाव-आदत, हाव-भाव—सभीको वहाँकी जनता कौतूहलवश

यह जाननेके लिए कि 'भारतीय' क्या हैं, खूब ध्यानसे देखती है। आजकल सारे संसारमें यूरोपका बोलबाला है, यूरोपियनोंका मान है, इसलिए उनकी गलतियाँ क्षम्य समझी जाती हैं, उनपर कोई ध्यान नहीं देता; परन्तु भारत या भारतके सदृश किसी अन्य दुर्दशाग्रस्त देशकी भूल-चूक किसीको भला कब सहा और सम्य प्रतीत हो सकती है? साधारण दृष्टिसे देखकर अंगरेज़, जर्मन, फ्रेंच, बेलजियन आदिमें भेद करना असम्भव-सा है। इसलिए यदि कोई अंगरेज़ या फ्रेंच कोई कुकर्म भी करता है, तो उसे कोई अंगरेज़ों या फ्रेंचोंका कुकर्म नहीं समझ सकता। जापानी तथा चीनी जल्दी अलग-अलग नहीं पहचाने जाते; परन्तु भारतीय भी अपने रूप-रंगके कारण किसीमें भी नहीं छिप सकता। इसी कारण उसके किसी भी कार्यका खुले शब्दोंमें अर्थ होता है कि भारतीय 'ऐसा' करते हैं। अमुक भारतीय हिन्दू है या मुसलमान, सिख है या ईसाई, स्पृश्य है या अस्पृश्य—विदेशोंमें कोई इसे नहीं जानता और न कोई इसे जाननेके लिए माथापच्ची करनेको तैयार ही होता है। वहाँवाले तो सिर्फ़ इतना जानते हैं कि इस रूप-रंगके भारतवासी होते हैं और ऐसे कार्य भारतवाले करते हैं। ऐसी दशामें विदेशोंमें कितनी सतर्कताकी और कितना फ़ूँक-फ़ूँककर चलनेकी आवश्यकता है, इसका अनुमान वही कर सकते हैं, जो सचमुच देशकी लाज रखनेके लिए हृदयसे इच्छुक हैं। इस विषयमें सरकारको देशके नामपर हस्तक्षेप करना चाहिए। उसे देखना चाहिए कि केवल ऐसे ही व्यक्ति बाहर जायँ, जो अपनी और देशकी मर्यादा सुरक्षित रखनेके सर्वथा योग्य हों।

हमारे देशके स्कूलोंकी शिक्षा इन बातोंके लिए सर्वथा अपर्याप्त है। बाह्य जगतका ज्ञान, संसारकी प्रगति तथा बहुत-सी छोटी-छोटी किन्तु मुख्य बातोंसे हमारे यहाँकी पढ़ी-लिखी साधारण जनता एकदम अनभिज्ञ है। सच पूछिये तो उन्हें जीवनमें इन बातोंके जाननेका कभी अवसर ही नहीं आता।

भारतीयोंमें बुद्धिकी कमी नहीं, पर उन्हें कार्य-सिद्धि प्राप्त करना नहीं आता। 'लश्कर' (जहाजोंके भारतीय खलासी) तथा भारतीय विद्यार्थियोंके विदेश आनेमें जो-जो बाधाएँ डाली जाती हैं, जब मैं उनपर विचार करता हूँ, तो ऐसा जान पड़ता है कि अधिकारियोंकी यही मन्शा रहती है कि भारतकी तौहीन तथा हँसी हो। देशकी अज्ञानता, निरीहावस्था तथा दयनीय दशा क्यों है और उसका उत्तरदायी कौन है, विदेशियोंको यह ढूँढ़ निकालनेकी क्या गरज पड़ी है। वे तो यही देखते हैं कि भारतीय सभी बातोंमें अभी बहुत पिछड़े हैं और ठीक इसी समय जब भारतके अमित्र उन्हें यह सुनाते हैं कि भारतवासी स्वतन्त्रताके योग्य नहीं हैं, तो उसे ये विदेशी सच क्यों न मान लें ?

भारतीय यात्री बहुधा अज्ञानवश ऐसी भूलें कर बैठते हैं, जिससे पासपोर्ट आफिसर आदि अधिकारियोंको अनेक असुविधाएँ तथा भ्रम उत्पन्न होती हैं। हाल ही में हमारे देशके एक प्रोफेसर साहब पासपोर्टपर जापानी कौन्सुलका 'विसा' (इस्ताफ़र) लिए बिना ही कोवे पहुँच गये। वेचारे अमेरिका जा रहे थे। उन्होंने विचार किया था कि अमेरिकन कौन्सुलका 'विसा' लेना अत्यावश्यक है ; किन्तु कोवेमें दूसरे जहाजके लिए इन्तज़ार करना था। अब कानूनन उन्हें जापानकी भूमिपर उतरने कैसे और क्यों दिया जाय ? इस तरहकी अड़चनें पाकर इतनी दूरसे आशा लेकर आये हुए व्यक्तिको कितनी छटपटाहट हो सकती है, यह तो भुक्तभोगी ही जानते हैं। किसी तरह आरजू-मिन्नत करके और विशेष ज़मानत (Special Security) देकर उन्हें उतरनेकी आज्ञा मिली। अधिकारीवर्ग ऐसी भद्दी भूल पाकर कब चूकनेवाले थे। उन्होंने हँसते हुए कहा—“तुम्हारे यहाँके यूनिवर्सिटीके प्रोफेसर भी ऐसी छोटी-मोटी बातें नहीं जानते !”

एक दूसरी बात है पोशाककी। पोशाक सभ्यताका मुख्य चिह्न है। हमारे देशमें तो जितना ही साधारण तथा मोटे तरीकेसे मनुष्य पहने-ओढ़े, उतना ही

ठीक है ; परन्तु विदेशमें इसका बहुत विरुद्ध प्रभाव पड़ता है। गांधीजी तथा रवीन्द्रनाथ ठाकुरकी बाह्य वेश-भूषाको देखकर उनपर कोई आक्षेप नहीं कर सकता ; किन्तु साधारण जनताको अपनी मान-रक्षाके लिए (यूरोपियन पोशाक न हो, कोई परवा नहीं) सभ्य तरीकेसे कपड़ा पहनकर रहना पड़ेगा। अभी हाल ही में एक धनी अर्द्ध-शिक्षित मदरासी बन्धु सिंगापुरसे कोवे तक पी० एण्ड ओ० कम्पनीके जहाज़पर सेकेंड क्लासमें आ रहे थे। दुर्भाग्यवश उनके पास अपने साधारण इस्तेमालकी धोती और गमछेको छोड़कर और कोई खास कपड़ा न था। भाग्यवश उनकी केबिनमें एक जापानी दम्पति भी थे। उन लोगोंने उन्हें गरीब समझकर दयावश उन्हें सोते समय पहननेके लिए एक 'किमोनो' दिया ; परन्तु ये हज़रत उसे पहनकर सर्वत्र—डाइनिंग-हाल, स्मोकिंग रूम आदि स्थानोंमें—घूम-घूमकर अपनी तथा अपने देशकी हँसी कराने लगे। हमारी सरकार जब यह बात जानती है कि हमारा शील-शिक्षण हमें ऐसे समयके लिए तैयार नहीं करता, तब फिर विदेश जानेवाले यात्रियोंके लिए क्यों नहीं पैम्फलेट्स आदि तैयार करके बाँटवाये जाते, जिससे उनकी आँखें खुलें और वे दूसरोंके उपहासकी सामग्री न बनें। जापान-सरकारने एक बहुत बड़ी इमारत बना रखी है, जिसमें ब्रेज़िल आदि विदेशोंको जानेवाले जापानियोंको हफ्तों रखकर सभी बातें सिखाई जाती हैं। भारतकी आम जनता शायद ही इस बातसे परिचित हो कि पश्चिमोत्तर प्रदेश, पूर्व बंगाल तथा अन्य स्थानोंके अनेक भारतीय भाई अंगरेज़ी जहाजोंमें 'लश्कर' (खलासी) आदिके रूपमें मजदूरी कर रहे हैं। इतने सस्ते मजदूर पाकर अंगरेज़ी जहाजोंने खूब नफ़ा उठाया है। इसलिए इसके बदलेमें इन भारतीय खलासियोंको पूरी आय तथा आवभगत होनी चाहिए ; परन्तु बातें बिलकुल इसके विपरीत हैं।

इन जहाजियोंके मूक-क्रन्दनकी आवाज़ मेरे कानोंमें प्रथम बार सन् १९३१ में पहुँची। एक दिन

प्रातःकालके समय कुछ जापानी अधिकारी मुझे यह खबर सुनाने आये कि पी० एण्ड ओ० कम्पनीके एस० एस० कैथी (S. S. Cathay) नामक जहाज़का एक भारतीय खलासी हैजेसे मर गया और उसे जहाज़के कर्मचारियोंने जापानके प्रथम बन्दरगाह (पोर्ट) में आनेके पहले ही समुद्रमें फेंक दिया । मुझे यह भी पता लगा कि डाक्टर महाशयने इसे आकस्मिक मृत्यु (death by collapse) का 'केस' बतलाया है । डाक्टरका कुछ ज्ञान होनेके कारण मुझे कुछ सन्देह हुआ । मैंने पूरी जाँच-पड़ताल करनेकी ठानी । मैं तुरत ही स्थानीय पोर्ट हेल्थ आफिसमें पहुँचा । सभी कागज़-पत्र मेरे सामने रख दिये गये । उनसे मुझे ऐसी और भी अनेक दुर्घटनाओंकी जानकारी हुई । इन बातोंसे मुझे बड़ा दुःख हुआ, और मैंने हिन्दुस्तानी जहाज़ियोंके जीवनके विषयमें पूरी दिलचस्पी लेना आरम्भ कर दिया ।

जहाज़वालोंने क्वैरेंटाइनमें जानेसे लाख नाहीं की—घटी होनेके डरसे—असली बातको छिपानेकी कोशिश की ; परन्तु जापानी उनकी चालवाज़ीको समझ गये । जहाज़पर अनेक खलासी हैजेसे पीड़ित पाये गये । रोगियोंको अलग करके निश्चित अस्पतालमें दवा-दारूके लिए पहुँचा दिया गया और जहाज़ क्वैरेंटाइनमें भेज दिया गया । यहाँके डाक्टर विभागके अधिकारियोंने मुझे बड़ी सहायता पहुँचाई । मैं उस खास अस्पतालमें जाकर तीन पीड़ित भारतीयोंसे मिला । उन लोगोंने अपनी हृदयद्रावक रामकहानी सुनाई । पोर्ट हेल्थ आफिसकी रिपोर्टसे यह भी पता लगा कि उस खलासीको कैस्टर आयल (Castor oil) के सिवा और कोई भी अन्य दवा नहीं दी गई थी !

हिन्दुस्तानी जहाज़ियोंको गोरोसे वेतन तो कम मिलता ही है ; पर मामला इतनेपर ही खत्म नहीं हो जाता । उन्हें अपने प्रधान खलासी (मेठ या सरदार)की जेब भी काफी गरम करनी पड़ती है, क्योंकि उस बेचारेको भी अपने ऊँचे अधिकारियोंको चटाना

पड़ता है । दाने-दानेको तरसनेवाला गरीब खलासी 'जो कुछ मिले वही सही' कहकर दीन-हीन दशामें अपने दिन काटने लगता है । वह चुपचाप अपनी आन्तरिक वेदनाको छिपाकर शान्त भावसे जानवरकी तरह खटता रहता है । उसकी कोई सुननेवाला भी नहीं ।

प्रत्येक रोगीके पास जाकर उसकी तबियतका हाल पूछना डाक्टरकी ड्यूटी है ; परन्तु दुर्भाग्यवश यदि डाक्टर कोई यूरोपियन हुआ, तो वह उनसे बात तक करना अपनी शानके खिलाफ़ समझता है । ये सब बातें मुझे खलासियोंसे पूछ-ताछ करनेपर तथा एस० एस० कैथीकी घटनासे ज्ञात हुई । यद्यपि यह मैं मानता हूँ कि अच्छे-बुरे आदमी सभी कहीं होते हैं और डाक्टरोंमें भी बहुतसे नेक आदमी हैं । यदि कोई भारतीय खलासी चलने-फिरनेसे अयोग्य होनेके कारण डाक्टर साहबके पास निश्चित समयपर नहीं पहुँच सका, तो डाक्टर साहब खुद उसके पास नहीं जा सकते, क्योंकि वह भारतीय है । डाक्टर अपने कमरेमें बैठे-बैठे किसीसे उसके विषयमें आम-इमली कुछ जनकार हर-बहेड़ा दवा दे देंगे ।

मैंने पी० एण्ड ओ० के लोकल ब्रांच आफिस तथा लन्दनके हेड आफिसको इन बातोंकी सूचना दी और जब 'इंटरनेशनल ट्रान्सपोर्ट फेडरेशन' के जनरल सेक्रेटरी मिस्टर फ्रॉमैन जापान आये, तो उनके कानोंमें भी मैंने ये बातें डाली थीं । उन्होंने पी० एण्ड ओ० कम्पनीको इसके लिए सचेत करनेका वचन दिया था ।

सर्द जापानकी गलियोंमें नंगे पाँव, अर्ध-नग्न अवस्थामें, एक गन्दी चादरसे शरीरको बर्फीली ठंडकसे बचानेकी कोशिश करते हुए भारतीयोंको देखकर किसका हृदय विद्वेलित न हो उठेगा ? भारतकी महान गरीबीकी साकार प्रतिमा बने हुए ये खलासी जापानी जहाज़ी शहरोंमें अकसर दीख पड़ जाते हैं । समुद्रकी खुली हवामें सिर्फ़ एक पाजामा-कुर्ता पहने हुए बेचारा खलासी

रस्सेसे झूलता, ठंडके मोरे धरथगाता और दाँत किटकिटाता हुआ जहाज़के मस्तूलपर काम करता रहता है। किस्मतका मारा कभी छूटकर नीचे गिर पड़ता है, तो सदाके लिए पंगु बनकर बर्खास्त भी हो जाता है।

किसी भी अन्य देशके जहाज़ियोंकी ऐसी फटी अवस्था नहीं रहती। लोग यह कह सकते हैं कि अपने कपड़े-लत्तेके विषयमें तो उन्हें स्वयं सचेत रहना चाहिए; परन्तु इसके क्या मानी कि अधिकारीवर्ग इसकी कुछ भी परवा न करें? यदि वे चाहें, तो अपने कर्मचारियोंको उपयुक्त रीतिसे कपड़ा पहने रहनेके लिए अनेकों प्रकारसे बाध्य कर सकते हैं। परन्तु भारतके इस प्रकारके अनपढ़, अशिक्षित, मूर्ख, कफनी काछे हुए पुतलोंको जान-बूझकर संसारकी आँखोंके सामने नमूनेके रूपमें, अपना मतलब गाँठनेके लिए, रखा जाता है।

क्या सरकारका यह कर्तव्य नहीं है कि वह अपनी प्रजाके रहन-सहनके विषयमें सोचकर उपयुक्त सहयोग दे? जापान-सरकार तो प्रथम बार विदेश जानेवाले जापानियोंको यात्राके पहले बड़े-बड़े मकानोंमें हफ्तों रखकर मैजिक लैन्टर्न और चित्रों आदिकी सहायतासे इस बातकी व्यावहारिक शिक्षा देती है कि विदेशोंमें किस तरहसे रहना होगा, कैसे-कैसे क्या करना होगा, वहाँके लोग कैसे हैं, वहाँकी क्या-क्या मुख्य बातें हैं, उन्हें वहाँकी नवीनतामें अपने देशकी मान-मर्यादाकी रक्षा कैसे करनी होगी। इन सब बातोंको सीख चुकनेपर ही जापानी बाहर जाते हैं। जापानी पासपोर्ट-अधिकारियोंको जब तक इस बातका पूरा विश्वास नहीं हो जाता कि अमुक व्यक्ति विदेश जाकर देशपर कालिमा

नहीं लगायेगा, तब तक उसे पासपोर्ट कदापि नहीं मिलता।

तो क्या इसी प्रकारका प्रवन्ध हमारी सरकार नहीं कर सकती? भारतीयोंको विदेशमें भारतके गौरवका ध्यान रखनेके लिए शिक्षा नहीं दे सकती? सभी कुछ किया जा सकता है; परन्तु उसके लिए हार्दिक सदेच्छाकी आवश्यकता है। भूल-चूक होनेपर ताड़नाएँ तथा धमकियाँ अनेक दी जाती हैं; परन्तु असल सुधारका विचार नहीं किया जाता।

विदेशोंमें भारतीयोंके अनुचित और अयोग्य व्यवहारको देखकर यह कौन समझेगा कि उन्हें कभी अच्छी तरह व्यवहार करना नहीं सिखाया गया है? खर, किसीको दोष न देकर मैं सिर्फ इतना ही कहूँगा कि हमारे देशवाले संसारकी प्रगतिसे एकदम अनभिज्ञ हैं और बाहर जाकर हँसीके पात्र बन जाते हैं।

विदेशोंमें भारतीयोंकी दशाका यह बहुत ही संक्षेपमें खाका खींचा गया है। देशमें स्थित लीडरोंको इन बातोंका कुछ पता नहीं और वे इसकी कुछ खोज-खबर लेनेकी चेष्टा भी नहीं करते। विदेशमें हम अपनेको हँसाकर सारे देशको बदनाम करते हैं। शत्रु तो इसकी ताकमें लगे ही रहते हैं। उन्हें तो इन बातोंसे खुशी ही होती है। हमारा देश अब इन बातोंको जानकर भी यदि सुधारकी ओर अग्रसर नहीं होता, तो बड़े दुःखकी बात है। हमारे बड़े लीडरोंका कर्तव्य है कि वे हमें अपनी राष्ट्रीयता और भारतीयताकी मर्यादाकी रक्षा करनेमें सहायता दें। दूसरोंका मुँह ताकते हुए टकटकी लगाये रहनेका अब समय नहीं है। अब तो हमें अपनी रक्षा अपने-आप करनेके लिए तैयार होना चाहिए।



देशी राज्योंके बन्दरगाह

प्रो० शंकरसहाय सक्सेना, एम० ए०

पिछले दस वर्षोंमें देशी राज्योंके नरेशोंमें वर्ग चैतन्य जैसी शीघ्रतासे उत्पन्न हुआ है, वैसा कभी नहीं हुआ था। जो भारतीय नरेश केवल अपनी थोथी मान-मर्यादाके चक्करमें फँसकर एक दूसरेसे स्वच्छन्दता-पूर्वक मिलते भी न थे, उन्हीं नरेशोंका ऐसा प्रबल संगठन ऐसी शीघ्रतासे हो गया, यह देखकर आश्चर्य होता है।

बात यह है कि महायुद्धके उपरान्त भारतवर्षमें जो राष्ट्रीय जाग्रतिकी प्रबल लहर उठी, उससे देशी राज्य भयभीत हो उठे। उन्होंने देखा कि राष्ट्रीयताके साथ-साथ प्रजातन्त्रवादकी जो भावना देशमें बढ़ती जा रही है, उसका प्रभाव देशी राज्योंपर बिना पड़े नहीं रहेगा, साथ ही वे यह भी समझ गये कि ब्रिटिश भारतमें स्वतन्त्रताका जो युद्ध छिड़ा हुआ है, वह किसी न किसी दिन सफल होगा ही और भारतके शासनकी बागडोर भारतीयोंके हाथमें आ जायगी। उस दशामें देशी नरेशोंका अस्तित्व ही खतरेमें पड़ जानेकी सम्भावनासे देशी नरेश व्याकुल हो उठे। उन्होंने अपने स्वार्थोंकी रक्षाके निमित्त संगठित होकर आन्दोलन किया।

सम्राटका प्रतिनिधि होनेके नाते वायसराय ब्रिटिश भारतका शासन तो करता ही है, साथ ही राजनैतिक विभागकी सहायतासे देशी राज्योंपर भी अनुशासन करता है। धीरे-धीरे वायसराय सार्वभौम सत्ताका प्रतिनिधि होनेके कारण देशी राज्योंका भाग्यविधाता बन गया है। इन्दौर, भरतपुर, हैदराबाद, नाभा, म्हुआ, बूंदी, अलवर आदि राज्योंके सम्बन्धमें भारत-सरकारके राजनैतिक विभागने जैसी नीतिका अनुसरण किया, उसने तो देशी नरेशोंको एकदम चौंका दिया। अतएव उन्होंने अपने स्वार्थोंकी रक्षा करनेके लिए तीन माँगें उपस्थित कीं। प्रथम, यदि कभी ब्रिटिश भारतमें उत्तरदायित्वपूर्ण शासन स्थापित किया जाय और भारत-सरकार व्यवस्थापिका सभाके लिए उत्तरदायी हो जाय, तो देशी राज्योंका भारत-सरकारसे कोई भी

सम्बन्ध न होकर सीधा सार्वभौम सत्तासे सम्बन्ध रहे। दूसरे, देशी राज्योंसे की गई सन्धियोंकी जो अवहेलना सार्वभौम सत्ताने आरम्भ कर दी है, उससे भारतीय नरेश शंकित हो उठे हैं, अतएव सन्धियोंकी मान्यताकी घोषणा होनी चाहिए। जब कभी किसी देशी नरेश तथा सार्वभौम सत्तामें किसी भी राजनैतिक विषयपर मतभेद अथवा विवाद उठ खड़ा हो, तो एक निष्पक्ष कमीशन, जिसमें अन्य देशोंके सदस्य हों, उसका निर्णय करे। तीसरे, जो भी आयात-कर भारत-सरकार आनेवाले मालपर लगाती है, उसकी आयका बँटवारा देशी राज्योंमें भी होना चाहिए, क्योंकि देशी राज्योंकी प्रजा भी उस करको देती है। बटलर-कमेटीने इन तीनों माँगोंके विषयमें जाँच की। अपनी रिपोर्टमें बटलर-कमेटीने पहली और तीसरी माँगका समर्थन किया; किन्तु दूसरी माँगको निर्दयतापूर्वक ठुकरा दिया।

इसके बाद राउण्डटेबिल कानफरेन्स हुई। भारतीय नरेशोंने अपनी स्थितिको दृढ़ बनानेके लिए बड़े-बड़े विद्वान राजनीतिज्ञों तथा प्रसिद्ध कानूनके ज्ञाताओंको अत्यधिक फीस देकर नौकर रखा और इंग्लैण्ड तथा भारतमें खूब प्रचार किया गया, जिससे संघ-शासनके नवीन विधानमें देशी राज्योंने बहुत-सी सुविधाएँ प्राप्त कर लीं। संघ-शासनकी योजनामें सहयोग देनेका नरेशोंने अधिक-से-अधिक मूल्य लिया। ब्रिटिश भारतके प्रतिनिधि तथा ब्रिटिश सरकार दोनोंने देशी नरेशोंका सहयोग प्राप्त करनेके उद्देश्यसे देशी राज्योंकी प्रजाके स्वार्थोंका बलिदान कर दिया।

संघ-शासनकी योजना बनते ही देशी राज्योंके आयात-कर (Custom duty) की आमदनीके बाँटे जानेकी माँगका कोई महत्त्व नहीं रहा, क्योंकि आयात-करकी आमदनी तो भविष्यमें संघीय सरकार (Federal Government)को मिलेगी, अतएव जो भी

राज्य संघमें सम्मिलित होगा, उसको ब्रिटिश प्रान्तोंके बराबर ही सुविधाएँ प्राप्त हो जायँगी। परन्तु एक नई समस्या देशी राज्योंके बन्दरगाहों और उनपर लगानेवाले आयात-निर्यात-करको लेकर खड़ी हो गई। यदि वास्तवमें देखा जाय, तो देशी राज्योंके बन्दरगाहों और उनपर वसूल किये जानेवाले आयात-निर्यात-करकी समस्या नई नहीं, बहुत पुरानी है। यह समस्या भारत-सरकारको उन्नीसवीं शताब्दीके मध्यसे उलझनमें डाले हुए है; परन्तु इस समय, जब कि भारतवर्षमें संघ-शासनकी स्थापना होने जा रही है, इसका महत्व और भी बढ़ गया है।

भारत-सरकार तथा देशी राज्योंका इस विषयमें विरोध

वे देशी राज्य जिनमें बन्दरगाह हैं, इस बातपर बराबर जोर देते आये हैं कि हमारे राज्यके बन्दरगाहोंपर हमें आयात-निर्यात-कर लगाने तथा उसको वसूल करनेका अवाधित अधिकार है। यद्यपि हमने समस्त भारतके हितको ध्यानमें रखकर यह शर्त स्वीकार कर ली है कि जितना कर ब्रिटिश भारतके बन्दरगाहोंमें मालपर लगाया जायगा, उससे कम हम अपने बन्दरगाहोंमें नहीं लगावेंगे; पर ब्रिटिश भारतकी कर-नीतिके निर्धारणमें हमारा कोई हाथ नहीं होता और भारत-सरकार हम लोगोंसे बिना परामर्श लिये ही, या हमारी आवश्यकताओंपर बिना विचार किये ही, जितना चाहती है, उतना कर लगा देती है। देशी राज्योंका यह भी कहना है कि बन्दरगाहोंपर वसूल किये हुए करसे उनको बहुत आमदनी होती है। साथ ही इस काममें यथेष्ट लोचक (elasticity) भी है। इस आमदनीके बिना हमारे राज्योंका व्यय नहीं चल सकता। बन्दरगाहोंका प्रबन्ध तथा करकी वसूली हमारा काम है। हम इसमें तनिक भी हस्ताक्षेप नहीं चाहते और न हमको इस आमदनीका कुछ भाग अपने बन्दरगाहोंकी उन्नतिमें लगानेसे रोका जा सकता है।

ब्रिटिश भारतका दृष्टिकोण इससे सर्वथा भिन्न है। भारत-सरकारका कहना है कि आयात-निर्यात-करका

लगाना तथा उसे वसूल करना संघ-सरकारका काम है, और यह अत्यन्त आवश्यक है कि देशके सब बन्दरगाहोंमें एक-सा ही कर हो, वसूल करनेका ढंग भी एक-सा ही हो और इसका प्रबन्ध भी संघ-सरकार करे। यही नहीं, भारत-सरकारका यह भी मत है कि आयात-निर्यात-करकी आय भी संघ-शासनको मिले। देशी राज्योंकी जो हानि होगी, उसके बदलनेमें उन्हें संघमें सम्मिलित होनेपर बहुतसे लाभ और सुविधाएँ प्राप्त होंगी।

इसके अतिरिक्त ब्रिटिश भारतको इन देशी राज्योंसे एक शिकायत यह है कि इन राज्योंके बन्दरगाहोंने ब्रिटिश भारतके बन्दरगाहोंसे अनुचित प्रतिस्पर्धा प्रारम्भ कर दी है, जिससे व्यापार ब्रिटिश बन्दरगाहोंसे हटकर देशी राज्योंके बन्दरगाहोंकी ओर जा रहा है। काठियावाड़के बन्दरगाहोंके कारण मम्बईका व्यापार बहुत गिर गया है, यह देखकर भारत-सरकार चौंक उठी है। ब्रिटिश भारतके बन्दरगाह पोर्ट ट्रस्टके अधीन हैं। वही उनका प्रबन्ध करते हैं। बन्दरगाहोंके पोर्ट चार्जसे जो आय होती है, उसीसे उनका व्यय चलता है। प्रान्तीय सरकार या भारत-सरकार उनको आर्थिक सहायता बिलकुल नहीं देती। यही नहीं, बन्दरगाहोंपर वसूल किये हुए आयात-निर्यात-करकी सारी आय भारत-सरकार लेती है। इसके विपरीत देशी राज्योंके बन्दरगाहोंको राज्य आर्थिक सहायता देता है। उनको बिना सूदके ऋण दे दिया जाता है, व्यापारियोंको बहुत-सी आर्थिक सुविधाएँ दी जाती हैं, देशी राज्योंकी रेलें मालपर कम किराया लेती हैं और मालगोदामोंका किराया भी राज्य इन बन्दरगाहोंपर बहुत कम लेते हैं। इस कारण देशी राज्योंके बन्दरगाह ब्रिटिश भारतके बन्दरगाहोंसे बहुत कम पोर्ट चार्ज ले सकते हैं। अपने राज्यों द्वारा आर्थिक सहायता पाकर ये बन्दरगाह ब्रिटिश भारतके बन्दरगाहोंसे अनुचित प्रतिस्पर्धा कर रहे हैं, क्रमशः ब्रिटिश भारतके बन्दरगाहोंका व्यापार कम होता जा रहा है और ब्रिटिश भारतकी प्रजा जो कर देती है, वह देशी राज्योंके खजानोंमें जाता है।

देशी राज्योंके बन्दरगाह

देशी राज्योंके बन्दरगाहोंकी समस्याको भलीभाँति समझनेके लिए यह आवश्यक है कि हम उनकी भौगोलिक परिस्थितिको भलीभाँति समझ लें। भारतवर्षमें देशी राज्योंके निम्न-लिखित बन्दरगाह हैं :—

त्रिवेन्द्रम	}	द्रावनकोर राज्य
कलिन		
अलैपी		
कोचीन		...	मद्रास-सरकार तथा कोचीन राज्य	
भावनगर		भावनगर राज्य
वेरावल	}	जूनागढ़ राज्य
मंगरौल		
पोर बन्दर		पोरबन्दर राज्य
ओखा		वड़ौदा राज्य
वेदी	}	नवानगर राज्य (जामनगर)
रोज़ी		
नवलाक्षी		मौरवी राज्य
मांडवी	}	कच्छ राज्य
कांडला		
कैम्बे		कैम्बे राज्य
जफराबाद		जनजीरा राज्य
वाँदा		सावंतवादी राज्य

इन राज्योंके अतिरिक्त सांचीन एक छोटा-सा राज्य गुजरातके समुद्री तटपर स्थित है ; परन्तु इस राज्यके पास कोई बन्दरगाह नहीं है।

द्रावनकोर राज्यके चारों बन्दरगाह कोलाचेल, त्रिवेन्द्रम, कवलिन और अलैपी खुले हुए हैं। त्रिवेन्द्रम तथा कोलाचेलमें जहाज़ोंके ठहरने तथा मालके भरे जानेकी सुविधाएँ नहीं हैं, इस कारण इनका व्यापार नाममात्रको होता है। कवलिनमें जहाज़ोंके ठहरनेकी सुविधा है, इसलिए इसका व्यापार भी अधिक है। अलैपी द्रावनकोर राज्यका सबसे महत्त्वपूर्ण बन्दरगाह है। यहाँ जहाज़ोंके ठहरने तथा गोदामोंकी सुविधाएँ हैं। इनमें से कोई भी बन्दरगाह ब्रिटिश भारतके बन्दरगाहोंसे प्रतिस्पर्धा नहीं करता और इनका उपयोग

अधिकतर द्रावनकोर राज्यके व्यापारके लिए ही किया जाता है।

कोचीन एक महत्त्वपूर्ण बन्दरगाह है। वास्तवमें यह बन्दरगाह किसी राज्यका नहीं, वरन् ब्रिटिश भारतका है ; परन्तु यह बिलकुल अकेला पड़ गया है, अतएव इसकी उन्नति कोचीन राज्यके सहयोगपर निर्भर है। कोचीनका शासन मद्रास-प्रान्तीय सरकार करती है। भारतके पश्चिमीय समुद्र-तटपर, बम्बईसे कन्याकुमारी तक ८४० मील लम्बे समुद्र-तटपर, एक भी सुरक्षित बन्दरगाह न था। इस कारण १९२० में कोचीन राज्यके सहयोगसे इस बन्दरगाहको सुरक्षित तथा उन्नत करनेका काम आरम्भ किया गया। अभी तक यह पूरा नहीं बन सका है। कार्य समाप्त हो जानेपर यह एक प्रथम श्रेणीका बन्दरगाह बन जायगा।

कोचीन बन्दरगाहके आयात-निर्यात-करमें कोचीन तथा द्रावनकोर राज्योंका भी हिस्सा है। कोचीन तथा द्रावनकोर राज्योंका इस बन्दरगाहमें कितना अधिकार है, इसका निर्णय सन् १८६५ तथा सन् १९२५ के समझौतोंसे हुआ है, इसीलिए इन समझौतोंके विषयमें विस्तारपूर्वक जान लेना आवश्यक है।

१८६५ का समझौता

इस समझौतेके अनुसार द्रावनकोर तथा कोचीन राज्य तम्बाकू, नमक, अफीम तथा शराबके अतिरिक्त और किसी वस्तुपर, जो भारतमें उत्पन्न अथवा तैयार की गई हो, अपने राज्यमें आनेपर कोई कर नहीं लगायेंगे। इसी प्रकार भारत-सरकार इन दोनों राज्योंमें उत्पन्न अथवा तैयार किये हुए मालपर कोई कर नहीं लगावेगी। द्रावनकोर तथा कोचीन राज्योंमें अवाधित व्यापार होगा। दोनों राज्य ब्रिटिश भारतके आयात-निर्यात-करोंको स्वीकार करेंगे। विदेशोंसे आये हुए मालपर इन तीनोंमें से यदि कहीं भी आयात-कर लिया जा चुका हो, तो बाकी दोनों साम्तीदार अपनी सीमामें उसपर कर नहीं लगावेंगे। कोचीन राज्य विदेशोंको जानेवाले मालपर वही

कर लगावेगा, जो भारत-सरकार लगाती है।

इस समझौतेसे जो हानि कोचीन तथा ट्रावनकोर राज्योंको होगी, उसको पूरा करनेके लिए भारत-सरकारने कोचीन बन्दरगाहपर आयात-निर्यात-करका एक भाग उन्हें देना स्वीकार कर लिया। इसके अतिरिक्त अयात-निर्यात-करसे होनेवाली आय एक लाख रुपयेसे कम नहीं होगी और आये हुए मालपर लगाई हुई चुंगीकी आय (१०,५००) रु० से कम नहीं होगी, इस बातकी गारन्टी दी। ट्रावनकोर राज्यकी हानिको पूरा करनेके लिए एक निश्चित रकम देना निश्चित हुआ; किन्तु आगे चलकर इसके कारण एक मगड़ा उठ खड़ा हुआ।

सन् १९२५ का समझौता

इस समझौतेके अनुसार दोनों राज्योंने कोचीन बन्दरगाहकी उन्नति करनेमें जो व्यय होगा, उसका एक हिस्सा देना स्वीकार किया और यह निश्चय किया कि जब नया बन्दरगाह बड़े-बड़े समुद्री जहाजोंके लिए सुरक्षित हो जायगा और उसकी पूरी उन्नति हो जायगी, उस समय बन्दरगाहमें वसूल किया हुआ अयात-निर्यात-कर बराबर-बराबर तीन हिस्सोंमें बाँट दिया जायगा। साथ ही यह भी निश्चय हुआ कि ट्रावनकोरके क्वलिन तथा अलैपी बन्दरगाहोंपर केवल अयात-करकी आय तीन हिस्सोंके बाँटवारेके लिए कोचीनकी आयमें सम्मिलित कर ली जायगी। १९२५ के समझौतेके अनुसार जो नया बाँटवारा हुआ था, वह १, अप्रैल, १९३१ से लागू हो गया।

ट्रावनकोर राज्यको १८६५ के समझौतेके अनुसार ब्रिटिश भारतमें उत्पन्न अथवा तैयार किये हुए मालपर और उस मालपर, जो ब्रिटिश भारतमें ड्यूटी दे आया हो, कर लगानेका अधिकार छोड़ना पड़ा, जिससे ट्रावनकोर राज्यको आर्थिक हानि उठानी पड़ी, इसलिए ट्रावनकोर राज्यने इस क्षति-पूर्तिकी माँग उपस्थित की।

३ नवम्बर, सन् १८६४ को ट्रावनकोर राज्यके दीवानने क्षति-पूर्तिके विषयमें निम्न-लिखित माँग

उपस्थित की—“ब्रिटिश गवर्नमेन्टको ट्रावनकोर राज्यमें विदेशोंसे आनेवाले मालपर (फिर चाहे ब्रिटिश भारतके बन्दरगाहोंसे आये अथवा ट्रावनकोर राज्यके बन्दरगाहोंसे आये) जो आयात-कर होगा, उसमें से ट्रावनकोर राज्यके बन्दरगाहोंसे राज्यमें आनेवाले मालपर वसूल किये हुए आयात-करको घटाकर जो शेष रहेगा, उतना ट्रावनकोर राज्यको क्षति-पूर्तिके रूपमें देना होगा। जैसे-जैसे ट्रावनकोर राज्यमें विदेशोंसे आनेवाला माल उसके निजी बन्दरगाहोंपर अधिक आने लगेगा, वैसे-वैसे क्षति-पूर्तिकी रकम भी कम होती जायगी।”

भारत-सरकारने ट्रावनकोर राज्यके इस दावेको अंशतः स्वीकार कर लिया; किन्तु इसमें एक अत्यन्त महत्वपूर्ण संशोधन कर दिया। उस समय ट्रावनकोर राज्यमें विदेशोंसे आनेवाले कुल मालपर आयात-कर लगभग ५३,२१८) होता था, उसमें से १३,२१८) के लगभग ट्रावनकोर राज्यके बन्दरगाहोंपर वसूल हो जाता था, अतएव भारत-सरकारने अधिक-से-अधिक ४०,०००) तक ट्रावनकोर राज्यकी क्षति-पूर्ति करना स्वीकार कर लिया। उस समय ट्रावनकोर राज्यने भी इस संशोधनको स्वीकार कर लिया था; किन्तु जैसे-जैसे समय व्यतीत होता गया, ट्रावनकोरका विदेशी व्यापार भी तेजीसे बढ़ता गया, और ट्रावनकोर राज्यको अनुभव होने लगा कि यह संशोधन स्वीकार करके उसने भयंकर भूल की है। ट्रावनकोर राज्यका अनुमान है कि राज्यमें आनेवाले विदेशी मालपर, जो ब्रिटिश भारतके बन्दरगाहोंसे ही अधिकतर आता है, आयात-कर ५७ लाख रुपयेके लगभग होता है, अतः राज्यको उक्त समझौतेके कारण प्रतिवर्ष पचास लाख रुपयेके लगभग हानि उठानी पड़ रही है। अभी हालमें ट्रावनकोर-दरवारने इस क्षति-पूर्तिका दावा किया है; किन्तु भारत-सरकार द्वारा इसके स्वीकार किये जानेकी आशा नहीं।

कोचीन पोर्टके आयात-निर्यात-करके बाँटवारेके विषयमें १९२५ का समझौता स्पष्ट है। इस समय

प्रत्येक सामीदारको प्रतिवर्ष १२ लाख रुपयेसे अधिक मिलता है, किन्तु अभी कोचीन बन्दरगाह पूरा बनकर तैयार नहीं हुआ है। बन्दरगाहके पूरा होनेमें लगभग पौने दो करोड़ रुपया लग जायगा। भविष्यमें यह आशा की जाती है कि तीनों सामीदारोंको प्रतिवर्ष पन्द्रह लाख रुपयेकी आय होगी। कोचीन बन्दरगाह अब इतना सुरक्षित और महत्त्वपूर्ण बन्दरगाह हो गया है कि उसको मेजर पोर्ट मान लिया गया है, और ब्रिटिश सरकारका यह विचार है कि इस बन्दरगाहपर एकमात्र संघीय सरकारका अधिकार होगा।

काठियावाड़ राज्योंके बन्दरगाह

काठियावाड़का सारा प्रायद्वीप देशी राज्योंके अधिकारमें है। काठियावाड़में निम्न-लिखित बन्दरगाह हैं—भावनगर, वेदी, नवलाखी, जफराबाद, वेरावल, मंगरौल, पोर बन्दर और ओखा। काठियावाड़के प्रायद्वीपकी जनसंख्या तीस लाखसे कुछ अधिक है, और अधिकतर इन बन्दरगाहोंपर इसी क्षेत्रका व्यापार आता है। इन बन्दरगाहोंकी महत्ता संघ-सरकारके लिए भी बहुत ज्यादा है, क्योंकि ये बन्दरगाह रेलों द्वारा भारतके उत्तरीय-पश्चिमीय भागसे सम्बन्धित हैं। इस कारण भविष्यमें ये बन्दरगाह भारतवर्षके अत्यन्त महत्त्वपूर्ण भागके व्यापारको हथिया सकते हैं। देहली काठियावाड़के बन्दरगाहोंसे सबसे अधिक समीप है। राजपूताना तथा अन्य प्रदेशोंके लिए, जहाँ छोटी लाइन जाती है, यह बहुत बड़ी सुविधा है कि माल बिना लाइन बदले सीधा बन्दरगाहोंसे जा सकता है। यदि भविष्यमें काठियावाड़के बन्दरगाहोंकी उन्नति हो जाय, तो वे बहुत बड़े क्षेत्रका व्यापार अपने अधिकारमें कर सकते हैं।

पिछले अस्सी वर्षोंसे इन बन्दरगाहोंकी समस्याको लेकर भारत-सरकार तथा काठियावाड़के देशी राज्योंमें बराबर खींचा-तानी होती आ रही है। जब काठियावाड़में रेलें नहीं थीं, तब इन बन्दरगाहोंसे भारत-सरकारको कोई आर्थिक हानि होनेकी सम्भावना नहीं थी, इसलिए

भारत-सरकारने इस ओर अधिक ध्यान भी नहीं दिया था। केवल सन् १८६५ में भावनगर तथा बड़ौदा राज्योंसे यह समझौता अवश्य हो गया था कि इन राज्योंके बन्दरगाहों और ब्रिटिश भारतके बन्दरगाहोंके बीच होनेवाले व्यापारपर कोई कर नहीं लगाया जायगा और इन दोनों राज्योंके बन्दरगाहोंपर आयात-निर्यात-कर ब्रिटिश बन्दरगाहोंसे कम नहीं होगा। सन् १८७८ में नये 'सी-कस्टम्स-ऐक्ट' के अनुसार गवर्नर-जनरलने ब्रिटिश बन्दरगाहोंसे काठियावाड़के बन्दरगाहोंको विदेशोंसे आये हुए मालका जाना रोक दिया। इसका अर्थ यह था कि काठियावाड़के बन्दरगाहोंपर विदेशोंसे माल सीधा आ सकता था; किन्तु ब्रिटिश बन्दरगाहोंपर आकर फिर नहीं जा सकता था। केवल भावनगरपर यह पाबन्दी नहीं लगाई गई। सन् १८८२ से १८८४ तक भारतवर्षमें मुक्तद्वार व्यापार (Free trade) नीतिका अनुसरण किया गया। इस कारण कोई समस्या ही उपस्थित न हुई। इसके उपरान्त जब फिर आयात-निर्यात-कर लगाये गये, उस समय काठियावाड़में रेलवे लाइनें खोली जा रही थीं और काठियावाड़के बन्दरगाह ब्रिटिश रेलवे लाइनोंसे सम्बन्धित किये जा रहे थे। भारत-सरकारने काठियावाड़के राज्योंके सामने यह प्रस्ताव रखा कि उनके बन्दरगाहोंपर आयात-निर्यात-करकी वसूलीका प्रबन्ध भारत-सरकारको दिया जाय। अब वे लोग सतर्क हो गये थे, और उन्होंने इस प्रस्तावको अस्वीकार कर दिया। इसपर भारत-सरकारने रन-आफ-कच्छ तथा खम्भातकी खाड़ीको जोड़ते हुए काठियावाड़ राज्योंकी सीमापर चुंगीकी चौकियाँ बिठा दीं। इन चौकियोंपर होकर जो भी माल ब्रिटिश भारतमें जाता था, उसपर कर लिया जाता था। इन चौकियोंकी लाइनको 'वीरमगाँव कस्टम लाइन' के नामसे पुकारा जाता है।

सन् १९०५ में प्रथमवार 'वीरमगाँव कस्टम लाइन' स्थापित की गई थी। काठियावाड़के राज्य इसके बहुत विरुद्ध थे, इस कारण भारत-सरकारने निम्न-लिखित

शर्तोंपर 'वीरमगाँव कस्टम लाइन' उठा देना स्वीकार किया :—

१. दरबार अपने बन्दरगाहोंपर ब्रिटिश भारतके बन्दरगाहोंसे कम आयात-निर्यात-कर नहीं लगावेंगे।

२. वे असने राज्योंमें तैयार किये हुए मालपर उतने करसे कम नहीं लगावेंगे, जितना कि ब्रिटिश भारत अपने यहाँ तैयार किये हुए मालपर लगाता है।

३. वे अपने बन्दरगाहोंपर युद्धका सामान अथवा अस्त्र-शस्त्र नहीं उतरने देंगे।

४. वे अपने बन्दरगाहोंके व्यापार-सम्बन्धी ठीक आँकड़े रखेंगे और आवश्यकता पड़नेपर भारत-सरकारको वे आँकड़े देंगे।

५. प्रतिवर्ष भारत-सरकारका एक कस्टम अफसर उनके बन्दरगाहोंके हिसाबकी जाँच करेगा।

राजाओंने अन्तिम शर्तको नहीं माना और वीरमगाँव लाइन नहीं उठाई गई। अन्तमें सन् १९१७ में भारत-सरकारने अन्तिम शर्त न रखना स्वीकार किया, और वीरमगाँव लाइन उठा दी गई।

१९१७ में 'वीरमगाँव कस्टम लाइन' उठा देनेके विषयमें जो समझौता हुआ था, उसमें इतना और जोड़ दिया गया था कि यदि भविष्यमें काठियावाड़के बन्दरगाह इतनी उन्नत दशामें हो गये कि बड़े-बड़े जहाज भी उनमें आकर ठहर सकें और भारत-सरकारको हानि होने लगी, तो सरकार इस प्रश्नपर पुनः विचार करेगी। यद्यपि और सब राज्योंने इसको मान लिया; परन्तु हिज्र हाईनेस जाम साहबने इसपर आपत्ति की और भारत-सरकारसे पूछा कि कहीं इसका अर्थ यह तो नहीं लगाया जायगा कि हमें अपने राज्यके प्राकृतिक साधनोंकी उन्नति करनेसे रोक जाय। किन्तु भारत-सरकारने इसका उत्तर देते हुए जाम साहबको विश्वास दिलाया कि भारत-सरकारकी यह इच्छा कदापि नहीं है; लेकिन पिछले दिनोंमें इसी प्रश्नको लेकर जाम साहब तथा भारत-सरकारमें झगड़ा उठ खड़ा हुआ।

कुछ समय तक कोई विशेष बात नहीं हुई; परन्तु यूरोपीय महायुद्ध समाप्त हो जानेके उपरान्त बम्बई और करांची बन्दरगाहोंके अधिकारियोंको यह अनुभव होने लगा कि बहुत बड़ी राशिमें विदेशोंसे आया हुआ माल काठियावाड़के बन्दरगाहोंको इन ब्रिटिश बन्दरगाहोंसे भेजा जा रहा है और वह माल भारतके भिन्न-भिन्न भागोंमें उस मालसे कम मूल्यपर विक्रता है, जो कि बम्बईसे जाता है। अधिकतर यह व्यापार नवानगरके वेदी बन्दरसे होता था। इसपर बम्बई-सरकारने बम्बई तथा करांची बन्दरगाहोंको यह अधिकार दे दिया कि वे जामनगर (नवानगर) के वेदी बन्दरको विदेशोंसे आया हुआ माल विना आयात-कर लिये हुए न जाने दें। साथ ही बम्बई-सरकारने भावनगर, पोरबन्दर तथा मौरवी राज्योंको भी चेतावनी दे दी। जाम साहबने भारत-सरकारको एक लम्बा पत्र लिखकर इस रोकके लगाये जानेका घोर विरोध किया। इस प्रतिवादका फल यह हुआ कि वेदी बन्दरपर बम्बई और करांचीसे माल विना रोक-टोक आने लगा। क्रमशः वेदी बन्दरका व्यापार बढ़ता ही गया, यहाँ तक कि गोआ, कोलम्बो तथा अदनसे भी माल सीधा वेदी बन्दर आने लगा।

वेदी बन्दरके बढ़ते हुए व्यापारको देखकर भारत-सरकार चिन्तित हो उठी, इसी समय भारत-सरकारको इस प्रश्नपर पुनः विचार करनेका एक अवसर मिल गया। वड़ौदाके ओखा बन्दरगाह तथा जामनगरके वेदी बन्दरको इन राज्योंने इतना उन्नत कर दिया था कि बड़े-बड़े समुद्री जहाज भी इनमें ठहर सकते थे। इस परिवर्तनका फल यह हुआ कि छोटे-छोटे स्टीमर बम्बई, करांची तथा अन्य ब्रिटिश बन्दरगाहोंसे तो माल लाते ही थे, अब यूरोप तथा जावासे आनेवाले बड़े-बड़े जहाज भी सीधे इन बन्दरगाहोंपर आकर ठहरने लगे।

भारत-सरकार इस परिवर्तनसे बहुत चौंकी और १९१७ के समझौतेके अनुसार इस समस्यापर पुनः विचार करनेके लिए काठियावाड़ राज्योंके प्रतिनिधियोंको

बुलाया। आवू पर्वतपर यह सम्मेलन हुआ। भारत-सरकारने काठियावाड़के देशी राज्योंके सामने यह प्रस्ताव उपस्थित किया कि वे अपने बन्दरगाहोंको ब्रिटिश कस्टम-विभागके प्रबन्धमें दे दें। भारत-सरकार द्वारा नियुक्त कस्टम आफिसर आयात-निर्यात-कर वसूल करेगा, जिसकी आय भारत-सरकारको जायगी। इसके बदलेमें भारत-सरकार उन देशी राज्योंको एक निश्चित रकम दे देगी। आवू-सम्मेलनमें एक भी देशी राज्यने अपने बन्दरगाहोंको भारत-सरकारके अधीन देना स्वीकार नहीं किया।

इसके बाद निम्न-लिखित चार प्रश्नोंपर विचार हुआ :—

१. कस्टम ड्यूटीका ब्रिटिश तथा काठियावाड़के बन्दरगाहोंपर एक-सा होना आवश्यक है।
२. सब बन्दरगाहोंका प्रबन्ध तथा उनका शासन भी एक-सा ही होना चाहिए।
३. बन्दरगाहोंमें पुलिसकी आवश्यकता।
४. कस्टमकी आयका बँटवारा।

काठियावाड़के राज्योंने पहली बात स्वीकार कर ली। दूसरे प्रश्नपर यह समझौता हुआ कि राज्य अपने बन्दरगाहोंका प्रबन्ध स्वयं करें; किन्तु ब्रिटिश कस्टम विभागके कुछ कर्मचारी अपने यहाँ नौकर रख लें। इसी प्रकार पुलिस-अधिकारियोंको भी अंगरेजी सरकारसे माँग लेनेपर समझौता हो गया। किन्तु कस्टमकी आयके बँटवारेपर समझौता न हो सका, और सम्मेलन असफल हो गया।

इस विषयमें भारत-सरकारने एक मोटा हिसाब यह लगाया कि प्रत्येक बन्दरगाहपर सन् १९२५-२६ तक अधिक-से-अधिक एक वर्षकी जितनी आय हुई है, उसमें बन्दरगाहमें लगी हुई पूँजीपर ६ प्रतिशतके हिसाबसे सूद जोड़ दिया जाय और उतनी रकम प्रतिवर्ष भारत-सरकार देशी राज्योंको दे दिया करे। इस हिसाबसे वड़ौदाको २० लाख, जूनागढ़को १२ लाख, मंगरौलको २ लाख, नवानगरको ३४ लाख, पोरबन्दरको १० लाख

तथा मोरवीको ६ लाख रुपये मिलते थे; किन्तु राज्योंने इसपर आपत्ति की। उन्होंने कहा कि हमारे बन्दरगाह अभी उन्नत नहीं हुए हैं, भावनगरका वेदी बन्दर उन्नत हो गया है। भविष्यमें हमारे बन्दरगाह भी ऐसे ही उन्नत हो जायँगे। अतएव हमें भी नवानगरके बराबर ही रकम मिलनी चाहिए। नवानगर राज्य यह कहता था कि हमारे बन्दरकी आयका अनुमान सन् १९२५-२६ की आमदनीसे न लगाकर १९२६-२७ से लगाया जाना चाहिए। इस झगड़ेके कारण सम्मेलन असफल हो गया, और वीरमगाँव कस्टम लाइन फिर स्थापित कर दी गई। काठियावाड़के देशी राज्योंने वीरमगाँव कस्टम लाइनके फिसे स्थापित किये जानेका घोर विरोध किया। उनका कहना है कि यह सन् १९१७ के समझौतेके विरुद्ध है। हमने उक्त समझौतेकी प्रत्येक शर्तका पालन किया है; पर भारत-सरकार अब उस समझौतेका पालन नहीं कर रही है। लेकिन भारत-सरकार उससे मस नहीं हुई। जाम साहबने इसी प्रश्नको लेकर बड़ी दौड़-धूप की। भारत-मन्त्रीसे अपील भी की; किन्तु फल कुछ न हुआ। भारत-सरकारने वृद्ध जाम साहबके साथ जैसा व्यवहार किया, उसकी चर्चा इंग्लैण्डके पत्रोंमें भी हो चुकी है।

भावनगरके बन्दरगाहोंकी स्थिति इन सबसे भिन्न है। भारत-सरकार तथा भावनगर दरबारमें सन् १८६० तथा १८६६ में दो समझौते हुए थे। उन समझौतोंके अनुसार भावनगरके बन्दरगाहोंको कस्टम्स पोर्ट मान लिया गया, अर्थात् उस राज्यके बन्दरगाहोंको वही सब सुविधाएँ मिलीं, जो ब्रिटिश बन्दरगाहोंकी थीं। बन्दरगाहके कस्टम दरवार लेगा, और इन सुविधाओंके बदले दरबारने भारत-संस्कारसे हर्जानेके रुपये, अपने सिक्के ढालनेका अधिकार तथा अन्य अधिकार छोड़ दिये। सन् १९०४ में जब प्रथम बार वीरमगाँव कस्टम लाइन स्थापित हुई, तो भारत-सरकारने भावनगरके बन्दरगाहोंसे आये हुए मालपर भी कर लेना चाहा। दरबारने भारत-मन्त्रीसे अपील की। भारत-मन्त्रीने

दरबारके पदमें फैसला दे दिया, अतएव भावनगरके वन्दरगाहपर वीरमगाँव लाइनका प्रभाव नहीं पड़ता। इनके अतिरिक्त कैम्बे, जंजीरा, सावन्तवादी, कच्छ तथा साचीन भी समुद्री रियासतें हैं; परन्तु अधिक महत्त्वपूर्ण न होनेके कारण उनके वन्दरगाहोंके विषयमें कुछ

नहीं लिखा गया। भारतवर्षमें संघ-सरकार स्थापित होनेपर इन वन्दरगाहोंकी समस्या और भी जटिल हो जायगी। इन रियासतोंने यह निश्चय कर लिया है कि वे अपने वन्दरगाहोंको संघ-सरकारके हाथमें नहीं देंगी।

एक पैसेकी बात

श्री 'पहाड़ी'

कलकी बात है। कुछ सेकेण्ड, मिनट और घंटे ही तो गुज़रे हैं। मैं और मोहन कुछ ज़रूरी सामान लेने साइकिलपर शहर गये थे। सामान आगे हैंडिलपर लटकाकर लौट रहे थे। बड़ी भीड़ थी। बार-बार ब्रंक लगाते और घंटी बजाते धीरे-धीरे आगे बढ़ रहे थे।

एकाएक एक बूढ़ा भिखारी पास आया, बोला—“बाबू, एक पैसा।”

मोहनने कहा—“जा, चल कहीं नौकरी ढूँढ़।”

मैं चुप था। उसने पैटपर हाथ रखकर कहा—“कलसे खाना नहीं खाया।”

भिखारीको मैंने देखा—बूढ़ा शरीर, रंग आवनूसी, सफेद दाढ़ी, गड्ढेमें घुसी छोटी-छोटी आँखें, लाठी टेकता-टेकता आगे बढ़ रहा था। बदनपर कुछ चीथड़े थे। वस।

मोहन कह रहा था—“भारत गरीब है, यह माना; फिर भी भीख माँगनेको प्रोत्साहन देना ठीक नहीं। इन लोगोंकी बढ़ती संख्या देखकर जान पड़ता है, हम लोगोंने ही दया दिखला-दिखलाकर इनको बढ़ाया है। हम दयापर टिक जाते हैं। इनका कोई अस्तित्व नहीं।” फिर भिखारीसे बोला—“कुछ नहीं मिलेगा, बाबा!”

फिर भी भिखारी पीछे-पीछे आ रहा था। उसे अब भी आशा थी कि कोट, पैंट और फेल्ड-हैटधारी ये बाबू उसे कुछ ज़रूर देंगे।

मोहनने खीज़कर कहा—“क्या है बाबा? क्यों पीछा कर रहे हो? हमारे पास बेकार लुटानेको पैसा नहीं है।”

फिर भी भिखारी लड़खड़ाता हुआ लपकता ही चला आ रहा था। इतनेमें मोटरका ‘हार्न’ सुनाई पड़ा। हम दोनों पैडल मारकर आगे बढ़ गये। भिखारी पीछे छूट गया।

मोहनने पूछा—“सिगरेट है?”

“नहीं।”—मैं बोला।

“अच्छा, तो मैं कैचीका एक पेंकेट ले लूँ।”

उसने पासकी दूकानसे कैचीका ‘पेंकेट’ लिया और सिगरेट जलाकर धुआँ उड़ाते हुए हम कालेज होस्टल पहुँचे।

आज सुबह रामू आया। बोला—“कल तुम रुके ही नहीं। मोटरका ‘हार्न’ दिया था। तुम्हारी बजहसे एक बूढ़ा भिखारी कुचल गया।”

“भिखारी?”

“हाँ, बेचारा ‘हार्न’ की आवाज़से घबराकर ‘कार’ के सामने आ गया।”

“क्या वह मर गया।”

“हाँ, गरीबकी जान ही कितनी होती है। उसका मूल्य कुछ भी तो नहीं। किसे उसकी चिन्ता है? दुनियाका कारोबार उसके लिए नहीं सकता।”

मैंने कहा—“हाँ रामू, बात यह है कि सिगरेटका फूकना बहुत ज़रूरी है, वह बेकार खर्च नहीं। देशमें करोड़ों रुपयोंके सिगरेटका खर्च है। लेकिन एक पैसेके लिए भिखारीकी ‘जान’ का कोई मूल्य नहीं।”

रामू चला गया। मैं इस बातपर सोचने लगा। मालूम हुआ कि बात एक पैसेकी ही है।

धर्मके रास्तेमें विज्ञान

श्री भगवतीप्रसाद श्रीवास्तव, एम० एस-सी०

कुछ वर्ष पूर्व विज्ञान थोड़ेसे इनेगिने विद्वानोंके कामकी चीज़ समझी जाती थी। अपने अनुसन्धानमें लगा हुआ वैज्ञानिक समाजकी ओरसे बिल्कुल बेखबर था, और समाजको भी उसकी कुछ विशेष परवा न थी; किन्तु आज तो सारा संसार विज्ञानके प्रभावसे ओतप्रोत है। समाजपर इस वैज्ञानिक जीवनकी एक गहरी छाप लग चुकी है और धर्म भी अपनेको इसके प्रभावसे अछूता नहीं रख सका है। इस प्रश्नपर विचार करनेके पहले हमें यह देखना है कि धर्म और विज्ञानमें किस प्रकारका सम्बन्ध हो सकता है।

पिछले पचास वर्षोंमें विज्ञानने आश्चर्यजनक उन्नति की है। आये दिन हमें ऐसी बातें बताई जाती हैं, जो धर्मके प्रचलित सिद्धान्तोंके बिल्कुल खिलाफ हैं। क्रमशः धर्म और विज्ञानकी यह खींचातानी इस सीमा तक आ पहुँची है कि ऐसा जान पड़ता है कि या तो हमें 'धर्म' शब्दके अर्थ बदलने पड़ेंगे, या विज्ञानको ही रद्दीकी टोकरीमें फेंकना पड़ेगा। धर्म और विज्ञान दोनों ही समाजके महत्वपूर्ण अंग हैं, अतएव किसके पक्षमें फैसला होना चाहिए, इस प्रश्नके उत्तरपर समाजके भविष्यकी रूप-रेखा निर्भर है। इतिहासके पन्ने उलटनेपर हम देखते हैं कि धर्म और विज्ञानमें सदैवसे ही युद्ध होता आया है। सत्रहवीं शताब्दीमें इटलीके प्रसिद्ध वैज्ञानिक गैलीलियोने अकादमिक प्रमाणों द्वारा यह सिद्ध किया था कि सूर्य स्थिर है और पृथ्वी तथा दूसरे ग्रह उसके चारों ओर वृत्ताकार परिधिमें घूमते हैं। उस समय सारे यूरोपमें पोपका बोलवाला था। बाइबिलकी बातोंका खगडन करना बड़े हिम्मतका काम था। गैलीलियो बचपनसे ही निर्भीक प्रकृतिका था, अतएव सत्यके लिए उसने पोपकी परवा न की। फलस्वरूप वह धर्मके आचार्योंका कोपभाजन बननेसे बच न सका।

गैलीलियोपर जो दोषारोपण किये गये थे, उनके निम्नांकित अंश उल्लेखनीय हैं :—

१. यह खयाल कि सूर्य विश्वके केन्द्रपर है और अपने स्थानपर स्थिर है, असम्भव है तथा दर्शनकी दृष्टिमें असत्य और नास्तिकताका द्योतक है, क्योंकि यह धर्म-पुस्तकमें लिखी बातोंके बिल्कुल खिलाफ है।

२. पृथ्वी विश्वके केन्द्रमें नहीं है तथा वह घूमती है, जिसके कारण दिन और रात होते हैं, यह मत भी असम्भव और दर्शनके अनुसार असत्य है तथा धार्मिक दृष्टिबिन्दुसे त्रुटिपूर्ण भी है।

अतः गैलीलियोको जेलकी सज़ा हुई, और प्रति सप्ताह उसे एक बार एक लम्बा बयान उच्च स्वरसे पढ़ना पड़ता था, जिसमें उसे यह कहना पड़ता कि मैं शपथपूर्वक कहता हूँ कि उन सारी बातोंमें, जिसे पोप और रोमके गिरजाघर मानते हैं, मेरा पूर्ण विश्वास है। जिन बातोंको मैंने पहले सत्य समझा था, वह मेरा भ्रम था। भविष्यमें अब मैं ऐसी बातोंका कभी प्रचार न करूँगा तथा धर्म-पुस्तकके एक-एक शब्दमें मेरा पूर्ण विश्वास है।

गैलीलियोको दंड देते समय पोपने कहा था कि हम यह बता देना चाहते हैं कि धर्म-पुस्तकके खिलाफ प्रचार करनेवालेके संग हम ऐसा ही सत्कृत करेंगे। बहुत-कुछ अंशोंमें पोपकी यह धमकी काम भी कर गई। उस समयसे आज तक इटलीमें गैलीलियोकी श्रेणीका दूसरा वैज्ञानिक पैदा नहीं हुआ।

धर्म मुख्यतया श्रद्धा और अन्ध-विश्वासपर अवलम्बित है, इसीसे बुद्धिकी कसौटीपर कसा जाना इसे रुचिकर नहीं है। गैलीलियोके पहले लोगोंका खयाल था कि विश्वकी रचना किस प्रकार हुई, कैसे प्रतिदिन सूर्य पूर्वसे पश्चिम जाता है आदि प्रश्नोंका सही उत्तर वे जानते हैं। वे समझते थे कि उनकी

धर्म-पुस्तकने इन सब प्रश्नोंका सही और सन्तोषजनक उत्तर दे दिया है और धर्म-पुस्तकसे बाहर सत्यका ढूँढ़ना निरर्थक ही नहीं, अधर्म भी समझा जाता था। गैलीलियोने उनकी धर्म-पुस्तकको झूठा ठहराकर तत्कालीन पोपकी प्रतिष्ठाको बड़ी हानि पहुँचाई। इसी कारण धर्मके आचार्योंने अपने सोनेके महल दहते देख इतना तूफान खड़ा कर दिया।

१६२३ की बात है। मैं एक ग्रामीण पाठशालामें पढ़ता था। भूगोलके अध्यापक महोदय ब्राह्मण थे। दिन और रातके होनेका कारण समझा रहे थे। यह बता चुकनेके बाद कि पृथ्वी लट्ठकी भाँति २४ घंटेमें एक बार घूम जाती है और सूर्य अपने स्थानपर स्थिर रहता है, आपने यह बता देना भी अपना कर्तव्य समझा कि सच्ची बात कुछ और ही है। हमारे शास्त्रोंमें लिखा है कि सूर्य पृथ्वीके चारों ओर परिक्रमा करता है और पृथ्वी स्थिर रहती है। अतएव परीक्षाके लिए हम सूर्यको भले ही स्थिर मान लें; किन्तु सच्ची (!) बात हमें सदैव ध्यानमें रखनी चाहिए। मालूम नहीं, यह महोदय अपने विद्यार्थियोंको अब भी इसी प्रकार सत्यका अनुसन्धान कराते हैं या नहीं।

चन्द्रग्रहणको ही लीजिए। इसका ठीक रहस्य हमारे पुराणकारोंको मालूम न था। उन्होंने कल्पनाके आधारपर रोचक कहानियोंका निर्माण किया। तदनुसार लोगोंमें विश्वास जम गया है कि राहु चन्द्रदेवको प्रसता है और गंगा-स्नान तथा दान-यज्ञ द्वारा राहुको प्रसन्नकर हम चन्द्रदेवकी रक्षा कर सकते हैं। विज्ञानकी कसौटीपर यह कहानी भी झूठी ठहरती है। इसी प्रकारकी अन्य बहुत-सी ऊल-जलूल बातें धर्मका अंग समझी जाती हैं। भला, ऐसे धर्मके प्रति विज्ञानकी क्या सहानुभूति हो सकती है?

अतएव विज्ञानकी प्रगतिके साथ समाजपर से धर्मका बन्धन ढीला होता जा रहा है। हर एक पीढ़ीके साथ धर्मके रूपमें भी परिवर्तन हो रहा है। कुछ देशोंमें (उदाहरणार्थ रूस) अब सामाजिक जीवनको सुखमय

बनाना ही सबसे बड़ा धर्म समझा जाने लगा है। ऐसा जान पड़ता है कि विज्ञानका प्रत्येक नया आविष्कार धर्मको पीछे हटनेको मजबूर करता है। सम्भव है, विज्ञान द्वारा वाह्य आडम्बरोको दूरकर हम धर्मके इस अंश तक पहुँच सकें, जो शुद्ध और सत्य है। ऐसा होना धर्मके लिए बड़ा ही हितकर होगा। पिछली दो-तीन शताब्दियों तक धर्मका रूप एक हठी लड़केका था। वह सदैव विज्ञानसे लड़कर अपनी रक्षा करनेका उद्योग करता रहा। यही कारण है कि गैलीलियो जैसे सत्यके अनन्य भक्तोंको नाहक कष्ट दिया गया। वैज्ञानिक स्वभावतः क्रान्तिकारी होता है। रूढ़ियोंका वह दास नहीं है। बिना परीक्षा किये हुए, बिना भलीभाँति जाँच हुए, वह किसी भी बातको स्वीकार करनेको तैयार नहीं। वह अगर किसीका लोहा मानता है, तो वह बुद्धिकी कसौटीका। सत्यके अनुसन्धान-मात्रसे समाज उतना विचलित नहीं होता, जितना इस खयालसे कि इस नये सत्यके स्वीकार करनेसे समाजके किसी विशेष अंगको हानि पहुँचनेकी सम्भावना है। गैलीलियोके अनुसन्धानने पोपकी प्रतिष्ठा धूलमें मिला दी। इसी कारण धर्मके आचार्योंने गैलीलियोके विचारोंको दबानेका प्रयत्न किया। विज्ञानको सत्यके अनुशीलनमें सबसे अधिक बाधा उन लोगोंने पहुँचाई है, जिनको यह डर था कि सत्यके प्रकट होनेसे अनेक विशेष अधिकार उनसे छीन लिये जायँगे। विज्ञानके इतिहासपर ध्यान देनेसे यह बात भलीभाँति समझमें आ जायगी कि यह कोरी कल्पना नहीं, वरन् सत्यका नग्न रूप है।

धर्मको जीवित रहनेके लिए यह आवश्यक है कि वह विज्ञानकी सहायतासे अपनी तमाम त्रुटियोंको दूर करनेमें ज़रा भी न हिचके। ऐसा करनेसे इसकी काया क्षीण अवश्य हो जायगी; किन्तु खरे स्वर्णकी भाँति वह शोभा भी पावेगा।

धर्म वास्तवमें है क्या चीज़? प्राचीन कालमें प्रकृतिको समझनेमें असमर्थ होनेके कारण मनुष्य स्वभावतः

उससे डरने लगा। उसने प्रकृतिके पीछे एक महान् शक्तिकी कल्पना की, जो सृष्ट होनेपर भाँति-भाँतिके कष्ट पहुँचा सकती थी। इस भयकी भावनाने धर्मकी सृष्टि की; किन्तु अब विज्ञानने प्रकृतिसे डरनेके बजाय उसके रहस्योद्घाटनके लिए हमें उपयुक्त साधन प्रदान किये हैं। भयका अंश दूर हो जानेसे साधारण जनतापर धर्मका बन्धन अब उतना कड़ा नहीं रह गया। बिजली चमकती है इसलिए नहीं कि इन्द्रदेव हमसे रुष्ट हैं, वरन इसलिए कि बादल आपसमें रगड़ खाते हैं। अतः आतंकके भरोसे अब धर्म टिक नहीं सकता। विज्ञानके प्रकाशमें धर्मका रूप बदल गया है। संसारमें जीवनको सुखमय बनानेके लिए कुछ नियम आवश्यक हैं। धर्म इसी नियमावलीकी ओर अप्रसर हो रहा है। रूसमें समाजकी उन्नति ही सबसे बड़ी धार्मिकता मानी गई है। इसके आगे धर्मकी उपयोगिता नहीं है। इस स्थलपर स्वभावतः अनेक शंकाएँ उठती हैं। धर्मसे समाजकी उन्नति अवश्य होती है; किन्तु क्या धर्मका काम यहीं समाप्त हो जाता है? समाजकी उन्नति किस प्रकार हो, क्या इस समस्याका हल करना ही धर्मकी वास्तविक मीमांसा है? निकट-भविष्यमें क्या धर्ममें ईश्वरके लिए कोई स्थान न रह जायगा? विज्ञानके दृष्टिबिन्दुसे इन प्रश्नोंपर हम थोड़ा विचार करेंगे।

हालमें इंग्लैण्डके प्रसिद्ध वैज्ञानिक जेम्स जीन्स और एडिंगटन तथा दूसरे विद्वानोंने विज्ञानकी कुछ विशेषताओंपर ऐसे विचार प्रकट किये हैं, जिनके आधारपर धार्मिक विचारके लोगोंने यह निष्कर्ष निकालनेकी कोशिश की है कि विज्ञान ईश्वरकी सत्तामें विश्वास करता है।

अभी तक विज्ञानमें कार्य-कारणके नियमका अपवाद नहीं मिला था। प्रकृति पूर्णरूपसे नियमबद्ध है। हमारा प्रतिदिनका जीवन उपर्युक्त नियम द्वारा संचालित है। हम जानते हैं कि हमारी मोटर यदि एक गैलन पेट्रोलमें आज २० मील जाती है, तो कल भी उतने पेट्रोलमें वह बीस ही मील

जायगी, यदि मोटरके इंजनमें कोई खराबी नहीं आ गई है। यह नियम सब जगह लागू होता दिखाई देता है। एक दी हुई परिस्थितिमें यदि एक घटना होती है, तो उसी परिस्थितिके फिर मौजूद होनेपर उस घटनाका फिरसे होना अनिवार्य है। वर्तमान समयकी घटनाका भूतकालकी किसी विशेष घटनासे एक अटूट और अनन्य सम्बन्ध है। इस प्रकार विश्वकी सभी घटनाओंके क्रमका अनुसन्धान करनेपर हम विश्वके जन्मकाल तक पहुँचाते हैं। उपर्युक्त नियमके अनुसार हमें यह मानना पड़ता है कि जिस परिस्थितिमें विश्वकी उत्पत्ति हुई, उसके अनुसार विश्वकी प्रगति केवल एक रास्तेपर हो सकती थी, और वह यही रास्ता है, जो इसने अख्तियार किया है। दूसरे रास्तेपर जाना इसके लिए सम्भव ही न था। इस प्रकार संसारकी तुलना एक मशीनसे की जाने लगी।

इस स्थलपर यह आवश्यक है कि हम समय क्या चीज है, इस प्रश्नका उत्तर जान लें। कार्यकारण-नियम घटनेके लिए समयका समान रूपसे प्रवाहित होना जरूरी है। कारण हो ले, तब उसके उपरान्त फलस्वरूप दूसरी घटना होगी। किन्तु आइन्सटाइनका सापेक्षवाद हमें बताता है कि समय भी लम्बाई, चौड़ाई तथा ऊँचाईकी भाँति एक चौथी राशि है। चौंटी एक समतल धरातलपर केवल लम्बाई और चौड़ाईका ही अनुभव कर सकती है, यदि वह किसी ऊँचे लट्टेपर चढ़ना आरम्भ करे, तो एक बार वह लट्टेके थोड़ेसे अंशका ही अनुभव कर सकती है। वह समझेगी, ऊँचाई एक ऐसी राशि है, जो लम्बाई और चौड़ाईसे भिन्न है। ऊँचाईका केवल थोड़ा-सा अंश ही एक बार अनुभव किया जा सकता है। जब वह बीच खम्भेपर पहुँचती है, तो वह समझती है कि खम्भेके नीचेका भाग भूतकालमें था, अब नहीं है और ऊपरका भाग भी भविष्यमें होगा, वर्तमानमें नहीं है। यद्यपि हम भलीभाँति जानते हैं कि पूरा लट्टा वर्तमान है, चाहे चौंटी लट्टेके बीचमें हो या चौंटीपर।

मनुष्य चींटीसे केवल इसी बातमें भिन्न है कि वह लम्बाई, चौड़ाई तथा ऊँचाई तीनोंका एक ही साथ अनुभव कर सकता है ; किन्तु 'समय'का अनुभव वह केवल टुकड़ोंमें कर सकता है। चींटीकी भाँति हम 'समय' रूपी लट्टेपर चढ़कर भविष्यकी घटनाओंका अनुभव करते हैं। हम सोचते हैं कि आज यह घटना हो रही है, अमुक घटना कल होगी। इस तरह हम समझते हैं कि कार्य-कारणका नियम लागू होता है ; किन्तु उपर्युक्त दृष्टान्त द्वारा हम देखते हैं कि घटनाएँ एक दूसरेके बाद नहीं होती हैं। वे सबकी सब वर्तमान हैं। अतएव 'क' के कारण एक दूसरी घटना 'ख' होती है, यह कहना ठीक नहीं है। आदिसे अन्त तक पूरा समय नक्शेकी भाँति हमारे सामने फैला हुआ है। सारी घटनाएँ भूत, भविष्य तथा वर्तमानकी सभी उसपर अंकित हैं। हम एक वारमें समयके केवल एक बिन्दुसे परिचित हो सकते हैं। अतएव आगेके बिन्दुपर कौन-सी घटना अंकित है, हम तत्काल नहीं जान सकते। फिर तो हम यह भी कह सकते हैं कि घटनाएँ होती नहीं, वरन् स्वयं हमीं उनके पास समयके लट्टेपर चढ़ते हुए पहुँचते हैं। इस तरह सापेक्षवादको घटनाओंके लिए कार्य-कारण-नियमकी कोई आवश्यकता नहीं है। किन्तु इच्छाशक्तिके बारेमें सापेक्षवाद भी चुप है।

अब प्रश्न उठता है, क्या चेतन पदार्थ भी किसी विशेष नियमसे आवद्ध हैं ? उन्नीसवीं शताब्दी तक चेतन और जड़ पदार्थ दो भिन्न-भिन्न चीज समझे जाते थे ; किन्तु अब अनुसन्धान द्वारा यह पता चला है कि चेतन पदार्थके सबसे छोटे अंश सेल (cell) भी जड़ पदार्थवाली वस्तुओंसे ही बने हैं। इस तरह जड़ तथा चेतन पदार्थोंके बीचकी रेखा मिटती जा रही है। अतएव चेतन पदार्थको भी जड़की भाँति कार्य-कारणका नियम पालन करना चाहिए।

लेकिन कार्य-कारण-नियमसे आवद्ध होनेपर इच्छा-शक्तिका प्रयोग नहीं हो सकता। और सभी जीवोंमें

हम न्यूनाधिक मात्रामें इच्छाशक्ति मौजूद पाते हैं। अतः हम इस निष्कर्षपर पहुँचते हैं कि जड़ पदार्थ कार्य-कारणका नियम बिना किसी अपवादके पालन करते हैं ; किन्तु चेतन प्राणियोंमें यह नियम लागू नहीं होता। इस प्रश्नपर हम ज़रा ध्यानपूर्वक विचार करेंगे।

बीसवीं शताब्दीमें वैज्ञानिक अनुसन्धानके साधनोंकी जब काफ़ी उन्नति हो चुकी, तो हम अकेले अणुओं (atoms) और परमाणुओं (electrons) पर प्रयोग करनेमें सफल हुए और हमें अनेक नई-नई बातोंका आभास मिला। भौतिक शास्त्रके विद्वानोंने यह देखा कि कार्यकारणका नियम केवल बड़े पैमानेपर होनेवाली घटनाओंके लिए लागू है। अणु और परमाणुओंकी दुनियामें प्रकृतिका यह अटूट नियम लागू नहीं होता। इस प्रकारकी अनेक क्रियाएँ हैं ; पर मैं केवल एकके बारेमें यहाँपर कुछ कहूँगा।

रेडियमका नाम पाठकोंने सुना होगा। इसके अणु निरन्तर सीसेके अणुओंमें परिवर्तित होते रहते हैं। यहाँपर एक विचित्र बात यह देखनेमें आती है कि यदि २००० अणु रेडियमके हैं, तो एक वर्षके उपरान्त उनमेंसे केवल एक अणु सीसेका अणु बन सकेगा, शेष १९९९ रेडियम ही रहेंगे। कोई भी रासायनिक या भौतिक क्रिया इस व्यापारमें बाधा नहीं पहुँचा सकती। हमें नहीं मालूम, इन २००० अणुओंमें से कौन-सा अणु इस परिवर्तनके चक्रमें आता है। सारे अणु एक-से हैं, अतएव उनके गुण भी एक-से हैं। फिर ऐसा क्यों है कि केवल एककी मृत्यु वर्ष-भरमें होती है ? पूरे साल-भरमें मानो यमराज एक वार आता है और किसी एक अणुपर अपना प्रहार करता है, शेष १९९९ अणु, जो ठीक उसीकी भाँति हैं, साफ़ बच जाते हैं। किस अणुकी मृत्यु होनेवाली है, इस प्रश्नका उत्तर वैज्ञानिक नहीं दे सकता। मानो अणुओंमें भी इच्छाशक्ति है, और जब इच्छा हुई, अपना शरीर त्याग दिया। एडिंगटनने इस बातको लेकर यह दिखानेकी कोशिश की

है कि प्रकृतिके पीछे इच्छाशक्ति है, जो नियमोंसे परे है। इस प्रकार उसने ईश्वरकी सत्ताकी रक्षा करनेमें विज्ञानकी सहायता ली है ; लेकिन इस तरह सोचना क्या ठीक है ? जितने नियम हम जानते हैं, वे लागू नहीं होते। इसके मानी क्या यही हैं कि इस क्रियापर कोई नियम लागू हो ही नहीं सकता ? सम्भव है, कुछ दिनोंके उपरान्त हमें ऐसे नियमोंका पता चले, जो उपर्युक्त प्रश्नका सन्तोषप्रद उत्तर दे सकें, तब तो अणुओंको इच्छाशक्ति प्रदान करनेकी कोई आवश्यकता न होगी। सारांश यह कि जब तक हम यह साबित करके न दिखा दें कि अणु किसी भी प्रकारके नियमोंसे आवद्ध नहीं हैं, हम उन्हें इच्छाशक्ति प्रदान नहीं कर सकते।

सर जेम्स जीन्सने यह साबित किया है कि सृष्टिके सबसे छोटे अंश अणु तथा परमाणु आदि वास्तवमें लहरें हैं। उनकी क्रियाएँ और उनके गुण गणितके सूक्ष्म सूत्रों द्वारा भलीभाँति समझाये जा सकते हैं, अतएव उसने सृष्टिकर्ताकी कल्पना एक शुद्ध गणितज्ञके रूपमें की है। २३०० वर्ष पूर्व प्लेटोने भी ईश्वरकी कल्पना एक रेखागणितके पंडितके रूपमें की थी ; लेकिन यह कहना कि सृष्टिकी रचना रेखागणितके सिद्धान्तोंके अनुसार हुई है, कहाँ तक ठीक है ? क्या शुद्ध गणितके सिद्धान्त भी प्रकृतिसे प्राप्त किये गये ज्ञानपर अवलम्बित नहीं है ? इस प्रश्नका उत्तर देनेकी कोशिश जीन्सने अपनी पुस्तक 'मिस्टिरियस यूनिवर्स' (The Mysterious Universe) में की है ; पर उसके तर्कमें स्पष्टीकरणकी मात्रा कम दीखती है तथा उसकी दलीलें सन्तोषप्रद नहीं हैं।

अब हम विकासवादकी ओर आते हैं। प्रायः सभी धर्मोंमें मनुष्यको सृष्टिमें सर्वोपरि स्थान मिला है। कुछ लोग तो यहाँ तक कहते हैं कि सृष्टिकी रचनामें मनुष्य-जातिके हितका उद्देश्य छिपा है। उस भ्रमको दूर करनेकी ज्योतिषशास्त्रने भरसक कोशिश की है। हम जानते हैं कि इस विशाल ब्रह्माण्डमें पृथ्वी

रेगिस्तानमें पड़े बालूके एक कणके समान है—आकाश-मंडलमें पृथ्वीका महत्त्व इससे अधिक नहीं है। इतने बड़े विश्वमें पृथ्वी ऐसे तथा इससे कई गुने बड़े करोड़ों ग्रहपिण्ड हैं ; किन्तु ऐसे ग्रहपिण्ड, जिनकी जलवायु जीवधारियोंके अनुकूल हो, प्रायः नगण्य-से हैं, शेष या तो बहुत गर्म या बहुत ही ठंडे हैं। स्वयं हमारी पृथ्वी भी कुछ दिनों पहले जीवधारियोंके रहने काबिल न थी, और इसका भविष्य भी अधिक उज्ज्वल नहीं है—यह धीरे-धीरे ठंडी हो रही है, और एक दिन यह इतनी ठंडी हो जायगी कि किसी भी जीवधारीका यहाँ रहना सम्भव न होगा। प्रकृतिको जीवधारियोंकी कोई विशेष परवा नहीं है।

जीवतत्त्ववेत्ता हमें यह भी बताते हैं कि संसारके समस्त प्राणी अमीबा नामक एक कोषमय जीवसे उत्पन्न हुए हैं। फिर तो मनुष्यको जीव-शिरोमणि कहलानेका कोई हक नहीं है। जलचर, उभयचर, खेचर आदि अनेक पर्यायोंमें होकर मनुष्यकी अभिव्यक्ति हुई है। यह मत धर्म-पुस्तकोंकी शिक्षाके खिलाफ है। मनुष्य-देहकी स्वतन्त्र रचना ईश्वर द्वारा नहीं हुई है, इस विचारने भी धर्मको काफ़ी क्षति पहुँचाई है। जीवधारियोंके शरीरकी क्रियाओंको हम विज्ञान द्वारा समझा सकते हैं। भोजनसे रुधिर बननेमें कौन-कौन-सी रासायनिक क्रियाएँ होती हैं, इसका पता विज्ञानको है। रही मस्तिष्क या इच्छाशक्तिकी बात, सो इस ओर भी विज्ञानको काफ़ी सफलता मिल चुकी है। इसके सम्बन्धमें बड़े महत्त्वपूर्ण प्रयोग किये गये हैं, और इनके आधारपर हम इस निष्कर्षपर पहुँचे हैं कि हमारे बहुतसे काम मस्तिष्ककी सहायताके बिना ही किये जाते हैं। ऐसे कार्य, जिनके लिए हमें सोचनेकी आवश्यकता नहीं पड़ती, स्वतन्त्र क्रिया (Reflex action) कहलाते हैं। हमारी कुछ आदतें—विशेषकर क्षोभ (emotions) मस्तिष्क द्वारा संचालित नहीं होतीं, वरन् शरीरमें कुछ ऐसी गिल्टियाँ (glands) होती हैं, जो उनका संचालन करती हैं। इन्हीं गिल्टियोंसे

एक प्रकारका रासायनिक पदार्थ निकलकर जब हमारे रुधिरमें मिलता है, तो हम किसी विशेष प्रकारके क्षोभका अनुभव करते हैं। भिन्न प्रकारके क्षोभोंके लिए भिन्न-भिन्न गिल्टियाँ होती हैं। एक युवती स्त्रीकी प्रजनन-क्रिया-सम्बन्धी गिल्टीसे रासायनिक पदार्थ निकालकर एक बड़े मादा खरगोशके शरीरमें प्रवेश करानेपर उसमें कामोद्दीपनके सारे चिह्न प्रकट हो आये। इस प्रकार रोज ही अनगिनत प्रयोग किये जा रहे हैं। गिल्टियोंके फेर-बदलसे नरको मादा तथा मादाको नर बना लेना अब कपोलकल्पित बात नहीं रही।

इस तरह मस्तिष्कका काम गिल्टियोंके रासायनिक पदार्थने ले लिया है। सम्भव है, निकट-भविष्यमें हम मस्तिष्ककी सभी क्रियाओंको भौतिक तथा रसायनशास्त्र द्वारा व्यक्त कर सकें; और तब जड़ और चेतन पदार्थमें विज्ञानकी दृष्टिसे कोई अन्तर न रह जायगा। अतएव प्राणिमात्र धीरे-धीरे नास्तिकवादकी ओर अग्रसर हो रहा है।

कुछ लोग विकासवादमें सृष्टिकर्ताके किसी विशेष उद्देश्यकी पूर्ति देखते हैं; लेकिन यह बात समझमें

नहीं आती कि ईश्वरका उद्देश्य ऐसी सृष्टिके रचनेमें क्या हो सकता है, जहाँ हम इतना दुःख और सन्ताप देखते हैं? कहा जाता है कि यन्त्रणाएँ हमारे दुष्कर्मोंके फल हैं। यदि इस खयालको सही भी मान लें, तो छोटे-छोटे बच्चोंके कष्टका क्या कारण हो सकता है? शायद अपने माता-पिताके पापोंका फल उन्हें भोगना पड़ता है। किन्तु एकके पापके लिए दूसरा कष्ट पाये, इंसाफकी ऐसी व्याख्या करनेवाले परमेश्वरके प्रति हमारी कहाँ तक श्रद्धा हो सकती है? और पुनर्जन्म द्वारा इस समस्याके सुलझानेका प्रयत्न करना समस्याको एक प्रकारसे टालना है। सच तो यह है कि यह कहना कि सृष्टि ईश्वरकी इच्छासे एक निश्चित व्यवस्थाके अनुसार चल रही है, ईश्वरको निष्ठुर और अन्यायीकी उपाधि देना है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि विज्ञानको ईश्वरकी आवश्यकता नहीं है, फिर भी सत्यके अनुसन्धानमें लीन विज्ञान, ईश्वरके प्रति उदासीन होते हुए भी, हमारे सम्मानका पात्र है, क्योंकि सत्यकी खोज ही मनुष्य-जातिकी सबसे बड़ी विभूति है।



पंखी

श्री रामकृष्णदेव गर्ग

नौ बजेसे पाँच बजे तक आफिसमें काम करनेके बाद एक हिन्दुस्तानी क्लार्ककी क्या हालत हो जाती है, इसे हर एक आदमी नहीं समझ सकता। आठ घंटे बैलकी तरह जुत चुकनेपर जब वह आफिसके दरवाज़ेपर अपनी कमर सीधी करनेके लिए खड़ा होता है, तो आँखोंके आगे कुछ देरके लिए तिल्ले नाचने लगते हैं। एक तरफ़ तो द्रुतकर भूख लगती है और दूसरी ओर ऐसी तबियत होती है कि इन लड़खड़ाते हुए पैरोंको लेकर घंटे-भर कहीं सो लें, पीछे कुछ देखा जायगा।

बाबू रमनलालको, कम-से-कम, उस दिन कुछ ऐसा ही अनुभव हो रहा था। इकहरे बदनके वे दुबले-पतले आदमी थे। दस-बारह बरसकी कड़ी क़र्क़ाने उन्हें ज़रूरतसे ज़्यादा कमज़ोर कर दिया था। उनका लम्बा मुँह पिचककर पीला पड़ गया था, आँखें बड़ी होकर बाहर निकल आई थीं और कमर कुर्सीकी पीठकी पहली ही रगड़से पके फोड़ेकी तरह दुखने लगती थी। रोटियोंकी अपेक्षा वह दिन-भरमें दवा ही अधिक खाते थे; लेकिन भूख बड़ी बुरी तरह सताती थी। घरके सब काम भले ही पड़े रहें; पर उन्हें खाना वक्तपर ज़रूर मिलना चाहिए—उधर सबेरे ९ बजे और इधर ६ बजे।

घरके अन्दर पैर रखते ही उन्होंने आवाज़ दी—“उमा, कहाँ हो?” यह उनका नित्यका नियम था—आदत-सी पड़ गई थी। जब कभी बाहरसे आते, तो इसी तरह पुकारते।

उमा ऊपर थी। रोज़ इस समय वह उनके लिए खाना बनाया करती थी; लेकिन आज उन्होंने रसोईघरकी तरफ़ निगाह जो डाली, तो दम सूख गया। चूल्हा ठंडा पड़ा था। और उमा तस्क़ीनके साथ ग़ोखमें बैठी हुई एक तोलेको चुगा रही थी, जैसे खाना बनानेका कोई सवाल ही दरपेश न हो।

क्षोभ और विवशतासे रमनलालका चेहरा तमतमा उठा। उसी समय भूखकी मरोड़ जो पेटमें उठी, तो उनकी जीभमें

काँटे-से पड़ गये। हाथकी फाड़लोंको बग़लकी मेज़पर ज़ोरसे पटकते हुए उन्होंने पूछा—“आज खाना नहीं बनेगा क्या?”

उमा इस हमलेके लिए शायद पहले से ही तैयार बैठी थी। पिंजड़ेका दरवाज़ा बन्दकर उसके कुन्देमें कील डालते हुए, उसने जवाब दिया—“अब जाती हूँ बाज़ार साग खरीदनेके लिए, उसके बाद खाना बनाऊँगी।”

कैसा लचर बहाना था! रमनलालके रोम-रोममें आग लग गई। बोले—“अगर साग नहीं था, तो दो परांठे ही डाल देती; कम-से-कम इस वक्त तो प्राण बच जाते।”

उमाने कहा—“तुम्हारे दिलकी थाह भी किसीको मिले। कभी तो तुम्हें वाबन व्यंजन चाहिए और कभी तुम ऐसे साधु हो जाते हो कि सागकी भी ज़रूरत नहीं रहती। कोई सुनता होगा, तो कहता होगा कि कैसी फूहड़ औरत है कि वक्तपर खाना भी बनाकर नहीं देती। लेकिन तुम्हारी करतूतोंको कोई जाने जब न!”

रमनलाल चुप हो गये। समझ गये वहंसमें जीतना मुश्किल है। उनकी शिकायतें कभी बे-बुनियाद नहीं होती थीं। ‘शिकायतें’ वे थीं ही नहीं। वे तो एक पीड़ित आत्माकी ‘पुकार’ होती थीं। जिनका गह्र किल्ला आदमी भी समर्थन करता। इतनी स्पष्ट और उचित! पर अन्तमें न-जाने क्यों वे मुँहकी खा जाते थे। जो आदमी बाहर बड़े-से-बड़े पेचीदे प्रश्नोंको उल्लंघता है, तरह-तरहके व्यक्तियोंसे मिलता है, वही घरमें घुसते ही अपने हथियार क्यों छोड़ बैठता है, वह उनकी समझमें नहीं आता था।

निराश होकर वे चारपाईपर लेट गये और आँखें मींच लीं कि नींद आ जाय। इतने ही में उमाने कहा—“जितनेमें मैं खाना बनाती हूँ, उतनेमें तुम बाज़ारसे साग ले लाओ, और यदि बन जाय तो इसके लिए एक पिंजड़ा भी लेते आना। ज़रा आगे बढ़कर कवाड़ियेकी दूकानपर मिल जायगा।”

“कहाँसे आया यह ?”

“मोतीकी माने खरीदवा दिया है—एक रुपयेमें । कहती थी, पहाड़ी है ; महीनेभर ही सिखलानेसे आदमीकी तरह बोलने लगेगा ।”

रमनलालने एक गम्भीर स्वरमें कहा—“हूँ !” और फिर आँखें बन्द कर लीं !

थोड़ी देर बाद उमाने फिर कहा—“मैंने क्या कहा, सुना ? इसके लिए एक पिंजड़ा लेते आओ—यह मोतीकी माका है—इतनेमें मैं खाना बनाती हूँ ।”

रमनलालने साफ़ इनकार कर दिया—“मेरी सामर्थ्य नहीं है ।”

उमाको तैश आ गया । चौकेमें वर्तनोंको ऊपरसे पटकती हुई बोली—“मेरा काम करनेसे तो तुम्हें खास चिढ़ है । अभी कोई दोस्त आ जाय, तो जैसे बैठे हो, उठकर चल दोगे और फिर रातको बारह बजे मुँह दिखाओगे । मैं कहती हूँ, उन दोस्तोंके ही यहाँ क्यों नहीं रहते ? यहाँपर आओगे तो मैं दो-चार कामके लिए कहूँगी, और काम करना लगता है तुम्हें बुरा !”

रमनलालको जो बात जँच जाती थी, उसे कहनेसे वह कभी नहीं चूकते थे, परिणाम चाहे कुछ भी हो । अतः बोले—“जहाँ आदमीसे तोतेकी खातिर ज्यादा होती हो, उस घरमें रहना भी मत्त मारना है ।”

उमाने चटसे उत्तर दिया—“अगर आदमी ढंगके हों, तो मुए तोतेको पालनेकी नौबत ही क्यों आये ?”

रमनलालने रसोईघरकी तरफसे करवट बदल ली और फिर सोनेकी चेष्टा करने लगे । वह सोच रहे थे—“मजदूरी करते-करते शरीरका यह हाल हो गया ; लेकिन एक दिन भी शान्ति नहीं मिली और तो क्या वक्तपर रोटियाँ भी नसीब नहीं हुई !”

- २ -

दूसरे दिन सवेरे चार बजेके करीब रमनलालकी नींद अचानक उचट गई । देखा, माथेमें टीस हो रही है, आँखोंमें

जलन है । रातको भी देरीसे उन्हें नींद आई थी और इस वक्त भी जल्दी खुल गई । इसीका यह परिणाम था । वह फिर सोनेकी चेष्टा करने लगे । धीरे-धीरे उनकी आँखोंमें नींद उतर ही रही थी कि अपनी कर्कश आवाज़में तोता चीख उठा—एक बार, दो बार, तीन बार ; फिर तो उसे धुन-सी लग गई ! हरएक बार उसकी आवाज़ वहाँकी तरह रमनलालके कानोंसे टकराती थी और वे तिलमिल उठते थे । नई जगह होनेके कारण तोता भी कुछ बेचैन-सा मालूम पड़ता था । कभी वह पिंजड़ेके चारों तरफ चक्कर काटता, कभी पंखोंको फड़फड़ाकर उसके ऊपर चढ़ता और कभी अपनी चोंचसे किसी छड़को पकड़कर झूलता हुआ चीख पड़ता था । ऐसेमें नींद भला कैसे आ सकती थी ? अन्तमें हारकर उन्होंने पुकारा—“उमा, कहाँ हो ?”

“क्यों, क्या कहते हो ?”—उत्तर आया ।

“इस तोतेको यहाँसे ज़रा हटा लो, तो घंटे-भर और सो लूँ । मेरा माथा फटा पड़ता है ।”

उमा जब पिंजड़ेको लेकर चलने लगी, तो उन्होंने कहा—“उमा, कहता हूँ तो तुम्हें लगती है बुरी, यह बला न-जाने तुमने क्या सोचकर पाली है ।”

कहते तो वे कह गये, पर बादमें उन्हें खयाल आया कि सवेरे ही उमाको छेड़कर उन्होंने अच्छा नहीं किया ; वह क्या अब जवाब दिये बिना मानेगी ? लेकिन उमाने कुछ नहीं कहा । वह सिर्फ़ तिरछी कनखियाँसे उनकी तरफ़ देखती हुई तोतेका लेकर चली गई ।

उमाकी प्रकृति हमेशासे ऐसी नहीं थी । एक समय था, जब वह गौरवर्णकी एक सुन्दरी समझी जाती थी । पन्द्रह बरस पहले वह इस मकानमें रूप और यौवनका मधुर भार लेकर उतरी थी । उस समय उसका वक्षस्थल आकांक्षाओंसे ही मानो फूला हुआ था । लेकिन धीरे-धीरे करके वे सब नष्ट हो गईं । जीवन एक धोखा निकला । उसके कई सन्तानें हुईं—खाँड़के-से खिलौने, जिन्हें देखकर भूख भागती थी ; पर ठंड खाई हुई कलीकी तरह वे सब एक-एक करके उसकी

गोदीमें ही मुरझा गई—खाँड़के खिलौनेकी तरह ही फूट गई। दुनियाके अभिशापोंसे डरो हुई उमा अब अपने पतिके पास और भी सरक आई—उस लताकी तरह, जो आँधीका भोंका पाकर पेड़से लिपट जाती है; लेकिन दुर्भाग्यवश जिस पेड़से वह लिपटी थी, वह भी धीरे-धीरे सूख चला था। आपसमें टकराकर लौटी हुई दो चीजोंकी तरह वे एक दूसरेसे अलग हो गये।

उमाके दिन अब कैसे कटते? रमनलाल जब आफ़िस चले जाते, तब उसे वक्त काटना मुश्किल हो जाता, रह-रहकर वही बातें याद आतीं। आखिर उसने एक तोता पाल लिया। रमनलालके पाससे हटाकर वह उसे एक कमरेमें ले गई और पढ़ाने लगी—“पढ़ो पट्टू राधाकृष्ण! गोपीकृष्ण!” तोतेने फड़फड़ना बन्द कर दिया और धीरेसे पहले एक पैर और फिर दूसरा रखकर बैठकर खड़ा हो गया। उमाने फिर पढ़ाया। तोतेने अपनी गर्दन झुकाकर उमाकी तरफ बढ़ाई और एक आवाज़ दी। उमाका हृदय हर्षसे उछलने लगा। जब-जब वह “राधाकृष्ण” कहती, तभी वह जोरसे चिल्लाता। उमाने समझ लिया, दो-चार दिनमें बोलने लगेगा।

- ३ -

कुछ दिन और इसी तरह गुज़र गये। रमनलालपर आजकल आफ़िसका काम ज्यादा आ पड़ा था—शायद सालका आखीर था, इसलिए। वे रोज़ फाइलोंका ढेर-का-ढेर घरपर लाते और रातके बारह बजे तक लगे रहते। एक दिन काम करते-करते उन्हें नौद आई और वे जहाँके तहाँ लुट गये। फाइलें, कागज़ात वहीं मेज़पर सब ज्यों-के-त्यों पड़े रहे। रातके बारह बजेके करीब उमा तोतेको लिये हुए वहाँ आई और टेबिलके ठीक ऊपर छतसे लटकते हुए एक हुकमें पिंजड़ेको लटकाकर चली गई। तोता अक्सर यहीं ग़ौखमें रहता था। उस दिन रमनलालने भी जब अपनी टेबिल वहाँ जमा ली, तो उमा उसे उठाकर अन्दर ले गई थी। रातको जब उसने देखा कि रमनलाल सो गये हैं, तो उसे फिर वहाँ ग़ौखमें टांग

गई। घरके अन्दर तोतेका दम छुटता होगा, ऐसा कुछ उसे बहम-सा हो गया था।

रातको काम खत्म न हो सकनेके कारण रमनलालकी आँख सबेरे चार ही बजे खुल गई। काम शुरू करनेके लिए उन्होंने जो लैम्प जलाया, तो उनके होश हवा हो गये। उनके सब कागज़ात भीगे हुए थे, सारी टेबिल चनेकी दालसे बिछी हुई थी, जगह-जगहपर चीट पड़ी हुई थी और धव्योंका तो कुछ शुमार ही न था।

ज़हरमें बुझी हुई आँखोंसे उन्होंने तोतेकी ओर देखा। शायद उसे उनका इतना जल्दी उठना पसन्द न था। उसकी आँखोंमें आलस्य था—रोशनीकी वजहसे वे चौंधिया रही थीं। रमनलाल दाँत पीसने लगे। तबियतमें आ रहा था कि इस पिंजड़ेको ग़ौखसे बाहर फेंक दें—दूर!—ताकि वह कौवा इसीमें छुड़कता हुआ मर जाय और उसकी टर्क-टर्कसे हमेशाके लिए फन्द छूट जाय!

उन्होंने पिंजड़ेको खोला और जोरसे ग़ौखमें दे मारा। उमाने समझा कि चिल्लीने शायद बर्तन-भाँड़े गिरा दिये हैं; लेकिन जब वह ग़ौखमें आई, तो क्षण-भरमें सारा रहस्य उसकी समझमें आ गया। वह क्या करती? कसूर तो उसका अपना ही था।

रमनलालने कहा—“उमा, तुम्हें यह मालूम था कि मैं यहाँ काम कर रहा हूँ; लेकिन फिर भी तुम ज़िदसे न-जाने कब पिंजड़ेको यहाँ टांग गई। चतलाथो, इन कागज़ोंको लेकर मैं साहबके सामने क्या मुँह दिखलाऊँगा—पूछेगा तो क्या जवाब दूँगा? तुम्हें मालूम है कि ये कितने ज़हरी हैं; इन फाइलोंका क्या मूल्य है?”

उमाने कहा—“जब तुम्हें मालूम था कि तोता रोज़ यहाँ टँगता है, तो इस वखड़ेको ज़रा समेटकर ही सोते। अँधेरेमें मुझे क्या मालूम था कि टेबिल ठीक पिंजड़ेके नीचे ही रखी हुई है।”

रमनलाल कहते चले गये—“लेकिन तुम्हें इस बातका भी

होश रहना चाहिए कि पेटकी रोटियाँ कहाँसे चलती हैं औरऔर तोते किस बुनियादपर पाले जाते हैं ?”

उमाने आँखें नीची कर लीं। पिंजड़ेको उठाती हुई बोली—“अच्छा हुआ, जो भगवानने तुम-जैसे निर्दयी आदमीको एक-आध सन्तान न दी ; नहीं तो अगर उनके हाथसे तुम्हारा कोई कागज़ फट जाता, तो शायद तुम उसे जानसे मार डालते।” उमाके पलकोंमें से टप-टप करके दो आँसू गिर पड़े, और वह पिंजड़ेको लेकर भ्रमककर चली गई।

- ४ -

उमाकी आखिरी बात रमनलालके दिलमें दर्द-सा पैदा कर गई। आफिसमें काम करते वक़्त भी टेलीफोनकी आवाज़की तरह रह-रहकर उनके कानोंमें यही गूँजता रहा—“अच्छा हुआ, जो भगवानने तुम-जैसे निर्दयी आदमीको एक-आध सन्तान न दी।” उमाका कहना किसी अंशमें ठीक था। लंग-बग़ा घर-घरमें तोते पालते हैं, जिन्हें सुननेके लिए कभी-कभी राहगीर तक ठिठककर खड़े हो जाते हैं। उनके घरोंमें क्या रोज़ ऐसी ही किच-किच रहती है ? यदि नहीं, तो फिर ज़रा-सी बातके लिए इतना वावेला क्यों खड़ा हो गया है ? रमनलाल अपनी कमज़ोरी समझते थे। वे neurotic type के आदमी थे। ज़रासे खटकेसे उनके हृदयकी शान्ति नष्ट हो जाती थी। जब तक वे एक तरफ़से निश्चिन्त नहीं हो जाते थे, तब तक दूसरे काममें तवीयत ही नहीं लगती थी। डापट करते-करते अगर उन्हें किसी शब्दकी स्पेलिंगपर सन्देह हो जाता, तो क्लम और कागज़के बीचमें डिक्शनरी अड़कर खड़ी हो जाती ; भोजन करते-करते उनका खयाल यदि आफिसके किसी ज़हरी कागज़पर चला जाता, तो तुरन्त थालीपर से उठ जाते। सोचते, कहीं उसे आफिसमें ही तो नहीं भूल आये। कोरा वहम और कुछ नहीं ! ऐसी ही अनख तोतेके सम्बन्धमें भी पहले ही दिनसे उनके दिलमें जड़ जमाकर बैठ गई थी। उन्होंने उसे उखाड़कर फेंक देनेकी ठान ली। निश्चय कर लिया कि अब वह भी तोतेको प्यार किया करेंगे। एक पढ़े-लिखे आदमीको विवेकसे

काम लेना चाहिए, ज़िदसे नहीं। और फिर उमाके मनोरंजनके लिए भी तो उनके दिलमें गुंजाइश रहनी चाहिए। उसका क्या घरमें कोई स्थान ही नहीं है ?

आफिससे जब वह लौटे, तो उमा घरपर नहीं थी। वह पड़ोसमें किसीके यहाँ गीतोंमें शामिल होने चली गई थी। रमनलालने पहले हाथ-मुँह धोया और फिर बड़े इतमीनानके साथ खाना खाया। उसके बाद वे तोतेकी तरफ़ मुखातिब हुए। देखा, कटोरियाँ खाली पड़ी हैं—न उनमें पानी है, न चुग्गा। गीतोंके चावमें उमाने इधर कुछ ध्यान ही नहीं दिया था। उन्होंने अपनी जेबमें से एक अनार निकाला (आज वह खास तौरपर उसी मतलबके लिए खरीदा गया था) और उसे छीलकर अपने हाथसे एक-एक दाना तोतेकी चोंचमें देने लगे। तोता टेढ़ी चोंच करके दानेको कुतरता हुआ कभी कभी उमाकी आवाज़में चिहुँक पड़ता था और कभी दोनों पैरोंसे पिंजड़ेकी छड़ोंको पकड़कर झूलता हुआ अपनी गर्दन बाहर निकाल देता। कैसा प्यारा जानवर है ! इससे खामख्याह दुश्मनी बाँधकर उन्हें भला क्या मिल गया ? स्नेहके आवेशमें तोतेके सिरपर हाथ फेरनेके लिए उन्होंने अपना हाथ पिंजड़ेके अन्दर डाल दिया ; लेकिन उनकी अँगुली अभी थोड़ी ही दूर गई थी कि तोतेने अपनी कड़ी चोंचसे उसे कसकर दाब लिया। रमनलालने फ़ौरन अपना हाथ खींच लिया। उसी समय घरका दरवाज़ा खुला और चप्पलोंको चटखाती हुई उमा ऊपर आई। देखा, रमनलाल एक हाथसे अँगुली पकड़े खड़े हैं और उसमें से तेज़ीसे खूनकी धार वह रही है। वह सब समझ गई। यह भी समझ गई कि उसके बारेमें कुछ पूछ-ताछ करना मग़ाढ़ा मोल लेना है।

उसने जल्दीसे कपड़ेकी एक चीर फाड़ी और उसे पानीमें भिगोकर रमनलालके अँगुलीपर बाँधने लगी। रमनलालने उमाकी ओर देखा। उन्हें ऐसा मालूम हुआ, जैसे वह पलक नीचे किये कुछ-कुछ हँस रही है। फ़ौरन उन्होंने हाथ खींच लिया और बोले—“पहले तुम खुश हो लो, पीछे पट्टी बाँध जायगी।”

उमा अवाक रह गई। समझमें नहीं आता था कि ऐसे आदमीके साथ कैसे पेश आये। कड़ककर बोली—“करतूत खुद कर बैठते हो और भलाते हो दूसरोंपर ! जब तोता तुम्हें फूटी आँख सुहाता ही नहीं, तब उसे छेड़नेकी भला क्या ज़रूरत थी ? ये लाख जानवर हों ; लेकिन आदमीकी आँखोंको अच्छी तरह पहचानते हैं।”

रमनलाल किससे कहते कि वे तोतेको प्यार करने चले थे। वह उनकी एक क्षणिक भावना थी—महज़ा वेवकूफी, जिसका फल उन्हें तत्काल मिल गया। आँधीके वेगके साथ सहसा उनके हृदयमें प्रतिकारके भाव जग उठे। उन्होंने निश्चय कर लिया—एक भयंकर निश्चय ! इस घरमें या तो तोता ही रहेगा, या मैं ही रहूँगा।

- ५ -

मोतीकी माका इस घरमें उठना-बैठना यों तो पहले ही से था ; पर जबसे उमाने तोता पाला था, तबसे वह अधिक आने-जाने लगी थी। दूसरे दिन दोपहरको वह आते ही बोली—“बहू, तुम्हें एक बात कहने आई हूँ।”

“क्या ?”

“यह तोता तो पाला है तूने ; लेकिन इसकी हत्या कहीं अपने सिरपर मोल मत ले लेना।”

“वह कैसे ?”

“ऐसे कि बिल्लीको तोतेसे खास चिढ़ होती है। ज़रा भी अकेला छोड़ दिया, या निगाह चूक गई, तो उसके एक-एक पर चीनकर फेंक देगी। इसमें उसे बड़ा मज़ा आता है।”

भय और आशंकासे उमाकी आँखें चौंधिया गईं। बोली—“बूआजी, आपने अच्छा बता दिया। कभी-कभी यहाँ एक काली बिल्ली चक्कर काटने आती है। उसे तो देखते ही मेरा तोता आधा सूख जायगा। मरीकी मसान-सी आँखें हैं।”

इसके बाद पहले दिनकी शामकी घटनाका जिक्र आया, और फिर इधर-उधरकी बातें हुईं। मोतीकी मा जब चलने लगी, तब उमाने कहा—“बूआजी, इसे पन्द्रह दिन होने आये ; लेकिन

अभी यह बोलता ही नहीं। यह कैसा पहाड़ी है ? ज़रा तुम इसे पढ़ाकर देखो। मुमकिन है, मेरी आवाज़को यह न पकड़ता हो।”

मोतीकी मा पिंजड़ेको खोलकर ले आई और उमाके सामने रखकर बोली—“पढ़ाना ज़रा, देखूँ, किस तरह पढ़ाती हो।”

उमाने पहले तोतेको पुचकारा और फिर पढ़ाने लगी—“पढ़ो पढ़ो राधाकृष्ण ! गोपीकृष्ण !”

उमाकी आवाज़पर तोता खड़ा हो गया, जैसे हिलना जानता ही न हो और फिर धीरेसे चोंच खोलकर उसने पुकारा—“उमा, कहाँ हो ?”

मोतीकी मा ठहाका मारकर हँस पड़ी। उमाने भीतरसे उठती हुई हँसीको होठोंमें दाबकर तोतेकी तरफ़ आँखें तरेरते हुए कहा—“बदमाश कहींका ! तू मेरे लिए एक और..... पैदा हो गया !”

x x x

उस दिन रातको बारह बजेके करीब उमाको कुछ ऐसा वहम हो गया कि घरमें बिल्ली घूम रही है। विस्तरेपर पड़े-पड़े उसने इधर-उधर निगाह दौड़ाई, तो वास्तवमें वहाँ बिल्ली थी। उमाने चाहा कि उसे अभी मारकर भगा दूँ ; लेकिन न-जाने क्यों, कोशिश करनेपर भी वह विस्तरेपर से न उठ सकी। इसी समय बिल्लीकी आँखोंसे उसकी आँखें मिलीं, तो शरीरमें सिरसे पैर तक कंपकंपी दौड़ गई। मसालकी तरह वे जल रही थीं। उमाके मनमें यह भी आया कि ‘उन्हें’ जगा लूँ—रमनलालकी चारपाई वहाँसे थोड़ी ही दूरपर बिछ रही थी ; लेकिन उसकी हिम्मत न पड़ी। जबसे तोतेने उन्हें काटा था, तबसे वह खूँखार हो उठे थे ; न अच्छी तरह बोलते थे, न डंगसे कोई काम करते थे। घरमें आते तो ऐसे, जैसे किसी आदमीको मारकर आये हों। बहुत सतर्क होकर उमा अब विस्तरेपर लेटे-ही-लेटे अँधेरेमें आँखें गड़ाकर बिल्लीकी हरकतोंको देखने लगी। सोचा, अगर थोड़ी देर तक यों ही इधर-उधर घूमघामकर बाहर निकल जाय, तो रातमें

फिजूल शोर-गुल मचानेकी क्या ज़रूरत है। बिल्ली कुछ देर तक वर्तन-भाँड़ोंको सूँघती रही; लेकिन जब उसे कुछ नहीं मिला, तो शायद वह जाने ही वाली थी कि उसकी निगाह तोतेपर पड़ गई। वह जहाँ थी वहीं ठिठककर बैठ गई। पिंजड़ेकी दूरीका अन्दाज़ लगानेके लिए कभी वह अगले पैरको ऊपर उठाती और कभी झपटनेके लिए ज़मीनसे उठ-उठकर रह जाती। उमाका हृदय बड़ी तेज़ीसे धड़क रहा था। वह कई बार उसे मारनेके लिए उठी; लेकिन आधी ही उठ-उठकर रह गई। विस्तरेने जैसे उसे पकड़ लिया था। एक बार बिल्लीने अपना शरीर समेटा, कुछ पीछेकी तरफ हठी और फिर एकदम पिंजड़ेकी ओर झपट पड़ी। उमा बड़े ज़ोरसे चोख उठी और चीखने साथ ही उसकी नोंद खुल गई। देखा, शरीर पसीनेसे लतपत हो रहा है, साँसे ज़ोर-ज़ोरसे चल रही हैं। रमनलालने उसी समय जागकर भल्लाते हुए स्वरमें पूछा—“क्या है?” स्थितिका लाभ उठाते हुए उमाने कहा—“कुछ नहीं, ऐसा मालूम होता है कि बिल्ली आ गई है। ज़रा उठकर देख लो तो अच्छा है; ऐसा न हो कि तोतेको तंग करे।”

रमनलालने लैम्प जलाकर देखा, तो न वहाँ बिल्ली थी, न बिल्लीका नाम। दाँत पीसते हुए बोले—“अब तक तो यह तोता दिनमें ही तंग करता था, अब इसकी वजहसे रातकी भी नोंद हराम हो गई। उमा—” गुस्सेसे उनकी आवाज़ काँपने लगी, हाथोंकी मुट्ठियाँ बँध गई—“उमा, अब तक मैं तुमसे दबता था, इस डरसे कि घरकी शान्ति नष्ट होगी, बाहरके लोग हँसेंगे; लेकिन जितना मैं दबता गया, उतनाही तुम मेरी गर्दन दावती गई। तुमने कभी मेरा लिहाज़ नहीं किया, जब कि मैंने तुम्हारी ज़रा-ज़रा-सी बातोंको वर्दाश्र किया। लेकिन कोई कब तक करेगा आखिर! अब मैं बतला दूँगा कि ज़रा-ज़रा-सी बातोंके ही पीछे घर किस प्रकार नेस्तनाबूद हो जाते हैं—एक तोतेके लिए देहलियाँ कैसे मिट जाती हैं। जब मेरे ही दिलको चैन नहीं है, तो मैं जीऊँगा किसके लिए? मैंने सोच लिया है, न जीऊँगा, न जीने दूँगा।”

वह सो गये, विवाह-विच्छेद-विलकी उपयोगितापर विचार करते-करते। सवेरे जब वह उठे, तब उमाने एक विचित्र बात देखी। वह कुछ-कुछ प्रसन्न थे और धीरे-धीरे कोई गज़ल गुनगुना रहे थे। मालूम होता था, जैसे उनके सिरसे कोई बोम्बा अचानक उतर गया हो। उमा डर गई। ऐसे आदमीका उद्घास भी अप्राकृतिक था—एक प्रकारकी abnormality थी।

- ६ -

उमाका डर सच्चा निकला। शामको जब वह आफिससे लौटे, तो उनके हाथमें एक रस्ती थी, जिसके सिरसे एक मोटी बिल्ली बँधी हुई थी। बिल्ली ज़मीनपर पैर जमा-जमाकर अपनी गर्दनको रस्तीके फन्देमें से छुड़ानेकी कोशिश कर रही थी, और रमनलाल उसे अपने पीछे-पीछे घसीटते ला रहे थे। उमाने एक ही आँखमें देख लिया। वही बिल्ली थी, जिसकी पहले दिन मोतीकी माके सामने चर्चा आई थी।

रमनलालने आते ही पूछा—“दूध आ गया है क्या?”

“आ तो गया है; लेकिन तुम्हारे ही लिए है।”

“मैं जितना पूछता हूँ, उतनेका जवाब दो, ज़्यादा बढ़बढ़ करनेकी ज़रूरत नहीं है।”

“कह तो रही हूँ—दूध है। और अगर न भी हो, तो मेरा खून तो है पीनेको। तुमने मुझे दूध पिला-पिलाकर इतना मोटा जो कर दिया है, यह और कब काम आयगा?”

तोतेके ठीक पास रमनलालने गौखकी एक छड़से बिल्लीको कसकर बाँध दिया और बोले—“देखो, एक बार अच्छी तरह सुन लो। बिल्लीको मैंने सज़ाबूतीके साथ बाँध दिया है। तुम चाहो तो खुद आकर देख सकती हो। अगर यह किसी प्रकार टूट गई, तो समझ लेना, मुझमें ख़ुश कोई नहीं है।”

उमाने अपनी ठोड़ीपर हाथ रखकर पूछा—“लेकिन यह जो गन्दगी फैलायेगी, उसका ज़िम्मेवार कौन होगा?”

“तोतेकी गन्दगीका ज़िम्मेवार कौन है? वही इसका भी होगा।”

“लेकिन यह भी तो सुनूँ, इसकी ऐसी क्या ज़हरत पड़ गई ?”

“तोतेकी भला क्या ज़हरत थी ? अपनी-अपनी तबियतका किस्सा है यह तो । बिल्ली क्या लोग-वारा नहीं पालते है ?”

उमाने तोतेकी तरफ़ देखा । बेचारा डरके मारे पिंजड़ेकी छतसे जा चिमटा था । एक लम्बी साँस भरकर उसने कहा—“मुझे यह नहीं मालूम था कि तुम मुझसे यहाँ तक दुश्मनी निचाहोगे ।”

रात-भर इसी उधेड़-धुनमें रही कि क्या किया जाय । कभी-कभी उसके जीमें यह भी आता था कि तोतेको भोतीकी माफ़े यहाँ पहुँचा दे ; लेकिन जब उसके आँखसे ओम्कल होनेका उसे खयाल होता था, तभी उसकी छाती फटने लगती थी । उसका जीवन कितना अन्धकारमय था ! धन नहीं, जन नहीं, निराशाके उद्वेगमें छातीसे लगानेके लिए कोई सन्तान नहीं और स्त्रीका अन्तिम सहाय पति—ओफ़ ! उसका यह हाल है । जीवनके शेष दिनोंको काटनेके लिए उसने एक तोता पाला था, सो उसे भी छीननेके लिए कितने इन्तज़ाम किये जा रहे हैं, जैसे वह कोई वाध हो, चीता हो । मेरे साथ इस तोतेकी भी किस्मत फूट गई—न छोड़ते बनता है, न पालते । और मरेको मोह कितना है—आदमीसे भी ज्यादा ! जब अपने हाथसे खिलती हूँ, तो खाता है और किसी क़दर रूठ गया, तो घंटों मनाना पड़ता है । अगर कभी किसीसे बातें करते-करते इसे जवाब देनेमें चूक हो गई, तो ऐसा लड़ेगा, ऐसा लड़ेगा कि टायँ-टायँ करके कान खा जायगा । अरे, इसकी एक कहानी है ?

उमाके हृदयका सुरक्षित वास्तव्य फूट-फूटकर आँखोंके रास्तेसे बाहर निकलने लगा और उसकी सिसकियाँ बँध गई । रमनलाल खरटे भर-कर सो रहे थे । उमा धीरेसे चारपाईपर से उठी और तोतेके पास जाकर बैठ गई । बिल्लीके डरसे वह पिंजड़ेमें सिकुड़ा हुआ पड़ा था ; नौद न-जाने कहाँ भाग गई थी । उमाको देखते ही वह पंख फड़फड़ाकर उठ बैठा और ऐसी चेष्टा करने लगा, जैसे बाहर निकलना चाहता हो । उमाके

बाहर निकालते ही वह गोदीमें कपड़ोंकी तर्होंके अन्दर जा छिपा । उमाने सारी रात उसे उसी प्रकार छिपाये बैठे-बैठे बिता दी ।

- ७ -

उमाने छातीपर पत्थर रख लिया था—“जो कुछ होगा, सो भुगत लूँगी ; लेकिन तोतेका बाल भी बाँका न होने दूँगी । अगर सीधी तरहसे कहते तो मुमकिन है कोई रास्ता निकल आता ; लेकिन चंटापनसे मुझे चिढ़ है । बिल्लीको यह घरके अन्दर लाये तो लाये कैसे ?”

सबेरा होते ही उसने रमनलालका रास्ता रोकते हुए कहा—“क्यों जी, तुम इस बिल्लीको नहीं छोड़ोगे ?”

रमनलाल हँस पड़े । बोले—“अपना काम करो—काम ।”

उमाने कहा—“देखो, मैं सीधी तरहसे कहती हूँ, इसे छोड़ दो ; फज़ीहतमें क्या रखा है ?”

रमनलालने कहा—“मैंने एक बार कह दिया । चलो, हटो, रास्ता छोड़ो ।”

उमाकी भाँहिं तन गई । कड़ककर बोली—“तो नहीं छोड़ोगे ?”

रमनलालने फिर कहा—“नहीं ! नहीं ! नहीं !”

उमाने कहा—“तो मैं इसे खोले देती हूँ, तुम मुझे फाँसी दे देना ।”

उमा ज्यों ही बिल्लीकी तरफ़ बढ़ी, त्यों ही रमनलालने चिल्लाकर कहा—“खबरदार, जो एक पैर भी आगे बढ़ाया, नहीं तो इसी वक्त मैं तोतेकी गर्दन मरोड़कर रख दूँगा !”

उमा एकदम पीछे हट गई और निराशाके उस भयानक आघातमें उसने अपने माथेको दीवारके पत्थरसे दे मारा । एक बार ! दो बार ! तीन बार ! रमनलाल खड़े-खड़े देख रहे थे । वह उमाको पकड़ना ही चाहते थे कि चौथी बार उसने बड़े वेगसे फिर अपना सिर दे मारा और वेहोश होकर ज़मीनपर गिर पड़ी ।

आध घंटे बाद जब उसे होश आया, तब उसने कहा—

“मेरे भाईको बुला दो, मैं मैके जाऊँगी—अभी-अभी तार दे दो।”

रमनलालने तार दे दिया। उस दिन वह आफिस नहीं गये। उमाका मैका दूर नहीं था; मुश्किलसे रेलका चार-पाँच घंटेका रास्ता था। शामको भाईके साथ उमा जब जाने लगी, तो रमनलालने कहा—“इस तोतेको भी साथ लेती जाओ। इस हत्याकी जड़को यहाँ किसके लिए छोड़ चली हो?”

उमाने मना कर दिया। “इसे यहाँ छोड़े जाती हूँ। मेरे पीछे तुम बैठे-बैठे इसकी गर्दन मरोड़ा करना।”

उमा चली गई। रमनलालको यह अभीष्ट भी था। उन्होंने एक हलकी-सी साँस ली—और ताला बन्दकर घूमनेके लिए बाहर निकल गये।

- ८ -

घूमकर जब वह लौटे, तो घर उन्हें ऐसा मालूम पड़ा, जैसे कण्व ऋषिका आश्रम हो। उनका हृदय इस समय स्वस्थ था, मन एकदम शान्त—शरत्कालीन नदीके प्रवाहकी तरह। जो-कुछ विशुद्ध और कालुष्यपूर्ण था, वह मानो तलेमें बैठ गया था।

इधरसे उधर वह गौखमें टहलने लगे, एक उन्मुक्त पक्षीकी तरह। लोगोंके एकाकी जीवनका कुछ भाग थोड़ेसे समयके लिए उन्हें मानो उधार मिल गया था। लेकिन यह कैसा प्यारा था, कितना स्पृहणीय! अगर आज वह वास्तवमें अकेले होते—अकेले होते तो जीवनके इस संव्याकालमें क्या उन्हें इस तरह हाथ-पैर पीटने पड़ते? पड़े होते वह किसी पहाड़की तलहटीमें—गंगाके किनारे। सर्वथा निश्चिन्त! निर्लिप्त!

टहलते-टहलते इसी प्रकारके भाव उनके मस्तिष्कमें आ-जा रहे थे। ऐसा मालूम होता था कि उस दिनकी घटनाके प्रभावसे तोता भी मुक्त नहीं रह सका है। जिस दिनसे वह आया था, तबसे लेकर आज दिन तककी घटनाओंके ज़रा-ज़रासे विकाससे—उमा और रमनलालके हृदयके सूक्ष्म अन्तर्द्वन्द्वसे मानो वह परिचित रहा है। रमनलालने उसकी ओर देखा।

रोप और घृणा उसकी आँखोंसे—लाल-लाल आँखोंसे बरस रही थी। वे हँस दिये। उन्होंने उसे कई बार पुचकारा; लेकिन वह नहीं बोला। उसकी जीभ जैसे हमेशाके लिए तालूसे लग गई थी।

जो कुछ भी हो—बोले या न बोले—उसे ज़िन्दा तो रखना होगा—उमाके लौटने तक। रमनलालने उसकी कठोरियोंमें चुग्गा-पानी रखा और सोनेसे पहले उसे सुरक्षित जगहपर टांग दिया। जिसकी वजहसे घरमें भीषण अशान्तिका बीज-बपन हो गया, जिसे आँखोंके आगेसे हटानेके लिए उन्होंने आकाश-पाताल एक कर दिया, उसके प्रति उमाकी पीठ फिरते ही विद्वेषके भाव हृदयमें क्यों नहीं टिक सके? बहुत जल्दी रमनलालको इस प्रश्नका उत्तर मिल गया। उस समय वह दुश्मन था। अब वह धरोहर है—उमाकी धरोहर!

उस अकेले घरमें धीरे-धीरे रमनलालको ऐसा अनुभव होने लगा, जैसे वह तोता उनका एक साथी हो—स्वजन हो। अब वह आफिससे आते तो पहले तोतेकी बात पूछते, पीछे कुछ और करते। बाहर जब मिलनेको कोई दोस्त न होता, घरमें किताबोंसे जो ऊब उठता, तो बैठे-बैठे उससे तरह-तरहकी बातें किया करते। सोते वक्त वह पिंजड़ेको अपने पास एक स्टूलपर रख लेते और तोतेकी आँखोंसे आँखें मिलाकर पूछते—“क्यों रे! कभी उमाकी भी याद आती है?”

अक्सर वह आये-दिन छुट्टी लेकर अब घरमें ही पड़े रहते थे। उनके शरीरकी हालत दिनोंदिन गिरती चली जा रही थी। होटलकी कच्ची-पक्की रोटियोंने और लाल-मिर्चकी साग-भाजीने उनकी शारीरिक व्यवस्थाको जैसे उधेड़कर रख दिया था। उमा उन्हें काँटेकी तरह तुला हुआ खाना देती थी, होटलमें इस प्रकारका कोई नियन्त्रण नहीं था। बेचारी उमाकी हालत भी अच्छी नहीं थी। जब वह गई थी, तो छोटी-बड़ी कई शिकायतें उसके शरीरमें घर किये बैठी थीं। रमनलाल सोचते—“पन्द्रह दिन होने आये, उसका कोई समाचार नहीं मिला है। न-जाने वह कैसी है।”

एक दिन वह गौखमें बैठे थे, वहीं पासमें तोता भी लटक

रहा था। एक दबी हुई उमसके बाद पश्चिमकी ओरसे आती हुई बरसाती हवा बहुत ही भली मालूम दे रही थी। हवाके भोंकेसे टकराकर जब पिंजड़ा इधर-से-उधर गौखमें झूलने लगता, तो तोतेकी प्रसन्नताका ठिकाना नहीं रहता था। पिंजड़ेमें कभी वह नाचता, कभी चारों तरफ चकर काटता और फिर शोर मचाता कि कान बहरे हो जाते। रमनलाल बैठे-बैठे उसका यह खिलवाड़ देख रहे थे। आज उनकी तवियत कुछ अच्छी थी। एक बार वे पिंजड़ेके विलकुल पास जाकर खड़े हो गये और मुसकराकर बोले—“क्यों रे ! आज क्या शैतानी सूझी है ?”

आवाज़ सुनते ही तोता एकदम ठिठककर चुप हो गया। इसके बाद वह धीरे-धीरे उनकी तरफ़ मुखातिब हुआ और फिर धीरेसे बैठकपर खड़ा हो गया। कुछ देर बाद उसने अपनी चोंच छड़ोंके बाहर निकाली और बोला—“उमा कहाँ हो ?”

रमनलालके मुँहसे अचानक निकल पड़ा—“ऐं ! उमा ?”—जैसे वह किसी आदमीसे बात कर रहे हों, और फिर दूसरे क्षण उनके मुखका समस्त उल्लास, सारी मुसकराहट न-जाने कहाँ चली गई। उन्होंने एक लम्बी साँस खींची और गौखकी छड़ोंपर अपना सिर झुकाकर चिन्ताके एक गहरे समुद्रमें उतर गये।

आजसे बीस दिन पहले वे तोतेको उसी तरह प्यार करने चले थे और उसने उनकी अँगुली काट ली थी। उस समय उमाने उनके पट्टी बाँधी थी। आज जब उसने उमाको ही अपना शस्त्र बनाकर सीधा उनके प्राणोंपर प्रहार किया है, तो उसपर मरहम कौन रखेगा ?

रमनलालकी वेदना और उसकी गहराईको तोता भला क्यों समझने लगा। पक्षीके सिवा वह और था ही क्या ? उस दिनके बाद—“उमा कहाँ हो ?” की उसे धुन लग गई। वह मानो एकाएक पागल हो उठा। जैसे ही रमनलालकी

सूरत उसे दिखलाई देती, वह चिल्ला उठता—“उमा कहाँ हो ? उमा कहाँ हो ?”

तोतेकी प्रत्येक पुकार रमनलालके हृदयपर हथौड़ेकी चोटकी तरह पड़ती और वह व्याकुल हो उठते। कभी-कभी उनके जीमें आता कि वे भी तोतेके स्वरमें स्वर मिलाकर, उसीकी तरह गला फाड़-फाड़कर चिल्लाएँ—“उमा कहाँ हो ?” उस एक ही बातको वह अपने स्वरमें कभी कठोर भर्त्सनाकर, कभी छुरीकी तरह चमकती हुई आँखोंमें खून लपेटकर और कभी विश्रब्ध रूपमें अपनी चोंच टेढ़ी करके कहता—कभी व्यंगमें, कभी तीव्र उपहासमें और कभी बच्चों-जैसी शुद्ध जिज्ञासामें। रमनलालके पास इसका क्या जवाब था ? जो शब्द दिनमें सैकड़ों बार उनके मुँहसे साधारणतया निकलते थे, उन्हें ही सुन-सुनकर कभी वह काँप उठते थे, कभी पत्थरकी मूर्तिकी तरह जहाँके तहाँ खड़े रह जाते थे और कभी दोनों हाथोंसे अपनी आँखें बन्दकर सिसकियोंसे रोने लगते थे।

एक दिन मोतीकी मासे उन्होंने पूछा—“तुमसे कुछ आनेकी वाचत कह गई हैं क्या ?”

मोतीकी माने जवाब दिया—“कह गई हैं, जीऊँगी तब तक इस घरमें पैर नहीं रखूँगी।”

रमनलालको ऐसा मालूम हुआ, जैसे कोई फाँसीकी सजा सुना रहा हो। आगकी लपटकी तरह उनके मुँहसे अचानक निकल पड़ा—“ऊफ् !”

इसी समय तोतेने चीखकर पुकारा—“उमा कहाँ हो ?”

मोतीकी माने कहा—“तोता बहुत याद करता है, इसे वहीं क्यों नहीं पहुँचा देते ?”

रमनलालने कहा—“हाँ, ऐसा ही कुछ सोच रहा हूँ। कल मैं ही इसे लेकर जाऊँगा, दोपहरको एक वजेकी गाड़ीसे।”

दूसरे दिन उन्होंने सब तैयारी कर ली। दफ़्तरसे उन्हें दो दिनकी छुट्टी भी मिल गई। होटलसे खाना खाकर लौट आनेके बाद घंटे-डेढ़-घंटे तक उन्होंने ज़बर्दस्ती आराम किया। जब वह उठे, तो उन्हें खयाल आया कि तोतेको यहीं चुग्गा

दिया जाय, तो अच्छा है। चार घंटेका सप्तर है, कुछ मिला, न मिला रास्तेमें।

अन्दरसे उन्होंने कुछ मिठाई निकाली और तोतेके सामने रखकर देखने लगे कि खाता है या नहीं। तोतेने चोंचसे मिठाई उठाई और उसे कुतर-कुतरकर बाहर फेंक दिया और फिर सिर लटकाकर बैठ गया। रमनलालने दो-चार अंगूर उसे दिये, वे भी उसने नहीं खाये। उन्होंने सोचा, अभी भूख नहीं है, फिर देखा जायगा।

कुछ देर बाद उन्हें ऐसा मालूम हुआ, जैसे पिंजड़ेको कोई खड़खड़ा रहा है। देखा, पिंजड़ेकी छड़ोंमें चोंच अड़ाकर तोता जूझ रहा है। कभी वह छड़ोंको पकड़कर उलटा होता है और फिर जलती हुई रस्तीकी तरह बलखाता हुआ चला जाता है, जैसे उसके प्राण ऐंठ रहे हों। वह कन्धे-कन्धे तक बाहर निकल आता था, जैसे लोहेके उन बन्धनोंको तोड़ डालेगा, चीर डालेगा, मानेगा नहीं। इसके बाद वह पल-भर निश्चेष्ट रहकर रमनलालकी ओर शून्य दृष्टिसे देखने लगता और फिर उसी उतावलेनसे जूझ उठता। रमनलाल हैरान होकर देख रहे थे। कुछ समयमें नहीं आता था, और उधर तोता... तोतेकी यह हालत थी कि थोड़ी देर तक भी यही दशा रही, तो वह जान दे देगा। कोई उपाय न देखकर रमनलालने आखिर पिंजड़ेका दरवाजा खोल दिया। सोच लिया—उड़ जायगा ज़्यादा-से-ज्यादा। अगर इसने यहीं प्राण दे दिये, तो उमाके लिए हमेशाको कहनेको हो जायगा कि मेरे पीछे तुमने तोतेको मार डाला।

दरवाज़ेके खुलते ही तोता तीरकी तरह पिंजड़ेमें से निकलकर गौखकी खिड़कीपर जा बैठा। रमनलाल चुपचाप बैठे देखते रहे। डरते थे कि पकड़नेकी कोशिश करेंगे, तो उड़ जायगा। १०-१५, सेकेण्ड तक बैठे रहनेके बाद तोतेने एक बार प्रश्नकी ओर देखा और फिर समग्र शक्तिसे प्राणोंको जैसे उलीचते हुए उसने पुकारा—“उमा कहाँ हो?” रमनलाल सिरसे पैर तक कांप उठे। एक विचित्र भयने मानो उन्हें

जकड़ लिया, उनको चेतनाशक्ति लुप्त हो गई और आँखें फटीकी फटी रह गईं।

इसी समय तोतेने अपने पंख फड़फड़ाये और उड़ चला—चीखता हुआ, पुकारता हुआ—“उमा कहाँ हो...मा कहाँ हो, कहाँ हो, कहाँ हो...”

आसमानको चीरती हुई, पहाड़ोंसे टकराती हुई उसकी वह पुकार जैसे चारों दिशाओंसे लौट-लौटकर रमनलालकी छातीपर टाँकोकी तरह बजने लगी। उन्होंने एक चीख मारी और बेहोश हो गये।

- ६ -

पाँच मिनट बाद उन्हें होश आया। देखा, घड़ीमें बारह बजकर पाँच मिनट हुए हैं। गाड़ी बूटनेमें अभी घंटे-भरकी देर थी; लेकिन उन्हें इतना धैर्य कहाँ था? उन्होंने खाली पिंजड़ेको उठाया और पागलोंकी तरह स्टेशनकी तरफ पैदल दौड़े।

सुसरालमें उनके श्वसुर थे, साले थे, कईएक छोटे-छोटे बच्चे थे, जो पहुँचते ही उनसे लिपट जाते थे। आज वहाँ कोई न था। बाहरकी घँटक खुली थी; लेकिन बिल्कुल सूनी। ऐसा मालूम होता था, जैसे मकान छोड़कर सब भाग गये हों।

बैठकमें जाकर वह बैठ गये। नहीं, बैठे कहाँ? बैठना चाहते ही थे कि उनके श्वसुरने वहाँ प्रवेश किया। रमनलालको देखते ही पहले तो वे ज़रा चौंके और फिर फूट-फूटकर रोने लगे।

“एँ! यह क्या? आप रोते क्यों हैं?”—रमनलालने पूछा, और दूसरे क्षण ही उत्तरकी बिना प्रतीक्षा किये, वह श्वसुरको वहीं बैठकमें छोड़कर एकदम घरके अन्दर घुस गये।

वहाँ जाकर उन्होंने देखा, फूसके बिल्लौनेपर उमाकी प्राण-हीन देह पड़ी है। बहुतसे पुरुष और स्त्रियाँ चारों तरफसे उसे घेरे हुए खड़े हैं और रो रहे हैं।

रमनलालको देखते ही काँइकी तरह वे फट गये और

उनके लिए जगह कर दी। रमनलालके हाथसे पिंजड़ा छूट गया—छूटकर छुड़कता हुआ वह उमाके मृतक शरीरके पास रुक गया—और वे पछाड़ खाकर वहीं गिर पड़े।

दिनोंमें वह ज़रूरतसे ज़्यादा क्षीण हो गई थी; लेकिन यह किसीको आशा न थी कि वह इतनी जल्दी चल बसेगी।

❧

❧

❧

❧

❧

❧

दूसरे दिन स्वप्नसे उन्हें मालूम हुआ कि उमाके प्राण ठीक दोपहरके बारह बजे छूटे थे। जबसे वह आई थी, तभीसे उसे हिस्टोरियाके दौरें शुरू हो गये थे। थोड़े ही

रमनलाल अब भी क़ार्क हैं। जब कभी उनका परिचय किसी नये आदमीसे होता है, तो वे उसे उमाकी कथा अवश्य सुनाते हैं और अन्तमें उससे पूछते हैं कि ठीक बारह बजे ही उमाके प्राण निकलने और तोतेके उड़नेके क्या अर्थ हैं ?

पहाड़ी प्रदेशोंमें साहित्यिक जाग्रति

पहाड़ी प्रदेशोंमें साहित्यिक क्यों नहीं होते ?

पिछले कई महीनोंसे 'विशाल भारत' में पहाड़ी प्रदेशोंमें साहित्यिक जाग्रतिके सम्बन्धमें कुछ-न-कुछ पढ़ता रहा हूँ। सावन मासके अंकमें सम्पादकीय टिप्पणी भी इस विषयमें प्रकाशित हुई है। इसी तरह भाद्रपदके अंकमें श्री श्रीराम शर्माका लेख भी पढ़ा। फिर भी यह प्रश्न हल नहीं हुआ कि पहाड़ी प्रदेशोंमें और विशेषतया गढ़वालमें, प्रकृतिदेवीकी अपूर्व छटाके रहते हुए भी, साहित्यिकोंका अभाव क्यों है ? प्रकृतिप्रदत्त सर्वसाधनोंके विद्यमान होनेपर उनसे लाभ न उठाना अवश्य दुर्भाग्यका द्योतक होता है। मैं गढ़वाली होनेके नाते वहाँकी परिस्थितिसे मलीभाँति परिचित हूँ, इसीलिए कुछ निवेदन करनेकी धृष्टता कर रहा हूँ।

इस विषयपर श्री श्रीराम शर्माने प्रकाश डालनेका प्रशंसनीय प्रयत्न किया है, और इसमें सन्देह नहीं कि बहुत अंशोंमें वे सफल भी हुए हैं। उन्होंने तटस्थ होकर जो भी लिखा है, उसे हम स्वीकार करते हैं। उनके दर्द-दिलसे गढ़वालके भावी या वर्तमान साहित्यिकोंके प्रति सहानुभूति और प्रोत्साहनके भाव प्रकट होते हैं। किन्तु यदि धृष्टता क्षन्तव्य हो, तो मैं निवेदन करूँगा कि शर्माजीने अपने दृष्टिकोणको कुछ संकुचित बना

दिया है। उनका प्रश्न है कि गढ़वालमें साहित्यिक पैदा क्यों नहीं हुए ? इसका उत्तर संक्षेपमें देना चाहता हूँ। जिन लेखकोंने श्रीरामजीसे पूर्व इस सम्बन्धमें लिखा है, उनका भाव विस्तृत था, तभी तो उन्होंने 'पहाड़ी प्रदेशोंमें साहित्यिक जाग्रति' शीर्षकको स्थान दिया है। पहाड़ी प्रदेशके अन्तर्गत सभी पहाड़ समाविष्ट हो जाते हैं। इन पार्वत्य प्रदेशोंका इतिहास देखनेसे मालूम होता है कि इन सुषमाके केन्द्र पहाड़ोंके निविडतम जंगलोंमें हिंसक प्राणियोंके सिवा और कोई नहीं रह सकता था। हाँ, काश्मीर साहित्यके लिए संसारमें सुविख्यात ही नहीं; किन्तु वह बहुत पहले ही साहित्यका उद्गम-स्थान हो गया था। संस्कृत साहित्यके अमूल्य रत्नोंको पैदा करनेवाली काश्मीरकी प्रकृति रही है। काश्मीर संस्कृत साहित्यकारोंका परीक्षा-स्थान बना था। महाकाव्य नैषधकार श्रीहर्षने जब नैषध-चरितका निर्माण किया और उसे कान्यकुब्जेश्वर जयचन्द्रको समर्पित किया, तो राजा जयचन्द्रने पारितोषिक देनेके पूर्व ही श्रीहर्षको सलाह दी कि अपने काव्यको काश्मीरके पण्डितोंसे जँचा लो। इससे पता चलता है कि काश्मीरको सुदूरवर्ती लोग भी साहित्यिकोंकी कसौटी मानते थे। काश्मीरको

छोड़कर अन्य पार्वत्य स्थलोंके निवासी अपनी सभ्यता, संस्कृति और साहित्यको अपनानेमें बहुत पीछे रह गये। गढ़वाल भी एक पहाड़ी प्रदेश है, जो प्राकृतिक सौन्दर्यसे भरा पड़ा है। गढ़वाल प्रकृतिका वह सुन्दरतम खिलौना है, जिसे देखते ही सहृदयोंका हृदय कविताके रूपमें द्रवित होने लगता है। भगवती त्रिपथगामिनी गंगाकी मूल धाराकी भाँति गढ़वालसे अनेक रूपमें साहित्यिक धाराएँ निकल सकती हैं, वशर्ते उन्हें लानेवाला कोई भगीरथ पैदा हो। यही दशा अल्मोड़ा और नैनीताल जिलोंकी भी है। आज हिन्दी-संसार ही नहीं, अपितु सभी भारतीय साहित्यिक भाषाएँ स्वीकार करती हैं कि अल्मोड़ा और नैनीतालने अपने साहित्यिकों द्वारा साहित्यके अंगकी पूर्ति की है।

सुमित्रानन्द पन्त तथा जोशी बन्धुओंका नाम आज पाठकोंके लिए अपरिचित नहीं है। पहाड़ी प्रदेशोंके रहनेवाले उन्हें अपना बन्धु, अपना गाइड मानकर अपनेको गौरवान्वित समझते हैं और साहित्यकी रचनाकी ओर उनका ध्यान भी आकृष्ट हो रहा है।

पहाड़ीजीने तथा श्री ललिताप्रसाद पाण्डेयने संकेत करके पहाड़ी प्रदेशोंमें साहित्यिक जाग्रतिपर क्लम उठाया है। उनका यह खयाल है कि गढ़वालने साहित्य-समृद्धि-सम्पन्न होकर भी साहित्यकी सेवा नहीं की, साहित्यिकोंको नहीं जना। उनसे मैं करबद्ध निवेदन करना चाहता हूँ कि वे कृपया गढ़वालके अतीत इतिहासपर दृष्टिपात करें, तब उन्हें पता लगेगा कि गढ़वालने आज कितने अल्प समयके अन्दर कितनी उन्नति की है। मेरी समझमें तो यह प्रश्न ही अनौचित्यपूर्ण है कि गढ़वालने क्यों साहित्यिकोंको पैदा नहीं किया? और किया है तो किसे?

हम स्वीकार करते हैं कि गढ़वाल बहुत पीछे तक घनान्धकारके बड़े गर्तमें सोता रहा; किन्तु जो बहुत पहलेसे ही जाग्रत हो चुके थे, उन्होंने ही कौन-से जागरूक साहित्यिकों द्वारा साहित्यमें हलचल पैदा की? अब भी हिन्दीके साहित्यिक अंगुलियोंपर ही गिने जा सकते हैं।

काश्मीरको ही लीजिए। काश्मीरको सभी लोग प्राकृतिक सौन्दर्यका प्रतिनिधि मानकर उसकी मुक्तकंठसे प्रशंसा करते हैं। तब कृपया कोई सज्जन उल्लेख करें कि फलाँ व्यक्ति काश्मीर-वासी है और वह अमुक रीतिसे साहित्यको सुसज्जित करनेमें जुटा है! बाहरसे भले ही कोई काश्मीर जाकर वहाँके सौन्दर्यसे मुग्ध होकर साहित्यका निर्माण करता हो; किन्तु वहाँका कोई खास साहित्यिक अभी तक प्रसिद्धि प्राप्त करते हुए नहीं देखा गया। यदि केवल प्राकृतिक सौन्दर्यमात्रको ही साहित्यका निर्माता होनेमें कारण माना जाय, तो काश्मीरके आवालवृद्ध सभीको साहित्यज्ञ होने चाहिए; किन्तु बात ऐसी नहीं है। इससे ज्ञात होता है कि केवल प्राकृतिक सौन्दर्य ही साहित्यिक बननेके लिए अपेक्षित नहीं; परन्तु अन्यान्य साधनोंका होना भी अनिवार्य है।

काव्यमीमांसाकार श्री राजशेखर कविने साहित्यिक व्यक्तिके लिए आठ प्रधान साधनोंका होना अनिवार्य सिद्ध किया है। साहित्यिकको कैसे वातावरणमें पलना चाहिए, उसकी स्त्री कैसी होनी चाहिए, कविको या साहित्यिकको सांसारिक क्लमोंसे मुक्त होना चाहिए इत्यादि अनेक साधनोंसे सम्पन्न ही व्यक्ति साहित्यकी रचनामें सौष्ठव ला सकता है। यह हमें भूलना न चाहिए। गढ़वाल यू०पी०के जिलोंमें बहुत निर्धन और व्यापारशून्य जगह है। उसपर भी टिहरी-गढ़वालमें होनेवाले राजकीय अत्याचार क्या कभी कार्यकर्ताओंमें इतना उत्साह छोड़ते हैं कि वे साहित्यकी ओर मुड़ सकें? इसमें सन्देह नहीं कि गढ़वालके ढाँडे, खाले, पहाड़ोंसे टकराकर अनवरत कहड़ोल करनेवाली भागीरथी, यमुना, अलकनन्दा आदि नदियाँ, शुभ्र मोतियों जैसे मर-मर शब्दोंसे आह्वान करनेवाले असंख्य मरने, केमटी फॉल जैसे अनेकों प्रपात, गिरि-उपत्यकाएँ, पहाड़ोंके अन्दर बहनेवाले नाले और उनके इर्दगिर्द होनेवाली शस्यशामला धरित्री साहित्यकारका समादर करनेके लिए आँचल पसारे खड़ी है; पर इन सबके ऊपर है पेटकी

चिन्ता । इस पापिनी चिन्ताने साहित्याकाशमें चमकनेवाले न-जाने कितने नक्षत्रोंको उदय होते ही प्रस लिया ! निर्धन गढ़वालियोंका तो कहना ही क्या ?

गढ़वाल वाह्यसंसारसे सर्वथा अपरिचित है । परिचित भी कैसे हो ? न वहाँ अखबार ही जा सकते हैं और न साहित्यिक रोशनी ही प्रवेश कर सकती है । कोल्हूके बैलकी तरह पर्वतमाला समाच्छन्न स्थानपर ही घूमना एकमात्र गढ़वालियोंके भाग्यमें लिखा है । छै वर्ष पूर्वकी एक घटना है । वहाँपर एक नर-हत्या जैसा बीभत्स काण्ड हुआ था ; पर उसकी चर्चा तक उत्तर-भारतके पत्रोंमें नहीं हुई । इधरकी बात होती तो हत्यारोंके छक्के छूट जाते । मेरी आँखों देखी घटना है ।

अब गढ़वालने अपनी आँख खोली है । कुछ ही दिनोंसे गढ़वालने अपने पैरों खड़े होकर अपने वज्रोंको शिक्षा देना प्रारम्भ किया है । और उसीका परिणाम यह हुआ कि गढ़वाल आज शिक्षाके लिए अपना मस्तक हिमालयकी तरह खड़ा कर रहा है । गढ़वालकी लिपि देवनागरी है तो सही, किन्तु भाषा दूसरी है । गढ़वाली भाषामें उसका साहित्य भी मिलता है । वहाँके पर्वारोंमें श्रीमद्भागवत् और अनेक पौराणिक तथा वैदिक साहित्यकी यथार्थ गाथाएँ भरी पड़ी हैं । वहाँका ग्रामीण साहित्य सभी साहित्यिक अंगोंसे भरा है ।

ऊपर लिखा गया है कि गढ़वाल बहुत दिनों तक भी हिंस्र प्राणियोंका क्रीडाक्षेत्र अथवा वीतराग तपोधनोंकी तपस्थली बना रहा । जिस समय इधर मुसलमान लोग अपने राज्यमदमें आकर हिन्दुओंके ऊपर मनमाने अत्याचार कर रहे थे, उस समय अत्याचार-पीड़ित हिन्दुओंको जब कहीं रक्षाका स्थान नहीं मिला, तब उन्हें गढ़वालकी गिरि-कन्दराएँ दिखाई पड़ीं, और वे भाग-भागकर गढ़वालमें पनाह लेने लगे । अनेक प्रान्तोंसे आये हुए हिन्दुओंकी गढ़वालमें खिचड़ी पकने लगी । जिसने जहाँपर पैर जमाये, उसका उस जमीनपर अधिकार हो गया और वह उसी जगहके नामानुसार अपनी जातिको बतलाने लगा ।

यही कारण है कि गढ़वालमें अनेक उनियाल, नैटियाल, डंगवाल, डोबवाल, बर्थवाल, गैरोला, रमोला आदि बीसियों जातियाँ बन गई हैं । कुछ दिन तक तो ये लोग अपनी-अपनी प्रान्तोंकी भाषा ही बोलते रहे ; परन्तु जब इससे काम न चला, तब सबकी खिचड़ीकी तरह ही एक भाषा बनी, जिसमें कुछ प्राकृत, कुछ संस्कृत, कुछ हिन्दी, कुछ ब्रज आदि भाषाओंके रूप मिलते हैं । मुसलमानोंके डरसे वे लोग नीचेकी ओर मैदानमें न आ सके और इसीसे उनका शिक्षा-क्षेत्र बन्द हो गया । धार्मिक कृत्य पुरोहितों द्वारा संस्कृतमें होने लगे और अब भी होते हैं ।

अब पुनः शिक्षाकी किरणें वहाँ पहुँचने लगी हैं ।

यदि कोई सच्चा सुधारक और साहित्यिक वहाँ जाकर उन्हें संस्कृति और प्रकृति-निरीक्षणका पाठ सिखाता, तो निस्सन्देह वहाँकी प्रकृतिकी सहायतासे साहित्यिकोंकी सृष्टि हो सकती है । कमी है तो पथ-प्रदर्शकोंकी, उनके पीछे चलनेवाले नवयुवकोंका अभाव न होगा ।

गढ़वालमें धुनके पक्के साहित्यिकका अभाव है, इसलिए वहाँ साहित्य-क्षेत्र तैयार नहीं हो पाया । क्या कोई साहसी साहित्यकार हम गढ़वालियों द्वारा साहित्यकी सेवा करा सकता है ? एक बातका निवेदन करना मैं भूल गया । श्रीराम शर्माने पूछा था कि क्या आज तक कोई साहित्यकार वहाँ हुआ है । मैं कहता हूँ—हाँ, हुए हैं, हैं और होंगे । रतूड़ीजी आदिका साहित्यिक होना आपने भी स्वीकार किया ही है । सदेईकी रचनाको आपने फर्स्ट क्लासकी चीज बताकर श्री तारादत्त गैरालाको पक्का साहित्यिक सिद्ध किया ही है । परन्तु इनको छोड़कर भी वहाँ अनेक छिपे रस्तम बैठे हैं । पं० पीताम्बर दत्त बड़थवाल, एम० ए०, डी० लिट०को आज कौन नहीं जानता ? हिन्दीके सर्वप्रथम डाक्टर आप ही हैं । आपके गवेषणात्मक मौलिक निबन्ध आज प्रधान-प्रधान हिन्दी-साहित्यिकोंकी दृष्टि बलात् अपनी ओर आकर्षित कर रहे हैं, यह गढ़वालके लिए गौरवकी चीज है । यदि वहाँके नवयुवकोंके अन्दर यही स्फिरित

काम करती रही, तो भविष्यमें किसीको यह शिकायत करनेका मौका न मिलेगा कि गढ़वालमें साहित्यिक क्यों नहीं होते ।

—महेशानन्द उनियाल

एक पत्र

श्री सम्पादकजी,

श्रीराम शर्माजीने ठीक ही लिखा है कि श्री भगवतीप्रसाद चन्दोलाका लेख 'पार्वत्य प्रदेशकी सांस्कृतिक मूलकका एक चलता-सा छोटा चित्र है ।' इसमें तो विशेषकर गढ़वाल जिलेकी साहित्यिक प्रगतिका आभासमात्र दिया गया था ; समय-समयपर उसमें उठनेवाली धाराओंका थोड़ेसे शब्दोंमें निरूपण किया गया था । लेखकका तात्पर्य यह था कि हिन्दी-जगत पहाड़ी प्रदेशोंकी साहित्यिक सफलताओंसे नहीं, बल्कि वह उनकी वर्तमान प्रगतिशीलता तथा भावी सम्भावनाओंसे परिचित हो जाय, साथ ही पर्वतीय साहित्यकारोंकी एक संस्था भी स्थापित हो जाय । चन्दोलाजीके लेखमें यदि चलते-चलाते कुछ नाम आ भी गये, तो उनसे उनके असली उद्देश्यमें कोई खास बाधा नहीं पड़ती थी ।

'शक्ति'-सम्पादकजीने २५ जनवरीके अंकमें 'कलमका संसार' सम्पादकीय लेखके अन्तर्गत इस आयोजनाका स्वागत किया ; पर अनजाने ही उन्होंने इस आन्दोलनकी दिशा बदल दी । नूतन साहित्यके बदले उन्होंने पुरातन इतिहास, पुरातत्त्व, शिल्प, कला, गीत आदिपर अधिक जोर दिया, इन्हींके पुनरुद्धारके लिए साहित्य-संस्थाकी आवश्यकता बतलाई । फरवरीके अंकमें आपने इस सम्पादकीय लेखके उद्धरण प्रकाशित करनेके साथ स्वयं भी उसका समर्थन किया तथा 'ब्रज-साहित्य-मंडल' आदिकी तरह पर्वतीय साहित्यकारोंके संगठनपर जोर दिया ।

उसी अंकमें पहाड़ीजीका पत्र भी छपा । 'चन्दोलाजीकी असावधानी या जल्दीसे अनेक

साहित्यिकोंके प्रति अन्याय होनेकी सम्भावना' उन्हें हुई, और इसलिए उनके 'अधूरेपन' को दूर करनेके लिए उन्होंने पर्वतीय प्रदेशोंके कतिपय प्राचीन तथा अर्वाचीन लेखकोंके नाम गिना दिये । मार्चके अंकमें नैथाणीजीने उनका अनुगमनकर यह सिद्ध करनेकी चेष्टा की कि 'हमारे पहाड़ोंमें साहित्यिक जाप्रति पहले ही से रही है ।' मईके 'विशाल भारत' में पाण्डेयजीने विशेषकर टेहरी-गढ़वालके कई एक लेखकोंकी सूची पेश की, क्योंकि उनकी रायमें पहाड़ीजीका पत्र काफ़ी विस्तृत होनेपर भी पूर्ण नहीं कहा जा सकता था ।

मेरी सम्मतिमें इस वाद-विवादके प्रारम्भ होनेका कारण यह था कि 'साहित्य' और 'साहित्यिक जाप्रति'के भिन्न-भिन्न अर्थ लगाये गये । चन्दोलाजीके लेखको पढ़कर यह बात स्पष्ट हो जाती है कि उनका मतलब उस साहित्यसे है, जिसे अंगरेजीमें 'क्रियेटिव लिटरेचर' कहते हैं । हिन्दीमें उसे ललित-साहित्य कहा जा सकता है । उसके अन्दर कविता, गद्य-गीत, निबन्ध, स्केच, कहानी, उपन्यास तथा नाटक जैसे साहित्यके वास्तविक अंग सम्मिलित किये जा सकते हैं । पर सर्वश्री 'शक्ति'-सम्पादकजी, पहाड़ीजी आदिने साहित्यके अति साधारण अर्थको अपने सामने रखा ; उन्होंने इतिहास, अर्थशास्त्र, शोध, शिल्प, पुरातत्त्व आदि सभी फुटकर बातोंको उसमें मिला लिया ।*

अब रही 'साहित्यिक जाप्रति' की बात । नैथाणीजीका ऊपर उद्धृत वाक्य ही यह सिद्ध कर देता है कि उनका मतलब था—बाबा आदमके ज़मानेसे अब तक जो-कुछ संग्रहणीय—हाथसे लिखा और छापेमें छप चुका—है, वह सब इसके अन्दर आ जाता है ।

* मेरी समझमें इन दोनों विचार-विन्दुओंका सुन्दर समन्वय होना चाहिए । साहित्यके अन्दर उसके ललित अंगोंके अलावा और भी वस्तुओंको सम्मिलित करना उचित होगा ; परन्तु पंचांग, जादू-टोना, हिप्नोटिज्म आदि सभीको साहित्यके उच्चासुनपर प्रतिष्ठित नहीं किया जा सकता ।
—लेखक

चन्दोलाजीका अभिप्राय इससे बिल्कुल भिन्न था। प्रत्येक प्रान्त तथा जातिका अपना साहित्य रहता ही है, सृष्टि तथा सभ्यताके प्रारम्भसे ही कुछ-न-कुछ रचनाएँ होती ही रहती हैं। इसी प्रकार पहाड़ी प्रदेशोंका भी अपना साहित्य रहा है; पर इन बातोंको ओर उन्होंने ध्यान नहीं दिया। वे तो यह दिखाना चाहते थे कि पश्चिमके संसर्ग तथा राजनैतिक और आर्थिक उहापोहके कारण अखिल भारत तथा विशेषकर हिन्दी-समाजमें जो सार्वदेशिक जाग्रति हो रही है, उसके साथ पर्वतीयोंका क्या सम्बन्ध है; तथा कला और साहित्यमें जो नवीन धाराएँ प्रवाहित हो रही हैं, उनका पर्वतीय साहित्य और समाजपर क्या प्रभाव पड़ रहा है। इसीलिए तो उन्होंने अपने लेखके अन्तमें हिन्दी-काव्यमें नवयुगके गायक और प्रतीक कविवर पन्तजीके नेतृत्वमें एक सजीव साहित्य-संस्थाकी स्थापना करने तथा एक सांस्कृतिक जागरणको लानेकी आवश्यकता बतलाई थी।

इस मौलिक मतभेदके कारण ही वाद-विवाद बढ़ गया तथा पहाड़ीजी प्रभृति बन्धुओंने न-जाने कहाँ-कहाँसे खोज-खाजकर कलम चलानेवालोंकी एक लम्बी सूची तैयार कर दी। पाण्डेयजीने तो पंचांग-कर्ताओं और हिमोदित्तके आचार्यों तकको नहीं छोड़ा। शायद इन्हीं लम्बी लिस्टोंसे बौखलाकर आपने जुलाईके अंकमें चैलेंज दे दिया कि कौन-कौन उनमें से 'युक्तप्रान्तके प्रथम पचास हिन्दी-साहित्य-सेवियोंकी सूचीमें आ सकते हैं।' शर्माजीने अगस्तके अंकमें इस बातपर और भी जोर दिया है।

लेकिन यह प्रथम श्रेणीके साहित्यिकोंकी सूची तैयार करनेकी बात मेरी समझमें तो नहीं आ पाई। आखिर किसी भी व्यक्तिके पास वह कौन-सा पैमाना और तगजू हैं, जिससे वह नाप-नापकर और तौल-तौलकर साहित्य-सेवियोंको पचासकी सूचीमें रखेगा? इस बारेमें विभिन्न व्यक्तियोंके विभिन्न मत हो सकते हैं—खासकर आजकल, जब कि हिन्दी-जगतमें पार्टीवाजी और गुटबन्दीका जोर है तथा आये दिन जिनके कारण

काफ़ी 'तू-तू', 'मैं-मैं' होती रहती है। मैं नहीं समझता कि स्वयं शर्माजी एक ऐसी सर्वस्वीकृत लिस्ट तैयार करनेमें सफल हो पायेंगे। हाँ, इतना मैं मानता हूँ कि साहित्य-सेवाकी परखके द्वारा किसी भी साहित्यकारका महत्त्व और मूल्य आँका जा सकता है; पर इसे भी हमें अन्दाजेकी ही श्रेणीमें रखना पड़ेगा।

रही गढ़वाल ज़िलेकी साहित्य-सेवाकी बात, सो उस विषयमें कुछ कहना अप्रासंगिक न होगा। जहाँ तक ठेठ स्थानीय साहित्यका सम्बन्ध है, वहाँ तक निम्न-लिखित जीवित व्यक्तियोंने प्रशंसनीय कार्य किया है—श्री तारादत्त गैरोलाने 'सदेई' तथा 'गढ़वाली-कवितावली' के सम्पादन तथा 'हिमालयन फोकलोर' के लेखन द्वारा, श्री मुकुन्दीलालने सुप्रसिद्ध मोलारामकी कविता तथा चित्रकलाके अध्ययन तथा प्रकाशन द्वारा, तथा श्री शालिग्राम वैष्णवने 'उत्तराखंड-रहस्य' के लेखन और गढ़वाली लोकोक्तियोंके संग्रह द्वारा। हिन्दीके सुविशाल क्षेत्रमें डा० पीताम्बरदत्त बड़वालने 'तुलसीदास', 'रूपक-रहस्य' और 'कबीर-ग्रन्थावली' जैसी विद्वत्तापूर्ण पुस्तकों तथा 'हिन्दी-काव्यमें निर्गुणवाद' आदि जैसे अनेकों गवेषणापूर्ण निबन्धोंके लेखन और सम्पादन द्वारा अपना एक सुनिश्चित स्थान बना लिया है। यह तो 'पुरातन-प्रेमी' साहित्यकारोंकी बात हुई। शुद्ध ललित साहित्यके प्रांगणमें श्री रत्नाम्बरदत्त चन्दोलाके 'मधुकोष'का अपना समुचित आदरका स्थान है। पत्रकार-जगत्में श्री महेशानन्द थपलियालने 'हृदय' (मेरठ) और 'आशा' (कानपुर) के सम्पादन द्वारा काफ़ी ख्याति पाई। उन दिनों (१९२६-२८) 'हृदय'की जोड़के साप्ताहिक पत्र हिन्दीमें कम ही थे; अभी भी वे विभिन्न नामों द्वारा यदा-कदा 'फ्रीलांस-जर्नलिस्ट' का कार्य करते रहते हैं।

इन नामोंको गिनानेसे मेरा मतलब स्वयं भी वह गलती करनेका नहीं है, जिसके फेरमें पहाड़ीजी आदि बन्धु पड़ गये थे। मैं तो पचास साहित्य-सेवियोंकी

लिस्ट बनानेकी भ्रमात्मक भावनाको हटा देना चाहता हूँ। शर्माजीने अपने लेखमें काफ़ी कठोर शब्दोंका प्रयोग किया है ; कभी-कभी तो ऐसा मालूम होने लगता है कि भाईचारे (कौमेरेडशिप) की भावनाके बदले उन्होंने गुरुदम तथा तानाशाही (डिक्टेटरशिप) का आश्रय लिया है ; फिर भी मैं विश्वास करता हूँ कि उनकी इस बाहरी कठोरताके भीतर सद्भावना और संहानुभूतिकी पुट है। और फिर हम सबी आलोचनासे घबरायें ही क्यों ? शर्माजीके पत्र-लेखक मित्रके शब्दोंमें 'हम लोगोंकी संकीर्णता और अज्ञानका गढ़ तभी टूटेगा, जब उसपर बाहरकी फैली हुई और जाग्रत दुनियाके सबल प्रहार होंगे।' इसके अतिरिक्त साहित्यिक प्रतिभा तो आलोचनाकी कसौटीपर कसकर और भी चमका करती है, उसे इतना खोखला नहीं होना चाहिए कि 'नदी-तीरके रूख' की तरह वह ज़रा-से धक्केसे लुढ़क जाय।

खैर, सौभाग्यसे इस सारे वाद-विवादमें एक ऐसी बात है—और वही सबसे महत्वपूर्ण भी है—जिसपर हम सब सहमत हैं। वह है हमारे साहित्य-सेवियोंको एक सूत्रमें पिरोना तथा उनकी संस्थाके द्वारा पुरातन साहित्यके पुनरुद्धारके साथ-ही-साथ नवयुग निर्माणकारी साहित्यका सृजन करना। क्या पहाड़ीजी और क्या शर्माजी—सभी इसी निर्णयपर पहुँचे हैं। फिर क्यों न इस दिशामें सचाई और लगनके साथ क़दम उठाया जाय ? क्या ही अच्छा हो कि हमारे यहाँके

वृद्ध तथा युवक साहित्य-प्रेमी व्यक्ति शर्माजी द्वारा निर्दिष्ट क्रियात्मक आयोजनाके अनुसार एक सुदृढ़ साहित्य-समितिकी स्थापना करें तथा इस प्रकार राष्ट्र-भाषाके भाण्डारकी पूर्ति करें। शर्माजीने जो विषय दिये हैं, उनपर तो अवश्य लिखा जाय ; परन्तु मैं यह भी चाहता हूँ कि हमारे युवक अपने ही संकुचित दायरेके अन्दर बन्द न रहकर हिन्दीके दिनोंदिन बढ़ते हुए क्षेत्रमें भी अपनी बहुमुखी प्रतिभाके साथ पदार्पण करें, ताकि समय आनेपर उनमें से कुछ बन्धु विश्व-साहित्यको भी बहुमूल्य भेंट चढ़ा सकें। अपने उज्ज्वल भविष्यकी चमकसे स्वयं उनकी आँखें चौंधियानी नहीं चाहिए, उन्हें तो केवल अपनी निजी प्रतिभा और अध्यवसायपर विश्वास रखना चाहिए और चाहिए सदैव पन्तजीकी इन पंक्तियोंका स्मरण—

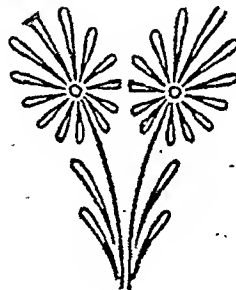
“उठ-उठ लहरें कहतीं यह, हम कूल विलोक न पावें।

पर इस उमंगमें बह-बह, नित आगे बढ़ती जावें।”

(शुजन)

मुझे आशा है कि जहाँ तक गढ़वालका सम्बन्ध है, इस वाद-विवादको बढ़ानेकी आवश्यकता न होगी। किन्तु यह अत्यन्त खेदकी बात है कि अल्मोड़ा तथा नैनीताल ज़िलोंके साहित्य-सेवियोंने—सिवा 'शक्ति'-सम्पादकके—इस ओर कुछ भी ध्यान नहीं दिया। क्या मैं आशा करूँ कि वे इस समस्यापर प्रकाश डालेंगे ?

—भक्तदर्शन



महिला-मंडल

मैंने यूरोपमें क्या देखा ?

कुमारी अमला नन्दी

[कुमारी अमला नन्दी (मिस अपराजिता) ने प्राच्य नृत्यकला में यूरोपमें विशेष नाम प्राप्त किया है। वे कलकत्तेके इकोनामिक ज्वेलरी वर्क्सके अध्यक्ष श्री अक्षयकुमार नन्दीकी पुत्री हैं। उनकी माता श्रीमती सुशीला नन्दी बंगलाके 'मातृपन्दि' नामक पत्रकी सम्पादिकाके रूपमें बंगालमें प्रसिद्ध हैं। सन् १९३१ में कुमारी अमला अपने पिताके साथ पेरिसके इन्टरनेशनल कालोनियल एक्झिबिशनमें गई थीं। उस समय उनकी उम्र ग्यारह वर्ष थी। इस प्रदर्शनीमें पेरिसकी प्रसिद्ध प्राच्य नृत्यकला-विशारद मैडम नियता नियकाके साथ अमलाने अपने नृत्यका प्रदर्शन करके दर्शकोंको चकित कर दिया था। पेरिसमें छै मास रहकर अमला खूब अच्छी तरह फ्रेंच बोलने लगीं। उसके बाद कुमारी अमला भारतके सुप्रसिद्ध नृत्यकला-विशारद श्री उदयशंकरके दलके साथ समूचा यूरोप घूमी और यूरोपके सभी बड़े-बड़े नगरोंमें उन्होंने उदयशंकरके साथ अपनी नृत्यकला दिखाई, जिसकी अत्यन्त प्रशंसा हुई। इस यात्रामें अमलाको यूरोपकी अनेक नृत्यकला-प्रेमी महिलाओंसे मिलने और पूरबी तथा पाश्चात्य नृत्यकलाओंकी विशेषताएँ जाननेका अवसर मिला था। दिल्ली, आगरा, कानपुर, इलाहाबाद आदि जगहोंकी संगीत-कानफरेन्सोंमें निमन्त्रित होकर अमलाने अपने नृत्य दिखाये थे, जिनकी बहुत प्रशंसा हुई थी। अमलाके पवित्र नृत्योंको देखकर वे लोग भी जो पहले नारी-नृत्यके विरोधी थे, उसके समर्थक बन गये हैं।

आजकल कुमारी अमला कलकत्तेके आशुतोष कालेजमें पढ़ती हैं और कलकत्तेकी संगीत-सम्मिलिनीकी छात्राओंको नृत्यकलाकी शिक्षा देती हैं। नीचेके लेखमें कुमारी अमला नन्दीने अपनी यूरोप-यात्राका वृत्तान्त दिया है।

—सम्पादक।

सन् १९३१ में पेरिसमें-अन्तर्राष्ट्रीय औपनिवेशिक प्रदर्शनी (International Colonial Exhibition) हुई थी। प्रदर्शनीकी ओरसे मेरे पिता, नामिक ज्वेलरी वर्क्सके अध्यक्ष श्री अक्षयकुमार

नन्दीको अपने कारखानेकी तथा भारतकी बनी हुई चीजें प्रदर्शित करनेका निमन्त्रण मिला था। पिताजीके साथ मैं भी पेरिस गई थी, और वहाँ लगभग आठ महीने रही थी। उस समय मेरी उम्र ग्यारह-बारह वर्षकी थी। हम लोग कलकत्तेसे बम्बई गये; किन्तु वहाँ जहाजपर जगह न मिलनेसे पिताजीने कोलम्बोसे निपटन यूसेन कैशाके जापानी जहाजसे जाना निश्चय किया। अतः हम लोग मदरास होकर कोलम्बो पहुँचे और वहाँसे १६ अप्रैल १९३१ को फ्रेशीमी मारु नामक जहाजपर सवार होकर पन्द्रह दिन बाद इटलीके नेपल्स नामक बन्दरगाहमें जा उतरे। नेपल्ससे रेल द्वारा हम लोग पेरिस पहुँचे। रास्तेमें रोम, मिलान, ब्रीग और लूसेनमें एक-एक, दो-दो दिन ठहरते हुए हम पेरिस पहुँचे थे। इन स्थानोंमें उतरकर हम लोगोंने यहाँकी दर्शनीय चीजें देखी थीं। इन शहरोंके दर्शनीय स्थानोंका वर्णन यूरोप आनेवाले अनेक भारतीय कर चुके हैं और उनका पूरा वर्णन अनेक गाइड-बुकोंमें भी मिलता है। अतः मैं इन स्थानोंका विस्तृत विवरण न देकर केवल उन्हीं घटनाओंका या बातोंका वर्णन करूँगी, जो मेरे साथ हुई थीं, अथवा जिन्हें मैंने विशेषरूपसे लक्ष्य किया था। यह मैं पहले ही कह चुकी हूँ कि उस समय मेरी उम्र ११-१२ वर्षकी थी। अतः मेरा निरीक्षण किसी सुपरिपक्व बुद्धिवाले अनुभवी व्यक्तिका निरीक्षण नहीं है, बल्कि वह केवल एक छोटी बालिकाका निरीक्षण है। यूरोपमें रहते समय मैं प्रति सप्ताह भारतमें अपनी माता और वहनको लम्बी-लम्बी चिट्ठियाँ लिखती थी। मेरे बाल मस्तिष्कपर जिस किसी बातका प्रभाव पड़ता था, उसका वर्णन मैं अपनी चिट्ठियोंमें किया करती थी। इस लेखमालाका आधार वही चिट्ठियाँ हैं।

जहाजपर मैं अलग केबिनमें थी और पिताजी



कुमारी अमला नन्दी

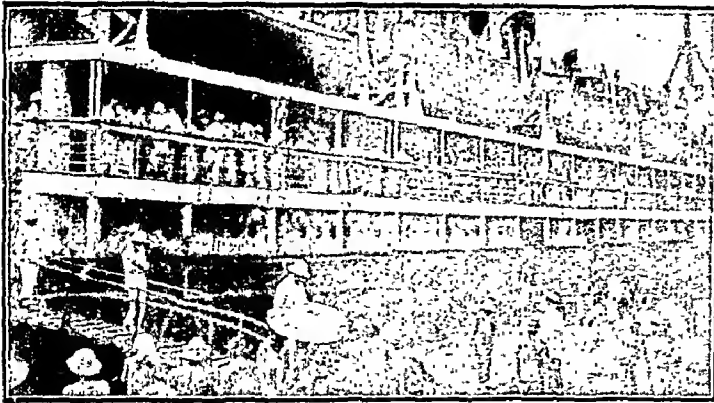
अलग केबिनमें थे। मेरी केबिनमें एक जापानी स्त्री थी और पिताजीकी केबिनमें एक नार्वे-निवासी सज्जन और एक सिन्ध-निवासी भारतीय थे। यह मेरी पहली समुद्र-यात्रा थी। इससे पहले मैं पुरीमें समुद्र देख चुकी थी; लेकिन जहाज़पर से समुद्रका रूप जैसा भीषण देखा, वैसा पुरीमें नहीं देखा था। लेकिन समुद्र जितना भीषण जान पड़ता था, उतना ही आकर्षक भी था। मैं एकदम जहाज़के अगले हिस्सेमें जाकर घंटों तक

समुद्रका तमाशा देखती थी। जहाज़के नौकर-चाकर सभी जापानी थे; लेकिन उनमें उच्च अफसरों और निम्न-कर्मचारियोंमें अधिक भेद-भाव नहीं जान पड़ता था। उनका पारस्परिक व्यवहार प्रायः समान था।

जहाज़पर दो तरहके खानेका बन्दोबस्त था; एक तो यूरोपियन ढंगका, दूसरे जापानी ढंगका। जापानी भोजनमें भात, तली हुई मछली, गाजर-मूली आदि सूखी हुई तरकारियाँ और मूँग, उरद और मटर आदिकी पीका फ़ूटी हुई दालें होती थीं। जापानियोंका भात हम लोगोंके भातकी तरह छिटका हुआ नहीं होता, बल्कि आटेकी तरह होता है, और वे उसमें खूब-सा चायका पानी मिलाकर खाते हैं। वे चीनीकी प्यालीमें खानेका सामान रखकर मुँहके पास ले जाते हैं और बाँसकी दो छोटी-छोटी तीलियोंके सहारे भोजनको मुँहमें ठेलकर खाते हैं। मेरी केबिनमें रहनेवाली जापानी स्त्रीने एक दिन अपना भोजन मुझे खिलाया था। उसने तीलीसे खाया था; पर मैंने हाथसे ही खाया था। जहाज़पर कुछ पंजाबी और सिन्धी व्यापारी डेक पैसेंजर होकर इंग्लैण्ड जा रहे थे। ये वहाँ सिल्ककी फेरी करते थे। ये लोग अपने हाथसे खाना बनाकर

खाते थे। मैं पिताजीके साथ तरह-तरहका खाना खाती थी; लेकिन थोड़ा-सा भात रोज़ ही खाती थी।

२२ अप्रैलके तीसरे पहर जहाज़ अदन पहुँचा। छै दिनसे जहाज़पर रहते-रहते मन ऊब गया था, इसलिए अदनमें सूखी मिट्टीपर उतरकर बड़ी खुशी हुई। जहाज़से उतरकर पिताजीने सबसे पहले देशको लिखी हुई चिट्ठियाँ पोस्ट कीं, फिर हम लोग एक अरबी होटलमें चाय पीने गये। अरबी होटल बहुत साफ-सुथरा



जापानी जहाज फूरीमी मारु

४

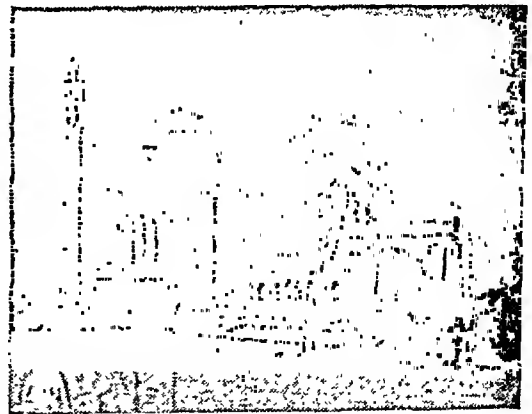
नहीं था। हमारे देशका रुपया-पैसा अदनमें चलता है। यहाँके लोग थोड़ी-बहुत हिन्दी और अंगरेजी बोल लेते हैं। २३ अप्रैलको सबेरे फिर अदनमें खाना खाया।

२७ अप्रैलकी शामको ५ बजे जहाज पोर्ट सेईदुम कुछ देरके लिए ठहरा। पिताजीके साथ उतरकर शहरमें गई। शहर खूब साफ-सुथरा देख पड़ा। इधर-उधर टहलकर हम लोग एक रेस्तराँमें गये, जहाँ बैठकर हम लोगोंने काफी पी। मैंने जिन्दगीमें पहले-पहल यहाँ काफी पी थी। उसमें मुझे बड़ी हीक मालूम हुई। जहाजपर लौटनेपर देखा कि मेरी केबिनमें तीन ग्रीक औरतें और आ गई हैं।

१ मईको १ बजे जहाज नेपल्स बन्दरमें जा लगा। पन्द्रह दिन बाद हमारी समुद्र-यात्रा समाप्त हुई। यूरोपकी जमीनपर पहले-पहल कदम रखते हुए एक अजीब तरहकी खुशी-सी हुई। सड़कोंपर चलनेवालोंमें जितने पुरुष दिखाई देते थे, क़रीब-क़रीब उतनी ही स्त्रियाँ भी थीं। सभी गोरे थे। इटालियन लड़कियाँ और औरतें खूब सुन्दर दिखाई पड़ती थीं; पर वे अंगरेजोंकी तरह एकदम सफ़ेद गोरी नहीं थीं। उनका रंग देखनेसे जान पड़ता था कि चम्पई रंगपर थोड़ी-सी गुलाबी आभा है। उनमें से बहुतोंकी आँखें और बाल हम लोगोंके समान ही काले थे।

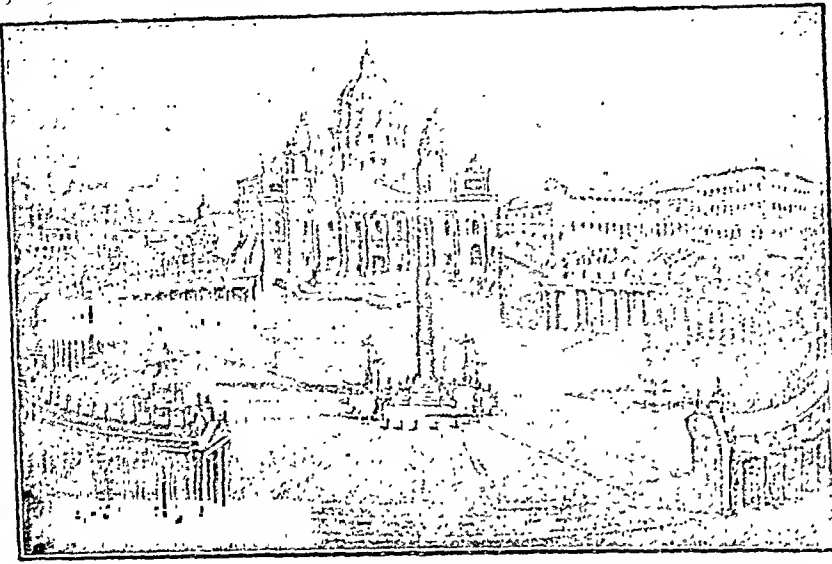
नेपल्सके कस्टम-आफिसमें अपना माल-असबाब रखकर हम लोग पेरिसके लिए टिकट खरीदने गये। रास्ता समुद्रके किनारे-किनारे बलखाता हुआ जाता था। बीच-बीचमें सुप्रसिद्ध ज्वालामुखी विसूवियसके दर्शन हो जाते थे। यद्यपि चारों तरफ़ मेरे लिए हरएक चीज़ नई थी, हर चीज़पर ध्यान जाता था; लेकिन सबसे ज्यादा विचित्र और प्रभावोत्पादक चीज़ जो

मैंने नेपल्समें देखी और जिसकी याद जीवन-भर रहेगी, विसूवियस था। दूरसे विसूवियसकी चोटी कभी सफ़ेद दिखाई देती थी, कभी थोड़ी-सी लाल लपट-सी दीख पड़ती थी और कभी वह धुआँ उगलती नज़र आती थी। दिन-भर हम लोग नेपल्स शहर घूमते रहे। पिताजी आठ वर्ष पहले अपनी पहली यूरोप-यात्रामें



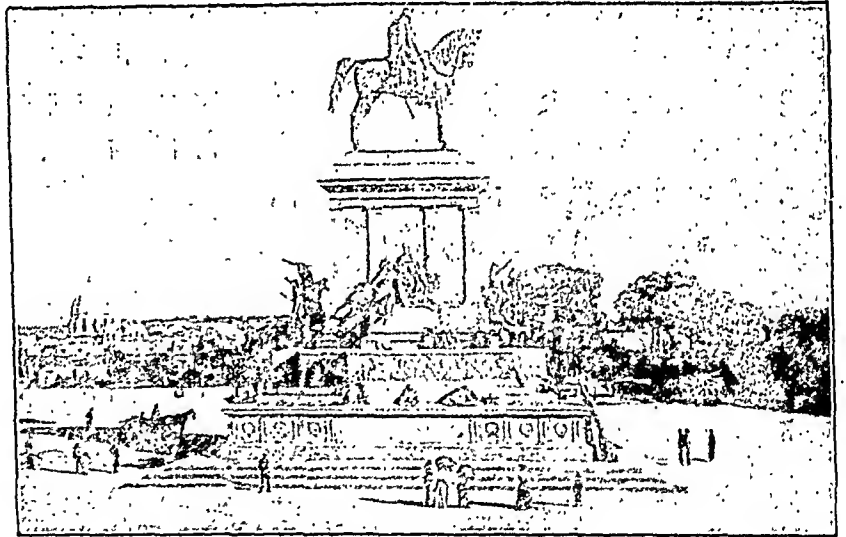
स्वेज नहरके किनारे एक मिछी गाँव

नेपल्स देख चुके थे, सिर्फ़ मुझे ही दिखलाना था। ख़ैर, शामको छे बजे रोम जानेके लिए नेपल्सके सेन्ट्रल स्टेशनपर पहुँचे। यहाँ अंगरेजी जाननेवाले कम मिलते हैं। गाड़ी ६॥ बजे छूटती थी। अभी आध घंटेकी देर थी, इसलिए हम लोग रोमवाली गाड़ीमें अपना ट्रंक वगैरह रखकर स्टेशनके भोजनालयमें खाना



रोमका सेन्ट-पीटर्स गिरजा

खाने पहुँचे। मैकरनी (मैदेसे बना हुआ एक प्रकारका भोजन) और कई तरहकी अज्ञात इटालियन चीजें खाकर हम लोग आध घंटेके भीतर ही आ गये। खाना खाते हुए मैंने पिताजीसे हँसकर कहा—
“बाबूजी, हम लोग तो यहाँ खाना खा रहे हैं, हमारा असबाब गाड़ीमें रखा है। हम लोग जब तक खाना खाकर पहुँचें, तब तक गाड़ी चली जाय तो क्या हो?”



रोममें गेरीवाल्डीकी मूर्ति

पिताजीने हँसकर कहा—“यह यूरोप है। यहाँ एक मिनटका भी गोल-माल नहीं हो सकता। मैंने टाइम टेबिलमें अच्छी तरह देख लिया है। गाड़ी ६॥ बजे छूटती है।”

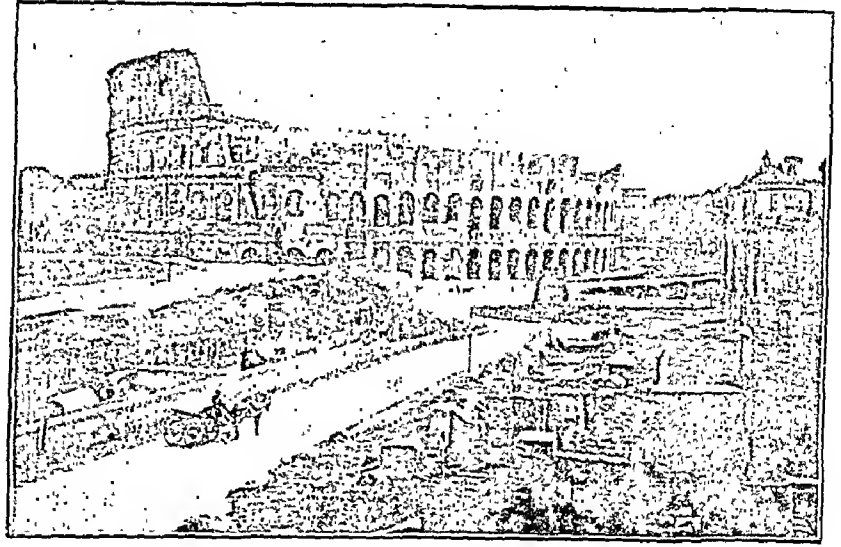
भोजन समाप्त करके जब हम लोग प्लेटफार्मपर पहुँचे, तो देखा कि गाड़ी सचमुच ही छूट चुकी थी, यद्यपि ६॥ बजेनेमें अभी दस-पन्द्रह मिनटकी देर थी! हमारे ट्रकमें बहुत सी सोने-चाँदीकी क्रोमती चीजें थीं।

पहले तो समझमें न आया कि मामला क्या है। बादमें पूछताछ करनेपर मालूम हुआ कि उसी वक्त रोमको दो गाड़ियाँ रवाना होती थीं— एक पैसेंजर, जो ६ बजे छूटती थी; दूसरी एक्सप्रेस, जो ६॥ रवाना होती थी। हमें एक्सप्रेसमें जाना था; लेकिन इटालियन भाषा न बोल सकनेके कारण गलतीसे कुलीने हमारा असबाब ६ बजे छूटनेवाली पैसेंजर ट्रेनमें रख

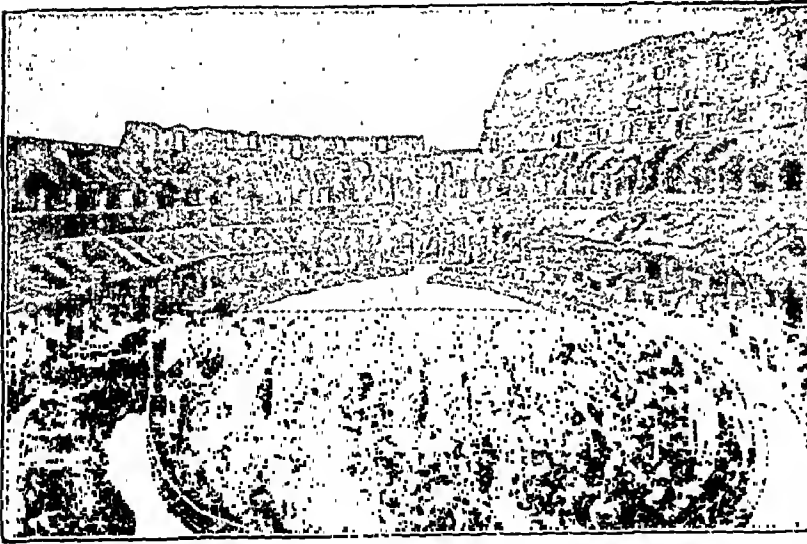
दिया था, जो अपने निश्चित समयपर छूट गई। पिताजीने फौरन असबाबके लिए रोमको टेलीफोन कराया। हम लोग ६॥ बजेकी एक्सप्रेससे रवाना होकर जब दो बजे रातको रोम पहुँचे, तो देखा कि हमारा पुराना स्टील ट्रक लगेज आफिसमें सही-सलामत पहुँच गया है। बुद्धिहीन स्टील ट्रक मालिकसे बिछुड़कर भी इस विदेशमें रास्ता नहीं भूँचा, इसके लिए किसे धन्यवाद दूँ, यह समझमें न आया। ट्रेनपर यात्री सब इटालियन बोलनेवाले

थे; इसलिए उनसे कुछ पूछना या बातचीत करना सम्भव न था। बड़ी देर बाद एक बुढ़िया चढ़ी थी, जो अंगरेजी जानती थी। उसने पिताजीसे गप्पें लड़ाना शुरू कर दिया; लेकिन मैं तब तक अंगरेजी बहुत थोड़ी समझ पाती थी और बोल न सकती थी, इसलिए मुझे मन मारकर चुपचाप ही बैठना पड़ा था।

रोममें उतरकर एक होटल में ठहरे। दूसरे दिन गाइडको



रोममें कलोसियमके ध्वंसावशेष



कलोसियमका भीतरी भाग

साथ लेकर रोमके सुप्रसिद्ध स्थान—जैसे, सेंट-पीटरका गिरजा, पैलेस आफ जस्टिस, कलोसियम, म्यूजियम आदि—देखा।

३ मईको सबेरे रोमसे चलकर शामको मिलान नगर पहुँचे। रास्तेमें पहाड़ और बीच-बीचमें हरे-भरे खेत और गाँव मिलते थे। ट्रेन टाइवर नदीकी धारके किनारेसे जाती है। दोपहरका भोजन ट्रेनकी रेस्ताँ

कारमें किया था। भोजनमें बड़ा भ्रंश हुआ। मैं यह न खाऊँगी, वह न खाऊँगी, करके मैंने पिताजीको काफी परेशान किया, फिर भी भोजन अच्छी तरह न हो सका। मैं भातके लिए छटपटा रही थी, सो वह न मिल सका।

दूसरे दिन सबेरे मिलान शहर घूमा। यहाँका विख्यात कैथेड्रल देखा। इटलीकी चित्रकला सारी दुनियामें प्रसिद्ध है। इस कैथेड्रलमें

उसके कुछ नमूने देखे। कैथेड्रल देखकर एक तसवीर-वालेके दूकानपर खड़े होकर हम लोग मिलानकी तसवीर देखने लगे। देखते ही देखते हम स्वयं देखनेकी चीज़ बन गये। पचासों आदमियोंने हम पिता-पुत्रीको घेर लिया। पिताजीके शरीरपर यद्यपि यूरोपियन पेशाक थी; पर सिंगर गाँवी-टेपी थी। मेरी साड़ी और जूड़ा बँधे हुए केश वहाँवालोंको बड़े कलापूर्ण समझाई दिये।



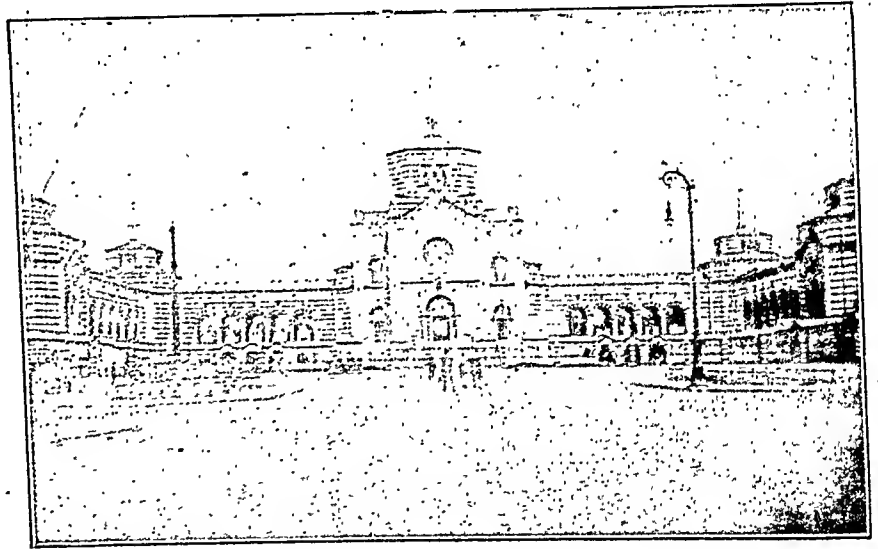
मिलानका कैथेड्रल

इन्हीं चीजोंको लेकर लोग भीड़में न-जाने कितनी बातें कह रहे थे, जिन्हें हम लोग समझ न सके। हाँ, इतना मालूम हुआ कि हम गांधीके देशके मनुष्य हैं, इसीलिए उनमें से बहुतेरे हमें सम्मान प्रदर्शित करते थे।

भोजनके लिए कई भोजनालयोंमें घूमना पड़ा। भात तो कहीं न नसीब हुआ; हाँ, एक प्रकारका इटेलियन भोजन मिला, जो किसी हद तक भात-जैसा था। उसका नाम 'रिज़ोतो' था। इटेलियन लोग खोवा और चावल मिलाकर टोमाटोके रसके साथ उसे बनाते हैं।

मिलानका समाधि-स्थान देखकर साढ़े चार बजेकी गाड़ीसे खाना हुए। आल्प्स पर्वतका पहाड़ी इलाका शुरू हो गया। थोड़ा आगे बढ़नेपर ट्रेन एक बड़ी सुन्दर मीलके किनारे-किनारे चलने लगी। पिताजीने

नज़रोंमें देखा, तो मालूम हुआ कि इस मीलका इटेलियन नाम Lago Maggiore है। बहुत दूरपर दीवारकी तरह ऊँची पहाड़ियाँ थीं। सूर्यकी अन्तिम किरणोंमें इन पहाड़ियों की चोटीपर जमी हुई बर्फ झिलमिल रही थी। मीलके किनारेपर जगह-जगह बने हुए लाल खपरैलवाले मकान तसवीरकी तरह सुन्दर दीख पड़ते थे। रेलकी लाइन और मीलके बीचमें जो



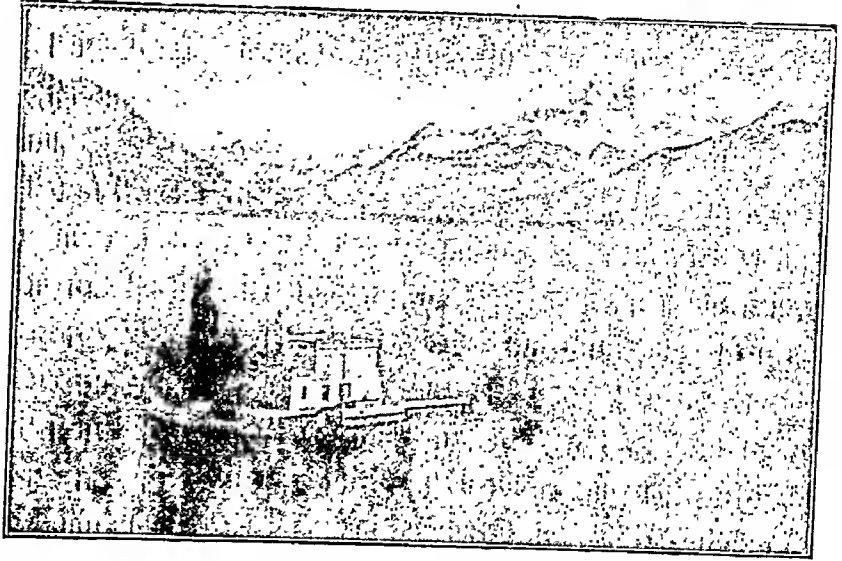
मिलानके क्रवरीस्तानका फाटक

सड़क थी, वह भी रंग-विरंगे फूलोंसे पटी दीखती थी। इस प्रकार कोई पचीस-तीस मील तक गाड़ी मीलके किनारे-किनारे चलती गई। अब ऊँचे-ऊँचे पहाड़ शुरू हो गये, जो बर्फसे ढँके थे। यही मध्य-यूरोपकी मशहूर पर्वत-श्रेणी आल्प्स थी। यहाँ इसकी उँचाई १०,००० फीट थी। खिड़कीसे झाँककर देखा, तो सामनेका पहाड़ और भी ऊँचा दीख पड़ा।

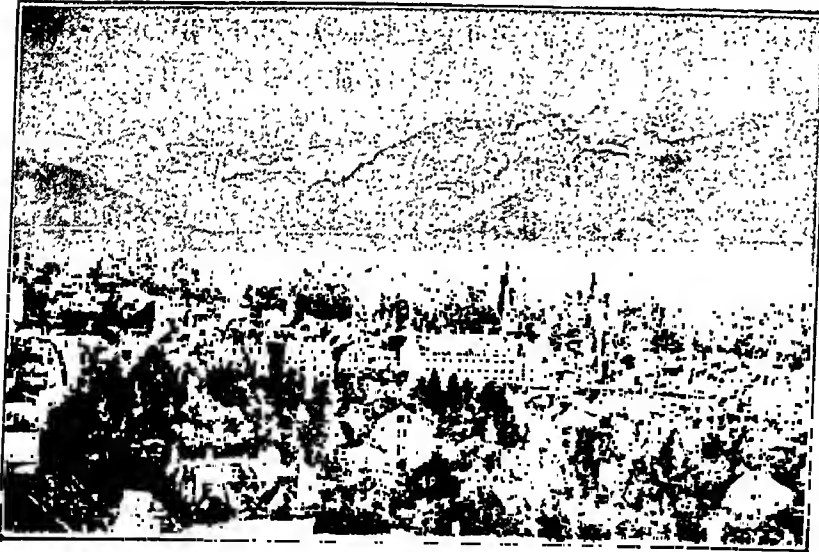
अक्टूबर, १९३६]

महिला-मंडल

मुझे आश्चर्य होने लगा कि इतने ऊँचे पहाड़ पर रेल कैसे चढ़ेगी ? इतनेमें गाड़ीने एक सुरंगमें प्रवेश किया। घड़ी निकालकर देखा, तो इस सुरंगको पार करनेमें गाड़ीको पचीस मिनट लगे थे। सुरंग लगभग बीस मील लम्बी होगी ! यह सुरंग समाप्त होते ही इटलीकी सीमा समाप्त हो गई और स्विट्जरलैण्डका राज्य शुरू हो गया। हम लोगोंके पासपोर्ट देखे गये।



जेनेवाकी झील और आल्प्स पर्वत स्विट्जरलैण्ड



जेनेवा झीलके किनारे लूसेनका शहर

पिताजीने कहा कि स्विट्जरलैण्डके दृश्य बड़े सुन्दर हैं ; लेकिन रातको यात्रा करनेसे अँधेरेमें कुछ दिखाई न देगा। इसलिए शामको हम लोग ब्रीग (Brieg) नामक सुन्दर स्टेशनपर उतर पड़े। स्टेशन चारों तरफ बर्फसे ढका नज़र आता था।

रातमें होटलमें जब खाना खाने बैठे, तो देखा कि सर्दीके मोरे यहाँ मक्खन जमकर इतना कड़ा पड़ जाता

है कि उसे काटकर तरह-तरहके फूल-पत्तों और खिलौनेके आकार का बनाया जाता है और इसी आकारमें मुझे भी खानेको मिला था। हम लोगोंने भात माँगा, किन्तु न मिल सका।

सवेरे उठकर देखा कि रातमें आसपासके मकानोंकी छतोंपर भी बर्फ जम गई है। आठ बजेकी ट्रेनसे हम लोग ब्रीगसे खाना हुए। गाड़ी छूटते ही रोन नदीकी धारके किनारे चलने लगी। इस नदीकी सुन्दरता अनोखी है। यहाँ नदी गहरी

नहीं है। कहीं-कहीं दो-दो तीन-तीन भागोंमें होकर बहती है, कहीं दूरपर उसमें मरने आ-आकर गिरते हैं। कोई-कोई मरने तो इतने वेगसे गिरते हैं कि ट्रेन चलनेकी आवाज़को भी परास्त करके उनके गिरनेकी आवाज़ कानों तक पहुँचती है। नदीके बीच-बीचमें कहीं-कहींपर पहाड़ उठ आये हैं। सफेद धारमें उठे हुए ये पर्वतखण्ड ऐसे दीख पड़ते थे, जैसे सफेद

विद्यावनपर कोई व्यक्ति सोतेसे उठ बैठा हो। इसी प्रकारके दृश्य देखते हुए एक बजे हम लोग स्विटज़रलैण्डके प्रसिद्ध आरोग्य-स्थान लूसेनमें जा उतरे।

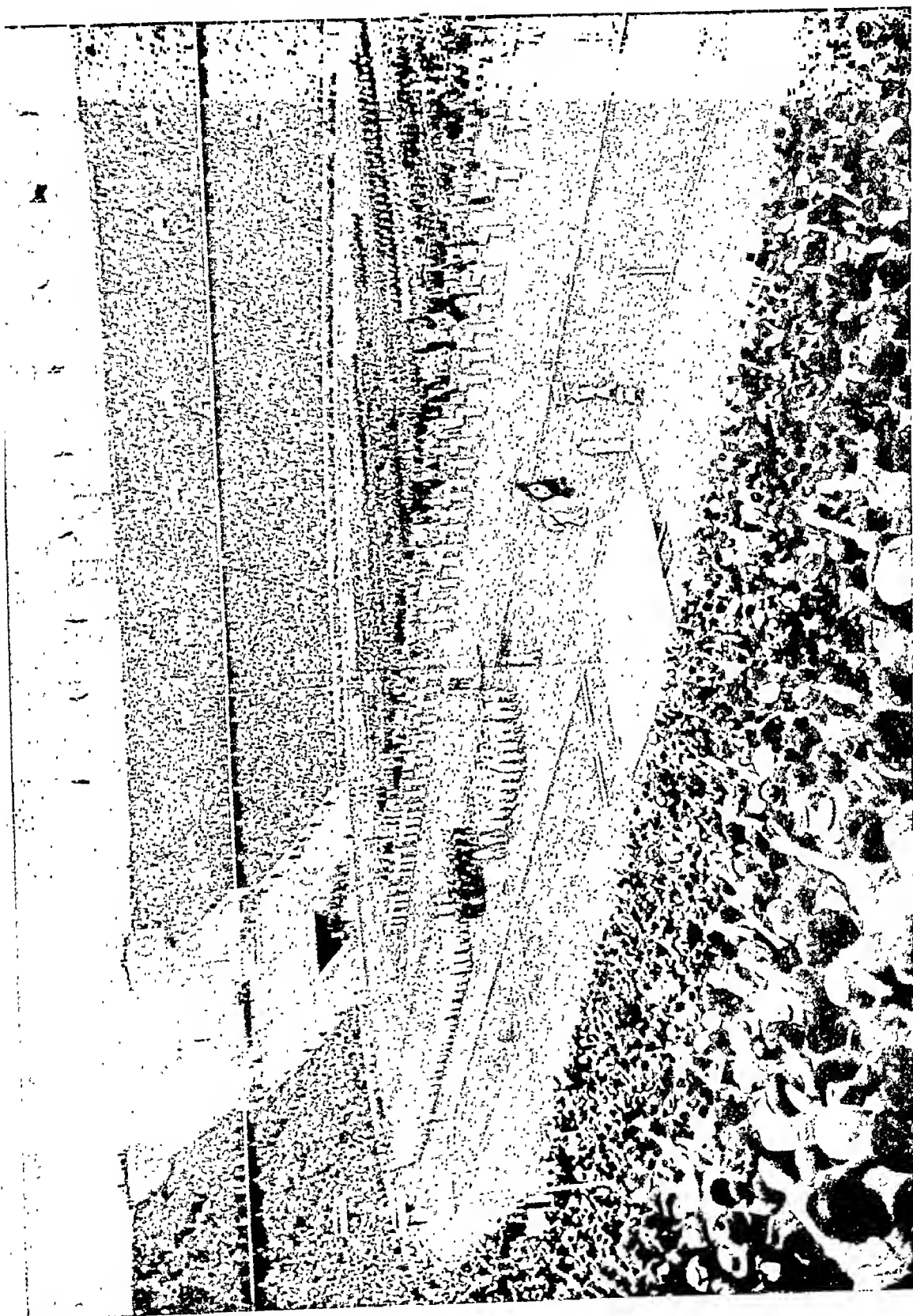
लूसेनमें उतरकर हमें भोजनकी चिन्ता हुई। भात न मिलनेसे मैं कई दिनसे छटपटा रही थी। इसलिए यहाँके सबसे अच्छे भोजनालयमें जाकर पूछा, क्या वे भातका प्रबन्ध कर सकते हैं। वे लोग राजी हो गये। हम लोगोंने भात और मछलीका प्रबन्ध करनेको कहा था। आध घंटे बाद हमारी मेजपर दो तश्तरीयोंमें तनिक-तनिक-सा भात और एक तश्तरीमें मछली आकर मौजूद हुई। दो मिनट ही में मैंने अपनी तश्तरीका भात साफ कर दिया। यह देखकर वेटर आकर पूछने लगा, और क्या चाहिए? मैंने कहा, भात चाहिए। उसने दौड़कर रसोइयेको और चावल उबालनेको कहा। यह देखकर मैं हँसीके मोरे लोट-पोट हो गई। हमारी प्रत्येक तश्तरीमें मुश्किलसे आधी छटाँक भात परसा गया होगा। कोई पन्द्रह मिनटकी इन्तज़ारीके बाद फिर दो-दो चम्मच भात परसा गया। वह भात काहेका, अधकच्चा चावल ही था। खैर, उसीको आलूके साथ जैसे-तैसे खाकर सन्तोष करना पड़ा। इसका बिल हुआ सात रुपये! उसपर से वेटरको भी कुछ इनाम देना पड़ा। इस देशको देखते हुए आदमी पीछे साढ़े तीन रुपयेका बिल कुछ ज्यादा नहीं था; लेकिन एक छटाँक भातके लिए—जिसका दाम हमारे देशमें एक पैसा भी नहीं होता—साढ़े तीन रुपये और इतनी कठिनाई बहुत जान पड़ी।

शहरमें थोड़ा-इधर-उधर घूम-फिरकर यहाँकी शोभा देखी। सारा नगर पहाड़ी है। पहाड़की तरफ जाते हुए देखा कि बड़ी उम्रकी दल-की-दल लड़कियाँ हाथमें किताबें दावे कालेज जा रही हैं। पूछनेपर मालूम हुआ कि कालेजमें एक हजार छात्राएँ पढ़ती हैं। नगरकी शोभा और सौन्दर्य अनोखा था। सफाईका कहना ही क्या। दो घंटे घूम-फिरकर हम लोग पेरिसके लिए रवाना हुए।

ट्रेन चलते ही पहाड़-पर-पहाड़ और सुरंग-पर-सुरंग मिलने लगी। इतनी ज्यादा सुरंगें संसारमें कहीं और भी हैं या नहीं, यह नहीं जानती। कुछ दूर गाड़ी मीलके किनारे भी जाती है। मीलके भीतर छोटा-सा द्वीप दीव पड़ा, जिसपर चित्रकी तरह सजा हुआ गाँव बसा है, किनारेपर भी अनेक छोटे-छोटे गाँव हैं। हर एक गाँवमें एक-एक गिरजा है, जिसकी चोटी दूरसे ही दीखती है। कुछ देर गाड़ी कारखानोंके बीचसे होकर चलती है। पाँच-सात जगह धुआँ उगलती हुई चिमनियाँ दीख पड़ती हैं। गाड़ी साठ मील फी-घंटेकी तेजीसे चलती है। सभी दजोंमें बैठनेकी सीटें बड़ी आरामदे हैं। सीटोंके नीचे गर्मी पहुँचानेके लिए भापके पाइप हैं। खिड़कियोंमें शीशे लगे हैं और दीवारें आईनों, नक्शों और विभिन्न स्थानोंके दृश्योंके चित्रोंसे सजी हैं। प्रत्येक डब्बेमें गर्मी (टेम्परेचर) घटाने-बढ़ानेका प्रबन्ध है।

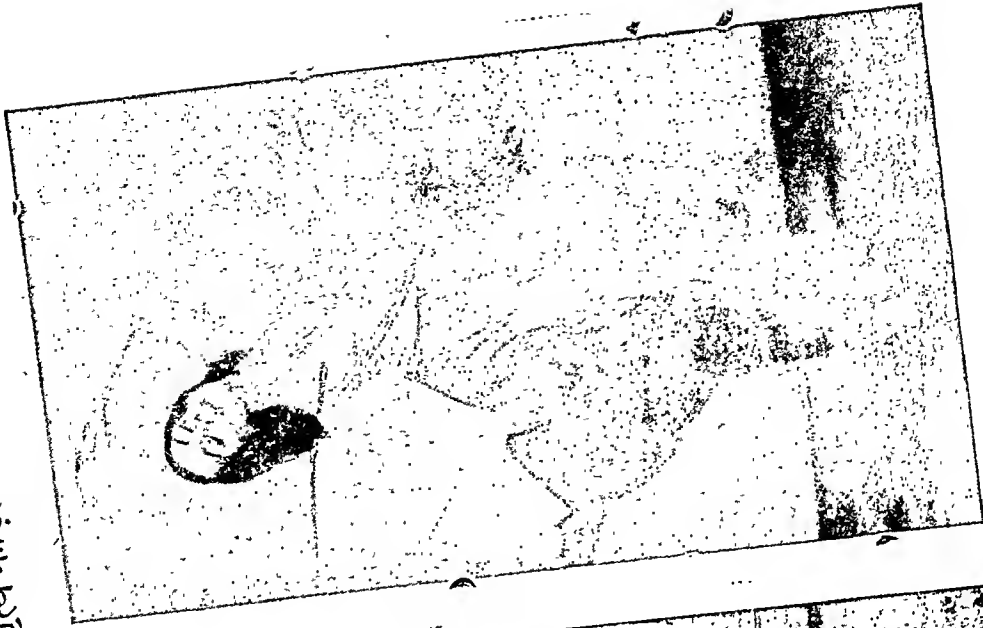
शामको पाँच बजे फ्रांसकी सीमापर पहुँचे। पासपोर्टकी जाँच हुई, उसपर मुहर लगाई गई। माल-अस्वाच देखा गया। देश भेजनेके लिए हम लोगोंने कई चिट्ठियाँ लिखी थीं, उनपर टिकट स्विटज़रलैण्डके लगाये थे, इसलिए उन्हें स्विटज़रलैण्डमें ही पोस्ट करना चाहिए था। अब फ्रांसकी सीमा शुरू हो गई थी, अब वे बिना फ्रेंच टिकटोंके पोस्ट नहीं हो सकते थे। बावूजीने एक तरकीब निकाली। एक स्टेशनपर स्विटज़रलैण्ड जानेवाली ट्रेन खड़ी दीख पड़ी। बावूजीने उस गाड़ीमें बैठे हुए एक यात्री सज्जनके हाथमें चिट्ठियाँ देकर उन्हें स्विटज़रलैण्डकी सीमामें पोस्ट करनेको कहा। यथासमय चिट्ठियाँ भारतवर्ष पहुँच गईं। फ्रांस शुरू होते ही पहाड़ोंका सिलसिला खत्म हो गया। अब चौरस मैदान और हरे खेत दिखाई देने लगे। थोड़ी देर बाद अंधेरा हो जानेसे कुछ देख न सके। साढ़े दस बजे रातको हम लोग पेरिसके 'गार दे लियॉ' (Gare de Lyon) स्टेशनपर जा उतरे। इस प्रकार तीसरी अप्रैलको कलकत्तेसे चलकर ५०० मईको हम लोग पेरिस पहुँच गये।

अपने पेरिस-प्रवासका वर्णन अगले मासमें दूँगी।

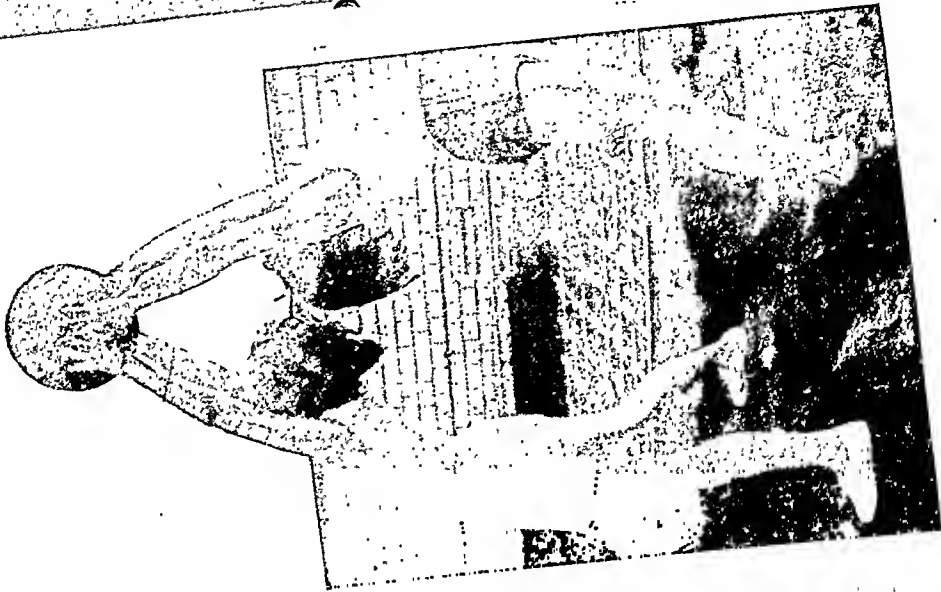


वर्तमान ओलिम्पिक खेलोंका अखाड़ा

बर्लिनके ओलिम्पिक खेलोंमें जर्मनकी मजदूर-स्त्रियोंकी नृत्य-क्रीड़ा



मैरियन वेगलसांग



मजदूर तरुणियोंके खेल



मेरी विगमैन

चार अध्याय

(उपन्यास)

रवीन्द्रनाथ ठाकुर

भूमिका

एलाको याद पड़ता है, उसके जीवनका प्रारम्भ विद्रोहसे हुआ था। उसकी मा मायामयीके स्वभावमें कुछ सनक-सी थी, उनका व्यवहार विचार-विवेचनाके प्रशस्त पथपर नहीं चल पाता था। अपने बेहिसावी मिजाजके असंयत मोर्कोंसे अपनी गृहस्थीको वे आये दिन लुब्ध कर डाला करती थीं,—अन्यायके साथ शासन करती और विना-कारण सन्देह करती। लड़की जब किसी अपराधको मंजूर करती, तो वे चटसे कह बैठतीं—भूठ बोल रही है। और लड़कीका यह हाल था कि विना मिलावटके शुद्ध सच कहनेका उसे व्यसन-सा पड़ गया था। इसलिए उसीको सबसे ज्यादा सजा मिली। सब तरहके अन्यायके विरुद्ध असहिष्णुता उसके स्वभावमें प्रबल हो उठी। उसकी माने समझा कि यह बात स्त्री-धर्मनीतिके विरुद्ध है।

एक बात उसने वचन ही से समझ ली थी कि दुर्बलता अत्याचारका प्रधान वाहन है। उसके परिवारमें जितने भी आश्रित अन्नजीवी थे, जो पराये अनुग्रह-निग्रहके संकीर्ण घेरेमें निःसहाय रूपसे आवद्ध थे, उन्हीं लोगोंने उसके परिवारकी आवहवाको कलुषित किया है, उन्हीं लोगोंने उसकी माकी अन्ध प्रभुत्व-चर्चाको बाधाहीन कर डाला है। इस अस्वास्थ्यकर अवस्थाकी प्रतिक्रियाके रूपमें ही उसके मनमें छोटी उमरसे ही स्वाधीनता की आकांक्षा इतनी दुर्दमनीय हो उठी थी।

एलाके पिता नरेश गुप्त विलायत जाकर वहाँके विश्वविद्यालयसे साइकॉलॉजीमें डिग्री हासिल कर लाये हैं। उनकी वैज्ञानिक विचारशक्ति तीक्ष्ण है, अध्यापन-कार्यमें वे विशेष रूपसे यशस्वी हैं। प्रान्तीय प्राइवेट कालेजमें वे काम करते हैं, क्योंकि उसी प्रान्तमें उनका जन्म है; गार्हस्थिक उन्नतिकी तरफ उनका लोभ कम है और उस विषयमें दक्षता भी साधारण है। गलतीसे आदमीपर विश्वास करके अपनी हानि कर लेते हैं, बार-बार अनुभव होनेपर भी इस बातका वे सुधार न कर सके। ठगकर या आसानीसे जो उपकार बखल करते हैं,

उनकी कृतघ्नता सबसे बढ़कर अकस्म्य होती है। जब वह प्रकट हो जाती, तो वे उसे मनस्तत्त्वका विशेष तथ्य समझकर अनायास ही स्वीकार कर लेते हैं, मन या मुँहसे शिकायत नहीं करते। सांसारिक बुद्धिकी वृत्तियोंके लिए कभी उन्हें स्त्रीसे क्षमा नहीं मिली, हमेशा उलाहने ही सहे हैं। शिकायतके कारण पुराने हो जानेपर भी उनकी स्त्री उन्हें कभी भूलती ही न थी, जब-है-तब उन्हीं बातोंकी तेज सुई चुभो-चुभोकर उन्हें जरा भी दम न लेने देती।

मनुष्यपर अपने सहज-विश्वास और उदारताके कारण पिताको बार-बार ठगाते और दुःख पाते देख उनपर एलाका सदा-व्यथित स्नेह था—जैसा सकल स्नेह माका अपने नासमझ बच्चेपर होता है। सबसे बढ़कर उसे चोट पहुँचती थी तब, जब उसकी मा कलहकी भाषामें तीव्र इशारा करती थीं कि बुद्धि-विवेचनामें वे अपने पतिसे श्रेष्ठ हैं। एलाने अनेक अवसरोंपर माके द्वारा पिताका असम्मान देखा है, यहाँ तक कि कभी-कभी उसके निष्फल क्रोधावेशमें आँसुओंसे रातको उसका तकिया तक भीग गया है। इस तरहके अतिके धैर्यको अन्याय समझकर एलाने बहुत बार अपने पिताको मन-ही-मन अपराधी ठहराया है।

अत्यन्त दुःखित होकर एक दिन एलाने अपने पितासे कहा—“इस तरह चुपचाप अन्याय सह लेना ही अन्याय है।”

नरेशने कहा—“स्वभावके विरुद्ध प्रतिवाद करना और गरम लोहेपर हाथ फेरकर उसे ठंडा करना, दोनों एक ही बात है, एला। इसमें वीरता हो सकती है, पर आराम नहीं।”

“चुप बने रहनेमें आराम और भी कम है”—कहकर एला जल्दीसे चली गई।

इधर घरमें एला देखती है कि जो माका मन रखकर चलनेका कौशल जानते हैं, उनके पड़्यन्त्रसे निरपराधीपर ही निष्ठुर अन्याय हुआ करता है। एलासे सहा नहीं जाता, उत्तेजित होकर वह न्यायकारिणाके सामने सत्य प्रमाण रखती है। परन्तु कर्तव्यके अहंकारके सामने अकाव्य युक्ति ही दुःसह स्पर्द्धा है। अनुकूल तूफानी हवाकी तरह वह न्यायकी नावको आगे नहीं बढ़ाती, बल्कि उसे डुबानेके उन्मुख कर देती है।

इस परिवारमें और भी एक बला थी, जो एलाके मनको हमेशा चोट पहुँचाया करती। वह है उसकी माकी कूतकी सनक। एक दिन किसी मुसलमान अभ्यागतके बैठनेके लिए एलाने चटाई बिछा दी थी,—उस चटाईको माने फेंक दिया; ऊनी गलीचा बिछा देती तो कोई बात न थी। एलाका तार्किक मन बिना तर्क किये मानता नहीं। एक दिन उसने पितासे पूछा—“अच्छा, यह सब हुआकूत और नहाने-धोनेकी सनक स्त्रियोंपर ही क्यों सवार होती है? इसमें हृदयका तो स्थान ही नहीं, बल्कि विरोध है,—यह तो सिर्फ मशीनकी तरह अन्धा होकर चलना है।”

मनोविज्ञानके विशेषज्ञ पिताने कहा—“स्त्रियोंके मनमें हजारों वर्षोंसे हथकड़ियाँ पड़ी हुई हैं; वे तो मानती ही जायँगी, प्रश्न नहीं करेंगी,—इसी बातपर उन्हें समाज-मालिकोंसे इनाम मिले हैं; इसीसे मानकर चलना जितना ज्यादा अन्धा होता है, उसकी कीमत उनके लिए उतनी ही बढ़ जाती है। जनाने मरदोंकी भी यही दशा है।” आचारकी निरर्थकताके बारेमें बार-बार मासे प्रश्न किये बिना एलासे रहा नहीं गया। उत्तरमें उसे बार-बार फटकार ही मिली है। लगातार ऐसी चोटोंसे एलाका मन अवाच्यताकी ओर झुक गया है।

नरेशने देखा कि इन सब पारिवारिक द्वन्द्वोंसे लड़कीका स्वास्थ्य बिगड़ रहा है, इससे उन्हें गहरी चोट पहुँची। इतनेमें एक दिन एलाने, किसी विशेष अन्यायसे कठोर रूपसे आहत होकर, पिताके पास आकर कहा—“बाबूजी, मुझे कलकत्तेके किसी बौडिंगमें भेज दो।”

यह प्रस्ताव दोनोंके लिए दुःखदायक था, परन्तु पिताने अवस्था समझ ली और मायामयीकी ओरसे प्रतिकूल संज्ञापात होते हुए भी एलाको दूर भेज दिया; और फिर अपनी निष्क्रिय गृहस्थी और अव्ययन-अध्यापनमें निमग्न हो गये।

माने कहा—“शहरमें भेजकर लड़कीको मेमसाहब बनाना चाहते हो तो बना डालो; पर तुम्हारी लाड़ली लड़की जब ससुराल जायगी, तब उसकी जानपर आ पड़ेगी। तब फिर मुझे दोष मत देना।” लड़कीके व्यवहारमें कलिकालोचित स्वाधीनताके कुलक्षण देखकर उसकी माने ऐसी आशंका बार-बार प्रकट की है। एला अपनी भावी सासुके हाड़ जलायेगी, इस सम्भावनाको निश्चित जानकर उस काल्पनिक समधिनेके

प्रति उनकी अनुकम्पा मुखरित हो उठती थी। इसीसे एलाके मनमें यह धारणा दृढ़ हो चली थी कि व्याहृके लिए लड़कियोंको तैयार होना पड़ता है अपने आत्म-सम्मानको पंगु बनाकर, इसके लिए उन्हें न्याय-अन्यायके ज्ञानको भी मिटा देना पड़ता है।

एलाने जब मैट्रिक पार होकर कालेजमें प्रवेश किया, तब उसकी माकी मृत्यु हो गई। नरेशने बीच-बीचमें विवाहके प्रस्तावपर लड़कीको राजी करनेकी काफी कोशिश की थी, पर वे उसे राजी न कर सके। एला अपूर्व सुन्दरी है, पात्रोंकी तरफसे प्रार्थनाओंकी कमी न थी, किन्तु विवाहके प्रति विमुखता उसके संस्कारोंमें समा गई थी। लड़कीने परीक्षाएँ पास कर लीं, किन्तु पिता उसे अविवाहित छोड़कर ही मर गये।

सुरेश था उनका छोटा भाई। नरेशने अपने इस भाईको पाल-पोसकर बड़ा किया था, और अन्त तक अपने खर्चसे पढ़ाया भी। दो वर्षके लिए उसे विलायत भेजकर उन्हें स्त्रीसे लांछित होना पड़ा और महाजनका कर्जदार भी बनना पड़ा। सुरेश इस समय डाक्ट-विभागमें ऊँचे पदपर काम करता है। अपने कामके लिए उसे नाना प्रदेशोंमें घूमना पड़ता है। अब उसीपर एलाका भार आ पड़ा। यह भार उसने हृदयसे ही ग्रंगीकार किया।

सुरेशकी स्त्रीका नाम है माधवी। वह जिस परिवारकी लड़की है, उस परिवारमें लड़कियोंको परिमित पढ़ाना-लिखाना ही प्रचलित है; उसका परिमाण बीचके मापसे कम ही है, ज्यादा नहीं। विलायतसे लौटनेके बाद पति जब ऊँचे पदपर नियुक्त हुए तो उन्हें दूर-दूर घूमने-फिरनेका काम पढ़ने लगा, और तब उनके लिए बाहरके अनेक लोगोंके साथ सामाजिकता निभाना अनिवार्य हो उठा। कुछ दिनोंके अभ्यासके बाद माधवी निमन्त्रण-आमन्त्रणोंमें विजातीय लौकिकता पालन करनेमें अभ्यस्त हो गई। यहाँ तक कि गोरोंके क्लबमें भी वह अपनी पंगु अंगरेजी भाषाको, सकारण और अकारण हँसीके द्वारा पूरा करके, काम चला लिया करती थी।

इतनेमें, सुरेश जब किसी प्रान्तके बड़े शहरमें रह रहे थे, एला उनके घर रहने लगी। उसके रूप गुण और विद्याने चाचाके मनमें गर्वका संचार कर दिया। वे अपने ऊपरवालों, सहकर्मियों तथा देशी और विलायती मिलनेवालोंके सामने

एलाको प्रकट करनेके लिए व्यग्र हो उठे। एलाकी स्त्री-बुद्धि इस बातको ताड़ गई कि इसका फल अच्छा नहीं हो रहा। माधवी झूठे आरामका बहाना करके क्षण-क्षणमें कहने लगी—“मेरी तो जान बची—विलायती कायदेकी सामाजिकताका शोभन मुझपर क्यों लादना झूठमूठको! न तो मुझमें उतनी विद्या है और न बुद्धि।” रंग-ढंग देखकर एलाने अपने चारों तरफ एक जनानखाना-सा खड़ा कर डाला। सुरेशकी लड़की सुरमाको पढ़ानेका भार उसने अतिरिक्त उत्साहके साथ अपने ऊपर ले लिया। और बाकीका समय उसने लगा दिया एक थोसिस लिखनेमें। उसका विषय था वंगला मंगलकाव्य और चासरके काव्यकी तुलना। इस विषयको लेकर सुरेश भी बहुत उत्साहित हुए। इस समाचारका उन्होंने चारों ओर प्रचार कर दिया। माधवीने मुँह बनाकर कहा—“अति अच्छी नहीं होती।”

पतिसे कहा—“चटसे लड़कीको एलासे पढ़वाना शुरू कर दिया। क्यों, अधर मास्टरने क्या कसूर किया है? कुछ भी कहो तुम, पर मैं—”

सुरेश दंग रह गये, बोले—“क्या कहती हो तुम! एलाके साथ अधरकी तुलना! हूँ:।”

“दो-चार नोट्सकी किताबें रटकर पास कर लेनेसे ही विद्या नहीं आ जाती।”—कहकर गरदन टेढ़ी करके माधवी कमरेसे बाहर चली गई।

एक बात वह पतिसे कहना चाहती है; पर बात थोड़ी तक आकर रुक जाती है—“सुरमाकी उमर तेरह पार हो चली, आज नहीं तो कल लड़का हूँदनेके लिए देश-भरमें दौड़-धूप करनी पड़ेगी, तब एला सुरमाके पास रहेगी तो...। आजकलके लड़कोंकी आँखोंमें जैसा फीके रंगका नशा रहता है, वे क्या जानें कि सुन्दरता किसे कहते हैं?” गहरी साँसें भरती और सोचती—ये सब बातें उनसे कहना ही फिजूल है, घर-गृहस्थीके मामलोंमें पुरुष अन्धे ही होते हैं।

माधवी इस कोशिशमें लग गई कि जितनी जल्दी हो सके एलाका ब्याह हो जाय। ज्यादा कोशिश भी नहीं करनी पड़ी, अच्छे-अच्छे लड़के आप ही आ-आकर जुटने लगे—ऐसे लड़के कि सुरमाके साथ सगाई करनेको माधवीका मन ललचाने लगा। और एला उन्हें बार-बार निराश करके लौटा देती।

भतीजीकी इस जिद्द-भरी नासमझीसे सुरेश उद्धिग्न हो उठे, और चाचीको भी अत्यन्त असह्य हो उठा। वे जानती हैं कि समर्थ उमरकी लड़कीके लिए अच्छे वरकी उपेक्षा करना अपराध है। वयसोचित नाना प्रकारकी दुर्वटनाओंकी आशंका करने लगीं, और अपनी जिम्मेवारीको समझकर उनका हृदय व्यथित होने लगा। एला साफ समझ गई कि अब वह अपने चाचाके स्नेहके साथ उनकी गृहस्थीका द्वन्द्व कराने बैठी है।

ठीक इसी समय इन्द्रनाथ आ पहुँचे उस शहरमें। देशका विद्यार्थी-समाज उन्हें राज-चक्रवर्तीके समान मानता था। उनमें असाधारण तेज था, और विद्याकी ख्याति भी बहुत जबरदस्त थी। एक दिन सुरेशके घर उनका निमन्त्रण हुआ। उस दिन किसी एक मौकेसे एलाने, परिचय न होनेपर भी बिना किसी संकोचके, उनके पास आकर कहा—“मुझे आप अपना कोई काम नहीं दे सकते?”

आजकलके दिनोंमें इस तरहका आवेदन कोई विशेष आश्चर्यकी बात नहीं, परन्तु फिर भी इस लड़कीकी दीप्ति देखकर इन्द्रनाथ चौंक पड़े। उन्होंने कहा—“कलकत्तेमें अभी हाल ही में लड़कियोंके लिए नारायणी हाई स्कूल खोला गया है। तुम्हें उसका संचालन-भार दे सकता हूँ, तैयार हो!”

“तैयार हूँ अगर आप विश्वास करें।”

इन्द्रनाथने एलाके चेहरेपर अपनी उज्ज्वल दृष्टि रखते हुए कहा—“मैं आदमी पहचानता हूँ। तुमपर विश्वास करनेमें मुझे एक क्षणकी भी देर नहीं लगी। तुम्हें देखते ही समझ गया, तुम नवयुगकी दूती हो—नवयुगका आह्वान है तुममें।”

सहसा इन्द्रनाथके मुँहसे ऐसी बात सुनकर एलाके हृदयमें कम्पन-सा आ गया।

उसने कहा—“आपकी बातोंसे मुझे डर लगता है। गलतीसे मुझे ऊँचा न उठाइये। आपकी धारणाके योग्य बननेके लिए दुःसाध्य चेष्टा करूँगी, तो मैं टूट जाऊँगी। अपनी शक्तिकी सीमाके भीतर जहाँ तक हो सकेगा, आपके आदर्शकी रक्षा करती रहूँगी, मगर अपनेको वैसा समझ न सकूँगी।”

इन्द्रनाथने कहा—“गृहस्थीके बन्धनमें कभी न बँधोगी, यह प्रतिज्ञा तुम्हें करनी पड़ेगी। तुम समाजकी नहीं हो, तुम देशकी हो।”

एलाने सिर उठाकर कहा—“यही प्रतिज्ञा है मेरी।”

चाचाने गमनोद्यत एलासे कहा—“तुम्हें अब कभी व्याहकें लिए न कहूंगा। तू मेरे ही पास रह। यहींपर, मुहल्लेकी लड़कियोंका भार लेकर एक छोटा-मोटा क्लास खोलनेमें हर्ज क्या है ?”

चाचीने स्नेहार्द्र पतिकी इस नासमझीसे नाखुश होकर कहा—“अब वह बड़ी हो चुकी, अपनी जिम्मेदारी अपने ही ऊपर लेना चाहती है, यह तो अच्छी ही बात है। तुम बीचमें पड़कर स्कावट क्यों डालते हो ? तुम मनमें चाहे जो कुछ समझो, पर मैं पहलेसे कहे देती हूँ, उसकी फिकर मैं नहीं रख सकती।”

एलाने खूब दृढ़ताके साथ कहा—“मुझे काम मिल गया है, मैं काम करने ही जाऊँगी।”

एला काम करने ही गई।

इस भूमिकाके बाद पाँच वर्ष बीत गये, अब कहानी बहुत दूर पहुँच चुकी है।

पहला अध्याय

दृश्य—चायकी दूकान। उसके पास ही एक छोटा-सा घर है। उस घरमें विक्रीके लिए कुछ स्कूल-कालेजकी पाठ्य-पुस्तकें सजी हुई हैं, अधिकांश सेकेण्डहैंड। कुछ हैं यूरोपीय आधुनिक कहानी-नाटकोंके अंगरेजी अनुवाद। उन्हें गरीब-घरके लड़के पत्ते उलट-उलटकर चले जाते हैं। दूकानदार कुछ आपत्ति नहीं करता। दूकानके मालिक हैं कन्हाईलाल गुप्त, पुलिसके पेन्शनयाप्ता पुराने सब-इन्स्पेक्टर।

सामने बड़ी सड़क है, बाईं वगलसे एक छोटी-सी गली चली गई है। जो एकान्तमें बैठकर चाय पीना चाहते हैं, उनके लिए उसी कमरेमें एक तरफ फटे-पुराने टाटका पर्दा लगाकर अलग व्यवस्था कर दी गई है। आज उसी तरफ किसी विशेष आयोजनके लक्षण दिखाई दे रहे हैं। स्टूल-चौकियोंकी कमी दूर करनेके लिए दार्जिलिंग-टी-कम्पनीके मार्केटदार बक्स डाल दिये गये हैं। चायके पात्रोंमें भी अनिवार्य असमानता है; उनमें से कुछ तो नीले रंगके एनमेलके हैं और कुछ सफेद चीनी-मिट्टीके। टेबिलपर हैगिडल ह्टे दूधके जगमें फूलोंका गुलदस्ता है। दिनके करीब तीन बजे हैं। लड़कोंने एलालताको

निमन्त्रणका समय दिया था ठीक ठाई बजे। कहा था, एक मिनट भी पिछड़ जाओगी तो काम न चलेगा। असमयमें निमन्त्रण दिया गया था, क्योंकि उसी समय दूकान सूनी रहती है। चाय-पिपाघुओंकी भीड़ लगती है साढ़े-चार बजेके बाद। एला ठीक समयपर ही उपस्थित हुई थी। पर लड़कोंमें से एकका भी पता नहीं। इसीसे अकेली बैठे सोच रही थी—तो क्या तारीख सुननेमें गलती हो गई ! इतनेमें इन्द्रनाथको घुसते देख वह चौंक पड़ी। इस जगहपर उनके आनेकी आशा किसी भी तरह नहीं की जा सकती।

इन्द्रनाथने यूरोपमें बहुत दिन बिताये हैं, और सायन्समें उन्होंने काफी ख्याति भी प्राप्ति की है। काफी ऊँचे पदपर पहुँचनेका उन्हें अधिकार था, क्योंकि यूरोपीय अध्यापकोंके प्रशंसापत्र थे उदार भाषामें। यूरोपमें रहते हुए किसी एक वदनाम भारतीय राजनीतिकके साथ कदाचित् उनकी भेंट-मुलाकात हो गई थी, इसीसे देशमें आते ही उनके सभी कामोंमें बाधा पहुँचने लगी। अन्तमें इंग्लैण्डके किसी ख्यातनामा विज्ञानाचार्यकी विशेष सिफारिशसे उन्हें अध्यापकीका काम मिला भी, तो वह अयोग्य अधिकारीके अधीन। अयोग्यताके साथ ईर्ष्या होती है प्रखर, इसीसे उनकी वैज्ञानिक गवेषणाकी चेष्टा अधिकारियों द्वारा पद-पदपर बाधा पाने लगी। अन्तमें उन्हें ऐसी जगह स्थानान्तरित होना पड़ा, जहाँ लैबोरेटरी तक नहीं। उन्होंने समझ लिया कि इस देशमें उनके लिए जीवनके सर्वोच्च अध्यवसायका मार्ग बन्द है। औरोंकी तरह एक ही प्रदक्षिण-मार्गसे अध्यापनाका चिराभ्यस्त पहिया घुमाते हुए अन्तमें थोड़ीसी पेन्शनके सहारे जीवन समाप्त करें, अपनी इस दुर्गतिकी आशंकाको वे किसी भी तरह स्वीकार न कर सके। वे निश्चित जानते थे कि दूसरे किसी भी देशमें सम्मान प्राप्त करनेकी शक्ति उनमें काफी थी।

एक दिन इन्द्रनाथने जर्मन और फरासीसी भाषा सिखानेका एक प्राइवेट क्लास खोल दिया, और साथ ही भार लिया उद्भिज्-शास्त्र और भूतत्त्वमें कालेजके छात्रोंको सहायता पहुँचानेका। क्रमशः इस छोटेसे अनुष्ठानकी गुप्त सुरंगसे एक अप्रकाश्य साधनाकी जटिल जड़ें जेलखानोंके आँगनोंमें होकर बहुत दूर तक फैल गई।

इन्द्रनाथने पूछा—“एला, तुम यहाँ ?”

एलाने कहा—“आपने मेरे घर जानेकी उन लोगोंसे मनाही कर दी है, इसलिए लड़कोंने मुझे यहीं बुलाया है।”

“इसकी खबर मुझे पहले ही से मिल गई थी। खबर मिलते ही मैंने उन लोगोंको अन्यत्र जहरी कामसे लगा दिया। उन सबकी तरफसे मैं एपोलौजी (माफी) माँगने आया हूँ। विल भी चुका दूँगा।”

“क्यों आपने मेरा निमन्त्रण विगाड़ दिया?”

“लड़कोंके साथ तुम्हारा सहृदयताका सम्बन्ध है, इस बातको दबा देनेके लिए। कल देख लेना,—तुम्हारे नामसे एक निबन्ध अखबारमें भेज दिया है।”

“आपने लिखा है? आपकी कलमसे निकली चीज फर्जी नामसे नहीं चल सकती; लोग उसे अकृत्रिम समझके विश्वास नहीं करेंगे।”

“वायें हाथसे कच्ची लिखावट लिखी है; बुद्धिका परिचय भी नहीं है, सद्बुद्धि है।”

“कैसा?”

“तुम लिख रही हो,—लड़के अकाल जागरणसे देशको मारे डाल रहे हैं। नारी-समाजसे तुम्हारी सकल अपील है कि वे इन अभागोंका दिमाग ठंडा करें। लिखा है,—दूसे तिरस्कार करनेसे तुम्हारी आवाज उनके कानों तक न पहुँचेगी। उनके बीचमें जा पड़ना होगा, वहाँ उनके नशेका अड्डा है। शासनकर्ताओंको सन्देह हो सकता है, सो होने दो। कह रही हो, तुम माकी जाति हो; उनका दंड स्वयं श्रंगीकार करके भी यदि तुम उनकी रक्षा कर सकीं, तो वह भरण भी सार्थक होगा। आजकल सर्वदा ही हम कहा करती हैं कि हम मातृजाति हैं,—ये सब बातें आँसुओंसे भिगोकर लेखमें भर दी हैं। मातृवत्सल पाठकोंकी आँखोंमें आँसू आ जायेंगे। अगर तुम पुरुष होतीं, तो इसके बाद फिर तुम्हारे लिए रायबहादुरकी पदवी मिलना असम्भव न रह जाता।”

“आपने जो-कुछ लिखा है, वह कतई मेरी बात हो ही नहीं सकती, ऐसा तो मैं नहीं कहूँगी। इन सत्यानाशी लड़कोंसे मेरा प्रेम है,—ऐसे लड़के हैं कहाँ? एक दिन उनके साथ मैं कालेजमें पढ़ी हूँ। पहले-पहल वे मेरे नामसे बोर्डपर ग्रंट-संट लिखा करते थे,—पीछेसे ‘छोटी इलायची’ कहकर चिन्ताते और तुरन्त ही भलेमानसोंकी तरह आसमानकी ओर देखने

लगते थे। फोर्थ-ईयरमें मेरी एक सहेली पढ़ती थी इन्द्राणी—उसे कहा करते थे ‘बड़ी इलायची’। वह बेचारी देखनेमें कुछ लम्बी थी, रंग भी साफ न था। इन सब छोटे-मोटे उपद्रवोंसे बहुत-सी लड़कियाँ नाराज हो जाया करती थीं, मगर मैं लड़कोंका ही पक्ष लिया करती थी। मैं जानती थी कि हम उनकी आँखोंके लिए अनभ्यस्त हैं, इसीसे उनका व्यवहार बेसलीकेका होता है—कभी-कभी भद्दा भी हो जाता है, परन्तु वह स्वाभाविक नहीं है। जब अभ्यास हो गया तो स्वर अपने-आप ही सहज-स्वाभाविक हो गया। छोटी इलायची हो गई एला जीजी। बीच-बीचमें कभी किसीके स्वरमें मधुर रस भी आया है,—और आयेगा क्यों नहीं? पर मैं कभी उससे डरी नहीं। मैंने अपने अनुभवसे देखा है कि लड़कोंके साथ सलूक करना बहुत ही सहज है, अगर लड़कियाँ ज्ञात या अज्ञात-रूपसे उसके साथ आखेटका खेल खेलनेकी कोशिश न करें। उसके बाद एक-एक करके देखा कि उनमें जो सबसे अच्छे थे, जिनमें नीचता नहीं थी, जिनमें स्त्रियोंके प्रति पुरुषोचित सम्मान—”

“अर्थात् कलकत्तेके रसिक लड़कोंकी तरह जिनमें रस गाँजने नहीं लगा था—”

“हाँ, वे ही, दौड़ने लगे मृत्यु-दूतके पीछे-पीछे हथेलीपर जान रखे, उनमें से लगभग सभी मेरी ही तरह गँवार थे। वे ही अगर मरनेको दौड़ें, तो मैं नहीं चाहती घरके कोनेमें जिन्दा रहना। ज्यों-ज्यों दिन बीतते जाते हैं, हमारा उद्देश्य उद्देश्य न होकर नशा होता जा रहा है। हमारे काम करनेकी पद्धति मानो अपनी वेताल धुंमे चली जा रही है विचारशक्तिके बाहर। अच्छा नहीं लगता। ऐसे-ऐसे लड़कोंकी किस अन्धशक्तिके सामने बलि दी जा रही है! मेरी तो छाती फटती है।”

“वत्से, यह जो धिक्कार है, यही तो कुरुक्षेत्रकी उपक्रमशिका है। अर्जुनके मनमें भी क्षोभ उत्पन्न हुआ था। मैं डाक्टरी सीखते समय शुरू-शुरूमें मुरदे चीरते-चीरते मारे घृणाके मूर्छित हो जाया करता था। वह घृणा ही घृणाके योग्य है। शक्तिके प्रारम्भमें निष्ठुरकी साधना है, अन्तमें शायद क्षमा हो। तुम लोग कहा करती हो—स्त्रियाँ माकी जाति हैं, यह कोई गौरवकी बात नहीं। मा तो प्रकृतिके हाथसे स्वतः ही बनी हुई हैं।

जन्तु-जानवर भी उससे नहीं बच पाये । उससे भी बड़ी बात यह है कि तुम शक्तिरूपिणी हो, इसी बातको प्रमाणित करना होगा—दया-मायाके दलदलको पार करके कड़ी जमीनपर । शक्ति दो, पुरुषको शक्ति दो ।”

“ये सब बड़ी-बड़ी बातें कहकर आप बहका रहे हैं हम लोगोंको । हम जो असलमें हैं, उससे बहुत ज्यादा आप दावा करते हैं । इतना सहन न होगा ।”

“दावेके जोरसे ही दावा सत्य होता है । तुम लोगोंको हम जैसा विश्वास करते रहेंगे, तुम वैसी ही होती रहोगी । तुम लोग भी उसी तरह हमपर विश्वास करो, जिससे हमारी साधना सत्य हो ।”

“आपसे बातें कहलाना मुझे अच्छा लगता है, पर अभी नहीं । मैं खुद कुछ कहना चाहती हूँ ।”

“अच्छा ! तो यहाँ नहीं, चलो उस पीछेवाले कमरेमें ।”

परदा-लगे अंधेरे-से कमरेमें दोनों चले गये । वहाँ एक पुरानी टेबिल थी और उसके दोनों तरफ दो वेन्चें ; दीवारपर एक बड़े साइज़का भारतवर्षका मैप टंगा था ।

“आपने एक अन्याय किया है—यह बात बिना कहे मुझसे रहा नहीं जाता ।”

इन्द्रनाथको इस तरह कहना, सिर्फ एलाका ही काम है । फिर भी उसके लिए यह सहज नहीं था, इसीसे उसे अपने गलेपर अस्वाभाविक जोर देना पड़ा ।

इन्द्रनाथके लिए सिर्फ इतना ही कहना कि वे देखनेमें अच्छे हैं, पूरा कहना नहीं होगा । उनके चेहरेपर एक कठिन आकर्षण-शक्ति है । मानो उनके सुदूर अन्तःकरणमें एक वज्र बैधा है, जिसका गर्जन नहीं सुनाई देता, हाँ, उसकी निष्ठुर दीप्ति बीच-बीचमें तेजीसे निकली पड़ती है । चेहरेके भावमें मँजी-घसी भद्रता है, पैनाई हुई छुरीकी तरह । कड़ी बात कहनेमें कोई हिचक नहीं, पर हँसके बोलते हैं ; गलेका स्वर गुस्सेमें भी ऊँचा नहीं चढ़ता, गुस्सा प्रकट होता है हँसीमें । जितनी सफाईसे मर्यादाकी रक्षा होती है, उतनी कभी भूलते नहीं और उसका अतिक्रम भी नहीं होता । सिरके बाल कम ढँटे हुए हैं, पर सम्हाले बिना सिलसिला बिगड़नेका कोई डर नहीं । चेहरेका रंग है, बादामी, ललाई लिये हुए ।—भौंहोंके ऊपर प्रशस्त तना हुआ ललाट है, दृष्टिमें कठिन बुद्धिकी तीक्ष्णता

है, ओठोंपर अविचलित संकल्प और प्रभुत्वके गौरवकी झलक है । अत्यन्त दुःसाध्य ढंगका दावा वे अनायास ही कर सकते हैं, जानते हैं कि वह दावा सहजमें खारिज नहीं हो सकता । कोई जानता है कि उनकी बुद्धि असाधारण है, और कोई समझता है कि उनकी शक्ति अलौकिक है । इसके सिवा किसीमें सीमाहीन श्रद्धा है तो किसीमें अकारण भय ।

इन्द्रनाथने मुसकराते हुए कहा—“कौनसा अन्याय ?”

“उमाको आपने व्याह करनेकी आज्ञा दी है, पर वह तो व्याह करना नहीं चाहती ।”

“कौन कहता है, नहीं चाहती ?”

“वह खुद ही कहती है ।”

“हो सकता है कि वह खुद ठीक नहीं जानती हो, या ठीक बताती न हो ।”

“उसने आपके सामने प्रतिज्ञा की थी व्याह न करनेकी ।”

“तब थी वह सत्य, अब सत्य नहीं रही । मुँहकी बातसे सत्यकी सृष्टि नहीं की जा सकती । प्रतिज्ञा तो उमा स्वयं ही तोड़ देती,—मैंने तुझ्वा दी, उसका अपराध बचा दिया ।”

“प्रतिज्ञा पूरी न करनेकी जिम्मेदारी उसीकी है, या तो वह उसे तोड़ती या अपराध करती ।”

“तोड़ते-तोड़ते आस-पास बहुत ज्यादा तोड़-फोड़ देती, उसमें हम सभीका नुकसान होता ।”

“मगर वह जो बहुत रो-धो रही है ।”

“तो फिर रोने-धोनेके दिन और न बढ़ने दूँगा—कल परसोंके भीतर ही व्याह कर-करा दिया जायगा ।”

“कल-परसोंके बाद भी तो उसका सारा जीवन पड़ा हुआ है ।”

“लड़कियोंका व्याहसे पहलेका रोना ‘प्रभाते मेघाडम्बरम्’ है ।”

“आप बड़े निष्ठुर हैं ।”

“क्योंकि मनुष्यपर जिस विधाताका प्रेम है, वह स्वयं निष्ठुर है, जानवरको ही वह प्रश्रय देता है ।”

“आप जानते हैं, उमा सुकुमारसे प्रेम करती है ।”

“इसीसे उसे अलग करना चाहता हूँ ।”

“प्रेमकी सजा ?”

“प्रेमकी सजाके कुछ मानी नहीं होते । ऐसे तो चेचक

होना भी एक सजा है,—मगर गोटी निकल आनेपर उसे घरसे निकालकर अस्पताल भेज देना ही ठीक है।”

“सुकुमारके साथ व्याह हो जाय तो ठीक है।”

“मगर सुकुमारने तो कोई कसूर नहीं किया। वैसे लड़के और हैं कितने?”

“वह अगर स्वयं ही उनासे व्याह करनेको राजी हो जाय?”

“असम्भव नहीं। इसीसे तो इतनी जल्दी पड़ी है। उस सरीखे लड़के श्रेणीके पुरुषके मनमें विध्रम ला देना लड़कियोंके लिए बहुत आसान है;—सुकुमारके सामने दो बूँद आँसू टपकाकर सौजन्यको प्रश्रय सावित किया जा सकता है। सुनकर नाराज हो रही हो?”

“नाराज क्यों होने लगी? मेरे अनुभवमें ऐसी घटनाओंकी कमी नहीं कि स्त्रियोंकी निपुणताने बढ़ावा दिया है और उसका दायित्व उठाना पड़ा है पुरुषको। अब समय आ गया सत्यके अनुरोधसे न्याय-अन्याय विचार करनेका। मैं ऐसा किया करती हूँ, इसीसे तो लड़कियाँ मुझे देख नहीं सकतीं। जिसके साथ उमाके व्याहका हुक्म हुआ है, उस भोगीलालका क्या मत है?”

“उस निष्कण्टक भलेमानसके मतामतकी कोई बात ही नहीं। भारतकी लड़की-मात्रको वह विधाताकी अपूर्व सृष्टि समझता है। ऐसे मुग्ध-स्वभावी लड़केको दलसे अलग कर देना ही ठीक है। कूड़ा-करकट फेंकनेकी सबसे अच्छी डलिया है व्याह।”

“इन सब उत्पातोंकी आशंका होते हुए भी आपने स्त्री-पुरुषोंको एकत्र क्यों किया?”

“जिस संन्यासीने शरीरपर भस्म रमाई है और जिस भस्म-कुंडने प्रवृत्तियोंको भस्म कर दिया है, उन स्त्रीवोंसे काम नहीं होगा इसलिए। जब देखूँगा कि हमारे दलका कोई अग्नि-उपासक असावधानीसे अपने ही अन्दर आग लगाना चाहता है—चटसे हटा दूँगा उसे। हमारी आग देश-भरमें व्याप्त है, बुझे-हुए दिलसे वह नहीं जल सकती, और उनके जरिये भी कुछ नहीं हो सकता जो आगको दबाना नहीं जानते।”

एला गम्भीर मुँह बनाये बैठी रही। कुछ देर बाद आँखें नीची करके बोली—“तो मुझे आप छोड़ दीजिये।”

“इतनी क्षति करनेको क्यों कहती हो?”

“आप जानते नहीं।”

“कौन कहता है, नहीं जानता? देखा है मैंने तुम्हारे खदरमें कुछ-कुछ रंग आने लगा है। जान लिया कि हृदयमें अरुणोदय हो गया। मैं समझ सकता हूँ कि किसी-एकके पैरोंकी आदृष्टकी प्रत्याशामें तुम्हारे कान विछे हुए हैं। पिछले शुक्रवारको जब मैं तुम्हारे घर गया था, तुमने सोचा था कि कोई और है। देखा कि मनको ठीक कर लेनेमें तुम्हें कुछ समय लगा। शरमाओ मत, एला, इसमें असंगत कोई बात नहीं।”

कान सुर्ख हो गये एलाके, चुपचाप बैठी रही।

इन्द्रनाथने कहा—“तुम किसीको प्यार करती हो, यही तो? तुम्हारा मन तो जड़ पत्थरका बना नहीं है। जिसे प्यार करती हो, उसे भी जानता हूँ। पाश्चात्तापका कारण तो इसमें कुछ भी नहीं देखता।”

“आपने कहा था कि एकाग्र-चित्तसे काम करना होगा। हरएक हालतमें वैसा नहीं भी हो सकता है।”

“सबके लिए नहीं। परन्तु प्रेमके भारी भारसे तुम अपना त्रत डुबो दोगी, ऐसी लड़की तुम नहीं हो।”

“मगर—”

“इसमें मगर कुछ भी नहीं—तुम किसी भी हालतमें छुटकारा नहीं पा सकती।”

“मैं तो आप लोगोंके किसी काममें नहीं आती, यह तो आप जानते ही हैं।”

“तुमसे मैं काम नहीं चाहता, कामकी सब बातें तुमसे कहता भी नहीं। तुम स्वयं कैसे समझ सकती हो कि तुम्हारे हाथका रक्तचन्दनका टीका लड़कोंके मनमें कैसे आग लगा देता है! उसे बाद देकर सिर्फ सूखी तनखाहपर काम करानेसे तुमसे पूरा काम नहीं मिल सकता। हम कामिनी-कांचनके त्यागी नहीं हैं। जहाँ कांचनका प्रभाव है वहाँ कांचनकी मैं अवज्ञा नहीं करता, जहाँ कामिनीका प्रभाव है वहाँ कामिनीको वेदीपर बिठाया है।”

“आपसे भूट नहीं बोलूँगी, मैं समझ रही हूँ कि मेरा प्रेम दिनों-दिन मेरे अन्य सब प्रेमको पीछे छोड़े जा रहा है।”

“कोई डर नहीं, खूब प्रेम करो। केवल ‘मा-मा’—”

स्वरमें देशको जो पुकारा करते हैं वे चिर-शिशु ही रहेंगे। देश वृद्धे-वृद्धोंकी मा नहीं है, देश अर्द्ध-नारीश्वर है—स्त्री-पुरुषके मिलनमें उसकी उपलब्धि है। इस मिलनको घर-गृहस्थीके पिंजड़ेमें बन्द करके निस्तेज मत करो।”

“लेकिन फिर आप उमाको—”

“उमा ! कालू !—प्रेमके शुष्क स्वरूप हैं वे, वे इसे सह कैसे सकेंगे ? जिस दाम्पत्यके घाटपर उनकी सम्पूर्ण साधनाका अन्त्येष्टि-संस्कार है, समय रहते वहीं दोनोंकी गंगायात्रा कराये दे रहा हूँ।—जाने दो इस चर्चाको। सुननेमें आया है कि तुम्हारे घरमें डकैत घुसा था परसों रातको।”

“हाँ, घुसा तो था।”

“अपनी जुजुत्सु-शिचासे कुछ फायदा उठाया तुमने ?”

“मेरा तो विश्वास है कि डकैतकी कलाई तोड़ दी है।”

“मनके भीतर अहा-उहू कुछ नहीं हुआ ?”

“होता, पर डर था, कहीं वह मेरा अपमान न कर बैठे। वह अगर यन्त्रणासे हार मान लेता, तो मैं आखिर तक मरोड़ न दे सकती।”

“पहचान सकी थीं वह कौन था ?”

“अंधेरेमें दिखाई नहीं दिया।”

“अगर दिखाई देता तो पहचान लेतीं, वह अनादि था।”

“अरे-रे, यह क्या बात ! अपना अनादि ! वह तो लड़का ही है अभी।”

“मैंने ही उसे भेजा था।”

“आप ही ने ! क्यों ऐसा काम किया ?”

“तुम्हारी भी परीक्षा हो गई, और उसकी भी।”

“कैसे निष्ठुर हैं आप !”

“मैं था नीचेके कमरेमें, उसी वक्त हठी ठीक कर दी। तुम अपनेको समझती हो व्यथा-कातर। मैंने समझना चाहा था कि विपत्तिके सामने कातरता स्वाभाविक नहीं होती। उस दिन तुमसे कहा था वक्रीके वक्त्रो पिस्तौलसे मारनेके लिए। तुमने कहा कि तुमसे हो ही नहीं सकता। तुम्हारी फुफेरी वहनने बहादुरीके साथ मार दी गोली। जब

देखा कि जानवर धप-से गिर पड़ा, तो कठोरताका आभास दिखानेके लिए ठहाका मारकर हँस पड़ी। हिस्टीरियाकी हँसी थी वह, उस दिन रातको उसे नींद नहीं आई। मगर तुम्हें यदि शेर भी खाने आता और तुम डरपोक न होतीं, तो उसी वक्त उसे मार देतीं, दुविधा न करतीं। हम उस शेरको मनके सामने स्पष्ट देखा करते हैं, दया-मायाको तिलांजलि दे दी है, नहीं तो अपनेको सेन्टिमेन्टल (भावुक) समझकर धृणा करता। श्रीकृष्णने अर्जुनको यही बात समझाई थी। निर्दय मत होना, पर कर्तव्यके समय निर्मम जरूर होना। समझ गई ?”

“समझ गई।”

“अगर समझ गई हो, तो एक प्रश्न कहूँगा। तुम अतीनको प्यार करती हो ?”

कोई जवाब न देकर एला चुप बनी रही।

“अगर कभी वह हम सबको विपत्तिमें डाल दे, तो अपने हाथसे तुम उसे मार नहीं सकती ?”

“उनके लिए यह बात इतनी असम्भव है कि ‘हाँ’ कहनेमें भी मुझे हिचक नहीं।”

“मान लो, अगर सम्भव हो ?”

“मुझे चाहे कुछ भी क्यों न कहूँ, अपनेको क्या मैं अन्त तक पहचानती हूँ ?”

“पहचानना ही होगा अपनेको ! सारी भीषण सम्भावनाओंकी रोज कल्पना करके अपनेको तैयार रखना होगा।”

“मैं निश्चितरूपसे कहती हूँ, आपने मुझे गलतीसे चुना है।”

“मैं निश्चित जानता हूँ, मैंने गलती नहीं की।”

“मास्टर साहब, आपके पैरों पड़ती हूँ, अतीनको मुक्ति दीजिये।”

“मैं मुक्ति देनेवाला कौन हूँ ? वह अपने ही संकल्पके बन्धनमें खुद बंधा है। उसके मनसे दुविधा कभी भी नहीं मिट सकती ; रुचिपर चोट पहुँचा करेगी हर घड़ी, तो भी उसका आत्म-सम्मान उसे ले जायगा अन्त तक।”

“आदमी पहचाननेमें क्या आप कभी गलती नहीं करते।”

“करता हूँ। बहुतसे आदमी ऐसे हैं, जिनके स्वभावमें दो तरहकी घुनावटका काम है। दोनोंमें कोई मेल नहीं।

* मरणासन्न वृद्ध व्यक्तिको पहलेसे ही गंगाके तटपर ले जानेका नाम गंगायात्रा है।

फिर भी दोनों ही सत्य हैं। वे खुद अपने तर्क भी गलती करते हैं।”

भारी गलेकी आवाज आई—“कहो जी, भाई साहब।”

“कन्हारि हो क्या ? आग्रो-आग्रो।”

कन्हारि गुप्त कमरेके भीतर दाखिल हुआ। ठिगना मोटा आदमी है अथवृद्ध। दाढ़ी-मूँछ बनानेकी फुरसत नहीं मिली, सारा चेहरा बँटीला हो उठा है। माथेके सामनेके बाल उड़ गये हैं ; धोतीके ऊपर मोटी खादीकी चढ़र है, धोबीकी कृपा-दृष्टिसे वंचित ; कुरता है ही नहीं। हाथ दोनों शरीरेके मापके हिसाबसे छोटे लगते हैं, मालूम होता है—हमेशा वे काम करनेको तैयार हैं। दलके लोगोंका यथासम्भव पेट भरनेके लिए ही कन्हारिकी यह चायकी दुकान है।

कन्हारिने अपने स्वभाविक दवे और बैठे हुए गलेसे कहा—
“भाई साहब, तुम्हारी ख्याति है; वाक्संयमके लिए, तुम्हें मुनि कहा जाय तो बेजा नहीं। एला-जीजी शायद तुम्हारी उस ख्यातिको मिट्टीमें मिला देंगी।”

इन्द्रनाथने हँसते हुए कहा—“वात न कहनेकी ही साधना है हम लोगोंकी। नियमकी रक्षा करनेके लिए ही व्यतिक्रमकी जरूरत है। यह लड़की खुद वात नहीं करती, दूसरोंको वात कहनेका मौका देती है,—वाक्यके लिए यह एक बहुमूल्य आतिथ्य है।”

“क्या कहते हो तुम भी ! एला-जीजी वात नहीं करतीं ! तुम्हारे सामने चुप हैं, पर जहाँ मुँह खोलती हैं, वहाँ वाणीकी बाढ़ ही आई समझो। मैं तो पक्के माथेका आदमी हूँ, फिर भी भनक कानमें पड़ते ही खाता वही छोड़कर ओटसे उसकी बातें सुनने चला आता हूँ। अब मेरी भी तरफ जरा ध्यान दो। एला-जीजी सरीखा तो मेरा कंठ नहीं है, पर संज्ञेपमें जो कुछ कहूँगा, वह मर्म तक पहुँच जायगा।”

एला फट उठ खड़ी हुई। इन्द्रनाथने कहा—“जानेसे पहले एक बात तुम्हें जता दूँ। दलके लोगोंके सामने मैं तुम्हारी निन्दा किया करता हूँ। यहाँ तक कि ऐसी बात भी मैंने कही है कि किसी दिन तुम्हें शायद एकदम निश्चिह्न हटा देना पड़े। कहा है, अतीनको तुम फोड़े ले रही हो, जिससे और भी कुछ फूट सकता है।”

“कहते-कहते बातको सच क्यों किये डाल रहे हैं ? क्या

मालूम, यहाँके साथ शायद मेरा कुछ असामंजस्य हो।”

“होनेपर भी मैं तुम्हें सन्देह नहीं करता ; परन्तु फिर भी उनके सामने तुम्हारी निन्दा करता हूँ। तुम्हारा शत्रु कोई नहीं है, ऐसी प्रसिद्धि है, मगर देखता हूँ कि तुम्हारे अनुरक्तोंमें से बारह-आने देशी मन उस निन्दाको विश्वास करनेके लिए आग्रहके साथ लालायित हो उठते हैं। ये निन्दा-विलासी लोग निष्ठाहीन हैं। ऐसोंके नाम खातेमें नोट कर लेता हूँ। बहुतसे पत्रे भर गये हैं।”

“मास्टर साहब, उन्हें निन्दासे प्रेम है, इसीसे वे निन्दा करते हैं, मुझपर गुस्सा होनेकी वजहसे नहीं।”

“अजातशत्रु नाम सुना है, एला ? ये सभी जातशत्रु हैं। जन्मकालसे ही इनकी यह भ्रष्टतुक शत्रुता देशके अभ्युत्थानकी सारी चेष्टाओंको बराबर धूलमें मिलाती आ रही है।”

“भाई साहब, आज यहीं तक—विषयको आंगामी अंकोंमें समाप्य रहने दो। एला-जीजी, तुम्हारे चायके निमन्त्रण तोड़नेकी जड़में गुप्त रूपसे मेरा भी हाथ हो, तो कुछ खयाल मत करना। - मेरी चायकी दुकानपर ताला पड़नेका समय आ पहुँचा। शायद सौ-दो-सौ कोस दूर जाकर अवकी नार्ईकी दुकान खोलनी पड़ेगी। इस बीचमें अलकानन्द तेलके पीपे तैयार करा लिये हैं। महादेवकी जटा निचोड़कर निकाला गया है। एक सर्टिफिकेट दे देना, बत्से, लिखना—तेल लगानेके बादसे जूड़ा बाँधना एक आफत-सी हो गई है, लम्बी वेणीको सम्हालकर उठाना स्वयं दशभुजा देवीके भी बूतेके बाहर है।”

जाते वक्त एला दरवाजेके पास आकर पीछेको मुँह करके बोली—“मास्टर साहब, याद रही आपकी बात, तैयार रहूँगी। मुझे हटानेका दिन भी शायद आयेगा, चुपकेसे बिला जाऊँगी।”

एलाके चले जानेपर इन्द्रनाथने कहा—“तुम्हें चंचल क्यों देख रहा हूँ, कन्हारि ?”

“फिलहाल सड़कके किनारे मेरी उस सामनेकी टेबिलपर ही तीन-चारके गुंठे लड़के वीरसका प्रचार कर रहे थे। आवाजसे मालूम होता था जॉन बुलके ही दत्तक-बढ़ड़े हैं। मैंने सिडिशनके नमूने बताकर उनके नामसे थानेमें रिपोर्ट कर दी है।”

“समझनेमें गलती तो नहीं की, कन्हारि ?”

“धत्कि गलतीसे सन्देह करना अच्छा, मगर सन्देह न करके गलती करना घातक है। खालिस वेवकूफ ही अगर हुए तो कोई उन्हें बचा नहीं सकता, और अगर असल दुश्मन हुए तो उन्हें मार ही कौन सकता है? मेरी रिपोर्टसे उन्नति ही होगी। उस दिन जोर-शोरसे वे सब शैतान शासन-प्रणालीके ऊपरसे रक्तगंगा बहानेका प्रस्ताव कर रहे थे। निश्चय ही अभयचरण रक्षित इनकी उपाधि है। एक दिन शामको कैश-क्वस लेकर हिसाब मिलाने बैठा था। अचानक एक फटे-पुराने मैले-कुचैले कपड़े पहने लड़का चला आया, चुपकेसे बोला—हय्ये चाहिए पचीस, दिनाजपुर जाना है। अपने माथुर-मामाका नाम भी लिया। मैं तड़ाकसे उछलकर चिछा उठा—शैतान, इतनी बड़ी हिम्मत तुम्हारी! अभी पकड़वाये देता हूँ पुलिस बुलाकर।—अपने पास समय बिलकुल न था, नहीं-तो प्रहसन खतम कर देता, ले जाता थानेमें। तुम्हारे लड़के लोग जो बगलके कमरेमें बैठे चाय पी रहे थे, वे मेरे ऊपर अभिशर्मा हो उठे,—उसे देनेके लिए चन्दा उगाहना शुरू कर दिया, सबकी जेबें बटोरनेपर देखा गया कि तेरह आनेसे ज्यादा फंड न हो सका। लड़का मेरी मूर्ति देखकर चुपकेसे चम्पत हो गया।”

“तब तो देखता हूँ तुम्हारे ढकनके छेदसे गन्ध निकलने लगी है—भक्खियोंकी आमदनी शुरू हो गई।”

“इसमें शक नहीं। भाई साहब, अभी ही फैला दो अपने चेलोंको दूर-दूर—उनमेंसे एक भी बेकार न रहने पावे। *Ostensible means of livelihood*—जीविकाका प्रत्यक्ष साधन—हरएकके लिए होना ही चाहिए।”

“चाहिए तो जरूर ही। पर उपाय भी कुछ सोचा है?”

“बहुत दिनोंसे। हाथ खाली न था, खुद कुछ कर न सका। सोच रखा है, उपकरण भी इकट्ठे कर लिये हैं धीरे-धीरे। माधव कविराज बेचता है ज्वराशनि-चटिका, उसमें बारह-आने कुनैन है। वही लेकर लेबिल बदलके नाम रख दूंगा मैलेरियारि गोल्याँ, कुनैनके पीछे बहुत-सी झूठी बातें जोड़ देनी पड़ेंगी। प्रतुल सेनको लगा दिया जायगा कैन्सिस्-बैंग हाथमें लिये उसके प्रचार करनेमें। तुम्हारा निवारण फर्स्ट क्लास एम० एस-सी० की लज्जा त्यागकर मैरवी-क्वचके काममें लग जायगा,—उस कवचमें सप्तधातुके

सिवा नवीन रसायनकी और-भी कई नई धातुओंके नाम जोड़कर प्राचीन ऋषिओं और आधुनिक विज्ञानका अभूतपूर्व सम्मिलन साधन किया जा सकता है। जगबन्धु संस्कृत श्लोकोंपर व्याकरणका जादू चलाकर उच्चस्तरसे प्रमाणित करता रहेगा कि चाणक्य जनमे थे बंगदेशके नेत्रकोनामें, मेरा भी जन्मस्थान उसी सच-डिवीज़नमें है। इस विषयमें भयंकर रूपसे खंडन-मंडन चलने दो साहित्य-क्षेत्रमें, अन्तमें चाणक्य-जयन्ती की जायगी मेरे ही परदादेके खंडहर मकानमें। तुम्हारा कैम्बेली डाक्टर तारिणी सडेल शीतला माताके मन्दिरके लिए चन्दा वसूल करके मुहल्लेवालोंकी नींद हराम करता रहेगा। असल बात यह है कि तुम्हारे सबसे बड़कर ऊँचे माथेवाले ग्रैनेडियर (योद्धा) लड़कोंको कुछ दिनोंके लिए फालतू रोजगारोंसे ढक देना होगा—कोई उन्हें वेवकूफ कहता रहे और कोई चतुर व्यवसायी।”

इन्द्रनाथने हँसकर कहा—“तुम्हारी बातें सुनकर मेरी भी इच्छा होती है कि किसी रोजगारमें लग जाऊँ। और किसी बातके लिए नहीं, सिर्फ दिवालिया होनेकी कार्य-प्रणाली और साइकॉलॉजीका अध्ययन करनेके लिए।”

कन्होईने कहा—“तुम जिस रोजगारमें लगे हुए हो, भाई साहब, उसका आज न सही कल सही, दिवाला तो निकालेगा ही। जो दिवालिये होते हैं वे न सम्भलनेके कारण होते हैं, सो बात नहीं; असलमें वे नुकसानके रास्तेको किसी भी तरह छोड़ नहीं सकते, इसीसे होते हैं—दिवालिया होनेका मरणार्कषण सबसे बड़ा सच्चाइस आकर्षण है। फिलहाल इस विषयकी आलोचनासे कुछ फायदा नहीं, एक प्रश्न मनमें उठता है, तुमसे पूछ लूँ। एला जैसी सुन्दरी साधारणतः देखनेमें नहीं आती—इस बातको मानते हो तुम?”

“मानता क्यों नहीं।”

“तो फिर उसे तुमने अपने अन्दर रखा किस बूतेपर है?”

“कन्होई, इतने दिनोंमें तुम्हें मुझको समझ लेना चाहिए था। आगसे जो डरता है वह आगका इस्तेमाल नहीं कर सकता। अपने काममें आगको मैं प्रथक् नहीं रखना चाहता।”

“अर्थात् उससे काम बिगड़े या सुधरे,—तुम परवाह नहीं करते।”

“सृष्टिकर्ता आगसे खेला करता है। निश्चित फलका

हिसाब लगाकर सृष्टिका काम नहीं चलाया जा सकता ; अनिश्चितकी प्रत्याशासे ही उसका विराट् प्रवर्तन है। ठंडा माल-मसाला लेकर अँगूठेसे दबा-दबाकर जो खिलौने बनाये जाते हैं, उसके बाजार-भावका हिसाब लगाकर लाभ करनेका मन मेरा नहीं है। यह जो अतीन लड़का आया है एलके आकर्षणसे, उसके अन्दर आफत ढानेका डायनामाइट मौजूद है—उसके प्रति इसीलिए मेरी इतनी उत्सुकता है।”

“भाई साहब, तुम्हारी इस भीषण लैबोरेटरीमें हम लोग तो सिर्फ भाइन कँधेपर ढालकर वेहराका काम करते हैं। उन्मत्त होकर अगर कहीं कोई गैस या यंत्र टूट-फूटकर छिटक पड़े तो हमारे कपार चकनाचूर हो जायेंगे। इस बातको लेकर गर्व करनेका जोर हमारी खोपड़ीके भीतर नहीं है।”

“इस्तीफा देकर विदा क्यों नहीं ले लेते?”

“फलका लोभ जो है हम लोगोंमें—तुम्हें न हो, यह दूसरी बात है। तुम्हारे ही दलालके मुँहसे एक दिन सुना था—Elixir of life (जीवनामृत) शायद मिल सकता है। तुम्हारी इस सत्यानासी रिसर्चके चक्रमें हम गरीब जो आ पड़े हैं वह निश्चित आशाके ही आकर्षणसे, अनिश्चितकी कुहकसे नहीं। तुम इसे देख रहे हो जुआरीकी नशीली आँखोंसे, हम देखते हैं रोजगारकी साफ निगाहसे। अन्तमें खतियौनी वहीमें आग लगाकर हम लोगोंसे मजाक मत कर डालना, भाई साहब ! इसकी पाई-पाईमें हमारी छातीका खून है।”

“मेरे मनमें किसी तरहका अन्ध-विश्वास नहीं है, कन्हाई ! हार-जीतके बारेमें तो एकदम सोचना ही छोड़ दिया है। विशाल कर्मके क्षेत्रमें मैं हूँ कर्ता, यहीं मैं अच्छा लगता हूँ, इसीसे हूँ—यहाँ हार भी बड़ी है, जीत भी बड़ी है। उन लोगोंने चारों तरफके द्वार बन्द करके मुझे छोटा करना चाहा था,—मरते-मरते मैं साबित कर देना चाहता हूँ कि मैं बड़ा हूँ। मेरी पुकार सुनकर कितने आदमी-से आदमी मृत्युकी अवज्ञा करके चारों ओर आ जुटे हैं ; सो तो तुम देख ही रहे हो, कन्हाई ! क्यों ? मैं पुकार सकता हूँ, तभी तो। इस बातको मैं अच्छी तरह जानकर और जताकर जाऊँगा, फिर जो होगा सो होगा। तुम भी तो बाहरसे देखनेमें किसी दिन साधारण ही थे, पर तुम्हारे असाधारणत्वको मैंने प्रकाशित किया है। रसमें डुबो दिया है तुम लोगोंको, मनुष्योंको लेकर

यह मेरी रसायनकी साधना है। इससे ज्यादा और क्या चाहिए ? ऐतिहासिक महाकाव्यकी समाप्ति पराजयके महास्नानमें भी हो सकती है। परन्तु है तो महाकाव्य ही ! गुलामीसे दबे इस अंगहीन मनुष्यत्वके देशमें अच्छी मौत मर सकना भी एक सुयोग है।”

“भाई साहब, मुझ जैसे अकाल्पनिक प्रैक्टिकल आदमीको भी तुम खींच लाये इस घोरतर पागलपनके ताण्डव-नृत्यमंचपर। जब सोचता हूँ, तो इस रहस्यका अन्त ही नहीं पाता मैं।”

“मैं कंगालकी तरह कुछ भी नहीं चाहता, इसीसे तुम लोगोंपर मेरा इतना जोर है। मायासे बहकाकर लोभ दिखाके किसीको नहीं लुलाया। पुकारता हूँ असाध्यके बीचमें, फलके लिए नहीं, बल-वीर्य प्रमाणित करनेके लिए। मेरा स्वभाव है इम्पर्सनल—अवैयक्तिक। जो अनिवार्य है, उसे मैं अशुद्ध मनसे अंगीकार कर सकता हूँ। इतिहास तो पढ़ा ही है, देखा है कितने महा-महा साम्राज्य गौरवके अभ्रभेदी शिखरपर पहुँच गये थे, आज वे धूलमें मिल गये हैं—उनके हिसाबके खातेमें कहीं कोई भारी कर्ज जमा हो रहा था, जिसे वे चुका नहीं सके। और यह देश, चूँकि हमारा ही देश है, सौभाग्यके चिर-स्वत्वको लेकर इतिहासकी ऊँची गद्दीपर गद्दीनशीन होकर बैठा रहेगा और पराभवके समस्त कारणोंपर सिन्दूर चन्दन लगाकर घंटा बजाकर पूजा करता रहेगा, वेवकूफकी तरह ऐसे लाड़-प्यारका दावा किसपर करूँ, बताओ ? मैंने ऐसा कभी नहीं किया। वैज्ञानिकके निर्मोही मनसे मैं मान लेता हूँ कि जिसकी मरण-दशा आ गई है वह मरेगा ही।”

“तब !”

“तब ! देशकी चरम दुरवस्था मेरा सिर नीचा नहीं कर सकती, मैं उससे भी बहुत ऊँचा हूँ—आत्मामें अवसाद न आने दूँगा—मरनेके सारे लक्षण देखकर भी।”

“और हम लोग !”

“तुम लोग क्या बच्चे हो। बीच समुद्रमें जिस जहाजका पेंदा सात जगहसे फट गया है, रो-पीटकर मंत्र पढ़कर विधाताकी दुहाई देकर क्या उसे बचा सकते हो ?”

“अगर न बचा सके तो ?”

“तो क्या ! तुम कई जनोंने जान-बूझकर तूफानके आगे उस डूबते जहाजका घातक पाल चढ़ा दिया है, तुम लोगोंका

कलेजा नहीं काँपा। ऐसे जितने आदमी मिले हैं, झूठे-झूठे उन्हींको लेकर हमारी जीत है। रसातलको जानेके लिए जो देश अन्धेकी तरह तैयार है, उसीके मस्तूलपर तुम लोग अन्त तक जयपताका फहरा रहे हो—न तो तुम लोगोंने झूठी आशा की है, न कंगालपन दिखलाया है और न निराशासे छाती फाड़-फाड़के रोये ही हो। तुम लोगोंने तब भी पतवार नहीं छोड़ी जब कि जहाजका पेंदा पानीसे भर गया है। पतवार छोड़नेमें ही कायरता है—वस, तुम जितनोंको मैंने पाया, मेरा काम तो हो गया उन्हींसे। उसके बाद ? कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।”

“तुम जो-कुछ कह रहे हो, उसमें एक मुख्य बात छूट गई मालूम होता है।”

“कौन-सी बात ?”

“तुम्हारे मनमें क्या क्रोध भी नहीं है ? इतने इम्पर्सनल हो तुम !”

“क्रोध किसपर ?”

“अंगरेजोंपर।”

“जो जवान शराव पीकर आँखें लाल चिना किये लड़ ही नहीं सकता, उस गँवारको मैं अवज्ञा करता हूँ। क्रोधमें आकर कर्तव्य करनेसे उससे अकर्तव्य होनेकी ही अधिक सम्भावना है।”

“सो होने दो, मगर क्रोधका कारण मौजूद रहनेपर क्रोध न करना अमानविक है।”

“सारे यूरोपके साथ मेरा परिचय है, मैं अंगरेजोंको भी जानता हूँ। जितनी भी पाश्चात्य जातियाँ हैं, उनमें यह सबसे बड़ी जाति है। रिपुकी ताड़नासे वे मार नहीं सकते, यह बात नहीं ; परन्तु पूरी तौरसे नहीं मार सकते—शरमाते हैं। उनके अन्दर जो बड़े हैं, उन्हींके सामने जवाबदेही करनेमें उन्हें सबसे बड़ा भय है—वे अपनेको भी भुलावा देते हैं और उन्हें भी। उनपर जितना क्रोध करनेसे फुल-स्ट्रीम बनाया जा सकता है, उतना क्रोध मेरे द्वारा सम्भव नहीं।”

“अद्भुत हो तुम।”

“शोलहो-आना मारकी चोटसे वे हमारे मेरुदण्डको हमेशाके लिए चकनाचूर कर सकते थे। ऐसा वे नहीं कर सके। मैं उनके मनुष्यत्वको शावाशी दूँगा। पराये देशमें शासन करते-करते उनका वह मनुष्यत्व क्षय होता जाता है, इसीसे उनमें मरण-दशा आती-जाती है। विदेशोंका इतना ज्यादा वोक्त और-किसी जातिके सिरपर नहीं है, इससे उनका स्वभाव नष्ट होता जा रहा है।”

“इसे वे समझें। मगर तुम जो अपने अव्यवसायको लगभग अहैतुक बनाये डाल रहे हो, यह मेरे लिए ज्यादाती मालूम होती है।”

“यह तुम्हारी जबरदस्त भूल है ! मैं अन्याय नहीं कहूँगा, उन्मत्त नहीं होऊँगा, देशको देवी समझकर मा-मा पुकारकर आँसू नहीं बहाऊँगा, फिर भी काम करता रहूँगा, इसमें मेरा जोर है।”

“शत्रुको अगर शत्रु समझकर द्वेष न करो, तो उसके विरुद्ध हाथ चलाओगे कैसे ?”

“रास्तेपर पड़े हुए कंकड़ोंके विरुद्ध जैसे हथियार चलाते हैं, वैसे अप्रमत्त बुद्धिसे। वे अच्छे हैं, या बुरे, यह तर्कका विषय नहीं है। उनका राज्य विदेशी राज्य है, उसने भीतर-ही-भीतर हमारा आत्म-लोप कर दिया है—इस स्वभाव-विरुद्ध अवस्थाको डिगानेकी कोशिश करके अपने मानव-स्वभावको मैं स्वीकार करता हूँ।”

“परन्तु सफलताके विषयमें तुम्हें निश्चित आशा नहीं है।”

“न रहे, तो भी अपने स्वभावका अपमान न करूँगा—सामने चाहे मृत्यु ही सबसे बढ़कर निश्चित क्यों न हो, तो भी पराभवकी आशंका है इसीलिए स्पर्द्धा करके उसकी उपेक्षा करके आत्म-सम्मानकी रक्षा करनी होगी। मैं तो समझता हूँ, अब यही हमारा अन्तिम कर्तव्य है।”

“वह आ रहे हैं रक्तगंगा बहानेवाले नकली भगीरथ। उन्हें चाय पिला आऊँ। साथ ही स्पष्ट भाषामें खबर भी दे दूँगा कि पुलिसको सब रिपोर्ट कर दी गई है। तुम्हारे दलके वैवक्य मुझे लिंच न कर बैठें—जिन्दा न जला डाले।

[क्रमशः]

कलकत्ता कमर्शियल म्यूजियम

कलकत्ता कालेज-मार्केट एक बहुत बड़ा बाज़ार है। यहाँ रोज़ाना क़रीब-क़रीब सभी चीज़ें मिलती हैं। उस दिन इतवार था, मुझे कुछ सामान ख़रीदना था, इसलिए कालेज-मार्केट पहुँचा। कालेज-मार्केटमें म्यूनिसिपैलिटीकी तीन बड़ी इमारतें हैं, जिनमें बाज़ार है। इधर-उधरकी दुकानोंके शो - केसोंमें ताकते-भाँकते हुए एक बार ऊपरको जो नज़र दौड़ाई, तो दुमंज़िलेपर साइनबोर्ड लगा देखा—‘कमर्शियल म्यूजियम आफ कलकटा कारपोरेशन’। लकड़ी खटखटाता हुआ मैं ऊपर चढ़ गया। सामने ही म्यूजियमके एक कर्मचारी श्री ब्रजेन्द्र भद्र दिखलाई दिये। उन्होंने म्यूजियमकी हर चीज़ दिखलाई और हर बात समझाई। मैं चीज़ ख़रीदनेकी बात तो भूल गया और प्रायः दो घंटे तक म्यूजियम घूमता रहा। बादमें म्यूजियमके इंचार्ज श्रीयुत ज्ञानांजन नियोगीसे बातचीत की, जिससे अनेक नई बातें मालूम हुईं।

यह म्यूजियम ब्रिटिश भारतमें अपने ढंगकी एक अनोखी चीज़ है। कलकत्ता-कारपोरेशनमें कांग्रेस-वालोंकी प्रधानताने म्यूनिसिपल शासनमें जो अनेक नई-नई बातें चलाई हैं, उनमें से यह म्यूजियम भी एक है। वास्तवमें यह म्यूजियम एक प्रकारसे स्वदेशी कला और उद्योग-धन्धोंकी एक छोटी-मोटी स्थायी प्रदर्शनी है। यद्यपि यूरोप, अमेरिका आदिके लिए इस प्रकारका म्यूजियम कुछ नया नहीं है,—फिलेडेलफिया, ओसाका आदिमें इस प्रकारके म्यूजियम हैं,—लेकिन जहाँ तक भारतवर्षका सवाल है, यह म्यूजियम एक नई चीज़ है।

देशमें स्वदेशी - आन्दोलनका श्रीगणेश सन् १९०५ के बंग-भंग-आन्दोलनके समयसे हुआ था; किन्तु उस समय यह आन्दोलन मुख्यतः बंगालमें ही सीमित था। सन् १९२१-२२ के असहयोग-आन्दोलन

और सन् १९३० के सत्याग्रह-आन्दोलनने स्वदेशी उद्योग-धन्धोंको बहुत प्रोत्साहन दिया। इसी समय सारे संसारके देशोंमें इस बातकी हवा चली कि देशको जहाँ तक सम्भव हो, अपनी आवश्यकताकी सारी चीज़ें स्वयं ही उत्पन्न करना और बनाना चाहिए। इसके लिए विदेशी मालोंपर चुंगी लगाकर देशी उपजको प्रोत्साहन दिया जाने लगा, इंग्लैण्ड-जैसा निर्वाध व्यापार (Free trade) का समर्थक भी ‘ब्रिटिश माल ही खरीदो’ (Buy British) के नारे लगाने लगा। इन सबका असर भारतपर भी पड़ा, और भारतीयोंमें भी ‘स्वदेशी’ चीज़ें ही ख़रीदनेकी बुद्धि पैदा हुई। साथ ही देशमें अनेक छोटे-बड़े कारख़ाने और उद्योग-धन्धे खुल गये और जो-जो चीज़ें अभी तक देशमें नहीं बनती थीं, उन्हें बनानेकी कोशिश होने लगी।

आजकल देशमें प्रायः ज़रूरतकी सभी चीज़ें छोटे या बड़े परिमाणमें बनने लगी हैं। भारतीय ख़रीदार स्वदेशी चीज़ ख़रीदनेका इच्छुक है, भारतीय उत्पादक अपनी चीज़ बेचनेको उत्सुक है; लेकिन मुसीबत यह है कि ख़रीदार यह नहीं जानता कि उसे आवश्यक चीज़ कहाँ मिलेगी और उत्पादकको यह पता नहीं चलता कि उसकी चीज़को कौन ख़रीद सकता है। नतीजा यह होता है कि स्वदेशी चीज़ न मिलनेपर ख़रीदारको विदेशी चीज़ें ख़रीदनी पड़ती हैं, और ख़रीदारके अभावमें देशी उत्पादकका माल पड़ा-पड़ा सड़ता है।

उदाहरणके लिए, मान लीजिए कि मुझे फोटोके प्लेट, विजलीके लट्ठू या सीनेकी मेशीन ख़रीदनी है। पहले तो यही पता नहीं कि ये चीज़ें भारतमें बनती भी हैं या नहीं; दूसरे यदि यह मालूम हो जाय कि ये चीज़ें भारतमें बनने लगी हैं, तो यह पता नहीं कि इन्हें कौन बनाता है, कहाँसे मिल सकती हैं और इनके क्या दाम

लेंगे। इन कठिनाइयोंको दूर करके उद्योग-धन्धोंको बढ़ानेके उद्देशसे ही यह म्यूजियम स्थापित किया गया है।

म्यूजियमका मुख्य कार्य है भारतमें बननेवाले मालोंके नमूने प्रदर्शित करना और उनके सम्बन्धमें ग्राहकों और दूकानदारोंको सब प्रकारकी बातें बतलाना। म्यूजियमको देखनेवालेको केवल स्वदेशी चीजोंके नमूने ही देखनेको नहीं मिलते, बल्कि उनका दाम, उनका प्राप्ति-स्थान, उनके बनानेमें जो कच्चा माल लगाया गया है, वह देशी है या विदेशी इत्यादि बातें भी मालूम हो जाती हैं।

अधिकारियोंका यह विचार भी है कि सुविधानुसार म्यूजियममें देशी कच्चा माल—खेतोंसे, खानोंसे, जंगलातसे, पेड़ोंसे और नदियोंसे निकला हुआ—भी प्रदर्शित किया जाय। इस प्रकारके मालके साथ एक-एक कार्ड लगा रहे, जिसपर उस मालका इतिहास, उसे पैदा करनेकी लागत, उसकी मंडियाँ और दिसावर, उसके उपयोगकी सम्भावनाएँ आदि बातें लिखी रहें। इसकी शुरुआत कर दी गई है, जो समय पाकर पूर्ण होगी। म्यूजियममें बड़े-बड़े चार्ट बनाकर लटकाये गये हैं, जिनमें यह दिखलाया गया है कि कोई विशेष औद्योगिक चीज कच्चे मालसे पक्के माल तक पहुँचनेमें किस-किस अवस्थामें होकर गुजरती है।

हमारे देशके उद्योग-धन्धोंमें अकसर लागत ज्यादा पड़ती है, क्योंकि हम माल तैयार करनेमें बचनेवाली फिजूल चीजोंका (वाई-प्रॉडक्टका) उपयोग करना नहीं जानते। उदाहरणके लिए, शक्करके उत्पादनको ले लीजिए। शक्कर बनानेमें लाखों मन शीरा बचता है, जो आजकल फेंका जाता है—उसका कोई उपयोग नहीं हो सकता। म्यूजियममें बहुतसे वाई-प्रॉडक्ट चार्ट हैं, जिनसे यह मालूम होता है कि किस चीजसे क्या-क्या चीजें पैदा की जा सकती हैं। म्यूजियममें अनेक चार्ट ऐसे सरल और आकर्षक ढंगसे बनाकर टाँग गये हैं, जिनसे भारतके व्यापार, उद्योग-धन्धे,

कच्चे-पक्के मालका उत्पादन, बंगालके प्रत्येक जिलेकी आबादी, उपज, कला-कौशल आदिकी सारी बातें एक ही दृष्टिमें मालूम हो जाती हैं। स्वास्थ्य-रक्षा-सम्बन्धी चित्र और चार्ट भी अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। म्यूजियम देखनेसे सैकड़ों नई बातें अनायास ही मालूम होती हैं।

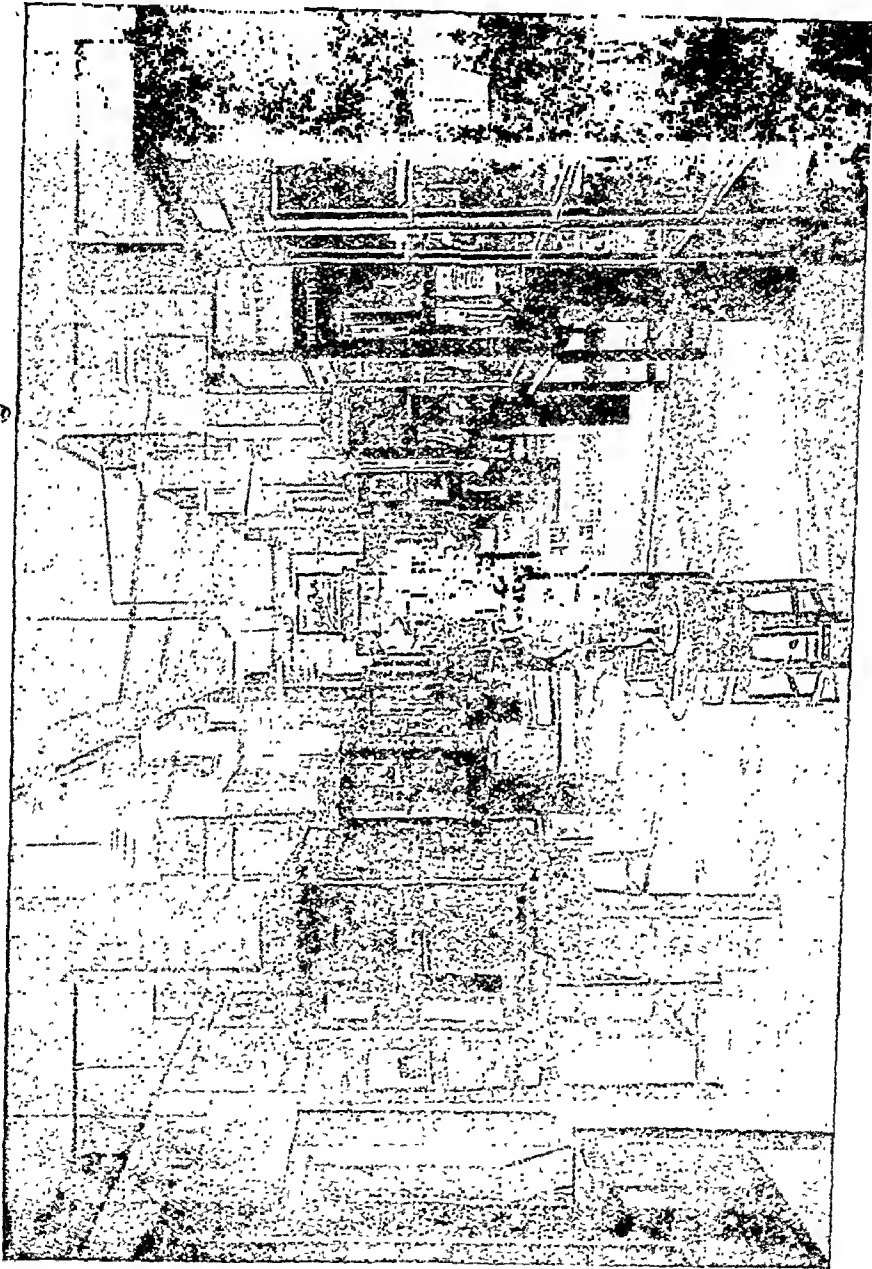
म्यूजियमका सबसे बड़ा उपयोग है व्यापार और उद्योग-धन्धे-सम्बन्धी ज्ञातव्य बातोंका प्रचार। इसके लिए म्यूजियमने एक सुनियमित 'इनफार्मेशन व्यूरो' क्रायम कर रखा है, जहाँसे आप उद्योग-धन्धों-सम्बन्धी बातें दरियाफ्त कर सकते हैं। इस प्रकारसे म्यूजियम खरीदार और उत्पादकका सम्बन्ध जोड़नेकी एक कड़ी है। साथ ही यह व्यूरो समय-समयपर अखबारों द्वारा कच्चे माल और विशेष उद्योगोंके ऊपर लेख और नोट्स भी प्रकाशित करता रहेगा, जिससे लोगोंको देशी चीजोंकी जानकारी प्राप्त हो सकेगी। व्यूरो समय-समयपर देशी माल बनानेवालोंकी सूची भी निकालता रहेगा। इस प्रकारकी एक सूची वह प्रकाशित भी कर चुका है।

म्यूजियमने यह प्रबन्ध भी किया है कि विलायती मेशीनों और मालोंके नमूने अपने यहाँ संग्रह करे, जिन्हें देखकर देशी कारखानेवाले उसी तरहकी चीजें बना सकें। कलकत्तेमें रहनेवाले अनेक विदेशोंके राजदूतोंने म्यूजियमका निरीक्षण करके उसे पूर्ण सहयोग देनेका वचन दिया है।

म्यूजियमके साथ एक कमर्शियल लाइब्रेरी और वाचनालय भी है, जिसमें देश और विदेशके व्यापार और उद्योग-धन्धे-सम्बन्धी समाचारपत्र और पुस्तकें संग्रहीत की जा रही हैं।

म्यूजियमने एक पत्र-व्यवहार-विभाग भी क्रायम कर रखा है। आप पत्र लिखकर किसी भी बातकी पूछ-ताछ उससे कर सकते हैं। खरीदार जो नये-नये डिजाइन बताते हैं, यह विभाग कारखानेवालोंको उनकी सूचना देता है। यदि सम्भव हुआ, तो उन डिजाइनोंके नमूने और चित्र या नक्शे भी भेजता है।

म्यूजियमकी स्थापनाके पहले अधिकारियोंने देशी



कलकत्ता-कमर्शियल म्यूजियमका प्रधान हाल

चीजोंकी एक प्रदर्शनी की थी। इस प्रदर्शनीको देखनेके लिए लगभग १,००,००० आदमी आये थे। प्रदर्शनीमें विभिन्न उद्योग-धन्धोंपर अधिकारी व्यक्तियोंके व्याख्यान भी कराये गये थे और मैजिक लैन्टर्न तथा सिनेमाकी सहायतासे दर्शकोंको देशकी औद्योगिक स्थिति समझाई गई थी। अधिकारियोंका विचार है कि सालमें दो-तीन बार मेले लगाये जायँ, जिनके द्वारा स्वदेशी वस्तुओंका प्रचार और व्यापार बढ़े।

म्यूजियमकी उपयोगिता बढ़ रही है। अगले वर्ष मार्च मासमें जापानके नागोया नगरमें 'नगोया पैन-पैसिफिक पीस एक्जिबिशन' नामसे एक बड़ी अन्तर्राष्ट्रीय प्रदर्शनी होनेवाली है। इस प्रदर्शनीके अधिकारियोंने कलकत्तेके इस म्यूजियमको भारतीय वस्तुएँ प्रदर्शित करनेके लिए निमन्त्रित किया है। इस प्रकार यह म्यूजियम केवल भारतमें ही नहीं, वरन् विदेशोंमें भी भारतीय मालके प्रचारका साधन बन जायगा और बन रहा है।

म्यूजियमने जो 'Comercial Museum Compendium' नामक पुस्तिका निकाली है, उसमें उसमें भारतके व्यापारका और बंगालके उद्योग-धन्धोंका चित्र बड़ी सरलतासे उपस्थित किया है।

भारतीय मालके उत्पादक और व्यापारी—चाहे वे बड़े-बड़े कारखानोंके मालिक हों, अथवा अपनी छोटी कुटियामें बैठकर ही बिना किसी मशीनकी सहायतासे चीजें बनाते हों—इस म्यूजियममें अपना माल प्रदर्शित कर सकते हैं। माल प्रदर्शित करनेका भाड़ा बहुत कम लगता है :—

(१) शो-केसकी पटरी (शेल्फ)	२) महीना
(२) कियोक्स	१२) महीना
(३) अलमारी	७) महीना
(४) काँचकी विशेष अलमारी	१०) महीना
(५) विशेष शो-केस	५॥) महीना
(६) विशेष चौकोर शो-केस	२०) महीना

कलकत्ता एक अन्तर्राष्ट्रीय शहर है। भारतके कोने-कोनेके लोग यहाँ बसते हैं और दुनियाके कोने-कोनेसे यात्री यहाँ आते हैं। भारतीय व्यापारका सबसे बड़ा केन्द्र भी कलकत्ता ही है। कलकत्ते आनेवाला व्यक्ति जत्र शहरके दर्शनीय स्थान देखनेके लिए निकलेगा, तब इस म्यूजियमको भी देखेगा। अतः यहाँपर जो नमूने एकत्रित होंगे, वे उसकी नज़रमें पड़ेंगे ही। चूँकि म्यूजियम अभी वाल्यावस्थामें ही है, इसलिए अभी वह बहुत छोटे पैमानेपर ही है; परन्तु वह शीघ्रतासे बढ़ रहा है। बिहार, युक्तप्रान्त, पंजाब, राजपूताना आदिके कला-कौशल और उद्योग-धन्धोंके नमूने अभी पर्याप्त संख्यामें नहीं हैं। अपने मालके प्रचारके लिए भारतीय उत्पादकों और व्यापारियोंको इस म्यूजियमसे पूरा लाभ उठाना चाहिए।

विशेष जानकारीके लिए निम्न पतेपर चिट्ठी लिखकर पूछिये :—

श्रीयुत ज्ञानांजन नियोगी,
आफिसर इंचार्ज कमर्शियल म्यूजियम,
कालेज स्ट्रीट मार्केट (नार्थ ब्लाक),
कलकत्ता



रामचरितमानस

(समालोचना)

श्री अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी

भादोके 'विशाल भारत' में पं० रामनरेश त्रिपाठीके ग्रन्थकी जो समालोचना निकली थी, उसके उत्तरमें प्रयागके 'भारत'में उनका लम्बा-चौड़ा लेख छपा था। इसकी व्यक्तिगत बातोंको छोड़ आलोचना-सम्बन्धी विचारोंका प्रत्युत्तर भी 'भारत' में छप चुका है। इस बीचमें बाबू भगवानदास हालनाने 'आज'में त्रिपाठीजीके अशुद्ध पाठ और अशुद्ध अर्थका उल्लेख कर मेरे वक्तव्यका समर्थन किया था। पर त्रिपाठीजी अपने स्वभावानुसार उनपर भी बिगड़े और 'खिसियानी बिल्ही खम्भा नोचे' कहावतके अनुसार उन्होंने बाबू रामदास गौड़की रामायणकी तथोक्त अशुद्धियोंके उद्धरण 'आज'में प्रकाशित कराये। हालनाजी वा गौड़जीकी वकालत करनेकी न तो मेरी इच्छा है और न उन्हें इसकी आवश्यकता ही। पर बात यों है कि यदि गौड़जीने भूल की हो, तो आप भी भूल करें इसका तो कोई अर्थ नहीं है। गौड़जीकी भूलोंसे आपकी भूलें शुद्ध नहीं हो जातीं।

त्रिपाठीजीकी रामायणमें एक जगह 'हर'के बदले 'हरि' हो गया था। इसकी ओर उनका ध्यान आकर्षित किया गया, तो इसे प्रूफरीडिंगकी भूल बता मुझपर यह दोष लगाया कि मैंने उनका मज्ञाक्र उड़ानेके लिए यह भूल दिखाई है और कहा—'क्या यह उनकी (मेरी) नीयतकी खराबीसे नहीं हुआ है?' त्रिपाठीजीको शायद यह नहीं मालूम कि मेरे पास तुलसी-ग्रन्थावली भी है, जिसके ५२ वें पृष्ठपर यह अशुद्ध पाठ है और जो आपकी रामायणका मूलाधार है। इसके सिवा त्रिपाठीजीकी पुस्तकमें मज्ञाक्र उड़ानेके लिए काफ़ी मसाला है और उनका मज्ञाक्र उड़ानेवालोंकी कमी भी नहीं है; मुझे मज्ञाक्र उड़ानेकी न तो जरूरत है और न फुरसत। अब बालकाण्डके एक दोहेका पूर्वाद्ध उद्धृत कर मैं यह दिखाना चाहता हूँ कि

त्रिपाठीजीने अशुद्ध पाठ देकर अर्थ भी अशुद्ध किया है। यहाँ छापेकी गलती कह देनेसे उनका पीछा नहीं छूट सकता। वह इस प्रकार है—'सभय बिलोके लोग सब जानि जानकी भीर।' त्रिपाठीजी अर्थ करते हैं, 'तब रामचन्द्रजी लोगोंको भयभीत और सीताको डरी हुई जानकर बोले।' यह अनर्थ 'भीर' शब्दको 'भीरु' कर देनेके कारण हुआ है—तुलसी-ग्रन्थावलीके आधारपर। फिर भी त्रिपाठीजी कोषकार होनेपर भी ठीक अर्थ नहीं कर सके। 'भीरु'का अर्थ डरी हुई कहाँसे हुआ? 'भीरु' और 'भीत' एक ही नहीं है। किसी अवसर-विशेषपर जो डर जाता है, वह 'भीत' कहाता है, और जिसका स्वभाव ही डरना है, वह 'भीरु' वा डरपोक कहाता है। इसके सिवा वहाँ तो 'भीरु' नहीं, 'भीर' होना चाहिए, जिसका अर्थ संकट है, जैसे 'जहँ-जहँ भीर परै सन्तनपर तहँ-तहँ रच्छा आप करें।' इसलिए अर्थ हुआ—'लोगोंको भयभीत और सीताका संकट जानकर।' इतना लिखनेका कारण यह है कि लोग त्रिपाठीजीके बहकावेमें न आ जायें। त्रिपाठीजीसे ईमानदारीका तकाजा है कि अपनी गलतियाँ मंजूर कर लें। पर उन्होंने अब तक स्वीकार नहीं किया कि 'सिहाना', 'रोचन', 'लेखइ', 'समन', 'घनबोध' इत्यादि शब्दोंके जो अर्थ उन्होंने किये हैं, वे अशुद्ध हैं। 'सिहाना' शब्द तो बड़ा व्यापक है। वह बाँदा जिलेमें ही नहीं, इलाहाबादमें भी—हिन्दी-मन्दिरके नीचे—बोला जाता है और सारन-छपरे तक 'डाह' करना उसका अर्थ माना जाता है।

त्रिपाठीजीको इसका आश्चर्य है कि "वाजपेयीजी 'मानस' के सैकड़ों अधिकारी विद्वानोंका कुछ भी भय नहीं करते।" भय तो चोर करते हैं; पर साहित्यमें चोर भी सीनेजोर दिखाई देते हैं और जब उन्हें ही भय

नहीं, तब मुझे क्यों होने लगा ? लिपिकारोंके अज्ञानके कारण 'जीवन चाही' 'जीव न चाही' हो गया है और त्रिपाठीजी उसीको प्रमाण माने हुए हैं। उनका यह आचरण उस मनुष्यके समान है, जिसने श्राद्धमें विल्ली बाँध रखनेका नियम समझ लिया था, क्योंकि एक जगह ऐसे अवसरपर उसने पालतू बिल्ली बाँधी देखी थी। 'जीवन' और 'मरण' ये दो जोड़ेके शब्द हैं। 'मरण' की तद्दि जीव न चाही'को शुद्ध कहनेका यही कारण है कि इसका अर्थ होता है कि 'उस जीवनसे मरण अच्छा है।' 'जीव' शब्दका जीवन अर्थ कर लेनेपर भी अर्थमें वह स्वारस्य नहीं आता। 'जीवन-मरण' मुहावरा है। पाठ, पाठान्तरमें ही जो नहीं लगे रहते और तत्त्वकी खोज करते हैं, वे मेरे सुचाये पाठकी सुष्ठुतास्वीकार करेंगे। यह अर्द्धाली अयोध्याकण्डकी है।

प्राकृतके विषयमें त्रिपाठीजी अब प्रकाशमें आ गये होंगे, क्योंकि प्रवरसेनकृत महाराष्ट्री प्राकृतका 'सेतुबन्ध' काव्य रामचरितका वर्णन करता है और इसकी टीका अकबरके जमानेमें रामदास भूपतिने संस्कृतमें की थी, यह उन्हें बता दिया गया है। 'हथवांसड्ड' के अर्थके विषयमें हठ करते हुए त्रिपाठीजीने लिखा है—“वाजपेयीजीने यह नहीं सोचा कि नाव डूब जानेपर लग्गी हाथमें रह जाती तो उससे केवटकी क्या हानि थी और भरतका क्या लाभ था ? क्या नावके बिना केवल लग्गीसे भरत नदीको पार कर सकते थे ? और जब केवट युद्धके लिए अपने साथियोंको जमा कर रहा था, तब लग्गीको उसे हाथमें रखनेमें लाभ था या डुबो देनेमें ?” मैंने 'भारत'में इन प्रश्नोंकी उपेक्षा की थी, इससे सम्भवतः त्रिपाठीजी समझते होंगे कि उनकी युक्तियाँ अकाव्य हैं, इसलिए संक्षेपसे इनपर कुछ लिखना पड़ा।

कोइरीपुर शायद नदी किनारेसे बहुत दूर है, इसलिए त्रिपाठीजीको पता नहीं कि लग्गीयोंका क्या उपयोग हो सकता है। लग्गी न डुबनेसे केवटकी हानि और भरतका लाभ यह था कि

लग्गीयोंका वेड़ा बनाकर भरत नदी पार कर सकते थे। इक्का-दुक्का तो केवल लग्गीके सहारे भी पार हो जाता है। केवट जानता था कि भरतसे युद्ध करनेको तो मैं कहता हूँ, पर जीत नहीं सकता। चतुरंगिनी सेनासे केवटका जीतना वैसा ही था, जैसा आपका इस समालोचना-संवर्षमें जीतना। आप भी मनमें अपनी कमजोरी समझते हैं ; पर जिनमें कुछ प्रतिष्ठा बना ली है, उन्हें समझानेके लिए अंट-संट जवाब लिख ही देते हैं।

त्रिपाठीजीने अपनी योग्यताका विचार किये बिना ही रामायण-जैसे ग्रन्थकी टीका करनेका दुस्साहस किया, यह देखकर क्षोभ होता है। खिलाफत आन्दोलनके समयके मौलानाओंकी तरह हिन्दीमें आचार्योंकी बाढ़ आ गई है और त्रिपाठीजीने भी वहती गंगामें हाथ धोनेके विचारसे यह टीका प्रकाशित कर डाली है, पर दहीके धोखे उन्होंने कपास खा ली है। वे लाख हाथ-पैर पटकें, पर अपने अशुद्ध अर्थोंको शुद्ध नहीं सिद्ध कर सकते। कारण यह है कि अशुद्ध अर्थोंकी इतनी भरमार सारी पुस्तकमें है कि उनका उल्टे-ढाले करनेसे एक पुस्तक तैयार हो सकती है; इसलिए यहाँ केवल बालकाण्डके दोहे-चौपाइयोंके त्रिपाठीजीके विचित्र अर्थोंपर विचार किया गया है।

एक चौपाई है—‘निज-निज रख रामहिं सब देखा। कोउ न जान कछु मरम बिसेखा।’ इसके पूर्वाद्धका अर्थ किया गया है—‘सबने रामको अपनी ही ओर रख किये देखा।’ पर यह अर्थ नहीं है, वास्तविक अर्थ है कि सबने रामको अपने-अपने रखसे देखा। यहाँ रखका अर्थ point of view या angle of vision है। यह अर्थ न करनेसे दो दोष आते हैं। पहला यह है कि ‘निज-निज’का अर्थ नहीं होता और दूसरा यह कि आगेकी चौपाइयोंमें राजाओंके विषयमें कविने जो विचार प्रकट किये हैं, उनकी संगति नहीं बैठती।

एक और चौपाईकी अर्द्धाली है—‘सीय चकित चित रामहिं चाहा।’ इसका अर्थ किया गया है—‘सीताका

चकित चित्त रामको चाहता था ।' 'चाहना' क्रियाका एक ही अर्थ जाननेसे यह अशुद्ध अर्थ किया गया है । यहाँ 'चाहना' क्रियाका अर्थ है देखना ।

एक चौपाई आगे आती है—'त्रिभुवन जय समेत वैदेही । विनहिं विचार बरै हठि तेही ।' इसका अर्थ त्रिपाठीजीने किया है—'वह तीनो भुवनोंके विजय सहित सीताको बिना किसी रुकावटके आग्रह करके व्याहेगा ।' यह अर्थ उलटा हो गया है । यदि त्रिपाठीजी पदोंपर ध्यान देकर अर्थ करते, तो ऐसा अन्धेर न मचाते । इसका अन्वय है 'तेही त्रिभुवन जय समेत वैदेही विनहि विचार हठि बरै', उसे (वह नहीं) त्रिभुवनकी जय सहित जानकी बिना विचारके ही आग्रहपूर्वक बरेगी (व्याहेगी) । त्रिपाठीजीने अंगरेजी कहावतके अनुसार गाड़ीको घोड़ेके सामने रख दिया है । उन्होंने यह विचार तक नहीं किया कि इसे पढ़कर लोग क्या कहेंगे । उनके अर्थके विरुद्ध यह कहना है कि इसके ऊपरकी चौपाई 'सोइ पुरारि-कोदण्ड कठोरा । राजसमाज आज जेहिं तोरा ।' से उनके अर्थकी संगति नहीं है । दोनो चौपाइयोंको देखनेसे स्पष्ट होगा कि पहलीके 'जेहि' (जिसने) पदका जोड़ा 'तेहि' (उसे) दूसरी चौपाईमें है । इसके सिवा वरना सीताके हाथमें है, किसी पुरुषके नहीं ; क्योंकि वह स्वयम्बरा है और स्वयम्बर हो रहा है । दोनो चौपाइयोंका अर्थ है—'महादेवका वही कठोर धनुष राजसमाजमें आज जिसने तोड़ा, उसे त्रिभुवन जय समेत जानकी बिना किसी विचारके हठपूर्वक बरेगी—पति वरण करेगी ।' देखिये दोनो अर्थोंमें कितना अन्तर है और कौन ठीक है ।

और एक चौपाई लीजिए । 'कहँ धनु कुलिसहू चाहि कठोरा । कहँ स्यामल मृदुगात किसोरा ।' इसका जैसा अर्थ त्रिपाठीजीने किया है, वह सुनते ही बनता है, इसलिए उसकी समीक्षा करनेके पहले पाठकोंको उसे जान लेना चाहिए । आप फर्माते हैं—'कहाँ तो धनुषसे वज्र भी कठोरता चाहता है और कहाँ

साँवले कोमल शरीरवाले किशोर ।' यहाँ भी त्रिपाठीजीके 'चाहि' शब्दके अर्थके अज्ञानसे सारा गुड़ गोबर हो गया । वे 'चाह'का एक ही अर्थ 'चाहना' समझते हैं, क्योंकि उनके मतानुसार तुलसीदासजी शब्दका प्रयोग सदा एक ही अर्थमें करते थे ! परन्तु रामायणमें ही गोस्वामीजीने उसे तीन अर्थोंमें व्यवहृत किया है—(१) चाहना, (२) देखना और (३) से । यहाँ यह तीसरा अर्थ 'से' ही लगता है । यह चाहि प्राकृतके 'एच्चय' आदेशसे बना है, जो बँगलामें 'चेए' और 'चे' हो जाता है । प्राकृताष्टाध्यायीका एक सूत्र है—“युष्मदस्मदोज एच्चयः ॥१४९॥२॥ आभ्यां परस्येदमर्थस्य एच्चय इत्यादेशो भवति ॥ युष्माकमिदं यौष्माकं । तुम्हेच्चयं । एवम् अम्हेच्चयं ।” इसलिए इस चौपाईका अर्थ होता है—'कहाँ तो वज्रसे भी कठोर धनुष और कहाँ साँवले कोमल अंगवाले किशोर बालक'—अर्थात् धनुष तो वज्रसे भी कठोर है और उसे तोड़नेके उद्योगी कोमलांग और किशोर हैं ।

'सो जनु हमरेहि माथे काढ़ा । दिन चलि गयेउ व्याज बहु बाढ़ा । अब आनिय व्योहरिया बोली । तुरत देउँ मैं थैली खोली ।' इन दोनो चौपाइयोंमें पाठके सिवा समालोचकके मतसे अर्थोंमें भी अन्तर है । टीकाकारका अर्थ है,—'उसे मानो मेरे ही मरथे मढ़ा है । बहुत दिन हो गये ; इससे व्याज भी बहुत बढ़ गया होगा । अब किसी महाजनको बुला लाइये । मैं तुरन्त ही थैली खोलकर दे दूँ ।' पाठान्तरकी बात किनारे करके अर्थपर ही विचार करना है । 'काढ़ना'का अर्थ 'मढ़ना' कैसे हुआ, यह त्रिपाठीजी ही जान सकते हैं । क्योंकि उन्हें कृतिलाठी मारकर क्रोध संग्रह करनेका अभिमान है ! मेरे जैसा साधारण मनुष्य तो 'काढ़ना'का अर्थ खींचना, निकालना, लेना आदि और 'मढ़ना'का आरोपित करना, लगाना आदि समझता है । इसके सिवा ऋण काढ़ना कर्ज लेनेके अर्थमें बराबर व्यवहृत होता है—यह पुराना मुहावरा है ।

इसलिए अर्थ हुआ कि वह (ऋण) मानो मेरे ही मत्थे (भरोसे वा बदर्मे) लिया है। बहुत दिन हो गये, इसलिए व्याज भी बहुत बढ़ गया है। दूसरी चौपाईके अर्थमें 'किसी' विशेषण अनावश्यक है, क्योंकि उससे अर्थ भ्रष्ट हो जाता है। 'किसी'का अर्थ तो हुआ 'महाजन नामधारी मनुष्य', पर यहाँ तो उसी महाजनसे प्रयोजन है, जिससे ऋण काढ़ा है। इसलिए उसीको बुलाना है, दूसरेको नहीं।

एक चौपाई है—'मिले न कबहुँ सुभट रन गाढ़े। द्विज देवता घरहिंके बाढ़े।' इसका अर्थ किया गया है, 'आपको युद्धमें कभी प्रचण्ड योद्धा नहीं मिले। ब्राह्मण और देवता घर ही में बड़े होते हैं।' इस चौपाईका मजा इस अर्थसे किरकिरा हो गया। अन्वय इस प्रकार करके '(हे) द्विज देवता, (तुम) घरहिंके बाढ़े (हो), कबहुँ गाढ़े रन (तुम) सुभट न मिले।' अर्थ करना चाहिये। हे ब्राह्मण देवता, आप घर ही में बड़े हैं, कभी गहरी लड़ाईमें अच्छे योद्धासे नहीं मिले अथवा आपको काम नहीं पड़ा। यदि विचार करके अर्थ किया जाता, तो देवता इसमें न घसीटे जाते। ब्राह्मणको आदरार्थ देवता कहनेकी परिपाटी है। द्विज देवताको द्वन्द्व समास न बनाकर बहुव्रीहि करनेसे ठीक अर्थ हो जाता। अन्य किसी टीकाकारने भी यदि ऐसा ही वेतुका अर्थ किया है, इसलिए त्रिपाठीजी उसकी आड़में बच नहीं सकते, क्योंकि वे तो अन्य टीकाकारोंकी भूलें बतलानेवाले हैं।

और लीजिये। 'बाउ कृपा मूर्ति अनुकूला। बोलत वचन भरत जुनु फूला।' इसका अर्थ किया गया है—'वाह वा ! आपकी कृपाकी मूर्ति बहुत सुन्दर है, वचन बोलते हैं, तो मालूम होता है कि फूल फूट रहे हैं।' यह अर्थ और स्थानोंके अर्थोंकी तरह अशुद्ध है। 'बाउ' शब्दका अर्थ वाह वा कहाँसे आया, यह कोषकार त्रिपाठीजी ही जानें। मैंने तो इसका प्रयोग त्रिपुंके मुँहसे सुना है और पाइऊ सद्गुरुगणोंमें देखा है। इस कोषमें 'बाउ पुं (दे) इल्लु, ऊख (दे ७, ५३)'

लिखा है, अर्थात् यह देशी शब्द देशी नाममालाके ७, ५३ में आया है और इसका अर्थ ऊख है। बाउका अर्थ अच्छा, खासा, खूब, बड़ा, बहुत है। प्राकृतमें तो यह पुंलिंग है, पर हिन्दीमें विशेषणवत् प्रयुक्त होनेसे उभयलिंगी होता है। इसके अनुसार अर्थ हुआ—'बहुत या खूब कृपा है ! आपकी मूर्ति भी उसके (कृपाके) अनुकूल ही है।' अर्थात् आपकी कृपा कितनी अधिक है, इसका परिचय वा प्रमाण आपका स्वरूप ही दे रहा है। कृपाकी मूर्ति बहुत सुन्दर है, अर्थ कहाँसे आया ?

'चौके भाँति अनेक पुराई। सिन्धुर मनिमय सहज सुहाई।' त्रिपाठीजीका अर्थ है—'स्वभावसे ही सुन्दर गजमुक्ताओंके अनेक तरहके चौके पुराये।' इसके आगे 'मंगलमय निज-निज भवन लोगन्ह रचें बनाइ। बीथी सींची चतुरसम चौके चारु पुराय।' इसका अर्थ किया है कि मंगलके इन पदार्थोंसे लोगोंने अपने-अपने घरोंको सवारै (सवारा ?) और गलियाँ सींची और समतल जमीनपर सुन्दर चौक पुराये। इसमें सन्देह नहीं कि चौक शब्द प्राकृत 'चउक्क' और संस्कृत 'चतुष्क' से बनता है, परन्तु वहाँ उसका अर्थ स्वप्नवाचक वा चौराहोंके मध्यका स्थान है। बड़े-बड़े शहरोंमें खास बाजारको भी चौक कहते हैं, जहाँ चार रास्ते मिलते हैं। परन्तु दोनों चौकोंमें बड़ा अन्तर है। पहला भेद तो यह है कि बाजारवाला चौक शब्द पुंलिंग और यह चौक स्त्रीलिंग है, यद्यपि त्रिपाठीजीने पहली चौपाईके अर्थमें चौके लिखकर खूब ही चौका लगाया है। उन्होंने इसका तनिक भी विचार न किया कि अयोध्याकाण्डमें चौकका बहुवचन 'चौकई' किया गया है, यथा 'रचहुँ मंजु मनि चौकई चारू' और 'चौकई चारु सुमित्रा पूर्ण।' इसलिए चौक शब्द स्त्रीलिंग होगा। वास्तवमें चौक पूरना एक कला है और विवाह आदि मंगलकार्योंमें उसका पूरना देशके अनेक भागोंमें अनिवार्य-सा है। मिथिलामें विवाहका उत्सव था और वह भी जनक जैसे

ऐश्वर्यशाली राजाकी कुमारीका, इसलिए कविने आटे, रोली वा अबीर आदिके बदले गजमोतियोंकी चौकें पुरानेकी बात कही है। अर्थ तो दोनों ही चौपाइयोंके ठीक नहीं हुए। पहली चौपाईमें 'सहज सुहाई' 'चौकें' पदके विशेषण हैं, पर त्रिपाठीजीने उन्हें गजमुक्ताओंका विशेषण बना दिया है। वास्तवमें अर्थ है 'सहज सुहाई अनेक भाँति सिन्धुर मणिमय चौकें पुराई।' इसी प्रकार दूसरी चौपाईके अर्थमें भी गड़बड़ी की गई है। 'बनाइ' पदका अर्थ त्रिपाठीजीने नहीं किया, शायद उसे फालतू समझ लिया हो; पर उसका अर्थ न करनेसे मजा फीका पड़ जाता है। बनाइका अर्थ है अच्छी तरह। इसलिए चौपाईका अर्थ होगा—'लोगोंने इन मांगलिक द्रव्योंसे अपने घर भलीभाँति सजाये, चौकोर स्थानोंपर सुन्दर चौकें पुराकर गलियाँ सींच दीं।'।

शब्दोंके अर्थोंपर त्रिपाठीजीने इतना कम ध्यान दिया है, जिसका ठिकाना नहीं है। 'बगमेल' का अर्थ 'वेतहाशा' करके उन्होंने वेतहाशा ठोकर खाई है। 'हरषि परसपर मिलन हित कछुक चले बगमेल। जनु आनन्द समुद्र दुइ मिलत विहाइ सुबेल।' चौपाईका अर्थ त्रिपाठीजीने किया है—'कुछ बराती अगवानियोंसे मिलनेके लिए वेतहाशा चले, मानो आनन्दके दो समुद्र अपनी मर्यादा छोड़कर आपसमें मिलते हों।' अगवानीके समयका शिष्टाचार वेतहाशा चलनेके विरुद्ध है। उसमें तो उभयपक्ष धीरे-धीरे बड़ी धीमी चालसे चलते हैं। बगमेल चलनेका अर्थ तो बगल्लोका-सा मेल वा झुंड बनाकर चलना है। जब एक पंक्ति इधरसे और दूसरी उधरसे आती है, तभी दोनों समुद्र उमड़ते—अपने वेल—तट छोड़ते जान पड़ते हैं।

त्रिपाठीजीकी इस टीकामें तीन दोष दिखाई देते हैं। एक तो उनके मनमें यह समा गई है कि मेरे समान टीकाकार कोई नहीं हुआ और मेरी यह टीका सर्वोत्तम है। किसीके पतनके लिए उसका यह विचार काफ़ी है। दूसरा, उन्होंने शब्दोंके अर्थोंका पता

लगाये बिना टीका लिखी है, जिससे मनमाना अर्थ किया है और तीसरा यह कि अर्थ करनेके समय उन्होंने बड़ी ही असावधानी की है और पूर्वापरका ध्यान नहीं रखा। पहले दोषका उनकी प्रतिज्ञाके रूपमें अगस्तके अंकमें उल्लेख किया गया है और दूसरेका कुछ आभास उसी अंकमें और कुछ इस अंकमें प्रकाशित आलोचनासे मिल गया होगा, इसलिए तीसरे दोषके उदाहरण-स्वरूप यहाँ कुछ लिखा जाता है।

जिस समय अगवानी लेनेवाले जनकके आदमी राजा दशरथको सब चीज़-वस्तु देने गये थे, उस समयका वर्णन कविने किया है कि अगवानोंने 'वस्तु सकल राखी नृप आगे। विनय कीन्ह तिन्ह अति अनुरागे।' परन्तु इसका जो अर्थ त्रिपाठीजी महाराजने किया है, वह सुनिये—'राजा जनकने सब चीज़ें दशरथके आगे रख दीं और उन्होंने बहुत ही प्रेमसे विनती की।' अब उनसे कोई पूछे कि राजा जनक आपको कहाँसे मिल गये, जो आप उन्हें अपने इस अर्थमें घसीट लाये? यहाँ नहीं, आगे भी आप इसी तरहकी वेतुकी हाँक रहे हैं, क्योंकि 'करि पूजा मान्यता बड़ाई। जनवासे कहँ चले लेवाई।' चौपाईके अर्थमें भी आपने ज़बरदस्ती जनकको पकड़ लिया है। आश्चर्यकी बात तो यह है कि जनक अगवानोंमें थे ही नहीं; पर त्रिपाठीजीको ज़िद है कि उन्हें शामिल किये बिना नहीं रहेंगे। तुलसीदासजी साफ-साफ कह रहे हैं—'सतानन्द अरु विप्र सचिवगन, मागध सूत विदुष बन्दीजन। सहित वरात राउ सनमाना, आयसु माँगि फिरे अगवाना।' अर्थात्—'शतानन्द और ब्राह्मणों, मंत्रियों, मागधों, सूतों, विद्वानों और भाटोंने राजा (दशरथ) सहित वरातका सम्मान किया और आज्ञा माँगकर लौटे।' यदि जनक गये होते, तो तुलसीदासको उनका नाम लिखनेमें क्या आपत्ति थी? यह स्पष्ट ही असावधानीका उदाहरण है।

अब एक पद्यके अर्थकी चर्चा करके इस अंकका यह लेख समाप्त किया जायगा। 'सामध देखि देव अनुरागे।

सुमन वरषि जसु गावन लागे ।' त्रिपाठीजीने इस चौपाईका अर्थ किया है—'समधियोंको देखकर देवता प्रेमके वश हुए । वे फूल बरसाकर उनका यश गाने लगे ।' सामधका अर्थ समधी नहीं है, यद्यपि कई प्रतियोंमें उसकी जगह समधी शब्द रख दिया गया है । सामध कहते हैं समधियोंकी भेंट और कन्याके पिता द्वारा वरके पिताके सम्मान और सत्कारको । इसका दूसरा नाम समधोर है । इसलिए अर्थ होना चाहिए—'समधियोंका परस्पर मिलना और जनक द्वारा समधीका सम्मान देखकर देवता अनुरक्त हुए और फूल बरसाकर उनका यश गाने लगे ।'

कोह्वर और लहकौरि जैसे पारिभाषिक शब्दोंके अर्थ अन्य टीकाकारोंकी भाँति त्रिपाठीजीने भी नहीं दिये । और तो क्या, जहाँ आवश्यकता थी, वहाँ

लहकौरि शब्द भी अर्थमें नहीं रखा ! टीकाकारोंका यह स्वभाव संस्कृत टीकाओंके समयसे ही देखा जाता है कि वे सरल शब्दोंके अर्थ तो करते हैं और कभी-कभी विस्तारपूर्वक उनकी व्याख्या करते हैं, पर कठिन शब्दोंको या तो यों ही छोड़ देते हैं या यह कहकर उनकी उपेक्षा करते हैं कि ये सहज हैं । यदि त्रिपाठीजीकी रामायणकी लाख-पचास हजार कापियाँ छपें और जिनकी भाषा हिन्दी न हो, वे इन्हें खरीदें, तो उनकी स्वाभाविक इच्छा इन शब्दोंके अर्थ जाननेकी होगी और त्रिपाठीजीकी टीकामें जब उन्हें इनके अर्थ न मिलेंगे, तब क्या वे यह न कहेंगे कि हमारे रुपये ठग लिये, किसी कामकी टीका नहीं हुई ! अगले अंकमें कुछ ऐसी बातें प्रकाशित करनेका विचार है, जिनसे त्रिपाठीजीके प्रकाशक पाण्डित्यपर प्रकाश पड़े ।

पुस्तकालयोंका मुख्य कर्तव्य

रवीन्द्रनाथ ठाकुर

लोम मनुष्यका एक प्रधान शत्रु है । एक बार जब मनुष्य संग्रह करना शुरू कर देता है, तो संग्रहके लक्ष्यको वह भूल जाता है, और उसपर संख्याका नशा सवार हो जाता है । चाहे लोहेके सन्दूकमें रुपये इकट्ठा करना हो और चाहे सम्प्रदायका आयतन बढ़ानेके लिए लोक-संग्रह ; दोनों ही क्षेत्रोंमें संग्रहकी सनक मनुष्यके मनको बहावमें बहा ले जाती है, घाटपर लगनेका उद्देश्य उस अन्धे बहावमें अस्पष्ट हो जाता है—फिर इस बातकी याद ही नहीं रहती कि सत्यका सम्मान वस्तुकी नाप-तौलमें नहीं, बल्कि उसकी यथार्थतामें है ।

हमारे अधिकांश पुस्तकालयोंको संग्रहकी सनक सवार रहती है । उनकी बाहर-आने पुस्तकें अक्सर काममें नहीं आती, और काम-आने-लायक बाकी

चार-आने पुस्तकोंको वे कोनेमें ठूसकर छिपा देते हैं । जिसके पास बहुत रुपया है, हमारे देशमें उसे बड़ा आदमी कहते हैं ; इसका तो मतलब यह हुआ कि मनुष्यत्वके आदर्शका आधार सम्पत्ति है, न कि उद्देश्य । लगभग इसी एक ही कारणसे बड़े पुस्तकालयका गर्व बहुत-कुछ उसकी पुस्तकोंकी संख्यापर है । उन ग्रन्थोंका गौरव तो उनके व्यवहारमें आनेपर ही निर्भर है, किन्तु अपने अहंकारकी तृप्तिके लिए वह अत्यावश्यक नहीं समझा जाता । हम अपनी सभामें किसी करोड़पतीके आनेपर आसन छोड़कर उनका सम्मान करते हैं । आश्चर्य है कि इस सम्मान-प्राप्तिके लिए हम धनीकी दानशीलता और उदारताकी जरूरत नहीं समझते, इसके लिए उसका संचय ही काफी समझा जाता है ।

हमारी भाषामें जितने भी शब्द हैं, उनके दो तरहके आधार हैं—एक अभिधान और दूसरा साहित्य। हिसाब लगाया जाय तो हम देखेंगे कि किसी बड़े शब्दकोशमें जितने शब्द इकट्ठे किये गये हैं, उनमें से अधिकांश शब्दोंका व्यवहार कभी-कदा ही होता है। फिर भी उनका संचय किया जाना आवश्यक है। परन्तु साहित्यमें व्यवहृत शब्द सजीव हैं, उसका हर एक शब्द अपरिहार्य है। यह बात माननी ही पड़ेगी कि अभिधानकी अपेक्षा साहित्यके शब्दोंका मूल्य अधिक है।

पुस्तकालयोंके सम्बन्धमें भी यही बात है। पुस्तकालय अपने जिस अंशमें मुख्यतः संग्रह करता है, उस अंशमें उसकी उपयोगिता है; परन्तु जिस अंशमें वह नित्य है और विचित्र भावसे जिसका व्यवहार होता है, उस अंशमें उसकी सार्थकता है। लाइब्रेरीको पूरी तौरसे व्यवहार-योग्य बना डालनेकी चिन्ता और परिश्रमको लाइब्रेरियन अकसर स्वीकार नहीं करना चाहते। उसका कारण यह कि संचयकी बहुलतासे सर्वसाधारणके मनको प्रभावित करना आसान होता है।

पुस्तकालयको व्यवहारोपयोगी बनानेके लिए यह जरूरी है कि उसका परिचय त्रिलकुल स्पष्ट और सर्वांग-सम्पूर्ण हो। नहीं तो उसके भीतर पैठा नहीं जा सकता। वह किसी ऐसे शहरकी तरह हो जाता है, जिसमें घर-द्वार तो बहुत हों, पर आने-जानेके रास्ते नदारद।

जो खास तौरसे पुस्तकें खोजनेके लिए पुस्तकालयमें जाते-आते हैं, वे अपनी गरजसे दुर्गमके भीतर ही अपने चलनेके लिए पगडंडी बना लिया करते हैं। परन्तु पुस्तकालयका भी तो अपना एक दायित्व है। वह है उसकी सम्पदाका दायित्व। क्योंकि उसके पास पुस्तकें हैं, इसलिए उन पुस्तकोंको पढ़ा देनेपर ही वह धन्य हो सकता है। उसे अक्रिय होकर खड़ा नहीं रहना चाहिए, वह चाहे तो सक्रिय पाठकोंको बुला सकता है। कारण, तन्त्रं यत्न दीयते—जो दिया नहीं जाता, वह नष्ट हो जाता है।

साधारणतः लाइब्रेरियाँ कहा कहती हैं—हमारे पास ग्रन्थ-सूची है, स्वयं देख लो, ढूँढ़ लो। परन्तु उनकी तालिकामें आह्वान नहीं, परिचय नहीं और न उसकी तरफ कोई आग्रह ही है। जिस पुस्तकालयमें उसके अपने आग्रहका परिचय मिलता है, वह स्वयं आगे बढ़कर पाठकोंका स्वागत करके उन्हें लिवा लाता है, इसीको कहना चाहिए दानशीलता,—इसमें पुस्तकालयका बड़प्पन है—आकृतिमें नहीं, प्रकृतिमें। सिर्फ पाठक ही पुस्तकालयोंको नहीं बनाते, बल्कि पुस्तकालय पाठकोंको बनाते हैं।

इस बातको अगर याद रखा जाय, तो समझना चाहिए कि पुस्तकाध्यक्ष या लाइब्रेरियनका काम बहुत बड़ा काम है। आलमारियोंमें अच्छी तरह सिलसिलेवार पुस्तकें सजाने और उनका हिसाब रखनेसे ही उसका काम पूरा नहीं होता। अर्थात् संख्या सम्हालने और विभाग बनानेका जो काम है, वह सबसे बड़ा काम नहीं। पुस्तकाध्यक्षको ग्रन्थोंका ज्ञान होना चाहिए, सिर्फ भंडारी बननेसे काम नहीं चल सकता।

परन्तु, पुस्तकालय यदि बहुत बड़ा हो तो कोई लाइब्रेरियन उसे सत्य और सम्पूर्णरूपसे काबूमें नहीं ला सकता। इसलिए, मैं समझता हूँ, बड़े-बड़े पुस्तकालय मुख्यतः भंडार हैं और छोटे-छोटे पुस्तकालय भोजनालय—जो कि रोजमर्राके काममें आते हैं, उनसे जीवनीशक्ति मिलती है।

छोटे पुस्तकालयसे मेरा मतलब है—उसमें सभी श्रेणीकी पुस्तकें रहेंगी, पर एकदम चुनी हुई चोखी-चोखी पुस्तकें। विपुल-कलेवर गणनाकी वेदीपर नैवेद्य चढ़ानेके कामकी एक भी पुस्तक न रहेगी, प्रत्येक पुस्तक अपनी निजी विशिष्टता लिये हुए ही रहेगी। पुस्तकाध्यक्ष भी होंगे यथार्थ साधक और निर्लोभी, आलमारियाँ भरनेका अहंकार उन्हें त्याग देना होगा। यहाँ भोजका आयोजन जो-कुछ भी होगा, सब आदरके साथ पाठकोंकी पत्तलोंमें परोसने

लायक होगा; और पुस्तकाध्यक्षमें सिर्फ गोदाम-रक्षककी ही योग्यता नहीं, बल्कि आतिथ्य-पालनकी योग्यता होगी।

मान लो, किसी पुस्तकालयमें अच्छे-अच्छे मासिक पत्र आते हैं, कुछ देशके और विदेशके। अगर पुस्तकालयके जाँच-विभागका कोई व्यक्ति उनमें से खास-खास पढ़ने लायक लेखोंको यथायोग्य श्रेणियोंमें विभक्त करके उनकी सूची बनाकर वाचनालयके द्वारके पास लटका दे, तो उनके पढ़े जानेकी सम्भावना निश्चितरूपसे बढ़ सकती है। नहीं तो उन पत्रिकाओंका बारह-आना हिस्सा बिना-पढ़ा रह जायगा, और उससे पुस्तकालयका ढेर ही ऊँचा होगा और भार बढ़ेगा। नई पुस्तक आनेपर, बहुत थोड़े ही लाइब्रेरियन ऐसे मिलेंगे जो उससे स्वयं परिचित होकर पाठकोंको उसका संक्षिप्त परिचय देनेका तरीका अख्तियार करते हों। होना यह चाहिए कि किसी भी विषयपर अच्छी पुस्तक आते ही उसकी घोषणा हो जाय करे।

उसकी घोषणा किनके सामने होनी चाहिए? विशेष पाठकोंके सामने। प्रत्येक पुस्तकालयमें उसके अन्तरंग सम्बन्धमें एक विशेष पाठक-मंडली रहनी ही चाहिए। वह पाठक-मंडली ही पुस्तकालयको प्राण देती है। पुस्तकाध्यक्ष यदि ऐसी मंडलीको बना सके और उसे आकृष्ट करके रख सके, तभी उसकी कार्यकारिता समझनी चाहिए। इस मंडलीके साथ पुस्तकालयका अन्तरंग सम्बन्ध कायम करनेमें लाइब्रेरियन मध्यस्थका काम करेगा। अर्थात् पुस्तकाध्यक्षपर सिर्फ पुस्तकोंका ही भार नहीं, बल्कि पुस्तक-पाठकोंका भार भी होना चाहिए। इस तरह दोनोंकी रक्षा करते हुए ही पुस्तकाध्यक्ष अपना कर्तव्य पालन कर सकता है और अपनी योग्यताका भी परिचय दे सकता है।

पुस्तकाध्यक्ष जिन पुस्तकोंका संग्रह कर सका है, सिर्फ उन्हींके सम्बन्धमें उसका कर्तव्य सीमित नहीं है। उसे मालूम रहना चाहिए कि खास-खास

विषयोंकी अध्ययन करने-लायक कौन-कौनसी मुख्य पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं और हो रही हैं। एक बार शान्तिनिकेतन-विद्यालयमें बच्चोंके पढ़ने-योग्य पुस्तकोंकी जरूरत हुई। इस विषयमें नाना स्थानोंसे पता लगाकर मुझे पुस्तकें चुननी पड़ीं। प्रत्येक पुस्तकालयको चाहिए कि वह ऐसे काममें सहायता करे। खास-खास विषयोंमें जिन पुस्तकोंने पिछले दो सालोंमें प्रसिद्धि पाई हो, ऐसी पुस्तकोंकी सूची अगर पुस्तकालयमें तैयार रहे, तो एक अत्यावश्यक कर्तव्य पूरा हो सकता है। अगर कोई पुस्तकालय इस विषयमें अपनी ख्याति प्राप्त कर सके, तो पुस्तक-प्रकाशक भी अपनी गरजसे उनके पास अपनी पुस्तकोंकी सूची और परिचय भेज सकते हैं।

उपसंहारमें मेरा वक्तव्य यह है कि अखिल-भारत-पुस्तकालय-परिषदकी तरफसे ऐसी एक तिमाही, छमाही या वार्षिक पत्रिका निकलनी चाहिए, जिसमें और नहीं तो कम-से-कम अंगरेजी भाषामें विज्ञान, इतिहास, साहित्य आदि विषयोंकी जितनी भी अच्छी-अच्छी पुस्तकें प्रकाशित हुआ करें, उन-सबका यथासम्भव विवरण प्रकाशित हुआ करे।*

देश-भरमें सर्वत्र पुस्तकालय स्थापित करनेके लिए प्रोत्साहन देना हो, तो उनके संयोजकोंको यह भी बता देना चाहिए कि उन पुस्तकालयोंमें कौन-कौनसे ग्रन्थ संग्रह करने चाहिए; और इस काममें हर तरहसे सहायता पहुँचाना उक्त परिषदका कर्तव्य होना चाहिए।

इस निबन्धमें मैंने जो बात कहनी चाही है, संक्षेपमें वह यह है कि पुस्तकालयोंका मुख्य कर्तव्य है पुस्तकोंके साथ पाठकोंका सचेष्ट भावसे परिचय करा देना, पुस्तकोंका संग्रह और उनकी रक्षा उनका गौण कार्य है।

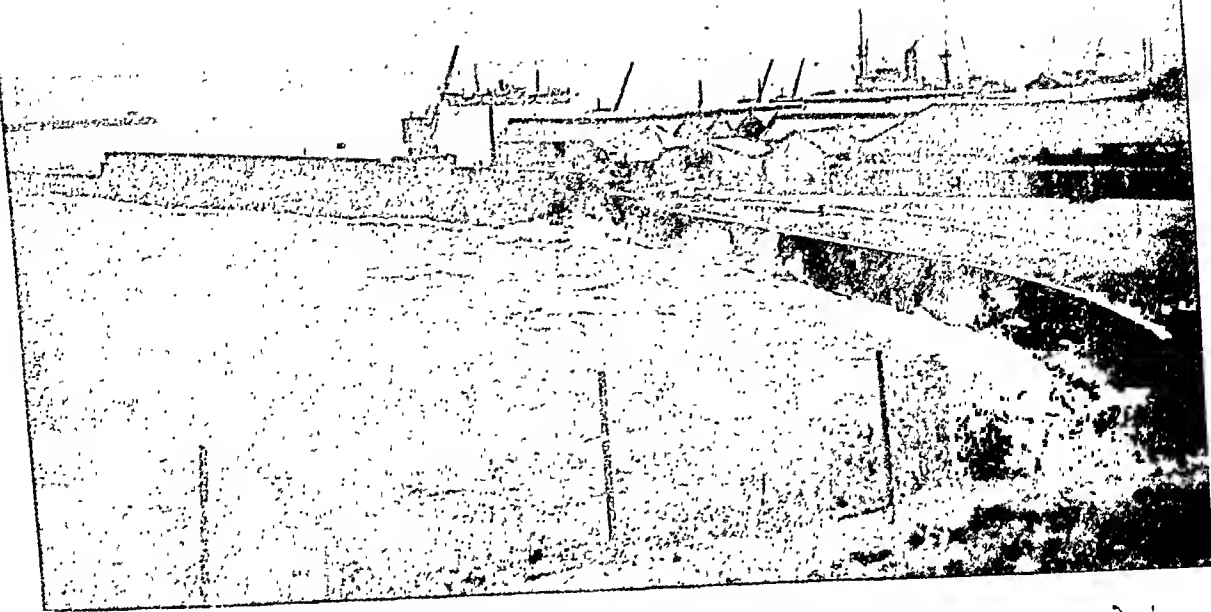
—धन्यकुमार जैन

* यही बात राष्ट्रभाषा हिन्दीके विषयमें भी कही जा सकती है। ऐसा होनेसे हिन्दीवालोंको शुद्ध मानसिक भोजन आसानीसे पहुँचाया जा सकता है, इस तरह पाठकोंकी रुचि भी अच्छी दिशामें मोड़ी जा सकती है। फिलहाल इस कामका भार चालू पत्र-पत्रिकाएँ भी ले सकती हैं।

—अनुवादक



स्वर्गीय डाक्टर जे० टी० सण्डरलैण्ड



गोयाका बन्दरगाह । खबर है कि इसे जर्मनी पोचगीज़ सरकारसे खरीदकर भारतमें हिटलरवादका प्रचार करेगा



संघ-शासनपर विचार करनेके लिए देशी नरेशोंके मंत्रियोंकी कानफरेंसके सदस्य । यह कानफरेंस बम्बईमें हुई थी

सम्पादकीय विचार

नामज़दगी बनाम प्रतियोगिता

बहुत दिन पहले इंडियन सिविल सर्विस (आई० सी० एस०) में लोगोंकी नियुक्ति नामज़दगीसे हुआ करती थी। चूँकि खुली प्रतियोगिताको नामज़दगीसे अच्छा समझा गया, और है भी, इसलिए बादमें सिविल सर्विसमें उम्मीदवारोंकी नियुक्ति प्रतियोगिता-परीक्षासे होने लगी। लेकिन देखा गया कि खुली प्रतियोगितामें अंगरेज़ोंसे भारतीय अधिक सफल होते हैं, इसलिए प्रतियोगितामें हारकर अंगरेज़ोंने फिर नामज़दगीकी दुहाई देनी शुरू की। अतः अब आई० सी० एस० की नियुक्ति दोनों तरीकोंसे होगी, ताकि अंगरेज़ोंका— जो उच्च जातिके हैं—तख़्ता भारतीय उलट न दें।

मिस्टर सत्यमूर्तिने लेजिस्लेटिव एसेम्बलीमें नामज़दगीके नये तरीक़ेके खिलाफ़ बैठक स्थगित करनेका जो प्रस्ताव पेश किया था, वह बहुमतसे पास हो गया। एसेम्बलीके दो मुसलमान सदस्योंने नामज़दगीकी प्रथाका समर्थन करते हुए यह दलील दी कि नामज़द किये हुए लोग अच्छे शासक होते हैं; लेकिन हमारे प्रतियोगितावाले ब्रिटिश शासक क्या कहते हैं? ये दोनों मुसलमान सदस्य समूचे मुस्लिम सम्प्रदायके प्रतिनिधि नहीं हैं, क्योंकि बहुतसे मुसलमान उम्मीदवार भी प्रतियोगिताके दरवाज़ेसे सिविल सर्विसमें प्रवेश कर चुके हैं।

मैकमहनकी सज़ा

बादशाह अष्टम एडवर्ड एक दिन फौजोंका निरीक्षण करके हाइड्रॉपार्कसे लौट रहे थे, उस समय मैकमहन नामक एक व्यक्ति उनके पास रिवाल्वर फेंकनेके अपराधमें गिरफ़्तार हुआ था। मुक़दमेके दौरानमें मैकमहनने कहा कि एक विदेशी शक्ति (सरकार) ने उसे बादशाहको गोली मारनेके लिए पैसा दिया था; ताकि ब्रिटिश साम्राज्य छिन्न-भिन्न हो जाय और

साम्राज्यके टूटनेपर उसके कुछ हिस्से दूसरे देशोंके पड़े पड़ें। लन्दनकी ओल्ड बेलीकी अदालतमें मैकमहनपर तीन अपराधोंपर मुक़दमा चला—(१) जीवनको ख़तरेंमें डालनेके इरादेसे क़ानूनके खिलाफ़ बारूदवाला हथियार रखना, (२) शान्ति भंग करनेके इरादेसे बादशाहके पास पिस्तौल उपस्थित करना और (३) बादशाहको डरानेके इरादेसे ग़ैरक़ानूनी ढंगसे उपर्युक्त पिस्तौलको निकालना। अपराधीने कहा कि उसने पिस्तौलको ज़मीनपर फेंक दिया था, क्योंकि वह गोली चलाना नहीं चाहता था। सरकारी वकीलने विदेशी शक्तिके किस्सेपर विश्वास नहीं किया और कहा कि वह आसामीकी कल्पनाकी उपज है। हाँ, उन्होंने यह बात मान ली कि मैकमहनका इरादा बादशाहपर गोली चलानेका नहीं था। बादशाहको डरानेके अपराधपर मुजरिमको एक सालकी कड़ी कैदकी सज़ा हुई, बाकी दो जुर्मोंपर वह निरपराध पाया गया।

यदि यह घटना भारतमें हुई होती, अगर अपराधी कोई भारतीय होता और यदि उसने बड़े लाटे या छोटे लाटे या किसी मैजिस्ट्रेट अथवा किसी पहरेवालेके पास इसी तरह ज़मीनपर पिस्तौल फेंक दिया होता, तो परिणाम क्या होता? क्या उसकी यह स्वीकाराति कि उसने किसी विदेशी शक्ति या किसी अहिंसा या हिंसावादी नेताके कहनेसे ऐसा किया, झूठी कहकर मुहज़ एक गरमाये हुए दिमाग़की उपज ही समझी जाती? क्या यहाँ इसपर एक लम्बा-चौड़ा षड्यन्त्र कैसे न चलता? और अपराधीको इस जुर्मपर सज़ा क्या मिलती?

पण्डित जवाहरलाल नेहरूने अपनी नवीन पुस्तक 'India and World'के 'जेल-जगत' शीर्षक निबन्धमें कुछ मामले उद्धृत किये हैं, उन्हें देखिये—

“एसोसियेटेड प्रेसकी पेदावरकी १५ दिसम्बर १९३२ की खबर है—कोल्डस्ट्रीम हत्याके बाद ही सीमा-प्रान्तके

इन्स्पेक्टर-जनरल आफ पुलिस तथा कुछ अन्य अधिकारियोंको धमकीकी चिट्ठियाँ लिखनेके आधारपर पेशावरके सिटी मैजिस्ट्रेटने जमनादास नामक मुज़ारिमको ताजीरात हिन्दकी दफा ५००-१०७ के अनुसार आठ सालकी सज़ा दी।' जान पड़ता है कि जमनादास एक कम उम्रका लड़का था।

यह एक और महत्वपूर्ण उदाहरण है—यह भी एसोसियेटेड प्रेसकी लाहौरकी २२ एप्रिल १९३३ की खबर है। 'सात इंच लम्बे फलवाला चाकू रखनेके अपराधमें सआदत नामक एक नौजवान मुसलमानको सिटी मैजिस्ट्रेटने आर्म्स एक्टकी १९ वीं दफाके अनुसार १८ महीनेकी कड़ी कैदकी सज़ा दी।' "

एक तीसरा नमूना मदरासका ६ जुलाई १९३३ का है— 'रामस्वामी नामके एक लड़केने चीफ-प्रेसिडेन्सी मैजिस्ट्रेटके इजलासमें, जब कि वे एक पड़्यन्त्र केस सुन रहे थे, एक अहानिकर पटाखा चलाया। रामस्वामीको चार सालकी सज़ा हुई, (जान पड़ता है, लड़कोंके जेलमें)।' "

बंगालमें बहुतसे नज़रबन्द विना मुकदमा चलाये हुए, केवल सन्देशपर ही, नज़रबन्द कर रखे गये हैं। उन्हें किसी नियमके नाममात्रके उल्लंघनपर ही साल-भरकी या अधिककी कड़ी कैद होना असाधारण बात नहीं है।

ओलिम्पिक खेलोंमें भारतकी असफलता

जर्मनीमें होनेवाले ओलिम्पिक खेलोंमें भारतकी हाकी टीम और उसके प्रधान श्रीयुत ध्यानचन्दने जो शानदार सफलता प्राप्त की है, उसपर हम प्रसन्नता प्रकट करते हैं। किन्तु केवल एक इसी सफलतासे हमें यह बात न भूल जानी चाहिए कि ओलिम्पिकके अन्य खेलोंमें भारतका स्थान कितना पिछड़ा हुआ है। नीचेकी सूचीसे ज्ञात हो जायगा कि प्रतियोगितामें भाग लेनेवाले विभिन्न देशोंके खिलाड़ियोंने कितने पदक प्राप्त किये हैं:—

देश	स्वर्ण-पदक	रौप्य-पदक	कांसेके पदक
जर्मनी	३३	२६	३०
यू० एस० ए०	२४	२०	१२
हंगरी	१०	१	५
इटली	८	९	५
फ्रांस	७	६	६

फिनलैण्ड	७	६	६
स्वीडन	६	५	९
जापान	६	४	८
हालैण्ड	६	४	७
ब्रिटेन	४	७	३
आस्ट्रिया	४	६	३
चेकोस्लोवाकिया	३	५	०
इस्थोनिया	२	२	३
अर्जेन्टाइन	२	२	३
ईजिप्ट	१	१	१
स्विटज़रलैण्ड	१	९	५
कैनेडा	१	३	५
नार्वे	१	३	२
टर्की	१	०	१
भारतवर्ष	१	०	०
न्यूज़ीलैण्ड	१	०	०
पोलैण्ड	०	३	३
डेनमार्क	०	२	३
लैटविया	०	१	१
यूगोस्लैविया	०	१	०
दक्षिण-अफ्रिका	०	१	०
रुमानिया	०	१	०
मैक्सिको	०	०	३
बेल्जियम	०	०	२
आस्ट्रेलिया	०	०	१
फिलीपाइन	०	०	१
पोर्चुगल	०	०	१

जर्मनीकी सफलता शानदार हुई। दूसरा नम्बर संयुक्त-राज्य अमेरिकाका है।

भारतकी ओछी सफलताके अनेक कारण हैं। आम तौरपर भारतवासी गरीब हैं, उन्हें भरपेट भोजन नहीं मिलता और वे तरह-तरहकी बीमारियोंके शिकार रहते हैं। केवल कुछ पढ़े-लिखे लोग ही ऐसे हैं, जिन्होंने ओलिम्पिक खेलोंका नाम सुना है। लेकिन रोटीका सवाल इतना कठिन है कि उनके पास उचित ढंगपर शारीरिक शिक्षा प्राप्त करनेके लिए न तो शक्ति

बाक्री रहती है, न फुरसत और न पैसा। भारतमें जो धनी हैं, उन्हें आम तौरसे इस तरहके खेलोंमें कोई दिलचस्पी ही नहीं होती।

—श्री रामानन्द चट्टोपाध्याय

स्वर्गीय प्रेमचन्दजी

प्रेमचन्दजीके निधनसे हिन्दी-साहित्याकाशका एक जगमगाता नक्षत्र अस्त हो गया। प्रेमचन्दजी उन साहित्यिकोंमें से थे, जिन्होंने अपनी कलापूर्ण रचनाओंसे केवल हिन्दीका रीता भंडार ही नहीं भरा था, बल्कि जिन्होंने हिन्दीकी चहारदीवारीके बाहर भारतकी अन्य भाषाओंके साहित्य-प्रेमियोंमें भी ख्याति प्राप्त करके हिन्दीको गौरवान्वित किया था। हमारे देशके सृष्ट्यात्मक साहित्यकारोंमें ग्रामीण जीवनका ऐसा अच्छा जीता-जागता और सच्चा चित्र बहुत कम कलाकार खींच सकते हैं। हिन्दीके कहानी-साहित्यको अन्य भारतीय भाषाओंके समकक्ष पहुँचाने और उत्कृष्ट बनानेमें सबसे अधिक काम यदि किसीने किया है, तो प्रेमचन्दजीने।

प्रेमचन्दजीका प्रारम्भिक जीवन काफी कठिनाइयोंमें बीता था। उन्होंने जो-कुछ ख्याति और सम्मान प्राप्त किया, सब अपनी रचनात्मक शक्तिसे ही। प्रेमचन्दजीका असली नाम मुंशी धनपतराय था। उन्होंने अध्यापन-कार्यसे जीवन आरम्भ किया था, और वर्षों तक शिक्षकका काम करते रहे थे। बाल्य जीवनमें उन्हें जिन-जिन कठिनाइयोंका सामना करना पड़ा था, उन्होंने प्रेमचन्दजीको जनसाधारणके कठोर जीवनको जानने और मानव-स्वभावके सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक घात-प्रतिघातोंको समझनेकी अद्वितीय शक्ति प्रदान की थी। साहित्य-क्षेत्रमें उन्होंने उर्दूके दरवाजेसे प्रवेश किया था। पहले वे उर्दूके ही लेखक थे। बादमें उर्दू-क्षेत्रको अपनी विस्तृत प्रतिभाके लिए बहुत महद्दूध पाकर वे हिन्दीके विशाल प्रांगणमें आ गये और उसे अपनी रचनात्मक कलासे चमका दिया। हिन्दीवालोंने

भी प्रेमचन्दजीका हृदयसे स्वागत किया। प्रेमचन्दजी उन कतिपय लेखकोंमें से थे, जिनपर हिन्दी और उर्दूको बराबरका दावा और नाज़ था। उर्दू-हिन्दीपर समान अधिकार होनेके कारण प्रेमचन्दजी भाषामें एक स्वाभाविक सरलता और आकर्षक लोच थी। हिन्दीके लेखकोंमें उनकी भाषा अत्यधिक लोकप्रिय सिद्ध हुई।

हिन्दीके सर्वश्रेष्ठ साहित्यिकोंमें होनेपर भी प्रेमचन्दजीमें अभिमान या अहंभाव नामको भी न था। सरल, निरभिमान और आडम्बरशून्य स्वभावके साथ ही प्रेमचन्दजीके व्यक्तित्वमें कुछ ऐसा आकर्षण था, जिससे प्रत्येक मिलनेवाला प्रभावित हुए बिना नहीं रहता था। उनकी उन्मुक्त हँसी बालकोंकी तरह भोलीभाली थी। दुनियाकी मक्कारियों और चालाकियोंको बारीक निगाहसे देखने और उसका हूबहू सजीव चित्र खींचनेकी अलौकिक क्षमता रखते हुए भी प्रेमचन्दजी स्वयं हर तरहकी चालाकीसे कोसों परे थे। वे इतने भोले थे कि उन्हें चालाक व्यक्ति ठग सकते थे। प्रेमचन्दजी स्वयं अत्युच्च कोटिके साहित्यस्तथा तो थे ही, साथ ही वे हिन्दीके उगते हुए कहानीकारोंको प्रोत्साहन देकर आगे बढ़ाना भी जानते थे। उनके 'हंस'के द्वारा हिन्दीके अनेक लेखकोंको तथा हिन्दीके कहानी-साहित्यको खासा प्रोत्साहन मिला है।

पिछले कुछ दिनोंसे प्रेमचन्दजी जलोदर रोगसे पीड़ित थे, और इसीमें उनका शरीरान्त हुआ। हिन्दीमें प्रेमचन्दजीका रिक्त स्थान भरनेवाला कोई दूसरा नहीं दीख पड़ता। प्रेमचन्दजीकी मृत्युसे उनके परिवार और परिचित स्वजनोंकी ही हानि नहीं हुई, बल्कि समूचे हिन्दी-साहित्यको गहरा धक्का पहुँचा है।

प्रेमचन्दजीके शोकसन्तप्त परिवारसे हम हार्दिक सहानुभूति प्रकट करते हैं।

स्वर्गीय मुंशी प्रेमचन्द

श्रद्धांजलि

श्रीयुत सुन्दरलालजी लिखते हैं :—

“आज सुबहके अखबारमें मुंशी प्रेमचन्दकी मृत्युकी खबर पढ़कर दिलको यकायक धक्का लगा। एक बड़े असें तक उर्दूके ज़बरदस्त साहित्यकोंमें उनका शुमार रहा। मृत्युसे अठारह साल पहले हिन्दी लिखना शुरू किया। अपने ज़मानेमें हिन्दी-साहित्यकोंके सरताज थे। वे न सिर्फ अपनी साहित्यिक जिन्दगीमें, बल्कि अपने भावों और विचारोंमें भी हिन्दी और उर्दूके बीचका पुल थे। पिछले पचास सालके अन्दर किसी दूसरे लेखककी रचनाएँ हिन्दू मुसलिम प्रेम, एक दूसरेकी ठीक जानकारी और एकताके बहुमूल्य भावोंसे इतनी ओत-प्रोत न मिलेंगी, जितनी मुंशी प्रेमचन्दकी। ग़लतफ़हमियोंके रेगिस्तानमें एक छोटा-सा सरसब्ज़ टुकड़ा थे। अपने सीनेमें दिल रखते थे। लाखों और करोड़ोंमें एक इन्सान थे। इस मुल्कके लिए यानीमत थे। तमाम जिन्दगी ऐक्य और मानव-सहानुभूतिका एक नमूना थी। देशके मशहूर-से-मशहूर व्यक्तियोंमें भी, जिनके नाम सूर्यकी तरह दैनिक समाचारपत्रोंके कालमोंमें चमकते रहते हैं, बहुत कम होंगे, जिनका हिस्सा एक संयुक्त हिन्दुस्तानी राष्ट्रकी तामीरमें इतना महत्त्वपूर्ण, इतना पाक और इतना निष्काम रहा हो, जितना मुंशी प्रेमचन्दका। कोई उनकी जगह लेनेवाला नज़र नहीं आता।

इलाहाबाद }
६।१०।६६ }

—सुन्दरलाल।”

पुस्तकालयोंको विशेष सुयोग

देशमें पिछले पन्द्रह-सोलह वर्षसे स्वाधीनताके लिए जो राजनैतिक संग्राम चल रहा है, हम लोगोंका कर्तव्य है कि हम उसके हर पहलूसे अच्छी तरह परिचित हों। देशकी अनेक समस्याओंपर अखिल भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसने समय-समयपर जो रिपोर्टें,

पैमफलेट और पुस्तकें प्रकाशित की हैं, वे हमारे राजनैतिक साहित्यमें एक महत्त्वपूर्ण स्थान रखती हैं, और भारतीय राजनीतिसे थोड़ी भी दिलचस्पी रखनेवालेको उन्हें पढ़ना ज़रूरी है। हमें यह जानकर प्रसन्नता हुई कि पं० जवाहरलाल नेहरूने इस बातका प्रबन्ध किया है कि सार्वजनिक संस्थाओंको कांग्रेसका समूचा प्रकाशन नाममात्रकी कीमतमें मिल सके। श्री नेहरूजी एक पत्रमें लिखते हैं :—

“हम चाहते हैं कि सभी कांग्रेस कमेटियों, सार्वजनिक पुस्तकालयों तथा अन्य राष्ट्रीय संस्थाओंमें पढ़ने और रीफरेंसके लिए कांग्रेस द्वारा प्रकाशित पुस्तकें मिल सकें। इन पुस्तकोंमें बहुत-सी हालकी हैं, मौजूदा समस्याओंपर हैं और सार्वजनिक कार्योंसे दिलचस्पी रखनेवालोंके लिए बहुत महत्त्वपूर्ण हैं। कुछ पुस्तकें पुरानी हैं—जैसे पंजाब मार्शल लॉकी रिपोर्ट और गवाहियाँ—फिर भी वे रीफरेंसके लिए बहुत ज़रूरी हैं। कांग्रेस कमेटियों और पुस्तकालयों आदिको इन सब पुस्तकोंको आसानीसे प्राप्त करनेके लिए हमने यह निश्चय किया है कि ₹५ के लगभगकी पुस्तकें सिर्फ ५) में दी जायँ। इस पाँच रुपयेमें डाक खर्च भी शामिल है, और चूँकि डाक खर्च काफ़ी पड़ जायगा, इसलिए वास्तवमें ये सब पुस्तकें नाममात्रके मूल्यपर ही पड़ेंगी। पाँच रुपयेकी पार्सलमें निम्न-लिखित पुस्तकें होंगी :—

अंगरेज़ी—

1. Dr. Pattabhi Sitaramayya's History of the Congress.
2. Dr. Ahmad's Agrarian Problem in India.
3. Punjab Martial Law Report and Evidence—2 Volumes.
4. Assam Opium Enquiry Report.
5. Congress Jubilee Brochures—11 Volumes.
6. Nehru Committee's Report.
7. Supplementary Report to the above.
8. Summary of Proceedings of All Parties Conference.
9. All Parties Convention Report.
10. Guru ka Bagh Enquiry Committee Report.
11. National Demand.
12. Dominion Status and Indian States.

13. Poona Statements. 14. General Secretaries Report—Nov. 1934 to March 1936. 15. Indian National Congress—Annual publication from 1926 to 1936—5 volumes. 16. Allahabad Congress Report—1910. 17. Calcutta Congress Report—1128. 18. Lahore Congress Report—1929. 19. Karachi Congress Report—1931. 20. Constitution of I. N. C.—1936. 21. Congress Bulletins. No. 1 and 2 of 1935 and No. 1 of 1936. 22. Decalogue of Public Debt Committee Report. 23. Resolutions of Madras, Karachi, and Lucknow Congress. 24. Presidential Address at Calcutta Congress. 25. Presidential Address at Karachi Congress. 26. Presidential Address at Lucknow Congress. 27. Address of Welcome at Lahore Congress. 28. Address of Welcome at Karachi Congress. 29. Address of Welcome at Bombay Congress.

हिन्दी पुस्तकें—३०. लाहौर कांग्रेसके सभापतिका भाषण, ३१. कराची कांग्रेसके सभापतिका भाषण।

उर्दू पुस्तकें—३२. कराची कांग्रेसके प्रस्ताव, ३३. कलकत्ता कांग्रेसके प्रस्ताव, ३४. नेहरू कमेटीकी रिपोर्ट, ३५. नेहरू कमेटी रिपोर्टका परिशिष्ट।

यह सुविधा केवल कांग्रेस कमेटियों, पुस्तकालयों और सार्वजनिक राष्ट्रीय संस्थाओंके लिए ही है। पार्सल बी० पी० से नहीं भेजी जायगी। ५) मनीआर्डरसे भेजनेसे पार्सल रवाना कर दी जायगी।”

आशा है कि सार्वजनिक पुस्तकालय और संस्थाएँ इस योजनासे लाभ उठायेंगी। रुपया सेक्रेटरी आल इंडिया कांग्रेस कमेटी, स्वराज्य-भवन, इलाहाबादके पतेसे भेजना चाहिए।

स्वर्गीय डाक्टर जे० टी० सगडरलैण्ड

डाक्टर जे० टी० सगडरलैण्डकी मृत्युसे भारतका एक महान हितैषी उठ गया। डाक्टर महोदयका देहान्त ६५ वर्षकी आयुमें गत १३ अगस्तको एन अवर अमेरिकामें हुआ।

यह कहना गलत न होगा कि विदेशोंमें सगडरलैण्डके समान भारतका प्रेमी, भारतकी दीन दशासे दुखी और भारतीय स्वतन्त्रताका कट्टर समर्थक दूसरा न होगा। किसी भी विदेशीने भारतके हितके लिए अपने जीवनकी अन्तिम साँस तक इतनी लगनसे प्रयत्न न किया होगा, जितना डाक्टर महोदयने किया है।

डाक्टर सगडरलैण्डका जन्म सन् १८४२ में इंग्लैण्डके यार्कशायरमें हुआ था। जिस समय वे दो वर्षके ही थे, उनके माता-पिता अमेरिका जा बसे थे। उन्होंने शिकागो-यूनिवर्सिटीमें शिक्षा प्राप्त करके सन् १८६६ में एम० ए० की और टफ्ट-यूनिवर्सिटीसे १८७० में डाक्टर आफ डिवनिटीकी उपाधि पाई थी। जिस समय वे पढ़ते थे, उसी समय गुलामीकी प्रथा दूर करनेके लिए अमेरिकाकी उत्तरी और दक्षिणी रियासतोंमें गृह-युद्ध हुआ था। सगडरलैण्ड पढ़ना छोड़कर गुलामी दूर करनेके लिए फौजमें भरती हो गये थे। युद्धके बाद शिक्षा समाप्त करके वे यूनिटेरियन चर्चके पादरी हो गये और अमेरिका और कैनाडाके अनेक स्थानोंमें पादरीका काम करते रहे।

सन् १८६५ में डाक्टर सगडरलैण्ड अपने मिशनकी ओरसे भारतकी सामाजिक, धार्मिक और शिक्षा-सम्बन्धी स्थितिका अध्ययन करनेके लिए भारत भेजे गये। तभीसे भारतके साथ उनका सम्बन्ध स्थापित हुआ, जो आजीवन क्लायम रहा। भारतमें रहते समय वे कांग्रेसके अधिवेशनमें भी उपस्थित हुए थे।

सन् १९१३-१४ में डाक्टर सगडरलैण्ड दूसरी बार भारत आये थे। उस समय वे आल इंडिया थीस्टिक कानफरेंसके सभापति भी हुए थे।

डाक्टर महोदय यद्यपि ईसाई पादरी थे ; किन्तु उनके विचार बहुत उदार थे। उनमें किसी तरहका धार्मिक या सामाजिक कट्टरपन न था। पादरी होनेसे धार्मिक विषयोंमें उनकी रुचि होना स्वाभाविक ही थी ; लेकिन उसके साथ-ही-साथ वे और भी अनेक विषयोंमें रुचि रखते थे। अंगरेजी साहित्य और ज्ञान-विज्ञानमें

उनकी पहुँच बहुत दूर तक थी। उन्होंने 'बन्दी भारत' (इंडिया इन बाण्डेज) नामक पुस्तक लिखी थी, जिसकी भारतमें काफी ख्याति हुई और जिसे भारत-सरकारने केवल जव्त ही नहीं कर लिया, बल्कि उसके प्रकाशक और मुद्रक श्रीयुत रामानन्द चट्टोपाध्याय और श्रीयुत सजनीकान्त दासको सजा भी दी थी। इस पुस्तकके लिए लोग कहते हैं कि यह भारतकी राष्ट्रीयताका वेद है। बादमें यह पुस्तक अमेरिकामें भी प्रकाशित हुई।

लाला लाजपतराय जब अमेरिकामें रहते थे, तब डाक्टर सण्डरलैण्डने उनकी काफी सहायता की थी। अमेरिकामें रहनेवाले भारतीयोंका कोई भी उत्सव और कार्य ऐसा न होता था, जिसमें डाक्टर सण्डरलैण्डकी सहानुभूति न हो, या जिसमें वे स्वयं भाग न लेते हों। अमेरिका जानेवाले प्रत्येक भारतीयके लिए उनका द्वार सदा खुला रहता था। डाक्टर महोदयने 'इंडिया इन बाण्डेज'के अतिरिक्त लगभग २० पुस्तकें और लिखी हैं।

'विशाल भारत'के सम्पादकने सन् १९३३ में उनसे कुछ लिखनेकी प्रार्थना की थी, उस समय डाक्टर सण्डरलैण्डने अपने पत्रमें महात्मा गांधीके विषयमें जो विचार प्रकट किये थे, वे इस अंकके प्रथम पृष्ठपर प्रकाशित हैं।

डाक्टर साहब अपने अन्तिम क्षण तक भारतको नहीं भूले। अपनी अन्तिम बीमारीमें जब उनकी पुत्रीने उनकी अन्तिम आकांक्षा पूछी तो उन्होंने कहा— "भारतको अपने अन्तिम सन्देशके रूपमें मैं प्रेम भेजता हूँ। (As my last message to India I send my love.)"

दैनिक 'हिन्दुस्तान'

पिछले छै माससे भारतकी राजधानी दिल्लीसे 'हिन्दुस्तान' नामक एक सचित्र हिन्दी दैनिक पत्र प्रकाशित हो रहा है। इसके सम्पादक हिन्दीके सुपरिचित लेखक और पत्रकार श्री सत्यदेव विद्यालंकार

हैं। हिन्दी 'हिन्दुस्तान' अंगरेजीके सुप्रसिद्ध दैनिक 'हिन्दुस्तान टाइम्स' के कार्यालयसे प्रकाशित होता है। यह देखकर प्रसन्नता होती है कि इन कुछ महीनोंमें ही 'हिन्दुस्तान' ने हिन्दीके दैनिक पत्रोंमें अपना एक विशिष्ट स्थान बना लिया है। 'हिन्दुस्तान' का सम्पादन बहुत योग्यतासे होता है। २१ अक्टूबरको महात्माजीकी वर्षगांठके उपलक्षमें 'हिन्दुस्तान' का 'गांधी-अंक' प्रकाशित हुआ था। इस अंकमें 'हिन्दुस्तान टाइम्स' के आकारके २० पृष्ठ हैं। लेखोंका बहुत अच्छा चयन किया गया है। महात्माजी संसारके महानतम पुरुषोंमें हैं। उनके जीवन और कार्योंके अनेक पहलू हैं। 'गांधी-अंक' के विभिन्न लेखकोंने उनके जीवनके विभिन्न पहलुओंपर प्रकाश डाला है। श्री वियोगी हरिने अस्पृश्यतापर, श्री जे० सी० कुमारप्पाने ग्रामीण उद्योग-धन्धोंपर, श्री महादेव देसाईने गांधीजीके व्यक्तित्व और दरिद्रनारायणके प्रति उनके प्रेमपर, कोतवाल भाईने गांधीजीके उच्च नैतिक सिद्धान्तोंपर, श्री के० एम० मुंशीने साहित्यपर गांधीजीके प्रभावपर, श्री हरिभाऊ उपाध्यायने संसारको गांधीजीकी देनपर प्रकाश डाला है। इनके अतिरिक्त श्री पी० सी० राय, श्री नरसिंह चिन्तामणि केलकर, श्री गोविन्दवल्लभ पन्त, मौलाना शौकत अली, श्री सत्यमूर्ति, श्री अमृतलाल ठक्कर, श्रीमती रामेश्वरी नेहरू आदिने महात्माजीकी महानताको विभिन्न दृष्टिकोणोंसे तउपस्थि किया है। इस अंकमें महात्माजीके और माता कस्तूर बाके दो सुन्दर चित्र भी हैं। इस सुन्दर विशेषांकके लिए हम 'हिन्दुस्तान' के सम्पादक और संचालकोंको बधाई देते हैं। इस विशेषांकका मूल्य भी साधारण अंकोंकी भाँति दो पैसे ही रखा गया है, जिससे हर कोई इसे खरीद सकता है।

अमरावती व्यायामशाला

इस वर्ष वर्लिनमें जो सारे संसारके ओलिम्पिक खेल हुए थे, उनमें भाग लेनेके लिए अमरावतीकी

हनुमान-व्यायामशालाने भी अपने कुछ खिलाड़ी भेजे थे। इन खिलाड़ियोंने वहाँ कबड्डी आदि देशी खेल दिखलाये थे। चूँकि इनके खेल विशुद्ध भारतीय थे, जिन्हें संसारके और किसी देशके खिलाड़ी नहीं जानते, इसलिए इन्होंने किसी प्रतियोगितामें भाग नहीं लिया था; फिर भी ओलिम्पिक दर्शकोंको इनके विचित्र खेल बहुत पसन्द आये। ये खिलाड़ी वहाँपर कविवर रवीन्द्रनाथ ठाकुरका 'एकला चल, एकला चल, एकला चल रे' शीर्षक सुप्रसिद्ध गीत गाते थे। जर्मनोंको इनका यह गायन इतना पसन्द आया कि उन्होंने ओलिम्पिक खेलोंके उद्घाटन-उत्सवके समय इन खिलाड़ियोंको यह गीत गानेके लिए निमन्त्रित किया था।

दक्षिण-अफ्रिकाका सद्भावसूचक डेपूटेशन

दक्षिण-अफ्रिकासे मिस्टर हाफमेयरकी अध्यक्षतामें दक्षिण-अफ्रिकन पार्लामेंटके सदस्योंका एक डेपूटेशन भारतके साथ सद्भाव स्थापित करनेके लिए आया है। यह डेपूटेशन इस समय भारत-सरकारका मेहमान है और इस समय हमारे देशका दौरा कर रहा है। प्रत्येक स्थानमें उनका आदर-सत्कार हो रहा है। डेपूटेशनके प्रधान मिस्टर हाफमेयरने अपनी वक्तृताओंमें बहुत-सी मीठी बातें कही हैं। उन्होंने यह भी कहा है कि संसारके महानतम व्यक्ति महात्मा गांधी और उनका सत्याग्रहका तरीका भारतको दक्षिण-अफ्रिकाकी ही देन है। डेपूटेशनके सदस्योंकी मीठी-मीठी बातें सुनकर भी हम लोग यह नहीं भूल सकते कि दक्षिण-अफ्रिकामें बसनेवाले भारतीयोंपर कैसे-कैसे अन्याय और अपमान होते हैं। हैं। यदि डेपूटेशनके प्रतिनिधिगण इस देशके लोगोंको अच्छी तरह देख-सुनकर अपने देशमें लौटकर भारतीयोंके साथ न्याय करें और अपने देशवासियोंके भारतीयोंके प्रति विद्वेष-भाव दूर करनेका प्रयत्न करें, तो उनका आना और इस देशके लोगोंकी अभ्यर्थना व्यर्थ न होगी।

मुसलमानोंकी अदूरदर्शिता

महात्माजीके पुत्र श्री हीरालाल गांधीके मुसलमानों मजहब ग्रहण कर लेनेपर मुसलमानोंने जो शोर्गुल मचा रखा है, उसे देखकर मुसलमानोंकी नासमझी और जहालतपर तरस आता है। धर्म एक ऐसी चीज है, जिसका सीधा सम्बन्ध मनुष्यकी आत्मा और उसके ईश्वरसे है। हर एक मनुष्यको अधिकार है कि जिस धर्ममें उसका आन्तरिक विश्वास हो, उसी धर्मको माने। धर्म और धार्मिकताके पक्षमें यदि कोई सबसे ज़बर्दस्त दलील दी जा सकती है, तो वह यह है कि धर्म आदमीके नैतिक आचार-विचारोंको सुधार कर उसकी आत्माको बलवान बनाता और ऊपर उठाता है। अन्य धर्मोंकी भाँति इस्लाम भी आचरणकी पवित्रता और पाकीजा खसलतोंपर बहुत काफी जोर देता है। इस्लामके पैगम्बर हज़रत मुहम्मदने आचरणकी पवित्रतापर इतना अधिक जोर दिया है कि शराब पीना तो मुसलमानके लिए एकदम हARAM कर दिया है। हीरालाल गांधी जब तक हिन्दू थे, शराबनोशी ही नहीं और भी बहुत तरहके अनाचार करते थे, जिसपर रूठ होकर महात्माजीने उनसे सब प्रकारका सम्बन्ध छोड़ दिया था। मुसलमान होकर यदि हीरालाल गांधीके चाल-चलनमें कुछ सुधार होता, तो उनका धर्म-परिवर्तन सार्थक था; किन्तु सुधार होनेके बजाय उनकी हालत अबतर होती गई और एक दिन वे नशेमें मतवाले होकर आम सड़कपर दंगा करनेके अपराधपर मद्रासमें गिरफ्तार हुए और अदालतमें उन्होंने अपना अपराध भी स्वीकार किया। श्रीमती कस्तूर बाने इसपर हीरालालको जो पत्र लिखा था, उसमें उन्होंने लिखा था:—

'मुझे तुम्हारा धर्म-परिवर्तन बिलकुल पसन्द नहीं है लेकिन जब मैंने पत्रोंमें तुम्हारा वक्तव्य पढ़ा कि तुम सुधार करना चाहते हो, तो मेरा अन्तःकरण इस बातसे आह्लादित हो गया कि अब तुम ठीक जिन्दगी बसर करोगे। लेकिन तुमने तो उन सारी उम्मीदोंपर पानी फेर दिया। अभी

हालमें तुम्हारे कुछ पुराने मित्रों और शुभेच्छुओंने तुम्हें पहलेसे भी बदतर हालतमें देखा है ।”

श्रीमती करतूर वा इसी पत्रमें मुसलमानोंको सम्बोधन करके कहती हैं :—

“आप लोगोंके व्यवहारको मैं समझ नहीं सकी । मेरे लड़केको सुधारनेकी अपेक्षा मैं देखती हूँ कि आपके इस नाममात्रके धर्म-परिवर्तनसे उसकी बुरी आदतें बरसे बदतर हो गई हैं । आपको चाहिये कि आप उसको उसकी बुरी आदतोंके लिये डाँटें और उसको उलटे रास्तेसे थलवा करें । परन्तु मुझे यह बताया गया है कि आप उसे उसी उलटे मार्गपर चलनेके लिये बढ़ावा देते हैं । कुछ लोगोंने मेरे लड़केको ‘मौलवी’ तक कहना शुरू कर दिया है । क्या यह उचित है ? क्या आपका धर्म एक शराबीको ‘मौलवी’ कहनेका समर्थन करता है ?”

मदरासकी घटनाके बाद भी मुसलमानोंने हीरालाल गांधीको तबलीगा कानफरेंसका सभापति बनाया और उनका जुलूस निकाला । इससे बढ़कर नासंमझीका सवृत क्या हो सकता है ? जो मुसलमान ऐसे व्यक्तिको, जो शराब और अन्य प्रकारकी बहुत-सी बुरी लतोंमें मुत्तिला हो और जिसका कमजोर दिमाग नेक-बदकी शिनाख्त भी न कर सकता हो, इस्लामका पेशवा कहते हैं, वे इस्लामको ही नुकसान पहुँचाते हैं ।

एकेडेमीका साहित्य-सम्मेलन

हिन्दुस्तानी एकेडेमीने अपना पाँचवाँ वार्षिक साहित्य-सम्मेलन इस वर्ष संयुक्त प्रान्तीय औद्योगिक तथा कृषि-प्रदर्शनीके अवसरपर लखनऊमें करना निश्चय किया है । यह पहला अवसर होगा, जब कि यह सम्मेलन इलाहाबादसे बाहर होगा । सम्मेलनकी तिथियाँ १६, १७ और १८ जनवरी १९६७ निश्चित

हुई हैं । पिछले वर्षोंकी भाँति सम्मेलनका यह उद्देश्य होगा कि इस अवसरपर हिन्दी तथा उर्दूके विद्वान और साहित्यिक एकत्र होकर भाषा तथा साहित्य-सम्बन्धी विषयोंपर परामर्श करें और ऐसे विचार उपस्थित करें, जिनके द्वारा भाषाओं और साहित्योंकी उन्नतिमें सहायता पहुँचाई जा सके ।

सम्मेलनके कार्यक्रममें अनेक साहित्यिक विषयोंपर लेख पढ़ने तथा व्याख्यान देनेका प्रबन्ध रहेगा । साधारणरूपसे निम्न-लिखित विषय, लेख तथा व्याख्यानके लिए चुने गये हैं :—१ साहित्यिक समालोचना, २ साहित्यका इतिहास, ३ कला, ४ भाषा-विज्ञान, ५ लिपि-सुधार, ६ इतिहास और पुरातत्त्व, ७ दर्शन, ८ सरल विज्ञान ।

इन विषयोंसे प्रेम रखनेवाले सज्जन अपने लेख और परामर्श—मन्त्री, हिन्दुस्तानी एकेडेमी, प्रयागको भेजें ।

छुट्टीकी सूचना

पूजाकी छुट्टीमें ‘विशाल भारत’ कार्यालय २० अक्टूबर १९६६ से ५ नवम्बर १९६६ तक बन्द रहेगा । इस बीचमें आनेवाले पत्रोंका उत्तर कार्यालय खुलनेपर दिया जायगा । ४ नवम्बर तक मेरा पता होगा—

बनारसीदास चतुर्वेदी, चौबे मुहल्ला,

फीरोजाबाद (आगरा)

कृतज्ञता-ज्ञापन

मेरे छोटे भाई रामनारायणकी असामयिक मृत्युपर जिन सज्जनोंने सहानुभूतिके तार तथा पत्र भेजे हैं, उनका मैं हृदयसे कृतज्ञ हूँ । अधिक क्या लिखूँ ।

—बनारसीदास चतुर्वेदी



विशाल भारत

“सत्यम् शिवम् सुन्दरम्”

“नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः”

भाग १८, अंक ५]

अगहन १९६३ : : नवम्बर १९३६

[पूर्ण-अंक १०७]

स्वर्गीय प्रेमचन्दजी

[संस्मरण]

बनारसीदास चतुर्वेदी

“मेरी आकांक्षाएँ कुछ नहीं हैं। इस समय तो सबसे बड़ी आकांक्षा यही है कि हम स्वराज्य-संग्राममें विजयी हों। धन या यशकी लालसा मुझे नहीं रही। खाने भरको मिल ही जाता है। मोटर और बैंगलेकी मुझे हविस नहीं। हाँ, यह जरूर चाहता हूँ कि दो-चार जैची कोटिकी पुस्तकें लिखूँ, पर उनका उद्देश्य भी स्वराज्य-विजय ही है। मुझे अपने दोनों लड़कोंके विषयमें कोई बड़ी लालसा नहीं है। यही चाहता हूँ कि वह ईमानदार, सच्चे और पके एादेंके हों। विलासी, धनी-खुशामदी सन्तानसे मुझे गुणा है। मैं शान्तिसे बैठना भी नहीं चाहता। गृहित्य और स्वदेशके लिए कुछ-न-कुछ करते रहना चाहता हूँ। हाँ, रोटी-दाल और तोला भर धी और मूली कपड़े मयस्सर होते रहें।”

[प्रेमचन्दजीके ३-६-३० के पत्रसे]

“जो व्यक्ति धन-सम्पदामें विभोर और मगन हो, उसके गहन पुरुष होनेकी मैं कल्पना भी नहीं कर सकता। जैसे ही मैं किसी आदमीको धनी पाता हूँ, वैसे ही मुझपर उसकी कला और बुद्धिमताकी बातोंका प्रभाव काफ़ूर हो जाता है। मुझे जान पड़ता है कि इस शख्सने मौजूदा सामाजिक व्यवस्थाको—उस सामाजिक

व्यवस्थाको, जो अमीरों द्वारा गरीबोंके दोहनपर अवलम्बित है—स्वीकार कर लिया है। इस प्रकार किसी भी बड़े आदमीका नाम, जो लक्ष्मीका कुपापात्र भी हो, मुझे आकर्षित नहीं करता। बहुत मुमकिन है कि मेरे मनके इन भावोंका कारण जीवनमें मेरी निजी असफलता ही हो। बैंकमें अपने नाममें मोटी रकम जमा देखकर शायद मैं भी वैसा ही होता, जैसे दूसरे हैं—मैं भी प्रलोभनका सामना न कर सकता; लेकिन मुझे प्रसन्नता है कि स्वभाव और किस्मतने मेरी मदद की है और मेरा भाग्य दरिद्रोंके साथ सम्बद्ध है। इससे मुझे आध्यात्मिक सान्त्वना मिलती है।”*

* “I cannot imagine a great man rolling in wealth. The moment I see a man rich, all his words of art and wisdom are lost upon me. He appears to me to have submitted to the present social order, which is based on exploitation of the poor by the rich. Thus any great name not dissociated with mammon does not attract me. It is quite probable this frame of mind may be due to my own failure in life. With a handsome credit balance I might have been just as others are—I could not have resisted the temptation. But I am glad nature and fortune have helped me and my lot is cast with the poor. It gives me spiritual relief.”

[प्रेमचन्दजीके १-१२ ३५ के पत्रका एक अंश]

प्रेमचन्दजीकी याद आते ही उनके उपर्युक्त दोनों पत्रोंका, जो ५॥ वर्षके अन्तरपर लिख गये थे, स्मरण हो आया। ये दोनों पत्र प्रेमचन्दजीके जीवनके उद्देश्यों और उनकी आकांक्षाओंको प्रकट करते हैं। यदि प्रेमचन्दजीने सरकारी नौकरी न छोड़ी होती, तो वे डिप्टी-इंस्पेक्टर आफ स्कूलस अथवा असिस्टेन्ट होकर रिटायर होते ; पर उन्होंने त्याग और तपका जीवन अंगीकार किया था और अपनी आकांक्षाओंको 'रोटी-दाल, तोला भर घी और मामूली कपड़े' पर ही परिमित कर लिया था। गरीबीके इस व्रतको ग्रहण करनेके कारण ही वे हमारे साहित्यके लिए ऐसे अमर ग्रन्थ प्रदान कर गये, जिनकी वजहसे हम आज अन्य भाषा-भाषियोंके सम्मुख अपना मस्तिष्क ऊँचा कर सकते हैं।

इन पंक्तियोंके लेखकपर प्रेमचन्दजीकी कृपा थी, और वह अपने जीवनके पवित्रतम संस्मरणोंमें प्रेमचन्दजीकी स्मृतिकी गणना करता है। सन् १९२४ की बात है। प्रेमचन्दजीके पहले-पहल दर्शन करनेका सौभाग्य मुझे लखनऊमें प्राप्त हुआ था। उन दिनों वे शायद 'रंगभूमि' नामक उपन्यास लिख रहे थे। उनके घरपर ही उपस्थित हुआ था और उनके साथ सड़कोंपर कुछ दूर प्रातःकालके समय टहला भी था। उस समय उन्होंने अपने वाल्यावस्थाके अनुभव, जब कि वे किसी मौलवी साहबसे पढ़ते थे, सुनाये थे। प्रेमचन्दजीके एक गुणने मुझे सबसे अधिक आकर्षित किया था, वह था उनमें साम्प्रदायिकताका सर्वथा अभाव। हिन्दू-मुसलिम एकताके वे बड़े हामी थे, और दोनोंके सांस्कृतिक मेलके लिए उन्होंने जीवन-भर परिश्रम भी किया था। उस थोड़ेसे समयमें, जो उनके साथ व्यतीत हुआ, प्रायः इसी विषयपर बातचीत होती रही।

इसके बाद पिछले बारह वर्षमें प्रेमचन्दजीसे मिलनेके दो-तीन अवसर और मिले और पत्र-व्यवहार तो निरन्तर होता रहा। बातचीतकी तरह उनका पत्र-व्यवहार भी दिल खोलकर होता था। दिसम्बर

१९६२ में उनके साथ काशीमें दो दिन तक रहनेका सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ था। इन दो दिनोंमें एक दिन तो प्रातःकालके ११ बजेसे रातके १० बजे तक और दूसरे दिन सवेरेसे शाम तक वे अपना सब काम छोड़कर मुझसे बातचीत करते रहे। इन दो दिनोंमें वे सैकड़ों बार ही हँसे होंगे और सैकड़ों बार ही उन्होंने मुझे हँसाया होगा। उनकी ज़िन्दादिलीका क्या कहना।

एक दिन बात करते-करते काफी देर हो गई। घड़ी देखी, तो पता लगा कि पौने दो बजे हैं। रोटीका वक्त निकल चुका था। प्रेमचन्दजीने कहा—“खैरियत यह है कि घरमें ऊपर घड़ी नहीं है, नहीं तो अच्छी खासी डाट सुननी पड़ती !” इसपर टिप्पणी करते हुए मैंने 'विशाल भारत'के लेख 'श्री प्रेमचन्दजीके साथ दो दिन'में लिखा था—“घरमें एक घड़ी रखना और सो भी अपने पास, यह बात सिद्ध करती है कि पुरुष यदि चाहे तो, स्त्रीसे कहीं अधिक चालाक बन सकता है, और प्रेमचन्दजीमें इस प्रकारका चातुर्य बीज-रूपमें तो विद्यमान है ही।”

फिर कलकत्ते लौटनेपर एक चिठ्ठीमें मैंने प्रेमचन्दजीको मज़ाकमें लिखा कि आप श्रीमती शिवरानी देवीजीको एक रिस्ट-वाच क्यों नहीं खरीद देते ? इसका उत्तर देते हुए प्रेमचन्दजीने लिखा—

“As to her wrist-watch, well when some enterprising journalist begins to pay her for her contributions she will manage for herself or may be some one may present her with one.”

—‘रही उनकी रिस्टवाचकी बात, सो जब कभी कोई उद्योगी पत्रकार उनकी रचनाओंके लिए पारिश्रमिक देना प्रारम्भ करेगा, तो वे खुद अपने लिए रिस्टवाच खरीद लेंगी, या शायद कोई उन्हें एक रिस्टवाच भेंट ही कर दे।’

× × ×

प्रेमचन्दजीको कलकत्ते बुलाने और शान्ति-निकेतन ले जानेके लिए कई बार मैंने प्रयत्न किया ; पर

सफल नहीं हो सका। जब कविवर नागूची जापानसे कलकत्ते पधारे थे, तो मैंने उनसे प्रार्थना की थी कि वे भी आवें। उसके उत्तरमें उन्होंने लिखा था—

“I had your card and thank you for it. How I wish I could attend Naguchi's lectures but can't help. How to leave the family is the problem. The boys are at Allahabad and when I go my better-half must feel so lonely and helpless. If I take her with me, I must have a decent amount to spend. So it is better to be tied down to home than feel the pinch of money.”

—‘आपका कार्ड मिला। उसके लिए धन्यवाद। क्या ही अच्छा होता, यदि मैं कविवर नागूचीके भाषण सुन पाता; पर लाचारी है। घरवालोंको यहाँ कैसे अकेला छोड़ दूँ, यही प्रश्न है। लड़के इलाहाबादमें हैं, और यदि मैं बाहर चला जाऊँ, तो मेरी स्त्रीको सूना-सूना-सा लगेगा। और अगर मैं उन्हें साथ लाऊँ, तो खर्चके लिए मेरे पास काफी पैसे चाहिए। इसलिए आर्थिक संकटका सामना करनेका बजाय यही उत्तमतर है कि मैं घरपर ही बँधा रहूँ।’

शान्ति-निकेतन भी वे इसी कारण नहीं जा सके थे।

कवीन्द्र श्री रवीन्द्रनाथसे प्रेमचन्दजीका जिक्र अनेक बार आया था, और उन्होंने कई बार कहा था कि प्रेमचन्दजीकी चुनी हुई कहानियोंका अनुवाद बँगलामें होना चाहिए। बँगलाके हास्यरसके सुप्रसिद्ध लेखक श्री परशुराम (श्री राजशेखर बोस) ने भी प्रेमचन्दजीकी कई कहानियाँ पढ़ी थीं और ‘पंच परमेश्वर’ नामक कहानी उन्हें खास तौरसे पसन्द आई थी।

प्रेमचन्दजी जितने हिन्दीवालोंके थे, उतने ही उर्दूवालोंके भी थे। इस विषयमें उनकी स्थिति अद्वितीय थी। गत वर्ष जब पानीपतमें हाली-शताब्दीमें सम्मिलित होनेका सौभाग्य हमें प्राप्त हुआ था, तो वहाँ उर्दूके कई प्रतिष्ठित लेखकों तथा कवियोंसे प्रेमचन्दजीका जिक्र आया था। उर्दूके एक विद्वान

लेखकने कहा भी था—“प्रेमचन्दजी तो उर्दूके Classic हो गये हैं। वे तो हमारे ही हैं।”

सी० एफ० ऐण्ड्रूजसे प्रेमचन्दजीकी चर्चा कई बार हुई थी। उन्होंने प्रेमचन्दजीकी एक कहानी ‘तारा’ के अंगरेजी अनुवाद Actress का संशोधन कर दिया था, और यह कहानी ‘माडर्न रिव्यू’में छपी भी थी। मि० ऐण्ड्रूज प्रेमचन्दजीसे मिलनेके उत्सुक थे, और उनके आदेशानुसार शान्ति-निकेतनसे लिखा भी गया था कि वे कलकत्ते पधारें, जहाँ कि मि० ऐण्ड्रूज स्वयं आ रहे थे; पर प्रेमचन्दजी नहीं आ सके। मि० ऐण्ड्रूज प्रेमचन्दजीकी कहानियोंके अंगरेजी अनुवादके संशोधन करनेके लिए और उनके प्रकाशित करानेके लिए तैयार थे। बात दरअसल यह थी कि प्रेमचन्दजी अपनी रचनाओंके अनुवादके विषयमें बिल्कुल उपेक्षाकी नीतिसे काम लेते थे। मैं उनकी इस नीतिका घोर विरोधी था। मैंने उनकी सेवामें निवेदन भी किया था कि आपकी रचनाओंका अंगरेजी अनुवाद आपको कीर्ति देनेके लिए नहीं, बल्कि सभ्य जगतके सम्मुख हिन्दीवालोंका गौरव बढ़ानेके लिए होना चाहिए। पत्रके उत्तरमें उन्होंने लिखा था—

“I feel very much obliged to receive your letters and the kind interest you take in my work. But unless I can secure a competent translator it is no good to trouble Father Andrews for nothing. The time is not yet, perhaps. When the time will come helpers would spring up.”

—“आपके पत्रके लिए और आप मेरी रचनाओंमें जो दिलचस्पी लेते हैं, उसके लिए मैं आपका अत्यन्त कृतज्ञ हूँ; लेकिन जब तक कि मुझे कोई सुयोग्य अनुवादक न मिल जाय, तब तक पादरी ऐण्ड्रूज साहबको व्यर्थके लिए तकलीफ देना ठीक न होगा। शायद अभी इसके लिए वक्त ही नहीं आया, और जब कभी वक्त आवेगा, तो मददगार भी कहीं-न-कहींसे निकल ही आवेंगे।”

यह असम्भव है कि प्रेमचन्दजीकी चुनी हुई रचनाओंका अनुवाद अंगरेजीमें न हो, क्योंकि वर्तमान भारतीय समाजका जैसा जीता-जागता चित्र उनकी रचनाओंमें मिलता है, वैसा अन्यत्र शायद ही मिले। कभी-न-कभी अंगरेजी जाननेवाली जनता प्रेमचन्दजीकी रचनाओंका स्वाद अपनी भाषामें लेनेका प्रयत्न करेगी; पर यह सौभाग्यपूर्ण अवसर प्रेमचन्दजीके जीवनमें ही आ जाता, तो कितनी अच्छी बात होती!

यद्यपि प्रेमचन्दजी अपनी रचनाओंके अंगरेजी अनुवादके विषयमें उदासीन-से थे; पर अंगरेजी जनताके सम्मुख हिन्दीवालोंकी रचनाएँ तथा व्यक्तित्वके प्रकाशनको आवश्यक समझते थे। एक बार राय कृष्णदासजीके मकानपर (शायद यह द्विवेदी-अभिनन्दन-उत्सवका अवसर था) उन्होंने मुझे आदेश दिया था कि 'लीडर' इत्यादि पत्रोंमें इस विषयपर लिखा करो।

x

x

x

प्रेमचन्दजी दिल खोलकर प्रशंसा करते थे और दिल खोलकर निन्दा भी। ऐसे अवसरोंपर अपनी लेखनीपर संयम रखना उन्हें पसन्द नहीं था। इस विषयमें वे स्वर्गीय पंडित पद्मसिंह शर्माकी नीतिका अवलम्बन करते थे। स्वर्गीय शर्माजीकी पुस्तक 'पद्मप्रग'की आलोचना करते हुए मैंने 'विशाल भारत'में लिखा था—
“हमारा विश्वास है कि कठोर शब्द अन्तमें अपने उद्देश्यमें विफल होते हैं। उनके प्रयोगसे इस बातकी आशंका रहती है कि कहीं असाधारण कठोरताके कारण पाठककी सहानुभूति उस व्यक्तिके प्रति न हो जाय, जिसके प्रति उन शब्दोंका प्रयोग किया गया है।”

इसका उत्तर देते हुए शर्माजीने लिखा था—
“मुझे डर है कि कृत्रिम—बनावटी—शान्तिके खन्तमें आप लोग—गान्धीपन्थी—वीर, रौद्र और भयानक रसोंका सर्वथा लोप करना चाहते हैं, जो एकदम असम्भव और अव्यवहार्य है। किसी अन्याचारी, नृशंस और क्रूर आदमीकी कर्तृत्तपर क्रोध और घृणा

आना स्वाभाविक धर्म है, फिर उसे प्रकट करना क्यों अधर्म है? यह तो एक तरहकी मक्कारी है कि किसी दुष्टपर क्रोध तो आवे इतना कि वह वेताव कर दे, पर उसे शब्दोंमें प्रकट न किया जाय! ऐसा न आज तक हुआ है, न आगे कभी होगा। साहित्यमें सब रस सदासे रहे हैं और सदा रहेंगे। भेड़ियोंके आगे हाथ-पाँव बाँधकर पड़ रहनेका मूर्खतापूर्ण अहिंसात्मक सत्याग्रह किसी कालमें व्यवहार्य नहीं समझा जा सकता है। यह प्राचीन आर्य-संस्कृतिके विरुद्ध है। अस्तु, आपका निष्पक्ष फैसला सुनकर भी मेरी यही राय है कि दुष्ट, धूर्त और लोकवंचक लोगोंकी जितनी भी कड़ी भरसना की जाय, उचित है, विहित है। अपने विरुद्ध फैसला सुनकर भू-भ्रमणवादी गैलिलियोने जजसे कहा था—‘आपका फैसला सुनकर भी यह कम्बख़त (भूमि) बराबर उसी तरह घूम रही है, जग भी तो नहीं रुकी।’ आपका फैसला सुनकर मैं भी यही अर्ज करता हूँ कि जनाब! धूर्त और नृशंस व्यक्तिकी पोल खोलना, शब्दोंके कोड़े लगाना, आजसे हजार बरस बाद भी विहित समझा जायगा, इसमें ज़रा भी फ़र्क नहीं आयगा। आप लोगोंके इस क्लीव-क्रन्दनको—शान्ति-पाठको—कोई न सुनेगा।”

जब श्रीयुत प्रेमचन्दजीको मैंने उनके एक लेखकी कठोरताके विषयमें लिखा, तो उन्होंने उत्तरमें वैसे ही भाव प्रकट किये, जो शर्माजीके पत्रमें हैं; पर स्वर्गीय शर्माजी तथा प्रेमचन्दजीके प्रति काफ़ी श्रद्धा रखते हुए भी अब भी मेरा यही विश्वास है कि कठोर शब्दोंका प्रयोग न करना ही अच्छा है। एक बार प्रेमचन्दजीने फिर कठोर शब्दोंका प्रयोग किया, तो मैंने फिर उनकी सेवामें निवेदन किया। अबकी बार वे मेरी बातसे कुछ-कुछ सहमत हो गये। उन्होंने अपने पत्रमें लिखा था—

“I am really grateful to you for your most friendly advice. I cherish no ill will against the person. I rather feel for him. But Hindi readers are too shallow and uncritical that

they are always ready to believe in the most nonsensical things dinned into their ears. One must tell them the truth. But I shall exercise greater control henceforth."

—‘आपकी अत्यन्त मित्रतापूर्ण सलाहके लिए मैं आपका दम्नसल कृतज्ञ हूँ। उस व्यक्तिके प्रति मेरे हृदयमें कोई विद्वेष नहीं है, बल्कि मैं उसके लिए दुःखित हूँ; पर मुश्किल तो यह है कि हिन्दी-पाठक इतने उथले हैं और सदसद्विवेक-बुद्धिकी उनमें इतनी कमी है कि जो कुछ उनके कानोंमें कोई डाल दे, वे उसीपर विश्वास करनेके लिए तैयार हो जाते हैं! हिन्दी-पाठकोंको तो यह निरन्तर बतलानेकी जरूरत है कि सत्य क्या है; लेकिन भविष्यमें मैं अधिक संयमसे काम लूँगा।’

जब ‘हंस’ भारतीय साहित्य-परिषद्का मुखपत्र बना दिया गया, तो प्रेमचन्दजीने छपे हुए सूचना-पत्रको भेजते समय उसपर लाल स्याहीसे लिख भेजा—

“मुंशीजी (श्री कन्हैयालाल मुंशी) ने तो आपको पत्र लिखे ही हैं। अब मेरा सवाल है—

“फकीरका सवाल है समीके ऊपर;

जुलुम ना जियासती किसीके ऊपर।”

‘हंस’ के विषयमें उन्होंने बहुतसे पत्र हिन्दी और उर्दू-लेखकोंको लिखे थे। उर्दू-लेखकोंने तो सहृदयता-पूर्वक उनके पत्रोंका स्वागत किया और उत्तर भी दिये; पर हिन्दीके महारथियोंने जो-कुछ किया, वह उन्हींके शब्दोंमें सुन लीजिए—

“Urdu writers have replied to my invitation promptly and courteously, whereas I have received few replies to the numerous letters I have written to Hindi Maharthis. B. Maithili Sharanji has been the only person to respond, others have not even acknowledged the letters. This is the mentality of our Hindi writers.”

—‘उर्दू-लेखकोंने तो मेरे निमन्त्रणका तुरन्त ही और विनम्रतापूर्वक जवाब दिया है; लेकिन जो बहुत-सी चिट्ठियाँ मैंने हिन्दीके महारथियोंकी सेवामें भेजी थीं, उनमें बहुत कमके जवाब आये हैं। अकेले बाबू

मैथिलीशरणजी एक ऐसे व्यक्ति हैं, जिन्होंने उत्तर दिया है; दूसरोंने तो चिट्ठीकी स्वीकृति भी नहीं लिखी। हमारे हिन्दी-लेखकोंकी यह मनोवृत्ति है।’

‘जागरण’ के मञ्चाकके कालमें दो-एक बातें मेरे खिलाफ़ निकल गई थीं। मैंने उनकी शिकायत की। उसके उत्तरमें प्रेमचन्दजीने एक बड़ा प्रेमपूर्ण तथा उपदेशप्रद पत्र लिख भेजा था। उस पत्रके प्रशंसामय अंशोंको छोड़कर कुछ बातें यहाँ उद्धृत करना अप्रासंगिक न होगा—

“जब कभी मौक़ा पड़ा है, मैं हमेशा आपका पद लेकर लड़ा हूँ, और मैंने आपको उसी दृष्टिसे लोगोंके सम्मुख उपस्थित करनेका प्रयत्न किया है, जिस दृष्टिसे मैं आपको देखता हूँ। मैं इस बातसे इनकार नहीं करता कि साहित्य-सेवियोंमें कुछ लोग ऐसे हैं, जो आपको बदनाम करते हैं और आपकी ईमानदारीको भी माननेको तैयार नहीं होते। इतना ही नहीं, कुछ महानुभाव तो इससे भी आगे बढ़ जाते हैं; लेकिन कौन व्यक्ति ऐसा है, जिसके छिद्रान्वेषी न हों? मैं स्वयं निन्दकोंसे घिरा हुआ हूँ, जो मुझपर हमला करनेका कोई मौक़ा नहीं चूकते। दुर्भाग्यवश हमारे साहित्यकारोंमें न तो विचारोंकी व्यापकता—उदारता— है और न सहयोगकी भावना। हमारे यहाँ एक दल ऐसा पैदा हो गया है, जिसे दूसरोंकी वर्षोंके परिश्रमसे अर्जित कीर्तिको मटियामेट करनेमें ही मञ्जा आता है। हमें अपनी आत्माको पवित्र रखना चाहिए, और यही सबसे बड़ी बात है। जान पड़ता है कि आप मञ्चाकके छिंटोंको प्रायः गम्भीर मान बैठते हैं...लेकिन जब कभी कोई किसीके उद्देश्यको ही क्लृप्तित बताने लगता है, तब मामला गम्भीर हो जाता है। किसीके उद्देश्यपर शक करनेको मैं किसी भी हालतमें सहन नहीं कर सकता। निर्दोष छिंटोंकी आपको परवा न करनी चाहिए। यदि आप इतने असहनशील हो जायेंगे, तब तो आप अपने निन्दकोंको और भी उत्साहित करेंगे कि वे आपकी पीठमें काँटे चुभोयें। खिले हुए

चेहरेसे आप उन लोगोंका सामना कीजिए। एक ज़माना था, जब किसी अमित्रतापूर्ण हमलेसे मुझे कई-कई रात नींद न आती थी; लेकिन वह ज़माना गुज़र चुका है, और अब मैं अपने-आपको ज्यादा अच्छी तरह समझता हूँ।”*

मैं एक लेख लिखना चाहता था—‘भविष्य किनका है?’ और उस लेखमें हिन्दीके भिन्न-भिन्न क्षेत्रोंके प्रतिभाशाली कार्यकर्ताओंका संक्षिप्त परिचय देना चाहता था। इस विषयपर मैंने प्रेमचन्दजीकी सम्मति पूछी थी, सो उन्होंने विस्तारपूर्वक लिख भेजी थी। उसे हम ‘विशाल भारत’के किसी अगले अंकमें उद्धृत करेंगे।

× × ×

सन् १९३० में मैंने एक पत्रमें उनसे बहुतसे प्रश्न किये थे। उनमें कुछ प्रश्न यह थे—(१) आपने गल्प लिखना कब प्रारम्भ किया था? आपकी सर्वोत्तम पन्द्रह गल्पें कौन-कौन हैं? (३) आपपर किस लेखककी शैलीका प्रभाव विशेष पड़ा? (४) आपको अपनी रचनाओंसे अब तक कितनी आय हुई है?

* I have always fought on your behalf whenever any occasion has risen and have tried to interpret you as I see you. I do not deny that among literary men there are some who disparage you and do not give you the credit for honesty of purpose. Nay some go far more than that. But who has not got cavillers? I myself am surrounded by detractors who would not miss an opportunity to hit me. Unfortunately our literary workers have not got the breadth of views and the spirit of fellowship. There is a class of men who delight in ruining the reputation others have taken years to build up. But what of that? We have got to keep our conscience clear and it is all that matters, You seem to take the humorous touches rather too seriously...The matter grows serious when one imputes motives. This I would never tolerate in any case. Innocent flings you need not mind. If you are so touchy, you will give an impetus to detractors to prick your back. Face them with a smile upon your face. There was a time when an unfriendly cut kept me awake nights together. But that stage has passed and I know myself much better now.”

इन प्रश्नोंके उत्तरमें प्रेमचन्दजीने लिख भेजा था—

“(१) मैंने १९०७ में गल्प लिखना शुरू किया। सबसे पहले १९०८ में मेरा ‘सोजेवतन’, जो पाँच कहानियोंका संग्रह है, ज़माना-प्रेससे निकला था; पर उसे हमीरपुरके कलक्टरने मुझसे लेकर जला डाला था। उनके खयालमें वह विद्रोहात्मक था, हालाँकि तबसे उसका अनुवाद कई संग्रहों और पत्रिकाओंमें निकल चुका है।

(२) इस प्रश्नका जवाब देना कठिन है। २०० से ऊपर गल्पोंमें कहाँ तक चुनूँ, लेकिन स्मृतिसे काम लेकर लिखता हूँ—(१) बड़े घरकी बेटी, (२) रानी सारंघा, (३) नमकका दारोगा, (४) सौत, (५) आभूषण, (६) प्रायश्चित्त, (७) कामना, (८) मन्दिर और मसजिद, (९) घासवाली, (१०) महातीर्थ, (११) सत्याग्रह, (१२) लांछन, (१३) सती, (१४) लैला और (१५) मन्त्र।

(३) मेरे ऊपर किसी विशेष लेखककी शैलीका प्रभाव नहीं पड़ा। बहुत-कुछ पं० रतननाथ दर लखनवी और कुछ-कुछ डा० रवीन्द्रनाथ ठाकुरका असर पड़ा है।

(४) आयकी कुछ न पूछिये। पहलेकी सब किताबोंका अधिकार प्रकाशकोंको दे दिया। ‘प्रेम-पचीसी’, ‘सेवासदन’, ‘सप्त-सरोज’, ‘प्रेमाश्रम’, ‘संग्राम’ आदिके लिए एक मुश्त तीन हजार रुपये हिन्दी-पुस्तक एजेन्सीने दिये। ‘नवनिधि’ के लिए शायद अब तक २०० मिले हैं। ‘रंगभूमि’ के लिए १८०० दुलारेलालजीने दिये। और संग्रहोंके लिए सौ दो सौ मिल गये। ‘कायाकल्प’, ‘आज्ञाद कथा’, ‘प्रेमतीर्थ’, ‘प्रेम-प्रतिमा’, ‘प्रतिज्ञा’ मैंने खुद छापी; पर अभी तक मुश्किलसे ६०० रुपये वसूल हुए हैं, और प्रतिगाँ पड़ी हुई हैं। फुटकल आमदनी लेखोंसे शायद २५ माहवार हो जाती हो; मगर इतनी भी नहीं होती। मैं अब इस ओर ‘माधुरी’ के सिवा कहीं लिखता ही नहीं। कभी-कभी ‘विशाल भारत’ और ‘सरस्वती’ में लिखता हूँ। वस।

उर्दू-अनुवादोंसे भी अब तक शायद दो हजारसे अधिक न मिला होगा। ८००) में 'रंगभूमि' और 'प्रेमाश्रम' दोनोंका अनुवाद दे दिया था। कोई छापनेवाला ही न मिलता था।"

'हंस' और 'जागरण' में प्रेमचन्दजीको निरन्तर घाटा ही होता रहा, और कभी-कभी तो यह घाटा दो सौ रुपये महीनेसे भी अधिकका हो जाता था। इसके कारण वे अत्यन्त चिन्तित रहते थे—

"It is a pity none of my ventures are yet paying their way. Hans is not costing me much, but Jagaran is proving unbearable. How to get out of the situation is taxing my brains. I am losing some Rs. 200 every month. How long can this go on? Having done the folly of starting it once, sanity stands in the way of putting an end to it. How will others chuckle and giggle?...If I had the courage to stop these journals I would be saved all this worry, but I cannot muster it....."

—'खेदकी बात है कि मेरा कोई भी प्रयत्न अब तक स्वावलम्बी नहीं हो सका। 'हंस' में मुझे बहुत नहीं खर्च करना पड़ता; लेकिन 'जागरण' का बोझ असह्य हो रहा है। इस भ्रमसे निकला कैसे जाय, इसी चिन्तामें दिमाग चक्कर खा रहा है। मैं करीबन २००) माहवारीका घाटा दे रहा हूँ। यह कब तक चल सकता है? एक बार इसे जारी करनेकी मूर्खता कर चुकनेके बाद अब इसका खात्मा करनेमें मेरी सुबुद्धि बाधक होती है। अन्य लोग इसपर कैसे हँसेंगे और खिल्ला उड़ायेंगे?.....यदि मुझमें इन दोनों पत्रोंको बन्द कर देनेकी हिम्मत होती, तो मैं इन तमाम परेशानियोंसे बच जाता; लेकिन मैं इतनी हिम्मत इकट्ठी नहीं कर पाता।"

मेरी यह आकांक्षा कि कभी प्रेमचन्दजी और कवीन्द्र रवीन्द्रनाथको बातचीत करते हुए सुनूँ, मनकी मनमें ही रह गई! प्रेमचन्दजीको शान्ति-निकेतन बुलानेके लिए कई बार प्रयत्न किया; पर इससे मुझे सफलता नहीं मिली। एक बार तो मुझे यह आशंका हो गई थी कि उन्होंने जान-बूझकर मेरे निमन्त्रणकी

उपेक्षा की है। जब काशीमें जाकर मैंने उनसे पूछा कि आप शान्ति-निकेतन क्यों नहीं गये, तब उन्होंने बतलाया कि वे अपनी धर्मपत्नी तथा बच्चोंको छोड़कर अकेले कविवरके दर्शनार्थ नहीं जाना चाहते थे और इतना पैसा उनके पास था नहीं कि सबकी यात्राका प्रबन्ध कर सकते! हिन्दीके सर्वश्रेष्ठ कलाकारकी इस आर्थिक परिस्थितिको सुनकर मुझे हार्दिक दुःख हुआ था। उस समय मैंने 'विशाल भारत' में लिखा था—

"प्रेमचन्दजीको अपनी पुस्तकोंसे जो आमदनी होती है, उसका एक अच्छा भाग 'हंस' और 'जागरण' के घाटेमें चला जाता है। कितने ही पाठकोंका यह अनुमान होगा कि प्रेमचन्दजी अपने ग्रन्थोंके कारण धनवान हो गये होंगे; पर यह धारणा सर्वथा भ्रमात्मक है। हिन्दीवालोंके लिए सचमुच यह कलंककी बात है कि उनके सर्वश्रेष्ठ कलाकारको आर्थिक संकट बना रहता है। सम्भवतः इसमें कुछ दोष प्रेमचन्दजीका भी है, जो अपनी प्रबन्ध-शक्तिके लिए प्रसिद्ध नहीं और जिनके व्यक्तित्वमें वह लौह दृढ़ता भी नहीं, जो उन्हें साधारण कोटिके आदमियोंके शिकार बननेसे बचा सके। कुछ भी हो, पर हिन्दी-जनता अपने अपराधसे मुक्त नहीं हो सकती। हमें इस बातकी आशंका है कि आगे चलकर हिन्दी-साहित्यके इतिहास-लेखकोंकी कहीं यह न लिखना पड़े—'देवने हिन्दीवालोंको एक उत्तम कलाकार दिया था, जिसका उचित सम्मान वे न कर सके।' ये पंक्तियाँ जनवरी सन् १९३२ में लिखी गई थीं। दुर्भाग्यवश वे सत्य प्रमाणित हो रही हैं।

प्रेमचन्दजीके जीवनमें हम लोग उनका कुछ भी सम्मान न कर सके, यद्यपि वे खुद सम्मानके भूखे नहीं थे। जब नागपुर-सम्मेलनके अवसरपर मैंने उनके सभापति होनेका प्रस्ताव 'विशाल भारत' में किया था, तो उन्होंने एक पत्रमें मुझे अपनी अनिच्छा तथा उदासीनताका वृत्तान्त लिख भेजा था; पर हम लोगोंका तो कर्तव्य था कि उनका सम्मान करके स्वयं अपनेको तथा अपनी संस्थाको गौरवान्वित करते।

प्रेमचन्दजीकी विद्वत्ता, प्रतिभा अथवा लेखन-शक्तिके विषयमें कुछ लिखनेके लिए यहाँ न तो स्थान हा है और न इन पंक्तियोंके-लेखकमें इतनी योग्यता कि वह इस गम्भीर कार्यको सफलतापूर्वक कर सके। हाँ, प्रेमचन्दजीकी सहृदयताके विषयमें दो शब्द वह अवश्य कह सकता है। पिछली बार जब वे आगरे आये थे, तो मेरे छोटे भाई रामनारायणसे, जो आगरा-कालेजमें इतिहासका अध्यापक था, अत्यन्त स्नेहपूर्वक मिले और मेरी लड़कीको श्रीमती शिवरानी देवीजी अपने साथ ही

लिए रहीं। काशी लौटकर प्रेमचन्दजीने मुझे लिखा था—“You are extremely fortunate in having such a good brother.”—‘ऐसे अच्छे भाईको पाकर आप अत्यन्त सौभाग्यशाली हैं।’ और प्रेमचन्दजीका कृपा-पात्र होना भी मेरे लिए कम सौभाग्यकी बात नहीं थी। गत ५ अक्टूबरको छोटे भाईका देहान्त हो गया और तीन दिन बाद प्रेमचन्दजीका स्वर्गवास।

मेरा दुर्भाग्य।

यूरोपका एक अल्पज्ञात देश

वज्रमोहन वर्मा

हिन्दुस्तानमें बहुत कम लोग जानते होंगे कि यूरोपमें लिथुआनिया नामका कोई देश और लिथुआनियन नामकी कोई जाति भी है। बात यह है कि पिछले पाँच-छे सौ वर्षसे लिथुआनियापर दूसरोंका कब्जा रहा, और उसके शासकोंने दुनियासे लिथुआनिया और लिथुआनियन नामको जड़से मिटा डालनेमें अपनी तरफसे कोई बात उठा नहीं रखी थी। एक समय तो ऐसा मालूम होता था कि देश और जाति दोनों ही नेस्तनाबूद हो गये; लेकिन सख्तज्ञान लिथुआनियन एक प्रकारसे मरकर फिर ज़िन्दा हो गये।

लिथुआनियाका मौजूदा इलाका रूस, पोलैण्ड, जर्मनी, लैटविया और बाल्टिक समुद्रसे घिरा है। किसी ज़मानेमें उसके दक्षिण-पश्चिममें बड़ी-बड़ी दलदलें और झीलें थीं, पूर्व-उत्तरमें घने जंगल थे और पश्चिममें समुद्र तो है ही। इस तरह लिथुआनिया एक प्रकारसे सारे संसारसे अलग-थलग था।

लिथुआनिया कृषि-प्रधान देश है। समूची भूमिके ३ भागमें खेती होती है, बाक़ी दो भाग जंगल, झीलें और दलदल हैं। देशकी मुख्य पैदावार गेहूँ,

जौ, जई, आलू, अलसी, सन, तरकारी आदि हैं। सेब, नाशपानी, चेरी, बेर आदि फल भी होते हैं। खनिज पदार्थोंमें यहाँका ‘अम्बर’ (लृणमणि) मशहूर है। देशमें खनिज पदार्थ-मिश्रित पानीके अनेक गर्म झरने हैं।

लिथुआनियन लोग मझोले कद, मजबूत गठन, हल्के कटई वाल और भूरी-नीली आँखोंवाले होते हैं। उनका स्वभाव गम्भीर और आशावादी होता है। लिथुआनियाकी भाषा यूरोपकी प्राचीनतम भाषाओंमें है। भाव-प्रकाश और प्यार-भरे शब्दोंमें उसका भंडार भरा-पूरा है। वह भारतकी प्राचीन भाषाओंसे मिलती-जुलती है। लिथुआनियाका लोक-साहित्य भी बहुत समृद्धिशाली है। गीत तो लिथुआनियाके जीवनके एक विशेष अंग हैं। अपने गानोंकी वजहसे लिथुआनिया अकसर ‘गीतोंका देश’ कहा जाता है।

लिथुआनियन समाजका संगठन एकदम जनतंत्रवादी ढंगपर है। वहाँपर अमीर-गरीबकी सामाजिक स्थिति अथवा वंशाभिमानका कोई मवाल नहीं है। लिथुआनियाकी वर्तमान सरकार अमेरिका और



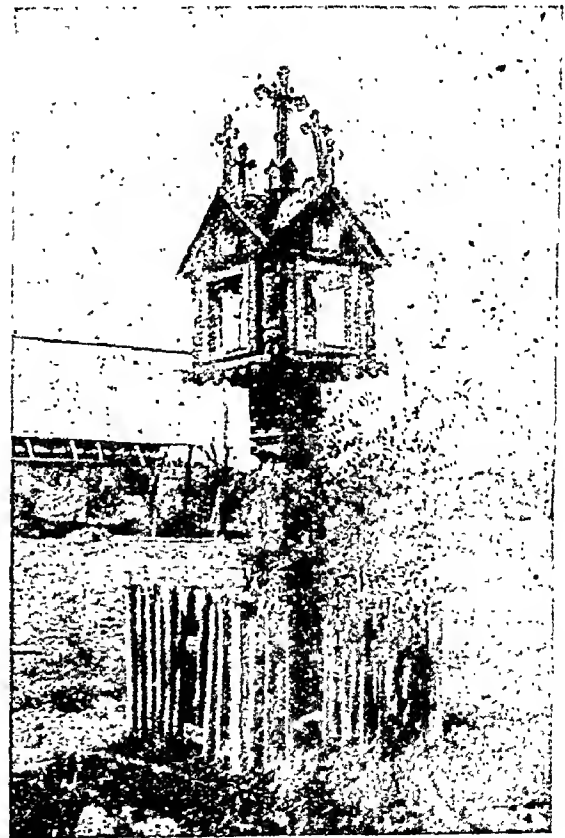
राष्ट्रीय पोशाकमें नई पौधकी एक लिथुआनियन लड़की

स्विट्जरलैण्डके ढंगकी प्रजातन्त्र प्रणालीपर है ; किन्तु इस स्वतन्त्रताको प्राप्त करनेके लिए उन्हें शताब्दियों तक संग्राम करना पड़ा है ।

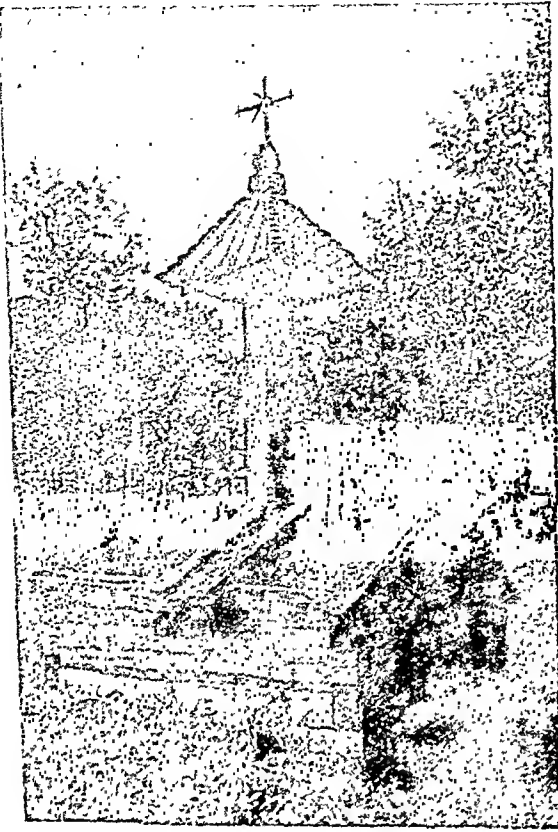
कहते हैं कि लिथुआनियन लोग एशिया-माइनरसे बालकन होते हुए यहाँ आकर बसे थे । यद्यपि आरम्भिक कालका कोई लिखित ऐतिहासिक वर्णन नहीं मिलता ; लेकिन लिथुआनियन गीतों और लोक-कथाओंसे उनके प्राचीन इतिहास और प्राचीन रीति-रिवाजोंपर काफी प्रकाश पड़ता है । कुछ पुराने विचित्र रीति-रिवाज तो आज तक प्रचलित हैं । पुराने जमानेमें लिथुआनियन अपनी घुड़सवारीके लिए मशहूर थे । कहते हैं कि वहाँ डेढ़ वर्षकी उम्रसे ही बच्चे घोड़ेको सरपट दौड़ानेका अभ्यास करते हैं । खेतीसे लिथुआनियनको पैदाइशी प्रेम है । अपने निजी खेतपर खेती करना

लिथुआनियनके लिए सबसे गौरवकी बात है । वह पराये खेतपर काम करना पसन्द नहीं करता । अगर खेतका मालिक वननेको मिले, तो लिथुआनियन दुनियाके कोने-कोनेमें जानेको तैयार हो जाता है । लिथुआनियन पढ़ने-लिखनेके बड़े शौकीन होते हैं । वे सांसारिक सुखोंको लात मारकर ज्ञानकी खोजमें दूर-दराज मुल्कोंको जाते रहे हैं ।

लिथुआनियामें पुराने धार्मिक गीत बड़ी प्रचुरतासे पाये जाते हैं । उनसे मालूम होता है कि ईसाई-धर्म ग्रहण करनेके पहले लिथुआनियन लोग प्रेतवादी (Animist) थे । प्राचीन लिथुआनियनोंकी दृष्टिमें प्रत्येक वस्तु—रास्तेके पेड़-पौदे और पत्थर तक—जानदार थे, और वे उन सबसे आत्मीयता स्थापित करनेकी कल्पना किया करते थे । संसारकी



सड़के किनारे बना हुआ एक सलीब (क्रास)



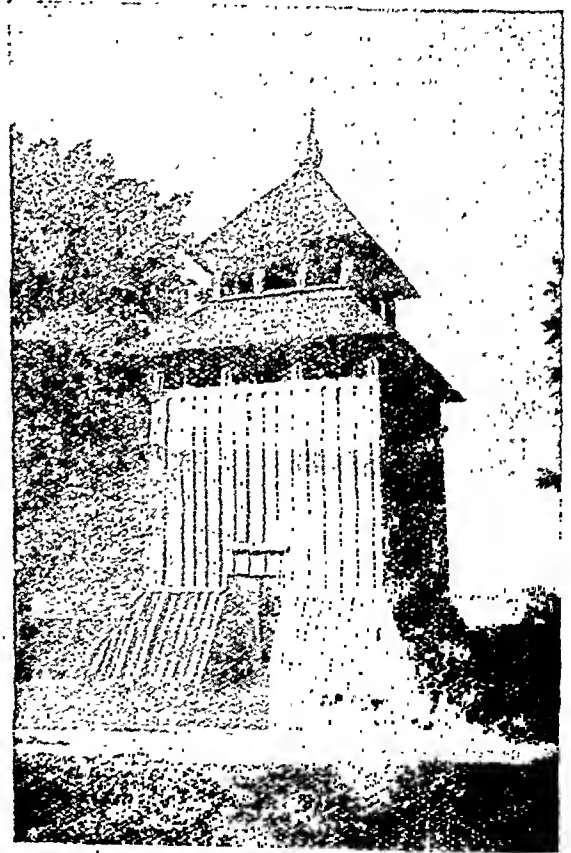
बरसातमें दूरी कवरोंसे वह निकलनेवाली हड्डियोंके जमा करनेका स्थान

बहुत-सी जातियोंने मनुष्यको हानि पहुँचानेवाले राक्षसों, दैत्यों या शैतानोंकी कल्पना की है ; लेकिन लिथुआनियनोंमें इस प्रकारकी कोई कल्पना नहीं । पुराने लिथुआनियनोंका विचार था कि नाराज कर देनेपर सभी चीजें मनुष्यकी विरोधी हो सकती हैं । लिहाजा वे प्रत्येक वस्तुका नाम आदरके साथ लेते थे । उनका विश्वास था कि जब तक वे सबके साथ भलमनसीका वर्ताव करेंगे, उन्हें किसीसे डरनेकी जरूरत नहीं । बादमें विभिन्न प्राकृतिक वस्तुओंको—जैसे अग्नि या बिजलीको—वे ईश्वरका स्वरूप मानने लगे । अधिको वे 'अग्नि' (Ugnis) और बिजलीको 'दीवैतिस' (Dievaitis) पुकारते थे ।

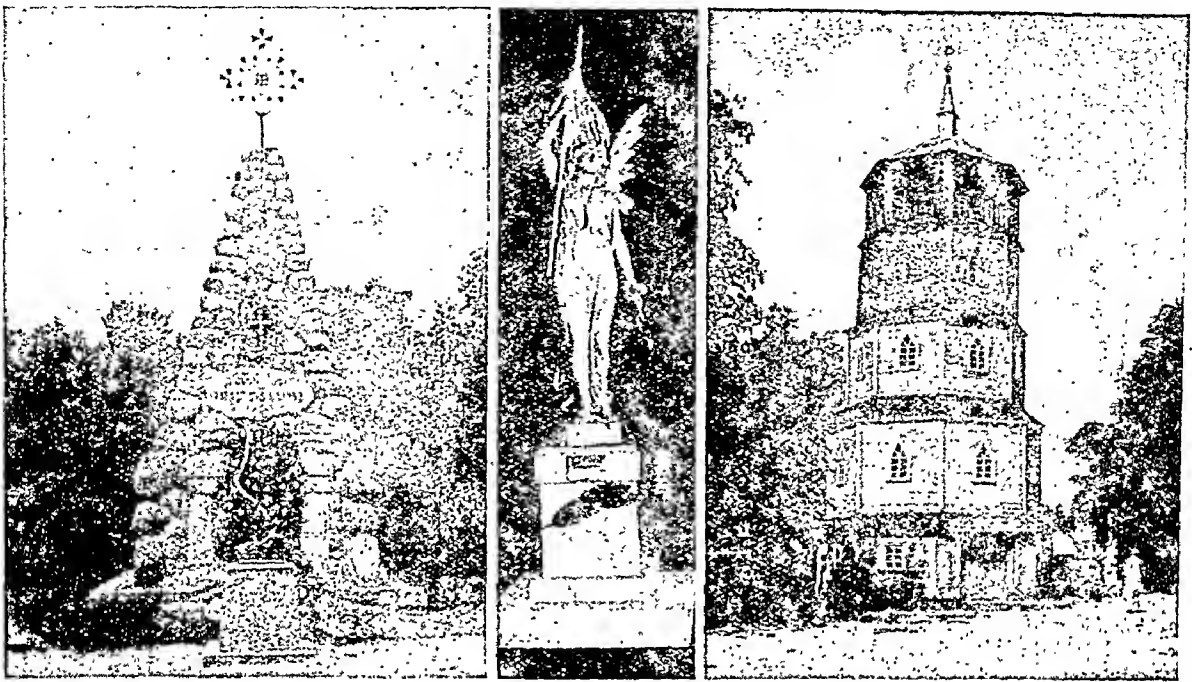
यद्यपि आजकल पचासके लगभग पौराणिक देवी-देवताओंके नाम मिलते हैं ; किन्तु प्राचीन लोक-

गाथाओंमें उनका कहीं पता नहीं मिलता । जान पड़ता है कि वे आरम्भिक ईसाई पादरियोंकी कल्पनाकी उपज हैं । हाँ, नदियों और झरनोंकी पूजाका उल्लेख पाया जाता है, जो आज तक लिथुआनियाके रीति-रिवाजोंमें किसी हद तक प्रचलित है ।

प्राचीन लिथुआनियन अपने पुरखोंको छोटी-छोटी स्तूपनुमा समाधियोंमें गाड़ते थे, जिन्हें 'कुरगन' (Kurgans) कहते थे । इन समाधियोंमें निरन्तर आग जलती रहती थी । आज भी लिथुआनियनोंमें इन 'कुरगनों' के लिए काफ़ी सम्मान है । लोक-गाथाओंसे पता चलता है कि प्राचीन कालमें अन्त्येष्टि-क्रिया तीन प्रकारसे की जाती थी—चितापर जलाकर (हिन्दुओंकी भाँति), पेड़ोंपर लटकता छोड़कर (किसी



लिथुआनियाका एक प्राचीन लकड़ीका मीनार, जिसपर खड़ा होकर प्रहरी दुश्मनोंको देखता था



वाई ग्रोर—लिथुआनियन स्वतन्त्रताके लिए मरनेवालोंका यह स्मारक युद्ध-क्षेत्रसे बीने हुए रक्त-रंजित पत्थरोंसे बनाया गया है। बीचमें—युद्ध-क्षेत्रमें इस्तेमाल किये हुए गोले-गोलियोंसे ढाली हुई 'स्वतन्त्र लिथुआनिया' की मूर्ति। दाहनी ओर एक पुराना पहरका मीनार।

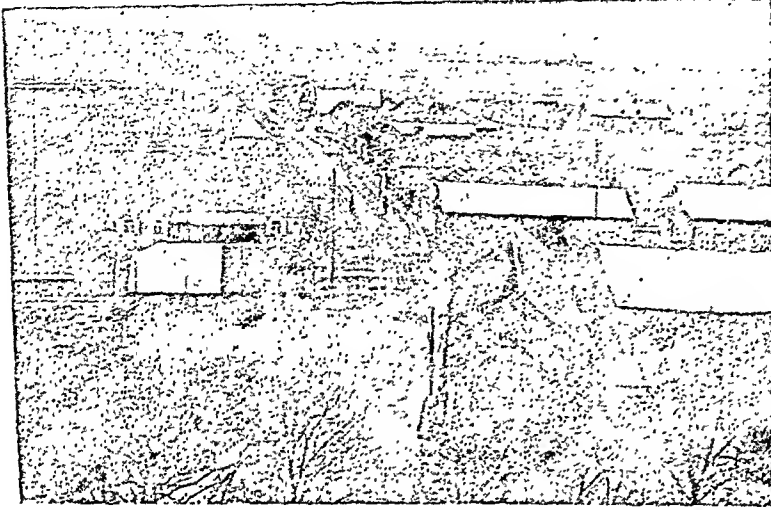
हृद तक पारसियोंकी भाँति) और गाड़कर (ईसाई और मुसलमानोंकी भाँति)। प्राचीन अन्त्येष्टि-क्रियाका स्मरण दिलानेके लिए आज भी समाधि-स्थलों और सड़कोंपर लाखों चिह्न—छतरियाँ—मिलते हैं। ईसाई-धर्मके हालके प्रभावके कारण इन स्थानोंपर सलीब गाड़ दिये गये हैं; किन्तु ये सलीब स्थापत्य और काठ-खुदाईकी कलाकी दृष्टिसे बहुत विचित्र हैं। स्थापत्यकी दृष्टिसे इनमें जबरदस्त पूर्वीय प्रभाव दीख पड़ता है। सबसे प्राचीन छतरियाँ परिकल्पनामें तक्षशिलाके बौद्ध-स्मारकोंसे और अपेक्षाकृत नवीन छतरियाँ बंगाल और उड़ीसाके मन्दिरोंसे मिलती-जुलती हैं।

जब आक्रमणका भय होता था, तब प्राचीन लिथुआनियन अपने स्त्री-बच्चों और धन-सम्पत्तिकी रक्षाके लिए उन्हें कृत्रिम द्वीपोंपर रख आते थे। ये कृत्रिम द्वीप मीलों या दलदलोंके भीतर बनाये जाते थे और

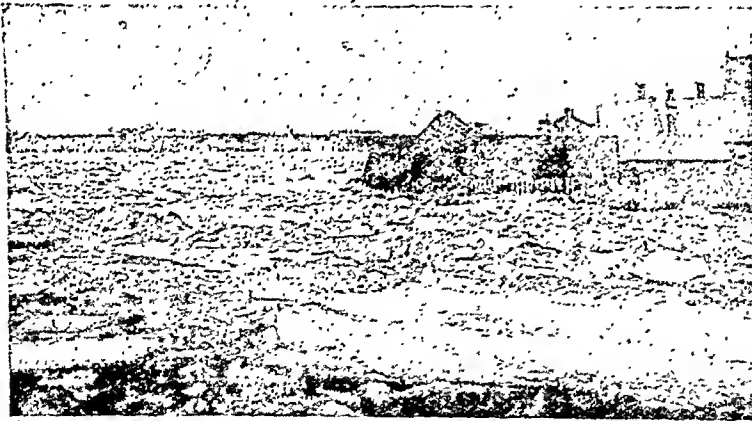
उन तक पहुँचनेके लिए किनारेसे लेकर द्वीप तक पत्थरों या लकड़ीके कुन्दोंका रास्ता बनाया जाता था। यह रास्ता पानीके नीचे डूबा रहता था, जिससे अपरिचित आदमी द्वीप तक पहुँच नहीं सकता था।

११वीं शताब्दीसे १५वीं शताब्दी तक यूरोपके ईसाई-राज्य लिथुआनियाके 'काफिरो'को ईसाई बनानेके लिए क्रूसेडर्सकी लगातार फौजें भेजते रहे; किन्तु इतना होनेपर भी लिथुआनियन जातिकी शक्ति बढ़ती रही और उसका राज्य वाल्टिक समुद्रसे काले समुद्र तक फैल गया। उन्होंने रूसियोंको दबा दिया, और लिथुआनियन राजाओंने रूसी सरदारोंसे विवाह-शादीका सम्बन्ध भी जोड़ा। जब यूरोपियन लोग पश्चिमसे लिथुआनियाको दबाते थे, तब लिथुआनियन रूसियों और तातारियोंका साथ कर लेते थे, और जब पूर्वसे रूसियों और तातारियोंका डर होता था, तो वे पश्चिमी

यूरोपियनोंसे सुलह कर लेते थे। लिथुआनियनोंने ही चंगेज खांसे लोहा लेकर उसकी यूरोप फतह करनेकी इच्छापर पानी फेर दिया था। उन्होंने यूरोपमें तातार-राज्यको घातक चोट पहुँचाई थी।



एक लिथुआनियन गाँव



नेमूना नदीमें बर्फ

लिथुआनियाका राज्य बढ़नेपर देशमें विदेशियोंका प्रभाव बढ़ने लगा। लिथुआनिया भाषा बोलनेवालोंकी संख्या थोड़ी थी, इसलिए राज्य-भाषा रूसी रखी गई। नतीजा यह हुआ कि लिथुआनियन साम्राज्यमें ही लिथुआनियन भाषाकी नाकदरी होने लगी।

१५वीं शताब्दीके आरम्भमें पोलैण्डकी दशा

बच्छी नहीं थी। उस समय लिथुआनियाके तत्कालीन राजा योगैलाने पोलैण्डकी रानी यादविगासे विवाह कर लिया। इस प्रकार इन दोनों देशोंमें व्यक्तिगत सम्बन्ध स्थापित हुआ। अब दोनों देशोंने मिलकर पश्चिमी

यूरोपके ईसाई क्रूसेड्सको इतनी बुरी तरह हराया कि वे फिर कभी न पनप सके।

यद्यपि लिथुआनियाके राजाने ईसाई-धर्मके नामपर लड़नेवालोंको बुरी तरह हराया; लेकिन खुद ईसाई-धर्मको स्वीकार कर लिया और प्रजाके हजारों लोगोंको ईसाई बनाया। लिथुआनियन जाति अपने जिस धर्मकी रक्षाके लिए चार सौ वर्षोंसे लड़ती आती थी, उसीसे उसे विमुख होना पड़ा। यद्यपि राज-धर्म ईसाई हो गया और प्रजा भी ईसाई बना डाली गई, फिर भी बहुतेरे लिथुआनियन सत्रहवीं शताब्दी तक लुक-द्विपकर जंगलोंमें अग्निकी पूजा किया करते थे। धीरे-धीरे लिथुआनिया पर पोलैण्डका प्रभाव बढ़ता गया, यहाँ तक कि आखिरमें लिथुआनिया पोलैण्ड-राज्यका एक हिस्सा बना डाला गया। अब पोलैण्डकी सामन्तवादी पद्धतिका दौरदौरा हुआ और लिथुआनियन लोगोंको आश्रित किसान बनकर गाँवोंमें रहनेको

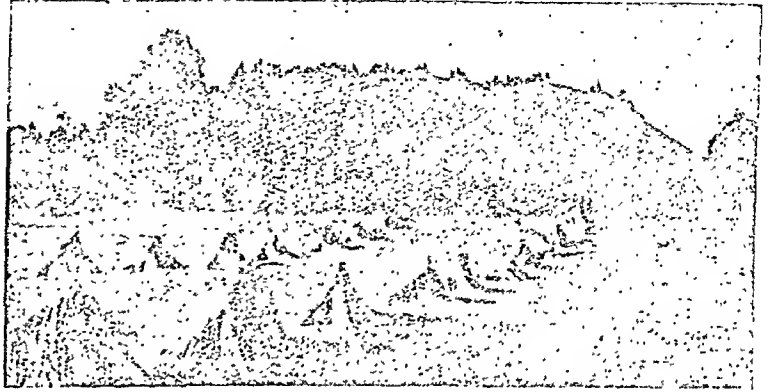
मजबूर होना पड़ा। पादरियों और गिरजोंने भी लोगोंपर टैक्स लगाकर और उनके रीति-रिवाजोंमें जबरदस्ती दस्तन्दाजी करके जुल्म करना शुरू किया। हर जगह पोलिश भाषाका बोलवाला हुआ और हरएक लिथुआनियन चीज घृणासे देखी जाने लगी और उसके नाशके प्रयत्न होने लगे।

लिथुआनियन लोग पोलैण्डके इस सम्बन्धको और इस नये ढंगकी गुलामीको सख्त नापसन्द करते थे ; लेकिन वे निरन्तरकी लड़ाईसे परेशान हो गये थे और दुर्भाग्यवश उस समय उनमें कोई अच्छा नेता भी न था, इसलिए उन्होंने शासन-कार्योंमें दिलचस्पी लेना छोड़ दिया और ग्रामोंमें बसकर चुपचाप खेती करने लगे ; लेकिन लिथुआनियनोंकी उदासीनताका फल शीघ्र ही पोलैण्डको मिल गया । कुछ दिनों बाद पोलैण्डको आस्ट्रिया, जर्मनी और रूसने आपसमें बाँट लिया ।

१८ वीं और १९ वीं शताब्दीमें पोलो और लिथुआनियनोंने अनेक बार अपने सिरसे रूसी शासन उतार फेंकना चाहा ; पर सफलता न मिली । इन बगावतोंका बदला लेनेके लिए ज़ारोंके रूसने जुल्मके फाटक खोल दिये । सरकारी तौरपर लिथुआनियाका नाम तक उठा दिया गया । लिथुआनियन भाषाका पढ़ना, पढ़ाना या बोलना रोक दिया गया । उस समय तक लिथुआनियन भाषामें केवल धार्मिक किताबें ही थीं ; लेकिन वे भी गैर-क़ानूनी करार दे दी गईं । लिथुआनियामें लिथुआनियन लोगोंसे शिक्षक, वकील या सरकारी नौकर बनने तकका अधिकार छीन लिया गया । पादरी लोग प्रत्येक लिथुआनियन चीज़को बुरा बताने लगे । हर बात पोल भाषामें की जाने लगी । पादरी पोलिश भाषामें धर्मका उपदेश करते थे, जिसे श्रोताओंमें कोई समझता ही न था ।

ऐसा जान पड़ता था कि लिथुआनियन जाति

दुनियासे मिट गई, उसका जीवन वृष्णकर समाप्त हो गया ; लेकिन ऊपरकी सर्द राखके भीतर कुछ चिनगारियोंमें आँच बाक़ी थी । यूरोपमें रोमान्टिक साहित्यकी जो अन्तिम लहर आई, उससे कुछ लिथुआनियन युवक लेखकोंमें—जैसे पोस्का,

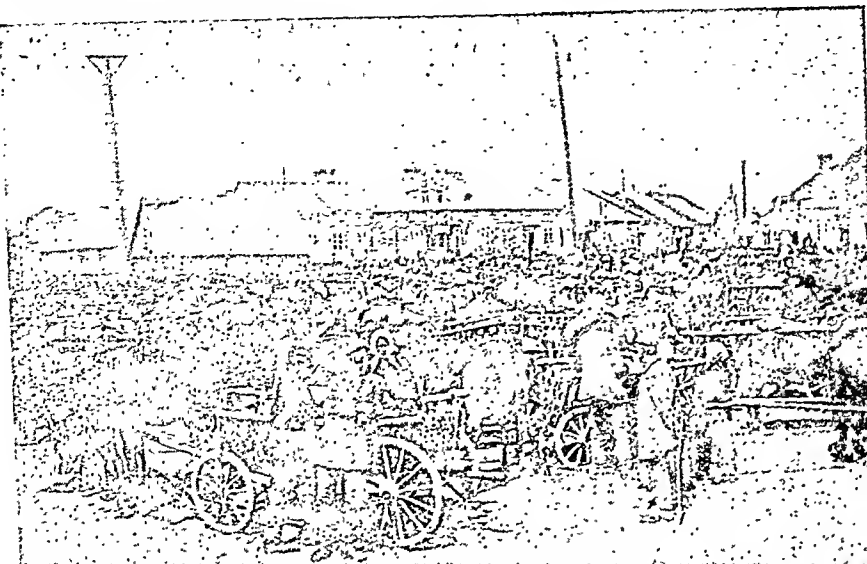


पुराने लिथुआनियन समाधि-स्थलमें कुरगन या स्तूप

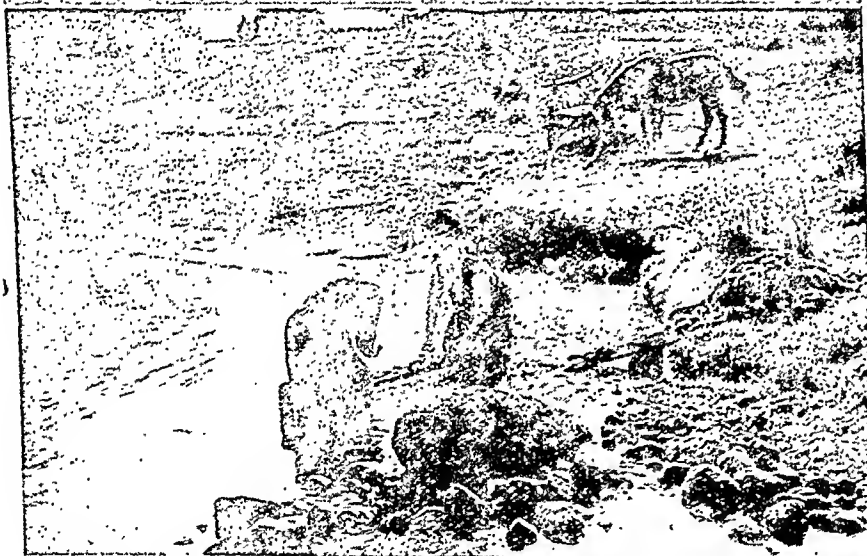


एक लिथुआनियन खेत । दाहनी ओर धार्मिक विश्वास प्रकट करनेवाला सलीब-खड़ा है

बूनेलेटिस, रेज़ा आदि—नई जाग्रति पैदा हुई, और वे लिथुआनियन जातिके प्राचीन गौरवपूर्ण इतिहास और संस्कृतिमें नई प्रेरणा ढूँढ़ने लगे । गेटे, लेसिंग, कान्ट आदि विद्वानोंको नये विचारों और प्लेटोंके लिए लिथुआनियाका इतिहास एक मुन्हरा खज़ाना साबित



एक लिथुआनियन गाँवमें
हाटका दिन



लिथुआनियन धोविनें एक छोटे
चश्मेमें कपड़े धो रही हैं



एक लिथुआनियन कस्बेमें
हाटका दिन

हुआ। मिकेविचने अपना प्रसिद्ध गान बनाया—
 “मेरी जन्मभूमि लिथुआनिया मनुष्यके स्वास्थ्यके समान
 है, जिसकी कीमत खो देनेपर ही समझमें आती है।”
 लिथुआनियन होकर भी वह पोलिश भाषामें लिखता
 था, कान्ट जर्मनमें और दस्तोवस्की तथा सोलोव्योव
 रूसी भाषामें।

धीरे-धीरे लिथुआनियनोंकी राष्ट्रीय चेतना जगी
 और उनमें यह ज्ञान पैदा हुआ कि लिथुआनियन होना
 कोई शर्मकी बात नहीं है। लेकिन लिथुआनियन
 जाति रूसी जारोंके पंजेमें ऐसी दबी हुई थी कि
 किसीको भी यह विश्वास नहीं था कि वह फिर कभी
 जिन्दा हो सकेगी।

अन्तमें जर्मन लिथुआनियामें ‘प्रभात’ नामक एक
 पत्र प्रकाशित हुआ, जिसने जातिमें चेतनाका त्रिगुल
 बजाया। शीघ्र ही और भी कई पत्र प्रकाशित होने
 लगे। इस नवीन चेतनाको दबानेके लिए रूसियोंको
 हजारों लिथुआनियनोंको देशनिकाले और क़ैदकी
 सज़ाएँ देनी पड़ीं। लिथुआनियन भाषाकी किताब
 ही बगावतका चिह्न समझी जानी लगी; लेकिन
 लोग फ़ाँसी और कालेपानीकी परवा न करके चुपके-
 चुपके लिथुआनियन किताबें लाते और पढ़ते थे।
 सरकारके साथ इस संघर्षमें लाखों लिथुआनियन
 नवयुवकोंका बलिदान हुआ। कुछ लोग दूसरे देशोंको
 भाग गये। अन्तमें हारकर रूसी सरकारने
 लिथुआनियन भाषामें किताबें छापनेकी स्वीकृति दे दी;
 लेकिन रूसी भाषाकी ज़रूरत पुटके साथ।

अन्तमें स्ट्राज़दास और कुदिरका मैरोनिस जैसे
 कवियोंने अपनी ओजस्वी कविताओंसे जातिकी रही-
 सही शिथिलता भी फूँककर उड़ा दी और लिथुआनियनोंमें
 एक नवीन जीवनका सचराचर संचार हो गया।

यूरोपियन महायुद्धके खूनी खेल लिथुआनियाकी
 भूमिपर ही हुए। चार वर्षके युद्धमें देशमें शायद ही कोई
 मकान साबित बचा हो। जर्मनोंने लिथुआनियामें
 घुसकर जो-जो क्रूर कर्म किये थे, उनके आगे

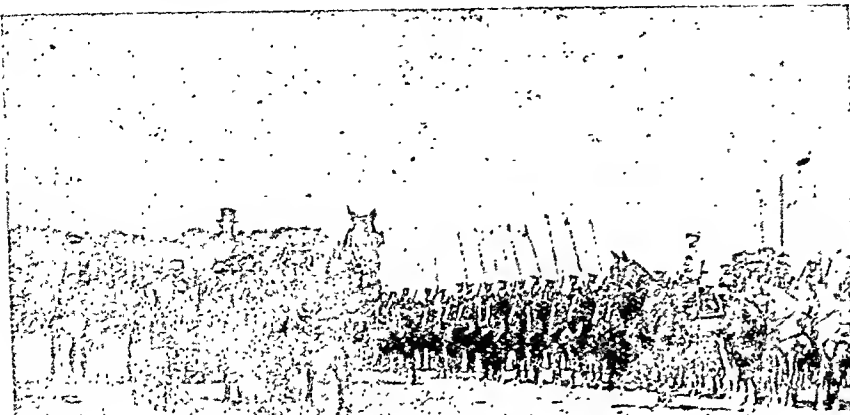
वर्बर-से-वर्बर जंगलियोंकी क्रूरता भी हेच थी।
 लूट, मार, हत्या, व्यभिचार और अमानुषिक क्रूरता
 रोज़मर्राकी बात थी।

सन् १९१८ में प्रेसीडेन्ट विल्सनकी घोषणाके
 अनुसार लिथुआनियाको जर्मनीके चंगुलसे छुटकारा
 मिला। कुछ पुराने बचे-खुचे घायल लिथुआनियन—
 पुरुष और स्त्रियाँ—१६ फरवरी सन् १९१८ को
 विलनामें एकत्रित हुए और उन्होंने लिथुआनियन जातिकी
 स्वतन्त्रताकी घोषणा कर दी।

स्वतन्त्रताकी घोषणा तो कर दी; किन्तु उसे
 स्थापित करनेमें बड़ी मुश्किलोंका सामना करना पड़ा।
 जर्मनीने यह चाहा कि लिथुआनियाकी गद्दीपर अपने
 किसी राजकुमारको बिठा दे। इधर रूससे साम्यवादकी
 एक लहर आई, जिसने लिथुआनियाको साम्यवादी
 बनानेके लिए हथियाना चाहा। लिथुआनियाने अपनी
 रक्षाके लिए पहले-पहल जो फौज बनाई, उसमें १२-१४
 वर्षके लड़के-लड़कियाँ ही थीं। इस ‘फौज’को एक
 ओर जर्मनीका और दूसरी ओर रूसियोंका सामना करना
 पड़ा। कुछ दिन बाद जब लड़ाईके क़ैदियोंकी रिहाई
 हुई और अनुभवी लिथुआनियन छूटकर आये तथा
 निर्वासित लिथुआनियन देशको लौटे, तो रक्षाका प्रश्न
 कुछ सरल हो गया।

इधर एक नई बला उठ खड़ी हुई। पोलैण्डको
 बहुत दिनोंके बाद जो स्वतन्त्रता मिली, तो जर्मन और
 रूसियोंसे बचने और अपना स्वतन्त्र अस्तित्व बनाये
 रखनेके लिए उसे साम्राज्य बनानेकी सूझी और उसने
 लिथुआनिया और लैटवियाको हड़प लेना चाहा।
 लिथुआनियन बड़ी बहादुरीसे लड़े। उन्होंने
 पोलैण्डवालोंको हरा दिया और सुवाल्काईकी सन्धि
 अनुसार पोलैण्डने लिथुआनियाकी स्वतन्त्रता स्वीकार
 कर ली।

लेकिन सन्धि के एक हफ्तेके बाद ही पोलैण्डकी
 एक सेनाने लिथुआनियापर अचानक आक्रमण करके
 उसकी राजधानी विलना तथा बहुत-सा इलाका छीन



लिथुआनियन स्वतन्त्रताकी दसवीं
साल गिरहके उत्सवपर कौजी परेड।
गाड़ीपर लिथुआनियाके प्रेसीडेन्ट
डाक्टर ए० स्मेटोना हैं



लिथुआनियन स्वतन्त्रताकी दसवीं
साल गिरहपर शहीदोंकी कब्रपर
प्रार्थना



एक गाँवमें स्वतन्त्रता-दिवसका
उत्सव

लिया। पोलैण्डकी केन्द्रीय सरकारने कहा कि इस हमलेके लिए वह जिम्मेदार नहीं है, यह एक बागी पोलिश सेनापति जेलिगोस्कीकी कगल है। ज्यादा खून-खराबी रोकनेके लिए जेनेवाके राष्ट्र-संघने हस्तक्षेप किया। उसने लिथुआनियाके अधिकारको मान लिया। पोलैण्डकी केन्द्रीय सरकारने भी शान्तिपूर्ण उपायोंसे इस झगड़ेको सुलझानेका वचन दिया; लेकिन पोलैण्डने अपना कबजा कायम रखा। हेगके अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय और जेनेवाके राष्ट्र-संघके होते हुए भी चौदह वर्षसे पोलैण्ड लिथुआनियाकी राजधानी और उसके एकतिहाई इलाक़ेको हड़पे बैठा है।

सन् १९२२ में पहली लिथुआनियन पार्लामेन्टने लिथुआनियाको एक जनतन्त्रवादी प्रजातन्त्र राज्य घोषित किया, जिसमें शासनका सारा काम किसानोंके हितोंको ध्यानमें रखकर ही चलाया जाता है। अब देशने नवनिर्माणका काम शुरू किया। महायुद्धमें देशकी प्रत्येक चाज़ इतनी बुरी तरह नष्ट कर दी गई थी कि शुरू शुरूमें निर्माणका काम बहुत मुश्किल साबित हुआ; लेकिन इस मुश्किलका नतीजा यह भी हुआ कि हर चीज़ नये ढंगकी, नये

सिरेसे, एकदम आधुनिक बनाई जाने लगी। शहरोंमें ही नहीं, देहातोंमें भी खेतीका नया विभाजन किया गया, ज़मीनें सिर्फ़ उन्हीं लोगोंको दी गईं, जो खुद अपने हाथों खेती करते हैं। पुराने गन्दे कोपड़ोंके स्थानमें नई, साफ़, स्वास्थ्यप्रद इमारतें बनाई गईं।

अन्न उत्पन्न करनेवाले अन्य देशोंकी प्रतियोगितामें न ठहर सकनेके कारण लिथुआनियाने मक्खन, पनीर, रोटी, गोश्त, तीसीका तेल, सलूलान्ड, प्लाइवुड, मेवे, मिठाइयाँ आदि चीज़ें तैयार करके बाहर भेजना शुरू किया।

शिक्षा अनिवार्य बना दी गई है। हाई स्कूल तथा खेती, चिड़ियाँ पालना, बड़ईगिरी आदि सिखानेके स्कूल खोले गये हैं, जिनमें मुफ़्ती शिक्षा दी जाती है। यूनिवर्सिटी और जिमनासियममें ४० फी-सदी विद्यार्थी मुफ़्त भर्ती किये जाते हैं और २५ फी-सदी विद्यार्थियोंको वज़ीफ़ा मिलता है।

अब लिथुआनियन जाति अपनी स्थिति और अपने कर्तव्योंसे पूर्ण सचेत हो गई है, और वह अपने खोये हुए जन्मसिद्ध अधिकारोंको प्राप्त करनेके लिए जो-जानसे कोशिश कर रही है।*

* श्री ए० पोस्काके दो लेखोंके आधारपर।

एक सच्ची कहानी

श्रीयुत सुन्दरलाल

प्रियवर !

एक त्रिलकुल सच्ची घटना आपको लिखकर भेज रहा हूँ। सिर्फ़ नाम छोड़ दिये हैं और जहाँ दिये भी हैं, वहाँ बदलकर।

एक आग्रा मध्य-भारतकी एक प्रसिद्ध राजपूत रियासतमें कपड़ेका व्यापार किया करता था। बम्बई और कानपुरसे वह कपड़ा मँगाता था और रियासतके गाँव-गाँवमें फेरी लगाकर उसे विकता था। उसका काम बढ़ता गया। धीरे-धीरे उसके मातहत ८०

आदमी, पश्चिमी पंजाब या सरहदके रहनेवाले मुसलमान, काम करने लगे। दो-दो आदमी आम तौरपर साथ रहते थे। इस तरह ४० जोड़े थे, जो गाँव-गाँव घूमकर कपड़ा बेचते थे, ज्यादातर उधार देते थे, और फिर बड़ी सख्तीसे दाम वसूल करते थे। ये सब लोग आग्राके नौकर-थे, उसीके भंडारसे कपड़ा लेते थे और आग्राको सब हिसाब देते थे। आग्रा आम तौरपर एक रुपयेके मालका तीन रुपये और चार रुपये लेता था और अपने आदमियोंको खूब खिलाता था।

रियासतमें एक गाँव था, जिसमें राजकुलके ही कुछ गरीब राजपूत रहते थे और कुछ और लोग भी। ये राजपूत बहुत गरीब थे। काम करना तो अपनी ज़िह्दत समझते थे। आमदनी किसीको ४) वार्षिक और किसीको ५-७) या १२) वार्षिक तक बची-खुची ज़मींदारीके हिस्सेसे मिलती थी। ऊपरसे रईसी शान दिखानेकी कोशिश भी करते थे, जिमसे हालत दिन-प्रतिदिन खराब होती जाती थी; क़र्ज़ा बढ़ता जाता था। हाथसे हल चलाना तो असम्भव ही था !

इन राजपूतोंमें एक युवक शिववर्ण सिंह था। मौक़ा पाकर वह गाँव छोड़ ब्रम्हई चला गया। वहाँ एक-दो वर्ष रहा। मेहनत की। काफ़ी कमाया। पाँच-चार सौ रुपये बचाकर अपने घर लौटा। आया तो बिरादरीमें और गाँवमें कुछ रोज़ खूब चमक-दमक रही। एक अच्छे घरकी अत्यन्त सुन्दर युवतीसे शादी भी हो गई। ईंटोंका दरवाज़ा सामने बन गया। एक पलंग निवाड़का दरवाज़ेके सामने दिखाई देने लगा इत्यादि। आगाके कपड़े भी उसके यहाँ खूब बिकने लगे।

शायद साल दो सालके अन्दर वह सब ख़त्म हो गया। घरकी हालत फिर पहले-सी होने लगी। शिववर्ण सिंहका स्वास्थ्य बिगड़ा। धीरे-धीरे इलाजको भी पैसे न रहे। पेट बढ़ गया। एक-एक करके घरका नया सामान बिक गया। फ़ाँके गुत्तरने लगे। कपड़ोंकी कमी हुई। एक दिन आगाके आदमीसे दो धोती अपनी स्त्रीके लिए और दो अपने लिए उधार लीं। इस वादेपर कि कुछ महीने बाद दाम दे देंगे।

इस बीच शिववर्ण सिंह मर गया। विधवाकी हालत और ज़्यादा खराब हो गई। कई-कई दिन फ़ाँके होने लगे। आगाके आदमी तक्काज़ेको आये; किन्तु निराश लौटना पड़ा। फिर आनेको कह गये। विधवाने वादा किया कि मैं आपका क़र्ज़ा धीरे-धीरे अदा कर दूँगी।

एक दिन आगाने अपना साल-भरका हिसाब किया। सब आदमी जमा थे। लोगोंपर जो क़र्ज़ा

था, जब वह जोड़ा जाने लगा, तो आगाके आदमियोंने कहा कि शिववर्ण सिंहके क़र्ज़की वसूली मुश्किल है। उन्होंने उसके घरका सब हाल सुना दिया। आगाने कहा कि रुपया तो वसूल होना ही चाहिए।

फिर एक दिन आगा ऊँटपर सवार होकर खुद उस गाँवको गया। मकान पूछकर पहुँचा। शिववर्ण सिंहके दरवाज़ेपर आवाज़ दी। टूटे हुए दरवाज़ेके अन्दर एक आधे गिरे छप्परके नीचेसे एक अति सुन्दर जवान औरत एक तरफ़से होकर दरवाज़ेके पीछे ओटमें आकर परदेसे आगासे कहने लगी—“आमाजी, ठाकुर साहब तो ८ महीने हुए गुज़र गये। आपका क़र्ज़ा मुझे बता गये हैं। मैं आपका एक-एक पैसा अदा कर दूँगी। इस चैतमें मुझे ४) ज़मीनके आवेंगे। ४) तो मैं उस समय दे दूँगी और बाक़ी अगली फसलमें पूरा कर दूँगी। जब तक आपका अदा न होगा, मैं ज़मीनका एक पैसा और काममें न लाऊँगी। आपकी बड़ी दया है। आप इतना समय मुझे और दें।”

आगाने बिगड़कर जवाब दिया—“हम कुछ नहीं जानता, हमें जल्दी रुपया मिलना चाहिए। परसों इधरसे लौटेगा, रुपया जैसे हो, तैयार रखना।” यह कहकर आगा चल दिया। अपने ऊँटपर बैठकर इधर-उधर दौरा करता हुआ तीसरे दिन फिर उसी गाँवमें पहुँचा।

गाँवके शुरू ही में एक कहारका घर था। आगाका उससे परिचय था। आगा कई बार उसके यहाँ उतरकर पानी पी चुका था। इस बार आगा जब उसके घरके सामने आया, उसने कहारसे पानी पीनेको माँगा। कहारने उसे ऊँटसे उतरनेको कहा। आगा उतरा। कहारकी भौंपड़ीका दरवाज़ा बन्द था। कहारने आगाके बैठनेके लिए बाहर एक पीढ़ा बिछा दिया। इससे पहले आगा जब कभी आता था, सीधे कहारके घरमें चला जाता था, क्योंकि उसके यहाँ कोई परदा न था। इस बार जो आगा दरवाज़ेकी ओर

बढ़ा, तो कहारने उसे नरमीसे रोका और बाहर पीढ़ेपर बैठनेको कहा। आग्राने बिगड़कर पूछा—“क्यों ? क्या तुम्हारी बीवी भी परदा करने लगी ?”

कहारने कहा—“आप यहाँ बैठिये, मैं पानी पिलाता हूँ, फिर सब हाल बताऊँगा।”

आग्रा बैठ गया ; लेकिन पानी पीनेसे पहले उसने सब हाल सुननेकी ज़िद की।

कहारने सुनाया—“हमारे गाँवमें उधरकी तरफ़ एक ठाकुर शिववर्ण सिंह रहते थे—”(इसके बाद कहारने शिववर्ण सिंहके बम्बई जाने इत्यादिका सब हाल सुनाया, उसे यह ख़बर न थी कि आग्रा उनके कर्ज़खाहोंमें है और उसे कुछ हाल पहलेसे ही मालूम है) “उसकी विधवा स्त्री बड़ी सुन्दर और सती है। गाँवके कई दूसरे ठाकुरोंने उसे अपने घरोंमें बुलाना चाहा ; मगर उसने साफ़ इनकार किया। उसे अब बहुत कष्ट है। बीमार भी है और उसे आज पाँचवाँ उपवास है। मेरी बीवीसे उसकी बड़ी दोस्ती है। आज वह घुटनियोंके बल चलकर बहुत सवेरे मेरे यहाँ आई। सामने रेतमें जो निशान हैं, वे उसीकी घुटनियोंके हैं। मेरी बीवीने उसे कुछ खानेको कहा। वह हमारे यहाँ पका खाना तो खा नहीं सकती, इसलिए मेरी बीवीने सहनमें कुछ जगह लीप दी है, उसमें उपले सुलगा दिये हैं और उस आगमें कुछ दाने डाल दिये हैं। वह विधवा उस जगहमें बैठकर कुछ दाने दूँग रही है। वह परदेवाली है, इसीलिए मैंने आपको अन्दर नहीं जाने दिया।”

आग्राने सब हाल ग़ौरसे सुना। कुछ सोचता रहा। फिर जेबसे कुछ रुपये और कुछ पैसे निकाले। शायद सात रुपये कुछ आने। उसके जेबमें यही था। कहारको देकर कहा—“उस बहनसे कहो, उस आग्राने तुम्हारे खाविन्दसे बहुत कमाया है, यह तुम्हारा हक़ है। इसे लेकर काममें लाओ।” इसके बाद आग्राने जेबसे हिसाबका कागज़ निकाला। पेन्सिलसे

शिववर्ण सिंहका सब कर्ज़ा काट दिया। कहारको समझाया कि उससे यह भी कह देना कि आग्राने तुम्हारा सब कर्ज़ा काट दिया। तुम अब उसके कर्ज़की फ़िक्र न करना।

यह कहकर आग्राने ऊँटपर बैठ जाना चाहा ; पर कहारने रोका। वह चाहता था कि मैं बेवासे सब बात कर आऊँ। शायद वह आपका रुपया ले या न ले। किन्तु आग्राने इसी वजहसे और ज़िद की कि मैं चला जाऊँ, तब तुम उससे सब बातें करना।

आग्रा फ़ौरन चल दिया। सीधा अपने घर गया। उसने अपने सब आदमियोंको जमा किया। जितना हिसाब उस समय तकका लोगोंसे लेना था, सबके हिसाबके कागज़ फाड़ दिये। अपने आदमियोंको क़सम दी कि मेरे कर्ज़में से अब एक पैसा भी किसीसे वसूल न करना। जितना कपड़ा स्टोकमें था, उसने सब निकालकर अपने आदमियोंको बाँट दिया और उनसे कहा—“तुम चाहो, इसे बेच खाओ।” आग्राने उस दिनके बादसे फिर कभी कपड़ेका व्यापार न किया। उसके चाक़ी आदमियोंमें से भी कुछने उसके साथ वह काम छोड़ दिया और चाक़ी वही करते रहे।

कुछ दिनोंके बाद आग्राने जंगलकी लकड़ीका ठेका लिया। अब वह बड़ी ईमानदारीसे लकड़ीका छोटा-मोटा रोज़गार करता है। जब कभी अपने कपड़ेके रोज़गारका क्रिस्सा किसीको सुनाता है, तो अपनी उस समयकी ज़्यादतियोंको याद करके खूब रोता है।

उस आग्राने यह सारा क्रिस्सा स्वयं मुझे सुनाया है। शिववर्ण सिंहका जिक्र आते ही वह खूब रोने लगा। अब उसे हराम और हलालका बड़ा ख़याल रहता है।

शब्द मेरे हैं और कुछ यादका थोड़ा-सा फ़र्क हो सकता है ; किन्तु क्रिस्सा विलकुल सच्चा है, और मैं उसे ज्यों-का-त्यों दे रहा हूँ।

पथभ्रष्ट

श्रीयुत वचन

हैं कुपथपर पाँव मेरे
आज दुनियाकी नज़रमें !

(१)

पार तमके दीख पड़ता
एक दीपक भिल्लमिलाता,
जा रहा उस ओर हूँ मैं
मत्त मधुमय गीत गाता,
इस कुपथपर या सुपथपर
मैं अकेला ही नहीं हूँ,
जानता हूँ, क्यों जगत फिर
उँगलियाँ मुक्तपर उठाता—
मौन रहकर इस लहरके
साथ संगी वह रहे हैं,
एक मेरी ही उमंगें
हो उठी हैं व्यक्त स्वरमें !
हैं कुपथपर पाँव मेरे
आज दुनियाकी नज़रमें !

(२)

क्यों बताऊँ, पोत कितने
पार हैं इसने लगाए ?
क्यों बताऊँ, वृक्ष कितने
तीरके इसने गिराए ?
उर्वरा कितनी धराको
कर चुकी यह, क्यों बताऊँ ?
क्यों बताऊँ, गीत कितने
इस लहरने हैं लिखाए
कूलपर बैठे हुए कविसे
किसी दुखकी घड़ीमें ?
क्या नहीं पर्याप्त इतना
जानना, गति है लहरमें !
हैं कुपथपर पाँव मेरे
आज दुनियाकी नज़रमें !

(३)

फलभरे तर तोड़ डाले
शान्त मत लेकिन पवन हो,
वज्र घन चाहे गिराए
किन्तु मत सूना गगन हो,
वढ़ वहा दे वस्तियोंको
पर न हो जल-हीन सरिता,
हो न ऊसर देश चाहे
कंटकोंका एक घन हो ;
पापकी ही गैल पर
चलते हुए ये पाँव मेरे
हँस रहे हैं उन पगोंपर
जो बँधे हैं आज घरमें ।
हैं कुपथपर पाँव मेरे
आज दुनियाकी नज़रमें !

(४)

यह नहीं, सुनता नहीं, जो
शंखकी ध्वनि आ रही है,
देव - मन्दिरमें जनकोंको
साधिकार बुला रही है,
कानमें आती अज्ञाने,
मस्जिदोंका यह निमन्त्रण,
और ही सन्देश देती
किन्तु बुलबुल गा रही है ;
रक्तसे सींची गई है
राह मन्दिर - मस्जिदोंकी,
किन्तु रखना चाहता मैं
पाँव मधु-सिंचित ढगरमें !
हैं कुपथपर पाँव मेरे
आज दुनियाकी नज़रमें !

(५)

है न वह व्यक्तित्व मेरा
जिस तरफ़ मेरा कदम हो,
उस तरफ़ जाना जगतके
वास्ते कलसे नियम हो,
औलिया - आचार्य वननेकी
नहीं अभिलाष मेरी ;
किस लिए संसार तुम्हको
देख मेरी चाल यम हो ?
जो चले युग-युग चरण ध्रुव
धर मिटे पद चिह्न उनके,
पद प्रकम्पित, हाय, अंकित
क्या करेंगे दो प्रहरमें !
हैं कुपथपर पाँव मेरे
आज दुनियाकी नज़रमें !

(६)

मैं कहाँ हूँ और वह
आदर्श मधुशाला कहाँ है !
विस्मरण दे जागरणके
साथ, मधुशाला कहाँ है !
है कहाँ प्याला कि जो दे
चिर-तृषा चिर-तृप्तिमें भी !
जो डुबा तो ले मगर दे
पार कर, हालाँकि कहाँ है !
देख भीगे होंठ मेरे
और कुछ सन्देह मत कर !
रक्त मेरे ही हृदयका
है लगा मेरे अधरमें !
हैं कुपथपर पाँव मेरे
आज दुनियाकी नज़रमें !

(७)

सोचता है विश्व, कविने
कक्षमें बहुविधि सजाए,
मंदिर - नयना यौवनाको
गोदमें अपनी बिठाए
होठसे उसके विचुंबित
प्यालियोंको रिक्त करते,
झूमते उन्मत्तता से
ये सुराके गान गाए ।
रागके पीछे छिपा
चीत्कार कह देगा किसी दिन,
हैं लिखे मधुगीत मैंने
हो खड़े जीवन - समरमें !
हैं कुपथपर पाँव मेरे
आज दुनियाकी नज़रमें !

(८)

पाँव चलनेको विवश थे
जब विवेक-विहीन था मन,
आज तो मस्तिष्क दूषित
कर चुके पथके मलिन कण,
मैं इसी से क्या करूँ
अच्छे - बुरेका भेद, भाई !
लौटना भी तो कठिन है
चल चुका युग एक जीवन,
हो नियति इच्छा तुम्हारी
पूर्ण, मैं चलता चलाँगा,
मिल सभी पथ एक होंगे
तम-घिरे यमके नगरमें !
हैं कुपथपर पाँव मेरे
आज दुनियाकी नज़रमें !

दूसरा अध्याय

एला आराम-कुर्सीपर बैठी है, पीठके पीछे तकिया लगा हुआ है। पैरपर पैर रखे, उसपर लकड़ीका बोर्ड रखकर देशबन्धु दासकी मूर्ति-अंकित कापीपर तल्लीन होकर कुछ लिख रही है। दिन खतम होनेमें देर नहीं, पर अभी तक बाल यों ही बिखर रहे हैं—सँवारनेकी फुरसत ही नहीं मिली। बैंगनी रंगकी खादीकी साड़ी पहने है,—उसमें मैल छिपा रहता है और इसीलिए एकान्तमें पहननेके लिए उसका अनादृत प्रयोजन है। हाथोंमें लाल रंगकी शंखकी दो चूड़ियाँ पड़ी हैं और गलेमें एक सोनेका हार। हाथी-दाँतके समान गोरा वदन है गठा हुआ; मालूम होता है बहुत कम उमर है, पर चेहरेपर परिणत बुद्धिकी गम्भीरता मौजूद है। खादीकी सब्ज रंगकी चादरसे ढकी हुई लोहेकी छोटी-सी खाट कमरेके एक कोनेमें, दीवारसे सटी हुई पड़ी है। जमीनपर नारायणी-स्कूलकी कपड़ेकी बुनी दरिका फर्श बिछा हुआ है। एक तरफ लिखने-पढ़नेकी छोटी-सी टेबिल है, जिसपर वाकायदा बीचमें प्लेटिंग पेड, एक तरफ कलम-पेन्सिल-दावात और दूसरी तरफ पीतलकी लुटियामें गन्धराज फूल सुशोभित है। दीवारपर पुराने जमानेके किसी फोटोग्राफरकी प्रेतात्मा लटक रही है, जिसकी क्षीण पीली रेखाएँ विलीनप्राय हो रही हैं। अंधेरा होता आता है, वर्त्ता जलानेका समय हो गया। एला उठूँ-उठूँ कर रही थी कि इतनेमें खादीका पर्दा हटाकर अतीन्द्र आँधीकी हवाकी तरह कमरेमें आया और बोला—“एली !”

एला मारे खुशीके चौंक उठी, बोली—“असम्य कहींके, बिना सूचना दिये इस कमरेमें आनेका साहस करते हो !”

एलाके पैरोंके पास धप-से जमीनपर बैठकर अतीन्दने कहा—“जीवन बहुत छोटा है और कानून-कायदे हैं काफी लम्बे, नियमोंकी रक्षा करते हुए चलने-लायक आयु सनातन युगमें थी मान्वाताकी। कलियुगमें उसका टोटा पड़ गया है।”

“अभी तो मैंने कपड़े भी नहीं बदले !”

“अच्छा ही है। तब तो मेरे साथ खप जाओगी। तुम रहो रथपर और मैं चूँ पियादा वनकर—ऐसा द्वन्द्व तो मनुके नियमानुसार अर्धर्म है। किसी जमानेमें मैं था विशुद्ध

भद्र पुरुष,—मेरी केंचुली तो तुम्हींने उतार फेंकी है। अब मेरी मौजूदा पोशाक कैसी देख रही हो ?”

“कोशमें इसे पोशाकमें नहीं शुमार किया गया।”

“तो किसमें शुमार है ?”

“शब्द ढूँढे नहीं मिल रहा। शायद भाषामें ही न हो। कुरतेके सामने यह टेढ़ी-मेढ़ी भौंड़ी सीवनका दाग है, यह क्या तुम्हारी अपनी सीवनका खूबसूरत विज्ञापन है ?”

“तकदीरकी मार गहरी होनेपर भी मैं उसे छातीसे लगा लेता हूँ—यह उसीका परिचय है। इस कुरतेको दरजीके हाथ सौंपनेकी हिम्मत नहीं होती, आखिर उसके भी तो आत्म-सम्मानका ज्ञान होगा।”

“मुझे क्यों नहीं दिया ?”

“नव युगका सुधार-भर लिया है तुमने, फिर उसपर पुराने कपड़ेका संस्कार ?”

“इसे सहन करनेकी ऐसी कौन-सी जरूरत थी ?”

“जिस जरूरतसे भले-आदमी अपनी स्त्रीको सहन करते हैं।”

“इसके मानी ?”

“इसके मानी हैं, एकसे ज्यादा न होना।”

“क्या कह रहे हो तुम, अन्तु ! इतनी बड़ी दुनियामें इसके सिवा तुम्हारे पास और दूसरा कुरता ही नहीं ?”

“बढ़ाकर कहना अनुचित है, इसलिए घटाकर कहा है। पूर्व-आश्रममें श्रियुत अतीन्द्र वावूके पास कपड़े थे बहुत और बहुत प्रकारके। इतनेमें देशमें आ गई वाढ़। तुमन अपनी वक्तृतामें कहा, ऐसे आँसू बहानेवाले घुरे दिनोंमें, (याद है आँसू बहानेवाले विशेषणकी ?) जब कि हजारों भाई-बहनोंको अपनी लाज बचाने लायक कपड़े मयस्सर नहीं, जिनके पास जरूरतसे ज्यादा कपड़े हैं, उन्हें लज्जा आनी चाहिए। बड़े ढंगसे कहा था तुमने। तब तुम्हारे सम्बन्धमें प्रकाश्य रूपसे हँसनेका साहस नहीं था मुझमें; पर मन-ही-मन हँसा था। निश्चित जानता था कि जरूरतसे ज्यादा कपड़े होंगे तुम्हारे वक्तमें। मगर औरतोंके लिए पचास रंगके पचास कपड़े हों, तो वे पचासों ही महज जरूरी हैं। उन दिनों देश-हितैषिणियोंमें होड़ चल रही थी,—कौन, कितना दान संग्रह

कर सकती है। ले आया अपने कपड़ोंका ट्रंक तुम्हारे चरणों-तले। तालियाँ बजा उठीं मारे खुशीके।”

“यह कौन-सी बात है ? मैं क्या जानती थी कि इस तरह उँड़ेल दोगे अपना सब-कुछ ?”

“अचम्भा क्यों करती हो ? दुःसाध्य हानि उठानेकी शक्तिका संचार इस देहमें इतनी तेजीसे किसने किया था ? संग्रहका भार अगर अपने गणेश मजूमदारपर होता, तो उसका पौसप मेरे बक्सको बहुत ही कम नुकसान पहुँचाता।”

“छि-छि, अन्तः, क्यों तुमने मुझसे कहा नहीं ?”

“अफसोस मत करो। विलकुल ही शोचनीय अवस्था हो, सो बात नहीं ; दो कुरते रंगवाकर रख दिये हैं नित्यकी आवश्यकताके लिए, नम्वर-वार धो-धोकर पहना करता हूँ। और भी दो तहियाये हुए रखे हैं आपद्धर्मके लिए। अगर किसी दिन इस सन्दिग्ध संसारमें अपनेको शरीफ खानदानका साधित करनेकी जरूरत पड़ी, तो उसके लिए उन दोनोंपर धोवी-दरजीका सर्टीफिकेट है ही।”

“सृष्टिकर्ताका सर्टीफिकेट तो इस चेहरे ही पर मौजूद है—गवाह पेश करनेकी जरूरत नहीं तुम्हें।”

“स्तुति ! नारीके दरवारमें स्तुतिकी अत्युक्ति तो हमेशासे पुरुषोंके ही अधिकारमें चली आ रही है, तुम उसे उलट देना चाहती हो ?”

“हाँ, चाहती हूँ। प्रचार करना चाहती हूँ कि आधुनिक कालमें स्त्रियोंके अधिकार बढ़ रहे हैं। पुरुषोंके विषयमें भी सच कहनेमें उन्हें बाधा न होनी चाहिए। नवीन साहित्यमें देखती हूँ—भारतीय महिलाएँ अपनी ही प्रशंसामें तल्लीन हैं, देवीकी प्रतिमा बनानेका कुम्हारका काम उन लोगोंने अपने ही हाथमें ले लिया है। वे अपनी जातिकी गुण-गरिमापर साहित्यिक रंग चढ़ा रही हैं। वह उनके अंगरागमें ही शामिल है, अपने हाथका पीसा हुआ—विधाताके हाथका नहीं। मुझे इसमें शरम मालूम होती है। अब चलो बैठकमें।”

“यहाँ भी बैठनेकी जगह है। मैं अकेला ही तो विराट समा नहीं हूँ।”

“अच्छा तो बताओ, जरूरी बात क्या है ?”

“अचानक कविताकी एक लाइन याद आ गई, पर वह कहाँ पड़ी है, कुछ याद नहीं पड़ता। सवेरेसे हवा टटोलता फिरता हूँ। तुमसे पूछने आया हूँ।”

“बहुत ही जरूरी मालूम होता है। अच्छा कहो, कौन-सी लाइन है ?”

“जरा सोचकर बताना, किसकी रचना है :—

तुम्हारी आँखोंमें था देखा

मैंने अपना सत्यानास।”

“किसी प्रसिद्ध कविकी तो है ही नहीं।”

“पहले सुनी हुई-सी नहीं मालूम होती तुम्हें ?”

“परिचित गलेका आभास मिलता है थोड़ा-सा। दूसरी लाइन कहाँ गई ?”

“मुझे विश्वास था, दूसरी लाइन तुम्हें अपने-आप ही याद आ जायगी।”

“तुम्हारे मुँहसे अगर एक बार सुन लूँ, तो जरूर याद जायेगी।”

“तो सुनो :—

दिवस-अन्तके उस प्रकाशमें

अरुण-वरण था चैत्रमास।

तुम्हारी आँखोंमें था देखा

मैंने अपना सत्यानास।”

अतीतके माथेपर हलकी-सी चपत जमाकर एलाने कहा—

“आजकल तुमने यह क्या पागलापन शुरू कर दिया है ?”

“उस दिन चैत मासकी उस कुचड़ीसे ही मेरा पागलापन शुरू हो गया है। जो दिन चरम तक पहुँचनेसे पहले ही निवट जाते हैं, वे फिर ज्ञाया-मूर्ति धारण करके कल्पलोकके दिगन्तमें घूमा-फिरा करते हैं। तुम्हारे साथ मेरा मिलन होगा उसी मरीचिकाकी सुहागरातमें। आज वहींके लिए तुम्हें बुलाने आया हूँ—तुम्हारे कामकी हानि कहेगा।”

गोदकी तख्ती और कापी फर्शपर फेंकते हुए एलाने कहा—
“पढ़ा रहने दो मेरा काम। बत्ती जला दूँ।”

[क्रमशः

नन्हा फूल !

श्री एन० के० चित्रभास

धीरेसे मा तुमने
इसे ले लिया अपनी गोद ;
हलका फूल सदृश यह करता
कैसा निर्मल चित्त-विनोद !
नन्हें हाथ - पैर हैं कैसे
कैसा कोमल इसका अंग ;
कितना मृदु प्रवाह साँसोंका
कैसा अविकच शोभन रंग !
कैसा मधुर वदन-सम्पुट है
कैसी है चितवन भोली ;
कितना मृदुल देह-कम्पन है
कैसी है अस्फुट बोली !
अनायास ही इसे उठाकर
गोदीमें ले लेती हो ;
इसके विपुल गूढ़-गौरवपर
कुछ भी ध्यान न देती हो ।
यह जो उपग्रह-सा सदैव ही
रहता है मा तेरे साथ ;
तेरे घुटनों तक ही जिसका
ऊँचा अभी हुआ है गात !
अंकारोद्गम ही है तेरा
जिसकी ईप्सित उच्च उड़ान ;
तेरा मा प्रसन्न - अवलोकन
वन जाता जिसकी मुसकान !

यह अतोल वैभव है जगका
यह स्वदेशका गौरव - मूल ;
जिसे उठा लेतीं धीरेसे
जननि, समस्त नन्हा-सा फूल !

क्षण-भरमें रोजे लग जाता
क्षणमें हँस देता अनजान ;
इसकी गरिमाका तुम कैसे
ठीक कर सकोगी अनुमान ।
यह विराटकी सान्त भलक है
यह असीमका है संक्षेप ;
आत्म-व्यक्ति-हित तुम्हें दिया है
परमपुरुषने यह निक्षेप ।
यह सौन्दर्य-वृक्षका फल है
ज्ञान - वीजका चिर-आधार ;
निखिल कलाओंका आश्रय है
केन्द्रित है इसमें सब प्यार ।
मा, अनादि मानवताका है
आदि यही यह सु-अधिष्ठान ;
उत्थित हुआ कण्ठसे इसके
अखिल सभ्यताओंका गान !
अर्जुन, कृष्ण, राम, प्रभु ईसा,
बुद्ध, व्यास, वाल्मीकि, कबीर,
होमर, कालिदास, कवि गेष्टे
कितने विश्व-हितैषी वीर —
मा सबका अंकुर है इसमें
सबका इसमें रक्त - प्रवाह ;
मानव - उसके शीतल होते
इसे देख कितने दुख-दाह ।

भारतमाता-मंदिर

हालमें महात्मा गांधीने काशीमें भारतमाता-मन्दिरका उद्घाटन किया है। इस मन्दिरमें कोई मूर्ति नहीं है, वरन् भारतवर्षका एक विशाल नक्शा संगमरमरमें काटकर बनाया गया है। मन्दिर हिन्दू, मुसलमान, ईसाई सभीके लिए खुला है। यह भारतके सुप्रसिद्ध देशभक्त श्रीयुत शिवप्रसाद गुप्तकी सूक्त और उदारताका परिणाम है।

यह नक्शा धरातलकी ऊँचाई-नीचाई दिखाते हुए बनाया गया है। नक्शेका परिमाण अर्थात् लम्बाई और चौड़ाई ३१ फुट २ इंच और ३० फुट २ इंच है।

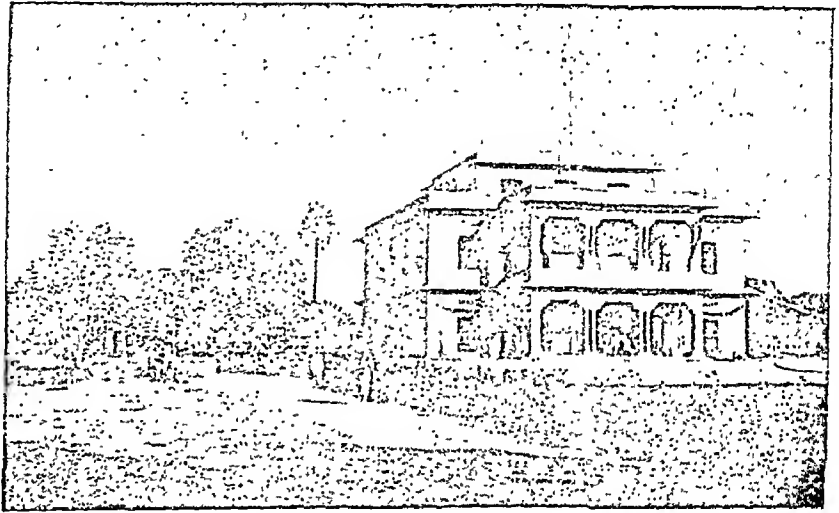
इसे बनानेमें संगमरमरके ११×११ इंचके सात सौ बासठ टुकड़े और कुछ छोटे-मोटे टुकड़े काममें लाये गये हैं। भारत-भूमिभी प्राकृतिक ऊँचाई और नीचाई आदिपर दृष्टि रखते हुए ये टुकड़े बड़ी सावधानता और शुद्धतासे काट-छाँटकर प्रस्तुत किये गये हैं। इस मानचित्रमें उत्तरमें पामीर पर्वत शिखरोंसे लेकर दक्षिणमें लंका वा सिंहलद्वीप के दक्षिणी छोर डुबुन्दुर तुडुव (डुनु ड्रा) तक और पूर्वमें मौलमीन तथा चीनकी प्रसिद्ध प्राचीन दीवार कदकहासे लेकर पश्चिममें हेरात तकका समस्त भूभाग दिखाया गया है। भारतवर्षके साथही इसके समीपवर्ती प्रदेश — अफगानिस्तान, विलोचिस्तान, मोट (तिब्बत), ब्रह्मदेश (बर्मा), लंका (सिंहल) और मलाया प्रायद्वीपका अधिकांश भी दिखाया गया है।

इस मानचित्रमें धरातल भूमि एक इंचमें ६४ मील दिखाई

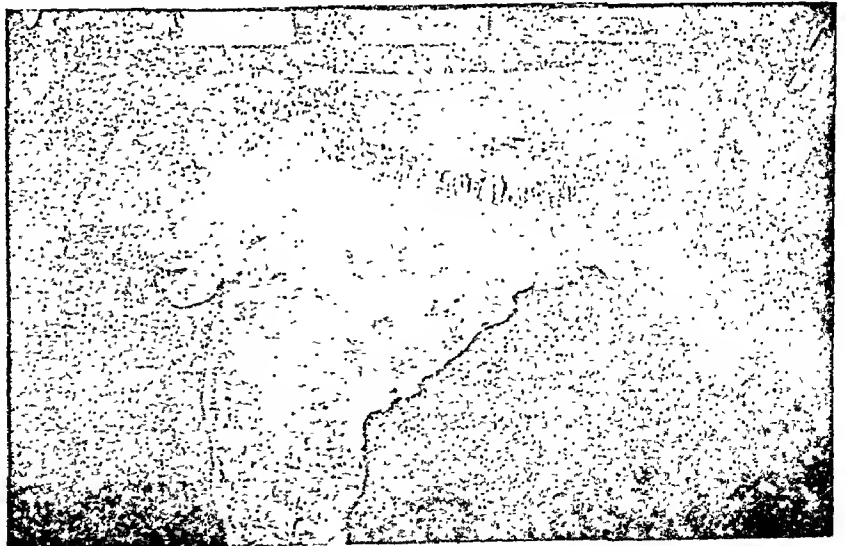
गई है। पहाड़ आदिकी ऊँचाई एक इंचमें दो हजार फुट दिखाई गई है। हिमालय पर्वतका सर्वोच्च शिखर एवरेस्ट (गौरीशंकर) संगमरमरके एक ही टुकड़ेको काटकर पौने पन्द्रह इंच ऊँचा बनाया गया है।

भारतवर्षकी सब प्रधान और सहायक नदियोंको तथा उनकी चौड़ाई, गहराई आदिको भी बड़ी सावधानीसे यथासम्भव ठीक ठीक दिखानेक पूर्ण यत्न किया गया है।

इस प्रस्तर-निर्मित भव्य भूचित्रमें प्रख्यात नगरों, इतिहास-



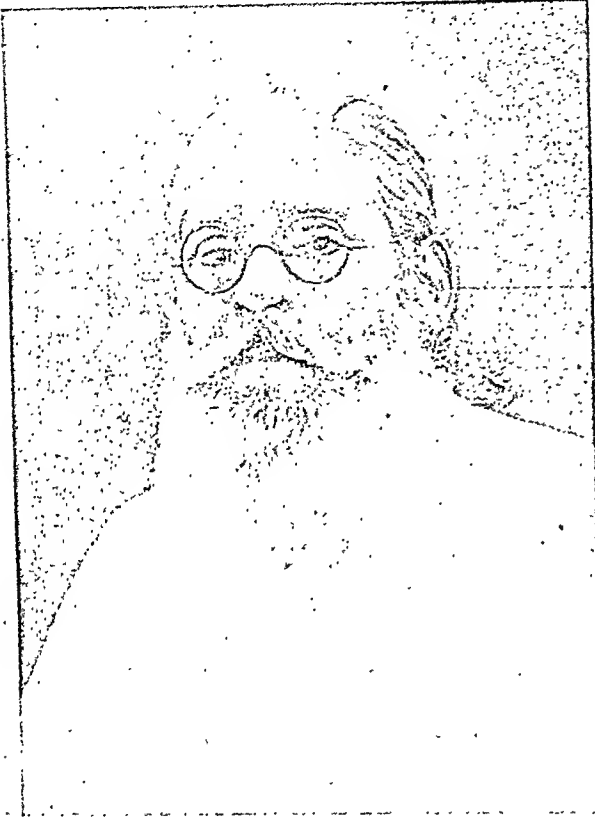
भारतमाता-मन्दिरकी इमारत



मन्दिरमें भारतका भूचित्र

प्रसिद्ध स्थानों, तीर्थों, नदियों, पर्वतों एवं गिरिवर्त्मके नाम, उनकी लम्बाई, चौड़ाई, ऊँचाई, गहराई आदि अभिव्यक्त करते हुए खोदे गये हैं।

भूगर्भ-शास्त्र तथा अनेक विषयों पर सर्वसाधारणके लिए उपयोगी सरल व्याख्यानों एवं शिक्षा-संस्थाओंके विद्यार्थियोंके लिए



श्रीधुत शिवप्रसाद गुप्त



महात्मा गांधी भारतमाता-मन्दिरका उद्घाटन कर रहे हैं

श्री दुर्गाप्रसादजी बी० ए० विज्ञापनकला-विशारदने अपने निरीक्षणमें काशीके ही पट्ट शिल्पियोंसे यह मानचित्र बनवाया है।

भारतमाताकी इस मूर्तिके लिए एक सुरम्य उद्यानमें विशाल मन्दिर बनाया गया है—जो अभी पूर्ण नहीं हुआ है—जहाँ भारतोपान्तवर्ती सागर भी, उसकी अल्पाधिक गम्भीरता या गहराईके साथ, दिखाया गया है।

इसकी सहायतासे भारतके भूगोल, भूतल-निर्माण,

विशेष लाभप्रद सुवोध व्याख्यानोंका आयोजन सरलतासे किया जा सकेगा।

भारतका यह अनोखा भूचित्र फर्शपर—आस-पासके धरातलसे कुछ नीचाईपर—बनाया गया है। चारों ओर कटहरा लगा है, जिसके पास खड़े होकर दर्शक इसे देखते हैं। भूचित्रको कुछ गहरे गड्ढेमें बनानेका उद्देश शायद यह है कि जो कोई दर्शक इसे देखने जायगा, उसे भारतवर्षके आगे सिर झुकाना पड़ेगा।



श्रीयुत रघुवीरनारायण

प्रो० मनोरंजन, एम० ए०

सन् १९०५ में इक्कीस वर्षके विद्यार्थी बिहारके सारन जिलान्तर्गत नयागाँव-निवासी श्री रघुवीरनारायणने जब अंगरेज़ीमें अपना 'A Tale of Behar' लिखा, उस समय चारों ओर धूम-सी मच गई। बड़े-बड़े विद्वानों तथा समालोचकोंने उसकी प्रशंसा की और उस नवयुवकसे भविष्यके बड़े-बड़े मनसूबे बाँधे जाने लगे।

इंग्लैण्डके तत्कालीन राजकवि (Poet Laureate) अलफ्रेड आस्टिनने उसकी तारीफ़ करते हुए लिखा—

"Your knowledge of the English language is complete and your mastery over more than one form of its verse equally so." अर्थात्—

‘आपका अंगरेज़ी भाषाका ज्ञान पूर्ण है और उसके एकाधिक छन्दोंपर भी आपका अधिकार कुछ कम नहीं।’ इस प्रकार उन्होंने उनके भाषाज्ञान तथा छन्दज्ञान दोनोंकी ही भूरि-भूरि प्रशंसा की। इतना ही नहीं, उन्होंने यह भी लिखा—“I receive many volumes of verse from my countrymen at home that can not compare in execution with yours.” अर्थात्—‘मेरे देशवासियोंकी भी कितनी ही पद्य-रचनाएँ मेरे पास आती रहती हैं ; किन्तु वे आपकी रचनाकी बराबरी नहीं कर सकती।’ इससे बढ़कर प्रशंसा और क्या हो सकती है ?

स्वभावतः इस प्रशंसासे बिहारियोंका हृदय उस समय गर्वसे फूल उठा और उस समय प्रमुख अंगरेज़ी पत्र ‘बिहारी’ ने गद्गद स्वरमें लिखा था—“हम आशा करते हैं कि बिहारका यह प्रतिभाशाली युवक पुत्र दीर्घजीवी हो और साहित्य-संसारमें अपना और अपने प्रान्तका नाम उज्ज्वल करे।”

रघुवीर बाबू अभी भी जीवित हैं ; किन्तु साहित्य-संसारमें उनका नाम अंगरेज़ी कविताके लिए कुछ पुराने लोगोंके सिवा बहुत कम लोग जानते हैं, और यदि कुछ लोग उन्हें याद भी करते हैं, तो उनके भोजपुरी भाषामें लिखे गये प्रसिद्ध गीत ‘बटोहिया’ के

लिए, जिसका जिक्र मैं आगे चलकर इसी लेखमें करूँगा।

× × × ×

‘A Tale of Behar’ रघुवीर बाबूकी प्रथम प्रकाशित पद्य-रचना है। उसमें उन्होंने सोनपुरके दो कल्पित राजपूत सरदारोंकी लड़ाईका वर्णन किया है, जिनमें एक तो अपनी कन्याका विवाह अपने मनोनुकूल वरसे करना चाहता था और दूसरा उसे



श्रीयुत रघुवीरनारायण

अपने लिए वरण करना चाहता था। अन्तमें उस नवयुवक सरदारकी ही विजय हुई और वह स्त्री-रत्न उसे प्राप्त हुआ।

पुस्तककी भाषा काफ़ी ओजस्विनी है। शैली रोचक और कविस्वपूर्ण है। छन्दोंपर कविका काफ़ी

अधिकार है और सबसे ऊपर छाप पड़ी हुई है सर वाल्टर स्काटकी, जिनके लोकगीत (Ballad Poems) अंगरेजी साहित्यमें सुप्रसिद्ध हैं। पुस्तकके अन्तका 'यात्रीका गीत' (Traveller's Song) तो मुझे बहुत ही सुन्दर लगा और न-जाने कितनी बार मुक्तकंठसे मैंने उसे गाया भी है।

उस पुस्तकको लिखते समय रघुवीर बाबूके हृदयमें काफ़ी महत्वाकांक्षाएँ थीं। उन्होंने पुरानी जनकथाओंके शनैः शनैः लोप होनेके क्रमपर दुःख प्रकट करते हुए उनके उद्धारका बीड़ा उठाया था और लिखा था—“यह कार्य मेरे लिए पुण्यकार्य है और मैं प्रसन्नतापूर्वक इसे उठाता हूँ।” उनके गुरु मिस्टर एच० आर० जेम्सने, जिन्हें वह पुस्तिका समर्पित की गई थी, उनकी तारीफ करते हुए उनके विचारोंका समर्थन किया था—“I highly approve of your design to work at a series of ballads or traditional tales of verse—metrical romances they would be—something like Scott's.....and if you can keep to the level of this first one...I believe they would be a real literary success.”

अर्थात्—“मैं आपके इस विचारका समर्थन करता हूँ कि आप एक गीतमाला—यानी पद्यबद्ध लोकगाथाएँ—लिखें, स्काट जैसी चीज़....और यदि आप इस प्रथम कृति जैसी उत्कृष्टता कायम रख सके, तो मेरा विश्वास है कि वे सच्ची साहित्यिक सफलताकी चीज़ होंगी।” मगर यह यदि (if) काफ़ी ज़बरदस्त था। रघुवीर बाबूकी मनकी बातें मन ही में रह गईं, और उन्होंने फिर वैसा प्रयत्न नहीं किया।

रघुवीर बाबूमें शक्ति है। प्राचीन कथाओं तथा पुरातत्त्व-विषयक बातोंका उन्हें ज्ञान भी काफ़ी है। बिहारके सारन ज़िलेके पुरातत्त्वका तो उन्हें विशेषज्ञ ही समझना चाहिए; किन्तु दुःखकी बात है कि रघुवीर बाबूने अपनी उस शक्तिका पूर्ण उपयोग नहीं किया।

‘Tale of Behar’ के बाद अंगरेजीमें उन्होंने और दो पुस्तकें छपवाई—एक तो ‘सीताहरण’ और

दूसरा ‘Way side Blossoms’। ‘सीताहरण’ बहुत अंशोंमें गोस्वामी तुलसीदासजीका अनुवाद ही है, और अनुवादके नाते हम यह भी कहेंगे कि वह काफ़ी सफल हुआ है। फिर भी आखिर है तो वह अनुवाद ही है, और इसीसे उसके विषयमें अधिक लिखनेकी इच्छा नहीं होती। जिस लेखकने एक मौलिक ग्रन्थके साथ साहित्य-संसारमें प्रवेश किया था, वही अपने पास इतने वर्य-विषय रहते हुए भी अनुवादपर उतर आवे, यह भी दुःखकी ही बात है।

‘Way side Blossoms’ उनकी अंगरेजी भाषामें लिखी गई स्फुट कविताओंका संग्रह है। हवक साहबको उसे समर्पित करते हुए उन्होंने अतीतके जो संस्मरण दिये हैं, वे वास्तवमें सुन्दर हैं। उनकी कुछ प्रारम्भिक कविताओंमें वास्तविक कवि-प्रतिभा वर्तमान है, जिसे देखकर जीमें होता है कि यदि यह कवि अपना अभ्यास जारी रखेगा, तो आगे चलकर इसका आसन काफ़ी ऊँचा हो जायगा; किन्तु बादकी कविताओंको देखकर हृदयमें वह उत्साह नहीं रह जाता। अच्छा होता, यदि रघुवीर बाबूने अपने सभी पदोंका संग्रह करनेके बदले कुछ कविताओंको छोड़ दिया होता। उनकी राजभक्तिकी कविताओंमें अब कोई विशेष रस नहीं है, और ‘Happy Happy Twelfth December’ को पढ़कर अब तो हँसी आ जाती है। उनका भी कभी समय था; किन्तु अब तो वे इस योग्य कदापि नहीं समझी जा सकती कि किसी कविता-संग्रहमें उन्हें स्थान मिले।

बस, इस संग्रहमें जब हम अन्तिम दोनों गीतोंपर पहुँचते हैं, तो दिलकी कली खिल उठती है। वे दोनों ही बिहारके प्रसिद्ध बालगीतोंके बड़े ही सुन्दर अनुवाद हैं। एक तो है कैदी पक्षीका शोकोद्धार। हम सभीने अपने बचपनमें वह कहानी सुनी है, जब बन्ही पक्षी किसानसे अपनेको छोड़ देनेकी प्रार्थना करता है और हर पदके अन्तमें ‘टुन टुनवे टून’ कहता है। रघुवीर बाबूने अंगरेजीमें उसका जो सुन्दर वर्णन

किया है, वह देखने ही योग्य है, और मैं उसे उद्धृत करनेका लोभ संवरण नहीं कर सकता। चिड़िया कहती है :—

"Nameless terrors seize me,
Tun tun wen toon.
Farmer, pray release me,
Tun tun wen toon.
Parrots, rooks and pigeons,
Tun tun wen toon
Birds from distant regions.
Tun tun wen toon
Maina, Maini, Kharley,
Tun tun wen toon,
They ate up your barley,
Tun tun wen toon.
Why then bind me only ?
Tun tun wen toon
Oh, to languish lonely.
Tun tun wen toon.
Think not of my slaughter.
Tun tun wen toon.
I have sons and daughter.
Tun-tun wen toon
Yonder in the fig tree
Tun tun wen toon
Quite a fair and big tree,
Tun tun wen toon
Where I have my dear ones
Tun tun wen toon
Children and my near ones
Tun tun wen toon
They will wail and languish
Tun tun wen toon
Die of grief and anguish,
Tun tun wen toon
There's a God above us
Tun tun wen toon
Who doth shield and love us
Tun tun wen toon
For His sake, have pity,
Tun tun wen toon.
Hear my plaintive ditty,
Tun tun wen toon,
From distress relieve me,
Tun tun wen toon.
Leave me, farmer, leave me,
Tun tun wen toon."

कितना सुन्दर और स्वाभाविक प्रवाह है, और हमारे आनन्दकी मात्रा तब और भी बढ़ जाती है, जब हम यह देखते हैं कि अंगरेज़ीमें भी लगभग वही लय है, जो हिन्दीमें हमने अपनी दादीके मुँहसे सुनी थी।

दूसरा अनुवाद भी वैसे ही प्रसिद्ध एक गीतका है, जिसे प्रायः स्त्रियाँ बच्चोंको खिलाते समय गाती हैं :—

"चन्दा मामा,
आरे आवऽ
पारे आवऽ
नदिया
किनारे आवऽ
सोनाके कटोरीमें
दूध - भात
ले ले आवऽ
बबुआके मुँहमें
घुस्क, घुस्क, घुस्क ।"

इन अनुवादोंको देखकर दुःख होता है कि हमारे कविने और भी ऐसे गीतोंका अनुवाद क्यों नहीं किया। न अनुवाद करते, हमें मूल गीतोंका भी यदि संग्रह कहीं दे देते, तो भी हमें आनन्द ही होता।

माइकेल मधुसूदन दत्त और श्री रमेशचन्द्र दत्त अंगरेज़ीमें बड़े अच्छे पद लिखते थे ; किन्तु आज उनके वादवाली पीढ़ी यदि उन्हें याद रखे हुई है, तो उनकी अंगरेज़ी रचनाओंके लिए नहीं, बल्कि उनकी मातृभाषामें लिखित उनके ग्रन्थोंके ही लिए।

अस्तु, यदि रघुवीर बाबूने अंगरेज़ीमें बहुत कविताएँ नहीं लिखीं, तो मुझे इसका बहुत दुःख नहीं है ; किन्तु दुःख इस बातका अवश्य है कि उन्होंने अपनी प्रतिभाका पूर्ण लाभ अपने देशवासियोंको नहीं उठाने दिया। उन लोकगीतों तथा दन्तकथाओंको यदि किसी-न-किसी तरह अंगरेज़ी अथवा हिन्दी किसी भी भाषामें उन्होंने लिख दिया होता, तो हमारा बहुत कल्याण होता। आज तो हम कृतज्ञतापूर्वक उन्हें स्मरण करते हैं, उनके अमरगीत 'बटोहिया'के लिए। उसी एक गीतसे उनका नाम अमर रहेगा और जनसाधारणके होठोंपर उसकी पंक्तियाँ रह-रहकर थिरका ही करेंगी।

[२]

किसी भी राष्ट्रकी जागृतिमें उसके राष्ट्रीय गीत कितना अधिक काम करते हैं, यह किसको विदित नहीं

है। मुझे स्वयं अपना अनुभव है कि मेरे एक देहाती गीत 'फिरंगिआ'ने विहार प्रान्त तथा यू० पी० के पूर्वी जिलोंकी जागृतिमें कितना अधिक भाग लिया था। सन् १९२० के विहार-भ्रमणके समय महात्मा गांधीकी प्रायः प्रत्येक सभामें यह गीत गाया जाकर जनसाधारणमें फैल गया था और हजारों-लाखों मनुष्योंकी जवानपर इसकी पंक्तियाँ नाचने लगी थीं। उसके बाद तो उस रागके गीतोंकी धूम-सी मच गई—'वकीलवा', 'मुखतरवा', 'पुलिसवा' इत्यादिसे लेकर 'मेलाधूमनी', 'बेटावेचवा' इत्यादि तक की रचना हो गई। मेलों तथा विहारके रेलवे स्टेशनोंके प्लैटफार्मोंपर बराबर उनका स्वर गूँजने लगा और लोगोंने पैसे भी काफ़ी कमाये।

किन्तु इन सब गीतोंका दादा गुरु कौन था? वही रघुवीर बाबूका 'बटोहिया', जो काव्यगुणों तथा सरसतामें अपने बादके बने हुए उस प्रकारके सभी गीतोंसे श्रेष्ठ है। सन् १९१२ में जब उसकी ध्वनि पहले-पहल विहारके विद्यार्थियोंमें गूँजी थी, उस समयकी मुझे पूरी याद है। जहाँ देखो, वहाँ प्रेमविह्वल कंठसे नवयुवक इस गीतको गाते थे—

“सुन्दर सुभूमि मैया भारतके देसवासे
मोर प्रान वसे हिम-खोह रे बटोहिया।
एक ओर धरे राम हिम कोतवलवासे
तीन ओर सिन्धु घहरावे रे बटोहिया।”
प्रारम्भकी ये पंक्तियाँ गाते-गाते जब वे—
“गंगा रे जमुनवाके निरमल पनिआ से
सरजू झमकि लहरावे रे बटोहिया।
ब्रह्मपुत्र पंचनद घहरत निसि दिन
सोनभद्र मीठे स्वर गावे रे बटोहिया।”

के पास पहुँचते थे, तब उनका स्वर गद्गद हो आता था, और अन्तकी पंक्तियाँ गाते-गाते उनका हृदय स्वदेशके गौरवसे परिपूर्ण हो उठता था—

“अपर प्रदेश देश सुभग सुधर वेश,
मोर हिन्द जगके निचोड़ रे बटोहिया।
सुन्दर सुभूमि मैया भारतके भूमि जेहि
जन रघुवीर सिर नावे रे बटोहिया।”

इस गीतकी कुछ पंक्तियाँ तथा इसकी रागिणी कुछ इतनी करुण है कि बरबस आँखोंमें आँसू भर आते हैं। हमारे कविका अपना अनुभव है, जिसे उन्होंने स्वयं मुझसे कहा था कि जब वे उस पंक्तिपर पहुँचे 'सीताके विमल जस राम जस, कृष्ण जस, मोरे बाप-दादाके कहानी रे बटोहिया' तो वे अपनेको रोक न सके और उनके आँसूकी बूँदोंसे कागज़ गीला हो गया था।

उस गीतका राग पूर्वी है, और उसकी सृष्टिका इतिहास भी कुछ अपूर्व है। रघुवीर बाबू ट्रेन द्वारा कहीं जा रहे थे। उसी ट्रेनसे पास ही के डब्बेमें कुछ भाँड़ोंका दल भी जा रहा था, जो आपसमें खेल-कूद करते हुए एक गीत गा रहा था—“रमवा रे रमवा करमवासे रमवासे यरवा मिलल दगेवजवा रे रमवा।” कविको वह राग काफ़ी आकर्षक मालूम हुआ और रह-रहकर उनके दिमागमें गूँजने लगा। अन्तमें उसी रागमें इस 'बटोहिया'की सृष्टि हुई। इस प्रकार एक साधारण-सी घटनासे बिलकुल एक नई-सी चीज़ ईजाद हुई, जो विहारके जिले-जिलेमें फैल गई।

बहुत दिन हुए, जब अध्यापक रामदास गौड़ने मुझे बतलाया था कि हम लोगोंके वे पूर्वी गाने घनाक्षरी छन्दमें हैं। मात्राएँ गिनकर उन्होंने प्रमाणित कर दिया कि यह कोई नई चीज़ नहीं है। फिर भी न-जाने क्यों, यह सब होते हुए भी, अपना मन उसे पुराना माननेको तैयार नहीं होता, क्योंकि चाहे छन्द भले ही पुराना हो; किन्तु गीतमें उसका प्रयोग तो अवश्य ही नया था—इतना तो सभीको मानना पड़ेगा।

'बटोहिया'के अलावा रघुवीर बाबूने दो-एक और भी पूर्वी गाने लिखे; किन्तु उतने प्रसिद्ध न हो सके। वे सभी उनके प्रथम हिन्दी पद्य-संग्रह 'रघुवीर पत्र-पुष्प'में प्रकाशित हो चुके हैं। उस पत्र-पुष्पमें उनके सिवा रघुवीर बाबूकी और भी कई कविताएँ हैं; किन्तु मुझे क्षमा किया जाय, यदि मैं यह लिखूँ कि रघुवीर बाबू अपनी खड़ी बोलीकी कविताओंमें उतने सफल नहीं हो

सके हैं, जितने कि अंगरेज़ी तथा भोजपुरी भाषाकी कविताओंमें। 'रघुवीर-पत्र-पुष्प' में प्रकाशित उनकी खड़ी बोलीकी रचनाओंको देखनेसे साफ मालूम हो जाता है कि लेखकका भाषापर पूर्ण अधिकार नहीं हो पाया है। कई जगह तो कुछ भद्दी भूलें भी हैं। खासकर 'ने'का अभाव कई जगह बेतरह खटकता है। यथा—'दिवानी हवा तान भैरव लगाई', 'अचानक मैं देखा नदीके किनारे' इत्यादि।

उनकी खड़ी बोलीकी रचनाओंमें अधिकांश रचनाएँ अंगरेज़ी छन्द या उर्दू छन्दके तर्ज़पर लिखी गई हैं। हिन्दी छन्दोंमें घनाक्षरी कवित्त ही आपको विशेष प्रिय मालूम होता है; किन्तु कवित्वकी दृष्टिसे वे बिल्कुल साधारण ही हैं। अंगरेज़ी छन्दोंके तर्ज़पर उन्होंने हिन्दीमें एक नई ही शैली प्रारम्भ करनेका प्रयत्न किया है; किन्तु उसमें वे उतने सफल नहीं हो सके हैं। अंगरेज़ कवियोंने जिस प्रकार 'My Mother' 'My Mary' इत्यादिकी टेक उठाई है, उसी प्रकार रघुवीर बाबूने भी 'प्यारे सीबी', 'प्यारे शिवेश्वर', 'प्यारे मुकता', 'ब्रजेन्दर हमारे' इत्यादिका प्रयोग किया है।

“घोर निशा छाई है,

प्यारे शिवेश्वर।

मनमें भय लाई है,

प्यारे शिवेश्वर।

भानुकी न ज्योती है

दुनिया सब सोती है।

मन्द हवा रोती है,—

प्यारे शिवेश्वर !”

उर्दू छन्दके तर्ज़पर भी उन्होंने कितनी ही रचनाएँ की हैं, जिनमें 'मेरे मनका तमाशा' मुझे काफ़ी अच्छा लगा। उसका एक पद मैं नीचे उद्धृत कर रहा हूँ।

“जगत क्या व्यथामय दुखी हो रहा है ?

कि सुख मेरे मनसे निकल सो रहा है ?

जगत शोकमय है ? कि मैं उदासा ?

कहाँसे ये रोदन ? कहाँसे निराशा ?

कहींपर तो होंगे अमर गुनगुनाते,
कहीं फूल लहरें गुलाबी उड़ते।
कहीं कामिनीचन्द गाती भी होंगी,
हिंडोला परस्पर झुलाती भी होंगी,
मगर आज मनमें है मेरे निराशा।

सभी जीव सुखमें

हमी एक दुखमें

ये मनका ही मेरे है सब कुछ तमाशा।”

रघुवीर बाबूकी रचनाओंसे उनके प्रकृति-प्रेमका यथेष्ट परिचय मिलता है। प्रकृतिके अन्यान्य दृश्योंके साथ ही जब वे गाँवके सादे दृश्योंका वर्णन करते हैं, तो हृदय गदगद हो जाता है। हिमालय और सिन्धु, वन और पहाड़के साथ ही वे अपनी 'मड़ई पलानी' को भी नहीं भूल सके हैं—

“सुनसान सघन अगम वन गिरिवर,

आनंदकी उड़त निशानी मेरी जननी ;

गेहूँ धान जामे राम सरसों विपिन फूले

सुख भूले मड़ई पलानी मेरी जननी ॥”

देशभक्ति तो उनकी कवितामें कूट-कूटकर भरी है। मुझे याद है कि लड़कपनमें किस मस्तीके साथ हम उनके गीत गाया करते थे और, सच पूछिये तो, बिहारके अधिकांश नवयुवकोंके हृदयमें देश-प्रेमका अंकुर उनके देशभक्तिके गानोंकी सुधाधारा पाकर ही उगा और पनपा। 'बटोहिया'की तो बात ही क्या है और भी उनके कई गाने हैं, जिन्हें हम बड़े शौकसे गाया करते थे। उनमें 'तेरी नित जय-जयकार मेरी जननी भारत' तो आज भी मेरे कानोंमें गूँजता ही रहता है।

अंगरेज़ीमें भी हिन्दुस्तानी तर्ज़पर उन्होंने कुछ गाने बनाये थे, जो तत्कालीन बिहारके नवयुवकोंमें बहुत प्रचलित थे। उनमें एक तो मुझे आज भी याद है और स्मृतिकी ही सहायतासे मैं आज उसे लिख रहा हूँ—

“Brothers, March on !

Let us march onwards
Waving the flag of Behar,

Brother, March on !

The tales of our past
Are the lives of our nation,

O how noble, inspiring, glorious they are,

Brothers, march on !
 The thorns in our path
 Will be blown in the long run
 If we push on with Hope as our guiding star
 Brothers, march on !
 Then be up and doing
 You must move on boldly
 While your young poet plays on his Vocal Sitar,

Brothers, March on !"

रघुवीर बाबूका हृदय बड़ा ही सरल है। नम्रताकी तो मानो वे मूर्ति ही हैं। उनकी रचनाओंमें धार्मिक भावनाओंका पूरा प्राचुर्य है। उनके दूसरे पद्य-संग्रह 'रघुवीर रसरंग'में उनकी उसी प्रकारकी रचनाओंकी भरमार है। अब उमर भी आ गई है और 'नमामि कीशनायक', 'नमामि मातु जानकी' का ही उन्हें अब सहारा रह गया है। 'ब्रह्मगमका रूप', 'सगुण रंगका नाच' इत्यादि देखनेमें ही वे अब मगन हैं।

हिन्दीमें 'रघुवीर पत्रपुष्प' तथा 'रघुवीर रसरंग'के सिवा उनकी और कोई भी रचना मेरे देखनेमें नहीं आई है, और वे दोनों संग्रह साहित्यिक दृष्टिसे साधारण ही हैं। इनके अलावा रघुवीर बाबूने और भी कोई रचना की है अथवा नहीं, इसके पूरा पता मुझे नहीं है; किन्तु हाल ही में उनके एक अप्रकाशित काव्यका एक पृष्ठ मुझे मिला है, जिसमें काफ़ी प्रवाह है, शक्ति है, सौन्दर्य है। मालूम हुआ है कि उनकी वह रचना सन् १९११ की ही है। इससे अनुमान होता है कि रघुवीर बाबूने और भी कितनी ही रचनाएँ की होंगी, जिन्हें उन्होंने अभी तक अप्रकाशित ही रखना उचित समझा है। संयोगवश उनकी उस अप्रकाशित कविताका जो कुछ भी अंश मुझे मिल गया है, उसे कृपणके सोनेके समान छिपाकर मैं पाठकोंको उसके आनन्दसे वंचित नहीं करना चाहता। इसीसे उसे पूरा-पूरा नीचे उद्धृत किये देता हूँ। इसमें ह्रस्व 'ए', ह्रस्व 'ओ' तथा ह्रस्व 'की' के काफ़ी प्रयोग हैं। पाठक सुधार लेंगे।

"तरल धार सरयू अलौकिक छटासे
 सुवहकी सुनहरी गुलाबी घटासे
 झलक रंग लेती चली बुदबुदाती
 प्रभाकरकी जगमगमें जादू जगाती
 किसी कन्दरेसे समीरण हों उन्मन
 उठा मानो करता मधुपका-सा गुंजन
 प्रसूनोंकी गन्धोंको तनमें लगाकर
 विपिनके गवैयोंको सोते जगाकर
 मृदुल मस्त सीटी एकाएक सुनाकर
 सनासन चला ओर सरयूकी धाकर।

चली जाती सरयू अलौकिक छटासे
 कनक रंग लेकर गुलाबी घटासे
 कभी सिर बढ़ाकर तरंगें उठाती
 कभी बुदबुदा करके है मुस्कराती
 कभी बुलबुले कोटि पथमें बनाती
 उन्हें तोड़कर फिर प्रभाराग गाती
 सगुन रंग यों ही दिखाती है सरयू
 अगम भेद हरिका सुनाती है सरयू

× × ×

सुवह हो चुकी है सुभग ग्रंथुमाली
 सजे मुख मृदुलपर लड़कपनकी लाली
 पहन ज्योतिका वस्त्र सारे वदनमें
 विहँसकर उठे शून्य नीले गगनमें
 सरस मुसकराहटसे जगको जिलाया
 वधे दल प्रसूनोंको पलमें खिलाया।

नदी कूलपर एक घरमें थकेली
 खिली थी परम सुन्दरी एक नवेली
 किसीका न आना, किसीका न जाना
 लतावृक्ष केवल वह घर था पुराना
 पखेरु वहाँ आके गाते थे दिन-भर
 अमरवृन्द भन-भन मचाते थे दिन-भर
 प्रकृतिही ही गोदीमें रंभा पली थी
 उसीकी प्रशाखाकी अद्भुत कली थी।"

पता नहीं रघुवीर बाबू हमें उस 'अद्भुत कली'का दर्शन कब करायेंगे।

पं० जवाहरलाल और समाजवाद

प्रो० प्रेमनारायण माथुर, एम० ए०, बी० कॉम

संसारकी वर्तमान आर्थिक और सामाजिक व्यवस्थाके प्रति लोगोंकी श्रद्धा प्रतिदिन कम होती जा रही है। वह व्यवस्था, जिसका एकमात्र उद्देश्य असंख्य जनसंख्याका आर्थिक शोषण कर मुट्ठी-भर लोगोंके विलासितापूर्ण जीवनको बनाये रखना हो, यदि संसारमें घृणाकी दृष्टिसे देखी जाय, तो आश्चर्य ही क्या है ? और यही कारण है कि अनेक देशोंमें आज इस बातका प्रयत्न किया जा रहा है कि किस प्रकार इस वर्तमान अमानुषिक आर्थिक संगठनका अन्त किया जाय। इसी प्रेरणासे प्रेरित होकर हमारे राष्ट्रपति पं० जवाहरलालने अपने लखनऊ कांग्रेसके सभापतिकी हैसियतसे दिये गये भाषणमें यह स्पष्ट कह दिया कि भारतवर्षको भी यदि सर्वांगीण उन्नति करना है, तो आधुनिक व्यवस्थाका अन्त कर समाजवादकी स्थापना करनी होगी।

जवाहरलालजीकी इस घोषणाने देशमें एक बड़ी भारी खलबली-सी उत्पन्न कर दी है। नरम-दलके नेताओंको छोड़ दिया जाय, कांग्रेसके ही कई नेताओंने पंडितजीके इन विचारोंसे अपना मतभेद प्रकट करते हुए कहा है कि इस समय समाजवादके प्रश्नको उठाना असामयिक और देशके लिए हानिकारक है। हमारा भावी आर्थिक संगठन समाजवादके सिद्धान्तोंपर ही हो, अथवा अन्य किसीपर, इस प्रश्नको न लेते हुए, हम केवल इस सम्बन्धमें विचार करेंगे कि समाजवादका प्रचार इस समय असामयिक और हानिकारक क्यों है ?

सबसे पहली दलील इस विषयमें यह पेश की जाती है कि जब समाजवादकी स्थापना 'स्वराज्य'के पहले नहीं हो सकती, जैसा कि पंडितजी स्वयं भी स्वीकार करते हैं, तो फिर इस समय इस प्रश्नको उठाकर कांग्रेसके अन्दर तथा बाहर नेताओंमें अधिक मतभेद बढ़ानेसे लाभ ? यदि पहला प्रश्न 'स्वराज्य' प्राप्त करनेका है, तो आवश्यक यह है कि इस कार्यमें जितने लोगोंका सहयोग प्राप्त किया जा सके किया जाय,

चाहे वे कांग्रेसवादी हों अथवा नहीं। 'समाजवाद' का प्रश्न उठाकर इन लोगोंके सहयोगसे वंचित होना राजनैतिक सूझ नहीं कही जा सकती। अब हमको देखना यह है कि वास्तवमें बात क्या है।

किसी भी आन्दोलनकी सफलताके लिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि उसका उद्देश्य क्या है, उसका लक्ष्य क्या है, यह बात आन्दोलनके नायकगण जनताको भली प्रकारसे स्पष्ट कर दें। लक्ष्य जितना उच्च होगा, उतना ही जनता आन्दोलनका साथ देगी, और उतनी ही शीघ्र सफलता भी प्राप्त होगी। लक्ष्यको स्पष्ट कर देनेसे आन्दोलनके नेताओंको भी अपना कर्तव्य-मार्ग स्पष्ट दीखेगा और वे अन्य गौण प्रश्नोंमें पड़कर अपने उद्देश्य-प्राप्तिमें किसी प्रकारकी बाधा उपस्थित नहीं करेंगे।

इसी दृष्टिकोणसे अब हमें अपने देशके आन्दोलनकी ओर तनिक अपना ध्यान आकर्षित करना चाहिए। कांग्रेसने यह तो विलकुल साफ़ शब्दोंमें घोषणा कर ही दी है कि उसका उद्देश्य पूर्ण स्वाधीनता है तथा 'स्वाधीनता' शब्दसे उसका तात्पर्य केवल राजनैतिक स्वतन्त्रता ही नहीं, वरन् आर्थिक स्वतन्त्रता भी है। फिर भी कांग्रेसने एक संस्थाकी हैसियतसे अभी तक देशके सामने ऐसी कोई आर्थिक योजना नहीं रखी है, जिसका उद्देश्य वर्तमान आर्थिक संगठनका अन्त कर किसी नवीन व्यवस्थाका स्थापित करना हो और जिसके फल-स्वरूप बड़े-बड़े पूँजीपतियों द्वारा जो आज साधारण जनताका आर्थिक शोषण हो रहा है, उसको रोका जाय तथा पूँजीवादकी अन्य बुराइयोंसे (जैसे धनका विषम बँटवारा और भयंकर बेकारी) देशको छुटकारा मिल सके। यहाँ यह बता देना आवश्यक है कि कराची कांग्रेसका इस विषयका प्रस्ताव किसी विशेष व्यवस्थाकी ओर संकेत नहीं करता। उसका उद्देश्य तो वर्तमान आर्थिक संगठनके अन्तर्गत ही कुछ ऐसे परिवर्तन करना है, जिससे देशकी आर्थिक दशा सुधर सके।

इससे हम इस परिणामपर पहुँचते हैं कि यद्यपि कांग्रेसने अपना राजनैतिक ध्येय बिलकुल खुले शब्दोंमें देशके समक्ष रख दिया है; पर वह किस आर्थिक व्यवस्थाके पक्षमें है, स्वराज्यके पश्चात् वह किस प्रकारकी आर्थिक योजना देशके सामने रखेगी—इन प्रश्नोंके विषयमें अभी तक उसने यथेष्ट ध्यान ही नहीं दिया है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि अब वह समय आ गया है, जब कि कांग्रेसके लिए एक राजनैतिक संस्था ही न रहकर एक आर्थिक संस्थाका रूप धारण कर लेना और अपना आर्थिक लक्ष्य निर्धारित कर लेना अत्यन्त आवश्यक है। आज हमारे देशके सामने सबसे बड़ा सवाल रोटीका है, न कि इस बातका कि कौन सम्प्रदायके लोगोंको असेम्बलीमें कितनी जगहें मिलें। हमारे देशके किसान और मजदूर, जो सुबहसे शाम तक अपना खून-पसीना एक करके भी जीवनकी ज़रूरतोंको पूरी करनेमें असमर्थ हैं, इस बातकी चिन्ता नहीं करते कि उनके राजनैतिक अधिकार क्या हों। उन्हें तो परवा है केवल इस बातकी कि उनके रोटीका प्रश्न किस प्रकार हल किया जा सकता है। यदि कांग्रेस अपने उद्देश्य - प्राप्ति के लिए देशके किसानों और मजदूरोंका सहयोग आवश्यक समझती है, तो उसके लिए यह अनिवार्य हो जाता है कि वह एक ऐसी आर्थिक योजनाको अपनावे, जिसमें किसानों और मजदूरोंकी वर्तमान आर्थिक दुर्दशाके अन्त करनेकी पूर्ण शक्ति हो तथा जनताको इस बातका विश्वास दिलावे कि राजनैतिक स्वतन्त्रता प्राप्त करनेके उपरान्त उस आर्थिक योजनाको कार्यरूपमें परिणत करना वह अपना सबसे पहला कर्तव्य समझेगी। तभी कांग्रेस पूर्णरूपसे एक सार्वजनिक संस्था हो सकेगी और उसकी शक्तिमें नवीन संचार होगा। तभी जनसाधारणका ध्यान उन अनेक साम्प्रदायिक तथा अन्य गौण बातोंकी ओरसे हटकर एक ओर केन्द्रित हो सकेगा। उस समय, जब कि प्रत्येक मनुष्यको यह विश्वास हो जायगा कि देशके भावी आर्थिक संगठनमें सबके लिए पूर्ण आर्थिक

स्वतन्त्रता होगी, वह उन लोगोंके चंगुलमें कभी भी नहीं फँसेगा, जो आज अपनी-अपनी जातिके नामपर अपने निजी स्वार्थको पूरा करना चाहते हैं। तभी हम देखेंगे कि देशमें 'साम्प्रदायिक निर्णय', 'सरकारी नौकरियाँ', 'असेम्बली और कौन्सिलकी बैठकों' तथा अन्य ऐसे ही प्रश्नोंपर जो आज महत्वपूर्ण ढगड़े खड़े कर दिये जाते हैं, उनका सर्वथा अभाव होगा और इन प्रश्नोंके सम्बन्धमें हलचल मचानेवाले लोगोंको जनतासे कोई प्रोत्साहन नहीं मिलेगा, क्योंकि फिर जनता इनकी निरर्थकताको समझ जायगी। सारांश यह है कि कांग्रेसको अपना ध्येय निर्धारित करना अत्यन्त आवश्यक है। चूँकि पं० जवाहरलाल स्वयं समाजवादी हैं, और उनके अध्ययन तथा अनुभवने उनको इस परिणामपर पहुँचाया है कि भारतवर्षके लिए समाजवाद ही आवश्यक है, वे आज समाजवादकी आवश्यकताको जनताको बतलाना चाहते हैं। वे चाहते हैं कि कांग्रेस भी उनकी इस आर्थिक योजनाको स्वीकार करे। इस दृष्टिसे पं० नेहरूका समाजवादका प्रचार असामयिक नहीं कहा जा सकता।

दूसरा आक्षेप पंडितजीपर यह किया जाता है कि समाजवादके प्रचार करनेसे बहुतसे लोग, जो कांग्रेसके पूर्ण स्वाधीनताके उद्देश्यसे सहमत हैं; परन्तु जो समाजवादके सर्वथा विरुद्ध हैं, वे भी कांग्रेसके विरुद्ध हो जायेंगे और उनसे कांग्रेसको अभी तक जो धन इत्यादिकी सहायता मिलती रही है, उससे भविष्यमें वंचित होना पड़ेगा। इन लोगोंका विश्वास है कि इस प्रकार कांग्रेसके कार्यमें शिथिलता आ जायगी और उसकी शक्तिका हास होगा। यह स्थिति देशके लिए हानिकारक है। किन्तु ध्यान रहे, यदि वे लोग, जो समाजवादके घोर विरोधी हैं, इसलिए नहीं कि वे समाजवादको देशके लिए उपयोगी नहीं समझते और उसके स्थानपर अन्य कोई आर्थिक योजनाकी स्थापना करना चाहते हैं; परन्तु इसलिए कि वे वर्तमान संगठनमें किसी तरहके परिवर्तनको पसन्द ही नहीं करते और जो अभी तक किसी कारणवश कांग्रेसको

आर्थिक सहायता पहुँचाते रहे हैं, अब कांग्रेससे अपना सम्बन्ध-विच्छेद कर लेते हैं, तो उनके कारण यह सोचना कि कांग्रेसके कार्यमें शिथिलता आ जायगी, या उसकी शक्ति क्षीण हो जायगी, महान भूल होगी। यदि मान भी लिया जाय कि कांग्रेसको थोड़ी-सी आर्थिक हानिका सामना करना पड़ेगा, फिर भी उसमें एक सर्वसाधारणकी संस्था होनेके कारण जिस साहस, लगन और त्यागका संचार होगा, वह उस आर्थिक लाभसे कहीं अधिक वाञ्छनीय है, जो उसको उन पूँजीपतियोंके सहयोगसे प्राप्त हो सकेगा, जो वर्तमान आर्थिक संगठनके ही पक्षमें हैं। संसारके इतिहासके पन्ने उलट जाइये। मानव-समाजमें किसी भी प्रकारकी क्रान्तिकी विजय कभी धनिकोंके धनके बलपर नहीं हुई। उसके लिए तो आवश्यकता है उच्च और पवित्र उद्देश्यकी, गरीबोंकी गरीबीकी, दुःखियोंके आर्तनादकी और पीड़ितोंकी आह्वी—उनकी, जिनमें अपने उद्देश्यके लिए लगन है और उसके लिए मर-मिटनेकी प्रबल इच्छा। इस दृष्टिसे भी समाजवादका प्रचार हानिकारक नहीं कहा जा सकता।

अब हमने यह तो देख लिया कि पंडितजीका समाजवादका प्रचार देशके लिए असामयिक और हानिकारक नहीं, वरन् आवश्यक और लाभदायक है। इसके पहले कि लेखक इन पंक्तियोंको समाप्त करे, संक्षेपमें हमें उस दलीलपर भी विचार कर लेना चाहिए, जो प्रायः उन लोगोंकी ओरसे पंडितजीके खिलाफ पेश की जाती है, जो स्वयं कांग्रेसवादी नहीं हैं। कहा यह जाता है कि जब कांग्रेस एक समाजवादी संस्था नहीं है, तो पंडितजीको उसका सभापति होते हुए भी समाजवादका प्रचार करनेका कोई हक नहीं। यह ग़ैर-कानूनी है। यह दलील बड़ी हास्यास्पद है। पहले तो यही बात समझमें नहीं आती कि इस विषयमें पंडितजीके सभापति होनेपर जोर देनेका क्या तात्पर्य है? यदि समाजवादी विचार रखना और उसका प्रचार करना कांग्रेसके विधानके विरुद्ध है, तो यह बन्धन तो सभापतिके लिए उतना ही लागू है, जितना कि एक

सदस्यके लिए। अब प्रश्न यह है कि क्या वास्तवमें समाजवादका प्रचार करना कांग्रेसके विधानके विरुद्ध है? जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है, कांग्रेस केवल एक राजनैतिक संस्था है। उसके सदस्योंके लिए केवल एक ही बात आवश्यक है कि वे पूर्ण स्वतन्त्रता अपना राजनैतिक ध्येय मानें। इसके अतिरिक्त कांग्रेसके सदस्य अपने धार्मिक तथा आर्थिक विचार कैसे रखें, इसके सम्बन्धमें कोई बन्धन नहीं है। कांग्रेसके भाग्यविधाता महात्मा गांधी यदि कांग्रेसमें रहकर भी कांग्रेसके प्लेटफार्मसे अपने आर्थिक सिद्धान्तोंका प्रचार कर सके, तो इसमें किसीको क्या आपत्ति हो सकती है कि पं० जवाहरलाल ऐसा करें? यह प्रश्न सर्वथा भिन्न है कि जहाँ महात्मा गांधीके विचारोंने अन्य कांग्रेस-नेताओंके विचारोंसे पूर्णतया मेल खाया, वहाँ जवाहरलालजीके क्रान्तिकारी सिद्धान्त लोगोंके जमे-जमाये पीढ़ियोंके विचारोंसे संघर्ष खाते हैं; परन्तु उनको अपने विचार प्रकट करनेका पूर्ण अधिकार है। कांग्रेसके सभापति होनेसे और समाजवादसे तो कोई सम्बन्ध ही नहीं है। यदि कांग्रेसका सभापति हिन्दू हो सकता है, मुसलमान हो सकता है, ईसाई हो सकता है और एक विदेशी भी हो सकता है, क्योंकि वहाँ किसी प्रकारका धर्म-बन्धन नहीं, तो ध्यान रहे कि कांग्रेसका सभापति केवल गांधीवादी ही नहीं, समाजवादी और अराजकताके सिद्धान्तोंमें विश्वास करनेवाला भी हो सकता है। जिस दिन कांग्रेस अपना आर्थिक ध्येय निश्चित कर लेगी, उस दिन कांग्रेसके सदस्यके लिए उस ध्येयमें विश्वास करना लाजमी हो जायगा। तब तक कांग्रेसके सदस्योंमें आर्थिक सिद्धान्तोंके सम्बन्धमें पूर्ण स्वतन्त्रता है। जैसा कि ऊपर बताया गया है, आज कांग्रेसको अपना आर्थिक ध्येय निर्धारित कर लेना अत्यन्त आवश्यक है। पंडितजीने समाजवादके प्रश्नको खड़ाकर देशका ध्यान एक ऐसे प्रश्नकी ओर आकर्षित किया है, जिसका शंभ्र निपटारा हो जाना अत्यन्त आवश्यक है।

प्रायश्चित्त

श्रीमती होमवती

“ॐ.....ह्रै.....ॐ ।”

“अरे, क्या है भाभी ? भौंरा.....?”—वह ठहाका मारकर हँस पड़ा और बोला—“सतयुगकी बात तो राम जाने, परन्तु आजकल कलियुग है, तभी पशु-पक्षियोंकी कौन कहे, कीड़े-मकोड़े तक सौन्दर्योपासक दीख पड़ते हैं। इन ढीठ भौंरोंको ही देख लो न ? हाँ भई.....अच्छी चीज़को सभी पसन्द करते हैं। लेकिन स्त्रियोंमें जितनी मनमोहक शक्ति होती है, उतनी वीरता क्यों नहीं होती ? वे जहाँ सौन्दर्य पाकर गर्वसे फूल उठती हैं और बेचारे पुरुषोंको मनमाना नाच नचाती हैं, वहाँ कोई साधारण-सी विपत्ति आ जानेपर हाथ-पैर ढीले कर देती हैं। फिर आखिर पुरुषोंको ही सँभालना पड़ता है। इसीलिए तो बेचारा दुष्यन्त तक चक्करमें फँस गया था। गया था शिकार खेलने, और अपना ही..... लो भाग गया वह ।” — कहकर प्रफुल्लित फिर हँस पड़ा।

लज्जाके कारण गौराका मुँह लाल हो उठा। तनिक मुसकाकर उसने अपना सर घुटनोंमें डाल दिया। तबेपर पड़ा हुआ चीला जल-भुनकर खाक हो गया।

खुली हुई छतके ऊपर इकदरेमें बैठी गौरा चीले बना रही थी। पतिदेव दफ़्तरसे आते ही खा-पीकर किसी आवश्यक कार्यसे बाहर चले गये। दीवालीकी छुट्टियोंमें आया हुआ देवर बड़े चावसे भाभीके बनाये चीले खा रहा था कि बीचमें एक कम्बल भौंरेने आकर बातचीतका रुख ही बदल दिया। वह सुना रहा था अपने होस्टल-जीवनकी जटिलताएँ—“महागज खाना किसी कामका नहीं बनाता। अम्माने घर आनेको लिखा था ; पर मैं तो इन पतले-पतले चीलोंका स्वप्न देख रहा था—वहाँ जाकर मन न लगता। हमारे गाँवमें न कोई क्लब है, न लाइब्रेरी, फिर अम्मासे बातें करके कितना समय बिताता ?” इत्यादि।

गौराके पति शिवनाथ बी० ए० जजीमें किसी जगहपर नौकर थे। वेतन ६०) से आरम्भ हुआ था ; परन्तु इस समय तीन वर्षके अन्दर ही उनके ७५) हो गये हैं। और लगभग तीन ही वर्ष विवाहको बीते होंगे। सबने कहा—“बहू बड़ी भाग्यवान आई है।” घरमें मा और छोटी बहनके अतिरिक्त एक छोटा भाई है, जो आगरा-यूनिवर्सिटीमें एफ० ए० क्लासका विद्यार्थी है। माने घर-गृहस्थीको उजाड़कर सयानी कन्याको लेकर परदेशमें पुत्रके साथ रहना स्वीकार नहीं किया। गौने-चालेके बाद थोड़े दिन बहूको साथ रखकर घर-गृहस्थीकी थोड़ी-बहुत शिक्षा वह दे ही चुकी थीं। वैसे भी आजकलकी लड़कियोंमें इतनी फूहड़ तो कोई-कोई ही होती होगी, जो अपनी गृ०स्थी न चला सकें, इसीसे उन्हें अपनी पुत्रवधूपर पूर्ण विश्वास था कि वह कम-से-कम भर पेट भोजन तो बनाकर खिला ही सकेगी। घरपर गाय, भैंस और कुछ ज़मीन भी थी। उनके लिए वह सब उजाड़ देना क्या सम्भव था ? फिर पुत्र भी अपने पुस्तैनी मकानमें सदाके लिए ताला डाल देना न चाहता था। वैसे प्रायः महीने दो महीनेके लिए मा आ भी जाती थीं। शिवनाथ बाबू पत्नीपर तन-मनसे मुग्ध थे। ऐसी रूपवती और चतुर गृहिणी क्या यों ही मिल सकती है ? यह सब उनके पिछले पुण्यका प्रताप है। वे ऐसा ही समझते थे। वे स्वयं यह जानते थे कि वे अपनी पत्नीको कितना प्यार करते हैं ; पर उस प्यारको प्रकट करनेकी सामर्थ्य उनमें न थी। अपनी भोली और सरल प्रकृतिके कारण उन्होंने कभी यह समझनेकी भी कोशिश नहीं की कि उनकी पत्नी प्रतिदानमें उन्हें कितना स्नेह देती है, और न कभी उन्हें कुछ कहने या पूछनेकी आवश्यकता ही जान पड़ी। गौराके व्यवहारसे वे पूर्ण सन्तुष्ट थे। स्नेहमयी, सेवामयी,

चतुर, सहनशील और उदार—सभीका कुछ तो थी वह । ऐसा कोई गुण शेष न जान पड़ता था, जो गौरामें न पाया जाता हो ।

पति किस समय क्या चीज और कितनी खाना पसन्द करते हैं, यह उसे सदा याद रहता था । उनके किस समय पहननेके कपड़े कैसे हैं, साफ हैं या मैले, यह उसकी दृष्टिमें तुला रहता था । किस कमीजमें बटन हैं या नहीं, इसका ध्यान रहता ही था । धोबीके धुले कपड़ोंको यत्नसे रखना और मैले कपड़ोंको धुलवाना—इसमें कभी भूल न होती थी । घरमें कौन चीज कब समाप्त हुई तथा कौन लायेगा, इसकी चिन्ता गौगको ही करनी होती थी । यहाँ तक कि पतिके लिए कपड़े बनाने और जूते खरीदने तकका उत्तरदायित्व उसने आप ही अपने माथे ले लिया था । नौकरको तनख्वाह देना, धोबीकी धुलाई जोड़ना तथा महरीके नाग्रे काटने तकका हिसाब गौराको ही सँभालना पड़ता था । पुराने कपड़ोंको सीने या उनपर रफू करनेमें उसने कभी आलस नहीं किया । शिवनाथका काम था हर मास वेतन लाकर पत्नीके हाथपर धर देना और निश्चिन्त हो जाना । आरम्भके दिनोंमें वे केवल खर्च-भरके लिए नित्यप्रति कुछ दे दिया करते थे, बाकी अपने बक्समें बन्द कर जाते थे ; परन्तु धीरे-धीरे गौरा उनके इतनी निकट पहुँच गई कि वे अपनेपर भी उतना विश्वास नहीं करते थे, जितना गौरापर । वह नारी-सुलभ ईर्ष्यासे बहुत दूर थी, इसका प्रभाव भी शिवनाथपर कम न था । सास, ननद तथा देवरको कभी उसने अपनेसे भिन्न नहीं माना । समस्त अधिकार पानेपर उसने कभी दुःखसे और कभी प्रकट रूपसे सदा सबकी सहायता की । ससुर नहीं हैं, तो सासका क्या मूल्य ? यह उसने कभी नहीं सोचा । उन लोगोंकी प्रसन्नतामें वह प्रसन्न थी और दुःखमें प्राण भी दे देनेको तत्पर रहती थी । यही कारण था कि पतिके अतिरिक्त सभीपर उसके व्यक्तित्वका यथेष्ट प्रभाव था । यद्यपि वह स्वयं प्रसन्न रहकर सबको ही प्रसन्न रखनेकी

भरसक चेष्टा करती ; पर फिर भी कभी-कभी लाख यत्न करनेपर भी वह प्रसन्न न हो पाती । इसका कारण था पतिकी असीम सरलता । चंचल और भावुक प्रकृतिकी होनेके कारण वह कभी-कभी इस वातावरणसे ऊब उठती थी । उसका मन कुछ और भी चाहता था ; पर पा नहीं सकती थी । उस दशामें वह अपनेको सबकी दृष्टिसे छिपाना चाहती थी । सास समझती, आज बहू रूठ गई होगी । पति समझते, कुछ तबियत खराब होगी । ननद अनुमान लगा लेती, भैयासे झगड़ा हो गया होगा । पर प्रफुल्ल ही एक ऐसा था, जो कुछ-कुछ ठीक बात समझ सकता था । वह सोचता—भैया मेरे हैं गम्भीर समुद्र और भाभी हैं चुलबुली लहर, यही कारण होगा । और फिर वह अपनी भावुकतासे गौराकी चंचलताको नापनेका यत्न करता । कभी सफल भी हो जाता और कभी असफल भी । वह उसे गुदगुदा देता, या नाकमें बत्ती ठूँसकर पड़ापड़ छींक ही दिला डालता, अथवा कुछ गुनगुनाकर गाने ही लगता । इसीसे उसकी भाभी प्रसन्न हो जाती और पतिकी उदासीनता और विरक्तिका भार बहुत-कुछ हल्का हो जाता । कभी वह बाजा लेकर बैठ जाती और प्रफुल्ल अनसुनी करके सब सुनता रहता, फिर कह उठता—“भाभी, तुम्हारी आवाज़ कितनी लोचदार है, गला कैसा साफ है ! बहुत अच्छा गा लेती हो ।”

गौरा सुनती, प्रसन्न होनेकी चेष्टा भी करती ; पर प्रसन्न न हो पाती । वह सोचती—“वे...वे तो कभी मेरे गानेकी तारीफ़ नहीं करते । शायद अब तक अच्छी तरह सुना ही न हो ।” जब कभी वे आ जाते और गौरा गाती-बजाती होती, तो वह झटसे बाजा सरका देती । लेकिन कभी उन्होंने नहीं टोका—कभी सुननेकी इच्छा प्रकट नहीं की । इसीसे गौरा जानती है कि उसके हृदयमें पतिकी ओरसे एक झिझक, एक प्रकारका संकोच-सा उत्पन्न होने लगा है ; पर वह यह नहीं जानती कि वह दूर कैसे हो ।

वह कुछ दिनोंसे देवर प्रफुल्लकी तुलना पतिके स्वभावसे करना सीख गई है। इसमें उसे खुशी नहीं, बल्कि दुःख ही होता है। उसने पहले कई बार पतिको अपने अनुकूल बनाना चाहा था। उसने उन्हें गुदगुदाना चाहा, उनकी आँखें चुपचाप पीछेसे आकर मूँद लेनी चाही, पहले कोई चीज़ उनसे कुतरवाकर, स्वयं कुतरकर फिर उनके मुँहमें ज्वरन ठूस देनी चाही; पर हाथ रुक गया, साहस न हुआ, क्योंकि ऐसा छिछोरापन उन्हें पसन्द न हुआ तब ?

कई सावन आये और चले गये। वह जबसे नौकरीपर आई, झूली ही नहीं—अकेली क्या झूलती ? पास-पड़ोसमें भी कोई ऐसी न थी, जिसके साथ झूल लेती। हाँ, एक बार प्रफुल्लने उसे तथा अपने भाईको भी खींचतानकर बैठा लिया और स्वयं लगा पेंग बढ़ाने, तब वह अवश्य झूली थी—कुछ खुश भी हुई थी। उसने कई बार पतिकी ओर देखा—वे खुश तो थे; पर मानो उसीको खुश करनेके लिए ही। फिर वह नहीं झूली। उसके बाद झूलेपर बैठी ही नहीं और न किसीने कभी कहा ही था। प्रफुल्ल होता, तो शायद कहता भी; पर वह वरसातमें फिर न आ सका। ऐसे अवसरोंपर इच्छा न होते हुए भी अब उसे प्रफुल्लकी याद आ ही जाती। सिनेमा देखने, फोटो खिचाने अथवा सैर-सपाटेकी कभी सूझती, तो वह शिवनाथसे कहती—“चलो, आज चलें।”

वे कह देते—“गर्मी बहुत है—भीड़ होगी। अच्छा, खैर चलो।” इसीसे उसका मन बुझ जाता, या तो जाती ही न थी या जाती तो मन मारकर। जब शिवनाथ कभी दो-एक दिनके लिए कहीं जाते, तो गौरा रो-रोकर दिन काटती। घड़ियाँ गिनती रहती और दरवाज़ेपर कान लगाये रहती। जब शिवनाथ आ जाते, तब उनकी सेवा-शुश्रूषामें लग जाती। उस समय उसे ऐसा जान पड़ता, मानो खोया हुआ धन मिल गया। पर जब वह सोचती—‘हैण्ड वेग खोलूँ, देखूँ क्या-क्या लाये हैं ? शायद मेरे लिए लाई हुई

कोई चीज़ बक्समें बन्द पड़ी हो।’ यह सोचकर सब-कुछ ढूँढ़ डालनेपर भी जब अपने योग्य उसे कोई चीज़ न दीखती, तो मन न-जाने कैसा होने लगता। यह वह जानती थी कि उसके पतिने सभी अधिकार उसे दे डाला है; परन्तु क्या इतनेसे ही वह मनको समझा ले ? क्या इसीपर हृदयकी समस्त अभिलाषाएँ केन्द्रित हैं ? प्रफुल्ल, मेरे ही पैसोंसे सही, और कुछ नहीं, तो कोई पुस्तक ही ले आता है। उस बार चौड़ी रेशमी पाड़की साड़ी ले आया था। कभी दो क्लिपकी जोड़ी या कभी सेंदुरदानी ही ले आता है। यह सोचते ही वह तथा उसका मन विचलित हो जाता; परन्तु तुरन्त संभाल लेती।

कुछ दिन इसी प्रकार बीत गये। हृदयमें रात-दिन होनेवाले द्वन्द्वको न गौराने ही जाना और न शिवनाथने ही पहचाना। अब वह भी गम्भीर हो चली, जैसे पुरखिन हो गई हो। घरके काम तथा शिवनाथकी सेवासे जो समय बचता, उसे वह नई-नई पुस्तकें पढ़कर काटती। पुस्तक लाकर शिवनाथ ही देते थे—जब वह कहती—“मन लगानेके लिए ला दिया करो।” कभी-कभी कोई अंगरेज़ीका नावेल वे स्वयं भी उसे पढ़कर सुना दिया करते थे; पर नित्य तो वह स्वयं ही हिन्दीकी पुस्तकें मँगाकर समय बिता देती। पहले अकेलेमें ही पढ़ती, अब पतिके घरपर होते हुए भी पढ़ती रहती। वे या तो स्वयं कुछ पढ़ते या गौरासे ही ज़ोर-ज़ोरसे पढ़नेको कहते या फिर सो जाते। ऐसे ही कुछ दिन बीत जानेपर अबकी छुट्टियोंमें जबसे प्रफुल्ल आया है, तबसे शिवनाथका भोला मन और सोई हुई भावुकता कुछ जाग-सी गई है। वह अनुमान करने लगे हैं कि गौराको समस्त अधिकारोंके साथ कुछ और भी चाहिए।

प्रफुल्लके सामने गौरा कुछ अधिक चंचल, कुछ अधिक प्रसन्न और कुछ अधिक फुर्तीली हो जाती है; पर उसके चले जानेपर मानो वह गौरा ही नहीं रहती। कौन जाने, इसीसे प्रेरित होकर वे भी देवर-भाभीके

मनोविनोदमें योग देनेका अभ्यास-सा करने लगे हैं ; लेकिन रास्ता न पाकर उनका प्रौढ़ मन टकराकर लौट आता है । उन्हें देखकर वे दोनों ही गम्भीर बन जाते हैं । साथ ही गौरा कुछ बची-बची-सी रहने लगी है, और शायद प्रफुल्ल भी । तब गौरा उनकी गम्भीरताकी अवहेलना-सी करती जान पड़ती थी ; पर अब वह उन्हें मानो गम्भीर रहनेके लिए बाध्य कर देती है । तब तो कभी-कभी, केवल गौराको प्रसन्न करनेके लिए ही सही, वे कुछ हँसनेकी चेष्टा भी करते थे ; पर अब यह करके भी वैसा कोई अवसर नहीं पाते ।

अबकी दीवालीकी छुट्टियोंमें प्रफुल्लके आनेपर—वे उन दोनोंको काफी समय देने लगे हैं । दिन-रत दफ्तरमें रहते हैं, शामको खाना खाकर तुरन्त चले जाते हैं और कभी-कभी छुट्टीके दिन भी काममें ही लगे रहते हैं । गौरा समवयस्क देवके सहयोगमें मनको बहुत-कुछ सँभाल लेती है ; पर न-जाने क्यों, फिर भी मनकी कली वैसी नहीं खिल पाती । पहलेसे भी अधिक उसके हृदयमें उठनेवाली एक टीस-सी उसे विकल कर जाती है ।

वह प्रफुल्लसे कुछ वचना भी चाहने लगी है ; पर बच नहीं पाती । छुट्टियोंमें उसके आनेमें कोई दिलचस्पी नहीं लेना चाहती है ; पर उसके आनेसे खुश और उसके चले जानेसे न-जाने क्यों उदास हो जाती है । मनको सँभालना उसके लिए अब कितना कठिन होता जा रहा है, यह वह खूब जानती है ; पर कुछ कर नहीं पाती ।

मनसे हार जाना कितनी दुखद बात है,—यह गौरा क्या, सभी जानते होंगे ; किन्तु वह करे तो क्या करे, यही नहीं समझ पाती ।

[२]

आकाशमें अँधेरा छा रहा था । ठंडी हवाके तीव्र झोंके शरीरकी हड्डियोंमें जाकर तीर-से लग रहे थे । पूसका महीना था । क्रिसमसकी छुट्टियोंमें प्रफुल्ल भी

आया हुआ था और गौराकी सास-ननद तथा शिवनाथके मामा इत्यादि भी आये हुए थे । गौरा दिन-भर काममें इतनी व्यस्त रही कि थोड़ी देरके लिए भी शान्तिसे साँस लेनेका अवसर नहीं मिला ।

यद्यपि अभी दस ही बजे थे ; पर ऐसा जान पड़ता था, मानो आधी रात बीत गई । छतपर चाँदनी बिछ रही थी । ऐसी कड़कड़ाती सर्दीमें सब घरके लोग सोते थे नीचे ही ; परन्तु एक प्रफुल्ल ही ऐसा था, जो हठपूर्वक ऊपरके कमरेमें अकेला ही सोता था । माँने समझाया, मामा और भाईने भी बहुत कहा, गौराने भी विरोध किया ; पर वह न माना और वहीं सोया । माँने झुँझलाकर कह दिया—“अबकी सहालगमें नहीं, तो अगले वर्ष इसका विवाह ज़रूर कर दूँगी । न-जाने कैसा रहता है । अकेलापन इसे इतना क्यों भाता है ?”

सब खा-पीकर निपट चुके ; पर आज प्रफुल्लने खाना भी नहीं खाया । सासने गौरासे कहा—“बहू, न हो, थोड़ा दूध ही उसे दे आओ ।”

“मैं जाऊँ उन्हें दूध देने ? ऊपर अकेली ?” उसने मन-ही-मन कुछ सोचा, कुछ फिककी, किन्तु फिर भी दूधका गिलास लेकर ऊपर चली ही गई ।

उसने कहा—“क्या सो गये ?”

“नहीं तो । क्यों, क्या है ? कैसे कह किया, कहिये, क्या आज्ञा है ?”

“लो, उठो दूध पी लो ।”

“नहीं, आज मन नहीं करता ।”

“वाह, यह भी कोई मन करनेकी बात है ? सुबहसे कुछ खाया भी नहीं । जी तो अच्छा है न ?”

—कहकर युवतीने उसकी रज़ाई उवाड़कर माथा छूकर देखा—तप रहा था । गौराके कर-स्पर्शसे प्रफुल्लके शरीरमें रोमांच हो आया । युवकने कसकर उसका हाथ पकड़ा और बरबस खींचकर.....अधरोंपर धर लिया । वह काँप उठी ; दूधका गिलास हाथसे छूटकर नीचे गिर पड़ा । शिवनाथने पीछेसे कड़ककर कहा—“यह

सब क्या देख रहा हूँ, गौरा ! बहुत दिनसे जिस बातका कुछ-कुछ अनुमान कर रहा था, वही सच जान पड़ती है ।”

युवतीके मानो प्राण ही निकल गये । वह भयाकुल दृष्टिसे चारों ओर देखती हुई एक ओर बचकर खड़ी हो गई । युवकके मुँहपर मानो किसीने स्याही पोत दी । शिवनाथने बिना और कुछ कहे ही प्रफुल्लके दोनों कान खींचकर दो धूँसे लगा ही तो दिये । गौराने विरोध करना चाहा, कुछ साहस करके बोलना चाहा—पतिका हाथ पकड़ लेनेकी तो अब उसमें सामर्थ्य ही नहीं रह गई थी ; पर शिवनाथने पुनः लाल-लाल आँखोंसे उसे घूरते हुए कहा—“तुम्हें छोड़ दिया है, क्या इसीलिए ? याद रखना, अगर एक क्रदम भी आगे बढ़ाया, तो ठोक दूँगा ।” गौरा मानो मूर्छित होकर गिरनेवाली ही थी । शिवनाथ तेजीसे नीचे उतर गये । युवतीने आँखोंमें आँसू भरकर कहा—“तुम मेरा सर्वनाश करनेपर क्यों तुल गये, प्रफुल्ल ? देखते नहीं, मैं हिन्दू-समाजकी शक्तिहीन नारी हूँ । मुझे तो कहीं मरनेके लिए भी जगह न मिलेगी ।”

प्रफुल्लने देखा, गौराकी दृष्टिमें कितना भय और कितना त्रास भरा हुआ है । उसने कोई उत्तर नहीं दिया । वह भी चुपचाप अपराधीकी नाईं नीचे चला गया और अगले दिन, बिना छुट्टी समाप्त हुए ही, आगराके लिए रवाना हो गया । गौराके हृदयमें घोर ग्लानिसे उत्पन्न पीड़ाने उसे मृतकके समान बना दिया । ऐसा भयानक काण्ड, जिसकी कल्पनासे ही मन घबरा उठे, स्वयं उसीके कारण हो गया ; पर मरनेके लिए भी तो ठौर नहीं । मर जाती तो ही अच्छा होता ।

अगले दिन आनेवाली लांछनाओं और विपत्तियोंकी कल्पनामें ही वह सारी रात पल-भरके लिए भी न सोई और न शायद शिवनाथ ही सो सके । एक दूसरेसे परस्पर बोले भी नहीं । गौरामें तो इतना साहस ही न था और वे शायद घृणाके बोझसे इतने दब गये थे कि मुँहसे आवाज ही न निकलती थी । किन्तु

जब सुबहको माने कहा—“प्रफुल्ल छुट्टी खतम होनेके पहले ही क्यों जा रहा है ?” तब उन्होंने जो उत्तर दिया, वह और किसीके लिए चाहे उतने महत्वका न हो ; पर गौराकी तो कल्पनासे भी बहुत दूरकी बात थी । शिवनाथने शान्तिपूर्वक मासे कहा—“उसकी पढ़ाईमें बहुत हर्ज होता है, अम्मा ! सालाना इम्तहान पास आ रहा है, फिर होलीपर भी तो घर आना ही है न ?”

और इससे भी अधिक आश्चर्य गौराको तब हुआ, जब शिवनाथने उसे अपने सरमें थोड़ा तेल मल देनेके लिए स्वयं ही बुलाया । पतिके इस व्यवहारसे उसका हृदय पानी-पानी होकर आँखोंकी राह बह निकला । वे उसे सान्त्वना देते हुए बोले—“एक बारकी भूल तो आसानीसे सुधार सकती है, गौरा ! जो बीत गया, उसके लिए सच्चे हृदयसे पश्चात्ताप करना ही सच्चा प्रायश्चित्त है, इसीसे आगे भूल न हो सकेगी ।”

युवतीने कुछ कहा नहीं, मनमें सोचा—‘भगवन् ! ऐसा पति सभीको मिले ।’

[३]

यह सब हुआ ; पर जो शिवनाथ चाहते थे, वह शायद न हुआ । बीती बातको वे जड़से मिटा देना चाहते थे और फिर पहले-जैसा ही वातावरण उत्पन्न कर देना चाहते थे ; लेकिन न हो सका । गौरा अधिक उदास—अधिक विरक्त—और अस्तव्यस्त दशामें रहने लगी । उसका फूल-सा मुख कुम्हलाने लगा, जैसे बीमार रहती हो । शिवनाथने उसका जी बहलानेका भरसक यत्न किया । कामसे कुछ छुट्टी पानेपर उनका सारा समय गौराको प्रसन्न रखनेकी नई-नई युक्तियाँ सोचनेमें ही निकल जाता ; पर पूर्णतः सफल न हो पाते । प्रफुल्लसे भी उन्हें कम स्नेह न था । होली आई, प्रफुल्लके बार-बार विरोध करनेपर भी उन्होंने उसे अपने पास आनेको लिखा । दृष्टपूर्वक गौरासे भी पत्र लिखाया । आखिर वह वहीं आ गया । दो-एक दिनके बाद गौराने देखा, उसके पति

गौरा और प्रफुल्लको लेकर बहुत धुल मिल गये हैं। तीनों साथ-साथ खाते, घूमते और सोते हैं। मानो कभी कुछ हुआ ही नहीं, अब जैसे इन तीनोंका ही पुनर्जन्म हो गया है—जैसे तीन शरीर और एक ही प्राण हों। गौरा इससे प्रसन्न थी, शिवनाथ भी शायद सन्तुष्ट थे; परन्तु प्रफुल्ल—वह जैसे मन-ही-मन जलता रहता था। गौरा पहलेसे भी अधिक उसकी मनचाही करना चाहती, ताकि वह प्रसन्न रहे, घरमें कलह और ईर्ष्याका बीज न उग जाय; पर जब प्रफुल्ल उसके इस यत्नको सफल न होने देता, तो उसका दिल टूट जाता।

शिवनाथ कहते—“गौरा, एक ही थाल परोस लाओ। तीनों खा लेंगे।”

गौरा इस प्रस्तावसे फूझ उठती; पर जब प्रफुल्ल कोई-न-कोई बहाना करके उस समयसे बचना चाहता, तो युवतीका दिल टूट जाता। अकेलेमें कितनी बार उसने प्रफुल्लको समझाया, उसके पैर तक छुए, यहाँ तक कि उसकी समस्त इच्छाओंपर उसने अपनेको बलिदान कर देना चाहा; पर वह प्रफुल्लको प्रसन्न न कर सकती थी। वह सदा उदास और चिड़चिड़ा रहता। प्रायः व्यंग और तानोंकी बौछार जब-तब गौरापर किया करता। किन्तु गौराके थोड़ी भी विरक्ति दिखलानेपर वह उसका पीछा भी न छोड़ता, मानो अब प्राण ही दे देगा। युवतीकी जान अजब उलझनमें थी—न अपनेको प्रफुल्लसे दूर ही रख सकती थी, न शिवनाथको अप्रसन्न ही कर सकती थी। वह न तो प्रफुल्लके हठको पतिके सामने रख सकती थी और न पतिको तिरस्कृत करके प्रफुल्लकी बात रखनेमें ही उसे सुख था। छुट्टियाँ बीत गईं। प्रफुल्ल चला गया। गौराने आँखोंमें आँसू भरकर उसे विदा किया। उसे अपनी असफलतापर दुःख था। वह प्रफुल्लको अपने-जैसा सहनशील, उदार, दूरन्देश और न-जाने कितना विनयशील बना देना चाहती थी; पर यह सब तो कुछ नहीं होता था, उल्टे इसके विपरीत ही होता था। इसी प्रयत्नकी उपेक्षा करके वह चला गया।

संध्याको शिवनाथने दफ्तरसे आकर देखा, गौरा दीन-सी बनी बैठी कुछ सोच रही है। उन्होंने उसे हँसाना चाहा; पर व्यर्थ। उसका मन बहलाना चाहा; पर वैसा बहला न पाये। गौरा हँस दी; पर मानो पतिको प्रसन्न करनेके लिए ही। वह जल्दी-जल्दी उनके कपड़े ले आई, थाली परस लाई, एक ही बार कहनेपर मूट स्वयं खानेके लिए भी तैयार हो गई; पर मानो किसी चालू यंत्रके समान। यह बात नहीं कि उसकी इस क्रियाको केवल शिवनाथने ही समझा हो, वह स्वयं भी सब समझती थी। उसने यह भी सोचा था कि पहले तो शिवनाथकी ही यह दशा थी, अब उसकी उल्टी कैसे हो गई? यह भी नहीं कि उसे इन बातोंसे दुःख न होता हो; पर कुछ करते न बनता था—मनसे हार गई थी।

दिन बीत गया, रात आई। शिवनाथने उसके अस्तव्यस्त बालोंको ठीक करके कहा—“तुम्हारी इतनी दीन-दशा तो देखी नहीं जाती गौरा, मैं चाहता हूँ कि तुम प्रसन्न रहो। मैं तुम्हारी खुशीके लिए अपने हृदयका रक्त भी बहा सकता हूँ; पर तुम्हें नहीं छोड़ सकता।”

गौराने देखा, उसके पतिकी आँखोंसे आँसू टपक पड़े। उसका सारा धैर्य जाता रहा, पतिके वक्षस्थलपर सर डालकर वह रो उठी, खूब रोई—सिसकियाँ बँध गईं। शिवनाथ भी रोये—मानो दोनों ही अपने-अपने मनका भार आँसुओंमें घोल-घोलकर हलका कर रहे हैं। कुछ शान्त होनेपर शिवनाथने पूछा—“गौरा, एक बात कहूँ, सच बतलाना, तुम ऐसी दीन क्यों बन गई? तुम्हें किस बातकी कमी है?” वह चुप थी। उन्होंने फिर पूछा—“ऐसे तो दोनोंका ही जीवन नष्ट हो जायगा।”

अबकी साहस करके वह बोली—“मैं जानकर ऐसा नहीं करती। जिस बातको बुरा समझती हूँ, उसीको क्यों कर डालती हूँ, यह मैं आज तक नहीं समझ पाई। तुम जानते हो कि पहले मैं कैसी थी। कभी

तुम्हारे विरुद्ध चलनेकी या किसी कार्यमें विघ्न डालनेकी मेरी तनिक भी इच्छा न होती थी ; पर अब मैं बहुत सोचनेपर भी यह निश्चय नहीं कर पाती कि क्या करूँ और क्या न करूँ ? मन न-जाने कैसा हो गया है । मैं मनसे हार गई हूँ ।” —इतना कहकर वह प्रश्नवाचक दृष्टिसे पतिकी ओर देखने लगी । आँखोंमें अब भी व्यथा झाँक रही थी और आँसू घूम रहे थे ।

शिवनाथ पत्नीकी दीन वाणी सुनकर बड़े दुःखित हुए, बोले—“एक बात पूछता हूँ गौरा, बहुत बार निश्चय किया कि पूछ देखूँ ; पर मुँहसे नहीं निकलती थी । सच बताना, क्या तुम प्रफुल्लसे प्रेम करती हो ? उसे चाहती हो ?”

इस बार उनकी दृष्टि कुछ कठोर हो गई थी । युवती अबकी घबराई नहीं । विचलित भी नहीं हुई । शान्तिसे बोली—“शायद । यद्यपि मैं मनसे हार गई हूँ और इतना ज्ञान भी नहीं कि यह प्रेम और चाहना कैसी है ; परन्तु यह तो मैं खूब जानती हूँ कि मैं तुम्हें छोड़ना नहीं चाहती, वग्न अब मन करता है कि एक क्षणके लिए भी आँखोंसे दूर न करूँ ।” वह फिर रो उठी ।

शिवनाथ क्षण-भर कुछ सोचनेके बाद बोले—“देखो गौरा, मनको सावधान रखना सीखो । यद्यपि बाहरी व्यवहारसे मैं तुम्हें कुछ नहीं बता सकता ; परन्तु यह न भूल जाओ कि मैं तुम्हें कितना प्यार करता हूँ, अन्यथा उसी दिन.... और मैं तुम्हारी इज्जतपर भी दाग या धब्बा नहीं आने देना चाहता ।”

“हाँ, यह मैं जानती हूँ ।”

इसके बाद कोई बात नहीं हुई । किसीने आवाज़ दी, और वे उठकर चले गये । गौरा भी अन्दर जाकर पड़ रही । किन्तु इसके बादसे शिवनाथ कुछ खिन्न-से—उदासीन-से दीखने लगे । गौरा यत्न करके भी यत्न न कर पाई । यह उनके मनकी गतिकी तीसरी अवस्था थी । थोड़े दिन बाद उन्हें ज्वर रहने लगा और कुछ ही दिनमें वे खाटसे लग गये । गौराने हजार

सर पटका, लाख यत्न किये । उसने पतिके स्वास्थ्यके बदलेमें अपने अंगका छल्ला-छल्ला तक बेच डाला ; पर स्वास्थ्य न लौटा सकी । प्रफुल्ल आया, सास भी आई ; पर गौराकी खुशीकी घड़ी फिर लौटकर न आई । उसने पतिकी सेवामें ही अपनेको मिटा देना चाहा । किसी प्रकारकी भी कसर न छोड़ी ; पर करे तो क्या करे ? उसका हृदय रात-दिन भट्टीकी तरह जलता रहता था । वह अपनेको ही पतिका काल मान बैठी थी । प्रफुल्लने उसे समझाना चाहा—उसे धैर्य देना चाहा, उससे कहा—“भाभी, यह न समझना कि मैं तुम्हें दुःखमें देखकर कोई नया नाटक रचूँगा । मैं तुम्हारी ही सेवामें मर मिटूँगा ।” परन्तु गौराको इससे कोई सान्त्वना न मिली । उसका संसार उसकी आँखोंके सामने लुट रहा था, जिसका सारा उत्तरदायित्व उसने अपने माथेपर ले लिया था । फिर उसे कैसे धैर्य होता ?

[४]

कालरात्रिके समान गौराके हृदयमें अन्धकारका आधिपत्य जम रहा था । अब उसका हृदय टूट चुका था । कोई उपाय—कोई यत्न शेष न रह गया था । शिवनाथके जीवनसे वह निराश हो चुकी थी ; परन्तु फिर भी एक-आध आशाकी किरण उसका पीछा न छोड़ती थी ।

बहुत-सा बादाम-रोगन लेकर वह पतिके मस्तकपर मलने लगी । शायद नौद आ जाय, इसी आशासे । शिवनाथने उसका हाथ खींचकर अपने पास ही बैठा लिया और कहा—“प्रिये, मैं जान गया हूँ कि वास्तवमें तुम कैसी हो । मैं समझ गया हूँ कि मैं तुम्हें अब पूर्णरूपसे पा गया । जो कुछ मैल था, वह पश्चात्ताप और निरन्तरकी सेवा तथा स्नेहपूर्वक किये यत्नकी ज्वालामें तप-तपकर भस्म हो गया है । अब रह गया है निरां कंचन । परन्तु इसका बदला कैसे दूँगा ? यदि अबकी बच जाता तो.... खैर, अब तो

मेरा अन्तिम समय निकट ही आ रहा है, अब किसीके दोषोंकी बात नहीं सोचूँगा ; लेकिन तुम अच्छी तरहसे रहना ।”

गौराका हृदय फटने-सा लगा—“क्या अब भी दोषकी बात भूले नहीं ; पर मैं तो अब वैसी कोई बात भी सुनना नहीं चाहती । हे भगवन् ! अभी और भी प्रायश्चित्त करना होगा क्या ?” उसने पतिके हाथको अपने मस्तकसे लगाकर कहा—“वैसी बातें कहनेसे अब लाभ ही क्या है ? तुम यदि मुझे सबके सामने लांछित करके भी अच्छे हो जाओ, तो.....” आगे वह कुछ न कह सकी, गला भर आया ।

“संसार बड़ा स्वार्थी है, गौरा ! मैं तुम्हें यही बता देना चाहता था । शीशेके गिलासमें भरे हुए जलको देखकर अपनेको भुला न देना । मेरे पीछे न-जाने तुम्हारी क्या दशा होगी, यही सब सोचता रहता हूँ । सहना तो पड़ता ही है । आत्मघात करना कितना पाप है, यह तो तुम भी जानती हो न ?”

पतिकी बात सुनकर गौराका रोम-रोम असहनीय पीड़ासे कसक उठा । उसके हृदयकी टीसने उसे कुछ बोलने योग्य न रखा । कुछ कहना चाहा ; पर कह न सकी । कुछ पूछना चाहा ; पर पूछ न सकी ।

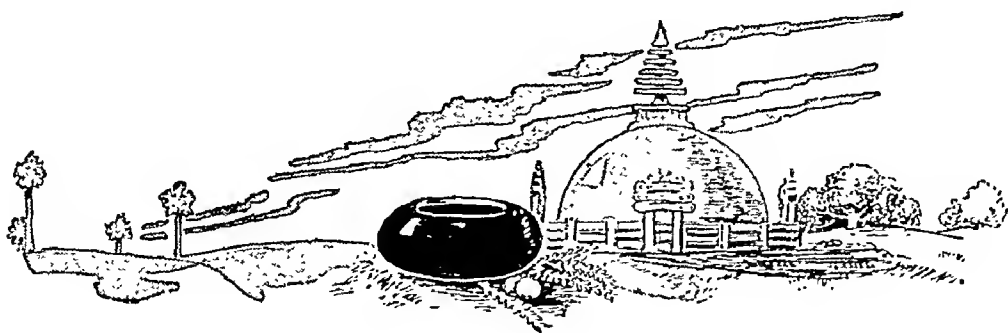
शिवनाथने अपने दोनों हाथ उसके गलेमें डाल दिये ।

युवती चीख उठी—“क्षमा.....क्षमा.....”

मरणासन्न युवक भी चीख उठा—“क्षमा.....क्षमा..... मैंने भी कभी कोई अपराध किया था, तुमसे भी भूल हो गई.....पर क्षमा.....”

पल-भरमें सब समाप्त हो गया । गौरा मूर्छित होकर पृथिवीपर गिर पड़ी । न-जाने कब कौन-कौन आकर उसके हृदयके अवलम्ब, उसके दुर्भाग्यके भाग—नर-कंकाल—को घरसे उठाकर फेंक आये । अब वह मर जाना चाहते हुए भी जीती है । यद्यपि उसका मन यह माननेको तैयार नहीं कि वह अपराधिनी नहीं है ; परन्तु ‘क्या वास्तवमें वह अपराधिनी है, पापिनी है—और.....और प्रफुल्ल ?’ यह तो भगवान ही जाने कि उसके सम्मुख वास्तवमें अपराधी कौन है ?

गौराको अब कोई नहीं आता । किसीकी बातोंमें उसे रुचि नहीं । वह अपना एकाकी जीवन बितानेमें लीन है । प्रफुल्ल अपनी स्त्री-बच्चोंमें तल्लीन है । गौरा अब उसका मुँह देखना भी नहीं चाहती । उसके हृदयमें पश्चात्तापकी ज्वाला निरन्तर धधकती रहती है और आँखोंमें उमड़े रहते हैं आँसू । शायद यही उस अभागी युवतीकी साधना है और कदाचित्त यही उसके पापका प्रायश्चित्त है, यदि वास्तवमें उसने कोई पाप किया है तो ।



कविते !

श्रीमती सूर्यदेवी दीक्षित 'ऊषा'

किस मतवाली मदिराका मद भरती हो नस-नसमें ;
किस विहग बालिका-सी तुम क्रीड़ा करती मानसमें ?
तुम चमक गई विद्युत-सी जब सूने हृदय-गगनमें ;
भावोंके घन घिर आये मोती वरसे क्षण-क्षणमें ।
उन मुक्ताओंको चुन-चुन मैं मंजुल हार बनाती ;
मेरी आराध्य भवानी कविते ! तुमको पहनाती ।
मेरे मानस-मन्दिरमें हे देवि ! करो अब डेरा ;
इस तमोमयी कुटियामें फिर हो प्रकाशका फेरा ।
तेरो छाया पड़ते ही सूखा उपवन हरियाता ;
अति शुष्क हृदयमें भी तो रसका सागर लहराता ।
गिरि-गह्वर-वन-उपवनमें ऊजड़ नन्दन-काननमें ;
आकर्षण भर देती हो तुम अणु-अणुमें कण-कणमें ।
फिर उसको नहीं सताते दुःख-सुख या कोई बाधा ;
वस, एक बार जीवनमें जिसने तुमको आराधा ।
तुम साथ सदा रहती हो देवी अपने भक्तोंके ;
वस, मोद भरा करती हो मनमें निज अनुरक्तोंके ।
तेरो कक्षको दृढ़ कर जड़ जग चेतन हो जाता ;
वस, आदि-अन्त सब खिंचकर अति निकट हमारे आता ।
फूलोंके सुसकानेमें तुम कवियोंकी चितवनमें ;
मालती-लता-कुंजोंमें, अलिके मधुमय गुंजनमें ।
कोयलके पंचम स्वरमें, केकी-कुलकी थिरकनमें ;
चकईकी विरह-व्यथामें, फिर उसके सुग्ध मिलनमें ।

वन-उपवन सर-सरितामें, खेतोंकी हरियालीमें ;
मुक्ता-से ओस-कणोंमें, तहकी डाली-डालीमें ।
चपलाकी चंचलतामें, घनके भीषण गर्जनमें ;
दाहण भ्रंशावातों में, तूफानों के तर्जन में ।
तुम संध्याके दर्पणमें, 'ऊषा' की नव लालीमें ;
तारागणकी झिलमिलमें, निशिकरकी उजियालीमें ।
जननीके कक्ष हृदयमें, शिशुताके मृदु हासोंमें ;
मानिकी मनुहारोंमें, तुम देवि ! प्रणय-प्यासोंमें ।
तुम चिता-भस्म-ढेरोंमें, सतियोंकी पुष्प कथामें ;
प्रेमीके मन-मन्दिरमें, विरहीकी विरह-व्यथामें ।
रण-आंगण के कोनेमें, तुम वीरों के घानों में ;
भरतीं विजली नस-नसमें, कल गायकके गानोंमें ।
दीनोंकी भोगद्वियोंमें नरपतियोंके महलोंमें ;
पद-दलितोंके आँसूमें, शासनके अतुल बलोंमें ।
अत्याचारों के भीतर, दीनों के मूक रुदन में ;
कृपकोंकी दुःख गाथामें, विधवाओंके क्रन्दनमें ।
कारागारों के भीतर, वीरों के बलिदानों में ;
अपना अस्तित्व मिटा दूँ इन भीषण अरमानोंमें ।
तलवारों की चमचम, मैं तीरों की बौछारों में ;
रणचण्डी के खप्पर में, रुधिरोंके फव्वारों में ।
पी आदि-अन्त सब भूले उन मदिराके प्यालोंमें ;
क्षणमें वस प्रलय मचा दे उन भीषण करवालोंमें ।

आकर्षणमय मनमोहक उस अमरपुरीसे न्यारी ;

कविते ! तेरी दुनिया है वेदना जहाँ अति प्यारी ।

ब्रह्मदेशमें हिन्दी

श्री गोपालदास, विशारद

ब्रह्मदेश और भारतका सम्बन्ध बहुत पुराना है। इतिहासके

भूले हुए ज़मानेमें ब्रह्मदेश उर्फ 'स्वर्णभूमि' और भारतके बीच बहुत काफी आदान-प्रदान हुआ था। भारतसे ब्रह्मा निवासियोंने बौद्धधर्म ग्रहण किया और भारतीय कला-कौशल, संस्कृति आदिकी शिक्षा ली। ब्रह्माकी भाषा चीनी परिवारकी भाषा है; किन्तु उसकी वर्णमाला हमारी देवनागरी वर्णमालाके आधारपर ही है। वर्माके धर्मग्रन्थ आज तक पाली भाषामें ही हैं। पगानके मन्दिर विशुद्ध भारतीय कलाके नमूने हैं। मध्य युगमें भी भारत और वर्माका सम्बन्ध बना रहा और आज तक वर्मियोंके कुल-पुरोहित मणिपुरके 'पौना' (पावन) ब्राह्मण होते हैं।

वर्मा में अंगरेजोंकी सत्ता स्थापित होनेके बादसे वहाँ भारतीयोंका आवागमन बढ़ा। वर्मा में मिट्टीका तेल निकाले जाने और तरह-तरहके कल-कारखाने आदि खुलनेसे तथा आमद-रफ्तकी सुविधाएँ बढ़नेसे हज़ारों भारतीय व्यापार और काम-धन्धेकी तलाशमें वर्मा पहुँचने लगे। वैसे तो वर्मा में भारतके प्रत्येक प्रान्तके लोग मौजूद हैं; पर उनमें हिन्दी भाषा-भाषियोंकी संख्या बहुत काफी है। इन लोगोंकी काफ़ी संख्या होते हुए भी वर्मा में हिन्दी भाषाकी अवस्था असन्तोषजनक ही नहीं, बल्कि शोचनीय भी है। भारतीय अधिकतर बड़े शहरों, उद्योग-धन्धोंके केन्द्रों और व्यापारिक स्थानोंमें बसे हैं। उनमें गुजराती, बंगाली, तामिल, तेलुगु, पंजाबी आदि भाषाएँ बोलनेवाले हैं। इन सबको अपने रोज़ानाके काम-धन्धोंमें एक दूसरेसे सावकाश पड़ता है। उस समय वे सब विचार विनिमयके लिए टूटी-फूटी हिन्दी ही काममें लाते हैं। वे ही नहीं, बल्कि व्यापारकी सुविधाके लिए कोई-कोई चीनी और बर्मी भी हिन्दीके कुछ कामचलाऊ शब्द सीखनेके लिए वाध्य होते हैं। वर्मा में हिन्दीकी अवस्थापर विचार करते हुए मैं इन सबको छोड़कर केवल उन्हीं लोगोंकी बात लेता हूँ, जिनकी मातृभाषा हिन्दी है।

वर्मा में ५,७०, ९५३ हिन्दू बसते हैं, जो प्रान्तकी कुल आबादीके ४ प्रतिशतके लगभग हैं। इनमें से जो लोग बिहार, मध्यप्रदेश, संयुक्तप्रान्त, राजपूताना तथा पंजाबसे आनेवाले हैं, वे हिन्दी बोलते और लिखते हैं। नेपाली और गढ़वाली लोगोंने भी हिन्दीको ही अपनी भाषा माना है। गत जन-गणनाके अनुसार इन सब हिन्दी या हिन्दुस्तानी बोलने वालोंकी संख्या ३,५३,३६८ होती है। इस संख्यामें से ३६,३४८ युक्तप्रान्तीय मुसलमानों और ७,५०० पंजाबी मुसलमानों अर्थात् कुल ४३,८४८ व्यक्तियोंको निकाल देनेसे बाकी ३,०९,५२० व्यक्ति हिन्दी-भाषा-भाषी कहे जा सकते हैं।

अब इस प्रान्तके अन्य अल्पसंख्यक भाषा-भाषियोंकी ओर ध्यान दें। प्रान्त-भरमें कुल ५,८४,८३९ मुस्लिम निवास करते हैं, जिनमें लगभग ३,५६,९६१ तो तामिल, तेलुगु, बंगाली, उड़िया, चीनी तथा बर्मी भाषाका व्यवहार करते हैं। शेष १,८८,२४५ हैं, जिनकी भाषा मिली-जुली कही जा सकती है। इनमें १,१७,१५१ ज़हरवादी हैं। वर्माकी मुस्लिम आबादीमें केवल ४३,८४८ व्यक्ति ही ऐसे हैं, जिनकी मातृभाषा उर्दू हो सकती है। भारतीय मुस्लिमोंकी कुल संख्या वर्मा में ३,९६,५९४ है, जिनमें उर्दू न बोलनेवाले २,८८,२८७ हैं। ये उड़िया, तामिल तेलुगु तथा बंगाली बोलते, लिखते, पढ़ते हैं।

तामिल और तेलुगु भाषा-भाषी ३,४४,७४७ व्यक्ति हैं, जिनमें ३,७११ मुस्लिम और ६४,६१६ ईसाई तथा अन्य हैं।

ऊपरके आँकड़ोंसे स्पष्ट हो जाता है कि इस प्रदेशमें हिन्दी-भाषा-भाषियोंकी संख्या अन्य भारतीय भाषा-भाषियोंकी संख्यासे किसी तरह भी कम नहीं है, फिर भी शिक्षाके क्षेत्रमें हम सबसे पिछड़े हुए हैं। जहाँ हमारे मुस्लिम भाइयोंने दो सौसे ऊपर मदरसे स्थापित करके तथा उन्हें सरकार-द्वारा स्वीकृत कराके उर्दू-भाषाका खूब प्रचार किया है, वहाँ हिन्दी-भाषा-भाषी जनताके लिए केवल २५ वर्नाक्यूलर स्कूल,

१३ ऍंग्लो-वर्नाकुलर रिकॉगनाइड (स्वीकृत) स्कूल तथा
१२५ अनरिकॉगनाइड (गैर स्वीकृत) स्कूल हों, यह आश्चर्यकी
वात प्रतीत होती है ; परन्तु हिन्दी-भाषियोंके सम्मुख
कुछ ऐसी समस्याएँ उपस्थित हैं, जिनके कारण वे अपनी भाषाके
लिए यथेष्ट सुविधा प्राप्त करनेमें अब तक असमर्थ रहे ।

सबसे पहला कारण तो है हिन्दी जनताकी अपनी भाषाके
प्रति उदासीनता । कुछ इनेगिने उत्साही नवयुवकोंको छोड़कर
बाक़ी जनसाधारण अपने निजी व्यवसायके फ़ैरेमें ही ऐसे मग्न रहते
हैं कि जातीय निर्माण तथा उत्थानकी ओर और अपने बच्चोंकी
शिक्षाकी ओर कभी उनका ध्यान ही नहीं जाता । वे हिन्दी
भाषाकी उन्नति करना अपना कर्तव्य ही नहीं समझते । इसकी
सत्यता सहजमें ही निम्न-लिखित वाक्योंसे ज्ञात हो सकती है ।

हिन्दू तथा मुसलमान दोनों इस देशमें एक ही साथ
आये । मुसलमान भाइयोंने तो आते ही अपनी भाषाके
प्रचारके लिए हाथ-पैर मारना शुरू कर दिया । इसका
परिणाम यह हुआ कि भारतीय भाषाओंमें उर्दू ही पहली भाषा
थी, जो सरकार-द्वारा स्वीकृत हुई और सन् १९२०के लगभगसे
इसकी परीक्षा भी ली जाने लगी । इस समय वर्गमें इसका
प्रचार बड़े जोर-शोरसे हो रहा है । इसकी शिक्षाके निरीक्षणके
लिए सरकार-द्वारा तीन डिप्टी-इन्स्पेक्टर नियुक्त हैं ।

इसके विपरीत हिन्दुओंकी दुनिया ही निराली है । वे
कुम्भकर्णी नौदमें पड़े-पड़े खुरटे लेते रहे । इधर तमिल और
तेलुगुवाले भी आगे बढ़ गये । उन्होंने ५० से अधिक अपर
प्राइमरी स्कूल सरकारसे मंजूर करा लिये और एक डिप्टी-
इन्स्पेक्टरकी नियुक्ति भी करा ली । अन्तमें सन् १९१८ के
लगभग हिन्दीवाले जागे ; पर जागकर भी वे आलस्यमें ही
पड़े रहे । आर्यसमाजने हिन्दीवालोंको सतर्क करनेकी थोड़ी-
बहुत चेष्टा की । घोर प्रयत्नके बाद माण्डले नगरमें डी०ए०वी०
हाई स्कूलकी स्थापना हुई, जिसमें शिक्षाका माध्यम हिन्दी रखा
गया । इसके बाद अन्य आर्यसमाजोंने इस स्तुत्य उदाहरणका
अनुकरण किया, और अब प्रत्येक आर्यसमाजके साथ आप एक
हिन्दी-गाठशाला अवश्य पाइयेगा ।

इसके उपरान्त वर्मा-प्रान्तीय ब्राह्मण-सभाने इस कार्यको
अपनाया और जनतामें हिन्दी-प्रचारके लिए जागृति उत्पन्न की ।
इस प्रचारका यह फल हुआ कि ठाकुरवाड़ियों (मन्दिरों) में
भी कुछ स्कूल खोले गये और उनके द्वारा हिन्दीकी शिक्षा दी
जाने लगी ।

सन् १९२७ में श्रीयुत हरिवदन शर्माके पुरयार्थ तथा
उद्योगसे ब्रह्म-प्रान्तीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनकी स्थापना हुई ।
इसका उद्देश्य हिन्दी भाषाका प्रचार तथा इसकी शिक्षाके लिए
शिक्षा-विभागसे उचित सुविधाएँ प्राप्त करना तथा कराना है ।
अपने संस्थापन-कालसे अब तक हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन अपने
उद्देश्यकी पूर्तिके लिए प्रयत्नशील रहा है, जिसके लिए उपर्युक्त
शर्माजी श्रेयके अधिकारी हैं ।

हिन्दीकी उन्नति

सन् १९२६ से वर्मा-सरकारके शिक्षा-विभाग द्वारा हिन्दी
भी एक भाषाके तौरपर स्वीकृत हुई । उस समयसे अब तक
हिन्दी लेकर हाई स्कूल फाइनल परीक्षामें उत्तीर्ण होनेवाले
विद्यार्थियोंकी संख्या इस प्रकार है :—

१९२६	२	परीक्षार्थी
१९२७	६	"
१९२८	६	"
१९२९	११	"
१९३०	२२	"
१९३१	२१	"
१९३२	२६	"
१९३३	१९	"
१९३४	२२	"
१९३५	२५	"

१९३४-३५ के शिक्षा-विभागके विवरणसे ज्ञात होता है कि
१,३५३ विद्यार्थी वर्माके विभिन्न स्कूलोंमें हिन्दीकी शिक्षा पा रहे
थे । यह संख्या केवल सरकार द्वारा स्वीकृत स्कूलोंके
विद्यार्थियोंकी है । इनके अतिरिक्त अनुमानसे १,५०० विद्यार्थी
इस प्रान्तके अनरिकॉगनाइड स्कूलोंमें शिक्षा पा रहे हैं ।

हिन्दी स्कूल १९३५-३६

सरकार द्वारा स्वीकृत वर्नाकूलर हिन्दी प्राइमरी स्कूल		
लोअर वर्गमें	११ स्कूल	६९० विद्यार्थी
अपर वर्गमें	१३ "	८०८ "
अराकान सर्किलमें	१ "	४८ "
जोड़—२५		१,५४६

इनके अतिरिक्त मेम्बरोसे दो स्कूलोंने रेजिस्ट्रेशन (स्वीकृति) के लिए शिक्षा-विभागके पास प्रार्थनापत्र भेजा है। उनमें से 'आर्य हिन्दी स्कूल'की डिप्टी साहबने सिफारिश भी की है। माण्डलेके एक हिन्दी स्कूलने भी प्रार्थनापत्र भेजा था; परन्तु 'ट्रेण्ड' अध्यापक न होनेके कारण वह नामंजूर हुआ। इन स्कूलोंमें ज़ियावाड़ीका ब्राह्मण-सभा स्कूल ही केवल मिडिल स्कूल है।

वर्नाकूलर स्कूलोंके अतिरिक्त प्रान्तमें १० एंग्लो-वर्नाकूलर स्कूल ऐसे हैं, जिनमें हिन्दी पढ़ाई जाती है। इनमें ६ हाई स्कूल और ४ मिडिल स्कूल हैं, जिनमें लगभग ७५० विद्यार्थी हिन्दी पढ़ते हैं।

वर्गमें १० रात्रि-पाठशालाएँ हैं, जिनमें हिन्दी और अंगरेज़ी पढ़ाई जाती है। इनमें ३ को सरकारसे कोई सहायता नहीं मिलती; पर वे सरकार-द्वारा स्वीकृत हैं। इनमें कुल ५०० विद्यार्थी तक शिक्षा पाते हैं। रात्रि-पाठशालाओंके विद्यार्थी छोटी उम्रके नहीं होते। वे सब वयस्क हैं, और उनमें से अधिकांश मज़दूरी, चपरासी, दरबानी इत्यादिका काम करते हैं।

दक्षिण-भारत-निवासियोंको हिन्दी पढ़ानेके लिए आर्यसमाज रंगूनमें 'डी०ए०वी० स्कूल निःशुल्क हिन्दी-पाठशाला' तथा वर्मा-हिन्दी-प्रचार-सभा (भूतपूर्व हिन्दी-साहित्य-गोष्ठी) की ओरसे तिनाजो तथा वकटोमें हिन्दी-पाठशालाएँ खोली गई हैं, जिनमें तिनाजोकी पाठशाला तो बन्द हो गई; पर वकटोकी जोरोंसे चल रही है। इन सब कक्षाओंमें २ विद्यार्थी 'राष्ट्रभाषा-विशारद', ५ 'राष्ट्रभाषा', ३० 'मध्यमा' और ३० 'प्राथमिक परीक्षा' की तैयारी कर रहे हैं। राष्ट्रभाषा-

विशारद तथा राष्ट्रभाषा परीक्षाओंका प्रबन्ध केवल डी०ए०वी० निःशुल्क हिन्दी-पाठशालामें ही अब तक हुआ है।

बौद्धों और भिक्षुओंमें व्यक्तिगत रूपसे हिन्दीका प्रचार करनेका प्रयत्न गत कई वर्षोंसे होता चला आ रहा है। लगभग दो वर्ष पूर्व आर्यसमाज रंगूनने अहलोन चाँग (रंगून) में भिक्षुओंको हिन्दी पढ़ानेके लिए एक पाठशाला खोली थी। कुछ कालके पश्चात् इसके संचालनका भार भूतपूर्व हिन्दी-साहित्य-गोष्ठी (वर्तमान वर्मा-हिन्दी-प्रचार-सभा) ने अपने ऊपर ले लिया, और यह अब तक इसी संस्थाके अधीन है। इसमें लगभग २५ वर्मा भिक्षु हिन्दीकी शिक्षा पा रहे हैं।

हिन्दी-स्कूलोंका निरीक्षण

हिन्दी-स्कूलोंका निरीक्षण इस समय मुस्लिम स्कूलोंके डिप्टी-इन्स्पेक्टरोंके अधीन है। मुस्लिम स्कूलोंके प्रति उनका जो कर्तव्य है, उसके साथ-साथ यह अतिरिक्त भार उनके लिए बहुत अधिक है। हिन्दी-भाषाकी अनभिज्ञता उनके इस कार्यको और भी गुरुतर बना देती है। इसलिए हिन्दी-स्कूलोंके लिए एक पृथक डिप्टी-इन्स्पेक्टरकी नियुक्ति हिन्दीकी उन्नतिके लिए बड़ी ही हितकर सिद्ध होगी।

हिन्दी-भाषामें परीक्षाएँ

वर्गमें निम्न-लिखित हिन्दीकी परीक्षाएँ ली जाती हैं :—

- १ एंग्लो-वर्नाकूलर हाई स्कूल परीक्षा (हिन्दी लेकर, सरकार-द्वारा)
- २ एंग्लो-वर्नाकूलर मिडिल स्कूल छात्रवृत्ति (हिन्दी लेकर, " ")
- ३ वर्नाकूलर १०वीं, ९वीं तथा ७वींकी परीक्षा (सरकार-द्वारा)
- ४ वर्नाकूलर हाई स्कूल और मिडिल स्कूल टीचर्स परीक्षा (" ")
- ५ प्रथमा और मध्यमाकी परीक्षाएँ (प्रयागके हि०सा०स० द्वारा)
- ६ प्राथमिक, मध्यमा, राष्ट्रभाषा तथा राष्ट्रभाषा-विशारदकी परीक्षाएँ (दक्षिण-भारत-हिन्दी-प्रचार द्वारा)

वर्नाकूलर १०वीं, ९वीं तथा ७वीं कक्षाओंकी परीक्षा और वर्नाकूलर हाई स्कूल और मिडिल स्कूल टीचर्सकी परीक्षाएँ पहले हिन्दीमें नहीं होती थीं; पर ब्रह्म-प्रान्तीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनके उद्योगसे वे अब होने लगी हैं।

रंगूनके कुछ नवयुवकोंने हिन्दी-विश्वविद्यालय प्रयागसे

प्रार्थना की थी कि उनकी विशेष कठिनाइयोंका ध्यान रखते हुए रंगूनमें उत्तमा परीक्षाका केन्द्र खोला जाय ; परन्तु अब तक उन्हें निराशा ही होना पड़ा है ।

हिन्दी-पुस्तकालय

वर्माके मुख्य-मुख्य नगरोंमें हिन्दीका एक-एक छोटा-मोटा पुस्तकालय अवश्य पाया जाता है । रंगून नगरमें ही छै पुस्तकालय हैं, जिनमें 'श्रीमारवाड़ी पुस्तकालय' सबसे बड़ा है । माण्डले नगरमें भी एक मारवाड़ी पुस्तकालय है, जो दिनोदिन उन्नति कर रहा है । यों तो हर एक आर्यसमाजके साथ आप एक पुस्तकालय पायेंगे ; परन्तु उनमें धार्मिक पुस्तकोंकी ही अधिकता होती है—साहित्यिक पुस्तकें नहीं के बराबर हैं ।

हिन्दीका डेपुटेशन

वर्मा-सरकारकी ओरसे देशी भाषाओंको सुधारने तथा उनकी उन्नतिके साधनोंपर विचार करनेके उद्देश्यसे Vernacular and Vocational Education Reorganization Committee (देशी भाषा तथा औद्योगिक शिक्षा-संगठन-समिति) नियुक्त हुई । हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनने इस अवसरसे पूर्ण लाभ उठाया तथा उक्त कमेटीके सम्मुख साक्षी देनेके लिए श्री हरिवदन शर्मा वैद्यरत्न, श्री अमरनाथ शर्मा बी०ए० हेडमास्टर डी०ए०बी० स्कूल रंगून तथा मन्त्री हिन्दी-साहित्य - सम्मेलन, श्री जयनारायणजी पाण्डेय वकील, श्री रामचन्द्र भारती बी०ए० हेडमास्टर एल०टी० डी०ए०बी० हाई स्कूल माण्डलेका एक डेपुटेशन बनाकर भेजा । इसकी ओरसे निम्न-लिखित माँगें पेश की गई :—

१. हिन्दी-स्कूलोंके निरीक्षणके लिए कम-से-कम एक इन्स्पेक्टर और एक डिप्टी-इन्स्पेक्टर अवश्य नियुक्त होना चाहिए ।

२. हिन्दी-अध्यापकोंके लिए ट्रेनिंग स्कूल खोला जाना चाहिए और हिन्दी पुपिल टीचरोंको छात्रवृत्ति मिलनी चाहिए ।

३. जिन पाठशालाओंमें ३० या इससे अधिक लड़के हों और जो स्कूल एक वर्ष या इससे अधिक दिनोंसे चल रहे हों,

उन्हें तुरन्त स्वीकृत कर लिया जाय, चाहे उनके अध्यापक ट्रेण्ड न भी हों ।

४. पाँच वर्षके लिए यह नियम बना दिया जाय कि जिस अध्यापकने किसी भी स्कूलमें दो वर्ष तक पढ़ाया हो, वह प्राइवेट तौरपर टीचर्स ट्रेनिंगकी परीक्षामें बैठ सके ।

५. हिन्दीमें भी वर्नाकूलर दसवीं तथा नवीं कक्षाओंकी परीक्षाएँ होनी चाहिए ।

६. भारतीय भाषाओंके स्कूलोंको उनकी आवादी अथवा उन भाषाओंके बोलनेवालोंकी मालगुजारीके अनुसार ग्रान्ट (आर्थिक सहायता) मिलनी चाहिए ।

७. जिन स्कूलोंमें ६० या उससे अधिक छात्र हों, उनमें वर्मी भाषा पढ़ानेकी सुविधाके लिए एक वर्मी टीचर रखनेकी आज्ञा दी जाय ।

८. टेक्स्ट बुक कमेटीमें कम-से-कम दो और वर्नाकूलर एजुकेशन बोर्डमें एक सदस्य हिन्दीके लिए अवश्य होना चाहिए ।

१०. सरकारी अफसरोंके लिए जो हिन्दोस्तानी परीक्षा होती है, वह उर्दू लिपिके स्थानमें हिन्दी लिपिमें होनी चाहिए, क्योंकि इसे वर्मी लोग और अ-वर्मी लोग सभी सरलतापूर्वक पढ़ सकते हैं ।

उपर्युक्त कमेटीने अपनी रिपोर्ट प्रकाशित कर दी है । उसमें एक डिप्टी-इन्स्पेक्टर तथा हिन्दी ट्रेनिंग स्कूलकी माँगोंकी सिफारिश की गई है । वाक्की माँगोंकी सिफारिश नहीं की गई है । यदि हिन्दी-प्रेमी और स्वभाषा-अभिमानी जन अपने कर्तव्यका पालन करेंगे और डेपुटेशनोंके द्वारा अपनी असुविधाओंको सरकारके सम्मुख रखते जायेंगे, तो आशा की जाती है कि निकट-भविष्यमें ही हिन्दीके मार्गमें जितनी रुकावटें हैं, वे सब दूर हो जायेंगी ।

स्कूलोंका रजिस्टर

इस वर्ष सम्मेलनने निश्चय किया है कि उसके पास एक ऐसा रजिस्टर होना चाहिए, जिसमें प्रान्त-भरके समस्त हिन्दी-स्कूलोंका पूरा-पूरा विवरण अंकित हो । इसी उद्देश्यसे उसने



रंगूतकी बौद्ध हिन्दी-पाठशाला

७८ स्कूलोंको पत्र भेजे, जिनमें से केवल २० स्कूलोंने ही अपनी रिपोर्ट भेजी है। अन्य स्कूलोंकी उदासीनता हमारे उद्देश्यकी पूर्तिमें बहुत बाधक हो रही है।

हमारा कर्तव्य

ऊपरकी रिपोर्टसे स्पष्ट रूपसे ज्ञात हो गया होगा कि हिन्दी भाषाकी शिक्षा इस प्रान्तमें किस अवस्थामें है। हिन्दी स्कूलोंका निरीक्षण उर्दू के डिप्टी-इन्स्पेक्टर साहब करते हैं। हिन्दी अध्यापकोंकी ट्रेनिंगकी कोई व्यवस्था नहीं। घोर परिश्रम और प्रयत्न करनेपर एक या अधिक-से-अधिक दो हिन्दू टीचर उर्दू ट्रेनिंगमें भरती हो पाते हैं, सो वे भी उर्दू पढ़ानेकी शिक्षा पाते हैं। हमारी पाठशालाएँ स्वीकृत नहीं होतीं,

क्योंकि इनमें ट्रेण्ड अध्यापक नहीं हैं, और ट्रेण्ड अध्यापक नहीं मिलते, क्योंकि ट्रेनिंग स्कूल नहीं है। ऐसी अवस्थामें हमें क्या करना चाहिए? इसका तो सिर्फ यही इलाज है कि हम आलस्य और प्रमादको छोड़कर, व्यक्तिगत राग और द्वेषको तिलांजलि देकर और स्वार्थ और हठधर्मोंको त्यागकर अपनी राष्ट्रभाषा, मातृभाषा हिन्दीके प्रचारमें दत्तचित्त होकर लगे। साथ ही भारतके हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन तथा अन्य हिन्दी-संस्थाओंसे हम प्रार्थना करते हैं कि वे वर्मा-प्रान्तके तीन लाख हिन्दी-भाषियोंका कुछ खयाल रखें और यहाँ हिन्दी-प्रचारके लिए हमारी सहायता करें।



प्रेम-कीटाणु

श्री ब्रजमोहन गुप्त

वैज्ञानिकने बिजलीकी अंगीठीसे परख-नली निकाली । उसमें किसी धातुके सुनहले चमकते हुए टुकड़े थे । वैज्ञानिकने ध्यानपूर्वक उनका निरीक्षण किया । उसके अधरोपर मुसकानकी हलकी-सी रेखा दौड़ गई । 'शायद इस बार सफलता मिल गई',—वह गुनगुनाया । उसने परख-नलीको एक प्याली (घरिया, Crucible) में रख दिया । उसमें थोड़ा-सा कोई तरल पदार्थ डाला और गरम किया । उसके हाथ काँप रहे थे ; उसके हृदयमें धड़कन थी । उसे आज देखना था कि उसकी दस वर्षकी तपश्चर्याके पश्चात् भी उसे अपने उद्देश्यमें सफलता प्राप्त हुई या नहीं । वे धातुके टुकड़े उस तरल पदार्थमें घुल गये । वैज्ञानिकने उसमें से थोड़ा-सा बोल दूसरी परख-नलीमें ले लिया और किसी प्रकार अपने काँपते हुए हाथोंको साधकर पास रखी एक बोटलमें से थोड़ा-सा द्रव उसमें डाल दिया । परख-नलीमें तुरन्त ही कोई काली वस्तु बैठ गई । निराशाकी एक रेखा उसके चेहरेपर दौड़ गई । उसने खुर्दवीन (Microscope) से ध्यानपूर्वक उस परख-नलीको देखा । 'ओफ ! सारा प्रयत्न निष्फल ही गया !' उसने कहा—'यह अन्तिम प्रयोग था, इसके साथ ही सब-कुछ समाप्त हो गया ।' उसने एक ठंडी साँस ली और पिछले दस वर्षकी घटनाओंके चित्र उसके नेत्रोंके सामने नाचने लगे ।

अबसे दस वर्ष पूर्व उसके पास अतुल सम्पत्ति थी—ज़मीन थी, कोठियाँ थीं । और आज ? आज सायंकालके भोजनके लिए पैसे भी उसके पास नहीं ! इस प्रयोगको वह दस वर्षसे कर रहा था । बीसों बार वह असफल हो चुका था ; किन्तु फिर भी निराश नहीं हुआ था । इन प्रयोगोंमें उसका सब-कुछ समाप्त हो चुका था । उसने सोचा था, जैसे भी हो, एक बार यह प्रयोग और करना होगा । उसने अपने घरके

बहुतसे बर्तन, कपड़े और अपनी विज्ञानशालाका बहुत-सा अनावश्यक सामान बेच डाला था । प्राप्त धनके द्वारा यह प्रयोग दोहराया और इस बार भी असफल ही रहा ।

उसका चेहरा काला-सा पड़ता जा रहा था । वह उस परख-नलीको हाथमें लिये एकदम घुत बना कुर्सीपर बैठा था । उसके नेत्र बन्द थे । 'सफलता इस बार क्यों नहीं मिली ? नहीं मेरा सिद्धान्त गलत नहीं है, गलत नहीं हो सकता ।' उसने सोचा—'किन्तु हाँ, शायद तापक्रमके कम रहने ही की वजहसे इस बार भी प्रयोग असफल रहा । दस वर्षके कठिन परिश्रमके पश्चात् यह सिद्धान्त ज्ञात हुआ । इसकी सत्यतामें सन्देह नहीं किया जा सकता । क्या मैं एक बार फिर इसे...किन्तु मेरे पास अब ऐसी भी तो कोई वस्तु नहीं बची, जिसे बेचकर प्रयोगके लिए धन प्राप्त हो सके । उफ !....' उसने एक बार अपने बाल नोच लिये । फिर एक हाथपर सरको थामकर सोचने लगा—'कहीं बाहरसे भी तो, सिर्फ एक बार फिर प्रयोग करनेके लिए, रुपया मिलना सम्भव नहीं ।'

इतनेमें दरवाज़ा खुला । एक व्यक्तिने कमरेमें प्रवेश किया । वह अपने ध्यानमें मग्न था, उसे इस नवागन्तुकके आनेका भी ज्ञान नहीं हुआ । नवागन्तुकने कहा—'क्यों जेम्स, किस चिन्तामें हो ?'

वैज्ञानिक सहसा चौंका—'विलियम, आओ बैठो ।'—उसने पास पड़ी हुई कुर्सीको ठीक करते हुए कहा । विलियम बैठ गया, और उसने अपना प्रश्न दोहराया—'किस चिन्तामें हो ?'

“वही प्रयोग ।”

“क्या फिर भी असफल ही रहे ?”

“हाँ ।”

“मैंने तो तुमसे पहले ही कहा था कि ताँबेको सोनेमें परिणत करना असम्भव है। एक तत्त्व (Element) दूसरे तत्त्वमें परिणत नहीं किया जा सकता। उसका ध्यान छोड़ दो। हाँ, तो मैं तुम्हारे पास एक बहुत आवश्यक....”

“नहीं, असम्भव नहीं है। तुम भी विज्ञानके विद्यार्थी रहे हो। मेरे सिद्धान्तोंको समझ सकते हो। मेरा विश्वास है कि अगर तुम एक बार भी उन्हें सुन लोगे, तो स्वीकार कर लोगे कि मैं गलत रास्तेपर नहीं हूँ।”

जेम्सने विलियमकी बात बीच ही में काटते हुए जोशके साथ कहा—“हो सकता है, तुम्हारे सिद्धान्त ठीक हों; किन्तु आज तो मैं तुम्हारे पास एक....”

“हो सकनेकी ही बात नहीं। वे ठीक हैं। देखो रेडियम (Radium) भी तत्त्व है और सीसा (Lead) भी।”

विलियम समझ गया कि जब तक जेम्सकी बात नहीं सुन ली जायगी, उसे अपनी बात कहनेका अवसर नहीं मिलेगा, नहीं मिलेगा। उसने कहा—“हाँ, तो फिर ?”

“रेडियम रखा-रखा बहुत काल पश्चात् सीसेमें बदल जाता है, और इसका कारण भी विलकुल अस्पष्ट नहीं। प्रत्येक वस्तु अणु-परमाणुओंके सम्मिलनसे बनी है, और अणु-परमाणुओंकी रचना विद्युत-कणों (Electrons) से हुई है। विभिन्न संख्यामें विद्युत-कणोंके सम्मिलनसे विभिन्न वस्तुओंके अणु बन जाते हैं। वैसे सब वस्तुओंको बनानेवाले विद्युत-कण हैं एक ही प्रकारके।”

“तो इस विषयमें आपने क्या सोचा है ?”

“यही कि यदि किसी प्रकार अणुओंके अन्दर विद्युत-कणोंकी संख्यामें परिवर्तन किया जा सके, तो एक तत्त्वके अणु दूसरे तत्त्वके अणुमें परिणत हो जायँ। ठीक उसी प्रकार जैसे आक्सीजन (Oxygen) के अणुओंके तोड़-जोड़से ओज़ोन (Ozone) बन जाती है।”

“तो इसके लिए क्या उपाय सोचा ?”

“मैंने एक प्रकारकी नवीन किरणोंका पता लगाया है, जिनके प्रभावसे कुछ रासायनिक पदार्थों द्वारा अणुके विद्युत-कणोंकी संख्यामें परिवर्तन किया जा सकता है। मेरा पूरा विश्वास है कि यदि एक बार प्रयोग करनेका अवसर मुझे और मिले, तो मैं इस प्रयोगमें अवश्य सफल हो जाऊँगा।”

“अपनी तो कह ली, अब कुछ मेरी भी सुनोगे या नहीं ? उससे तुम्हें बहुत-सा धन प्राप्त हो सकता है।”

“धन प्राप्त हो सकता है ? बोलो, बोलो, कैसे ?”

“तुमने मुझसे एक बार प्रेम-कीटाणुओंके विषयमें कहा था और यह भी बतलाया था कि उनसे किसी भी मनुष्यमें प्रेम जाग्रत किया जा सकता है।”

“हाँ, इस स्वर्णकी समस्यासे पहले मैं उसीपर प्रयोग कर रहा था। मुझे सफलता भी प्रायः मिल गई थी, तभी इस नवीन समस्याकी धुन सवार हो गई और मैं इस आविष्कारमें लग गया।”

“उसके विषयमें मुझे कुछ बता सकते हो ?”

“अवश्य, यद्यपि उस बातको बहुत दिन हो गये; किन्तु मैं उसे अभी तक भूला नहीं हूँ। मेरा विश्वास है कि एक प्रकारके कीटाणु होते हैं, जो सोई हुई दशा में प्रत्येक मनुष्यके रक्तमें विद्यमान रहते हैं। जब वे जाग्रत अवस्थामें आते हैं, तो मनुष्य प्रेमका अनुभव करने लगता है। किसीको देखकर जब रक्तमें एक विचित्र ढंगकी प्रतिक्रिया होती है, तो उसके फल-स्वरूप वे जाग्रत अवस्थामें आ जाते हैं, और वह मनुष्य उक्त मनुष्यके प्रति प्रेमका अनुभव करने लगता है। अन्य कीटाणुओंकी भाँति वे भी संख्यामें शीघ्रताके साथ बढ़ने आरम्भ हो जाते हैं। ज्यों-ज्यों उनकी संख्या बढ़ती जाती है, उसका प्रेम भी पुष्ट होता जाता है। इंजेक्शनके द्वारा शरीरमें एक प्रकारके कीटाणुओंको पहुँचाकर प्रेम-कीटाणुओंको नष्ट भी किया जा सकता है। उसके पश्चात् मनुष्य किसीके प्रति भी प्रेमका अनुभव नहीं कर सकता। विज्ञानशालामें उन

प्रेम-कीटाणुओंको उत्पन्न किया जा सकता है। उनको जब किसी प्रकार मनुष्यके रक्तमें प्रविष्ट कर दिया जायगा, तो मनुष्य प्रेमका अनुभव करने लगेगा।”

विलियम बहुत ध्यानपूर्वक सब-कुछ मूर्तिवत् बैठा सुनता रहा। उसने एकाएक चौंककर पूछा—“जब कीटाणुओंको रक्तमें प्रविष्ट कर दिया जायगा, तो मनुष्य किसके प्रति प्रेमका अनुभव करेगा?”

“उस व्यक्तिके प्रति, जिसे वह कीटाणुओंके रक्तमें प्रविष्ट होनेके पश्चात् सबसे पहले देखेगा।”

इसके बाद विलियम बहुत देर तक सरपर हाथ रखे गम्भीरतापूर्वक सोचता रहा। फिर अपनी कुर्सी जेम्सके और अधिक समीप सरकाकर कहने लगा—“देखो जेम्स, मुझे उन कीटाणुओंकी बहुत जरूरत है और उसके लिए जितना धन माँगो, मैं दे सकता हूँ। देखो, मेरे पास अतुल सम्पत्ति है। सुखके अथाह साधन हैं; किन्तु एक वस्तुके बिना मुझे जीवन भार-स्वरूप हो गया है।” वह उन्मत्तकी भाँति कहता गया—“लिलीका नाम तो तुमने सुना होगा। वह अपने सौन्दर्यके लिए बहुत प्रसिद्धि पा चुकी है। जेम्स, वह है भी बहुत सुन्दर। शायद उस-जैसी सुन्दर स्त्री अभी तक पृथिवी-तलपर कोई हुई नहीं। वह मेरे मकानके समीप ही रहती है। मैंने बहुत प्रयत्न किया; किन्तु मैं उसे अपनी ओर आकर्षित नहीं कर सका। उसका प्रेम प्राप्त करनेके लिए मैं अपनी लाखोंकी सम्पत्ति न्योछावर कर सकता हूँ, क्योंकि उसकी अनुपस्थितिमें वह मुझे सुखी बनानेमें नितान्त असफल है। जब और कोई चारा न रहा, तो मैं तुम्हारी शरणमें.....”

“हाँ, मैं तुम्हारा कार्य कर सकता हूँ; किन्तु तुमको मेरे प्रयोगके लिए बीम हज़ार देना होगा।”

“मुझे इसमें कोई आपत्ति नहीं। इससे भी अधिककी यदि आवश्यकता हुई, तो भी मैं इनकार नहीं करूँगा।” यह कहते हुए उसने जेबसे एक चित्र निकाला और फिर कहना आरम्भ कर दिया—“जेम्स,

तुमने शायद अभी तक लिलीको नहीं देखा। देखो, यह उसका चित्र है। कितना निर्मल सौन्दर्य है, कितना भोला चेहरा है।”

विलियमने चित्र जेम्सके हाथमें दे दिया। जेम्सने एक उड़ती-सी नज़र चित्रपर डालकर उसे मेज़पर रख दिया और टकटकी बाँधकर विलियमके चेहरेकी ओर देखते हुए कहा—“हाँ विलियम, तो जितना शीघ्र रुपया मुझे मिल जाय, उतना ही अच्छा, क्योंकि मेरा प्रयोग बीचमें ही रुका हुआ है। मैं बिना रुपये लिए ही तुम्हारा कार्य कर देता; किन्तु मुझे इस समय रुपयोंकी आवश्यकता है। प्रयोगमें सफलता हो जानेपर उसका दुगुना रुपया मैं तुम्हें लौटा सकता हूँ।”

“चेक मैं आज ही सायंकालको तुम्हारे पास भेज दूँगा। रुपयोंकी प्राप्तिका एक प्रतिज्ञापत्र तुम्हें लिख देना होगा। और हाँ, एक बात और। मेरा कार्य समाप्त करके तुम्हें अपने प्रयोगमें हाथ डालना होगा।”

“उसकी तुम चिन्ता न करो, क्योंकि उसका बहुत-सा कार्य स्वर्णवाले आविष्कारके लिए प्रयोग आरम्भ करनेसे पूर्व ही मैंने कर लिया था।”

जब विलियम वहाँसे चला गया, तो जेम्सको ज्ञात हुआ कि विलियम लिलीका चित्र वहीं भूल गया है। उसने प्रयोगशालामें ही मेज़की दराज़में वह चित्र रख दिया। उसके बाद वह प्रयोगशालामें चक्कर लगाने लगा। प्रायः हर दस मिनट बाद उसकी दृष्टि घड़ीकी ओर बरबस खिंच जाती थी। उसे ऐसा प्रतीत हुआ, मानो आज समयकी चाल बहुत धीमी है। ज्यों-त्यों करके दिन बीता। सायंकालको वह स्वयं प्रतिज्ञापत्र लिखकर विलियमके घर पहुँचा और चेक ले आया।

उसने दोनों प्रयोग आरम्भ कर दिये, और एक सप्ताहमें प्रेम-कीटाणुओंका प्रयोग समाप्त हो गया। उसमें केवल एक कार्य शेष था, और वह था उस तरल पदार्थको, जिसमें कीटाणु उत्पन्न किये थे, ‘डाइल्यूट’ (Dilute) करना, क्योंकि उस मूल दशामें तो उस तरल पदार्थकी एक बूँदका दसवाँ हिस्सा भी

मनुष्यके रक्तमें पहुँचकर उसे उन्मत्त बना देनेके लिए पर्याप्त था। उसके प्रभावको कम करनेकी विधि वह सोच रहा था कि सहसा उसने कीटाणुओंकी शीशीको मेज़पर रख दिया। वह प्रयोगशालाके दूसरे कमरेमें आया, जहाँ उसके स्वर्णवाले आविष्कारके यन्त्र लगे थे। समय लगभग तीनका होगा। प्रयोगशालाके उस कमरेमें प्रकाश आनेके लिए केवल एक खिड़की थी। इस समय वह भी काले परदेसे ढकी थी। कमरेमें सूर्यका प्रकाश किसी ओरसे भी नहीं आ सकता था। कमरेके मध्य भागमें एक बड़ी मेज़ बिछी हुई थी। उसपर काँचका एक बड़ा-सा यन्त्र रखा था, जो दोनों किनारोंपर पतला और बीचमें गोलाकार था। यन्त्र अन्दरसे खोखला था। उसमें कुछ तार लगे थे, और वे बाहर बिजलीके तारोंसे जुड़े हुए थे। सारे कमरेमें बिजलीके तारोंका जाल-सा फैला हुआ था। उस यन्त्रकी एक ओरकी नलीमें कोई तरल पदार्थ भरा था। कमरेमें चारों ओर भीमकाय यन्त्र लगे थे। वैज्ञानिकने एक बटन दबाया, जिससे एक यन्त्रका बहुत भारी पहिया अति शीघ्र गतिसे घूमने लगा। उसके साथ ही घड़घड़ाहटके शब्दसे कमरा गूँज उठा और उस काँचके यन्त्रमें लगे तार चमकने लगे। इसके बाद वैज्ञानिकने एक और बटन दबाया। तुरन्त एक और यन्त्रमें लगा पिस्टन (Piston) तेज़ीके साथ चलने लगा। उसके चलते ही साँय-साँयकी ध्वनि हुई। उसका सम्बन्ध भी बीचके उस काँचके यन्त्रसे था। उस यन्त्रके चलनेसे काँचके बड़े यन्त्रमें लगे चमकते हुए तारोंमें से प्रकाश निकलने लगा, और लगभग आध घंटेके बाद सारा कमरा एक विचित्र प्रकारके नीले प्रकाशसे जगमगा उठा। वैज्ञानिकने एक प्रकारके लाल ओवरकोटसे अपने शरीरको ढक लिया और कोई धूपके चश्मे-जैसी वस्तु आँखोंपर लगा ली। इसके बाद वैज्ञानिकने वह खिड़की खोल दी। एक परख-नलीको लाकर समीप ही रखी हुई बिजलीकी अंगीठीमें रख दिया और एक

दर्पण (Concave Mirror) द्वारा उस काँचके यन्त्रसे निकलनेवाली नीली किरणोंको उस परख-नलीपर केन्द्रित कर दिया।

अब वह उसी कमरेमें आ गया, जिसमें पहले कार्य कर रहा था। उसने कोई यन्त्र निकालनेके लिए मेज़का दराज़ खोला और उसकी दृष्टि लिलीके चित्रपर पड़ी। 'अरे ! यह अभी तक यहीं पड़ा है।' उसने कुछ आश्चर्यके साथ कहा—'विलियम, इतनी बार यहाँ आया ; किन्तु उसे यह चित्र लौटाना याद ही नहीं रहा।' वह चित्रको ध्यानपूर्वक देखने लगा। विलियमकी प्रेमिका कोई बहुत सुन्दर तो है नहीं, फिर-न-जाने वह क्यों इसके पीछे इस प्रकार पागल हो रहा है।' उसने एक गहरी साँस ली, फिर उस चित्रको मेज़पर रख दिया और कीटाणुओंकी वह छोटी-सी नली उठाई। नली लगभग दो इंच लम्बी थी और तरल पदार्थसे लबालब भरी थी। उन्हें 'डाइल्यूट' करनेकी समस्यापर वह विचार करने लगा। 'यह भी कैसी विचित्र वस्तु है।' वह गुनगुनाया—'इतनी ज़रा-सी शीशी और सैकड़ों मनुष्योंको उन्मत्त बनानेकी शक्ति अपने अन्दर कैद किये है।' इसके बाद वह माथेपर हाथ रखकर सोचने लगा—'इसकी एक बूँद किसी उपयुक्त तरल पदार्थकी सौ बूँदोंमें मिलाई जाय, तब कहीं यह प्रयोगके लिए उपयुक्त हो सकती है।'।

उसने बड़ी सावधानीसे शीशीकी डाट खोली और उसे अशुद्धदर्शक यन्त्रसे देखा। कुछ देर बाद डाट बन्द करने लगा कि सहसा एक चीख उसके मुँहसे निकल गई। डाट जोरसे दब गई और काँचकी वह छोटी-सी शीशी हाथमें ही टूट गई थी। काँचका एक टुकड़ा अंगूठेमें घुस गया, रक्त बहने लगा। वह तरल पदार्थ अंगुलियोंमें बह गया। वह फुर्तीके साथ रुमाल उठानेके लिए मेज़पर झुका और उसकी दृष्टि समीप रखे हुए लिलीके चित्रपर पड़ी। उसने चित्रको उठा लिया और उन्मत्तकी

भाँति उसे घूरकर देखने लगा। उसके सरमें चक्कर-सा आ गया। वह आँखें मूँदकर पीछे कुर्सीपर झुक गया। कुछ देर पश्चात् उसने आँखें खोल दीं और प्रकम्पित स्वरमें कहा—‘लिली ! लिली !’ फिर अपने वालोंको नोचते हुए बोला—‘वैज्ञानिक, नहीं, नहीं....’ तुम नहीं, तुम वैज्ञानिक हो.... तुम्हारा आविष्कार....’ वह अचेतन हो गया। कुछ देर तक वह उसी प्रकार वेसुध कुर्सीपर पड़ा रहा, फिर उछलकर उठ खड़ा हुआ। ऐसा प्रतीत होता था, मानो उसमें दस व्यक्तियोंका बल आ गया हो। वह चिल्लाया—‘लिली ! लिली !’ और वही लाल ओवरकोट पहने घरसे निकल पड़ा। अब उसने दौड़ना आरम्भ किया। कभी-कभी उसके मुखसे निकल जाता था—‘लिली ! लिली !’ वह लिलीके घरकी ओर दौड़ता चला जा रहा था। विलियमने दूरसे उसे इस दशामें देखा। वह वैज्ञानिककी इस दशापर काँप उठा। उसने आवाज़ दी—‘जेम्स, जेम्स !’

किन्तु जेम्स दौड़ा चला जा रहा था। ‘क्या मैं तुम्हें प्राप्त न कर सकूँगा, लिली ? नहीं, यह कभी नहीं हो सकता।’ विलियमके कानोंमें ये शब्द पड़े, और उसने देखा कि जेम्स आँखोंसे ओमल हो गया। जेम्स सीधा लिलीके घर पहुँचा। दरवाज़ेपर उसने कोठीके मालीको देखा और उससे प्रश्न किया—‘लिली कहाँ है ?’

‘वह तो अभी विदेशके लिए प्रस्थान कर चुकी है। कोई एक घंटा हुआ। शायद अभी तक जहाज़ छूटा नहीं होगा।’—मालीने जेम्सको आँखें फाड़-फाड़कर देखते हुए उत्तर दिया।

‘अभी जहाज़ छूटा नहीं होगा।’ जेम्सने लड़खड़ाती हुई आवाज़में कहा और बन्दरगाहकी ओर दौड़ पड़ा। माली कठपुतलेके समान वहींपर खड़ा रह गया।

x

x

x

रातको बड़े जोरकी आँधी आई। वैज्ञानिककी

प्रयोगशालामें मेशीनें घड़घड़ाहटके साथ चल रही थीं। बाहर आँधीने एक तूफ़ानका रूप धारण कर रखा था। प्रयोगशाला जनशून्य थी। आँधीके झोंके खुली हुई खिड़कीसे अन्दर आ रहे थे। दरवाज़ोंकी खड़खड़ाहटने यन्त्रोंकी घड़घड़ाहटके साथ स्वर मिलाया। हवाके झोंकोंसे बिजलीके तार हिलने लगे। हिलनेकी वजहसे बिजलीके तार मिले। न-जाने कितनी तेज विद्युत-शक्ति उनमें दौड़ रही थी कि तारोंके मिलनेसे आगकी लपट उनमें से निकलने लगी, मानो काँचमें से निकलनेवाले नीले प्रकाशके साथ संघर्ष कर रही हो। लोगोंने थोड़ी देरके बाद देखा कि वैज्ञानिककी प्रयोगशालामें आग लग गई है। उस विद्युत द्वारा फैली हुई प्रचण्ड ज्वालाका कुछ भी प्रतिकार न हो सका और रात-भरमें वहाँ सब-कुछ जलकर स्वाहा हो गया।

सुबहको विलियमने अपने मित्रोंसे बताया कि जब मैंने जेम्सको उस विचित्र दशामें एक लाल-सा ओवर-कोट पहने भागते हुए देखा और अपने-आपको उसका पीछा करनेमें असमर्थ पाया, तो वहाँ टैक्सी तलाश करने लगा। टैक्सी बहुत देर बाद मिली। मैंने उसके मुँहसे लिलीका नाम सुन लिया था। वहाँसे मैं सीधा लिलीके घर आया। वहाँ मुझे ज्ञात हुआ कि वह जहाज़की ओर चला गया। मैं भी वहाँसे जहाज़के लिए रवाना हुआ। मैंने दूरसे देखा, जेम्स जेटीपर खड़ा चिल्ला रहा है—‘रोको जहाज़, नहीं रोकोगे ?’ और जहाज़ किनारेसे बहुत दूर पहुँच गया था। मैं और तेज़ीसे आगे बढ़ा। फिर जेम्सने चिल्लाकर कहा—‘नहीं रोकते जहाज़ ? अच्छा तो लो, मैं वही....’ मेरे मुँहसे निकल गया—‘तुम यह क्या करते हो जेम्स ! देखो, तुम तैरना बिलकुल नहीं....’ इतने ही में जेम्स धड़ामसे समुद्रमें कूद पड़ा। वह दो-चार क्षणों तक सागरकी लहरोंके साथ अठखेलियाँ करता रहा। देखते ही देखते निर्दयी लहरें उसे निगल गईं।

जब जेम्सकी जली हुई प्रयोगशालाकी खोज की गई, तो वहाँ और सामानके साथ किसी धातुके चमकते हुए बहुतसे सुनहले टुकड़े भी मिले। वैज्ञानिकोंने उनका निरीक्षण किया। निरीक्षण किये जानेपर वे शुद्ध स्वर्ण सिद्ध हुए। विलियमने जेम्सके उन दो नवीन आविष्कारोंकी बात वैज्ञानिकोंको बतला दी थी।

उन्होंने बहुत खोज की कि प्रयोगशालामें कोई ऐसी वस्तु मिल जाय, जिसकी सहायतासे वे उन दो नवीन आविष्कारोंके विषयमें अनुसन्धान कर सकें; किन्तु वे अपने प्रयत्नमें सफल न हुए, और वे दोनों विचित्र आविष्कार संसारके लिए सदाकी विचित्र समस्याओंके रूपमें ही रह गये।

जापानकी शिक्षा-प्रणाली

श्री ईश्वरदत्त, विशारद

भारतमें अपने जीवनके सर्वोत्तम समयको शिक्षा-विभागमें बिताते हुए प्रायः मैं यह सोचा करता था कि भारतीय विचार-धारामें इतना गम्भीर और चमत्कारपूर्ण परिवर्तन होनेपर भी हमारी शिक्षा-प्रणाली निस्पन्द एवं गतिहीन क्यों है? क्यों नहीं वह जापान आदि प्रगतिशील देशोंकी भाँति समुन्नत होकर राष्ट्रके जीवनमें रम जाती? दो वर्ष पूर्व मुझे जापान जानेका सौभाग्य प्राप्त हुआ। वहाँकी सर्वतोमुखी अभिवृद्धि देखकर सचमुच दाँतोंतले उँगली दबा लेनी पड़ती है। उनकी नम्रता, व्यवहार-कुशलता और व्यापारिक योग्यता देखकर मनमें स्वतः प्रश्न उठता है कि इस उन्नतिके मूलमें किसका हाथ है? केवल एक ही शब्दमें इसका उत्तर है 'शिक्षा'।

उद्देश्य और नीति

मेईजी शासनकालके तेईसवें वर्षके दसवें महीनेकी तीसवीं तारीखको शाही सील-मुहरके साथ की गई राजकीय घोषणामें शिक्षा-सम्बन्धिनी नीति इन शब्दोंमें निर्धारित की गई—“हमारी प्रजाके लोगो! अपने माता-पिताके प्रति स्नेह भाव रखो। भाई-बहनोंसे प्यार करो। पति-पत्नीके रूपमें तुम एकमत रहो। मित्रके रूपमें तुम सच्चे बनो। शीलवान और सदाचारी बनो। सबके प्रति अपनी करुणाका विस्तार करो। विद्याध्ययन,

कला-परिशीलन करते हुए पूर्ण नैतिक बल एवं बौद्धिक शक्तियोंका विकास करो। जनकल्याण और पारस्परिक स्वार्थोंकी रक्षा करो। शासन-विधानका आदर करो। राजनियमोंका पालन करो, और यदि अवसर आ पड़े, तो राष्ट्री सेवामें साहसपूर्वक अपनी भेंट चढ़ा दो।”

शिक्षा-विभागका संगठन

समस्त राष्ट्री शिक्षा एक सचिवके नियन्त्रणमें होती है। उसकी सहायताके लिए (१) पार्लामेंटरी सलाहकार, (२) पार्लामेंटरी सहायक सचिव, (३) सचिवका प्राइवेट सेक्रेटरी—ये तीन व्यक्ति होते हैं। सहायक सचिवके अधीन राजनियम-विशेषाज्ञाकी जाँच-कमेटी, स्कूलोंके सुपरिन्टेन्डेन्ट तथा निरीक्षक, खोज, धर्म, पाठ्य-पुस्तक, विचार-निरीक्षण, सामाजिक शिक्षा, औद्योगिक शिक्षा, साधारण शिक्षा तथा उच्च शिक्षाके अलग-अलग उप-विभाग, जो कई छोटे-छोटे कार्योंमें विभक्त हैं, होते हैं। इस उप-सचिवकी निगरानीमें एक शिक्षा-समिति भी होती है।

शिक्षा-संचालन

जापानकी शिक्षा - प्रणालीकी आधारशिलामें राष्ट्रीयताका मूलतत्त्व निहित है। इसीलिए वहाँ शिक्षाकी वागडोर सर्वथा राज्यके हाथमें है। कार्यकी

सुविधा और स्थानीय आवश्यकताओंको लक्ष्यमें रखकर प्रबन्ध-दृष्टिसे थोड़ा-बहुत काम स्थानीय सार्वजनिक संस्थाओंको भी सौंप दिया गया है। व्यक्तिगत रूपसे जो व्यक्ति शिक्षाके लिए स्कूल, कालेज या किसी अन्य प्रकारकी शिक्षा-संस्था खोलना चाहते हैं, उनको कुछ शर्तें पालन करनेपर राज्यकी ओरसे आज्ञा दे दी जाती है; पर उन्हें शिक्षा-विभागके अन्तिम आदेश माननीय होते हैं। शिक्षा-विभागका व्यय भी इन्हीं तीन साधनों—(१) राज्य, (२) स्थानीय जनसंस्थाओं और (३) व्यक्तिगत संस्थाओं—से चलता है। इस प्रकार सार्वजनिक संस्थाओंकी सहायतासे सारे जापानमें अन्ध-मूक-बधिर-विद्यालय, कन्या-पाठशाला, औद्योगिक स्कूल, किंडरगार्टन स्कूल आदि उपयोगी संस्थाओंका जाल बिछा हुआ है। तोक्यो जैसे महान वैभवशाली नगरकी जगमगाती हुई सड़कोंसे लेकर सुदूर समुद्र-तटपर स्थित किसी मछुओंके गाँवकी गलियों तक निकल जाइये, सर्वत्र शिक्षाका चमत्कार दिखाई पड़ेगा।

जापानमें १,६६,६०,२७६ शिन्टो-धर्मानुयायी हैं, ४,१४,७३,८५१ बौद्ध और २,८७,२६६ ईसाई हैं। उन्होंने भी अपने धर्म-प्रचारकोंके लिए ट्रेनिंग स्कूल खोल रखे हैं। वे सब भी शिक्षा-सचिवकी देखरेखमें अपना काम करते हैं।

मार्च सन् १९३३ में ४५,७६३ शिक्षा-संस्थाएँ थीं, जिनमें १,३४,०८,६०१ विद्यार्थी कला, राजनीति, इतिहास, दस्तकारी, चित्रकारी आदि बातोंकी शिक्षा—प्रारम्भिक अक्षर-विज्ञानसे लेकर विश्वविद्यालयकी सर्वोच्च शिक्षा तक—प्राप्त करते थे। जापानमें अनिवार्य सैन्य शिक्षा (Conscription) के लिए जो परीक्षा होती है, उससे विदित होता है कि बहुत कम व्यक्ति निरक्षर हैं। सन् १८७२ में जो शिक्षा-विधान फ्रेंच शिक्षा-विधानके आधारपर रचा गया था, उसमें अब तक अनेक परिवर्तन किये जा चुके हैं। ३ अप्रैल सन् १९३४ को शाही मैदानमें राज्यके प्रारम्भिक अध्यापकोंके समक्ष सम्राटने जो भाषण दिया

था, उसका सारांश यह है कि साम्राज्यका अभ्युदय जातीय नैतिकतापर और जातीय नैतिकता प्रारम्भिक शिक्षापर आश्रित है। विदेशी विचारोंका जापानी वातावरणमें इस प्रकार समन्वय किया गया है कि जिसे अनुभव करते ही प्रशंसा करनी पड़ती है।

शिक्षाका वर्गीकरण

तीनसे लेकर पाँच वर्ष तकके बच्चोंके लिए बाल-वाटिका या किंडरगार्टन स्कूल हैं, जहाँ प्रकृति, चित्रकारी तथा अन्य पदार्थोंके द्वारा उन्हें साधारण शिक्षाके साथ-साथ पढ़नेमें अभिरुचि उत्पन्न कराई जाती है। छै वर्षसे लेकर ग्यारह वर्ष तककी अवस्थाके विद्यार्थियोंके लिए साधारण प्रारम्भिक शिक्षाके स्कूल हैं, जहाँ विद्यार्थी अक्षर-ज्ञानके अतिरिक्त साधारण गणित, प्रान्तीय भूगोल तथा कुछ व्यावहारिक शिक्षा पाता है। व्यायामके लिए इन स्कूलोंमें जैसा प्रबन्ध है, हमारे भारतीय विश्वविद्यालयोंमें उसका एक हिस्सा भी न होगा। बागहसे लेकर १८ वर्ष तकके लिए हाई स्कूल हैं, जहाँ पहले चार वर्ष साधारण कोर्सके निमित्त तथा शेष तीन वर्ष उच्च शिक्षा या विश्वविद्यालयकी शिक्षाके लिए नियत हैं। जो विद्यार्थी औद्योगिक शिक्षामें रुचि रखते हैं, वे सोलह वर्षकी अवस्था स्कूलोंमें समाप्त करके तत्सम्बन्धी शिक्षाके लिए दस्तकारीवाले विद्यालयोंमें चले जाते हैं। कुछ लड़कों या लड़कियोंकी नार्मल स्कूलोंमें भी इसी अवस्थाके बाद भरती की जाती है।

जवसे जापानमें रूस आदि उग्र परिवर्तनशील देशोंकी शिक्षा फैली है, वहाँके अधिकारी युवकोंकी विचार-धाराको नियमित रूपमें प्रवाहित होने देनेके लिए विशेषरूपसे सतर्क हो उठे हैं। युवकोंकी शिक्षाके लिए, उनके विचारोंपर सशंक नियन्त्रण रखनेके लिए, नये-नये उपाय सोचे जाते हैं। वहाँ विचार धारापर नियन्त्रणकर्त्री समिति भी स्थापित कर दी गई है। मजदूरोंके लिए रात्रि-पाठशालाएँ हैं। अंधे, बहरे, गूंगे सभी शिक्षाके प्रसादके पुरस्कृत किये

गए हैं। राज्य उनके प्रति भी सहानुभूति रखता है, जिससे वे अपने दुःखी जीवनकी धड़ियोंका बोझ कुछ हल्का कर सकें। अब हम शिक्षाके भिन्न-भिन्न अंगोंपर प्रकाश डालेंगे।

प्रारम्भिक शिक्षा

जापानमें ६ वर्षसे लेकर १४ वर्ष तक स्कूल जाने-योग्य अवस्था मानी गई है। वहाँपर अनिवार्य शिक्षा प्रचलित है। प्रत्येक पिता या संरक्षकका कर्तव्य है कि वह अपने बालकको पढ़ने भेजे। मानसिक हीनता अथवा शारीरिक हीनतापर ही बालकको इस अनिवार्य शिक्षा-नियमसे मुक्ति मिल सकती है। प्रारम्भिक शिक्षामें बच्चोंको विशेषकर रहन-सहन, सदाचार, नम्रता, माता-पिता तथा भाईके प्रति नीतिकी साधारण बातें सिखलाई जाती हैं, जिससे वे जातिके सुयोग्य और उपयोगी अंग बन सकें। साथमें शारीरिक उत्कर्षपर भी यथेष्ट ध्यान दिया जाता है। इस प्रकार ये बच्चे जीवन-कर्तव्यकी क्रियात्मक शिक्षा पाते हैं। स्कूलोंमें स्वच्छ वस्त्रधारी, प्रसन्न मुख, सावधान और निरालस्य गतिसे घूमते हुए बालकोंकी मंडलियाँ देखकर हमारे भारतकी दुर्दशा और बेबसीपर रोना आता है। समाचारपत्रोंमें हमारे भारतीय मिनिस्ट्रोंकी स्पीचों, दौड़ों और रंगीन गार्डन-पार्टियोंसे कालम-के-कालम रंगे रहते हैं; पर देहातोंकी बात जाने दीजिए, अकेले कानपुर, कलकत्ता, देहली-जैसे प्रगतिशील नगरोंमें भी जापान-जैसा आदर्श प्रारम्भिक स्कूल न मिलेगा। जापानी कवि नोगुचीने जापान पहुँचनेपर भारतीय संस्मरणोंको ब्राडकास्ट (बेतारके यन्त्र) द्वारा सुनाते समय यहाँका अच्छा खाका खींचा था।

जापानमें स्कूल जाने-योग्य अवस्थाके सन् १९३३ में १,०७,५४,९६२ बच्चे थे, जिनमें ५३,०१,८४८ लड़कियाँ थीं। इनमें से ९९.५७ प्रतिशत लड़कों और ९९.५६ प्रतिशत लड़कियोंके नाम स्कूलोंके रजिस्ट्रोंमें दर्ज थे। यह संख्या किसी भी देशके लिए मान और गर्वका कारण हो सकती है।

माध्यमिक शिक्षा

बालकोंके लिए मिडिल स्कूल और बालिकाओंके लिए हाई स्कूल माध्यमिक शिक्षाके अंग हैं। इसके अतिरिक्त औद्योगिक और युवक विद्यालयोंकी व्यवस्था भी की गई है, जिससे वे व्यापार और कला-कौशलकी क्रियात्मक शिक्षा पा सकें। मिडिल स्कूलकी शिक्षा पाँच वर्ष तक होती है। इसमें नीति, नागरिक धर्म, जापानी भाषा, चीनी भाषा, इतिहास, भूगोल और किसी यूरोपियन भाषाकी शिक्षा दी जाती है। सन् १९३३ में इस प्रकारके स्कूलकी संख्या ५५८ थी, जिनमें ३,२९,४५९ विद्यार्थी शिक्षा पाते थे।

स्त्री-शिक्षाका पाठ्यक्रम सर्वथा भिन्न है। क्रियात्मक व्यवहारको ध्यानमें रखकर उन्हें सुईकारी, क्रोशियाकारी और गृह-विज्ञानके साथ-साथ अन्य विद्याएँ भी पढ़ाई जाती हैं। उन्हें फूलके गुलदस्ते बनाना, घर सजाना, स्वच्छता तथा बाग़वानी आदि विभिन्न विषयोंकी शिक्षा भी दी जाती है। चुनी हुई लड़कियोंको उच्च शिक्षा भी दी जाती है। संगीत, जिमनास्टिक आदि भी गृह-विज्ञान-कोर्समें सम्मिलित हैं। गर्ल्स हाई स्कूलोंकी संख्या सन् १९३३ में ९६३ थी, जिनमें ३६१,७३९ लड़कियाँ थीं।

औद्योगिक विद्यालय

जापानकी औद्योगिक प्रगतिको ध्यानमें रखकर विभिन्न उद्योग-धन्धोंकी स्थानीय महत्ताके अनुसार औद्योगिक स्कूलोंकी व्यवस्था की गई है। व्यापारिक विषयोंकी शिक्षाका भी प्रबन्ध किया गया है। जापानी जनता इससे बहुत सन्तुष्ट और प्रसन्न है। सिल्कके कीड़े पालना, ऊँचे दरजेकी चीज़ें बनाना, वेत, सैलूलाइड आदिके सामान बनाना—ये सब बातें इन स्कूलोंमें सिखाई जाती हैं। सन् १९३३ में १०२४ औद्योगिक विद्यालय थे, जिनमें २,९८,८९३ विद्यार्थी शिक्षा पाते थे।

युवक-विद्यालय

अप्रैल १, १९३५ को एक नई योजनाका जन्म हुआ, जिससे जापानी जनतिका लिए युवकोंको प्रारम्भिक शिक्षाके बाद व्यापार, कारीगरी, कला, भवन-निर्माण,

इंजीनियरी, मेशीनके काम तथा अन्य बातें सिखानेके साथ-साथ नीति, नागरिक धर्म और शारीरिक उत्कर्षकी शिक्षा दी जाती है। ऐसे स्कूल स्थानीय आवश्यकताओंको लक्ष्य करके खोले जाते हैं। इनमें जूनियर कोर्समें लड़कोंके लिए कम-से-कम सालमें २१० घंटे और लड़कियोंके लिए भी २१० घंटे शिक्षा दी जाती है। यह दो सालका कोर्स होता है। सीनियर कोर्स युवकोंके लिए पाँच तथा युवतियोंके लिए तीन सालका होता है। इसमें प्रत्येक वर्ष १८० घंटोंसे अधिक शिक्षा दी जाती है। इस प्रकारकी संस्थाएँ १५,३१५ हैं, जिनमें १,४१४,८८६ विद्यार्थी शिक्षा ग्रहण करते हैं।

उच्च शिक्षा

हायर स्कूल (Higher School), स्पेशल स्कूल, स्पेशल औद्योगिक स्कूल और विश्वविद्यालय उच्च शिक्षाके अंग हैं। शिक्षाको पूर्ण करना इन विद्यालयोंका ध्येय है। अध्यापकोंकी शिक्षाके लिए उच्च श्रेणीके ट्रेनिंग कालेज, नार्मल स्कूल, स्त्री-नार्मल स्कूल आदि संस्थाएँ खुली हैं। उच्च शिक्षाका पाठ्यक्रम दो विभागोंमें, (१) 'साधारण', जो चारवर्षका है, और (२) 'उच्च', जो तीन वर्षका है, बँटा है। १९३३ में हायर स्कूल, जो उच्च शिक्षा देते थे, कुल २४ थे, और जो उच्च और साधारण शिक्षा देते थे, आठ थे। सब प्रकारके उच्च शिक्षावाले विद्यालयोंकी संख्या ५१३ थी, जिनमें १६०,०३६ विद्यार्थी शिक्षा पाते थे। उच्च शिक्षामें तर्क, दर्शन, विज्ञान, साहित्य, राजनीति, विदेशी भाषाएँ, मनोविज्ञान, आचारशास्त्र, गणित, रसायन, जीवशास्त्र, वनस्पतिशास्त्र, खनिज-विज्ञान, भूगर्भ-विज्ञान, ज्योतिष, इंजीनियरिंग, निर्माणकला, अर्थशास्त्र, इतिहास आदि विषयोंकी शिक्षा दी जाती है।

विश्वविद्यालय

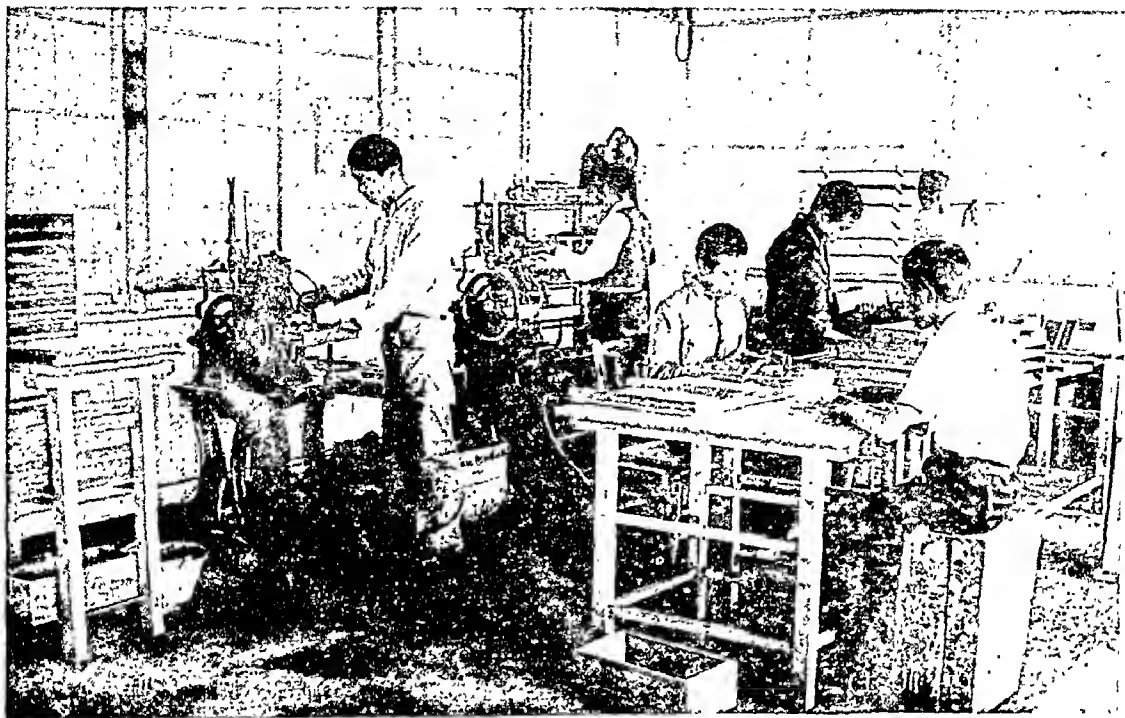
विद्या और विज्ञानके विभिन्न अंशोंसे विश्वविद्यालय बनता है; पर किसी एक ही विद्यासे भी विश्वविद्यालय खुल जाता है। यहाँ खोज और विशेष उच्च (Post-Graduate) शिक्षाका प्रबन्ध होता है। यदि योग्यता

प्रमाणित हो जाय, तो भारतीय तथा अन्य यूरोपीय विश्वविद्यालयोंकी तरह यहाँकी उच्च-से-उच्च उपाधियाँ प्रदान की जाती हैं। सन् १९३३ में यहाँ ४७ विश्वविद्यालय थे, जिनमें ७०,१६२ विद्यार्थी शिक्षा प्राप्त करते थे। हायर स्कूल पास करनेपर तीन साल बाद यहाँ 'शैकुशी' (एम० ए०) की डिग्री प्रदान की जाती है।

उपसंहार

यही नहीं, जापानकी सरकार प्रतिवर्ष लाखों रुपया अनिवार्य शिक्षा-योजना सफल बनानेमें व्यय करती है। अध्यापकोंको अतिरिक्त वेतन और मकान-भाड़ा-एलाउंस देती है। एक स्पेशल शिक्षा-फंड स्थापित किया गया है, जिससे शिक्षा-विस्तारमें सहायता दी जाती है। इस प्रकार शिक्षा-जैसी शक्तिके लिए सरकार सब कुछ कर रही है। शाही भूकम्प-अनुसन्धान-समिति, वेधशाला, ऐतिहासिक स्थान, प्रयोगशाला आदि उपयोगी संस्थाओंपर प्रतिवर्ष करोड़ों येन खर्च करके सरकार उन्नतिमें सहायक हो रही है। बालचर-संस्थाने तो यहाँ आश्चर्यजनक उन्नति की है। २४,६७,१६६ युवक तथा १५,२२,०४१ युवतियाँ ऐसी समितियोंकी सदस्यतामें सम्मिलित हैं, जो देशोन्नति-आन्दोलनमें सहायक होती हैं। सिनेमा द्वारा शिक्षाका भी यहाँ प्रबन्ध किया गया है। देशमें १७०८ किंडरगार्टन या बाल-वाटिकाएँ हैं। अन्ध-विद्यालय ७८ हैं, जिनमें ४६१३ विद्यार्थी हैं। मूक-वधिर-विद्यालय ५६ हैं, जिनमें ४३७६ विद्यार्थी हैं। समस्त शिक्षा-विभागका व्यय है ५५,८२,८६,००० येन।

अन्तर्राष्ट्रीय गति - विधिको सावधानीसे लक्ष्य करनेवाला जापान निरन्तर आगे बढ़ता जा रहा है, और हम? हमारे शिक्षा-विभागकी हृदयहीनताकी बात तो जाने दीजिए, अपनी वेवसीपर दूसरोंको दोष देनेमें ही समय बिताते हैं। क्या कभी वह समय भी आयेगा, जब हम इसी प्रकार अपने बच्चोंको राष्ट्रीय शिक्षा-प्रणालीसे पढ़ावेंगे?



जापानके स्कूलोंमें औद्योगिक शिक्षा



जापानी लड़कियाँ बागवानीकी शिक्षा पा रही हैं



कलकत्तेमें राष्ट्रपति पंडित जवाहरलाल नेहरूका स्वागत



मद्रासके समीप मंगलममें पंडित जवाहरलाल नेहरू हिन्दी-प्रचार-सभाके नये भवनका उद्घाटन कर रहे हैं

हम हिमालय-प्रान्त ही देख लें

श्री वाचीराम आर्य

हम हिन्दुस्तानी विदेशियों द्वारा लिखित हिमालयके वर्णनको बड़े चावसे पढ़ते हैं। अपने देशके पर्वतराजका महत्त्व आज हमें विदेशियोंकी कृपासे विदित होता है ! हिमालयसे हजारों मील दूर बसे हुए जर्मन, जापानी और अंगरेज हिमालयके दर्शन करने तथा उसपर चढ़नेके लिए आते हैं। विदेशियोंके लिए हिमालय परम रहस्यमय है। पाश्चात्य जातियोंमें हिमालयकी कौतुकपूर्ण चर्चा होती रहती है ; परन्तु अभाग्य हिन्दुस्तानी अब तक इतना भी प्रयत्न नहीं कर सके कि हिमालय-प्रान्तका भौगोलिक, भौगर्भिक, वानस्पतिक और प्राकृतिक निरीक्षण ही कर लें। जिस पर्वतराजकी चर्चासे हमारे काव्य और पुराण भरे पड़े हैं, जो हिमालय हिन्दू-जातिकी मुक्तिदायिनी गंगा-यमुनाका उद्गम है, जो गौरी, गणेश और महादेवका जन्म-स्थान और वास-स्थान है, जो हमारे शास्त्रकार ऋषि-मुनियोंका प्रिय आवास रहा है, वह हिमालय इस बीसवीं सदीमें भी भारतवासियोंके लिए अज्ञात और अनाकर्षक बना हुआ है।

सैकड़ों मील रेल, मोटर और घोड़ेकी सवारी करके फिर पचासों मील सीधी चढ़ाई चढ़कर, पैने हिम-खंडोंको कुचलते तथा घोर शीतसे थर्राते हुए नागाधिराज हिमालयके मस्तकपर चढ़नेका कौन भारत-सपूत कष्ट उठावे ? परन्तु लम्बे-चौड़े पर्वतराजसे मिले हुए, उसकी जलवायुसे परिपोषित, विस्तृत हिमालय-प्रान्तके परिभ्रमणके लिए ही हमारे वैज्ञानिकों, अन्वेषकों और भौगोलिकोंने क्या किया ? कब वनस्पति-विशारदोंकी कोई टोली वानस्पतिक अन्वेषणके लिए पर्वत-पर्वत घूमी ? कब औषधि-वृद्धीके महापंडितोंने अपना औषधि-ज्ञान बढ़ानेके लिए पर्वत-प्रान्तमें पर्यटन किया ?

हिमालय-प्रान्तमें क्या नहीं है ? अभी तो इसके वृक्ष-वर्गीकी भी नियमित खोज नहीं हुई। इसके पत्थर-

कंकड़ोंका भी कम महत्त्व नहीं है। इसके वन-फूल और वनौषधियोंकी संख्या अगणित है। इसकी हजारों प्रकारकी रूखड़ियों और बेलोंसे अनेक प्रकारके रंग, स्याही, पालिश, कागज, काजल, दन्तमंजन, औषधि और पानके मसाले तैयार हो सकते हैं ; परन्तु दास मल्लाकाके भक्त इधर ध्यान ही नहीं देते।

कुमाऊँके हिमालयमें कुछ बड़े ग्लेशियर हैं। हिमालय-प्रान्तके कुछ गाँव आठ हजार फीटसे लेकर चौदह हजार फीटकी उँचाई तकपर बसे हुए हैं। बदरीनाथ दस हजार फीटसे अधिक उँचाईपर स्थित हैं। इस प्रकारके गाँवोंमें चढ़ना भी समयलवासियोंके लिए कम गौरवकी बात नहीं है। जो हिमालय-प्रान्त समुद्र-तलसे दो हजार फीटकी उँचाईसे पन्द्रह हजार फीटकी उँचाई तक उठ गया है, उसमें वानस्पतिक परिवर्तन भी विविध प्रकारका हुआ है। यह विषय भी अनुशीलन-योग्य है।

हिमालय-प्रान्तकी जड़ी-बूटियोंके विषयमें हमारे मैदानी विद्वानोंकी बड़ी शोचनीय अवस्था है। मुझे हिन्दीके एकमात्र उल्लेखनीय कोष 'हिन्दी-शब्द-सागर' में गुलबनफ़शेका वर्णन पढ़कर खेद हुआ। गुलबनफ़शेकी शाखें बताई गई हैं और उसके पत्ते अनारके पत्तोंकी तरह ! एक बंगाली डाक्टर साहबको चेरीके वृक्षोंकी उत्पत्ति स्कैन्डीनेवियामें ही मालूम है, जब कि हिमालय-प्रान्तमें यह वन्य और ग्राम्य दोनों रूपोंमें पाई जाती है।

यमराज सहोदर वैद्यराजवर्गका तो पंसारी ही परम पथ-प्रदर्शक है। जिस औषधिके नामसे जो-कुछ मूल, फल, फूल दे दिया, वैद्यराजने वही मान लिया। चाहे उनके आसपास ही वह पदार्थ प्रचुर परिमाणमें क्यों न विद्यमान हो। बात यह है कि उनका अज्ञान तो पंसारीसे वही सड़ी-गली, धुनी वस्तुएँ ही खरीदवायेगा।

यदि दस-बीस वैद्योंका दल अपने निबंटु आदिको लेकर हिमालय-प्रान्तकी सैर करे, तो उसे अलभ्य लाभ होगा। वे ज्यों-ज्यों आगे बढ़ेंगे, उन्हें ब्राह्मी, हंसराज, पत्थरलवंग, गुलबनफशा, पाषाणभेद, बाराहीकन्द, बिदारीकन्द, रसौत, कपूर कचरी, शतावर, सालब मिसरी, अमलवेद, लोध्र, तगर, गरुड़वृटी आदि सैकड़ों औषधियोंके दर्शन होंगे। तराईमें अमलतास और श्योनाकसे परिचय होगा।

वत्स, नागरमोथा और दालचीनी भी यह प्रान्त प्रदान करता है। इन्द्रजौके पेड़ोंके, जिसे संस्कृतमें कुटज कहते हैं, यहाँ बड़े-बड़े वन हैं। वसाका (अडूसा), जिसे क्षय और दमेका परम शत्रु कहा गया है, यहाँ बहुत पेड़ होता है। गिलोयसे तो बीसियों वृक्ष आच्छादित रहते हैं। इतने औषधि-समूहको देखकर सहसा मुँहसे निकल पड़ता है कि क्यों हमारे वैद्योंकी काष्ठादि औषधियाँ खूब सस्ती नहीं हैं? कई प्रकारके वनफूल, जिनके बीज आजकल अंगरेजियतके भक्त विलायतसे मँगाते हैं, हिमालय-प्रान्तके पर्वत-पाश्र्वोंमें वन्य रूपमें पैदा होते हैं और कौड़ी मोल मिल सकते हैं।

हिमालय-प्रान्तकी अपनी अलग विशेषता है। यह बात नहीं है कि सारा प्रान्त बहुत ठंडा हो। ऊँचे-ऊँचे पर्वतोंसे घिरी हुई घाटियाँ अपनी उँचाईके अनुरूप कम और अधिक शीतोष्ण होती हैं। दो हजारसे पाँच हजार फीट तककी उँचाईकी घाटियोंमें आम, पपीता, केला, नारंगी, नीबू और अमरुद अच्छा होता है। क्षयरोगका रिपु चीड़ (Pine) चार हजारसे पाँच हजार फीट तककी उँचाईपर होता है। इससे

अधिक उँचाईपर देवदारु होता है। प्रान्तकी उँचाई-निचाई इसके लिए एक वरदान है, क्योंकि पाँच हजारसे अधिककी उँचाईपर खूबानी, नाशपाती, सेब और चेरी होती है। छै हजार फीटसे अधिककी उँचाईपर महासुगन्धित कस्तूरीकी गन्धवाली 'नैरपत्ती' होती है, जिसे कस्तूरीमृगका भोज्य-पदार्थ बताया जाता है।

पहाड़ी लोगोंको अब भी हिमालयकी बहुत-सी जड़ी-बूटियोंका ज्ञान रहता है। साधारण जुलाब, घावका लेप और आँखोंकी दवाके लिए बहुत कम लोग डाक्टर या वैद्योंकी शरण लेते हैं। पर्वतोंमें चेरीके फूलोंके मधुका बड़ा महत्त्व है। हिमालयकी जड़ी-बूटियोंसे महासुगन्धित धूप प्रस्तुत होती है। एक 'नैरपत्ती' के हवनसे ही हवा सुगन्धित हो उठती है।

चट्टानों और धातुओंके अध्ययनके लिए भू-गर्भ-वेत्ताओंके लिए हिमालय एक महान चीज है। इसके पूर्वीय अंचलोंकी छोटी पहाड़ियोंमें नाना प्रकारकी धातुएँ हीरा, चाँदी, ताँबा, सीसा, सोना आदि मिलता है। विस्तृत खोजसे, सम्भव है, अन्य स्थानोंमें भी कुछ धातुएँ—मिल सकें।

हिमालय-प्रान्तके लिए हमारे देशवासियोंमें महान् आकर्षण होना चाहिए। नाना प्रकारके अन्वेषक लोगोंको अपने मिशन इसकी यात्राके लिए खोलने चाहिए? इन यात्राओं और खोजोंके वर्णन प्रकाशित कराये जायँ, इससे हमारे साहित्यके एक अंगकी पूर्ति भी होगी। हिमालय-प्रान्तके लोग अपने प्रान्तमें ऐसे मिशनोंका सदा स्वागत करेंगे तथा सहयोग और सहायता देंगे। प्रबुद्ध भारतको यह कार्य शीघ्र करना चाहिए।



रवीन्द्र-साहित्यमें नारी

श्री दुर्गाप्रसाद पाण्डेय शास्त्राचार्य

पृथिवीपर पैर रखनेके क्षणसे लेकर मृत्युकी अन्तिम घड़ी तक, सुखमें, दुःखमें, हँसी और रुदनमें, सदा ही किसी-न-किसी रूपमें स्त्री-जातिके साथ हमारा सम्बन्ध रहता है। यही कारण है कि संसारके (पुरुष-निर्मित) साहित्यका ६० प्रतिशत भाग इन्हींसे भरा पड़ा है। आधुनिक नारियोंके सम्बन्धमें लिखते हुए रवीन्द्रनाथ ठाकुरने स्वयं इनके ऋणको स्वीकार किया है—“जिन्हें तुम आधुनिका कहती हो, उन्हें मैं पहचानता हूँ, और (सच पूछो तो) कवि-यशके लिए उन्हींके निकट बारह आनेका ऋणी हूँ। आधुनिकाके ही हाथ मैंने ‘यत्परो नास्ति’ (जिससे अधिक हो नहीं सकता, उतना) पुरस्कार भी पाया है, दण्ड भी पाया है। सबूत भी रख गया हूँ। इस कालकी रमणीके रमणीय तालोंमें ही इस धमनीके रक्तका छन्द बँधा हुआ है। नजदीक पाऊँ या खो दूँ, तथापि उसीकी स्मृतिसे आज भी मेरे गानोंमें सुर-सौरभ जगा करता है। जो मनो-लोकमें माधुरी-निकुंजकी दूती हैं, मैंने तो उन्हींके गुणोंका गुंजार किया है। उन दिनों भी कालिदास और वररुचि आदि, जो पुर-सुन्दरियोंके प्रशस्तिवादी थे, जिनकी महिमाका गान करके अपनी वीणाको जगाया था, वे सभी अधुनाके किनारे ही थीं। उन्हींके कल्याणसे काव्यकी अनुशीलना (होती रही) है। पुरुष-कविके भाग्यमें कोई शुभग्रह है, इसीलिए उसके प्रति यह महान अनुग्रह सदा होता आया है—

“आधुनिका जारे बलो तारे आमि चिनि जे,
कवि-यशे तारि काछे बारो आना ऋणी जे।
तारि हाते चिर दिन यत्परो नास्ति,
पेयेछि पुरस्कार, पेयेछिओ शास्ति।
प्रमाण गियेछि रेखे, ऐ कालिनी रमणीर
रमनीय ताले बाँधा छन्द ऐ धमनीर।

काछे पाइ हाराइ-वा तबू तारि स्मृतिसे
सुर - सौरभ जागे आजो मोर गीतिसे।
मनोलोके दूति जारा माधुरी - निकुंजे
गुंजन करियाछि ताहादेरि गुण जे।
से-कालेओ कालिदास वररुचि आदिरा
पुर - सुन्दरीदेर प्रशस्तिवादीरा,
जादेर महिमा - गाने जागालेन वीणा रे,
ताराओ सबाइ छिलो अधुनार किनारे।
ताहादेरि कल्याणे काव्यानुशीलना।
पुरुष कविर भाले आछे कोनो सुग्रह
चिरकाल ताइ तारे एत महानुग्रह।”

रवीन्द्रनाथके साहित्यमें इसी स्त्री-रूप-कूलमें बँधकर प्रेम और कल्याणकी निर्मल धारा नाना रूपोंमें बही है। उनके विभिन्न ग्रन्थोंमें हम नारीके विचित्र रूपोंको देख सकते हैं। वे सभी उनकी रचनाओंमें एक-एक पूर्ण और विशिष्ट रूपको प्राप्त हुए हैं। वे रूप चित्तके जड़ रूप नहीं, बल्कि जीते-जागते हैं। उन्हीं जीवन्त रूपोंमें हमने सदियोंकी सताई हुई, अपनी आनपर जान देनेवाली, प्रेममें पागल, कर्तव्यपर सब-कुछ न्योछावर करनेवाली तथा परिवारके लिए प्राण देनेवाली स्त्रियोंको देखा है। जो नारी देशके घर-घरमें माताके रूपमें, बहनके रूपमें, कन्याके रूपमें, पत्नीके रूपमें अपने-आपको भुलाकर समय बिता रही है, उसे हमारे कविने अमर देवीके आसनपर बिठलाया है। हाँ, कहीं-कहीं कुछ खरापन जरूर है; पर सत्य सुन्दरको छोड़ नहीं सका है।

अपनी ‘दुइ बोन’ में कविने कहा है—“स्त्रियोंकी दो जातियाँ हैं—एक तो प्रधानतः ‘मा’ की और दूसरी है ‘प्रिया’ की। ऋतुके साथ यदि उनकी तुलना की जाय, तो ‘मा’ (की जाति) है वर्षाऋतु। जल-दान देती है, फल-दान देती है, तापसे बचाती है तथा

ऊर्ध्वलोकसे अपनेको विगलित कर देती है, शुष्कता दूर कर देती है और प्रभाव भर देती है ।

“और प्रिया (की जाति) है वसन्तऋतु । गम्भीर है उसका रहस्य, मधुर है उसका माया-मन्त्र ; उसकी चंचलता रक्तमें एक तरंग पैदा कर देती है, जो पहुँच जाती है चित्तके उस प्रकोष्ठमें, जहाँ सोनेकी वीणाका एक निभृत तार नीरव पड़ा हुआ है मंकारकी अपेक्षामें, जिस मंकारसे सारे शरीर और मनमें अनिर्वचनीय वाणी बज उठा करती है ।”

उनके काव्य-साहित्यमें भी इसी तरहके दो नारी-रूपोंको हम देखते हैं—एक है उर्वशीका और दूसरा है लक्ष्मीका—“न-जाने किस क्षणमें सृष्टिके समुद्र-मन्थनसे, अतलके शय्या-तलको छोड़कर दो नारियाँ निकल आई थीं । एक थी सुन्दरी उर्वशी—विश्वके कामना-राज्यकी रानी—स्वर्गकी अप्सरा । दूसरी थी कल्याणमयी लक्ष्मी—विश्वकी जननी—स्वर्गकी ईश्वरी—

“कोन क्षणे

सृजनेर समुद्र मन्थने

उठे छिलो दुइ नारी—

अतलेर शय्या तले छाड़ि ।

एक जना उर्वशी सुन्दरी—

विश्वेर कामना-राज्ये रानी—

स्वर्गेर अप्सरी ।

अन्यजना लक्ष्मी से कल्याणी—

विश्वेर जननी तारै जानि

स्वर्गेर ईश्वरी ।”

एक मादक सौन्दर्यसे हृदयको पागल बना देती है, किन्तु दूसरी अपनी श्री, ही और कल्याणसे शान्तिकी वर्षा करती है । एकको सम्बोधन करके कहते हैं—
“हे अनन्त यौवना उर्वशी, तुम क्या कभी भी वारी उम्रकी अविकसित कलिका नहीं थीं—

“कोनो काले छिले नारि मुकुलिका बालिका वयसी,
हे अनन्तयौवना उर्वशी !”

दूसरीके लिए कहते हैं—“हमारे पुराणोंकी लक्ष्मी केवल सौन्दर्य एवं ऐश्वर्यकी देवी नहीं हैं, वे मंगलकी देवी हैं । सौन्दर्यकी मूर्ति ही मंगलकी पूर्ण मूर्ति है, और मंगलकी मूर्ति ही सौन्दर्यका पूर्ण स्वरूप है । इसीलिए कह उठते हैं—“तुम पवित्र हो, तुम निर्मल हो, तुम देवी हो, तुम सती हो—

“पवित्र तुमि, निर्मल तुमि, तुमि देवी, तुमि सती ।”

नारीका यह लक्ष्मी-रूप और भी अधिक स्पष्ट हुआ है ‘गोरा’ में । “भारतके घरको पूर्ण सौन्दर्य तथा प्रेममें मधुर और पवित्र करनेके लिए ही इनका आविर्भाव हुआ है । जो लक्ष्मी भारतके बच्चेको मनुष्य बनाती हैं, सताये हुएको सान्त्वना देती हैं, तुच्छको भी प्रेमके गौरवसे प्रतिष्ठा देती हैं ; जो दुःख, दुर्गतिमें भी हम दीनोंका त्याग नहीं करतीं, अवज्ञा नहीं करतीं ; जो हमारी पूजनीय होकर भी हमारे जैसे अयोग्यतमकी एकमनसे पूजा करती हैं ; जिनके दोनों निपुण-सुन्दर हाथ हमारे कार्यके लिए उत्सर्ग हैं तथा जिनका चिर-सहिष्णु क्षमापूर्ण प्रेम हमने ईश्वरके यहाँसे अक्षयदान-स्वरूप पाया है ।” उन्होंने ही तो “मनुष्यके हृदयकी सृष्टि, हृदयके प्रकाश, मनुष्यके कर्मक्षेत्रकी कठिनाइयों और दरिद्रताको अपने सौन्दर्य तथा मंगलके कंकण पहने हुए दोनों हाथोंसे घेर रखा है ।”

साधारणतः नारीका यही रूप घर-घरमें हम देखते हैं । जीवनकी सारी कटुताओंको बिना चूँ किये ही अपने ऊपर भेल लेती हैं ; किन्तु औरोंपर आँच नहीं आने देतीं । क्योंकि “कर्मकुशलता स्त्रियोंमें स्वाभाविक होती है । पुरुष स्वभावसे ही आलसी हैं, बाध्य होकर, किसी कामकी जवाबदेही आ पड़नेपर वे काम करते हैं । किन्तु स्त्रियोंमें एक प्रचुरता है, जिसका विकास होता है कर्मपरता (के रूप) में । कार्योंकी इस नियत तत्परतामें स्त्रियोंका स्वभाव यथार्थ मुक्ति पानेके कारण ही तो श्रीलाभ करता है । विलासके आनेसे अथवा अन्य जिन कारणोंसे हो, स्त्रियाँ जहाँ

इस कर्मपरतासे वंचित हो जाती हैं, वहीं उनमें विकार उपस्थित हो जाता है, उनके मनके उसी सौन्दर्यकी हानि होने लगती है तथा उनके यथार्थ आनन्दमें बाधा पड़ने लगती है ।” क्योंकि “इस काम-काजके हिलोलमें स्त्रियाँ और भी विकसित हो उठी हैं । केवल बाहर घूमने जाना ही मुक्ति है, सो तो नहीं, निरन्तर काम करते रहना उससे भी बड़ी मुक्ति है । यहाँकी स्त्रियोंने उस पिंजड़ेसे छुटकारा पाकर ऐसी ही मुक्ति और आत्म-प्रतिष्ठा पाई है । वे अपना अस्तित्व लेकर अपने ही निकट संकुचित नहीं हुई । रमणीके लावण्यसे जिस प्रकार वे प्रेयसी हैं, शक्तिके मुक्ति-गौरवसे वैसे ही वे भाग्यशालिनी भी हैं । कर्मसे ही स्त्रियोंमें यथार्थ श्री आती है ।”

मगर अब प्रश्न यह उठता है कि नारीके उस मोहक रूपकी, जिसे पाकर वह अपनेको भी भूल बैठती है और दूसरोंको भी भुला डालती है, सृष्टि किसने की ? नारीने या पुरुषने ? कविने उत्तर दिया है—
“ऐ नारी, तुम केवल विधाताकी सृष्टि नहीं हो ; पुरुषने तुममें सौन्दर्यका संचार करके तुम्हें अपने अन्तरसे गढ़ा है । तुम आधी मानवी और आधी कल्पना हो—

“शुधु विधातार सृष्टि नह तूमि नारी ;
पुरुष गढ़ेछे तोरे सौन्दर्य संचारि
आपन अन्तर ह'ते !
अर्धक मानवी तुमि अर्धक कल्पना ।”

नारीके उस अर्ध-कल्पित रूपका उज्ज्वल चित्र ‘चोखेर बाली’ में विनोदिनीके रूपमें स्पष्ट देखनेको मिलता है । कविकी रायमें—“पुरुषको यथार्थ होना आवश्यक है ; किन्तु स्त्रियोंको तो सुन्दर होना ही चाहिए । पुरुषके व्यवहारका स्पष्ट होना अच्छा है ; किन्तु स्त्रियोंके व्यवहारमें अनेक आवरण आभास और इंगित होना जरूरी है ।” हाँ, इतना होना आवश्यक जरूर है कि सौन्दर्य यथार्थको ही दबोच न बैठे । नारीके लिए कविने उदारता उड़ेल दी है ।

कह उठते हैं—“नारी यदि केवल नारी हो, केवल पृथिवीकी शोभा, केवल आलोक, केवल प्रेम, मीठे बहानोंसे, सौ-सौ भंगियोंमें पल-पलपर खिलकर, जकड़कर, अकड़कर, बाँधकर, हँसकर, रोकर, सेवा और सोहागसे ढँककर सदा आँखें विछाये रहे, तभी उसका जन्म सार्थक है । क्या होगी उसकी कर्म-कीर्ति, वीर्य-बल और शिक्षा-दीक्षा”—

“नारी यदि नारी हय
शुधु, शुधु धरणीर शोभा, शुधु आलो,
शुधु भालोवासा, सुमधुर छले
शत रूप भंगिमाय पलके-पलके
फूटाये जड़ाए बके बधे हेंसे केंदे
सेवाय सोहागे छेपे चेपे थाके सदा
तवे तार सार्थक जनम । की हइवे
कर्मकीर्ति वीर्यबल शिक्षा दीक्षा तार ।”

नारीके ही रूपमें तो—“जननीका स्नेह, रमणीकी दया, कुमारीका नवीन प्रेम—इन सबने मिलकर मेरी हृदय-वीणामें सम्मिलित गान मंजुत कर दिया । तुम आनन्दमयी मूर्ति हो, तुम्हारे बाहुओंसे आनन्द विकसित हो रहा है और चरणोंको चूमकर आनन्द उच्छ्वसित हो रहा है—

“जननीर स्नेह रमनीर दया
कुमारीर नव-नीरव प्रीति
आमार हृदय-वीणार तले
बाजाये तुलिलो मिलित गीति ।
आनन्दमयी मूर्ति तूमि
फुटे आनन्द बाहुते तोमार
छूटे आनन्द चरण चूमि ।”

आदर्श जननीका चित्र हमें ‘चोखेर बाली’ में अन्नपूर्णा और मासीमाके रूपमें, ‘गोरा’ में आनन्दमयीके रूपमें और ‘शेषेर कविता’ में योगमायाके रूपमें देखनेको मिलता है । जहाँ ऐसी भी माता हैं, जो पुत्रके लिए समाज, संस्कार, आत्मीय-परिजन और यहाँ तक कि अपना सर्वस्व छोड़कर कह सकती हैं—

“वह बचा रहे, यही हमारे लिए बहुत है। हमें और किसी सम्पत्तिकी जरूरत नहीं है।” वहाँ ही गान्धारी-जैसी, धर्म और सत्यके लिए, पुत्रको त्याग करनेवाली जननी भी हैं। दुर्योधनकी नृशंसता और अत्याचारसे वह काँप उठती हैं। हृदयमें उफननेवाले मातृस्नेहको भीतर ही पीकर वह प्रार्थना करती हैं अपने उस अत्याचारी पुत्रको सदाके लिए त्याग देनेकी। धृतराष्ट्र आश्चर्यमें आ जाते हैं, पूछते हैं किसको? उन्हें गान्धारीके शब्दोंपर विश्वास नहीं होता। वह दृढ़तासे बोल उठती हैं—“उसी मूढ़को, जिसके पापके संघर्षणसे धर्मके कृपाणपर भीषण शाण (सान) दिया जा रहा है। त्याग करो, त्याग करो उसे। कौरवोंकी कल्याण-लक्ष्मी जिसके अत्याचारसे अश्रुवदना होकर दिन-रात विदाईके मुहूर्तकी प्रतीक्षा कर रही हैं। क्या मैं माता नहीं हूँ? गर्भभारसे जर्जर होकर जागृत हृत्पिण्डके भीतर उसे क्या वहन नहीं किया, उसके उस अकलंक शिशु-मुखको देखकर मेरा स्नेह-विगलित चित्त दोनों स्तनोंसे सफेद दूधकी धारके रूपमें क्या उच्छ्वसित नहीं हो उठा? जैसे शाखामें फल ठीक उसी प्रकार बहुत दिनों तक मुझे अपने लुद्र वाहु-वृन्तोंसे उसने क्या पकड़ नहीं रखा था—मेरी हँसीसे हँसी, वाणीसे वाणी और प्राणसे प्राण खींचकर? तो भी कहती हूँ, महाराज, आज उसी पुत्र दुर्योधनको त्याग करो। धर्म सम्पत्तिका कारण नहीं है। महाराज, वह सुखका लुद्र सेतु भी नहीं है। धर्म ही धर्मका अन्त है। मैं मूढ़ नारी हूँ, हे स्वामी मैं तुम्हें धर्मकी बात क्या समझाऊँ, तुम तो सब जानते ही हो। अपने पुत्रको इस बार त्याग करो। निष्पापको दुःख देकर स्वयं पूर्ण सुख न भोगो। पौरवोंके महलसे न्याय-धर्मको विमुख न करो—”

“पापेर संघर्ष जार

पड़िछे भीषण शाण धर्मेर कृपाणे

सेइ मूढ़े।

त्याग करो त्याग करो तारे,

कौरव कल्याण-लक्ष्मी जार अत्याचारे

अश्रुमुखी प्रतीक्षिछे विदायेर क्षण
रात्रि दिन।

आमि माता नहिं, गर्भभार जर्जरिता
जाग्रत हृत्पिण्डतले बहिनी कि तारे।
स्नेह-विगलित चित्त शुभ्र दुग्ध धारे
उच्छ्वसिया उठेनि कि दुइ स्तन बाहि
तार सेइ अकलंक शिशुमुख चाहि।
शाखा बन्धे फल यथा, सेइ मन करि
बहु वर्ष छिलो ना कि आमारे आँकड़ि
दुइ लुद्र वाहु-वृन्त दिये, ल'ये टानि,
मोर हासि ह'ते हासि, वाणी ह'ते वाणी
प्राण ह'ते प्राण। तबु कहि, महाराज,
सेइ पुत्र दुर्योधने त्याग करो आज।
धर्म नहे सम्यदेर हेतु
महाराज, नहे से सुखेर लुद्र सेतु
धर्मै धर्मै शेष। मूढ़ नारी आमि,
जान त सकलि।

“पुत्र तव त्यज एइ बार,

निष्पापेर दुःख दिये निजे पूर्ण सुख
भुंजियोना। न्याय-धर्म करो ना विमुख
पौरव प्रासाद ह'ते।”

पुत्रको दण्ड देनेमें पतिको कातर देखकर गान्धारी फिर कह उठती हैं—“हे नाथ, सौगुनी वेदना क्या मुझे नहीं है। प्रभु, दण्डितके साथ दण्डदाता भी समान आघातसे जब (स्वयं) रो पड़े, तभी तो वह सर्वश्रेष्ठ विचार है। जिसके लिए प्राण कुछ नहीं पाता है, उसे दण्ड देना प्रबलका अत्याचार है—

“शतगुण वेदना कि, नाथ,

लागिछे ना मोरे। प्रभू, दण्डितेर साथे
दण्डदाता काँदे जवे समान आघाते
सर्वश्रेष्ठ से विचार। तार तेरे प्राण
कोनो व्यथा नहिं पाय तारे दण्डदान
प्रबलैर अत्याचार।”

और ऐसी माताओंको भी अपने साहित्यमें उन्होंने

स्थान दिया है, जो अन्यायको आदर देकर सन्तानके स्वभावको बिगाड़ देती हैं ; पुत्रके दोष, त्रुटि, चरित्र-शैथिल्यको देखकर भी आँखें बन्द कर लेती हैं । सत्यकी रक्षाके लिए इन्हें छोड़ा भी तो नहीं जा सकता ।

दूसरा चित्र है पत्नीका । वहाँ कल्याणी सती सुन्दर होकर दिखलाई पड़ती हैं, केवल रूपसी होकर नहीं । जहाँ धैर्य, वीर्य और क्षमा प्रेमके प्रकाशको फैलाते हैं, वहाँ (सुन्दरता लानेके लिए) रंगके आयोजन और आडम्बरकी कोई आवश्यकता नहीं । वही गृहिणी यथार्थ गृहिणी है, जो माता-पिता, भाई-बहन, स्वामी-पुत्र, दास-दासी, पास-पड़ोस सबकी इच्छाओंके साथ अपनी इच्छाको मिलाकर अपने संसारमें परिपूर्ण सामंजस्य स्थापित कर सके । ऐसी गृहिणीको सदा ही अपनी इच्छाको कम करना पड़ता है, (और कभी-कभी) त्याग भी करना पड़ता है, तभी उसका इच्छा-निर्मित राज्य सम्पूर्ण होता है । वह सबकी सेविका न बने, तो स्वामिनी भी नहीं हो सकती । उदाहरणके लिए, हम 'दुइ बोन' की गृहिणी शर्मीलाको ले सकते हैं । "शशांक निश्चय जानता है कि दैनिक क्रममें कहीं त्रुटि होनेसे स्त्रीके हाथसे उसका संस्कार तो हो ही जायगा, इसलिए त्रुटि करना ही उसका स्वभाव हो उठा है । स्त्री स्नेहके साथ तिरस्कार करके कहती—'अब मुझसे न चल सकेगा, तुम क्या किसी तरह न सीखोगे ।' यदि शिक्षा ही हो जाती, तब तो शर्मीलाके दिन परती जमीनकी तरह (बेकार और नीरस) हो जाते ।"

रवीन्द्र-साहित्यमें स्त्री-चरित्रका प्रत्येक पहलूसे और उनकी सभी समस्याओंको सामने रखकर विश्लेषण किया गया है । उनका अच्छी तरहसे तो क्या, थोड़ेमें भी दिग्दर्शन कराना इस अल्पकाय लेखकी शक्ति और साध्यके बाहरकी बात है । कविके स्त्री-चरित्रोंमें एक विशेषता यह है कि वे संयम और समाजकी परिधिमें रहकर भी सत्यको सुन्दर और शिवसे पिछड़ने नहीं

देते हैं । दूसरी विशेषता यह है कि जहाँ रक्तका सीधा सम्बन्ध है—बिलकुल अपनापन है, जहाँ अपनी माता और सहोदरा बहन हैं, वहाँ तो थोड़े-बहुत रूपमें उदारताका अभाव है, यहाँ तक कि कुछ संकीर्णता भी दिखाई पड़ती है । मगर जहाँ केवल प्रेमका बन्धन है, स्नेहका रिश्ता है, वहाँ आदर्श भक्ति, प्रति और वात्सल्य-भावकी मूर्ति प्रदीप्त हो उठी हैं । इसका एकदम व्यतिक्रम भी नहीं है, ऐसा तो नहीं कहा जा सकता ; पर इतना तो ज़रूर है कि प्रधानता इसीकी है । 'गोरा' की आनन्दमयी और लीला आदि इसके उदाहरण हैं ।

हमने जो-कुछ अब तक कहा है, वह आदर्श-चरित्रको लेकर ; किन्तु इसकी एक दूसरी भी दिशा है वास्तविकताकी । आदर्श है सत्य और कल्पनाका मिलन, अर्थात् जो अच्छा है, जिसके होनेसे अच्छा हो सकता है और जो मानव-जीवनके उच्च स्तरकी बात है, उसीको हम आदर्श कहते हैं । किन्तु वास्तविकतामें आनेपर हमें कुछ उतरना पड़ेगा । वास्तव सत्यको छोड़कर बच नहीं सकता । उसमें क्षुद्रता है, संकीर्णता है, राग है, लोभ है, वासना है, क्रुत्सा है ; फिर भी हम उसे छोड़ नहीं सकते । उसे भी हम दोष-गुणसे इस मानव-जीवनके क्षेत्रमें देखते हैं । जिस प्रकार केवल आदर्श लोकमें ही निवास करके मनुष्यका प्राण नहीं बच सकता है ; उसके लिए वास्तव चाहिए—मिट्टीकी पृथिवी चाहिए—उसी प्रकार केवल आदर्शमें ही हमारा साहित्य-पिपासु प्राण आनन्द नहीं पाता । उसके लिए भी realistic चरित्रकी अवतारणा चाहिए । हाँ, यह ज़रूर है कि अस्थान और अपात्रमें हो जानेसे वह दोषावह हो जाता है ; किन्तु सफल शिल्पी इस बातको जानते हैं कि कहाँ इस आदर्शके बीचमें विच्छेद लाया जा सकता है ।

'शेषेर कविता' में कविने एक ऐसा ही चित्र अंकित किया है—“ऊँची ऐंड़ीवाला जूता, लेसवाला खुली छातीका जाकेट, मूँगा और अम्बरमें गुँथी हुई

माला, तिरछी भंगीसे लपेटी हुई साड़ी ; खुट-खुट कारके द्रुतलयमें चलती हैं, ऊँचे स्वरमें बोलती हैं और नुकीली हँसी हँसती हैं । मुँह टेढ़ा करके मृदु मुसकानसे, ऊँचे कटाक्षसे ताकती हैं । जानती हैं कि भावमयी चितवन किसे कहते हैं । गुलाबी रेशमी पंखा प्रतिक्षण गालके पास फुर-फुर करके चलाती रहती हैं और पुरुष-मित्रकी कुर्सीके हृत्थेपर बैठकर उसी पंखेके आघातसे उनकी कृत्रिम स्पर्द्धाके प्रति कृत्रिम तर्जन प्रकट करती हैं ।”

और दूसरा चित्र है ‘गोरा’ में आनन्दमयीके रूपमें—“घर-द्वार माँज-घिसकर, धो-पोंछकर, बाँध-छानकर, सिलाई करके, गिनती करके, हिसाब करके, माड़कर, धूपमें सुखाकर, सगे-सम्बन्धी और पास-पड़ोसियोंकी ख़बर लेकर भी मानो उनका समय समाप्त होना नहीं चाहता ।”

स्त्रियोंकी वर्तमान दुरवस्थाको देखकर कविने जिस रूपमें अपनी व्यथाका प्रकाश किया है, वह मौखिक नहीं, अन्तरकी पुकार है । ‘योगायोग’ (कुमुदिनी) में विप्रदास कह रहा है—“मैं देख रहा हूँ, स्त्रियोंका जो अपमान है, वह है सारे समाजमें, किसी एक स्त्रीका नहीं । सहनेको छोड़कर स्त्रियोंके लिए तो और कोई रास्ता है नहीं, कहनेसे ही तो उनपर केवल मार ही पड़ रही है । (किन्तु यह) कहनेका समय आ गया है कि ‘अब सह न सकूँगी ।’ ”

स्त्री-शिक्षाके सम्बन्धमें कहते हुए उन्होंने कहा है—“आज समाजके नाना विषयोंमें परिवर्तन हो गया है । देशकी आर्थिक अवस्थामें इतना परिवर्तन हो गया है कि जीवन-यात्राकी प्रणालीने स्वतः ही भिन्न आकार धारण कर लिया है, और उसीके फल-स्वरूप सम्मिलित परिवारमें भी शिथिलता-सी आ रही है । अतः इसके साथ ही हमारी स्त्रियोंकी अवस्थामें भी परिवर्तन होना आवश्यक और अवश्यम्भावी हो गया है । केवल घरमें पड़ी रहनेवाली हृदय-राशि ढोनेसे ही अब काम नहीं चलेगा, अब तो अपने पैरोंपर खड़ा

होना होगा और उत्साह साथ सब कामोंमें अपने स्वामीका हाथ बैटाना होगा ।”

आज देशको तो उन स्त्रियोंकी आवश्यकता है, जिसके लिए ‘गोरा’ में सुचरितासे गोराने एक दिन कहा था—“तुम्हारे साथ, एक साथ, एक नज़रमें मैं अपने देशको सामने देखूँगा । ऐसा मालूम होता है कि मुझे, मेरे भारतवर्षके लिए, मैं पुरुष तो केवल खटकर मर सकता हूँ ; लेकिन यदि तुम न हो, तो फिर प्रदीप जलाकर उसे वरण करेगा कौन ? भारतवर्षकी सेवा सुन्दर न होगी, यदि तुम उसके पाससे दूर रहो ।”

इस जीवित अभिलाषाको कविने केवल गोरा तक ही सीमित नहीं रखा है । उन्होंने अपनी ‘सबला’ कवितासे यह दिखला दिया है कि आज स्त्रियोंमें भी यही भावना धू-धू करके जल रही है । वे केवल प्रदीप जलाकर वरण करके अब सन्तुष्ट होना नहीं चाहती । उनकी आकांक्षा इससे भी एक कदम आगे बढ़ गई है—

“हे विधाता, नारीको अपना भाग्य जय करनेका अधिकार क्यों नहीं दोगे ? क्यों, दैवात उपस्थित दिनमें रास्तेके किनारे क्लान्त-धैर्य होकर प्रत्याशाकी पूर्तिके लिए जगी रहूँगी ? क्यों केवल आसमानकी ओर ही ताकती रहूँगी, सार्थकताका मार्ग खुद क्यों न खोज लूँगी ? दुर्धर्ष अश्वोंको दृढ़ बल्गा (लगाम) पाशमें बाँधकर सन्धानका रथ तेजीसे क्यों न दौड़ाऊँगी ? दुर्जय आश्वाससे प्राणोंकी वाजी लगाकर दुर्गम दुर्गसे साधनाका धन क्यों न आहरण कर लाऊँगी ?

बधूके वेशमें किंकिणीको बजाती हुई सोहागके गृहमें न जाऊँगी, मुझे प्रेमके वीर्यसे निःशंक बना लो । वीर हाथोंमें एक दिन वरमाला लूँगी—ऐसा लग्न क्या गोधूली-क्षीण आलोकमें एकदम विलीन हो गया है ? अपनी कठिनताको मैं कभी उसे भूलने न दूँगी । दुर्बल लज्जाका अच्छादन फेंक दूँगी, उसकी विनम्रता सम्मान-योग्य नहीं है । लुब्ध समुद्रके किनारे उससे मुलाकात होगी, तरंगके गर्जनका उच्छ्वास मिलनकी

विजय-ध्वनि हो दिगन्तके वक्षमें निक्षेप करेगा ।
माथेका घूँघट खोलकर उसे बताऊँगी, त्रैलोक्यमें
एकमात्र तुम्हीं मेरे हो ।

हे विधाता, मुझे वाक्यहीन न रखो, मेरे रक्तमें
आज रुद्र-वीणा जग रही है । जीवनके सर्वोत्तम
मुहूर्तमें उतरकर ऐसा हो कि जीवनकी सर्वोत्तम वाणी
कंठसे निर्भरित श्रोतमें (सदा) झड़ती रहे । जो
मेरा अनिर्वचनीय है, उसीको ऐसा हो कि मेरा प्रिय
अपने चित्तमें प्राप्त करे । और अगर समय समाप्त
हो जाय, तो उसके बाद वह निर्भर नीरवताके निस्तब्ध
समुद्रमें शान्त हो जाय—

“नारीके आपन भाग्य जय करिवार
केनो नाहि दिये अधिकार,
हे विधाता !

पथप्रान्ते केनो र'ब जागि'
क्लान्त धैर्य प्रत्याशार प्रणेशर लागि'
दैवागत दिने ।

शुधु शून्ये चेये र'ब । केनो बिजे नाहि ल'ब चिने
सार्थकर पथ ।

केनो ना छुटाबो तेजे सन्धानेर रथ
दुर्धर्ष अश्वेरे बाँधि' दृढ़ वल्गा पाशे ।

दुर्जय आश्वासे
दुर्गमेरे दुर्ग ह'ते साधनार धन
केनो नाहि करि आहरन
प्राण करि' परम ।

यात्र ना वासर कदो वधुवेशे बाजार किंकिणी,
आमारे प्रेमेर वीर्ये करो अशंकिनी ।

वीर हस्ते वरमात्य ल'ब एक दिन
से-लग्न कि एकान्ते विलीन
क्षीण दीप्ति गोधूलिते ।

कभूता'रे दिव ना भूलिते
मोर दृप्त कठिनता ।

विनम्र दीनता

सम्मानेर योग्य नहे ता'र

फेले देबो अच्छादन दुर्बल लज्जार ।

देखा हवे छुब्व सिन्धुतीरे ।

तरंग गर्जनोच्छ्वास, मिलनेर विजयध्वनिरे
दिगन्तरे वक्षे निक्षेपिवे ।

माथाय गुण्ठन खुलि' क'ब ता'रे, मर्त्ये वा त्रिदिवे
एकमात्र तुमिइ आमार ।

हे विधाता आमारे रेखोना वाक्यहीना

रक्ते मोर जागे रुद्र वीणा ।

उत्तरिया जीवनेर सर्वोन्नत मुहूर्तेर परे

जीवनेर सर्वोत्तम वाणी येनो मरे

कण्ठ ह'ते

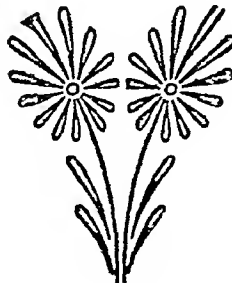
निर्वारित श्रोते ।

जाहा मोर अनिर्वचनीय

ता'रे जेनो चित्त माम्हे पाय मोर प्रिय ।

समय फुराय यदि, तब ता'र परे

शान्त होक से-निर्भर नैः शब्धेर निस्तब्ध सागरे ।”



लेखक कौन और क्यों बनते हैं ?

श्री कस्तूरमल वांटिया, बी० कॉम०

संसारमें आजीविकाका प्रश्न सदा ही जटिल रहा है। ऐसे मुहूर्तमें जन्मनेवाले बिरले ही होते हैं, जिन्हें इसकी चिन्ता न सताती हो ; तिसपर आजकल तो घोर बेकारीका जमाना है। बेपढ़े-लिखोंकी बेकारीकी तो बात ही जाने दीजिए, पढ़े-लिखे बेकारोंकी संख्या भी दिनोंदिन इतनी बढ़ रही है कि अब हमारी विदेशी सरकार तकके लिए इसका उपाय सोचना अनिवार्य हो गया है। ऐसी दशामें बेकार मनुष्य आजीविकाके प्रत्येक मार्गकी यदि खोज करे, तो कोई आश्चर्यकी बात नहीं। जो अच्छा पढ़ा-लिखा होता है, वह कभी-कभी लेखक बनकर ही आजीविका कमानेकी कोशिश करता है। यह कहना न होगा कि हिन्दुस्तानमें किताबोंका प्रचार नहींके बराबर है, और जहाँ इस व्यवसायसे आजीविका कमाना अच्छे सिद्धहस्त लेखकके लिए भी सहल नहीं है, वहाँ नौसिखिये खिलाड़ीकी तो विसात ही क्या ?

हमारे देशमें ही लेखकोंकी दशा शोचनीय हो, सो बात नहीं। इंग्लैण्डके सुप्रसिद्ध उपन्यास-लेखक मि० फ्रैंक स्विन्टर्न, जिनके बीसियों उपन्यास प्रकाशित हो चुके हैं और जो स्वयं प्रकाशकका भी व्यवसाय करते हैं, एक स्थलपर कहते हैं—“मैंने दस वर्षकी उम्रमें ही लेखक बननेका निश्चय कर लिया था ; परन्तु तबसे आज तक मैं यह नहीं समझ सका हूँ कि कोई लेखक बननेकी हविस क्यों करता है ? लेखक बननेके खेलमें किस बातका आकर्षण है ? यदि कोई कहे कि रुग्णता, तो मैं यह माननेको तैयार नहीं हूँ, क्योंकि लेखककी अपेक्षा मुष्टि-युद्धका खिलाड़ी, व्यापारी, दौड़में मोटर दौड़ानेवाला, घुड़दौड़का घुड़सवार और यहाँ तक कि परास्त राजनीतिज्ञ (Politician) भी, जो हारनेके बाद कम्पनियोंका डाइरेक्टर सहज ही बन जाता है, अधिक धन कमाता है। यदि कोई कहे कि

आरामपसन्द मनुष्य ही लेखक बना करते हैं, तो यह भी मैं माननेको तैयार नहीं हूँ, क्योंकि लेखकसे अधिक परिश्रमसाध्य काम मेरी दृष्टिमें कोई दूसरा नहीं है। पचीस वर्ष पुराने लेखककी हैसियत और अनुभवसे मैं कहूँगा कि व्यस्त-से-व्यस्त व्यापारी भी लेखककी तुलनामें अधिक फुसत पाता है। यदि कोई कहे कि मनुष्य प्रसिद्धिके लिए अथवा आत्म-प्रकाशसे प्राप्त होनेवाले हर्ष (Joy of self-expression) के लिए ही लेखक बनता है, तो यह भी बात नहीं है, क्योंकि प्रसिद्धि पानेवाले लेखक बिरले ही हैं। इसी तरह सुन्दर परिधान पहननेवालेको अधिकांश लेखकोंकी अपेक्षा अधिक आत्म-सन्तोष होता है। यह कहनेमें मेरा उद्देश्य किसीके दिल तोड़नेका कदापि नहीं है। लेखनसे निर्वाह-योग्य पैसा कमा लिया जा सकता है और कभी-कभी अचिन्ती महिमा भी मिल जाती है। यद्यपि वह महिमा रंगभूमिकी नाटिका आदि लोगोंकी कमाई महिमाके सामने कुछ भी नहीं होती। फिर भी बात यह है कि कुछ लोगोंको लिखनेकी लगन होती है, और वे उस लगनमें न परिश्रमकी परवा करते हैं और न धन या महिमाकी ही।”

उक्त कथनकी सत्यतामें किसीको अविश्वास नहीं हो सकता, क्योंकि लेखकको पहले-पहल निराशाकी अनेक चट्टानोंसे टक्करें खानी पड़ती हैं। यदि इनसे सही-सलामत पार हो जाय, तब कहीं लेखक बना जा सकता है। इसका कारण यह है कि लेखककी शुरुआत सदा मस्तिष्कके कोरेपनमें होती है। उत्साही लेखक सदैव क्या लिखेगा, यह मालूम करनेके पहले ही लिखनेकी धुनमें मस्त हो जाता है और कलम चलानेकी चेष्टा करने लगता है। यह तनिक भी असत्य नहीं कि बहुत थोड़े लेखकोंके पास कुछ कहनेकी बात होती है। अधिकांश तो बाह्याडम्बर

रचकर ही लेखक बननेकी डींग हाँक रहे हैं।

जरा सोचिये तो कि उत्साही लेखक पहले-पहल क्या लिखनेकी चेष्टा करेगा ? कविता ? कवि नैसर्गिक होते हैं। कविको तर्क, व्याकरण, राजनीति, आत्मज्ञान, वैद्यक, ज्योतिष, वेद, इतिहास आदि लौकिक और पारलौकिक सब विषयोंका ज्ञान आवश्यक है। कवियोंको पद-पदपर इनसे काम पड़ता है। जिनमें कवित्वशक्ति बीज रूपसे विद्यमान ही न हो, उसका कवि बनना असम्भव नहीं, तो कष्टसाध्य अवश्य है। अंगरेज़ीमें कहावत है : 'कवि पैदा होते हैं, बनते नहीं — Poets are born, not made' तुकबन्दी कर लेनेका नाम कविता नहीं है। हालाँकि हमारे देशमें ऐसे तुकड़ भी कवि-शिरोमणि बना दिये जाते हैं। पाश्चात्य देशोंमें चुने हुए प्रकाशकोंके सिवा अन्य कोई कविता-ग्रन्थ-प्रकाशनकी हिम्मत ही नहीं करता, इसलिए नौसिखिये तुकड़ोंका हौसला वहीं समाप्त हो जाता है। जो दो-चार प्रतिभासम्पन्न और मौलिक कवि होते हैं, उनकी कृतियोंको 'दि लिस्नर', 'दि स्पेक्टेटर', 'न्यू वर्स', 'दि बुकमैन', 'दि कार्नेहिल', 'दि लंडन मरकरी' और 'टाइम एण्ड टाइड' आदि पत्रोंमें प्रकाशित होनेका सौभाग्य प्राप्त हो जाता है, अन्यथा साहित्यिक पत्रोंमें निरी तुकबन्दियोंकी पूछ ही नहीं होती। अस्तु, कविता साधारण लेखककी शक्तिके परे हैं।

तब क्या उत्साही लेखक निबन्ध लिखेगा ? यह भी अनुभव और विशाल अध्ययनपर निर्भर करता है। हिन्दीमें जहाँ मौलिक लेखोंकी कमी है, वहाँ उत्साह दिलानेके लिए अनुवाद आदिसे उत्साहित लेखक लेखनका श्रीगणेश कर देता है। हालाँकि अनुवादकपर लेखककी अपेक्षा अधिक जिम्मेदारी रहती है। एक अच्छे विद्वाने लिखा है कि अनुवादकमें अनुवादकी भाषाके शाब्दिक अर्थसे अधिक ज्ञानकी आवश्यकता है। उसे उस भाषाके मुहावरोंकी प्रतिच्छाया तककी जानकारी होनी चाहिए। उसको

अनुवाद-ग्रन्थके विषयकी ऐतिहासिक और सामाजिक भित्तिसे मलीभाँति परिचित होना चाहिए। उसमें कथित उक्तियोंके जो सामयिक एवं अस्थायी ही क्यों न हों, समझने और उन्हें अनूदित भाषामें ठीक-ठीक व्यक्त करनेकी भी योग्यता होनी चाहिए। संक्षेपमें अपने अनुवादके प्रति पूरा न्याय करनेके लिए उसमें मूल लेखककी मानसिक परिस्थिति-जैसी ही अपनी मानसिक परिस्थिति बनाने और कुछ समयके लिए अपने व्यक्तित्वको मूल लेखकके व्यक्तित्वमें सहानुभूतिपूर्ण ढंगसे समन्वित कर लेनेकी योग्यता होनी चाहिए।

अधिकांश नौसिखिये लेखक गल्प या उपन्यास द्वारा अपने लेखक-जीवनका श्रीगणेश करनेकी चेष्टा करते हैं, इसलिए नहीं कि उपन्यास या गल्पका लिखना सहज है और इससे उन्हें कुछ आर्थिक लाभ हो जायगा—नहीं, असल बात यह है कि युवकको सबसे पहले अपने ही जीवनकी रोचक बातें गल्प या उपन्यासके रूपमें दूसरोंको सुनाने और कहनेकी एक स्वाभाविक उत्कण्ठा होती है। इस प्रकार अभ्यासके लिए कुछ मसाला भी मिल जाता है, काम शुरू हो जाता है और जोश ही जोशमें कुछ पृष्ठ भी काले कर दिये जाते हैं ; पर थोड़े दिन बाद कथाका श्रोत ही नहीं सूख जाता, बल्कि आवश्यक शब्दोंका भागडार भी खूटा प्रतीत होने लगता है। लिखे हुए पृष्ठोंमें भी तब वह रस और चमत्कार नहीं दीख पड़ता, जो प्रथम उत्साहमें मालूम होता था। बहुतेकोंका लेखक-जीवन बस यहीं समाप्त हो जाता है। जीवन-नैया पहली ही टक्करमें गोता खा जाती है। कोई-कोई जो दृढ़प्रतिज्ञ और अध्यवसायी होते हैं, अपने प्रारम्भ किये उपन्यासको पूरा भी कर देते हैं। यद्यपि उन्हें अपनी कृतिसे तब इतना ही असन्तोष होता होता है, जितना कि दवाईकी दूकानपर रात्रिके प्रकाशमें चमकते हुए लाल पानीसे भरे हुए कन्टरोंको खाली कर देनेपर किसी बालकको होता है ; परन्तु फिर भी वे उसे प्रकाशित देखनेका लोभ संवरण नहीं कर सकते !

सच भी है, किस माताको अपना भोंडे-से-भोंडा पुत्र अप्रिय लग सकता है ?

लेखककी कठिनाइयाँ यहीं समाप्त नहीं हो जाती। यह तो उनकी शुरुआत है। लिखनेसे कहीं ज्यादा कठिन काम पुस्तकका प्रकाशन है। लिखनेमें तो निजका समय और परिश्रम ही व्यय होता है ; परन्तु प्रकाशनमें व्यय होता है द्रव्य, जिसकी आशामें उत्साही लेखक यह पेशा स्वीकार करनेपर बाध्य हुआ है। अब उसे प्रकाशकोंसे टक्करें लेनी पड़ती हैं। उसकी ही भाँति प्रकाशकोंके पास अन्य अनेक उत्साही लेखकोंकी कृतियाँ भी प्रकाशनार्थ आती हैं। इन प्रतियोंमें से अधिकांश किसी-न-किसी वहानेसे लेखकको लौटा दी जाती हैं, जिसे देखते ही उसकी आशापर पाला पड़ जाता है। यदि उसकी हिम्मत नहीं टूटती, तो वह एकसे दूसरे और दूसरेसे तीसरे इस प्रकार प्रकाशक-दर-प्रकाशकके पास अपनी कृति प्रकाशित करानेके लिए भटकता है। कितने ही लेखक प्रकाशकों अथवा जनताको धोका देनेकी गरजसे पहलेसे किसी नामी-गरामी देशभक्त, नेता या लेखकसे अपनी पुस्तकके लिए प्राक्कथन अथवा भूमिका लिखानेमें सफल हो जाते हैं और येनकेनप्रकारेण अपनी पुस्तकके लिए प्रकाशक ढूँढ़ लेते हैं, तब उनकी खुशीकी सीमा नहीं रहती।

पुस्तकके किसी प्रकाशक द्वारा स्वीकार किये जानेसे ही तो किसी लेखकको पैसा प्राप्त नहीं हो जाता। जब स्वत्वाधिकारका प्रश्न आता है, तो प्रकाशकका हाथ ऊपर रहता है। पाश्चात्य देशोंकी भाँति हमारे इस देशमें न तो कोई साहित्यिक दलाल है और न कोई ऐसी संस्था, जो लेखकोंको इस विषयमें सलाह-मश्वरा दे। लेखककी निजकी बुद्धि न तो इतनी परिपक्व होती है और न अनुभवी, जिससे वह अपनी किताबके भविष्यका कुछ अनुमान कर सके। उसे तब एक ही लालसा रहती है, और वह अपनी किताबको शीघ्रातिशीघ्र प्रकाशित देखनेकी। वस, वह विशेष आगा-पँछा न करके जितना भी प्रकाशक खुशीसे देना

चाहे, लेनेका इकरारकर अपनी कृतिका सर्वदाके लिए सर्वाधिकार बेच देता है। पाश्चात्य देशोंमें आजकल रायलटीपर सत्वाधिकार बेचनेका अधिक प्रचार है। कोई भी लेखक सर्वदाके लिए अपनी किसी भी कृतिका सत्वाधिकार नहीं बेचता। कहते हैं कि इंग्लैण्डके सुप्रसिद्ध उपन्यास-लेखक मि० आर्नल्ड बैटेनको अपनी प्रथम पुस्तकसे केवल इतनी ही रायलटी प्राप्त हुई थी कि पाण्डुलिपिके टाइप कराने आदिका खर्च वाद देनेके बाद उन्हें सिर्फ एक पौण्ड यानी साढ़े तेरह रुपये बचे ! यह सन्तोषकी बात है कि हमारे यहाँ कुछ समय पहले एक लेखक-संघ स्थापित हो गया है। देखना है कि यह संघ लेखकों और प्रकाशकोंमें सौहार्द्र्य स्थापितकर हिन्दी-साहित्यके आदर्शको ऊँचा उठानेमें कृतकार्य होता है, या नहीं है। थोड़ेसे प्रकाशकोंको छोड़कर अधिकांश लोगोंने साहित्यका आदर्श उन्नत नहीं किया। जहाँ गलाघोट्ट प्रतिद्वन्द्विता चल रही हो, वहाँ आदर्शका लक्ष्य विरले ही रख सकते हैं।

प्रथम कृतिको पानीके भाव बेचकर उत्साही लेखक इस प्रतीक्षामें दिन बिताता रहता है कि उसको पत्रकारोंने और जनताने कितना सराहा। इसी सराहनापर उसके भावी जीवनका सफल या विफल होना निर्भर करता है, वह ऐसा मानता है। वस, वह उत्सुकतासे पत्रोंमें किताबकी समालोचनाको ढूँढ़ता रहता है ; परन्तु वहाँ उसे प्रायः निराश ही होना पड़ता है। इसका कारण यह है कि हिन्दीके पत्रोंकी समालोचनामें न तो प्रकाशकोंका ही विश्वास देखा जाता है और न वाचकोंका। सच्चे समालोचकोंकी हिन्दीमें बड़ी कमी है। अक्सर समालोचनामें पुस्तकके पृष्ठ, छपाई आदि ऊपरी बातोंको छोड़कर विषयपर कोई विचार नहीं किया जाता। बात यह है कि समालोचना कोई बैठेठाले आदमीका काम नहीं है और न मुँहदेखी समालोचना कोई समालोचना ही है। एक बात और भी है, पत्रकार दिन-प्रति-दिन प्रकाशित होनेवाली सैकड़ों

पुस्तकोंकी समालोचना न तो करा ही सकते हैं और न न छाप ही सकते हैं। यह काम तो इस विषयके स्वतन्त्र पत्रोंका है, जिनका हमारे इस देशमें एकदम अभाव है।

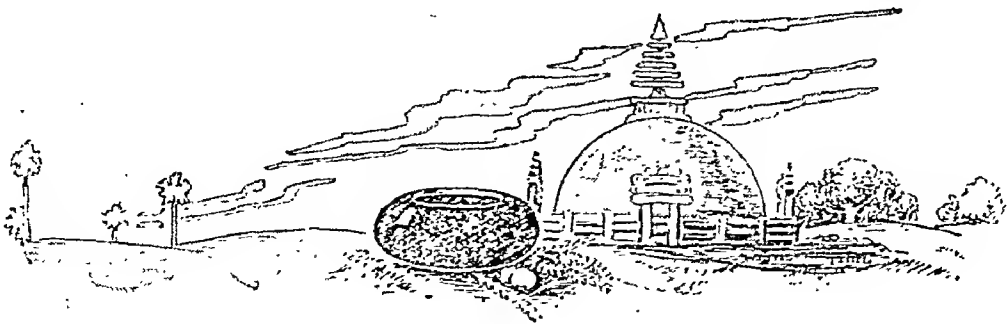
इसलिए समालोचनासे लेखकको विशेष लाभ नहीं होता और न प्रकाशक ही बिक्रीके अथवा पुस्तकके गुणोंको प्रकाशमें लानेके लिए उसकी प्रति समालोचनार्थ किसीको भेजता है। सिवा अपने हित् पत्रोंके अन्यत्र पुस्तकें समालोचनार्थ नहीं जातीं। पाश्चात्य देशोंमें कभी-कभी यह भी देखा गया है कि पुस्तककी कड़ी समालोचना उसकी बिक्रीको बड़ी सहायता देती है ; परन्तु हमारे इस देशमें ऐसी कड़ी समालोचना पुस्तकको जन्मते ही मिट्टीमें मिला दे सकती है।

इस प्रकार पक्ष-विपक्षकी समालोचनाएँ पढ़कर लेखकका हृदय कभी प्रफुल्लित, तो कभी दुःखित होता रहता है। वह विधिको अपने प्रतिकूल समझने लगता है, और फिर यह अपराध न करनेकी कदाचित्त प्रतिज्ञा भी कर लेता है ; परन्तु आजीविकाका अन्य मार्ग जिसे न दिखलाई पड़े, अथवा जो लेखकके रंगमें रँग ही जाय, तो वह फिर दूसरा उपन्यास लिखनेकी हिम्मत करता है और गिरते-पड़ते शंकित हृदयसे उसे पूरा करके पुनः प्रकाशकोंसे टक्कर लेने लगता है— वह भी अधिक जोरोंसे। क्योंकि उसकी पहली किताबकी ओछी बिक्री उसका पाँव जहाँ-तहाँसे उखाड़ती चली जाती है। वस, इस प्रकार बहुत उरसाही

लेखकोंका जीवन तो एक ही दो किताबोंमें समाप्त हो जाता है, और उनकी लेखकपनकी हविस भी हवा हो जाती है। इसका दोष कभी प्रकाशकपर और कभी वाचक जनतापर थोपकर लेखक अपना जलता दिल ठंडा करते रहते हैं।

परन्तु जो मुहम्मद गोरीकी नाई विफलतासे हताश नहीं होते, अपितु अपने दोषोंका परिमार्जनकर आवश्यक गुणोंको प्रकाशमें लानेकी चेष्टा करते रहते हैं, उन्हें आगे चलकर अपनी दो-एक कृतियोंमें सफलता मिल जाती है। ऐसे लेखक इस बातकी साक्षी देकर कह सकते हैं कि लेखन जितना आसान दीखता है, उससे कितना अधिक कठिन और परिश्रमसाध्य है। ऐसे बहुत ही कम लेखक हैं, जिन्हें प्रत्येक पुस्तकपर सफलता मिलती रहती है, और जिन लेखकोंको एक ही दो पुस्तकोंमें असीम ख्याति और धन मिल जाता है, वे तो विरले ही हैं। सफल लेखक उत्साहित होकर और भी अधिक परिश्रम करते हैं ; परन्तु फिर भी न तो उन्हें अपनी सफलतामें स्थायित्व दीख पड़ता है और न यही विश्वास होता कि वे कभी ऐसी किताब लिख सकेंगे, जिसे पढ़कर वे स्वयं सन्तुष्ट हो सकें। सब-कुछ होते हुए भी दोनों ही किताबें लिखते जाते हैं, मानो उन्हें उसीका नशा चढ़ गया है, अथवा वे लेखक-रूपी भूतसे आक्रान्त हो गये हैं, इसके सिवा कुछ कर ही नहीं सकते।

इतनेपर भी यदि कोई हिम्मत रखे, वह निस्सन्देह जन्मसिद्ध लेखक है, और ऐसे लेखककी बलिहारी है।



सुमेर-सभ्यताकी जन्मभूमि भारत

श्रीयुत अमृतवसन्त

सभ्यताकी आदि-भूमि

बाइबिलके उत्पत्तिकाण्ड (Genesis) के अनुसार फरात तथा दजलाकी घाटी (मेसोपोटामिया) ही वह स्थान था, जहाँ मानव-संस्कृतिने जन्म लिया था। इसी कारण यूरोपियन विद्वानोंने वहाँ खुदाइयाँ कराना प्रारम्भ किया, जिसके परिणाम-स्वरूप आज तक वहाँ अनेक सभ्यताओंके अवशेष मिल चुके हैं। दूसरी ओर मिस्र अपने अत्यन्त प्राचीन पिरामिड तथा बादशाही महलों और मन्दिरोंके लिए प्रसिद्ध था। इसलिए विद्वानोंके अनेक दलोंने वहाँ भी बहुत खुदाइयाँ कराईं। कुछ समय तक तो मिस्रको संसारका सबसे प्राचीन देश और सभ्यताकी आदि-भूमि माना जाता था। हालमें मेसोपोटामियामें 'सुमेर' कहलानेवाली एक जातिकी सभ्यताके भग्नावशेष प्राप्त हुए, और उसकी सभ्यता मिस्री सभ्यतासे भी अधिक प्राचीन सिद्ध हुई। इधर दक्षिण-पश्चिम ईरानमें सुसा नामक प्राचीन नगरकी खुदाईमें एक और ही अत्यन्त प्राचीन सभ्यताके चिह्न प्राप्त हुए हैं, जिसको प्रोटो-इलामाइट कहा जाता है। ऊर तथा किश नामक सुमेर-जातिके नगरोंकी खुदाईमें सुमेर-सभ्यताकी नींवके नीचे प्रोटो-इलामाइट-सभ्यताके चिह्न प्राप्त होनेसे यह भलीभाँति सिद्ध हो गया है कि यह प्रोटो-इलामाइट-सभ्यता ही संसारकी सबसे प्राचीन सभ्यता थी। अब प्रश्न उत्पन्न होता है कि मानव-सभ्यता कहाँ उत्पन्न हुई थी? क्या प्रोटो-इलामाइट लोग ही सभ्यताके आदि-प्रवर्तक थे? सुसाकी सबसे नीचेकी तहों तथा तपामुस्यान, इरीदु, ऊर आदिमें इस सभ्यताके जो अवशेष प्राप्त हुए हैं, उनसे तो यही ज्ञात होता है कि सभ्यताके आदि-प्रवर्तक यही लोग थे; परन्तु इन लोगोंकी सभ्यताके अवशेषोंके नीचे किसी अन्य सभ्यताके अवशेष न मिलनेसे यह सिद्ध हुआ है कि ये लोग किसी अन्य देशसे यहाँ अपने साथ सभ्यता और

कृषि लाये थे। इस प्रकार मेसोपोटामिया सभ्यताकी आदि-भूमि नहीं सिद्ध होती।

भारतीय विद्वान्

अब इस गरीब भारतवर्षकी ओर देखना चाहिए। यूरोपियन तथा भारतीय दोनों जातियोंके विद्वानोंने अधिकांशमें इसके इतिहासकी मिट्टी-सी पलीत की है। भारतीय विद्वानोंके दो दल हैं। इनमें से प्रथम दलके भारतीय विद्वान अपने प्राचीन ग्रन्थोंके आधारपर इसीको सबसे प्राचीन देश मानते हैं; परन्तु उनकी कौन सुनता है? क्योंकि उनके निर्बल प्रमाण केवल उन्हींके आत्म-सन्तोषके लिए होते हैं और इतिहास-कलासे अनभिज्ञ पाठकोंके हृदयपर ही प्रभाव डालते हैं। उनमें ऐसी कोई बात नहीं पाई जाती, जो विदेशी विद्वानोंको उनकी ओर आकर्षित करे। भारतीय विद्वानोंका दूसरा दल है, जो वैज्ञानिक इतिहास-संशोधन-पद्धति द्वारा कार्य करता है; पर उसने अधिकांशमें बौद्धकाल और उसके पश्चात्के ही भारतीय इतिहासको अपने अन्वेषणका विषय बनाया है। बौद्धकालसे पूर्वकी भारतीय सभ्यताके विषयमें वे यूरोपियन विद्वानोंके अन्धानुकरणी हैं। इसका सबसे अच्छा दृष्टान्त सिन्धु-सभ्यता है, जिसके अवशेष सिन्धके मुहेन-जो-दड़ो तथा दक्षिण-पंजाबके हड़प्पा नामक स्थानोंमें प्राप्त हुए हैं। यूरोपियन विद्वानोंने इसको आर्योंके भारत-आगमन-पूर्वकी द्राविड़ सभ्यता बताया है, इसलिए भारतीय विद्वान भी यही मानते हैं। जिन दो-चार सज्जनोंने इसको आर्य सिद्ध करनेका प्रयत्न किया है, उनकी दलीलें केवल वैदिक और पौराणिक साहित्यके आधारपर ही स्थिर की हुई थीं, जिनका पुरातत्त्ववेत्ताओंकी दृष्टिमें कोई मूल्य नहीं है।

प्रोटो-इलामाइट-सभ्यता

मैं अपने एक अन्यत्र प्रकाशित लेखमें विस्तारपूर्वक, पुरातत्त्वके आधारपर ही, यह सिद्ध कर चुका हूँ कि प्रोटो-इलामाइट लोग भारतीय वैदिक कृषक थे, जो

मेसोपोटामिया तक जा वसे थे, और जो भारतसे ही सभ्यता और कृषि लेकर वहाँ पहुँचे थे। कुछ समय पश्चात् वहाँकी फरात नदीमें बहुत बड़ी बाढ़ आई, जो प्रलयकी घटनाके नामसे संसार-प्रसिद्ध है। इसके चिह्न ऊर तथा किशमें सुमेर-सभ्यताके नीचे तथा प्रोटो-इलामाइट-सभ्यताके ऊपर मिल चुके हैं। इस बाढ़से इन प्रोटो-इलामाइट भारतीय कृषकोंको जन-धनकी ऐसी भारी क्षति हुई कि वे मेसोपोटामिया तथा ईरानको छोड़कर पुनः भारत आ गये। आज तक वहाँपर इनकी उजड़ी हुई वस्तियाँ उच्च प्रदेशोंमें पाई जाती हैं। इसके पश्चात् मेसोपोटामियामें सुमेर लोगोंका आगमन हुआ, और वे वहाँपर बस गये। इस जातिने अनेक महान नगर इरीदु, किश, निप्पुर, एरेक, बैबीलन आदि बसाये और २००० वर्ष तक पश्चिम-एशियापर शासन किया। अपने राजा सर्गनके समयमें उन्होंने ही मिस्रमें सभ्यता स्थापित की थी। प्रस्तुत लेखमें यह विचार करना है कि सुमेर लोग वास्तवमें किस जातिके थे और कहाँसे जाकर वहाँ पहुँचे थे।

सिन्धु-सभ्यता तथा सिन्धु-लिपि

मुहेन-जो-दड़ो तथा हड़प्पाकी सिन्धु-सभ्यता सुमेर-सभ्यतासे बहुत-कुछ मिलती-जुलती है। इन दोनों स्थानोंमें किसी अज्ञात चित्र-लिपिमें लिखी हुई बहुत-सी मुद्राएँ मिली हैं। यह लिपि 'सिन्धु-लिपि' कहलाती है और सुमेर-लिपिसे बहुत-कुछ मिलती-जुलती है, इसीलिए यूरोपियन विद्वान सिन्धु और सुमेर लिपियोंको किसी एक ही माताकी पुत्री मानते हैं। मेरे मतानुसार तो यह प्रोटो-इलामाइट-लिपि इनकी माता थी।

सिन्धु तथा सुमेर लिपियोंका सम्बन्ध

अभी कुछ ताज़ी खुदाइयोंमें सिन्धु-लिपिकी कुछ मुद्राएँ मेसोपोटामियाके ऊर, किश तथा सुसा-हितीय आदि सुमेर-नगरोंकी नींवमें पाई गई हैं। इससे सिद्ध हुआ है कि सिन्धु-लिपि सुमेर-लिपिकी अपेक्षा अधिक प्राचीन है। डा० लेंग्डनको जमदेत-नस्रकी खुदाईमें एक

ऐसी लिपिके लेख मिले हैं, जो प्रारम्भिक सुमेर-लिपि सिद्ध हुई है। जब इस जमदेत-नस्रकी प्रारम्भिक सुमेर-लिपिको सिन्धु-लिपिसे मिलाया जाता है, तो यह लिपि स्पष्टतया सिन्धु-लिपिमें से उत्पन्न हुई प्रतीत होती है। इस प्रकार काल तथा तुलना दोनों दृष्टिसे सुमेर-लिपि सिन्धु-लिपिकी पुत्री सिद्ध होती है।

सुमेर-सभ्यताकी माता सिन्धु-सभ्यता

यही बात सभ्यताके विषयमें भी सिद्ध होती है। सुमेर-नगरोंके प्रारम्भिक (सबसे नीचेके) स्तरोंमें जो वस्तुएँ प्राप्त हुई हैं, वे मुहेन-जो-दड़ोमें प्राप्त वस्तुओंसे बहुत मिलती हुई हैं। सुमेर-नगरोंके मकान कच्ची ईंटोंके होते थे; परन्तु इन नगरोंकी नींवमें पकी हुई ईंटें पाई गई हैं, और वे बनावट तथा नापमें मुहेन-जो-दड़ोकी ईंटोंके समान ही हैं। इन सब बातोंसे सिद्ध होता है कि सुमेर-सभ्यता सिन्धु-सभ्यतासे ही उत्पन्न हुई थी; परन्तु यहाँ दो बाधाएँ आकर खड़ी होती हैं। प्रथम यह कि सुमेर-नगरोंके आदिम स्तरोंमें जो सिन्धु-लिपिकी मुद्राएँ प्राप्त हुई हैं, वे आकारमें मुहेन-जो-दड़ो तथा हड़प्पामें प्राप्त मुद्राओंसे भिन्न हैं, अतः सिद्ध होता है कि वे सिन्धु-उपत्यकासे वहाँ नहीं पहुँचीं। दूसरी यह है कि सुमेर-साहित्यमें सर्वत्र यही पाया गया है कि सुमेर लोग समुद्र-मार्गसे ईरानकी खाड़ीमें प्रवेश करके मेसोपोटामियामें आये थे और यहाँके इरीदु नामक बन्दरगाहमें इनके सर्वप्रथम राजा उक्कुसिने राजधानी स्थापित की थी। सर ओरेल स्टीनके अन्वेषणोंसे पता लगा है कि सिन्धु-सभ्यता बिलोचिस्तान तथा सीस्तान तक फैली हुई थी। इस दशामें यह असम्भव है कि वह समुद्र-मार्ग द्वारा मेसोपोटामिया पहुँची हो, जब कि वहाँ जानेका सुगम तथा सीधा स्थलमार्ग हो। मुहेन-जो-दड़ो तथा हड़प्पामें जो मुद्राएँ प्राप्त हुई हैं, उनमें से केवल दो-तीनपर ही छोटेसे नदीगामी जहाज़की आकृति पाई जाती है, जिससे ज्ञात होता है कि मुहेन-जो-दड़ो या सिन्धु-उपत्यकाके निवासी समुद्र-यात्री नहीं थे। इस

परिस्थितिमें सिन्धु-सभ्यता किस प्रकार समुद्र द्वारा मेसोपोटामिया पहुँचकर सुमेर-सभ्यताकी जन्मदात्री बनी, इस पहलीको सुलझाना चाहिए।

सिन्धु-सभ्यता और सुराष्ट्र (काठियावाड़)

प्राचीनकालमें सरस्वती नदी शिवालिक पर्वतोंसे निकलकर दक्षिण-पंजाब, उत्तर-राजपूताना तथा सिन्धुमें से बहती हुई रनकच्छको पार करके सुराष्ट्र (काठियावाड़) को गुजरातसे अलग करती हुई कम्भायतकी खाड़ीमें समुद्रसे मिल जाती थी। इस विस्तारमें सुराष्ट्रसे लेकर कुरुक्षेत्र तक आज भी उसका शुष्क मार्ग दिखाई देता है। सिन्धु नदी इस सरस्वतीसे ही रनकच्छमें जा मिलती थी। आजसे सौ वर्ष पहले तक सिन्धुकी एक धारा रनकच्छमें आकर गिरती थी। इस प्रकार कच्छ और सुराष्ट्र भी सिन्धुके साथ जुड़े हुए थे, और सिन्धु-सभ्यता सुराष्ट्र तक फैली हुई थी। सुराष्ट्रमें रंगपुर गाँवमें इसके चिह्न मिल चुके हैं और प्रभास (सोमनाथ) के निकट प्राचीन टीलोंमें सिन्धु-सभ्यताके ही समान ईंटें और मिट्टीके पात्र पाये जाते हैं। यह सुराष्ट्र ही प्राचीनकालमें सिन्धु-सभ्यताके सामुद्रिक व्यापारका केन्द्र था, और यहाँसे सिन्धु तथा सरस्वतीके प्रवाह द्वारा, नौकाओंमें, मालका उत्तर-भारतसे आवागमन होता था। आज भी सुगाष्ट्र और मेसोपोटामियाके बीच बड़े परिमाणमें सामुद्रिक व्यापार होता है, और सिन्धु-सभ्यताको लेकर सुराष्ट्रवासी ही समुद्र-मार्ग द्वारा मेसोपोटामिया पहुँचे थे। जो सिन्धु-लिपिकी मुद्राएँ सुमेर-नगरोंके आदिम स्तरोंमें प्राप्त हुई हैं, वे यहाँसे पहुँची थीं, या सुमेर लोग यहाँसे अपने साथ ले गये थे। सिन्धु-सभ्यता सुराष्ट्र तक फैली हुई थी, और यहाँसे उसका विदेशोंके साथ सामुद्रिक सम्बन्ध था, इसलिए मैं इसको 'सिन्धु-सुराष्ट्र-सभ्यता' कहता हूँ।

सुराष्ट्र-वासी सु-वर्ण और सु-मेर

महाभारतमें सिन्धु-सुवर्ण-प्रदेश तथा जातिका उल्लेख है। सिन्धुसे स्पष्ट सिन्धु-प्रदेशका नाम ज्ञात होता

है; परन्तु सुवर्णसे क्या उद्देश्य है, यह देखना चाहिए। सुवर्णका वास्तविक अर्थ होता है सु-वर्ण, अर्थात् सु-जाति। काठियावाड़* के प्राचीन नाम सु-राष्ट्रसे पता चलता है कि इन्हीं सु-वर्ण अर्थात् सु-लोगोंका निवासस्थान होनेके कारण वह सु-राष्ट्र अर्थात् सु-लोगोंका देश कहलाया। ठीक उसी प्रकार, जिस प्रकार कि गुर्जर लोगोंका निवासस्थान होनेसे गुजरातका प्राचीन नाम गुर्जर-राष्ट्र था। गुजरात शब्द इसीका अपभ्रंश है। इस प्रकार ज्ञात होता है कि सुवर्ण सुराष्ट्रके निवासी थे। सिन्धु और सुराष्ट्र तक एक प्रदेश होनेके कारण दोनों

* काठियावाड़ नाम भी बड़ा रहस्यपूर्ण है। आजसे हजारों वर्ष पूर्व सुमेर लोग सुराष्ट्रसे मेसोपोटामिया पहुँचे, उसी प्रकार क्षत्रिय लोग भी एशिया-माइनर पहुँचे, जो वहाँ खत्ती कहलाये। बाइबिलमें इनको छिट्छिट कहा गया है। यह अपने समयकी पश्चिम-एशियाकी सबसे अधिक शक्तिशाली प्रजा थी। भूमध्य-सागरसे मेसोपोटामिया तक इनका साम्राज्य फैल गया था। ग्रीक, टोशन, क्रीटन आदि सभ्यताओंके जन्मदाता यही थे। महान शक्तिशाली मित्रको इन्होंने ही क्षिप्र-मित्र किया। ढाई हजार वर्ष तक पश्चिम-एशियापर शासन करनेके पश्चात् इनका बल काफ़ी घट गया था। असीरियन साम्राज्यके शक्तिशाली होनेके पश्चात् वहाँके राजा तिगलाथ पिलेसरने इन लोगोंको परास्त करके इन्हें देशसे ई० पू० आठवीं सदीमें निकाल दिया। ये ईरान और विलोचिस्तानके स्थल-मार्गसे पंजाबमें आये, और यहाँ सकाला नगरको राजधानी बनाकर प्रजासत्तात्मक राज्यकी स्थापना की। सिकन्दरका सामना करनेके कारण उसने इनको परास्त करके सिन्धुकी ओर भगा दिया। सिकन्दरके लेखकोंने इनका नाम Rattrion लिखा है। आज भी मॉण्टेगुमरीके काठिया राजपूत तथा मियावालीके काठिया जाटोंके रूपमें इनके वंशज पंजाबमें मौजूद हैं। सिन्धुमें बहुत दिनों तक इन्होंने शासन किया। वहाँ अकाल पड़नेके कारण ये काठी लोग कच्छ पहुँचे। इनकी स्त्रियाँ बहुत रूपवती थीं। कच्छके रावने इनकी एक स्त्रीके साथ व्यभिचार किया। इसपर इन्होंने रावको मार डाला, जिससे युद्ध हुआ और इनको कच्छ छोड़कर सुराष्ट्रमें बसना पड़ा। यहाँ अपने पराक्रमसे इन्होंने अनेक राज्य स्थापित कर लिये। सुराष्ट्रमें मराठोंके प्रवेशके समय ये लोग इतने शक्तिशाली थे कि इन्हींके नामपर इसको काठियावाड़ अर्थात् काठियोंका प्रदेश कहने लगे। काठियावाड़में आजकल इनके बहुतसे छोटि-बड़े राज्य हैं। अब तक ये अपने एशिया-माइनरके धर्म 'सूर्य-पूजा' को मानते आ रहे हैं। अब तक इनकी भाषा, रीति-रिवाज, वेष-भूषा तथा सभ्यता अलग ही रही है। इनकी शौर्य-कथाएँ एक बार राजस्थानी शौर्य-कथाओंको भी फीका कर देती हैं। गुजराती-साहित्यमें इनके अनेक संग्रह प्रकाशित हो गये हैं। —लेखक

देशोंकी संस्कृति एक ही थी, इसीलिए इन दोनों प्रदेशोंको सिन्धु-सुवर्ण-देशके एक ही नामसे पुकारा गया है, और इसीलिए इन दोनों प्रदेशोंकी जातिको 'सिन्धु-सुवर्ण-जाति'के एक ही नामद्वारा पुकारा गया है। आज तक सिन्ध और सुराष्ट्रकी संस्कृति जितनी मिलती-जुलती है, उतनी सुराष्ट्र और गुजरातकी संस्कृति नहीं मिलती-जुलती। उत्तर-काठियावाड़से लेकर कच्छ और सिन्ध तक आज भी एक-सी ही भाषा बोली जाती है।

सु-मेर शब्दका अर्थ भी 'सु-जाति' होता है, जिस प्रकार सुराष्ट्र-वासी सु-वर्णका अर्थ सु-जाति होता है। इससे पूर्णतया सिद्ध होता है कि सुराष्ट्र-वासी ही मेसोपोटामियामें जाकर सुमेर कहलाये। पुरातत्त्व-तथा नामोंकी सादृश्यताके आधारपर यह भलीभाँति सिद्ध हो गया कि सुमेर-सभ्यताके स्थापक भारतवर्षके एक प्रदेश सुराष्ट्र (काठियावाड़) के निवासी ही थे। अब यह भी देखना चाहिए कि भारतवर्ष और सुमेरके राजवंशोंमें कोई समानता या सम्बन्ध पाया जाता है या नहीं?

भारतीय तथा सुमेर राज्य-वंशावलि

सुमेर लोग अपना साहित्य ईंटोंपर लिखते थे, क्योंकि मेसोपोटामियामें न पत्थर प्राप्त होते हैं और न भोजपत्र या ताड़पत्रके समान कोई अन्य-वस्तु ही। इनके साहित्यमें इनके राजाओंकी निप्पुर, इसिन, किश आदि नगरोंमें अनेक वंशावलियाँ प्राप्त हुई हैं। इनमें से किश-वंशावली सबसे अधिक प्राचीन है और उसमें सुमेर-जातिके प्रथम राज्य-वंशसे, जो इरीदुका राज्य-वंश कहलाता है, लेकर इनोके पाँचवें राज्य-वंश तकके राजाओंकी वंशावली तथा राज्य-काल दिया हुआ है। इरीदुका प्रथम राज्य-वंश ही वह राज्य-वंश था, जिससे कि पश्चिम-एशियामें सर्वप्रथम राज्य-वंशकी स्थापना हुई थी। किश-वंशावलीमें इरीदुके प्रथम राज्य-वंशके राजाओंके विषयमें लिखा हुआ है :—

१—इरीदु-की-आ उक्कुसि लुगल-अम ३०

मु-इन-अग।

२—वक्कुस दा-अमा ४२ मु-इन-अग।

३—पुन-पुन ६ मु-इन-अग।

४—नक्कुअनेनु ३७ मु-इन-अग।

हिन्दी भाषान्तर

१—इरीदु नगरमें उक्कुसि राजा आया, जिसने ३० वर्ष राज्य किया।

२—वक्कुस (शक्तिशाली) हाथोंवालेने ४२ वर्ष (राज्य किया)।

३—पुनपुनने ६ वर्ष (राज्य किया)।

४—नक्कुअनेनुने ३७ वर्ष (राज्य किया)।

अब इन राजाओंके नामोंको भारतके सूर्य-वंशके राजाओंकी वंशावलीसे मिलावेंगे, तो दोनों देशोंकी वंशावलियोंके नामोंमें सादृश्य पावेंगे। देखिये—

सुमेर-वंशावली

आर्य-वंशावली

१—

वैवस्वत मनु

२—उक्कुसि

इक्ष्वाकु

३—वक्कुस (भाई निमी*) विकुक्षि (भाई निमी)

* वक्कुसके भाई निमीका नाम किश-वंशावलीमें नहीं लिखा है; परन्तु अन्य वंशावलियोंमें लिखा हुआ पाया जाता है। इन वंशावलियोंमें इसका नाम 'निमी-रूद' लिखा हुआ है। रूदका अर्थ उत्पत्तिकर्ता है। इस प्रकार 'निमी-रूद' अर्थ उत्पत्तिकर्ता निमी हुआ, जो उसके भारतीय नाम निमीसे विलकुल मिलता है। वाइविलमें इसको निमरोद लिखा हुआ है, जो कुशका पुत्र था। 'उक्कुसि' का 'उ' उड़कर वाइविलमें 'कुश' हो गया है। इस प्रकार वाइविल द्वारा भी यही ज्ञात होता है कि निमी उक्कुसिका पुत्र था। वाइविलमें निमीको सर्वप्रथम नगर बसानेवाला कहा है। उसमें लिखा है कि उसके राज्यका आरम्भ वैवीलन, परिक, अक्क और कल्लासे हुआ, जो शिनार-प्रदेशमें था। यहाँसे वह अस्सुर-देश गया और वहाँ निनेवा नगर बसाया और रिहोवथ तथा कला नामके नगर बसाये। निनेवा और कलाके मध्यमें रसेन बसाया, जो बहुत बड़ा नगर था। आज भी पश्चिम-एशियाके अनेक स्थान निमीके नामपर हैं। वैवीलनकी वह मीनार, जिसको वाइविलके अनुसार मनुष्य-जातिने स्वर्ग तक पहुँचनेके लिए बनाया था, अब तक 'विसे निमरूद' कहलाती है। दजलाके किनारे मोसलके निकट अब तक एक नगरका नाम 'निमरूद' है। आर्मीनियामें वान-मीलके निकटके एक पर्वतका नाम अब भी निमरूद कहलाता है। विष्णुपुराणमें लिखा हुआ है कि निमीके शवको ऐसे मसालोंसे चुपड़कर रखा गया था, जिससे वह सड़ा-गला न था। इससे मालूम होता है कि निमी मित्त भी गया था और वहाँ उसकी मृत्यु हुई थी, क्योंकि राजाओंके शवोंमें मसाले लंगाकर इस प्रकार 'ममी' (Mummy) बनाकर सुरक्षित रख छोड़नेकी प्रथा मित्तमें ही थी।

४—पुनपुन

पुंरजय

५—(नदी) अनेनु

अनेना

क्या आप कह सकते हैं कि सुमेर और भारतके ये राजा एक न थे ? यह एकता इन चार राजाओं तक ही सीमित नहीं है । आप ज्यों-ज्यों आगे इन दोनोंकी वंशावलियोंको मिलाते जायेंगे, त्यों-त्यों अन्त तक यह नामोंकी एकता दिखाई देगी । यहाँ विस्तार-भयसे इसकी चर्चा नहीं की जा रही है । किसी अन्य लेखमें इस विषयपर प्रकाश डाला जायगा । सुमेर और भारतीय वंशावलीमें केवल एक राजाके नामका अन्तर है, वह यह कि सुमेरका प्रथम राजा इद्वाकु था और भारतका प्रथम राजा उसका पिता मनु था । इससे भी यही बात सिद्ध होती है कि सुमेरका प्रथम राजा उक्कुसि (इद्वाकु) भारतके प्रथम राजा मनुका पुत्र था, इसलिए वह भारतसे ही मेसोपोटामिया पहुँचा और वहाँका प्रथम राजा हुआ । यही इद्वाकु सिन्धु-सुराष्ट्र-सभ्यताके साथ सु-वर्ण लोगोंको लेकर उपनिवेश बसाने मेसोपोटामिया गया था ।

प्रलय और आर्योंकी नौका-शास्त्रसे अनभिज्ञता

परन्तु इद्वाकु तो सारे आर्यावर्तका राजा था । तब वह केवल सुराष्ट्र-वासी सुवर्ण लोगोंको लेकर क्यों मेसोपोटामिया पहुँचा ? दूसरे, आर्यावर्तसे बिलोचिस्तान और ईरान होकर सुगम भूमिमार्ग था (उस समय आजकी भाँति सिन्ध, बिलोचिस्तान और दक्षिण-ईरान ऊँड़ रेगिस्तान न थे ; परन्तु हरे-भरे प्रदेश थे, जहाँ बड़े-बड़े नगर बसे हुए थे), तब उसको छोड़कर इद्वाकु समुद्र-मार्गसे क्यों मेसोपोटामिया पहुँचा ? इसका उत्तर यह है कि सर्वप्रथम सरस्वतीके तट-प्रदेशपर आर्य-सभ्यताकी उत्पत्ति हुई थी । यही आर्य लोग अपनी इस प्रारम्भिक कृषि-सभ्यताको लेकर बिलोचिस्तान और ईरानसे मेसोपोटामिया तक फैल गये थे । ये लोग नौका-शास्त्रसे अनभिज्ञ थे, यही ईरान और मेसोपोटामियामें सबसे पहले बसनेवाले प्रोटो-इलामाइट थे । (इनकी प्रोटो-इलामाइट सभ्यताको मैंने 'सरस्वती-

सभ्यता' का नाम दिया है, क्योंकि वह भारतमें सरस्वती नदीके तट-प्रदेशपर उत्पन्न हुई थी । इस विषयपर मेरा नवीन खोजपूर्ण लेख पाठक किसी अन्य पत्रमें पढ़ेंगे ।) जब पुरातन नदीकी प्रलय नामक भीषण बाढ़ आई, तो नौका-शास्त्रसे अनभिज्ञ होनेके कारण इन लोगोंके जन-धनका भीषण संहार हुआ । सुमेर-प्रलय-कथामें इया-देव प्रलयके नायक तथा प्रोटो-इलामाइट जातिके नेता उता-नपिशितमको प्रलयसे उसकी रक्षाके लिए नाव बनानेकी क्रिया बतलाता है और प्रलय आनेकर स्वयं मत्स्यके रूपमें नावको तैराता है । इससे प्रोटो-इलामाइट जातिकी नौका-शास्त्रसे नितान्त अनभिज्ञता प्रकट होती है । ऊँचे मैदानों और पार्वत्य-प्रदेशोंपर रहनेवाले जो लोग बच गये थे, वे इस भयंकर विनाशसे घबराकर पुनः अपनी मातृभूमि आर्यावर्त चले आये, इसीलिए इन उच्च प्रदेशोंपर प्रोटो-इलामाइट लोगोंकी उजड़ी हुई बस्तियाँ मिली हैं ।

वैवस्वत-मनु

जब ये भारत आये, तो यहाँ राज्यसत्ता स्थापित हो चुकी थी और प्रथम राजा वैवस्वत-मनुका राज्य था । इस समय शतपथब्राह्मण रचा जा रहा था और आर्य-जातिपर मेसोपोटामियामें आई हुई इस विपत्तिका वर्णन उसमें लिखा गया । यह दुर्घटना मनुके समयमें घटित हुई थी, इसलिए, शायद, उसका नायक मनुको बनाया गया । शतपथब्राह्मणकी प्रलय-कथामें कहीं भी ऐसा भौगोलिक नाम नहीं पाया जाता, जिससे कि उसका घटनास्थल भारत सिद्ध हो सके । वैसे भी उस समय एशिया-माइनर तक भारतकी सीमा थी । इस दृष्टिसे उसको भारतकी भी घटना माना जा सकता है ; परन्तु वर्तमान संकुचित भारतवर्षकी कदापि नहीं !

इद्वाकु

वैवस्वत-मनु आर्य-जातिका महान हितकारी राजा हुआ है, इस विषयमें यहाँ कुछ कहना व्यर्थ है । उसने देखा कि मेसोपोटामियामें नौका-शास्त्रकी अनभिज्ञताके कारण आर्योंकी भीषण जन-धन-हानि हुई

है, इसलिए उसने सुराष्ट्रमें, जो उस समय सिन्धसे मिला हुआ होनेके कारण आर्यावर्तके अन्तर्गत था, सामुद्रिक केन्द्र स्थापित कर दिया, ताकि आर्य-जातिकी नाविक-शक्तिका विकास हो और अपने पुत्र इक्ष्वाकुको यह महत्त्वपूर्ण कार्य सौंप दिया। श्री जे० एफ० हेविट नामक विद्वानने अपनी पुस्तक *The Ruling Races of Prehistoric Times, Vol. I, pp-404* पर लिखा है—“इक्ष्वाकु, भारतीय कथाओंके अनुसार, पातालका राजा था, जो सुवर्ण लोगोंका सिन्धु नदीके मुखपर स्थित बन्दरगाह था। सोम-यज्ञका प्रचारक भी यही था और पातालसे लेकर सारे उत्तर-भारत तक उसका राज्य था।”

यह सु-वर्ण आर्योंका वह वर्ण था, जिसको इक्ष्वाकुकी अध्यक्षतामें मनुने सामुद्रिक व्यापारका कार्य सौंपा था। इन्हींके धर्ममें से जैन-धर्म उत्पन्न हुआ और गुजरात तथा सुराष्ट्रके जैन-वणिक इन्हीं लोगोंके वंशज हैं। जब आर्य-जाति सुराष्ट्रमें नौका-शास्त्रमें पारंगत हो गई, तो इक्ष्वाकु उनको लेकर समुद्र-मार्ग द्वारा मेसोपोटामिया पहुँचा और वहाँ सुमेर-सभ्यताका स्थापक तथा वहाँका प्रथम राजा हुआ। उसकी राजधानी पाताल बन्दरगाह थी। (यह पाताल उस पाताल-द्वीप—लोक—से अलग था, जो द्राविड़ राष्ट्रोंकी सभ्यता तथा नाग-पूजाका केन्द्र था।) सिन्ध नदी उस समय सुराष्ट्र तक आती थी, और इसीके मुखपर पाताल स्थित होनेके कारण उसकी स्थिति सुराष्ट्रमें ही सिद्ध होती है। मेगास्थनीजने पातालको सिन्धु-मुखपर *Orostrae* (सुराष्ट्र) में बताया है।

सूर्य-वंशी राजाओंके कालपर प्रकाश

भारतीय और सुमेर-राज्यवंशोंकी एकता सिद्ध होनेसे भारतीय इतिहासकी एक महान समस्या हल हो जाती है। वह है यहाँके प्राचीन राज्यवंशोंका काल-निर्णय। भारतीय साहित्य और वंशावलियाँ इस विषयमें चुप हैं; परन्तु सुमेर-वंशावलियोंमें इन राजाओंका राज्यकाल तक पाया जाता है। नीचे दी हुई सुमेर-वंशावलीके

अवतरणसे यह बात ज्ञात होती है। मैंने दोनों देशोंकी वंशावलियोंको मिलाकर भारतीय राजाओंकी वैवस्वत-मनुसे लेकर चन्द्रगुप्त मौर्य तकके राजाओंकी एक काल-सूची तैयार की है, जिसके अनुसार कुछ प्रसिद्ध-प्रसिद्ध राजाओंका समय इस प्रकार है :—

राजाका भारतीय नाम	सुमेर-नाम	राज्य-काल ईसासे पूर्व वर्षोंमें
वैवस्वत-मनु	...	३४८० — ३४०३
इक्ष्वाकु	उक्कुसि	३४०३ — ३३५३
विकुक्षि	वक्कुस	३३५३ — ३३०३
निमि	निमी	३३०३ — ३२५२
मांधाता	मेदी	३०९७ — ३०६१
हरिश्चन्द्र	उजीवितार	२८६१ — २८७४
सगर	शगुर (सर्गन)	२७३० — २६६७
दिलीप	दलीप	२६६४ — २६७०
सुदास	सुहा	२४२८ — २४०४
रघु	दघु	२१६७ — २१५६
दशरथ	दुइदुशियाश	२१४५ — २११७
रामचन्द्र	राम-सिन (सिन=चन्द्र)	२११७ — २०९६

कुछ प्रसिद्ध घटनाओंका काल इस प्रकार है :—

प्रलय	३४७५
इक्ष्वाकुका सुवर्णोंको लेकर मेसोपोटामिया-	
गमन तथा सुमेर-इतिहासका प्रारम्भ	३३८३
मिलमें सभ्यता और राज्यसत्ताका प्रारम्भ	२७१२
चन्द्र-वंशका प्रारम्भ	२५३०—२५१३
दाशराज्ञ-युद्ध	२४२५
राम-रावण-युद्ध	२१०३
महाभारत-युद्ध	१४२५

भूगर्भशास्त्र द्वारा इक्ष्वाकुका काल-निर्णय

इक्ष्वाकु ई० पू० ३३८३ में मेसोपोटामिया पहुँचा था और उसने इरीदु-बन्दरगाहमें अपनी राजधानी स्थापित की थी। भूगर्भशास्त्रके एक प्रमाण द्वारा भी इसका समर्थन होता है। इक्ष्वाकुके समयमें इरीदु समुद्र-तटपर स्थित था; परन्तु आज समुद्र उससे १५० मील दूर दक्षिणकी ओर खिसक गया है। सर हेनरी रालिन्सनने

हिसाब लगाकर बताया है कि ईरानकी खाड़ीका जल ३५ वर्षमें एक मीलके हिसाबसे सूखता जा रहा है। इस हिसाबसे सिद्ध होता है कि आजसे १५०×३५= ५२५० या मोटे हिसाबमें ५३०० वर्ष अर्थात् ई० पू० ३३६४ तक इरीदु समुद्रके किनारे था। यह समय

इक्वाकुके इरीदुमें राजधानी स्थापित करनेके समय ई० पू० ३३८३ से मिलता है।

इस प्रकार यह सिद्ध हो जाता है कि संसारकी प्राचीनतम और सर्वश्रेष्ठ सुमेर-सभ्यता भारतकी ही पुत्री थी और भारतके सुराष्ट्र-प्रदेशसे ही वहाँ पहुँचकर फली-फूली।

कवि और किसान

श्रीयुत नरेन्द्र

तुम जगके प्रतिनिधि-प्रदीप हो, सकल विश्वके तुम सरताज !
तुम्हें प्यास क्यों अधर-सुधाकी जब हम पानीको मोदताज ?
अब तक, कवि, तुम भूल न पाये फूल और कलियोंकी बातें—
भटक रहे हैं हाथ पसा, जब हम दो दानोंको आज ?

रुचिर, कल्पना-निर्मित वे प्रासाद तुम्हें कैसे भाए ?
कहो, तुम्हारे हृदय-धाममें कैसे मधुर भाव आए ?
जब हम बन्धु तुम्हारे आश्रयहीन विलखते रोते हों
कहो, कहो कवि, कैसे अब तक सरस गीत कथ कर गाए ?

बहुत बज चुकी जर्जर वीणा, बहुत प्रेमका गान हुआ,
बहुत हो चुका रास-रंग, कवि, बहुत दिनों मधु-पान हुआ !
वे सब सपनेकी बातें थीं, ज़रा सत्यको अपनाओ—
बहुत दिनों तक हुआ न्यायका, और बहुत अपमान हुआ !

रंग-महल छोड़ो कविताके ज़रा झोंपड़ोंमें आओ,
तुम्हें गान ही प्रिय हैं तो, कवि, निर्धनके सुख-दुख गाओ,
भूखे-नंगे कृषकोंमें भी कुछ कविता मिल सकती है
खोलो निज विशाल वक्षस्थल, कवि ! अपनोंको अपनाओ !

हम पृथ्वीके पुत्र आज पृथिवीपर आहत छिन्नाधार,
मौन मूक हम सूख सूख-से सहते रहते अत्याचार ;
जगको जो भोजन देते हों उन्हें आज भूखे देखो—
और दूसरी ओर देख लो धन-मद, गौरव-मद, व्यभिचार !

रोग-अविद्याके तुषार - हिमसे सुरम्ता जाता शैशव
नहीं पनपने पाता पीले पातों - सा यौवन - वैभव ;
दैन्य-दुःख, ऋण-भार, प्रवचन, चिन्तन, बनती जीर्ण जरा
फलना और फूलना - कैसा कारागार बना है भव !

दोष हमारा केवल इतना हमको प्रिय शारीरिक श्रम,
हम समाजके सेवक जिनका पाप सरलपन, भोलापन,
हम हैं वेज्रवान खंगर, आधार - शिलाएँ इस घरकी
सब दुनियाँ हम-सी ही होगी ठगे गये इस अमसे हम !

अभी समय है शीतल जल दो हमें न हो शोणित-अनुराग,
कभी न बुझ पाएगी जलसे ऐसी कठिन लगेगी आग !
मेघ तुम्हारे दूत, कहो उनसे कुछ जल - कण बरसा दें
उठें न इस संतप्त हृदयसे कहीं क्रोधकी लपटें जाग !

तुम्हें ज्ञात वे मर्म तिमिरके जिन्हें न देख सका दिनकर ;
मानव-उरका तिमिर हरो, कवि, दिव्य ज्योतिसे जीवन भर !
तुम्हें ज्ञात वे गान गहनके, जिन्हें न खोज सका मास्त ;
गाओ, कवि, वे गान न्यायके गूँज उठें दिग्-भू-अम्बर !

भोगीकी तम - निद्रा टूटे, योगीकी समाधि हो क्षय,
शंख-नादमें घोषित हो, फिर एक बार न्यायीकी जय,
त्याग-तप्त संतप्त अस्थियोंका वह विद्युत-वज्र बना—
उमड़ा दो निज ज्योति-ज्वालासे, वीर-घोषसे महाप्रलय !

पुस्तकें कैसे विकें ?

श्री भारतीय, एम० ए०

पुस्तकें कैसे विकेंगी ?—यह प्रश्न प्रकाशकोंके चिन्तनका विषय होना चाहिए। फिर लेखक इन वखेड़ोंमें क्यों पड़ें ? परन्तु यदि हम क्षणभर हिन्दी और हिन्दुस्तानकी वर्तमान दशापर ध्यान दें, तो हमें मानना पड़ेगा कि अभी हमारे देशमें साहित्यका प्रकाशन बिल्कुल 'व्यापार' नहीं हो पाया है। यदि ऐसा होता,—हम तो चाहते हैं, शीघ्र ही ऐसा हो,—तो हम लेखकोंको इस बातकी तनिक भी चिन्ता न होती। परन्तु जब दशा ऐसी नहीं है, तो हमें उसे 'व्यापार' बननेमें सहायता देनी चाहिए, क्योंकि इस 'व्यापार' की सफलतापर हम लेखकोंका भी व्यापार निर्भर है। यदि पुस्तकें विकती नहीं, तो हमारे लिखनेसे हमें क्या लाभ होगा ? हम 'स्वातः सुखाय' श्रेणीके लेखकोंकी तरफसे कुछ नहीं कहते। उनमें ऐसे लोग भी होंगे, जो अपनी रचना अपने खर्चसे छपाकर लोगोंको बांट सकते हैं।

पुस्तकोंकी विक्री कैसे हो—इस प्रश्नपर विचार करनेसे पूर्व संक्षेपमें प्रथम पुस्तकोंके बाज़ारका दिग्दर्शन कर लेना ठीक होगा। हिन्दीमें प्रकाशकोंकी संख्या दिनोंदिन बढ़ती ही जा रही है। जिस किसीका दो-एक लेखक नामधारी व्यक्तियोंसे परिचय हुआ, जिस किसीको कोई छोटा-मोटा कामका भूखा प्रेस मिल सका, जिसका परिचय किसी निठले कागज़के व्यापारीसे हो गया—वह प्रकाशक बने बिना नहीं रहा। जब मुफ्तमें पुस्तककी 'पाण्डुलिपि' मिलती है, वर्षोंके वादेपर छापनेवाले मिलते हैं और कागज़ देनेवाले मिलते हैं, तो कौन ऐसा मूर्ख होगा, जो प्रकाशक न बन बैठेगा।

जब प्रकाशकोंकी संख्या इस प्रकार बढ़ रही है कि बिना पैसेके लोग आसानीसे 'प्रकाशक'-श्रेणीमें सम्मान पा रहे हैं, तो प्रकाशनकी क्या दशा होगी। इसकी कल्पना इसीसे हो सकती है कि एक ही पुस्तकके अनेक संस्करण अनेक नामोंसे होते हैं। साहित्यके नामपर दुनियाका कूड़ा-क़र्कट और जूठन छपता है।

आप पूछेंगे, ऐसा क्यों होता है ? उसका उत्तर संक्षेपमें यही है कि मुफ्तमें अथवा नाममात्रके मूल्यपर खरीदी हुई 'रचनाएँ' इससे अधिक क्या होंगी। हिन्दीमें सम्पन्न और उच्चकोटिके विद्वान 'स्वातः सुखाय' श्रेणीके कितने लेखक हैं, जो सब प्रकाशकोंकी माँग पूरी कर सकें ? साधारण अवस्थाका 'स्वातः सुखाय' लिखनेवाला क्या लिखेगा। यह बात आसानीसे समझमें आ सकती है। आमतौरपर वह सस्ते सम्मानका भूखा 'लेखक' बनकर अपनी आत्म-तृप्ति चाहता है और इस हेतु 'कहींसे, कुछ, किसी प्रकार' लिखकर प्रकाशकको आभारी बनाता हुआ पाठकोंके समाजमें 'साहित्य'के नामपर ग्रन्थकार और साहित्यिकका आदर प्राप्त करना चाहता है। हमारी दृष्टिसे यह स्वांग ही है ; पर बेचारा 'वह' तो इससे बिल्कुल अनभिज्ञ है। यदि उसे अपनी स्थितिका ज्ञान हो जाय तो—तब तो सारी परिस्थिति ही बदल जाय। पर नहीं, अभी तो यह दूरकी बात है। हम वर्तमानको देख रहे हैं—भविष्यकी बातें अभी कल्पना हैं।

मुख्य विषयपर आइये। जब हिन्दीमें उक्त प्रकारके और इतनी संख्यामें 'प्रकाशक' हैं और उनके द्वारा हमारी भाषामें इस तरहकी ढेरों पुस्तकें छप रही हैं, तो उनकी क्या 'गति' होगी। 'विशाल भारत' में प्रकाशित श्री मार्तण्ड उपाध्यायका लेख एक प्रकट रहस्यका विज्ञापन कर रहा है। उसके आगे अब और गुंजाइश नहीं रही। पुस्तकें ७५-८० सैकड़े कमीशनपर विकने लगी हैं। यहाँ तक तो पहुँची—अब इसके आगे—?

इस मर्जकी दवा ढूँढ़नेके पहले ज़रा मरीज़का भविष्य सोच लेना अधिक उचित होगा। एक मछली सारे कुएँको गंदा कर देती है ; पर यहाँ तो इस तरहकी सैकड़ों हैं। ऐसी दशामें अच्छे और सम्मानित प्रकाशकों और साहित्यकी सेवाके निमित्त प्रकाशन करनेवाली हिन्दी-संस्थाओंके प्राण संकटमें हैं—

उनका उद्देश्य व्यर्थ हो रहा है। साहित्यका जैसे उपकार हो रहा है, उसे तो एक ओर रखिये ; परन्तु पाठकों और साधारण जनता तक इस 'कमीशन रूपी बला' का शिकार हो रही है। यदि दो-चार वर्ष ऐसी ही दशा और रही, तो कोई भला आदमी हिन्दी-पुस्तकोंकी दुकानपर भूलकर न जायगा और 'मुगलियोंकी' तरह हिन्दी-पुस्तकोंकी फेरी करनेवाले दरवाजे पर दीख पड़ते ही हुत्कार दिये जायेंगे। किसे फुर्सत है कि कबाड़ीके ढेरसे कामकी चीजें ढूँढ़नेमें समय नष्ट करे ? किसमें सामर्थ्य है कि घंटों भक्त-भक्त करके सौदा करे ?

इसका उपाय क्या है

आप पूछेंगे, इसका उपाय क्या है ? श्री मार्तण्डजीने 'हमारे साहित्यकी दुर्दशा' लेखमें केवल एक मर्जका उल्लेख किया है, वह है कमीशनकी भयानक दर ! परन्तु हमें उसके अतिरिक्त और भी मर्ज देख पड़ते हैं, जिनका सम्बन्ध एकसे नहीं, वरन् उन सबसे है, जिनके भरोसे साहित्य और पुस्तक-व्यापार चलता है। आइये, हम उसपर क्षणभर विचार करें।

साहित्य और प्रकाशित साहित्यका जन्म तीन व्यक्तियोंके कारण होता है। लेखक, पाठक और प्रकाशक। यदि उनमें एक भी न हो, तो उसकी सृष्टि असम्भव होगी। जन्म देनेके पश्चात् भी ऐसे 'साहित्य' की समृद्धि प्रकाशकपर निर्भर होती है। परन्तु यदि शेष दो चाहें, तो उसके प्रचार और उन्नतिमें बराबर अपना कर्तव्य पालनकर उसका नियन्त्रण कर सकते हैं। हमारे हिन्दीमें कितनी श्रेणीके पाठक हैं—इसपर अभी तक किसीने वैज्ञानिक दृष्टिसे विचार नहीं किया। सब पाठक 'साहित्य' पढ़नेके लिए निमन्त्रित किये जाते हैं। और आये दिन हम उनमें साहित्यिक 'भावना' को उसकानेका प्रयत्न करते रहते हैं। 'साहित्य'के आदर्शकी हपरेखा अभी ऐसी अव्यक्त है कि हम उसे अपने देशकी आवश्यकताओंके अनुरूप उपयोगी नहीं बना सके। इसका फल यह हो रहा है कि 'कला' और 'साहित्य'के नामपर निकलनेवाली उपयोग-रहित पुस्तकोंसे मुँह मोड़कर पाठकोंकी अधिक संख्या 'कुछ' पढ़नेके

हेतु भटकती फिरती है। वे 'कुछ' पढ़ना चाहते हैं—अपनी उस वृत्तिके सन्तोषके लिए अपनी गाढ़ी कमाईके कुछ पैसे भी खर्च करना चाहते हैं—पर उन्हें इस ओर मार्ग दिखानेवाला कोई नहीं कि 'यह पढ़ो और इसे खरीदो।' ऐसी हालतमें पाठक या तो धर्मग्रन्थोंके प्रति चिरकालकी संस्कारजनित श्रद्धासे आक्रान्त होकर उन्हें खरीदकर अपना घर पवित्र करना चाहता है, अथवा अपनी बेकारी काटनेके लिए—बेकार मस्तिष्कसे उत्पन्न विचारोंसे भरी पुस्तकें खरीदता है। दोनों बेकारी काटना चाहते हैं। एक लिखकर छपाता है, दूसरा खरीदकर पढ़ता है। उसने क्या लिखा होगा और उसने क्यों पढ़ा होगा—दोनोंके उद्देश्य स्पष्ट हैं। प्रकाशक उन दो व्यक्तियों (लेखक और पाठक) के जोड़ बैठानेके लिए किये गये। परिश्रमका पुरकार चाहता है। उसे जो-कुछ भी मिलता है, मुफ्तका माल है—बिना परिश्रमकी कमाई है। अतः वह ७५ फी-सदी कमीशन देकर भी अपनेको धन्य समझता है। और क्यों न समझे ? उसकी तो जीविका चलती है—उसकी बलासे दोनों (लेखक और पाठक) जहन्नुममें जायँ। रहा साहित्य, सो उसकी चिन्ता ही किसे हैं ?

आखिर इस अवांछनीय स्थितिको दूर करनेका उपाय ? यदि हमें सचमुच इसका उपाय करना है, तो हमें लेखक, प्रकाशक और पाठक इन तीनोंका सुधार करना होगा। अन्यथा न तो वातावरण बदलेगा, न कुछ हो सकेगा। आवश्यकता इस बातकी है कि कुछ ऐसे लोग उस ओर ध्यान दें, जो वास्तवमें देशका हित चाहते हों—साहित्यके हित चाहनेवालोंसे काम न चलेगा। हमारा ध्येय प्रथम देशका कल्याण है—'साहित्य'को हम 'लक्ष्य' नहीं, वरन् देशहितके लिए 'साधन' मात्र मानते हैं। यदि कुछ ऐसे लोगोंका सहयोग मिल सके, तो हमारा काम बन सकता है।

सर्वप्रथम तो हमें एक 'हिन्दी-साहित्य-सुधार' कमेटी बनानी चाहिए, जिसके सदस्योंमें अनुभवप्राप्त लेखक, प्रकाशक, पाठक और साहित्य-सेवी हों ; परन्तु जिनका एकमात्र लक्ष्य

साहित्यका सुधार करके उसे देशके लाभार्थ उपयोगी बनाना हो । यदि ऐसी कमेटी बन जाय, तो उसे लेखकों, पाठकों और प्रकाशकों तीनोंको संकेत, सहायता और सहयोग देनेका प्रबन्ध करना चाहिए । पहले हमें 'साहित्य' की एक परिभाषा निश्चित कर देनी चाहिए । फिर हमें भारतीय साहित्यकी मर्यादाको ध्यानमें रखकर हिन्दी-साहित्यका कार्यक्रम बना देना चाहिए । इस बातपर स्पष्ट जोर देना चाहिए कि साहित्यमें इस प्रकारकी लिखी हुई अमुक-अमुक विषयोंकी पुस्तकोंकी आवश्यकता है । इससे लेखकों, प्रकाशकों और पाठकों सभीको सहायता मिलेगी । इसके आगेका काम प्रकाशकों, पत्र-पत्रिकाओंके सम्पादकों और लेखकोंपर छोड़ा जाय ।

प्रकाशकोंमें से कुछ लोगोंको आगे बढ़ना चाहिए और अपना 'प्रकाशक-संघ' बनाकर अपने व्यवसायकी श्रीवृद्धिका चिन्तन करना चाहिए । इस हेतु हमारे विचारसे उन्हें एक त्रैमासिक पत्र निकालना चाहिए । जिसके द्वारा उन्हें पुस्तक पढ़नेकी वृत्तिको प्रोत्साहन देना चाहिए । इसके अतिरिक्त उसमें तीन महीनेमें प्रकाशित समस्त हिन्दी पुस्तकोंको छांटकर एक सूची प्रकाशित करनी चाहिए, जिसमें प्रत्येक पुस्तकका संक्षेपमें परिचय हो । उसके आकार-प्रकार, मूल्य, लेखक, प्रकाशक और विषयका उल्लेख हो । यह सूची विषयके अनुसार विभाजित होनी चाहिए । अपने त्रैमासिक पत्रमें उन्हें अपने 'संघ' में सम्मिलित प्रकाशकों और पुस्तक-विक्रेताओंके नाम-पते भी छापना चाहिए, जिससे पाठकों और ग्राहकोंको पुस्तकें मँगानेमें सुविधा हो ।

उपर्युक्त त्रैमासिक प्रकाशनकी सूचीका एक और उपयोग हो सकता है । इसे परिशिष्ट बनाकर उसकी प्रतियाँ (Reprint) बुकसेलरोंके हाथ वितरणके लिए बेची जा सकती हैं । वे इसपर अपने नाम-पते छपाकर अपने ग्राहकोंके पास भेज सकते हैं । इस प्रकार सस्तेमें उनके पास समस्त सुन्दर पुस्तकोंकी सूची तैयार हो जाती है और उनका विज्ञापन हो जाता है । विलायतमें ऐसी कितनी ही संस्थाएँ हैं, जो इस प्रकारकी मासिक सूची तैयार करती हैं और जिन्हें खरीदकर वहाँके पुस्तक-विक्रेता

अपने काममें लाते हैं । इसका फल यह होता है कि जिनतामें एक ही तरहकी सूचीका प्रचार होता है और पाठकोंको उत्तम पुस्तकें चुननेमें देर नहीं लगती । इससे वहाँके पुस्तक-विक्रेता, प्रकाशक और पाठक सभी लाभ उठाते हैं ।

प्रकाशक-संघके सामने चुनावका प्रश्न आवेगा । यह कार्य 'आलोचकों' पर छोड़ना चाहिए और इस हेतु उन्हें स्वतन्त्र और उच्चकोटिके निष्पक्ष आलोचकोंका सहयोग प्राप्त करना चाहिए । यदि हम पाठकोंको पुस्तक चुननेमें सुविधा प्रस्तुत कर सकें, तो निश्चय ही हिन्दीकी अच्छी पुस्तकोंका प्रचार बढ़ेगा । रही कमीशनवाली बात । यदि प्रकाशकोंका संघ बन जाय, तो उन्हें सबसे पहले इस बातका निश्चय करना होगा कि हिन्दीकी पुस्तकोंपर ग्राहकोंको अधिकसे अधिक कितना कमीशन दिया जाय । उन्हें ऐसा नियम बनाना होगा कि एक पुस्तकपर एक निश्चित कमीशन मिले और समान रूपसे सभी बुकसेलरोंको । अन्यथा लोग मनमाना कमीशन देकर ग्राहकोंको बिगाड़ देंगे और बाज़ार चौपट होगा ।

पुस्तकके मूल्यके विषयमें कोई नियम निर्धारित नहीं किया जा सकता । जिसकी जैसी लागत होगी, जिसकी जैसी विक्री होनेकी आशा होगी, उसका उसीके अनुसार मूल्य रखा जायगा । यह व्यापारकी नीति है, इसमें किसी प्रकारका हस्तक्षेप चल नहीं सकेगा । परन्तु प्रश्न होगा कि १५ फी-सदी लागतवाली पुस्तकोंसे अच्छी पुस्तकोंकी रक्षा कैसे होगी । हमारी समझमें इसका भय तो जाता रहेगा । यदि पुस्तक अच्छी नहीं होगी, तो उसका समर्थन न होगा—वरन् उसके वहिष्कारकी सलाह लोगोंको दी जायगी । और यदि पुस्तक अच्छी हुई, तो उसकी लागत कभी इतनी कम न होगी । पुस्तककी लागतकी कमीका कारण यह है कि ऐसे प्रकाशकोंको सिवा छपाई, कागज आदिके कुछ देना नहीं पड़ता । 'लेखक' का अंश उसमें रहता ही नहीं । यदि 'लेखक' अपने स्वत्वके प्रति सावधान रहें—और रहेंगे—तो कभी सम्भव नहीं कि प्रकाशक उतनी कम लागतपर पुस्तक छाप सके । यदि उसकी लागत कम होगी, तो निश्चय ही उसे पुस्तक सस्तेमें देनी होगी । अन्यथा पाठक

उसे खरीदनेके लिए अच्छी पुस्तकोंका खरीदना न छोड़ेंगे। इस समय जो ऐसा हो रहा है, उसका कारण यह है कि पाठकोंको अच्छी-बुरी पुस्तकोंकी परख नहीं और 'सस्ती दे रहा हूँ' और 'आपको इतने कमीशनपर दे रहा हूँ'—इसके फेरमें पड़कर वह पुस्तक खरीद लेता है। बादमें वह ज़हर पछताता है। अन्यथा प्रकाशक दिन-पर-दिन कमीशनकी दर न बढ़ाते और इसपर फिर बैठकर रोना न रोते।

लेखक-संघका कर्तव्य

लेखकोंको इस बातकी प्रतिज्ञा कर लेनी चाहिए कि वे कभी बिना उचित पुरस्कार लिये प्रकाशकको पुस्तकें न दें। केवल अपनी रचना टाइपमें छपी देखकर उन्हें सन्तोष न करना चाहिए। उसके साथ-साथ लेखकोंको कापीराइट न बेचकर रायल्टीपर अपनी पुस्तकें देनेका रिवाज निकालना चाहिए। प्रकाशक भी यदि अपने व्यवसायका कल्याण चाहते हैं तो उन्हें भी इसपर जोर देना चाहिए। यदि पुस्तकें 'रायल्टी' पर देनेकी परिपाटी चल जाय, तो पहले प्रकाशक ढूँढ़ते समय लेखक अच्छा और विश्वसनीय प्रकाशक ढूँढ़ेगा।

उस परखमें मोटे-मोटे टुटपूँजिये—सन्दिग्ध आचरणवाले प्रकाशक न उहरेगे। धीरे-धीरे उनका अन्त हो जायगा और अच्छे, पूँजीवाले, विश्वसनीय चरित्रवाले प्रकाशकोंके मार्गके काँटे दूर होंगे। इस प्रकार एक ओर प्रकाशकोंमें अच्छे-बुरेकी छाँट हो जायगी, दूसरी ओर लेखकोंमें भी अच्छे-बुरेका परिष्कार हो जायगा। यदि प्रकाशकोंको रायल्टी वा उचित पुरस्कार देना होगा, तो वे पहले पुस्तककी विक्रीका अन्दाज़ लगावेंगे। बाज़ारमें आनेवाली चीज़की उपयोगिता तथा लेखनशैलीकी परख करावेंगे। और इस प्रकार केवल अच्छी और बिकनेवाली पुस्तकें ही छपेंगी। रहा पाठकोंकी 'रुचि'का नियन्त्रण करना, उसका भार हम पहले ही देशके हितचिन्तक साहित्यिकों और आलोचकोंपर छोड़ आये हैं। एक बार अन्तमें हम फिर यही निवेदन करेंगे कि इस प्रश्नपर व्यापक दृष्टिसे विचार होना चाहिए। लेखक, प्रकाशक और पाठक तीनोंके कुछ कर्तव्य और अधिकार हैं। इनका सामंजस्य हुए बिना बाज़ारकी हालत कैसे ठीक हो सकती है ?



टाँगेवाला

श्री चन्द्रगुप्त विद्यालंकार

आँधीका एक जबरदस्त भौंका आया और उसके बाद हल्की-हल्की बूँदा-बाँदी शुरू हो गई। रातका अन्धकार सभी ओर व्याप्त था। लाहौर स्टेशनका शोरगुल इस समय तक लगभग समाप्त हो गया था और दिन-भरकी अन्तिम गाड़ी भी रवाना हो चुकी थी। स्टेशनकी बहुत-सी बत्तियाँ जब बुझा दी गईं, तो पीरूने भी अपने कमज़ोर-से घोड़ेपर कसकर एक चाबुक जमाई और गुस्सेमें भरकर कहा—“चल वे कम्बख्त ! तीन घंटे तक लगातार यहाँ इन्तज़ार करते रहनेपर भी तुझे आने-दो-आने तककी कोई सवारी नहीं मिली।”

तड़फड़ाकर घोड़ा अड़ेसे बाहर निकला और दुलकी चालसे अपने घरकी ओर बढ़ने लगा। पीरूका बड़बड़ाना अभी जारी था। वह बके जा रहा था—“ये पोलीसवाले बड़े पाजी हैं। जो टाँगेवाला इन्हें दो-चार आने भेंट-पूजा न दे, उसे सवारी मिल ही नहीं सकती। और यह घोड़ा भी तो गधेसे बड़का कम्बख्त है। मर्दुएको छः सालसे लगातार इसी टाँगेमें जोत रहा हूँ, कभी तबीयत भरने लायक कमाई इससे नहीं हुई।”

वह नाममात्रकी बूँदा-बाँदी बीच ही में रुक गई। मिट्टी भरी हवाका एक जबरदस्त भौंका उठा और पीरूकी आँखों तथा सफेद दाढ़ीसे टकराता हुआ आगे निकल गया। पीरू निरन्तर बके जा रहा था, इससे मिट्टीके बहुतसे कण उसके मुँहमें भी घुस गये। बुढ़ेको जबरदस्त खाँसी उठ खड़ी हुई, जिसने उसका साथ बहुत देर तक न छोड़ा।

पिछले सैंतीस वरसोंसे पीरू लाहौरकी सड़कोंपर टाँगा चला रहा है। उसकी उम्र इस वक्त करीब पचपन सालकी होगी। मा-बापने उसका नाम पीरवख़्श रखा था; परन्तु पचपन सालकी उम्र तक

पहुँचकर भी वह पीरूसे पीरवख़्श नहीं बन सका। उसने शादीकी; दो बच्चोंका वाप बना; दुनियाका तजुर्बा हासिल किया; मगर वह रहा पीरूका पीरू ही। बचपनमें, जवनीमें, बुढ़ापेमें—कभी उसे इज्जत नसीब न हुई। पीरूकी घरवालीका, बहुत समय हुआ, देहान्त हो चुका है। उसकी लड़की शादी करके समुराल चली गई है और उसका इकलौता लड़का बड़ा होकर रावलपिण्डीमें किसी साहबका वैरा है। १८ बरसकी उम्रमें, जब पीरूने पहले-पहल टाँगा चलाना शुरू किया था, तब भी वह अकेला ही था और आज ५५ सालका होकर भी वह अकेला ही रह गया है।

आँधीका भौंका निकल गया और बुढ़े कोचवानका बड़बड़ाना भी बन्द हो गया। पीरूका खच्चरनुमा घोड़ा बड़ी सुस्त चालसे अपने थानकी ओर बढ़ा जा रहा था। सड़कपर इस वक्त बहुत ही कम आवागमन था, इससे पीरूका ध्यान सड़ककी ओर नहीं था। सहसा पीरूका कमज़ोर-सा घोड़ा चौककर एक ओरको हटा और उसी क्षण एक लँगड़े अपाहिजकी करुण-सी आवाज़ सड़कपर सुनाई दी। पीरूने देखा कि एक लँगड़ा भिखमंगा उसके टाँगेके नीचे आनेसे बाल-बाल बच गया है। लँगड़ेको चोट तो नहीं आई, मगर घोड़ेसे टकराकर वह गिर ज़रूर गया। पीरूने टाँगा रोक दिया। उसकी जेबमें तीन पैसे पड़े थे, इनमें से दो पैसे उसने लँगड़ेको पकड़ा दिये और इसके बाद वह आगे बढ़ा।

कोई टाँगेवाला किसी भिखमंगेको पैसे दे, यह बात असामान्य थी; फिर भी एक और भिखमंगेने दूर ही से पीरूकी उदारता भाँप ली और रोनी-सी आवाज़में भीख माँगता हुआ वह पीरूके टाँगेके पीछे-पीछे दौड़ने लगा। पीरूने उसे दूतकारा, चाबुक

मारनेकी धमकी दी और उसकी ओर हाथ भी बढ़ाया । मगर वह भिखमंगा भी पूरा जिद्दी थी, हटा नहीं । आखिर लाचार होकर पीरूने चाबुक चला ही दिया । भिखमंगा, बारह-तेरह सालका एक लड़का था, वह तिलमिलाकर परे हट गया । सहसा पीरूने अपने जेबसे वह बचा हुआ पैसा भी निकाला और बड़बड़ाते हुए उस लड़केकी ओर फेंक कर दिया—
“नालायक कहींके ! खाली टाँगोंका भी पीछा नहीं छोड़ते ! दुनिया-भरमें जिसे देखो, उसे अपनी ही पड़ी है !”

रातकी उस सुनसानप्राय सड़कपर भी, न-जाने कहाँ-कहाँसे, तीन-चार मंगते निकल आये और पीरूके टाँगैके पीछे दौड़ने लगे । आखिर बूढ़ेको हार माननी पड़ी । उसने अपने मरियल-से घोंड़ेको वह इशारा किया, जिससे अनायास ही वह हवा होकर दौड़ने लगा । सभी मंगते कुछ ही क्षणोंमें बहुत पीछे छूट गये ।

[२]

निरापद होकर पीरूका घोड़ा पुनः अपनी स्वाभाविक चालसे चलने लगा । सड़कपर कोई पैदल व्यक्ति आसपाससे होकर कहीं आ-जा भी रहा है या नहीं, यह देखे बिना ही पीरू अपनी बरसोंकी सहज आदतसे सहसा आवाज दे उठा—“जिला कचहरी ! अजायबघर ! कृष्णानगर !”

और अचानक उसी वक्त एक नारी-मूर्ति आगे बढ़ी और उसके धीरेसे आवाज दी—“टाँगैवाले !”

टाँगा रुक गया और वह स्त्री किसी तरहकी पूछताछ किये बिना ही टाँगैपर बैठ गई । पीरूने पूछा—“किधर जाना है ? कृष्णानगर ?”

उस स्त्रीने धीरेसे कहा—“हाँ ।”

टाँगा बढ़ने लगा, और वह स्त्री टाँगैकी पिछली सीटपर, पीरूकी ओटमें, सिकुड़कर बैठ गई । उसने अपना मुँह पीरूके सिरके पीछे छिपा लिया, ताकि सड़ककी जगमगाती हुई बत्तियोंका प्रकाश उसके मुँहपर न पड़ सके ।

पीरूने दुनिया देखी थी । कुछ देर तक तो वह यही सोचकर चुपचाप बढ़ता चला गया कि हमें क्या लेना है, जो किसी बातकी पूछ-ताछ करें । मगर अन्तमें उससे रहा नहीं गया और उसने पूछा—“क्यों माई, कृष्णानगरमें किस जगह जाना है ?”

कोई जवाब नहीं मिला ।

पीरूका माथा ठनका । मगर उसने मुँहसे कुछ नहीं कहा । उसका टाँगा चलाना बदस्तूर जारी रहा । टाँगा अजायबघरके निकट पहुँचा, तो सड़कपर बिल्कुल सन्नाटा था । भंगियोंकी तोपके नजदीक एक सन्तरी खड़ा था । उसने जब देखा कि टाँगैपर एक स्त्री अकेली सवार है और वह भी अपनेको कोचवानकी आड़में छिपा डालनेका भरसक प्रयत्न कर रही है, तो उसने सीटी दे दी ।

टाँगा खड़ा हो गया । सन्तरी आगे बढ़ा और उसने पीरूसे पूछा—“किधर जा रहे हो ?”

पीरूने जवाब दिया—“कृष्णानगर ।”

“किधरसे आ रहे हो ?”

“ग्वालमण्डीसे ।”

“कृष्णानगरमें किसके यहाँ जाओगे ?”

“माईका अपना मकान है ।”

वह स्त्री थोड़ा-सा परदा करके सिमटी हुई चुपचाप बैठी थी, इससे सिपाहीकी यह हिम्मत न हुई कि वह उससे भी कुछ पूछे । उसने टाँगैका नम्बर नोट कर लिया और पीरूको इस बातकी इजाजत दे दी कि वह आगे बढ़े ।

[३]

कृष्णानगरकी पूरी सीमा पार करके पीरूका टाँगा ऐसी जगहपर आ पहुँचा, जहाँ आवादी बहुत ही कम थी । आखिरकार एक पेड़की ओटमें पीरूने टाँगा खड़ा कर दिया । मगर उस औरतने मानो न बोलनेकी कसम खा रखी थी । न तो वह बोली और न हिली-डुली ही ।

बूढ़ा पीरू आखिर खिज उठा । यह अच्छा

तमाशा है। रातके वक्त एक औरत अकेली आकर टाँगेपर बैठ जाय। फिर न तो वह उतरनेका नाम ले और न बोले ही। पीरूने ज़रा रूखी-सी आवाज़में कहा—“माई ! आखिर तुम्हें जाना किस जगह है ? मुझे भी तो घर जाकर टाँगा खोलना है ।”

माई एक क्षण तो चुप रही। उसके बाद जैसे अपने हृदयका सम्पूर्ण साहस संप्रह करके उसने कहा—
“आज रातके लिए मुझे अपने घरपर आसरा दे सकोगे, बाबा !”

पीरू इस बातके लिए हर्षित तैयार न था। वह अभी तक इस औरतके सम्बन्धमें और ही तरहकी कल्पनाएँ कर रहा था। इस करुण-सी प्रार्थनाके उत्तरमें पीरूने सीधे ढंगसे इनकार कर दिया।

वह औरत अपने सिरके आवरणको सँभालती हुई एक ठंडी साँस लेकर टाँगेसे धीरे-धीरे नीचे उतर गई और वृक्षके तनेके पास जाकर खड़ी हो गई। जैसे और सब ओरसे निराश होकर वह पेड़से आश्रय माँगने आई हो।

पीरूके पके हुए दिलको क्षण-भरके लिए एक सदमा पहुँचा। फिर भी उसने टाँगेको वापस मोड़ा और दियासलाई जलाकर वीड़ी सुलगाई। शायद इस इगदेसे भी कि दियासलाईके प्रकाशमें वह उस औरतका चेहरा देख ले।

वीड़ीका एक गरमागरम कश खींचकर जैसे पीरूके दिलकी नरमी, दूसरे शब्दोंमें कमज़ोरी, दूर हो गई। वह तो एक टाँगेवाला है। उसके टाँगेपर सुखी-दुखी, अच्छे-बुरे, गरीब-अमीर सभी तरहके लोग सवार होते हैं। लोगोंके दुख-दर्दसे वह अपना नाता क्यों जोड़े ? वह तो स्थलका मल्लाह है। एक जगहसे सवारी ली, दूसरी जगह उतार दी। बस, इतना ही। वह सवारी औरत है, मर्द है, सुखी है, दुखी है, सन्तुष्ट है या ज़रूरतमन्द है, इससे उसे कोई सरोकार नहीं। उसके लिए सवारीकी जगह यदि मन-डेढ़-मनका कोई वेजान बोलता, तब भी वही बात थी।

टाँगेवालेका यही धरम है। पीरूने उस औरतसे किराया नहीं माँगा, यही क्या कुछ कम है। वह लौट पड़ा और चाबुक लगाकर उसने अपने घोड़ेकी रफ्तार तेज़ कर दी। क्रमशः वह मील-भर आगे निकल गया। अजायबघरके नज़दीक वह सन्तरी अब भी उसी तरह तैनात खड़ा था। सिपाहीने जैसे पीरूका टाँगा पहचान लिया और वह अब खाली है, यह देखकर मानो उसने सन्तोषकी साँस ली।

जब तक वीड़ी सुलगती रही; पीरू जिन्दगीकी तमाम चिन्ताओंसे छुटकारा पाये रहा ; मगर ज्यों ही वीड़ीकी अन्तिम चिनगारी बुझी, त्यों ही दियासलाईके धुँधले प्रकाशमें जो दिखाई दिया था, वही करुण-सा मुँह पीरूके सामने आ गया। आखिर, वह बदकिस्मत औरत अगर एक रात उसके यहाँ रह ही जाती, तो उसका क्या बिगड़ जाता ? आस्मानमें अभी तक बादल छाये हुए हैं। मुमकिन है कि बारिश होने लगे, तब उस बेचारीका क्या हाल होगा।

पीरूने टाँगा वापस मोड़ दिया। सिपाही अब भी अपनी ड्यूटीपर तैनात खड़ा था।

वह औरत पेड़की छायामें कब-सी सिमटकर पड़ी थी कि पीरूने उसे धीरेसे आवाज़ दी। वह चुपचाप उठ खड़ी हुई और टाँगेपर आकर बैठ गई। पीरू अबके मील-भरका अधिक लम्बा चक्कर लगाकर अपने घर पहुँचा, वह सिपाहीसे बचना चाहता था। और सम्भवतः सिपाहीसे बचना उसके लिए आवश्यक भी हो गया था।

अगले दिन पीरूको मालूम हो गया कि वह बदकिस्मत औरत हिन्दू है और एक मुमलमान मेवा-फरोशके चक्करमें पड़कर लाहौर आ पहुँची थी। पाँच-छः महीनेके बाद उस ग़ैर-ज़िम्मेवार नौजवानने कल उसे अपने घरसे बाहर कर दिया था।

[४]

नूरा अगर जानता कि उसके मज़ाकका इतना भीषण परिणाम हो सकता है, तो आज सुबह पीरूसे

वह उस तरहकी छेड़खानी हरगिज़ न करता। अपने बुड़े पड़ोसीके साथ उसे कोई दुश्मनी तो थी नहीं। आज सुबह जब यों ही बिलकुल निष्काम भावसे, वह बुड़े पीरूके घरमें प्रविष्ट हुआ, तो वहाँ एक हिन्दू औरतको देखकर उसके आश्चर्यका ठिकाना न रहा। वाइस-लेईस बरसकी वह औरत इन टाँगैवालोंके लिए देखने-सुननेमें भी कुछ बुरी न थी। यों उसे सुन्दर तो कहा ही न जा सकता था। आश्चर्यकी अपेक्षा नूरामें विनोदकी मात्रा और भी अधिक उग्रतासे जागृत हुई। शीघ्रतासे वह पीरूके घरसे बाहर आया और उसके बाद आठ-दस दोस्तोंको, जो अभी टाँगा जोतनेकी फ़िक्रसे बरी थे, बुला लाया। ये सब लोग मीयाँ पीरबख्शके घरपर पहुँचे और बड़े अदबके साथ उन्हें बधाइयाँ देने लगे।

वात यहाँ तक ही रहती, तब तक कोई हर्ज न था। मगर देखते-देखते सारे मुहल्लेमें इसी बातकी चर्चा होने लगी। बहुत शीघ्र गलीके दूसरे छोरपर रहनेवाले हिन्दू कोचवानोंसे भी यह बात छिपी न रही कि कल रात बुड़ा पीरू किसी हिन्दू औरतको भगा लाया है। बस, फिर क्या था; शाम होते-न-होते लाहौरके हजारों हिन्दू-मुसलमानोंने इस बातको अपनी इज्जतका सवाल बना लिया।

हुआ वही, जो ऐसी दशाओंमें हिन्दोस्तानमें आमतौरसे होता है। रात होते-न-होते शहरके उस भागमें रहनेवाले लोगोंमें इतनी गरमी पैदा हो गई कि पुलिसके लिए दखल देना नितान्त आवश्यक हो गया। थोड़ी-सी छानबीनके बाद रातको भंगियोंकी तोपके नज़दीक ड्यूटी देनेवाले सिपाहीकी गवाहीके आधारपर यह निश्चय कर लिया गया कि अवश्य ही पीरू इस स्त्रीको कहींसे बहकाकर लाया है। इतना प्रमाण काफ़ी था, और पीरूको हिरासतमें ले लिया गया।

पुलिस जब पीरूको लेकर चली, तो हजारोंकी संख्यामें मुसलमान 'अल्लाहो अकबर'के नारे लगा रहे थे। उधर हिन्दू भी क्रोधमें उबल रहे थे। इस

देशके मुसलमान कितने आततायी और पाशविक मनोवृत्तिके हैं, इस बातका उन्हें एक नया सबूत मिल गया था। एकने कहा, यू०पी०के एक ताल्लुकदारकी लड़की है, जिसे यह पाजी उड़ा लाया था। दूसरेने कहा, मैंने अपनी आँखोंसे देखा है, परियोंसे बढ़कर खूबसूरत है। तीसरेने प्रश्नके स्वरमें मानो बतलाया, लखनऊके कालेजमें पढ़ती थी न? चौथेने फ़टसे टिप्पणी की, वे लोग कितने नासमझ हैं, जो यह सब देखते-भालते हुए भी अपनी लड़कियोंको कालेजकी तालीम देते हैं।

पीरू मानो मुसलमानोंकी निगाहमें एक गाज़ी बन गया था। लोग कहते थे कि उसने कितनी हिम्मतका काम किया है। इसका सवाल उसे खुदा देगा। रात-ही-रातमें उसे ज़मानतपर छुड़ा लानेके लिए चन्दा जमा किया गया और शहरके बड़े-बड़े मुसलमानोंकी एक सव-कमेटी उसका मुकदमा लड़नेके लिए नियत हो गई। गली-कूचोंमें मुसलमान वालंटियरोंके अनेक छोटे-छोटे जत्थे 'मीयाँ पीरबख्श जिन्दाबाद' के नारे लगाते फिरते थे।

अगले दिन जब अपने प्रशंसकों द्वारा दी गई दस हजारकी ज़मानतपर छूटकर पीरू हिरासतसे बाहर निकला, तो सैकड़ों उरसाही कण्ठोंने एक साथ उसका स्वागत किया। पीरू बेचारा घबरा गया। उसने लोगोंको पचास तरहसे समझाना चाहा कि वह गाज़ी-फ़ाजी कुछ नहीं है। मगर उसके कहनेसे क्या होता है। लोग मानें, तब तो न। उसे अपने गलेमें मालाएँ भी स्वीकार करनी पड़ीं और एक छोटे-मोटे जलूसका प्रधान पात्र भी बनना ही पड़ा।

घर पहुँचकर पीरूने देखा कि वह औरत एक छोटी-सी कोठरीके भीतर, मानो बहुत-ही डरी हुई दशामें, बैठी है। वह इस अजीब और शर्मनाक नाटककी प्रधान पात्रा थी। मगर पीरूके घरके बाहर जो दो-चार पुलिसमैन तैनात थे, उनके डरसे किसीने उससे कुछ कहनेकी हिम्मत अभी तक न की थी।

पीरूको अन्दर आते देखकर वह औरत उठ खड़ी हुई। एक अनिश्चित प्रकारके वात्सल्य भावसे पीरूने पूछा—“तुम्हारा नाम क्या है, बेटी ?”

उस औरतने धीरे-से जवाब दिया—“तारा ।”

पीरूने पूछा—“तुम्हारा घर कहाँ है ?”

जवाब मिला—“इलाहाबाद ।”

पीरूको मानो खुद इस बातकी हैगानी होने लगी थी कि कल सुबह उस औरतके सम्बन्धमें और सब जानकारी प्राप्त कर लेनेपर भी उसने उसके नाम और निवासस्थानके सम्बन्धमें कुछ भी पूछनेकी आवश्यकता क्यों न समझी थी। क्षणभरकी चुप्पीके बाद पीरूने देखा कि उस अभागिनीकी आँखोंमें आँसू भर आये हैं। पीरूने बड़ी नरमीके साथ कहा—“घबराओ नहीं, बेटी ! मैं तुमपर किसी तरहकी आँच न आने दूँगा ।”

बूढ़े पीरूकी यह सान्त्वना ताराको एक आशीर्वादके समान जान पड़ी और भरोसा पाकर मानो उसकी रज्जईको स्वच्छन्दतापूर्वक फूट पड़नेका अवसर मिल गया।

[५]

आखिर बुढ़े पीरूने यह सावित कर ही दिया कि वह गाजी-फ़ाजी कुछ नहीं है। मुकदमेमें कोई दम तो था ही नहीं। ताराकी स्पष्ट गवाहीने उसका खातमा ही कर दिया।

इस बीचमें नगर-निवासियोंको पालीटिक्सका मानो एक नया क्षेत्र मिल गया था। घरोंमें, समा-सोसाइटियोंमें, दूकानोंपर, अखबार बेचनेवालोंकी चिल्लाहटोंमें और यहाँ तककी पोस्टरोंमें भी इस नगण्य टाँगेवाले और उसके मुकदमेकी चर्चा थी। संसारका कोई अच्छेसे अच्छा काम करके भी पीरूको वह नेकनामी हासिल न हो सकती थी, जो इस ज़रा-सी बातसे अनायास ही उसे प्राप्त हो गई। अपने लोगोंमें उसकी कदर बढ़ गई, समाजके बड़े-बड़े नेता उसकी झोपड़ीका चक्कर लगा आये और सबसे बढ़कर पुलिसपर भी उसका रोव

कायम हो गया। उसका वेटा भी अपने सुर्खरू बापके दर्शनोंका पुण्य प्राप्त करनेके उद्देश्यसे दो-चार दिनोंके लिए लाहौरका चक्कर लगा गया।

मगर प्रतिष्ठा और ख्यातिके इस चक्रव्यूहसे वह बेवकूफ़ बुढ़ा साफ़ निकल गया। मामलेका निर्णय पीरूके पक्षमें होते ही अनेक लोग उसके पास यह सलाह लेकर पहुँचे कि वह उस हिन्दू औरतसे बाकायदा कलमा पढ़वाले। मगर पीरूने इस बातसे साफ़ इनकार कर दिया। उसके प्रशंसकोंको यह देखकर अत्यधिक दुख पहुँचा कि ताराके लिए पीरूने न केवल खाने-पीनेका प्रबन्ध ही बिलकुल जुदा कर रखा है, अपितु वह उसे अपनी बेटीके समान इज्जतसे रखता है।

नतीजा यह हुआ कि ‘चूहा फिरसे चूहा’ बन गया। अपने साथियोंपर उसकी जो धाक कायम हो गई थी, वह बहुत अंश तक उसी तरह बनी रही ; परन्तु जनताने उसे बहुत शीघ्र भुला दिया। वह फिरसे एक मामूली टाँगेवाला ही रह गया।

[६]

आस्मानमें तीन-चार दिनोंसे बादल घिर रहे थे, इससे मार्चका महीना शुरू हो जानेपर भी लाहौरमें सरदी कम नहीं हुई थी। दोपहरका समय था। तारा खा-पीकर कोठरीके अन्दर लेटी हुई थी। अचानक इसी समय पीरूका जवान वेटा रावलपिण्डीसे वहाँ आ पहुँचा। आते ही उसने तारासे पूछा—“अब कहाँ हैं ?”

तारा उससे परदा करती थी। उसने धीरेसे जवाब दिया—“टाँगा लेकर बाहर गये हैं ।”

लड़केने पूछा—“इस वक्त कब तक वापस आया करते हैं ?”

तारा अभी उसकी इस बातका कोई जवाब न दे पाई थी कि आस्मानसे ठंडी-ठंडी बूँदें टप-टप टपकने लगी। घरकी दो-चार चीज़ें आँगनमें बिखरी पड़ी थीं, तारा उन्हें समेट ही रही थी कि पानीके साथ-साथ

हजारों-लाखों ओले बरस पड़ें। प्रकृति मानो सहसा चिल्ला उठी। आस्मानने जैसे एक भौ मिनटका नोटिस दिये बिना पृथिवीपर चढ़ाई कर दी थी। ठंडी हवाका एक भौंका आया। वर्षाकी बौछारसे ताराके वस्त्र कुछ-कुछ भीग गये थे। उसके शरीर-भरमें एक सिहरन-सी दौड़ गई, और वह शीघ्रतासे कोठरीके अन्दर घुस गई।

ओले अभी तक पड़ रहे थे और आँगनका दरवाजा भीतरसे बन्द था। सरदी सचमुच बढ़ गई थी और सब ओर असीम कोलाहल मचा हुआ था। घर-भरमें सिर्फ दो ही प्राणी थे। पहली थी भगाकर लाये जानेके बाद छोड़ दी गई एक अभागिनी नारी और दूसरा था एक गैर-ज़िम्मेवार, अशिक्षित, अर्धसभ्य युवक।

और सरदी सचमुच बढ़ गई थी !

शामको बूढ़ा पीरू जब घर पहुँचा, तो उसका बुरा हाल था। ओलोंकी बौछार जब शुरू हुई थी, तो उसका टाँगा किसी नंगी सड़कपर खाली चला आ रहा था और उसकी छत भी उतारकर बाँध दी गई थी। नतीजा यह हुआ कि पीरूकी गंजी खोपड़ीपर और उसके बूढ़े घोड़ेकी नंगी पीठपर 'फलक'ने ताक-ताक कर निशाने जमाये।

पीरूकी दशा सचमुच दयनीय बनी हुई थी। इससे घर पहुँचते ही जब उसने ताराकी आँखोंमें आँसू देखे, तब वह समझा कि ये आँसू सहानुभूति और समवेदनाके आँसू हैं। उसने जरा-सा मुसकराकर कहा—“मुझे चाँट-बोट कुछ नहीं लगी, बेटी ! तुम चबराओ नहीं।”

ताराने बूढ़े पीरूके चरणोंपर सिर रख दिया और कहा—“मुझे तुम क्या मेरे घर तक नहीं पहुँचा दे सकते, बाबा !”

पीरू आश्चर्य-चकित रह गया। उसी वक्त उसका लड़का कोठरीसे बाहर निकल आया। जवान बेटेके मुँहपर शर्मकी जो गहरी छाया अंकित थी, उसे

बूढ़े बापकी कमज़ोर आँखें नहीं देख पाईं। उसने पूछा—“तुम कब आये सादिक ?”

“थोड़ी देर पहले।”

“सब खैरियत तो है न ?”

“हाँ अब्बाजान !”

“ओलोंकी बौछारसे तुम्हें कोई तकलीफ़ तो नहीं हुई ?”

“नहीं।”

“तुम उस वक्त कहाँ थे ?”

“रेलगाड़ीमें।”

“रेल आज बहुत लेट आई होगी, कहकर बूढ़ा पीरू अचानक पूछ बैठा—“तुम अपनी इस बहनको इलाहाबाद तक छोड़ आ सकोगे ?”

सादिकने बापकी इस बातका कोई जवाब नहीं दिया। इसी वक्त ताराने बूढ़े टाँगेवालेका हाथ पकड़कर कहा—“तुम अपने कपड़े तो बदल लो, बाबा ! सरदी खा जाओगे।”

[७]

बूढ़ा सचमुच सरदी खा गया था। सारी रात वह बुखारकी बेहोशीमें बड़बड़ाता रहा और अगले दिनकी सुबह उसकी दशा और भी अधिक चिन्ताजनक हो गई। मुहल्ले-भरके लोग पीरूका हालचाल पूछनेके लिए आते-जाते रहे। लोगोंने यही समझा कि सादिक अपने बीमार बापकी तीमारदारी करनेके लिए ही रावलपिण्डीसे लाहौर आया है।

पीरूकी इस बीमारीमें ताराने उसकी वह सेवा की, जो एक लड़की अपने सगे बापके लिए भी नहीं कर सकती। इस बीमारीमें वह धर्म, सम्प्रदाय, छुआछूत, लज्जा आदिकी सभी बाधाओंको भूल गई। उसे काम करता देखकर कोई भी यह नहीं कह सकता था कि वह पीरूकी अपनी लड़की नहीं है।

पूरे सात दिन और सात रातों तक मौतसे लगातार युद्ध करके जब ताराने पीरूको ज़िन्दा बचा लिया, तब तक पीरू इस बातको बिलकुल भूल गया था कि तारा

अपने घर लौट जाना चाहती है। वह क्यों लौट जाना चाहती है, इस सम्बन्धमें उसे कुछ भी ज्ञात नहीं था। बाप होकर अपने बेटेपर वह क्योंकर अविश्वास कर सकता था ?

सुबह-सुबह ताराके हाथसे गायका दूध पीते हुए पीरूने उससे पूछा—“अब भी तुम अपने घर लौट जाना चाहती हो, बेटा ?”

ताराने इस बातका कोई जवाब नहीं दिया। शीघ्रतासे अपना कार्य समाप्त करके वह वहाँसे दौट गई। पीरूको इस बातसे बड़ी ठेस पहुँची। उसका मुसकराता हुआ झुर्रीदार चेहरा एकदम उदास बन गया।

पाँच-छः रोज़ बाद पीरूने अपने एक जिगरी दोस्तसे पूछा—“लाहौरसे इलाहाबाद जानेका क्या किराया लगता है ?”

वह टाँगोवाला अपने सभी साथियोंमें सबसे अधिक जानकार माना जाता था। उसने बतलाया—“एक तरफ़का ग्यारह रुपयेके करीब।”

उसने कई बार पीरूसे यह पूछनेकी कोशिश की कि वह इलाहाबादका किराया क्यों जानना चाहता है ; मगर पीरू उसकी बातको टालता ही चला गया।

रातके समय पीरू हिसाब लगाने लगा—एक तरफ़का किराया ग्यारह रुपया। दो आदमियोंका बाईस और सादिकके वापस आनेका मिलाकर तैंतीस। कुल मिलाकर कम-से-कम चालीस रुपयोंका इन्तज़ाम करना होगा।

पीरू चिन्तित हो गया। उसके पास कुल मिलाकर २५ रुपये ही थे। यही उसकी कुल जमा पूँजी थी। अपने बेटेसे वह इस बातके लिए पैसे किस तरह माँगे। वह कहीं इनकार कर दे तो ! बुढ़ेको घंटों तक नींद न आई। वह उधार भी माँगे तो किससे। कुछ समझ ही न पड़ता था। अन्तमें उसे एक उपाय सूझ ही गया, तब एक ठगड़ी

साँस लेकर वह इस चिन्तासे छुटकारा पा सका।

पीरूके पास अपने घोड़ेको ओढ़ानेके लिए एक बढ़िया कम्बल था, जो उसे अपने बापसे विरासतमें मिला था। पीरू इस कम्बलको बहुत सँभालकर रखता था। इस कम्बलके लिए अनेक सम्पन्न टाँगोवाले उसे पचीस-पचीस रुपया तक देनेको तैयार थे। मगर इस कम्बलको बेच डालनेका विचार तक भी कभी उसके जीमें न आया था। अगले दिन बड़े सुबह अँधेरे मुँह ही पीरू चुपचाप उस कम्बलको लेकर बाहर निकल गया और जब वह वापस लौटा, तो उसके हाथ खाली थे।

[८]

पृथिवीकी पिछली छप्पन प्रदक्षिणाओंमें अभागे पीरूने सैकड़ों सुख-दुख सहे थे और उनकी बदौलत उसका दिल पत्थरका बन गया था। मगर बदकिस्मत पीरूको अपने इकलौते बेटेकी इस नई कारस्तानीसे जो तीव्रतम पीड़ा पहुँची, वह उसके लिए भी अभूतपूर्व थी। बूढ़े पीरूका दिल सचमुच टूट गया।

सब-कुछ जानते-बुझते भी तारा सादिकके साथ इलाहाबाद जानेको इसलिए तैयार हो गई थी कि वह बूढ़े पीरूके दिलको ठेस नहीं पहुँचा सकती थी। ताराको साथ लेकर रवाना हुए सादिकको सात दिन हो चुके थे ; परन्तु सादिक अभी तक वापस नहीं लौटा था। मगर बूढ़ेने इस बातकी ओर कोई विशेष ध्यान नहीं दिया था। परन्तु आज दोपहरको जब दिल्लीसे आये हुए पुलिसके समन द्वारा पीरूको यह ज्ञात हुआ कि उसका लायक बेटा एक हिन्दू औरतको अपने कब्जेमें लाकर उसपर अत्याचार करनेकी चेष्टामें गिरफ्तार हुआ है, तब वह सभी कुछ समझ गया।

मोहल्ले-भरमें यह बात फैलते देर न लगी। सादिकने बहुत बुरा किया है, इस बातसे किसीको इनकार न था। परन्तु इसपर भी सभी लोग एकमत थे कि चाहे कुछ भी क्यों न हो, सादिकको बचाना उनका कर्तव्य है। बूढ़ा पीरू अपनी चारपाईपर

गुमसुम बैठा था। उसके मकानमें पड़ोसियोंकी पूरी सभा जुटी हुई थी। जात-विरादरीके सभी मुख्य-मुख्य टाँगैवाले वहाँ उपस्थित थे। बहुत सोच-विचार कर लोगोंने यह निर्णय किया कि ताराको मुसलमान साबित करना बहुत मामूली बात हो गई है। हम सब लोग इस बातके गवाह हैं। एक टाँगैवालेने इस बातका ज़िम्मा लिया कि वह एक ऐसा मौलवी तलाश कर देगा, जो कहेगा कि ताराने उससे कलमा पढ़ा था। अनेक टाँगैवालोंने वादा किया कि वे लोग इस बातकी गवाही देंगे कि सादिकसे ताराका वाकायदा निकाह हुआ था।

मगर वेवकूफ पीरू इस तरह बैठा था, जैसे वह सूखे हाड़-मांसका, साँस लेता हुआ, एक बेजान पुतला हो। लोगोंने, जात-विरादरीने, क्या निर्णय किया है, यह उसे कुछ भी मालूम न था। वह न कुछ बोल ही रहा था और न सुन ही रहा था। अन्तमें नूरेने पीरूसे पूछा—“तुम्हें यह मंजूर है न?”

पीरू कुछ भी नहीं समझा, मगर मन्त्रचालित पुतलीकी तरह उसने इस प्रकार सिर हिला दिया, मानो उसे सभी कुछ स्वीकार है।

उसी रात पुलिसकी देखरेखमें पीरूको दिल्ली ले जाया गया। उसकी विरादरीवालोंने उससे पचासों बार ताकीद कर दी कि गवाहोंमें वह उन सबका नाम अवश्य लिखवा दे। सभीने बार-बार कहा—“घबरानेकी कोई बात नहीं है।”

मगर बूढ़े पीरूके लिए जैसे यह सब बेमतलबका एक तमाशा था।

तीन ही दिन बाद पीरू दिल्लीसे वापस आ गया। अब वह उतना गुमसुम भी प्रतीत नहीं होता था। मुहल्लेके लोगोंने समझा कि मामला शायद रफ़ा-दफ़ा हो गया है। बहुतसे लोगोंने पीरूको उसके घरके बाहर ही घेर लिया। नूरेने उतावलेपनसे पूछा—“कहो पीरबख़्श, क्या हाल-चाल हैं?”

पीरूने धीरेसे कहा—“खुदाका फ़जल है।”

नूराने पूछा—“सादिक कहाँ है?”

पीरूने एक विलकुल साधारण बातकी तरह बताया—“जेलमें।”

वीसों कण्ठ आश्चर्यमें भरकर इस बातको दोहरा उठे—“जेलमें!”

नूरेने पूछा—“जेलमें किस लिए?”

पीरूने दृढ़तासे कहा—“उसने बदफ़ेल किया था, इसलिए।”

“मगर अदालतको यह किसने बतलाया कि उसने बदफ़ेल किया है?”

“मैंने।”

“तुमने?”

“हाँ, मैंने।”

“उसे कितनी सज़ा हुई?”

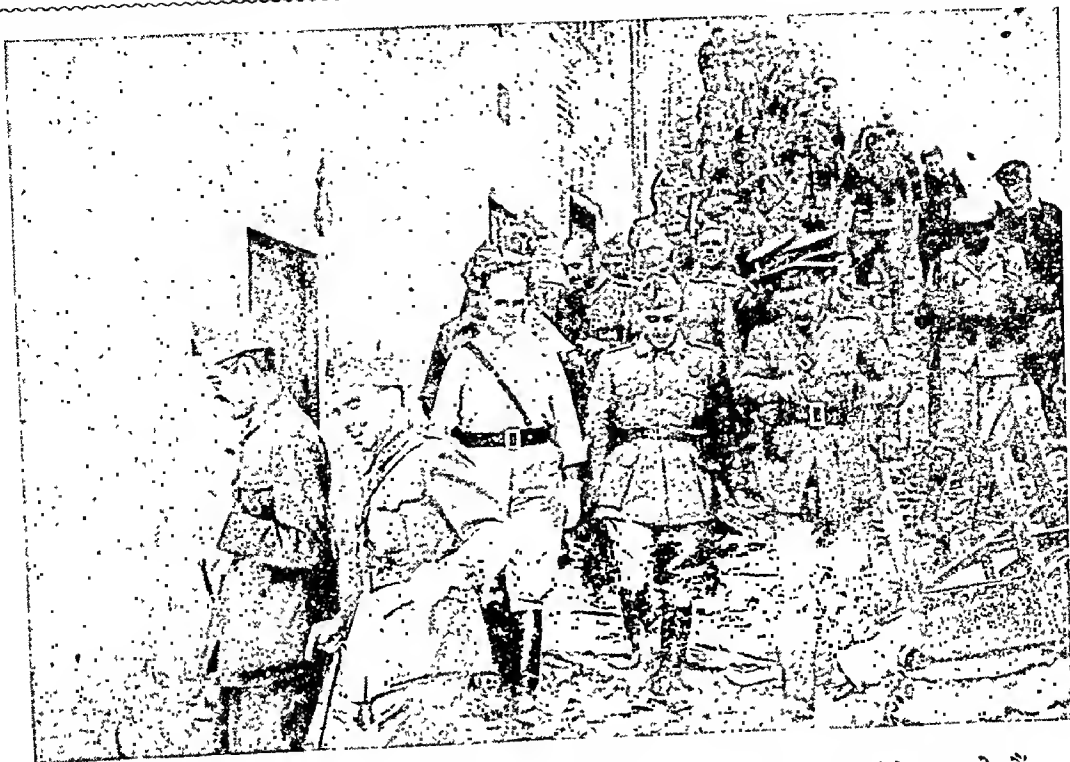
“पाँच बरसकी कड़ी कैद।”

सभी लोग एक साथ चिल्ला उठे—“वेवकूफ़ है! गधा है! पाजी है! काफ़िर है! नालायक है! दिमाग़ फिर गया है! पागल हो गया है!....”

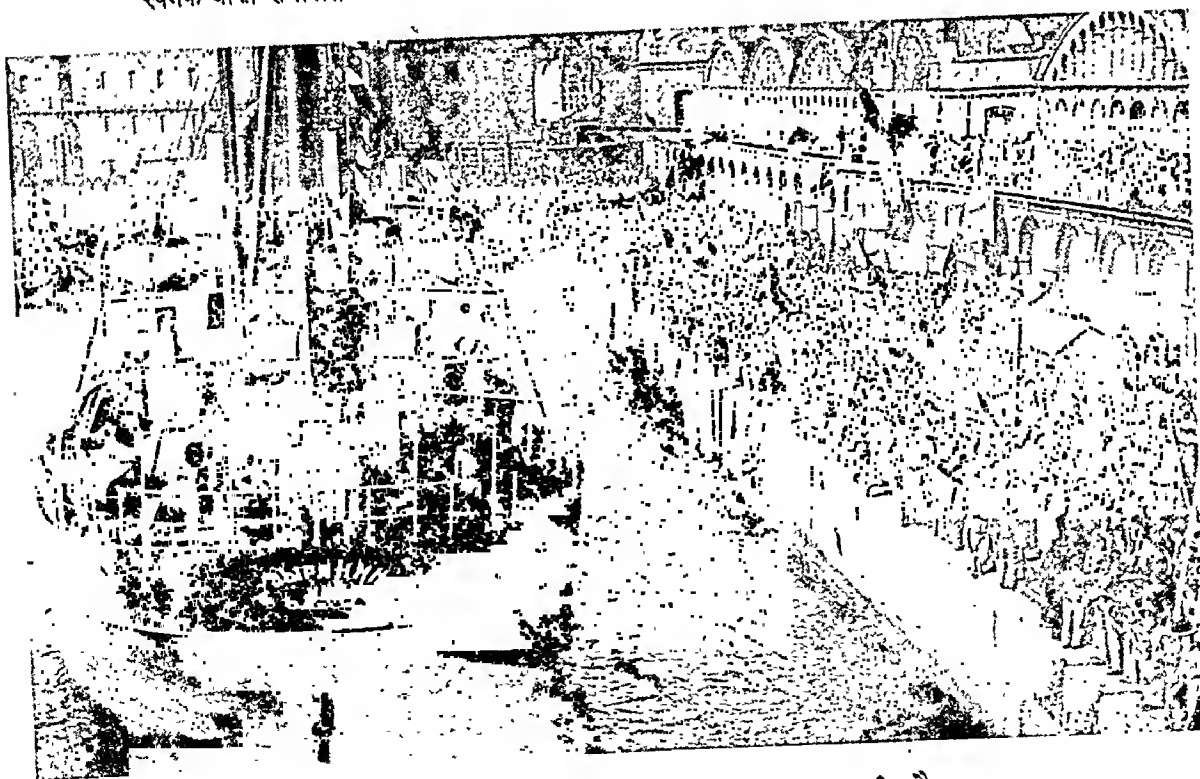
मगर अपने पड़ोसियों द्वारा प्राप्त होनेवाली इन उपाधियोंकी ओर ज़रा भी ध्यान दिये बिना पीरू शीघ्रतासे अपने घरके भीतर घुस गया।

हिन्दू लोग पहले ही जानते थे कि ‘पीरू टाँगैवाला’ एक छटा हुआ गुण्डा है। अब मुसलमानोंको भी पता लग गया कि पीरू काफ़िर है, बेईमान है।

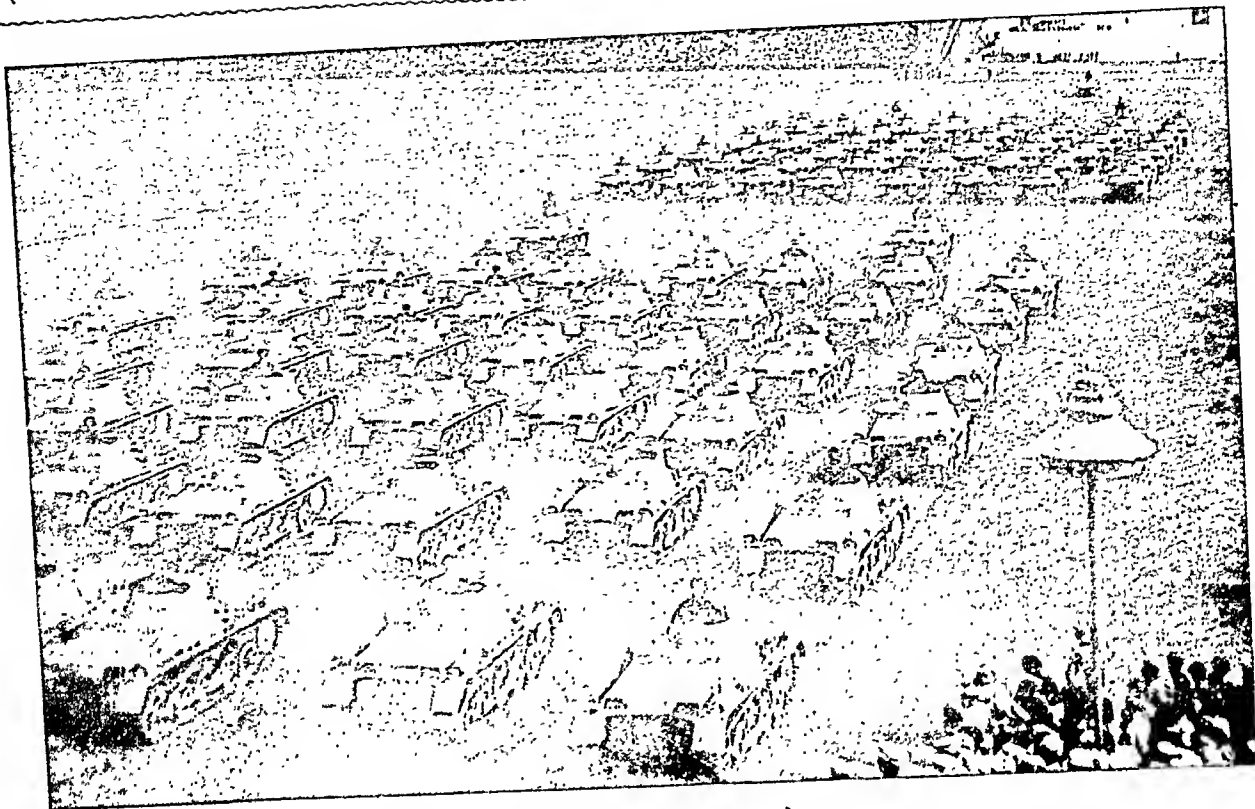
बुढ़ा पीरू दुनियामें फिरसे विलकुल अकेला रह गया है। मगर अब उसका स्वास्थ्य भी उसका साथ नहीं दे रहा है। जिस्म सूखी हुई हड्डियोंका ढाँचा-भर ही रह गया है। रह-रहकर उसे खाँसी उठ खंडी होती है और उसका दम उखड़ने लगता है। मगर अब भी मानो भराई-हुई-सी आवाज़में लाहौरकी सड़कोंपर वह पुकारता फिरता है—“ज़िला कचहरी! अजायबघर! कृष्णानगर!”



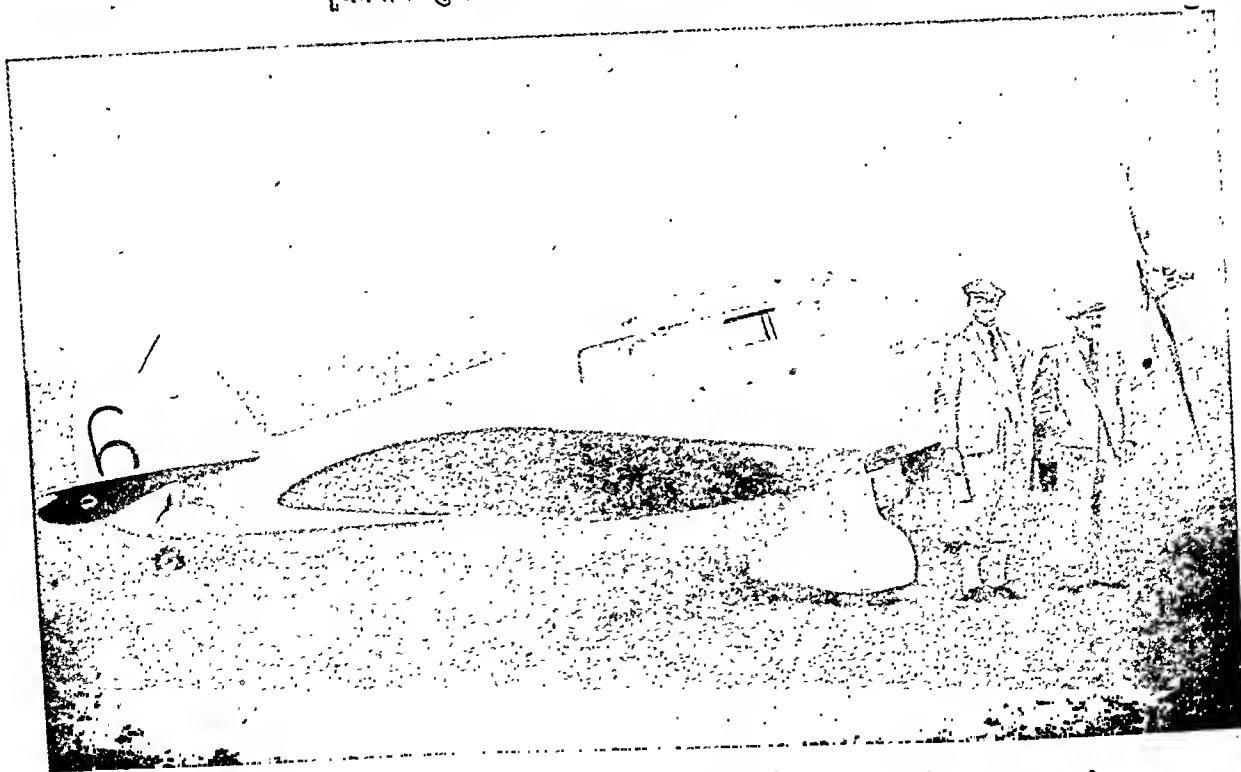
स्पेनके वागी सेनापति जनरल फ्रैंकोकी क़ैदमें ७२ दिन बन्दी रहकर स्पेनिश बन्दी छोड़े जा रहे हैं



रुससे स्पेनकी सहायताके लिए खाद्य सामग्री आ रही है



[जर्मनीमें युद्धकी तैयारियाँ—नूरेमबुर्गमें टैंकोंका जुलूस]



लन्दन-जोहान्सवर्गकी हवाई-दौड़में जीतनेवाले उड़के—कैप्टन स्कॉट और उनका साथी

महिला-मंडल

पेरिसमें क्या देखा

कुमारी अमला नन्दी

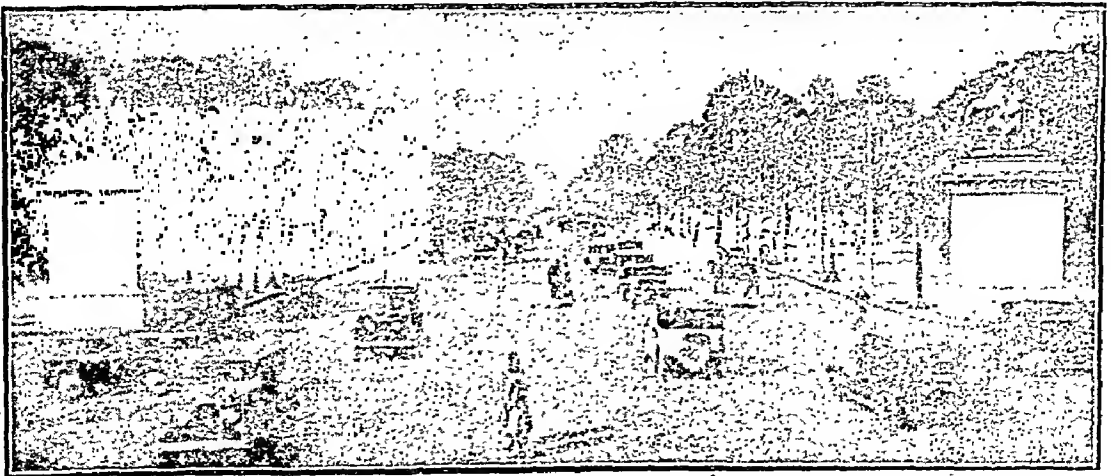
पेरिसमें पहुँचकर पहली रात हम लोगोंने एक होटलमें काटी और दूसरे दिन इंडियन स्टूडेंट ऐसोसियेशनके मकानमें एक कमरा भाड़ेपर लेकर वहाँ चले गये।

सबेरे बाबूजीके साथ मैं टामस कुक एण्ड सनके बैंकमें गई, जहाँ बाबूजीको फ्रेंच सिक्के लेने थे। पास ही पेरिसका प्रसिद्ध 'मैदालीन' नामक गिरजाघर था। 'नत्रदाम' (Notre Dame) के बाद दूसरे नम्बरका बड़ा गिरजा यही है। भीतर जाकर देखा, स्वर्गदूतोंसे घिरी हुई माता मेरीकी मूर्ति स्थापित थी। दोनों ओर बड़ी-बड़ी मोमवत्तिगँ लल रही थीं। बहुतसे दर्शक घूम-फिर रहे थे। कुछ देर बाद देखा कि कोई पचास छोटी लड़कियाँ सफेद कपड़े पहने हुए आईं। जूता, मोजा, गाउन, हैट—हर चीज बुराक सफेद थी। बड़ा पवित्र दृश्य था। पूछनेपर मालूम हुआ कि रोमन कैथोलिक ईसाई लड़कियाँ तेरह वर्षकी उम्रमें

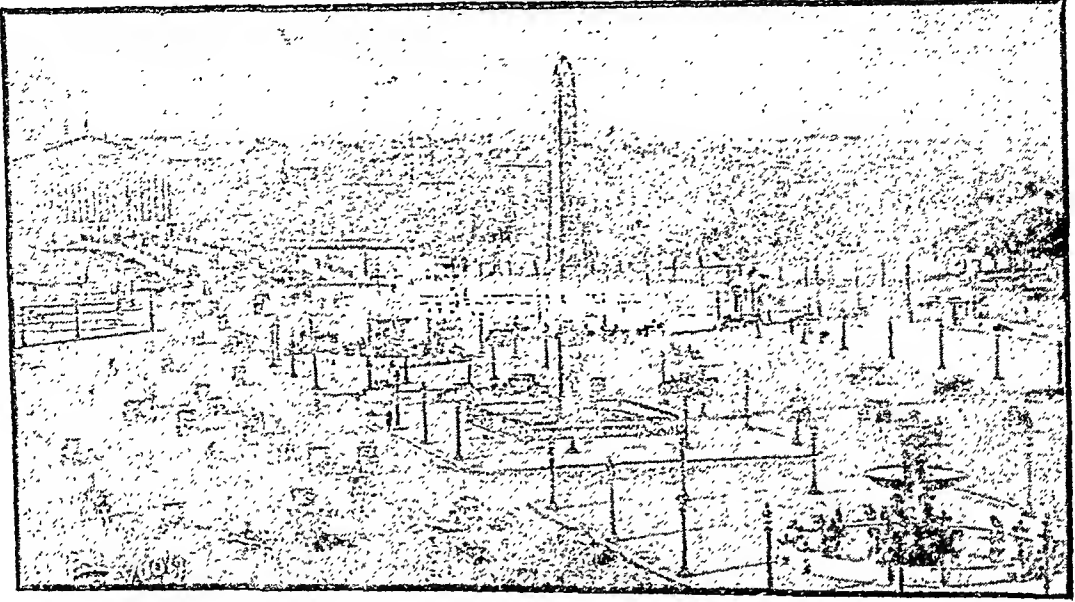
वपतिस्मा लेकर नया नाम ग्रहण करती हैं। आज उसीके लिए ये सब आई थीं।

इस गिरजेसे प्लेस द ला कंकार्ड तक खूब चौड़ा रास्ता चला गया है। प्लेस द ला कंकार्ड वह स्थान है, जहाँ फ्रेंच क्रान्तिके समय राजाका सिर काटा गया था। इस घटनाका स्मारक एक खम्भा है। इस स्थानके एक ओर सीन नदी, दूसरी ओर एक विचित्र बगीचा, तीसरी ओर मैदालीन और चौथी ओर पेरिसकी सुप्रसिद्ध सड़क एवेन्यू दे साँज़-एलिज़े (Avenue des Champs-Élysées) है। भीड़ और मोटरोंका तो ठिकाना ही न था। इसी रास्तेपर चलकर हम लोग एक दूसरे चौराहेपर पहुँचे, जहाँ बारह सड़कें आकर मिलती हैं। इसका दृश्य भी अपूर्व है। महायुद्धमें मरे हुए अज्ञात सैनिकोंकी यादगारमें यहाँ एक स्मारक है, जिसके नीचे हर वक्त आग जलती रहती है।

यहाँसे हम लोग सीन नदीकी ओर बढ़े। नदीपर लगभग हर चार सौ हाथकी दूरीपर एक पुल बना है। हर एक पुलकी बनावट जुदा-जुदा है। दिन-भर पैदल घूम-घूमकर शहर देखते फिरे, शामको बहुत थककर

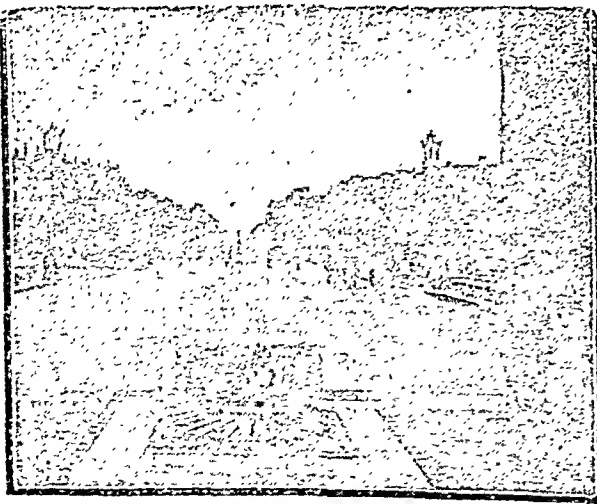


पेरिसकी सबसे मशहूर सड़क एवेन्यू दे साँज़ एलिज़े



प्लेस द ला कॅकार्ड—पेरिस

लौटे। पृष्ठनेपर पता लगा कि इन्दोचीन रेस्तराँ में भात मिल सकता है। लिहाजा इन्दोचीन रेस्तराँ जाकर भात, वन्दगोभीकी तरकारी और पीका फूटी हुई उर्दकी दाल खाई। जितना भात परसा गया था, उसकी तिगुनी तरकारी परसी गई थी। भोजन पकानेका ढंग प्रायः हमारे देशसे मिलता-जुलता था।



पेरिसमें यूरोपियन महायुद्धमें मरे हुए अज्ञात सैनिकका स्मारक, जहाँ बराबर आग जलती रहती है

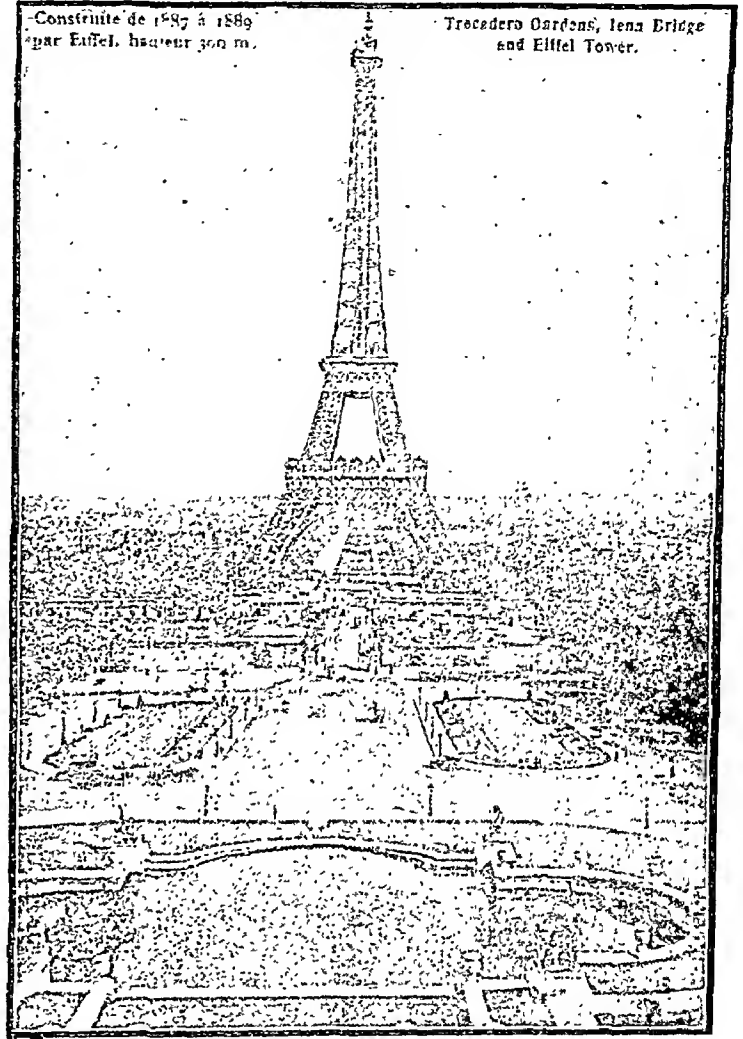
हाँ, उसमें मिर्च नहीं छोड़ी गई थी। एक कोई बहुत बड़वूदार चटनी भी परसी गई थी; लेकिन मैंने उसे चखा तक नहीं।

दूसरे दिन नत्रदामका गिरजा देखा। सीन नदी दो धाराओंमें बँटकर बीचमें एक टापू बनाती है। यह आलीशान गिरजा उसी टापूपर बना है। भीतर घुसते ही दीवारमें सटे हुए पत्थरके एक बड़े वर्तनमें पवित्र पानी भरा रहता है। हर आदमी उसमें से जरा-सा पानी लेकर सिर और छातीपर छिड़कता है। मैंने सोचा कि यह हमारे यहाँकी चरणामृत-प्रथाकी नक़ल है। यहाँ भी माता मेरीकी मूर्ति है। दीवारोंपर कारीगरी देखकर फ्रेंच जातिकी कलाकी उँचाईका आभास मिलता है।

दूसरे दिन भी नगरके अनेक दर्शनीय स्थान देखे। उसके बाद एक दिन हम लोग ग्रेवाँ म्यूज़ियम (Musée Grévin) देखने गये। यह म्यूज़ियम मुझे बड़ा अनोखा लगा। इस म्यूज़ियमके तीन विभाग हैं—एकमें अजायबघर, दूसरेमें मोमकी मूर्तियाँ और तीसरेमें रोशनीका गोरख-धन्वा है। पहले हम

लोग मोमकी मूर्तियाँ देखने पहुँचे। संसारके सारे प्रसिद्ध व्यक्तियोंकी मूर्तियाँ यहाँ रखी हैं। दरवाज़ेपर सुप्रसिद्ध रूसी नर्तकी अन्ना पैवलोवाकी नृत्य-भंगीमें खड़ी हुई मूर्ति है। एक कोनेमें चार्ली चैपलिन खड़े हैं। इसके सिवा हिटलर, मुसोलीनी, हिन्दनबर्ग, लेनिन, गांधी आदि व्यक्तियोंकी मूर्तियाँ हैं—जो जिस हालतमें अच्छा दीखता है, उसी हालतमें उसकी मूर्ति बनी है। महात्मा गांधी खादीकी चादर ओढ़े बैठे हैं और उनके हाथमें गीता है। हर मूर्तिकी बगलमें अनेक भाषाओंमें मूर्तिका परिचय लिखा हुआ है।

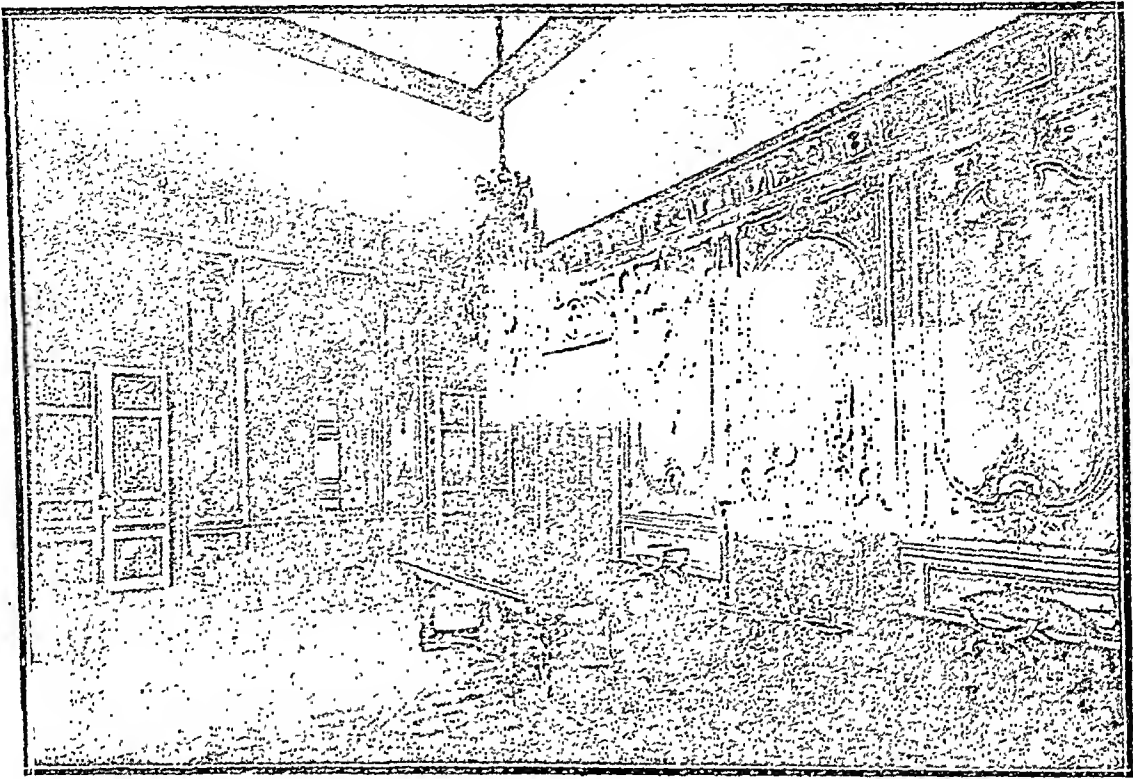
मैं जाकर एक सोफेपर बैठ गई। बगलकी कुर्सीपर हाथमें अखबार लिये हुए एक बुढ़ऊ बैठे बैठे सो गये थे। नौदकी झोंकमें अखबार एक तरफ हो गया था और सिर दूसरी तरफ झुक गया था। बड़ी देर बाद उन्हें उसी तरह सोते देखकर कुछ ताज्जुब हुआ। पास जाकर गौरसे देखा, तो बुढ़ऊ मोमके बने थे! ऊपर देखा, तो छज्जेपर एक नवयुवक और नवयुवती खड़े हुए नीचे झाँक रहे थे। मैं सीढ़ी चढ़कर ऊपर गई। चढ़ते वक्त देखा कि एक मेमके पैरका मोजा नीचे खिसक गया है और वह सीढ़ीके नीचे कोनेमें झुकी हुई उसे ठीक कर रही है। ऊपर चढ़कर पास पहुँचनेपर मालूम हुआ कि छज्जेसे झाँकनेवाला युवक-युवतीका जोड़ा वास्तविक नहीं—मोमका है। यह देखकर मुझे बड़ी खीभ मालूम हुई। नीचे उतरनेपर देखा कि वह मेम अभी तक अपना मोजा ही ठीक कर रही है। वह भी कम्बख्त मोमकी थी। मूर्तियाँ ऐसी सफाईसे बनी हैं कि यह तमीज़ करना मुश्किल है कि कौन वास्तविक मनुष्य



इफेल टावर

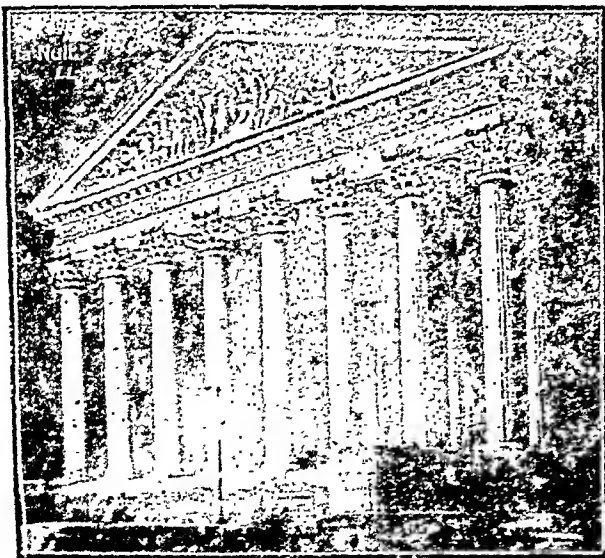
है, कौन मोमकी मूर्ति। मैंने ठान लिया कि दो-तीन बार धोखा खा चुकी, अब हर्गिज़ धोखा न खाऊँगी। एक ठिकानेपर दो सन्तरी पहरा दे रहे थे। हम उनसे कुछ पूछनेके लिए बढ़े। बात करनेपर ज्ञात हुआ कि एक असली है और दूसरा मोमका!

इसी म्यूज़ियममें एक सुरंगमें दाखिल हुए। उसमें झरने, पहाड़ और अन्यान्य पचीसों दृश्य दिखलाये गये हैं। एक पहाड़पर सलीबपर ईसा लटके थे और नीचे शोकातुरा माता मेरी दिखलाई गई हैं।



वार्साईके शीशमहलमें चौदहवें लुइसका कमरा

कहीं नेपोलियनके दरबारका दृश्य है, कहीं जोन आफ आर्ककी रण-यात्राका; तो कहीं रोमके क्लोसियमका ।



पेरिसका मैदालीन नामक प्रसिद्ध गिरजा

उसके बाद हम लोग एक कमरेमें घुसे, जिसमें एकदम अँधेरा था। इस कमरेमें एक बारमें बीस-पच्चीस आदमियोंको जाने दिया जाता है। अँधेरेमें कुछ भी सूझ न पड़ा। सहसा रोशनी हुई। ओह ! कैसा सुन्दर दृश्य था ! कारीगरीसे पूर्ण बड़ा विशाल घर था। चारों ओर खम्भोंपर नाना देशोंकी सुन्दर-सुन्दर स्त्रियोंकी मूर्तियाँ अंकित थीं। जहाँ तक निगाह जाती थी, ऐसे ही खम्भे चले गये थे। यह कमरा भीतरसे इतना लम्बा होगा, इसकी कल्पना भी नहीं की थी। फिर अँधेरा होकर जो उजाला हुआ, तो देखा कि बड़ा विशाल बाग है। जहाँ तक निगाह जाती है, बाग चला गया है। उसके बाद एक महलका भीतरी भाग दिखाई दिया। वास्तवमें कमरा इतना बड़ा नहीं है। उसकी दीवारोंपर इस तरहसे आईने जड़े हैं कि बिम्ब-प्रतिबिम्बसे एक ही चीज़ अनेक और मीलों तक फैली जान पड़ती है। एक जगह जादूके खेल

दिखलाये जा रहे थे, जो हमारे देशके बाजीगरों-जैसे ही थे।

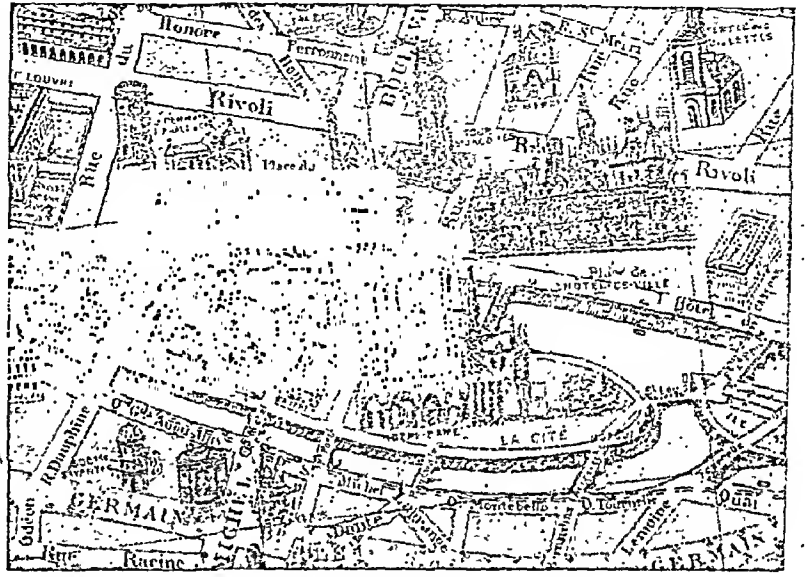
एक दिन पेरिसका प्रसिद्ध म्यूजियम लूव (Louvre) देखा। पहले यह चौदहवें लुईका महल था, अब म्यूजियम बना दिया गया है। इस म्यूजियमको देखनेके लिए एक सप्ताह चाहिए। दिन भरमें मैं सिर्फ चित्र-विभाग देखकर ही लौट आई।

पृथिवीके अनेक सुप्रसिद्ध प्राचीन चित्रकारोंके चित्र यहाँ संग्रहीत हैं।

फिर एक अन्य दिन जाकर इसका मूर्ति-विभाग देखा। ग्रीस, इटली आदि देशोंकी मूर्तियाँ, समाधिके पत्थर तथा मुगल ज़मानेकी पत्थरकी कटाईके अनेक कलापूर्ण नमूने यहाँ एकत्रित हैं। लूवके बाहर ही पेरिसका सुप्रसिद्ध बगीचा 'तुलारी उद्यान' (Jardin des Tuileries) है। उसमें बड़े-बड़े विशाल फव्वारे चलते हैं। वहाँ देखा कि बहुतसे छोटे-छोटे फ्रेंच बच्चे फव्वारेके पानीमें खिलौनेके छोटे-छोटे जहाज छोड़ रहे थे और हवाके जोरसे ये जहाज अपने ही आप चल रहे थे। बगीचेके पेड़-पौधे, फूल-पत्ते और बीच-बीचमें लगी हुई सुन्दर मूर्तियाँ सचमुच देखने-योग्य हैं। विश्रामके लिए कुर्सियाँ भाड़ेपर मिलती हैं।

एक दिन फ्रांसके भूतपूर्व राजा चौदहवें लुईका प्रसिद्ध शीशमहल देखनेके लिए गई। यह शीशमहल पेरिस नगरके बाहर वासाई नामक स्थानमें है। गत यूरोपियन महायुद्धके बाद जो सन्धि हुई थी, वह इसी महलमें बैठकर हुई थी, इसीसे वह वासाईकी सन्धि कहलाती है। जिस दिन हम लोग वासाई गये थे, उस दिन रविवार था, इसलिए और भी बहुतसे दर्शक आये थे। हम लोग सबेरे आठ बजेकी गाड़ीसे

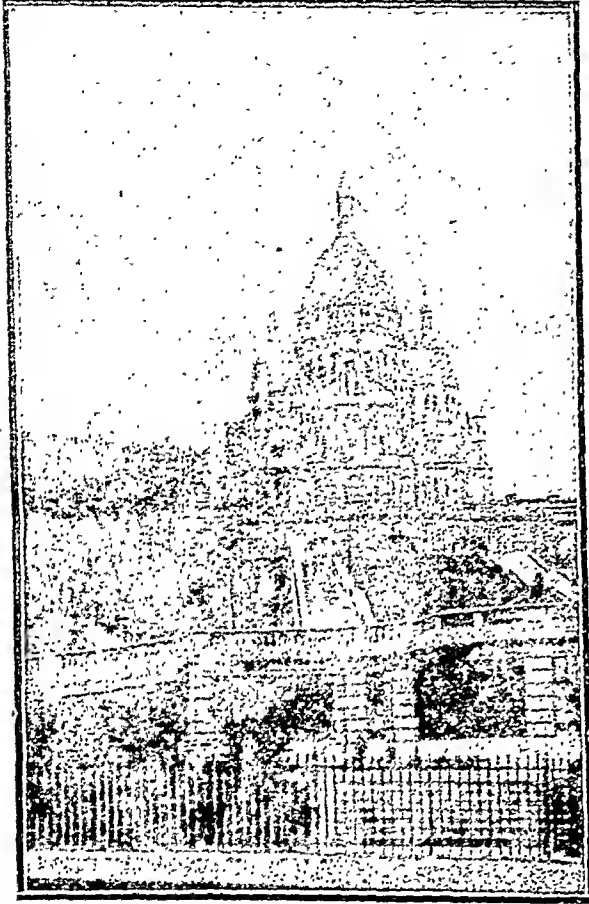
खाना हुए। रास्तेके गाँव देखनेमें बड़े सुन्दर लगते थे। गाड़ी सीन नदीके किनारे होकर जाती है। वासाई पहुँचनेमें एक घंटा लगा। भीड़ खूब थी। शीशमहल स्टेशनसे ही दीख पड़ता है। बहुतसे गाइड महल दिखानेके लिए पगडोंकी भाँति हमारे पीछे लगे; लेकिन हमने उनकी सहायता नहीं ली। महलके चारों ओर पहरा था। अनेक दर्शक भीतर जा रहे



पेरिस

थे। भीतर घुसकर मैं तो दंग रह गई! कैसा अद्भुत साज-सामान था और कैसी अनोखी कारीगरी थी! हर एक दीवारपर एक-एक बड़ी तस्वीर अंकित थी। लुईके बाद नेपोलियन बोनापार्ट इस महलमें रहता था। उसके इस्तेमालकी भी अनेक चीज़ें यहाँ रखी हैं। लुई अपनी शान-शौकत और विलासिताके लिए मशहूर था। उसने अपने विलासके लिए इसे बनवाया था। छत और दीवारोंपर कौन-कौनसे तस्वीरोंमें उसके जीवनकी अनेक घटनाएँ भी दिखलाई गई हैं। उसके ज़मानेमें जो चीज़ जिस तरह सजी थी, आज भी वैसी ही सजी रखी है। नीचेके तल्लेमें नेपोलियनकी इस्तेमाल की हुई तोपें, बन्दूकें, गाड़ियाँ आदि चीज़ें रखी हैं।

बाहर बड़ा भारी बाग है, जिसमें पेड़, पौधे, फूल-पत्ते, कृत्रिम पहाड़ और उससे निकलते हुए झरने, जलक्रीड़ाका स्थान, स्नानागार आदि चीजें लुईकी शौक्तानीका आभास देती हैं। बाग इतना बड़ा है



सैंक्रे खेयाका गिरजाघर

कि एक मील दूर जाकर वह वास्तविक जंगलसे मिल गया है। दिन-भर वासाई घूम-फिरकर शामको हम लोग वापस आये।

एक दिन इन्वैलिद (Invalides) में नेपोलियनकी कब्र देखी। उसके साथमें एक म्यूजियम है, जिसमें उसके व्यवहारकी चीजें और उसके जीते हुए देशोंके झंडे रखे हैं। एक काँचके बक्समें उसकी तलवार और मुकुट रखे हैं।

पेरिसके इफेल टावरका नाम बहुतेोंने सुना होगा। लोहेका यह मीनार एक हजार फीट ऊँचा है। लिफ्टके सहारे ऊपर चढ़ना होता है। ऊपरसे समूचे पेरिस नगरका दृश्य दिखलाई पड़ता है।

अनेक म्यूजियमोंमें 'त्रोकादोरो' (Trocadero) नामक म्यूजियम मुझे बहुत अच्छा लगा। सीनके तटपर एक उद्यानके भीतर यह म्यूजियम है, जिसमें पृथिवीके अनेक कीर्ति-चिह्न रखे हैं। इसके इन्दोचीन-विभागमें बुद्ध, विष्णु, दुर्गा, ब्रह्मा आदिकी पत्थरकी मूर्तियाँ देखकर मुझे बड़ी खुशी हुई।

जुलाई मासमें हर साल पेरिसमें एक मेला (Fair de Paris) होता है। एक दिन पिताजीके साथ मैं इस मेलेको देखने गई। मेला क्या, पूरी प्रदर्शनी थी, जिसमें फ्रान्सके शिल्प और कारीगरीकी तमाम चीजें बिक रही थीं। हर एक चीजका विभाग अलग था। पिताजी गहने और जवाहरातके कामके विशेषज्ञ ठहरे, इसलिए हम लोगोंने ज्वेलरी-विभाग खास तौरसे देखा। पिताजीने इस विभागके प्रवानसे मिलकर अपना परिचय दिया। इसपर प्रवान महाशयने फौरन एक अंगरेजी जाननेवाला गाइड हमारे साथ कर दिया, जिसने ज्वेलरीके सभी दूकानदारोंसे हमारा परिचय कराया। इस परिचयमें मुझे एक सुन्दर-सा बूच भी उपहारमें मिला।

एक दिन हम लोग सैंक्रे खेया नामक गिरजाघर देखने गये। यह गिरजा भी पेरिसके पवित्र गिरजोंमें शुमार किया जाता है। इसमें भी कोई तीस-चालीस लड़कियोंका दल सफेद कपड़े पहने हुए वपतिस्मा लेने आया था। यह गिरजा नगरके उत्तरकी ओर एक छोटी पहाड़ीपर बना है। इतवारका दिन था। भीतर प्रधान मूर्ति ईसा मसीहकी है, और उनके चारों ओर धर्म-याजकोंकी मूर्तियाँ हैं। कोई घुटनेके बल बैठकर, कोई हाथ जोड़कर और कोई फूल चढ़ाकर प्रार्थना कर रहा था। कोई बैठा वाइविल पढ़ रहा था। पूजा करनेवालोंमें

अधिक संख्या बुद्धियोंकी थी। इतनेमें सुना कि प्रधान पादरी आ रहे हैं। देखा, हाथोंमें भंडे लिये हुए कोई पचीस-तीस पादरी आये और उनके बाद प्रधान पादरीने प्रवेश किया। उनके साथ और भी बहुतसे लोग थे। प्रार्थनाके बाद जब सबने मिलकर एक स्वरसे मन्त्र पढ़ना शुरू किया, तो जान पड़ा कि हम भारतके किसी मन्दिरमें हैं और बहुतसे पंडित मिलकर वैदिक मन्त्रोंका पाठ कर रहे हैं।

उत्कलमें नारी-जाग्रति

श्रीमती अन्नपूर्णा चौधरी

‘विशाल भारत’ के महिला-अंकमें ‘भारतके भिन्न प्रान्तोंकी महिलाएँ’ शीर्षक लेख प्रकाशित हुआ है। थोड़ेमें भारत-जैसे देशके सभी प्रान्तोंकी स्त्रियोंकी विशेषताएँ तथा चरित्र-चित्रण करना कोई आसान बात नहीं है। लेखककी रचनाशैली प्रशंसनीय है। परन्तु बड़े खेदके साथ हमें यह बतलाना पड़ता है कि लेखकने उत्कलके प्रति अविचार किया है। उपर्युक्त प्रबन्ध पढ़नेसे मालूम पड़ता है, मानो उत्कलका नाम आते ही लेखककी लेखनी संकुचित हो गई है। बिहार और उत्कल दो प्रान्तोंको एक ही पैराग्राफमें स्थान देकर लेखकने प्रबन्धके सौन्दर्यको हानि पहुँचाई है।

लेखकने लिखा है—“बंगालमें रानी भवानी-जैसी महान परोपकारिणी देवियोंने अपने महान कार्योंसे बंगालियोंका नाम उजागर किया था। बिहार उड़ीसामें ऐसी कोई महान महिला नहीं हुई।” बिहारके बारेमें हम कुछ नहीं कह सकती; परन्तु इसमें कोई शक नहीं है कि इस पंक्तिने उत्कलके अतीत गौरवका अपमान किया है। राजा मुकुन्द देवकी रानी तथा बाँकी रानीने अपने वीरत्व और साहससे रणक्षेत्रमें शत्रुको चमत्कृत किया था। दया, दाक्षिण्य आदि

दैवी गुणोंमें भी वे कम न थीं। प्रजानुरंजनकारिणी इन दोनों रानियोंका नाम उत्कलके इतिहासमें स्वर्णाक्षरोंमें लिखा हुआ है। शीघ्र ही वह सुदिन आयेगा, जब उत्कलकी कोई सुभद्राकुमारी इन रानियोंके नामपर कविता रचकर अपनी लेखनीको अमर बनायेगी।

बिहारी स्त्रियोंकी अक्षमताका वर्णन करते हुए लेखकने लिखा है—“और उड़ीसा तो बिहारसे भी गया बीता है।” उत्कलकी सफल पुत्रियोंका परिचय देकर ही इस बातकी असारता प्रमाणित की जा सकती है। अगर लेखक महाशय उत्कलके साहित्यका अध्ययन करेंगे, तो देखेंगे कि उत्कलके नारी-समाजने साहित्य-क्षेत्रमें एक सुसम्मानित स्थान प्राप्त कर लिया है। माधवी, वृन्दावतीसे शुरू करके अन्नपूर्णा, कुन्तलाकुमारी, कोकिल अपर्णा आदि अनेक सुलेखिकाओंके लेखोंसे ही उत्कलका साहित्य पुष्ट हुआ है। श्रीमती कुन्तलाकुमारी एल० एम० पी० हैं। दिह्रीमें उनकी अच्छी ख्याति है। हिन्दी-साहित्यमें भी उनका ज्ञान गम्भीर है। श्रीमती बसन्तकुमारी देवीके द्वारा सम्पादित और स्त्रियोंके द्वारा ही लिखित मासिक पत्रिका ‘शिक्षा-दर्पण’ यद्यपि बन्द हो चुकी है; किन्तु बन्द होनेपर भी वह उत्कल साहित्यकी अन्यतम श्रेष्ठ सम्पदा मानी जाती है। उत्कल क्रिश्चियन अनुष्ठानके मुखपत्र ‘प्रभात’की सम्पादिका श्रीमती शरत्कुमारी देवी हैं।

श्रीमती मैत्रेयी देवी (जिन्होंने कई साल हुए गुजरातके गुणी युवक श्री वाच्छूभाई शुक्लसे विवाह कर लिया है) ग्रेजुएट और चित्रविद्या-विशारदा हैं। बम्बईकी शिल्प-प्रदर्शनीमें उनको अच्छी प्रशंसा मिली थी और मेडल भी। हाल ही में उनका ‘सिद्धार्थ’ नामका चित्र ‘प्रवासी’ में प्रकाशित हुआ है। संगीत-चर्चा तो अब उत्कलके गाँव-गाँवमें होने लगी है, जिसमें स्त्रियाँ बड़े उत्साहके साथ भाग लेती हैं। कटकके संगीत-विद्यालयमें बहुत-सी उड़िया कन्याएँ गाना-बजाना सिखती हैं।

उत्कलकी सुयोग्या कन्या कुमारी निर्मला नायक और श्रीमती वर्णलता देवी विलायतसे शिक्षा पाकर शिक्षा-विभागमें उच्चपदपर काम कर रही हैं। इनके सिवा नर्मदा, सुप्रभा, निशिवाला, वीणा, सुकृति आदि अनेक उत्कल कन्याएँ प्रेज्युएट हो चुकी हैं। उत्कलकी एक पुत्री श्रीमती मनोरमा एम० ए० जालन्धर-कन्या-महाविद्यालयमें अध्यापिकाका काम कर रही हैं। उत्कलका गौरव श्रीमती ज्योत्स्नामयीने एम० बी० बी० एस० की परीक्षामें पंजाबमें प्रथम स्थान प्राप्त किया था। उनकी बहन श्रीमती वीणापाणि भी एम० बी० हैं। आयुर्वेदशास्त्र-विशारदा श्रीमती गौरी देवीको जव्वलपुरमें कौन नहीं जानता? गौरीदेवी इसी फटे-चीथे वस्त्र-परिहिता, अशिक्षिता, पर्देके अन्दर रहनेवाली उत्कल माताकी पुत्री हैं, जिनका विशुद्ध, सुललित संस्कृत-व्याख्यान सुनकर कलकत्तेकी विद्वान मण्डली मन्त्रमुग्ध हो गई थी। उनकी कन्या श्रीमती सरस्वतीने मैट्रिक पास किया है। वे 'हंस' (हिन्दी) में लिखा करती थीं। उत्कलकी उड़िया पत्रिकाएँ उनका लेख सादर ग्रहण करती हैं।

उत्कलकी ही कन्या श्रीमती सरला देवीको भारतवर्षमें सर्वप्रथम महिला बैंक डिरेक्टर होनेका सम्मान मिला है। उन्होंने इस साल व्यवस्थापिका-सभामें महिला-मण्डलकी तरफसे खड़े होनेका निश्चय किया है। उत्कलके किसान-आन्दोलनका लालन-पालन श्रीमती मालती चौधुरी करती हैं। वे वैज्ञानिक साम्यवादमें विश्वास रखती हैं। गांधीजीकी वाणी 'ग्रामोंकी ओर लौट चलो' (Back to the villages) को अपनाकर श्रीमती रमादेवी, सुनामनी देवी आदि अनेक महिलाएँ देहातमें बस गई हैं। भारतके स्वतन्त्रता-युद्धमें भाग लेकर उत्कलकी सैकड़ों स्त्रियाँ जेल गई थीं। हरिजन-आन्दोलनमें उड़िया नारियाँ योग

देकर आन्दोलनकी सशक्त बना रही हैं। श्रीमती कोकिल देवीका हरिजन-सेवा कार्य देखकर हरिजन-संघके सहायक मंत्री अध्यापक मलकानीने मुक्तकंठसे प्रशंसा की थी। उन्होंने इसके बारेमें 'हरिजन' में लेख भी लिखा था। बहुत-सी उड़िया महिलाएँ बड़े उत्साहके साथ राष्ट्र-भाषा हिन्दी पढ़ रही हैं। उत्कलके देहातोंमें भी स्त्रियाँ हिन्दी पढ़ने लग गई हैं। श्रीमती जाह्नवी देवीने अपनी 'नारी-रक्षा-समिति' के जरिये कितनी अनाथा स्त्रियोंको वेश्या होनेसे रोका है, इसका पता नहीं। उत्कलमें नारी-जाग्रतिका जो अरुणोदय हुआ है, निस्सन्देह उसका भविष्य मध्याह्नकालीन रविकी तरह समुज्ज्वल होगा। जागरणके बाल-रविकी स्निग्ध किरणें उत्कल-भूमिको रंजित कर चुकी हैं। अब शीघ्र ही वह निर्मल सूर्यकरोज्ज्वल विमंडिता होगी।

उत्कल दरिद्र है। कवि-भाषित 'पतन अभ्युदय बन्धुर पन्था' में चलते हुए उसका आर्थिक पतन हुआ है; परन्तु वह कृपाका, अनुकम्पाका पात्र नहीं है। सारे भारतमें ऐसा एक भी प्रान्त नहीं मिलेगा, जहाँ फटे-चीथे वस्त्र पहने हुई स्त्रियाँ और भूखे बालक न मिलें। तो यह विशेषण-भूषित होनेका सौभाग्य सिर्फ उत्कलको ही क्यों मिला? इस पंक्तिको पढ़नेसे मालूम पड़ता है, मानो उत्कलकी सभी स्त्रियाँ ऐसी ही हैं; परन्तु यह वारणा भ्रान्त है। गरीब स्त्रियाँ लाचार होकर ऐसे वस्त्र पहनती हैं; परन्तु यह उत्कलकी सम्पदा तथा संस्कृतिका मात्रादंड नहीं है। उत्कलकी स्त्रियोंकी स्वतन्त्रता तथा कार्यकारिणी शक्ति देखकर महात्माजीने 'हरिजन' में जो राय प्रकाशित की थी, उसे पढ़कर लेखक अपना भ्रम दूर करके फिर कभी उत्कलकी स्त्रियोंको अशक्त तथा पर्दानशीन न बतावेंगे।

समालोचना और प्राप्ति-स्वीकार

‘हिमालयन फोकलोर’—लेखक, रेवेरेण्ड ई० एस० ओकली तथा पं० तारादत्त गैरोला ; प्रकाशक, सुपरिन्टेन्डेन्ट गवर्नमेन्ट प्रिंटिंग ऐण्ड स्टेशनरी, इलाहाबाद ; पृष्ठ-संख्या १२+३२+३१५=३५९ ; मूल्य साढ़े तीन रुपये ; छपाई और जिल्दबन्दी उत्तम ।

हिमालयको भारतवर्षका ‘ओलिम्पस’ कहा जाय, तो अत्युक्ति नहीं होगी । इसकी प्रत्येक घाटी तथा पर्वत-शिखरपर किसी-न-किसी देवी-देवताका निवास-स्थान है । पृथ्वीके जनाकीर्ण स्थानोंसे दूर इस सुनसान प्रदेशमें असंख्य दिव्य आत्माओं, दैत्यों, राक्षसों, परियों आदिने अपना डेरा जमा रखा है । इतना ही नहीं, विगत शताब्दियोंमें यहाँ न-जाने कितनी ‘थर्मापोलियाँ’ और ‘हल्दी घाटियाँ’ बन चुकी हैं, जिनमें न-जाने कितने वीरोंने अपने देश, जाति, धर्म तथा अपनी देवियोंकी मान-मर्यादाकी रक्षाके लिए शोणितकी भेंट चढ़ाई है । हमारा यह दुर्भाग्य है कि वे सब घटनाएँ आज भूतकालके गर्भमें समा गई हैं और उनपर विस्मृतिका गहरा पर्दा पड़ गया है ।

यह हर्षकी बात है कि उनके पुनरुद्धारका कार्य आरम्भ हो गया है । सर्वप्रथम सन् १८३० के लगभग मि० ट्रेलने रायल एशियाटिक सोसाइटीके मुखपत्रमें इस विषयपर कुछ लेख लिखे थे । उसके बाद सन् १८८४ में मि० एटकिन्सनने पार्वतीय जिलों (अल्मोड़ा, गढ़वाल और नैनीताल) का सरकारी गैज़ेटियर लिखा, जिसमें वहाँकी लोक-गाथाओंपर भी कुछ प्रकाश डाला गया था । राय पं० गंगादत्त उप्रेती बहादुरने भी गढ़वाल जिलेमें काफ़ी अनुसन्धान-कार्य किया था तथा ‘दि फोकलोर आफ़ कुमाऊँ’ (कुमाऊँकी लोक-गाथाएँ) नामक पुस्तक भी छपवाई थी । उसमें अधिकतर स्थानीय कहावतों और चुटकुलोंका ही संग्रह था । टेहरी-गढ़वालके पं० हरिकृष्ण गतूडीने भी ‘गढ़वालका इतिहास’ में इस विषयपर थोड़ा-बहुत लिखा है ; परन्तु इस दिशामें परिश्रमपूर्वक वैज्ञानिक प्रणालीसे

अनुशीलन करनेवालोंमें अल्मोड़ेके रेवेरेण्ड ओकलीका स्थान सर्वप्रमुख है । उनके तथा पं० तारादत्त गैरोलाके संयुक्त प्रयाससे ‘हिमालयन फोकलोर’ (हिमालय-प्रदेशकी लोक-गाथाएँ) नामक जो पुस्तक हाल ही में प्रकाशित हुई है, वह काफ़ी महत्वपूर्ण है ।

इस पुस्तकमें पार्वतीय प्रदेशों—अल्मोड़ा, गढ़वाल और नैनीतालके सरकारी जिलों तथा टेहरी-गढ़वालकी रियासत—की प्राचीन लोक-गाथाओंका संग्रह किया गया है और उनकी विशद विवेचना की गई है । गाथाओंको उन्होंने सात भागोंमें विभाजित किया है—(१) वीर-गाथाएँ, (२) परियोंकी कथाएँ, (३) भूत-प्रेतोंकी कथाएँ, (४) पशु-पक्षियोंकी कहानियाँ, (५) कहानियाँ, (५) जादू-सम्बन्धी कहानियाँ, (६) चमत्कारपूर्ण उक्तियाँ तथा (७) ग्राम-गीत । इनमें से इस संग्रहमें ग्राम-गीतोंका उल्लेख नहीं है । वीर-गाथाओंका पं० तारादत्तने तथा अन्य प्रकारकी गाथाओंका रे० ओकलीने सम्पादन किया है ।

इन गाथाओंकी अपनी अनेक विशेषताएँ हैं । ‘जिस हिमालयके अन्तरालमें वे पालित-पोषित हुई हैं, उसीके समान वे उच्च तथा रहस्यपूर्ण हैं ।’ इनके द्वारा पार्वतीय जिलोंका क्रमबद्ध इतिहास लिखनेमें बहुत सहायता मिल सकती है—विशेषकर वीर-गाथाओंसे ईसाकी आठवीं शताब्दीसे सत्रहवीं शताब्दी तककी राजनैतिक, सामाजिक तथा आचार-सम्बन्धी हालतपर काफ़ी प्रकाश पड़ता है । एटकिन्सनके गैज़ेटियरकी विद्वान सम्पादकोंने स्थान-स्थानपर आलोचना की है । उनके निष्कर्षोंसे सहमत न होते हुए भी प्रत्येक पाठकको उनके अध्यवसाय और सूक्ष्म दृष्टिकी प्रशंसा ही करनी पड़ेगी ।

चम्पावतगढ़के चन्दों, गढ़वालके पालों तथा कत्यूरगढ़ अर्थात् कार्तिकेयपुरके कत्यूरों राजाओंकी गाथाओंको पढ़कर उनके जमानेको हम पार्वतीय प्रान्तोंका ‘वीर-युग’ कह सकते हैं । महिलाओं तकके साहसपूर्ण

कृत्योंको पढ़कर आश्चर्य-चकित होना पड़ता है। इसीलिए एक विद्वानके शब्दोंमें वे 'होमरिक इन स्प्रिट' (भावनामें होमर-जैसी) गाथाएँ हैं। इनके अतिरिक्त अन्य अंगोंपर भी सम्यक् रूपेण प्रकाश डाला गया है। जादू-सम्बन्धी कहानियाँ तो 'सहस्र रजनी चरित' के 'अलाउद्दीन और उसका आश्चर्यजनक दीपक' की याद दिलाती हैं। पशु-पक्षियोंवाली गाथाएँ पंचतन्त्र-जैसी, संस्कृतकी पुरानी कथाओंके समकक्ष हैं। चमत्कारपूर्ण उक्तियोंमें 'वीरवल-विनोद'-जैसा आनन्द आता है। कई गाथाएँ अत्यन्त सुन्दर हैं। स्थानाभाव होनेपर भी उनमें से एक 'दि इन्वेनशन आफ प्लाईंग' (हल चलानेका आविष्कार) को यहाँपर उद्धृत करनेका लोभ मैं संवरण नहीं कर सकता—

“जब गुरुने सारी सृष्टिका निर्माण कर लिया, तब मनुष्यने उनसे पूछा—‘इस पृथिवीपर मैं रूँगा किस तरह?’ गुरुने सिंहको बुलाकर कहा कि तुम हल चलाओ, पर उसने उत्तर दिया—‘मैं तो जंगलका राजा हूँ। मेरे लिए हल चलाना अपमानजनक है।’ इसी प्रकार एक-एक करके सब पशु बुलाये गये, पर सबने इनकार कर दिया। अन्तमें जब बैलने इसे स्वीकार कर लिया, तो गुरु बहुत प्रसन्न हुए और आशीर्वाद दिया—‘कलियुगमें मनुष्य तुम्हें पूजेंगे। दीवालीके बारह दिनोंमें तुम्हें स्नान कराकर तेरी पूजा होगी और तुम्हें दावत खिलाई जायगी। तेरे सींगोंपर चाँदीकी टोपियाँ पहनाई जायँगी और कोई भी तेरे बिना न रह पावेगा।’

फिर गुरुने मेलू हलवाहेसे पूछा कि तुम हल किस चीज़का बनाओगे? उसने सोनेसे लेकर लोहे तक एक-एककर सब धातुएँ गिना दीं; पर गुरुने कहा—‘गरीब लोग इन कीमती वस्तुओंके हल नहीं बना पावेंगे, इसलिए हल तो लकड़ीका और उसका फल लोहेका बनाया जाय।’ मेलूने लुहारसे लकड़ीका हल बनानेको कहा और नौ 'खार' (एक खार=सोलह मन) धान मजदूरी देनेका वचन दिया; परन्तु गुरुने समझाया

कि गरीब लोग इतना अधिक नहीं पावेंगे, इसलिए हल बनानेकी मजदूरी सबके लिए एक समान यानी एक 'सूप'-भर ही रखी जाय।

तब गुरुने बैलको बुलाकर उसके सींगोंपर रुपहली टोपियाँ पहना दीं। उसका कन्धा कहीं जुएसे रगड़ न जाय, इसलिए उन्होंने मालिशके लिए मक्खन पैदा किया। उन्होंने सूअरको आज्ञा दी कि वह अपने शूथनसे उसके कन्धेपर मक्खन मल दे। वह बहुत-सा खुद खा गया और थोड़ा-सा बैलकी गर्दनपर मला। इसीलिए उसका कन्धा मुलायम ही रह गया और जुएसे अभी तक घिसता रहता है। गुरुने सूअरको श्राप दिया कि कलियुगमें एक पैनी छड़ी उसके पेटमें भोंककर निर्दयतापूर्वक उसको मारा जायगा।”

यह कहानी सूअरको मारनेके प्रचलित ढंगका जिक्र करती है; पर साथ ही उस युगके पार्वतीय समाजके साम्यवादी विचारोंपर भी यथेष्ट प्रकाश डालती है। इसी प्रकार पक्षी-सम्बन्धी गाथाओंमें मुझे 'ऐन इम्पेशेण्ट मदर टर्नर्ड इनटू ए वाइल्ड डव' (एक उतावली माता जंगली फागुता बन गई) कहानी बहुत पसन्द आई।

इन सभी गाथाओंके पीछे एक सर्वजन-लाञ्छित व्यक्तिका व्यक्तित्व स्पष्ट दिखाई देता है। प्राइमरी शिक्षा तथा संवाद-पत्रोंके प्रचारने जहाँ जनसाधारणका मानसिक धरातल ऊँचा किया है, वहाँ उनके बीचसे अनेक उपयोगी संस्थाओंका सर्वनाश भी कर दिया है। आज 'हुड़किया' को कौन पूछता है? सम्य-समाजमें कौन उसको आदरकी दृष्टिसे देखता है? पर एक दिन उसकी 'हुड़की' के तालपर अनगिनत वीर अपना प्राणोत्सर्ग करनेको तैयार हो जाते थे। चारणोंने जिस प्रकार राजस्थानके अमर वीर-काव्योंकी रक्षा की थी, उसी प्रकार पार्वतीय प्रान्तोंके इतिहास तथा गाथाओंको सुरक्षित रखनेका श्रेय इन 'हुड़कियों' को मिलना चाहिए। आजकल उनकी जाति-की-जाति नष्ट होती जा रही है; पर उन्हींमें से एक बाप्या

हुड़कियेके मुखसे पं० तारादत्त गैरोलाने रातों जागकर अधिकांश गाथाएँ 'पाँवड़ों' और गीतोंके रूपमें सुनी थीं। पुस्तकके प्रारम्भमें उक्त बाप्पा हुड़कियाका फोटो भी दिया गया है, जिसे देखकर सर वाल्टर स्काटके सुप्रसिद्ध 'दि लास्ट मिन्सटूल' की याद आ जाती है।

इन गाथाओंसे जहाँ पर्वत-प्रदेशोंके भूतकालीन जीवकी छटा देखनेको मिलती है; उसी प्रकार वहाँकी परियों, भूतों और पशु-पक्षियोंकी कहानियोंसे यह भी सिद्ध होता है कि सभ्यताके प्रारम्भमें मनुष्य अत्यन्त सरल तथा विश्वासी जीव होता है। उसका धर्म और सामाजिक व्यवस्था बालकों-जैसे सरल विश्वासकी नींवपर स्थिर रहते हैं। आयरलैण्ड, स्केण्डिनेविया, चीन, मिस्र और भारतवर्ष—सब जगह मनुष्यका अन्तर—उसकी आत्मा—एक समान है। स्वयं लेखक महोदयके शब्दोंमें “संसारकी विभिन्न जातियोंकी लोक-गाथाओंके मननसे यह महान सत्य जाना जा सकता है कि छोटे-मोटे भेद होते हुए भी सब लोग परस्पर सम्बन्धित हैं तथा भगवानके महान उद्देश्यमें मानव-समाजके सब लोग एक ही रुधिर, एक ही हृदय और एक ही विचारके बनाये गये हैं, ताकि वे इस पृथ्वीपर एक साथ रहें और एक ही लक्ष्यको प्राप्त करें।”

जुलाई, १९३६ के 'टूवेनटियेथ सेनचुरी' नामक प्रसिद्ध मासिक पत्रके शब्दोंमें—“ऐतिहासिक तथा पुरातत्त्व-सम्बन्धी महत्त्वके अतिरिक्त पुस्तककी लेखन-शैली ईसपकी कहानियोंकी तरह सरल और सुन्दर है, जिसे छोटे बालक और बच्चे बहुत पसन्द करेंगे। अत्यन्त परिश्रमपूर्वक इस पुस्तकको लिखनेपर लेखक-द्वय वधाईके पात्र हैं, क्योंकि अनुसन्धान-कार्यके लिए यह स्वयं एक खजाना तो है ही; पर साथ ही इसके द्वारा ऐतिहासिक पर्यटकको काफ़ी मूल्यवान मसाला तथा साधारण पाठकको चित्ताकर्षक पाठ्य-सामग्री मिल सकती है।”

छोटे-मोटे छपाई-सम्बन्धी तथा ऐतिहासिक

घटनाओं सम्बन्धी दोष होते हुए भी यह पुस्तक अपने ढंगकी एक ही चीज़ है। मेरे मनमें केवल इतनी बात ज़रूर खटकती है कि यह अंगरेज़ीमें लिखी गई है। यदि यह हिन्दीमें लिखी जाती, तो मातृ-भाषाका भयङ्कर भरता तथा साथ ही अधिक विस्तृत जनसंख्या तक उसकी पहुँच होती। इतना होते हुए भी खोज और इतिहाससे जिन्हें प्रेम है, उनसे मेरा अनुरोध है कि वे इस पुस्तकको अवश्य पढ़ें। इसका मूल्य ३॥) कुछ अधिक तो अवश्य प्रतीत होता है; फिर भी 'हिमालयन फोकलोर' संग्रहणीय है।

—भक्तदर्शन

‘अपराजित अबीसीनिया’—लेखक, श्री सत्यनारायण सिंह, पी-एच० डी०; प्रकाशक, ‘त्रिजाली’-कार्यालय, बाँकीपुर; डबल क्राउन १६ पेजी; पृष्ठ-संख्या १७६; मूल्य १)।

अबीसीनिया और इटलीका युद्ध समाप्त कहा जानेपर भी अभी तक ठंडा नहीं हुआ। देशके बड़े भागपर अभी तक इटलीका कब्ज़ा नहीं हो सका है, और अब तक इधर-उधर लोहा बज जाता है। गत वर्ष युद्ध आरम्भ होनेके दो महीने पहले यूरोपकी एक प्रेस-एजेन्सीने इस पुस्तकके लेखक डा० सत्यनारायण सिंहको अपना युद्ध-संवाददाता (War Correspondent) मुक़र्रर करके अबीसीनिया भेजा था। डाक्टर सिंह ५ सितम्बरको आदिस अवेबा पहुँचे और पूरे आठ महीने—जब तक बाक्रायदा युद्ध चलता रहा—वे अबीसीनियामें रहे। अबीसीनियाके बादशाहकी ओरसे उन्हें युद्ध-क्षेत्रोंमें जाने-आने और युद्धको स्वयं देखनेकी सुविधाएँ प्राप्त थीं। ‘अपराजित अबीसीनिया’ में डाक्टर सिंहने इस युद्धका रोचक और रोमांचकारी वर्णन दिया है।

यह पुस्तक कई दृष्टियोंसे हिन्दी-साहित्यमें अनोखी चीज़ है। डाक्टर सिंह ही पहले भारतीय हैं, जिन्हें किसी युद्धमें संवाददाता बनना पड़ा। वे ही एकमात्र भारतीय हैं, जिन्होंने अबीसीनियाके सभी युद्ध-क्षेत्रोंको स्वयं देखा है। युद्धोंके वर्णनवाली पुस्तकोंका हिन्दीमें

सर्वथा अभाव है। इस विषयकी मौलिक पुस्तकें तो एकदम नहीं हैं। ठाकुर गदाधर सिंहने रूस-जापान-युद्धपर एक सुन्दर पुस्तक लिखी थी; किन्तु उसका मसाला इधर-उधरसे लिया हुआ था। उन्होंने स्वयं वह युद्ध नहीं देखा था। 'अपराजित अवीसीनिया' ही हिन्दीमें पहली पुस्तक है, जिसमें एक हिन्दी-लेखकने युद्धका आखों-देखा वर्णन दिया है।

पुस्तक तीन भागोंमें विभक्त है। पहले भागमें युद्धके पूर्व अवीसीनिया और उसके निवासियोंकी स्थितिका खाका खींचा गया है। दूसरे भागमें युद्धका वर्णन है और तीसरे भागमें युद्धके अन्तिम दिन, युद्धमें अवीसीनिया-प्रवासी भारतीयोंकी दशा और युद्धका अन्तर्राष्ट्रीय प्रभाव आदि बातें हैं।

पुस्तकसे आधुनिक युद्धोंकी भयंकरता और गोर इटालियनोंकी बर्बरता और शैतानीका खासा आभास मिलता है तथा अनेक नई-नई बातें मालूम होती हैं। लेखककी शैली साफ है, यद्यपि उसमें अभी प्रौढ़ता नहीं; लेकिन इससे पुस्तककी उपादेयतामें कोई अन्तर नहीं पड़ता। पुस्तकमें २८ चित्र और अवीसीनियाका एक नक्शा भी है।

इस उपयोगी और ज्ञानवर्द्धक पुस्तकके लिए लेखकको बधाई है।

सामयिक साहित्य

'अर्जुन' का 'रियासत-अंक'—सम्पादक, श्री कृष्णचन्द्र; साप्ताहिक 'अर्जुन' का वार्षिक मूल्य ३॥); पता, 'अर्जुन'-कार्यालय, दिल्ली; इस अंकका मूल्य १=)

हमारे सहयोगी साप्ताहिक 'अर्जुन'ने अपना 'रियासत-अंक' निकालकर भारतकी आठ करोड़ बेजवान रियायती और देशका ध्यान आकर्षित किया है। हमारी रियासती प्रजा वास्तवमें देशमें सबसे अधिक उत्पीड़ित, सबसे अधिक गुलाम और सबसे अधिक मूक है। 'अर्जुन'के इस विशेषांकमें रियासती प्रजाकी विभिन्न समस्याओंपर अधिकारी लेखकों द्वारा लिखे हुए

सुन्दर लेखोंका चयन किया गया है। लेखोंका चुनाव इस सुन्दर ढंगसे हुआ है कि रियासती समस्याओंके लगभग समस्त पहलुओंपर प्रकाश पड़ता है। 'ताज'के साथ रियासतोंका सम्बन्ध, राजाओंका भविष्य, संघ-शासनमें रियासतोंका स्थान, कांग्रेस और रियासतें, रियासतोंके किसान, देशी-राज्य प्रजापरिषदका इतिहास, रियासतोंमें स्त्रियोंका स्थान, गोलमेज़ कानफरेन्स और रियासतें, रियासतोंमें अंगरेज़ अहलकार, पोलिटिकल डिपार्टमेंट और राजागण, नरेशों और अंगरेज़ोंकी सन्धियाँ, राजाओंकी वीभत्स स्वेच्छाचारिता, रियासतोंमें दमन आदि विषयोंका समावेश इस विशेषांकमें है। इस अंकसे हमें देशी रियासतोंकी वर्तमान स्थितिकी एक खासी झाँकी मिल जाती है। डवल क्राउन चौपेजी आकारके १८८ पृष्ठोंका यह अंक अनेक चित्रोंसे चित्रित है। इस सुन्दर विशेषांकके लिए सहयोगी 'अर्जुन'को हार्दिक बधाई है। इस अंकका मूल्य १=) है; लेकिन पाठ्य-सामग्रीको देखते हुए यह एक रुपयेमें भी सस्ता है।

—
'सैनिक' का 'चुनाव-अंक'—सम्पादक, श्रीकृष्णदत्त पालीवाल; पता, 'सैनिक'-कार्यालय, आगरा; वार्षिक मूल्य ३)।

हिन्दीके राजनैतिक साप्ताहिकोंमें 'प्रताप' और 'सैनिक' का नाम सदा अग्रणी रहा है और अब भी है। जबसे श्रीयुत पालीवालजीने लेजिस्लेटिव ऐसेम्बलीपर धावा बोला है, तबसे सहयोगी 'सैनिक' भी 'क्विक मार्च' की जगह 'डवल मार्च' चलने लगा है। 'सैनिक' में कुछ अतिरिक्त स्फूर्ति दिखलाई दे रही है। युक्त-प्रान्तके कांग्रेसी अखाड़ेमें पालीवालजी अखाड़िया पहलवानके नामसे मशहूर हैं। नये निर्वाचन आ रहे हैं, इसलिए यह नामुमकिन था कि पालीवालजी उसमें न कूदें। पालीवालजी खुद भी संघर्षमें कूदे, साथ ही 'सैनिक' ने भी बम्बार्डमेंट शुरू कर दिया है। 'सैनिक' का 'चुनाव-अंक' पालीवालजीकी राजनैतिक

सूझका नमूना है। चुनावके समय राजनैतिक खुराफातोंका ऐसा बवंडर उठाया जाता है कि वोटर बेचारा बौखला उठता है। 'सैनिक'के इस अंकमें देशकी वर्तमान राजनैतिक स्थितिपर इस प्रकारके लेख इकट्ठे किये गये हैं, जिनसे वोटरोंको साफ-साफ सोचने-विचारने और अपना मत निर्धारित करनेमें बड़ी सहायता मिलेगी। कांग्रेस-पक्ष और देशके उन्नतिशील अग्रगामी दलोंका पक्ष सुन्दरतासे उपस्थित किया गया है। वर्तमान राजनीतिसे दिलचस्पी रखनेवाले लोगोंको 'सैनिक' का यह अंक जरूर रुचिकर सिद्ध होगा।

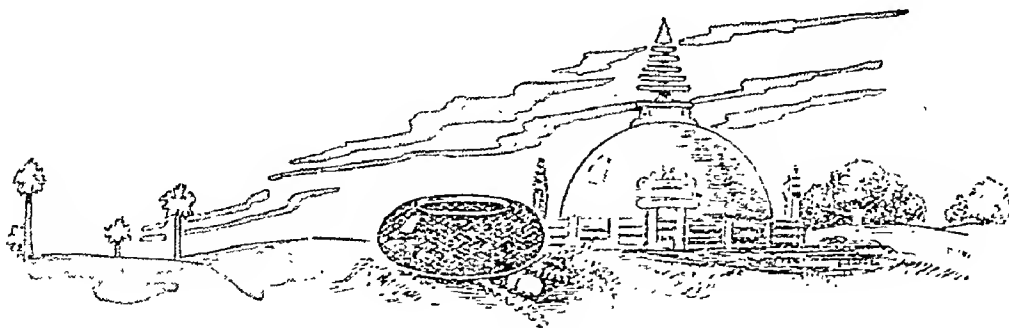
'योगी' का 'दीपावली-अंक'—सम्पादक, श्री आर० एल० शर्मा; पता, 'योगी'-कार्यालय, पटना; वार्षिक मूल्य ३)।

दीपावलीपर 'योगी'ने अपना जो विशेषांक निकाला है, उसमें डबल क्राउन चौपेजी आकारके ५२ पेज और अनेक चित्र हैं। 'योगी' ने अपनी सेवाओंसे विहार-प्रान्तमें अपना एक विशिष्ट स्थान बना लिया है। प्रस्तुत अंकमें तीन कहानियाँ, छै-सात कविताएँ और चौदह लेख हैं। लेखोंके चुनावमें सुरुचिसे काम लिया

गया है, जिससे अनेक उपयोगी विषयोंका समावेश हो गया है। इस विशेषांकके लिए सहयोगीको बधाई है।

'बीमा और वाणिज्य'—सम्पादक, श्री एम० आर० बंसल, बी० एस-सी०; पता—४६, स्ट्राण्ड रोड, कलकत्ता; वार्षिक मूल्य ३); एक अंकका १); डबल क्राउन अठपेजी; पृष्ठ-संख्या ३२

हिन्दीमें वाणिज्य-सम्बन्धी पत्रोंका सर्वथा अभाव है। 'बीमा और वाणिज्य' को प्रकाशित करके श्री बंसलने इस कमीको पूरा करनेके लिए पहला कदम उठाया है, जिसके लिए वे बधाईके अधिकारी हैं। जैसा कि उसके नामसे प्रकट है, बीमा और वाणिज्य सभी प्रकारके व्यापारिक विषयोंकी—विशेषकर बीमा-व्यवसायकी—विवेचना करेगा। प्रस्तुत अंकके अधिकांश लेख बीमा-सम्बन्धी हैं; लेकिन उसके साथ ही विज्ञापन-कला और वेकारीकी समस्यापर लेख और एक सफल व्यापारीकी संक्षिप्त जीवनी भी है। पत्रका क्षेत्र काफी व्यापक है, और हमें आशा है कि यदि व्यापारीवर्गने इसे अपनाया, तो पत्र शीघ्र ही उनकी अनेक जरूरतोंको पूरा करनेमें समर्थ होगा।



सम्पादकीय विचार

अंडमानमें राजनैतिक कैदी

वायसरायकी कार्यकारिणी समितिके अन्यतम सदस्य सर हेनरी क्रेकके मतानुसार अंडमान द्वीप राजनैतिक कैदियोंके लिए स्वर्ग है। कैदियोंमें किसी किसीको अंडमानमें 'स्वर्गलाभ' भी हो जाता है; लेकिन उनके लिए अंडमान भू-स्वर्ग नहीं है, यह बात भारत-सरकार द्वारा मनोनीत दो दर्शकोंकी बातोंसे प्रमाणित हो जाती है। भारत-सरकारने लेजिस्लेटिव एसेम्बलीके दो विभिन्न राजनैतिक दलों और विभिन्न सम्प्रदायोंके दो सदस्योंको चुनकर अंडमान देखनेके लिए भेजा था। इन दो सदस्योंमें एक हैं सर मुहम्मद यमीन खां और दूसरे हैं रायजादा हंसराज। सर मुहम्मद यमीनने राजनैतिक कैदियोंके रहन-सहनकी व्यवस्थाका उजला पहलू दिखलानेकी कोशिश की है। फिर भी उन्होंने जो-बुद्धि कहा है, उससे यह साबित हो जाता है कि अंडमानका राजनैतिक जेल भू-स्वर्ग नहीं है। सर यमीनने स्वयं ही कहा है कि सभी राजनैतिक कैदी अपने देशको लौट आना चाहते हैं। निस्सन्देह राजनैतिक अथवा अराजनैतिक—सभी कैदी मुक्ति चाहते हैं। किन्तु अंडमानके राजनैतिक कैदी जो देशको लौट आना चाहते हैं, वह छुटकारा पाकर लौटनेकी बात नहीं है। उसका मतलब यह है कि वे अपनी कैद भारतके जेलोंमें काटना चाहते हैं, न कि अंडमानके जेलमें। यदि अंडमानके जेलमें उन्हें 'स्वर्ग-सुख' मयस्सर होता, तो वे भारतके जेलोंमें नरक भोगनेके लिए क्यों आना चाहते ?

चटगाँवका अछागार लूटनेके अपराधमें सजा पाये हुए कैदियोंको देखकर सर मुहम्मद यमीन दंग रह गये। वे लिखते हैं—“(चटगाँव केसके ये कैदी) आत्म-सम्मानवाले, शिष्टाचार-सम्पन्न और आत्म-नियन्त्रण रखनेवाले हैं। वे केवल प्रासंगिक बातें ही कहते थे। उन्होंने सिर्फ एक ही माँग पेश की, और वह यह थी कि उन्हें देशको वापस भेज दिया जाय।”

राजनैतिक कैदियोंके स्वास्थ्यकी हालत और उनकी जरूरतें और शिक्षायत्तें दैनिक पत्रोंमें निकलती रहती हैं। शारीरिक भोजनकी अपेक्षा मानसिक भोजनकी कमी एक विचारणीय विषय है।

दूसरे दर्शक रायजादा हंसराजने जो वक्तव्य प्रकाशित किया है, उसके केवल एक अंश हम उद्धृत करते हैं—“मामूली कैदियोंकी तुलनामें राजनैतिक कैदियोंका स्वास्थ्य खराब है। ३१६ राजनैतिक कैदियोंमें से ७५ कैदियोंका वजन पाँच-पाँच पौण्ड कम हो गया है। वे इन्फ्लूएन्जा, सरदी, और ब्रंकाइटिससे पीड़ित होते हैं। पानीकी भी किल्लत है।

३१६ कैदियोंमें पिछले पाँच वर्षमें सिर्फ पाँच कैदियोंको अपने आत्मीय स्वजनोसे मुलाकातका मौका मिला। कार्यतः न कोई भेंट-मुलाकात है, न कोई नया चेहरा, न व्यायाम और न मनोरंजन। सचमुचमें ऐसा जान पड़ता है कि ये कैदी जेलके छोटे अहातेमें ज़िन्दा ही गाड़ दिये गये हों।”

—श्री रामानन्द चट्टोपाध्याय

विशेषज्ञोंका रोग

भारतकी सरकार आये दिन किसी-न-किसी बातकी जाँचके लिए, या किसी बातपर सलाह देनेके लिए, इंग्लैण्डसे विशेषज्ञ बुलाया करती है। ये विशेषज्ञ मोटी-मोटी रकमोंपर आते हैं, फर्स्ट क्लासमें और हवाई-जहाज़ोंमें मुल्क-भरकी सैर करते हैं, गवर्नमेंट हाउसोंमें दावतें खाते हैं और उलटी-सीधी रिपोर्टें देकर चले जाते हैं। इनकी तनखाहोंका, घूमने-फिरनेका और दावतें खानेका खर्च पड़ता है भारतके वेचारे गरीब करदाताओंके मत्थे। सौ-सवा-सौ वर्षसे अंगरेज़ भारतमें सैकड़ों जाँच-कमेटियाँ और कमीशन मुक़र्रर कर चुके और हज़ारों विशेषज्ञोंको यहाँ ला चुके हैं, इतना सब होनेपर भी हिन्दोस्तान आज संसारका सबसे गरीब देश है !

अंगरेज ही क्यों ?

विदेशोंसे विशेषज्ञोंका लाना तभी उचित है, जब देशमें उस विषय-विशेषके जानकार न हों। लोगोंका खयाल है कि सरकार भारतीय जानकारोंकी खोज-बीन किये बिना ही विशेषज्ञोंके नामपर विदेशियोंका चालान मँगाया करती है। यदि देशमें किसी विषयके विशेष जानकार न मौजूद हों और इसके लिए रियायाके पैसे पर विदेशी विशेषज्ञोंको बुलाना ही जरूरी समझा जाय, तो सारी दुनिया पड़ी हुई है—जहाँ सबसे अच्छे विशेषज्ञ मिलें, वहाँसे बुलाये जायँ; लेकिन हमारी सरकार हर एक विषयके विशेषज्ञ इंग्लैण्डसे ही बुलाती है। कोई शख्स जब पैसा खर्च करके बाज़ारसे चीज़ खरीदने जाता है, तो वह चार दूकानें देखकर अच्छी चीज़ लेता है, यह नहीं कि एक ही दूकानमें जाकर जो-कुछ टूटी-फूटी सड़ी-बुसी चीज़ मिले, उसीको उठा लाये। हमारी सरकार कुछ ऐसा ही कर रही है। सारी दुनिया जानती है कि इंग्लैण्ड एक औद्योगिक देश है। वह कृषि-प्रधान देश न कभी रहा है और न कभी हो सकता है। यूनाइटेड स्टेट्स अमेरिका, अर्जेन्टाइन, रूस, कैनाडा, आस्ट्रेलिया आदि कृषि-प्रधान देश हैं। मगर मज़ा यह है कि भारत-सरकार कृषिकी जाँचके लिए जो विशेषज्ञ बुलाती है वह भी इंग्लैण्डसे ! कृषिके विशेषज्ञकी यदि आवश्यकता ही हो तो अमेरिका, कैनाडा, आस्ट्रेलिया या अर्जेन्टाइनसे क्यों न बुलाया जाय ? भारतमें रेडियोके प्रचारकी जाँचके लिए एक विशेषज्ञ इंग्लैण्डसे लाया गया था। रेडियोके प्रचारमें इंग्लैण्ड अमेरिकासे कहीं ज्यादा पिछड़ा है। फिर इंग्लैण्ड एक छोटा-सा टापू है, जिसमें सिर्फ एक ही ब्राडकास्टिंग स्टेशन समूचे देशका काम चला सकता है। इसके विपरीत भारत बहुत लम्बा-चौड़ा देश है। लम्बाई-चौड़ाई और दूरियोंके लिहाज़से उसकी अवस्था अमेरिका या रूससे ज्यादा मिलती-जुलती है। रेडियोका विशेषज्ञ यदि बुलाना था, तो अमेरिकासे बुलाया जाता।

आजकल रेलवेकी जाँचके लिए भी इंग्लैण्डसे विशेषज्ञ आये हैं। रेलके मामलेमें भी भारत अमेरिकाके अधिक समान है। यहाँ इंग्लैण्डकी भाँति छोटी-छोटी लाइनें नहीं हैं; लेकिन विशेषज्ञ जो बुलाये गये हैं, वे इंग्लैण्डसे। पशु-पालन और डेरीके रोज़गारमें संसारके देशोंमें इंग्लैण्डका कोई विशेष स्थान नहीं है। डेनमार्क, आस्ट्रेलिया, अमेरिका आदि उससे कहीं बढ़े हुए हैं; लेकिन यदि भारतके लिए पशुओंका विशेषज्ञ बुलाया जायगा, तो इंग्लैण्डसे। सरकारकी इस नीतिसे भारतीयोंको खामखवाह यह सन्देह होता है कि सरकारका उद्देश्य भारतकी भलाई न होकर इंग्लैण्डवालोंको मोटी-मोटी रकमोंपर हिन्दुस्तानकी सैर कराना है, अथवा हिन्दोस्तानकी भलाईकी आड़में अंगरेज़ोंका कोई साम्राज्यवादी स्वार्थ छिपा है। अतः सरकारको चाहिए कि वह अंगरेज़ विशेषज्ञोंके ये चालान मँगाना बन्द कर दे। भारतमें किसी भी विषयके जो विशेषज्ञ मौजूद हैं, उनकी जानकारीका पूरा-पूरा उपयोग करे, और यदि किसी विषयके विशेषज्ञ बाहरसे बुलाने ही पड़ें, तो संसारके किसी भी देशसे, जो उस विषयमें सबसे बड़ा हुआ हो, विशेषज्ञ बुलाये जायँ।

राहुलजीका महत्त्वपूर्ण कार्य

राहुलजी अपनी तृतीय तिब्बत-यात्राके बाद भारतवर्ष सकुशल लौट आये। इस बार उन्हें अपने कार्यमें—प्राचीन संस्कृत-ग्रन्थोंकी प्रति प्राप्त करनेमें—जो आश्चर्यजनक सफलता मिली है, तदर्थ हम उन्हें हार्दिक बधाई देते हैं। निम्न-लिखित विद्वानोंके कई संस्कृत-ग्रन्थोंका, जो लुप्त समझे जाते थे, राहुलजीने उद्धार किया है :— धर्मकीर्ति, प्रज्ञाकर गुप्त, ज्ञानश्री, नागार्जुन, आसंग वसुवन्धु, रत्नाकर शान्ति, रत्नकीर्ति, भव्य और गुणप्रभ।

इन विद्वानोंके ग्रन्थ दर्शनशास्त्र और तर्कशास्त्रके हैं। धर्मकीर्तिका 'प्रमाणवार्तिक' ही इतना महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है कि यदि राहुलजीने अकेले उसीका उद्धार किया होता, तब भी वे यशस्वी हो जाते; पर उन्होंने तो एक साथ

ही कई ग्रन्थ-रत्नोंको खोज निकाला है। अपनी इस कष्टप्रद यात्रामें उन्हें कितना परिश्रम करना पड़ा, इसका अनुमान प्राठक इसीसे कर सकते हैं कि पचास हजार श्लोक तो उन्होंने अपने हाथसे नकल किये हैं और डेढ़ लाख श्लोकोंके फोटोग्राफ लिये हैं। इन ग्रन्थोंके ठीक तौरपर सम्पादन करनेमें ही कई वर्ष लग जायेंगे।

रूसके सुप्रसिद्ध विद्वान श्री चर्वास्की (Stcherbatsky) को इस समाचारसे कि धर्मकीर्तिका 'प्रमाण-वार्तिक' नामक ग्रन्थ मिल गया है, इतना हर्ष हुआ है कि वे इस ग्रन्थको देखनेके लिए ही भारतवर्षकी यात्रा करना चाहते हैं। यह बात ध्यान देने-योग्य है कि डाक्टर चर्वास्की आजकल संसारमें सबसे बड़े भारतवेत्ता (Indologist) माने जाते हैं।

हिन्दीके प्राचीन इतिहासकी दृष्टिसे भी राहुलजीकी यात्रा बहुत महत्वपूर्ण है। इस बार वे सरहपाके दोहोंके फोटो भी लेते आये हैं। ये हिन्दी दोहे लगभग ८५० ईस्वीके लिखे हुए हैं। इससे प्रकट होता है कि हिन्दी-कविता कम-से-कम बारह सौ वर्ष पुरानी है।

इस यात्रामें राहुलजीने बारहवीं शताब्दीके बुद्धगयाके मन्दिरके मॉडल भी देखे थे, और वे उनके भी चित्र लेते आये हैं। इस प्रकार भिक्षु राहुलजीकी यह यात्रा केवल बौद्धधर्मकी दृष्टिसे ही नहीं, बल्कि प्राचीन भारतीय इतिहास तथा हिन्दी-साहित्यकी दृष्टिसे भी बड़ी महत्वपूर्ण सिद्ध हुई है।

खुदरा फजीहत

कुछ दिन पहले रूममें आग लगानेके जुर्मपर कुछ जर्मन गिरफ्तार किये गये थे। मुकदमा चलनेपर अदालतने दोषी पाकर हर स्टिकलिंग नामक जर्मन और उमके साथीको मौतकी सजा दी है। इसपर जर्मनीमें काफी हलचल फैली है। जर्मनीकी सरकारी न्यूज़ एजेन्सीने इसे 'हृद दर्जेकी ज़बरदस्ती' कहा है, और 'डरमांटाग' इसे 'वेबुनियाद अन्यायका अन्तर्गर्हीय कुकर्म' बतलाता है।

सम्भव है, रूसी अदालतने जर्मनोंके साथ न्याय न किया हो; मगर इतना तो मानना पड़ेगा कि रूसियोंने इन जर्मनोंपर बाक्तायदा मुकदमा चलाकर उन्हें सजा दी है। वे फ़ैसलेके खिलाफ़ अपील कर सकते हैं। लेकिन सवाल यह है कि कुछ वर्ष पहले हिटलरके नाज़ियोंने जब अपने विरोधियोंके घर जाकर, उन्हें सोतेसे जगाकर, बीबी-बच्चोंके सामने उनकी हत्याएँ की थीं, तब जर्मनोंकी न्यायकी भावना कहाँ गई थी? अभी हालमें एडगर ऐण्ड्रे नामक एक कम्यूनिस्ट नेताको नाज़ियोंने सिर काटे जानेकी सजा दी है। ऐण्ड्रेके खिलाफ़ सन् १९३१ में ड्रेकमैन नामक एक नाज़ीकी हत्याकी 'नैतिक ज़िम्मेदारी' तथा १९२६ से १९३३ तक ग़ैर-क्रान्ती संस्थाका सदस्य होनेके अभियोग लगाये गये थे। इंग्लैण्डकी पार्लामेंटके कुछ मज़दूर सदस्योंने हर हिटलरको एक पत्र लिखकर ऐण्ड्रेपर फिरसे मुकदमा चलाये जानेकी प्रार्थना भी की थी। इन मज़दूर सदस्योंका कहना था कि जिस मुख्य गवाहकी गवाहीपर ऐण्ड्रेको सजा दी गई, उसने बादमें खुलेआम घोषित किया कि उसकी गवाही झूठी थी। वह खुद इन जुर्मोंका मुजरिम नहीं है, यह सिद्ध करनेके लिए वकीलोंने उससे वैसा बयान लिखा लिया था। अगर नाज़ी सरकार उसकी रक्षाकी गारन्टी करे, तो वह जर्मन अदालतमें आकर हल्किया सच्चा बयान दे सकता है। मगर नाज़ियोंने इन बातोंकी परवा नहीं की। उसपर मज़ा यह कि नाज़ी रूसियोंके अन्यायपर दुनियामें हल्ला मचा रहे हैं। 'खुदरा फज़ीहत दीगरा नसीहत' शायद यूरोपियन राजनीतिका पहला पाठ है।

लार्ड विलिंगडन और भारतीय प्रेस

इंडियन और ईस्टर्न न्यूज़-पेपर सोसाइटीके वार्षिक भोजपर हमारे भूतपूर्व वायसराय लार्ड विलिंगडनने अपनी वक्तृतामें फरमाया है — "भारतीय पत्रोंने मेरे साथ हमेशा उचित व्यवहार किया है। जब-जब उन्होंने मेरी आलोचना करना मुनासिब समझा, तब

उनकी आलोचना न्यायोचित होती थी, साथ ही आम तौरपर संकटके अवसरोंपर उन्होंने हमेशा मेरा समर्थन किया था। इन सब बातोंके लिए मैं उन्हें धन्यवाद देता हूँ।”

जान पड़ता है कि लार्ड विलिंगडन महोदयकी नज़रमें समूचा भारतीय प्रेस सिर्फ आधे दर्जन एंग्लो-इंडियन अखबारों तक ही सीमित है। लार्ड विलिंगडनकी नीतिका समर्थन कभी भारतके राष्ट्रीय प्रेसने नहीं किया। यदि लार्ड विलिंगडनको भारतीय प्रेससे हमेशा उचित व्यवहार और संकटके अवसरोंपर समर्थन प्राप्त होता रहा था, तो लार्ड विलिंगडनने प्रेस-एक्ट बनाकर अखबारोंकी आज़ादी छीनकर प्रेसके सद्व्यवहारका बड़ा सुन्दर बदला दिया है। विलिंगडन मार्का यह प्रत्युपकार भी संसारकी अनोखी चीज़ोंमें गिना जाना चाहिए।

मारवाड़ी और देशी रियासतें

ब्रिटिश भारतमें बसे हुए मारवाड़ी-समाजने वाणिज्य-व्यापारमें काफी धन अर्जित किया है और अपने लिए एक विशिष्ट स्थान भी बना लिया है। ये मारवाड़ी अधिकांशमें राजपूतानेकी रियासतों—जयपुर, जोधपुर, उदयपुर, बीकानेर, जैसलमेर आदि—के रहनेवाले हैं। मारवाड़ियोंमें बहुतसे उदारचेता और जनहितका विचार रखनेवाले लोग भी हैं। वे दान भी काफी करते हैं और आजकल उनमें से कुछ लोग ब्रिटिश भारतके राजनैतिक और सामाजिक आन्दोलनोंमें भी भाग लेने लगे हैं; लेकिन अपने निवास-स्थानकी रियासती प्रजाकी ओर उन्होंने कोई विशेष ध्यान नहीं दिया। यह बात किसीसे भी छिपी नहीं है कि भारतकी देशी रियासतें घोर कुशासनके नमूने हैं। रियासतोंमें होनेवाले जुल्मोंकी बातें हम लोग आये दिन सुना करते हैं। ब्रिटिश भारतके मारवाड़ी स्वयं तथा उनके नाते-रिश्तेदार भी

इन जुल्मोंके शिकार होते हैं, अतः यह बात नहीं कि मारवाड़ी-समाज रियासती कुशासनसे अपरिचित हो। लेकिन मारवाड़ियोंने रियासती प्रजाके आन्दोलनोंमें अभी तक कोई विशेष भाग नहीं लिया।

रियासतोंमें समाचारपत्र हैं ही नहीं, न वहाँ कोई स्वतन्त्र विचारोंका पत्र निकलने ही दिया जाता है। अतः रियासती प्रजाको अपनी करुण कहानी सुनानेके लिए ब्रिटिश भारतके पत्रोंकी शरण लेनी पड़ती है; लेकिन यहाँ भी उन्हें ठिकाना नहीं मिलता, क्योंकि कुछ समाचारपत्रोंमें रियासतोंके नरेशोंने शेयर ले रखे हैं, जिनसे वे रियासतोंके खिलाफ कुछ छाप नहीं सकते, और कुछ समाचारपत्र ऐसे ग़ैर-जिम्मेदार भी हैं, जो राजाओंसे घूस लेकर प्रजाके साथ दगाबाज़ी कर सकते हैं।

ज़रूरत इस बातकी है कि केवल रियासती प्रजाके दुख-मु़ल प्रकट करनेके लिए ही एक अच्छा शक्तिशाली पत्र हो। ब्रिटिश भारतका मारवाड़ी-समाज इतना धनी है कि वह इस प्रकारका एक अच्छा पत्र आसानीसे निकाल सकता है। कलकत्ता मारवाड़ियोंका सबसे बड़ा केन्द्र है। क्या कलकत्तेका मारवाड़ी-समाज इस ओर ध्यान देगा?

कौन-सी हिन्दी ‘राष्ट्र-भाषा’ होगी?

किस प्रकारकी हिन्दी राष्ट्र-भाषा होगी, इस विषयमें कुछ लोगोंमें बड़ी ग़लतफ़हमी फैली हुई है। उदाहरणके लिए, यहाँपर हम श्री विनायक दामोदर सावरकरजी तथा प्रोफ़ेसर रमेशचन्द्र बनर्जी, एम०ए०, जैसोर (बंगाल) के मत उद्धृत करते हैं—

“‘अभ्युदय’ हिन्दीको राष्ट्र-भाषा बनानेके कार्यको सदैव पुरस्कार करे! और पर्शियन, अरबी, अंगरेज़ी परकीय शब्दोंके रोगसे उसको मुक्त करे! जो शब्द हमारी भाषामें नहीं, व संस्कृतसे नहीं बन सकता, व जो वस्तु परकीय देशोंसे हमारे देशमें आई और जिसका

वह परकीय नाम सुव्यवहार्य है, ऐसे कुछ अत्यावश्यक शब्द परकीय होंगे, तो भी भाषामें मिला लेनेमें हानि नहीं। जैसे—बूट, कोट, गुलाब, पुलाव, खुर्ची, क्रिकेट; परन्तु मुसम्मात, वालिद, हक्रीकत, क़बूल, हरगिज़, क़ौमी, फ़ादर, एलेक्शन ऐसे परकीय अनावश्यक शब्दोंको चुन-चुनके बाहर कर देना चाहिए। इन शब्दोंसे अपने तदर्थक स्वकीय शब्द लुप्त होते चलते हैं, और एक भय सबसे बड़ा यह है कि जिस समय मुसलमान उर्दूको ही राष्ट्र-भाषा बनानेका प्रबल संगठन कर रहे हैं, उस समय हम यदि उतने ही बलसे हिन्दीको परकीय शब्दोंसे अकलंकित रखनेकी संगठित प्रतिक्रिया न करेंगे, तो इस खींचातानीमें हिन्दी हारेगी—उर्दूमय होके जीती रहेगी भी तो उसको जीना नहीं बोलते! ‘शुद्ध हिन्दी ही हिन्दुओंकी राष्ट्र-भाषा हो सकती है।’ अरबी-पर्शियन प्रसिद्ध हिन्दुस्तानी लखनऊकी बोली हो सकेगी; परन्तु गुजरात, महाराष्ट्र, बंगाल, उड़ीसा, मध्यप्रान्तादिक हिन्दूमय प्रान्तोंकी ऐसी उर्दूमय हिन्दी राष्ट्र-भाषा कभी न बन सकेगी!”

—वि० दा० सावरकर

“हिन्दीमें अरबी फ़ारसी शब्दोंका प्रयोग कितना होना उचित? एक-एक प्रान्तमें हिन्दीका आदर्श थोड़ा-थोड़ा भिन्न होता है। बिहारसे जितना पश्चिम चलो, उतना ही हिन्दी और उर्दूका प्रभेद कम होता है। जितना फ़ारसी-अरबी शब्दोंका प्रयोग होगा, उतनी ही हिन्दी ‘अच्छी’ होती है। प्रयागमें विशेषतः यह मेरा वैयक्तिक अनुभव है। ‘मनुष्यका स्वास्थ्य’ न कहकर ‘इंसानकी तन्दुरुस्ती,’ ‘व्यवहार करना’ के स्थानमें ‘इस्तेमाल करना,’ ‘मलाई’ के स्थानमें ‘नेकी,’ ‘सुन्दर’ और ‘स्त्री’ न कहकर ‘ख़ूबसूरत’ और ‘औरत’ कहनेसे हमारी हिन्दी ‘उम्दा’ होती है। परन्तु बंगालके (तथा महाराष्ट्र आदि दक्षिण देशके) हिन्दू ऐसी यावनिक भाषाका यथासाध्य वर्जन करना उचित समझते हैं। इस

विषयमें आर्य-साहित्य आदर्श स्थानीय हो चुका है; परन्तु कथित हिन्दी और आर्यसमाजके बाहरके लेखकोंका मनोयोग इस विषयमें होना चाहिए। हिन्दुओंमें हिन्दी प्रचारकी बाधा होगी। मेरा आशय यह नहीं है कि यावनिक शब्द एक भी प्रयोग न किया जाय। जितना वर्जन हो सकता है होना चाहिए। यह नीति बंग-भाषामें मानी जाती है; हिन्दीमें वह असम्भव न होगी।”

—रमेशचन्द्र बनर्जी

जहाँ सावरकरजी ‘हक्रीकत’, ‘क़बूल’ और ‘हरगिज़’ और ‘क़ौमी’को चुन-चुनकर निकाल बाहर फेंकना चाहते हैं, वहाँ रमेशचन्द्रजी ‘नेकी’, ‘औरत’ और ‘तन्दुरुस्ती’ इत्यादिके खिलाफ़ जहाद बोलनेकी तैयारी कर रहे हैं।

मुसलमानोंमें भी इस प्रकारके कट्टर आदमी मौजूद हैं, जो हिन्दी-संस्कृत शब्दोंसे अपना दामन बचाते हुए चलते हैं। इन लोगोंको मौलाना वहीदुद्दीन सलीमने एक करारी फटकार बतलाई है—

“यह ख़याल नहीं करते कि अगर उन्हीं जैसे ज़वान व अलफ़ाज़के क़ातिल उस ज़मानेमें मौजूद होते और उनका अख़्तियार नाफ़िज़ होता, तो किसी तरह मुमकिन न था कि हमारे लुजुर्ग आज हमारे लिए उर्दू ज़वानमें पचपन हज़ारसे ज्यादा अलफ़ाज़का ज़खीरा छोड़ जाते। जर्मन, फ़्रांसीसी और अंगरेज़ अगर इस नामाकूल असूलपर अमल करते, तो उन कौमोंकी तरक्कीयाफ़्ता ज़वानें एक इंच आगे न सरकतीं और अल्लूमो फुनून और हर किसमके ख़यालात व अफ़कारके ज़खीरे इन ज़वानोंमें मुहय्या न हो सकते। अंगरेज़ी ज़वान वमुक्ताविले जर्मन और फ़्रांसीसी ज़वानके कम बसीअ है, ताहम ‘न्यू स्टेयर्डर्ड डिक्शनरी’ के नामसे हालमें अंगरेज़ी ज़वानकी जो लुगात अमरीकासे शाय़ा हुई है, उसमें साढ़े चार लाख अलफ़ाज़ मौजूद हैं।……इन मुल्कों और क़ौमोंमें ज़वान और क़लमके ऐसे दरवान मौजूद नहीं हैं, जैसे

हमारे मुल्क और हमारी क़ौममें मौजूद हैं। यह हज़रत अरबी और फ़ारसीके मिलापको तो रखा रखते हैं, मगर हिन्दी अलफ़ाज़के साथ इस मिलापको ग़वारा नहीं करते, हालाँ कि इस मिलापकी हज़ारों मिसालें हमारे बुजुर्ग़ बतौर यादगार छोड़े गये हैं।.....”

‘ज़वान और अलफ़ाज़के क़ातिल’ इन ‘दरवानों’से राष्ट्र-भाषाकी रक्षा होनी चाहिए।

भारत-माता मन्दिर

काशीमें श्रीयुत शिवप्रसाद गुप्तने जो भारत-माता मन्दिर बनाया है, वह अपने ढंगकी एक निराली चीज़ है। इस मन्दिरमें प्रतिमाके स्थानपर भारतवर्षका एक विशाल नक्शा बनाया गया। इस मन्दिरका प्रधान उद्देश है एक ऐसे पवित्र स्थानकी आयोजना करना, जिसमें भारतके सभी पुत्र—हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, जैन, सिख, बौद्ध, पारसी आदि—एक साथ बिना किसी धार्मिक भेद-भावके मातृभूमिके प्रति भक्ति प्रदर्शित करनेके लिए एकत्रित हो सकें। इस मन्दिरका संक्षिप्त परिचय अन्यत्र प्रकाशित है। मन्दिरका शिलान्यास कई वर्ष पहले डाक्टर भगवानदासने किया था, और अब उसके तैयार हो जानेपर उसका उद्घाटन महात्मा गांधीने किया है। उद्घाटनके अवसरपर खान अब्दुलगफ़्फ़ार खां, पंडित जवाहरलाल नेहरू, सरदार पटेल, बाबू राजेन्द्रप्रसाद आदि नेता उपस्थित थे। महात्माजीने मन्दिरका उद्घाटन करते हुए अपनी वक्तृतामें कहा था—“यह मन्दिर सबके लिए है, इसमें सबको आना चाहिए। शर्त यही है कि देशके लिए मुहव्वत हो। जिसके दिलमें हमारे देशके लिए कुछ भी मुहव्वत है वह आवे। इसमें यह भाव नहीं है कि दूसरी जाति या देशके लोग न जा सकें। ऐसी भावनासे भरा हुआ यह मन्दिर है। तब मैं योग्य होऊँ या न होऊँ, इसे क्यों न खोलूँ।”

खान अब्दुलगफ़्फ़ार खांने अपने भाषणमें कहा

था—“पुराने ज़मानेका मज़हब आजकलके लोग बिलकुल भूल गये हैं। जो असली मज़हब है, वह तो किताबमें है। उसे तो कोई देखता तक नहीं। पहले किसी ज़मानेमें मसजिदमें सब मज़हबवालोंको जानेकी इजाज़त थी। मदीनेमें जो मसजिद है, उसमें पहले मुसलमान भी नमाज़ पढ़ते थे और ईसाई भी प्रार्थना करते थे। बदकिस्मतीसे वह दिन आज नहीं रहा। आज क्यासे क्या हो गया है। लोग पुराने ज़मानेके मज़हबको भूल गये हैं। खुशीकी बात तो यह है कि भाई शिवप्रसादजीने खुदाका घर सबके लिए क़ायम कर दिया है। उन्होंने हिन्दू, मुसलमान, सिख, ईसाई वगैरहपर दया करके उस भूले हुए सबको फिर याद दिला दिया है। इसके लिए मैं उनका शुक्रगुजार हूँ। जो मन्दिर है, वही गुरुद्वारा, मसजिद और गिरजाघर है। खुदा उनका मकसद पूरा करे।”

श्रीयुत शिवप्रसाद गुप्तकी इस अनोखी सूझके लिए और श्रीयुत दुर्गाप्रसादजी कला-विशारदको ऐसी निपुणतासे भारतका मानचित्र बनानेके लिए वधाई है।

‘प्रभाकर’ का उदय

हिन्दीके सुकवि और हास्य-रसके सुप्रसिद्ध लेखक श्री हरिशंकर शर्मासे ‘विशाल भारत’के पाठक भलीभाँति परिचित हैं। हमारे यहाँ कितने ही ऐसे लेखक पाये जाते हैं, जिनके व्यक्तित्व और रचनाओंके बीच ठीक तौरपर सामंजस्य स्थापित करना अत्यन्त कठिन है। यद्यपि मानव-स्वभाव तथा मनोविज्ञानके विशेषज्ञ किसी लेखकके एक वाक्य अथवा एक शब्दसे ही ताड़ जाते हैं कि मनुष्यत्वकी दुर्गम सीढ़ीमें वह लेखक कितनी ऊँचाई अथवा कितनी निचाईपर खड़ा हुआ है; पर यह अन्तर्दृष्टि बहुतांशमें नहीं होती और ऊपरी दृष्टिसे देखनेपर लेखककी रचनाओंसे उसके व्यक्तित्वका अन्दाज़ लगाना मुश्किल हो जाता है। ‘केचित् मृगमुखे व्याघ्राः केचित् व्याघ्रमुखे मृगाः’ अर्थात् कोई-कोई बाघ मृगोंका

रूप धारण किये हुए हैं और कोई-कोई हरिण ऊपरसे बाघ प्रतीत होते हैं। हर्षकी बात है कि कविवर हरिशंकरजी शर्माके व्यक्तित्वमें किसी प्रकारकी Complexy (दुःखहता या पेचीदापन) नहीं है। वे ऊपर-बाहर सभी तरफसे एक समान हैं। सहृदयता, विनम्रता, स्वाधीनता-प्रेम, अक्खड़पन, संकोचशीलता, विद्वत्ता और साहित्यिक साधनाका यह विचित्र सम्मेलन हिन्दी-संसारमें अन्यत्र बहुत कम देखनेको मिलेगा। 'प्रभाकर' इन्हीं हरिशंकरजीका पत्र है और उसके प्रत्येक अंकमें उनकी मधुर आत्मा बोल रही है। प्रथम अंकमें अपने उद्देश्य बतलाते हुए 'प्रभाकर'-सम्पादकने लिखा है—

“साहित्यिक और सामाजिक सेवामें—रूढ़ियों और अज्ञानतमको भंग करनेमें 'प्रभाकर' अपनी रश्मियोंसे राष्ट्रकी आत्माको स्पन्दित करके जनताको जागरूक बनानेकी चेष्टा करेगा, क्योंकि राष्ट्र निर्माणकी टिकाऊ नींव साहित्य और समाजकी पवित्रता और उन्नतिपर रखी जा सकती है। राजनैतिक जाग्रतिका प्राण है साहित्य और समाजकी उन्नति, और 'प्रभाकर' देशके प्राण—राष्ट्रके जीवन-स्रोत—को पुष्ट और तुष्ट करनेका भरसक प्रयत्न करेगा।

साहित्य - आलोचनामें 'प्रभाकर' सहानुभूतिपूर्ण रचनात्मक शैलीका अनुगामी होगा; पर साहित्यिक व्रणपर वह नश्वर उसी भावनासे चलायेगा, जिस भावनासे डाक्टर अपने रोगीपर शल्य-क्रिया करता है; पर 'रगपर नश्वर' चलाना 'प्रभाकर' की नीतिके विरुद्ध होगा।”

'प्रभाकर'के चार अंकोंको देखनेसे पता लगता है कि वह अपने पथपर निरन्तर अग्रसर हो रहा है। हास्य-रस तो हरिशंकरजीके घाकी चीज़ है—वह उन्हें अपने पूज्य पिताजी स्वर्गीय शंकरजीसे विरासतमें मिला है, और प्रथम तथा द्वितीय अंकमें प्रकाशित 'स्वर्गसे सन्देश' शीर्षक लेखसे स्पष्टतया प्रकट होता है कि जीवनके अत्यन्त कटु अनुभव भी हरिशंकरजीके हास्य-रसके श्रोतके निर्मल माधुर्यको नष्ट नहीं कर सके। वह

वही उज्ज्वल उल्लास है, वही ज़िन्दादिली है और वही निष्कपट गुदगुदी मचा देनेवाली प्रवृत्ति है, जो शुरूसे ही हरिशंकरजीकी सजीव लेखनीकी एक विशेषता रही है।

'प्रभाकर' किसी दल-विशेषका पत्र नहीं। आर्य-संस्कृतिका हमी होनेपर भी वह आर्यसमाजका खरा आलोचक है। साहित्यिक गुटबन्दीसे भी वह कोसों दूर है। सन्तोषकी बात है कि 'प्रभाकर' के पीछे कोई पूँजीपति नहीं है। वह साहित्यिक मज़दूरोंका पत्र है, जो अपने सिद्धान्तोंकी रक्षाके लिए जीवनको प्रायः संकटमें डालते रहते हैं। श्रीरामजी शर्माका एक न एक लेख 'प्रभाकर' के प्रत्येक अंकमें रहता है। 'स्वर्गीय प्रेमचन्दजी', 'स्वर्गीय प्रेमचन्दजीका स्मारक', 'हमारे पाठक' इत्यादि लेख सर्वथा सुपठ्य हैं। 'प्रभाकर' में कितने ही आवश्यक स्तम्भ हैं और उनमें अनेक उपयोगी लेख प्रकाशित होते रहते हैं। कुछ उद्योगी नवीन लेखकोंका भी सहयोग प्राप्त हो गया है। आशा है कि इससे उनकी तथा 'प्रभाकर' की उन्नति होगी। आर्यसमाजके प्रतिष्ठित लेखक भी 'प्रभाकर' में लिखने लगे हैं, और इससे यह सिद्ध होता है कि समाज अपनी कड़ी आलोचना सुननेके लिए उद्यत है; यह उसके जीवनके लिए एक शुभ लक्षण है। 'विशाल भारत' के प्रत्येक पाठकसे हमारा हार्दिक अनुरोध है कि वे इस सजीव सचित्र साप्ताहिकके ग्राहक बनें। वार्षिक मूल्य ३; पता—'प्रभाकर' प्रेस, सिविल लाइन्स, आगरा।

हिन्दुस्तान किनका है ?

श्री जुगलकिशोर बिड़लाने अपना सन्देश भेजते हुए 'अभ्युदय' सम्पादकको लिखा है :—

“यदि अब भी हिन्दू (आर्यधर्मी मात्र) अपने परस्परके भेद और विरोधको छोड़कर एकताके सूत्रमें बँध जायँ, प्रत्येक कार्यमें स्वधर्मी तथा अपने श्रमजीवी भाइयोंको ही पहला स्थान दिया जाय, तो हिन्दुओंकी

उन्नति होनेमें कोई सन्देह नहीं। हिन्दुओंकी उन्नतिका ही दूसरा नाम देशोन्नति है, क्योंकि जनसंख्या इस समय भी इस देशमें ७५ परसेण्ट हिन्दुओंकी है और हिन्दू ही देशसे प्रेम करते हैं। प्राचीन परम्पराकी दृष्टिसे भी भारत देश हिन्दुओंका ही है और होना भी चाहिए।”

श्रीमान जुगलकिशोरजीके दृष्टिकोणसे हिन्दी-भाषा-भाषी अब भलीभाँति परिचित हो चुके हैं, इसलिए उन्हें उपर्युक्त बातोंको पढ़कर आश्चर्य न होगा। एक वाक्यमें कोई व्यक्ति एक साथ कितनी ऐतिहासिक, राजनैतिक और आर्थिक भूलें कर सकता है, उपर्युक्त कथन इसका एक उज्ज्वल उदाहरण है। आर्यसभ्यतासे पहले भी भारतवर्षमें सभ्यता विद्यमान थी; पर बिड़लाजी अपनी परम्परामें उसे बिल्कुल छोड़ देते हैं। ‘हिन्दुओंकी उन्नतिका ही दूसरा नाम देशोन्नति है, क्योंकि ७५ परसेण्ट जनसंख्या हिन्दुओंकी ही है,’ इस तर्कको ज़रा नीचे और लाइये। मान लीजिए, हिन्दुओंमें ब्राह्मणोंकी ही संख्या सबसे अधिक है, इसलिए ब्राह्मणोंकी उन्नतिका ही दूसरा नाम देशोन्नति है, और ब्राह्मणोंमें सनाढ्य ब्राह्मणोंकी संख्या अधिक है, इसलिए सनाढ्य ब्राह्मणोंकी उन्नतिका ही दूसरा नाम देशोन्नति है! इसी प्रकार आप आगे बढ़ते चले जाइये और उपर्युक्त तर्ककी निस्सारता आपपर प्रकट हो जायगी।

‘हिन्दू ही देशसे प्रेम करते हैं’, यह कितनी भ्रमात्मक बात है। प्रत्येक कार्यमें स्वधर्मी श्रमजीवी भाइयोंको पहला स्थान देनेकी बात भी आर्थिक दृष्टिसे लगो है, और यदि इसके अनुसार कार्य किया जाय, तो भारतका श्रमजीवी-आन्दोलन भी हिन्दू, मुसलमान, ईसाई आदि अनेक जातियोंमें बँट जावेगा।

इधर बिड़लाजी जनसंख्याके भरोसे हिन्दुस्तानको हिन्दुओंका ही बतलाते हैं, उधर हिज़ हाइनेस आग्रा खौं मर्दुमशुमारीके बूतेपर बँगाल तथा पंजाब मुसलमानोंके बतला सकते हैं।

हर्षकी बात है कि भारतीय नवयुवक इन ऊटपटांग बातोंको कुछ महत्त्व नहीं देते। आजसे बीस-पचीस वर्ष बादके पत्रोंके पाठक इन बातोंको पढ़ेंगे और कहेंगे—“क्या पिछली पीढ़ीके आदमियोंका मस्तिष्क सचमुच कुछ खराब हो गया था?”

तो फिर हिन्दुस्तान किनका है? हिन्दुस्तान न अकेले हिन्दुओंका ही है और न अकेले मुसलमानोंका ही। वह सभीका है। यदि हिन्दुस्तान किसीका नहीं है, तो उन लोगोंका नहीं है, जो साम्प्रदायिकताके विष-बीज बोते हैं—चाहे वे हिन्दू हों, या मुसलमान, पारसी या ईसाई।

अलीगढ़की उर्दू-कानफरेन्स

गत मास अलीगढ़में महाराज महमूदाबादकी अध्यक्षतामें उर्दू-कानफरेन्स हुई थी, जिसमें हिन्दू और मुसलमान दोनों उपस्थित थे। स्वगताध्यक्ष और सभापति महाशय दोनोंने ही इस बातपर जोर दिया कि उर्दू भारतमें जन्मी है, उसे पालने-पोसनेमें हिन्दू और मुसलमान—दोनों धर्मोंके साहित्य-सेवियोंने परिश्रम किया है, अतः वह हिन्दू-मुसलमानोंकी सम्मिलित सम्पत्ति है। नागपुरमें भारतीय साहित्य-परिषदके अधिवेशनपर हिन्दी या हिन्दोस्तानी शब्दको लेकर उर्दूके मुसलमान लेखकों और अखबारोंने साम्प्रदायिकताका रंग देकर एक व्यर्थका विषैला वावैला खड़ा कर दिया था। प्रसन्नताकी बात है कि अलीगढ़की कानफरेन्सने उर्दूकी हिमायतमें इस्लामकी आड़ न लेकर बुद्धिमानीका परिचय दिया है।

निस्सन्देह उर्दू हिन्दुस्तानकी चीज़ है। वह कोई ग़ैर या विदेशी चीज़ नहीं है। हिन्दी और उर्दूमें कोई मौलिक अन्तर नहीं। आगम्भमें हिन्दी-उर्दूमें कोई खास फर्क भी न था; लेकिन आजकल दोनोंमें दिनोंदिन भेद बढ़ रहा है। इसका कारण यह है कि उर्दूके नये लेखक नये शब्द गढ़ते समय

अरबी-फारसीका सहारा लेते हैं और हिन्दीके लेखक संस्कृतका। लेकिन मामला इतनेपर ही खतम नहीं हो जाता। कुछ उर्दू लेखक हिन्दुस्तानीके सीधे-सादे शब्दोंके मौजूद रहते हुए भी अक्सर अरबी-फारसी और तुर्कीके मुश्किल शब्दोंको अपनाते हैं। दूसरी तरफ हिन्दीमें भी कुछ ऐसे लेखक हैं, जो अपनी भाषाको संस्कृतमयी बनानेमें ही अपना पांडित्य समझते हैं। नतीजा यह होता है कि दोनों भाषाओंमें भेद बढ़ता जाता है।

दूसरा सबसे बड़ा प्रश्न है लिपिका। उर्दूकी लिपि इतनी अवैज्ञानिक, इतनी जटिल और इतनी अपूर्ण है कि जब तक उसमें जड़से रद्दो-बदल न किया जाय, तब तक वह मौजूदा जमानेकी जरूरतोंको पूरा करनेमें एकदम नाकामिल है। आजकल छापेखानेका जमाना है। जो लिपि जितनी ही आसानीसे और जितने ही सस्ते दामोंमें बढ़ियासे बढ़िया ढंगसे छपी जा सकेगी, उसका उतना ही ज्यादा प्रचार होगा। खेद है कि उर्दूके हितैषी इस वैज्ञानिक और स्वाभाविक तथ्यपर ध्यान नहीं देते। उनमें—विशेषकर मुसलमान उर्दू लेखकोंमें—अपनी अपूर्ण और दोष भरी लिपिके प्रति इतना मोह है कि वे उसे किसी भी हालतमें छोड़नेको तैयार नहीं हैं। और यह निश्चय है कि जब तक उर्दूकी लिपि नहीं बदली जायगी, तब तक उर्दूका प्रचार भी सम्भव नहीं है। इस लिपिके अनेकों दोषोंके कारण ही टर्की और ईरान जैसे इस्लामी मुल्कोंने भी इसका वायकाट कर दिया है।

उर्दूवालोंमें, खास तौरपर मुसलमानोंमें, अपनी लिपिके लिए इतना ज्यादा अन्ध प्रेम बढ़ गया है कि वे भाषाको न देखकर सिर्फ लिपिको देखकर ही उर्दू-हिन्दीका निश्चय कर डालते हैं। पंजाबके कुछ आर्यसमाजी अखबारोंमें, जो उर्दू-लिपिमें छपते हैं, संस्कृत शब्दोंका प्रयोग बड़ी बहुतायतसे—और अक्सर वेतुके ढंगसे भी—किया जाता है; फिर भी उन अखबारोंका शुमार उर्दू अखबारोंमें होता है।

इसके खिलाफ लखनऊ-कांग्रेसके सभापतिकी हैसियतसे पंडित जवाहरलाल नेहरूने जो भाषण दिया था, उसकी भाषा अच्छी खासी सलीस और मुहाविरदार उर्दू थी। भारतके अन्य प्रान्तोंके कांग्रेस प्रतिनिधियोंको इस बातकी शिकायत भी हुई कि जवाहरलालजीकी भाषामें उर्दू शब्दोंकी बहुतायत होनेसे वे लोग उसे कम समझ सके। लेकिन चूँकि वह भाषण नागरी-लिपिमें छपा था, इसलिए कुछ मुसलमान भाइयोंने यह फतवा दे दिया कि नेहरूजीका भाषण हिन्दीमें था, इसलिए लोग उसे नहीं समझ सके, अगर वह उर्दूमें होता, तो लोग ज्यादा समझ सकते! जब तक उर्दूके हिमायती इस तरहकी नासमझी करते रहेंगे और अपनी दोषपूर्ण लिपिसे चिपटे रहेंगे, तब तक उर्दूकी उन्नतिका मार्ग साफ नहीं हो सकता।

देव-पुरस्कार

अब वक्त आ गया है कि देव-पुरस्कारके नियमोंमें कुछ आवश्यक संशोधन किये जायें। यदि प्रतिष्ठित साहित्य-सेवियोंका मत उक्त पुरस्कारके विषयमें लिया जाय, तो यह बात आसानीसे ज्ञात हो सकती है कि पुरस्कारकी लोकप्रियता घट रही है। निस्सन्देह इसमें श्रीमान श्रीरत्ना-नरेशका कुछ भी दोष नहीं, क्योंकि पुरस्कारकी योजना प्रजासत्तात्मक ढंगपर की गई है। नौ निर्णायकोंमें सात बाहरके होते हैं, एक टीकमगढ़की वीरेन्द्र केशव-साहित्य-परिषद्का प्रतिनिधि होता है और एक महाराजा साहबका। पर नियमोंकी शिथिलताके कारण कनवेशिंगकी भयंकर चालें इस पवित्र क्षेत्रमें बुरी तरह घुस पड़ी हैं, और उन्हें यदि दूर न किया जायगा, तो पुरस्कारका गौरव नष्ट हो जानेकी आशंका है। टीकमगढ़की केशव-साहित्य-परिषद्से हमारा विनम्र अनुरोध है कि वह इस विषयमें हिन्दीके कार्यकर्ताओं और विद्वानोंकी सम्मति पूछे। श्रीमान श्रीरत्ना-नरेश काफी उदार और समझदार हैं, और विद्वानोंकी सम्मतिकी वे उपेक्षा कदापि न करेंगे।

शरीव हिन्दोस्तानके मत्थे

लगभग सौ वर्षसे हिन्दोस्तानका शासन आई०सी०एस० की 'फौलादी बुनियाद' पर है। इस फौलादी बुनियादने हर मौक़ेपर हौरा मचाकर अपनी तनखाहें, पेनशनें और सुविधाएँ कैसी अनाप-शनाप बढ़ा ली हैं, इसका कुछ आभास 'लन्दन टाइम्स' के—जो आई०सी०एस०का बड़ा प्रशंसक है—एक सम्पादकीय लेखसे मिलता है। 'टाइम्स' लिखता है—

“समूचे साम्राज्य-भरमें कोई अन्य नौकरी ऐसी नहीं है, जो सिर्फ ५० सालकी उम्रमें २३०० पौण्ड (लगभग ३२००० रु०) सालाना तनखाहकी गारंटी करती हो। आई०सी०एस०वाले अपनी तनखाहसे एक पैसा कटायें बिना सिर्फ २१ सालकी नौकरीके बाद १००० पौण्ड (१३,५०० रु०) सालानाकी पेंशन पा सकते हैं। वे यदि चाहें तो सिर्फ १०॥ साल नौकरी करके, करीब ३५ वर्षकी उम्र ही में, ६,७५०) रु० सालानाकी पेंशनपर रिटायर हो सकते हैं, क्योंकि उन्हें यदि भारतका वातावरण पसन्द न आये, तो समयके पहले ही अनुपातिक पेंशन लेकर रिटायर होनेका अदभुत अधिकार प्राप्त है। इंग्लैण्डमें नौकरी करनेपर उन्हें अधिक-से-अधिक १४५० पौण्ड (लगभग २०,००० रु०) सालाना ही तनखाह मिलेगी और ६० वर्षकी उम्र तक नौकरी करनेपर अधिक-से-अधिक ८०० पौण्ड (लगभग १०,८०० रु०) सालाना पेंशन मिल सकेगी। आई०सी०एस०की ये तनखाहें साधारण नौकरीकी हैं। चुनी हुई नौकरियों (जैसे गवर्नर या हाईकोर्ट जज) की तनखाहें इनसे कहीं ज्यादा हैं, और नये सुधारोंके अनुसार ११ सूत्रोंमें से ८ सूत्रोंके गवर्नर आई०सी०एस० ही होंगे।”

ये मोटी-मोटी तनखाहें और पेनशनें बुनियाके सबसे शरीव मुल्कके निवासियोंके मत्थे हैं।

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन मदरासका सभापतित्व

सहयोगी 'प्रभाकर' ने हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनके आगामी अधिवेशनके लिए डाक्टर काशीप्रसादजी जायसवालके नामका प्रस्ताव किया है। हम उसका हृदयसे समर्थन करते हैं। श्रीयुत जायसवालजी भारतवर्षमें ही नहीं, भारतके बाहर भी अपनी ऐतिहासिक योग्यताके लिए प्रसिद्ध हैं, और उनका सम्मान करना मानो अपना ही गौरव बढ़ाना है। इसके

सिवा-मदरास-प्रान्तके लिए हमें ऐसे विद्वानकी आवश्यकता भी है, जो हिन्दीका सेवक होनेके साथ-साथ ही किसी विशेष क्षेत्रमें भी ऊँचा पोजीशन रखता हो। इस दृष्टिसे भी जायसवालजी इस पदके लिए सर्वथा उपयुक्त हैं। आश्चर्य तो इस बातका है कि अभी तक उन्होंने इसे क्यों सुशोभित नहीं किया। आशा है कि हमारे अन्य सहयोगी भी 'प्रभाकर' के उपर्युक्त प्रस्तावका समर्थन करेंगे।

अन्तर्राष्ट्रीय सौहार्द-संघ

अन्तर्राष्ट्रीय सौहार्द-संघ (International Fellowship of Reconciliation) के सेक्रेटरी श्री हेनरी रोज़रने पेरिससे हमारे पास अपनी संस्था द्वारा प्रकाशित 'Towards a Christian International' नामक एक पुस्तिका भेजी है। इस पुस्तिकाको पढ़कर यह ज्ञात हो सकता है कि संसारके भिन्न-भिन्न भागोंके निवासियोंमें सद्भाव उत्पन्न करनेके लिए क्या-क्या उद्योग खास तौरपर ईसाई कार्यकर्ताओं द्वारा किये जा रहे हैं। संसारके समझदार आदमी अब पारस्परिक विद्वेष, फौजी तैयारियों तथा युद्धोंसे तंग आ चुके हैं, और वे सभ्यताको उस भयंकर धक्के वचाना चाहते हैं, जो आगामी महाभारतसे, जो अवश्यम्भावी-सा प्रतीत होता है, लगेगा और जिससे समूहलना मानव-समाजके लिए अत्यन्त कठिन हो जायगा। ईसाई दन्तकथाके अनुसार सृष्टिके प्रारम्भमें एक भयंकर तूफान आया था और उस समय हज़रत नूहने अपनी नौका द्वारा बहुतोंको बचा लिया था।

अन्तर्राष्ट्रीय सौहार्द-संघका प्रयत्न भी ऐसा ही है। आदर्शवादी व्यक्ति सभी देशों तथा सभी जातियोंमें पाये जाते हैं; आवश्यकता इस बातकी है कि उनका सुदृढ़ संगठन किया जाय। सुप्रसिद्ध लेखक रोमां रोलाँके कथनानुसार बुनियाकी सबसे बड़ी बुराई इस बातमें नहीं है कि दुष्ट आदमी इतने प्रचल हो गये हैं, बल्कि इस बातमें है कि भले आदमी इतने कमज़ोर हैं। जिस प्रकार बटवृक्षके बीजमें महान वृक्ष छिपा रहता है, उसी प्रकार इस संस्थाके उद्देश्योंमें एक महान शक्ति अन्तर्हित है।

'विशाल भारत' के किसी अगले अंकमें हम इस संस्थाका विस्तृत परिचय देंगे। इस अवसरपर हम उसके सेक्रेटरीको :

ऐसी उपयोगी पुस्तिकाके प्रकाशनपर हार्दिक वधाई देते हैं। पुस्तिकाका मूल्य एक शिलिंग है। मिलनेका पता है—
11, Rue De Provence, Paris IX E.

स्वर्गीय पंडित खड्गजीत मिश्र

'विशाल भारत' के प्रतिष्ठित लेखक रायबहादुर पंडित खड्गजीत मिश्रके स्वर्गवासका समाचार पढ़कर दुःख हुआ। मिश्रजी साहित्य-प्रेमी जीव थे और अपने वकालतके व्यवसायसे समय बचाकर साहित्यकी कुछ-न-कुछ सेवा निरन्तर किया करते थे। क्या ही अच्छा हो, यदि उनके सुपुत्र श्री हेमचन्द्रजी मिश्र उनके सब लेखोंका एक संग्रह छपा दें।

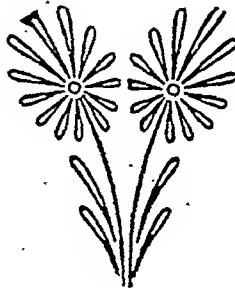
मिश्रजीके वृद्ध पिताजी तथा अन्य कुटुम्बियोंके प्रति हमारी हार्दिक सहानुभूति है।

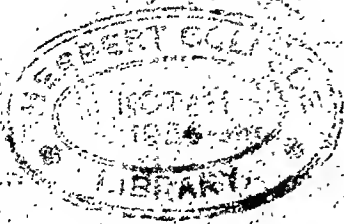
हथियारोंका व्यापार

तीन-चार वर्ष पहले यूरोप और अमेरिकाके हथियार बनानेवाले कारखानेके मालिकोंकी कार्यवाइयों और धूर्तताओंका बड़ा सनसनीखेज भण्डाफोड़ हुआ था, जिससे मालूम हुआ था कि हथियारोंके ये व्यापारी अपने लाभके लिए किस प्रकार दुनियाके देशोंको—अपने देशके राज्यों तकको—हथियार बेचते हैं। हथियारोंकी बहुतायत ही महायुद्धोंका सूत्रपात करती है। इस भंडाफोड़पर इंग्लैण्डमें भी काफ़ी हलचल मची थी, और मज़दूर-दलकी ओरसे यह आवाज़ उठाई गई थी कि इंग्लैण्डमें हथियारोंके व्यापारका राष्ट्रीयकरण कर दिया जाय, यानी केवल

सरकार ही हथियार बनानेके कारखाने रख सके; कोई पूँजीपति या कम्पनी अपने निजी स्वार्थके हेतु हथियार बनाकर न बेच सके। ब्रिटिश सरकारने इसपर शस्त्रास्त्र-व्यवसायकी जाँचके लिए एक शाही कमीशन नियुक्त किया था। गत मास इस कमीशनकी सिफारिशें प्रकाशित हो गई हैं। कमीशनकी राय नहीं है कि शस्त्रास्त्रका व्यापार सिर्फ सरकारके हाथमें ही रहे, क्योंकि उसकी सम्मतिमें शस्त्रास्त्र बनानेमें किसी एक व्यक्ति या संस्थाका एकाधिपत्य अवांछनीय है; लेकिन उसने यह सिफारिश की है कि इंग्लैण्डके हथियारोंके कारखानोंपर सरकारका नियन्त्रण रहे। इसके लिए कमीशनकी रायमें एक ब्रिटिश मन्त्रीके सभापतित्वमें एक शस्त्रास्त्र-नियन्त्रक-समिति होनी चाहिए। यह समिति शान्ति-कालमें हथियार बनानेके प्रश्नोंका निर्णय करेगी, उनकी कीमतें निश्चित करेगी, विदेशोंसे आये हुए आर्डरोंको मंजूर करके कारखानोंको सप्लाई करनेका हुक्म देगी और ज़हूरतपर हथियारोंका उत्पादन बढ़ानेकी योजनाओंपर विचार करेगी।

मन्त्रीकी देख-रेखमें इस प्रकारकी नियन्त्रक-समितिकी सिफारिश यह प्रकट करती है कि इस भयंकर रोज़गारकी प्राइवेट पूँजीपतियोंके हाथमें छोड़ देना खतरनाक है; लेकिन इस उपायसे हथियारोंके उत्पादनमें कोई कमी होगी, इसमें शक है। क्योंकि यह बात सभी जानते हैं कि भूतकालमें हथियारोंके रोज़गारी बड़े-बड़े राजनीतिज्ञों और मन्त्रियोंको हाथमें रखकर अपना उल्लू सीधा करते रहते थे। कौन कह सकता है कि भविष्यमें भी वे ऐसे उपाय न निकाल लेंगे, जिनसे यह नियन्त्रक-समिति उनके हाथकी कठपुतली बन जाय।





माता

‘ विशाल भारत ’]

श्री देवीप्रसाद रायचौधुरी

विशाल भारत

“सत्यम् शिवम् सुन्दरम्”

“नाथमात्मा बलहीनेन लभ्यः”

[८, अंक ६]

पौष १९६३ :: दिसम्बर १९६६

[पूर्ण-अंक १०८]

आज-कल

श्री आरसीप्रसाद सिंह

[१]

आज तो तुम हो, मधुर मधु-
यामिनी, मधु भी निराळा ;
कल न - जाने छीन लेगा
कौन मुँहसे हाथ प्याला !

आज तो आवाद मदिरालय

सुरा के प्रेमियों से ;

कव न-जाने चल किधर दे

मधु - प्रिया तज गन्ध-शाला !

आज तो सागर, न - जाने

कल सुलभ हो वूँद भी क्या !

इसलिए तो आज ही पी लो—

मिट्टा लो कंठ - ज्वाला ;

कल न - जाने मिल सकेगी

क्या सुराही और हाला !

[२]

आज तो मधुमास वन - वन

कोकिलाका विकल कलरव ;

मंजरी - परिमल रसालोंका

जगाता कामना नव !

हाथ, कल ही तो अनल बन

जायगा जल - जल धरातल ;

ग्रीष्मसे सूच्छित पड़ा

होगा, धरापर दग्ध पल्लव !

आज मलयजकी सुरभि, कल

पश्चिमानल रक्त - शोषक ;

इसलिए तो आज ही

कर लो प्रिये, उन्मत्त नर्तन ;

कल न - जाने कौन - सा

हो जाय वसुधार्मे विवर्तन !

[३]

आज तो सौन्दर्यमय लगता

हमें यह विश्व सारा ;

कल न - जाने रूप होगा

कौन इसका सर्व - हारा ?

प्रेम-धारा आज तो अनुकूल

कूलों से प्रवाहित

कल न - जाने, हाथ, होगा

कौन - सा इसका किनारा ?

आज तो आनन्द - उत्सव

वेदना आ जायगी कल ;

इसलिए तो आज गा लो

मुक्त-मंगल-गीत क्षण - भर ;

कल न - जाने रह सकेगा

क्या तुम्हारा यह मधुर स्वर !

[४]

आजके संसारका कल
कौन - सा इतिहास होगा ?
आज मेरा घर, किसीका
कल इसीमें वास होगा !

आज तो सालस पड़ी हो
तन्वि, मेरे सामने तुम ;
कल न-जाने कौन जीवन-धन
तुम्हारे पास होगा ?

व्यर्थ - सा आकाश भी यदि
पासमें तुमको न पाऊँ ;
इसलिए तो आज ही
दे दो हृदयका प्यार सारा ;
कल न - जाने कौन होगा
हाय, फिर मेरा सहारा ?

[५]

कल वही मिट्टी बनेगा
आज जो अनमोल कंचन ;
आज का नूतन जगत
हो जायगा कल ही पुरातन ;

यह सनातन का नियम
अभ्यस्त - सा संसार इसका !
हाय, फिर भी क्यों सभीके
लोचनों में अश्रु के कण !

एक कल्याणमय निरोदन
व्याप्त सब के मनोबन में ;
इसलिए तो आज ही हँस लो
तुम्हें जितना विहँसना ;
कल न तुमको भी नियतिके
पंक्रमें पड़ जाय फँसना !

[६]

आजका सम्राट भी कल
लोढ़ता रजमें अकेला ;
कल वही वीरान - सा,
लगता जहाँपर आज मेला !

व्योमका मध्याह्न - रवि भी
अस्त हो जाता जलधिमें ;
हा, उपा जिसको जिलाती
मार देती सांध्य - वेला !

नाशका यह क्रम अचल
शाश्वत प्रलयकी ध्वंस-छाया ;
इसलिए तो आज ही सो
जायँगे हम एक होकर ;
अलि, न - जाने उठ सकेंगे
या नहीं कल-सुबह सोकर ?

[७]

तितलियों के राज्य में भी
पुतलियाँ अपनी न खोलूँ ;
गुदगुदी लग जाय, हँसकर
और फिर भी मैं न बोलूँ !

यह नहीं मुमकिन कि तुम दो
और मैं इनकार कर दूँ ;
स्वर्गकी परियाँ बुलावें
और मैं सिहरूँ - न - डोलूँ !

आज ही तो हाय, सब कुछ ;
कल नहीं कुछ भी नहीं कल !
इसलिए तो आज ही हो
जाय जो-कुछ प्राण, होना ;
कल न - जाने कब हमें
ढँक ले जगतका कौन कोना ?

[८]

जा न सकता मैं सहज ही
छोड़कर यह विश्व सुन्दर ;
प्यास तो ऐसी कि पीलूँ
यदि मिले सम्पूर्ण सागर !

और श्लीपर तुम्हारा
नाम लेकर मैं पुकारूँ ;
कर उठूँ चीत्कार—दे दो
एक प्याला और भरकर !

भूँदकर आँखें चलूँ
बाज़ारमें सम्भव नहीं यह ;
इसलिए तो आज ही लुट जाय
कलका कौन लेखा ?
आज तो आगे पड़ा कलको
किसी ने कहाँ देखा ?

[९]

किन्नरोंका देश—क्षणभर
क्यों न इनमें घूम लूँ मैं ;
आज यौवनकी सुरा पी
क्यों न पागल इस लूँ मैं ?

इन गुलाबोंके अधर तो
प्यारकी ही चीज़ सचमुच ;
आज तो यह कामना—
प्रिय, कंटकोंको चूस लूँ मैं !

पर न कल्पित स्वर्गपर
कलके भुला दूँ आजका सुख ;
इसलिए तो आज ही
उर कुंजमें मकरन्द भर लो !
फिक्र क्या उस पारकी—
इस पार तो आनन्द कर लो !

[१०]

आज्ञा

कौन कहता, वह रही
जगके दगोंसे बारि-धारा ?
आज तो पागल बना
हूँस-हूँस अरे संसार सारा !
बेलियाँ हूँसतीं, हूँसीं कलियाँ,
विहँसते चाँद - तारे ;

हास्य - कलकल से विकल
भर दी किसीने विश्व-कारा !
आज तो उन्मुक्त, कर ले
कल न - जाने कौन वन्दी !

इसलिए तो आज ही
खुल जाय बन्धन-द्वार मेरा,
हूँस सकूँ यदि मैं न, क्या तब
रदनका अधिकार मेरा ?

[११]

आज वन आया भुवन में
आप ही अपना विधाता ;
और, अपनी भाग्य-लिपिको
मैं स्वयं लिखता - मिटाता !

मर चुका संसार कितनी बार,
जीवन - ज्योति में ही ;

और, मैं मर-भर तुम्हारे
पास जीता, गीत गाता !
रो लिया कल ही बहुत
लो आज तो हूँसता सवेरा ;

इसलिए तो आज ही आ
जायँ सुखकी मिलन-घड़ियाँ ;
कसमसतीं हाय, हाथोंमें
प्रणयकी फूल - कड़ियाँ !

वनारसीदास चतुर्वेदी

वह देखिये, इसी प्रकार घरसे भागा हुआ एक दूसरा लड़का भी उसके पास आ-जुटा। इन दोनोंको मिलने दीजिए।

१९०७ के उस लड़के और १९३५ के इस त्रिपिटकाचार्य महापण्डित राहुल सांकृत्यायनमें कितना जबरदस्त फर्क है ! पर दोनों एक ही हैं, और सबसे बड़ी खुशी की बात यह है कि राहुलजीमें लड़कपन (हमारा अभिप्राय बालसुलभ चांचल्यसे है) अब भी काफी मात्रामें विद्यमान है । 'दुनियाँकी सैर'के लिए वे अब भी वैसे ही दीवाने हैं । इंग्लैण्ड, फ्रांस, जर्मनी, रूस, ईजिप्ट, बर्मा, चीन, जापान, कोरिया, मंचूरिया, साइबीरिया, ईरान और तीन बार तिब्बत की यात्रा कर चुकनेपर भी उनकी सैर करनेकी इच्छाकी तृप्ति नहीं हुई । 'नौजवानी फिर कहाँ ?' का सवाल उनके लिए उठता ही नहीं, क्योंकि ४४ वर्षके राहुलजी २०-२२ वर्षके नौजवानसे कहीं अधिक सजीव और परिश्रमी हैं ।

स्वर्गीय प्रेमचन्दजी अथवा मित्रवर सुदर्शनजीकी तरह यदि इन पंक्तियोंके लेखकको फिल्म-डाइरेक्टर बननेका सौभाग्य या दुर्भाग्य इस जीवनमें प्राप्त हुआ, तो वह 'राहुल' नामक फिल्म ज़रूर बनावेगा। दरअसल राहुलजीके विचित्र जीवनमें फिल्मके लिए बड़ा अच्छा मौसाला है, और इस विषयमें वे ग्रेटा गाबोके नाना और डगलस फ़ेयर बैंकके चाचा साबित होंगे।

“देवी मुझपर प्रसन्न न हुई, यद्यपि मैंने नवरात्रिमें विधिवत पुरश्चरण किया। अवश्य ही इसमें मेरा ही कोई दोष है। मेरे ही पाप हैं, जिनके कारण मुझे देवीके दर्शन न हो सके। अब मैं धतूरा खाकर प्राण दे रहा हूँ। जिसे यह चिट्ठी मिले, वह मेरी मृत्युका असली कारण जान ले, इसलिए इतना लिख दिया है।” — इसी तत्पर्यकी चिट्ठी रखकर वह देखिये, कोई युवक मरनेकी तैयारी कर रहा है ! पर खैरियत यह है कि उसे इस बातका बिलकुल पता नहीं कि धतूरेका विष इतना प्रबल नहीं होता कि खानेवाला एकाएकी दूसरी दुनियाकी सैर करने लगे। खून कै हुई, आँखोंकी ज्योति मन्द हो गई, बदनके पुर्जे-पुर्जे हिल गये ; पर जान बच गई।

आप कहेंगे कि २० वर्षके इस युवकने क्या मूर्खता की थी। हम भी कहते हैं कि सचमुच भयंकर नासमझीका काम था ; पर उस दृढ़ विश्वासपर तो ध्यान कीजिए, जिससे प्रेरित होकर राहुलजी अपने प्राण देनेपर उतारू हो गये थे। यह दृढ़ विश्वास ही राहुलजीके जीवनकी कुंजी है, यही उनका सर्वोत्तम गुण है और इसीके बल-बूतेपर वे अपनी जानको खतरेमें डालनेसे नहीं हिचकते। दृढ़ इच्छाशक्ति और प्रत्युपनमत्तित्व (वक्तकी सूझ) राहुलजीके खास गुण हैं। राहुलजीने तिब्बत जाकर बौद्धधर्मका अध्ययन करनेकी ठानी। सरकारसे तिब्बत जानेकी अनुमति (राहदारी) नहीं मिली। राहुलजीने निश्चय किया कि वे बिना अनुमतिके ही जायेंगे। ग्यांची होकर तिब्बतका सुगम मार्ग है ; किन्तु उधरसे ब्रिटिश सरकार

बिना इजाजतके किसीको जाने नहीं देती, लिहाज़ा राहुलजीने नेपालके दुर्गम मार्गसे जाना निश्चित किया। नेपाल होकर सिर्फ नेपाली ही तिब्बत जा सकते हैं, हिन्दोस्तानी नहीं ; फिर शिवरात्रिके १५ दिनोंको छोड़कर कोई हिन्दोस्तानी नेपाल-सरकारकी आज्ञाके बिना नेपालकी सीमामें भी नहीं रह सकता। राहुलजी शिवरात्रिके बाद १५-२० दिन तो বেশ बदलकर नेपालमें छिपे रहे और बादमें एक लद्दाखीका বেশ धरकर तिब्बतमें पहुँचे ! यह है उनकी दृढ़ इच्छाशक्ति और ग़ज़बकी सूझका नमूना ! उन्हें देखकर प्राचीन कालके बौद्ध भिक्षुओंकी याद आ जाती है, जिन्होंने सैकड़ों मुसीबतोंका सामना करके देश-विदेशोंकी यात्राएँ की थीं।

विद्यार्थी-जीवन

राहुलजीने किसी विश्वविद्यालयमें शिक्षा नहीं पाई ; पर साथ ही यह कहना अधिक ठीक होगा कि उन्होंने दरअसल 'विश्व' के विद्यालयमें आँख खोलकर घूमते हुए खूब शिक्षा प्राप्त की है। उर्दू-मिडिल उन्होंने ज़रूर पास किया था और गणितमें तमीज़ भी पाई थी ; पर उर्दूकी वजहसे उनके नम्बर कम हो गये और उन्हें छात्रवृत्ति नहीं मिल सकी। नतीजा यह हुआ कि वे आगे नहीं पढ़ सके। यह अच्छा ही हुआ, नहीं तो राहुलजीके बजाय हमें एक पीली शक के टुटखूँ-टूँ प्रेज़ेण्ट मिल जाते। उर्दू-मिडिल पास करनेके बाद उन्होंने लघुकौमुदी, सिद्धान्तकौमुदी पढ़ीं, फिर डेढ़ वर्ष तक आगरेके मुसाफिर-विद्यालयमें अरबी पढ़ते रहे। शूफाके पास संस्कृत पढ़ी, फिर काशीमें तीन वर्ष तक संस्कृतका अध्ययन करते रहे। अंगरेज़ी पढ़नेकी धुन सवार हुई, तो १९१३में काशीके डी०ए० वी० स्कूलमें ७ वें दर्जेमें अर्ती हो गये ; पर तीन महीनेसे अधिक न पढ़ सके।

इसके बाद सीलोनमें भी बहुत दिनों तक पाली भाषाका अध्ययन किया। हाँ, एक सरकारी विश्व-विद्यालयमें राहुलजीने ढाई वर्ष तक शिक्षा पाई थी

और उसका भूल जाना राहुलजी तथा सरकार दोनोंके प्रति कृतघ्नता होगी। १९२१ तथा १९२४-२६ में आप ढाई वर्ष तक जेलमें रहे। राहुलजी उन साधु-संन्यासियोंमें से नहीं हैं, जिनके कानों तक देशकी स्वाधीनताके संग्रामकी ध्वनि ही नहीं पहुँचती और जो अपने देशकी मुक्तिके प्रयत्नमें कुछ भी सहायता न देते हुए व्यक्तिगत मोक्षके लिए लालायित रहते हैं। 'बोधिचर्यावतार' के लेखककने आजसे १३०० वर्ष पहले लिखा था—

“मुच्य मानेषु सत्त्वेषु ये ते प्रामेय सागराः ।

तैरेव ननु पर्याप्तं मोक्षेणार सिकेन किम् ।”

अर्थात्—‘दूसरोंके मुक्त होनेसे मेरे मनमें आनन्दके जो सागर उठते हैं, वे मेरे लिए पर्याप्त हैं। मैं इस व्यक्तिगत मोक्षको, जिसमें कुछ रस नहीं है, लेकर क्या करूँगा ?’

सम्भवतः राहुलजीके जीवनका मोटो भी यही है।

राहुलजीकी जीवन-नटीमें हमें दो धाराएँ स्पष्ट दीख पड़ती हैं। उनके राजनैतिक विचार उग्र हैं और उनकी स्वाभाविक इच्छा उन्हें राष्ट्रीय स्वाधीनताके आन्दोलनमें भाग लेनेके लिए प्रेरित करती है। इसके साथ ही वे यह भी जानते हैं कि प्राचीन बौद्ध-ग्रन्थोंके पुनरुद्धारसे वे भारतका गौरव संसारकी दृष्टिमें बढ़ा सकते हैं। हर्षकी बात है कि उनके हृदय और मस्तिष्कका यह अन्तर्द्वन्द्व अब लगभग शान्त हो चला है, और उन्होंने करीब-करीब यह निश्चय कर लिया है कि वे अपना समय मुख्यतया बौद्ध-ग्रन्थोंके सम्पादनमें ही लगावेंगे। ‘वाईसर्वी सदी’ और ‘सम्यवाद ही क्यों ?’ नामक पुस्तकोंका लेखक यदि राजनीतिमें भाग लेता, तो किस दलमें सम्मिलित होता, यह बतलानेकी आवश्यकता नहीं। पर बुद्ध भगवान तथा मार्क्स इन दोनों देवताओंकी भक्ति एक साथ करना गंगा और मदारकी पूजा करनेके समान अत्यन्त कठिन है, और यदि अपने भक्तकी इस खींचातानीमें बुद्ध भगवान विजयी हों, तो हमें कोई आश्चर्य न होगा। यद्यपि

अन्य सब धर्मोंकी अपेक्षा बौद्धधर्म समाजवाद या Communism के बहुत निकट पहुँचता है, तथापि मार्क्सके हिंसात्मक वर्गयुद्ध (Class-war) और भगवान गौतम बुद्धके इस उपदेशमें कि द्वेषपर प्रेमसे विजय प्राप्त करो, सामंजस्य किसी प्रकार नहीं हो सकता।

अब भी राहुलजीके हृदयमें स्वाधीनता-संग्राममें भाग लेनेकी इच्छा बड़े प्रबल वेगसे उठती रहती है ; पर वे अपने मनको किसी-न-किसी तरह समझा लेते हैं। वे कहते हैं कि प्राचीन ग्रन्थोंके अनुसन्धानार्थ हमें समय-समयपर यात्रा करनी पड़ेगी और अपने राजनैतिक बन्धुओंके प्रति यह घोर अन्याय होगा कि उन्हें तीव्र संग्राममें ही छोड़कर हम इधर-उधर यात्रा करते फिरें। इस प्रकार राहुलजी मन मसोसकर रह जाते हैं। जब उनका हृदय राजनैतिक आन्दोलनकी ओर आकर्षित होता है, तभी उनका मस्तिष्क कहता है—“यदि दिङ्नागका ‘प्रमाणसमुच्चय’ ग्रन्थ मिल जाय, तो यह जीवन सफल हो जाय।” पिछली बार जब तीसरी दफा तिब्बत जानेके पहले राहुलजी टाइफाइड ज्वरसे अत्यन्त पीड़ित होकर पटना हास्पिटलमें पड़े थे और कई दिन तक उन्हें होश नहीं रहा था, तब वे सन्निपातमें धर्मकीर्तिके ‘प्रमाणवार्तिक’का नाम बार-बार ले रहे थे ! “जाको जापै सत्य सनेहू। सो तेहि मिलत न कछु सन्देहू।” बाबा तुलसीदासका यह कथन सोलह आने सत्य है, और अपनी पिछली यात्रामें राहुलजीको धर्मकीर्तिका अप्राप्य ग्रन्थ ‘प्रमाणवार्तिक’ मिल ही गया। काश कि आज सिलवाँ लेवी जीवित होते ! तृतीय तिब्बत-यात्राका जिक्र करते हुए राहुलजीने कहा—“यदि आज सिलवाँ लेवी जीवित होते, तो वे हर्षके मारे उखल पड़ते।”

आचार्य सिलवाँ लेवी राहुलजीके कार्यके महत्त्वको समझते थे। सन् १९३२ में उन्होंने अपने एक पत्रमें राहुलजीको लिखा था—

“First of all I have to congratulate you on your beautiful easy and fluent Sanskrit. I enjoyed reading it again and again. I am

afraid that for a very long time, over one century at least, since the days of Pandit Amritanand in Nepal, no Buddhist scholar has been able to write so beautifully the language which was used in such a masterly way by Ashwaghosh, Nagarjun and Vasubandhu. Your Abhidharma Kosha affords another evidence of your ability in Sanskrit; your introduction testifies to the vast extent of your reading and the many languages you can deal with. Even after Bunin's work your book is particularly useful on account of your indexes and most of all of your many tables which look so practical."

—'सबसे पहले मुझे आपको आपकी सरल, प्रवाहमयी और सुन्दर संस्कृतके लिए बधाई देना है। मैंने उसे बारम्बार पढ़कर आनन्द लिया। मुझे सन्देह है कि बहुत दिनोंसे—कम-से-कम एक शताब्दीसे, नेपालके पंडित अमृतानन्दके जमानेसे—कोई भी बौद्ध विद्वान ऐसी सुन्दर भाषा नहीं लिख सका था—वह भाषा, जिसे अश्वघोष, नागार्जुन और वसुबन्धुने ऐसे अधिकारपूर्ण ढंगसे व्यवहार किया था। आपका अभिधर्म कोश आपकी संस्कृतकी योग्यताका एक और प्रमाण देता है। आपकी भूमिका आपका विशाल अध्ययन और आपकी बहुभाषा-विज्ञता सूचित करती है। वूनिनकी कृतिके मौजूद होते हुए भी आपकी पुस्तक विशेषकर इसलिए उपयोगी है कि उसमें आपने कई सूचियाँ और अनेक नकशे दिये हैं, जो बहुत व्यावहारिक जान पड़ते हैं।'

यदि आज सिलवाँ लेवी जीवित होते, तो निस्सन्देह राहुलजीकी तृतीय तिब्बत-यात्राके महत्त्वपूर्ण कार्यको देखकर उछल पड़ते।

रूसकी प्राच्य-परिषद् (Oriental Institute) के प्रधान डाक्टर चर्बात्स्की (Dr. Stecherbatsky) ने जबसे यह सुना है कि राहुलजीने तिब्बतके किसी दुर्गम प्राचीन मठसे धर्मकीर्तिका 'प्रमाण-वार्तिक' नामक महान ग्रन्थ खोज निकाला है, तबसे वे भारतवर्षकी यात्रा करनेके लिए अत्यन्त उत्सुक हो गये हैं, और उन्होंने डा० काशीप्रसाद जायसवालजीको लिखा है—

"राहुलजीने धर्मकीर्तिके ग्रन्थोंका पता लगाकर उन्हें प्राप्त करनेका जो आश्चर्यजनक कार्य किया है, उसका समाचार पढ़कर हम लोगोंको अत्यन्त हर्ष हुआ। धर्मकीर्ति भारतवर्षके कैण्ट (Kant) थे। अब तक हमें उनके ग्रन्थोंके अनुवाद चीनी तथा तिब्बतीमें पढ़ने पड़ते थे; पर अब तो मूलग्रन्थ ही मिल गया। मैं और मेरे सहायक डा० वस्ट्रीकोव (Dr. Vostrikov) भारतवर्ष पहुँचकर उन ग्रन्थोंको देखना चाहते हैं। कृपया विशेषज्ञोंकी एक छोटी-सी कमेटी बना लीजिए, जिसमें इन ग्रन्थोंके प्रकाशनपर विचार किया जा सके।"

यह बात ध्यान देने-योग्य है कि डा० चर्बात्स्की आज संसारमें भारतशास्त्र (Indology) के सर्वश्रेष्ठ विद्वान माने जाते हैं। राहुलजीको इस बातका बड़ा दुःख है कि उन्हें रूसमें भ्रमण करनेकी आज्ञा नहीं मिली। रूसी सरकारने यह नियम बना रखा है कि वह धर्माचार्यों—पादरियों इत्यादि—को रूस आने देना तो दूर रहा, रूसमें से गुजरने तक नहीं देती। राहुलजी बौद्ध-भिक्षु हैं, और उन्हें भी उसी कोटिका समझकर रूसी सरकारने उन्हें रूसमें उतरनेकी आज्ञा नहीं दी थी! जब डा० चर्बात्स्कीको पता लगा कि राहुलजी मास्को होते हुए निकल गये, तो उन्हें बड़ा दुःख हुआ, और उन्होंने राहुलजीको पत्र लिखा—

"I was frightfully shocked when I got your letter from Moscow informing that you could not stop at that place and have been obliged to proceed immediately to Baku. I had put so much hopes on our interview with you and on all the precious scientific information which I could get from you about your tours in Tibet and Japan and the enormous results of finding the most precious originals of those Sanskrit works, which we are obliged to study through the medium of translations! Especially magnificent is your discovery of the chapter of Praman-Vartika with Pragyakar Gupta's commentary. I am expecting the issue of this most precious work with the greatest impatience. Once more please accept the expression of my greatest sorrow for not having met you. I hope that some Kusal Karma of mine might be rewarded in future by the possibility of meeting you."

—‘मास्कोसे आपका पत्र मिला। यह पढ़कर कि आप मास्कोमें नहीं ठहर सके और फौरन ही वाक् जानेके लिए मजबूर हुए, मुझे बड़ा धक्का लगा। मैंने आपके साथ भेंट होनेकी कितनी आशा लगा रखी थी। आपसे भेंट होनेपर मुझे आपकी तिब्बत और जापानकी यात्राओंकी कितनी ही मूल्यवान और वैज्ञानिक बातें ज्ञात होतीं। जो ग्रन्थ हमें अनुवादके द्वारा पढ़ने पड़ते हैं, उनके अत्यन्त मूल्यवान मूल संस्कृत ग्रन्थोंकी खोजके विशाल परिणाम ज्ञात होते! खास तौरपर आपका ‘प्रमाण-वार्तिक’ के प्रत्यक्ष अध्याय और उसपर प्रज्ञाकर गुप्तके भाष्यका खोज निकालना बड़ा महत्त्वपूर्ण है। इस अत्यन्त बहुमूल्य ग्रन्थके प्रकाशित होनेकी मैं बड़ी अधीरतासे प्रतीक्षा कर रहा हूँ। आपसे भेंट न हो सकनेपर मैं एक बार फिर खेद प्रकट करता हूँ। मैं आशा करता हूँ कि मेरे किसी ‘कुशल कर्म’ (पुण्य कर्म) की बदौलत भविष्यमें कभी आपके दर्शन हों।’

अपनी पिछली तिब्बत-यात्रामें राहुलजीने कई संस्कृत-ग्रन्थोंका, जो लुप्त समझे जाते थे, उद्धार किया है। धर्मकीर्ति, प्रज्ञाकर गुप्त, ज्ञानश्री, नागार्जुन, आसंग, वसुबन्धु, रत्नाकर शान्ति, रत्नकीर्ति, भव्य और-गुणप्रभ नामक विद्वानोंकी कीर्ति आज इस अकेले भिक्षुके कठोर तपके कारण अमर होने जा रही है। फिर भला क्यों न डाक्टर चर्वास्की उसके दर्शनको अपने ‘कुशल कर्म’ या पुण्योंका परिणाम समझें?

अपनी इस यात्रामें राहुलजीको कितना परिश्रम करना पड़ा, इसका अनुमान पाठक इसीसे कर सकते हैं कि पचास हजार श्लोक तो उन्होंने अपने हाथसे नकल किये हैं और डेढ़ लाख श्लोकोंके फोटोग्राफ लिये हैं। इन ग्रन्थोंके ठीक तौरपर सम्पादन करने और प्रकाशित करनेमें ही कई वर्ष लग जायेंगे। इस बार राहुलजी सरहपाके दोहोंके भी फोटो लेते आये हैं। ये हिन्दी दोहे सन् ८५० के लिखे हुए हैं। राहुलजीके अनुसन्धानने हिन्दी-कविताको २०० वर्ष और भी अधिक प्राचीन सिद्ध कर दिया है। बारहवीं शताब्दीके

बुद्धगयाके मन्दिरके माडलोंके फोटोकी गणना इस यात्राकी सबसे मूल्यवान वस्तुओंमें की जानी चाहिए।

डाक्टर चर्वास्कीने राहुलजीका तिब्बत-यात्राके विषयमें लिखे हुए ‘Fruitful result of Reverend Rahula’s expedition to Tibet’ (भिक्षु राहुलके तिब्बती अभियानके सफल परिणाम) इन शब्दोंका प्रयोग किया था। विलायतके विद्वान इस प्रकारकी दुर्गम यात्राओंमें अनेकों आदमियोंको साथ ले जाते हैं, सहस्रों-लक्षों रुपये व्यय करते हैं; पर राहुलजीने जब यह यात्रा की, उनके पास कुल जमा एक सौ रुपय़ी थीं! यह है एक भिक्षुका अभियान (Expedition)!

भिक्षु राहुलजीके सत्साहसको देखकर हमारे मनमें एक मौलिक विचार आया है, वह यह कि यदि वे सौ-पचास हिन्दी लेखकों, कवियों और प्रचारकोंका ढल बनाकर तिब्बतकी चतुर्थ यात्रा करें, तो साहित्यका बड़ा भारी हित हो। इसमें सन्देह नहीं कि उनमें कितनों ही की बीचमें ही महायात्रा हो जायगी; पर जो वहाँसे जीवित लौटेंगे, वे हिन्दी-साहित्यको अत्यन्त उपयोगी ग्रन्थ दे सकेंगे। इस महाप्रयाणके शुभ परिणामोंकी कल्पना ही अत्यन्त आनन्दप्रद है। सारेका सारा नायिका-भेद हिमालयके इस पार ही वर्षमें गल जायगा और नकली छायावाद द्रौपदीकी तरह सबसे पहले भूलशायी हो जायगा। हाँ, असली छायावाद (रहस्यवाद) वहाँ युधिष्ठिरकी तरह सबुशल पहुँच सकेगा।

एमर्सनने एक जगह लिखा है—

“I doubt not the faults and vices of our literature and philosophy, their too great fineness, effeminacy and melancholy are attributable to the enervated and sickly habits of the literary class.”

—‘मुझे इस बातमें कोई शक नहीं है कि हमारे साहित्य और दर्शनके दोष और दुर्गुण—उनकी अत्यधिक टीमटाम, उनका जनानापन और उनकी उदासी—हमारे साहित्यिकोंकी कमजोर और मरीजाना आदतोंकी बदौलत है।’

साहित्य-सेवियोंकी इन 'मरीजाना आदतों'का इलाज इस तिब्बत-महायात्रासे बढ़कर और क्या हो सकता है ? आशा है कि राहुलजीकी आत्माको (मुश्किल तो यह है कि न बौद्ध लोग और न साम्यवादी ही आत्मामें विश्वास रखते हैं !) इस प्रस्तावमें हिंसाकी गन्ध नहीं आवेगी ।

अन्तमें नम्रतापूर्वक एक बात हमें और कहनी है । राहुलजीके प्रशंसक होनेपर भी हम उनके अन्ध-भक्त नहीं । उनमें तथा उनकी कार्य-पद्धतिमें हमें कुछ त्रुटियाँ दीख पड़ती हैं, और यह सर्वथा स्वाभाविक है । उनकी कार्य-प्रणालीको देखकर यह प्रतीत होता है कि वे बहुत जल्दीमें हैं । 'इतने वर्षोंमें समस्त त्रिपिटक ग्रन्थोंका हिन्दी-अनुवाद हो ही जाना चाहिए', इस प्रकारके पंचवर्षीय कार्यक्रम (Five year plan) सोवियट रूसके आर्थिक तथा राजनैतिक क्षेत्रोंमें भले ही कारगर हों, साहित्य-क्षेत्रमें उनके अनुसार चलनेका अर्थ है Quantity (परिमाण) के लिए Quality (उत्कृष्टता) का बलिदान । उनके द्वारा अनुवादित ग्रन्थोंकी भूमिकाओंमें शीघ्रताके प्रति उनका मोह देखकर आश्चर्य होता है । हमें उनकी सेवामें यह निवेदन करनेकी आवश्यकता प्रतीत होती है कि कृपया साहित्य-क्षेत्रमें Speed Record की भयंकर प्रथाको न चलाइये । हम मानते हैं कि किसी प्राचीन कविने बहुत ठीक कहा था—

“कालि करै सो आज कर, आज करै सो अब ;

पलमें परलै होइगी, बहुरि करैगो कब ।”

पर यह दोहा अन्य सांसारिक आदमियोंके लिए और दुनयवी कमौके लिए कहा गया था, भिक्षुओं तथा साहित्य-क्षेत्रके लिए नहीं ।

भिक्षु राहुलजीके मांसाहारपर अत्यधिक जोर देनेको भी हम अनावश्यक और हानिकारक समझते हैं । निस्सन्देह इसमें हमें वे अपनी भूतपूर्व मूर्ति (बाबा रामोदार स्वामी वैष्णव) पर प्रहार करते हुए दीख पड़ते हैं ; पर उन्हें याद रखना चाहिए कि समयकी गति मांस-भक्षणके सर्वथा विरुद्ध है, और उनका इस विषयका प्रचार नये मुसलमानके अत्यधिक प्याज खानेसे अधिक महत्व नहीं रखता ।

स्त्री-जातिकी अन्तर्निहित शक्तियोंके विषयमें भी भिक्षु राहुलजीके विचार हमें समयकी गतिसे कुछ पिछड़े हुए-से नज़र आये, और उन्हें सुनकर हमारा यह दृढ़ विश्वास हो गया कि बिना विवाह किये मनुष्यमें कोमल भावनाएँ पूर्ण रूपसे जाग्रत हो ही नहीं सकती । उपस्थित जनसमुदायकी, जिनमें ९९ फी-सदी हिन्दू होते हैं, कोमल भावनाओंपर कभी-कभी राहुलजी इस कठोरतासे आघात कर जाते हैं कि आश्चर्य और खेद हुए बिना नहीं रहता ; पर हम किसी मनुष्यसे पूर्णताकी आशा करें ही क्यों ?

राहुलजीमें अनेक गुण हैं, अद्भुत परिश्रम-शक्ति है, अदम्य पौरुष है, गम्भीर विद्वत्ता है और सबसे बढ़कर बात यह है कि वे 'ग्राफ़िल' नहीं और अपनी नौजवानीमें दुनियाकी खूब सैर करते हुए हमारे साहित्य और समाजका मुख उज्ज्वल कर रहे हैं । कुल मिलाकर हिन्दी-जगतमें वे एक वेजोड़ आदमी हैं और हम सब उनपर अभिमान कर सकते हैं । उन्हें देखकर प्राचीन बौद्ध-भिक्षुओंका स्मरण हो आता है । कुमारजीव, आचार्य शाक्य श्रीमद् और स्मृतिज्ञानके इस वंशजकी सेवामें हमारा श्रद्धापूर्ण प्रणाम ।



पहेली

(एकांकी नाटक)

श्री ललिताचरण गोस्वामी

प्रथम प्रवेश

समय—सूर्यास्तसे कुछ पूर्व

स्थल—बम्बईमें नैपियन सी रोडपर बाबू कैलाशचन्द्रके बँगलेका दीवानखाना ।

(बाबू साहब कानपुरके रहनेवाले हैं और बम्बई कारपोरेशनके एक उच्च पदाधिकारी हैं ; दीवानखानेको देखनेसे पूर्व और पश्चिमका एक विलक्षण सम्मिश्रण प्रतीत होता है । अर्ध-टु डेट सोफोंके ऊपर मृगचर्म बहार दे रहे हैं, पेरिसके बने उम्दा यालांचेके ऊपर असली चन्दनकी खुबसूरत खड़ाऊँकी जोड़ी रखी है, दीवारपर यूरोपके प्रख्यात नट-नटियोंके चित्रोंके बीचमें श्रीराधाकृष्णका बंगाली शैलीका शृंगारात्मक चित्र दमक रहा है और रुसके प्रसिद्ध बंगलेशेविक नेताश्रोंके बीचमें श्री चैतन्य महाप्रभुकी भावनात्मक तस्वीर लगी है । संक्षेपमें, फर्नीचर देखनेसे कलाश बाबू उन मनुष्योंमें से प्रतीत होते हैं, जो जटायुकी तरह किसी असम्भव और अप्राकृत आदर्शकी प्राक्तिकें प्रयत्नमें अपनी शक्तियोंको झुलसा चुके हैं और अब उस उच्च उड़ानके प्रसाद-रूप ही सांसारिक सुखोंको भोग रहे हैं ।)

(नवीनचन्द्रका प्रवेश)

(नवीनचन्द्र लम्बे कद और पुष्ट शरीरके गौर वर्ण सुन्दर नवयुवक हैं ; उनके सुँढ़की काट यूरोपियनों-जैसी है ; किन्तु उनकी बड़ी-बड़ी काली आँखें उसपर पूर्वकी टाप लगाती हैं । वे यूरोपियन ड्रेस पहने हैं — अवस्था २२ वर्षके लगभग है और अँगोमें नवयौवनकी आँधी भरी है । दीवानखानेमें आकर वे समुद्रकी ओरकी खिड़की खोल देते हैं उनका गौर मुख अस्तोन्मुख सूर्यकी रक्तवर्ण किरणोंमें दमक उठता है ; जेबसे रुमाल निकालकर बड़ी उत्सुकतापूर्वक उसे समुद्रकी ओर हिलाते हैं ; ऐसा मालूम होता है कि वे किसी नौका या जहाज़को संकेत कर रहे हैं ; किन्तु वहाँ उदासीन जल-तरंगोंके अतिरिक्त और कुछ नहीं है । वे झुँकलाकर सोफेपर बैठने जाते हैं, इतनेमें उनकी दृष्टि मृगचर्मपर पड़ती है ; वे उसे उठाकर जोरसे एक कोनेमें फेंक देते हैं और सोफेपर बैठ जाते हैं । धीरे-धीरे उनकी मुखाकृति शान्त हो जाती है ; उनकी दृष्टि डूबते हुए सूर्यकी ओर पड़ती है, और वे बड़े चावसे फिर

खिड़कीके पास खड़े हो जाते हैं । उनके मुखपर किसी विचित्र रहस्यकी छाया पड़ जाती है ।)

नवीन—पूर्व और पश्चिम—प्रातःकाल पूर्वमें ही किस उज्ज्वल सौन्दर्यके साथ बाल-सूर्यका आविर्भाव होता है ! अन्धकारके काले पगड़ेपर जैसे मैजिक लैन्टर्नकी रोशनी पड़ गई हो ! जहाँ कुछ नहीं था, वहाँ एक दुनिया ! एक अविरल गति—अविरल प्रयास—दम लेनेका भी अवसर नहीं प्राप्त होता । अगेवाले चिल्लते हैं—‘चले आओ ;’ पछेवाले कहते हैं—‘बढ़े चलो ;’ डगमगाता देखकर लोग डाटते हैं—‘हट जाओ ।’ अन्तमें पश्चिम.....सूर्यका एक बाग फिर वही उज्ज्वल सौन्दर्य ! परन्तु अब उसके मुखपर युद्धके लिए सज्ज योद्धाका यौवन-रक्त नहीं, बल्कि मम रोन्मुख नायिकाकी रक्तिमा है—शान्ति—अन्धकार—विजलाका प्रकाश—पृथिवी और आकाशका एकाकार—जड़ और चेत की भिन्नताका विनाश—प्रतप्ता—स्वर्गका सागभूत साम्रज्य ...

(सरलाका प्रवेश)

(सरला नवीचन्द्रकी सुशिक्षिता नवांड़ा स्त्री है ; अवस्था लगभग १८ वर्ष, कद ऊँचा और रंग अति उज्ज्वल है ; उसकी आँखें भूरी हैं, माथेपर बँदी है और माँगमें सिन्दूर भरा है ; वह बहुत संकोचके साथ धीरे-धीरे आकर नवीनचन्द्रके पास खड़ी हो जाती है ।)

नवीन—कौन ? सरला ?

सरला—(नम्रतापूर्वक) जी हाँ ।

(नवीनचन्द्र उसकी ओर देखते हैं, वह और भी सहम जाती है ।)

नवीन—(पास जाकर सहसा) सरला ! तुम मुझे प्यार करती हो ?

सरला—(धीरेसे) जी हाँ ।

नवीन—(दयाभरी दृष्टिसे देखकर) तुम इतने दिनसे अकेली थीं ?

सरला—(उसी स्वरमें) जी हाँ ।

नवीन—(अकुलाकर) आह ! 'जी हाँ', 'जी हाँ', 'जी हाँ' ; सरला ! तुम 'जी नहीं' नहीं पढ़ीं ; तुम्हारी इस 'जी हाँ' में तो विश्वकी कोई भावना नहीं, हृदयकी कोई वेदना नहीं.....

सरला—(कुछ न समझकर नवीनकी ओर देखती रहती है ।)

नवीन—(श्रम प्रतीत करते हुए) सरला ! मैं तुम्हारा कौन हूँ ?

सरला—(भोलेपनसे) पतिदेव !

नवीन—(अकुलाकर) और तुम मेरी कौन हो ?

सरला—(उसी स्वरमें) दासी ।

नवीन—(निराश होकर) तुम नहीं सीख सकतीं ! तुम्हारा रोग असाध्य है ! स्त्रियोंके इस नवीन युगमें तुम अब भी उसी बाबा आदमके जमानेका स्वप्न देख रही हो ! (मुँह बनाकर) देव और दासी तुम्हारे अन्दर कोई रोमान्स (Romance) नहीं..... मैं चाहता हूँ कि तुम मेरे साथ आकाशमें विहार करो, (लहरोंकी ओर इशारा करके) इन लहरोंपर होकर वहाँ—वहाँ दूर पश्चिममें चला.....बोलो, चल सकोगी ?

सरला—(कुछ-कुछ झटते हुए) जी हाँ ।

नवीन—परन्तु मुझे देव बनाकर नहीं और न स्वयं दासी बनकर ।

सरला—(कुछ आश्चर्यके साथ) तब.....

नवीन—(सगर्व) सहचरी बनकर—देखो, जिस तरह वे दो पक्षी एक-दूसरेसे पंख मिलाकर—एक ही स्वरमें बोलते हुए—एक ही दिशामें उड़े चले जाते हैं, उसी तरह—

सरला—(बाहरकी ओर देखकर हँस देती है ।)

नवीन—(कुछ झेंपकर विषय बदलते हुए) सरला, तुम मेरी मनोनीत पत्नी हो ?

सरला—(कुछ-कुछ समझकर) हाँ, आपने मुझे देखकर ही विवाह किया था ।

नवीन—मुझे देखकर तुमने विवाहके लिए निषेध क्यों नहीं कर दिया ?

सरला—(आश्चर्यसे) मैंने ? मैं तो आपको पहलेसे ही....

नवीन—(अकुलाकर) हाँ-हाँ, वह तो है ही ; परन्तु फिर मैं तुमको मनाता—तुम मान जातीं—मैं आत्म-समर्पण करनेको तैयार होता—तुम फिर मना कर देतीं—मैं फिर मनाता—इसी प्रकार कुछ समय तो प्रतीक्षा कराना थी ।

सरला—(कुछ न समझकर) मुझे मालूम नहीं था ।

नवीन—ओह ! मालूम नहीं था कि तमीज़ न थी ! सरला ! मैंने तुम्हारी मूर्तिको अपने मन-मन्दिरमें बहुत थोड़े समय पूजा था कि वर-प्राप्ति हो गई ! मैं ऐसे सहजमें प्रसन्न होनेवाले देवताका उपासक नहीं रह सकता ! सरल प्राप्तिने मेरे प्रेमको हिला दिया है !

सरला—(संकोच छोड़कर) परन्तु मैं तो इसी कारण तुम्हें अधिक प्यार करती हूँ, तुम्हारे प्रेमको मैं देवताके आशीर्वादरूप—अखंड पुण्योके फलरूप समझती हूँ—सहज मिलनका तो विश्वपर आत्माका—प्रेमकी—विजय मानती हूँ ।

नवीन—(प्रशंसापूर्ण दृष्टिसे देखकर) सरला ! तुम अपने विचारोंको खूब प्रकट करती हो—परन्तु तुम्हारे विचार एक शताब्दी पूर्वके हैं । सरला ! तुम इस बातको कब समझ सकोगी कि जमाना बदल गया है और हम लोगोंके प्रेमके विचार भी बदल गये हैं ।

सरला—(आश्चर्य) क्या प्रेम भी बदला करता है ? याद है, एक बार तुम्हींने तो कहा था कि वह अखंड, अचल और सार्वकालिक नियमोंसे शासित है ।

नवीन—(निरुत्तर होकर) यह तो है ही—परन्तु अब जमाना प्रतिद्वन्द्विताका है ; मैंने अपनी यूरोप-यात्रामें देखा है कि वाणिज्य, विज्ञान, राजनीति

सब-के-सब प्रतिद्वन्द्वितासे ही उन्नतिशील हैं, और यही भाव प्रेममें भी प्रवेश कर रहा है। घरकी रमणीको विश्व-भरकी रमणियोंसे प्रतिद्वन्द्विता करके बाज़ी मार ले जाना है—परन्तु तुम इसमें कितनी दुर्बल हो !

सरला—(हँसकर) यह तो कोई नई बात नहीं है, पुराने सत्यको नये रूपमें रख दिया है—भारतीय रमणी विश्वसे तो क्या, तीनों लोक और स्वयं ईश्वरसे भी प्रतिद्वन्द्विता करनेको तैयार है ! शर्त यही है कि पति उसका देव हो और वह उसकी दासी। सहचरी तो वह उसकी आत्माकी है, शरीरकी नहीं—हाँ, समय पड़नेपर वह उसका शरीरछाण हो सकती है !

नवीन—(अकुलाकर) परन्तु मैं तुम्हारे इस आत्माके सहचरत्वको लेकर क्या करूँ ? यह तो मुझ तक ही सीमित रहेगा न ? मैं तो चाहता हूँ कि मेरी उपास्यदेवी विश्वपूज्य हो ; जब सारा संसार एकमुखसे उसकी प्रशंसा करे, जब लोग उसके प्रभावसे चौंधिया जाय, तब मैं सम्झूँ कि यह है मेरी पत्नी !

सरला—(ठीठ्लासे) परन्तु यह तो आर्य-संस्कारोंके विरुद्ध है।

नवीन—(उत्तेजित होकर) आर्य-संस्कार ? उसे तुम क्या समझ सकती हो ? यही एक ऐसी वस्तु है, जिसे हम आर्य नहीं समझते ! पहली आर्य रमणियोंके चरित्रको ही देखो, स्वयंवरकी प्रथाको ही देखो, क्या थी वह ? और कुछ नहीं, केवल पुरुषपर प्रकृतिकी विजय—ईश्वरपर शक्तिकी सत्ता और उसीमें ईश्वरका ईश्वरत्व। स्त्री-स्वतन्त्रतामें ही पुरुषकी व्यापकता है, पश्चिमने इसीको जान लिया है, और वहाँकी स्त्रियाँ यहाँकी तरह भेंड़ नहीं होतीं—वे सदैव स्वतन्त्र हैं, और इसीसे वहाँकी सभ्यता, संस्कृति और मानवता व्यापक है।

सरला—(गम्भीर होकर) परन्तु पुरुषके प्रति प्रकृतिकी उद्दंडता और बगावतका नाम ही हमारे शास्त्रोंमें प्रलय है। (हँसकर) पश्चिम प्रलयके द्वारपर है।

नवीन—(चिढ़कर) प्रलयके द्वारपर पश्चिम नहीं है, पूर्व है—पश्चिमकी सर्वतोमुखी सफलता ही उसके सिद्धान्तोंकी कसौटी है, हमारी गुलामी ही हमारी असत्यताका प्रमाण है।

सरला—(हँसकर) गुलाम होकर भी अपनी संस्कृतिको न बेचना ही हमारे मनुष्यत्वकी जंत है।

नवीन—(अकुलाकर) तुम्हारी विजय घामें घुसकर भर जानेसे नहीं हो सकती ; केवल अपने पतिपर ही अपनी आत्माके सहचरत्वकी डालनेमें तुम्हारी श्रेष्ठता नहीं ; जो स्त्री विश्वपूज्य नहीं, वह पति-पूज्य नहीं हो सकती। (विवादको समाप्त करते हुए) पहले जन-समाजको अपनी प्रतिभासे रंजित करो, फिर पतिके हृदयको करना !

सरला—(थोड़ी देर तक नवीनचन्द्रकी ओर विलक्षण दृष्टिसे देखकर) हूँ....

नवीन—(सकौतुक) इस 'हूँ' का क्या अर्थ है ?

सरला—(चौंकर) ऐं, मुझे मालूम नहीं !

नवीन—(प्रसन्न होकर) सरला ! तुम भी एक पहेली हो—और—और इसीमें तुम्हारे उद्धारकी आशा है !

सरला—(फिर उसी दृष्टिसे नवीनको देखती है, दोनोंकी आँखें मिलती हैं, नवीनचन्द्र सहम जाते हैं ; धीरेसे) हूँ....

(दरवानका प्रवेश)

दरवान—मिस लिली।

(नवीनचन्द्र कुछ उत्तर न देकर सरलाकी ओर देखते हैं ।)

सरला—(मानो किसी स्वप्नसे जागकर) ऐं, अच्छा, आने दो।

(दरवानका प्रस्थान)

(सरला उठने लगती है ।)

नवीन—(पल्ला पकड़कर हँसते हुए) इसीपर विश्वके साथ प्रतिद्वन्द्विता करोगी ?

सरला—(जल्दीसे) परन्तु यह तो विश्व नहीं, हमारा विश्व तो वह (अन्धकी ओर इशारा करके) है !

(पल्ला खींचकर चली जाती है ।)

नवीन—(सन्तोषके साथ) पहेली है !

(मिस लिलीका प्रवेश)

(मिस लिली एक अंगरेज़ महिला हैं ; अवस्था लगभग बीस वर्ष, क्रम ममोला और शरीर गठा हुआ है । वे बम्बईके एक पुराने अंगरेज़ व्यापारीकी अविवाहिता पुत्री हैं । उनका जन्म भी बम्बईमें ही हुआ है और हिन्दी बहुत साफ़ बोलती हैं । उन्होंने अपना जीवन हिन्दू-समाजके लिए उत्सर्ग करनेका प्रण किया है और कुछ दिन पूर्व हिन्दू-धर्म भी स्वीकार कर लिया है । पोशाक वे अंगरेज़ी ही पहनती हैं । उनका विचार है कि आदिम आर्य रमणियोंकी यही पोशाक थी । इंग्लैण्डसे उनका इतना ही सम्बन्ध है कि प्रतिवर्ष बसन्तऋतु वे वहीं व्यतीत करती हैं । पिछले वर्ष उन्होंने नवीन बाबूके साथ ही यात्रा की थी ।)

मिस लिली—(हाथ मिलाते हुए) नमस्ते ! कहिये, आज किस द्विविधामें हैं ?

नवीन—ओह, कुछ नहीं ; (सम्बलकर) आनन्द तो है न ?

लिली—धन्यवाद; कल रातको ड्रामा देखने नहीं आये ; प्लाट, ऐक्टिंग और सेटिंग—प्रत्येक दृष्टिसे नाटक बढ़ा सफल रहा ।

नवीन—(विशेष ध्यान न देते हुए) प्लाट क्या था ?

लिली—वही हमारे सामाजिक जीवनका चित्र । एक हिन्दू देवीजीने अपने देवताजीको विलायत नहीं जाने दिया ; वे उन्हें किसीसे मिलने भी न देती थीं ; बेचारेका जीवन भार हो गया, और उसने आत्म-हत्या कर ली ।

नवीन—ओह, बड़ा दर्दनाक ; परन्तु मूर्खने आत्म-हत्या क्यों कर ली ?

लिली—इतना आत्म-बल नहीं था कि देवीजीके फन्देसे निकल जायँ ! (मुसकरा देती हैं ।)

नवीन—(हँसकर) और भी रही ! भारतीय स्त्रियोंका फन्दा ही क्या ? केवल एक तमाशा, शराबीकी

मस्तिष्कसे आविष्कृत स्वयं फँस जानेका एक जाल, (कुछ स्मरण आ जाता है) आत्माके साथ सहचरत्व, प्रकृति और पुरुषकी कहानी, ईश्वरके साथ प्रतिद्वन्द्विता.....(सहसा) मिस लिली—कमलिनी देवी ! तुम स्थूलताको मानती हो या भावनाको ?

लिली—(गम्भीर होकर) मैं दोनोंको नहीं मानती । मैं मानती हूँ भावनामय स्थूलताको ।

नवीन—(एकदम खड़े होकर लिलीका हाथ पकड़ लेते हैं ।) बस देवी, तुम मेरा हृदय पकड़ लेती हो ! भारतीय स्त्रियोंमें इसी भावनामय स्थूलताकी कमी है । जब वे स्थूलताका पल्ला पकड़ेंगी, तो यहाँ तक बढ़ेंगी कि मनुष्यको अपनी आत्माके दिव्यत्वपर से ही विश्वास उठ जाय, और जब वे भावनापर कृपा करने लगेंगी, तो यहाँ तक कि मानव-कल्पनाका दम धुटने लग जाय ! कमलिनी, पश्चिमका क्या आदर्श है ?

लिली—यही भावनामय स्थूलता । वह देखो पश्चिममें डूबा हुआ सूर्य, प्रकाश और अन्धकारका विलास, जाग्रत और स्वप्नकी पुण्याभिसन्धि, भावना और स्थूलताकी क्रीड़ा.....(कुछ देर ठहरकर किसी महान रहस्यका उद्घाटन करते हुए) बाबू नवीनचन्द्र ! समझते हैं ? यही प्राचीन भारतीय आदर्श है, जिसे वह भूल गया है और पश्चिमने उससे ही सीखकर उसे याद रखा है । भारतको अपनी प्राचीन संस्कृतिका भान करानेके लिए ही मैंने अपने धर्म, राष्ट्र, देश और सभ्यताको लात मार दी है ।

नवीन—(प्रशंसापूर्वक) देवी, तुम्हाग यह उद्देश्य पुण्यस्कर है । मैं तन-मन-धनसे तुम्हारी सहायता करूँगा ।

लिली—(प्रसन्न होकर) आप केवल अपनी लेखनी और प्रतिभासे ही मुझे सहायता दीजिए—भारत महान है, गुरु है—परन्तु वह सो रहा है ; पश्चिम उसका शिष्य है, और अब वही उसको जाग्रत करेगा, वही उसको अपने प्राचीन गौरवका स्मरण

करायेगा और यही उसकी गुरुदक्षिणा है। मैंने इस कार्यमें भाई रमणलालसे सहायता माँगा है। नवीन—(साश्चर्य) कौन ? रमणलाल ? (कुछ देर ठहरकर) वह तो अच्छा आदमी नहीं है ; समाजमें भी उसकी कोई प्रतिष्ठा नहीं।

लिली—(तपाकसे) और वह इसीलिए न कि वे अपने विचारोंमें समाजसे बहुत आगे हैं—वे समाजकी हाँमें हाँ नहीं मिलाते।

नवीन—(दबी ज़वानसे) उनका चरित्र भी अच्छा नहीं है, वे....

लिली—वे स्त्री-स्वतन्त्रताके पक्षपाती हैं—पत्नीपर पतिका ही सर्वाधिकार नहीं मानते।

नवीन—(साहस करके) परन्तु वे तो उनकी पवित्रता पर हस्तक्षेप करते हैं !

लिली—(हँसकर) यह भी उनकी दुर्बलता नहीं, समाजकी ही है। वह अपने अन्दर स्त्रीकी पवित्रताके ऐसे वेतुके विचार ही क्यों रखता है ? यहाँका स्त्री-चरित्र इतना संकुचित क्यों है ? रमणभाई उदाराशय व्यक्ति हैं। वे स्त्री-जातिके शुभचिन्तक और प्रगतिवादी हैं।

नवीन—(निरुत्तर होकर) उन्होंने क्या सहायता देनेका वचन दिया है ?

लिली—वे आप द्वारा लिखित नाटक 'Woman—a Riddle' (स्त्री—एक पहेली) का अभिनय करेंगे।

नवीन—(प्रसन्न होकर) ठीक है, बहुत प्रचार होगा। उनका 'देशोद्धारक नाटक समाज' भी बहुत अच्छा है। सभी नट-नटी कलाविज्ञ हैं।

लिली—इस ताम्रसे आप निश्चिन्त रहें, मैं सब ठीक कर लूँगी। (विषयान्तर करते हुए) नवीन बाबू ! हम लोगोंको यूरोपसे लौटे काफ़ी समय हो गया ; किन्तु आपकी पत्नीजीके दर्शन नहीं हुए। (दयापूर्वक) भाई, हमारे भारतवर्षमें दो प्रकारकी स्त्रियाँ देखनेमें आती हैं—एक तो गुड़ियाएँ-जैसी, जिनके साथ केवल खेल खेला जा सकता है, और

दूसरी देवियाँ, जिनकी केवल पूजा की जा सकती है। (हँसकर) वे किसमें हैं ? गुड़िया-टाइपमें या देवी-टाइपमें ?

नवीन—(हँसकर) वे दोनोंका मिश्रचर हैं। (गम्भीर होकर) स्त्री है काफ़ी बुद्धिमान और सुसंस्कृत। केवल भूठी प्राचीनताका भूत सवार है। पश्चिमी सभ्यताको प्रलयके द्वारपर समझती है ! वेचारीको यह नहीं मालूम कि पश्चिमकी सहायताके बिना भारतकी मुक्ति असम्भव है।

लिली—(गम्भीरतापूर्वक) मगर ऐसी आत्माएँ बहुत शीघ्र ही ठीक गड़पर लाई जा सकती हैं। वे अवसर-विशेषकी ही तलाशमें रहती हैं। अवसर मिला कि धड़ाका।

नवीन—(साँस लेकर) वस, यही एक आशा है।

लिली—(हँसकर उठते हुए) कोशिश करते रहिये, आपके यहाँ साधनाका बड़ा महत्त्व है। आपके द्वारा समाजका उद्धार हो, यही भगवानसे प्रार्थना है।

नवीन—(उत्साहसे) थैंक यू, थैंक यू ! (भावावेशमें लिलीका हाथ धूम लेते हैं, फिर सहम जाते हैं। लिली उत्साह और सम्मतिकी हँसी हँसती है।)

(मिस लिली का प्रस्थान)

नवीन—(प्रकृतिस्थ होकर धीरे-धीरे) मैं—रमणभाई—सरला—कमलिनी (साँस लेकर) समाज.....बड़ी भिन्न प्रकृतिके तत्त्व एक पात्रमें एकत्रित हो गये हैं। देखें, क्या रसायन तैयार होती है ! (खिड़कीके पास जाकर) ऐं, पश्चिममें अन्धकार और पूर्वमें चन्द्रका उदय.....

(पटाक्षेप)

द्वितीय प्रवेश

समय—तृतीय पहर तीन बजे।

स्थान—गिरगाँव बम्बईमें देशोद्धारक नाटक-समाजका आफिस। आफिस छोटा-सा है ; परन्तु रुचिपूर्वक सजाया गया है। प्रवेश-द्वारके सामने दीवारपर एक सुन्दर फ्रेममें क्रुदे-आदम आईना लगा हुआ है। दीवारोंपर जो चित्र लगे हैं,

उनमें अधिकांश सुन्दर नटियों या यूरोपकी सौन्दर्य-रानियों (Beauty Queens) के हैं। नाटक-समाजके मैनेजिंग-डाइरेक्टर रमणभाई वी० ए० बड़े कार्यकुशल व्यक्ति हैं। उन्होंने देश-विदेशमें पर्यटन भी खूब किया है। हिन्दू-समाजके कल्याणको लक्ष्यमें रखकर उन्होंने इस नाटक समाजकी स्थापना की है। वे गेहुँए रंगके क्लोटे-से आदमी हैं; परन्तु शरीर खूब गठा हुआ है। आँखोंपर चश्मा और सरपर धुंधराले बाल हैं; अवस्था चालीस वर्षसे अधिक नहीं प्रतीत होती। उनके रूपमें सजावटका भाग महत्वका है। इस समय वे किसी नाटककी पाण्डु-लिपि वाँचनेमें व्यस्त हैं। पढ़ते-पढ़ते वे कभी बहुत उत्तेजित हो जाते हैं और कभी कठुणासे द्रवित हो जाते हैं। बाहर मोटरका शब्द—नवीनचन्द्रका प्रवेश; परन्तु रमणभाई नाटकके पढ़नेमें मस्त हैं। नवीनचन्द्र चुपचाप दस-पन्द्रह सेकेण्ड तक खड़े रहते हैं।

नवीन—(आगे बढ़ते हुए) हलो मि० रमणभाई, क्षमा कीजिए, मैंने आपके पढ़नेमें विघ्न डाला।

रमण—(आँखें फाड़कर देखते हुए) ओह शर्माजी ! (प्रकृतित्थ होकर) आइये, मैं आपकी ही कृति बाँच रहा था— इसमें तो आपने कमाल कर दिया है, भारतीय रमणियोंका कैसा हृदयग्राही चित्र खींचा है और अन्तमें उनके सामने कैसा दिव्य आदर्श उपस्थित किया है !

नवीन—(लज्जापूर्वक) ऐसा तो कुछ भी नहीं। यह नाटक तो मैंने बहुत शीघ्रतामें लिखा है, एक अंगरेज़ महिलाकी दिखलाई हुई ज्योतिकी इसमें फलकमात्र है। आप सरीखे कला-मर्मज्ञको यह पसन्द आ गया, यही आश्चर्य है !

रमण—वाह शर्माजी, खूब कहा ! आप-से लोगोंकी कृति जिसे पसन्द न आये, वह मर्मज्ञ ही क्या ? कमलाके चरित्र-चित्रणमें तो बस 'पूछवानी कैंई वातज न थी' !

नवीन—अब आप इसे स्टेज कब कीजिएगा ?

रमण—बहुत जल्दी—एक सप्ताहके बाद ; और इस सजधज तथा तैयारीके साथ कि सारा नगर चक्रमें आ जाय !

नवीन—(प्रशंसा करते हुए) इस विषयमें तो मुझे सन्देह नहीं है। आप यदि इजाज़त दें, तो मुझे वर्तमान भारतीय भावनाकी प्रतिनिधि सुशीलाकी तृतीय अंकके द्वितीय प्रवेशकी सोलोलुकी (स्वगन) में ये शब्द और जोड़ने हैं। (कागज़ रमणभाईको देते हैं)

रमण—(बड़े चावसे वाँचते हुए) 'भारतीय स्त्रियोंका क्षेत्र बहिरंग नहीं, अन्तरंग है—हम लोग कुल विश्वका मुकाबला अपने कमरेकी भीतरी चटखनी लगाकर कर सकती हैं—पतिके साथ हमारा देहका सहचरत्व नहीं, आत्माका है—हम दासी होकर भी उनकी देवी हैं।'

नवीन—(दूसरा कागज़ देकर) और यह उसकी सहेली कमलाका उत्तर।

रमण—(उसी भोंकमें) 'भारतीय स्त्रियोंका क्षेत्र न केवल बहिरंग है और न अन्तरंग, उनका क्षेत्र विश्व-भर है। स्त्रीका जन्म संसारमें शान्ति, सौन्दर्य और सरसताकी सृष्टि करनेको हुआ है। अपनी इस शक्तिको अपने पति तक ही सीमित रखना, घोर पक्षपात है—कूपमंजूकता है—अपने जन्मदाताके प्रति अन्याय है। पति ?—पति तो हमारी विशाल साधनाका आधारमात्र है, हमारे कठिन योगका आसन्मात्र है। पति-को अपना देवता समझना प्रकृतिका उपहास करना है। अपनेको उसकी दासा समझना जगतकी संचालक शक्तिका अपमान करना है।' वाह, वाह ! (ताली बजाता है) हवे शूँ बाकी रह्य़ूँ ?

नवीन—(प्रसन्न होकर) अच्छा, तो अब मैं आपका अधिक समय न लूँगा। नमस्ते।

(प्रस्थान)

(रमणभाई फिर बड़े चावसे पढ़ने लगते हैं।)

(-सरलाका प्रवेश—वह आज पारसी ड्रेसमें है; पैरोंमें ऊँची ऐंडीके जूते हैं और हाथमें चमड़ेका छोटा-सा वेग। वह प्रसन्नमुख रहनेकी चेष्टा कर रही है; परन्तु हृदयकी वेदना

उसकी लज्जाशील आँखोंपर अपनी छाया डाल ही देती है। रमणभाई पढ़नेमें व्यस्त हैं। सरला लौटना चाहती है कि रमणभाई पढ़ते-पढ़ते मुसकग देते हैं। वह फिर खड़ी हो जाती है। रमणभाई फिर गम्भीरतासे पढ़ने लगते हैं। वह फिर लौटना चाहती है। रमणभाई जोरसे आह भरते हैं सरला काँप उठती है और उसके हाथका वेग गिर पड़ता है।)

रमण—(चौंकर) कौन ? (गौरसे देखकर) कौन, मिसेज़ बैंगम.....

सरला—(वेग उठाकर सम्बलते हुए) नहीं, मैं हूँ मिसेज़ नवीनचन्द्र शर्मा !

रमण—(साश्चर्य उठकर बड़े आदरके साथ) ओह, आइये, आइये पधारिये ! मेरा तो खयाल था कि...कि....

सरला—(हँसकर) हम लोग परदेमें रहते हैं ; (रमणभाई स्वीकार करते हैं) परन्तु अब ज़माना परदेमें रहनेका नहीं है। शर्माजीने (शरमा जाती है—सम्बलकर) अभी हालमें ही एक पुस्तक—नाटक—लिखी है।

रमण—(प्रसन्नतापूर्वक) हाँ, यह वही नाटक है। हम इसे एक सप्ताहमें स्टेज करेंगे।

सरला—इसकी नायिका कौन है ?

रमण—कमला देवी। बड़ा अप-टू-डेट चरित्र है।

सरला—नाटकका नाम क्या है ?

रमण—‘स्त्री—एक पहेली’ (Woman—a Riddle)।

सरला—(सारी शक्तियोंको एकत्रित करके) क्या मैं नायिकाका पार्ट खेल सकती हूँ ?

रमण—(साश्चर्य चरमा ठीक करते हुए) आप....पार्ट.... क्यों ?

सरला—(गम्भीर होकर) डाइरेक्टर साहब, इसमें आश्चर्य करनेकी कोई बात नहीं। आप मुझे पार्ट दीजिए, आपका स्टेजिंग बिगड़ेगा नहीं। मैंने....

रमण—(प्रसन्नतापूर्वक) वहन, आपका रूप, आपकी अवस्था, आपकी भावुकता विलकुल नाटककी स्पिरिटके अनुकूल है।

सरला—(लज्जित होकर) अच्छा, तो आप इस बातकी खबर मि० शर्माको न दें। विज्ञापनमें केवल

सरला देवी ही छपवा दें। आज ही मेरे पास पार्ट भेज दें। नमस्ते !

(प्रस्थान)

रमण—(उत्तेजित होकर टहलते हुए) यह सौन्दर्य, यह यौवन, यह कलाविज्ञता—सफलता निर्दिष्ट है ; परन्तु—परन्तु—‘वात कहीं’—इसके साथ नायक कौन होगा ? (चाबसे) मैं, मि० शर्मा.... उँह....देख लेगा।

(पटाक्षेप)

तृतीय प्रवेश

समय—रात्रिके सवा नौ बजे।

स्थान—देशोद्धारक नाटक समाजका थियेटर हॉल। हॉल खूब भर रहा है। लोग अब भी बराबर आ रहे हैं। मिस लिली और नवीनचन्द्र स्पेराल क्लासमें बैठे हैं। कुछ लोग उनकी तरफ़ देख-देखकर काना-फूसी कर रहे हैं। नवीनचन्द्र लिलीके साथ बातचीत करनेमें व्यस्त हैं। कभी-कभी गून्थ दृष्टिसे चारों तरफ़ देख लेते हैं। नाटककी पहली घंटी बजती है। लिली—मि० शर्मा, सरला देवी हैं बड़ी बुद्धिभती और दूरदर्शी। उनसे बातचीत करके मुझे बड़ी शान्ति प्राप्त होती है। (गौरवसे) मैंने कहा था न कि ऐसे लोग उचित शिक्षा और अवसरकी प्रतीक्षामें रहते हैं। अब तो वह सबसे स्वतन्त्रतापूर्वक मिलती हैं।

नवीन—(प्रशंसा करते हुए) वास्तवमें बड़ा भारी परिवर्तन हो गया है। जो सरला कमरेकी खिड़की खोलकर बाहर देखनेमें भी शरमाती थी, वह अब रोज़ शामको अकेली ही टहलने जाती है। (सगर्व) अब मुझे भी इस बातका अनुभव हो गया है कि मैं समाज-सुधारक हूँ !

लिली—(नवीनके कन्धेपर हाथ रखकर) इसमें क्या सन्देह है।

पारसी सज्जन—(पीछेसे) हल्लो मि० शर्मा ! इस बार तो तुमने राज़ब कर दिया। Orthodox Section (कट्टर धार्मिक पक्ष) तो चक्करमें पड़ गया है.... ठुम....(मिस लिलीकी ओर देखकर चौंका है। फिर

नवीनचन्द्रकी ओर आँखोंसे इशारा करता है। नवीन गम्भीर हो जाते हैं; वह भी सम्मल जाता है।) आ, बहिन कौण ?

नवीन—(गम्भीर होकर) आप हैं मिस लिली ; लेकिन अब हैं कमलिनी देवी । आप अंगरेज महिला हैं । हिन्दुस्तानकी आर्य-संस्कृतिसे खुश होकर आपने हिन्दू-धर्म स्वीकार किया है ।

पारसी सज्जन—(न समझकर) हिन्दू - धर्म क्या किया है ?

लिली—(गम्भीरतासे) I have accepted Hinduism. पारसी—आह, माफ़ करना. मिस, मैं हिन्दुई अच्छी तरह नहीं समझता ।

नवीन—(परिचय कराते हुए) आप यहाँके प्रसिद्ध सेठ बैरामजी मानिकजं हैं ।

लिली—(हाथ मिलाते हुए) आपसे मिलकर बड़ी प्रसन्नता हुई ।

नवीन—(लिलीकी ओर संकेत करके) मैंने यह नाटक आपके inspiration (प्रेरणा) से ही लिखा है ।

बैरामजी—(रसपूर्ण नेत्रोंसे लिलीकी ओर देखकर) Oh, she is inspiration incarnate. (ये तो स्वयं मूर्तिमता प्रणा हैं ।)

लिली—(मैफ़र बैरामजीकी ओर कनखियोंसे देखती हुई) थैंक्स, थैंक्स !

(तीसरी घंटी बजती है, सीन खुलता है ।)

(कमलाकी भूमिकामें सरलाका प्रवेश)

(जनता उसके सौन्दर्यको देखकर स्तब्ध हो जाती है ; सरला एक बार दृष्टि घुमाकर चारों ओर देखती है ; सहसा उसकी दृष्टि नवीनकी दृष्टिसे टकरा जाती है ; वह सिहर उठती है ; उसके गालोंपर लाली दौड़ जाती है ; उसका चेहरा और भी सुन्दर हो उठता है ; जनता जोरसे ताली बजाती है ; सरला सम्मल जाती है ; उसके चेहरेपर दङ्गना आ जाती है और वह मुमक़रा देती है ; लोग फिर ताली बजाते हैं ।)

(नवीनचन्द्र आँखें फाड़कर देख रहे हैं)

नवीन—(भगई हुई आवाज़से) न—र—ला !

लिली—बघाई है, मि० शर्मा, बघाई !

कमला—(सहज मधुर स्वरसे) वृद्ध, दुर्बल, जीर्ण हिन्दू-समाज ! जब तेरे अन्दर कोई रस नहीं, कोई भावना नहीं, कोई कवित्व नहीं, तब तू नवीन हृदयोंको क्यों जन्म देता है ?

जनता :—

भटके यात्रीको, जा पुगेतत्व या कलाका प्रमो होनेके कारण यहाँ पहुँच जाता है, इन भवनोंमें घुमते वक्त क़फी सतर्क रहना पड़ता है । लेकिन किसी ज़मानेमें इनमें रहनेवालोंका वैभव देखकर यूरोपवालोंकी आँखें चौंधिया जाती थीं । इनके अधिवासी—यानी विजय-नगरके धनिक लोग—सुन्दर-से-सुन्दर मकानोंमें रहते थे ; उनकी पोशाकें बहुत क़मती होती थीं ; वे बहुमूल्य जवाहरात पहनते थे ; उनके घर क़मीती क़ालानोंसे सजाये जाते थे ; वे चाँदीकी चौकीपर बैठकर बाहर निकलते थे ; सुनहरे चारजामेमे सजे हुए बीस घोड़े उनके आगे और तीन सौ घुड़सवार उनके पीछे चलते नवीन—(मैफ़र) कोई बात नहीं, धन्यवाद !

जनता—हामरो, शुणो, शुणो, शान्ति, ख़ामोश, हश अप, व्यूटी स्पीक्स ।

कमला—तेरा बन्धन, (कोधसे) आग लगे ऐसे बन्धनमें, जो हृदयकी दैवी शक्तियोंके स्वतन्त्र विकासमें बाधा डालता है । (स्नेहपूर्ण आँखोंसे देखकर) शशिकान्त (दीर्घनिश्वास लेती है) प्रेममें भी नियत समयकी प्रतीक्षा करते हैं !

(शशिकान्तकी भूमिकामें रमणभाईका प्रवेश)

नवीन—(घबराकर) रमणभाई !

शशिकान्त—(प्रेमपूर्ण दृष्टिसे देखकर) क्या कलकी प्रार्थना व्यर्थ गई ? आज फिर प्रारम्भ करूँ ? प्रिये....

कमला—(हँसकर) प्रेमका जीवन नित्य प्रारम्भ होता है और कभी अन्त नहीं होता । जब किसी ख़ास दिन प्रारम्भ करोगे, तो ध्यान रहे (कटाक्षसे) कि किसी ख़ास दिन अन्त भी हो जायगा ।

शशिकान्त—(निकट जाकर) प्रियतमे ! (आलिंगन करता है ।)

नवीन—(अधीर होकर) कमलिनी देवी, मेरी तबीयत ठीक नहीं है ; मुझे एकदम चक्कर आने लगे हैं । मैं बाहर जाना चाहता हूँ । (सीटपर अपना टोप रखकर प्रस्थान ; थोड़ी देर बाद मोटरके स्टार्ट होनेका शब्द ; कमलिनी देवी मुसकरा देती हैं ।)

काप उठता है और उसके हाथका नवीन चक्कर खाता है ।

रमण—(चौंकर) कौन ? (गौरसे देखकर) कौन, मिसेज़ बैराम.....

सरला—(बेग उठाकर सम्बलते हुए) नहीं, मैं हूँ मिसेज़ नवीनचन्द्र शर्मा !

रमण—(साश्चर्य उठकर बड़े आदरके साथ) ओह, आइये, आइये, पधारिये ! मेरा तो खयाल था कि...कि...

सरला—(हँसकर) हम लोग परदेमें रहते हैं ; (रमणभाई स्वीकार करते हैं) परन्तु अब जमाना परदेमें रहनेका नहीं है । शर्माजीने (सरमा जाती है—सम्बलकर)

दरवान—(भयसे) श्री सरला देवीजी ।

नवीन—(हँसकर) उनके साथ और कौन है ?

दरवान—मिस लिली ।

नवीन—हूँ...अच्छा, आने दो ।

(सरला और लिलीका प्रवेश ; सरला प्रसन्न है और बहुत सुन्दर प्रतीत होती है ; लिली उसकी प्रशंसा करती है ।)

लिली—(नवीनचन्द्रका हाथ पकड़कर) Oh, many congratulations (अनेक बधाई) ! सरला देवीने तो रात्रिका राजन कर दिया । सारा थियेटर इनकी प्रशंसासे गुँज रहा था । अब तो मेरा आपसे यही अनुरोध है कि आप इनकी इस प्रवृत्तिको न रोकें, यह शीघ्र ही नाट्य क्षेत्रकी रानी हो जायँगी । नाट्य कलाकी उच्च शिक्षाके लिए हम लोग शीघ्र ही इंग्लैण्ड भी जानेवाली हैं !

नवीन—(अकुलाकर) हूँ....

लिली—(गम्भीर होकर) मि० शर्मा, भारतीय रमणियोंके स्वातन्त्र्य और विकासके लिए भारतीय पुरुषोंको आत्म-सुखका कुछ त्याग करना पड़ेगा । (नवीनके

ही विचारोंका अनुवाद करते हुए) स्त्रीत्वका सुगम पुरुष-विशेषक आमोदक लिए नहीं, वग्न समस्त संसारके आत्मिक विकामक लिए हुआ है । स्त्रियोंको तो जवनके प्रत्येक क्षेत्रमें पुरुषसे प्रतियोगितां करके एक नवीन सृष्टि, एक नवीन भावना, एक नवीन सौन्दर्यकी स्थापना करनी है । (नवीनचन्द्रके अधिक पास जाकर बहुत ही भावनामय स्वरमें) मि० नवीनचन्द्र, क्या आप भी इस कार्यमें हमारी सहायता नहीं करेंगे ?

नवीन—(कुछ सहमकर) अवश्य, परन्तु सरला... क्या सरला इसके लिए तैयार है ?

(सरला अर्धनिमीलित नेत्रोंसे समुद्रकी ओर देख रही है और नाटकमें गाया हुआ कोई गायन धीरे-धीरे गुनगुना रही है । वह अपना नाम सुनकर कुछ चौंकती है ; परन्तु उसी प्रकार समुद्रकी ओर मुँह किये बैठी रहती है ।)

लिली—(सरलाकी ओर देखकर) सरला देवी इस प्रतियोगिताके लिए केवल तैयार ही नहीं, काटवद्ध हैं । केवल आपकी अनुमतिकी अपेक्षा है ।

नवीन—(धवराकर) मैं—मैं—मेरी—मैं एक बार सरलाकी अनुमति चाहता हूँ । सरला, क्या तुम इस कार्यमें सहमत हो ?

सरला—(समुद्रकी ओर ही देखते हुए दृढ़ गम्भीर स्वरमें) जी हाँ !

(नवीनचन्द्र अत्यन्त आश्चर्यसे सरलाकी ओर देखते हैं ; उनकी समझमें कुछ नहीं आता । वे धवराकर सोफेपर पीठके सहारे बैठ जाते हैं । सरला उसी प्रकार समुद्रकी ओर देखती रहती है । मिस लिली अपनी सफलताके बाद सन्तोषका अनुभव करती हुई समुद्रकी ओरवाली खिड़कीके सहारे खड़ी हो जाती है और अत्यन्त उत्सुकतासे समुद्रकी ओर देखने लगती हैं ।)

नवीन—(अस्पष्ट स्वरमें) सरला, तुम एक पहेली हो !

लिली—(धीरे-धीरे गुनगुनाती है)—

Oh, to be in England now
When it is spring there.

होवे अब इंग्लैण्ड-निवास,
जब है वहाँ वसन्त विकास ।
(पटाक्षेप)

काश कि पत्थर बोल सकते !

ब्रजमोहन वर्मा

काश कि पत्थर बोल सकते !

सचमुच अगर पत्थर बोल सकते तो हम्पीके बियावान खंडहर अपने ऐश्वर्य और शान-शौकतकी ऐसी दास्तानें सुनाते, जिनके आगे अलादीनके चिरागकी धन-दौलत हेच मालूम होती और अलिफललाके क्रिस्से फीके पड़ जाते !

हम्पी ? हम्पी क्या है, कहाँ है ?

हम्पी इसी मुल्कमें है। मद्रास-प्रान्तके बलारी जिलेमें, होस्पेट रेलवे स्टेशनसे अठारह मील दूर, तुंगभद्राके किनारे जंगलमें एक छोटा-सा गाँव है—गाँव भी नहीं है, महज एक पुरवा है। मगर आजसे पाँच सौ वर्ष पहले यह एक धन-सम्पदासे भरा पूरा जगमगाता शहर था, जिसकी शान-शौकतके आगे दिल्ली शमाती थी, लन्दन पानी भरता था और दुनियाके दूसरे शहर ईर्ष्या करते थे। उस समय यह विजयनगरके नामसे मशहूर था। लंका और ब्रह्मा, ईरान और अरब, मिस्र और रोम तथा स्पेन और पोर्चुगालके सौदागर यहाँ तिजारत करने आते थे। एशिया और यूरोपके गुणी, कारीगर और शिल्पी यहाँके धनाढ्योंका संरक्षण पानेके लिए लालायित रहते थे।

आज विजयनगरका नाम दुनियासे भिट चुका है। इस नामका शहर, कस्बा या गाँव तक बाक़ी नहीं है। शहरका एक हिस्सा हम्पी कहलाता है। सिर्फ ईर्द-गिर्दके बाशिन्दों या पुरातत्त्व-प्रेमियोंको ही हम्पीका नाम ज्ञात है। आज हम्पीकी हस्ती इतनी भी नहीं कि वहाँ पोस्ट आफिस भी हो। पर हम्पीके चारों तरफ़ घेर जंगलमें, मीलों तक, पत्थरके विशालकाय टूटे फूटे महल खड़े हैं, जिनकी विराटता, जिनकी शिल्पकारी और जिनका नष्ट-वैभव आज भी दर्शकको चकित किये बिना नहीं रहता। काश कि ये पत्थर अपने अच्छे दिनोंकी दास्तान कह सकते !

आज हम्पीके चारों ओर फैले हुए विशाल भवनोंमें साँप, बिच्छू और जंगली जानवर रहते हैं। भूले-भटके यात्रीको, जो पुगातत्त्व या कलाका प्रेमी होनेके कारण यहाँ पहुँच जाता है, इन भवनोंमें घुमते वक्त कफी सतर्क रहना पड़ता है। लेकिन किसी ज़मानेमें इनमें रहनेवालोंका वैभव देखकर यूरोपवालोंकी आँखें चौंधिया जाती थीं। इनके अधिवासी—यानी विजयनगरके धनिक लोग—सुन्दर-से-सुन्दर मकानोंमें रहते थे; उनकी पोशाकें बहुत क़ामती होती थीं; वे बहुमूल्य जवाहरात पहनते थे; उनके घर क़ीमती क़ालीनोंसे सजाये जाते थे; वे चाँदीकी चौकीपर बैठकर बाहर निकलते थे; सुनहरे चारजामेसे सजे हुए बीस घोड़े उनके आगे और तीन सौ घोड़सवार उनके पीछे चलते थे; बाजेवाले, मशालबग़दार और दुनिया-भरका लवाज़मा उनके साथ होता था। यह बतलाकर पायस नामक यात्री लिखता है—“यहाँके अमीर-उमरावोंके धन-वैभवका यदि पूरा हाल लिखूँ, तो लोग यक़ीन न करेंगे और मुझे भूठा समझेंगे !”

विजयनगर सिर्फ एक धन-समृद्धिशाली साम्राज्यकी राजधानी और वैभवशाली नागरिकोंका शहर ही नहीं था, वह देशी-विदेशी व्यापारका एक अड्डा भी था। विजयनगरके सम्राट ईरान, अरब, मिस्र तथा अन्य विदेशी मुल्कोंके शासकोंसे सम्बन्ध रखते थे और देश-विदेशके व्यापारी—सिंहली, बर्मी, मलाया, ईरानी, अरब, मिस्री, मूर, रूसी, स्पेनी और पोर्चुगीज़ आदि रोज़गाग़के लिए विजयनगर आया करते थे।

बरबोसा नामक एक यूरोपियन यात्रीने विजयनगरका हाल लिखते हुए कहा था—“शहरमें खूब आमद-रफ्त और चहल-पहल रहती है। वेशुमार सौदागर और धनी लोग हैं—शहरके स्थायी बाशिन्दे और बाहरसे आनेवाले भी। बाहरवालोंको विजयनगरके सम्राटने इतनी

स्वाधीनता दे रखी है कि हर एक आदमी जहाँ चाहे आ-जा सकता है और अपने धर्म के अनुसार बिना किसी विघ्न-बाधा के रह सकता है। इस बात की कोई पूछ-जाँच नहीं होती कि वह ईसाई है या यहूदी, अरब है या विधर्मी।”

— इस वर्ष विजयनगर की स्थापना को पूरे छ सौ वर्ष होते हैं। जमाने की गर्दिश से ईसा की सातवीं शताब्दी ने दक्षिण-भारत में दो शक्तिशाली सम्राज्यों को उठते देखा — सुदूर दक्षिण के तामिल-प्रान्त में चोल-साम्राज्य और कर्नाटक में चालुक्य-साम्राज्य। लगभग एक सौ वर्ष तक इन दोनों राज्यों में कशमकश और तनातनी चलती रही। बाद में दोनों को कुछ उल्लास आई और आपस में सुलह करके दोनों अपने-अपने राज्यों का विकास करने लगे। यौवन के बाद जरा और उत्थान के बाद पतन प्रकृतिका अटल नियम है। इन दोनों राज्यों का भी पतन हुआ। कर्नाटक राज्य टूटकर तीन वंशों में बँट गया — देवगिरि में यादव वंश, दारंगल में काकतीय वंश और देवसमुद्र में होयसल वंश। उधर चोल वंश पांड्या और चोलों की कलह में मिट गया।

जिस समय इन शक्तिशाली राज्यों के इस प्रकार हिस्से-बखरे हो रहे थे, उसी समय उत्तर से मुसलमानों के आक्रमण शुरू हुए। मुसलमानों का पहला हमला सिर्फ लूट-पाट के लिए हुआ था। इस आक्रमण में सफल हो जाने पर धन की लालसा से और भी हमले हुए। उत्तर की ओर से क्रमशः यादव, काकतीय, होयसल और अन्त में तमिलों को आक्रमणकारियों के आगे झुकना पड़ा। खिलजियों के काल में मुसलमानी सेनाने दक्षिण में रामेश्वर तक लूट-पाट की थी। मन्दिरों की नियमित लूट-पाट और आये दिन धन-जन के नाश से दक्षिण के हिन्दुओं को इन हमलों से बचने का ध्यान आया। इसी समय दिल्ली की सल्तनत खिलजियों से हटकर तुगलकों के हाथ में आई। इस गड़बड़ से दक्षिण वालों को जरा साँस लेने का मौका मिला; लेकिन कुछ ही दिन बाद मुहम्मद तुगलक ने फिर दक्षिण का रुख किया। अब

तकके हमले सिर्फ लूट-पाट के लिए होते थे; मगर अब मुहम्मद तुगलक ने राज्य जमाने की ठानी। इस बार तुगलकों ने हमला करके इलक्केर कब्जा जमाया। सन् १३२८ में मदुरा आक्रायता तुगलकिया मल्लनत का सूत्र चनाया गया और जलालुद्दीन यामनशाह सूवेदार मुकर्रर हुआ। कुछ ही दिन बाद मुहम्मद तुगलक ने राज्य में चारों ओर बगावतें हुईं। एक तर्फ सिन्ध ने विद्रोह किया, दूसरी तर्फ बगाल ने। मुहम्मद और उसका सेना इन विद्रोहों को दबाने में बुरी तरह व्यस्त थी। यह मौका गनीमत समझकर मदुरा के सूवेदार ने तुगलक-जुएँ का गर्दन से उतार फेंका और अपने को स्वतन्त्र घोषित कर दिया। मुहम्मद के राज्य की व्यवस्था दिनों-दिन ऐसी खराब होती गई कि दक्षिण के इस बागी को दण्ड देने के लिए उसके फौज भेजने की सम्भावना नामुमकिन-सी हो गई। यह मौका केवल मदुरा के सूवेदार के लिए ही सुनहरा मौका नहीं था, वरन दक्षिण के हिन्दुओं के लिए भी यही उपयुक्त अवसर था, जब वे अपना भविष्य जैसा चाहते बना लेते।

लेकिन दक्षिण-भारत के हिन्दुओं का भाग्य-निर्णय कौन करे? काकतीय वंश समाप्त हो चुका था; उसके दो-चार बचे-खुचे सरदार अपने भूतपूर्व राज्य के सुदूर पूर्वीय भाग में छोटे से इलाके में रहते थे। कम्पल के वीर राजा और उसका वंश नेस्तनावृद्ध हो चुका था। बाक्की जो दो-चार टुटपूँजिया राजा और सामन्त थे भी, उनमें न तो शक्ति थी और न महत्वाकांक्षा। समूचे दक्षिण-भारत में सिर्फ होयसल वंश ही कुछ शक्तिशाली था। यद्यपि मुसलमानों के लगातार हमलों से होयसल वंश काफी क्षतिग्रस्त था, फिर भी उसके हाथ में काफी इलाका और साधन बच रहे थे, जो यदि पूरी तरह विकसित किये जाते, तो समूचे हिन्दू दक्षिण-भारत के नेतृत्व के लिए उपयुक्त हो सकते थे। सौभाग्य से तत्कालीन होयसल राजा वीर बल्लाल काफ़ी दूरदर्शी और महत्वाकांक्षी व्यक्ति था। उसने वीरतापूर्वक आगे बढ़कर समूचे हिन्दू दक्षिण-भारत के भाग्य-निर्णय का बीड़ा उठाया।

बह्मालने चुपके-चुपके अपनी शक्ति बढ़ानी शुरू की। कम्पलीके दुर्गके नष्ट हो जानेके बाद तुंगभद्राका संमान्त अरक्षित रह गया था, इसलिए उसने हम्पके दक्षिणी भागकी पहाड़ियोंकी किलेबन्दी की। तिरुनामलैको केन्द्र बनाकर उसने अपने राज्य-भरमें ढोरे करके धीरे-धीरे तैयारियाँ कीं। समूचे दक्षिणका नेता बननेके लिए पहली आवश्यक बात थी मुसलमानी फौजोंको हटा देना। इस बीचमें मदुराका शाह जलालुद्दीन मर गया। उसका भतीजा शाह बना; लेकिन वह भी शीघ्र ही किसी बागी हिन्दूके हाथों मारा गया। मदुरामें इस तरहके परिवर्तन हो रहे थे। उसी समय तुंगभद्रा सीमान्तकी रक्षाका भार विश्वसनीय सेनापतियोंपर छोड़कर और उत्तरकी ओर सतर्कतासे दृष्टि रखते हुए, बह्मालने जगह-जगहसे मुसलमान-सेनाको मदुराकी तरफ खदेड़ना शुरू किया और एक बड़ी सेनाके साथ त्रिचनापल्लीपर धावा बोल दिया, ताकि मदुरा और कनानूरकी मुसलमान-सेनाएँ आपसमें न मिल सकें। बह्मालने कनानूरकी सेनाको इतना दबाया कि उसकी हाथ-तोबापर मजबूर होकर मदुराकी मुसलमानी फौज भी घोड़ोंके गलोंमें पगड़ियाँ डालकर निकल पड़ी। घोड़ोंके गलेमें पगड़ियाँ डालनेका अर्थ, राजपूती केसरिया बानेके संमान, या तो युद्ध-जीतना अथवा ज़िन्दा वापस न लौटना था। लड़ाईमें मुसलमान हार गये, उनकी फौज तितर-बितर हो गई; लेकिन एक दुर्घटनावश वीर बह्माल कुछ मुसलमान सिपाहियोंके हाथ कैद हो गया, जिन्होंने उसे फौरन तलवारके घाट उतार दिया।

बिना सरदारकी फौज नहीं लड़ा करती, इसलिए मुसलमान सेनाके छितर-बितर हो जानेपर और युद्धमें हिन्दुओंके जीत जानेपर भी, उनकी विजय-पराजयमें परिणत हो गई। हिन्दू सेना विश्रुंखल होकर लौट आई। अब वीर बह्मालकी महत्वाकांक्षाको पूरा करनेका भार उसके पुत्रपर पड़ा। बह्मालने अपने सामने ही विजयनगरमें अपने पुत्रका, वीर विजय

विरूपाक्ष बह्मालके नामसे, अभिषेक कर दिया था; किन्तु यह पुत्र पिताकी तरह तेजस्वी न होकर कमजोर निकला।

वीर बह्मालके सीमान्त-रक्षक अपसरोंमें संगमके पाँच पुत्र बहुत योग्य थे। उन्होंने वीर बह्मालका उत्तरदायित्व अपने सिंगपर लिया। उन्होंने होयसल इलाकेको अपने अधीन किया, साथ ही उन जगहोंको छोड़कर, जिनपर प्रत्यक्षरूपसे मुसलमानोंका अधिकार था, बाक़ी इलाकेको चुपके-चुपके अपने कब्जेमें कर लिया। त्रिचनापल्लीके युद्धके तीन ही चार वर्षके भीतर उन्होंने वही स्थान प्राप्त कर लिया, जो वीर बह्मालका था। तीन-चार सालके अन्दर बह्माल वंश भी समाप्त हो गया, और यही पाँचो भाई साम्राज्यके नियन्ताके रूपमें दीखने लगे।

दक्षिण-भारतके इन्हीं पंच पाण्डवोंने ही १३३६ में हम्पीके समीप विजयनगरकी स्थापना की थी।

इधर मुहम्मद तुग़लक भी उत्तरमें ऐसे कम्पटोंमें फँसा था कि उसे दक्षिणकी सुधि लेनेका मौका ही न था, इसलिए दक्षिणवाले अपना मार्ग स्वयं निश्चित करनेके लिए स्वतन्त्र रह गये। मुसलमानोंके एक अमीर सुलतान अलानुद्दीन हसन गंगू ब्रह्मनीने अपनेको दक्षिणका शाह घोषित किया। उसने देवगिरि राज्य और वारंगलके बड़े हिस्सेपर अधिकार जमाकर होयसल साम्राज्यकी ओर रुख फेरा। इस बीचमें संगम-पुत्रोंने अपने इलाकेमें काफी व्यवस्था स्थापित कर ली थी, अतः उन्होंने गंगूका सफलतापूर्वक सामना ही नहीं किया; बल्कि अपने राज्य-विस्तारके लिए बाकायदा धावा भी बोल दिया। यह आक्रमण पाँच भाइयोंमें से तीसरे भाई बुक्केके पुत्र कुमार कम्पानाके सेनापतित्वमें हुआ था। कुमार कम्पानाकी यह विजय-यात्रा जिसमें उसने तोंडमंडलमसे लेकर मदुरा तक विजय किया था, रानी गंगादेवी द्वारा रचित 'कम्पराय विजयम' नामक सुप्रसिद्ध काव्य-ग्रन्थमें वर्णित है। विजयनगरके राजाओंने सारे दक्षिणी भागमें शान्ति और सुव्यवस्था

स्थापित की। मुसलमानों हमलोंमें जो मन्दिर नष्ट कर दिये गये थे, उन्हें फिर से बनवाया—विशेषकर मद्गुग और श्रृंगमके प्रधान मन्दिरोंको। उन्होंने मुसलमानोंके आगमनके पूर्व जो क्रान्त-क्रान्ति प्रचलित थे, वही फिर से जारी किये।

विजयनगरकी उन्नति दिन दूनी रात चौगुनी होने लगी। लगभग डेढ़ सौ वर्षके भीतर ही वह समूचे एशियाके अत्यन्त समृद्धशाली और शानदार नगरोंमें हो गया। राजा कृष्णदेवरायाके सिंहासनारोहणसे राजा अच्युतरायाकी मृत्यु तक (१५०८-१५४२ तक) विजयनगर अपने चरम वैभवपर था। राजा देवकृष्णराय विजयनगरका सबसे बड़ा सम्राट था। उसके दरबारमें बड़े-बड़े मरदार और गुणी थे और फौजमें ६ लाखसे ११ लाख तक आदमी थे।

अपने जमानेमें विजयनगरका व्यापार खूब बढ़ा-चढ़ा था, जिससे राज्यको आमदनी भी काफी होती थी। कन्नड़के शिलालेखोंसे जान पड़ता है कि हर तरहके अनाजोंके अतिरिक्त, रुई, मसाला, चीनी, पान, सुपारी, नमक, दास, कपूर, मुश्क, केशर, चन्दन, मोती, जवाहरात, घोड़े, हाथी आदिका व्यापार वहाँ होता था। काली मिर्च, सोंठ और कपास पश्चिमी घाटकी ओर पैदा होती थी। दो-चार खास-खास जगहोंसे सोना, चाँदी और क्रीमती धातुएँ निकलती थीं। कृष्णा नदीके उत्तरी तटपर—विशेषकर वज्रकर नामक स्थानपर—हीरेकी खानें थीं, जो मध्ययुगमें गोलकुंडाकी खानोंके नामसे पुकारी जाती थीं। कोहनूर इसी खानसे निकला हुआ बतलाया जाता है। मिट्टीके बर्तन, जूते, लुहारी, सुनारी और बड़ईगीरीके काम तो सभी गाँवोंमें होते थे। शहरोंमें सोना, चाँदी, लोहा, पीतल, ताँबा और टिन आदिकी चाँजे बनानेका काम, मूर्तिकला, गहने और जवाहरात, लैम्पें, तलवार, भाले, तीर, कमान आदि हथियार बनानेका काम, गाड़ियाँ और जहाज़ बनानेका काम तथा अन्य सैकड़ों उद्योग-धन्धे होते थे। राज्यमें

३०० के लगभग बन्दरगाह थे। शहरोंमें प्रत्येक व्यवसाय और पेशेके अलग-अलग संघ थे।

विजयनगरका हाथी-घाड़िका रोज़गार बहुत मशहूर था। ये दोनों जानवर युद्धके लिए खास तौरपर रखे जाते थे। हाथी मलवार, लंका और पेगू (बर्मा) से आते थे। बाढ़िया हाथीके दाम उस समय १००० से १५०० पगंडा (३५०० से ५२५० रु०) तक होते थे। घोड़े फौजकी जरूरतोंके लिए मँगाये जाते थे; लेकिन उनकी नालबन्दी और बरदाश्तका उचित बन्दोबस्त न होनेसे उनमें से बहुत-से मर जाते थे, जिसकी हर साल पूर्ति की जाती थी। विदेशी व्यापारी जानवरोंकी देख-भाल या नालबन्दीकी कमीकी ओर राजाका या लोगोंका ध्यान आकर्षित न करते थे, क्योंकि ऐसा करनेसे उनका रोज़गार कम हो जाता।

विजयनगरके सम्राट ही हर साल १३,००० घोड़े खरीदा करते थे। ये घोड़े ईरानकी खाड़ीमें उरमुज़से आते थे। कम-से-कम २००० घोड़े हर साल अरबसे आते थे। रास्तेमें जहाज़पर अगर कोई घोड़ा मर जाय, तो सिर्फ उसकी दुम काटकर लानेसे राजा पूरा दाम दे देता था। विजयनगरके राजा और बहमनी राज्यके पाँचों हिस्सोंके सुल्तान घोड़ोंके लिए ईरानकी खाड़ीके व्यापारपर निर्भर करते थे। पोर्चुगालवालोंने यह बात लक्ष्य करके ही गोआ और उरमुज़पर कब्ज़ा कर लिया था। राजा कृष्णदेवरायाने घोड़ोंके रोज़गारका एकाधिपत्य प्राप्त करनेके लिए पोर्चुगालियोंको तीन लाख रुपये देनेकी बात कही थी, लेकिन चलाक पोर्चुगीज़ गवर्नर अलबुकर्कने उसे स्वीकार नहीं किया।

विजयनगरका व्यापार, चेटी, बनिया, मुसलमान, देशी ईसाई, यहूदी, और बेनिमवालोंके हाथमें था। विदेशियोंके लिखे हुए वृत्तान्तोंसे जान पड़ता है कि विजयनगरके व्यापारी बहुत होशियार, कुशल और हिसाब-किताबमें पक्के होते थे। चीनियोंने लिखा है कि 'वे व्यवहारमें ईमानदार और चाल-चलनमें सचे होते हैं।'

राज्यकी ओरसे देश-भरमें ममन-चैन था, चोरीकी बहुत सख्त सजा दी जाती थी और अगर चोरीका माल बगमद न हो, तो पुलिसवाले उत्तरदायी समझे जाते थे। इसी सुरक्षाके कारण दुनिया भरके व्यापारी देवदूतके विजयनगर पहुँचा करते थे।

दक्षिणके सुभलमानी राज्य बहुत दिनोंसे विजयनगरपर दाँत लगाये थे; लेकिन उनकी दाल न गलती थी। सन् १५६५ में अहमदनगर, गोलकुंडा, बीजापुर, बीदर, बगरके पाँचों शासकोंने मिलकर विजयनगरपर चढ़ाई की। तालीकोटेकी लड़ाईमें विजयनगरकी हार हुई। विजेताओंने बदला लेनेके जोरमें विजयनगरमें मार-काट की, नगरको लूटा और बादमें आग लगाकर भस्म कर दिया। इस प्रकार दो सौ उन्तीस वर्ष तक एशियाका एक अत्यन्त समृद्धिशाली और वैभवपूर्ण नगर रहकर सन् १५६५ में विजयनगरका राज्य समाप्त हो गया और नगरका अस्तित्व भी मिट गया। मैसूरका राजवंश इसी विजयनगर परिवारकी एक शाखा है।

विजयनगरके राजाओंने देशकी संस्कृति, साहित्य और कलाको बहुत अधिक प्रोत्साहन दिया था। संस्कृत साहित्यकी बहुत उन्नति हुई। विद्यारण्य उर्फ सायणाचार्यने, जो अपने युगका अत्यन्त प्रतिभाशाली विद्वान और साथ ही विचक्षण राजनीतिज्ञ भी था, विजयनगर-साम्राज्यको बनानेमें भी बहुत भाग लिया था। यहाँ तक कि लोग उसके नामपर विजयनगरको विद्यानगर भी कहते थे। सायणका संसार-प्रसिद्ध भाष्य विजयनगरके सम्राट बुक्कयाको ही समर्पित किया गया था। 'योगानन्द-प्रहसन' तथा अन्य संस्कृत ग्रन्थोंका रचयिता अरुणगिरिनाथ (उर्फ डिङ्ग-डिम भट्टारक) प्रौढ़देवरायाके दरबारका रत्न था। विजयनगर-दरबारके संग्रहणमें सायणके पुत्रने 'सर्वदर्शन-संग्रह', सेनापति इरुगप्पाने 'नानार्थ-तन्त्रमाला' नामक निघण्टु, चिन्नू भोट्टने 'तर्कभाष्य' और स्वयं राजा विरूपाक्षने 'नारायण-विलास' नामक नाटक और 'मदुरा-विजय' नामक

काव्य-ग्रन्थ और लक्ष्मण व विने 'सगस्वती-विलास', 'अविवेक-भूषण', 'योग-दापिका' आदि अनेक संस्कृत ग्रन्थोंकी रचना की थी। इनके सिवा गान विद्यापर भी कलानाथ (कालनाथ ?) ने 'संगीत-तत्त्वाकर', देवयणा भट्टने 'संगीत-मुक्तवली' और चेमयणाने 'तालदीपिका' की रचना की थी।

यह तो हुई संस्कृत साहित्यकी बात। विजयनगरके राजाओंने प्रान्तीय भाषाओंके—तेलुगु, कन्नड़ और तमिलके—साहित्योंको भी प्रोत्साहन देनेमें हद कर दी थी। तेलुगुका महान कवि सोमनाथ, जो अपनी विद्वत्ताके कारण 'सर्वज्ञान', साहित्यरस' 'अष्टभाषा-कवि' आदि नामोंसे प्रसिद्ध है, बुक्कयाके दरबारमें था। उसके 'उत्तर-हरिवंश'ने तेलुगु काव्यमें एक नई रूढ़ फूँक दी थी। कवि श्रीनाथने अपनी प्रतिभासे 'कवि-सार्वभौम' की उपाधि प्राप्त की थी। राजा देवरायाने अपने 'मोतीमहल'में उसका 'कनक-अभिषेक' किया था। यद्यपि उसने अनेक काव्य-ग्रन्थोंकी रचना की; किन्तु चाटुकारी करके न तो किसीमें राजाकी प्रशंसा ही की और न किसी ग्रन्थको राजाको अर्पित ही किया। राजा नरसिंह रायाकी संरक्षकतामें पिहूचमरी पिन्नवीरभट्टने 'शृंगार-शाकुन्तल', 'माघमहात्म्य' आदि ग्रन्थ रचे और 'जैमिनी-भारत'का तेलुगुमें अनुवाद किया।

कृष्णदेव राया विजयनगरका सबसे महान और प्रतापी राजा था। उसका शासन राजनैतिक दृष्टिसे तो चरम उत्कर्षका था ही, साथ ही उसने साहित्य और कलाके क्षेत्रोंमें भी युगान्तरकारी परिवर्तन किये थे। वह स्वयं उच्चकोटिका कवि था, और उसके दरबारमें आठ महाकवि थे, जो 'अष्टदिग्गज' कहलाते थे। उसने अपने 'अमुक्तमाल्यदा'से, जो तेलुगु-साहित्यके इतिहासमें एक अमूल्य ग्रन्थ है, तेलुगुमें स्वतन्त्र प्रबन्ध-लेखनका श्रीगणेश किया था। कल्याणाकी उद्धान, शैलीकी प्रखरता और वर्णनकी उत्कृष्टतामें यह ग्रन्थ अपने राजसी रचयिताके सर्वथा अनुरूप है।

उसके दरबारके प्रधान कवि पेद्दण्णाने अपनी कृति पेद्दण्णा 'स्वारोचिष मनुसम्भव' उसे ही अर्पित की थी। कृष्णदेव रायाने पेद्दण्णाका इतना अधिक सम्मान किया था कि स्वयं उसकी पालकी उठाई थी।

नन्दी तिममण्णाने 'पारिजातअपहरण', अय्यलराजू रामभद्र कविने 'सकलकथा-सार-संग्रह', धूर्जटी कविने 'कालहस्ती-महात्म्य', मल्लण्णाने 'राजशेखर-चरित्र', नृसिंह कविने 'कविकर्ण-रसायन' और कुमार धूर्जटीने 'कृष्णराज विजय' आदि उत्कृष्ट कृतियोंकी रचना इसी राजाकी गुणग्राहकताकी बदौलत की थी। इनके सिवा भट्टमूर्ति कृत 'वसुचरित्र' और 'हरिश्चन्द्र नलोपाख्यान', तेनाली रामकृष्ण कविकृत 'पाण्डु रंग महात्म्य' आदि तेलुगु-ग्रन्थोंकी रचना अन्य राजाओंकी पृष्ठपेषकतामें हुई थी।

ऊपर वर्णित तेनाली रामकृष्ण केवल कोरा कवि ही न था, वरन वह बड़ा विचक्षण, बुद्धिमान और सूक्ष्म-वृम्भका आदमी था। हास्यप्रियता, हाज़िर-जवाबी और मौकेकी सूझके लिए वह अपने युगमें अपना सानी नहीं रखता था। जिस प्रकार हास्य-प्रियता और हाज़िरजवाबीमें उत्तर-भागमें बीरबलका नाम मशहूर है, उसी प्रकार दक्षिण-भागमें—विशेषकर आन्ध्र और कर्नाटक प्रान्तोंमें—तेनाली रामकृष्ण प्रसिद्ध है। उसकी सूझ और हाज़िरजवाबीके हज़ारों किस्से प्रचलित हैं। आज भी आन्ध्र और कर्नाटकके गाँव-गाँवमें अनपढ़े ग्रामिण तक तेनाली रामकृष्णके किस्से सुना-सुनाकर अपना मनोरंजन किया करते हैं।

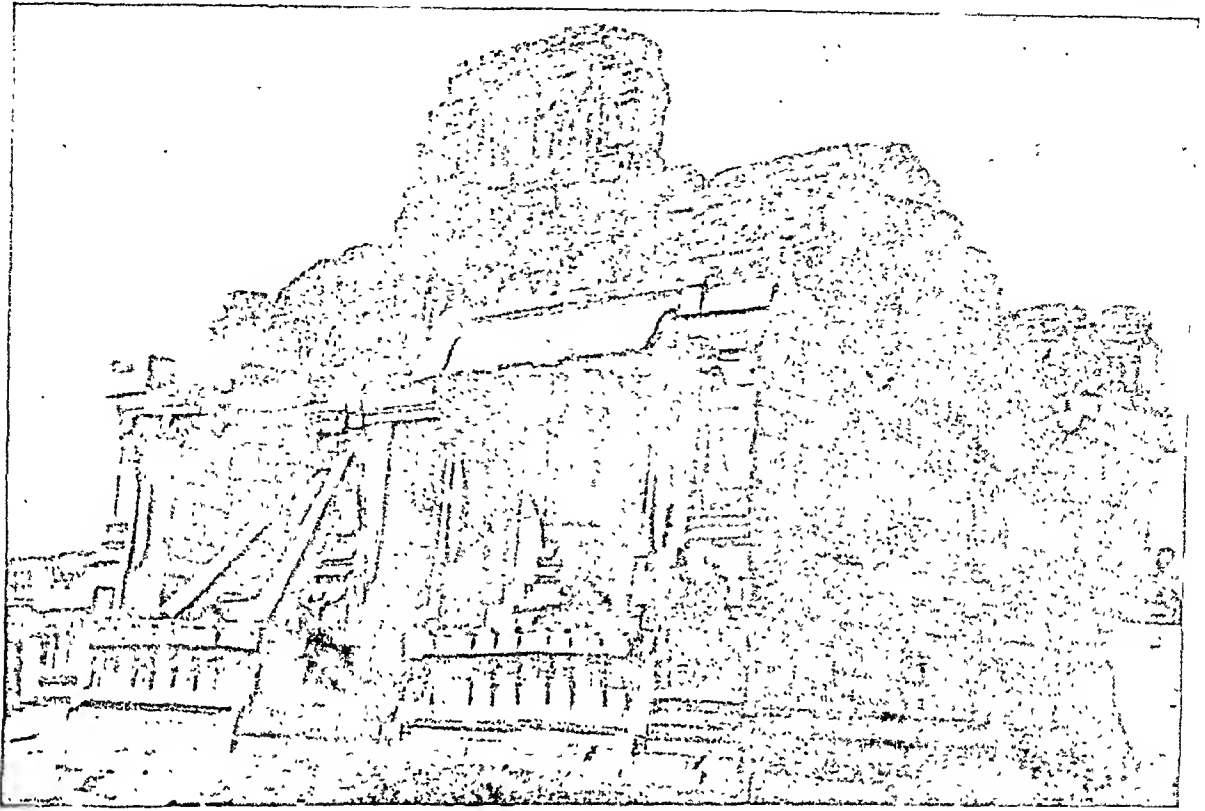
विजयनगर-साम्राज्यके प्राग्भिक युगमें कन्नड़ भाषाको भी काफी प्रोत्साहन मिला था। हरिहर रायाके समयमें जैनकवि नागराजने 'पुण्यश्रव-चम्पू' और मंगराज जैन कविने 'खगेन्द्रमणि-दर्पण' लिखा था। बुक्केके समयमें भीम कविने 'वासवपुत्र', हरिहर द्वितीयके समयमें मधुरने 'धर्मनाथ-पुगाण' तथा अन्य ग्रन्थ और हरिहरके भतीजे दीपराजने 'अमरक' लिखा था। प्रौढ़देव रायाके दरबारी कवि कुमार व्यासने महाभारतके

प्रथम दस पर्वोंका कन्नड़ अनुवाद किया था, जो आज तक कन्नड़में अत्यधिक लोकप्रिय है। चामराजाने 'प्रभुलिंग-लीला', 'लिंगणपदमुलु', बोम्मराजने 'सनत-कुमारचरित', नीलकंठाचार्यने 'आराध्य चरित्र', कुमार वाल्मीकिने रामायणका कन्नड़ अनुवाद, चटुवित्तनावधने भागवतका अनुवाद और तिममण्णाने महाभारतका शान्ति-पर्वसे लेकर अन्त तक कन्नड़ अनुवाद लिखा। यह सब विजयनगरके राजाओं और उनके सरदारोंकी पृष्ठपेषकतासे ही हुआ।

विजयनगरका सम्पर्क तमिल-प्रान्तसे बहुत कम था, इसलिए तमिल-भाषाको उतना प्रोत्साहन नहीं मिला, जितना तेलुगु और कन्नड़को। फिर भी अनेक तमिल कवि विजयनगर दरबारसे-पुस्कृत होते रहते थे।

किसी भी जातिकी सभ्यताकी कसौटी उसकी कला और स्थापत्य माना जाता है। इस दृष्टिसे विजयनगर-वाले किस उत्कर्षको पहुँच चुके थे, इसका कुछ आभास विजयनगरके भग्नावशेष देते हैं। विठ्ठलस्वामी (विष्णु) का मन्दिर स्थापत्य-कलाका एक उत्कृष्ट नमूना है। इसे कृष्णदेव रायाने बनवाना शुरू किया था और अच्युत रायाके समय यह बनकर तैयार हुआ था। समूचा मन्दिर ग्रेनाइट पत्थरका बना है। उसके तीन ओर गोपुरम हैं। इसके मण्डपमें उत्कृष्ट कारीगरीका काम दीवता है। मन्दिरके सामने पत्थरका एक भीमकाय रथ बना है, या यों कहिये कि एक छोटी इमारत रथके आकारकी है। हज़ारा रामका मन्दिर विजयनगरकी स्थापत्य-कलाका सर्वोत्तम नमूना है। यह विष्णु-मन्दिर राज-परिवारकी निजी उपासनाके लिए था। कृष्ण स्वामीके मन्दिरमें वालकृष्णकी वह प्रतिमा है, जिसे कृष्णदेव राया उदयगिरि विजय काके वहाँसे लाये थे। विजयनगरमें अनेक जैन मन्दिरोंके भग्नावशेष भी हैं।

किलेके बहुत थोड़े भग्नावशेष रह गये हैं। जिस चवतरेपर राजसिंहासन रहता था, वह अभी तक



विजयनगरका कृष्ण-मन्दिर

मौजूद हैं। इसकी उत्कृष्ट खुदाईकी प्रशंसा उस समयके अनेक विदेशी यात्रियोंने की थी। रनिवासकी इमारतोंमें मुसलमानी (सारसनिक) प्रभाव दीख पड़ता है। पद्म-मवन इन इमारतोंमें उत्कृष्ट है। कुछ मन्दिरोंकी दीवारोंपर चित्रकलाके भी कुछ टुकड़े दीख पड़ते हैं, जिनसे जान पड़ता है कि इस कलामें भी विजयनगर पीछे नहीं था।

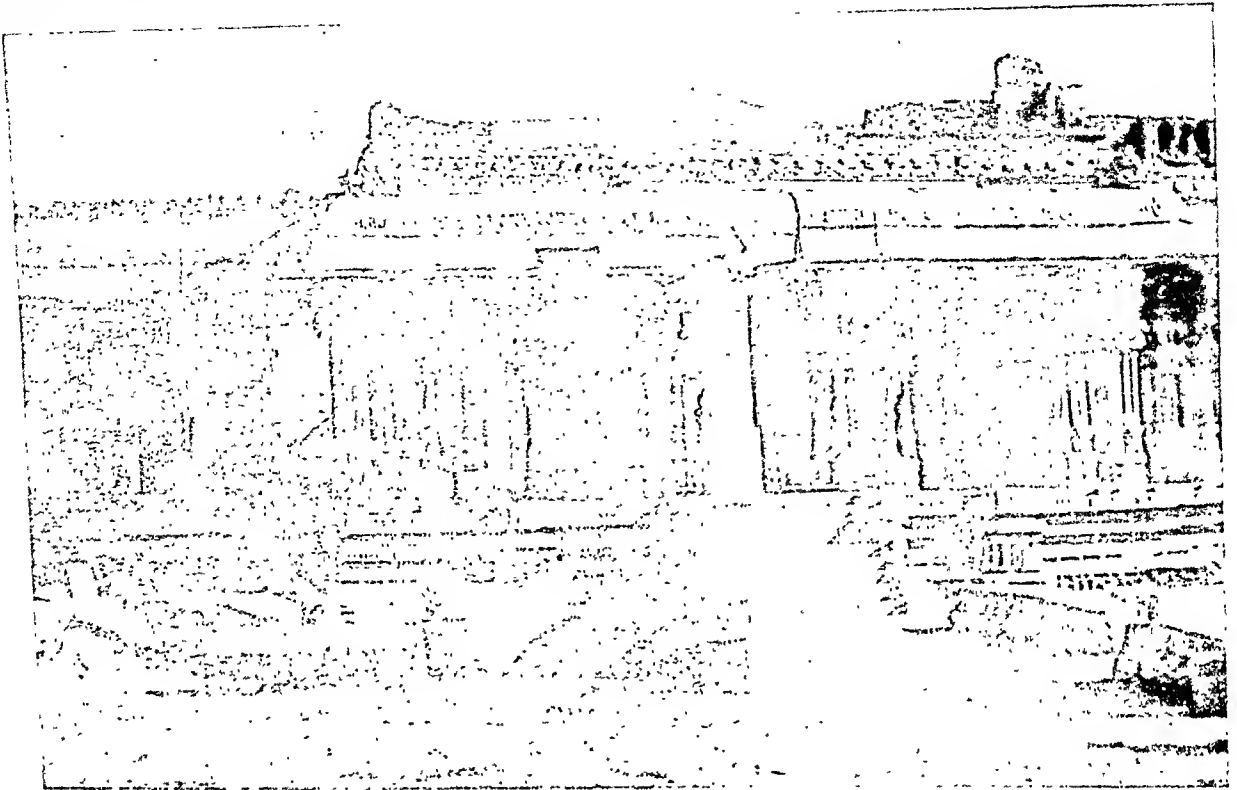
विजयनगरको बसानेवाले, बनानेवाले, बढ़ानेवाले, धन-समृद्धिसे परिपूर्ण करनेवाले और सभ्यताके उच्च शिखरपर पहुँचानेवाले शासक, योद्धा, विद्वान, राजनीतिज्ञ और व्यापारी आन्ध्र थे या कर्नाटकी, यह प्रश्न कुछ विवादप्रस्त बन गया है। आन्ध्र और कर्नाटक दोनों ही प्रान्त विजयनगरको अपने इतिहासका सबसे उज्ज्वल, सबसे मूल्यवान पृष्ठ मानते हैं। दोनों ही उसपर

गौरव करते हैं। हम कह सकते हैं कि विजयनगर आन्ध्र और कर्नाटक इन दोनों प्रान्तोंकी सम्मिलित चेष्टा और प्रयत्नोंका परिणाम था।

* * * *

आज—

आज विजयनगरकी स्थापनाकी षष्ठम शतवार्षिकी मनाई जा रही है। इस जयन्तीके लिए बड़े समारोहके साथ आयोजन किया गया है। मैसूरका वर्तमान राजवंश विजयनगरके प्राचीन राजवंशकी ही एक शाखा है, इसीलिए मैसूर विजयनगरकी षष्ठम शतवार्षिकीमें विशेष रूपसे भाग ले रहा है। इस षष्ठम शतवार्षिकीकी यादगारमें विजयनगरमें एक नवीन स्मृति-स्तम्भ बनाया गया है, जिसका नक्कशा मैसूर-सरकारके प्रधान स्थापत्य-कला-विशारदने तैयार



विजयनगरका विठ्ठल-स्वामीका मन्दिर

किया है। कन्नड़ भाषाका कर्नाटक साहित्य-सम्मेलन भी अपना वार्षिक अधिवेशन इसी अवसरपर विजयनगरमें करेगा।

होसपेट कसबेसे बलारीको एक सड़क जाती है। होसपेटसे लगभग चौदह मील चलनेपर इस सड़कसे चार मील लम्बी एक दूसरी सड़क निकलकर हम्पी तक पहुँचा देती है। हम्पीमें पम्पापतिका मन्दिर है, जिसमें आसपासके अति धार्मिक तीर्थ-यात्री जब कभी पहुँच जाते हैं। हम्पीके उत्तरकी ओर तुंगभद्रा बहती है और दक्षिण तथा पूर्वकी ओर जंगलमें नौ मीलके घेरेमें विजयनगरके खण्डहर बिखरे पड़े हैं। कहीं गजशाला है, कहीं घुड़शाला, कहीं गगनचुम्बी मीनार हैं, कहीं आकाशसे बातें करनेवाले मन्दिरोंके शिखर,

कहीं तोरण द्वार हैं, कहीं पक्के होज़, कहीं टकसाल है, कहीं दरवार-भवन, कहीं रनिवास है, कहीं राजमहल। कितने पत्थर और कितनी मूर्तियाँ छितराई पड़ी हैं, उनका कौन हिसाब। आज इन भवनोंमें साँप-बिच्छू रहते हैं, चमगीदड़ निवास करते हैं, उल्लू बोलते हैं!

इन भवनोंके मूक पत्थरोंने, कितना वैभव, कितनी धन-सम्पदा, कितने वीर कृत्य, कितने कल हास्य, कितनी प्रेम-कथाएँ, कितनी काव्य-कृतियाँ, कितना आनन्द-उल्लास, कितनी चहल-पहल, कितना रस-रंग देखा, सुना और उपभोग किया है?

काश ये पत्थर अपनी कहानी अपनी ज़ुबानी कह सकते!

मालीकी लड़की

श्रीमती सत्यवती मलिक

मास्टरके चले जानेके बाद विजयकुमार उसी ऊँचे समतल टीलेपर खड़े होकर दोनों हाथोंसे इस ज़ोरकी ताली पीटते कि वह सम्पूर्ण पर्वतखण्ड गूँज उठता ; और उन तालियोंके प्रत्युत्तरमें विक्री, ऊपा, हर्प आदिका स्वागत-मंडल भी लकड़ीके घने हुए फ़र्शपर अपने भारी बूटोंसे धम-धमकी आवाज़ करते हुए और तड़-तड़ तालियाँ बजाते-बजाते वेगपूर्वक कोठीसे बाहर निकल पड़ता । फिर उसी हरे-भरे ढालू स्थानपर सब जने उलभी लताकी भाँति एक दूसरेसे लिपट जाते और हः ! हः ! की विकट ध्वनिसे हँस-हँसकर लोट-पोट होते हुए छलांगे लगाते नाले तक नीचे पहुँच जाते, और तब न-जाने कितने प्रकारकी कौतुक क्रीड़ाएँ उस वर्काले नालेके किनारेपर पड़ी स्वच्छ ठोस शिलाओंपर किया करते ।

शिशु-जगतके इस क्षीण-कोमल मृदुहासमें ज्येष्ठ मासकी मनोहर प्रकृति मानो और भी मतवाली हो उठती । आकाश तक ऊँचे लम्बे घने वृक्षोंमें जहाँ-तहाँ छिपे हुए सैकड़ों अज्ञात पक्षी अनेक स्वरोंमें सुरीले गान गा उठते । सामने ही पहाड़ीपर का निरन्तर भर-भर करता हुआ भरना मानो द्विगुणित होकर कल-कलकी ध्वनि करने लगता । उन सुरभित फूलोंसे लदी वनस्थलीमें इधर-उधर मस्तीसे सरसराती हुई शीतल पवन भी इन सबके सुरमें सुर मिलाने लगती । कभी-कभी सहसा न-जाने किस-किस ओरसे श्वेत बादलोंके समूह हरे मैदान तक नीचे उतर आते और इन बालकोंको आलिंगन करके वापस लौट जाते । उसके बाद सूर्यकी हल्की निस्तेज किरणें सघन भाड़ियोंमें से छन-छनकर नवनीत-से कोमल भोले मुखड़ोंको पुनः चूमने लगतीं ।

भाई-बहनोँके इस अपूर्व आह्लाद और हँसी-खुशीके उमड़ते हुए आनन्द-सागरमें डुबकियाँ लगानेके लिए तरसते, तो केवल दो सतृष्ण नेत्र—दो अतृप्त आँखें । वे आँखें थीं इस कोठीके चौकीदारकी एकमात्र अष्टवर्षीया कन्या मुक्ताकी । प्रतिदिन

दोपहरीके समय उसका पिता पीछेके घने जंगलमें लकड़ी काटनेके लिए चला जाता और मुक्ताको नीचेके मैदानमें चरवाहोंके बालकोंके साथ पशुओंकी रखवालीके लिए छोड़ आता । किन्तु वह बेचारी मैली-कुचैली बालिका मैदानसे भाग आती और आँखें फाड़-फाड़कर इन साफ-सुथरे शहरी बालकोंके असीम प्यार एवं मधुर हास्यके विचित्र कोलाहलको दूर-दूरसे ही देखा करती और जैसे उनके खेल-कूदमें भाग लेनेके लिए उत्कण्ठित हो, कभी दाहने, कभी बायें और कभी सीधेसे आकर उन बालकोंके आसपास मँडराया करती । बालकोंके इस खेल-कूदसे सर्वथा पृथक् रहनेपर भी कुछ ही दिनोंमें वह इनकी चेष्टाओंमें इतनी तन्मय हो गई कि उनकी हँसीके साथ अनायास ही वह मुसकरा देती और उनके लड़ाई-झगड़ेमें उसकी भी वैसी ही मुद्रा बन जाती ।

नियमानुसार ठीक ग्यारह बजे तड़-तड़ करके तालियाँ बज उठीं और धम-धमकी आवाज़ सुनाई दी ; किन्तु और दिनोंकी अपेक्षा आज इस आनन्दोत्सासमें सुर-तालकी मात्रा अधिक जँची जान पड़ती थी—हू-हू करके चीखते हुए और ढव-ढव करके नाचते हुए ये लोग मानो सुखकी नींद सोई पर्वत-श्रेणीको चौंका रहे थे ।

अपना दिलचस्प उपन्यास वहीं अंगीठीपर रखते हुए सन्तोष कुमारीने कहा—“भाभीजी, आज तो विजयको ज़रूर ही कोई नई चीज़ मिली है ! आइये, चलकर देखें !”

“होगा कोई रेबिनका घोंसला या कोई नये रंगकी तितली—मास्टर जाता है, तो इनकी बला टलती है ।” प्रकाशवतीने बुननेकी सलाई फिरसे आरम्भ करते हुए उत्तर दिया ।

“और क्या वह भी दिन-रात आपकी तरह स्वेटर बुना करे ?”—सन्तोष कुमारीने कहा ।

इसी समय बगलवाले कमरेसे आवाज़ आई—“अजी, ज़िन्दगीका छुद्र स्वेटर बुननेमें नहीं है ?”

“नहीं, ज़िन्दगीका लुप्त तो विस्तरेपर लेटकर पुस्तकें पढ़नेमें ही है ? अच्छे घरसे सैर करने निकले हैं ।”— प्रकाशवतीने अपने पति देवकुमारकी बातका व्यंगपूर्वक उत्तर दिया ।

सन्तोष कुमारीने प्रकाशवतीके गलेमें पीछेसे दोनों हाथ डालते हुए बड़े प्रेमसे कहा—“भाभी, चलो न !

रसोइयेको शीघ्र भोजन तैयार रखनेकी आज्ञा देकर ननद-भौजाईने नालेके पास जाकर देखा कि बच्चोंका नाचना-कूदना व्यर्थ नहीं है । विजयके हाथमें एक दूध-सा सफ़ेद विछीका बच्चा है, और सब लड़के द्रुतगतिसे बहती हुई उस जलधाराके समीप ही एक मोंपड़ा बनानेकी व्यवस्था कर रहे हैं । आश्चर्यकी बात तो यह है कि मुक्ता भी बच्चोंकी इस फ़ौजमें शामिल हो गई है, और विजय एक कमान्डरकी भाँति उसे हुक्म दे रहा है—जाओ, वह लकड़ी लाओ, वह पत्थर उठा लाओ । और किस फ़ुर्तीसे वह फूल-सी बालिका जंगलकी टट्टी-भूट्टी तख्तियाँ और सीधे, नुकीले पत्थर एकत्रितकर विजयके सामने रखती चली जा रही है । विछीका बच्चा देकर विजयसे हेल-मेल बढ़ा सकनेका यह अच्छा उपाय मुक्ताने स्वयं ही ढूँढ़ लिया था । परन्तु आज लगा, हर्ष, विक्रो आदिकी तो आफ़त थी, क्योंकि वह मुक्ताके बराबर और उस फ़ुर्तीसे काम नहीं कर सकते थे ।

सन्तोष कुमारीने अच्छा मौका देखकर कहा—“वाह सार्जेण्ट साहेब ! आज तो बढ़िया शिकार हाथ लगा है न ?”

विजयकी सन्तोषसे गहरी पटती है, और वह सार्जेण्टके नामसे बहुत चिढ़ता है, इसीलिए विजय कुछ नहीं बोला । केवल हूँ-हूँ करके दाँत कटकटाता रह गया ।

[२]

पहाड़पर जानेके प्रायः एक मास पूर्व ही देवकुमारने अपने मित्र मि० कौलको कोठी इत्यादिका प्रबन्ध करनेके साथ ही साथ विजयके लिए एक ट्यूटर ढूँढ़ रखनेके लिए भी लिख दिया था, ताकि दो-तीन मासके छुट्टियोंमें बच्चेका समय नष्ट न हो ।

इसी कारण इस वर्ष परिवारको साथ ले जाकर भी उन्हें किसी प्रकारकी दिक्कत नहीं उठानी पड़ी । परिवारमें उनके तीन बच्चों और पत्नीके अतिरिक्त उनकी छोटी बहन सन्तोष कुमारी भी कालेजकी छुट्टियोंमें साथ ही गई थी । उनकी बड़ी बहनके दो-तीन बच्चे भी साथ ही थे ।

कई प्रकारके जंगली वृक्षोंसे घिरी हुई यह ९७ न० की कोठी धूप अगरकी सुगन्धित हरी-पीली भाड़ियोंसे आच्छादित उस विशाल पर्वतकी ढालपर स्थित है । कोठीके चारों ओर बहुत-सी खुली जगह छोड़कर उस असमीत स्थानमें लकड़ीके जंगले द्वारा सीमा बाँध दी गई है । इस जंगलका कच्चा-सा फाटक कोठीसे पचास-साठ गज़ नीचेकी ओर एक टेढ़ी-मेढ़ी पगडण्डीके आरम्भपर बना है । फाटकके समीप ही नालेका पुल है । कोठीके विस्तृत घेरेमें जहाँ सफ़ेद फूलोंके खेतसे उग आये हैं, एक ऊँचा समतल स्थान विजयने अपने पढ़नेके लिए चुन लिया है ।

कच्चे फाटकसे कुछ ही दूरपर एक छोटी-सी कोठरी चौकीदारके लिए बनी है । चौकीदारको चौकीदार न कहकर सब लोग उसे माली कहते हैं और मुक्ताको मालीकी लड़की । माली यहाँ नीचेके एक पहाड़ी गाँवका रहनेवाला है । वर्षोंसे वह इसी कोठीकी चौकीदारीका काम करता आया है । शीतकालमें जब यह विशाल पर्वतखण्ड हिमका द्रवित दुशाला-सा ओढ़कर समाधिस्थ हो गहरे चिन्तनमें लीन हो जाता है, तो चौकीदार भी मानो उसकी तपस्यामें विघ्न-बाधा न डालनेको इच्छासे चुपकेसे अपने गाँवको चला जाया करता है ।

मालीका काम दिनमें जंगलसे लकड़ी काटकर लाना, नालेसे पानी भरना और रातको चौकसी करना है ; पर जब कभी उसे कमरे साफ़ करनेको कहा जाता है, तो वह बड़े रुखसे ढंगसे बड़बड़ाने लगता है—“हज़ूर, हमसे इतना काम नहीं होगा ।” उसे बच्चोंका फूल आदि बिगाड़ना भी पसन्द नहीं है, इसीसे देवकुमारको प्रतिदिन उसके विरुद्ध अनेक शिकायतें सुननी पड़ती हैं । किन्तु उसकी लड़की मुक्ता ? मुक्ताके चेहरेपर कुछ ही दिन पूर्व असमानता, दीनता और

भयकी जो छाप सदैव बनी रहती थी, उसे किस विचित्र कौशल द्वारा इस ग्रामीण बालिकाने स्वयं ही दूर कर दिया है, यह देखकर आश्चर्य होने लगता है।

× × ×

विजयके सोकर उठनेके पूर्व ही आज मालीकी लड़की मुँह-हाथ धोकर अपना लम्बा कुरता और लाल टोपी पहने निस्संकोच भावसे वरामदेमें आ खड़ी हुई। कुछ ही देरके बाद चाय पीनेके समय बच्चोंने जब विस्कुट-मक्खन-टोस्टके लिए ऊधम मचाया, तो उसने भी अपने पिताको मिट्टीके प्यालेमें चाय और कुलचा देनेको मजबूर कर दिया। दोपहरके समय जब विजयकी पार्टी खानेके लिए बैठकर नाना प्रकारके स्वादिष्ट भोजन उदरस्थ करने लगी, तो मुक्ता भी मिट्टीके बड़े वर्तनमें चासी भात लेकर एक ऐसी जगह खाने बैठ गई, जो खानेके कमरेकी खिड़कीमें से साफ-साफ देखी जा सकती थी। बच्चोंके छीन-भूषणकर भोजन करनेमें जो अप्रकट प्रेम भरा होता है, मुक्ताका मन भी शायद उचक-उचककर इस लालसाके लिए बेतरह मचल उठा; किन्तु जहाँ तक पहुँचनेकी वह अधिकारिणी नहीं है, वहाँ तक पहुँचनेका प्रयास भी उस लाचार बालिकाने नहीं किया।

विजयने खिड़कीमें से झाँककर जब उसे देखा, तो मुक्ता खिल-खिलाकर हँस पड़ी और आनन्दके आवेगमें उन जंगली गुलाबकी सहकती हुई झाड़ियोंमें छिप गई। तब विजय और उसके साथी खाना बीचमें ही छोड़कर, 'मालीकी लड़की, मालीकी लड़की' कहकर चिल्लाते हुए व्यग्रतासे मुक्ताको ढूँढ़ने लगे। उनके आगे-पीछे अनेक रंगोंसे चित्रित नन्हें-नन्हें परोंवाली परियों-सी सुन्दर तितलियाँ लड़ने लगीं, मानो चुटकी बजाकर उन्हें चेलेंज दे रही हों—हमें पकड़ो, हमें पकड़ो। परन्तु मुक्ता न-जाने कहाँ गुम हो गई थी।

बच्चोंके आश्चर्यका तो ठिकाना ही न रहा, जब सहसा उन्होंने देखा कि मालीकी लड़की न-जाने किस मार्गसे निकलकर फाटकके पास लाल-पीले फूलोंका गुलदस्ता लिये खड़ी हँस रही थी। ऊपा, हर्ष आदि तो 'मुझे दो, पहले मुझे दो' कहकर

उसकी ओर भागे; किन्तु समझदार विजय मुक्ताकी इस तीव्र बुद्धिका कायल हो गया।

यद्यपि इसी प्रकार किसी दिन बिल्लीका बच्चा देकर, किसी दिन बकरीका बच्चा दिखाकर और किसी दिन अपने आस-पासके चिर-परिचित जंगलमें छिपे हुए अनेक क्रीडास्थान दिखाकर मुक्ताने इन शहरी बालकोंके मनको अपनी ओर आकृष्ट कर किया है, तो भी विजय अन्य सभी बच्चोंपर उसके रोवको कभी सहन नहीं कर सकता है। अब भी वह भली प्रकार जानता है कि इस गँवार लड़कीको वह चाहे किसी भी अवलके खेलमें परास्त कर सकता है।

[३]

दो दिनसे लगातार वर्षा हो रही है—ऐसी मूसलधार, ऐसी तीव्र, मानो ऊपरके बादल व्याकुल होकर शीघ्रसे शीघ्र धरतीके पास पहुँचना चाहते हों; पहाड़ी फरने और नाले सबके सब एक साथ ही हृदयका सम्पूर्ण उल्लास बटोरकर गेरुये रंगसे जैसे होली खेल रहे हों। कोठीके नीचेवाला नाला तो न-जाने अपनी कितनी ही रूठी हुई साधनोंको मना लाया है और अपने निश्चित स्थानमें उछल-उछलकर उन कल-कल हास्य करती हुई अनेक जल-धाराओंमें जा मिला है। इस जनहीन स्थानमें आज एक अपूर्व अभिनय-सा हो रहा है।

ठंड अधिक हो जानेके कारण कमरेमें अंगीठी जलाकर प्रकाशने छोटे बच्चोंको जवरन बिस्तरेपर सुला दिया और विजयसे कहा कि यदि वह सोना नहीं चाहता, तो बाहरवाले कमरेमें अंगीठीके पास बैठकर मास्टरका काम करे। माका कहना मानकर, विजय पुस्तकोंका ढेर लेकर बैठा तो सही; परन्तु इन भौतिक नदो, नालों, झरनोंकी चंचल ध्वनिके सदृश उसके चिन्ताविहीन कोमल मानसमें जो एक शुद्ध पवित्र उल्लासको धारा-सी प्रवाहित हो रही है, भला वह क्यों न आज इस मोहक प्रकृतिसे मिल जाये—मनोहारिणी सृष्टिके जीवित-जागृत विखरे पक्षोंको सामने फैला देखकर बालक विजय उन निर्जीव कागज़-पत्रोंमें अपना मन किस तरह लगाये?

अपने दोनों हाथ कोटकी जेबमें डाले विजय जी भरकर उस अलौकिक सौन्दर्यको खिड़कियों और दरवाज़ेकी राहसे देखता रहा और हाथमें छाता लेकर नीचे नाले तक जानेके मनसूबे बाँधता रहा। इस समय वह विलकुल अकेला है, सारी कोठीमें एकदम सन्नाटा-सा छाया हुआ है। ऊपा, हर्ष आदि सभी बालक सोये पड़े हैं। दो-एक बार उनके पैरोंमें गुदगुदानेपर भी जब वे ऊँह-ऊँह करके सोये ही रह गये, तो विजय अनमना-सा हो गया। इधर वर्षाका बेग क्रमशः कम होनेको आया और एक नीरव शान्ति सभी ओर व्याप्त हो गई।

सहसा एक मुग्ध कल्पनाके आवेशमें विजयके दोनों हाथ जेबोंमें से निकले और ज़ोरसे बज उठे। इसी समय जब माली अंगीठीमें लकड़ी डालने आया, तो उसके भीगे वस्त्रोंमें चिपटी हुई-सी मुक्ता भी साथ ही दिखाई पड़ी। विजयने खुशीसे कहा—“ओ मालीकी लड़की! आओ, तुम्हें कैरम खेलना सिखायें।”

उष्णता और कैरम खेलनेका अनायास ही अधिकार प्राप्तकर सदीसे ठिठुरती हुई बालिका अरुणोदयकी प्रथम किरणकी भाँति खिल उठी। किन्तु ओह! वह तो इन खेलोंको कुछ भी नहीं जानती। काली-सफ़ेद गोटियाँ विजय स्वयं ही स्ट्राइकरकी चोटसे बोर्डके सूरखोंमें फेंक देता और अभिमानके साथ मुक्ताकी दीन-हीन आँखोंमें चकाचौंध करनेवाली निगाह डालकर ज़ोरसे कहता—“देखा! तुम्हारी अब छै गोटियाँ बाकी हैं, अब चार रह गई हैं और अब केवल दो ही बाकी हैं।”

नासमर्थ मुक्ता बार-बार अपनी हार समझकर भौंप जाती थी—उसका नन्हा-सा दिल इस जीत-हारके अहसानके बोझसे दबा जा रहा था। दो-चार दिनोंमें ही विजयने मुक्ताको लड़ो और ताशके कई छोटे-छोटे खेल सिखला दिये। अब वह हर घड़ी इसी प्रयत्नमें रहती कि किसी प्रकार वह ताशकी एक बाजी भी जीतकर विजयके सामने अपनी प्रखर बुद्धिका प्रमाण दे।

मुक्ता अब अपने व्यक्तित्वका दर्जा यहाँ तक ऊँचा समझने लग गई कि एक दिन जब वह सफ़ेद फूलोंके खेलमें खुली धूपमें बैठकर लड़ो खेल रही थी, तो कतिपय पहाड़ी चरवाहे बालक उसकी ओर कौतूहलवश देखने लगे। एक बालकने साहस करके काश्मीरी भाषामें पुकारा—‘हयः मुक्ता!’ तो अभिमानिनी मुक्ताने एक बड़ी-सी छड़ी हाथमें लेकर उद्दण्डतापूर्वक अपने पुराने साथियोंको भगा दिया, मानो वपोंसे वह विजयकी ही अंगरक्षिका रही हो!

पगली मुक्ताने उस समय तनिक भी यह विचार न किया कि किसी दिन यही विजय उसके अभिमानको चूर कर सकता है—उसकी सारी कल्पनाओं और आशाओंकी मालाको एक ही भटकेमें तोड़ सकता है।

[४]

अपने सहृदय किरायेदारोंकी विदाईके समय चौकीदारके मनमें क्षणिक मोहका जो संचार हो आया था, वह वेतनके अतिरिक्त इनाममें मिले पाँच रुपयों और गर्म बत्तोंके ढेरको प्राप्तकर शान्त हो गया। अपने मालिकोंको कुछ दूर तक पहुँचाकर जब वह अपनी कोठरीमें पहुँचा, तो सबसे पहले उसने कपड़ोंकी गठरी खोली और देखकर खुशीसे उछल पड़ा। यह याद करके उसे विशेष सन्तोष हुआ कि गत वर्षके किरायेदारोंसे भी उसे दो कोट मिले थे। उसके पहले साल एक साहबने उसे एक बढ़िया ऊनी स्वेटर भी दिया था, जो अब तक उसी तरह पड़ा था। आजके इनाममें एक काली बड़ी जर्सीके अतिरिक्त बच्चोंके बहुतसे कपड़े देख वह बहुत ही प्रसन्न हुआ कि इस वर्षकी भयंकर सर्दियाँ मज़ेमें गुज़र जायँगी।

एकाएक आसमानमें बहुत-से काले बादल घिर आये। मालीकी लड़की मुक्ता, जो सबेरेसे ही जँगलेपर मुँह लटकाये खड़ी थी, उस मेघाच्छन्न आकाश और उस सुनसान घेरेको एक बार चारों ओरसे देखकर सिसक पड़ी। वह न तो आँसुओंको रोक सकी और न रोना ही वन्द कर सकी।

उसकी ऊँची सलाई मानो भारी लहरोंकी तरह अदम्य रूपसे उस निस्तब्ध पर्वत-श्रेणीसे टकराकर गूँज उठी ।

वेचारा माली सिवा इसके कि अपनी बच्चीको दौड़कर छातीसे लगा ले और उसके गर्म-गर्म आँसुओंको पोंछ डाले, यह भी न जान सका कि उसकी प्यारी बच्चीके किस कोमल स्थानपर कौन-सी गहरी चोट पहुँची है । अपने विचारशील पिताके बहुत समझाने-बुझानेपर भी वह अबोध बालिका यह न मान सकी कि इसी भाँति अनेक किरायेदार इस कोठीमें आते रहे हैं और भविष्यमें भी आया करेंगे ।

मुक्ता कितने ही दिनों तक उस पथरीले झरनेकी भरझरमें, उस सुरभित पवनकी सरसराहटमें और उन ऊँची शाखाओंपर झूम-झूमकर गाते हुए पक्षियोंके कलरवमें एक गहरे विषाद और घनी उदासीकी छाया अनुभव करती रही । न-जाने कब तक तड़-तड़ ताली बजनेकी गूँज-सी उसके कानोंमें निरन्तर प्रतिध्वनित होती रही ।

घर पहुँचकर विजय अब नियमपूर्वक स्कूलोत्ते समय सड़कसे ही ज़ोरोंसे तालियाँ बजाता । उसकी ऊँची तालियोंकी आवाज़से सारी भव्य झूम-गूँज उठती है और अड़ोसी-पड़ोसियों तकको भी यह ज्ञात हो जाता है कि विजयकुमार स्कूलसे लौट आया है । सभी बच्चे उस पहाड़की यादको क्रमशः भूलते जा रहे हैं । सन्तोष कुमारीको पहाड़पर जानेसे एक लाभ यह हुआ है कि उसे शरारती विजयको कावूमें लानेका एक नया उपाय मालूम हो गया है । सन्तोष कुमारीके कालेजसे वापस आते ही जब विजय उसे तंग करने पहुँचता है, तो वह चुपकेसे उसके कानमें कह देती है—“सर्जेंट साहब, मालीकी लड़कीका क्या हाल है ?”

वस, इतना ही काफ़ी है । विजय एकदम मुँह फुलाकर कहता है—“चलो, हम नहीं बोलते ।”

‘मैं’

श्री रामचन्द्र सक्सेना, बी० ए०

न-जाने आँखमें आषाढ़ बसकर बह गये कितने,
न-जाने आँखियोंके प्राण भोके सह गये कितने !
प्रणय मुझसे पृथक् है, आज मैं अभिशापका घर हूँ ।

किसीको ढूँढ़ता होगा न-जाने मन कहाँ जाकर,
न-जाने नयन कबसे दौड़कर हूँ बिछ चुके पथपर ;
किसीकी यादमें मैं आज तो बस अस्थि-पंजर हूँ ।

इसी भू-पृष्ठपर सर्वस्व मेरा हो गया साना,
बताऊँ मैं किसे अपना कि जब मन तक नहीं अपना ;
असम्भव स्वप्नकी बस कल्पनापर आज निर्भर हूँ ।

खिले हैं, किस लिए ये फूल लेकर लालिमा मेरी,
यही लाली उन्हें क्षणमें करेगी राखकी ढेरी ;
भरी बर्बादियाँ जिसमें वहीं मैं प्यारका वर हूँ ।

तरंगें तड़पकर जिसकी उठा कर्ती गिरा कर्ती,
गगनमें वेदनाएँ गूँजती जिसकी फिरा कर्ती ;
धधकती आग जिसके प्राणमें मैं वह समन्दर हूँ ।

जावाका आनन्द-निकेतन 'तुपारी' और 'ब्रोमो' ज्वालामुखी

श्री अमृतलाल नायक, पम० ए०

सि त्रामण्डलीमें यह तय हुआ कि भारत लौटनेके पूर्व जावाका दाजिलिंग 'तुपारी' का आनन्द-निकेतन अवश्य देखा जाय। उसीके निकट 'ब्रोमो' का भीमकाय प्रचण्ड ज्वालामुखी है, जो जावाका मुख्य अग्निपर्वत माना जाता है। इसकी महिमा भी यहाँ बहुत है। जावामें पार्वत्य आनन्द प्राप्त करनेके लिए दो प्रधान स्थान हैं, एक तो पश्चिममें स्थित 'सुखभूमि' और दूसरा पूर्व भागमें 'तुपारी'। सुखभूमि बहुत ही सुन्दर स्थान है, जहाँ मनुष्य सांसारिक भ्रमोंको कुछ दिनेके लिए भूलकर प्राकृतिक आनन्द प्राप्त कर सकता है। लेकिन गिरि-शोभाका अनुपम दृश्य, निर्भरोंका सनातन संगीत, सुन्दर पक्षी-समूहोंका कलरव तथा ज्वालामुखी पर्वतोंके धूमिल वायुमंडलके कारण जो शोभा तुपारीको प्राप्त है, वह सुखभूमिको नहीं। दूसरा कारण यह है कि सुखभूमि सुगम स्थानमें बसा हुआ है, और इसीलिए वह नगर-सा बन गया है; पर दुर्गम स्थानमें होनेके कारण तुपारी अभी तक प्रकृतिकी सुरम्य गोदमें कल्लोल कर रहा है। प्रकृति-पूजा ऐसे ही स्थानमें हो सकती है।

हम लोगोंने रविवारका दिन प्रस्थानके लिये निश्चित किया। वर्षाकालका आवेग कम हो चला था; पर प्रकृतिकी उच्छृंखलता चारों ओर दीख पड़ती थी। प्रातःकाल ६ बजे हम लोगोंने प्रस्थानकी तैयारी की। इस वार 'पाटी' बहुत बड़ी थी, जिसमें कुछ महिलाएँ भी थीं। सुरावाया-निवासी सभी गुजराती सज्जन तथा कुछ पंजाबी महासुभाव भी थे। मुख्य गुजराती व्यक्तियोंमें श्री जगजीवन मूलजीके सुपुत्र जयन्तीलालजी, एक प्रमुख पंजाबी फर्मके व्यवस्थापक श्री पटेल तथा उनके सहायक श्री कुन्दनलाल, एक कच्ची फर्मके मैनेजर चन्दूलालजी तथा एक अहमदाबादी कम्पनीके प्रतिनिधि तथा उनके अन्य कर्मचारी थे। इनमें से कुछ सपत्नीक थे। जावामें मोटरका किराया बहुत सस्ता है। इसका अन्दाज़ इसीसे लग सकता है कि हम लोग करीब अस्सी मील गये, दिन-भर रहे और लौटे;

मगर दो मोटरोंका किराया पन्द्रह-बीस रुपयेके बीचमें ही रहा।

जिस समय हम लोगोंने सुरावायासे प्रस्थान किया, उस समय सूर्योदय हो चुका था और नगरको निनादित करनेवाली ट्राम, मोटर इत्यादि वाहनोंने अपना काम प्रारम्भ कर दिया था। सुरावायाका विस्तार बहुत बड़ा है, और इसकी रचना आधुनिक ढंगके 'उपवन नगर' (Garden City) की पद्धतिपर की गई है। यात्रा पूर्वाभिमुख थी। ईश्वर परिपक्व होकर लहरा रही थी और धानक्षेत्र अपनी धुनमें मस्त थे। वर्षाकालके साथ भीषण संघर्षके बाद प्रकृति शिथिल हो गई थी, मानो विविध प्रकारके क्षेत्रोंमें विश्राम ले रही हो। मन्द-मन्द समीर पंखा कर रहा था। कदली तथा नारिकेलके उपवनोंमें मातृदेव मर्मर संगीत सुना रहे थे और वेशुवनमें वंशीवादन हो रहा था। दूरस्थित पर्वतमालाके शृंग नील नीरदोंके आवरण धारण किये आकाशको मानो अपनी हृदय-व्यथा सुना रहे थे। पर्वतीय प्रपातोंकी अस्फुट ध्वनि भी अपनी चिर-गाथा गा रही थी। डेढ़ घंटेके बाद 'पेसुरान' पहुँचे। इच्छा हुई कि यहाँ कुछ विश्राम किया जाय; पर तुपारी पहुँचनेमें देर होगी, इस डरसे ठहर नहीं सके। पेसुरानमें पन्द्रह मिनट ठहरकर पर्वतारोहण शुरू हुआ। अब सस्यश्यामला भूमिने शैलशृंगोंको स्थान दिया। ये शृंग घने वनोंसे आच्छादित थे। भूमि अब पथरीली हो रही थी। ऊपर तुपार-मंडित उत्तुंग शिखर हम लोगोंको आवाहन कर रहा था। हज़ार फीटकी ऊँचाईपर पुण्यो नामक स्थान मिला। यहाँ भी बहुत रमणीय उपवन और वास-गृह बने हुए हैं। बहुतसे लोग, जिन्हें तुपारीकी ऊँचाई पसन्द नहीं, यहीं वास करते हैं। चमर नामक देवदारु जातिके वृक्षोंसे तथा केनारी नामक वृक्ष-विशेषके वनोंसे यह घिरा हुआ है। यहाँ पुण्योंका इतना बाहुल्य है कि इसका पुण्यो नाम सार्थक प्रतीत होता है। यहाँ भारतीय नामकरणकी सार्थकता सर्वत्र दीख

पड़ती है। एक सज्जनने मुझे बताया कि 'सुखभूमि' नाम इसलिए रखा गया कि वह वास्तवमें सुखकी भूमि है। पूर्व-जावामें एक शुष्क और ऊसर जगह है, उसका नाम है विसुखी अर्थात् सुख-रहित। सर्वदा कुहेलिका और नीहारिकासे आच्छादित होनेके कारण 'तुपारी' नाम रखा गया है। पुणो आनेपर गगन मेघाच्छन्न हुआ और कुछ वर्षा भी हुई। जावाको एक विद्वान लेखकने तपोभूमि बताया है, जहाँ मुनिगण और विरक्त आत्माएँ ईश्वरका चिन्तन कर सकती हैं। मुझे पुणो तपोभूमि-सी ही मालूम हुई। प्रकृति-निरीक्षण हरएक मनुष्यका जन्मसिद्ध अधिकार है; परन्तु इस आनन्दका उपभोग कितने आदमी करते हैं? प्रकृति सदा मानव-जातिको मूक निमन्त्रण देती है कि ज्ञान, शिव और सुन्दर प्रकृतिकी गोदमें उपलब्ध है। जितना प्रकृतिसे दूर रहेगा, उतना ही मनुष्य आनन्दसे दूर रहेगा।

पुणोसे ऊपरकी चढ़ाई प्रारम्भ हुई। टेढ़ा-मेढ़ा रास्ता घने वनोंमें से जा रहा था। धतूरेके फूलोंका जितना बाहुल्य यहाँ है, उतना मैंने अन्यत्र नहीं देखा। उसके घनेपनके कारण भूमि शुभ्रवसना ज्ञात होती थी। आसपासके गिरि-शिखर सूर्य-किरणोंमें स्नान कर रहे थे। पहाड़ोंकी उपत्यकामें शाली क्षेत्रोंकी पद्धतियाँ तथा छोटी-छोटी पुष्करणियोंमें कमल-समूह मनको मुग्ध कर रहे थे। जलसीकर पद्म-पत्रोंमें मोतीका आभास दे रहे थे। प्रकृतिकी सुन्दरता देखकर प्रतीत होता था, मानो यही देवी तथा देवांगनाओंकी विहार-वाटिका है। यहीं कहीं मृगाकमौलि गौरीके साथ भ्रमण करते होंगे। कहीं किन्नर-किन्नरी अपने मधुर आलापसे वनको गुंजायमान करते होंगे। यहाँ मालती और यूथिका बहुत प्रचुर परिमाणमें हैं। सेवन्तिका और केतकी भी है। एक सुन्दर फूल, जो देखनेमें अत्यन्त ही सुकोमल है, बड़ा नयनरंजक मालूम होता है। खेद है, उसका नाम नहीं जान सका। क्या यही तो 'विजय कुसुम' नहीं है, जिसकी प्रशंसा-गान करते जावाके कविगण नहीं थकते? जितनी महिमा भारतमें कमल-पुष्पकी है, उतनी ही जावामें विजय कुसुमकी। सोला और

जोकजाके सुलतानोंका अभिषेक विजय कुसुम फूल ही द्वारा होता है। इसको तोड़नेके लिए सुलतानके खास सामन्तगण जाते हैं; परन्तु ऐसे दुर्लभ फूल इतनी बहुतायतसे मिलते होंगे या नहीं, यह संदिग्ध है।

नौ वजेके करीब हम लोग तुपारी पहुँच गये। तुपारीकी ऊँचाई ५८३० फीट है। पहले होटलमें खाना खाने गये। खाना कुछ साधमें ले लिया था। चाय, काफी तथा शर्बतोंका हम लोगोंने डटकर नाश्ता किया। यह एक प्रकारसे गलती थी, क्योंकि खाना खानेके बाद घोड़ेपर बैठकर दौड़ना बड़ा ही कष्टकर होता है। महिलाओंको साथ ले जाना कठिन था, इसलिए उनको होटलमें ठहरकर तुपारी निरीक्षण करनेको कहा। इसके बाद यहाँके पहाड़ी घोड़ोंपर सवार हुए। ये घोड़े पहाड़ी टट्टुओं सरीखे थे; मगर बड़े मजबूत और शान्त प्रकृतिवाले। साथमें दो-चार पथ-प्रदर्शक भी ले लिये। हम लोगोंमें से श्री कुन्दनलालको छोड़कर कोई अश्वारोहण नहीं जानता था; परन्तु ये घोड़े इतने सीधे थे कि उनपर बैठना बहुत आसान था। उनकी क्रमणशक्ति तीव्र होनेपर भी आरोहियोंको कष्टप्रद नहीं थी। पथ-प्रदर्शक भी किशोर वयस्क थे; पर उनकी तेज़ चाल यह सूचित कर रही थी, वे रास्तेसे भलीभाँति परिचित हैं। तुपारीसे डेढ़ मील दूर 'पदकाया' नामक स्थान है। वहाँसे 'सुंगलपास' नामक स्थान तीन मीलकी दूरीपर है। रास्ता घने जंगलमें होकर था। पर्वत विविध प्रकारकी मेखला और किरिट पहने रास्तेके दोनों ओर स्वागतके लिए खड़े थे। पहाड़के ढालपर आलू, गोभी, मकई तथा प्याजके खेत समीरकी तरंगोंमें द्वारा झूला झूल रहे थे। घोड़ेपर चढ़ना न जाननेके कारण हम लोगोंमें से कई गिर पड़े; परन्तु घोड़े ऐसे शिक्षित थे कि जब सवार गिर पड़ता था, तो वे भागनेके बजाय वहीं शान्तचित्त खड़े रह जाते थे। यदि उनकी प्रकृति ऐसी न होती, तो शायद हम लोगोंमें से कई 'ग्रोमो' दर्शनके बदले यमराजका दर्शन करते! 'सुंगलपास' पारकर वाई ओर आरोहण करनेपर टेंगर (Tenger) का विकटकार मुख दृष्टिगोचर हुआ। वास्तवमें टेंगर नामक भूतपूर्व ज्वालामुखीके

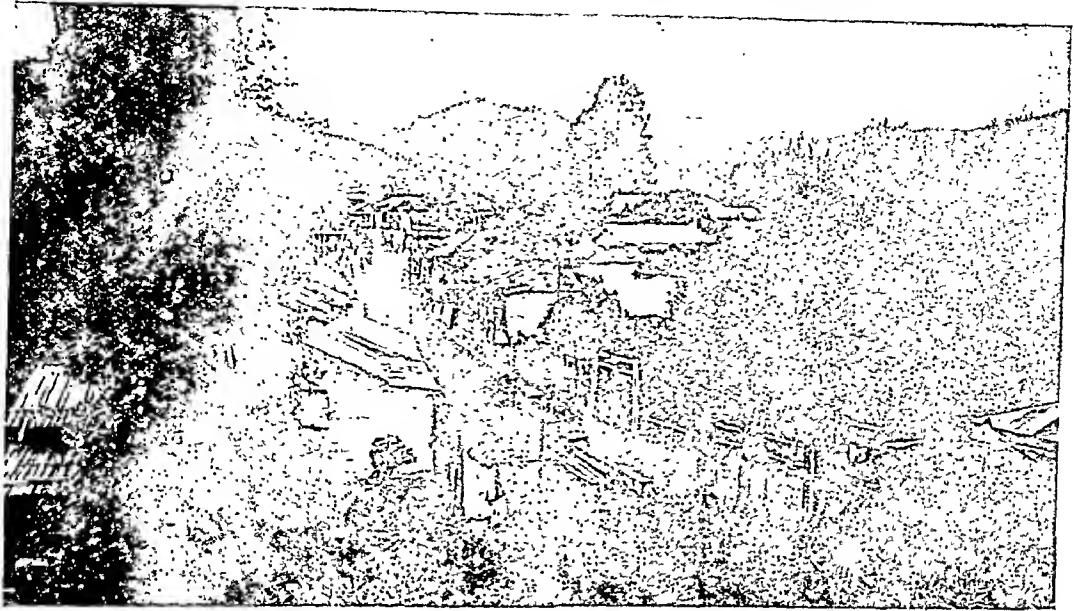
विशाल मुखमें स्थित चार शिखरोंमें त्रोमो सबसे छोटा है। टेंगरका मुख इस समय बन्द है, जिसमें बालूकी मरुभूमि है। इसके विकटाकारका आभास इसीसे मिलता है कि यह ऊपरके भागमें छै मील लम्बा और साढ़े पाँच मील चौड़ा है। निम्न भागमें साढ़े पाँच मील लम्बा और चार मील चौड़ा है। ऐसा मालूम होता है कि यह एक बालूका सागर है, जिसमें 'त्रोमो', 'विदोदरन', 'सागरवेदी' तथा 'वाटोक' नामक चार पर्वत टापूके सदृश खड़े हैं। जब यह विशाल मुख जाग्रत अवस्थामें रहा होगा, तब इसका स्वरूप कितना भीषण और भयप्रद होगा, इसका अनुमान किया जा सकता है। 'त्रोमो' का शुद्ध नाम ब्रह्मा है, 'विदोदरन' का विद्याधर तथा 'वाटोक' का वटुक है। सागरवेदीका दूसरा नाम गिरि भी है। मरुभूमिका नाम इस समय दासार (Dasar) है, जिसका अर्थ है बालूका समुद्र। इसमें अवतरण करनेके लिए हजार फीटका मार्ग बढ़ा ही विकट है। यदि गिरे तो मृत्यु अवश्यम्भावी है! हम लोग नये आरोही थे, इसलिए बड़ी सावधानीसे उतरे। किशोर पथप्रदर्शक हम लोगोंकी भय-मिश्रित सावधानी देखकर हँसते थे। हरियाली कम हो चली थी। पक्षियोंका मधुर कलरव सुननेको नहीं मिलता था। पक्षीगण भी ज्वालामुखीसे दूर ही रहना पसन्द करते हैं।

बालूका-सागरमें अवतरण करनेपर गम्भीर शान्तिका अनुभव हुआ। नीरवता—केवल नीरवता, किन्तु शान्तिप्रद नहीं, भयदायक और आशंका उत्पन्न करनेवाली। इतना निर्जन स्थान मुझे आज तक देखनेको नहीं मिला। निर्जनता शान्तिकी सहचरी, ज्ञान-प्राप्तिका साधन और आत्म-चिन्तनका रम्य स्थान है; पर यह नीरवता हृदयको क्रूरतापूर्वक आघात पहुँचा रही थी। हम लोग बालूका-सागरमें घोंड़ेपर मन्दगतिसे जा रहे थे। चारों ओर पर्वत दीख पड़ते थे। मन-ही-मन मैं ईश्वरका स्मरण कर रहा था कि कुशलतापूर्वक इस सागरसे छुटकारा मिले। आकाशमें एकत्रित बादलोंने भयंकर रूपधारण किया और एक गम्भीर गर्जनके साथ वृष्टिका प्रारम्भ हुआ। हम लोग भीग गये। गलती यह थी कि सभी सूट पहने हुए थे। ऐसे

स्थानमें हाफपेंट ही सुविधाजनक हो सकता है। अब कोई उपाय नहीं था। यदि और जगह होती तो लौट जाते; परन्तु त्रोमोके दर्शनकी इच्छा इतनी प्रबल थी कि आगे बढ़े। उस विशाल बालूका-सागरमें भीषण वृष्टि और भी भयानक लग रही थी। प्रकृति इतनी उग्र चनेगी, इसका खयाल न था। प्रकृतिदेवीकी विविध रूप धारणशक्तिके कारण ही उसे नटीकी उपमा कवियोंने दी है। ऐसी दशांमें भी एक विचित्र प्रकारका आनन्द आ रहा था। यह विचार हो रहा था कि प्रतिदिन हम लोग प्रकृतिका कुछ-न-कुछ आभास प्राप्त करते हैं, तथापि मन ऊयता नहीं। सुनते हैं, क्षणिकतामें ही मोहकता है, तब प्रकृति, जिसके विविध आवरणों और अम्बरोंसे हम भलीभाँति परिचित हैं, क्यों बारम्बार सम्मोहन अन्न फेंकती है? शायद इसलिए कि उसमें "क्षणैः क्षणैः यन्नवतामुपैति" की शक्ति है। मानवकृत प्रासादों, राज-श्रीधिकाओं, प्रस्तर-मूर्तियों तथा नगरोंमें भी मोहकता है; पर वह स्थायी नहीं। एक बार देखनेके बाद फिर देखनेका जी नहीं चाहता। प्रकृतिकी गोद सौन्दर्योपासनाका स्थान है, ज्ञान-गेह भी है और परमात्माके चिन्तनके लिए आदर्श गुफाएँ भी हैं। तभी गौतम, कपिल, कणाद, शाक्यमुनि इत्यादि वनमें ज्ञान-प्राप्तिके लिए गये थे।

वृष्टिका वेग कम हो चला था; पर भयंकर गर्जन हृदयको कम्पित कर रहा था। आध घंटेके बाद हम सब वाटोकके पास पहुँचे। यह ज्वालामुखी इस समय शान्त है, इसलिए इसके कटि और भाल प्रदेशोंमें जंगल उग आया है। हरिताम्वर पहने हुए वटुककी भाँति यह मानो अपने गुरु त्रोमोके स्थानपर निर्भरों द्वारा हम अतिथियोंको अर्य्य दे रहा था। वाटोककी छविनिरीक्षणका समय नहीं था। आगे बढ़े और दस मिनटमें त्रोमोके पाद-प्रदेशमें जा पहुँचे। ऊपर जानेके लिए उच्च-सरकारकी ओरसे सोपान-मार्ग बना हुआ है। पन्द्रह मिनटके आरोहण पश्चात् हम लोग उसके मुखके पास पहुँचे। अहा! क्या अपूर्व दृश्य था। भयानकता और मनोहरताका मिश्रण यहीं देखा।

ज्ञात होता है कि एक विशाल अथाह गह्वर सामने फैला

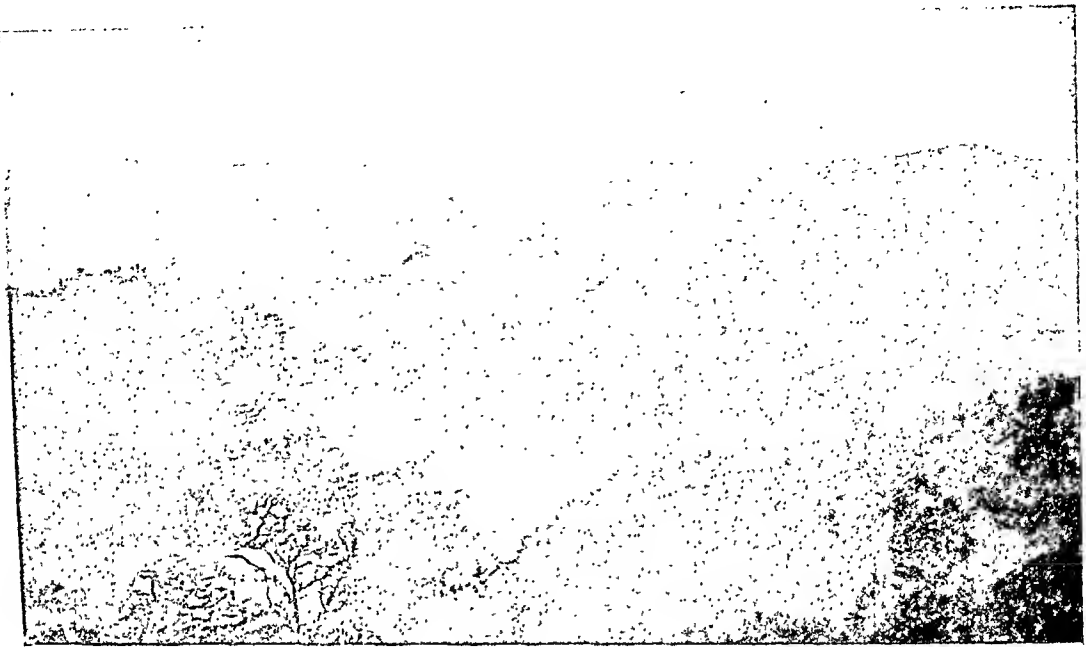


तुपारीका दृश्य

हुआ है। इस गहरकी परिधि एक मीलसे अधिक होगी। धूम्रविसर्जन निरन्तर होता ही रहता है। जिसने इसका नाम ब्रह्मा रखा (ब्रोमोका शुद्ध नाम ब्रह्मा है), उसकी निरीक्षण-शक्तिको धन्यवाद है। मालूम होता है, यह प्रजापतिकी अखंड वेदी है, जहाँ वे जगतके कल्याणके हेतु सदा अग्निदेवकी आहुति देते हैं। यही उनकी अभिशाला अथवा अग्निकुंड है, और यह मुख है, जहाँ विधाताने सृष्टि-रचनाकर यज्ञ किया और संसारकी कल्याण-कामना की। जावाकी समृद्धि ज्वालामुखी बहिर्गत 'लावा' द्वारा है, जिससे वहाँकी भूमि रसा बनती है। इसलिए इसका ब्रोमो नामकरण बड़ा ही सार्थक है। क्योंकि इसके संहारकारी तांडव-नृत्यमें भी कल्याणच्छु लास्य नृत्यका मिश्रण है। जिस प्रकार मुनिका शाप बहुधा भलाईके लिए होता है, उसी प्रकार इसका स्वरूप भी वास्तवमें शंकर—कल्याणकारी है।

इस समय यह तन्त्रावस्थामें है। धूम्रशिखा सदैव इस बातकी सूचना देती है कि इसका क्रोध पूर्णतया शान्त नहीं हुआ। कौतुकाक्रान्त निवासियोंको यह सूचना निकट बसनेसे सावधान करती रहती है। अन्यथा मेरापीके निकटवाले ग्रामा—सी दशा उनकी भी कभी होगी। पास और दूरका

दृश्य बड़ा ही मनोरम और हृदयग्राही है। वालुका-सागरके पश्चिम छोरका नाम इडर-इडर (Eder-Eder) है। यह 'पुंडाक लेवु' अर्थात् वैलुका पृष्ठभाग नामक छोटे शिखरका किरीट धारण किये पश्चिम पार्श्वकी रक्षा कर रहा था। उसके पृष्ठभागमें लामांगोन और जंग पर्वत दीख पड़े। पूर्व-पश्चिम कोणमें प्रसिद्ध ज्वालामुखी अर्जुन और दक्षिणमें द्विमस्तकधारी सुमेरु पर्वत। सुमेरु पर्वत इस समय सबसे अधिक उच्छृंखल ज्वालामुखी है। सन् १८६५ और १९२२ के नवम्बरमें इसने अपनी शक्तिका परिचय दिया था, जिसके कारण बहुत नुकसान हुआ था। जावामें यह जनश्रुति है कि ब्रोमो, सुमेरु और अर्जुन पारी-पारीसे अपनी दाहकारी शक्तिका परिचय देते हैं। इस समय सुमेरु पर्वतकी पारी है। सुमेरु पर्वत बारह हजार फीटसे भी अधिक ऊँचा है। जावामें इससे अधिक ऊँचा कोई पहाड़ नहीं। हम लोगोंने भय और आदरसे आक्रान्त होकर ब्रोमोको प्रणाम किया; प्राचीन समय ही से ब्रोमो पवित्र माना गया है, और यह लोकधारणा है कि शक्तिमें यह क्रेकेटुआसे भी अधिक है। जिस समय जावामें हिन्दू धर्मका प्राबल्य था, प्रत्येक वर्ष अच्छा मुहूर्त देखकर शुभ दिन-



पेनाग्रनसे 'ब्रोमो' ज्वालामुखीका दृश्य

विशेषपर इसको जनसाधारण द्वारा आहुति दी जाती थी। सुनते हैं, नखलि भी दी जाती थी। उस दिन सामाजिक उत्सव मनाया जाता था। "धातु वालांग" नामक शिलाखंडपर खड़े होकर डुकूलधारी पुरोहित-समूह मंत्रपूत जल द्वारा इसकी पूजा करते थे। धूप जलाया जाता था, और अक्षत तथा सुवर्ण इसके मुखमें डाले जाते थे। अब भी यह उत्सव मनाया जाता है। देव ब्रोमोकी प्रार्थना की जाती है; पर अधिकांश जनताके विधर्मी होनेके कारण वह श्रद्धा और भक्ति अब नहीं रह गई। जावामें जब इसलामने विजय पाई, तब बचे हुए हिन्दू 'ब्रोमो' पर्वतके निकटस्थ ग्रामोंमें भागे और अब भी हिन्दू बने हुए हैं। उनका डीलडौल, उनकी शारीरिक वनावट और उनके आर्यचिह्न इस बातका प्रमाण देते हैं कि वे मध्योपहित साम्राज्यके क्षत्रियोंकी सन्तान हैं, और इसका उन्हें बड़ा गौरव है।

संध्या होनेमें अधिक देर नहीं थी। ब्रोमोसे हटनेका मन नहीं होता था। ऐसा निर्जन स्थान फिर इस जीवनमें प्राप्त होगा या नहीं, कौन जानता है। पर रातमें कोई बालुका-सागरमें नहीं रह सकता है। रात्रिमें यह बाघों और चीतोंकी आखेट-

भूमि बन जाता है। वे निर्भीकतापूर्वक घूम-घूमकर जंगली घोड़े और गाय-बैलोंका भोजन करते हैं। यत्रतत्र पड़ी हुई हरियाँ इस बातका स्मरण करा रही थीं। हम लोग लौट पड़े। बालुका-सागर पार किया और पर्वतारोहण किया। अन्तिम चार ब्रोमोकी ओर दृष्टिपात किया। ब्रोमो शान्त-भावसे, उदासीन अवस्थामें धुआँ उगल रहा था। पुनः मुंगलपासमें उतरे। दूर—सुदूर क्षितिजमें अब भी ब्रोमो उसी निर्विकल्प अवस्थामें दीख पड़ा।

जब तुपारी पहुंचे, शाम हो गई थी। भास्कर विदा हो रहे थे और गौरिकाम्बर धारण किये पर्वत-समूह उन्हें ऋषियोंकी भांति अर्थ दे रहे थे। दूर—बहुत दूरसे निकेवाड (अप्सराओंका स्नानागार) नामक जावाके सुन्दरतम जलग्रपातकी मन्दध्वनि पुंडरीक प्रतीक्षामें चिर-अभिसारिका महाविताके शोकोध्वासमय करुण गानकी स्पर्धा कर रही थी। दूरस्थित ताम्रवर्ण किरीटधारी सुमेरु पर्वत हम लोगोंको अन्तिम विदाई देनेके लिए पेरुआन तक आया और निशा देवीको सहचरी बनाकर विदा हुआ। प्रातःकाल भी ब्रोमोकी छवि वारम्बार नेत्रोंके सामने आ रही थी।

चार अध्याय

रवीन्द्रनाथ ठाकुर

(गताङ्कसे आगे)

“नहीं रहने दो—प्रकाश प्रत्यक्षको प्रमाणित करता है, चलो चलें दीपहीन पथसे अप्रत्यक्षकी ओर। चार सालसे कुछ कम हुआ होगा, स्टीमरपर सुकामाघाटसे गंगा पार हो रहा था। तब तक मैं अपनी पैत्रिक सम्पत्तिका फूटा किनारा पकड़े हुए था, जो कर्जके गढ़ेसे भरा था। तब तक मेरे तन और मनमें शौकीनीका रंग चढ़ा हुआ था—देवालिये दिनान्तके वादलोंकी तरह। सिल्कका कुरता पहने और कंधेपर मुँगेकी चादर डाले फर्स्ट-क्लास डेकपर बेंतकी आराम-कुरसीपर बैठा था। फेंके हुए अखबारके पन्ने इधरसे उधर फर-फर उड़ रहे थे, मजेसे उन्हें देख रहा था; मालूम होता था, मानो मूर्तिमती अफवाहें वगैरे सिलसिलेके नाच रही हों। तुम थीं सर्वसाधारणके दलमें, कमर बाँधे हुए डेक-पैसेन्जर। अचानक मेरे पीछेकी अगोचरतामें से तुम तेजीसे निकल आईं मेरे सामने। आज भी आँखोंके सामने दिखाई देती है तुम्हारी वह ब्राउन रंगकी साड़ी; जूड़ेके दोनों तरफ पिनसे अटका हुआ साड़ीका पछा चेहरेके दोनों तरफ हवासे फूल रहा था। कोशिश करके असंकोचका भाव लाकर तुमने पूछा था—आप खदर क्यों नहीं पहनते ?—याद है ?”

“विलकुल साफ। अपनी मनकी तसवीरसे तुम बातें करा सकते हो, मेरी तसवीर गूँगी है।”

“मैं आज उस दिनकी पुनरुक्ति करता जाऊँगा, तुम्हें सुनना होगा।”

“सुनूँगी नहीं तो क्या। वह दिन जहाँ मेरे नवीन जीवन-संगीतकी टेक है, बार-बार वहीं मेरा मन लौट जाना चाहता है।”

“तुम्हारे कंठका स्वर सुनते ही मेरा सारा शरीर चौंक उठा, वह स्वर मेरे मनमें आकर सहसा चाँदनीकी छटा-सा मालूमा हुआ; मानो आसमानसे कोई खूबसूरत चिड़िया उतर आई और एक ही क्षणमें मेरा पहलेका सब-कुछ छीन ले गई। अपरिचिता महिलाकी उस कल्पनातीत स्पष्टापर यदि गुस्सा हो सकता, तो शायद उस दिनकी पार लगानेवाली नैया मुझे इतने गहरे अघाटपर न पहुँचा देती—अन्तमें शायद शरीरोंके मुहल्लेमें ही चालू रास्तेपर दिन बीतते। पर मन

गीली दियासलाई-सा ठिठुर गया था, गुस्सेकी आग जली ही नहीं। मेरे स्वभावका सर्वप्रधान गुण है अहंकार, इसीसे चटसे खयाल आया, यह लड़की अगर खास तौरसे मुझे पसन्द न करती, तो इस तरह खास तौरसे मुझे ही धमकी देने न आती; रहा खदर-प्रचार—यह तो एक वहाना है,—अच्छा, सच्ची बात थी कि नहीं, बताओ।”

“अजी हाँ, कितनी बार कह चुकी हूँ—बहुत देर तक डेकके एक कोनेमें बैठी हुईं तुम्हें निहार-निहारकर देख रही थी। भूल ही गई थी कि और-कोई मेरी इस हरकतको ताड़ रहा है या नहीं। मेरे जीवनमें वह सबसे बड़ा आश्चर्य है—एक चितवनमें चिर-परिचय। मन बोला, कहाँसे आया यह बहुत दूर जातका आदमी, अपने चारों ओरके मापके अनुसार तो बना नहीं, यह तो शैवालके बीचमें शतदल कमल है। तभी मन-ही-मन मैंने प्रण कर लिया था, इस दुर्लभ मनुष्यको खींच लाना होगा,—सिर्फ अपने ही पास नहीं, अपने सबके पास।”

“मेरी तकदीरसे तुम्हारी एकवचनकी चितवन दब गई बहुवचनकी चितवनके नीचे।”

“मेरे लिए कोई चारा नहीं था, अन्तः। कुन्तीने द्रौपदीको देखनेसे पहले ही कहा था, तुम सब मिलकर वर-वांट लो। तुम्हारे आनेके पहले ही रापथ खाकर देशका आदेश स्वीकार किया था, कहा था—अपने लिए कुछ भी न रखूँगी। मैं देशके लिए वाग्दत्ता हूँ।”

“अधार्मिक है तुम्हारा प्रण लेना, इस प्रणकी रक्षा करना भी तुम्हारे लिए प्रतिदिनका स्वधर्म-विद्रोह है। प्रणको अगर तोड़ देतीं, तो सत्यकी रक्षा होती। जो लोभ पवित्र है, जो अन्तर्यामीकी आदेशवाणी है, उसे तुमने अपने दलके पैरों-तले दलित किया है;—इसकी सजा तुम्हें भुगतनी पड़ेगी।”

“अन्तः, सजाकी कोई हद नहीं, वह दिन-रात मुझे मार रही है। जो आश्चर्यजनक सौभाग्य सम्पूर्ण साधनाओंके अतीत है, जो दैवका अयाचित दान है, वह आया मेरे सामने, और फिर भी मैं उसे पा न सकी। हृदय-हृदयमें गाँठ बँधी हुई है, यह सब-कुछ होते हुए भी मैं यही चाहती हूँ कि इतना बड़ा दुःसह वैधव्य किसी स्त्रीके भाग्यमें न आवे। मैं एक मन्त्र-पढ़े घेरेके

भीतर थी, पर तुम्हें देखते ही मन उत्सुक हो उठा, बोला—
दृष्ट जाने दो सब घेरा। ऐसी उथल-पुथल हो सकती है, इस
वातकी मैंने कल्पना भी न की थी। अगर कहूँ कि इसके
पहले कभी मन विचलित नहीं हुआ, तो यह झूठ बोलना है।
पर चंचलताको जीतकर मैं अपनी शक्तिके गर्वसे बहुत खुश
हुई थी। पर विजयका वह गर्व अब नहीं रहा, इच्छा खो दी
है मैंने,—बाहरकी बात जाने दो, भीतरकी ओर गौरसे देखो,
हार गई हूँ मैं। तुम वीर हो, मैं तुम्हारी वन्दिनी हूँ।”

“मैं भी हार गया हूँ अपनी इस वन्दिनीके आगे। मेरी
हार अभी खतम नहीं हुई, प्रतिक्षणके युद्धमें प्रतिक्षण ही
हार रहा हूँ।”

“अन्तू, फर्स्ट-क्लास डेकपर जब अपूर्व आभिर्भावकी भाँति
तुमने मुझे दूरसे दर्शन दिये थे, तब तक मैं यही समझती थी
कि थर्ड-क्लासका टिकट हमारे आधुनिक आभिजात्यका एक
उज्ज्वल निदर्शन है। अन्तमें तुम रेलपर चढ़े सेकेण्ड-क्लासमें,
और मेरे तन-मनको भी जोरसे खींचा उसी क्लासकी तरफ।
यहाँ तक कि मेरे मनमें एक चतुराई भी सूझी, सोचा कि
गाड़ी छूटते वक्त जल्दीमें तुम्हारे डब्बेमें चढ़ जाऊँगी,
कहूँगी—जल्दीमें गलती हो गई। काव्य-शास्त्रमें खियाँ ही
अभिसारके लिए जाती रही हैं, सांसारिक विधि-निषेधकी बाधा
होनेसे ही शायद कवियोंने ऐसी कृष्ण की है। ऊहापोह
करनेवाले मनकी जितनी भी विखरी हुई इच्छाएँ हैं, वे भीतरकी
अंधेरी कोठरियोंमें मटकती हुई सिर धुनती फिरती हैं दीवारोंपर।
खियाँ उनकी बातको परदेके बाहर किसी भी हालतमें स्वीकार
नहीं करना चाहती। तुमने मुझसे मंजूर करा लिया है।”

“क्यों मंजूर किया?”

“नारी-जातिका घमंड तोड़कर सिर्फ मंजूरी ही तो तुम्हें
दे सकी हूँ, और तो कुछ दे नहीं सकी।”

सहसा अतीतने एलाका हाथ पकड़कर दवा लिया, कहने
लगा—“क्यों नहीं दे सकी? किस बातकी रुकावट थी मुझे
ग्रहण करनेमें? समाजकी? जाति-भेदकी?”

“छि, छि, ऐसी बात मनमें भी न लाना। बाहरकी कोई
बाधा नहीं, बाधा है भीतरकी।”

“काफी प्रेम नहीं हुआ अभी?”

“काफीके कोई मानी नहीं होते, अन्तू! जो शक्ति हाथसे

पहाड़को न हटा सकी हो, उसे कमजोर कहकर चिढ़ाओ मत।
शपथ करके सत्य ग्रहण किया था, व्याह न करूँगी। ऐसा न
करनेपर भी, सम्भव था कि व्याह न भी होता।”

“क्यों नहीं होता?”

“नाराज मत होओ, अन्तू! प्यार करती हूँ, इसांसे तो
संकोच है। मैं निःस्व हूँ, देना भी चाहूँ तो कितना दे सकती
हूँ तुम्हें।”

“साफ-साफ बताओ भी तो?”

“बहुत बार बता चुकी।”

“फिर बताओ, आज सब कहना-सुनना खतम कर लेना
चाहता हूँ—इसके बाद फिर कभी न पूछूँगा।”

बाहरसे आवाज आई—“जीजी।”

“क्या रे अखिल, आ न भीतर।”

लड़केकी उमर सोलह या अठारह सालकी होगी। जिद्दी
शराब-भरा प्यारा चेहरा है। घुंघराले बाल हैं बड़े बड़े उलझे
हुए; कोमल गेहूँभा रंग है, चंचल आँखोंमें चमक है एक
तरहकी। खाकी रंगकी कमीज और उसके ऊपर उसी रंगका
लौट-कालरका ऊँचा कोट पहने हैं, कमीजका एक बटन खुला
है, जिससे छातीका कुछ हिस्सा दिखाई पड़ता है। कमीजकी
दोनों तरफकी जेबें तरह-तरहकी फालतू सम्पत्तिसे फूल उठी हैं,
ऊपरकी जेबमें विचित्र फलोंवाला एक हिरनके सींगका चाकू
है। कभी तो वह खेलनेकी नाव बनाता है और कभी
एरोप्लेनका नमूना। फिलहाल वह मल्लिक कम्पनीके आयुर्वेदिक
वर्गचेमें पानी निकालनेवाली एक मशीन देख आया है;—
विस्कुटकी टीन बगैरह बहुत-सी फालतू चीजोंको जोड़-जाड़कर
उसीकी नकल करनेकी कोशिश कर रहा है। उंगली काट ली
है, उसपर लत्ता लपेट रखा है,—एला पूछती है तो कुछ
जवाब ही नहीं देता। एला इस मा-बाप-मरे लड़केकी दूरके
नातेसे वहन लगती है,—वेचारी बहुत वर्दाश करती है।
न-जाने कहाँसे वह एक ठिगनी जातका घन्दर सस्ते दामोंमें ले
लाया है। यह जानवर भंडार-घरकी चोरी करनेमें बहुत दक्ष
है। एलाके अपने छोटे-से परिवारमें यह जानवर एक बड़ा
भारी उपद्रव है।

कमरेमें घुसते ही अखिलने सलज्ज शीघ्रतासे आकर एलाके
पैर छूकर प्रणाम किया। एला समझ गई कि उसका यह

प्रणाम किसी एक विशेष अनुष्ठानसे सम्बन्ध रखता है, क्योंकि भक्तिवृत्ति उसके स्वभावके बाहरकी चीज है।

एलाने कहा—“अपने अन्तु-भइयाको प्रणाम नहीं करेगा ?”

कुछ जवाब न देकर अखिल अतीनकी तरफ पीठ फेरकर खड़ा हो गया। अतीन ठहाका मारकर हँस पड़ा। अखिलकी पीठ ठोककर बोला—“शाबास, सिर अगर झुकाना ही हो तो सिर्फ एक देवताके आगे। उस एकेश्वरीके आगे मैं भी सिर झुकाता हूँ,—अब प्रसादीके बँटवारेमें नाराजी मत दिखाओ भाई, काफी बचा हुआ है।”

एलाने अखिलसे कहा—“तुम्हें क्या कहना है, बोल।”

अखिलने कहा—“कल मेरी माका मरनेका दिन है।”

“अच्छा। मैं तो भूल ही गई थी। आदममें किसीको न्योतना चाहता है क्या ?”

“किसीको नहीं।”

“तो क्या चाहता है ?”

“पढ़ने लिखनेकी छुट्टी चाहता हूँ तीन दिनकी।”

“क्या करेगा छुट्टी लेकर ?”

“खरगोशके लिए पिंजड़ा बनाऊँगा।”

“खरगोश तो तेरा एक भी नहीं बचा, पिंजड़ा बनायेगा किसके लिए ?”

अतीनने हँसकर कहा—“खरगोश तो कल्पना करनेसे ही हो सकते हैं, असल बात तो पिंजड़ा बनाना है। मनुष्य तो अनित्य है, आता है और चला जाता है, परन्तु चिरकालके लिए पक्षी तौरसे पिंजड़ा बनानेका भार भगवान मनुसे लेकर उनके आधुनिक अवतार तक सबने ले रखा है। इस कामका उन्हें बड़ा जबरदस्त शौक है।”

“अच्छा, जा, तेरी छुट्टी है।”

दूसरी बात न करके अखिल चटसे भाग गया।

अतीनने कहा—“इसे मैं बस नहीं कर सका। मेरी पुरानी सम्पत्तिकी फाइन-पोंछनमें एक रिष्टवाच बची हुई थी, आधुनिक लड़कोंके लिए ऐसी चीज राजाके राज्यसे कम नहीं। एक दिन उसे मैंने देना चाहा, तो सिर हिलाकर चलता बना। इसीसे समझ सकती हो कि हम दोनोंका मामला साम्प्रदायिक हो उठा है, अन्तु-अखिल दंगा होनेके लक्षण हैं ये।”

“लड़कोंसे मेल करनेमें तुम्हारा जोड़ मिलना मुश्किल है, फिर भी इस बन्दरसे तुमने हार क्यों मान ली ?”

“बीचमें जो तीसरा पक्ष देखल दे रहा है, नहीं तो हम दोनों तो हरि-हर बन जाते। खैर जाने दो,—तुम क्या कैफियत देना चाहती हो ? क्यों मुझे अलग रखा ?”

“एक सीधी-सी बात तुम्हें याद क्यों नहीं रहती, कि तुमसे मैं उमरमें बड़ी हूँ ?”

“बजह यह कि इस सीधी-सी बातको मैं भूल नहीं सकता कि तुम्हारी उमर अठाईसकी है और मेरी अठाईस साल कुछ महीने ज्यादाकी है। प्रमाणित करना भी बहुत सहज है, क्योंकि दस्तावेज ताम्रशासनपर ब्राह्मीलिपिमें नहीं लिखा है।”

“मेरा अठाईस तुम्हारे अठाईसको पार करके बहुत दूर पहुँच गया है। तुम्हारे अठाईसमें यौवनकी सभी वस्तियाँ निर्धूम जल रही हैं। अब भी तुम्हारी खिड़कियाँ जिनकी ओर खुली हुई हैं, वे अनागत हैं—अचिन्त्य हैं।”

“एली, मेरी बात तुम किसी भी कदर समझना चाहती ही नहीं, इसीसे नहीं समझती। दलके सामने भगवानके सत्यके विरुद्ध सत्यका प्रण किया है, इसीसे नाना युक्ति-तर्कोंसे अपनेको बहला रही हो और साथ ही मुझे भी। बहलाओ, मगर यह बात मत कहो कि मेरे जीवनमें अब भी अनागत अचिन्त्य दूर रह गया है। आ गया है वह, और वह हो तुम। तो भी, अभी तक वह अनागत है ! तो क्या हमेशा ही उसकी तरफ खिड़की खुली ही रहेगी ? उस शून्यके भीतरसे क्या बराबर मेरा ही आर्त स्वर बजता रहेगा—चाहता हूँ, तुम्हें चाहता हूँ,—और दूसरी तरफसे कोई प्रत्युत्तर ही न आयेगा ?”

“नहीं आता, ऐसी बात कैसे कह रहे हो तुम, अकृतज्ञ ! चाहती हूँ, चाहती हूँ, चाहती हूँ, तुमसे ज्यादा और कुछ भी नहीं चाहती इस दुनियामें। जिस समय आँखें चार होते ही ‘शुभदृष्टि’ सम्पन्न हो जाती, उस समय जो मिले नहीं। मगर फिर भी कहती हूँ, सौभाग्यसे नहीं मिले।”

“क्यों ? नुकसान क्या था उसमें ?”

“मेरा जीवन सार्थक हो जाता, उसकी कीमत ही क्या है ! किसीके समान नहीं हो जो तुम ; तुम महान हो। दूर हूँ, इसीसे तो देख सकी तुम्हारे उस असाधारण प्रकाशको।

साधारण अपनेको लेकर तुम्हें जकड़ डालनेकी कल्पना करनेमें मुझे डर लगता है। मेरी छोटी-सी दुनियामें रोजमर्राकी तुच्छताके आदमी बनोगे तुम। कैसे समझाऊं तुम्हें कि मैं कितना ऊपरको मुँह उठाकर तुम्हारा ललाट देख पाती हूँ ? स्त्रियोंकी पूँजी क्या है, जीवनकी छोटी-छोटी बातें ही तो ? उस बोझसे तुम-सरीखे पुरुषके जीवनको भी ढक देनेमें डरती न हों, ऐसी स्त्रियाँ भी हैं, पर उन्होंने कितने जीवनोंको दुःखान्त बना दिया है, सो मैं जानती हूँ। अपनी आँखोंके सामने देखा है, लताके जालने वनस्पतिको बढ़ने नहीं दिया ; वही स्त्रियाँ शायद समझती हैं उन्हें जकड़े रहना ही काफी है।”

“एला, जो पाता है, वही जानता है कि ‘काफी’ किसे कहते हैं।”

“अपनेको बहलाना नहीं चाहती, अन्तः। प्रकृतिने हम स्त्रियोंका आजन्म अपमान किया है। दुनियामें हम प्राणि-विज्ञानका संकल्प-ढोती आई हैं, और साथ-साथ जीव-प्रकृतिके अपने जुगाड़ किये हुए अस्त्र और मन्त्र भी। उनका अगर ठीक तौरसे इस्तेमाल करना जानती होतीं, तो सस्तेमें हम अपना सिंहासन जीत लेतीं। साधनके क्षेत्रमें पुरुषको अपनी श्रेष्ठता प्रमाणित करनी पड़ती है। वह श्रेष्ठता क्या चीज है, सौभाग्यवश मुझे उसे जाननेका मौका मिला है। पुरुष हमसे बहुत बड़े हैं।”

“ऊँचाईमें।”

“हाँ, ऊँचाई ही में। प्रकृतिको लाँघकर बढ़ा होनेका तोरण-द्वार उसीके माथेपर है। मेरे बुद्धि-उद्धि हो चाहे न हो, नम्र होकर अपनेको समर्पित कर सकी हूँ, सो सिर्फ ऊपरकी ओर देखकर।”

“किसी नीचने ऊँचम नहीं मचाया ?”

“मचाया है। हमारे खिंचावसे जो प्राणि-विज्ञानकी नीचेकी संजिल तक उतर आते हैं, वे भेदे होकर बिगड़ जाते हैं। व्यक्तिगत विशेष इच्छाएँ या आवश्यकताएँ न रहनेपर भी, नीचे खींच लानेके एक साधारण पड़न्र्वमें हम सभी नारियाँ एक होकर मिल गई हैं,—सज-धजमें, वनाव-शृंगार और हाव-भावमें, वनावटी बातोंमें हम सब एक हैं।”

“वेवकूफोंको बहलानेके लिए ?”

“हाँ जी हाँ, तुम लोग वेवकूफ तो हो ही ! बहुत ही

आसान मन्त्रसे बहल जाते हो, इसीसे तो हम लोगोंको इतना गहर है। हम वेवकूफोंको प्यार करती हैं, फिर भी उनकी मोटी वेवकूफीकी सबसे ऊँची चोटीपर देखा है सूर्योदय,—जब वे प्रकाश लाये, तो उनकी पूजा की है। गन्दे नीच निन्दक भी बहुत देखे हैं, और कंजूस कुत्तिसत भी देखे हैं। उन सबको छाँट-छूटकर और सबको मानकर भी तो बहुत वच रहता है। उन बचे हुएओंको ही देखा है उज्ज्वल प्रकाशमें। उनमें से बहुतोंका नाम तक किसीको याद न रहेगा, फिर भी वे बड़े हैं—महान हैं।”

“एली, तुम्हारी बातें सुनकर मुझे लज्जा आती है, सोचता हूँ प्रतिवाद न करनेसे भद्दा मालूम होगा। साथ ही अन्ध भी लगता है। पर सच्ची बातमें तुमसे डार नहीं मान सकता। अपने देशके पुरुषोंमें कापुरुषताके जो लक्षण मैं वचनसे देखता आया हूँ—जिसने मुझे बार-बार चिन्तामें डाला है—उसे आज मैं तुमसे कहूँगा ही। मैंने देखा है, मेरे जान-पहचानके परिवारमें और मेरे अपने घर भी सासके प्रसन्न अत्यायका आधिपत्य मैंने अपनी आँखोंसे देखा है। सासोंके अत्याचारकी कथाएँ इस देशमें हमेशासे प्रचलित हैं।—”

“हाँ, सो तो मैं जानती हूँ। अपने घरमें देखा है, जो आदमी खुद भीतरसे कमजोर है, कमजोरोंका यम तो वही है—उसके समान निष्ठुर और-कोई हो ही नहीं सकता।”

“एला, ऐसी बात कहकर तुम अपनी भावी सासकी निन्दाकी भूमिका मत बाँधो। नववधूपर अमानुषिक अत्याचारके समाचार अक्सर सुननेमें आते हैं, और देखते हैं कि उसकी प्रधान नायिका हैं सास। मगर एक बात पूछता हूँ, सासको बेरोक-टोक अत्याय करनेका अधिकार दिया किसने है ? उसी माके ललायोंने ही तो। अत्याचारिणीके विरुद्ध अपनी स्त्रीकी लाज रखनेकी शक्ति जिनमें नहीं, उन नाबालिगोंकी क्या कभी भी व्याह करनेकी उमर होती है ? जब होती है, तब वे अपनी स्त्रीके लला वन जाते हैं। जहाँ पुरुषका पौख कमजोर है, वहीं स्त्रियाँ उतर आती हैं, और उन्हें भी नीचताकी ओर उतारती रहती हैं। अब तो देखते हैं कि हमारे देशमें जो लोग कोई बड़ा काम करना चाहते हैं, वे स्त्रीको त्याग देना चाहते हैं—स्त्री कापुरुष हैं वे, स्त्रीसे डरते हैं। इसीलिए इस कापुरुषोंके देशमें तुमने प्रण किया है व्याह न करनेका, इस डरसे कि कहीं कोई

कोमल-कच्चा मन तुम्हारे जनाने प्रभावसे लचककर टेढ़ा न हो जाय । परन्तु जो यथार्थ पुरुष हैं, वे यथार्थ स्त्रीके जोरसे ही चरितार्थ होंगे—विधाताका यह अपने हाथका लिखा हुआ हुक्मनामा हमारे खूनमें मौजूद है । जो उस विधि-लिपिको व्यर्थ कर देता है, वह पुरुष-नामके योग्य नहीं । परीक्षाका भार तुम्हारे ही हाथमें था, परीक्षा करके मुझे देखा क्यों नहीं ?”

“अन्तू, वहस मैं कर सकती थी, पर तुम्हारे साथ वहस न करूँगी । क्योंकि, मैं जानती हूँ—तुमने अत्यन्त क्षोभमें आकर ही ये सब क्रियुक्तियाँ पेश की हैं । मेरे प्रणकी बात तुमसे भुलाये भूलती नहीं ।”

“नहीं, भूल नहीं सकता । तुमने तो कह ही दिया, पुरुष महान है, और तुम्हें डर इस बातका है कि स्त्रियाँ उन्हें छोटा बनाती हैं । स्त्रियोंको महान होनेकी जरूरत ही नहीं होती । वे जितनी हैं, उतने ही मैं सम्पूर्ण हूँ । जो अभाग पुरुष महान नहीं है, वह असम्पूर्ण है ;—उसके लिए सृष्टिकर्ता लज्जित है ।”

“अन्तू, उस असम्पूर्णतामें भी हमें विधाताकी इच्छा दिखाई देती है,—वह महान इच्छा है ।”

“एली, विधाताकी इच्छा ही बड़ी है, सो तो मैं नहीं कह सकता, क्योंकि उनकी कल्पना भी किसी अंशमें छोटी नहीं, उस कल्पनाकी तूलिकाके स्पर्शका जादू तो स्त्रियोंकी ही प्रकृतिमें लगा है, वे ही संसार-चेतनमें कलाकारकी साधना लाई हैं, और उन्हींने अपने तन-मन-प्राणोंसे रंग और स्वरसे अनिर्वचनीयको प्रकट किया है । यह सहज-स्वाभाविक शक्तिका कार्य है, और इसीलिए सहज नहीं है । यह जो तुम्हारे शंख-से चिकने रंगके कंठमें सोनेका हार दिखाई दे रहा है, इसके लिए तुम्हें नोट्स कंठस्थ नहीं करने पड़े । और ऐसी अभागिन भी मौजूद हैं, जो अपने जीवन-लोकमें रूपकी सृष्टिमें रस नहीं जगा सकीं, या तो वे सोनेके मोटे कड़े पहनकर गृहिणी-पना दिखलानेमें ही खुश हैं, या फिर दासी बनके आँगन लीपकर जीवन विताती हैं । संसारमें इन सब असमर्थोंकी कोई शुमार नहीं ।”

“मैं तो सृष्टिकर्ताको दोष दूँगी, अन्तू ! स्त्रियोंको लड़नेकी ताकत क्यों नहीं दी उसने ? कुल करके क्यों उन्हें अपनी रक्षा करनी पड़ती है ? इस बातको जब मैंने कितावोंमें पढ़ा कि दुनियामें सबसे बढ़कर जघन्य जो जासूसीका रोजगार है, उस रोजगारमें स्त्रियोंकी निपुणता पुरुषोंसे बढ़कर है, तब मैंने

विधाताके पैरोंपर सिर धुनकर कहा था कि सात-जनममें मुझे लड़की होकर न पैदा होना पड़े । पुरुषोंको मैंने नारीकी आँखोंसे देखा है, इसीसे सब-कुछ लाँचकर मैंने उनकी श्रेष्ठता ही देखी है, मैं उनकी महानताको ही देख सकी हूँ । जब देशके वारेमें सोचती हूँ, तो उन सब सोनेके टुकड़े लड़कोंकी ही बात सोचती हूँ ; मेरा देश तो उन्हींमें है । वे अगर गलती करें, तो बहुत बड़ी गलती करेंगे । मेरी तो छाती फटती है, जब मैं सोचती हूँ कि अपने ही घरमें उन्हें जगह नहीं मिली । मैं उन्हींकी मा हूँ, उन्हींकी बहन हूँ, उन्हींकी लड़की हूँ—इस बातको याद करके मेरी छाती भर आती है । अंगरेजी-पढ़ी लड़कियाँ अपनेको सेविका कहनेमें हिचकती हैं, पर मेरा सम्पूर्ण हृदय कह उठता है—मैं सेविका हूँ, तुम लोगोंकी सेवा करनेमें ही मेरी सार्थकता है । हमारे प्रेमकी चरम सीमा इसी भक्तिमें है ।”

“अच्छी ही बात है ; तुम्हारी उस भक्तिके लिए बहुतसे पुरुष मौजूद हैं, पर मुझे क्यों ? भक्तिके बिना भी मेरा काम चल जायगा । स्त्रियोंके वारेमें जो लिस्ट तुमने दी है, मा-बहन और लड़कीकी, उसमें एक मुख्य बात तो रह ही गई,—मेरी ही तकदीरका दोष है ।”

“तुम्हारी अपेक्षा मैं तुम्हें अधिक पहचानती हूँ, अन्तू । मेरे लाड़-प्यारके छोटे-से पिंजड़ेमें दो ही दिनमें तुम्हारे डैने फड़फड़ा उठते । हम लोगोंके हाथमें तृप्तिके जो साधारण उपकरण हैं, वे एक-न-एक दिन तुम्हारे लिए निवट ही जाते । तब तुम समझ जाते कि मैं कितनी गरीब हूँ । इसीसे मैंने अपनी सारी माँगें वापस ले ली हैं, अपने सम्पूर्ण हृदयसे तुम्हें देशके हाथ सौंप दिया है । वहाँ तुम्हारी शक्ति स्थानकी कमीसे तकलीफ न पायेगी ।”

अतीनकी दोनों आँखें चमक उठीं, मानो अत्यन्त व्यथित स्थानपर चोट लग गई हो । कमरेमें इधर-से-उधर चक्कर लगा आया एक वार । उसके बाद एलाके सामने आकर खड़ा हो गया, बोला—“तुमसे कड़ी बात कहनेका समय आ गया है । मैं पूछता हूँ, देशके हाथ हो चाहे और किसीके हाथ, तुम मुझे सौंपनेवाली कौन हो ? तुम सौंप सकती थीं माधुर्यका दान, जो वास्तवमें तुम्हारी अपनी चीज थी । तुम उसे सेवा कहती हो तो वही सही, और वरदान कहना चाहो तो वह भी कह सकती हो । मुझे अगर अहंकार करने दो तो अहंकार

कहूँगा, अगर नष्ट होकर अपने द्वारपर आनेके लिए कहो तो सो भी आ सकता हूँ। लेकिन तुम अपने दानके अधिकारको आज तुच्छ-रूपमें देख रही हो। नारीकी महिमासे हृदयका ऐश्वर्य जो तुम दे सकती थीं, उसे छिपाकर तुम कह रही हो—देशके हाथ सौंप दिया तुम्हें! नहीं दे सकतीं तुम, नहीं दे सकतीं, कोई भी नहीं दे सकता। देशका मामला ऐसा नहीं, जो एक हाथसे दूसरे हाथमें सौंपा जा सके।”

एलाका चेहरा फक पड़ गया। बोली—“क्या कह रहे हो, साफ समझमें नहीं आया।”

“मैं कह रहा हूँ, नारीको केन्द्र करके जो माधुर्यलोक विस्तृत है, उसका प्रसार यद्यपि देखनेमें छोटा मालूम होता है, पर उसके भीतरकी गहराईकी सीमा नहीं, वह पिंजड़ा नहीं है। लेकिन ‘देश’ की उपाधि देकर जिसमें मेरा घोंसला करार दिया था, वह तुम्हारे दलका बनाया हुआ देश है,—दूसरोंके लिए चाहे जो हो, मेरे स्वभावके लिए वही तो पिंजड़ा है। मेरी निजी शक्ति उसमें सम्पूर्णतः प्रकट नहीं हो पाती, इसीसे वह अस्वस्थ हो जाती है, विकृति आ जाती है उसमें; जो उसकी वास्तवमें अपनी चीज नहीं है, उसे व्यक्त करनेका पागलपन करती है,—शरमा जाता हूँ, पर क्या कहूँ, निकलनेका दरवाजा जो बन्द है। जानती नहीं, मेरे डैन् डिन्न-भिन्न हो गये हैं, दोनों पाँव टिडुर जानेसे वेड़ी लग गई है। अपने देशमें अपना स्थान चुन लेनेकी जिम्मेवारी अपनी ही शक्तिपर है, वह शक्ति मुझमें थी। क्यों, तुमने मुझे वह बात भुलवा दी?”

क्लिट कंठसे एलाने कहा—“तुम भूले क्यों, अन्तू?”

“भुलानेकी शक्ति तुम लोगोंकी अमोघ है, नहीं तो भूलनेके कारण मैं लज्जित होता। मैं हजार-बार मारूँगा कि तुम मुझे भुला सकती हो; अगर न भूलता, तो अपने पौरुषपर मुझे सन्देह होता।”

“अगर यही बात है, तो मुझे डाँट क्यों बता रहे हो?”

“क्यों? यही तो बतला रहा हूँ। भुलाकर तुम वहीं ले जाओ, जहाँ तुम्हारी अपनी दुनिया है, अपना अधिकार है। दलकी बात प्रतिध्वनिके रूपमें कही जाय, तो कहना होगा कि तुम कुछ लोगोंने संसारमें सिर्फ एक ही कर्तव्यका मार्ग बाँध रखा है। तुम लोगोंके पत्थरके बने उस सरकारी कर्तव्य-पथपर मेरा जीवन-स्रोत बार-बार चक्कर खा-खाकर अपनी गति खो बैठता है।”

“सरकारी कर्तव्य?”

“हाँ, तुम लोगोंका स्वदेशी कर्तव्य यानी जगन्नाथका रथ। मन्त्रदाताने कहा, सब मिलकर एक मोटे रस्सेको कन्धेपर लेकर खींचते रहो आँखें मींचकर—बस, यही एकमात्र काम है। हजारों लड़के कमर बाँधकर लगे रस्सा खींचने। कितने ही पहियेके नीचे आ पड़े और कितने ही जिन्दगी-भरके लिए पंगु हो गये। इतनेमें वापसी रथका मन्त्र पढ़ा जाने लगा। रथ लौटा। जिनकी हड्डियाँ टूट चुकी थीं, उनकी तो हड्डियाँ जुड़नेसे रहीं; आखिर पंगुओंको भाड़-बुहारकर रास्तेके किनारे धूलके ढेरमें ढाल दिया गया। अपनी शक्तिपर भरोसा यानी आत्म-विश्वासकी तो तुमसे ही ऐसी रेढ़ मार दी गई थी कि सभी-कोई अपनेको सरकारी खिलौनेके साँचेमें ढाल देनेके लिए स्पर्द्धाके साथ राजी हो गये। सरदारके रस्सा खींचते ही जब सबोंने नाच नाचना शुरू कर दिया, तब आश्चर्यके साथ सोचने लगे—इसीको कहते हैं शक्तिका नाच। नाचनेवालेने ज्यों ही जरा ढील दी, त्यों ही हजारों मानस-खिलौने रद्द कर दिये गये।”

“अन्तू, उनमें से बहुतसे जो पागलोंकी तरह कदम बढ़ाने लगे, तालको ठीक न रख सके।”

“शुरूसे ही जानना चाहिए था कि आदमी ज्यादा देर तक पुतली-नाच नहीं नाच सकता। माना कि मनुष्यके स्वभावको संस्कार भी बनाया जा सकता है, पर उसमें समय लगता है। स्वभावका गला घोटकर मनुष्यको कठपुतली बना देनेसे काम आसान हो जाता है, यह समझना भूल है। मनुष्यको आत्म-शक्तिका वैचित्र्यवान जीव समझना सत्य ही है। मुझे अगर वैसा ही जीव समझकर श्रद्धा करती, तो मुझे तुम अपने इस गुटमें न खींच लाती, बल्कि हृदयसे लगाती।”

“अन्तू, शुरूमें ही मुझे तुमने अपमानित करके क्यों नहीं भगा दिया? क्यों मुझे अपराधी बनाया?”

“यह तो तुमसे बार-बार कहा है। तुम्हारे साथ मिल जाना चाहता था, बात अत्यन्त सहज थी। लोभ तो दुर्जय था ही,—और प्रचलित मार्ग भी बन्द थे। आखिर जान हथेलीपर रखके चल पड़ा टेढ़े मार्गसे। तुम मुग्न हो गई। आज मालूम हो गया कि इसी रास्ते मरना होगा। मेरी वह मौत जब पूरी हो चुकेगी, तब तुम मुझे दोनों हाथ बढ़ाकर वापस बुलाओगी—रात और दिन हमेशा अपने शून्य हृदयके पास बुलाती रहोगी।”

“तुम्हारे पैरों पड़ती हूँ, इस तरह मत कहो ।”

“वेवकूक-सा बक रहा हूँ, रोमान्टिक-सा सुनाई दे रहा है । मानो देह-हीन वस्तु-हीन पानेको ही पाना कहते हों ! मानो तुम्हारा उस दिनका विरह आजके प्रतिहत मिलनकी कीमत एक कौड़ो भी चुका सकता है ।”

“आज तुम्हें बातोंने पकड़ लिया है, अन्तू ।”

“क्या कहती हो ! आज पकड़ा है ! हमेशासे पकड़ रखा है । जब मेरी उमर कम थी, अच्छी तरह मुँह भी न खुला था, तभी उस मौन अन्धकारके भीतरसे बातें फूट-फूटकर निकलना चाहती थीं, कितनी उपमाएँ, कितनी तुलनाएँ, कितनी असंलग्न बातें, कोई ठीक है ! जब उमरपर आया, साहित्यालोकमें प्रवेश किया, तो देखा कि इतिहासके हर रास्तेपर राज्य-साम्राज्यके भय स्तूप हैं, देखा कि वीरोंकी रणसज्जाएँ छिन्न-भिन्न पड़ी हैं, विदीर्ण जयस्तम्भोंकी दरारोंमें से पीपलके पौधे निकल रहे हैं,—अनेक शताब्दियोंके अनेक प्रयास धूलके स्तूपोंमें स्तब्ध पड़े हैं । समयके उस कूड़े-करकटके ढेरके ऊपर सिर्फ एक अटल वाणीका ही सिंहासन दिखाई दिया । उस सिंहासनके चरणोंके पास युग-युगान्तरकी तरंगें साधंग लोट रही हैं । कितने ही दिन मैं न कल्पना की है कि उस सिंहासनके स्वर्ण-स्तम्भोंपर अलंकार रचनेका भार लेकर आया हूँ । तुम्हारे अन्तूको आजसे नहीं, हमेशासे बातोंने पकड़ रखा है । उसे तुम कभी भी, किसी दिन, ठीक-ठीक पहचान सकोगी, इसकी आशा अब नहीं रही ।—उफ, उसे तुमने अपने धूलके शतरंजके मुहरोंमें दाखिल कर लिया !”

एलाने चौकीसे उतरकर अतीनके पैरोंपर अपना सिर रख दिया । अतीनने उसे उठाकर पास बिठा लिया । कहा—
“तुम्हारी इस छरहरी देहको मैंने अपनी बातोंसे ही मन-ही-मन सजाया है, तुम मेरी संचारणा पल्लविनी लता हो, तुम मेरी ‘सुखमिति वा दुःखमिति वा’ हो । मेरे चारों तरफ अदृश्य आवरण है—वाणीका आवरण, साहित्यकी अमरावतासे आकर वह भीड़को सम्हाले रखता है । मैं निरस्वतन्त्र हूँ, इस बातको जानते हैं तुम्हारे मास्टर साहब, फिर भी मुझे विश्वास क्यों करते हैं ?”

“इसीलिए विश्वास रतेक हैं । सबके साथ मिलनेके लिए तुम्हें उनके बराबर उतरना पड़ता है । तुम स्वयं किसी भी

तरह नीचे उतर नहीं सकते । तुमपर मेरा विश्वास इसीलिए है । कोई भी स्त्री किसी भी पुरुषको इतना विश्वास नहीं कर सकती होगी । तुम यदि साधारण पुरुष होते, तो साधारण स्त्रीकी तरह ही मैं तुमसे डरा करती । निर्भय है तुम्हारा संग ।”

“धिक् है उस निर्भयको । भय होता, तो कम-से-कम उस पुरुषकी उपलब्धि तो करती । देशके लिए दुःसाहसका दावा करती हो तो अपने जैसी महीयसीके लिए क्यों न करोगी ? कापुरुष हूँ मैं । जसम्मतिके निषेधको भेदकर क्यों मैं तुम्हें जबरदस्ती हरण करके न ले जा सका बहुत पहले ही, जब कि समय हाथमें था ? भद्रता ! प्रेम तो बर्बर होता है ! उसकी बर्बरता पत्थर हटा देती है अपना रास्ता करनेके लिए । पागल झरना है वह, सभ्य शहरोंका पालतू नलका पानी नहीं ।”

एला चटसे उठ खड़ी हुई, बोली—“चलो अन्तू, भीतर चलो ।”

अतीन भी उठकर खड़ा हो गया, बोला—“डर ! इतने दिनों बाद डर शुरू हुआ ! जीत हो गई मेरी । पहले-पहल जब यौवन आया, तब तक स्त्रियोंको नहीं पहचाना । कल्पनामें उन्हें दुर्गम दूर रखकर देखा है ; यह प्रमाणित करनेका समय निकल गया कि तुम लोग जो चाहती हो, वही मैं चाहता हूँ । भीतरसे मैं पुरुष हूँ, बर्बर उद्दाम । समयको अगर न खोता, तो अभी तुम्हें वज्रबन्धनसे धर दबाता, तुम्हारी पसलियाँ चरचरा उठतीं ; तुम्हें सोचनेका समय न देता, रोनेके लिए साँसें भी तुममें बाकी न छोड़ता, निष्ठुरकी तरह खींच ले जाता तुम्हें अपने कच्चे मार्गमें । आज जिस मार्गमें आ पड़ा हूँ, वह मार्ग तलवारकी धारके समान संकीर्ण है, वहाँ एक साथ दो जनोंके चलनेकी जगह ही नहीं ।”

“मेरे डाकू, जबरदस्ती खीन ले जानेकी जहरत नहीं तुम्हें । लो, यह लो, मैं तुम्हारी ही हूँ ।”

कहते-कहते दोनों हाथ बढ़ाकर वह अतीनके पास पहुँच गई और आँखें मींचकर उसकी छातीसे लगकर उसने उसकी मुँहकी तरफ अपना मुँह बढ़ा दिया ।

खिड़कीमें से एलाने सड़ककी तरफ जो देखा, तो सहसा चौंकर बोली—“गजब हो गया ! वह देखो, देखते हो ?”

“क्या ?”

“उस चौराहेपर । जहर बढ़ है वह—यहीं आ रहा है ।”

“आने लायक जगहको वह जानता है ।”

“उसे देखते ही मेरा सारा शरीर संकुचित हो उठता है । उसके स्वभावमें मांस बहुत-सा है, बहुत चरबी है । जितनी ही मैं उससे वचनेकी कोशिश करती हूँ—अपनेसे उसे दूर रखना चाहती हूँ, उतना ही वह पास आ जाता है । गन्दा है, गन्दा है वह आदमी ।”

“मुझे वह देखे नहीं सुहाता, एला !”

“उसके बारेमें अनुचित कल्पना करनेके कारण मैं अपनेको शान्त करनेकी बहुत कोशिश करती हूँ—पर किसी भी तरह कर नहीं पाती । दूरसे उसकी फटी-फटी आँखें अपने लालायित स्पर्शसे मानो मेरा अपमान किया करती हैं ।”

“उसकी कुछ परवा न करो, एला । मन-ही-मन उसके अस्तित्वकी बिलकुल उपेक्षा नहीं कर सकती ?”

“उससे मैं डरती हूँ, इसीलिए वह ध्यानसे हटायें नहीं हटता । उसका एक भीतरका चेहरा मुझे दिखाई देता है—बिलकुल अष्टपद जन्तुकी तरह । मालूम होता है, वह अपने भीतरसे आठों चिपचिपे गन्दे पैर निकालकर किसी दिन मुझे असम्मानसे जकड़ डालेगा—निरन्तर इसी बातका षड्यन्त्र कर रहा है । इस बातको तुम नासमझ औरतोंकी आशंका समझकर हँसीमें उड़ा सकते हो, पर यह सच है कि भूतकी तरह यह मेरे सिरपर सवार है । सिर्फ अपने तई नहीं, तुम्हारे लिए मुझे और-भी डर लगता है,—मैं जानती हूँ तुम्हारी तरफ उसकी ईर्ष्या साँपके फनकी तरह फुसकार रही है ।”

“एला, ऐसे जानवरोंमें साहस नहीं होता, सिर्फ बढ़चू होती है, इसीसे उन्हें कोई छेड़ना नहीं चाहता । मगर मुझसे वह सर्वान्तःकरणसे डरता है, इसलिए नहीं कि मैं भयंकर हूँ, बल्कि इसलिए कि मैं उससे बिलकुल भिन्न जातिका हूँ ।”

“देखो अन्तः, जीवनमें मैंने अनेक दुःख और विपत्तियोंकी सम्भावना सोच रखी है, उनके लिए मैं तैयार भी हूँ—पर इतना हमेशा चाहती हूँ कि किसी दिन किसी दुर्घटनामें उसके कबलमें न पड़ूँ, उससे तो मौत अच्छी ।” कहते हुए उसने अतीनका हाथ पकड़कर दबा लिया, जैसे अभी तुरंत उद्धार करनेका समय आ गया हो ।

“जानते हो अन्तः, हिंस जन्तुके हाथसे अपमृत्युकी कल्पना

कभी-कभी मनमें आती है, तब देवतासे कहती हूँ—शेर या भालू खा जाय, सो भी अच्छा, पर ऐसा हरगिज न हो कि मुझे मगर कीचड़में खींच ले जाकर सड़ा-सड़ाकर खाय ।”

“मेरी शुमार क्या शेर-भालूओंमें की गई है ?”

“नहीं जी, तुम मेरे नरसिंह हो, तुम्हारे हाथसे मरनेमें ही मेरी मुक्ति है । वह सुनो, पैरोंकी आहट । ऊपर ही आ रहा है ।”

अतीन्द्रने कमरेसे निकलकर जोर गलेसे कहा—“बट, यह नहीं, चलो नीचेकी बैठकमें ।”

बटने कहा—“एला-जीजी—”

“एला-जीजी अभी कपड़े बदलने गई हैं, चलो नीचे ।”

“कपड़े बदलने ? इतनी देरसे ? साढ़े-आठ—”

“हाँ-हाँ, मैंने ही देर करा दी है ।”

“सिर्फ एक बात है । पाँच मिनट ।”

“वे बाथ-रूममें गई हैं । कह गई हैं, उनके खास कमरेमें कोई आवे, यह वे नहीं चाहती ।”

“आप ?”

“मेरे सिवा ।”

बट ओठोंमें मुस्कराया, उसका मुस्कराना बिलकुल स्पष्ट और व्यंग्यपूर्ण था । बोला—“हम लोग हमेशासे हैं, सो तो रह गये व्याकरणके साधारण नियमोंमें, और आपको दो दिन भी आये न हुए कि आप चटसे चढ़ गये आर्पप्रयोगमें । एकसेप्शन फिसलनेका रास्ता है, ज्यादा दिन टिकनेका नहीं, इसीसे छोड़ दिया ।”—कहकर जल्दीसे जूता खटखटाता हुआ नीचे चला गया ।

एक छोटीसी आरी हाथमें लिये, उसे हिलाता हुआ, अखिल आ पहुँचा, बोला—“चिट्ठी है ।” अपने सृष्टि-कार्यको अधूरा छोड़कर चला आया था ।

“तुम्हारी जीजी-रानीकी ?”

“नहीं, आपकी । आपके ही हाथमें देनेको कहा है ।”

“किसने ?”

“पहचानता नहीं ।”—कहकर चिट्ठी देकर चला गया । चिट्ठीके कागजका लाल रंग देखते ही अतीन समझ गया कि यह खतरेका सिग्नल है । गुप्त भाषामें लिखी चिट्ठी पढ़ी, उसमें लिखा था—“एलाके घर अब नहीं, उसे बिना कुछ जताये ही इसी वक्त चले आओ !”

कार्यके जिस शासनको उसने स्वीकार कर लिया है, उसके
असम्मानको वह आत्म-सम्मानके विरुद्ध ही समझता है।
चिट्ठीको उसने चाकायदा टुकड़े-टुकड़े करके फेंक दिया। क्षण-
भरके लिए वह वन्द वाथ-रूमके बाहर स्तब्ध होकर खड़ा रहा।
फिर तेजीसे बाहर निकल गया। सड़कपर खड़े होकर उसने एक
बार ऊपरकी खिड़कीकी ओर देखा।
आराम-कुरसीका थोड़ा-सा हिस्सा दीर-
साथ लाल-पीली धारियोंवाला चौखूँटे ता-
दिखाई दिया। चटसे उड़लकर अतीत
हो गया।

कमशः

धन्यकुमार जैन

क्यों ?

श्री वासुदेव शर्मा

खिले हुए सुरभित पुष्पोंकी
पहन मोहिनी माला ;
हरित पीत पट धारण करती
क्यों यह अवनी वाला ?
दिन-भर किसका आवाहनकर
वन - वैभव यक जाता ;
शीतल मन्द समीर भेज क्यों
कोई उसे सुलाता ?
सांध्य-गगनमें नाना विधिके
पदें कौन तनाकर ;
निशा आगमनपर निराश हो
जाता उन्हें उठाकर ?

श्यामांचलमें छिपी-छिपी क्यों
निशा - सुन्दरी आती ;
किस प्रियतमके हेतु गगनमें
दीपक - माल जगाती ?
सिन्धु तरंग-जाल उठ-उठकर
किसको सदा सुलाता ;
मेघ-मृदंग मन्द गर्जनकर
कौन रागिनी गाता ?
किसके लिए शरद उजियाली
ग्रीष्म किसलिए तपता ;
शिशिर और वर्षा क्यों आकुल
अतुपति किसको जपता ?

विश्व ! प्रतीक्षा है यह किसकी

जो नित साँझ - सवेरे ;

नाना रंगोंकी प्याली ले

काल लगाता फेरे ?

जानवरोंकी चरदाश्त

कुँवर सुरेन्द्र सिंह 'इन्द्र', आई० डी० डी०

हम अपने पशुओंकी तरफसे सदैव लापरवाह-से रहा करते हैं। उनके बाँधने-छोड़नेका, खिलाने-पिलानेका, नहलाने-धुलानेका, बीमारीमें दवा-इलाजका—मतलब यह कि किसी भी बातका यथोचित प्रवन्ध नहीं करते। संसारमें कोई भी वस्तु बिना चरदाश्तके ठीक-ठीक नहीं रह सकती। जो ग्रामीण हैं, या जिन्हें गाँवोंमें रहनेका या अधिक आने-जानेका अवसर मिला होगा, उन्होंने वहाँके पशुओंकी दशा देखी होगी। मैंने स्वयं जहाँ कहीं देखा, अधिकतर लोगोंको जानवरोंके प्रति लापरवाह ही पाया। इस विषयमें हम बुन्देलखण्डको विशेष उल्लेखनीय समझते हैं।

हमारे देशमें अधिकतर यही प्रथा है कि गाय, बैल, भैंस, भैंसा—सबको एक ही स्थानपर बाँधते हैं। यह रीति त्याज्य है। ऐसा करनेसे उनमें लड़ाइयाँ होती हैं, सबल निर्बलको मारते हैं। कभी-कभी तो गहरी चोटें भी लग जाती हैं। यदि जानवर कम हों, तो अलग-अलग ही बाँधना चाहिए, और यदि अधिक हों, तो गायें-गायें एकमें, भैंसे-भैंसे एकमें बाँध सकते हैं। बाँधना कैसे चाहिए, अब यह प्रश्न भी उठता है। मवेशियोंके बाँधनेके भी विभिन्न तरीके अमलमें लाये जाते हैं। कहीं सींगोंसे, कहीं पैरोंसे और कहीं गलोंसे जानवर बाँधे जाते हैं। कोई रस्तीसे और कोई लोहेकी जंजीरोंसे बाँधते हैं। जहाँ तक हो सके रस्तीके सहारे गलेसे ही बाँधना चाहिए। यदि जंजीरसे ही बाँधना हो, तो कम-से-कम पहले गलेमें रस्ती बाँधकर फिर उसमें जंजीर बाँध सकते हैं। ऐसा न करनेसे जानवरका गला कट सकता है और उन्हें काफ़ी तकलीफ हो सकती है। रस्ती या जंजीर न तो इतनी बड़ी ही हो कि जानवर अन्य जानवरोंसे लड़े या उनका खाना खा ले और न इतनी छोटी ही हो कि उसका उठना-बैठना तक मुहाल हो जाय। वैसे तो

आजकल डेरियोंमें अमेरिकाकी नई पशु-बंधन-पद्धतिका ही अधिक प्रयोग हो रहा है। इसमें थोड़े ही स्थानमें अधिक पशु बाँधे जा सकते हैं। उन्हें सुख भी रहता है। मगर हाँ, इतना अवश्य है कि यह पद्धति है खर्चीली, अतः हम इसे औसत किसानों और गोपालकोंके लिए मुनासिब नहीं समझते।

पशुशालाका फर्श यदि पक्का न हो, तो कोई हर्ज नहीं। कच्चा ही ठीक है। मगर एक-सा और चौरस ज़रूर होना चाहिए और उसपर बिछाली अवश्य होनी चाहिए। बिछालीसे मुख्यतया दो लाभ हैं। पहला तो यह कि पशुओंको इससे बहुत आगम मिलता है, और वे अधिक सर्दी-गर्मीसे बचे रहते हैं। दूसरा यह कि उनका मल-मूत्र बरबाद न होकर खादके काममें आ जाता है। बिछाली कोई ऐसी बहुमूल्य वस्तु नहीं है। वसन्तऋतुमें पतझड़ होता है। उसमें गिरी हुई पत्तियाँ इकट्ठी कर ली जायँ। बस, वही बिछालीके काममें लाई जायँ। बेकार चारा भी इस काममें आ सकता है। आठ-दस दिन बाद बिछालीका जो भाग खराब हो जाय, उसे इकट्ठा करके खादके गड्डेमें डाल दीजिए और उसके स्थानपर दूसरी पत्तियाँ या चारा डाल दीजिए। गोशालाकी सफाई प्रतिदिन होनी चाहिए। सालमें कम-से-कम दो बार उसे अवश्य कलईसे पोता जाना चाहिए।

पशुओंको खिलाना-पिलाना एक अन्य आवश्यक विषय है। यह बड़ा कठिन है, और बहुत कम पशुशालक ऐसे होंगे, जिन्हें इसका पूरा ज्ञान हो। पशुओंको ठीक समयपर और ठीक-ठीक मात्रामें खाना व पानी देना उतना ही आवश्यक है, जितना हमारे और आपके लिए। कुसमयपर व अन्दाज़िया खिलानेसे उनकी पाचनशक्ति बिगाड़ जाती है, जिससे उनके स्वास्थ्यपर आघात होता है। ऐसा करनेसे लाभके

बजाय हानि हो जाती है। खाना-पानी उनके कामके मुताबिक ठीक-ठीक हिसाब लगाकर ही देना चाहिए। जो जैसा काम करता है, उसके लिए वैसा ही भोजन नियुक्त हो चुका है। वस, उसीके मुताबिक देना चाहिए। मैंने इस विषयपर एक अलग लेख लिखा है। पानी ऋतुके अनुसार दिनमें दोसे चार बार तक पिलाना जरूरी है। पानी स्वच्छ हो। पशुओंके लिए जितना आवश्यक भोजन है, पानी भी उसमें कुछ कम आवश्यक नहीं।

पशुओंको नित्य प्रातः चरागाहोंमें चरानेके लिए अवश्य ले जाना चाहिए। ऐसा करनेसे दो लाभ है—(१) पशुओंकी तन्दुरुस्ती ठीक रहती है और (२) चारेकी काफ़ी बचत हो जाती है।

अमेरिका आदि देशोंमें लोग चारागाहोंके बहुत पक्षमें हैं। हमारे यहाँ तो पहलेसे ही यह प्रथा चली आती है। श्रीकृष्ण भगवान यही तो किया करते थे। जहाँ तक हो, पशुओंको वनोंमें चरानेको ले जाना चाहिए। जहाँ वन न हों, वहाँ स्वयं बनाये हुए चरागाहोंमें ले जा सकते हैं।

पशुओंके लिए शारीरिक स्वच्छता तथा कुछ व्यायाम भी बहुत जरूरी है। उनके शरीरको कमसे कम दिनमें एक बार अवश्य धोकर झाड़नेसे रगड़कर पोंछना चाहिए। ऐसा करनेसे एक तो उनके शरीरमें रक्त संचारमें सहायता पहुँचती है; दूसरे चर्म रोगोंके होनेकी कम सम्भावना रहती है; तीसरे दूध दुहते समय उसमें बाल या मैल आदि नहीं गिरता और शुद्ध दूध मिलता है। जानवरोंको नहलाते समय उनके खुर ज़रूर खूब साफ़ कर देना चाहिए, ऐसा न करनेसे 'खुर पका' (Foot and mouth) रोग पैदा हो जाया करता है। जहाँपर नदी हो, वहाँ जानवरोंको उसमें तैराना चाहिए। इससे स्नानका स्नान और कसरतकी कसरत दोनों ही हो जाते हैं। कम-से-कम भैंसोंको तो ज़रूर रोजाना नहलाना चाहिए। अगर रोज़ाना न नहलवा सकें, तो दूसरे दिन तो ज़रूर ही।

बच्चा जननेवाले जानवरोंकी विशेष देख-भाल होनी चाहिए। उनसे अधिक परिश्रम न कराया जाय। साथ ही उन्हें किसी प्रकारका डर आदि न दिया जाय। अन्य पशु उनसे लड़ने-झगड़ने न पायें। जहाँ तक हो सके, उन्हें एकांतमें आरामसे रखा जाय। ऐसे पशु उन स्थानोंमें कदापि न बाँधे जायँ, जहाँ पहले कभी किसी गायका गर्भपात (abortion) हो चुका हो। यह बीमारी छूतकी है, और दूसरे जानवरोंको शीघ्र ही लग जाती है। बियानके दस-पन्द्रह दिन पहलेसे पशुको दलिया वगैरा मुलायम खाना देना शुरू कर देना चाहिए।

बियानके समय विशेष चौकसी और निगरानीकी जरूरत होती है। यह पता लगाना कि बच्चा किस समय पैदा होगा, अभ्यास करते-करते आ जायगा; मगर उसके विशेष चिह्न यह है :—

(१) पशुकी योनि बढ़कर बहुत ढीली हो जाती है।

(२) जहाँपर पूँछ जुड़ी होती है, उसके दोनों तरफ गड्डेसे पड़ जाते हैं।

(३) जानवर बार-बार उठता है। बेचैनी अधिक हो जाती है।

वस, इन बातोंको देखते ही समझ लेना चाहिए कि अब बहुत ही शीघ्र बच्चा होनेवाला है। अतः उस समय विशेष चौकसी रखनी चाहिए। बच्चा पैदा होनेके कुछ ही घंटों बाद आँउर या फ़ेर (Plesanta) निकल जाती है। अगर इससे ज्यादा देर हो जाय और आँउर न निकले, तो किसी दक्ष ग्वालेसे निकलवा देनी चाहिए, अन्यथा यह पेटमें विष उत्पन्न करके सड़ा देती है। बच्चा हो चुकनेपर गर्म जलमें कपड़ा भिगोकर गायको पोंछ दीजिए। बच्चेकी सफाईका भार उसकी मातापर ही छोड़ दीजिए। मगर यदि उस बच्चेके कान, नाक व आँखें न साफ़ हुई हों, तो उन्हें अवश्य साफ़ कर देना चाहिए। बाँदको गाय और बच्चेको अन्य स्वच्छ स्थानपर बाँध

देना चाहिए। बच्चा हो चुकनेके दो-तीन घंटे बाद गायको गेहूँ, जौ या बाजरेका दलिया, जिसमें गुड़, सोंठ, नमक और पीपर मिली हो, खिलाया जाय। कुछ काल तक गाय और बच्चेको अधिक शीत और तापसे बचाना चाहिए।

भविष्यमें लड़ने-भिड़नेकी आपत्तिसे बचनेके लिए पाश्चात्य देशोंमें जानवरोंके सींग नहीं निकलने देते, क्योंकि कभी-कभी तो ऐसा देखा गया है कि दो पशु आपसमें लड़े और एकका सींग दूसरेके पेटमें घुस गया, जिससे उसका पेट फट गया। हमारे यहाँ डेरियोंको छोड़कर शायद ही कोई इस क्रियाको करते हों। इस क्रियाको 'डीहोर्निंग' (Dehorning) कहते हैं। बचपनमें ही यह क्रिया की जाती है। जैसे ही सींग निकलनेके चिह्न दिखलाई पड़े, वैसे ही कैंचीसे वहाँके बाल काट देते हैं। फिर उस जगहको पानीसे नम करके उसपर कास्टिक सोडाकी वत्ती (Caustic soda stick) को यहाँ तक रगड़ते हैं कि खून झलझला उठता है। बादको उस स्थानपर वेसलीन लगा देते हैं। इसका अवश्य ध्यान रखा जाता है कि कास्टिक सोडा बच्चेकी आँखोंमें या शरीरपर और कहीं न लगने पाये, वरना नुकसान पहुँचता है।

हम लोगोंने पशु-चिकित्सामें तो एक पाई भी खर्च करना नहीं सीखा है। खर्च करना तो दरकिनार हम उनकी देखभाल तक नहीं कर पाते। अगर पशु अच्छा हो गया तो अपने भाग्यसे और यदि मर गया तो मालिकके भाग्यसे।

जैसे ही कोई पशु बीमार हो, उसे तुरन्त दूसरे पशुओंसे अलगकर एकान्त स्थानमें बाँधना चाहिए। खाना, पानी और आरामका ज्यादा खयाल रखना चाहिए। बीमारीका ठीक-ठीक पता लगाकर उसीके मुताबिक दवा करनी चाहिए। आजकल प्रत्येक तहसीलमें एक-एक सरकारी पशु-औषधालय खुला हुआ है, जहाँ एक डाक्टर भी रहता है, जिसका काम पशुओंका मुफ्त इलाज करना है। चूँकि जनताको

अभी तक इसका पता ही नहीं है, इससे उसे इन डाक्टरों तथा औषधालयोंसे कोई लाभ नहीं पहुँचता। जो लोग जानते भी हैं, वे बेचारे अपढ़, देहाती होनेके कारण डरकर कुछ फायदा नहीं उठा सकते।

एक बारका किस्सा है; मैं अचानक एक गाँवमें पहुँच गया। वहाँपर 'खुर पका' (Foot and mouth) रोगका बड़ा प्रकोप था; दवाका कोई भी प्रबन्ध न था। कोई नावदानोंमें पशुओंको खड़ा करता था, तो कोई उनके खुरोंमें घूल ही भर देता था। सारे गाँवके पशु बीमार थे। मैंने वहाँके मुखियासे, जो जातिका लोधी था, कहा कि वह दोरोंके डाक्टरके पास जाकर सब हाल कहे। बड़ी मुश्किलमें वह डरता-डरता तैयार हुआ। वहाँ जाकर डाक्टर साहबसे सब हाल कहा। इसपर डाक्टर साहबने उसे दो-चार गालियाँ सुनाई और कहा—“सब साले अच्छे हो जायेंगे, ऐसी मामूली-मामूली बीमारियोंमें हमें जानेका सरकारसे हुक्म नहीं।” मुखियाने लौटकर यह सब किस्सा मुझे सुनाया। पाठक स्वयं समझ सकते हैं कि एक तो वैसे ही लोग इन बातोंसे अनभिज्ञ हैं, और जो कोई कुछ सहायता चाहते भी हैं, तो कामचोर कर्मचारी कुछ भी दिलचस्पी नहीं लेते। सम्भव है, ऐसा ही आदमियोंके अस्पतालोंमें भी होता हो।

अन्तिम बात जो मुझे इस विषयमें कहना है, वह है पशुओंके प्रति दया तथा सहानुभूतिके भाव रखना। जहाँ तक हो, उन्हें मारना-पीटना नहीं चाहिए। जो काम हम उनसे प्रेम और नम्रतासे करा सकते हैं, वह मार-पीटकर नहीं कराया जा सकता। मार-पीट करनेसे उनके स्वास्थ्य तथा मनोवृत्तियोंका हास होता है। फलस्वरूप हम उनसे उतना लाभ नहीं उठा पाते, जितना उठा सकते थे। वैसे नहीं तो धर्मानुसार ही सही, हमको पशुओंके प्रति सदैव दयाका भाव रखना चाहिए। फिर ऐसे पशुओंपर तो, जिनसे हमें सब-कुछ मिलता है, अत्यन्त अनुरागकी आवश्यकता है।

एक देहाती गीत सुनकर !

श्री अख्तर शेखानी

[यह कविता राजपूतानेमें टोंक राज्यके भाँची नामक एक गाँवमें कविके प्रवासकी यादगार है ।
कविके हाथमें चोट लग जानेसे उसे सारी रात नींद नहीं आई थी, यहाँ तक कि बड़े तड़के.....]

सुनो यह कैसी आवाज़ आ रही है,
कोई गाँवकी लड़की गा रही है ।
सहरके धुँधले - धुँधले मंज़रोंको,
शराबे - नग्मासे नहला रही है ।
उठी है शायद आटा पीसनेको
कि चक्कीकी सदा भी आ रही है ।
ग्रमोंसे चूर, अपने नन्हें दिलको,
तराना छेड़कर बहला रही है ।
फ़िज़ापर, बस्तियोंपर, जंगलोंपर
धुआँधार एक बदली छा रही है ।
छमाछम मेंहकी वूँदें पड़ रही हैं
कि सावनकी परी कुछ गा रही है ।
नये भीगे हुए सब्जेकी खुशबू,
हवाके साथ उड़कर आ रही है ।
हवाके मस्त भोंकोंके असरसे,
खुशी-सी दिलमें उमड़ी जा रही है !
मगर है ग्रमकी तासीर इस खुशीमें
गुज़रता ज़िन्दगी याद आ रही है ।
कोई याद आह इक ग्रमदीदह-सी याद
समे बचपनकी फिर दिखला रही है ।
गुले-खुदरौकी ग्रम-अंगेज़ खुशबू
करीबी वादियोंसे आ रही है ।

हवाकी सरसराहट है कि फितरत
पुरानी ज़िन्दगी दोहरा रही है ।
गरजते बादलोंकी तुन्द आवाज़,
फ़िज़ाको नींदसे चौंका रही है ।
ये बादल हैं कि हैं सावनके सपने
हवा जिनको उड़ाकर ला रही है ।
ये बिजली है कि इक मरमरकी नागिन
धुएँकी झीलपर लहरा रही है ।
ये वूँदें हैं कि बिजली आस्माँसे—
सितारे तोड़कर बरसा रही है ।
ये बादलकी गरज, बिजलीका कड़का
खुदाई सारी लरज़ी जा रही है ।
मगर वह ग्रमज़दा मासूम लड़की
बराबर गीत गाये जा रही है ।
कुछ ऐसा नातवाँ नग्मा है गोया,
कोई नन्हीं कली मुग्गा रही है ।
हवा—ठंडी हवा भरती है आहें,
फ़िज़ा—धुँधली फ़िज़ा थर्रा रही है ।
घरोंपर, खेतियोंपर, क्यारियोंपर,
उदासी-ही-उदासी छा रही है ।
न-जाने क्या असर है इस सदामें,
कि खुद फितरत भी बहकी जा रही है ।

सहर=प्रातःकाल ; मंज़रों=दृश्यों ; शराबे-नग्मा=संगीतकी मदिरा ; सदा=आवाज़ ; तराना=गान ; फ़िज़ा=प्रकृति ;
तासीर=असर ; गुज़रता=बीती हुई ; ग्रमदीदह=शोकपूर्ण ; समे=दृश्यों ; गुले-खुदरौ=अपने-आप पेदा होनेवाले फूल ;
ग्रम-अंगेज़=दर्द-भरी ; करीबी वादियों=समाजकी घाटियों ; फितरत=प्रकृति ; तुन्द=जोरदार ; मरमर=संगमरमर ;
लरज़ी=काँपी ; ग्रमज़दा=ग्रमकी मारी हुई ; मासूम=निर्दोष ;

ये घर ससुराल होगा शायद इसका
जमी गमगीन लयमें गा रही है :—

“यह बरखा रितु भी बीती जा रही है ।
हवा जो गाँवको मढका रही है
मेरे गँकेसे शायद आ रही है
यह बरखा रितु भी बीती जा रही है ।

घटाकी ऊदी - ऊदी चुनरियोंसे
मेरी सखियोंकी वू-वास आ रही है
यह बरखा रितु भी बीती जा रही है ।
मुझे लेने न आये अच्छे बाबुल
तुम्हारी याद आफत ढा रही है

यह बरखा रितु भी बीती जा रही है ।
मेरी अम्माको हो इसकी खबर क्या,
कि ‘चम्पा’ इस जगह घबरा रही है ।

यह बरखा रितु भी बीती जा रही है ।
न ली मैयाने भी सुध-बुध हमारी ,
जहाँसे चाह उठती जा रही है ।

यह बरखा रितु भी बीती जा रही है ।
हवाकी पंखिया फल-फलके बिजली
मेरे मनकी लगी मढका रही है ।

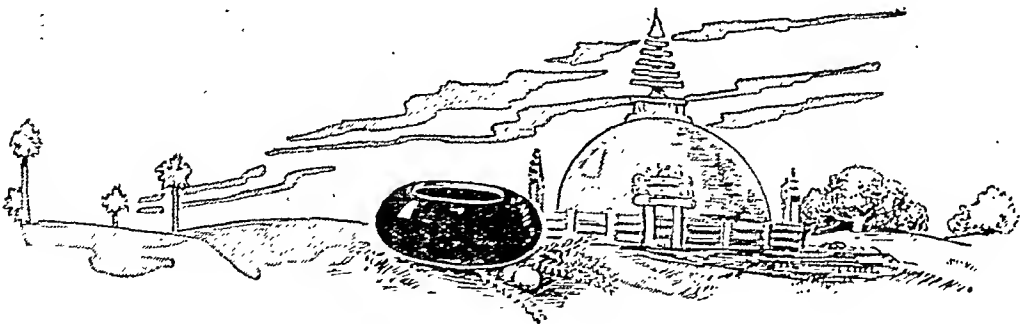
यह बरखा रितु भी बीती जा रही है ।

भला क्योंकर थमें आँसू कि जीपर
उदासीकी बदरिया छा रही है ।

यह बरखा रितु भी बीती जा रही है ।
गया पेंमें बढ़ानेका जमाना,
वह अमरीयों पे कोयल गा रही है
यह बरखा रितु भी बीती जा रही है ।”

यों ही वह अपनी गमगी रागनीसे
दरो - दीवारको तड़पा रही है ।
सियाही उड़ती जाती है उफ़क़से
उरूसे-सुवह बढ़ती आ रही है ।
शिवालेमें गजर भी जाग उठा,
ठनाठन ठनकी आवाज़ आ रही है ।
कोई चिड़िया निकलकर घोंसलेसे
घने जंगलमें मंगल गा रही है ।
कोई बकरी कहीं काती है ‘में-में’,
कोई बछिया कहीं चिल्ला रही है ।
मगर इन सबसे बेपरवा वह लड़की
बराबर गीत गाये जा रही है ।
उसे सुन-सुनके कब तक सिर धुनोगे,
बस, ‘अख़्तर’ सोने दो नींद आ रही है ।

गमगीन=दुखमरी ; बाबुल=पिता ; अमरीयों=आमके बागों ; उफ़क़=क्षितिज ; उरूसे-सुवह=सुवहकी दुल्हन, ऊपा-रूपी नववधू ।



किताब

मेक्सीम गोर्की

जंगलेके बागमें दीवारके पास एक फटी-चिथी किताब पड़ी थी, जो निश्चय ही घरके किसी कमरेसे कूड़े-करकटके साथ बहारकर बाहर फेंकी गई होगी। यह प्रत्यक्ष दीख पड़ता था, वह बहुत दिनोंसे वहाँ पड़ी-पड़ी बरसातका मेह और जाड़ोंकी बर्फ भेल चुकी थी। उसके कीचड़से सने पृष्ठ, जिनपर सूखी पत्तियाँ जम गई थीं, वसन्तऋतुके सूर्यकी गर्मीसे सूखकर खरड़ा हो गये थे। अब उसके अक्षर भी पढ़े नहीं जा सकते थे।

मैंने पैरसे उसको थोड़ा उलटा-पलटा और फिर अपना रास्ता लिया। रास्तेमें सोचने लगा कि वह फटी-चिथी किताब क्या हो सकती थी, क्या वह ऐसे गम्भीर विषयपर थी, जो कभी वाद-विवादका कारण रहा हो, अथवा ऐसे विषयपर, जिसे पढ़कर पाठकोंकी बुद्धि कुशाग्र हुई हो, या वह केवल एकान्तमें समय काटनेका साधन-भर थी ?

उसे देखकर मुझे अपनी युवावस्थाके उन दिनोंका स्मरण हो आया, जब कोई भी पुस्तक मेरे लिए एक अच्छे मित्रके समान थी। इस पुस्तकने मेरे जीवनके उन दिनोंकी याद ताज़ा करके एक बीती घटनाका चित्र आँखोंके सामने उपस्थित कर दिया, जिन दिनों मैं वालगा और डान नदियोंके प्रदेशसे गुज़रनेवाली रेलवे लाइनके एक निर्जन स्टेशनपर रहता था।

स्टेशन खुले मैदानमें था। चारों तरफ जन-मानवहीन और पेड़-पत्तों-रहित निचाट नंगा स्टेपी (मैदान) फैला था। जाड़ोंमें बर्फ़ीले तूफ़ानोंकी भाँय-भाँय मैदानकी निस्तब्धताको भंग करती थी, और गर्मीमें मच्छड़ निर्दयतासे काट-काटकर हम लोगोंकी नाकमें दम करते थे। इधर-उधर अगर कहीं कोई जीवधारी दीख पड़ते थे, तो वे अपने बिलोंके मुँहके पास बैठे कुछ

कुतरते हुए जंगली चूहे होते थे, अथवा आसमानपर गर्म धुँधली हवामें चक्कर काटते हुए शिकारी पक्षी। कभी-कदा एकआध मक़रीले गड़रिये अपनी भेड़ोंके गल्लोंके साथ मैदान पार करते दीख पड़ जाते थे। गड़रियेकी अपनी भेड़ोंको हाँकनेकी 'र-रआ-ओ, र-रआ-ओ'की विचित्र आवाज़ हवाको चीरती हुई उठती और फिर ज्यों-का-त्यों सन्नाटा छा जाता। इसी मैदानकी एक घाटीमें स्टेशनसे कुछ ही कोस दूर कज़्ज़ाकोंका पेस्की नामक गाँव बसा हुआ था। गाँवकी मज़बूत युवतियाँ जाड़ेमें लाइनपर से बर्फ़ हटा दिया करती थीं और उनके बाप अथवा भाई रातको चुपकेसे आकर जलानेके लिए रेलवेके स्लीपर, लकड़ियाँ अथवा लाइनपर खड़े डिब्बोंमें से जो-कुछ हाथ लगे, चुरा ले जाया करते थे।

रात्रिकी जड़वत नीरवतामें मालगाड़ी धड़धड़ाती हुई निकल जाया करती, जिससे स्टेशनकी बत्तियाँ फ़िनमिला उठती थीं। एक-से उकता देनेवाले सन्नाटेसे क्षणभरको छुटकारा पानेके लिए मनमें ऐसा जान पड़ता कि मालगाड़ी एक भयानक राक्षस है, जो लाल-लाल आँखें निकाले, आग उगलता हुआ अन्धकारके बीचसे झपटा चला आ रहा है। अथवा ज़रा देरके लिए कोई पैसेंजर ट्रेन ठहर जाया करती थी। खिड़कियोंसे सुन्दरी युवतियाँ नेत्रों और ओठोंमें मुसकान भरे माँकती दिखाई पड़ती थीं। फिर गाड़ी धुआँ छोड़ती हुई चल देती थी, और हम लोग मनमें और भी गहरी नीरसता लिये जहाँ-के-तहाँ रह जाते थे।

स्टेशनपर हम लोग ग्यारह आदमी रहते थे, जिनमें चार सपरिवार थे। हममें से हर एक व्यक्ति दूसरेके बारेमें जितना अधिक जाना जा सकता था,

जानता था। एकान्तसे ऊबकर लोग एक दूसरेसे खुलकर मिलनेको लाचार हो जाते हैं। हम लोग ताश खेलते थे और शराब तो वेहद पिया करते थे। कभी-कभी तो हमारा वर्तव शिष्टताकी सीमा भी पार कर जाता था।

हम लोगोंमें एक था पीटर—असिस्टेंट स्टेशन मास्टर। वह विचित्र किस्मका जीव था। पीटर प्रायः हरदम नशेमें चूर रहता था और प्रत्येक कल्पना-सम्भव विषयपर वहस किया करता था। अपनी बात कहनेका उसका ढंग भी अजीब वेतुका था। इसमें शक नहीं कि कुछ बातोंपर वह अपने निजी विचार भी रखता था; लेकिन वे विचार क्या थे, इसे वह या तो प्रकट नहीं करना चाहता था, या प्रकट कर ही नहीं सकता था। वह अपने ही आप इस तरहकी वहस—सवाल-जवाब—किया करता था—“आखिर मैं पैदा ही किसलिए हुआ हूँ? कीड़े-मकोड़ोंका भोजन बननेके लिए?” स्टेशनका तार बावू यूडिन और मैं—दोनों मिलकर अक्सर भविष्यमें होनेवाले परिवर्तनोंकी बातें सोचा करते थे। पीटर इस प्रकार हम दोनोंकी बातचीत काट दिया करता था—“तुम लोग परिवर्तनोंकी बात करते हो, जो भविष्यमें होनेवाले हैं! कैसे परिवर्तन? कहाँके परिवर्तन? दस वर्ष, बीस वर्ष बाद भी हर बात वैसी ही रहेगी, जैसी आजकल है।”

वह दुबला-पतला आदमी था। हड्डियाँ निकली हुई, सिरपर खड़े-खड़े लाल बाल और ओठपर टूँठ-सी बर्चा-खुची मूँछें। खड़े बालोंवाला सिर हिलाकर, अपनी भूरी आँखोंपर लाल-लाल पलकें झपकाते हुए वह हम लोगोंसे इस तरहके सवाल करता था—“वह कौन-सा देवता है, जिसपर तुम लोग विश्वास रखते हो और जिसकी तुम लोग पूजा करते हो?” पीटरके कथनानुसार हर्वट स्पेंसर सबी बातें नहीं कह सका, तुर्गनेव वोडोंके सौदागरके अलावा और कुछ नहीं था, और रूसके तमाम महान लेखक रूसी नहीं थे।

कभी-कभी वह बुरी तरह हठ पकड़ लेता था, उस समय उसका मत बदलना सम्भव नहीं था। एक बार उसने हम लोगोंको अपनी थोड़ी-सी जीवन-कहानी सुनाई थी। उसने बताया कि वह एक पादरीका बेटा था, और उसकी शिक्षा तामनेवके गिर्जेके स्कूल और कज्ञानके विश्वविद्यालयमें हुई थी। उसे शराबकी लत लग गई। एक दिन वह अपने एक प्रोफेसरका सम्बूरी कोट और टोपी पहन गया और उन्हें शराबके लिए बेच आया। उसने अपनी भूरी आँखें हरी-सी बनाते हुए कहा—“जानते हो, इस बातपर उन्होंने क्या किया? उन्होंने साफ इशारेमें मुझसे कहा कि मेरे लिए यही बेहतर है कि मैं विद्यार्थी-जीवनसे विदा हो जाऊँ। स्वभावतः मैंने भी वही किया। उसके बाद मैंने हर तरहके काम किये। फिर एक सुन्दर दिन मैंने विवाह भी कर डाला, जिसने सभी बातोंको सात कर दिया।”

कुछ दिन बाद उसकी स्त्रीने उसके साथ रहनेसे इनकार कर दिया और उसे छोड़कर चली गई। पीटरके छै वर्षकी एक छोटी लड़की थी। उसका नाम बेरा था। लेकिन पीटर उसे पुकारते समय अपना खानदानी नाम पेट्रोवना भी जोड़ देता था, क्योंकि उसके मनमें इस लड़कीके लिए एक विचित्र प्रकारके लज्जापूर्ण सम्मानके भाव थे। बेराका छोटा, चंचलताहीन मुँह उसके सुनहरे बालोंके गुच्छोंमें क़रीब-क़रीब छिप जाता था। वह बहुत कम मुसकराती थी। उसके सामने पुरुष कुछ अधिक नगमीसे बातचीत करते थे। माताएँ अपने बच्चोंके लिए उसे एक आदर्श नमूना बताती थीं। उसे फूल बहुत पसन्द थे, और इस नंगे मैदानकी कंजूस धरती जो दो-चार तुच्छ जंगली फूल उपजाती थी, उनकी तलाशमें बेरा इधर-उधर फिरा करती थी। जिस समय वह फूलकी तलाशमें निकलती, उस समय कभी-कभी इंजन ‘शॉटिंग’ करते होते थे। बेरा रेलकी पटरियाँ पार करती और शॉटिंग करते हुए इंजनके पहियोंके बीचसे उसकी पतली

टाँगोंके लाल मोजे मिलमिलाते दिखाई पड़ते । इंजनवाले वेराको इस तरह छोड़ देनेपर पीटरसे कहा-सुनी भी करते थे । यद्यपि पीटर वेराकी रक्षाके लिए काफी खयाल रखता था, फिर भी ऐसे मौकेपर वह वेपरवाईसे कह देता था—“ओह ! सब ठीक है । लड़की खुद ही खयाल रखती है ।”

सिरसे पैर तक एक भूरे रंगके शालमें लपटी हुई—जिसमें वह पेड़में लटकते हुए चमगादड़-सी दीख पड़ती—कभी-कभी वह बीच रातमें मेरे पास आकर खबर देती कि उसका पिता शराबमें वेहोश हो गया है । मैं उसे गोदमें उठाकर उसके घर ले जाता और वहाँ उसके पिताको होशमें लानेकी कोशिश करता । पीटरका चेहरा नीला और गला रूँधा हुआ होता, और वह ज़मीनपर रेंगता नज़र आता ।

वेरा उसकी बगलमें बैठकर उसके खुरदरे गालोंको सहलाती और कहती—“आह, बेचारे बाबूजी ! तुम कितने शराबी हो गये हो !”

कुबड़ा तारबाबू यूडिन वेराके लिए बहुत तरस खाता था । वह चिन्ता करता हुआ कहता—“अगर मेरी माँ जिन्दा होती, या कोई बेवकूफ औरत ही मेरे जैसे कुबड़ेके साथ विवाह करनेको राज़ी हो जाती, तो मैं भरसक प्रयत्न करके वेराको अपने साथ रखता । वैसे भी पीटरको उसे अपने साथ रखनेमें लाभ ही क्या है ?”

मुझे और यूडिनको किताबें पढ़नेका व्यसन था । पुस्तकोंके लिए हमारी तृष्णा कभी मिटती ही न थी । किताबें हमारे लिए एक प्रकारका मरोखा थीं, जिनसे हम अपनी शून्य दुनियासे वास्तविक जीवनकी दुनियाकी मक्क़ी लेते थे । थोड़े ही दिनोंमें हम दोनोंने वालगा और डानके बीचकी लाइनके छहों स्टेशनोंकी सारी किताबें पढ़ डालीं । इसके बाद हम लोगोंके लिए मानसिक अकाल आ गया—इस अकालकी यन्त्रणाको वे ही समझ सकते हैं, जो हमारे देशके निर्जन हिस्सोंमें रह चुके हैं, और जो इस दम घोटनेवाली घाटियोंमें साँस

लेनेके लिए तड़पड़ा चुके हैं । समय काटनेके लिए—जीवन चालू रखनेके लिए—कुछ था ही नहीं ! यह मेरे अनुभवोंमें सबसे कठु अनुभव था ।

पीटर हमारी इस दुर्दशाको जानता था ; लेकिन सिवा हमें चिढ़ानेके उसने और कुछ नहीं किया—“जान पड़ता है, तुम लोग आखिरी साँस ले रहो हो, क्यों ?”

लेकिन एक दिन उसकी भलमनसाहतने ज़ोर मारा और उसने सहानुभूतिके साथ हमसे कहा—“कलाचमें मेरा एक मुलाक़ाती रहता है, उसके पास नियमित रूपसे पुस्तकें आती रहती हैं । तुम कहो, तो उसे लिखूँ, मुमकिन है, वह हमें एकआध किताब भेज दे ।”

हमने इसके लिए उसकी मिन्नत-खुशामद की और उसने हमारी प्रार्थना मंज़ूर भी कर ली ।

दो-चार दिन बाद पैसेंजर ट्रेनके गार्डने पीटरको एक पैकट लाकर दिया ।

“किताब आ गई !”—पीटरने पैकेटको हिलाते हुए उल्लाससे चिल्लाकर कहा ।

अब उसने पैकेटके साथकी चिढ़ी पढ़ी । चिढ़ी खत्म करके उसने अपनी ठूँठ-सी मूँछोंपर ताव देना शुरू किया और तेज़ीसे दाएँ-बाएँ नज़र फेंककर पैकेटको बगलके नीचे कंसकर दाब लिया ।

यूडिन अपने चौड़े मुँहपर मुसकान लाकर खुशामद करते हुए बोला—“लाओ, अब किताब दे दो ।”

पीटरने अफसराना आवाज़में रुखाईसे कहा—“इतने उतावले मत हो ।”

यूडिन हैरतमें आकर एक कदम पीछे हट गया । पीटरने उसके साथ ऐसी बेरुखी कभी नहीं दिखलाई थी ।

“किताब मँगानेमें परेशानी मैंने उठाई है, इसलिए मैं ही पहले इस किताबको पढ़ूँगा ।”—पीटरने तमककर कहा । “तुम्हारी बारी पीछे आयेगी ।”—उसने उसी रुखाईसे कहा ।

मुझे भी बुरा मालूम हुआ । हम लोगोंका नियम यह था कि साथी होनेपर एक आदमी ज़ोर-ज़ोरसे

किताब पढ़ता था और बाक़ी लोग सुनते थे। हाँ, अगर किसीकी ड्यूटी न हुई और वह खाली हुआ, तो वह किताब ले जाकर अकेलेमें भी पढ़ सकता था। किताब तारघरकी मेज़पर पड़ी रहती थी, जिससे हर कोई उसे ले सके। यूडिनने भौंचका होकर कहा—
“आज तुम्हें हो क्या गया है, जो इस तरह बहक रहे हो ?”

इसपर पीटर और भी ज्यादा गर्म हो गया।
“चुप रहो जी,”—उसने विगड़कर कहा—“मैं अपने आत्म-लाभके लिए किताब पढ़ना चाहता हूँ, तुमसे बहस करनेके लिए नहीं। ठीकसे पढ़नेके लिए खामोशी चाहिए; लेकिन तुम लोग बराबर ज़वान चलाते ही रहते हो—‘ऐसा क्यों है’, ‘वैसा क्यों नहीं।’ इस तरह पढ़नेसे मैं परेशान हो गया हूँ। मुझे अकेला रहने दो, मैं अपने-आप पढ़ूँगा। चलो, खिसको यहाँस ! जाओ जहन्नुमको !”

उसने किताबको अपनी मेज़की दराज़में तालेके भीतर बन्द कर लिया। जितनी देर ड्यूटीपर रहा, वह एक शब्द भी नहीं बोला। जब तब वह इधर-उधर इस ढंगसे देखता था, मानो कुछ दुर्घटना घटनेका डर हो। ड्यूटी ख़त्म करके जब वह चलने लगा, तब यूडिनने कहा—“जब तुम सोने लगे, तो क्या किताबको किसी ऐसी जगह रख दोगे, जहाँसे मैं ले सकूँ ? मैं उसके लिए आ जाऊँगा।”

पीटर थोड़ा-सा हँस दिया; पर कुछ बोला नहीं।
अधी रातके लगभग यूडिनने मुमसे कहा—
“ज़रा चले जाओ, देखो शायद किताब मिल जाय। अब तक वह ज़रूर ही खुगंटे लेने लगा होगा।”

दिनमें पहले तो ज़ोरकी बारिश हुई, फिर धुले हुए आसमानसे सूर्य बड़ी तेज़ीसे चमकने लगा और उसने गीली भूमिको सुखाकर फुलसा दिया। अब हवामें भाप भर गई थी और उमसके मारे दम घुटता था। शून्यसे तारे टिमटिमा रहे थे। मेरे आगे-आगे एक मेढ़क कूद रहा था, मानो मुझे राह दिखाता चलता हो।

दूरपर किसी ट्रेनकी सीटीकी आवाज़ सुनाई पड़ रही थी। पंपघरसे टेढ़ी आँखके कोयला भोंकनेवाले यहूदीके धीरे-धीरे गानेकी आवाज़ आ रही थी, जिसके होठोंपर सदा उदासी-भरी अचल मुसकान रहती थी।

पीटरकी खिड़कीसे पीली रोशनी निकल रही थी, जिससे बाहर लगा हुआ लकड़के स्लीपरोका ढेर, पोपलरके पेड़का तना और उसके नीचेकी ज़मीन प्रकाशित हो रही थी। खिड़कीपर लटके हुए मलमलके पर्देकी ओटसे मैंने पीटरको देखा। वह रातके कपड़े पहने मेज़से सटा बैठा था। उसकी कोहनियाँ मेज़पर टिकी थीं और अंगुलियाँ उसके लाल वालोंमें घुसी हुई थीं। उसकी चुकीली ठोड़ी रह-रहकर हिल उठती थीं। उसकी आँखोंसे आँसू वह-वहकर कोहनियोंके बीचमें रखी हुई किताबपर गिर रहे थे। वे एकके बाद एक करके लगातार टपकते जाते थे। ऐसा जान पड़ा, जैसे किताबपर आँसुओंके गिरनेकी गीली टपाटप सुनाई दी। ऐसे आदमीको आँसू गिराते देखना बड़े कटु अनुभवकी बात थी !

मेज़पर लैम्प जल रहा था और शराबकी भरी हुई अछूती बोतल और तश्तरीमें तरबूजका एक टुकड़ा धरा था। बेंतकी आरामकुर्सीपर पड़ी हुई वेग सो रही थी। उसका मुँह खुला हुआ था, मानो वह कोई अचम्भेकी बात देख रही हो। कमरेके बाक़ी भीतरी हिस्सेमें बाहरकी भाँति ही अँधेरा था।

पीटर खड़ा होकर खिड़कीकी तरफ मुड़ा। उसका छोटा-सा नगण्य चेहरा आँसुओंसे तर होकर और भी छोटा और नगण्य हो गया था। वह किताबको लैम्पपर दिखलाकर उसपर गिरे हुए आँसुओंको सुखाने लगा। उसने हाथसे टटोलकर देखा कि पन्ना सूखा या नहीं और एक बार फिर किताबको लैम्पपर दिखलाने लगा। लेकिन अब तक उसके आँसू बन्द नहीं हुए थे। वे टपक-टपककर उसकी मूँछोंमें बिला जाते थे। मैं खिड़कीके पाससे सरक आया, क्योंकि एक ट्रेन आ रही थी और मुझे

उसे देखना था। जब ट्रेन निकल गई, तब मैंने यूडिनसे कहा—“वह अभी तक जग रहा है। यह सारा समय उसने किताबमें ही बिताया है।”

“जंगली कहींका !”—यूडिनने ट्रेनकी खानगीका तार खटखटाते हुए कहा—“बड़ा साथी बनता है। साथी तभी तक है, जब तक कोई बढ़िया ग्रास सामने नहीं आता, जभी कोई बढ़िया चीज दीख पड़ी, तभी साथ खत्म हो गया !”

पौ फटनेके पहले मैं एक बार फिर उसकी खिड़कीपर जा खड़ा हुआ और पर्देसे झाँककर देखने लगा। लैम्प बुझ चुका था। अब पीतलके शमादानमें एक मोमबत्ती जल रही थी। शराबकी अच्छी बोटलपर मोमबत्तीकी दोहरी परछाईं पड़ रही थी। पीटर सो रहा था। उसका सिर छातीकी तरफ झुका था और दोनों हाथ शिथिलतासे घुटनोंपर पड़े थे। बेतकी आरामकुर्सी खाली थी। कमरेमें पहलेकी बनिस्वत ज्यादा अँधेरा था। बन्द किताब खिड़कीके नज़दीकवाले मेज़के कोनेपर पड़ी थी। मैंने धीरे-धीरे पर्दा ज़रा-सा फाड़ा और फटे हुए छेदसे किताबकी तरफ हाथ बढ़ाया। पीटर फौरन उठ खड़ा हुआ और शमादानको उठाकर चारों तरफ घुमाते हुए गरजकर बोला—“भाग जाओ, वरना जान ले लूँगा।”

मोमबत्ती बुझ गई। लेकिन उस बुझते हुए प्रकाशमें मैंने पीटरका विकृत चेहरा देखा, जो अन्धकारमें अदृश्य हो गया। दो-एक क्षण बाद उसने कर्कश किन्तु शान्त स्वरसे पूछा—“कौन है ?”

“मैं हूँ। मैं इस आशासे चला आया था कि शायद किताब मिल जाय।”

“नहीं ! मैं तुम्हें किताब नहीं दूँगा।”

जब मैं खिड़कीके पाससे हटा, तब पौ फट रहा था। ऊषाके नवीन प्रकाशमें सुदूर क्षितिजपर एक काला-सा घुड़सवार और मेड़ोंका एक झुंड भूरे बादलों-सा जाता दीख पड़ता था। इस तरहका दृश्य

हमारे लिए कोई नई बात न थी। हमें तो ज़रूरत थी किताबकी, क्योंकि किताब ही हमारे हृदयमें जीवनकी नई अनुभूति फिरसे ताज़ी कर सकती थी।

पीटर चिड़चिड़ा और दुःखी दीख पड़ता था, और वह खुद भी इन बातको महसूस कर रहा था। हम लोगोंको वह बुरा लगने लगा—वही नहीं, उसकी नन्हीं लड़की बेरा तक बुरी लगने लगी। एक बार जब वह यूडिनके पास दौड़ती हुई आई, तब मैंने उसे रुखाईसे धकेलकर यूडिनसे अलग कर दिया। उसका गुलाबी मुखड़ा दुखसे कुम्हला गया। पीटरने यह देख लिया और ललकारते हुए पूछा—“क्या तुम पढ़नेको कुछ नहीं चाहते। वेशक चाहते हो ; लेकिन मैं तुम्हें किताब देनेका नहीं।”

यूडिनसे नहीं रहा गया। उसने चिल्लाकर कहा—“अगर अब तुम किताब दो भी, तो हम नहीं लेंगे। मैं कहता हूँ, हम लोग अब उसे हरगिज़ न लेंगे।”

“बिलकुल ठीक है।”—मैंने भी हाँ-मैं-हाँ मिलाई।

“क्या तुम भी इससे सहमत हो ?”

“हाँ, हूँ।”

यह घटना इस प्रकार बड़ी सहूलियतसे वहीं खत्म हो गई। एक दिन सवेरे जब पीटर ड्यूटीपर आया, तो उसने यूडिनकी तरफ किताब फेंककर पुकारकर कहा—“लो, यह किताब पड़ी है। जितना मन आवे, पढ़ो !”

यूडिनने फौरन ही कवर पेज उलटकर अपनी नाक पुस्तकके पन्नोंमें गड़ा दी। शामको हम दोनोंने मिलकर उसे पढ़ा। किताबका किस्सा यह था कि एक भली औरतका विवाह एक ऐसे निकम्मे आदमीसे हुआ, जो किसी भी कामका न था। अन्तमें उस औरतने अपने पतिको छोड़ दिया और मानव-समाजकी सेवामें जीवन बितानेको चली गई।

मैं अचरजसे सोचने लगा कि क्या यही कारण था, जिसपर पीटर इतने आँसू बहा रहा था।

३२७
पीटर लड़खड़ाता हुआ कमरेमें आया
पकड़कर चिल्ला उठा—“प……पढ़……
नेका। हस……मत करो।”

वह बुरी तरह नशेमें चूर था। उसकी गीली
आँखोंमें कुछ अजीब जंगली चमक थी। उसकी
टाँगें लड़खड़ा रही थीं। वह फिर चिल्लाया—“मैं
क……कहता हूँ……म……मत पढ़ो……कोई……नहीं……
जानता……नहीं……समझता……कोई नहीं……ले……खक……
भी……नहीं। कोई……भी नहीं……” वह फर्शपर

लुढ़क पड़ा। हमारी तरफ हाथ फैलाकर वह फिर
बोला—“खा……खा……मोश!……म……त……प……ढ़ो!”

और वहीं दरवाजेपर पीटरके पीछे उसकी छोटी
लड़की बेरा खड़ी थी। उसके पैर नंगे थे।
बदनपर के फ्राकमें बटन नदारद थे, जिससे एक तरफ
कन्धा खुल गया था। उसकी सुनहरी धुँधराली लट्टें
आगकी लौकी भाँति ऊपरको उठ रही थीं। वहाँ
खड़े-खड़े उसने हँचे स्वरमें पूछा—“आप लोगोंने
उन्के साथ इतना खराब व्यवहार क्यों किया?”

अनुवादक—हीरालाल जैन

प्रकृति-प्रेम

श्री भगवतीप्रसाद तिवारी 'सरोज', बी० ए०, एल०-एल० बी०

प्रेम-मिलनसे देवि प्रकृतिका
है न विशद मन्दिर खाली ;
थिरक-थिरककर चूम रहा है
मन्द पवन डाली - डाली !

कलरवकर, सँग बैठ, विहँग-जन
राग प्रणयका गाते हैं ;
एक दूसरेका चुम्बन कर
तरु - पल्लव इठलाते हैं ।

देखो तो तृण-दल तक वनके
कितना प्रेम मनाते हैं ;
पवन खिलाता चूम उन्हें, वे
सिहर - सिहर रह जाते हैं ।

इठलाती है लता लिपटकर
तरु - पियके वर अंगोंसे ;
पूर्ण प्रकृति नित रँग जाती है
अरुण, प्रणय के रंगां से ।

कर-कर असह्य प्रतीक्षा उरमें
कोयल जब थक जाती है ;
हृक हृदय की कूक-कूक तब
प्रिय को पास बुलाती है ।

करता विनय मधुप है, गुनगुन
नव - कलिका से खिलने को !
आता नभ भी उतर क्षितिजपर
अवनि - प्रिया से मिलने को ।

पवन कुपित हो, सिन्धु-सलिल को
संग उड़ाकर गिरिवर पर
बरसा आता है निर्दय वन
नभ चढ़, घुमड़-घुमड़, घर-घर ।

किन्तु विकल बूँदें वे जलकी
रुकती हैं क्या कहो कहीं ?
सरिता वन फिर वह चलती हैं
कुल-कुल करतीं, सतत वहीं ।

रुक सकता है उमड़ हृदयमें
प्रिय का प्रेम - प्रवाह कहाँ ?
बन्धन जग के मिट जाते हैं
मधुर मिलन की चाह जहाँ ।

साहित्यिक भिक्षु

वनारसीदास चतुर्वेदी

श्री देवीप्रसाद रायचौधुरीका बनाया हुआ एक चित्र मुझे बहुत पसन्द है 'कुमारजीवकी चीन-यात्रा' *। इस चित्रमें कुमारजीव तथा अन्य तीन भिक्षुओंको धर्म-प्रचारार्थ चीन-यात्राके उद्देश्यसे हिमालयकी ओर जाते हुए दिखलाया गया है। हिमालयकी बर्फसे ढकी हुई चोटियाँ दूरपर दीख रही हैं। मार्ग बड़ा भयंकर है; पर भिक्षु लोग दृढ़ आशाके साथ कदम बढ़ाते हुए चले जा रहे हैं। इन्हीं कुमारजीवने चीन पहुँचकर चीनी साहित्यके लिए जो महान कार्य किया, उसे इतिहासके प्रेमी भलीभाँति जानते हैं। उन्होंने चीनी भाषापर अद्भुत अधिकार प्राप्त कर लिया और लगभग सौ महत्वपूर्ण संस्कृत-ग्रन्थोंका चीनी भाषामें अनुवाद किया। इस प्रकार उन्होंने चीनी साहित्यमें अपना नाम अमर कर लिया और भारतके गौरवको संसारकी दृष्टिमें कहीं ऊँचा उठा दिया। इस ज़मानेमें भी, जब कि यात्राके साधन इतने सुगम हो गये हैं और सहस्रों-लक्षोंकी संख्यामें पुस्तक-प्रकाशक विद्यमान हैं, कुमारजीवकी तरहके दृष्टान्त मिलना यदि असम्भव नहीं, तो अत्यन्त कठिन अवश्य है। उस समयसे जब भगवान गौतम बुद्धने अपनी शिष्य-मंडलीको आदेश दिया था—

“चरथ भिक्खवे चारिकं बहुजनहिताय बहुजनसुखाय लोकानुकम्पाय अत्थाय हिताय सुखाय देव मनुस्सानं। देसेथ भिक्खवे धम्मं आदि कल्याणं भजमे कल्याणं परियोसान कल्याणं सात्थ्यं सव्यंजनं केवलपरिपुणं परि-सुद्धं ब्रह्मचरियं पकासेथ।” अर्थात्—“समस्त विश्वके हितके लिए मानव-समाजके कल्याणार्थ संसारके भिन्न-भिन्न भागोंमें जाओ।”

सहस्रों ही भिक्षुओंने असंख्य कठिनाइयोंका सामना करते हुए देश-विदेशोंकी यात्रा की, सैकड़ों ही इस

प्रयत्नमें मर-मिटे; पर उन्होंने वह काम कर दिखाया, जो संसारके इतिहासमें अद्वितीय है। बौद्धधर्मके प्रचारके साथ साथ कला-सम्बन्धी जो जाग्रति हुई, उसके भग्नावशेष आज भी सभ्य-संसारकी आँखोंमें चकाचौंध उत्पन्न कर देते हैं। आज दुनियामें जितने अनुयायी बौद्धधर्मके हैं, उतने शायद ही किसी अन्य धर्मके हों।

जब-जब हमने श्री चौधुरीके उक्त चित्रको देखा है, हमारे मनमें यही प्रश्न उत्पन्न हुआ है—“क्या कभी हमारी राष्ट्र-भाषाके लिए भी ऐसे मिशनरी उत्पन्न होंगे?”

हम उन आदिमियोंमें से नहीं हैं, जो परिस्थिति, समय अथवा पात्रताका खयाल न करके सबके लिए एक ही मार्गके अनुसरणकी सिफारिश करते हैं। हम यह भलीभाँति जानते हैं कि ‘अधिकांश साहित्यिकोंके लिए भिक्षुका आदर्श व्यावहारिक नहीं हो सकता’, और यह भी मानते हैं कि जो आदमी जिस ढंगसे अपनी शक्तिके अनुसार मातृ-भाषाकी सेवा कर रहा है, वह प्रशंसनीय है, बशर्ते कि उसका उद्देश्य ठीक हो। पर साथ ही हमारा दृढ़ विश्वास है कि जब तक हमारे साहित्यमें ‘कुछ आदमी’ बौद्ध-भिक्षुओंके आदर्शको ग्रहण न करेंगे, तब तक हमारी भाषाको संसारमें यथोचित स्थान प्राप्त नहीं हो सकता।

आज भी—इस गये-गुजरे ज़मानेमें भी—दो भिक्षु हमें आश्चर्यजनक साहित्यिक कार्य करते हुए दीख पड़ते हैं—एक तो भिक्षु अखण्डानन्द, जिन्होंने गुजरातीमें सस्ते साहित्यके प्रकाशन द्वारा एक प्रकारकी क्रान्ति-सी कर दी है, और दूसरे हैं भिक्षु राहुल सांकृत्यायन, जिन्होंने हिन्दी-जनताके सम्मुख बौद्ध-साहित्य उपस्थित करनेमें कमाल कर दिखाया है और जिनसे हिन्दी-संसार भलीभाँति परिचित है। ये दोनों भिक्षु स्वयं ही एक प्रकारकी संस्था हैं।

निर्धनता निस्सन्देह एक अभिशाप है, पर अयोग्य

* यह त्रिरंग चित्र ‘विशाल भारत’ के फरवरी १९२८ के अंकमें प्रकाशित हो चुका है। —सं०

अथवा आलस्यसे उत्पन्न निर्धनतामें और जान-बूझकर किसी विशेष उद्देश्यसे लिये हुए निर्धनताके व्रतमें जमीन-आसमानका फ़र्क है। पहली निन्दनीय है, दूसरी अभिनन्दनीय। पाश्चात्य देशोंके साहित्य-सेवियोंका आदर्श भारतवर्षकी वर्तमान परिस्थितिमें हम लोगोंके लिए अनुकरणीय नहीं हो सकता। वर्नेड शा भले ही लखपती होते हुए भी विलायतमें अतुल सम्मानके भाजन हों; पर भारतवर्षमें अभी बहुत वर्षों तक तुलसीदास तथा कबीरदासके त्यागपूर्ण जीवन ही सर्वोच्च श्रद्धाके पात्र बने रहेंगे।

कल्पना कीजिए, हिन्दी-क्षेत्रमें बीस-पचीस सुयोग्य व्यक्तियोंने बौद्ध-भिच्छुओंके आदर्शको अपना लिया है। न उन्हें गृहस्थीकी चिन्ता है और न रुपये जमा करने या नोन-तेल-लकड़ीकी फ़िक्र। एक स्थानसे दूसरे स्थानको जाना और हिन्दीकी उन्नतिके लिए उद्योग करना, वस यही उनके जीवनका उद्देश्य है। आज भारतवर्षके कोने-कोनेमें हिन्दी-सम्बन्धी संस्थाएँ—पुस्तकालय, नागरी-प्रचारिणी सभा, हिन्दी-प्रचारक समिति—पाई जाती हैं। आप उन्हें दार्जिलिंगसे लगाकर कराची तक और शिमलेसे ट्रेंडूम (ट्रानकोर) तक पायेंगे। हम लोगोंमें से कितने ऐसे हैं, जो यह जानते हों कि अकेले आन्ध्र-प्रदेशमें हिन्दी-प्रचारके २०० अङ्के हैं? यदि हमारे ये साहित्यिक भिच्छु इस सम्पूर्ण शक्तिका विधिवत् संगठन करनेका निश्चय कर लें, तो साहित्यका कितना ज़बरदस्त हित कर सकते हैं।

गलतफ़हमी न हो, इसलिए यह दुहरानेकी ज़रूरत है कि यह कार्य हमारे जैसे भाग्यस्त साधारण गृहस्थोंका नहीं है और न व्यापारी पुस्तक-प्रकाशकोंका ही। पुस्तक-प्रकाशन अथवा अन्य व्यापार बुरा नहीं है; पर व्यापारीके मार्गमें अनेक कठिनाइयाँ होती हैं, और वह मिशनरी नहीं बन सकता। वैसे अपने-अपने ढंगपर हिन्दीके अनेक प्रकाशक साहित्यके लिए अत्यन्त उपयोगी कार्य कर रहे हैं।

यदि हमारे ये साहित्यिक भिच्छु स्थान-स्थानपर

भ्रमण करते हुए कहीं पुस्तकालय खुलवायें, कहीं हिन्दी-सम्बन्धी संस्थाओंके उत्सव कारायें, कहीं साहित्यिक भाषण दें, कहीं हिन्दी-अध्यापकोंका संगठन करें और कहीं सम्मेलनकी परीक्षाके लिए विद्यार्थियोंको प्रोत्साहित करें, तो उनके द्वारा लेखकों, पुस्तक-प्रकाशकों और साहित्यिक संस्थाओंका कितना लाभ हो सकता है। साहित्यके प्रचारका कार्य जितना इस प्रकारके निस्स्वार्थ उपदेशकों द्वारा हो सकता है, उतना समाचारपत्रों द्वारा भी नहीं हो सकता। ज़िले-ज़िलेमें हिन्दी-सम्बन्धी संस्थाओंकी स्थापना करना कितना आवश्यक कार्य है।

व्यक्तिगत परिचय और बातचीतसे जो काम हो सकता है, वह पत्र-व्यवहार द्वारा नहीं हो सकता। भारतके भिन्न-भिन्न भागोंमें कितने ही उदीयमान लेखक और कवि पाये जाते हैं। उन्हें यदि समयपर प्रोत्साहन और परामर्श मिल जाय, तो वे आगे चलकर बहुत काम कर सकते हैं। यदि हमारे ये साहित्यिक भिच्छु अपने अनुभव युवक लेखकोंको बतलावें और साथ-ही-साथ उस मार्गकी कठिनाइयोंसे भी सावधान करें, तो साहित्य तथा समाजकी वे बड़ी सेवा कर सकेंगे। अमेरिकाके सर्वश्रेष्ठ लेखक एमर्सनने साहित्य-सेवाके आदर्श बतलाते हुए अपने एक भाषणमें कहा था :—

“Truth shall be policy enough for him. Let him open his breast to all honest inquiry, and be an artist superior to the tricks of art. Show frankly as a saint would do, your experience, methods, tools and means. Welcome all comers to the freest use of the same. And out of this superior frankness and charity you shall learn higher secrets of your nature, which gods will bend and aid you to communicate.” —Emerson.

—‘साहित्य-सेवाके लिए केवल सत्य ही एक नीति होगी। साहित्य-सेवीको चाहिए कि वह प्रत्येक ईमानदार जिज्ञासुके सामने अपना दिल खोलकर रख दे और अपनेको ऐसा कलाकार सिद्ध करे, जो कलाकी चालोंसे ऊपर उठ सकता है। साहित्य-सेवी विद्वानोंसे मैं कहूँगा कि एक सन्त पुरुषकी भाँति आप अपने

अनुभवों, तरीकों, साधनों और उपायोंको स्पष्टतया जनताके सम्मुख रखिये और आगन्तुकोंका स्वागत करते हुए उनसे कहिये कि आप लोग भी स्वतन्त्रता-पूर्वक उनका उपयोग कर सकते हैं। इस उच्चकोटिकी स्पष्टवादिता और उदारतासे स्वयं आपको अपने स्वभावकी प्रच्छन्न खूबियाँ मालूम हो जायँगी और देवता लोग आपको उन खूबियोंको जनता तक पहुँचानेमें मदद देंगे।

यदि हिन्दीके अनुभवी साहित्य-सेवी अपने 'अनुभवों, तरीकों, साधनों और उपायों'को अपने छुटभइयोंको सहानुभूतिपूर्वक बतलानेकी कृपा करें, तो हमारे साहित्यका महान हित कर सकते हैं।

कुछ दिन पहले हमें कलकत्तेके विशप कालेजके एक ईसाई सज्जनके साथ उनका प्रार्थना-भवन देखनेका अवसर मिला था। उस भवनमें हिन्दुस्तानका एक नकशा टँगा हुआ था, जिसमें उन-उन स्थानोंपर जहाँ मिशनके पादरी काम कर रहे हैं, एक-एक पिन लगा हुआ था और उसमें छोटी-सी झण्डी चिपकी हुई थी। चित्रको देखकर मिशनके कार्यक्षेत्रका अनुमान किया जा सकता था। रामकृष्ण-विवेकानन्द-मिशनके प्रधान कार्यालय बैलूरमें भी एक ऐसा ही चित्र टँगा हुआ था। इन चित्रोंको देखकर मनमें यही खयाल आया कि क्या हिन्दी-साहित्य-क्षेत्रके मिशनरी कभी इस ढंगसे कार्य करेंगे? क्या हम अपने सम्मेलनके कार्यालयमें भिन्न-भिन्न प्रान्तोंके ऐसे चित्र नहीं टाँग सकते, जिनको एक निगाहसे देखते ही हम अपने कार्यक्षेत्र तथा उसके विस्तारका अनुमान कर सकें? जिस तरह पंडे लोग अपने जजमानोंके यहाँ साल-भरमें एक चक्कर लगा आया करते हैं, क्या उस तरह हमारे साहित्यिक कार्यकर्ता इन स्थानोंकी यात्रा नहीं कर सकते? पंडे लोग स्वार्थके लिए यात्रा करते हैं, ये साहित्यिक भिन्न परमार्थके लिए यात्राएँ करेंगे। हिन्दी तेरह करोड़ आदमियोंकी मातृ-भाषा है और बोलनेवालोंकी संख्याके हिसाबसे उसका नम्बर संसारमें शायद तीसरा है।

उसके अन्दर जो शक्ति छिपी हुई है, उस अन्तर्निहित शक्तिका क्या हम अन्दाज़ लगा सकते हैं? जिस भाषाने तुलसीदास और कबीरदास उत्पन्न किये, उसके उज्ज्वल भविष्यमें किसे आशंका हो सकती है? अवतारवादमें हमारा विश्वास नहीं; पर इतना हम ज़रूर मानते हैं कि किसी महान व्यक्तित्वके आनेके पूर्व भिन्न-भिन्न क्षुद्र शक्तियों द्वारा क्षेत्र तैयार होता है। यदि हम सब मिलकर यथाशक्ति साहित्य-क्षेत्रकी सेवा करें, तो कभी आगे चलकर हमारे यहाँ भी उसी प्रकारके प्रभावशाली साहित्यिक तपस्वी उत्पन्न हो सकते हैं, जैसे कि प्राचीन कालमें हुए थे।

हमारे साहित्य-क्षेत्रकी सबसे बड़ी त्रुटि यही है कि हम लोगोंमें क्रियात्मक कल्पनाशक्तिवाले कार्यकर्ताओंकी कमी है। 'बिना अन्तर्दृष्टिके मानव-समाजका नाश हो जाता है।' हमें आवश्यकता है ऐसे आदमियोंकी, जो अपनी मातृ-भाषाके विषयमें ऊँचे-से-ऊँचे स्वप्न देखनेवाले हों—यही नहीं, बल्कि जो अपने उन स्वप्नोंको सजीव बनानेकी शक्ति भी रखते हों। लेनिनने सन् १९०२ में, जब कि उन्होंने अपने दलका संगठन शुरू किया था, अपने एक लेखमें एक रूसी लेखकके निम्न-लिखित शब्द उद्धृत किये थे—“यदि मनुष्य इस प्रकारके स्वप्न देखनेकी शक्तिसे पूर्णतया वंचित कर दिया जाय, यदि उसमें वर्तमानसे आगे बढ़कर उस चित्रको पूर्ण रूपसे देखनेकी कल्पनाशक्ति न हो, जिसे वह अभी प्रारम्भ कर रहा है, तो मेरी समझमें नहीं आता कि मनुष्यमें वह प्रेरणाशक्ति कहाँसे आ सकती है, जिससे वह कला, विज्ञान और व्यावहारिक क्षेत्रोंमें थका डालनेवाले महान कार्योंको अपने हाथमें ले सके और उन्हें पूर्ण कर सके।” इसपर टिप्पणी करते हुए लेनिनने लिखा था—“और इस प्रकारके स्वप्न देखनेकी शक्ति हमारे आन्दोलनमें दुर्भाग्यवश बहुत ही कम है।”

कोरमकोर साहित्यकी दृष्टिसे ही नहीं, वरन् राजनैतिक दृष्टिसे भी हिन्दी-भाषा-भाषियोंका साहित्यिक

संगठन अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। साहित्यको राजनीतिसे पृथक् नहीं किया जा सकता, और जो लोग ऐसा करनेका प्रयत्न करते हैं, वे या तो नासमर्थ हैं अथवा कायर। हमारे मित्र श्रीयुत नीरद चौधरी (भूतपूर्व सहकारी सम्पादक 'माडर्न रिव्यू') ने एक निबन्ध लिखा था, जिसमें उन्होंने यह दिखलाया था कि हिन्दी-भाषा-भाषी ग्रूपका सुदृढ़ संगठन ही भारतकी राष्ट्रीयताको छिन्न-भिन्न होनेसे बचा सकता है। संयुक्त-प्रान्त, विहार, मध्य-भारत, मध्य-प्रदेश, राजपूताना और पंजाब इन प्रान्तोंके निवासियोंको स्वास्थ्यप्रद मानसिक भोजन देना क्या कम महत्त्वपूर्ण कार्य है? राजनैतिक आन्दोलन और सजीव साहित्यकी रचना ये दोनों कार्य दाएँ और बाएँ हाथकी तरह हैं, और किसी भी महत्त्वपूर्ण आन्दोलनके लिए दोनोंका घनिष्ठ सहयोग आवश्यक है।

महात्मा गांधीने कई बार इस बातकी शिकायत की है कि हिन्दी-भाषा-भाषी नवयुवकोंमें मिशनरी स्प्रिटसे काम करनेवाले बहुत कम पाये जाते हैं। उन्होंने एक बार कहा था—“इस विषयमें आप लोगोंको महाराष्ट्रीय नवयुवकोंसे शिक्षा लेनी चाहिए। मेरे पास एक महाराष्ट्रीय नवयुवक पटवर्धन, जो ग्रेजुएट थे, पन्द्रह रुपये महीनेपर काम करते रहे; पर मुझे गुजरातमें हिन्दी-प्रचारार्थ ऐसे हिन्दी-भाषी नवयुवक नहीं मिल सके, जो अल्प वेतनपर मिशनरी स्प्रिटसे काम कर सकें।” महात्माजीकी इस बातको सुनकर लज्जासे सिर झुक गया। क्या तेरह करोड़ हिन्दी-भाषा-भाषियोंके लिए महात्माजीके उपर्युक्त शब्द लज्जाजनक नहीं हैं?

दुनिया-भरसे हम लोग यह आशा करते हैं कि सब हमारी भाषा पढ़ें, कांग्रेसके अधिवेशनमें ‘हिन्दी-हिन्दी’ की पुकार मचानेवालोंकी भी कमी नहीं है;

पर जब अपनी भाषाके लिए जी-जान लगा देनेकी बात आती है, तब हम लोगोंकी सारी आदर्शवादिता काफ़ूर हो जाती है! दक्षिण-भारतमें हिन्दी-प्रचारार्थ आज तक कितने नवयुवक गये हैं? उनकी संख्या शायद दस-पन्द्रहसे अधिक न होगी। बंगाल, उड़ीसा, आसाम और सिन्ध इत्यादिमें हिन्दी-प्रचार करनेके लिए कितने युवकोंने कुछ त्याग किया है? हम लोग अपनी संख्याके भरोसेपर उछलते-कूदते रहते हैं, यह नहीं जानते कि कोरमकोर संख्यासे कुछ नहीं होनेका। हमारी भाषा भारतकी अन्य भाषाओंकी बड़ी बहन है, और उसका बड़प्पन सेवा तथा त्यागकी भावनासे ही कायम रह सकता है। हमें इस विषयमें ईसाई मिशनरियोंसे भी बहुत शिक्षा मिल सकती है। फिजी इत्यादि द्वीप-द्वीपान्तरोंमें नर-मांस-भक्षियोंके बीचमें रहकर उन्होंने किस प्रकार अपने धर्मका प्रचार किया था। हिन्दीके मिशनरियोंके सामने ऐसा कोई भय नहीं है, क्योंकि बंगालियों, आसामियों और सिन्धियोंमें अन्य दुर्युग भले ही हों; पर कमसे-कम वे नर-मांसभक्षी तो नहीं हैं।

हमें बहुधन्वी साहित्यिक मठाधीशोंसे कोई शिकायत नहीं, क्योंकि उनका मर्ज लाइलाज है; उनके दिन बीत चुके, उनका युग चला गया। जिस तरह आजकल राजनीतिमें फसली लीडरोंका जमाना नहीं रहा, जो वर्षके पौने बारह महीने रुपये कमाया करते थे और दिसम्बरके अन्तिम सप्ताहमें लीडरी कर लिया करते थे, उसी तरह साहित्य-क्षेत्रका संचालन अब बहुधन्वी आदमी नहीं कर सकते। साहित्य-क्षेत्रके लिए दिन-रात परिश्रम करनेवाले और धुनके पक्के कार्यकर्ताओंकी आवश्यकता है, जो अपना तन-मन इसीके लिए अर्पित कर सकें, और जैसा कि हम ऊपर लिख चुके हैं, यह कार्य साहित्यिक भिक्षुओं द्वारा ही हो सकता है।

मारिशसमें भारतीयोंके सौ साल

१८३५-१९३५

श्रीयुत 'रजकण', मारिशस

हिन्द-महासागरके मारिशस टापूमें भारतीयोंको बसे हुए एक सौ वर्ष हो गये ।

मारिशसका टापू—जिसे अपढ़ हिन्दोस्तानी 'मिरचका मुलुक' कहा करते थे—हिन्द-महासागरमें मैडागास्कर द्वीपसे ५५० मील पूर्वमें, लंकासे दक्षिण २००० मीलकी दूरीपर है। द्वीप ३६ मील लम्बा और २३ मील चौड़ा है। उसकी परिधि १३० मील और क्षेत्रफल ७१० वर्गमील है। द्वीप चारों ओरसे मूँगेकी जलमग्न चट्टानोंसे घिरा है, जिससे उसके बन्दरगाहों तक पहुँचना कठिन होता है।

मारिशसपर प्रकृति सुन्दरीकी काफी कृपा है। एक तो टापू और उसपर से पहाड़ी। पर्वत और जलके इस सम्मेलनने मारिशसको अद्भुत प्राकृतिक सौन्दर्य प्रदान कर दिया है। वहाँके प्राकृतिक दृश्य बहुत रमणीक और नयनाभिराम हैं। सिर्फ उत्तर और उत्तर-पूर्वकी तटवर्ती भूमि थोड़ी-बहुत समतल है, बाकी सारे द्वीपमें तटपर ५०० फीटसे लेकर २७११ फीट तक ऊँची पहाड़ियाँ हैं। बीचमें समुद्र-तलसे लगभग १२०० फीटकी ऊँचाईपर उपजाऊ मैदान हैं। टापूकी पहाड़ियोंमें अनेक चोटियाँ हैं, और ये चोटियाँ प्रायः आसपासकी जगहसे एकाएक उठ खड़ी हुई हैं। इनके शीर्षभाग चित्र-विचित्र आकारोंवाली नंगी चट्टानोंके हैं। टापूमें कोई बड़ी नदी नहीं है। सबसे बड़ी नदीकी लम्बाई सिर्फ १० मील है। गर्मीमें ये नदियाँ सूखकर पतले चश्मेकी शक्लमें हो जाती हैं; पर बरसातमें खूब बढ़कर हहराती हुई बहती हैं। टापूके दक्षिण-भागमें ग्राण्ड वेसिन नामकी एक बहुत गहरी झील है। इसके सिवा तीन झीलें और भी हैं। मारिशसकी उत्पत्ति ज्वालामुखीसे हुई है। ऐसा जान पड़ता है कि किसी अतीत युगमें बड़े-बड़े ज्वालामुखी

जब आग उगलना बन्द करके शान्त हो गये, तब उनके मुख-गह्वरोंमें पानी भर जानेसे ये झीलें बन गई हैं। मारिशसका टापू विषुवत रेखाके दक्षिणमें है, इसलिए जब भारतमें जाड़ा होता है, तब वहाँ गर्मी होती है, और जब भारतमें गर्मी होती है, तब वहाँ जाड़ा। टापूमें जाड़ेका मौसिम बहुत सुहावना होता है। गर्मीमें गर्मी काफी पड़ती है। आबहवा भारतवासियोंके लिए बहुत मौजू है।

अबसे पाँच-छे सौ वर्ष पहले कभी किसी कालमें मारिशस टापूमें आदिमियोंकी कोई स्थायी बस्ती थी, इसके कोई चिह्न नहीं मिलते। सोलहवीं शताब्दी तक तो यूरोपियन लोगोंको इस टापूके अस्तित्व तकका पता न था। हाँ, अरबी नाविक इसे जानते थे, और कभी-कभी अरबी समुद्री डाकू इसे अपना अड्डा भी बनाते थे।

सन् १५०५ ई० में एक पोर्चुगीज नाविक Mascarenhas ने भारत आते समय पहले-पहल इस टापूको देखा और उसपर पोर्चुगालका अधिकार घोषित कर दिया। उस समय यहाँ कोई बस्ती या आदिमी नहीं थे। सोलहवीं शताब्दी भर टापूपर पोर्चुगालवालोंका आधिपत्य रहा; लेकिन उन्होंने इसपर कोई उपनिवेश बसानेकी कोशिश नहीं की। सन् १५६८ में डच लोगोंने उसपर कब्जा जमाया और अपने एक सरदार काउन्ट मारिस आफ नासौके सम्मानमें इस टापूका नाम मारिशस रख दिया। डच लोगोंने ग्रेण्ड-पोर्टमें किला बनवाया, और कुछ गुलाम और कैदी यहाँ लाये गये; लेकिन स्वयं डचोंने अपनी कोई बस्ती नहीं बसाई। अन्तमें सन् १७१० में वे भी इस टापूको सदाके लिए छोड़कर चले गये। भारतके साथ व्यापार करनेके लिए जो फ्रेंच ईस्ट इंडिया कम्पनी बनी थी, उसने १७१५ में

मारिशसपर अधिकार कर लिया और इसका नाम Ile de France (अर्थात् फ्रांसका टापू) रख दिया । इस कम्पनीके कर्मचारियोंने टापूमें सड़कें निकालीं, किले बनवाये, जंगल साफ किये और रुई, नील और गन्नेकी खेती और शक्करका रोजगार शुरू किया । उन्होंने अपने बादशाहके नामपर पोर्ट लुइसका बन्दरगाह बसाया, जो आजकल भी टापूकी राजधानी है । फ्रेंचोंने इस उपनिवेशकी काफी उन्नति की । बादमें उन्होंने यहाँ लौंग, जायफल आदि मसाले भी उपजाने शुरू किये ।

यद्यपि यहाँ बहुतसे फ्रेंच आ बसे थे ; लेकिन वे सब पूँजीपति बनकर दूसरोंके परिश्रमपर मौज उड़ाना चाहते थे । गोरे हाथोंसे मेहनतके काम करना शानके खिलाफ था, इसलिए उन्होंने मेडागास्करसे, जो उनके कब्जेमें था, और अफ्रिकासे अनेक हवशी गुलाम मँगाये और उनसे खेती वारीका काम लेने लगे । १७१५ से १८१० तक मारिशस फ्रेंचोंके अधिकारमें रहा ।

उस समय तक स्वेजकी नहर नहीं बनी थी । भारतमें अंगरेजी सत्ताके पैर दृढ़तासे जम चुके थे । इंग्लैण्डसे भारत आनेका मार्ग अफ्रिकाकी परिक्रमा करते हुए उत्तमाशा अन्तरीप (केप आफ गुड होप) होकर ही था । उस वक्त आजकल-जैसे बड़े-बड़े स्टीमर भी नहीं थे । पालके छोटे जहाज चलते थे । हिन्द महासागरमें कभी-कभी अंगरेजी जहाजोंपर खानेका सामान बीचमें ही खत्म हो जाता था । मारिशस ही बीचमें एक ऐसा टापू था, जहाँ खाने-पीनेका सामान लिया जा सकता था ; लेकिन उसपर फ्रांसका अधिकार था । इसके सिवा उत्तमाशा अन्तरीप और भारतवर्षके बीचोबीच होनेके कारण उन दिनों मारिशसकी सामरिक स्थिति भी महत्वपूर्ण थी । उन्नीसवीं शताब्दीमें फ्रांस और इंग्लैण्डमें जो लम्बे युद्ध हुए, उनमें भारत आनेवाले अंगरेज नाविकोंकी कठिनाइयाँ और भी बढ़ गईं, क्योंकि मारिशससे खाद्य-सामग्री ले सकना तो बन्द ही हो गया, साथ ही

मारिशसमें रहनेवाले फ्रेंच जहाजोंने अंगरेजी जहाजोंपर हमले कर-करके उनकी नाकमें दम कर दी । आखिरमें अंगरेजोंने उसपर कब्जा जमा लेना ही निश्चित किया, सन् १८१० में हमला करनेके लिए अंगरेजी और अंगरेजोंकी मातहतोंमें भारतीय फौजोंने मारिशसपर हमला किया और उसपर अधिकार जमा लिया । सन् १८१४ में अंगरेजों और फ्रेंचोंके बीच पेरिसकी सन्धिसे अनुसार मारिशसपर अंगरेजोंकी सत्ता स्वीकार कर ली गई । चूँकि मारिशसमें अनेक फ्रेंच परिवार स्थायीरूपसे बस गये थे और उनकी दो-दो, चार-चार पीढ़ियाँ भी गुजर चुकी थीं, इसलिए अंगरेजोंने यह मंजूर किया कि वे लोग अपने फ्रेंच कानून-कायदे, रीति-रवाज और धर्म आदि ज्यों-के-त्यों रख सकेंगे । इसका फल यह है कि सवा सौ वर्षसे अंगरेजोंके अधिकारमें रहनेपर भी आज तक टापूमें फ्रेंच भाषा और फ्रेंच आचार-विचारोंका प्राधान्य है ।

जब अंगरेजोंने मारिशसपर अधिकार जमाया था, उन दिनों यूरोप और अमेरिकामें गुलामीकी प्रथाके विरुद्ध बड़े जोर-शोरका आन्दोलन चल रहा था । इंग्लैण्डने अपने देशसे गुलामीकी प्रथा उठा दी थी, इसलिए उसे मारिशसमें भी यह नृशंस व्यापार बन्द करना पड़ा । गुलाम सब स्वतन्त्र कर दिये गये और गुलामोंके मालिकोंको हर्जानेके तौरपर २० लाख पौण्ड दिये गये । गोरे प्लान्टरोंको गुलामोंको रिहा कर देनेपर रुपया तो मिला ; किन्तु उनके खेतों और कारखानोंका काम प्रायः बन्द-सा हो गया, क्योंकि स्वतन्त्रता पाकर ये हवशी गुलाम फिर गोरोंके यहाँ मजदूरी करनेको राजी न हुए । वे स्वतन्त्र पेशे करने लगे ; उन्होंने ललित-कलाएँ सीखनी शुरू कीं । अब गोरे प्लान्टर बड़े फेरमें पड़े । कुदाल और खुरपी लेकर अपने हाथों खेतोंपर काम करना उनके लिए सम्भव न था, क्योंकि शासक और पूँजीपति होनेके नाते ऐसा करना उनकी रईसी शानके खिलाफ था, और अगर यूरोपसे गोरे मजदूर बुलाते, तो बहुत महँगे

पड़ते। उन्हें तो सस्ते मजदूर चाहिए थे, जिनके परिश्रमपर वे गुलछरें उड़ा सकें।

उनका ध्यान हिन्दोस्तानकी ओर गया। उन्होंने भारतसे मजदूर बुलायें। भारतीयोंका पहला जत्था सारा (Sarah) नामक पालके जहाजमें लदकर अगस्त सन् १८३४ में पोर्ट लुइसके बन्दरपर जा पहुँचा। दो महीने बाद एटलस नामके जहाजपर दूसरा दल आया। मगर ये मजदूर स्वतन्त्र थे। गोरे तो गुलामोंसे मनमानी मेहनत लेनेके आदी थे। उन्हें इन स्वतन्त्र मजदूरोंसे काम कराना न भाया। सोचते-सोचते उन्होंने शर्तबन्दी कुली-प्रथाका—जो एक प्रकारसे गुलामीकी छोटी बहन थी—आविष्कार किया। दुर्भाग्यसे भारतकी तत्कालीन सरकारने भी मंजूरी देकर उनकी मदद की, और इस घृणित दास-शृंखलासे जकड़कर नियमित रूपसे भारतीय कुली आने लगे। वे सीधे-सादे, परिश्रमी, मितव्ययी और भोले होते थे। गोरे मालिकोंने उनके इन गुणोंका खूब जायज और नाजायज फायदा उठाया। भारतीय कुली टापूके कोने-कोनेमें भेजे गये, जहाँ उन्होंने रद्दी-से-रद्दी भोजन खाकर और बुरे-से-बुरा बर्ताव पाकर भी कड़े-से-कड़ा परिश्रम किया। उन्होंने जंगल-झाड़ियाँ काट गिराई, उपत्यकाएँ साफ कीं और धरतीका हृदय चीरकर फसलें पैदा कीं। जहाँ दुर्भेद्य पेड़ोंके बीहड़ थे, वहाँ पन्ने-जैसे हरे-हरे गन्नेके खेत लहलहाने लगे। ऊँजड़ वीरानोंमें शकरके कारखानोंकी चिमनियाँ उठ-उठकर आसमानसे बातें करने लगीं। सारा द्वीप समृद्धिशाली हो गया।

टापूको समृद्धिशाली बनानेमें सबसे अधिक खून और पसीना बहा भारतीयोंका। मगर इन भारतीयोंको जो-जो अपमान, जो-जो कष्ट और जो-जो यातनाएँ भोगनी पड़ीं, उन्हें सुनकर रोंगटे खड़े हो जायेंगे। वास्तवमें शर्तबन्दी कुली-प्रथाका समूचा इतिहास खून और आँसुओंसे लिखा है। किस प्रकार बदमाश अरकाटी भोले-भाले भारतीय देहातियोंको सब्ज बाग दिखाकर कुलियोंमें भर्ती करते थे, किस प्रकार क्रूरतासे

उनसे काम लिया जाता था, किस प्रकार उन्हें सड़ा-बुसा खाना दिया जाता था, किस प्रकार धूर्तता करके ऐसी चालें चली जाती थीं, जिनसे पाँच वर्षका पट्टा पूरा होनेपर भी मजदूरको दूसरे पट्टेमें बँधना पड़ता था और जब सारा जीवन और सारी शक्ति समाप्त करके मजदूर सिर्फ हड्डियोंका ढाँचा-भर रह जाता था, तब किस प्रकार उसे भूखों मरनेके लिए अपने देशको वापस भेज दिया जाता था, आदि बातें ऐसी हैं, जिनपर कुछ न कहना ही भला। प्लान्टरोंके अन्याय और ज्यादातियाँ इतनी बढ़ गईं कि आखिरमें जानबुलको भी कुछ कर्नेको मजबूर होना पड़ा। ब्रिटिश पार्लामेन्टने सन् १८७१ में एक शाही कमीशन मुकर्रर किया। कमीशनने यद्यपि प्लान्टरोंकी नाजायज कारवाईको सच पाया और उन्हें रोकनेके लिए कुछ नियम भी बना दिये, फिर भी इस गन्दी गुलामीको दूर करनेकी शिफारिश नहीं की।

मगर हिन्दोस्तानी काफ़ी सख्तजान होते हैं। भारतसे गये हुए भारतीयोंमें पचासोंने आत्म-हत्या की, सैकड़ों भरी जवानोंमें चल बसे, हजारोंने कुली-प्रथामें जकड़े रहकर तिल-मिल करके पिसते हुए जीवन-लीला समाप्त की, कितने ही मलेरियाके शिकार हुए और कितनोंको हैजेने साफ कर दिया। इतना सब होते हुए भी कुछ लोग गुलामीका पट्टा खत्म करके स्वतन्त्र रूपसे टापूमें बस गये। गोरे प्लान्टरोंने भी थोड़ी बहुत सहिष्णुता और मनुष्यता दिखलाई। भारतीयोंको बसनेके लिए ऊँची, नीची, ढालू, पथरीली और बेकार-सी ज़मीनें भाड़ेपर दी गईं। सन्तोषी भारतीयोंने इसी ऊसर ज़मीनपर किरमट आजमाई शुरू की। पसीनेकी मेहनत देकर न गई। धीरे-धीरे रद्दी ज़मीनने भी भारतीय हल्लोका लोहा मानकर फसल देना शुरू किया। निरन्तर परिश्रम और चेष्टासे बंजरमें भी ऊख पैदा होने लगी और जहाँ-जहाँ भारतीयोंकी छोटी-छोटी कुटियाँ उग आईं। जिसे जहाँ जगह मिली, वह वहीं बस गया। पहले तो भारतीयोंने भाड़ेपर ही ज़मीनें लीं,

बादमें किसी-किसीने कुछ पैसे जोड़-जाड़कर उन ज़मीनोंको खरीद भी लिया। पहाड़ी ढालों और घाटियोंमें बनी हुई भारतीयोंकी इक्का-दुक्का पर्णकुटियाँ हिमालयपर ऋषि-मुनियोंकी पर्णशालाओंकी याद दिलाती हैं।

इस प्रकार जो हिन्दोस्तानी खाली हाथ गुलाम बनकर मारिशस आये थे, उन्होंने और उनकी सन्तानोंने अपने परिश्रमसे टापूको हरा-भरा बनाया, गोरे प्लान्टरोंको अथाह धन प्रदान किया और अन्तमें स्वयं अपने लिए भी पैर रखनेका स्थान प्राप्त किया। इस शताब्दीके प्रथम चतुर्थांश तक हमारी दशा शोचनीय थी। धन पैदा करके जीवन-संग्राममें किसी तरह खड़े होना-भर भारतीयोंका उद्देश था। उनमें शिक्षा, समाज-सुधार, जातीयता और आत्म-सम्मानके भावोंका सर्वथा अभाव था। डाक्टर मणिलाल वैरिस्टरका आगमन मारिशसके भारतीयोंको अत्यधिक शुभ सिद्ध हुआ। डाक्टर मणिलालके प्रयत्नसे भारतीयोंमें आत्म-सम्मानके भाव, राष्ट्रियता और जातीयताके विचार तथा भारतीय हितोंकी रक्षाकी चिन्ता उत्पन्न हुई। शर्तवन्दी कुली-प्रथाके वन्द करानेके लिए डाक्टर महोदयने काफी प्रयत्न किया। यह प्रथा सन् १९२२ में खतम हुई। भारतीयोंका ध्यान सभा-संस्थाओंकी स्थापनाकी ओर गया। भारतीयोंके सार्वजनिक जीवनमें एक नई स्फूर्ति, नया उत्साह और नये प्राण दीख पड़ने लगे।

महायुद्धके समय सब चीज़ोंके दाम खूब चढ़ गये थे। शक्करका व्यवसाय खूब चमका। मारिशसमें धन बरसने लगा। भारतीयोंको उनका प्राप्य भाग मिला। धीरे-धीरे बढ़कर भारतीयोंमें अनेक दो-दो, तीन-तीन हजार बीघा ज़मीनके मालिक, मिल-ओनर, वकील, वैरिस्टर, डाक्टर, प्रोफेसर, मास्टर और सरकारी कर्मचारी आदि भी हो गये। सभा-संस्थाएँ खोली गईं। मन्दिर-मस्जिदें बनाई गईं।

महायुद्धके बाद जो व्यापारिक मन्दी आई, उसमें

मारिशसके भाग्यको भी बहुत ऊँचा-नीचा देखना पड़ा। टापूके भाग्य-परिवर्तनके अनुसार भारतीयोंकी किस्मतमें भी ज्वार-भाटा आया। बहुतोंका काम खराब हो गया। बहुतसे धनी निर्धन बन गये। अब भारतीय अपनेको नई परिस्थितियोंके अनुकूल बना रहे हैं।

आजकल परिवर्तनका युग है। मारिशसके भारतीय समाजमें प्राचीनता और नवीनतामें तथा भारतीयता और यूरोपियन ढंगमें संघर्ष चल रहा है। नई पौधके भारतीय पाश्चात्य रहन-सहनकी ओर बहुत आकर्षित हो रहे हैं। पिता भारतीय पोशाकमें रहता है, बेटा अप-ट्र-डेट यूरोपियन ढंगसे। पिता हिन्दी पढ़ता और बोलता है, पुत्र फ्रेंचमें ही बातें करना चाहता है। पिता भारतीय नारियोंसे दूरसे देवी कहकर सम्मान प्रकट करता है, बेटा क्रिओलिन नवेलियोंसे हैट उतारकर 'वॉज़र' ठोकनेमें ही शान समझता है। यद्यपि नई पौधमें अधिक सजीवता है, अधिक स्वतन्त्र विचार है, अधिक उद्योग और चेष्टा है; किन्तु साथ ही वे भारतीयतासे अधिक दूर होते जा रहे हैं। उनमें अपनी जातीय व्यक्तित्व कम हो रहा है। डर है कि कहीं वे गोरोंकी काली काँपी बनकर ही न रह जायँ।

इस समय टापूका लगभग ३५ वाँ ४० वाँ भाग हिन्दोस्तानियोंके अधिकारमें है। भारतीय सद्गृहस्थ होते हैं। उनमें अधिकांशके पास पैर रखने-भरकी ज़मीन ज़रूर है। लेकिन आपसी फूट और वैमनस्यने इस सुदूर समुद्री टापूमें भी हमारा पीछा नहीं छोड़ा। हममें आत्म-सम्मानकी अभी तक इतनी कमी है, जिसकी बदौलत टापूमें एक साधारण हव्शीका जो मूल्य है, वह एक भारतीय सद्गृहस्थका नहीं। अपेक्षाकृत सम्पन्न और संख्यामें बहुत अधिक होते हुए भी शक्तिशाली राजनैतिक संस्था, प्रभावशाली राजनैतिक पत्र और सबपर प्रभाव डाल सकनेवाले दृढ़ चरित्रके राजनैतिक नेताओंकी कमीके कारण हमें अपने उचित प्राप्य अधिकार भी प्राप्त नहीं हैं। व्यापारमें काफी हाथ होते हुए भी

भारतीयोंका चैम्बर आफ कामर्स अथवा कोई जातीय बैंक भी नहीं है। समर्थ होते हुए भी हम असमर्थ हैं।

मारिशस ब्रिटिश साम्राज्यमें एक क्राउन कालोनी है। उसका गवर्नर इंग्लैण्डके औपनिवेशिक विभागके अधीन है। उसकी सहायताके लिए एक कार्यकारिणी कौंसिल और एक व्यवस्थापिका सभा है। कार्य-कारिणीके सारे सदस्य विभिन्न विभागोंसे सर्वोच्च सरकारी अफसर होते हैं। व्यवस्थापिका सभामें २८ मेम्बर हैं, जिनमें गवर्नरको मिलाकर ६ सरकारी मेम्बर, ६ सरकार द्वारा मनोनीत मेम्बर और १० निर्वाचित मेम्बर हैं। १० निर्वाचित मेम्बरोंमें ८ गोरे (जो सबके सब फ्रेंच हैं) और २ मारिशसके 'रंगीन' निवासी अर्थात् हवशी हैं। सरकार द्वारा मनोनीत मेम्बरोंमें दो भारतीय होते हैं। निर्वाचित सदस्योंमें एक भी

भारतीय नहीं है। मारिशसकी

१९३१ में ३,६३,४१८ थी,

भारतीय थे। आबादीमें भारतीय

लेकिन उनका शुमार किसीमें नहीं। यदि गोरे सरकारी मेम्बरोंको छोड़ भी दिया, जाय तो व्यवस्थापिका सभाके बाक़ी १६ मनोनीत और निर्वाचित सदस्योंमें केवल २ भारतीय हैं। है न यह अन्धेरकी बात कि दोतिहाई आबादीके लिए कुल २ सदस्य और एकतिहाईके लिए १७ सदस्य ! ब्रिटिश सरकारकी न्यायपरायणताको क्या कहें ; पर इसमें बहुत कुछ दोष हम भारतीयोंका है। यदि हममें योग्य नेता हों और हम बलपूर्वक अपना प्राप्य अधिकार माँगे, तो ब्रिटिश सरकारको मजबूर होकर देना पड़े।

यह है मारिशसमें भारतीयोंके सौ वर्षका संक्षिप्त इतिहास।

नन्दा

नन्दा तीन दिनसे भूखा था ; पेटकी ज्वालासे अधमरा !

देखा, सेठ रामलाल भीठे पूड़ोंका थाल भरे, देवीकुण्डपर वन्दर जिमाने जा रहे हैं। गिड़गिड़ाकर उसने कहा—“सेठजी, मैं तीन दिनसे भूखा हूँ, जान निकली जा रही है। कुछ पूड़े मुझे भी दीजिए।”

—“भूखा है, तो शहरमें जाकर माँग, ये हनुमानजीके पूड़े तुझे कैसे दे दूँ ?”

—“शहरमें जानेकी हिम्मत नहीं है, सेठजी ! भूखेकी जान बचानेसे हनुमानजी आपपर प्रसन्न ही होंगे।”

—“अच्छा रहने दे, मुझे तेरे उपदेशकी ज़रूरत नहीं है।”

बड़े प्रेमसे वन्दर जिमाकर जब सेठजी लौटे, तो देखा, नन्दा रास्तेपर पड़ा है। घृणाके स्वरमें आप-ही-आप बोले—“अभी तो बदमाश भूखों मर रहा था ! इतनेमें सो भी गया !”

पर नन्दा उस नौदमें सो रहा था, जिससे आज तक कोई नहीं जागा !

बड़ा और छोटा

विशाल वटवृक्षने अपनी छायामें इधर-उधर फैले, कुछ छोटे वृक्षोंसे अभिमानके साथ कहा—“मैं कितना विराट हूँ और तुम कितने छुद्र ! मैं अपनी शीतल छायामें सदा तुम्हें आश्रय देता हूँ।”

छोटे वृक्षोंने कहा—“हाँ, हम छुद्र हैं, और तुम विराट हो ; पर जानते हो, तुम्हारी यह विराटता हमारा रक्तशोषण करके ही फली-फूली है !”

विराट वटने एक हुंकार भरी।

छोटे वृक्षोंने एक निश्वास छोड़ा।

—कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर'

वादमें
जग

तीन तारीखें

श्रीयुत पहाड़ी

१५-१०-३—

टिप, टिप, टिप, टिप.....;

टाइप कर रहा था कि गमू आया, बोला—
“अभी-अभी ज्ञानूका भाई आया था। ज्ञानूकी हालत खराब ही है।”

मन जग उलम्हा। ज्ञानू बीमार है; ठीक बात है; बीमारी जरूरी थी। क्लार्कके विशुद्ध जीवनमें वह और क्या पाता? आज हालत खराब है। बात ही तो है। पिछले कई महीनोंसे ही वह कहाँ अच्छा था। छुट्टी मांगता-मांगता थक गया था। हमेशा एक ही बात सुनता—‘जरूरी काम आ पड़ा है, छुट्टी नहीं मिल सकती है।’ मानो जीवन गौण और नौकरी प्रधान हो और मजदूरीके चन्द पैसोंपर ही हम टिके हों। “काम नहीं होता। नौकरी छोड़ दीजिए। हमें आदमी मिल सकते हैं। आप बीमार हैं। इस्तीफा दे दीजिए। साहबने साफ-साफ कह दिया है कि छुट्टी किसी हालतमें भी नहीं मिल सकती है।” हेड क्लार्क बोला था।

और ज्ञानू आफिस आता था। पैसा जिन्दगी रखनेको जरूरी है। नौकरीसे पैसा मिलता है, और पैसेसे जीवन चलता है।

“मि.....आपने कागज़ टाइप कर लिये हैं?” हेड क्लार्कने कहा।

“नहीं, कुछ बाक़ी है।” और फिर टिप, टिप, टिप करने लगा।

मन नहीं लगा। जिस वातावरणमें चला जा रहा है, वह टिकाऊ नहीं। क्लार्क-जीवन मानवताका उपहास है। कहाँ है समाज, जो क्लार्कको मनुष्य गिन्ता। शायद वे एक नये समाजके जीव हैं। उपहास और घृणाके पात्र? भद्रश्रेणीके लोग, उनको अपने खूनकी कमाईके पैसे भी चैनसे नहीं खाने

देते हैं। उनका अपना अस्तित्व है कहाँ? दायरा है जरूर—आफिसकी दुनियामें; गुलाबी फीतोसे बँधी फाइलें, बड़े-बड़े पेड, अत्यन्त आवश्यकीयकी स्लिपें; ‘टैग’में गुँथे कागज़ और बड़ी-बड़ी फाइलें। उधर हेड क्लार्ककी फ़िड़कियाँ, सेकेंड क्लार्ककी धमकियाँ और लोगोंकी फुस-फुस। आखिर वे इतने उपेक्षणीय क्यों हैं?

टन, टन, टन, टन ननन.....

छे बज गये हैं। वही टिप, टिप, टिप, काम जरूरी है। समयके कायदे-क़ानून यहाँ नहीं। मजदूरी काम करनेके लिए मिलती है। काम पूरा होना चाहिए, फिर आपका सुभीता देखा जायेगा। वास्तविकतासे आप डरें क्यों? काम कीजिए। खीजकर, मन मारकर जमे रहिये। अपनेको ऐसी मशीन बना डालिये, जहाँ भावुकता और सनक न हो। कामचलाऊ बातोंमें अपनेको पकड़े रहिये।

समय भागा जा रहा है। वही शगल सब जमे हैं। बिजलीके बल्बोंकी रोशनी, कागज़ोंकी ढेरी, फाइलें,.....कल सालाना रिपोर्ट प्रेसमें जावेगी। आज सब ठीक हो जाना चाहिए। कल सुबह साहब दस्तख़त कर देंगे।

वही टाइपकी मशीन। सामने टाइप किये कागज़, वही कार्वनकी कापियाँ। वही टिप, टिप, टिप..... ज्ञानूका बनाया ‘ड्राफ्ट’। ज्ञानूके सुन्दर-सुन्दर अक्षरोंमें लिखा कागज़ कितना अच्छा लिखा है। ज्ञानू पास होता और अपना ‘ड्राफ्ट’ टाइपमें पढ़ता, तो कितना खुश होता।

नहीं, नहीं, वही टिप, टिप, टिप.....वही आफिस, वही हेड क्लार्ककी चहलकदमी, वे ही फाइलें.....

दूर-सा—ज्ञानू। ज्ञानूकी बीबी, ज्ञानूकी माँ और ज्ञानूका भाई.....ज्ञानूकी २१ सालकी अवस्था।

पिछले सालकी लाई वह घूँघटमें सिमटी दुलहिन । वह झुर्रियाँ पड़ी बूढ़ी मां । वह मैट्रिकमें पढ़ता छोटा भाई ।

ज्ञानूका वह हँसता चेहरा, वह परिहास, वह मस्ती । ज्ञानूका वह बीमार सुस्त चेहरा । ज्ञानूका फिड़की सहा वह जर्द चेहरा । वह हेड क्लार्ककी बात—‘काम जरूरी है, आप बीमारीका बेकार बहाना क्यों बनाते हैं ?’ वह ज्ञानूकी अरजी । वह मेडिकल सर्टिफिकेट ।

नहीं ; टिप, टिप, टिप । ज्ञानूका किया डाफ्ट टाइप हो रहा है । रिपोर्टका १२५ वाँ पृष्ठ । एक-एक अक्षर ज्ञानूके स्वास्थ्यको खाये जाता है । वे ही कार्वन, वे ही टाइप किये कागज । १२८ वाँ पृष्ठ ।

टन, टन, टन, टन न-न-न । सात वज गये हैं । वही आफिसकी दुनिया । सूखी, हँसी ज़रा भी नहीं, खुशी कहाँ ? मानो मानवताका श्राप क्लार्की जीवन सबको निगलना चाहता हो । कैसा जीवन ?

रामूने पूछा—“अभी कितना काम बाक़ी है ?

“अभी १८ पेज बाक़ी हैं ।” मैं बोला ।

रामूने कहा—“ज़रा आराम तो कर लो ।”

वह पास बैठ गया । रामूने एम० ए० पास किया है । पेटकी समस्या यहाँ पकड़ लाई है । फिलहाल ‘टेम्परेरी’ ३० पर काम कर रहा है ।

मैंने पूछा—“तुमने तो शेली, कीट्स, पालिटिक्स, इकॉनॉमिक्स सब पढ़ी है ?

वह बोला—“कुछ न पूछो । एम० ए० में जब ‘इकॉनॉमिक्स’ लिया था, तो अकसर क्लार्कीपर कहीं न कहीं पढ़ता था । इतनी नग्नता थोड़े ही सोची थी । किताब और दुनियाकी बातोंमें बड़ा भारी अन्तर है ।”

फिर वही काम । कागज टाइपकी मशीनपर

चढ़ाता हूँ । टिप, टिप, टिप । ज्ञानूका बनाया ‘डाफ्ट’ है । आखिरी पेज भी टाइप हो गया है । नीचेके दस्तखतोंपर अटका हूँ । ज्ञानूके दस्तखत हैं ।

रिपोर्ट तैयार हो गई है । कल प्रेसमें चली जायगी ।

× × ×

२-११-३—

ज्ञानूका स्वास्थ्य दिन-प्रति-दिन गिर रहा है । अब उसे देखकर डर लगता है । वह कुछ बोल भी नहीं सकता । आधी तनख्वाहपर ज्ञानूको और छुट्टी मिल गई ।

× × ×

३०-१२-३—

१० वजे ।

आजकी डाकसे रिपोर्टकी छपी कापियाँ आ गई हैं । सुबहके समाचारपत्रोंने रिपोर्टपर बहुत-कुछ लिखा है । आफिसकी दुनिया फूली नहीं समाती है । बड़े साहबने ज्ञानूको ५० इनाम देनेको कहा है । २ वजे ।

एक जरूरी चिट्ठी टाइप कर रहा था । रामू आया, बोला—“ज्ञानू चल वसा ! उसका भाई बुलाने आया है ।”

रिपोर्टकी एक कापी दबाये रामूके साथ ज्ञानूके घरकी ओर जा रहा हूँ ।

राहमें रामू बोला—“सुना, रिपोर्ट अच्छी रही । साहबकी तरफ़ी होगी ।”

मैंने कह दिया—“रामू, रिपोर्ट और हमारे बीच ज्ञानूकी लाश है, उसकी विधवा बीबीकी कहानी है, उसकी माके आँसू हैं, उसके भाईका खून है !”

और हम ज्ञानूके घरकी ओर बढ़ गये ।



माइकेल बाकूनिन

वनारसीदास चतुर्वेदी

"Know Madame, that so long as your son lives, he can never be free."*

—Tsar Alexander II.

—‘श्रीमतीजी, एक बात आप अच्छी तरह समझ लें कि जब तक आपका लड़का ज़िन्दा है, तब तक वह कभी जेलखानेसे नहीं छूट सकता।’

—रूसी जार एलेक्जेंडर द्वितीय

बात सन् १८५५की है। रूसके जार निकोलसकी मृत्यु हो चुकी थी और उनकी गद्दीपर एलेक्जेंडर द्वितीय बैठे थे। इस उत्सवकी खुशीमें कितने ही राजनैतिक अपराधी छोड़े जानेवाले थे। जब इन कैदियोंकी सूची रूसी जारके सामने लाई गई, तो उसमें बाकूनिनका भी नाम था। जारने सूचीको हाथमें लेकर उसमें से बाकूनिनका नाम अपने हाथोंसे काट दिया। जब बाकूनिनकी पूज्य माताको यह दुःखद समाचार ज्ञात हुआ कि उनका लड़का नहीं छूटेगा, तो उन्होंने जारसे मिलनेकी प्रार्थना की। बड़ी मुश्किलसे यह आज्ञा मिली। जारके पास जाकर बाकूनिनकी माने बहुत मित्रत-आरजू की, तब उनके उत्तरमें जारने उपर्युक्त शब्द कहे थे।

अराजकवादियोंके आचार्य माइकेल बाकूनिनका जीवन-चरित किसी उपन्याससे कम मनोरंजक नहीं है। यदि संसारके उन महापुरुषोंकी सूची तैयार की जाय, जिनका प्रभाव भविष्यमें बहुत वर्षों तक रहेगा, तो उसमें माइकेल बाकूनिन तथा उनके शिष्य प्रिंस क्रोपाटकिनके नाम मार्क्स तथा लेनिन और महात्मा गांधीके नामके साथ ही लिए जावेंगे। भावी संसारके निर्माणमें इन सबके विचारोंका काफ़ी हाथ रहेगा।

माइकेल बाकूनिनका जन्म सन् १८१४ ईस्वीमें रूसके एक धनी परिवारमें हुआ था। उनके पिता

राजनीति-विभागमें सरकारी नौकर थे ; पर जिस समय बाकूनिनका जन्म हुआ था, उस समय वे अपनी नौकरीसे रिटायर हो चुके थे और टारजक नामक स्थानमें रह रहे थे। पन्द्रह वर्षकी उम्रमें बाकूनिन पीटर्सबर्गके फौजी विद्यालयमें भर्ती हुए और वहाँपर तोप चलानेका काम सीखा। १८ वर्षकी उम्रमें वे एक रेजीमेण्टके साथ मिस्क नामक स्थानको भेज दिये गये। सन् १८३० में रूसी जारशाहीने पोलैण्डके निवासियोंके विद्रोहका जिस क्रूरताके साथ दमन किया था, उससे पोलैण्ड-निवासी अत्यन्त त्रस्त हो गये थे। उनकी इस दुर्दशाका नवयुवक बाकूनिनके हृदयपर अत्यन्त प्रभाव पड़ा और तानाशाहीके प्रति उनके हृदयमें घोर घृणा उत्पन्न हो गई। सन् १८३४ में यानी दो वर्ष फौजी नौकरी करके उन्होंने इस्तीफा दे दिया और मास्को चले आये। छै वर्ष तक वहाँपर वे दर्शनशास्त्रका अध्ययन करते रहे। सन् १८४० में वे बर्लिन गये। उनका विचार था कि बर्लिनमें दर्शनशास्त्रकी उच्च-से-उच्च शिक्षा पाकर वे अपने देशको लौट आवेंगे और वहाँ किसी विद्यालयमें प्रोफेसर बनकर अपनी जिन्दगी आरामसे व्यतीत करेंगे ; पर भाग्यमें प्रोफेसरीकी आरामकुर्सीके बजाय कुछ और ही लिखा था। उस वक्त कौन कह सकता था कि दर्शनशास्त्रका यह विद्यार्थी आगे चलकर कुछ ऐसा, क्रान्तिकारी सिद्धान्त उपस्थित करेगा, जिससे संसारकी अनेक सरकारें थर-थर काँपने लगेंगी और जो उसे अपना सबसे बड़ा शत्रु समझकर उसे अधिक-से-अधिक दण्ड देनेमें अपना सौभाग्य समझेंगी। श्री बट्रेण्ड रसेलने अपनी पुस्तकमें बाकूनिनका जीवन-चरित लिखते हुए ये शब्द कहे हैं—

* देखिये—Bertrand Russell की 'Proposed Roads to Freedom' पृष्ठ ४३ ; Blue Ribbon Series, New-York.

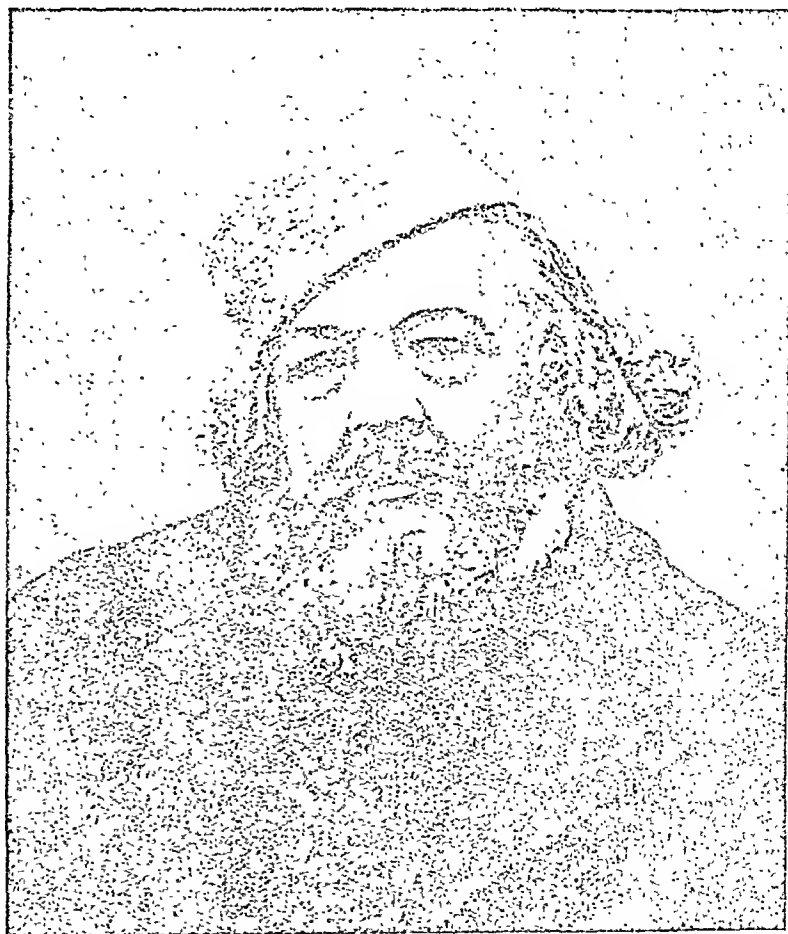
"Now began a long period of imprisonment in many prisons and various countries. Bakunin was sentenced to death on the 14th

of January 1850, but his sentence was commuted after five months, and he was delivered over to Austria, which claimed the privilege of punishing him. The Austrians in their turn, condemned him to death in May, 1851 and again his sentence was commuted to imprisonment for life. In the Austrian prisons he had fetters on hands and feet and in one of them he was even chained to the wall by the belt. There seems to have been some peculiar pleasure to be derived from the punishment of Bakunin, for the Russian Government in its turn demanded him of the Austrians, who delivered him up. In Russia he was confined first in the Peter and Paul fortress and then in Schlusselburg."

अर्थात्—'इसके बाद बाकूनिनके जीवनमें एक ऐसे युगका प्रारम्भ हुआ, जिसमें उन्हें विभिन्न देशोंके कितने ही जेलखानोंमें लम्बे-लम्बे समय तक रहना पड़ा। १४ जनवरी सन् १८५० को जर्मन सरकारने उन्हें फ्राँसीका हुक्म दिया था ; पर पाँच महीने बाद यह सजा काट दी गई, और जर्मन सरकारने बाकूनिनको आस्ट्रियन सरकारके सुपुर्द कर दिया। आस्ट्रियन सरकार बाकूनिनको दण्ड देनेके लिए पहलेसे ही तुली बैठी थी, और उमने मई सन् १८५१ में बाकूनिनको फ्राँसीका हुक्म दिया ! पीछे यह सजा जीवन-भरके लिए जेलखानेके रूपमें बदल दी गई। आस्ट्रियन जेलखानोंमें बाकूनिनके हाथ तथा पाँवोंमें वेड़ियाँ बाँधी रहती थीं, और एक जेलखानेमें तो उनकी पीठमें साकल डालकर वे दीवारसे बाँध दिये गये थे। ऐसा प्रतीत होता है कि भिन्न-भिन्न सरकारोंको बाकूनिनको दण्ड देनेमें कुछ विचित्र मजा आता था। अबकी बार रूसी

सरकारने आस्ट्रियन सरकारसे बाकूनिनको माँग लिया, और पहले पीटर तथा पालके बन्दनाम किलेमें और फिर स्लूसलबर्गके जेलखानेमें बन्द रखा।"

सन् १८४६ से १८६१ तक बाकूनिनको जेलमें ही रहना पड़ा, और इन बारह वर्षोंमें उन्होंने जो यातनाएँ सही, उनका वृत्तान्त पढ़कर रोंगटे खड़े हो जाते हैं। और दूसरा कोई होता, तो उसके प्राण कभीके उड़ गये होते। यह महाप्राण बाकूनिनका ही काम था कि वे इस अग्नि-परीक्षामें पूर्णतया उत्तीर्ण हुए। प्रिन्स क्रोपाटकिनने अपने आत्म-चरितमें एक जगह लिखा है—“जब मैं पीटर और पालके किलेमें बन्द किया गया, तब मुझे उन तमाम शहीदोंकी याद आ



बाकूनिन

गई, जिन्होंने इस किलेमें अपने दिन बिताये थे । कितने ही मर गये, कितने ही पागल हो गये । उनकी छाया मेरी कल्पनाके सामने मानो नाच रही थी ; पर मुझे खास तौरसे खयाल आता था बाकूनिनका । दो वर्ष तक वे पीठके बल आस्ट्रियन जेलमें बँधे रहे थे, और फिर रूसियन सरकारने उन्हें छे वर्ष तक इसी जेलखानेमें बन्द रखा । जब ज़ारकी मृत्युके बाद वे इस जेलके अन्दरसे निकाले गये, तो उनका स्वास्थ्य अपने उन साथी-संगियोंसे जो बाहर स्वतन्त्र रहे थे, कहीं अच्छा था । उनमें अपने साथियोंकी अपेक्षा अधिक शक्ति थी ज्यादा ताज़गी थी । मैंने अपने मनमें सोचा—जब बाकूनिन इस यातनाको सह गये, तो मैं भी सहूँगा । मैं यहाँ हर्गिज़ सहूँगा नहीं ।”

जैसा कि हम ऊपर लिख चुके हैं, दर्शनशास्त्रके प्रोफ़ेसर बननेकी आकांक्षा रखनेवाले युवक बाकूनिनको १८४० ईस्वीमें यह स्वप्नमें भी खयाल नहीं था कि आगे चलकर उनका जीवन-पथ कितना कष्टकाकीर्ण होगा । सन् १८४२ में वे बर्लिनसे ड्रेसडन नामक स्थानमें पहुँचे । इस बीचमें उनके विचार क्रान्तिकारी हो चुके थे । ड्रेसडनमें सरकारकी उनपर कुदृष्टि हुई, इसलिए उन्हें स्विट्ज़रलैण्ड जाना पड़ा । स्विट्ज़रलैण्ड सरकारके पास रूसी सरकारकी माँग आई कि बाकूनिनको पकड़कर हमारे यहाँ भेज दो, इसलिए बाकूनिनको वहाँसे भी भागकर पेरिस आना पड़ा, और यहाँ वे १८४३-से-१८४७ तक रहे । रूसी सरकारने उनकी जायदाद ज़ब्त कर ली । १८४७ में फ्रांसकी सरकारने भी उन्हें देशनिकालेका दण्ड दे दिया, इसलिए वे ब्रुसेल्स चले गये । मई सन् १८४९ में वे फिर ड्रेसडन आये । क्रान्तिकारियोंके साथ उन्होंने प्रशियाकी सरकारी फौजका मुकाबला किया, पकड़े गये और जर्मन सरकारने, जैसा कि हम ऊपर लिख चुके हैं, १४ जनवरी सन् १८५० को उन्हें फाँसीका दण्ड सुनाया ।

१८६१ में बाकूनिन साइबेरियासे भागकर जापान पहुँचे और वहाँसे अमेरिका होते हुए लन्दन आ गये ।

अराजकवादका प्रचार

१८६१ से १८७३ तक बाकूनिन अपने सिद्धान्तोंका प्रचार करते रहे, और इसके लिए उन्हें साम्यवादके प्रवर्तक कार्ल मार्क्सका घोर विरोध करना पड़ा । मार्क्सके तथा बाकूनिनके सिद्धान्तोंमें ज़बरदस्त भेद यह था कि मार्क्स किसी-न-किसी प्रकारकी सरकारमें विश्वास रखते थे और बाकूनिन पूर्ण अराजकवादी थे । किसी प्रकारके शासनमें उनका विश्वास ही न था ।

बाकूनिन और मार्क्स

बाकूनिन और मार्क्स इन दोनों सिद्धान्तोंका मतभेद तो था ही, स्वभाव भी दोनोंका परस्पर विरोधी था । बाकूनिन उदार तबीयतके आदमी थे और असंयत भावुकता उनमें कूट-कूटकर भरी थी ; लेकिन मार्क्सने अपने भावोंपर काफ़ी काबू कर लिया था । बाकूनिनके व्यक्तित्वमें अद्भुत आकर्षण था । जो कोई आदमी उनके संसर्गमें आता, वह उनके व्यक्तित्वसे प्रभावित हुए बिना न रहता ; पर मार्क्स बिल्कुल जाहिदे खुरक थे, और एक बार उनसे मिलनेके बाद दूसरी बार किसी सहृदय आदमीके मनमें उनके पुनर्दर्शनकी अभिलाषा न रहती थी ।

सन् १८७१ में बाकूनिनने मार्क्सके विषयमें लिखा था—“हम लोग एक दूसरेसे प्रायः मिला करते थे । मेरे हृदयमें मार्क्सके प्रति उनकी विद्वत्ताके कारण और साधारण जनताकी सेवाके लिए उनके हृदयमें जो गम्भीर और उत्साहपूर्ण भावना थी, उसकी वजहसे बड़ी श्रद्धा थी ; लेकिन मार्क्सके सेवा भावमें सदा अहंभावका सम्मिश्रण हुआ करता था । मार्क्ससे बातचीत करनेके लिए मेरे मनमें बड़ी उत्कण्ठा रहा करती थी और उनकी बातचीत सदा शिक्षाप्रद तथा चातुर्यपूर्ण होती थी, सिर्फ़ उन अवसरोंको छोड़कर, जब उसमें चूद्र घृणा या विद्वेषकी प्रेरणा होती थी और दुर्भाग्यवश उनकी बातचीत अकसर चूद्र विद्वेषसे प्रेरित होती थी । हम लोग दिल खोलकर कभी नहीं मिले । हम लोगोंके

स्वभाव इतने अधिक परस्पर विरोधी थे कि हार्दिक मिलन सम्भव नहीं था। मार्क्स मेरे विषयमें कहते थे—‘तुम भावुकतापूर्ण आदर्शवादी हो’, और उनका कहना ठीक था, और मैं उनसे कहता था—‘तुम अहंकारी, विश्वासवादी और चालाक आदमी हो’, और मेरा कहना भी ठीक था।*’

सन् १८४७ में बाकूनिनने मार्क्स और ऐज़िल्सके विषयमें लिखा था—“यदि संक्षेपमें इन लोगोंकी कार्यप्रवृत्तिका वर्णन किया जाय, तो मैं कहूँगा, मूर्खता और झूठ, झूठ और मूर्खता। इन लोगोंके साथ रहते हुए स्वाधीनतापूर्वक साँस लेना असम्भव है। मैं इन लोगोंसे अलग रहता हूँ, और मैंने उन्हें निश्चयपूर्वक कह दिया है कि आप लोगोंके समाजवादी कारीगरोंके समूहसे बिल्कुल अलग रहूँगा और मैं उससे कोई ताल्लुक नहीं रखना चाहता।”

साम्यवादी क्रान्तिकारी संघकी स्थापना

सन् १८६४ में बाकूनिनने इटलीमें ‘Alliance of Socialist Revolutionaries’ नामक संस्थाकी स्थापना की। इसमें अनेक देशोंके प्रतिनिधि थे; पर जर्मनीका कोई प्रतिनिधि नहीं था। सन् १८६७ में स्विटज़रलैण्ड पहुँचकर बाकूनिनने ‘International Alliance of Socialist Democracy’ नामक संस्थाकी स्थापना की। इसके पूर्व सन् १८६४ में लन्दनमें ‘International Working men’s Association’ की स्थापना हो चुकी थी, और इसके विधान तथा नियमोंकी रचना मार्क्सने की थी। थोड़े दिनोंमें ही इस संस्थाने बड़ी उन्नति की। भिन्न-भिन्न देशोंमें इसकी शाखाएँ फैल गईं और साम्यवादी विचारोंके प्रचारके लिए एक अच्छा साधन बन गई। सन् १८६६ में बाकूनिन अपनी संस्थाको तोड़कर इस संस्थामें सम्मिलित हो गये।

* He (Marx) called me a sentimental idealist, and he was right; I called him a vain man, perfidious and crafty and I also was right.

मार्क्स और बाकूनिनका मतभेद

जैसा कि हम ऊपर लिख चुके हैं, इन दोनों व्यक्तियोंके स्वभावोंमें बड़ा अन्तर था, और विचार-पद्धति भी दोनोंकी परस्पर विरोधी थी। प्रिंस क्रोपाटकिनने अपने जीवन-चरितमें लिखा है—“मार्क्सके अनुयायियों और बाकूनिनके अनुगामियोंमें जो लड़ाई थी, वह कोई व्यक्तिगत कारणोंसे नहीं थी। बाकूनिनके अनुयायी संघके सिद्धान्तके पक्षपाती थे, और मार्क्सके अनुयायी सारी शक्तिको एक संस्थामें केन्द्रित करनेके पक्षमें थे। बाकूनिन कहते थे कि संघ स्वतन्त्र रहने चाहिए और मार्क्स State या राष्ट्रके पैतृक शासनमें विश्वास रखते थे। बाकूनिनका विचार था कि साधारण जनता सर्वथा स्वतन्त्रतापूर्वक अपना सुधार करे और मार्क्स कानूनों द्वारा पूजीवादमें सुधार करना चाहते थे। इन दोनोंमें अन्तर था लैटिन भावना तथा जर्मन मनोवृत्तिका। जर्मनीने जबसे फ्रान्सको युद्ध-क्षेत्रमें हराया था, तबसे वह विज्ञान, राजनीति और दर्शनशास्त्रमें अपनेको सबसे ऊँचा समझने लगा था। यही नहीं, जर्मन लोग साम्यवादमें भी इसी भावनासे काम लेते थे और अपने ‘साम्यवाद’को वैज्ञानिक कहते थे और दूसरोंके साम्यवादको utopian या ‘काल्पनिक’—‘हवाई।”

मार्क्सकी धूर्तता

मार्क्सके अनुयायी इस कठोर शब्दके प्रयोगके लिए हमें क्षमा करें; पर यदि वे शान्तिपूर्वक उन कारवाइयोंपर विचार करेंगे, जो मार्क्सने बाकूनिनके विरुद्ध कीं, तो उन्हें इसी परिणामपर पहुँचना होगा कि दर असल मार्क्सने ईमानदारीको धता बता दी थी। पहली अकलमन्दी जो मार्क्सने की थी कि अपने पत्र ‘Neue Rheinische Zeitung’ में यह सोलह आने असत्य अफवाह छाप दी कि बाकूनिन रूसी सरकारकी खुफिया पुलिसका एक आदमी है! यद्यपि पीछे जब इसका खगडन किया गया, तो मार्क्सने वह भी छाप दिया था; पर इस भयंकर निराधार अफवाहसे बाकूनिनकी

कीर्तिको बड़ा धक्का लगा था। इसके बाद मार्क्सने अपने जर्मन मित्रोंको एक गुप्त चिट्ठी भेजी, जिसमें लिखा था कि बाकूनिन पैन् स्लेविस्ट लोगोंका एजेण्ट है और उन लोगोंसे बाकूनिनको २५ हजार फ्रैंक प्रतिवर्ष मिलते हैं !

बाकूनिन अनुवाद-कार्यको हाथमें नहीं ले सके। प्रकाशकने तकाजा करना शुरू किया, बाकूनिन बड़े तंग थे। बाकूनिनकी इस मनोव्यथाको देखकर उनके एक क्रान्तिकारी साथीने, जिसका नाम Netchayeff था, प्रकाशकके एजेण्ट लुवेबिनको धमकीकी एक

and instead of giving work, sent her not to Lenin (I think) not to talk for the publisher with him the affair, a most infamous and compromising letter. It would be of the highest utility for me, if this letter was sent me immediately. As this is a mere commercial affair and as the name to be made of the letter no names will be used, I hope you will procure me that letter. But no time is to be lost. If it is sent, it ought to be sent at once as I shall leave London for the Haag Congress at the end of this month.

Yours very truly
A. Williams.

१५ अगस्त १८७२ को डेनियलसनके नाम भेजा हुआ कार्ल मार्क्सका पत्र

बाकूनिनको इण्टरनेशनलसे निकालनेके लिए मार्क्सने जिस चालाकीका आश्रय लिया था, वह तो वास्तवमें सर्वथा निन्दनीय थी। उस घटनाको सुन लीजिए। बात सन् १८६८-७० की है। बाकूनिन उन दिनों लोकानोंमें रहते थे। आर्थिक संकटके मारे विचारे तंग थे। उन दिनों एक रूसी पुस्तक-प्रकाशकको उन्होंने यह वचन दिया कि हम तुम्हारे लिए 'Capital' नामक पुस्तकका अनुवाद रूसी भाषामें कर देंगे और इसके लिए ३०० रूबल (करीब ४५० रु०) पेशगी ले लिये। क्रान्तिकारी कार्योंमें फँसे रहनेके कारण

चिट्ठी भेजी कि या तो तुम बाकूनिनको तंग करना छोड़ दो, वरना तुम्हारी खैर नहीं। चूँकि नैचेव महाशय रूसमें एक आदमीका खून करके फगर हो चुके थे, इसलिए उनकी धमकी कारगर हो गई। इस धमकीपूर्ण पत्रकी खबर स्विट्ज़रलैंडके प्रवासी रूसी समाजके कानों तक पहुँच चुकी थी, और मार्क्सने भी इसे सुन रखा था। मार्क्सने इस चिट्ठीका उपयोग करनेकी ठान ली। आपने सन् १८७२में सोचा कि यदि कहीं यह चिट्ठी हमारे हाथ आ जाय, तो काम बन जाय। फिर हम हेगकी इण्टरनेशनलमें लोगोंसे कह सकेंगे कि देखो, बाकूनिन कैसा वेईमान आदमी है कि पेशगी रुपये लेकर फिर धमकीकी चिट्ठी भिजवाता है।

इम उद्देश्यसे मार्क्सने एक चिट्ठी एक रशियन विद्यार्थीको, जिसका नाम डेनियलसन था और जो मार्क्सका प्रशंसक था, लिख भेजी कि किसी प्रकार उस चिट्ठीको मेरे पास भेज दो, तो काम बन जाय। चिट्ठी निम्न-लिखित है—

"It would be of the highest utility for me, if this letter was sent me immediately. As this is a mere commercial affair and as in the use to be made of the letter no names will be used, I hope you will procure me that letter. But no time is to be lost. If it is sent, it ought to be sent at once as I shall leave London for the Haag Congress at the end of this month."

—‘यदि यह चिट्ठी फौरन ही मुझे भेज दी जाय, तो वह मेरे लिए अत्यधिक उपयोगी हो सकती है। चूँकि यह खालिस दूकानदारीकी बात है, और चूँकि चिट्ठीका इस्तेमाल करते समय किसीके नामका उल्लेख न किया जायगा, इसलिए मुझे आशा है कि आप मेरे लिए यह पत्र प्राप्त कर देंगे; लेकिन रत्तीभर देर न होनी चाहिए। अगर वह भेजा जाय, तो फौरन भेजा जाय, क्योंकि इस मासके अन्तमें मैं हेग-कांग्रेसके लिए लन्दनसे रवाना हो जाऊँगा।’

यह बात ध्यान देने योग्य है कि मार्क्सने यह चिट्ठी A. Williams (ए० विलियम्स) नामसे लिखी थी। रूसी सरकारकी कुदृष्टिसे बचनेके लिए कार्ल मार्क्स डेनियलसनके साथ इसी नामसे पत्र-व्यवहार किया करते थे।

प्रकाशके एजेण्ट लुवेबिनने तुरन्त ही यह चिट्ठी मार्क्सको भेज दी। साथ ही लुवेबिनने यह भी लिखा—“पहले तो मेरा खयाल था कि अवश्य ही इस धमकीकी चिट्ठीके भिजवानेमें बाकूनिनका हाथ रहा होगा; लेकिन अब शान्तिपूर्वक विचार करनेपर मैं इस परिणामपर पहुँचा हूँ कि इस चिट्ठीसे बाकूनिनके विरुद्ध कुछ भी सिद्ध नहीं होता, क्योंकि सम्भव है कि नैचेवने यह चिट्ठी बाकूनिनके बिना जाने लिखी हो।”

इस चिट्ठीके द्वारा मार्क्सने हेगकी कांग्रेसमें बाकूनिनको बेईमान सिद्ध करनेका निन्दनीय प्रयत्न किया! मार्क्सके जीवन-चरित-लेखक Franz Mehring ने भी मार्क्सकी इस कार्रवाईको, बाकूनिनके सिर निराधार अपकीर्ति मढ़नेके प्रयत्नको, अक्षम्य बतलाया है। उन्होंने लिखा है—“यद्यपि बाकूनिन बराबर यह बात स्वीकार करते रहे कि मैंने किताबके अनुवादके लिए ३०० रूबल पेशगी लिये थे और साथ ही वे बराबर यह वचन भी देते रहे कि जैसे होगा, वैसे इस रुपयेको मैं वापस कर दूँगा; पर आर्थिक कठिनाइयोंकी वजहसे वे कभी इस रुपयेको लौटा नहीं सके। हमारे प्रसिद्धसे प्रसिद्ध ग्रन्थकारोंमें कितने ऐसे न निकलेंगे, जिन्होंने प्रकाशकसे

पेशगी रुपये ले लिये, जो खर्च हो गये और फिर जिस किताबके लिखनेका वचन उन्होंने दिया था, वह किताब वे न लिख सके? निस्सन्देह यह कोई प्रशंसनीय बात नहीं है कि पेशगी रुपये ले लेना और फिर किताब न लिख सकना; लेकिन इस अपराधके लिए अपराधीका सिर कटवा मँगानेका प्रस्ताव वास्तवमें अत्युक्तिपूर्ण है।”

मार्क्सके एक अन्य जीवन-चरित-लेखकने लिखा है—

“Marx must bear most of the responsibility for a report which was not merely stupid, but fundamentally dishonest.”

—‘इस रिपोर्टकी जिम्मेवारी अधिकांशमें मार्क्सपर पड़नी चाहिए, क्योंकि यह रिपोर्ट बिल्कुल मूर्खतापूर्ण ही नहीं थी, बल्कि दर असल इसके मूलमें बेईमानी थी।’

बाकूनिनने आजसे ६० वर्ष पहले अपनी एक चिट्ठीमें लिखा था—“ये लोग (मार्क्स प्रभृति) बुर्जुआ शब्दका इतना अधिक प्रयोग करते हैं कि नाकों दम आ जाती है। बुर्जुआ शब्द इनका तकियाकलाम हो गया है, गोकि ये लोग खुद सिरसे पैर तक प्रान्तीय बुर्जुआ हैं।”

आज भी मार्क्सके कितने ही अनुयायी ‘बुर्जुआ’ शब्दका प्रयोग बेतरह करते हैं। हमारे एक साम्यवादी मित्र कहा करते हैं—“अराजकवादी तो बुर्जुआ लोग हैं, सिर नीचे, पैर ऊपर!”

मार्क्स तथा उनके साथियोंने बाकूनिनका पीछा नहीं छोड़ा। इन लोगोंने बाकूनिनके खिलाफ एक पामफ्लेट निकाला, जिसमें कितनी ही ऐसी बातें लिख दीं, जो बिल्कुल बेसिर-पैरकी और सोलह आने भूठ थीं। बाकूनिन खुफिया पुलिसका आदमी है, रूसी सरकारका एजेण्ट है, रिश्वत लेता है, पूँजीपतियोंका सेवक है, इत्यादि-इत्यादि। बाकूनिन उन दिनों हृद्दोगसे बीमार थे और निर्धनताकी दशामें अपने दिन काट रहे थे। उन्हें इस पामफ्लेटको पढ़कर बड़ा दुःख हुआ। उसका खंडन करते हुए उन्होंने लिखा था—“मैं तो अब साठ वर्षका हो चुका और दिलकी बीमारीकी वजहसे मेरे लिए सार्वजनिक जीवनमें भाग

लेना दिनों-दिन कठिन होता जाता है। जो नवयुवक हैं, उनसे मैं कहूँगा कि वे आगे बढ़ें। जहाँ तक मेरी बात है, सो न तो मुझमें अब इतनी शक्ति रही है और न इतना आत्म-विश्वास कि चारों ओरकी प्रतिक्रियाको रोकनेके लिए निरन्तर उद्योग करता रहूँ। यह प्रतिगामीपन या अवनति चारों ओर विजयी प्रतीत होती है। मैं तो इस युद्धसे विश्राम लेता हूँ और अपने सुयोग्य समकालीन कार्यकर्ताओंको अन्तिम प्रणाम करता हूँ। मैं अपने सहयोगियोंसे सिर्फ एक बात चाहता हूँ कि वे मुझे भूल जायँ। अबसे मैं किसीको तंग न करूँगा, न कोई मुझे तंग करे।”

यह बात ध्यान देने-योग्य है कि यद्यपि बाकूनिन मार्क्सकी इस नीतिके घोर विरोधी थे कि उन्होंने इंटरनेशनलपर कब्ज़ा करके उसे अपना बदला निकालनेका साधन बना लिया था, तथापि बाकूनिनने उक्त संस्थाकी स्थापनाके लिए मार्क्सकी सदा प्रशंसा ही की थी। जब बाकूनिनने अपने स्वास्थ्यके गिर जानेके कारण रिटायर होनेकी बात लिखी थी, तो कितने ही लोगोंने इसका भी मज़ाक उड़ाया था ! पर दरअसल उनका स्वास्थ्य गिर गया था। बाकूनिनके अन्तिम दिन बड़े आर्थिक संकटमें और अत्यन्त कष्टमय परिस्थितिमें कटे। पहली जुलाई सन् १८७६ को बर्नमें उनका देहान्त हो गया।

बाकूनिनके आखिरी दिनोंकी स्थितिपर विचार करते हुए बार-बार मनमें यह खयाल आता है कि क्या राजनीतिका अर्थ यही है कि अपने विरोधीको येनकेन-प्रकारेण नीचा दिखाया जाय ? क्या ईमानदारीका राजनीतिमें सचमुच कोई स्थान नहीं है ? जिस महापुरुषने अपने जीवनके तीस वर्ष संसारके गरीबोंकी सेवामें लगा दिये और जिसने अत्यन्त भयंकर पथपर अनन्त यातनाएँ सही, दो बार जिसे फाँसीका हुक्म हुआ, ग्यारह वर्ष जो जेलमें रहा और जिसे जीवन-भर इधर-से-उधर मोरे-मारे फिरना पड़ा, क्या उसको अन्तमें यह पुरस्कार मिलना चाहिए था ?

बाकूनिनका नैतिक प्रभाव

प्रिंस क्रोपाटकिनने अपने जीवन-चरितमें एक जगह एक स्मरणीय घटनाका वृत्तान्त लिखा है—“एक बार एक मीटिंगमें कुछ नवयुवक ऐसी बातचीत कर रहे थे, जो स्त्रियोंके प्रति शिष्टतापूर्ण नहीं थी। उस मीटिंगमें कई स्त्रियाँ भी उपस्थित थीं। उनमें से एक स्त्रीने कहा—‘Pity that Michel is not here : he would put you in your place.’—‘दुःखकी बात है कि आज यहाँ माइकेल बाकूनिन मौजूद नहीं हैं, नहीं तो वे तुम्हें बतला देते कि तुम्हारा स्थान कहाँ है।’ इस घटनाका मुझपर इतना प्रभाव पड़ा कि मुझे अब भी उस जगहका, जहाँपर और जिस परिस्थितिमें यह घटना घटी थी, पूरा-पूरा स्मरण है। उस पर्वतकाय महान क्रान्तिकारीका उज्ज्वल आदर्श, जिसने क्रान्तिके लिए अपना सर्वस्व अर्पित कर दिया था और जिसकी क्रान्तिकी भावनाएँ सर्वोच्च तथा पवित्रतम थीं, अराजकवादियोंको बराबर उत्साहित किया करता था।”

बाकूनिन और प्रिंस क्रोपाटकिन

बाकूनिनका जीवन इतना अधिक क्रान्तिमय रहा कि उन्हें अपने अराजकवाद-सम्बन्धी सिद्धान्तोंको ठीक तौरपर जनताके सम्मुख रखनेका अवकाश ही नहीं मिला। यह कार्य उनके सुयोग्य शिष्य प्रिंस क्रोपाटकिनने किया। ‘गुरु गुरु ही रहे, चेला शक्कर हो गये’—यह दृष्टान्त बाकूनिन और प्रिंस क्रोपाटकिनपर चरितार्थ होता है। भविष्यके लिए मानव-समाजके कल्याणार्थ कौन-सी व्यवस्था ठीक होगी, इसका तिक्र करते हुए श्री बर्ट्रेण्ड रसेलने अपनी पुस्तकमें लिखा है—

“From the point of liberty...I have no doubt that the best system would be not far removed from that advocated by Kropotkin, but rendered more practicable by the adoption of the main principles of Guild Socialism.”

—‘स्वाधीनताके खयालसे मेरी समझमें सर्वोत्तम व्यवस्था वह होगी, जिसका प्रतिपादन प्रिंस क्रोपाटकिनने किया है ; पर उसे अधिक व्यावहारिक रूप देनेके लिए

‘गिल्ड सोशलिज्म’ के मुख्य-मुख्य सिद्धान्तोंको ग्रहण करना पड़ेगा ।’

महात्मा गांधीजी और अराजकवाद

बाकूनिन तथा प्रिंस क्रोपाटकिनके अराजकवाद-सम्बन्धी विचारोंका जिक्र करते हुए महात्माजीका नाम लेना आश्चर्यजनक भले ही मालूम पड़े ; पर वह है सर्वथा प्रासंगिक । दर असल महात्माजीके विचार प्रिंस क्रोपाटकिनके जितने निकट हैं, उतने कार्ल मार्क्सके नहीं । जहाँ तक नैतिकताका सम्बन्ध है, महात्माजी तथा प्रिंस क्रोपाटकिन करीब-करीब एक ही धरातलपर हैं । महात्माजी अपनेको अराजकवादी कहते भी हैं । महात्माजीके सत्याग्रह तथा अहिंसाको सिद्धान्तमें संसारके लिए जो महान हितकारी शक्ति छिपी हुई है, उसका मूल्य हम लोगोंको अभी पूर्णतया नहीं मालूम हो सकता । बाकूनिन और प्रिंस क्रोपाटकिन, मार्क्स और लेनिन हिंसाके द्वारा क्रान्ति लाना चाहते हैं ; पर महात्माजी अहिंसा द्वारा । इस सिलसिलेमें हमें ६० वर्ष पहलेकी एक घटना याद आती है ।

सुप्रसिद्ध अमेरिकन दार्शनिक अपनी द्वितीय इंग्लैण्ड यात्रापर गये हुए थे । एक दिन वे अंगरेज मित्रोंके साथ बातचीत कर रहे थे । उन मित्रोंने कहा—“क्या आपके यहाँ अमेरिकामें कोई ऐसे भी आदमी हैं, जिनके विचार अमेरिकाके शासनके विषयमें निजी हों, मौलिक हों ?”

एमर्सनने उत्तर दिया—“हैं तो अवश्य ; पर जिन लोगोंके मौलिक विचार हैं, वे ऐसे स्वप्नदर्शी हैं कि यदि मैं उनके विचारोंका जिक्र करने लगूँ, तो वे आपके अंगरेज कानोंको बिलकुल ऊटपटाँग जँचेंगे ; लेकिन उनका स्वप्न ही वास्तविक है ।” इसके बाद एमर्सनने कहा—“हमारे यहाँ ऐसे

पवित्र विचार रखनेवाले पुरुष हैं, जो No-government and non-resistance—अराजकवाद तथा अहिंसामें विश्वास रखते हैं ।” इसके बाद एमर्सनने निम्न-लिखित शब्द कहे—

“It is true that I have never seen in any country a man of sufficient valour to stand for this truth, and yet it is plain to me, that no less valour than this can command my respect. I can easily see the bankruptcy of the vulgar musket-worship—though great men be musket-worshippers ;—and 'tis certain, as God liveth, the gun that does not need another gun, the law of love and justice alone, can effect a clean revolution.”

ये शब्द ध्यान देने-योग्य हैं कि यदि स्वच्छ क्रान्ति संसारमें हो सकती है तो ‘प्रेम’ और ‘न्याय’के सिद्धान्तसे ही । यदि एमर्सन आज जीवित होते, तो अवश्य वे महात्माजीमें उस व्यक्तित्वको पाते, जिसके लिए उनकी आँखें सन् १८४७ में भटक रही थीं । पर जैसा कि हम पहले लिख चुके हैं, संसारका उद्धार किसी एक व्यक्तिके सिद्धान्तोंसे नहीं होगा । दो अरब आदमियोंसे बने हुए इस मानव-समूहके रोगोंकी रामबाण औषधि किसी एक वैद्यके पास नहीं है । कठमुठे हैं वे, जो समझते हैं कि बस हमारा ही पथ ठीक है और सब रास्ते गलत हैं । मार्क्सके जो अनुयायी महात्मा गांधीजीको ‘साम्राज्यवादके दोस्त’ और ‘प्रतिक्रियावादी’ बतलाते हैं अथवा अराजकवादके सिद्धान्तकी खिल्ली उड़ाते हुए अराजकवादियोंको ‘बुर्जुआ’ और ‘स्वप्नदर्शी’ कहते हैं, वे अपनी अल्पज्ञाताका ही परिचय देते हैं ।

संसारके सामने अभी अनेक युग आनेवाले हैं । मार्क्सवादका युग ही अन्तिम युग नहीं है ; और उन भावी युगोंके लानेका श्रेय जिन व्यक्तियोंको होगा, उनमें महाप्राण माइकेल बाकूनिनका नाम अप्रगण्य है ।

हिन्दी-कविताकी कुछ नई पुस्तकें*

श्री हज़ारीप्रसाद द्विवेदी, साहित्याचार्य

कविताके आलोचकसे कई प्रश्नोंका उत्तर अपेक्षित रहता है।

साधारणतः प्रत्येक आलोचक दो प्रश्नोंपर ज़्यादा जोर देते हैं—‘कवि कैसे लिखता है’ और ‘वह क्या लिखता है’। आधुनिक युगमें समालोचक इस प्रश्नका भी उत्तरदायी समझा जाता है कि कवि किसके लिए लिखता है। वस्तुतः कविकी शैली (अर्थात् वह कैसे लिखता है) और वक्तव्य (वह क्या लिखता है) की योग्यता तीसरे प्रश्नमें ही निर्णीत होती है; लेकिन प्रश्न यह है कि समालोचकको क्या अधिकार है कि वह तीसरे प्रश्नकी जाँच करे। कवि किसके लिए लिखता है, यह बात तो कवि ही बता सकता है। बहुतसे कवि अपनी कविता अपने लिए ही लिखते हैं, बहुतसे दूसरोंके लिए लिखते हैं; लेकिन हर हालतमें यह बात कविसे ही पूछी जानी चाहिए कि वह किसके लिए लिख रहा है। समालोचनाका काम असलमें कविके काव्यसे ही, उसीका दिया हुआ, उत्तर निकाल लेना है। ऐसा हो सकता है कि कविने अपने काव्य-क्षेत्रके बाहर यह बताना चाहा हो कि वह किसके लिए लिखा करता है और आलोचकका आविष्कृत उत्तर उसके विरुद्ध जाता हो; पर प्रमाण वही उत्तर होगा, जो कविने अपने काव्यमें इशारेसे दिया था। यह एक भ्रम है कि कवि काव्यावेशमें जो-कुछ कहता है, वह ठीक वही होगा, जो वह साधारण मानसिक अवस्थामें कहता है।

सहृदयके निकट सबसे बड़ी बात यह है कि कवि क्या लिखता है। ब्रज-भाषाका कवि प्रेम-व्यापारका ही चित्रण

* गत वर्षकी भौति इस वर्ष भी कविवर रवीन्द्रनाथ ठाकुर, पित्रों और कवियोंकी कृपासे कुछ पुस्तकें देखनेको मिली हैं। खड़ी बोलीकी निम्न-लिखित पुस्तकोंको लेखकने अध्ययनके लिए चुन लिया है (ब्रज-भाषा, मैथिली और अवधीकी पुस्तकोंकी समालोचना बादमें लिखी जायगी)—‘द्रापर’ (मैथिलीशरण गुप्त), ‘सांध्य-गीत’, (महादेवी वर्मा), ‘मृगमयी’ (सियारामशरण गुप्त), ‘आभास’ (बालकृष्ण राव), ‘राका’ (उदयशंकर भट्ट), ‘उद्गार’ (दोमवती), ‘दूध-वताशा’ (सोहनलाल द्विवेदी)। —लेखक

करता था, आजका कवि भी इस प्रेमका ही चित्रण करता है। सब पूछा जाय, तो संसारके काव्य-साहित्यमें प्रेमके नाना रूपोंका वर्णन ही अधिक है; लेकिन ‘प्रेम’ बड़ा व्यापक शब्द है। कोई भी दो आदमी इसका एक ही अर्थ नहीं समझते, कविकी तो बात ही क्या है। इसीलिए मैथिलीशरण गुप्तके प्रेमकी कल्पना उदयशंकर भट्ट या सियारामशरण गुप्तके प्रेमकी कल्पनासे भिन्न होती है।

प्राचीन आचार्योंने मोटी तौरपर प्रेमके पाँच स्वभावोंका उल्लेख किया है—शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य और मधुर (श्रृङ्गारिक)। इनकी रतिका नाम भी यथाक्रम इस प्रकार है—शान्ति, प्रीति, प्रेय, अनुकम्पा और मधुरा। लौकिक प्रेमकी अवस्थामें शान्त स्वभाव श्रेष्ठ है और उसके बाद दास्य आदिका क्रम है; पर प्रेम अगर अलौकिक अर्थात् भगवद्विषयक हो, तो क्रम उल्टा हो जाता है, अर्थात् ऐसी हालतमें मधुर भाव सर्वोच्च होता है और उसके बाद वात्सल्य, सख्य आदिका क्रम होता है। इस बातको समझानेके लिए आचार्योंने दर्पणका उदाहरण दिया है। दर्पणमें प्रतिबिम्ब उल्टा पड़ता है। जो चीज़ सबसे ऊपर होती है, वह सबसे नीची दिखती है, और जो सबसे नीची रहती है, वह सबसे ऊपर। यह जगत् दर्पणके समान है, इसीलिए मधुरा (श्रृङ्गारी) रति, जो भगवद्विषयक होनेपर सबसे ऊपर रहती है, लौकिक होनेपर सबसे नीचे पड़ जाती है।

वास्तविक प्रेम, वैष्णव आचार्योंके मतसे, चिन्मुख होता है और अवास्तविक या लौकिक प्रेम जड़ोन्मुख। आजकलकी प्रचलित परिभाषामें एकको प्रेम कहेंगे और दूसरेको वासना। प्रेम-यात्रके वियोगमें अगर प्रेमी शराव पीकर अपनेको भुलानेका यत्न करे, तो यह समझना चाहिए कि यह प्रेम प्रेम नहीं है, वासना है। प्रेम सक्रिय (active) होता है, वासना निष्क्रिय (passive); प्रेमी कुछ करता रहता है और वासनावान कुछ

हो जाता है ; प्रेमीकी स्थायी मनोवृत्ति रति-प्रवण होती है, वासनावानकी विरति-प्रवण । प्रियकी अप्राप्तिकी अवस्थामें प्रेमी साधु हो जाता है, वासनावान उच्छृङ्खल । एक दूसरोंको जीव-दान करता है, दूसरा आत्म-घात कर लेता है ।

[२]

‘द्वापर’ के कविसे सहस्र कासकी दूरीपर बैठा रहनेवाला आदमी भी आसानीसे समझ सकता है कि यह कवि भीड़-भग्मड़से दूर भागा करता है । एक साथ दोसे अधिक पात्रोंको वह एकत्र नहीं देखना चाहता । एक हो तो और भी अच्छा । एककी ही उक्तिमें वह अनेकके कथनोपकथनको व्यक्त किया करता है । ‘साकेत’ में उसका यह गुण साफ़ दीख पड़ा था, ‘यशोधरा’ में और भी साफ़ हुआ और ‘द्वापर’ में अपनी चरम सीमापर पहुँच गया । वर्तमान हिन्दी-कवितामें शायद ‘द्वापर’ एकमात्र ऐसा काव्य है, जिसमें प्राचीन आचार्योंकी वताई हुई पाँचों प्रकारकी रतिका परिचय मिल सकता है । हमारे आलोच्य-ग्रन्थोंमें यह एक बातमें सबसे अलग हो जाता है । इसमें कवि अपनी कुछ नहीं कहता । सब-कुछ नाटककी भाँति परोक्ष है । फिर भी उसके पात्रोंमें जो विशेषताएँ हैं, वह उसके वक्तव्य अर्थको स्पष्ट कर सकती हैं । उदाहरणके लिए, हम राधाका चरित्र ले सकते हैं ।

अब तक कवियोंने राधाके विविध रूपोंका चित्रण किया है । चण्डीदासकी राधा मक्खनकी पुतली हैं । इस प्रकारकी कोमल-हृदया नायिकाकी सृष्टि किसी अन्य कविने की है या नहीं, यह बात सन्दिग्ध है । अगर इस राधाने कभी मान किया, तो दूसरे ही क्षण गलकर पानी हो गई—“हाय, सखियो, मैंने अपना सिर अपने ही (हाथों) काट लिया, क्यों मैं ऐसा मान करने गई ? हाय, नटवर-नागर श्याम, किधर निकल गये !”—

आपन सिर हाय आपन काटनु

काहेनु करि हेन मान,

श्याम मनोहर नटवर नागर

काहाँ सखि करल पयान ।

सूरदासकी राधा संयोगके समय सोलह आना संयोगिनी हैं

और वियोगके समय सोलह आना वियोगिनी । इस मानिनीका मान भंग होना आसान नहीं ; पर वियोगके समय इसी राधिकाकी व्याकुलताकी सीमा नहीं रहती :—

आजु रैनि नहिं नींद परो

जागत गिनत गगनके तारे रसना रटत गोविन्द हरी

इतने मन व्याकुल भये सजनी आरज पंथहुँ ते बिडरी

‘सूरदास’ प्रभु जहाँ पधारे कितिक दूरि मथुरा नगरी ।

और इसी प्रकार अन्य कवियोंने राधाके विविध रूपोंका वर्णन किया है । मैथिलीशरणकी राधिकाके प्रेममें मथुरा रतिकी अपेक्षा प्रीति रति अधिक है, उसमें अपनावकी अपेक्षा समर्पणकी भावना प्रबल है :—

मेरे तूत प्रेमसे तेरी वुक्त न सकेगी क्षुधा हरे !

निज पथ धरे चला जाना तू अलं मुझे सुधि सुधा हरे !

और—

यह वृन्दावन यह वंशीवट यह यमुनाका तीर हरे !

यह तरते ताराम्बरवाला नीला निर्मल नीर हरे !

यह शशि-रंजित सित घन-व्यंजित परिचित त्रिविध समीर हरे !

बस यह तेरा अंक और यह मेरा रंक शरीर हरे !

x

x

x

अब तक मैथिलीशरण गुप्तको हम पारिवारिक प्रेम (Domestic sentiment) के कवि जानते रहे हैं । कमसे कम ‘साकेत’ और ‘यशोधरा’ में हमें उनके इसी रूपका परिचय मिलता है ; पर ‘द्वापर’ में हठात् ऐश्वर्यके लोकका संत्रमशील भक्त कवि माधुर्यके लोकमें विहार करने आ गया है । यहाँ वह कुछ द्रवता हुआ—मर्यादाकी सीमाओंमें सिकुड़ा हुआ-सा उन्मुक्त प्रेम-संगीत गाने बैठा है । शायद तीन सौ वर्ष पहले तुलसीदासको कृष्ण-गीतावलीमें ऐसा ही सिकुड़ना पड़ा था । इसीलिए उसकी राधिकासे लेकर कुब्जा तकमें एक अभिनव भाव-सौन्दर्यका विकास हुआ है । मथुरा रतिने मानो प्रीति रतिका रूप धारण किया है ।

‘द्वापर’ की कुब्जा कविकी नई कल्पना है । यह वदनाम स्त्री कविके हाथों देखी बन गई है । उज्ज्वल रसका ऐसा सुन्दर

परिपाक शायद 'द्वार' के किसी भी अन्य चरित्रमें नहीं हुआ है ! कुब्जाने कंसके घर जाते समय राहमें श्रीकृष्णको देखा, उसमें श्रद्धाका संचार हुआ :—

कसी क्षीण कटि पीन वक्ष था कच कंधरा ढँके थे
स्वर्ण वर्णके उत्तरीयमें चित्रित रत्न ढँके थे
दुगुनेसे दो भुज विशाल थे, पार्श्व छीलते-छिलते
गण्ड-द्युति-मण्डलसे मण्डित श्रुति कुण्डल थे हिलते ।

x x x

चिबुक देख फिर चरण चूमने चला चित्त चिर चेरा
वे दो ओंठ न थे राधे था एक फटा उर तेरा ।
फिर उसके हृदयमें प्रेमका संचार हुआ :—

चिबुक हिलाकर छोड़ मुझे फिर मायावी मुसकाया ;
हुआ नया निस्पन्दन उरमें पलट गई यह काया !

x x x

'अब फिर कभी मिलूँगा' कहकर हँसता चला गया वह
ज्यों-ज्यों दूर गया मानसमें धँसता चला गया वह !
और अन्तमें भक्तिका और आत्म-समर्पणका भाव प्रबल हो
उठता है :—

मेरा अतिथि देव आवे तो मैं सिर-माथे लूँगी
उसने मुझको देह दिया मैं उसे प्राण भी दूँगी ।

x x x

अहोरात्रके पंख लगाकर सुष-सी उड़ती हूँ मैं ;
तेरे मिलनेको अपनेसे आप बिछुड़ती हूँ मैं ;
और बड़ा कौतुक तो यह तू यहीं कहीं बैठा है ;
ओ कठोर कह किस कोठेमें तू घुसकर पैठा है ?

यह संयोगकी ही बात नहीं है कि इस कविका क्रम प्राचीन
आचार्योंके बताये हुए क्रमसे ह्रस्व मिल जाता है । भागवतमें
यही क्रम बताया भी गया है :—

सतां प्रसंगान्मम वीर्यं संविदो

भवन्ति हृत्कर्ण रसायनाः कथाः

तज्जोषणादाध्वपवर्गं वर्त्मनि

श्रद्धा रतिर्भक्तिरनुक्रमिष्यति ।

असलमें कविवर मैथिलीशरण गुप्त प्राचीन मर्यादा-प्रेमी
दास्य स्वभाववाले भक्तोंकी ही जातिके हैं । शायद भागवतका
यह श्लोक उन्हें मालूम न हो, शायद हो भी, पर इस बातसे
कुछ आता-जाता नहीं । आत्म-समर्पण-प्रधान प्रीति रति
निःसन्देह उनकी अपनी विशेषता है । 'द्वार' का वक्तव्य भी
यही प्रीति रति है ।

[३]

'सांध्य-गीत' की कवियित्री 'द्वार' के कविके समान ही
उत्तरोत्तर तेजोमय दृष्ट हुई हैं । 'सांध्य-गीत' वर्तमान हिन्दीकी
शायद पहली पुस्तक है, जिसके चित्रोंमें पुस्तकमें स्थान पानेका
एक औचित्य है, एक justification है । चित्रोंमें मार्जित
रुचि और सुसंस्कृत मनका सुन्दर परिचय पाया जाता है । एक
ही शिली द्वारा रचित गानों और चित्रोंमें एक दर्शनीय
सामंजस्य है ।

'सांध्य-गीत' गानकी पुस्तक है । गानमें वक्तव्य अर्थकी
अपेक्षा सुर ही अधिक प्रधान होते हैं ; परन्तु गानके साथ ही
साथ 'सांध्य-गीत' कविता भी है, और सच पूछा जाय, तो
'सांध्य-गीत' के गानोंको केवल कविता माननेमें उनके सौन्दर्यमें
लेशमात्र भी न्यूनता नहीं आती ।

'द्वार' की तरह 'सांध्य-गीत' का प्रतिपाद्य अर्थ प्रीति रति
नहीं है । 'द्वार' के कविका स्थायी मनोभाव दास्य-स्वभावका
है ; लेकिन 'सांध्य-गीत' के कविका मधुर स्वभावका । दोनों
ही में आत्म-समर्पणकी लालसा है ; पर दोनों लालसाएँ दो
तरहकी हैं । एक समर्पणके सिवा और कोई बात सोच ही
नहीं सकती, दूसरी समर्पणके साथ ग्रहणको भी स्वीकार करती
है । 'सांध्य-गीत' की मधुरा रतिमें कष्ट-भावकी प्रधानता है ।
शायद हिन्दीमें दूसरा कवि इस प्रकार दुःखके सुखमय पक्षको नहीं
देख सका, जैसा 'सांध्य-गीत' की गायिकाने देखा है :—

प्रिय-पथके यह शूल मुझे अलि प्यारे ही हैं ।

हीरक-सी यह याद बनेगा जीवन सोना,

जल-जल तप-तप किन्तु खरा इसको है होना ।

चल ज्वालाके देश, जहाँ अंगारे ही हैं ।

तम-तमालने फूल गिरा दिन-पलकें खोलों,
मैंने दुखमें प्रथम तभी सुख-मिश्री घोली !
ठहरें पल-भर देव अश्रु यह खारें ही हैं !

× × ×

आकुलता ही आज हो गई तन्मय राधा,
विरह बना आराध्य द्वैत क्या कैली बाधा !
खोना पाना हुआ जीत वे हारे ही हैं !

‘सांध्य-गीत’ के कविने वैयक्तिक सुख-दुखकी उस सीमाको
पार कर लिया है, जो कवितामें राजसी भाव ला देते हैं ।
उसका सुख भी सत्त्वोद्रेचक है, दुःख तो है ही :—
जाने किस जीवनकी सुधि ले लहराती आती मधु बयार ।

रंजित कर दे यह शिथिल चरण ले नव अशोकका अरुण राग
मेरे मण्डनको आज मधुर ला रजनीगन्धाका पराग
यूथीकी मीलित कलियोंसे अलि दे मेरी कवरी सँवार !

पाटलके सुरभित रंगोंसे रँग दे हिम-सा उज्ज्वल दुकूल,
गुथ दे रसनामें अलि गुंजनसे पूरित भरते वकुल फूल,
रजनीसे अंजन माँग सजनि दे मेरे अलसित नयन सार !

तारक लोचनसे सींच-सींच नभ करता रजको विरज आज
बरसाता पथमें हरसिंगार केशरसे चर्चित सुमन-जाल
कंटकित रसालोंपर उठता है पागल पिक मुक्तको पुकार !

लहराती आती मधु बयार !

असलमें कविने “बाहर-भीतर एक सामंजस्य-सा ढूँढ़ लिया
है, जिसने सुख-दुःखको इस प्रकार बुन दिया है कि एकके
प्रत्यक्ष अनुभवके साथ दूसरेका अप्रत्यक्ष आभास मिलता रहता
है ।” स्वभावसे वह मधुर है—माधुर्य, जो अविपर्यस्त अवस्थामें
कविकी चरम साधना है । इसीलिए उसके गानोंमें करुणा भी
है, माधुर्य भी है और रस भी है !—

मेरी है पहेली बात !

रातके भीने सितांचलसे विखर मोती बने जल,
स्वप्न पलकोंमें विचर भर प्रात होते अश्रु केवल !

सजनि मैं उतनी करुण हूँ, करुण जितनी रात !

मुस्कराकर राग मधुमय वह छुटाता पी तिमिर विष
आंसुओंका क्षार पी मैं बाँटती नित स्नेहका रस !
सुभग मैं उतनी, मधुर हूँ, मधुर जितना प्रात !
ताप-जर्जर विश्व-उरपर—तूल-से घन छा गये भर
दुःखसे तप हो मृदुलतर उभड़ता करुणा-भरा उर
सजनि, मैं उतनी सजल, जितनी सजल बरसात !—

× × ×

[४]

‘आभास’ और ‘राका’ के कवि साहित्य-क्षेत्रमें उतने पुराने
नहीं हैं । शायद दोनों ही पुस्तकें अपने रचयिताओंकी दूसरी
रचना हैं । ‘आभास’ के कविने कुल २९ कविताएँ लिखी हैं,
जिनमें उसने अपनी सखी, सजनी, प्रिया या प्राणेश्वरीको पचास
बारसे अधिक सम्बोधन किया है, इसलिए यह कहनेमें कोई
संकोच नहीं होना चाहिए कि उसका वक्तव्य अर्थ अत्यन्त स्पष्ट
और सरल है, प्रेममय है और युवक-जनोचित है । पंडितोंपर
‘सबसे गहरा प्रभाव’ उसके ‘हृदयकी सचाईका पड़ा है, जो
प्रत्येक पदमें बड़ी सफ़ाईके साथ झलकती है ।.....भावोंका
कृत्रिम अभिनय, तरल और क्षणभंगुर रूप-विन्यास, विदेशी
ढाँचेकी लाक्षणिक वक्रता, यह सब वाना भी श्रीयुत रावको
वाणीमें नहीं है’ (रामचन्द्र शुक्ल) । और सब पूछा जाय,
तो ‘आभास’ में भावोंकी गम्भीरताकी अपेक्षा कविकी सचाई ही
अधिक आकर्षक है :—

आज व्यथित है सखि, सुखका मन,
छुटा चुके हैं नयन अश्रु - धन,
अब अभिनव अभिलाषाओंसे
सजनि, कल्पना सो न सकेगी ।

× × ×

‘राका’ में सुधीजनोंने देखा है कि ‘संकीर्ण दुःख-सुखका
प्रकाशन इन कविताओंमें उतना नहीं है । संकीर्ण रहकर सुख
विषय बनता है, दुःख भी विषय बनता है । उसपर से अपनेपनकी
सीमा उठा लेनेपर वही सुख-दुःख महालीलामयका प्रसाद बनता
है ।.....’ यह कह सकता हूँ कि विषय साधना प्रस्तुत कविताओंमें

मैंने नहीं पाया, पर यह तो मानना होगा कि जीवनोत्साहके गीत पुस्तिकाओंमें नहीं हैं; पर यदि निराशा है, तो वह भी कड़वी नहीं है, मानो वह लिग्ध है, स्वस्थ है।' (जैनेन्द्रकुमार)

'राका' का कवि जीवनका विश्लेषण करके उसे समझनेकी कोशिश करना चाहता है। न तो अपने विषयमें ही वेसुध है और न दूसरोंके ही विषयमें। अपने विषयमें उसने दो बार परिचय देनेका प्रयास किया है। कहता है :—

मैं अपने सुधिकी भूल भरी मनकी तरंगपर नाच रही
तटहीन नदीकी धारामें बहनेवाला इक प्राणी हूँ।
ये विश्व-नदीकी लहरें ही मेरे सुख-दुःखकी म्माँकी हैं
जिनके अवकाशोंमें डूबे अनगिनत प्यार सहलाती हूँ।
और—

हैं फूल और कांटे दोनों जीवन-मालाके डोरोंमें
हसरतमें झूली आँखोंसे जो छड़क पड़ा वह पानी हूँ !
जीवनको ठोंक-पीटकर देख लेनेके बाद वह जिस नतीजेपर
पहुँचा है, वह बहुत उत्साहप्रद नहीं है :—

देख लिया जीवनका मेला जीवन-मेला सपना री,
नन्हा-न्हा दिल लेकर आई वह भी हुआ न अपना री।
यहाँ उपेक्षा अचल खड़ी है मेरा साहस भोला है
बाँध ले चली मैं जीवनके अंचल सदा कल्पना री।
देख लिया जीवनका मेला जीवन सदा कल्पना री।

× × ×

होमवती देवीका 'उद्गार' व्यक्तिगत चीज़ है। निजी जीवनके मनोविकारोंने कविकी लेखनीसे विश्वजनीन होनेके लिए कवित्वका रूप धारण किया है। कविताओंकी सचाईके विषयमें दो मत हो ही नहीं सकते। 'उद्गार'की विधवा कविकी अपनी कविताके प्रकाशनसे कुछ हर्ष नहीं हुआ, 'वरन् रोना आता है।'.....सच जानना, जिस देवताकी स्मृतिमें ये उद्गार बिखर पड़े हैं, यदि एक बार पल-भरके लिए भी आ सकते ! काश, वे एक बार पल-भरके लिए भी आ सकते !' सारा 'उद्गार' कष्ट है, वेदनामय है; किन्तु पड़नेवाला कहीं भी थकता नहीं, अभिभूत नहीं हो जाता, क्योंकि प्रेम सात्त्विक है, राजस

या तामस नहीं। कविताओंमें छन्दोभंग हो सकता है, यतिदोष मिल सकता है; पर सचाई और प्रेमका वेग कुछ ऐसा प्रबल है कि पाठक उन्हें भूलनेको बाध्य हो जाता है। दो-एक उदाहरण पर्याप्त होंगे :—

जब ऊपाने रंग छिड़का था मेरे यौवनकी प्यालीमें;
फूलोंने मुस्कान भरी थी, ओंठोंकी सुन्दर लालीमें।

निशिकरने करमें दर्पण ले पलकोंपर जड़े सितारे थे;
तारावलियोंने माँग भरी रजनीने केश सँवारे थे।

कोयलने सीठी बोलीसे कल कंठ मेरा भर डाला था;
ऋतुपतिने आ फिर चुपके-से उर-प्रेमका आसब डाला था।

मैं उस पथपर खड़ी हुई थी, जिसपर वे आनेवाले थे;
मन-मन्दिरका द्वार खुला था लोचन प्रहरी मतवाले थे।

पर वीत गई सदियाँ सजनी वे फिर आये इस ओर नहीं;
सखि सूख गया रस अंतरका उर-पीड़ाका कुछ छोर नहीं।

अब उजड़ गया जीवन-उपवन कब करे सुमन खिल पायेंगे;
वे दिन तो वीत गये सजनी, इस जीवनमें क्या आयेंगे !

× × ×

है कौन यहाँ सुननेवाला तुम किसको व्यथा सुनाते हो ?
अश्रु-सुमनकी अंजलि भर-भर क्यों अंतर-कोप छुटाते हो ?
जो चोट पड़ेगी पल-प्रतिपल चुपचाप उसे सह जाना है;
कोई घाव न देखे प्यारे ! यों ही अब समय विताना है।

[५]

'मृष्मयी' को हमने जान-बूझकर छोड़ दिया था। प्रेमकी दुनियामें जब एक बार घुस पड़े, तो लौटनेका जी न किया। 'मृष्मयी'का कवि तत्त्वदर्शी है। वह जीवनको उल्ट-पुलटकर देखता है। प्रेमका भी वह विश्लेषण कर सकता है और प्रेमीका भी। मनोवृत्तियोंके बाह्य प्रकाशको वह सहज ही पकड़ सकता है, इसलिए तत्त्व उसके निकट छिपा नहीं रहता। राजकुमार सोनेकी गेंद फेंककर मिट्टीके लिए मचल पड़ता है और 'दीनाका लाल' मिट्टीके पुतलेको फेंककर सोनेकी गेंदके लिए मचल पड़ता है। यह एक ही प्रकारके मनोविकारके परस्पर विरोधी बाह्याचार हैं। 'मृष्मयी'का कवि इसे समझता

हैं ('खिलौना') । दो ग्वालिनें दही बेचने गईं । पहलीका सब विक गया, लाभ भी हुआ ; पर फिरी उदास । दूसरीका कुछ न बिका ; पर लौटी प्रसन्न । वह वनमें बेचती भी क्या ?—

बेचेंगी क्या इन कुंजोंमें,

कुटिल करीलोंके पुंजोंमें ?

खिला रही है अपना मन तू वनके इन गुंजोंमें ।

देख रही इनमें फिर-फिर क्या अपने उरकी लाली,

भली री ग्वालिन, गोरसवाली !

लेकिन दूसरी प्रसन्न क्यों हैं ? क्योंकि उसने वनमालीके स्वर सुन लिये हैं :—

चल तनुमें शुचि-मधु-रस छूटा ;

गिरकर वह कच्चा घट फूटा ;

दधि-माखनका मिस अवतीने हर्ष-हास वह लूटा ।

यह नटनागर नाच उठा है वजा-वजाकर ताली,

धन्य री ग्वालिन, गोरसवाली !

क्या पहलीका वह विक्रय धन

तुम्हपर न्योछावर दधि - माखन !

निखर गया मृदु मोदामृतमें तेरा तन-मन-जीवन ।

प्रियकी स्मृति-निधि अहा न-कुछमें पा ली, तूने पा ली !

सफल री ग्वालिन, गोरसवाली !

'मृण्मयी'कारको सफलताका तत्त्व मालूम है । प्रेम उसकी दृष्टिमें वास्तविक सफलता है । 'मृण्मयी' का कवि कहानी कहना जानता है, वह अपेक्षित अर्थकी प्राप्तिके लिए उत्सुक श्रोताको अधिकाधिक उत्कर्ण और रुद्धिदास कर देता है और फिर सहज ही समाप्त कर देता है । सब-कुछ सहृदय पाठकके लिए समझनेको छोड़ देता है । समुद्रमें स्नान करते-करते वह एक जगह आत्म-विस्मृत हो गया और लहरोंका शिकार बन गया । अब झूवा, अब झूवा :—

लौटूँ अब;

दूर खिंचता-सा चला आया यहाँ ।

एक साथ क्षुब्ध हो गई हैं सब

ऊर्मिल कुमारियाँ यहाँ - वहाँ

छेड़ कर दी है कुछ चंचल पवनने !

छक-से हिलाया उर मेरा क्षुद्र

भीति भरे प्रथुल प्रकम्पनने ।

जाग उठा शान्तमें कठोर रुद्र ।

हरे हरे !

झूबूँगा यहाँ क्या अरे !

शक्ति अब काम नहीं करती ।

वायु यह पी-पीकर नीर नाग-कन्यायें ;

हो गईं दुरन्त वन्य वन्यायें

मेरी मति धैर्य नहीं धरती ।

प्रवल जलाधिराज

राजाके विशुद्ध अवरोधमें,

उद्वेलित क्रोधमें,

चोर-सा फँसा मैं यहाँ चारों ओरसे हा आज !

दौड़ी हुई आ-आकर एक संग

भिर्मिट गई हैं ये भयंकर प्रहरियाँ ;

म्यानमें से निकल पड़ी कर शान्ति भंग

नीली असि धाराकी लहरियाँ

खेल-खेलमें ही हो गया कुरंग ।

दुःसह दुरन्त उस कालके भरोखेसे

जीवित ही दीख पड़ी,

मृत्युकी कठोर क्रूर छाया बड़ी ;

जानें किस धोखेसे !

सागरमें सागरके छलसे

सूख गये मेरे प्राण ।

विस्फोटित ज्वालामुखी लपटें महा महान्

निकल पड़ी ज्यों किसी वाढ़व अनलसे ;

नीचे और ऊपर समस्त जग

धूमिल था ; मुँद-से गये थे दृग ।

संकट विकट था,

पास था न कोई दूर तट था !

मैंने

व उस भीतिजनक परिस्थितिको कहता ही
चला जाता है, उत्कण्ठ पाठक प्रतिक्षण किसी असंगलकी प्रत्याशामें
साँस रोके रहता है ; लेकिन 'नीर कुछ गहरा नहीं था वहाँ !'
कवि इसे 'छल' कहता है। श्रोता तो सचमुच छला गया।
लेकिन यहाँ छले जानेमें ही मज़ा है :—

'लाल जे बाल बिहाल करीं

ते बिहाल करीं ना, निहाल करीं जू !'

[६]

अथ 'दूध-वताशा' ! मधुरेण समापयेत् ।

अब तकका हमारा अध्ययन बताता है कि वर्तमान हिन्दी-
कवितामें भक्त और भगवान हैं, आराध्य और आराधक हैं,
प्रेमी और प्रेयसी हैं, सखा और सखी हैं, सजन और सजनि
हैं, तत्त्वदर्शी और पंडित हैं ; पर भाई-बहन नहीं हैं, मा-बाप
नहीं हैं। गम्भीर और व्याकुल भी हैं, धीर और चंचल भी
हैं, ज्ञानी और जिज्ञासु भी हैं ; पर हँसने-हँसानेवाला कोई
नहीं, छककर गप्प मारनेवाला कोई नहीं, हँसाकर रूखा देनेवाला
कोई नहीं, रूखाकर हँसा देनेवाला कोई नहीं।

'दूध-वताशा' का कवि सौभाग्यवश हिन्दीके उपेक्षित
बच्चोंका आँसू पोंछनेवाला है। हँसने-हँसाने या गप्प मारनेमें
तो वह भी उस्ताद नहीं है ; पर लड़कोंके साथ वह बड़ी आसानोसे
घुल-मिल जाता है। वह बच्चोंके लिए रेल बना देता है,
तितली उड़ा देता है, घोड़ा दौड़ा देता है, कभी हँसा भी देता
है, कभी बड़ी-बड़ी बातें भी सिखा देता है। यहाँ उसने घोड़ेको
एँड़ लगाई और वहाँ रेल दौड़ा दी :—

चल वे घोड़े चल वे चल

इधर-उधर मत बहुत उछल.

वाँ चल मत दाँ चल

सीधे पैर जमाये चल

बहक नहीं मत अधिक मचल

चल वे घोड़े चल वे चल

चल वे घोड़े चल वे घोड़े

नहीं लगाऊँगा दो कोड़े .

भूल जायगा सब छल-बल

चल वे घोड़े चल वे चल ।

x

x

x

धर - धर ईंट बनाई रेल

हमने रचा अनोखा खेल

एक ईंटमें मारा धक्का

सब ईंटोंका छूटा छक्का

खड़ - खड़ छूटी रेल

ईंट गिर गई टूटी रेल ।

खेलते-खेलते वह बच्चोंको कुछ सिखाया भी करता है :—

सूर्य-चन्द्र यदि वन न सकूँ मैं,

ज्योति और भी भर न सकूँ मैं,

तो नन्हा तारा वन जाऊँ,

जितना हो प्रकाश फैलाऊँ ।

बड़ा अँधेरा जब छा जाये,

खाई - खन्दक नहीं दिखाये,

तब मैं दीपक बनकर आऊँ,

बटोहियोंको राह दिखाऊँ ।

'दूध-वताशा' के कविमें बच्चोंके प्रति एक ममता है,
इसीलिए कविताएँ बड़ी सुन्दर उत्तर पाई हैं। सोहनलालजीसे
अभी बहुत-कुछ आशा की जा सकती है।

[७]

कविवर मैथिलीशरणजी गुप्त औसत हिन्दू-गृहस्थके लिए
लिखते हैं, और इन पाठकोंकी दृष्टिसे कमाल करते हैं। जो
औसतसे अत्यन्त ऊपर या अत्यन्त नीचे हैं, उनके लिए वे
लिखते भी नहीं ; वे उनके काव्यसे आनन्द भी नहीं पा
सकते। जहाँ नदी प्रसन्न है, शान्त है, वहाँ उनकी काव्य-
तरणी तरंगोंके साथ अठखेलियाँ करती, तटके सौन्दर्यको देखती
हुई उसके समुद्र तक सहज ही पहुँच जाती है ; पर जहाँ
तूफानका जोर है, विजली कौंध रही है, ऊपर वज्र गर्जन कर
रहा है, नीचे तरंगें फुफकार रही हैं, वहाँ हम उन्हें प्रायः
अनुपस्थित पाते हैं। विशृङ्खल और उच्छृङ्खल मस्तिष्क उनकी

दृष्टिमें रहता भी नहीं, वे उसे पसन्द भी नहीं करते। वे सिरसे पैर तक नैरादिके प्रेमी कवि हैं। जीवनमें, उनके मतानुसार, दुःख-सुख हमारे प्राक्तन कर्मोंके फल हैं। जिसने जैसा बोया है, वह उसे काटनेको बाध्य है। सारा जगत एक औचित्यपूर्ण सामंजस्यमें चल रहा है :—

कर्मोंकी खेती है जगती

७८७

जैसी जिसने बोई

देवोंका भी कर्म-नियन्ता

एक और है कोई।

ऐसी दुनियामें अगर कोई कष्ट पा रहा है, तो उसके लिए जवाबदे वही है। इसका उत्तम उपाय यह है कि जो पढ़ी है, उसे सहते रहो और सर्वात्मना अपनेको पराशक्तिके निकट समर्पण कर दो !—

सह सकना ही तो सर्वोपरि

एक इष्ट है भाई।

राधिका कहती हैं :—

सब सह लूंगी रो-रोकर मैं देना मुझे न बोध हरे !

इतनी ही विनती है मेरी, इतना ही अनुरोध हरे !

क्या ज्ञानापमान करती हूँ कर न बैठना क्रोध हरे !

भूले तेरा ध्यान राधिका तो लेना तू शोध हरे !

× × ×

लेकिन 'सांध्य-गीत' की कविका मत ऐसा नहीं हैं।

उनकी कविता एक विशेष प्रकारकी मार्जित रुचिके पाठकोंके लिए होती है। लिखते समय उनके सामने शायद कोई नहीं रहता ; पर जिन लोगोंका मानसिक विकास कविके ही ढंगपर हुआ है, वे सहज ही उसमें आनन्द पाते हैं। वे मैथिलीशरण गुप्तके समान लोकप्रिय नहीं हो सकतीं ; पर अपनी विशेष श्रेणीमें उनसे अधिक समाहत हो सकती हैं। उनकी लोकप्रियताके लिए एक गुण कविताओंमें प्रचुर मात्रामें पाया जाता है—कोमल पद-विन्यास। इस गुणके लिए उन्हें चेष्टा नहीं करनी पड़ती, वह उनके स्वभावमें है, सहज है। मैथिलीशरण गुप्तकी तरह दुःखको वह सह लेने-योग्य नहीं मानतीं। दुःख उनकी दृष्टिमें

वरदान है, भगवानका सन्देश है। इन्हीं फूलोंको लेकर आराध्यको सन्तुष्ट किया जा सकता है। आराध्य इन आँसुओंके लिए ही आराधिके पास आता है, अपने ऊँचे आसनसे नीचे उतरता है :—

अश्रु मेरे माँगने जब नींदमें वह पास आया !

स्वप्न-सा हँस पास आया !

हो गया दिवकी हँसीसे शून्यमें सुराचाप अंकित

रश्मि रोमोंमें हुआ निस्पन्द तम भी सिहर पुलकित

अनुसरण करता अंमाका

चाँदनीका हास आया !

आराध्यसे मिलनेके लिए हृदयका पीड़ाभय परदा उठा देना सहज है ; परन्तु फिर पीड़ा तो न रहेगी। आराध्यमें मिलनेसे अपनापन भी तो खो जायगा। फिर क्यों दुःखके इस परदेको हटाया जाय। 'सांध्य-गीत' की गायिका इस दुःखको छोड़ना नहीं चाहती :—

मिलन-मन्दिरमें उठा दूँ जो सुमुखसे सजल 'गुण्ठन'

में मिटूँ प्रियमें मिटा ज्यों तप्त सिकतामें सलिल-कण

सजनि, मधुर निजत्व दे

कैसे मिलूँ अभिमानिनी में !

दीप-सी युग-युग जलूँ पर वह सुभग इतना वता दे !

फूँकसे उसके बुझूँ तब क्षार ही मेरा पता दे !

वह रहे आराध्य चिन्मय

मृण्मयी अनुरागिनी में !

जीवनको अस्त-व्यस्त कर देनेवाला भ्रंशावात—दुःखकी आँधी—प्रियके कोमल चरणोंकी ही तो ध्वनि है—दुःखसे ही तो हम उसके आनेकी सूचना पाते हैं ; किन्तु जब आँगन शूना हो, अँधेरा छाया हो, एक निष्कम्प दीपक-भर साथी हो, उस समय हे आराध्य, अपने इस भ्रंशावातको न भेजना,—तुम्हारा स्वागत होगा कैसे ?—

एक रस तमसे भरा है,

एक मेरा शून्य आँगन ;

एक ही निष्कम्प दीपकसे दुकेला हो रहा मन ;
आज निज पद चापकी भेजो न भ्रमवात देखो !

× × ×

सियारामशरण गुप्तका पाठक वह होगा, जो जीवनको उलट-पुलटकर देख सके। उसे कुछ भी पूर्व-निर्णीत नहीं मानना चाहिए, दुनियाको पहले देखना चाहिये, फिर धीरे-धीरे भावसे विचार करके ग्रहण करना चाहिए। उतावले और जल्दबाज़ पाठकका यहाँ “प्रवेशो निषिद्धः” है। कल्पनाओंके रंगीन जालमें पाठकका मन फँसाकर अभिलपित दिशाकी ओर ले जाना उन्हें पसन्द नहीं, कान्तपदावलीकी मधुर भ्रमकारके धोखे पाठकके मनोमृगको फँसाना उन्हें नहीं आता ; लेकिन स्थिरचित्त पाठकको अपना वक्तव्य वे ढंगसे सुना सकते हैं। उसे आलोच्य वस्तुके निकट ले जाकर उसकी महिमाकी ओर इशारा करके अपने निष्कर्षको सुनाते समय वे उत्सुक कर देते हैं। वे कविकी अपेक्षा ‘मनीषी’ अधिक हैं।

‘सांध्य-गीत’ और ‘मृगमयी’ दो परस्पर उलटी चीज़ें हैं। एकको पढ़ते समय आदमी अपनेको भूल जाता है, दूसरेको पढ़कर अपनेको सबसे अधिक याद करता है ; एकमें संगीत है, दूसरेमें तत्त्व चिन्ता ; एकमें कमनीयता है, दूसरेमें विश्लेषण ; एकसे आश्वासन मिलता है, दूसरेसे आत्मज्ञान ; एकका असर सीधे होता है, दूसरेका रुककर ; एक आत्मानुभूतिकी सरस प्रस्रविणी है, दूसरा तत्त्वचिन्तनका सरोवर ; एक मधुर है, दूसरा गम्भीर।

× × ×

किन्तु ‘उद्गार’को कविता कहना उसका वास्तविक परिचय नहीं है। ‘कवि’ने कवित्व लाभ करनेके पूर्व कोई ऐसी चीज़ पाई थी, जो इस कवितासे बढ़कर थी। वह चीज़ हाथसे निकल गई, उस अमूल्य रत्नको खोकर कविताका यह उद्गार मिला है :—

उरमें उमड़ा पीड़ा वारिधि
जीवनमें वरसे अंगार

जीवन-धनको खोकर मैंने
पाया कविताका उपहार।

ऐसे काव्यके विषयमें यह प्रश्न करना ही अन्याय है कि कवि किसके लिए लिखता है। ‘क्या लिखता है’ का सवाल तो सुतरां पराहत हो जाता है। सारा ‘उद्गार’ ‘आत्मनस्तु कामाय’ लिखा गया है। कविता पाठकके हृदयमें समवेदना और अनुकम्पाके भाव जगा देती है। “कौन सहृदय नहीं चाहेगा कि यह काव्यावलम्ब परिष्कृत हो, परिशुद्ध हो, यशस्वी हो ?” (प्रभाकर)

× × ×

निराशा और निरुसाह किनको अच्छा लगता है, यह हम ठीक-ठीक नहीं जानते। परन्तु ऐसे पाठक होंगे ज़रूर, जो जीवनको एक दुःखान्त नाटक समझनेमें आनन्द पाते होंगे। संसारको बुद्धबुद्ध अस्थायी मनानेवाले संन्यासी भी किसी न किसी एक नित्य, एक-रस, आनन्द-धामको अपना लक्ष्य मानते थे। क्योंकि आनन्दकी आशा करना मनुष्यका स्वभाव है। फिर भी निराश प्रेमके भग्नहृदय कवियोंकी बात सुननेवाले पाठक इस दुनियासे निकाल नहीं दिये जा सकते। और उन्हें पढ़नेके लिए हिन्दीमें जो काव्य लिखे गये हैं, उनका मज़ाक नहीं उड़ाया जा सकता। ‘राका’का कवि ऐसे ही पाठकोंका प्रिय होगा। उसको यह बात कोई अस्वीकार नहीं कर सकता कि—

यह विश्व उधेड़-धुनोंकी
कुछ सुलंमी-सी गुलमट है
प्रत्येक गाँठमें जिसकी
अनगिनत कथानक पट हैं।

या—

दुख देख न हिलको भरना
सुखमें न भूलना राही
क्या काँटे नहीं उगे हैं
फूलोंके संग सदा ही।

लेकिन सब यह माननेको तैयार न होंगे कि—

पतझड़ ही अन्त यहाँ है तेरे वसन्तका राही
हँसना ही तो रोना है खिल जाना मुरझाना ही ।

× × ×

‘विदेशी ढाँचेकी लाक्षणिक वक्रता’से रहित (!) काव्यके
लेखक, ‘आभास’-कारके ‘सुखके निर्मल नयनोंमें जब दुःखके
आँसू छा जाते हैं, तब उसकी ‘भव्यभावना-भूमि दिव्य छविमय
होकर शान्तिमें एक मधुर विकलता भर देती है’—

जब सुखके निर्मल नयनोंमें दुःखके आँसू
छा जाते हैं विमल व्योममें तारा गणसे
भव्य भावना भूमि दिव्य छविमय तब होकर
भर देती है मधुर विकलता सजनि, शान्तिमें ।
फिर—

आन्दोलित हो हर्ष, व्यथासे सखि प्रेरित
बज उठती है हृत्तन्त्री तब नीरव स्वरमें ।
तब भाषामें, लयमें, छविमय शब्द-जालमें
हो जाती है व्याप्त काव्यकी मूक रागिणी ।

कवि स्वीकार करता है—

आ न सकी जो सजनि, मधुरिमाके प्रसारमें
केवल वह अस्फुट ध्वनि ही है मेरी कविता ।

और जब हम कहते हैं कि कविकी सचाई ही ‘आभास’का
सबसे बड़ा आकर्षण है, तो यही बात हमारे सामने रहती है ।
युवकोंकी लिखी हिन्दी कविताकी पुस्तकोंमें इस प्रकार सरल
और सचाईयुक्त स्वीकरण कम मिलता है । ‘आभास’के
कविसे हिन्दी-साहित्य बहुत-कुछ आशा कर सकता है ।

माता

श्री कमलाप्रसाद ‘कमल’

स्नेहमयी जननीका धन—माँका हृदय
खेल रहा है वह माताकी गोदमें;
माँका मानस उमड़ उठा है प्यारसे
रोम-रोम माँका पुलकित है मोदमें ।

वक्षस्थलसे चिपटाकर शिशुको कभी
मातृ-हृदयका उष्ण प्यार वह दे रही;
मधुर स्नेहसे कभी उठाकर बालको
बार-बार शत-शत चुम्बन है ले रही ।

कभी उठाकर उसे एक टुक देखती
जग उठता भट आँखोंका संसार है;
मूक गिरा है यद्यपि शिशुके स्नेहकी
पर दृग्में संचित उरका उद्गार है ।

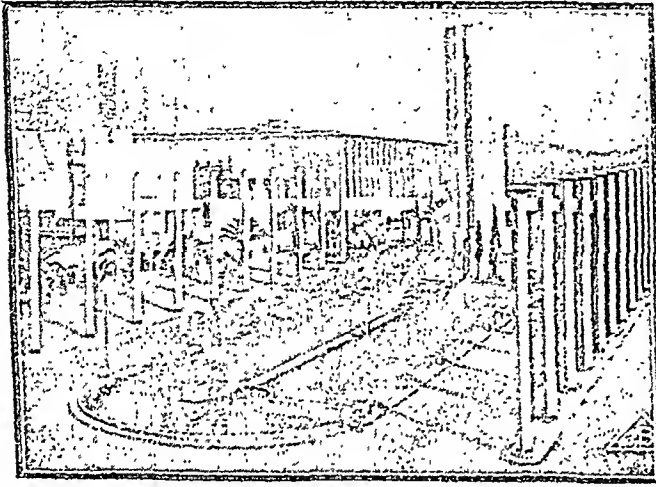
शिशुके वत्सल—आलिंगनके मोदमें
सारी उसकी विश्व-कामना खो गई;
स्वर्ग उतर आया माताकी गोदमें
मातृ-रूप यह सारी वसुधा हो गई ।

क्षुब्ध हो उठा मेरा मानस देखकर
शैशवकी स्मृति पुनः सजग हो रो रही;
सोया था मैं जिस जननीकी गोदमें
वह समाधिकी आज गोदमें सो रही ।

मेरे व्याकुल गान पहुँचकर स्वर्गमें
मेरी दीन-करुण-गाथाको गा गये;
माँके मानस की मालासे टूटकर
मेरी आँखोंमें दो मोती आ गये ।

ज्योतिषी भी थे, जो लोगोंके हाथ देखकर पैसे वसूल करते थे। भारतीय ज्योतिषियोंके लिए यूरोपवालोंमें—विशेषकर मेमांमें बहुत विश्वास दीख पड़ता है।

दूकानपर सामान बेचनेके लिए पिताजीने तीन लड़कियां नौकर रखी थीं। इनमें दो फ्रेंच थीं, एक जर्मन। तीनोंमें

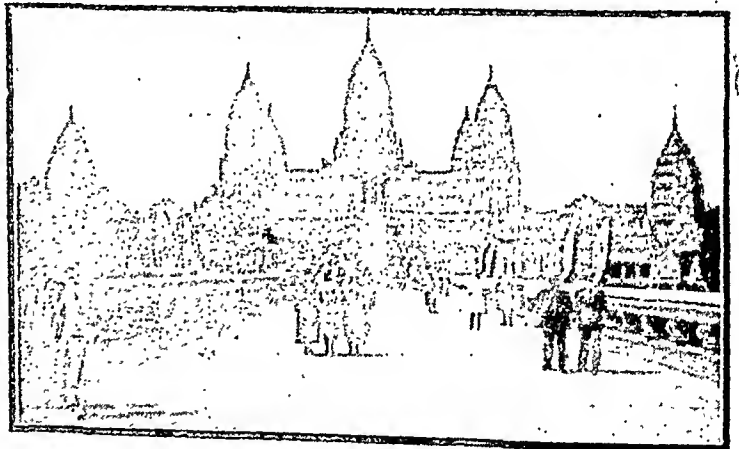


प्रदर्शनीके प्रवेश-मार्गका दृश्य

मिसेज़ फिक नामक फ्रेंच लड़की सबकी प्रधान थी। कभी-कभी मैं उसे भारतीय साड़ी पहना देती थी, तब वह एकदम भारतीय-सी दिखाई पड़ती थी। मिसेज़ फिकके दो वर्षकी एक लड़की थी, जिसे वह शिशु-गृहमें छोड़ आती थी। दिन-भर काम करके रातमें शिशु-गृहसे अपनी बच्चीको लेकर वह घर लौटती और खाना पकाकर स्वामी-स्त्री खाते थे। वह अंगरेज़ी बोल लेती थी। जर्मन लड़की—मिस हेलेन—जर्मन, अंगरेज़ी, फ्रेंच, इटैलियन और रूसी भाषाएँ जानती थी। प्रदर्शनीमें दुनियाके हर एक देशके आदमी आते थे, इसलिए इतनी भाषाएँ जाननेवाली लड़कीसे बड़ी सुविधा होती थी। मिसेज़ फिकको ढाई सौ रुपये और बाकी दोनों लड़कियोंको पौने दो-दो सौ रुपयेके लगभग महीना दिया जाता था। ये तीनों युवतियाँ मुझे बहुत चाहती थीं।

मैं दूकानपर कम बैठती थी। दिन-भर प्रदर्शनीमें घूमा करती थी। भारतीय पोशाकके कारण प्रायः सभी पेंवेलियनोंके लोग मुझे पहचान गये थे। मैं जब दूसरे देशवालोंकी दूकानोंपर मिलने-जुलने जाती, तो कोई-कोई मुझे कुछ-न-कुछ उपहार दिया करते थे। भारतीय पोशाकमें कुछ विशेष आकर्षण होता है। जब कभी मैं किसी दूसरेकी दूकानपर होती थी, तो कुछ लोग मुझे देखनेको ही खड़े हो जाते थे। वे कहते थे—इस भाग्यवान भारतीय लड़की (Lucky Indian girl) के हाथकी दी हुई चीज़ हमारे घरमें ठहरेगी।

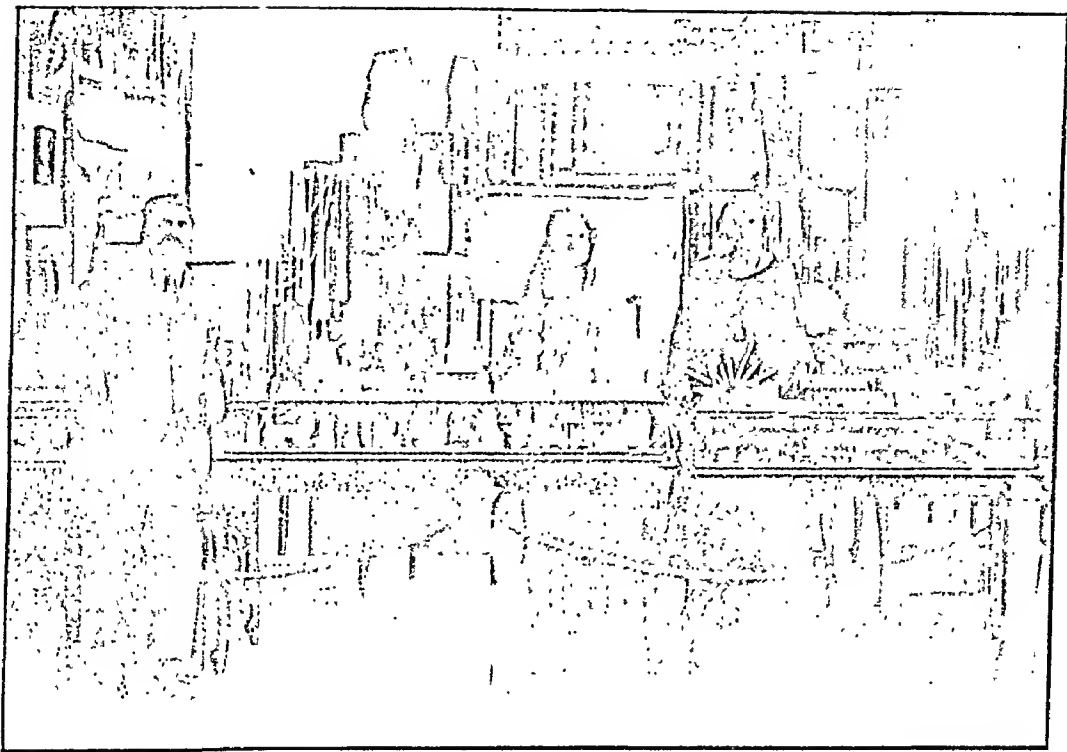
मेरी दूकानके सामने एक स्पेनवालेकी दूकान थी। उसके भी एक लड़की बारह-तेरह वर्षकी—मेरी ही उम्रकी—थी, जिसका नाम 'निना' था। आरम्भमें ही उसके साथ मेरी मित्रता हो गई; लेकिन न वह मेरी भाषा समझती थी और न मैं उसकी। एक ही महीनेमें हम दोनोंने थोड़ी-थोड़ी फ्रेंच सीख ली



इन्डोचीन पेंवेलियन, अंगकोर मन्दिर

और उसीके सहारे हम दोनोंकी खूब कटने लगी।

इवा नामकी एक अन्य युवती भी हमारी दूकानपर बहुत आती थी। वह हम सबको बहुत अच्छी लगती थी। हम लोगोंकी बातें निपटने ही न आतीं। जब मैं अपने देशकी बातें करती, तो वह खूब मन लगाकर सुनती। उसकी उम्र

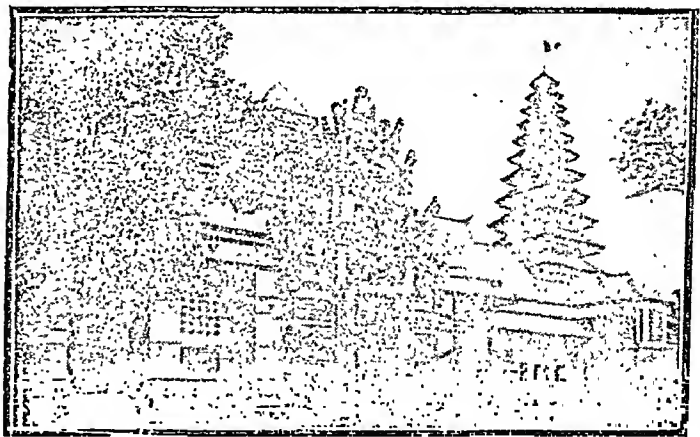


हिन्दोस्तान-भवनमें इकानोमिक ज्वेलरी ववर्सकी दुकान

पचोसके लगभग होगी। एक महीने बाद बातों-बातोंमें मालूम हुआ कि वह एम०ए० और वैरिस्टरी पास है। कैसी विनम्रता थी। उसने कभी अपने इतने विद्वान होनेकी बात नहीं कही।

एक रूसी महिला—मिस मेरो—हमारी दूकानपर अकसर आती थीं। वे बहुत धनी थीं, बोल्शेविकोंके मारे रूससे भागकर पेरिसमें रहती थीं। वे भारतके बारेमें जाननेके लिए बहुत उत्सुक थीं। वे रवीन्द्रनाथकी बड़ी प्रशंसक थीं। मेरे पास एक प्रति 'गीतांजलि'की थी, जिसे ले जाकर वे कुछ-कुछ पढ़ती थीं; किन्तु समझती बिल्कुल न थीं, इसलिए रोज़ आकर पिताजीसे एक-एक कविताकी व्याख्या पूछा करती थीं।

पेरिस आकर पढ़ले कुछ सप्ताह में पिताजीके साथ ही बाहर जाती-आती थी। भाषा न जाननेसे काफी दिक्कत होती थी।



जावा और वाली पैवेलियन

कुछ पूछना-बताना होता था, तो रास्ते चलते किसी अंगरेज़ी जाननेवालेको खोजकर करते थे। कुछ दिन बाद बाबूजीने मुझे फ्रेंच भाषा सिखानेके लिए एक शिक्षिका नियुक्त कर दी। अंगरेज़ीसे फ्रेंच सीखनेके लिए कुछ छोटी-छोटी पुस्तकें खरीदीं। शिक्षिका मुझे बड़े प्रयत्नसे पढ़ाती थी;



मैडम नियता-नियका—लक्ष्मीके वेशमें

लेकिन पढ़नेके लिए बैठनेपर मेरा मन ही न लगता। मेरी यह हालत देखकर शिक्षिकाने दूसरा उपाय निकाला। वह मुझे हर रोज अलग-अलग स्थानोंमें घुमानेके लिए ले जाने लगी—कभी अपने घर, कभी किसी मित्रके घर, कभी बागमें, कभी म्यूजियमको। एक दिन वह मुझे अपने एक मित्रके घर ले गई, जहाँ मेरी ही उम्रकी 'डीडी' नामक एक बालिका थी। यद्यपि फ्रेंच बच्चे आम तौरपर अंगरेज़ी नहीं जानते; लेकिन इस लड़कीने थोड़ी अंगरेज़ी सीख ली थी, जिससे थोड़ी-बहुत बातचीत करनेमें दिक्कत न हुई और हम दोनोंमें खूब मित्रता

हो गई। उस दिन डीडीके स्कूलमें पारितोषिक वितरणका उत्सव था; मुझे भी वह साथ ले गई। उत्सवमें छोटी-छोटी लड़कियोंका नाच, गान, खेल-कूद सब बहुत नये जान पड़े। सब खत्म हो जानेपर जब मैं स्कूलसे बाहर निकली, तो बहुत-सी लड़कियोंने आकर मुझे घेर लिया। मैं उनसे कुछ बातचीत तो कर ही नहीं सकती थी, इसलिए मनमें न-जाने कैसा मालूम हुआ। उसके बाद उनमें से किसीने चाकलेट, किसीने लज्जेज़, किसीने गुड़िया लाकर मुझे उपहार दिया। कुछ मिनट बाद मुझे साथ लेकर उन सबने खेलना शुरू कर दिया। खेल आसानीसे समझमें आ गया और कुछ देर बाद खेलके सम्यन्धकी बातचीत भी समझमें आने लगी। इसी प्रकार अनेक स्थानोंमें जाकर, मजबूर होकर, मुझे फ्रेंच समझने और बोलनेकी कोशिश करनी पड़ती थी।

कुछ दिन बाद शिक्षिका मुझे नियमित रूपसे फ्रेंचकी किताबें पढ़नेको देने लगी। तीन महीनेमें मैं मज़ेमें फ्रेंच बोलने और समझने लगी। अब अकेले कहीं भी जाने-आनेमें कोई दिक्कत न रही।

पेरिसमें मैडम नियता-नियका (Madam Niyota-Inyoka) नामकी एक महिला नृत्यकलामें बहुत प्रवीण हैं। अपने प्राच्य नृत्योंके कारण यूरोप और अमेरिकामें उनका काफी नाम है। यह स्मरण रखना चाहिए कि यूरोपमें प्राच्य (Oriental) शब्दमें केवल एशियाके देश ही शुमार नहीं किये जाते, वरन् मिस्र, मरक्को, अल्जीरिया, ट्यूनिस् आदि अफ्रिकन देश भी समझे जाते हैं। पेरिसमें प्राच्य नृत्यके

लिए लोगोंमें काफ़ी दिलचस्पी है। कोई-कोई नर्तक या नर्तकी केवल मिस या अल्जीरियाका एक-आध नाच सीखकर ही अपनेको प्राच्य नर्तक कहने लगते हैं; किन्तु मैदाम नियता-नियका सभी प्रकारके प्राच्य नृत्य जानती हैं, पर उनका विशेष लक्ष्य है भारतीय नृत्य। भारतकी ओर उनका विशेष झुकाव है।

वे हमारी दूकानपर गणेश, दुर्गा, कृष्ण, बुद्ध आदिकी मूर्तियाँ और भारतीय ज़ेवर खरीदने आती थीं। एक दिन उन्होंने पिताजीको और मुझे चायके लिए निमन्त्रित किया। उनका घर जाकर जो देखा, तो हम लोग दंग रह गये। समूचा घर भारतीय कलाकी वस्तुओं और भारतीय चित्रोंसे सजा था! अल्मारीमें भारतीय कलाओंपर अंगरेज़ी, जर्मन और फ्रेंचकी किताबें भरी थीं। जापानसे लाई हुई एक सुन्दर बुद्धकी मूर्ति रखी हुई थी। इस मूर्तिके आगे रोज़ शामको धूप-दीप-आरती की जाती है। मैदामकी दो और बहनें हैं, उन सबने गीता, रामायण और महाभारत आदि भारतीय पुस्तकोंका अध्ययन किया है।

अन्तर्राष्ट्रीय प्रदर्शनीमें प्रत्येक देशके नृत्य-गीत प्रदर्शित करनेका आयोजन किया गया था। भारतीय नृत्य दिखलानेका भार दिया गया मैदाम नियता-नियकाको। एक दिन मैदाम नियकाने आकर पिताजीसे कहा—“आप इजाज़त दें, तो मैं आपकी लड़कीको भारतीय नृत्य दिखलानेके लिए अपने साथ ले जाऊँ।” मैदाम नियका अपने साथ पेरिसके कई भारतीयोंको लाई थीं, उन सबने भी बहुत ज़ोर दिया। पिताजी राज़ी हो गये, और प्रदर्शनीमें मैं मैदाम नियकाके साथ भारतीय नृत्य दिखलाने लगी। भारतीय नृत्य-सप्ताहमें दो बार दिखलाये जाते थे। मैदाम नियकाके साथ उनकी दोनों बहनें, मैं, एक गुजराती लड़की और दो मिसी लड़कियाँ थीं।

यूरोपियन नृत्योंमें पैरोंकी गति प्रधान होती है; किन्तु भारतीय नृत्योंकी विशेषता है बाहु और अंगोंकी भंगिमा। मैं अपनी भुजाओं और अंगुलियोंको जैसा चाहती थी,

हिला-डुला सकती थी, इसे देखकर सब आश्चर्य करते थे। नियता कहती थीं कि मेरी भुजाएँ और अंगुलियाँ नृत्यके लिए खूब अनुकूल हैं। इसीलिए वे मुझे बहुत चाहती थीं। वे मुझे नृत्यकी शिक्षा देती थीं, साथ ही भारतीय स्त्रियाँ किस तरह काँखमें कलशी दवाती हैं, किस तरह देवताओंको प्रणाम करती हैं, किस तरह उठती-बैठती हैं, आदि दुनिया-भरके प्रश्न मुझसे पूछकर नोट किया करती थीं। मैं भिन्न-भिन्न ढंगके भारतीय जूड़े बाँधती थी, वे उनके फोटो लेती थीं।

तीन मास तक सप्ताहमें दो बार प्रदर्शनीमें मेरे नृत्य होते रहे। बादमें पेरिसके एक विख्यात स्टेजपर नियताने मेरे नृत्योंके कई ‘शो’ कराये थे। फ्रांसके भूतपूर्व प्रेसीडेन्ट मांशियो डूमार भी मेरे नृत्योंसे सन्तुष्ट हुए थे।

प्रदर्शनीमें नियताके अतिरिक्त सुप्रसिद्ध भारतीय नर्तक श्री उदयशंकरने भी नृत्य किया था। उदयशंकर भी मेरे नृत्यसे प्रसन्न हुए और बादमें वे अपनी समूचे यूरोपकी यात्रामें मुझे भी साथ ले गये। उदयशंकरके साथ उनकी माता, छोटी बहन और कईएक भारतीय संगीतज्ञ थे। अपनी इस नृत्य-यात्राका वर्णन अगले अंकमें लिखूंगी।

पेरिसमें युवतियोंको मेरी साड़ीका पहनावा इतना आकर्षक मालूम होता था कि अक्सर वे मुझे राह चलते रोककर पूछने लगती थीं। अनेक युवतियाँ मेरें पास साड़ी पहनना सीखने आती थीं; लेकिन यह ज्ञात हुआ कि साड़ीके प्रति उनका यह आकर्षण सौन्दर्य और आर्टकी दृष्टिसे था, न कि पोशाककी उपयोगिताकी दृष्टिसे।

एक दिन एक धनीके घर निमन्त्रित होकर गई थी। वहाँ भारतके किसी देशी राज्यकी एक राजकुमारी भी निमन्त्रित थीं। वे यूरोपियन ढंगके कटे हुए बाल (Bobbed hair) रखे थीं और यूरोपियन पोशाकके ऊपर एक पतली जालीकी साड़ी पहने थीं। मेरे बाल शुद्ध भारतीय ढंगसे बने थे, पोशाक भी ठेठ भारतीय थी। एक प्रौढ़ महिला ने राजकुमारीको देखकर कहा—“तुम्हारे देशकी जो स्त्रियाँ यूरोपियन पोशाककी नक़ल करती थीं, वे न इधरकी होती हैं, न उधरकी!”

सम्पादकीय विचार

अष्टम एडवर्डका सिंहासन त्याग

सम्राट पंचम जार्जकी मृत्युपर उनके ज्येष्ठ पुत्र अष्टम एडवर्डके नामसे राजा हुए। वे अविवाहित अवस्थामें ही राजा हुए थे। वे विवाह करेंगे या न करेंगे, करेंगे तो किसके साथ, इन बातोंकी अनेक कल्पनाएँ लोगोंमें चलती थीं; किन्तु इंग्लैण्डके अखबारोंमें इस विषयकी कोई सही खबर प्रकाशित नहीं हुई। लेकिन पिछले कुछ महीनोंसे अमेरिकन अखबारोंमें मिसेज सिमसन नामक एक अमेरिकन स्त्रीके साथ राजा एडवर्डकी घनिष्ठताके बारेमें तरह-तरहके विस्तृत संवाद और क्रिस्से प्रकाशित हो रहे थे। अन्तमें इंग्लैण्डके अखबारोंमें भी इस विषयकी खबर प्रकाशित हुई।

मिसेज सिमसनका अपने प्रथम पतिके साथ तलाक़ हुआ था—किसके दोषसे, यह मालूम नहीं। उसके बाद उन्होंने अर्नेस्ट सिमसन नामक एक सज्जनसे विवाह किया और उन्हींके नामसे ही वे मिसेज सिमसन कहलाती हैं। कुछ दिन पहले इस अमेरिकन स्त्रीने अपने इस पतिको भी तलाक़ दे दिया है। अदालती कार्यवाईसे जान पड़ता है कि इस तलाक़में दोषी मि० सिमसन हैं। इस तलाक़की तारीखसे छै महीने तक मिसेज सिमसन यदि निर्दोष जीवन व्यतीत करें, तो तलाक़ पक्का हो जायगा और वे पुनः विवाह कर सकेंगी। इसमें बाधा भी पड़ सकती है।

राजा अष्टम एडवर्डने मिसेज सिमसनसे विवाह करनेका प्रस्ताव किया (—कब किया, इसका पता नहीं), और वे इसपर राजी हो गईं।

विवाहिता स्त्रीके साथ राजा एडवर्डकी जिस प्रकारकी घनिष्ठताकी बात अखबारोंमें प्रकाशित हुई है, वह समर्थनके योग्य नहीं है। परोक्ष भावसे मिसेज सिमसनके दूसरे तलाक़का यही कारण था या नहीं—यह ज्ञात नहीं।

पाश्चात्य देशोंमें भी ऐसे अनेक लोग हैं, जिन्हें

दो बार तलाक़ दे चुकनेवाली ऐसी स्त्रीके साथ, जिसके दो-दो भूतपूर्व पति जीवित हों, किसी पुरुषका—विशेषकर किसी राजाका—विवाह करना अच्छा नहीं लगता। हिन्दू भारतमें तो ऐसे लोग बहुत होंगे। इस प्रकारके विवाहको किसी भी देशके लोग आदर्श विवाह न मानेंगे। लेकिन कौन विवाह आदर्श विवाह है और कौन आदर्श विवाह नहीं है—इसका विचार यहाँ अप्रासंगिक होगा।

इंग्लैण्डके राजाके साथ इस तरहकी स्त्रीका विवाह अवैध है, यह किसीने भी नहीं कहा। उनके लिए यह दुर्नीतिका काम न होता। किन्तु इंग्लैण्डका अभिजात और 'भद्र' समाज इस प्रकारकी स्त्रीको रानी कहकर हृदयसे स्वीकार करनेमें संकोच बोध करता है, इसका प्रमाण मिलता है। वह वैध और स्वाभाविक है। त्रिटेनके राजा ईसाई धर्मकी इंग्लैण्डकी शाखाके रक्षक और शिरोमणि (Defender of the Faith) माने जाते हैं। और इसके एक मतके अनुसार इस प्रकारकी विच्छिन्न विवाहा स्त्री और उसका नया पति ईसाई धर्मके कम्प्यूनियन नामक अनुष्ठानमें भाग नहीं ले सकता। राजा एडवर्ड आनुष्ठानिक धार्मिक नहीं थे। इंग्लैण्डके ईसाई धर्मके पादरी इसीलिए उन्हें पसन्द नहीं करते थे। दूसरी ओर इंग्लैण्डकी साधारण जनता—मजदूर, किसान आदि—के साथ अष्टम एडवर्डकी घनिष्ठता थी भी और बढ़ भी रही थी। जनताकी ओरसे उनके प्रस्तावित विवाहके विरोधकी कोई खबर नहीं सुनी गई। इन्हीं सब कारणोंसे इस प्रकारकी बातें भी सुनी जाती हैं कि इंग्लैण्डके स्थितिशील और पदवीधारी नेता और पादरी लोग राजाके कृषक और मजदूर-प्रेमसे शंकित हो उठे थे, इसीलिए उन्हें सिंहासन छोड़ना पड़ा।

मारगेनेटिक विवाह नामक एक प्रकारके निकृष्ट 'वामाचार' विवाहकी बात अष्टम एडवर्डने उठाई थी; किन्तु प्रधान-मन्त्री उसपर सहमत न हुए। सहमत न होने ही की बात है। उन्होंने ठीक ही किया। इस प्रकारका विवाह वैध है; किन्तु उससे उत्पन्न सन्तान

पिताकी उपाधि और सम्पत्तिकी उत्तराधिकारी नहीं होती। इसलिए इस प्रकारके विवाहसे विवाहिता स्त्री और उसकी सन्तान दोनों ही का अपमान होता है।

इन सब बातोंको देखते हुए यह हालत पहुँची कि सम्राट एडवर्ड या तो मिसेज़ सिमसनको छोड़ दें या सिंहासन छोड़ दें। उन्होंने सिंहासन छोड़ दिया और अपने पिता पंचम जार्ज द्वारा अपने राजवंशके निर्दिष्ट किये हुए 'विन्डसर' नामसे अपनेको मि० विन्डसर पुकारे जानेकी इच्छा प्रकट की है। मिसेज़ सिमसनने इससे पहले ही यह घोषित कर दिया था कि यदि उनके हट जानेसे संकट दूर हो, तो वे हटनेको तैयार हैं, अर्थात् राजाको विवाह-वचनसे मुक्त करनेको राज्ञी हैं।

इंग्लैण्डके राजा किसके साथ विवाह करें, इस विषयमें मत प्रकट करनेका अधिकार इंग्लैण्डके मन्त्रिमण्डलको, पार्लामेंटको और जनसाधारणको है, उपनिवेशोंको भी है। भारत पराधीन विदेश है। भारतवर्षका मत किसीने नहीं पूछा। न पूछनेकी बात नहीं, न पूछनेसे भारतवर्षका विन्दुमात्र अगौरव नहीं होता, बल्कि सिर पड़कर कुछ कहना भारतवर्षके लिए आत्म-अवमानना और अनधिकार चर्चा होती।

फिर भी एक बहुत बड़ा विदेशी सम्राट जिस प्रकार मनुष्य-जातिके ही अन्तर्गत है, उसी प्रकार भारतवर्षके लोग भी मनुष्य-जातिके अन्तर्गत हैं। एक मनुष्यके आचरणके सम्बन्धमें एक दूसरे मनुष्यका भद्रभावसे मत प्रकाश करना अनुचित नहीं है। इसीलिए हम अष्टम एडवर्डके सिंहासन-त्यागके विषयमें दो-एक बातें कहेंगे।

एक बात हम कहेंगे। अष्टम एडवर्डने मिसेज़ सिमसनके साथ विवाह करनेका वचन-भंग अथवा संकल्प-त्याग न करके सिंहासन त्याग करना ही श्रेयस्कर समझा। उनका यह काम मर्दका काम है, पुरुषका काम है। जो पुरुष किसी स्त्रीको विवाह करनेका वचन देकर अपनी बात नहीं रखता, वह

मनुष्य नहीं है, कापुरुष है— वह स्त्री कुमारी, विधवा अथवा विच्छिन्नविवाहा जो-कुछ भी क्यों न हो। अपने इस कामसे अष्टम एडवर्डने सिंहासन खोया; किन्तु मनुष्यकी श्रद्धा प्राप्त की।

मिसेज़ सिमसन जो हट जानेके लिए राज़ी थीं, यह भी प्रशंसनीय है।

किन्तु पहले ही कह चुके हैं कि यदि मिसेज़ सिमसनकी विवाहित अवस्थामें ही उनके साथ एडवर्ड घनिष्टता न करते, तो अच्छा करते।

सिर्फ इंग्लैण्डमें ही नहीं, अन्य अनेकों देशोंमें भी पुरुषोंकी—विशेषकर 'सम्भ्रान्त' लोगोंकी एवं खास तौरपर राजे-रजवाड़ोंकी दुर्नीतिकी समाज सहन करता है, धर्मध्वजी पादरी और पुरोहित सहन करते हैं। राजा एडवर्डका यदि बहुत-सी स्त्रियोंके साथ अवैध सम्बन्ध रहता, यदि वे मिसेज़ सिमसनके साथ मार्गेनितिक ढंगका विवाह करते और उसपर किसी राजवंशया अथवा अभिजातवंशीया स्त्रीको दिखावटी रानी बना देते, तो जान पड़ता है कि इंग्लैण्ड उसे सह लेता। सिर्फ मिसेज़ सिमसनको रानी बनाना नहीं सह सकता, इस प्रकारके भाव विलायतमें खूब अधिक प्रकट किये गये हैं। इससे ब्रिटिश उच्च श्रेणियोंके प्रति मन श्रद्धासे भर नहीं उठना।

—श्री रामानन्द चट्टोपाध्याय

अष्टम एडवर्ड और ईसाई धर्म

ईसाई धर्मकी एक ब्रिटिश शाखा है। आर्क बिशप आफ कैंटरबरी इस शाखाके प्रधान पादरी हैं। इंग्लैण्डका राजवंश इसी शाखाका अनुयायी और रक्षक माना जाता है। इंग्लैण्डके राजाओंकी उपाधिके साथ 'भगवानकी कृपासे' और 'धर्मके रक्षक' (By Grace of God, Defender of the Faith) शब्द जुड़े रहते हैं। एक नये कानूनके अनुसार बादशाहको अधिकार है कि वह एक घोषणा प्रकाशित करके अपनी उपाधिमें रद्दोदल कर सकता है।

अष्टम एडवर्डने सिंहासन छोड़ते वक्त जो घोषणा निकाली थी, उसमें उनकी उपाधिके साथ 'भगवानकी कृपासे' और 'धर्मके रक्षक'—ये दोनों ही शब्द नदारद थे। उपाधिके इस परिवर्तनकी कोई घोषणा प्रकाशित नहीं की गई थी। मालूम नहीं कि भूलसे ये दोनों ही उपाधियाँ उनके नामके साथ नहीं जोड़ी गई, अथवा जान-बूझकर अष्टम एडवर्डने उन्हें उड़ा दिया। जो कुछ भी हो, पर ईसाई पादरियोंने अष्टम एडवर्डके विवाहके विषयमें जो हो-हल्ला मचाया था, इंग्लैण्डके बादशाहके नामके साथ इन दोनों उपाधियोंका न होना उसका करारा जवाब था।

—

प्रेमचन्दजीका स्मारक

प्रेमचन्दजीके स्मारकके विषयमें हिन्दी-पत्रोंमें काफी लिखा-पढ़ी हो रही है, और इस विषयकी कोई स्कीम भी जनताके सम्मुख शीघ्र ही आनेवाली है। हिन्दी और उर्दूके प्रतिष्ठित विद्वान स्मारकका जो रूप निश्चित करें, उसमें पूरी-पूरी सहायता देना हम सबका कर्तव्य होना चाहिए। बाबू राजेन्द्रप्रसादजीने अपने भाषणमें, जो उन्होंने प्रेमचन्द-दिवसके अवसरपर पठनेमें दिया था, कहा है—

“प्रेमचन्दजीके स्मारकका प्रश्न जनताके सामने उपस्थित है। हमारी समझमें उनका सर्वोत्तम स्मारक यही होगा कि जो कार्य वे अधूरा छोड़ गये हैं, उसे हम पूरा करें। सम्मेलनके पास प्रेमचन्द-स्मारकके विषयमें अनेक परामर्श आये हैं। मेरी समझमें स्मारककी एक शक्ति यह भी हो सकती है कि हम लोग इस हिन्दी-उर्दू मसलेको हल करनेकी कोशिश करें। मेरे खयालमें मगड़की कोई वजह न होनी चाहिए। थोड़ेसे कठिन शब्दोंको छोड़कर दोनों जवानें एक ही हैं और दोनोंका व्याकरण भी क़रीब-क़रीब संमान ही है, और अगर हिन्दीवाले उर्दू शब्दोंको और उर्दूवाले हिन्दी लफ्ज़ोंको ग्रहण कर लें, तो दोनोंमें से किसीका नुक़सान न होगा। थोड़ेसे शब्दोंके लिए मगड़ना

कहाँकी अक्लमन्दी है ? मगड़ा किस तरफ़से शुरू हुआ, इस विषयपर बहस करना भी फिज़ूल होगा। हमें दोनों ज़वानोंको मिलानेका प्रयत्न करना चाहिए। इस वक्त लिपिके सवालको उठाना ठीक न होगा। इस समय इतना ही काफी है कि हम दोनोंको मिलाकर एक भाषाका निर्माण करें और हिन्दुस्तान-भरमें उसका प्रचार करें। जिस तरह हिन्दू और मुसलमान दोनों ही कबीरको अपना समझते थे, उसी तरह उनका कर्तव्य है कि वे प्रेमचन्दजीको भी समझें और एक मुश्तरका ज़वान बनानेकी कोशिश करें। प्रेमचन्दजीके जीवनका यही मिशन था, जिसे वे अधूरा छोड़ गये। उसे पूरा करना हम लोगोंका फर्ज़ है।”

—‘सर्चलाइट’, २२ दिसम्बर, पटना

बाबू राजेन्द्रप्रसादजीके कथनसे हम पूर्णतया सहमत हैं। आशा है कि वे इस विषयमें अन्य कार्यकर्ताओंसे परामर्श करके कोई निश्चित कार्यक्रम जनताके सम्मुख रखेंगे। यह बात ध्यान देने-योग्य है कि उन्होंने यह परामर्श अभी अपनी ओरसे ही दिया है, और वे इसे स्मारककी एक शक्ति ही मानते हैं। स्मारकके दूसरे रूप भी हो सकते हैं, और इन भिन्न-भिन्न रूपोंका सामंजस्य करना कोई कठिन बात न होनी चाहिए।

पहली बात तो यह है कि श्री राजेन्द्रप्रसाद तथा उनके साथी जो कोई भी रूप स्मारकका निश्चित करें, उसमें हम सब सहयोग दें। अगर हर आदमी डेढ़ चावलकी खिचड़ी पकानेकी कोशिश करेगा, तो कुछ भी न बन पड़ेगा। दूसरी बात यह है कि जो-कुछ भी स्कीम जनताके सम्मुख रखी जाय, वह व्यावहारिक होनी चाहिए। इस विषयमें जो थोड़ा-सा अनुभव हमें अभी तक हुआ है, उसे यहाँ लिख देना आवश्यक प्रतीत होता है।

हम लोगोंकी स्मरणशक्ति बहुत ख़राब है। स्व० पं० पद्मसिंह शर्मा तथा स्व० गणेशशंकर विद्यार्थीके जीवनमें उनके कितने मित्र तथा प्रशंसक थे, और अब कितने आदमी ऐसे हैं, जो कभी भूले-भटके भी उन्हें

याद कर लेते हों और जो उनके लिए कुछ करनेको तैयार हों ? हम लोग ही, जिन्हें उनके कृपापात्र होनेका सौभाग्य प्राप्त था, जब उन्हें भूलते जा रहे हैं, तो दूसरोंकी शिकायत करनेका हमें अधिकार ही क्या है ?

जब तक कोई एक सुयोग्य आदमी दृढ़प्रतिज्ञ होकर इसी कार्यमें अपने जीवनके कई वर्ष लगानेके लिए तैयार न हो जाय, तब तक कुछ भी नहीं होगा। इस यज्ञके लिए एक होताकी जरूरत है। निस्सन्देह उसे अनेक कटु अनुभवोंका सामना करना पड़ेगा। जिन आदमियोंने प्रेमचन्दजीसे सबसे अधिक लाभ उठाया, सम्भव है कि वे ही सबसे कम सहायक हों ; पर इसमें निराश होनेकी कोई बात नहीं। दुनियाका यह तौर-तरीका ही है। ब्रजकोकिल स्व० सत्यनारायण कविरत्नके स्मारकके लिए जो १०५१) इकट्ठे किये गये, उनमें उनके मित्रोंका रकम ४५) थी। यदि इटावेके श्री सूर्यनारायण अग्रवाल इस कार्यके लिए बीस रुपये और कोटलेके कुँवर महेन्द्रपाल सिंह पचीस रुपये न भेजते, तो मित्रोंकी सहायता एक महान शून्यका रूप धारण कर लेती। इनके अतिरिक्त हमारे मजदूर भाई साहित्य-रत्न बाबूराम बित्थरियाने चार रुपये भेजे थे।—

“यों तो मुँहदेखेकी होती है मुहब्बत सबको ;

मैं तो तब जानूँ मेरे बाद मेरी याद रहे।”

सो यहाँ तो हम लोग मुँहदेखेकी मुहब्बत करनेवाले हैं।

प्रेमचन्दजीका चाहे जो स्मारक बनाया जाय, पर उसके साथ-साथ ये काम तो होने ही चाहिए :—

(१) स्वर्गीय प्रेमचन्दजीका जीवन-चरित। स्वर्गीय प्रेमचन्दजी उन विशेष पुरुषोंमें से थे, जिनके व्यक्तित्वकी रक्षा होनी चाहिए। उनके कष्टों, उनके उद्योगों और उनकी सफलता तथा असफलताओंका वृत्तान्त सुरक्षित रहना चाहिए। क्या ही अच्छा होता, यदि मैक्सिम गोर्कीकी तरह प्रेमचन्दजी भी आत्म-चरित लिख जाते। अपने प्रारम्भिक जीवनकी

जो मलक उन्होंने अपने एक लेखमें दिखलाई थी, उसे पढ़कर किसी भी सहृदय पाठककी आँखोंमें आँसू आये बिना न रहेंगे।

उन्हींके शब्दोंमें सुन लीजिए—“पिता डाकखानेमें क्लर्क थे। उस समय पिताजी शायद २०) पाते थे। ४०) तक पहुँचते-पहुँचते उनकी मृत्यु हो गई। यों वे बड़े विचारशील, जीवन-पथपर आखें खोलकर चलनेवाले आदमी थे ; लेकिन आखिरी दिनोंमें एक ठोकर खा ही गये, और खुद तो गिरे ही थे, उसी धक्केमें मुझे भी गिरा दिया। पन्द्रह सालकी अवस्थामें उन्होंने मेरा विवाह कर दिया और विवाह करनेके साल ही भर बाद परलोक सिधारे। उस समय मैं नवें दर्जेमें पढ़ता था। घरमें मेरी स्त्री थी, विमाता थीं, उनके दो बालक थे और आमदनी एक पैसेकी नहीं। घरमें जो-कुछ लेई-पूँजी थी, वह पिताजीकी छैँ महीनेकी बीमारी और क्रिया-कर्ममें खर्च हो चुकी थी। और मुझे अरमान था वकील बननेका और एम० ए० पास करनेका। नौकरी उस जमानेमें उतनी ही दुष्प्राप्य थी, जितनी अब है। दौड़-धूप करके शायद दस-बारहकी जगह पा जाता ; पर यहाँ तो आगे पढ़नेकी धुन थी—पाँवमें लोहेकी नहीं अष्टधातुकी वेड़ियाँ थीं और मैं चढ़ना चाहता था—पहाड़पर !

“पाँवमें जूते न थे, देहपर साबित कपड़े न थे। मैंहगी अलग—१० सेरके जब थे। स्कूलसे साढ़े तीन बजे छुट्टी मिलती थी। काशीके क्वीन्स कालेजमें पढ़ता था। हेड मास्टरने फीस माफ़ कर दी थी। इम्तहान सिरपर था। और मैं बाँसके फाटकपर एक लड़केको पढ़ाने जाता था। जाड़ोंके दिन थे। चार बजे पहुँचता था। पढ़ाकर छैँ बजे छुट्टी पाता। वहाँसे मेरा घर देहातमें पाँच मीलपर था। तेज़ चलनेपर भी आठ बजेसे पहले घर न पहुँच सकता। और प्रातःकाल आठ ही बजे फिर घरसे चलना पड़ता था, नहीं तो वक्तपर स्कूल न पहुँचता। रातको भोजन करके

कुप्पीके सामने पढ़ने बैठता और न-जाने कब सो जाता । फिर भी हिम्मत बाँधे हुए था ।”

प्रेमचन्दजी इस प्रकार कठिन परिश्रम करके मैट्रिक पास तो हो गये ; पर द्वितीय डिवीजनमें ही । अब आपने एफ० ए० में पढ़नेका विचार किया । फीस माफ हो तो कैसे, क्योंकि फीस माफ अव्वल दर्जेमें पास होनेवाले विद्यार्थीकी ही हो सकती थी । उसी वर्ष हिन्दू कालेज खुला । आप प्रिंसिपलसे मिले । साहबने फीस माफ करनेसे इनकार कर दिया । फिर आपने कालेजकी मैनेजिंग कमेटीके एक सदस्यकी सिफारिशी चिट्ठी ली । इस चिट्ठीको लेकर प्रेमचन्दजी फीस माफ करानेके लिए फिर प्रयत्न करनेवाले थे ; पर आपको ज्वर आ गया और एक महीने तक आप खाटपर पड़े रहे । ज्वर छूटनेके बाद फिर प्रिंसिपलके सम्मुख उपस्थित हुए—

“प्रिंसिपलने मेरी तरफ तीव्र नेत्रोंसे देखकर पूछा—‘इतने दिन कहाँ थे ?’

‘बीमार हो गया था ।’

‘क्या बीमारी थी ?’

मैं इस प्रश्नके लिए तैयार न था । अगर ज्वर बताता हूँ, तो शायद साहब मुझे झूठा समझेंगे । ज्वर मेरी समझमें हल्की-सी चीज़ थी ।’ सहसा एक भयंकर रोगका नाम याद आ गया ।

मैंने कहा—‘पैलपिटेशन आफ़ हार्ट, सर !’

साहबने विस्मित होकर मेरी ओर देखा और कहा—‘अब तुम बिलकुल अच्छे हो ?’

‘जी हाँ ।’

‘अच्छा, प्रवेश-पत्र भरकर लाओ ।’

मैंने समझा वेड़ा पार हुआ । फार्म लिया, खानेपुरी की और पेश कर दिया । साहब उस समय कोई क्लास ले रहे थे । तीन बजे मुझे फार्म वापस मिला । उसपर लिखा था, ‘इसकी योग्यताकी जाँच की जाय ।’

योग्यताकी परीक्षा हुई । अंगरेज़ीमें तो आप योग्य सिद्ध हुए ; लेकिन गणितके परीक्षकने लिख

दिया—‘असन्तोषजनक’ । इससे बेचारे प्रेमचन्दजीकी हिम्मत टूट गई । फार्म लेकर प्रिंसिपलके पास गये भी नहीं, सीधे घर लौट आये !—

“खैर, मैं निराश होकर घर तो लौट आया ; लेकिन पढ़नेकी लालसा अभी तक बनी हुई थी । घर बैठकर क्या करता ? किसी तरह गणितको सुधारूँ और फिर कालेजमें भरती हो जाऊँ, यही धुन थी । इसके लिए शहरमें रहना जरूरी था । संयोगसे एक वकील साहबके लड़कोंको पढ़ानेका काम मिल गया । पाँच रुपये वेतन ठहरा । मैंने दो रुपयेमें अपना गुजारा करके तीन रुपये घरपर देनेका निश्चय किया । वकील साहबके अस्तबलके ऊपर एक छोटी-सी कच्ची कोठरी थी । उसीमें रहनेकी आज्ञा ले ली । एक टाटका टुकड़ा बिछा दिया । बाज़ारसे एक छोटा-सा लैम्प लाया और शहरमें रहने लगा । घरसे कुछ बर्तन भी लाया । एक वक्त खिचड़ी पका लेता और बर्तन धो-माँजकर लाइब्रेरी चला जाता । गणित तो बहाना था, उपन्यास आदि पढ़ा करता । पंडित रतननाथ दरका ‘फ़िसाना आजाद’ उन्हीं दिनों पढ़ा । ‘चन्द्रकान्ता-संतति’ भी पढ़ी । बंकिम बाबूके उर्दू अनुवाद, जितने पुस्तकालयमें मिले, सब पढ़ डाले । दो रुपयेमें गुजारा कर लेना असम्भव हो गया । कष्ट बढ़ने लगे, इसलिए, किसी अधिक वेतनकी नौकरीकी तलाश शुरू हुई ।

जाड़ोंके दिन थे । पास एक कौड़ी न थी । दो दिन एक-एक पैसेका चबेना खाकर काटे थे । मेरे महाजनने उधार देनेसे इनकार कर दिया था, या संकोचवश मैं उससे माँग न सका था । चिराग़ जल चुके थे । मैं एक बुकसेलरकी दूकानपर किताब बेचने गया । चक्रवर्ती गणितकी कुंजी थी । अब तक उसे जतनसे रखे हुए था ; पर आज चारों ओरसे निराश होकर मैंने उसे बेचनेका निश्चय किया । किताब दो रुपयेकी थी ; लेकिन एकपर सौदा ठीक हुआ । मैं रुपया लेकर दूकानसे उतरा ही था कि एक बड़ी-बड़ी

मूँछोंवाले सौम्य पुरुषने, जो उस दूकानपर बैठे हुए थे, मुझसे पूछा—‘तुम कहाँ पढ़ते हो ?’

मैंने कहा—‘पढ़ता तो कहीं नहीं हूँ ; पर आशा करता हूँ कि कहीं नाम लिखा लूँगा ।’

‘मैट्रिकुलेशन पास हो ?’

‘जी हाँ ।’

‘नौकरी करनेकी इच्छा तो नहीं है ?’

‘नौकरी मिलती ही नहीं ।’

यह सज्जन एक छोटे-से स्कूलके हेड मास्टर थे । उन्हें एक सहकारीकी आवश्यकता थी । मैंने स्वीकार कर लिया । अठारह रुपये उस समय मेरी निराशा-व्यथित कल्पनाकी ऊँची-से-ऊँची उड़ानसे भी ऊपर थे । मैं दूसरे दिन हेड मास्टरसे मिलनेका वादा करके चला, तो पाँव ज़मीनपर न पड़ते थे । यह सन् १८९६ की बात थी ।”

प्रेमचन्दजीके विस्तृत जीवन-चरितमें इन सब घटनाओंको यथास्थान रखना चाहिए, ताकि भावी सन्तान उनके दृष्टान्तसे कुछ शिक्षा ग्रहण कर सके ।

(२) दूसरा काम यह है कि प्रेमचन्दजीके ग्रन्थोंकी बिक्रीका प्रबन्ध होना चाहिए—खास तौरसे उन ग्रन्थोंकी बिक्रीका, जिन्हें उन्होंने स्वयं ही प्रकाशित किया था ।

(३) तीसरा काम यह है कि ‘हंस’ की आर्थिक दशा सुधारनेका प्रयत्न होना चाहिए । अपने जीवनके अन्तिम दिनोंमें प्रेमचन्दजी ‘हंस’ को ठीक तौरपर चलानेके लिए अत्यन्त चिन्तित थे ।

जब तक हममें से प्रत्येक आदमी, जो प्रेमचन्दजीका मित्र, भक्त अथवा प्रशंसक रहा है, अपनी जिम्मेवारी अनुभव नहीं करता, तब तक ये तीनों काम नहीं हो सकते ।

एक बात और । हम जो-कुछ करें, श्रद्धापूर्वक करें । प्रेमचन्दजीका यह श्राद्ध सर्वथा प्रेमपूर्वक ही

होना चाहिए । उसमें दिखावट या दम्भकी थोड़ी-सी मात्रा भी सम्पूर्ण कार्यके महत्त्वको नष्ट कर देगी ।

एक सवक

प्रेमचन्दजीके जीवनमें हम उनका कुछ भी सम्मान न कर सके । अब हम लोग चाहे जो-कुछ करें, हमारे माथेपर यह कलंक रहेगा कि हम अपने साहित्य-सेवियोंकी इज्जत करना नहीं जानते । इज्जत करना तो दूर रहा, हम उनपर अनुचित और अन्याययुक्त आक्षेप करनेसे भी बाज़ नहीं आते ।

सुप्रसिद्ध कवियित्री Ella Wheeler Wilcox ने

अपनी एक कविता Mockery (दम्भ) में लिखा है—

“Why do we pierce the warm heart's sin or sorrow
With idle jests, or scorn, or cruel sneers,
And when it cannot know, on some to-morrow,
Speak of its woe through tears ?
What do the dead care for the tender token—
The love, the praise, the floral offerings ?
But palpitating, living hearts are broken
For want of just these things.”

—‘हम किसी प्रेमपूर्ण हृदयके जीवनमें तो उसके पाप और दुःखोंको व्यर्थके मज़ाक, घृणा अथवा व्यंगोंसे कुरेदते हैं और जब वह नहीं रहता, तब उसके कष्टोंकी गाथा साश्रुनयन होकर गाते हैं !’

मृतक व्यक्ति प्रेमके कोमल चिह्नोंकी—खेह, प्रशंसा और पुष्पांजलियों—की क्या परवा करते हैं ? लेकिन कितने ही धड़कते हुए दिल इन्हीं चीज़ोंके अभावमें टूटते रहते हैं ।’

यह समय हिन्दीवालोंकी परीक्षाका है । देखना है कि हिन्दी जनता अपने सर्वश्रेष्ठ कलाकारके लिए क्या करती है । ज़माना बड़ी तेज़ीके साथ बदल रहा है । साहित्य-क्षेत्रकी दूसरी पीढ़ी बजाय बीस-पचीस वर्षके दस वर्षके बाद ही आ जायगी । सन् १९४७ का नवयुवक हिन्दी-लेखक पूछेगा—‘कहाँ हैं वे व्यक्ति, जो प्रेमचन्दजीके बड़े मित्र और प्रशंसक बननेका दम-

भरते थे ? उन्होंने हमारे उस नर-रत्नकी कीर्ति-रक्षाके लिए—उसके व्यक्तित्वको सुरक्षित रखनेके लिए—क्या किया ? उस समय हम क्या जवाब देंगे ? हर आदमी अपने हृदयपर हाथ रखके सोच ले और समय रहते सावधान हो जाय ।

धोबी-मनोवृत्ति

बात त्रेतायुगकी है । मर्यादा पुरुषोत्तम रामचन्द्रजी सती सीताको लेकर लंकासे लौट आये थे और अयोध्यामें न्यायपूर्वक राज्य कर रहे थे—

“प्रजा अनन्द राज प्रभु केरे । मानहु शक कुचेर घनेरे ।
राजत सब रनिवास अनन्दा । सुखी चकोर लखत जिमि चन्दा ।
मही सुहावनि कानन चारु । खग मृग इक संग करहि विहारु ।
बैर न मुनिय रामके राजा । मिलि विचरहि बन सकल समाजा ।”
उस राम राज्यमें एक धोबी था, जिसे दुश्चरित्र चर्चामें आनन्द आता था और जिसे अपनी जवानपर कावू न था । एक दिन जब उसकी धोबिन, जो घरसे बाहर भाग गई थी, लौटी तब उस धोबीने कहा—“मैं अब तुम्हें नहीं रख सकता । मैं रामचन्द्र नहीं हूँ, जिन्होंने सीताजीको, राजसके यहाँ इतने दिन रहनेके बाद भी, घरमें रख लिया ।” धोबीकी इस बातको एक दूतने सुना और उसकी ज्यों-की-त्यों रिपोर्ट भगवान रामचन्द्र तक पहुँचा दी । नतीजा जो-कुछ हुआ, उसे पाठक जानते ही हैं । एक धोबीकी मूर्खताके कारण सती सीताको कितने कष्ट सहने पड़े । खैरियत यही थी कि त्रेतायुगमें समाचारपत्र नहीं थे, नहीं तो भगवान रामचन्द्रजीका जीवन और भी दुःखमय बन जाता ।

इन वृत्तासुर संवाददाताओंकी बीभत्स मनोवृत्तिका जितना भयंकर प्रदर्शन ब्रिटिश सम्राट अष्टम एडवर्ड तथा मिसेज़ सिमसनकी प्रेमलीलाके प्रसंगमें हुआ, उतना शायद ही कभी हुआ होगा । छोटी-सी-छोटी और प्राइवेटसे प्राइवेट बातोंकी रिपोर्ट करनेमें संवाददाताओंने अपना गौरव समझा । उदाहरण सुन लीजिए :—

(१) सम्राट घंटों तक सौन्दर्य-गृहोंके बाहर मिसेज़ सिमसनका इन्तज़ार करते थे । वे ढाई-ढाई घंटे बाहर बैठ रहते थे, जब तक कि मिसेज़ सिमसन अपने बाल सम्हलवाकर बाहर न आ जायँ ।

(२) लन्दनकी अमुक दूकानसे इतने रुपये रोजके फूल सम्राटकी ओरसे मिसेज़ सिमसनके निवास-स्थानपर भेजे जाते थे ।

(३) श्रीमती सिमसन नावमें बैठती थीं और सम्राट उसे खेते थे ।

(४) नहलिन जहाज़पर सम्राट यह करते थे, वह करते थे ।


इनके सिवा सम्राटकी भूतपूर्व प्रेमलीलाओंके जो किस्से समाचारपत्रोंने छापे हैं, उन्हें पढ़कर समाचार-पत्रोंके संवाददाताओंकी मनोवृत्तिका अनुमान पाठक कर सकते हैं ।

यदि आप किसी व्यक्तिके विषयमें यह छाप दें कि अमुक महाशय अपनी स्त्रीसे बीस वर्ष बड़े हैं और अपनी पत्नीके यौवनकी महत्वाकांक्षाओं और खिलवाड़ोंको पूर्ण करनेमें असमर्थ हैं और वह स्त्री अमुकके साथ रात-रात-भर नाचा करती है, तो आपपर मानहानिका दावा हो सकता है ; पर चूँकि किसीको इस बातका डर नहीं है कि मिस्टर विगडसर इस तरहकी कानूनी कार्रवाई करेंगे, इसलिए हर एक अखबार उनके विषयमें मनमानी चीज़ें छाप रहा है । आर्क विशप आफ केन्टरवरीसे लगाकर छोटे-से-छोटे अखबारका संवाददाता तक जज बनकर बैठ गया है और नीतिशास्त्र तथा प्रेमपर लेखनर माड़ रहा है । अमेरिकन अखबारोंने तो हद कर दी थी । महीनों पहलेसे वहाँ इसी बातकी चर्चा चल रही थी ! आखिर अष्टम एडवर्ड या मिस्टर विगडसर भी एक आदमी हैं । उनके भी दिल है । जो बर्ताव समाचारपत्रोंने उनके साथ किया, यदि वही बर्ताव खुद समाचारपत्रोंके सम्पादकों, सहायकों और संवाददाताओंके प्राइवेट जीवनके साथ किया जाय, तो क्या वे उसे पसन्द करेंगे ? या फिर



भूतपूर्व सम्राट अष्टम एडवर्ड अपनी माता सम्राज्ञी मेरीके साथ



सम्राट जार्ज षष्ठस 

नीचे —
रानी एलिजेबेथ मार उनकी पुत्री



हम यह मान लें कि ये सब लोग बिलकुल दूधके धुले हुए हैं ?

प्रेम क्या चीज है और कामुकता क्या बला है और इन दोनोंके बीचकी रेखा कहाँपर है, इन प्रश्नोंपर बहस करनेकी न तो हममें योग्यता है और न उसके लिए यहाँ समय तथा स्थान ही; पर यह बात अधिकांश आदमियोंको स्वीकृत होगी कि प्रत्येक सजीव स्त्री-पुरुषके जीवनमें गधापचीसी आती है और उस समय उससे ऐसे काम बन सकते हैं, जिन्हें नैतिक दृष्टिसे अनुचित कहा जा सकता है। सौभाग्यशाली हैं वे, जो इन गलतियोंसे बच जायें; पर जिनसे ये गलतियाँ बन पड़ती हैं, वे सहानुभूतिके पात्र हैं, न कि दुनिया-भरमें बदनाम किये जानेके। मान लीजिए कि १६ वर्षसे लेकर २५ वर्षकी उम्रके लड़कोंके पीछे एक-एक संवाददाता और फोटोग्राफर लगा फिरे और उनकी तमाम हरकतोंकी सचित्र रिपोर्ट अखबारोंमें छपने लगे, तो लाखों ही युवकों तथा युवतियोंकी जिन्दगी दूभर हो जाय।

अपनी मातृभाषा और भारतकी राष्ट्र-भाषाके पत्रोंसे हमारा अनुरोध है कि वे अमेरिकन पत्रकार-कलाकी इस निन्दनीय नीतिसे अपनेको बचावें। सुना है कि विज्ञानके अनुसार दुनियामें कोई चीज नष्ट नहीं होती, केवल उसके रूपका परिवर्तन हो जाता है। इस सिद्धान्तके अनुसार त्रेतायुगके उस धोबीका व्यक्तित्व भी नष्ट नहीं हुआ, वह मार्टन संवाददाताओंके रूपमें यत्रतत्र विचरण कर रहा है। उनकी इस धोबी-मनोवृत्तिकी जितनी निन्दा की जाय, थोड़ी होगी।

सन्तोषकी बात यही है कि द्वापरमें कोई न्यूज़ पेपर एजेन्सी नहीं थी, नहीं तो वृन्दावनकी केलिकुंजोंमें अखबारोंके क्लेसपान्डेन्ट नज़र आते, और फिर राधा, ललिता, विसाखा और कुण्डजाकी नाकों दम आ जाती और कृष्ण भगवानको बकासुरके साथ-साथ इन वृत्तासुरोंका भी संहार करना पड़ता।

इंग्लैण्डके प्रधान पादरीकी अभद्रता

आर्क विशप आफ कैंटरबरी इंग्लैण्डके प्रधान राजपुरोहित और पादरी हैं। बादशाह अष्टम एडवर्डके सिंहासन-त्यागके बाद उन्होंने बादशाहके कार्यपर जो वक्तव्य प्रकाशित किया है, वह अभद्र और कायरतापूर्ण है। उन्होंने अष्टम एडवर्डकी मित्रमंडलीको बुरा बतलाते हुए कहा कि एडवर्डने मित्रोंके चुनावमें गलती की।

बादशाह एडवर्डका कार्य उचित है या अनुचित, उन्होंने बुरा किया या भला, यह बात विवादग्रस्त हो सकती है; लेकिन यह बात निर्विवाद है कि उन्होंने एक वीर पुरुषकी भाँति, बड़ी मर्यादाके साथ, अपने कार्यकी ज़िम्मेदारी अपने ऊपर भेली है। उन्होंने अपने सिंहासन-त्यागसे अपने सार्वजनिक कर्तव्यको पूरी तरह निबाहा और ब्रिटिश विधानकी रक्षा ही नहीं की, वरन् उसकी मर्यादा भी टूट की है। अगर वे चाहते, तो अपने विशेषाधिकारका उपयोगकर मंत्रिमंडलको भंग करके एक बहुत बड़ा विवाद खड़ा कर सकते थे, और जनसाधारणमें एडवर्डकी लोकप्रियताको देखते हुए कोई निश्चयपूर्वक यह नहीं कह सकता कि उस विवादका फल क्या होता; किन्तु उन्होंने अपने व्यक्तिगत सुखोपर देशके हितोंको तरजीह दी और देशके सार्वजनिक जीवनमें हलचल पैदा किये बिना ही सिंहासन छोड़ दिया। उन्होंने अपने पाखण्डी विरोधियोंके विरुद्ध भी, जो गुलगुले खाकर गुड़से परहेज करते हैं, कुछ नहीं कहा। ऐसी अवस्थामें आर्क विशपका उनके कार्यकी निन्दा करना नितान्त अभद्रता है। आर्क विशपने अष्टम एडवर्डकी जिस मित्रमंडलीकी कड़ी आलोचना की है, वह कोई नई नहीं है। वह उस समयसे है, जब वे प्रिन्स आफ वेल्स थे; किन्तु जब तक अष्टम एडवर्ड प्रिन्स आफ वेल्स और सम्राटके पदपर रहे, तब तक आर्क विशप साहबके 'पवित्र' मुखसे उनके या उनकी मित्रमंडलीके खिलाफ एक शब्द भी नहीं निकला; किन्तु जब एडवर्डने राजसिंहासन त्याग दिया और साधारण मिस्टर विंडसर बन गये, तब आर्क

विश्वको दिव्यदृष्टि प्राप्त हुई और उन्हें अष्टम एडवर्ड और उनकी मित्रमंडलीमें छिद्र दिखलाई देने लगे। यह कायरता नहीं, तो और क्या है ?

कौंसिलोंका मायाजाल

पुराणोंमें हमारा विश्वास नहीं। अकेले पुराणोंमें ही क्यों, किसी भी धर्म-ग्रन्थमें नहीं ; पर पुराणोंमें अनेक क्रिस्से-कहानी ऐसे हैं, जिन्हें पढ़नेमें मजा आता है और जिनसे बहुत-कुछ शिक्षा भी मिल सकती है। पुराणोंके इन्द्र बड़े चालाक व्यक्ति हैं। जब कोई आदमी योग तपस्या करने लगता है, तो उनकी रूढ़ कञ्ज हो जाती है और वे ईर्ष्यावश उसकी तपस्या भंग करनेके लिए अप्सराएँ भेज देते हैं और प्रायः अपने उद्देश्यमें वे सफल भी हो जाते हैं। सहस्र नेत्रवाले इन्द्रकी इस पॉलीटिकल नीतिसे भले ही कोई सहमत न हो, पर उनकी इस सजीवताकी—जिन्दादिलीकी—सहस्रमुखसे प्रशंसा ही करनी पड़ेगी। भारतवर्षकी वर्तमान परिस्थितिको देखकर तबीयत चाहती है कि इन्द्रके अस्तित्वमें विश्वास किया जाय। भला इन्द्रको छोड़कर और कौन कांग्रेसके तपस्वियोंके सम्मुख कौंसिलकी मनमोहिनी अप्सराएँ भेज सकता था ? जो लोग यह कहते हैं कि कौंसिलोंमें हम इसलिए जा रहे हैं कि उन्हें तोड़ डालेंगे, उनके कथनमें बस सत्यका उतना ही अंश है, जितना किसी विवाह-लोलुप युवककी इस घोषणामें कि हम अखण्ड ब्रह्मचर्यव्रत धारण करनेके लिए शादी कर रहे हैं !

एक जमाना था, जब कि कौंसिलें नरकतुल्य त्याज्य समझी जाती थीं, गुलामखाना थीं और न-जाने क्या-क्या बला थीं ; पर अब वहाँ पहुँचनेके लिए हर आदमी लालायित दीख पड़ता है। जनताकी स्मरण-शक्ति खराब होती ही है और वह भेड़ चालसे चलती रहती है ; नहीं तो पन्द्रह वर्षके समाचारपत्रोंके कालमके कालम उसके सामने रखे जा सकते हैं, जिनमें कौंसिलोंका जाना हराम करार दिया गया था ; पर आज

वही चीज़ हलाल समझी जा रही है, और इस तर्कपर कि यदि हम उसे नहीं हथियावेंगे, तो हमारे विरोधी हथिया लेंगे !

हमें एक शक हो रहा है, वह यह कि जो लोग कौंसिल-प्रवेशके पक्षमें हैं, वे अपने स्कूलके दिनोंमें गणितमें जरूर कमजोर रहे होंगे। देशके चुने हुए हज़ार-बारह सौ आदमी कौंसिलोंके पिंजड़ेमें तीन-चार महीनेके लिए बन्द कर देनेसे सर्वसाधारणकी जो हानि होगी, वह अधिक होगी या हमारे विरोधियोंके कौंसिलमें पहुँच जानेसे जो नुकसान होगा, वह ज्यादा होगा।

प्रत्येक क्रान्तिकारी विचार रखनेवालेको यह बात माननी पड़ेगी कि कौंसिलका मार्ग फिमलनका मार्ग है। कौंसिल-प्रवेशके बाद मिनिस्टरी ग्रहण न करना ऐसा ही कहना है कि हम इतने फिसल आये हैं, बस इससे ज्यादा न फिसलेंगे। श्री सत्यमूर्ति तथा उनके साथी कहने लगे हैं कि मिनिस्टरी ग्रहण करके हम ब्रिटिश सिंहके दाँत माँदके भीतरसे उखाड़ लावेंगे ! या तो ये लोग वेशुमार भोले-भाले हैं, या फिर इन्होंने हमों लोगोंको बुद्धू समझ लिया है और हमारी बुद्धिका अपमान करने चले हैं।

और जिन लोगोंका कौंसिलोंमें विलकुल विश्वास नहीं है, वे भी चुनावके खड़े हुए मेम्बरोंकी सिफारिश करते फिरते हैं। यदि कांग्रेसने यह तय कर दिया होता कि कौंसिलमें जाना निरर्थक है, तो यही लोग 'कौंसिलमें जाना पाप है' के नारे बुलन्द करते हुए नज़र आते। गोया दुनियामें सबसे बड़ी चीज़ Discipline या नियन्त्रण है, सत्य-असत्यका विवेक कुछ भी नहीं। श्री जवाहरलाल नेहरूने कहा था कि चुनावके बाद मैं इस कामको विलकुल भूल जाऊँगा। वे एक सच्चे और बहादुर सिपाहीकी भाँति यह कह सकते हैं और जनता उनपर विश्वास कर सकती है [उस विश्वासके वे सर्वथा अधिकारी भी हैं] ; पर क्या सात-आठ सौ आदमी, जो एम० एल० ए० बन जायेंगे, वे कौंसिलोंको भूल जायेंगे ? कौंसिलोंको वे भले ही भूल जायें ; पर ब्रिहिणी

नायिकाकी तरह क्या कौंसिलें उन्हें याद न करेंगी और क्या वे उद्धत नायककी भाँति खिंच खिंचकर उसके पास न जायेंगे ? फिर यह चुनाव-आन्दोलन देशमें एक राजनैतिक कठमुल्लापन पैदा कर रहा है, जो धार्मिक कट्टरतासे कम भयंकर नहीं। मौलाना मुहम्मद अलीने फरमाया था कि मेरी निगाहमें छुद्र-से-छुद्र मुसलमान महात्मा गांधीसे अच्छा है। जो आदमी मौलाना साहबकी इस बातको क्राविले-ऐतराज समझते हैं, वे किस मुँहसे कौंसिल-प्रवेशके पक्षपातियोंके इस कथनका समर्थन कर सकते हैं कि हमारा अदना-से-अदना स्वयंसेवक विरोधी या स्वतन्त्र-दलके आला-से-आला राजनीतिज्ञसे बेहतर है ? और फिर जोश-खरोशमें हमारा sense of proportion भी जाता रहता है। 'प्रताप'की निम्न-लिखित पंक्तियोंपर गौर कीजिए—

“हम अपने स्वयंसेवकको भी दूसरे दलोंके दिग्गज नेताओंसे बेहतर क्यों समझते हैं ? क्या हम अंधे हैं ? क्या हम यह नहीं जानते कि हमारे मुखालिफ़ किताबोंके बड़े कीड़े हैं। उन्होंने राजनीति-शास्त्र, अर्थ-शास्त्र, सरकारी नीली किताबें और न-मालूम क्या-क्या चीजें चाट डाली हैं ? क्या हम उनके अपारदर्शक शरीरसे यह भी नहीं देख सकते कि उनका मस्तिष्क किताबी ज्ञानका भण्डार है ? उन्होंने कालेजमें अध्ययन किया है, वे आरामकुर्तियाँ तोड़-तोड़कर सरकारी रिपोर्टोंका अध्ययन करते रहे हैं। उनसे पूछिये कि १८६० में इलाहाबादका कौन कलक्टर था ? फौरन बता देंगे। उनसे पूछिये कि बनारसके गत ५० वर्षोंके डिप्टी-कलक्टरोंकी तालिका दीजिए। वे फौरन एक लम्बी सूची पेश कर देंगे। तफसील और वाक्यातके बारेमें उनका ज्ञान अपूर्व है। उनकी ज्ञानपर संख्याएँ नाचती हैं, उनकी उँगलियोंके इशारेपर किताबें अपनी कहानी कहती हैं। हमारे मुखालिफ़ोंमें गुण हो सकते हैं, हम उनकी क्रूर भी करते हैं ; लेकिन किताबी कीड़े अच्छे क्लर्क और सेक्रेटरी भले ही हो जायँ, वे दफ्तरकी फाइलें भले ही ठीक ढंगसे रख सकें, मुमकिन है कि वे पैदाइश

और प्रौतके दफ्तरके इंचार्ज भी अच्छे हों ; लेकिन वे राष्ट्रोंके भाग्यका निर्माण नहीं कर सकते। उनकी आँखें किताबोंकी धूलकी ओर हैं, मजदूर और किसानोंकी गर्दकी ओर नहीं। वे १८४० के सम्बन्धमें जानना ज्यादा जरूरी समझते हैं, बनिस्वत १९३६ के। वे यह बता सकते हैं कि इधर पचास वर्षोंमें किस बड़े आदमीको कौन-सी सिगरेट अच्छी लगती थी ; लेकिन वे यह नहीं बता सकते कि इसी कालमें किसानों और मजदूरोंकी क्या समस्याएँ रही हैं।”

हम नम्रतापूर्वक 'प्रताप'-सम्पादकसे पूछते हैं कि क्या उपर्युक्त पंक्तियोंमें मुखालिफ़ोंके प्रति न्याय किया गया है ? क्या उनमें अत्युक्ति अलंकारसे काम नहीं लिया गया ? और अगर ये ही महानुभाव कौंसिलके लिए कांग्रेसकी ओरसे खड़े हो जाते, तो क्या उनके इसी किताबी ज्ञानके कारण उन्हें सातवें आस्मानपर न बिठला दिया जाता ?

'My country right or wrong' (मेरा देश चाहे सही मार्गपर हो या ग़लत, मैं उसका हर हालतमें समर्थन करूँगा), यह सिद्धान्त जितना ग़लत है, उतना ही ग़लत यह सिद्धान्त है कि मेरी पार्टी चाहे ठीक रास्तेपर जा रही हो, चाहे भ्रान्तिपूर्ण पथपर, मुझे तो प्रत्येक दशामें उसकी तार्द ही करनी है। कांग्रेसका साम्प्रदायिक फैसलेके विषयमें बम्बईवाला निर्णय सरासर जीती हुई मक्खी निगलना था ; पर उसकी वजहसे कांग्रेसके कितने ही कार्यकर्ताओंको अपनी बौद्धिक ईमानदारीकी घटा बताकर उसका समर्थन करना पड़ा।

और उन ईर्ष्या-विद्वेषोंका खयाल कीजिए, जो चुनावोंके मौकेपर खुद अपनी ही पार्टीमें उठ खड़े होते हैं। उस समय तपस्वी कार्यकर्ताओंके सामने यह प्रलोभन होता है कि वे अपनी स्वदेश-सेवा तथा जेल-यात्राके एवजमें कौंसिलकी मेम्बरीकी माँग पेश करें। कितने ही इस प्रलोभनको रोक नहीं सकते और उनके किये-कराये कार्यका पुण्य नष्ट हो जाता है। बाइबिलमें प्रार्थना की गई है—‘ऐ खुदा, इम्तिहानसे बचा’,

ईश्वर-भक्त तपस्वी कांग्रेस कार्यकर्ता इसमें इतना और जोड़ सकते हैं—‘इलेक्शनसे भी ।’

कौंसिलोंकी लड़ाई जो लोग लड़ते हैं, उन्हींका कथन है कि बिना अनुचित उपायोंका अवलम्बन किये कौंसिल-चुनावमें सफलता पाना क़रीब-क़रीब असम्भव है । कौंसिल-प्रवेश दरअसल काजलकी कोठरीमें जाना है, जहाँ जाकर रख लगनेके साथ कभी-कभी मुँह भी काला हो सकता है । और वहाँ पहुँचकर सरकार द्वारा बनाये हुए तमाम नियमोंके अनुसार नाच नाचनेपर भी कुछ ठोस सेवा होती-जाती नहीं । अगर ये लोग इतने महीनों तक जनताके सम्पर्कमें आनेका प्रयत्न करें, तो कितना ज़बरदस्त काम हों सकता है । प्रिम क्रोपाटकिनने आजसे ५६ वर्ष पहले जो शब्द कहे थे, उनको पढ़ लीजिए—

“These men, who would be so necessary among the people to sow broadcast their ideas to put the mass in movement, to demolish the institutions of the past, find themselves shut up in a hall, vainly discussing how to wrest concessions from the moderates, and how to convert their enemies, while there is only one way of inducing them to accept the new idea—namely to put it into execution.”

—‘जिन व्यक्तियोंकी जनताको बहुत ज़रूरत होती है, जो विचारोंको उत्पन्न करके और उनका प्रचार करके जनसाधारणका परिचालन कर सकते हैं, पुरानी संस्थाओं (रूढ़ियों) को तोड़ सकते हैं, वही (व्यवस्थापिका सभामें) अपनेको एक कमरेमें बन्द पाते हैं, जहाँ वह नरम-दलवालोंसे कैसे सुविधाएँ प्राप्त की जायँ और अपने विरोधियोंको किस प्रकार राज़ी किया जाय, इस व्यर्थके वितण्डावादमें फँस जाते हैं ; जब कि किसी नये विचारको स्वीकार करानेका सिर्फ़ एक ही मार्ग है—वह है, उस विचारको कार्यमें परिणत करना ।’

कुछ दिन पहले एक किताब निकली थी, जिसका नाम कुछ ऐसा ही था—‘Rise and fall of the Labour party’ (मज़दूर-दलका उत्थान और पतन) ;

उसके अन्तिम अध्यायमें एक बात बड़े पतेकी कही गई थी । लेबर-पार्टी जब शासनारूढ़ हुई, तो कितने ही लेबर मेम्बरोंका वक्त इस बातमें जाया होने लगा कि कैसे कपड़े पहनें, कैसे मुहज्जवाना तौर-तरीक़े सीखें और कैसे शासकोंका-सा रोब-दाब गाँटें । सारा वायु-मंडल कृत्रिमतापूर्ण हो गया, क्रान्तिकारी मनेवृत्ति काफ़ूर हो गई और जनतासे वे बहुत दूर जा पड़े । मंत्रिमंडल बनानेपर कांग्रेसके मेम्बरोंकी यही गति होनेवाली है ।

महात्माजीने कौंसिल-प्रवेशकी आज्ञा दे दी है, इसको ज़रूरतसे ज्यादा महत्त्व नहीं देना चाहिए । अगर ४०-४५ वर्षका प्रौढ़ आदमी महात्माजीके पास जाकर कहे कि मुझसे विवाहके बिना रहा नहीं जाता—या तो विवाह करूँगा, नहीं तो दुर्गाचारी बन जाऊँगा, तो महात्माजी उससे यही कहेंगे कि अच्छा भाई तो विवाह कर लो । कौंसिल-प्रवेशका मसला भी कुछ ऐसा ही है । महात्माजीने यह देख लिया है कि अभी हमारे नेताओंके मनमें से कौंसिलोंका मोह नहीं गया है, इसीलिए उन्होंने आज्ञा दे दी है । अगर वे उसे कोई अच्छी चीज़ समझते, तो खुद ही क्यों न खड़े हो जाते । महाकवि अकबर बहुत पहलेसे कह गये हैं—

“क्यों अपने सरपर ज़हमते-वेसूद लीजिए,
कौंसिलके बदले घरमें उछल-कूद लीजिए ।”

दरअसल कौंसिल-प्रवेश मायाजाल है, लाखों रुपयेकी बरबादी है, एक ऐसा प्रयोग है, जो कई बार नामाकूल साबित हो चुका है, समय तथा शक्तिका अक्षम्य अपव्यय है और हज़रत अकबरके शब्दोंमें ‘ज़हमते वेसूद’ है ।

सर्वधर्म समन्वय

एक ठाकुर साहबने अपने नौकरको हुक्म दिया—
‘अरे भई चन्दा, उस पोखरमेंसे धरी-भर मेंढ़क तो ले आ ।’ चन्दा बाट-तराजू लेकर तालाबके किनारे पहुँचा । तराजूके एक पलेमें पसेरी रखी और दूसरेमें

पकड़-पकड़कर मेंढ़क रखने लगा । जब तक वह पाँच-सात मेंढ़क इकट्ठे करके रख पाता, तब तक उनमें से एक-न-एक नीचे कूद जाता । बहुत प्रयत्न करनेपर भी वह पाँच सेर मेंढ़क न तोल सका । लौटकर उसने ठाकुर साहबसे अपना रोन रोया और क्षमा प्रार्थना की । जो लोग इस बीसवीं शताब्दीमें सर्वधर्म समन्वयके उद्योगमें लगे हुए हैं, वे चन्दासे अधिक बुद्धि नहीं रखते । मेंढ़कोंके पक्षमें एक बात अवश्य कही जा सकती है, वह यह कि उनमें पारस्परिक विद्वेष तो नहीं पाया जाता—कम-से-कम उतनी मात्रामें तो हर्गिज नहीं पाया जाता, जितनी मात्रामें भिन्न-भिन्न धर्मोंमें पाया जाता है, इसलिए सर्वधर्म समन्वय मेंढ़कोंके तोलनेसे भी अधिक कठिन है ।

अगर केवल कठिनाताकी ही बात होती, तब भी हम इसका विरोध न करते ; पर यह प्रयत्न तो हमें बौद्धिक ईमानदारी (Intellectual honesty) की जड़पर कुठाराघात करनेके लिए वाध्य करता है । ज्यों ही एक बार आपने मान लिया कि सब धर्म सत्य हैं, त्यों ही आपकी मनेवृत्ति, शायद बिना आपके जाने ही, असत्यमय हो जायगी । फिर आप तर्कको ताकमें रखकर सोलह आने ऊटपटांग बातोंका भी समर्थन करने लगेंगे । और धर्मोंकी गणना आप अब कबसे प्रारम्भ करेंगे और कब तक ? और बाज़-बाज़ धर्मोंके ईश्वर या उनके अवतार अब तक जीवित हैं । उनको आप क्या छोड़ देंगे ? उदाहरणके लिए हमने अभी कल ही 'अमृतबाजार पत्रिका' में पढ़ा है कि हिज्र हाईनेस सर आग्रा खाँ साहब जर्मनीकी घुड़दौड़में अपने आठ घोड़े भेज रहे हैं । खैर, उनके घोड़े-बछेड़ोंमें हमें कोई दिलचस्पी नहीं ; पर मुश्किल तो यह है कि उनकी भेड़ें तो उन्हें कल्क अवतार मानती हैं ! और राधास्वामी लोग साहबजी महाराजको अवतार-सदृश समझते हैं । इन सबका समन्वय कैसे किया जायगा ? और दिल्लीकी बात यह है कि हरएक धर्मके नेता अब अपने-अपने मतोंको विज्ञानके अनुकूल सिद्ध करनेके असम्भव प्रयत्नमें

लगे हुए हैं । वेद और कुरानमें से जो चीज़ें निकल रही हैं, उन्हें यदि इन ग्रन्थोंके निर्माता देख पाते, तो आश्चर्यमें डूब जाते । धर्म-ग्रन्थोंकी छानबीन करनेके लिए एक अनुसन्धान-विभाग (Research Department) खोलनेकी सलाह हम दे सकते थे ; पर अभी वह वक्त भी नहीं आया है, क्योंकि सभीको अपनी जान प्यारी है । मान लीजिए, कोई अरबीका विद्वान अनुसन्धान करके ऐसी बातें निकालता है, जो नैतिक दृष्टिसे हज़रत मुहम्मद या इस्लामके खिलाफ पड़ती है, तो फिर उसकी जान खतरेमें समझिये । कौन बैठे-बिठाये इस आफ़तको मोल ले ? किसे अपनी ज़िन्दगी भारी पड़ी है ? हमारी समझमें सर्वधर्म समन्वयका प्रयत्न वक्तकी बरबादीके सिवा कुछ भी नहीं । नवयुवकोंका कर्तव्य है कि वे इस ढकोसलेसे अलग ही रहें ।

मुसलमानोंकी दृष्टि किधर है ?

भारतकी राष्ट्रीय एकताके मार्गमें सबसे बड़ी बाधा जो उपस्थित होनेवाली है, वह है मुसलमानोंकी धार्मिक कट्टरता । उनका यह कथन कि हम पहले मुसलमान हैं, पीछे भारतीय—दरस्त राष्ट्रीयताकी जड़पर कुठाराघात करता है । इस प्रकारकी भावना किसी अन्तर्राष्ट्रीय संकटके समय भारतीय राष्ट्रके लिए अत्यन्त भयंकर सिद्ध हो सकती है । जिन्हें हमारे कथनमें कुछ भी आशंका हो, वे कलकत्तेसे निकलनेवाले 'मुसलमान' नामक पत्रके ईद-विशेषांकमें मि० अब्दुर्रहमान साहबका 'Muslim Outlook' नामक लेख पढ़ लें । टर्की, ईराक, ईरान और अफ़ग़ानिस्तानकी जो सन्धि हुई है, उसपर लेखक महोदयने अत्यन्त हर्ष प्रकट किया है, और साथ ही लिखा है कि इस सन्धिकी सम्भावनाएँ महान हैं, अर्थात् इससे ज़बरदस्त-से-ज़बरदस्त परिणाम निकल सकते हैं । लेखक महोदयका कथन है—“Islam could challenge the gospel of Moscow on every point and give a better lead to mankind towards the good life and towards the peace here and eternal bliss in the hereafter.”

अर्थात्—‘इस्लामके सिद्धान्तोंने मास्कोके समाजवादी सिद्धान्तोंका हर बातमें मुकाबला किया, क्योंकि इस्लाम मानव-समाजको इस लोकमें अच्छी ज़िन्दगी बसर करने और शान्तिपूर्वक रहनेके लिए तथा बहिश्तमें जन्नतका आनन्द पानेके लिए जो पथ-प्रदर्शन करता है, वह मास्कोके पथ-प्रदर्शनकी अपेक्षा कहीं उत्तमतर है।’

जहाँ तक जन्नतका सवाल है, हम ‘ग़ालिव’ के शब्दोंमें सिर्फ इतना ही कहेंगे—

“हमको मालूम है जन्नतकी हकीकत लेकिन दिलके बहलानेको ग़ालिव यह खयाल अच्छा है।”

कितने ही मुसलमान बजाय इसके कि देशकी स्वाधीनताके लिए प्रयत्न करें, दुनियाका नक्शा लेकर उसपर All Muslim Route (मुस्लिम पथकी लकीर) खींच रहे हैं ! ‘मुस्लिम आउटलुक’ के लेखककी दृष्टिमें यह लकीर ज़मीनको दो हिस्सोंमें बाँटती है—उत्तरी भाग और दक्षिणी भाग। यह अटलांटिक महासागरसे चलकर पूर्वकी ओर मुड़ती हुई प्रशान्त महासागर तक चली गई है। लेखक महोदयने हिसाब लगाया है कि दुनियाका आठवाँ या दसवाँ हिस्सा मुसलमान है :—

हिन्दुस्तान	८ करोड़
मलाया, जावा, सुमात्रा	
और फिलीपाइन	७ करोड़ ६० लाख
चीन	४॥ करोड़से लेकर
	१० करोड़ तक

योग २० करोड़से २६ करोड़ तक

मुसलमानोंकी भारतवर्षमें पाकिस्तान बनानेकी कल्पना भी सम्भवतः इसी मूर्खतापूर्ण स्वप्नका एक अंश है। आगा ख़ाँ साहबने अछूतोंको आधे-आधे बाँटनेका जो प्रस्ताव पेश किया था, वह भी इस स्कीममें रखा जा सकता है। अगर मुसलमानोंके ये स्वप्न सत्य सिद्ध हो जायँ, तो फिर अन्य जातियोंके साथ वे कैसा व्यवहार करेंगे, इसका कुछ अनुमान उस सर्कूलरसे हो सकता है, जो सीमान्त-प्रदेशमें हिन्दी और गुरुमुखीके

खिलाफ़ निकाला गया है। जब सर मुहम्मद इक़बाल जैसे ममकदार आदमी मिस्त्रके मुल्लाओंको निमन्त्रण दे सकते हैं कि भारतवर्षमें आकर अछूतोंको मुसलमान बनाओ, तो फिर वक्त पड़नेपर वे विदेश। मुसलमानोंको भारतवर्षपर आक्रमण करके एक बार फिर मुस्लिम ग़ज्य स्थापित करनेके लिए भी न्यौता दे सकते हैं। इससे तो उनके पाकिस्तानके स्वप्नको सच्चा बनानेमें बड़ी मदद मिलेगी।

दरअसल जब तक मुसलमानोंकी यह मनोवृत्ति नष्ट नहीं होती, तब तक भारतवर्षको सदा ख़तरा ही रहेगा। बहुत वर्ष पहले अकबरने कहा था—

“पेट ममरूफ़ है कलर्कीमें,
दिल है ईरान और टर्कीमें।”

सो मुसलमानोंका दिल ईरान और टर्कीकी ओर अब भी लगा हुआ है और उनकी दृष्टि उस आल-मुसलिम पथकी लकीरपर अड़ी हुई है, जो अटलांटिकसे लेकर पैसिफिक तक जाती है !

“अरे इन दोउन राह न पाई !”

अगर कोई देश इस समय अन्यायकी नीतिसे अपने पड़ोसीकी कमज़ोरीका फ़ायदा उठाकर उसके देश और सम्पत्तिको हड़प करनेमें लगा हुआ है, तो वह जापान है। इसलिए अगर जापानी सरकारका कोई प्रतिनिधि ‘शान्तिप्रियता’ अथवा ‘आध्यात्मिकता’की बात करता है, तो हमें उसमें दम्भकी गन्ध आये बिना नहीं रह सकती। दिल्लीमें बौद्ध-मन्दिरकी शिलाको रखते हुए जापान-सरकारके प्रधान वाणिज्य दूत मि० के योनेजवाने जो भाषण दिया था, उसमें आपने कहा था—“इस अस्त्रीकरण और अशान्तिके युगमें, जिसमें अपनेको सभ्य कहलानेवाली जातियाँ एक दूसरेको नष्ट करनेपर तुली हुई हैं, मैं बौद्धधर्मकी ओर ध्यान खींचता हूँ, जिसने आध्यात्मिक उन्नतिपर जोर दिया है, और मनुष्योंके स्वार्थपरताकी ओर खींचनेवाले

भौतिकवादका विरोध करता हूँ, जो झूठे और युद्धका मूल कारण है ।”

‘स्वार्थपरता’ तथा ‘भौतिकवाद’ के दृष्टान्त-स्वरूप जापान-सरकारकी ही कार्यवाइयोंका उल्लेख किया जा सकता है ।

श्रीमान् जुगलकिशोर बिड़लाने इस अवसरपर भाषण देते हुए कहा—“सज्जनो, बौद्धधर्म और हिन्दू-धर्म एक ही हैं, और इसलिए चीन, जापान, सिंहल, बर्माके बौद्ध हमारे भाई हैं ।”

यदि अत्याचारी जापान-सरकारके प्रतिनिधिके बजाय अत्याचार-पीड़ित चीनी प्रजाके किसी प्रतिनिधिसे बौद्ध-मन्दिरकी नींव रखवाई जाती, तो उसका आधार कहीं अधिक दृढ़ होता । बिड़लाजीने जापान-सरकारको ‘शक्तिशाली’ कहा है ; पर वह शक्ति पाशविक शक्ति है, आध्यात्मिक शक्ति नहीं, और जापान उसका व्यवहार पाशविक ढंगसे ही कर रहा है ।

कहा जाता है कि जापानी भी आर्यधर्मके अनुयायी हैं । इस सिलसिलेमें हमें एक क्रिस्ता याद आ रहा है । जब भगवान रामचन्द्रजी पम्पापुरीमें थे, तो उन्होंने एक बगलेको देखकर लक्ष्मणजीसे कहा—“लक्ष्मण ! देखो, पम्पापुरीका यह बगुला कितना धार्मिक है । कैसे धीरे-धीरे पाँव रखता है, जिससे कोई जीव-जन्तु नीचे पिच न जाय ।” भगवानकी इस बातको एक मेंढक सुन रहा था । मेंढकने उस समय कहा—

“सहवासी विजानाति सहवासि विचेष्टिताम्

वक् किं वर्यते रामः येनाहं निष्कुलीकृता ।”

अर्थात्—‘साथके रहनेवाले ही साथी - संगियोंके चरित्रका ठीक अनुमान कर सकते हैं । भगवान रामचन्द्रजी आप उस बगलेकी क्यों तारीफ कर रहे हैं, जिसने मेरे सारे कुटुम्बको खा डाला ?’

सो जापानी लोग आर्य हैं अथवा अनार्य, इसका चीन तथा कोरिया देशके निवासी ही दे सकते हैं । यदि कभी भारतवर्षकी स्थिति कमजोर हो जाय,

तो जापान सबसे पहले उसपर आक्रमण करके हमें गुलाम बनानेकी कोशिश करेगा ।

सच बात तो यह है कि Religious brotherhood (धार्मिक भ्रातृत्व) की पोल बहुत पहलेसे खुल चुकी है । दुनियामें गरीब और अत्याचार-पीड़ितोंका भ्रातृत्व ही सच्चा भ्रातृत्व है । भारतके जो मुसलमान टर्की और ईरान ईराक या अफ़ग़ानिस्तानकी ओर टकटकी लगाकर देख रहे हैं, वे मूर्ख और अदूरदर्शी हैं, और उतने ही मूर्ख तथा अदूरदर्शी हैं वे हिन्दू, जो चीन, जापान, बर्मा और सीलोनकी ओर दृष्टि लगाये हुए हैं । दोनों ही ग़लत रास्तेपर हैं । कबीरने ठीक ही कहा था—

“हिन्दुनकी हिन्दुआई देखी तुरकनकी तुरकाई ;

कहैं कबीर सुनो भई साधौ कौन राह ह्वे जाई ।

अरे इन दोउन राह न पाई ।”

ग्रामीण जनता और सरकार

जबसे बम्बई-कांग्रेसमें महात्मा गांधीने ग्रामीण उद्योग-संघकी स्थापना की और कांग्रेसको ग्रामोंमें ले जानेकी घोषणा की, तबसे हमारी सरकार बहादुरके पेटमें भी कुछ खलबली पैदा हुई । हमारी सरकारको भी सौ-डेढ़-सौ वर्ष बाद भारतके गाँवोंका स्मरण आया । प्रसिद्ध हैलेट सर्कूलरमें जिला मैजिस्ट्रेटोंका ध्यान गाँवोंकी ओर दिलाया गया, और केन्द्रीय सरकारने हर साल ग्रामोंके पुनर्निर्माणके लिए एक रकम मंजूर करना शुरू किया ।

वर्तमान वायसराय लार्ड लिनलिथगोने वायसराय पद ग्रहण करनेके बाद ही एक सर्कूलर निकालकर जिला मैजिस्ट्रेटोंसे अनुरोध किया था कि वे देहातोंमें अधिकाधिक दौरे करें और ग्रामीण जनतासे सम्पर्क स्थापित करें । किन्तु इस उपायसे ग्रामीण जनताका कोई विशेष उपकार होगा, इस बातमें हमें सन्देह है, क्योंकि हमारे शासकोंकी मनोवृत्तिमें अभी तक अपनी शान और

ठसक (Prestige) का बहुत महत्व है । वे लोगोपर अपनी और सरकारकी शानका रोज जमाना जानते हैं, उनसे विनम्रतासे मिलकर उनका प्रेम अर्जित करना नहीं जानते । दूसरी बात यह है कि अपने देशसे कहीं अधिक तनखाह पानेपर भी आई० सी०एस०वाले प्रत्येक नये परिवर्तनकी आड़में अपनी तनखाह, भत्ते, पेंशन बढ़वाने और सुविधाएँ प्राप्त करनेकी कोशिशमें रहते हैं । हमें सन्देह है कि इस मौकेकी आड़ लेकर वे अपना भत्ता और ट्रेवेलिंग अलाउन्स बढ़वानेकी कोशिश न करें । अगर ग्रामोंके दोरेके नामपर आई०सी०एस० वालोंके भत्ते बढ़ाये गये, तो ग्रामीणोंका उद्धार हो या न हो ; पर कर-दाताओंपर नया बोझ ज़रूर लद जायगा । भारतीय व्यवस्थापिका सभाओंको इस ओर सतर्क दृष्टि रखनी चाहिए ।

साहित्यांक

आगामी अप्रैल सन् १९६७ में हम 'विशाल भारत' का एक और विशेषांक 'साहित्यांक' के ना निकालना चाहते हैं । उसके लिए तैयारी शुरू कर दी गई है । अपने लेखकों तथा पाठकों हमारी विनीत प्रार्थना है कि वे इस विषयमें अपरामर्श 'लेख भेजें कि साहित्यांकमें किन-विषयोंका समावेश होना चाहिए । अपनी ओरसे उसे उपयोगी बनानेके लिए भरपूर कोशिश करें ।

निवेदन

साहित्यिक सभा-समितियोंमें सम्मिलित होनेके लिए हमारे पक्ष गयः आया करते हैं । जो महानुभाव इस प्रकारकी कृपा करते हैं, उनके हम हृदयसे कृतज्ञ हैं ; पर खेदके साथ हमें पड़ता है कि अपनी परिस्थितियोंके कारण हमें यह निश्चय पडा है कि हम अभी बहुत दिनों तक इस प्रकारकी मीटिंगोंमें शामिल न होंगे । आशा है कि हमारा यह अपराध क्षन्तव्य समझा जाय ।

देहमें द्वन्द्व

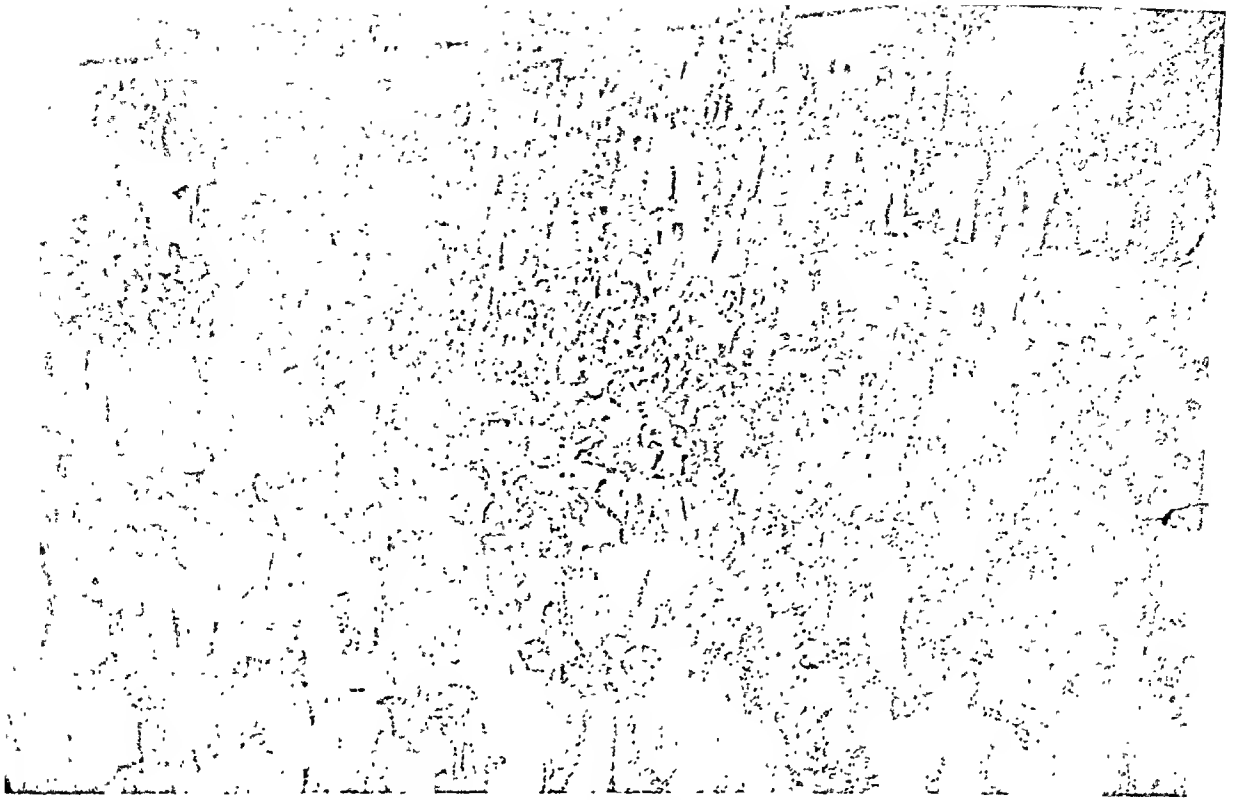
डा० प्र० घोष, एम० बी०

जिस देशमें हम रहते हैं और जहाँकी आब-हवामें हमारा जीवन बनता है, वहाँ शहरोंसे लेकर छोटे-छोटे गाँवों तक चारों ओर अगर हम अच्छी तरह देखें, तो नर-नारी और कंकालसार स्नान वच्चे मृत्युकी ओर अप्रसर होते दिखाई देंगे । बाहरी कारणोंको हम दोष दिया करते हैं, पर हम इस बातकी खोज ही नहीं रखते कि हजारों रोगोंके कीटाणु अज्ञातरूपसे हमारे शरीरमें प्रवेश करते रहते हैं । ये कीटाणु एक ही रोजमें शरीरमें प्रवेश नहीं करते, बल्कि पुर्यानुक्रमसे विभिन्न मार्गोंसे आकर देहमें बस जाते हैं ।

इस तरह अचानक होकर देशका कोई अच्छा काम करना भी हमारे लिए सम्भव नहीं । हमारी चल्नेकी शक्ति मानो दिनोंदिन क्षीण होती जाती है और देहमें भी मानो धुन-सा लगता जाता है । सामयिक उत्तेजनासे हम बेकार-समस्याके समाधानके लिए 'हल ज़ोतकर खेतों करने' का राग अलापते हैं ; पर ज़रा खयाल तो कीजिये कि जिस देहसे हम मेहनत-मज़रीका काम लेना चाहते हैं, उसकी क्या हालत है ! उसमें दम कहाँ ?

पहली बात तो यह है कि हमारे देशमें अच्छे निस्काँका मिलना आसान नहीं, और मिलें भी तो आर्थिक उसमें बाधक है । घर-घर रोग और रोगीमें जीवन-मृत्यु-चल रहा है, और साथ-ही दवा-दाखी कमी भी दुखदायक नहीं है । मामूली खाँसी-जुकामसे भीषण हो सकता है, इसकी हम खबर ही नहीं रखते । हम हैं कि यह तो हुआ ही करता है, ऐसे ही अच्छा हो जाय इसी धारणाके कारण सिर्फ बंगालमें ही आठ सौ रोगी य शिकार बने हुए हैं ।

देश - विदेश सर्वत्र रोगोंका प्रसार हो रहा इसपर विचार करते हुए नेपल्सके यक्ष्मा अन्तर्जातीय सम्मेलनके सभापति प्रो० रेंजीने उक्त रोगके इलाजमें सुफल पाकर सिरोलिनको समस्त प्रतिरोधक औषधोंमें स्थान दिया है । इस बातको हम दुविधाके कह सकते हैं कि घरमें सिरोलिनकी एक रखनेसे बहुत लाभ हो सकता है ।



नम्बईमें की-दुर्गो-पुलित्की मण्डल ले जानेका उत्सव



ममाल ले जानेवाले श्री गोकुलदास भट्टका नम्बईमें सम्मान

रुसमें युद्धकी तैयारियाँ—हवाई-जहाजोंसे पैराशूटके सहारे सैनिक कूद रहे हैं



पैराशूटसे कूदकर एक रूसी सैनिक खड़ा है